

ڈاکٹر ذاکر حسین لائبریری

DR. ZAKIR HUSAIN LIBRARY

JAMIA MILLIA ISLAMIA
JAMIA NAGAR

NEW DELHI

491.4303

CALL NO. -- 152K5.3:1 -

Accession No. C14224 - -

Call No 4.91.4.3.0.3

Acc. No. C 14.224

152 K5.3:1

Books must be returned to the library on the due date last stamped on the books. A fine of 5 P for general books 25 P for text books and Re 1.50 for over night books per day shall be charged from those who return them late.



You are advised to check the pages and illustrations in the book before taking it out. You will be responsible for any damage done to the book and will have to replace it if the same is detected at the time of return.

हिंदी शब्दसागर

हिंदी शब्दसागर

पंचम भाग

['दस्त' से 'न्हावना' तक, शब्दसंख्या-१६०००]

मूल संपादक

श्यामसुंदरदास बी० ए०

मूल सहायक संपादक

बालकृष्ण भट्ट	रामचंद्र शुक्ल
अमीरसिंह	जगन्मोहन वर्मा
भगवानदीन	रामचंद्र वर्मा



संपादकमंडल

संपूर्णानंद

नगेंद्र

रामधन शर्मा

कृष्णदेवप्रसाद गौड़ (स्वर्गीय)

शिवप्रसाद मिश्र 'रुद्र' (सह० संयोजक)

करुणापति त्रिपाठी (संयोजक संपादक)

कमलापति त्रिपाठी

धीरेंद्र वर्मा

हरवंशलाल शर्मा

शिवनंदनलाल दत्त

सुधाकर पांडेय

सहायक संपादक

विश्वनाथ त्रिपाठी

काशी नगरी प्रचारिणी सभा

हिंदी शब्दसागर के संशोधन संपादन का संपूर्ण तथा प्रथम एवं द्वितीय भाग के प्रकाशन का साठ प्रतिशत व्ययभार भारत सरकार के शिक्षामंत्रालय ने वहन किया ।

परिवर्धित, संशोधित, नवीन संस्करण

शकाब्द १८६०

सं० २०२५ वि०

१६६८ ई०

मूल्य २१), संपूर्ण दस भागों का २००)

आवश्यक संशोधन

पृष्ठसंख्या २३१६ के बाद कृपया २३१७, २३१८ आदि पढ़ें । आठ पृष्ठों के बाद पुनः भूल से २३३३, २३३४ आदि छप गया है, इन्हें २३२५, २३२६ आदि पढ़ें । पृ० २६३२ के बाद से अंत तक की पृष्ठसंख्या भी भ्रष्ट छप गई है, जिन्हें कृपया २६३७, २६३८ आदि पढ़ें; अंतिम पृष्ठसंख्या २७२४ होगी ।

शंभुनाथ बाजपेयी

द्वारा

नागरी मुद्रण, वाराणसी

में मुद्रित

प्रकाशिका

‘हिंदी शब्दसागर’ अपने प्रकाशनकाल से ही कोश के क्षेत्र में भारतीय भाषाओं के दिशानिर्देशक के रूप में प्रतिष्ठित है। तीन दशक तक हिंदी की मूर्धन्य प्रतिभाओं ने अपनी सतत तपस्या से इसे सन् १९२८ ई० में मूर्त रूप दिया था। तब से निरंतर यह ग्रंथ इस क्षेत्र में गंभीर कार्य करनेवाले विद्वत्समाज में प्रकाशस्तंभ के रूप में मर्यादित हो हिंदी की गौरवगरिमा का आख्यान करता रहा है। अपने प्रकाशन के कुछ समय बाद ही इसके खंड एक एक कर अनुपलब्ध होते गए और अप्राप्य ग्रंथ के रूप में इसका मूल्य लोगों को सहस्र मुद्राओं से भी अधिक देना पड़ा। ऐसी परिस्थिति में अभाव की स्थिति का लाभ उठाने की दृष्टि से अनेक कोशों का प्रकाशन हिंदी जगत् में हुआ, पर वे सारे प्रयत्न इसकी छाया के ही बल जीवित थे। इसलिये निरंतर इसकी पुनः अवतारणा का गंभीर अनुभव हिंदी जगत् और इसकी जननी नागरीप्रचारिणी सभा करती रही, किंतु साधन के अभाव में अपने इस कर्तव्य के प्रति सजग रहती हुई भी वह अपने इस उत्तरदायित्व का निर्वाह न कर सकने के कारण मर्मांतक पीड़ा का अनुभव कर रही थी। दिनोत्तर उसपर उत्तरदायित्व का ऋण चक्रवृद्धि सूद की दर से इसलिये और भी बढ़ता गया कि उस कोश के निर्माण के बाद हिंदी की श्री का विकास बड़े व्यापक पैमाने पर हुआ। साथ ही, हिंदी के राष्ट्रभाषा पद पर प्रतिष्ठित होने पर उसकी शब्दसंपदा का कोश भी दिनोत्तर गतिपूर्वक बढ़ते जाने के कारण सभा का यह दायित्व निरंतर गहन होता गया।

सभा की हीरक जयंती के अवसर पर, २२ फाल्गुन, २०१० वि० को, उसके स्वागताध्यक्ष के रूप में डा० संपूर्णानंद जी ने राष्ट्रपति राजेंद्रप्रसाद जी एवं हिंदीजगत् का ध्यान निम्नांकित शब्दों में इस और आकृष्ट किया—‘हिंदी के राष्ट्रभाषा घोषित हो जाने से सभा का दायित्व बहुत बढ़ गया है।...हिंदी में एक अच्छे कोश और व्याकरण की कमी खटकती है। सभा ने आज से कई वर्ष पहले जो हिंदी शब्दसागर प्रकाशित किया था उसका वृद्ध संस्करण निकालने की आवश्यकता है।...आवश्यकता केवल इस बात की है कि इस काम के लिये पर्याप्त धन व्यय किया जाय और केंद्रीय तथा प्रादेशिक सरकारों का सहयोग मिलता रहे।’

उसी अवसर पर सभा के विभिन्न कार्यों की प्रशंसा करते हुए राष्ट्रपति ने कहा—‘वैज्ञानिक तथा पारिभाषिक शब्दकोश सभा का महत्वपूर्ण प्रकाशन है। दूसरा प्रकाशन हिंदी शब्दसागर है जिसके निर्माण में सभा ने लगभग एक लाख रुपया व्यय किया है। अपने शब्दसागर का नया संस्करण निकालने का निश्चय किया है। जब से पहला संस्करण ज्ञात, हिंदी में बहुत बातों में श्री-हिंदी के अलावा संसार में बहुत बातों में बड़ी प्रगति हुई है। हिंदी भाषा भी इस प्रगति से अपने को वंचित नहीं रख सकती। इसलिये शब्दसागर का रूप भी ऐसा होना चाहिए जो यह प्रगति प्रतिबिंबित कर सके

और वैज्ञानिक युग के विद्यार्थियों के लिये भी माधारगतः पर्याप्त हो। मैं आपके निश्चयों का स्वागत करता हूँ। भारत सरकार की ओर से शब्दसागर का नया संस्करण तैयार करने के महायत्नार्थ एक लाख रुपए, जो पाँच वर्षों में बीस बीस हजार करके दिए जाएंगे, देने का निश्चय हुआ है। मैं आशा करता हूँ कि इस निश्चय से आपका काम कुछ सुगम हो जाएगा और आप इस काम में अग्रसर होंगे।’

राष्ट्रपति डा० राजेंद्रप्रसाद जी की इस घोषणा ने शब्दसागर के पुनःसंपादन के लिये नवीन उत्साह तथा प्रेरणा दी। सभा द्वारा प्रेषित योजना पर केंद्रीय सरकार के शिक्षामंत्रालय ने अपने पत्र सं० एफ १४—३१५४ एच० दिनांक ११।५।५४ द्वारा एक लाख रुपया पाँच वर्षों में, प्रति वर्ष बीस हजार रुपए करके, देने की स्वीकृति दी।

इस कार्य की गरिमा को देखते हुए एक परामर्शमंडल का गठन किया गया, इस संबंध में देश के विभिन्न क्षेत्रों के अधिकांश विद्वानों की भी राय ली गई, किंतु परामर्शमंडल के अनेक सदस्यों का योगदान सभा को प्राप्त न हो सका और जिस विस्तृत पैमाने पर सभा विद्वानों की राय के अनुसार इस कार्य का संयोजन करना चाहती थी, वह भी नहीं उपलब्ध हुआ। फिर भी, देश के अनेक निष्णात अनुभवसिद्ध विद्वानों तथा परामर्शमंडल के सदस्यों ने गंभीरतापूर्वक सभा के अनुरोध पर अपने बहुमूल्य सुझाव प्रस्तुत किए। सभा ने उन सबको मनोयोगपूर्वक मथकर शब्दसागर के संपादन हेतु सिद्धांत स्थिर किए जिनसे भारत सरकार का शिक्षामंत्रालय भी सहमत हुआ।

उपर्युक्त एक लाख रुपए का अनुदान बीस बीस हजार रुपए प्रति वर्ष की दर से निरंतर पाँच वर्षों तक केंद्रीय शिक्षा मंत्रालय देता रहा और कोश के संशोधन, संवर्धन और पुनःसंपादन का कार्य लगातार होता रहा, परंतु इस अवधि में गांधी कार्य निपटाया नहीं जा सका। मंत्रालय के प्रतिनिधि श्री डा० रामधन जी शर्मा ने बड़े मनोयोगपूर्वक यहाँ हुए कार्यों का निरीक्षण परीक्षण करके इसे पूरा करने के लिये आगे और ६५०००) अनुदान प्रदान करने की संस्तुति की जिसे सरकार ने कृपापूर्वक स्वीकार करके पुनः उक्त ६५०००) का अनुदान दिया। इस प्रकार संपूर्ण कोश का संशोधन संपादन दिसंबर, १९६५ में पूरा हो गया।

इस ग्रंथ के संपादन का संपूर्ण व्यय ही नहीं, इसके प्रकाशन के व्ययभार का ६० प्रतिशत बोझ भी दो खंडों तक भारत सरकार ने वहन किया है, इसीलिये यह ग्रंथ इतना सस्ता निकालना संभव हो सका है। उसके लिये शिक्षामंत्रालय के अधिकारियों का प्रशंसनीय सहयोग हमें प्राप्त है और तदर्थ हम उनके अतिशय आभारी हैं।

जिस रूप में यह ग्रंथ हिंदीजगत् के संमुख उपस्थित किया जा रहा है, उसमें अद्यतन विकसित कोशशिल्प का यथासामर्थ्य उपयोग और

प्रयोग किया गया है, किंतु हिंदी की और हमारी सीमा है। यद्यपि हम ग्रंथ और व्युत्पत्ति का ऐतिहासिक क्रमविभाग भी प्रस्तुत करना चाहते थे, तथापि माधन की सीमा तथा हिंदी ग्रंथों के नावक्रम के प्राथमिक निश्चयन के प्रभाव में कम कर सकता संभव नहीं हुआ। फिर भी यह रहने में हम सहाय नहीं कि अद्यतन प्रकाशन क्षेत्रों में शब्दनागर की यन्त्रिया प्राचुरिक भारतीय भाषाओं के कोशों में अतुलनीय है, और इस क्षेत्र में काम करनेवाले प्रायः सभी क्षेत्रीय भाषाओं के विद्वान् इसमें आधार ग्रहण करते रहेंगे। इस अवसर पर हम हिंदी जगत की यह भी सच्चापूर्वक सूचना करना चाहते हैं कि सभा ने शब्दनागर का लक्ष्य एक स्थायी अवस्था का संकल्प लिया है जो बराबर इसके प्रवर्धन और संशोधन के लिये ऐतिहासिक संबंधों अद्यतन विधि से यत्नशील रहेगा।

शब्दनागर के इस संशोधन प्रवर्धन रूप में शब्दों की संख्या मूल शब्दनागर की अक्षा दुगुनी से भी अधिक हो गई है। नए शब्द हिंदी साहित्य के आदिकाल से एवं सूती साहित्य (पूर्व मध्यकाल), आधुनिक काल, पद्य, नाटक, आलोचना, उपन्यास आदि के ग्रंथ, इतिहास, राजनीति, यंत्रणा, समाजशास्त्र, वाणिज्य आदि और अभिनंदन एवं पुरस्कृत ग्रंथ, विज्ञान के सामान्य प्रचलित शब्द और राजस्थानी तथा उड़िया, दक्षिण हिंदी और प्रचलित उर्दू के भी आदि से संकलित किए गए हैं। ऐतिहासिक में प्राचीनतम एवं वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दों की व्यवस्था की गई है।

हिंदी शब्दनागर का यह संशोधित परिवर्धित संस्करण कुल दस खंडों में पूरा होगा। इसका प्रकाशक पोष, संवत् २०२२ वि० में छपकर तैयार हो गया था। इसके उद्घाटन का समारोह भारत गणराज्य के प्रधान मंत्री स्वर्गीय माननीय श्री जवाहरलाल नेहरू जी शास्त्री द्वारा प्रयाग में ३ गोप, संवत् २०२२ वि० (१० दिसंबर, १९६५) की भव्य रूप से गजे हुए पंडित म. क. भाषा प्रयोग एवं प्रकाशक स्थानों के वरिष्ठ और सुप्रसिद्ध साहित्यिक, वैज्ञानिक तथा सामाजिक कार्यियों की उपस्थिति में मण्डप हुआ। उपरोक्त में उपस्थित अतिथियों में विशेष उल्लेख्य माननीय श्री पं० कल्याण जी त्रिपाठी, हिंदी विश्वकोश के प्रधान संपादक श्री राज रामवन्श जी त्रिपाठी, पद्मभूषण कविता श्री पं० गुणवानन्ध जी त्रिपाठी, योगिता जगदीश जी वर्मा आदि हैं। इस सभा के संशोधित संस्करण की सफल पूर्ति के उपलक्ष्य में इसके समस्त संपादकों एवं पत्रकारों को पत्र, पत्रिका और ग्रंथों की एक एक पाल माननीय श्री शास्त्री जी के कार्यक्रमों

द्वारा भेंट की गई। उन्होंने अपने संक्षिप्त सारगर्भित भाषण में इस सभा की विभिन्न प्रवृत्तियों की चर्चा की और कहा : 'सार्वजनिक क्षेत्र में कार्य करनेवाली यह सभा अपने ढंग की अकेली संस्था है। हिंदी भाषा और साहित्य की जैसी सेवा नागरीप्रचारिणी सभा ने की है वही सेवा अन्य किसी संस्था ने नहीं की। भिन्न भिन्न विषयों पर जो पुस्तकें इस संस्था ने प्रकाशित की हैं वे अपने ढंग के प्रनूतें हैं जो उनसे हमारी भाषा और साहित्य का मान अत्यधिक बढ़ाते हैं। सभा न समय की गति को देखकर तात्कालिक उपादेयता के वे पत्र ग्रंथ ग्रंथों के लिए हैं जिनकी इस समय नितांत आवश्यकता है। इस प्रकार यह निस्संशय कहा जा सकता है कि भाषा और साहित्य के क्षेत्र में यह सभा अग्रिम है'।

प्रस्तुत पंचम खंड में 'दस्त' से लेकर 'म्हावना' तक के शब्दों का संकलन है। नए नए शब्द, उदाहरण, योगिक शब्द, मुहावरे, पर्यायवाची शब्द और महत्वपूर्ण ज्ञातव्य सामग्री 'विशेष' से संकलित इस भाग की शब्दसंख्या लगभग १६००० है। अपने मूल रूप में यह ग्रंथ कुल ३६० पृष्ठों में था जो अपने विस्तार के साथ इस परिवर्धित संशोधित संस्करण में ५२० पृष्ठों में आ पाया है।

संपादकसंघ के प्रत्येक सदस्य ने यथामामर्थ्य निष्ठापूर्वक इसके निर्माण में योग दिया है। स्व० श्री कृष्णदेवप्रसाद गौड़ नियमित रूप से नित्य सभा में पधार कर इसी प्रगति को विशेष गंभीरतापूर्वक गति देने के योग पं० कल्याण त्रिपाठी ने इसके संपादन और संयोजन में पनाह निष्ठा के साथ पर पर, यहाँ तक कि यात्रा पर रहने पर भी, पूरा कार्य किया है। यदि ऐसा न होता तो यह कार्य संभव होता संभव न था। हम अपनी सीमा जानते हैं। संभव है, हम सबके प्रयत्न में कुछी हो, पर सदा हमारा परिनिष्ठित यत्न यह रहेगा कि हम हमारी और अधिक पूर्ण करते रहें क्योंकि ऐसे ग्रंथ का कार्य अस्थायी नहीं, अनन्त है।

अंत में शब्दनागर के मूल संपादक तथा सभा के संस्थापक स्व० डा० रामसुंदरदास जी ने अपना प्रणाम निवेदित करते हुए, यह संकल्प हम पुनः दुहराते हैं कि जब तक हिंदी रहेगी तब तक सभा रहेगी और उम्मीद यह शब्दनागर अपने और से कभी न गिरेगा। इस क्षेत्र में यह निरंतर नूतन प्रेरणादायक रहकर हिंदी का मानवर्धन करता रहेगा और उम्मीद प्रत्येक नया संस्करण और भी अधिक प्रभावशाली होता रहेगा।

ना० प्र० सभा, राणा }
विजया दशमी २०२५ वि० }

मुवाकर पांडेय
प्रधान मंत्री

संकेतिका

[छद्मरूपों में प्रयुक्त संदर्भग्रंथों के इस विवरण में क्रमशः ग्रंथ का संकेताक्षर,
ग्रंथनाम, लेखक या संपादक का नाम और प्रकाशन के विवरण दिए गए हैं ।]

अंधेरे०	अंधेरे की भूल, डा० रांगेय राघव, किताब महल, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण	अनं०	अशंकषातक, संपा० नाथूराम प्रेमी, हिंदी ग्रंथ रत्नाकर कार्यालय, बंबई, प्र० सं०
अकबरी०	अकबरी दरबार के हिंदी कवि, डा० सरजूप्रसाद अग्रवाल, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ, सं० २००७	अष्टांग (शब्द०) आधी	अष्टांगयोगसंहिता आधी, जयशंकर प्रसाद, भारती भंडार, इलाहाबाद, पंचम सं०
अखिलेश (शब्द०) अग्नि०	अखिलेश कवि अग्निशस्य, नरेंद्र शर्मा, भारती भंडार, इलाहाबाद, प्र० सं०	आकाश० आचार्य०	आकाशदीप, जयशंकर प्रसाद, भारती भंडार, इलाहाबाद, पंचम सं० आचार्य रामचंद्र शुक्ल, चंद्रशेखर शुक्ल, वाणी विमान, वाराणसी, प्र० सं०
अजात० अणिमा	अजातशत्रु, जयशंकर प्रसाद, १६वीं सं० अणिमा, पं० सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला', युग मंदिर, उन्नाव	आत्रेय अनु- क्रमणिका (शब्द०) आदि०	आत्रेय अनुक्रमणिका आदिभारत, अर्जुन चौधे काश्यप, वाणी विहार, बनारस, प्र० सं०, १९५३ ई०
अतिमा	अतिमा, सुमित्रानंदन पंत, भारती भंडार, इलाहाबाद, प्र० सं०	आधुनिक० आनंदघन (शब्द०) आराधना	आधुनिक कविता की भाषा कवि आनंदघन आराधना, सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला', साहित्यकार संमूह, इलाहाबाद, प्र० सं०
अनामिका	अनामिका, पं० सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला', प्र० सं०	आर्द्रा	आर्द्रा, सियारामशरण गुप्त, साहित्य सदन, चिरगांव, कोसी, प्र० सं०, १९८४ ई०
अनुराग०	अनुरागसागर, संपा० स्वामी युगलानंद बिहारी, वैकटेश्वर प्रेस, बंबई, प्र० सं०	आर्य भा० आर्यों०	आर्यकालीन भारत आर्यों का आदिदेश, संपूर्णानंद, भारती भंडार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, १९६७ वि०, प्र० सं०
अनेक (शब्द०) अनेकार्थ०	अनेकार्थ नाममाला (शब्दसागर) अनेकार्थमंजरी और नाममाला, संपा० बलभद्र-प्रसाद मिश्र, युनिवर्सिटी आफ इलाहाबाद स्टडीज, प्र० सं०	इंद्र०	इंद्रजाल, जयशंकर प्रसाद, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, प्र० सं०
अपरा	अपरा, पं० सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला', भारती भंडार, लीडर प्रेस, प्रयाग	इंद्रा०	इंद्रावती, संपा० श्यामसुंदरदास, ना० प्र० सभा, वाराणसी, प्र० सं०
अपलक	अपलक, बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', राजकमल प्रकाशन, प्र० सं०, १९५३ ई०	इंशा०	इंशा, उनका काव्य तथा रानी केतकी की कहानी, संपा० ब्रजरत्नदास, कमलमणि ग्रंथ-माला, बुलानाला, काशी, प्र० सं०
अभिषास	अभिषास, यशपाल, विप्लव कार्यालय, लखनऊ, १९४४ ई०	इति० इतिहास	इतिहास और आलोचना, नामवर सिंह हिंदी साहित्य का इतिहास, पं० रामचंद्र शुक्ल, ना० प्र० सभा, वाराणसी, नवीं सं०
अमिट०	अमिट स्मृति, महावीरप्रसाद द्विवेदी, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, १९३० ई०	इत्यलम् इलहा (शब्द) इरा०	इत्यलम्, 'अज्ञेय', प्रतीक प्रकाशन केंद्र, दिल्ली इलहा अल्ला खाँ इरावती, जयशंकर प्रसाद, भारती भंडार, इलाहाबाद, चतुर्थ सं०
अमृतसागर (शब्द०) अयोध्या (शब्द०) अरस्तू०	अमृतसागर अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' अरस्तू का काव्यशास्त्र, डा० तर्केश्वर, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, प्र० सं०, २०१६ वि०	उत्तर०	उत्तररामचरित नाटक, अनु० पं० सत्यनारायण कविरत्न, रत्नाश्रम, आगरा, पंचम सं०
अर्चना	अर्चना, पं० सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला', कला-मंदिर, इलाहाबाद		
अर्थ०	अर्थशास्त्र, कौटिल्य, [५ खंड] संपा० भार० शामशास्त्री, गवर्नमेंट ब्रांच प्रेस, मैसूर, प्र० सं०, १९१६ ई०		

एकांत०	एकांतवासी योगी, अनु० श्रीधर पाठक, इंडियन प्रेस, प्रयाग, प्र० सं०, १८८६ वि०	काव्य० य० प्र०	काव्य : यथार्थ और प्रगति, बा० रांगेय राधव, विनोद पुस्तक मंदिर, भागरा, प्र० सं०, २०१२ वि०
कंकाल	कंकाल, जयशंकर प्रसाद, सीडर प्रेस, इलाहाबाद, सप्तम सं०	काश्मीर०	काश्मीर सुषमा, श्रीधर पाठक, इंडियन प्रेस, इलाहाबाद, प्र० सं०
कठ० उप० (शब्द०)	कठवल्ली उपनिषद्	कासीराम (शब्द०)	कासीराम कवि०
कढ़ी०	कढ़ी में कोयला, पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र', गऊघाट, मिर्जापुर, प्र० सं०	किन्नर०	किन्नर देश में, राहुल सांकृत्यायन, इंडिया पब्लिशर्स, प्रयाग, प्र० सं०
कबीर ग्रं०	कबीर ग्रंथावली, संपा० श्यामसुंदरदास, ना० प्र० सभा, काशी	किन्नोर (शब्द०)	किन्नोर कवि
कबीर० बानी	कबीर साहब की बानी	कीर्ति०	कीर्तिलता, सं० बाबूराम सक्सेना, ना० प्र० सभा, वाराणसी, तृ० सं०
कबीर बीजक	कबीर बीजक, कबीर ग्रंथ प्रकाशन समिति, बाराबंकी, २००७ वि०	कुङ्कुर०	कुङ्कुरमुत्ता, 'निराला', युगमंदिर, उन्नाव
कबीर बी०	कबीर बीजक, संपा० हंसदास, कबीर ग्रंथ प्रकाशन समिति, बाराबंकी, २००७ वि०	कुणाल	कुणाल, सोहनचाल द्विवेदी
कबीर मं०	कबीर मंसूर [२ भाग], बेंकटेश्वर स्टीम प्रिंटिंग प्रेस, बंबई, सन् १९०३ ई०	कुबि०	कुबिशास्त्र
कबीर० रे०	कबीर साहब की ज्ञानगुदड़ी व रेस्ते, बेलवेडियर स्टीम प्रिंटिंग प्रेस, इलाहाबाद	केशव (शब्द०)	केशवदास
कबीर० रा०	कबीर साहब की ज्ञानवाली [४ भाग] बेलवेडियर स्टीम प्रिंटिंग प्रेस, इलाहाबाद, सन् १९०८	केशव ग्रं०	केशव ग्रंथावली, संपा० पं० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, हिंदुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद, प्र० सं०
कबीर (शब्द०)	कबीरदास	केशव० धमी०	केशवदास की धमीघूँट
कबीर सा०	कबीर सागर [४ भा०], संपा० स्वा० श्री युगलानंद बिहारी, बेंकटेश्वर स्टीम प्रिंटिंग प्रेस, बंबई	कोई कवि (शब्द०)	अज्ञातनाम कोई कवि
कबीर सा० सं०	कबीर साखी संग्रह, बेलवेडियर स्टीम प्रिंटिंग प्रेस, इलाहाबाद, १९११ ई०	कुमारुण तंत्र (शब्द०)	कुमारुण तंत्र
कमलापति (शब्द०)	कवि कमलापति	कीर्तिस्य ग्र०	कीर्तिस्य का धर्मशास्त्र
करुणा०	करुणालय, जयशंकर प्रसाद, सीडर प्रेस, इलाहाबाद, तृ० सं०	कवासि	कवासि, बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', राजकमल प्रकाशन, बंबई, १९५३ ई०
कर्ण०	सेनापति कर्ण, लक्ष्मीनारायण मिश्र, किताब महल, इलाहाबाद, प्र० सं०	ज्ञानखाना (शब्द०)	अनुराहीम ज्ञानखाना
कविद (शब्द०)	कविद कवि	ज्ञानिक०	ज्ञानिकबारी, संपा० श्रीराम शर्मा, ना० प्र० सभा, वाराणसी, प्र० सं०, २०२१ वि०
कविता की०	कविता कीमुदी [१-४ भा०], संपा० रामनरेश त्रिपाठी, हिंदी मंदिर, प्रयाग, तृ० सं०	खिलीना	खिलीना (मासिक)
कवित्त०	कवित्तरत्नाकर, संपा० उमाशंकर शुक्ल, हिंदी परिषद्, विश्वविद्यालय, प्रयाग	खुशाराम	खुशाराम और चंद हसीनों के सन्त, पांडेय बेचन शर्मा 'उग्र', गऊघाट, मिर्जापुर, मीठवाँ सं०
कादंबरी (शब्द०)	कादंबरी ग्रंथ	खेती की पहली पुस्तक (शब्द०)	खेती की पहली पुस्तक
कानन०	काननकुसुम, जयशंकर प्रसाद, भारती भंडार, सीडर प्रेस, इलाहाबाद, पंचम सं०	गंग ग्रं०	गंग कवित्त [ग्रंथावली] संपा० बटुकृष्ण, ना० प्र० सभा, वाराणसी, प्र० सं०
कामायनी	कामायनी, जयशंकर प्रसाद, नवम सं०	गदाधर०	श्रीगदाधर भट्ट जी की बानी
काया०	कायाकल्प, प्रेमचंद, सरस्वती प्रेस, बनारस, २वाँ सं०	गदाधर सिंह (शब्द०)	गदाधर सिंह
काले०	काले कारनामे, 'निराला,' कल्याण साहित्य मंदिर, प्रयाग, २००७ वि०	गबन	गबन, प्रेमचंद, हंस प्रकाशन, इलाहाबाद, २६वाँ सं०
काव्य० निबंध	काव्य और कला तथा अन्य निबंध, जयशंकर प्रसाद, भारती भंडार, सीडर प्रेस, इलाहाबाद अनुसू सं०	गालिव०	गालिव की कविता, सं० कृष्णदेवप्रसाद गौड़, वाराणसी, प्र० सं०
		गि०दा०, गि०दास (शब्द०)	गिरिधरदास (बा० गोपालचंद्र)
		गिरिधर (शब्द०)	गिरिधर राय (कुंडलियावाले)
		गीतिका	गीतिका, 'निराला', भारती भंडार, इलाहाबाद, प्र० सं०
		गुंजन	गुंजन, सुमित्रानंदन पंत, भारती भंडार, सीडर प्रेस, इलाहाबाद, प्र० सं०
		गुंजर (शब्द०)	गुंजर कवि
		गुमान (शब्द०)	गुमान मिश्र

गुलाब (शब्द०)	कवि गुलाब	चोटी०	चोटी की पकड़, 'निराला,' किताब महल, इलाहाबाद, प्र० सं०
गुलाल०	गुलाल बानी, बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद, १९१० ई०	छंद०	छंद प्रभाकर, भानु कवि, भारतजीवन प्रेस, काशी, प्र० सं०
गोदान	गोदान, प्रेमचंद, सरस्वती प्रेस, बनारस, प्र० सं०	छत्र०	छत्रप्रकाश, सं० विलियम प्राइस, एण्डकेशन प्रेस, कलकत्ता, १८२६ ई०
गोपाल उपासनी (शब्द०)	गोपाल उपासनी	छिताई०	छिताई वार्ता, संपा० माताप्रसाद गुप्त, ना० प्र० सभा, वाराणसी, प्र० सं०
गोपाल० (शब्द०)	गिरिधर दास (गोपालचंद्र)	छीत०	छीत स्वामी, संपा० ब्रजभूषण शर्मा, विद्या विभाग, प्रष्टुछाप स्मारक समिति, काँकरोली, प्र० सं०, संवत् २०१२
गोपालभट्ट (शब्द०)	गोपालभट्ट, वाल्मीकि रामायण के अनुवाक	जग० बानी	जगजीवन साहब की बानी, बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद, १९०६, प्र० सं०
गोरख०	गोरखबानी, सं० डा० पीतांबरदास बड़म्वाल, हिंदी साहित्य संमेलन, प्रयाग, द्वि० सं०	जग० श०	जगजीवन साहब की शब्दावली
ग्राम०	ग्राम साहित्य, संपा० रामनरेश त्रिपाठी, हिंदी मंदिर, प्रयाग, प्र० सं०	जनानी०	जनानी डपोड़ी, अनु० यशपाल, प्रणोक प्रकाशन, लखनऊ
ग्राम्या	ग्राम्या, सुमित्रानंदन पंत, भारती भंडार, लीडर प्रेस, प्रयाग, प्र० सं०	जय० प्र०	जयशंकर प्रसाद, नंददुलारे बाजपेयी, भारती भंडार, लीडर प्रेस, प्रयाग, प्र० सं०, १९६५ वि०
घट०	घट रामायण [२ भाग], सतगुरु तुलसी साहित्य, बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद, पृ० सं०	जयसिंह (शब्द०)	जयसिंह कवि
घनानंद	घनानंद, संपा० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, प्रसाद परिषद्, काशीवितान, ब्रह्मनाल, वाराणसी	जायसी प्र०	जायसी प्रभावली, संपा० रामचंद्र शुक्ल, ना० प्र० सभा, द्वि० सं०
घाघ०	घाघ घोर भड्डरी, हिंदुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद	जायसी प्र० (गुप्त)	जायसी प्रभावली, संपा० माताप्रसाद गुप्त, हिंदुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद, प्र० सं०, १९५१ ई०
घासीराम (शब्द०)	घासीराम कवि	जायसी (शब्द०)	मलिक मुहम्मद जायसी
चंद	चंद हंसों के सतूत, 'उष', हिंदी पुस्तक एजेंसी, कलकत्ता, प्र० सं०	जिप्सी	जिप्सी, इलाचंद्र जोशी, सेंट्रल बुक डिपो, इलाहाबाद, प्र० सं०, १९५२ ई०
चंद्र०	चंद्रगुप्त, जयशंकर प्रसाद, लीडर प्रेस, प्रयाग, नवीं सं०	जुगलेश (शब्द०)	जुगलेश कवि
चक्र०	चक्रवाल, रामधारी सिंह 'दिनकर', उदयाचल, पटना, प्र० सं०	ज्ञानदान	ज्ञानदान, यशपाल, बिप्लव कार्यालय, लखनऊ १९४२ ई०
चरस (शब्द०)	चरसदास	ज्ञानरत्न	ज्ञानरत्न, दरिया साहब, बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद
चरणचंद्रिका (शब्द०)	चरणचंद्रिका	झरना	झरना, जयशंकर प्रसाद, भारती भंडार, लीडर प्रेस, प्रयाग, सातवां सं०
चरण० बानी	चरणदास की बानी, बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद, प्र० सं०	भाँसी०	भाँसी की रानी, बुंदावनलाल वर्मा, मयूर प्रकाशन, भाँसी, द्वि० सं०
चाँदनी०	चाँदनी रात घोर मजगर, उर्वेदनाथ 'मशक', नीलाभ प्रकाशन गृह, प्रयाग प्र० सं०	टैगोर०	टैगोर का साहित्यदर्शन, अनु० राधेश्याम पुणेहित, साहित्य प्रकाशन, दिल्ली, प्र० सं०
चाणक्य नीति (शब्द०)	चाणक्य नीति	ठंडा०	ठंडा सोहा, धर्मवीर भारती, साहित्य भवन लि०, प्रयाग, प्र० सं०, १९५२ ई०
चाणक्य नीति (शब्द०)	चाणक्य नीति	ठाकुर०	ठाकुर शतक, संपा० काशीप्रसाद, भारत-जीवन प्रेस, काशी, प्र० सं०, संवत् १९६१
चिता	चिता जगदल सरस्वती प्रेस, प्र० सं०, सन् १९५० ई०	ठेठ०	ठेठ हिंदी का ठाठ, भयोध्यासिंह उपाध्याय, छद्मविलास प्रेस, पटना, प्र० सं०
चितामणि	चितामणि [२ भाग], रामचंद्र शुक्ल, इंडियन प्रेस, लि०, प्रयाग		
चित्रामणि (शब्द०)	कवि चित्रामणि त्रिपाठी		
चित्रा०	चित्रावली, सं० जगन्मोहन वर्मा, ना० प्र० सभा, काशी, प्र० सं०		
चुभते०	चुभते चौपदे, भयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरि-श्रीधर', छद्मविलास प्रेस, पटना, प्र० सं०		
चीन्हे०	चीन्हे चौपदे, " " "		

डोना०	डोना माक रा दुहा, संपा० रामसिंह, ना० प्र० सभा, काशी, हि० सं०	दंड०	दंडगीत, रामाचरी सिंह 'दिनकर,' पुस्तक मंडार, जहेरियासराय, पटना, प्र० सं०
दितली	दितली, जयशंकर प्रसाद, लीडर प्रेस, प्रयाग, सातवीं सं०	हि० अभि० प्र०	द्विवेदी अभिनंदन ग्रंथ, ना० प्र० सभा, वाराणसी
तुलसी	तुलसीदास, 'निराला', भारती मंडार, लीडर प्रेस, प्रयाग, चतुर्थ सं०	द्विवेदी (शब्द०)	महावीरप्रसाद द्विवेदी
तुलसी प्र०	तुलसी ग्रंथावली, संपा० रामचंद्र शुक्ल, ना० प्र० सभा, काशी, तृतीय सं०	धरनी० बा०	धरनी साहब की बानी, बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद, १९११ ई०
तुरसी श०, तुलसी श०	तुलसी साहब की शब्दावली (हाथरसवाले) बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद, १९०६, १९११	धरम० शब्दा०, धरम० ध्रुव०	धरमदास की शब्दावली ध्रुवस्वामिनी, प्रसाद
तेग० (शब्द०)	तेगबहादुर	धूप०	धूप और धूम्र, रामचारीसिंह 'दिनकर,' प्रजंता प्रेस, लि०, पटना ४
तेज०	तेजविभूषणनिषद	नंद० प्र०, नंददास प्र०	नंददास ग्रंथावली, संपा० जयरत्नदास, ना० प्र० सभा, काशी, प्र० सं०
तीव (शब्द०)	कवि तीव	नई०	नई पीछ, नागार्जुन, किताब महल, इलाहाबाद, प्र० सं०, १९५३
त्याग०	त्यागपत्र, जैनेंद्रकुमार, हिंदी ग्रंथ रत्नाकर कार्यालय, बंबई, प्र० सं०	नट०	नटनागर विनोद, संपा० कृष्णबिहारी मिश्र, इंडियन प्रेस, इलाहाबाद, प्र० सं०
ब० सागर	बरिया सागर, बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद, १९१० ई०	नदी०	नदी के द्वीप, 'मजेय,' प्रगति प्रकाशन, दिल्ली, प्र० सं०, १९५१ ई०
बक्सिनी०	बक्सिनी का गद्य और पद्य, संपा० श्रीराम वर्मा, हिंदी प्रचार सभा, हैदराबाद, प्र० सं०	नया०	नया साहित्य : नए प्रश्न, नंददुलारे बाजपेयी, विश्वामंदिर, वाराणसी, २०११ वि०
दयानिधि (शब्द०)	दयानिधि कवि	नरेक्ष (शब्द०)	'नरेक्ष' कवि
बरिया० बानी	बरिया साहब की बानी, बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद, हि० सं०	नाभयज्ञ	जलमेजय का नाभयज्ञ, जयशंकर प्रसाद, लीडर प्रेस, प्रयाग, सप्तम सं०
बल०	बलकपक, संपा० डा० भोलाशंकर व्यास, श्रीरामा विद्याभवन, वाराणसी, प्र० सं०	नागरी (शब्द०)	नागरीदास कवि
बलम० (शब्द०)	भाषा बलम स्कंध	नाथ (शब्द०)	नाथ कवि
बहकते०	बहकते बंनारे, नरीसभप्रसाद नागर, अभ्युदय कार्यालय, इलाहाबाद	नाथसिद्ध०	नाथसिद्धों की बानियाँ, ना० प्र० सभा, वाराणसी, प्र० सं०
बाहु०	श्री बाहूपाल की बानी, सं० मुधाकर द्विवेदी, ना० प्र० सभा, वाराणसी	नाभादास (शब्द०)	नाभादास संत
बादुदयाल प्र०	बादुदयाल ग्रंथावली	नारायणदास (शब्द०)	नारायणदास
बाहु० (शब्द०)	बादुदयाल	निबंधमालादर्श (शब्द०)	निबंधमालादर्श (म० प्र० द्विवेदी)
दिनेश (शब्द०)	कवि दिनेश	नील०	नीलकुसुम, रामचारीसिंह 'दिनकर,' उदयाचल, पटना, प्र० सं०
दिल्ली	दिल्ली, रामचारी सिंह 'दिनकर,' उदयाचल, पटना, प्र० सं०	नेपाल०	नेपाल का इतिहास, पं० जलदेवप्रसाद, बेंकटेश्वर प्रेस, बंबई, १९५१ वि०
दिव्या	दिव्या, यक्षपाल, विष्णु कार्यालय, लखनऊ, १९४५ ई०	पंचवटी	पंचवटी, मैथिलीसरण गुप्त, साहित्य सदन, चिरगांव, काशी, प्र० सं०
दीन० प्र०	दीनदयाल गिरि ग्रंथावली, संपा० श्याम-सुंदरदास, ना० प्र० सभा, वाराणसी, प्र० सं०	पजनेस०	पजनेस प्रकाश, संपा० रामकृष्ण वर्मा, भारत जीवन संघालय, काशी, प्र० सं०
दीनदयालु (शब्द०)	कवि दीनदयालु गिरि	देव (शब्द०)	देव कवि (मैनपुरीवासे)
दीप०	दीपसिक्ता, महादेवी वर्मा, किताबिस्तान, इलाहाबाद, प्र० सं०, १९४२ ई०	देसी०	देसी नाममाला
दी० ज०, दीप ज०	दीप जलेवा, उपेंद्रनाथ 'मशक,' नीलाम प्रकाशन गृह, प्रयाग	देनिकी	देनिकी, सियारामसरण गुप्त, साहित्य सदन, चिरगांव, काशी, प्र० सं०, १९६६ वि०
दुलह (शब्द०)	कवि दुलह	दो सी बावन०	दो सी बावन वैष्णवों की बार्ता [दो भाग], जुदाद्वैत एकेदमी, काँकरोली, प्रथम सं०
देव० प्र०	देव ग्रंथावली, ना० प्र० सभा, काशी, प्र० सं०		

पद्मनाभ	पद्मनाभ, सं० बासुदेवशरण अग्रवाल, साहित्य सदन, चिरगांव, आसी, प्र० सं०	प्रबंध०	प्रबंधपत्र, 'निराला', गंगा पुस्तकमाला, लखनऊ, प्र० सं०
पद्म०, पद्मना०	पद्मनाभती, संपा० सूर्यकांत त्रासो, पंजाब विश्वविद्यालय, लाहौर, १९३४ ई०	प्रभावती	प्रभावती, 'निराला', सरस्वती भंडार, लखनऊ, प्र० सं०
पद्माकर प्र०	पद्माकर प्रभासली, संपा० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, ना० प्र० समा, वाराणसी, प्र० सं०	प्राण०	प्राणसंमेली, संपा० संत संपूर्णसिंह, बेल-बेडिवर प्रेस, इलाहाबाद, प्र० सं०
पद्माकर (शब्द०)	पद्माकर भट्ट	प्रा० मा० प०	प्राचीन भारतीय परंपरा और इतिहास, डा० रांगेय रायन, आत्माराम ऐंड संस, दिल्ली, प्र० सं०, १०५३ ई०
प० रा०, प० रासो	परमान रासो, संपा० श्यामसुंदरदास, ना० प्र० समा, काशी, प्र० सं०	प्रिय०	प्रियप्रवास, अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिप्रौढ', हिंदी साहित्य कुटीर, बनारस, बन्ध सं०
परमानंद०	परमानंदसागर	प्रिया० (शब्द०)	प्रियादास
परमेष्ठ (शब्द०)	परमेष्ठ कवि	प्रेम०	प्रेमपथिक, जयशंकर प्रसाद, भारती भंडार, लीडर प्रेस, प्रयाग, पृ० सं०
परिमल	परिमल, 'निराला', गंगा प्रभावहार, लखनऊ, प्र० सं०	प्रेम० और गोर्की	प्रेमचंद और गोर्की, संपा० लक्ष्मीरानी गुर्दा, राधकमल प्रकाशन लि०, बंबई, १९५५ ई०
पर्व०	पर्व की रानी, इलाचंद्र जोशी, भारती भंडार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, प्र० सं०, १९६६ वि०	प्रेमचन०	प्रेमचन सर्वस्व, हिंदी साहित्य संमेलन, प्रयाग, प्र० सं०, १९६६ वि०
पलद्म०	पलद्म सहज की बानी [१-३ भाग], बेलवे-बियर प्रेस, इलाहाबाद, १९०७ ई०	प्रे० मा० (शब्द०)	प्रेमसागर
पल्लव	पल्लव, सुमित्रानंदन पंत, इंडियन प्रेस लि०, प्रयाग, प्र० सं०	प्रेमाञ्जलि	प्रेमाञ्जलि, डा० गोपालशरण सिंह, इंडियन प्रेस लि०, प्रयाग, १९५३ ई०
प्राणिनि०	प्राणिनिकालीन भारतवर्ष, बासुदेवशरण अग्रवाल, मोतीलाल बनारसीदास, प्र० सं०	फिसाना०	फिसाना ए आज़ाद [चार भाग], पं० रतननाथ 'सरदार', नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ, चतुर्थ सं०
पारिजात०	पारिजातहरण	फूलो०	फूलो का कुर्ता, यक्षपाल, विन्ध्य कार्यालय, लखनऊ, प्र० सं०
पार्वती	पार्वती, रामानंद तिवारी कास्त्री, भारतीनंदन, मंगलमवन, नयापुरा, कोटा (राजस्थान), प्र० सं०, १९५५ ई०	गंगाल०	गंगाल का काल, हरिचंद्र राय 'बन्धन', भारती भंडार, इलाहाबाद, प्र० सं०, १९४६ ई०
पा० सा० सि०	पाश्चात्य साहित्यालोचन के सिद्धांत, जीलाबर गुप्त, हिंदुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद, प्र० सं०, १९५२ ई०	बलभद्र (शब्द०)	बलभद्र कवि
पिजरे०	पिजरे की उड़ान, यक्षपाल, विन्ध्य कार्यालय, लखनऊ, १९४६ ई०	बांकी० प्र०	बांकीदास प्रभावली [तीन भाग], संपा० राम-नारायण दूगड़, ना० प्र० समा, काशी, प्र० सं०
पू० प० भा०	पूर्वमध्यकालीन भारत, बासुदेव उपाध्याय भारती भंडार, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, प्र० सं०, २००६ वि०	बांकादास प्र०	बंदनहार, देवेंद्र सत्याशी, प्रगति प्रकाशन, दिल्ली, १९४६ ई०
पू० रा०	पुष्पीराज रासो [५ खंड], संपा० मोहनलाल विष्णुलाल पंड्या, श्यामसुंदर दास, ना० प्र० समा, काशी, प्र० सं०	बंदन०	बदमाश बरेंछ, तेगबली, भारतजीवन प्रेस, बनारस, प्र० सं०
पू० रा० (उ०)	पुष्पीराज रासो [४ खंड], सं० कविराज मोहनसिंह साहित्य संस्थान, राजस्थान विश्व विद्यापीठ, उदयपुर, प्र० सं०	बलवीर (शब्द०)	बलवीर कवि
पोद्दार अभि० प्र०	पोद्दार अभिनंदन प्र०, संपा० बासुदेवशरण अग्रवाल, प्रसिद्ध भारतीय राज साहित्यमंडल, जयपुरा, सं० २०१० वि०	बागिदरा	बागिदरा
प्रताप प्र०	प्रतापनारायण मिश्र प्रभावली, संपा० विजय-शंकर मल्ल, ना० प्र० समा, वाराणसी, प्र० सं०	बिल्ले०	बिल्लेसुर बकरिहा, निराला, युगमंदिर, उज्जैन, प्र० सं०
प्रताप (शब्द०)	प्रतापनारायण मिश्र	बिहारी र०	बिहारी रत्नाकर, संपा० जयसाधुदास 'रत्ना-कर', गंगा प्रभावहार, लखनऊ, प्र० सं०
		बिहारी (शब्द०)	कवि बिहारी
		बी० रासो	बीसलदेव रासो, संपा० सत्यजीवन वर्मा, ना० प्र० समा, काशी, प्र० सं०
		बीसल० रास	बीसलदेव रास, संपा० माताप्रसाद गुप्त, प्र० सं०
		बी० स० महा०	बीसवीं सताब्दी के महाकाव्य, डा० प्रतिभास-सिंह ओरिएंटल बुकशिप, देहली, प्र० सं०

बुद्ध च०	बुद्धचरित, रामचंद्र शुक्ल, ना० प्र० सभा, वाराणसी, प्र० सं०	भाषा शि० भिलारी प्र०	भाषा शिक्षण, पं० सीताराम चतुर्वेदी भिलारीदास ग्रंथावली [दो भाग], संपा० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, ना० प्र० सभा, काशी
बृहत्	बृहत्संहिता	भीखा श०, भुवनेश (शब्द०) भूषण प्र०	भीखा शब्दावली प्र० सं० भुवनेश कवि भूषण ग्रंथावली, संपा० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, साहित्य सेवक कार्यालय, काशी, प्र० सं०
बृहत्संहिता (शब्द०)	बृहत्संहिता	भूषण (शब्द०)	कवि भूषण त्रिपाठी
बेनी (शब्द०)	कवि बेनी प्रवीन	भोज० भा० सा०	भोजपुरी भाषा और साहित्य, डा० उदय- नारायण तिवारी, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना, प्र० सं०
बेला	बेला, 'निराला,' हिंदुस्तानी पब्लिकेशंस, इलाहाबाद, प्र० सं०	मति० प्र०	मतिराम ग्रंथावली, संपा० कृष्णबिहारी मिश्र, गंगा पुस्तकमाला, लखनऊ, द्वि० सं०
बेलि०	बेलि क्रिसन कमिणी री, सं० ठाकुर रामसिंह, हिंदुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद, प्र० सं०, १९३१ ई०	मतिराम (शब्द०) मधु०	कवि मतिराम त्रिपाठी मधुकलश, हरिवंशराय 'बच्चन,' सुषमा निकुंज, इलाहाबाद, द्वि० सं०, १९३६ ई०
बोधा (शब्द०)	कवि बोधा	मधुज्वाल	मधुज्वाल मुमिश्चानंदन पंत, भारती भंडार, इलाहाबाद, द्वि० सं०, १९३६ ई०
बज०	बजविलास, संपा० श्रीकृष्णदास, लक्ष्मी वेंक- टेश्वर प्रेस, बंबई, तृ० सं०	मधु मा०	मधुमालती वार्ता, संपा० माताप्रसाद गुप्त, ना० प्र० सभा, वाराणसी, प्र० सं०
बज० प्र०	बजनिधि ग्रंथावली, संपा० पुरोहित हरिना- रायण शर्मा, ना० प्र० सभा, काशी, प्र० सं०	मधुशाला	मधुशाला, हरिवंश राय 'बच्चन,' सुषमा निकुंज, इलाहाबाद, प्र० सं०
बज्रमाधुरी०	बज्रमाधुरी सार, संपा० वियोगी हरि, हिंदी साहित्य संमेलन, प्रयाग, तृ० सं०	मनविरक्त०	मनविरक्तकरन गुटका सार (चरणदास)
ब्रह्म (शब्द०)	ब्रह्म कवि (बीरबल)	मनु०	मनुस्मृति
भक्तमाल (प्रि०)	भक्तमाल, टीका० प्रियादास, वेंकटेश्वर प्रेस, बंबई, १९५३ वि०	मन्नालाल (शब्द०)	कवि मन्नालाल
भक्तमाल (श्री०)	भक्तमाल, श्रीभक्तिसुधाविदु स्वाद, टीका० सीतारामशरण, नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ, द्वि० सं०, १९८३ वि०	मलूक० बानी	मलूकदास की बानी, बेलवेडियर प्रेस, प्रयाग
भक्ति०	भक्तिसागरादि, स्वामीचरण, वेंकटेश्वर प्रेस, बंबई, संवत् १९६० वि०	मलूक० (शब्द०)	मलूकदास
भक्ति प०	भक्ति पदार्थ वर्णन, स्वामी चरणदास, वेंकटे- श्वर प्रेस, बंबई, संवत् १९६०	महा०	महाराणा का महत्त्व, जयशंकर प्रसाद, भारती भंडार, इलाहाबाद, चतुर्थ सं०
भगवतरसिक (शब्द०)	भगवत रसिक	महावीर प्रसाद (शब्द०)	पं० महावीरप्रसाद द्विवेदी
भस्मावृत०	भस्मावृत चिनगारी, यशपान, विप्लव कार्यालय लखनऊ, १९४६ ई०	महाभारत (शब्द०)	महाभारत
भा० इ० द०	भारतीय इतिहास की रूपरेखा, जयचंद्र विद्या- लंकार, हिंदुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद, प्र० सं०, १९३३ वि०	महाराणा प्रताप (शब्द०)	महाराणा प्रताप
भा० प्रा० लि०	भारतीय प्राचीन लिपिमाला, गोरीशंकर हीराचंद मोक्षा, इतिहास कार्यालय, राजमेवाड़, प्र० सं०, १९५१ वि०	माधव०	माधवनिदान, लक्ष्मी वेंकटेश्वर प्रेस, बंबई, चतुर्थ सं०
भारत०	भारतभारती, मैथिलीचरण गुप्त, साहित्यसदन, चिरगाँव, भाँसी, नवम सं०	माधवानल०	माधवानल कामकंदला, बोधा कवि, नवल- किशोर प्रेस, लखनऊ, प० सं०, १८९१ ई०
भा० भू०, भारत० नि०	भारत भूमि और उसके निवासी, जयचंद्र विद्यालंकार, रत्नाग्रम, आगरा, द्वि० सं० १९८७ वि०	मान०	मानसरोवर, प्रेमचंद, हंस प्रकाशन, इलाहाबाद
भारतीय०	भारतीय राज्य और शासनविधान	मानव	मानव, कवितासकलन, भगवतीचरण वर्मा
भारतेदु प्र०	भारतेदु ग्रंथावली [४ भाग], संपा० बजरत्न- दास, ना० प्र० सभा, काशी, प्र० सं०	मानव०	मानवसमाज, राहुन सांक्रयान, किताब महल, इलाहाबाद, द्वि० सं०
भा० शिक्षा	भारतीय शिक्षा, राजेंद्रप्रसाद, धारमराम ऐंड संस, दिल्ली, १९५३ ई०	मानस	रामचरितमानस, संपा० जमुनारायण चौबे, ना० प्र० सभा, काशी प्र० सं०
		मिट्टी०	मिट्टी और फूल, नरेंद्र शर्मा, भारती भंडार, इलाहाबाद, प्र० सं०, १९६६ वि०
		मिलन०	मिलनयामिनी, हरिवंश राय 'बच्चन,' भारतीय ज्ञानपीठ, काशी, प्र० सं०, १९५० ई०

मुंशी अभि० प्र०	मुंशी अभिनंदन शंभू, संपा० डा० विश्वनाथ-प्रसाद, हिंदी तथा भाषाविज्ञान विद्यापीठ, आगरा विश्वविद्यालय, आगरा	रसखान०	रसखान श्रीर घनानंद, संपा० अमीरसिंह, ना० प्र० सभा, द्वि० सं०
मुबारक (शब्द०) पुग०	मुबारक कवि भुगनयनी, वृंदावनलाल वर्मा, मयूर प्रकाशन, भीसी	रसखान (शब्द०) रस र०, रसरतन	सेयब इनाहिम रसखान रसरतन, संपा० शिवप्रसाद सिंह, ना० प्र० सभा, वाराणसी, प्र० सं०
मैला०	मैला शीवल, फणीश्वरनाथ 'रेणु,' समता प्रकाशन, पटना-४, प्र० सं०	रसनिधि (शब्द०) रहीम० रहीम (शब्द०) राज० इति०	राजा पृथ्वीसिंह रहीम रत्नावली अन्दुरहीम खानखाना राजपूताने का इतिहास, गोरेशंकर हीराचंद मोक्षा, अजमेर, १९९७ वि०, प्र० सं०
मोहन०	मोहनबिनोद, सं० कृष्णबिहारी मिश्र, इलाहाबाद लॉ जर्नेल प्रेस, प्र० सं०	रा० क०	राजरूपक, संपा० पं० रामकृष्ण, ना० प्र० सभा, काशी, प्र० सं०
यशो०	यशोधरा, मैथिलीशरण गुप्त, साहित्य सदन, चिरगांव, भीसी, प्र० सं०	रा० वि०	राजविलास, संपा० मोतीलाम मेनारिया, ना० प्र० सभा, वाराणसी, प्र० सं०
यामा	यामा, महादेवी वर्मा, किताबिस्तान, प्रयाग, प्र० सं०	राज्यश्री	राज्यश्री, जयशंकर प्रसाद, लीडर प्रेम, इलाहाबाद, सातवीं पं०
युग०	युगवाणी, सुमित्रानंदन पंत, भारती भंडार, इलाहाबाद, प्र० सं०	रामकवि (शब्द०) राम० चं०	राम कवि संक्षिप्त रामचंद्रिका, संपा० लाला भगवानदीन, ना० प्र० सभा, वाराणसी, षष्ठ मं०
युगपथ युगांत	युगपथ " " " युगांत, सुमित्रानंदन पंत, इंद प्रिंटिंग प्रेस, अल्मोड़ा, प्र० सं०	राम० धर्म०	रामस्नेह धर्मप्रकाश, संपा० मालचंद जी शर्मा, चौकसराम जी (मिथल), बड़ा रामद्वारा, बीकानेर ।
योग०	योगवासिष्ठ (बैराग्य मुमुक्षु प्रकरण), गंगा-विष्णु श्रीकृष्णदास, सक्ष्मी बैकटेश्वर छापा खाना, कल्याण, बंबई, सं० १९६७ वि०	राम० धर्म० सं०	रामस्नेह धर्मप्रकाश, संपा० मालचंद जी शर्मा, चौकसराम जी (मिथल), बड़ा रामद्वारा, बीकानेर ।
रंगभूमि	रंगभूमि, प्रेमचंद, गंगा ग्रंथालय, लखनऊ, प्र० सं०, १९८१ वि०	रामरसिका० रामानंद०	रामरसिकावली [भक्तमाल] रामानंद की हिंदी रचनाएं, संपा० पीतांबर-दत्त बह्यवाल, ना० प्र० सभा, प्र० सं०
रघु० क०	रघुनाथ रूपक गीतारो, संपा० महताबचंद्र सारोइ, ना० प्र० सभा, काशी, प्र० सं०	रामाश्व०	रामाश्वमेध, ग्रंथकार, मन्नालाल द्विज, त्रिपुरा भैरवी, वाराणसी, १९३९ वि०
रघु० दा० (शब्द०) रघुनाथ (शब्द०) रघुराज (शब्द०) रजत०	रघुनाथदास रघुनाथ महाराज रघुराजसिंह, रीवांनरेख रजतशिलार, सुमित्रानंदन पंत, लीडर प्रेस, इलाहाबाद, २००८ वि०	रेणुका	रेणुका, रामधारी सिंह 'दिनकर', पुस्तक भंडार, लहेरियासराय, पटना, प्र० सं०
रज्जब०	रज्जब जी की बानी, ज्ञानसागर प्रेस, बंबई, १९७५ वि०	रै० बानी लक्ष्मणसिंह (शब्द०) लल्लु (शब्द०) लहर	रैदास बानी, बेलवेडियर प्रेम, इलाहाबाद राजा लक्ष्मणसिंह लल्लुलाल लहर, जयशंकर प्रसाद, भारती भंडार, इलाहाबाद, पंचम सं०
रतन०	रतनहजारा, संपा० श्री जगन्नाथप्रसाद श्रीवास्तव, भारतजीवन प्रेस, काशी, प्र० सं०, १९८२ ई०	लाल (शब्द०) वर्ण०, वर्णरत्नाकर विद्यापति	लाल कवि (छत्रप्रकाशवाले) वर्णरत्नाकर विद्यापति, संपा० खगेंद्रनाथ मिश्र, यूनाइटेड प्रेस, लि०, पटना
रति०	रतिनाथ की चाची, मागाबुंन, किताब महल, इलाहाबाद, द्वि० सं०, १९५३ ई०	विनय०	विनयपत्रिका, टीका० पं० रामेश्वर अट्ट, इंडियन प्रेस लि०, प्रयाग, तृ० सं०
रत्न० (शब्द०) रत्नपरीक्षा (शब्द०) रत्नाकर	रत्नसार रत्नपरीक्षा रत्नाकर [दो भाग], ना० प्र० सभा, काशी, चतुर्थ और द्वि० सं०	विशाख	विशाख, जयशंकर प्रसाद, लीडर प्रेस, प्रयाग, तृ० सं०
रस०	रसमीमांसा, संपा० विश्वनाथप्रसाद मिश्र, ना० प्र० सभा, काशी, द्वि० सं०	विश्राम (शब्द०)	विश्रामसागर
रस क०	रसकलश, अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिप्रोष,' हिंदी साहित्य कुटीर, बनारस, तृतीय सं०		

बीणा	बीणा, सुमित्रानंदन पंत, इंडियन प्रेस, लि० प्रयाग, द्वि० सं०	रामानंद शास्त्री, भारतीय रविदास सेवासंघ हरिद्वार, प्र० सं०
वेनिस (शब्द०)	वेनिस का बाँका	संतबाणी०, संत०सार० संतबाणी सार संग्रह [२ भाग], बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद
वैशाली०, वै० न०	वैशाली की नगरबधू, चतुरसेन शास्त्री, जीवम बुकडिपो, दिल्ली, प्र० सं०	संन्यासी, इलाचंद्र जोशी, भारती भंडार, लीडर प्रेस, प्रयाग, प्र० सं०
वो दुनिया	वो दुनिया, यशपाल, बिप्लव कार्यालय, लखनऊ, १९४१ ई०	संपूर्ण० अभि० ग्रं० संपूर्णनिंद अभिनंदन ग्रंथ, संपा० आचार्य नरेंद्रदेव, ना० प्र० सभा, वाराणसी
व्यंग्यार्थ (शब्द०)	व्यंग्यार्थ कीमुदी	समीक्षादर्शन, रामलाल सिंह, इंडियन प्रेस, प्रयाग, प्र० सं०
व्यास (शब्द०)	ग्रंथिकावत व्यास	कविरत्न सत्यनारायण जी की जीवनी, श्री बनारसीदास चतुर्वेदी, हिंदी साहित्य संमेलन, प्रयाग, द्वि० सं०
वज्र (शब्द०)	वज्र (शब्द०)	सत्याथंप्रकाश (शब्द०) सत्याथंप्रकाश
शं० दि० (शब्द०)	शंकरदिग्विजय	सबल (शब्द०) सबलसिंह चौहान [महाभारत]
शंकर०	शंकरसर्वस्व, संपा० हरिशंकर शर्मा, गयाप्रसाद एंड संस, आगरा, प्र० सं०	सभा० वि० (शब्द०) सभाविलास
शंभु (शब्द०)	शंभु कवि	सरस्वती (शब्द०) सरस्वती
शकुं०	शकुंतला, मैथिलीशरण गुप्त, साहित्य सदन, चिरगाँव, आँसी	स० शास्त्र स० सप्तक
शकुंतला	शकुंतला नाटक, अनु० राजा लक्ष्मणसिंह, हिंदी साहित्य संमेलन, प्रयाग, चतु० सं०	सहजो० सहजो बाई की बानी, बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद, १९०८ वि०
शाहजहानाबा (शब्द०)	शाहजहानाबा	साकेत साकेत, मैथिलीशरण गुप्त, साहित्यसदन, चिरगाँव, आँसी, प्र० सं०
शाङ्गधर सं०	शाङ्गधर संहिता, टी० सीताराम शास्त्री, मुंबई वैभव मुद्रणालय, संवत् १९७१	सागरिका सागरिका, डा० गोपालशरण सिंह, लीडर प्रेस, प्रयाग, प्र० सं०
शिवर०	शिवर बंशोत्पत्ति, संपा० पुरोहित हरिनारायण शर्मा, ना० प्र० सभा, काशी, प० सं०, १९८५	साम० सामधेनी, रामबारी सिंह 'दिनकर,' उदयाचल पटना, द्वि० सं०
शिवप्रसाद (शब्द०)	राजा शिवप्रसाद सितारेहिंद	साहित्यदपंख साहित्यदपंख, संपा० शाखियाम शास्त्री, श्री मृत्युंजय औषधालय, लखनऊ, प्र० सं०
शिवराम (शब्द०)	शिवराम कवि	सा० लहरी साहित्यलहरी, संपा० रामलोचनशरण बिहारी, पुस्तक भंडार, सहेरियासराय, पटना
शुक्ल० अभि० ग्रं०	शुक्ल अभिनंदन ग्रंथ, मध्यप्रदेश हिंदी साहित्य संमेलन	सा० समीक्षा साहित्य समीक्षा, कालिदास कपूर, इंडियन प्रेस, प्रयाग
शृ० सत० (शब्द०)	शृंगार सतसई	साहित्य० साहित्यालोचन
शृंगार सुधाकर (शब्द०)	शृंगार सुधाकर	सिद्धांतसंग्रह (शब्द०) सिद्धांतसंग्रह
शेर०	शेर श्री सुखन, भारतीय ज्ञानपीठ, काशी	सीताराम (शब्द०) सीताराम कवि
शैली	शैली, वरणापति त्रिपाठी	सुंदर० ग्रं० सुंदरदास ग्रंथावली [दो भाग], संपा० हरिनारायण शर्मा, राजस्थान रिसर्च सोसायटी, कलकत्ता
श्यामा०	श्यामास्वप्न, संपा० डा० कृष्णलाल, ना० प्र० सभा, काशी, प्र० सं०	सुंदरीसिंहूर (शब्द०) सुंदरीसिंहूर
श्रद्धानंद (शब्द०)	स्वामी श्रद्धानंद	सुखदेव (शब्द०) सुखदेव
श्रीधर पाठक (शब्द०)	श्रीधर पाठक	सुधाकर (शब्द०) सुधाकर
श्रीनिवास ग्रं०	श्रीनिवास ग्रंथावली, संपा० डा० कृष्णलाल, ना० प्र० सभा, काशी, प्र० सं०	
संतति०	चंद्रकांता संतति, देवकीनंदन खत्री, वाराणसी	
संचिता	संचिता (कविता संग्रह),	
संत तुरसी०	संत तुरसीदास की जन्मावली, बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद ।	
सं० दरिया, संत दरिया	संत कवि दरिया, सं० चमैंद्र बहादुरी, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना, प्र० सं०	
संत र०	संत रविदास और उनका काव्य, स्वाजी	

सुजान०	सुजानचरित (सूदनकृत), संपा० राधाकृष्ण, नागरीप्रचारिणी सभा, काशी, प्र० सं०	हरिदास (शब्द०)	स्वामी हरिदास
सुनीता	सुनीता, धर्मेन्द्रकुमार, साहित्यमंडल, बाजार सीताराम, दिल्ली, प्र० सं०	हरिचंद्र (शब्द०)	भारतेन्दु हरिश्चंद्र
सुंदर (शब्द०)	सुंदर कवि	हरिसेवक (शब्द०)	हरिसेवक कवि
सूत०	सूत की माला, पंत और बच्चन, भारती मंडार, इलाहाबाद, प्र० सं०	हरी चास०	हरी चास पर छण भर, भजेय, प्रगति प्रकाशन, नई दिल्ली, १९४६ ई०
सूदन (शब्द०)	सूदन कवि (भरतपुरवाले)	हर्ष०	हर्षचरित् : एक सांस्कृतिक अध्ययन, वासुदेव-शरण प्रयाग, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना, प्र० सं०, १९४३ ई०
सूर०	सूरसागर [दो भाग], ना० प्र० सभा, द्वितीय सं०	हालाहल	हालाहल, हरिवंशराय बच्चन, भारती मंडार, प्रयाग, १९४६ ई०
सूर० (शब्द०)	सूरदास	हिंदी भा०	हिंदी भाषा-लेखन
सूर० (राधा०)	सूरसागर संपा० राधाकृष्णदास, बेंकटेश्वर प्रेस, प्र० सं०	हि० का० प्र०	हिंदी काव्य पर अंग्रेज प्रभाव, रवींद्रसहाय वर्मा, पद्मजा प्रकाशन, कानपुर, प्र० सं०
सेवक (शब्द०)	'सेवक' कवि	हि० क० का०	हिंदी कवि और काव्य, गणेशप्रसाद द्विवेदी हिंदुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद, प्र० सं०
सेवक श्याम (शब्द०)	सेवक श्याम कवि	हिंदी प्रदीप (शब्द०)	हिंदी प्रदीप
सेवासदन	सेवासदन, प्रेमचंद, हिंदी पुस्तक एजेंसी, कलकत्ता, द्वि० सं०	हिंदी प्रेमगाथा	हिंदी प्रेमगाथा काव्यसंग्रह, गणेशप्रसाद द्विवेदी, हिंदुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद, १९३६ ई०
सेर कु०	सेर कुहसार, पं० रतननाथ 'सरकार,' नवल-किशोर प्रेस, लखनऊ, च० सं०, १९३४ ई०	हिंदी प्रेमा०	हिंदी प्रेमाख्यानांक काव्य, डा० कमल कुलश्रेष्ठ, चौधरी मानसिंह प्रकाशन, कचहरी रोड
सी भजान० (शब्द०)	सी भजान और एक सुजान, मयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिप्रदीप'	हि० प्र० चि०	हिंदी काव्य में प्रकृतिचित्रण, किष्णकुमारी गुप्त, हिंदी साहित्य संमेलन, प्रयाग
स्कंद०	स्कंदगुप्त, जयशंकर प्रसाद, भारती मंडार, लोडर प्रेस, प्रयाग, प्र० सं०	हि० सा० सू०	हिंदी साहित्य की भूमिका, हजारिप्रसाद द्विवेदी, हिंदी ग्रंथ रत्नाकर कार्यालय, बंबई, तृ० सं०, १९४८
स्वर्ण०	स्वर्णकिरण, सुमित्रानंदन पंत, लोडर प्रेस, प्रयाग, प्र० सं०	हिंदु० सम्यता	हिंदुस्तान की पुरानी मभ्यता, बेनीप्रसाद, हिंदुस्तानी एकेडमी, प्रयाग, प्र० सं०
स्वाधीनता (शब्द०)	स्वाधीनता	हिम कि०	हिमकिरीटिनी, माखनलाल चतुर्वेदी, सरस्वती प्रकाशन मंदिर, इलाहाबाद, तृ० सं०
स्वामी हरिदास (शब्द०)	स्वामी हरिदास	हिम त०	हिमतरंगिणी, माखनलाल चतुर्वेदी, भारती मंडार, लोडर प्रेस, इलाहाबाद, प्र० सं०
हंस०	हंसमाला, नरेंद्र शर्मा, भारती मंडार, लोडर प्रेस, प्रयाग, प्र० सं०	हिममत०	हिममतबहादुर बिरुदावली, लाला भगवान-दीन, ना० प्र० सभा, काशी, द्वि० सं०
हकायके०	हकायके हिंदी, ले० मीर अब्दुल वाहिद, प्र० संपा० 'रुद्र' काशिकेय, ना० प्र० सभा, काशी, प्र० सं०	हिल्लोल	हिल्लोल, शिवमंगल सिंह 'सुमन', सरस्वती प्रेस, बनारस, द्वि० सं०
हनुमान (शब्द०)	हनुमन्नाटक	हुमायूँ	हुमायूँनामा, अनु० जयरत्नदास, ना० प्र० सभा, वाराणसी, द्वि० सं०
हनुमान कवि (शब्द०)	हनुमान कवि (शब्द०)	हृदय०	हृदयतरंग, सत्यनारायण कविरत्न
हम्मीर०	हम्मीरहठ, संपा० जगन्नाथदास 'रत्नाकर,' इंडियन प्रेस, लि०, प्रयाग		
ह० रासो०	हम्मीर रासो, संपा० डा० श्यामसुंदरदास, ना० प्र० सभा, काशी, प्र० सं०		
हरिजन (शब्द०)	कवि हरिजन		

[व्याकरण, व्युत्पत्ति आदि के संकेताक्षरों का विवरण]

धं०
भ०
चक० रूप

धंय जी
भरबी
अकर्मक रूप

अनु०
अनुध्व०
अनु० भू०

अनुकरण शब्द
अनुध्वन्यात्मक
अनुकरणार्थमूलक

अनुर०	अनुरणनात्मक रूप	व्याय०	व्याय या तर्कशास्त्र
अप०	अपभ्रंश	पं०	पंजाबी
अर्ध मा०	अर्धभागधी	परि०	परिशिष्ट
अल्पा०	अल्पार्थक	पा०	पाली
अव०	अवधी	पुं०	पुंलिंग
अव्य०	अव्यय	पुतं०	पुतंगाली
इव०	इबरानी	पृ० हि०	पुरानी हिंदी
उ०	उदाहरण	पू० हि०	पूर्वी हिंदी
उच्चा०	उच्चारण मुविषार्थ	पु०	पृष्ठ
उड़ि०	उड़िया	प्रत्य०	प्रत्यय
उप०	उपसर्ग	प्र०	प्रकाशकीय या प्रस्तावना
उभय०	उभयलिङ्ग	प्रा०	प्राकृत
एकव०	एकवचन	प्रे०	प्रेरणार्थक रूप
कहावा	कहावत	फ०	फरांसीसी भाषा
काव्यशास्त्र	काव्यशास्त्र	फकीर०	फकीरों की बोली
[को०], (को०)	ग्रन्थ कोश	फा०	फारसी
कोंक०	कोंकणी	बैंग०	बैंगला भाषा
क्रि०	क्रिया	बरमी०	बरमी भाषा
क्रि० अ०	क्रिया प्रकर्मक	बहुव०	बहुवचन
क्रि० २०	क्रिया प्रयोग	बुं० खं०	बुंदेलखंड की बोली
क्रि० वि०	क्रिया विशेषण	बोल०	बोलचाल
क्रि० म०	क्रिया सकर्मक	भाव०	भाववाचक संज्ञा
कव०	कवचित्	भू०	भूमिका
गीत	लोकगीत	भू० कृ०	भूत कृत
गुज०	गुजराती	मरा०	मराठी
ची०	चीनी भाषा	मल०	मलयाली या मलयालम भाषा
छं०	छंद	मला०	मलायम भाषा
जापा०	जापानी	मि०	मिलाइए
जावा०	जावा द्वीप की भाषा	मुसल०	मुसलमानों द्वारा प्रयुक्त
जी०, जीवन०	जीवनचरित्	मुहा०	मुहावरा
ज्या०	ज्यामिनि	यू०	यूनानी
ज्यो०	ज्योतिष	यो०	योगिक
डि०	डगल	राज०	राजस्थानी
त०	तमिल	लश०	लशकरी
तर्क०	तर्कशास्त्र	ला०	लाक्षणिक
ति०	निश्चयी भाषा	ले०	लैटिन
तु०	तुर्की	व० कृ०	वर्तमान कृत
दू०	दूहा या दूहला	वि०	विशेषण
दे०	दोखए	वि० द्वि० मू०	विषमवृत्तिमूलक
देश०	देशज	वै०	वैदिक
देशी	देशी	व्या०	व्याकरण
धर्म०	धर्मशास्त्र	(शब्द०)	शब्दसागर
नाम०	नामधातु	सं०	संस्कृत
ना० धा०	नामधातुज क्रिया	संयो०	संयोजक अव्यय
नामक धातु	नामिक धातु	संयो० क्रि०	संयोजक क्रिया
ने०	नेपाली	सु०	सकर्मक

सक० रूप
सधु०
सब०
स्वे०
स्त्रि०
स्त्री०
हि०

सकर्मक रूप
सधुवकड़ी भाषा
सर्वनाम
स्वेनी भाषा
स्त्रियों द्वारा प्रयुक्त
स्त्रीलिंग
हिंदी

④
>
†
‡
✓
*
?

काव्यप्रयोग, पुरानी हिंदी
व्युत्पन्न
प्रांतीय प्रयोग
साम्य प्रयोग
धातुचिह्न
संभाव्य व्युत्पत्ति
अनिश्चित व्युत्पत्ति

हिंदी शब्दसागर

दस्त^१—वि० [सं०] १ छोड़ा हुआ । त्यक्त ; बहिष्कृत । २. फेंका हुआ । क्षिप्त । ३. विनष्ट । क्षीण । नष्ट [कौ०] ।

दस्त^२—संज्ञा पुं० [फ्रा०] १. पतला पायखाना । पानी ऐसा मल गिरने की क्रिया । विरेचन ।

क्रि० प्र०—घाना । —होना ;

मुहा०—दस्त लगना = मल निकलने का वेग जान पड़ना । पायखाना लगना ।

२. हाथ । उ०—सदगुरु नाथ भगवत मस्त । उस भगवत में साहेब मस्त ।—दक्खिनी०, पृ० १२५ ।

यौ०—दस्तकार । दस्तखत । दस्तगीर । दस्तराज । दस्तपनाह । दस्तबंद । दस्तबदस्त । दस्तबरदार । दस्तबस्ता । दस्तबुर्ख । दस्तयाब ।

दस्त^३—संज्ञा पुं० [फ्रा० दस्त] जंगल । बघावन । मरुस्थल । उ०—सीस पिछा तब प्रब बघा रोना मनी मान को खोवे हो । दम दम याद करे साहिब को नेकी दस्त में खोवे हो ।—पलटू०, पृ० ८१ ।

दस्तक^१—संज्ञा स्त्री० [फ्रा०] १. हाथ धारकर छट छट शब्द उत्पन्न करने की क्रिया । छटछटाने की क्रिया । २. हुमाने के लिये दरवाजे की कुडी छटछटाने की क्रिया । घर के भीतर के लोगों को बुलाने के लिये बाहुर से किवाड़ पर हाथ पारने की क्रिया । उ०—मनिया लज्जगी घोर मुसकती हुई दरवाजे पर तुम्हें दस्तक देती हुई स्त्री लड़कियों की तरह शिकायत भरे स्वर से कहने लगी ।—जिप्सी, पृ० १८६ ।

मुहा०—दस्तक देना = बुलाने के लिये किवाड़ छटछटाना ।

३. किसी से देना या मागगुजारी वसूल करने के लिये निकाला हुआ दुष्प्रभाव । वह आजापन जिसे लेकर कोई सिपाही दना या मागगुजारी वसूल करने के लिये आवे । दस्तगामी या वसूल का परवाना ।

क्रि० प्र०—घाना ।

यौ०—दस्तक सिपाही = वह सिपाही जो किसी से मागगुजारी धांध वसूल करने या किसी को पकड़ने के लिये नौका हो ।

४. माल धादि लज्जने का परवाना । निवास की छिट्टी । राहदारी का परवाना । उ०—भक्ति ग्रंथ को लापि, संक दस्तक लज्ज दीहों ।—सरम०, पृ० ८१ । ५. कर । महसूल । टेक्स । धोस ।

क्रि० प्र०—लगाना ।

मुहा०—दस्तक बांधना या लगाना = व्यर्थ का व्यय ऊपर डालना । नाहक का खर्च जिम्मे करना ।

दस्तकार—संज्ञा पुं० [फ्रा०] हाथ का कारीगर । हाथ से कारीगरी का काम करनेवाला आदमी ।

दस्तकारी—संज्ञा स्त्री० [फ्रा०] हाथ की कारीगरी । कला संबंधिनी वह सुंदर रचना जो हाथ से की जाय । जैसे, बेन बूटे काढ़ना, आदि ।

दस्तखत—संज्ञा पुं० [फ्रा० दस्तखत] अपने हाथ का लिखा हुआ नाम । हस्ताक्षर । जैसे,—उस दस्तावेज पर तुम कभी दस्तखत न करना ।

विशेष—जिस लेख के नीचे किसी का दस्तखत होना है वह उसी का लिखा हुआ समझा जाता है, अतः उस लेख में जो बातें होती हैं उन्हें स्वीकार करने या पूरी करने के लिये वह नियम के अनुसार बाध्य होना है ।

क्रि० प्र०—करना । —होना ।

मुहा०—दस्तखत लेना = दस्तखत करना । किसी का नाम उसके हाथ से लिखवा लेना ।

दस्तखतो—वि० [फ्रा० दस्तखत] जिसपर दस्तखत हो । (लेख) जिसपर लिखने या लिखानेवाले का नाम उसी के हाथ का लिखा हो । जैसे, दस्तखती बिट्टो ।

दस्तग—संज्ञा पुं० [फ्रा० दस्तक] दे० 'दस्तक' । उ०—छहफार पहरे मद करत ना खोट भली तृणगु बग्यासी को दस्तग नित जारी है ।—राम० धर्म०, पृ० ५७ ।

दस्तगीर—संज्ञा पुं० [फ्रा०] हाथ पकड़नेवाला । सहारा देनेवाला । सहायक । मददगार । उ०—दस्तगीर गाढ़े कर नाथी ।—जायसी (शब्द०) ।

दस्तगीरी—संज्ञा स्त्री० [फ्रा०] मदद । हिमायत । शरण । पनाह । उ०—यह दिख फकीरी दस्तगीरी गस्त गुंज सिनाल है ।—सुंदर० ग्रं०, भा० १, पृ० २६० ।

दस्तदराज—वि० [फ्रा० दस्तदराज] १. मुष्ट । ठोठ । निब्र । २. मार बैठनेवाला । हथछुट । ३. धांधली बोल ।

दस्तदराजी—संज्ञा स्त्री० [फ्रा० दस्तदराजी] १. ठिठई । २. मार बैठने की आदत । ३. धांधल ; धांधलार ।

दस्तपनाह—संज्ञा पुं० [फ्रा०] बिमटा ।

दस्तबंद—संज्ञा पुं० [फ्रा०] १. कलाई पर पहनने का भिनरों का एक भलवार । २. तुर्य का एक प्रकार कील ।

दस्त बदस्त—क्रि० वि० [फ्रा०] हथों हाथ । उ०—ऐसी वे तुमड़े दरस बिहारी, होवे सोदा दस्तबदस्ती ।—घनानंद, पृ० ५५४ ।

दस्तबरदार—वि० [फ्रा०] जो किसी काम से हाथ हटा ले । जो किसी वस्तु से अपना हाथ या अधिकार उठा ले । जो कोई वस्तु छोड़ दे या किसी बात से बाज रहे ।

मुद्दा० - दस्तबंदार होना = बाज घाना । किमी वस्तु पर
का घपना अधिकार छोड़ देना । छोड़ देना । त्याग देना ।

जैसे,—अगर तुम मकान से दस्तबंदार हो जाओ तो हम
१०००) खीर दें।

दस्तवरदारी—संख्या स्त्री० [क्रा०] १. त्याग : २ त्यागपत्र ।

दस्तबुता—क्रि० वि० [फा० दस्तबुतह्] हाथ जोड़े हुए । नम्रग
के साथ [क्रि०] ।

दस्तबुर्द—संज्ञा स्त्री० [फ्रा०] प्रहृष्टता । चीन लेना । जबरदस्ती दूसरे को चीज अपने कब्जे में कर लेना ।

दस्तयाव—वि० [फा०] दस्तगत । प्राप्त ।

क्रि० प्र० — करना । — होना ।

दस्तरखान—खंभा पु० [फा० दस्तरखान] वह चादर जिसपर खाना रखा जाता है। चौकी पर की वह चादर जिसपर भोजन की प्याली रखते हैं (मुसलमान)। उ०—पहले वह हम दस दोस्तों के साथ, नवाबी दस्तरखान गवाकर बैठते।—
गराबी, पृ० १०४।

दस्ताँन(ुं) — संज्ञा पुं० [फ़ा० दस्तानहू] दे० 'दस्ताना' । उ० — दस्तान
रखि सु हृदय । करि चरै मध्य पकट्य । — ह० रासो,
पृ० १२३ ।

दस्ता—संज्ञा पुं० [पा० हस्वह्] १. बड़ जो हाथ में धारित या रहे ।
 २. किसी बीजार आदि का गूद हिस्सा जो हाथ से उखाड़ा जाता है । मूठ में बैठे । जैसे, टूटी का । ३. फूल का गुच्छा । गुलदस्ता । ४. एक प्रकार की पुस्तक जो योग या कबा पर लगती है । ५. विषाद से हो उत्पन्न दल । मारका । ६. चपरास । मजराक । ७. किसी वस्तु का उलटा गूद या पूला जितना हाथ में धारित रहे । ८. हाथ के दो पैरों की गयी । ९. मोंटा । १०. मारका । १०. मारका का मुँगरा । खरल का मगला (को०) ।

दस्ता^२ संज्ञा पुं. (श्लो.) एक प्रकार का वस्त्र । इन्दिया ।

दस्ता'— संज्ञा पु० [हि० जस्ता] ३० जस्ता ।

दस्ताना — संख्या ५० [फ्रा० दस्तान ६] १. पंजे की इच्छा से रहने का बुना हुआ कपड़ा। हाथ का मोटा। २. बहुत सी 'पंजे' या संधी तलवार जिस्की मुट के ऊपर चलाया जाता है। ३. पंजे का लोहे का परदा बना रहता है। ४. सुरंग या मार्ग के साथ प्रायः निरालता है। ५. इच्छा से काम के लिये बना लोहे का बरतार। हस्तकला (की०)।

द्विस्तार-संका श्री० , पा०] पृष्ठा : उपस्थित : प्रमाण : ...
मीर साहब ... नाजुक है ...
—कविता श्री०, भा० ४, पृ० ३१।

दस्तावेज - संख्या ३०७ [१०० स्मारक] दृष्टी १०३ [१००]

दस्तावेज--वि० [का] परवी म.हिन्व का मात. १००

विशेष—जो व्यक्ति सरकारी काम पूरी शिखा प्राप्त कर लेता है, उसे उसके शिक्षक प्रमाण के रूप में गणनीय वैध देते हैं।

दस्तावर--वि० [फा०] जिमसे दस्त आवे । विरेचक । जैसे,—
दस्तावर दवा ।

दस्तावेज संख्या क्र० [फा० दस्तावेज] वह कागज जिसमें दो या कई प्रादमियों के बीच के व्यवहार की बात लिखी हो और जिसपर व्यवहार करनेवालों के दस्तखत हों। व्यवहार संबंधी लेख। वद्व पत्र जिसे लिखकर किसी ने कोई प्रतिज्ञा की हो, किसी प्रकार का श्रम या देना स्वीकार किया हो अथवा द्रव्य गंपत्ति प्रादि का लेनदेन किया हो। जैसे, तपस्सुत्र, रेहनुनामा, कियाला इत्यादि। उ०—(क) जबतक नरिस्ट्री न हो जाय, सच्चे से सच्चा दस्तावेज भी प्रामाणिक नहीं माना जाता।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० २७३। (ख) कागज, पत्तर, दस्तावेज, तपस्सुत्र हिंदलोट बगैरह जिम मंत्रक में रखे हैं, उनकी बाबियों का गुच्छा किसके जिम्मे है?—नई०, पृ० १६।

क्रि० प्र० लिखना ।

दस्तावेजी—वि० [क्र० दस्तावेज] दस्तावेज संबंधी । दस्तावेज का ।
जैसे, दस्तावेजी रुपया, दस्तावेजी कागज ।

दम्नाम—संज्ञा श्री० [फा०] हाथ से चलाई जानेवाली चक्की [कौ०] ।

द्विती^१. वि० [फा० हाथ (= हाथ)] हाथ का । जैसे, दस्ती
कमाल ।

दुस्ती— मखा श्री १. हाथ में लेटर चलने की बत्ती। मखान। २. छोटी गुट। छोटा बट। ३. छोटा कलमवान। ४. वह योगी जिसने विजयादशमी के दिन राजा लोग अपने हाथ पर मारदानी और मारदानी को बाँटते हैं। ५. कुश्ती का एक पंच नियमों पहलवा अपने जोड़ का दाहिना हाथ दाहिने हाथ से अपनी बायाँ हाथ बाएँ हाथ से पकड़कर अपनी ओर खींचता है और भट पीछे जाकर भटके के द्वारा उसे पकड़ देता है।

दम्भूर—[भा. पु. ० [भा. ०] १. नीति । रसम । स्वात्र । चाल । प्रया ।
२. निगम । वायदा । विधि । ३. पारमियों का पुरोहित जो
उनके मनोबोध के अनुसार कर्मों को करता है । ४. जहाँ
के ये छोटे पाल जो सबसे ऊपर वाले पाल के नीचे की पक्ति में
नीचे छोटे होते हैं : - (१८७०) ।

दस्तूरी — ५०० | फा० दस्तूर | वह द्रव्य जो नीकर अपने मालिक
 को सोना देने में दूसरानदारों से झूठ के तौर पर पाते हैं।
 दस्तूर का कुछ बंधा हिमाव होता है जैसे, एक रूप के सोदे
 में १० पैसों। उ० - मगन के मुबरा मिले ओमें दस्तूरी काटः।
 - भातेदुर्ग, भा० १, पृ० १३५।

दम्नोपा नक्षत्रं । का० अस्तमोपा (-पैर)] १. हाथ पैर ।
२. परिश्रम । मिह्रत । प्रथम क्रोड ।

दरपना - गंगा पुं० [क्रा० दस्तपतःह] चिमटा ।

दग्धा—१. पृथिवी । २. यजकृती । यजमान । ३. अग्नि । ४. तस्कर ।
 यो ५. ६. स्वयं (३) ।

दम्भ—वि. १. पौन्यपुक्त । सुन्दर । २ दर्शनीय । भाष्य-
जनक [को०] ।

दस्यु—संज्ञा पु० [सं०] १. डाकू । चोर । २. रिपु । शत्रु (को०) । ३. अमुर । अनाय । स्नेच्छ । दाम । उ०—आमा की मारी देखी उस दस्यु देश में जीती थी ।—साकेत, पृ० २८८ ।

विशेष—दस्युओं का वर्णन वेदों में बहुत भिन्न है । अर्थात् के भारतवर्ष में चारों ओर फैलने के पहले ये छोटी छोटी भरितियों में इधर उधर रहते थे और आर्यों को अनेक प्रकार के कष्ट पहुँचाते थे, उनके यज्ञों में विघ्न डालते थे, उनके चोपाए चुरा ले जाते थे तथा और भी अनेक प्रकार के उपद्रव करते थे । अनेक मंत्रों में इन यज्ञहीन, प्रमानुष दस्युओं का नाश करने की प्रार्थना इंद्र से की गई है । ननुषि, शबर और वृष नामक दस्युपतियों के इंद्र के हाथ से मारे जाने का उल्लेख ऋग्वेद में कई स्थानों पर है । जैसे, 'हे इंद्र ! तुमने दस्यु शंबर की सी से अधिक पुरिषों का नाश किया है' हे इन्द्राणि ! तुमने एक बार मेरे आर्यों को अपने पुरिषों की हिला डाला ।' 'हे इंद्र ! तुमने दुर्जितर के पुत्र शबर को ऊँचे परंत के ऊपर मुँह के बल गिराकर मार डाला' तुमने मनुष्यों के मुख की इच्छा से उन मनुष्यों को मिर झूठा किया ।'

वेदों में दस्युओं के लिये दास और अमुर शब्द प्रामाण्य हैं । इन दस्युओं के 'पणि' आदि कई भेद थे । पीछे जब कुछ दस्यु नेवा आदि के लिये भिला लिए गए तब उनकी उदात्त संज्ञा में कुछ बर्णों कल्पित हो गई । ऐतरेय ब्राह्मण में वेदिक मित्र द्वारा उत्पन्न और आप द्वारा अष्ट वतल गये हैं । मनुस्मृति में लिखा है कि ब्राह्मणों, क्षत्रियों, वैश्यों और शूद्रों में जो क्रियालुस और जाति बाहर हो गए हैं वे सब बाह्य स्नेच्छभाषी हैं चाहे आर्यभाषी, दस्यु कहलाते हैं । उदात्त में लिखा है कि अर्जुन ने दस्युओं के लक्षण आर्य तथा क्षत्रपुत्रों के जो दस्यु थे उन्हें भी परास्त किया । अथर्व वेद दाहीवाले दस्युओं का भी उल्लेख है । इन दस्युओं के बीच निवास करना ब्राह्मण आदि के लिये निषिद्ध था ।

दस्युता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. लुटेरापन । उकता । २. दास्यपन । दुष्टता । क्रूर स्वभाव ।

दस्युक्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. उकती । लुटेरापन । २. चोरी ।

दस्युद्धा—संज्ञा पु० [सं० दस्युद्ध] । अमुरों की मारनेवाली इन्द्र ।

दस्यु—संज्ञा पु० [सं०] १. शिशिर ऋतु । २. दह । ३. अश्विनी कुमार । ४. दो का समूह । जोड़ा । ५. दस्यु । लुटेरा (को०) । ६. अश्विनी नक्षत्र (को०) ।

यौ०—उप देवता = अश्विनी नक्षत्र । दस्यु = दस्यु की स्त्री ।

दस्यु—क्रि० १. दोहरा । २. हिंसा करनेवाला ।

दस्यसू—संज्ञा स्त्री० [सं०] सूर्य की पत्नी संज्ञा जो अश्विनी कुमार की माता थी (को०) ।

दहर्षता—संज्ञा स्त्री० [फ्रा० दहर्षत] दे० 'दहर्षत' । उ०—तब दिन में दहर्षत प्रति जागी । मुर्क फीज खालिक की आगी ।

—गुप्त अभि० सं० (इति०), पृ० ८४ ।

दह—संज्ञा पु० [सं० हृद (प्रार्थन विपर्यय), अथवा सं० दह, प्रा०

दह] १. नदी में वह स्थान जहाँ पानी बहुत गहरा हो । नदी के भीतर का गड्ढा । पाल । उ०—ने बसुरेव धंसे दह मामुहि तिहूँ जोक उत्रियारे हो ।—मूर (शब्द०) ।

यौ०—कालीदह ।

२. कुट । होज । उ०—टोपन दूटि उठै अंसि सच्छी । दह में गयी उच्छले मच्छी ।—खान (शब्द०) ।

दह—संज्ञा स्त्री० [सं० दहन] ज्वाला । लपट । ली ।

दह—वि० [फ्रा०] दह । उ०—(क) भादों घोर राति अंधियारी । द्वार कपाट कोट अट रोके दह भिसि कंत कम भय भारी —सूर (शब्द०) । (ख) हाट बाट नहि जाहि निहारी । जनु पुर दह भिसि लागि दवारो ।—गुलसी (शब्द०) ।

यौ०—दहचंद = दसगुना ; दहदिया = साहसी । वीर । दहदिसि = चारों ओर । दया । दयाप्रो मे । उ०—दहदिसि दीपक तेज क दिः बानी बिन तेज । चहुँ दिसि सुरज देखिए दागु अरु ।—चैतन्य ।—सूक्त, पृ० १०० । दहरोज = चंद दिन । उ०—कुंदरी का ।

दहक—संज्ञा स्त्री० [सं० दहन] १. आग दहन की क्रिया । घटक । २. ज्वाला । लपट । ३. शर्म । हिया । लज्जा ।

दहकन—संज्ञा स्त्री० [हि० दहकना] दहन की क्रिया या भाव ।

दहकना—क्रि० प्र० [सं० दहन] १. ऐसा जलना कि लपट ऊपर उठे । जो के साथ बलना । घटकना । भटकना । जैसे, आग दहकना, पीपल दहकना । उ०—अंग अंग आगि ऐसे केसर क नार लाग, चीर लागे बरन, अबीर लागे दहकन ।—सेवक (शब्द०) ।

संयो० क्रि०—उठना ।—जलना ।

२. शरीर का गरम होना । पनना । घिकना ।

संयो० क्रि०—देना ।

दहकना—संज्ञा पु० [फ्रा० दहकना] शर्म का रहनेवाला । कृपक । शिमान । देहनी । गौरार (को०) ।

दहकना—क्रि० प्र० [हि० दहकना] १. धक्का । ऐसा जलना कि लपट ऊपर उठे ।

संयो० क्रि०—देना ।

२. मरकाट । क्रोध दिलाना ।

संयो० क्रि०—देना ।

दहकानता—संज्ञा स्त्री० [फ्रा० दहकानता] गौरारपन । मोहपन । अमुरपन (को०) ।

दहकानी—संज्ञा पु० [फ्रा० दहकान] देहाती । गौरार । उ०—मैं तुम्हें अपने दहकनी स्नेच्छा तुम मुझे अशुक या दहकानी । सदा दहकनी माध रह, यद बात न भव तक पहचानी ।—हंता, पृ० १७ ।

दहकारना—क्रि० प्र० [हि०] धून आदि दवाने के लिये पानी का छिड़काव करना । सीचना ।

दहगी—संज्ञा स्त्री० [हि० दाहन आग] गमी । ताप ।

दहवंद—वि० [फ्रा०] दसगुना (को०) ।

दहड़ दहड़—क्रि० वि० [सं० दहन या धनु०] लपट फँकते हुए । धायें धायें । जैसे, दहड़ दहड़ जलना । उ०—इस बीच देखते क्या है कि वन चारों ओर से दहड़ दहड़ जलता चला आता है । लल्लू० (शब्द०) ।

दहड़गि—संज्ञा स्त्री० [सं० दहन] दे० 'दहनि' । उ०—दाहू घूटि खुदाई, कही को नाही, फिरिही पिरथी सारी । हुची दहणि द्वारि कार बोरे, साधु सब विचारो ।—दाहू०, पृ० ३४२ ।

दहदल—संज्ञा स्त्री० [हि० दलदल] दे० 'दलदल' ।

दहन^१—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० दहनोय, दहमान] १. जलने की क्रिया या भाव । भस्म होने या करने की क्रिया । दाह । जैसे, लंकादहन ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

२. अग्नि । प्राग । ३. कृत्तिका नक्षत्र । ४. तीन की संख्या । ५. भिलायी । भल्लातक । ६. चित्रक । चीता । ७. दुष्ट या क्रोधी मनुष्य । ८. कवच । कपोत । ९. एक रत्न का नाम । १०. ज्योतिष में एक योग जो पूर्वाभाद्रपद, उत्तराभाद्रपद और रेवती इन तीन नक्षत्रों में शुक्र के होने पर होता है । ११. ज्योतिष में एक योगी जो पूर्वाषाढ़ और उत्तराषाढ़ नक्षत्रों में शुक्र के होने पर होती है ।

दहन^२—वि० १. जलानेवाला । दाहक । उ०—जय रघुवंस दनज वन मनु । गहन धनुज वन दहन कृणामु ।—मानस, १ । २. दाहयुक्त (को०) ।

दहन^३—संज्ञा पुं० [फ्रा०] १. मुख । मुँह । उ०—दहन पा हैं उनके गुमा कैसे कंस ।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ४०७ । २. छिद्र । सूराल ।

दहन—संज्ञा पुं० [देश०] कंजा नाम की कंटीली भाड़ी । वि० दे० 'कंजा' ।

दहनकेतन—संज्ञा पुं० [सं०] धूम । धुआँ ।

दहनप्रिया—संज्ञा स्त्री० [सं०] अग्नि की पत्नी, स्वाहा (को०) ।

दहनर्क्ष—संज्ञा पुं० [सं०] कृत्तिका नक्षत्र ।

दहनशील—वि० [सं०] जलनेवाला ।

दहनसारथि—संज्ञा पुं० [सं०] पवन । वायु (को०) ।

दहना^१—क्रि० प्र० [सं० दहन] १. जलना । बलना । भस्म होना । उ०—जियरा उडगो सो डोबै, हियरा धक्योई करै, छाई पियराई, तन सियराई सो दहै ।—भानंदधन (शब्द०) २. क्रोध से संतप्त होना । कुड़ना ।

दहना^२—क्रि० प्र० १. जलना । भस्म करना । उ०—उलटी गढ़ परो दुर्वासो दहत सुदर्शन जाको ।—सूर (शब्द०) । २. संतप्त करना । दुखी करना । कष्ट पहुँचाना । उ०—ये घरदाई लुगाईं भई निर्मम छोस निवाज हमें दहती हैं ।—निवाज (शब्द०) । ३. काय जलना । कुड़ाना ।

दहना^३—क्रि० प्र० [हि० दह] १. पेंचना । लोचे बैठना । २. पानी में डूब जाना ।

दहना^४—वि० [सं० दक्षिण] दे० 'दहिना' ।

दहनागुरु—संज्ञा पुं० [सं०] जलाने का अगार । दाहागुरु (को०) ।

दहनाराति—संज्ञा पुं० [सं०] अग्नि का शत्रु जल जिससे प्राग भुक्षती है (को०) ।

दहनि—संज्ञा स्त्री० [हि० दहना] जलने की क्रिया । जलन । उ०—अंतर उदय दाह, धाखिन आसू प्रवाह, देखो अटपटी चाह भोजनि दहनि है ।—भानंदधन (शब्द०) ।

दहनोय—वि० [सं०] जलने या जलाए जाने योग्य ।

दहनोपल—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्यकांत भणि । सूर्यमुखी । आतशी शीशा ।

दहनोल्का—संज्ञा स्त्री० [सं०] प्राग की चिनगारी । लुक । लूका (को०) ।

दहपट—वि० [फ्रा० दह (= दस, दसो दिशा) + पट (= समतल), जैसे, चौपट] १. गिराकर जमीन के बराबर किया हुआ । ढाया हुआ । ध्वस्त । चौपट नष्ट । उ०—सूरदास प्रभु रघुपति प्राप दहपट भइ लंका ।—सूर (शब्द०) । २. रौंदा हुआ । कुचला हुआ । दलित ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

दहपटना—क्रि० प्र० [हि० दहपट] १. ढाना । ध्वस्त करना । चौपट करना । नष्ट करना । २. रौंदना । कुचलना । दलित करना । उ०—बालिहू बवं जिय माहि ऐसो कियो; मारि दहपटि, दियो जम की घानी ।—तुलसी । (शब्द०) ।

दहपटना^२—क्रि० प्र० [हि० दहपट] दे० 'दहपटना' । उ०—हाँकि हाँकि दलनि दबाई दहपटि हते, बाजी धो बितुंड भुंड भूमत खरे जे हैं ।—हम्मीर०, पृ० ५७ ।

दहबासी—संज्ञा पुं० [फ्रा० दह (= दस) + बासी (प्रत्य०)] दस सिपाहियों का सरदार ।

दहमर्द—वि० [फ्रा० दहमर्दह] १. असत्यभाषी । झूठा । २. धावाल । बड़बड़िया । बकरी ।

दहर^१—संज्ञा पुं० [सं०] १. छोटा चूहा । चुहिया । २. छछूंदर । ३. भाता । भाई । ४. बालक । ५. नरक । ६. वरुण । ७. हृदय का गर्त या हृदय (को०) ।

दहर^२—वि० १. स्वल्प । छोटा । २. सूक्ष्म । ३. दुर्बोध ।

दहर^३—संज्ञा पुं० [सं० दह (= प्रायंत विषयेय)] १. दह । नदी में गहरा स्थान । उ०—अति अचगरी करत मोहन फटक गेंदुरी दहर ।—सूर (शब्द०) । २. कुंड । होज । गड्ढा । पाल ।

दहर दहर—क्रि० प्र० [धनु० या सं० दहन (= जलना)] लपट फँकते हुए । घबकते हुए । धायें धायें । जैसे, दहर दहर जलना ।

दहरना^१—क्रि० प्र० [हि० दहलना] दे० 'दहलना' ।

दहरना^२—क्रि० प्र० दे० 'दहलना' । उ०—सूर प्रभु पाष गोकुल प्रपट भए संतन दे हरख, दुष्ट जन मन दहर के ।—सूर (शब्द०) ।

दहराकाश—संज्ञा पुं० [सं०] बिदाकाश । ईश्वर ।

दहरोआ—वि० [फ्रा० दहरोजह] अस्थायी । न टिकनेवाला (को०) ।

दहरीरा—संज्ञा पुं० [हि० दही + बड़ा] [स्त्री० दहरीरी] १. दही में भिगोया हुआ बड़ा । २. एक प्रकार का गुलगुला ।

दहल—संज्ञा स्त्री० [हि० दहलना] डर से एकबारगी काँप उठने की क्रिया । धरधराहट ।

दहल—संज्ञा स्त्री० [सं० हृद, हि० दहर] कुंड । उ०—गोभन खरकि खेत भर ग्यार । गोरज रहन नाज भर ग्यार ।—घनानंद०, पृ० ३०२ ।

दहलना—क्रि० प्र० [सं० दर (= डर) + हि० हलना (= हिलना)] डर से एकबारगी काँप उठना । डर के मारे जी धक रहे हो जाना । डर से चौकना । भय से स्तब्ध होना । जैसे,—बहु राजा भी बड़ाई सुनते ही दहल उठा ।

संयो० क्रि० उठना ।—जाना ।

मुहा०—जी या कलेजा दहलना = डर से हृदय काँपना । डर के मारे छाती धक धक करना ।

दहला—संज्ञा पुं० [फ्रा० दह (= दह) + ला (= प्रत्यय)] ताप या गजोंके का दहलना जिसमें दम बूझती है । दहल चला-वाला ताप ।

दहला—संज्ञा पुं० [सं० दहल] धाया । धावना । झगड़ना । उ०—(फ) कीऊ तुफान मुझपर है दहल कलाधुम भावन संग को ।—शमु (शब्द०) । (ख) रो-रता की ओ दहला यह नाभि को गाड़ि मनु जखाने ।—जमु (शब्द०) ।

दहलाना—क्रि० प्र० [हि० दहलना] डर से काँपना । भय से चौकना ।

संयो० क्रि०—देना ।

दहलीज—संज्ञा स्त्री० [फ्रा० दहलीज] दे० 'दहली' ।

दहलीज—संज्ञा स्त्री० [फ्रा० दहलीज] शस्त्र के गोले की नीच वाली लकड़ी जो जमीन पर रखी है । देहली । देहली ।

मुहा०—दहलीज का कुत्ता = चिल्लाता । दहलीज न फाँटना = दरवाजे पर न आना । दहलीज की भिट्टी से आना = फेरे पर फेरा करना । बार बार द्वार पर आना ।

दहलीज—संज्ञा स्त्री० [फ्रा० दहलीज] दे० 'दहलीज' ।

दहलीज—वि० [फ्रा० दहलीज] अस्त : लोपः । दहलीज । उ०—स्वामि भ्रम रस तु मन जे केही गजउठत । डरे दहलीज मिनत कर करै शत्रु दहलीज ।—पृ० रा०, पृ० ५० ।

दहवाटी—संज्ञा पुं० [सं० दह + वाटी, प्रा० दहवाटी, दहवाटी] विषय । विनाश । उ०—तैं दाधी इसरय तगग, दग गिर कर दहवाटी ।—शिवी० प्र०, भा० १, पृ० ६० ।

दहश—संज्ञा स्त्री० [फ्रा०] डर । भय । लोफ ।

दहसत, दहसति—संज्ञा स्त्री० [फ्रा० दहसन] दे० 'दहलना' । उ०—(क) तितकी दहसत बयो लोहे माले ।—कबीर श०, भा० १, पृ० ३२ । (ख) दहलत नाहि कै किमहू के, जिहिर प्रपानी खोले हो । पल्लू नोसन हई कमाली, तनहा होइ जब खोले हो ।—पल्लू०, भा० ३, पृ० ८३ ।

दहसनो—संज्ञा स्त्री० [फ्रा० दह + सन] दस साल के आते की बही ।

दहा—संज्ञा पुं० [फ्रा० दह] १. मुहरंम का महीना । २. मुहरंम की १ से १० तारीख तक का समय । ३. तजिया ।

क्रि० प्र०—उठना ।—निकलना ।

दहाई—संज्ञा स्त्री० [फ्रा० दह (= दस)] १. दस का मान वा भाव । २. धर्मों के ध्यानों की गिनती में दूसरा स्थान जिस पर जो धर्म निर्या होता है उससे उतने ही गुने दस का बोध होता है । जैसे, ८० में दहाई के स्थान पर ८ है जिसका अन्तर्भाव है आठ गुना दस ।

विशेष दे० 'एकाई' ।

दहाड़—संज्ञा स्त्री० [अनु०] १. किसी भयंकर जंतु का घोर शब्द । गरज । जैसे, जेर हो दहाड़ । २. रोने का घोर शब्द । प्रार्थना । चिल्लाकर रोने की ध्वनि ।

मुहा०—'दहाड़ मारना' या 'दहाड़ मारकर रोना' = चिल्ला चिल्लाकर रोना ।

दहाड़ना—क्रि० प्र० [अनु०] १. किसी भयंकर जंतु का घोर शब्द करना । गरजना । गुरगुराना । जैसे, जेर का दहाड़ना । २. रोने के लिये चिल्लाकर रोना ।

दहान—संज्ञा पुं० [सं० दहन] धमिल । उ०—तिन लोमह लोग प्रपही नाने गुण तुझ पल्लव भाने ।—पृ० रा०, पृ० १५० ।

दहाना—संज्ञा पुं० [सं० दहन] १. थोड़ा मुँह । द्वार । २. गुलाब दहन । ३. पशु का मुँह ।

मुहा०—दहान खोलना (१) पशु का मुँह खोलना । पानी खोलना । (२) पैसा खोलना (बाँटना) ।

बन स्थान जहाँ नदी बहती है या नदी में गिरती है । मुहाना । ५. नदी । नाली । ६. लगाम जो घोड़े के मुँह में रहती है ।

दहा—संज्ञा पुं० [सं० दह (= प्रदेय)] १. प्रांत । प्रदेय । २. प्रांत या प्रदेश का प्रदेय । थंड ।

दहिगल—संज्ञा पुं० [फ्रा०] कीड़ नकीड़े खानेवाली प्रातः प्रमुख लंबी एक चिड़िया जिसके पंखों पर गहरे घोर काली लकीरें होती हैं । यह उड़ उड़कर जमीन पर उतर जठारा करती है ।

दहिऔरो—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'दहौरी' ।

दहिउठ—संज्ञा पुं० [सं० दहि] दे० 'दही' । उ०—भरें कलस तनो चरन आई । दहिउ लेह खालिनि गोदराई ।—जायसी श०, (पृ०) पृ० २११ ।

दहिजरवा—संज्ञा पुं० [हि० दाड़ोजार] दे० 'दाड़ोजार' । उ०—तोरी बुन पं धातु रीके, जम दहजरवा फिर फिर जाय ।—कबीर श०, भा० २, पृ० ६३ ।

दहिजार—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'दाड़ोजार' ।

दहिडागा—संज्ञा पुं० [हि० दहि + डागा (प्रत्यय)] दे० 'दहेड़ी' । उ०—एक दहिडागा यही जमायो दूसरी परि गई साईं रे । नुति जमाऊँ प्रानो करहा, द्वार मुनिस की डारी रे ।—कबीर श०, पृ० ११२ ।

दहिन—वि० [सं० दक्षिण] अनुकूल । दक्षिण । उ०—बेरि एक दक्षिण दहिन जला होए, निरखन धन जके धरय मोजे गोए ।—निद्यापत, पृ० १५० ।

दहिना—वि० [सं० दक्षिण] [वि० स्त्री० दाहिनी] शरीर के दो पार्श्वों में से उस पार्श्व का नाम जिसके धर्मों या पेशियों

अधिक बल होता है। बायीं का उलटा। अरसव्य। जैसे, दहिना हाथ, दहिना पैर, दहिनी धाँख।

मुहा०—दहिना कमर्गोच=दाहिनी ओर मुड़ने का शब्द। दाहिनी ओर घूमना है। (पालकी के कहार)।

दहिनावर्त—वि० [सं० दक्षिणावर्त] दे० 'दक्षिणावर्त'। उ०—पुहमी देव न दहिनावर्त। नीति पाऊँ फिरो न मरता। सुंदर० पं०, भा० १, पृ० ३०५।

दहिने—क्रि० वि० [हि० दहिना] दाहिनी ओर की। जैसे,—वह मकान तुम्हारे दहिने पड़ेगा।

यौ०—दहिने होना=प्रवृत्त होना। प्रसन्न होना। दहिने बाएँ=इधर उधर। दोनों पार्श्वों में। दोनों ओर।

दहियक—संज्ञा पुं० [फा० दह (=दम)] दममांस। दसवाँ हिस्सा।

दहियल—संज्ञा पुं० [फा० दह (=दा) + हि० इयल (प्रत्य०)] दे० 'दहला'।

दही—संज्ञा पुं० [सं० दधि] खटाई के द्वारा जमाया हुआ दूध। वह दूध जो खटाई गड़ जाने के कारण जमकर थक्के के रूप में हो गया हो।

विशेष—मिट्टी के बरतन में रखा हुए गरम दूध में थोड़ा सा दही (या धीर कोई खट्टा पदार्थ) डाला जाता है; जिससे थोड़ी देर में वह थक्के के रूप में जम जाता है। पाश्चात्य देशों की विधि में आमतौर पर जमाने के लिये लैंडक एसिड का प्रयोग किया जाता है। दही दो प्रकार का होता है। एक सजाव या मोटा जिसका धी या मक्खन निकाला हुआ नहीं होना और जिसमें धी से युक्त पलाई की तरह होती है। दूसरा छिनुवा या रतिया जो मक्खन निकाले हुए दूध को जमाने में बनता है और पटिया होता है। धी दही को भयंकर ही निकाला जाता है। छिनुवा के यहाँ दही मंगल द्रव्यों में से है।

वैद्यक में दही अग्निदीपक, म्लिग्ध, गु, धारक, रक्तपित्तकारक, बलकारक, शुक्रवर्धक, अपचघ्न तथा मूत्रकुण्ठ, अरुणि, घृतीसार, विषसत्र, हृत्प्रादि से दूर करनेवाला माना जाता है। यूरोप के बड़े बड़े डाक्टरों ने हाल में पर्याप्त प्रमाण दिए हैं कि दही से दन्त, श्मि और अन्य आयुर्वर्तक पदार्थ मनुष्य के लिये अच्छी है। अंगरेजी अरशा में इसका सेवन उन्होंने अत्यंत उपयोगी बताया है। उनका मत है कि दही से शरीर में ऐसा फोटागु संपन्न हो जाता है जो रक्त को शुद्ध करनेवाले कोशिकाओं को खोजता है।

मुहा०—दही का लोह=रक्षा का पानी जो कपड़े में रूद्ध दही की निचाइन में निराला है। (हाथ पर गड़ने से दही जमा रहता है—१) किसी का अंग या अंग पर रक्त का जमा रह जाना। (२) किसी घटना या बात का मध्य में एकदम भीन हो जाना, कुछ भी न करना। दही दही=द्विगुण नाम को चिड़िया की बोली। दही दही करना—किसी चीज को मोल लेने का लिये दोबारा से कहने का भाव।

दहीदही—संज्ञा श्री० [अनु०] दहिगन नाम की चिड़िया की बोली।

दहीली—वि० श्री० [हि० दाह + ईली (प्रत्य०)] अथवा सं० दग्ध जली हुई। दग्ध। उ०—नैकु नहीं पिय तै कहुँ बिछुरति, तातै नाहिन काम दहीली। सुर सखी बूझै यह कहौं, आबु गई यह भेट पहीली।—सुर०, १०।१७७२।

दहुँ—अभ्य० [सं० अथवा] अथवा। या। कि वा। २. स्यात्। कदाचित्।

दहुँवनि—वि० [दह] दोनों। उ०—सुंदरि बिरहनि के निकट भाई बिरहनि कोइ। दुखिया ही दुखिया मिली दहुँवनि दीनी रोइ।—सुंदर प्र०, भा० १, पृ० ६८२।

दहुँ—अभ्य० [सं० अथवा] दे० 'धी'। उ०—जनि प्रवहि सबहि दहुँ पास कहुँ, पकलि दोषो अललाण गइ।—कीर्ति०, पृ० १२।

दहूँगर—संज्ञा पुं० [हि० दही + गड़] दही का घड़ा।

दहूँड़ी—संज्ञा श्री० [हि० दही + हंडी] दही रखने का मिट्टी का बरतन। उ०—अद्विनि हाथ हंडि सगुन लेइ भावइ हो। तुलसी पं०, पृ० ४।

दहेज—संज्ञा पुं० [अ० दहेज] वह धन और सामान जो विवाह के समय कन्या पक्ष की ओर से वर पक्ष को दिया जाता है। दाय। ॥ योतुक।

दहेला—वि० [हि० दहला + एला (प्रत्य०)] [वि० श्री० दहिली, रहेली] १. जला हुआ। दग्ध। २. सतप्त। दुःखी। उ०—(क) सुगु मन्त्री में रही अकेली बिरह दहेली इत गुंजन भहुरे।—(अम्बर)। (ख) कहाँ गए मनमोहन तजि के काहे बिरह रहेली है।—(शब्द०)।

दहेला—वि० [हि० दहलना] [वि० श्री० दहेली] भोगा हुआ। छिनुवा हुआ। उ०—गाहज सिध सयाननि के जिनकी मति की मति देह दहेली।—केशव (शब्द०)।

दहूँड़ी—संज्ञा श्री० [हि० दही + हंडी] दही की हंडी। उ०—ऐसी को है जो छुबे मेरी मदकी, अमृती दहूँड़ी जमी।—नंद० पं०, पृ० ३६१।

दहीतरसो—संज्ञा पुं० [सं० दहीतरात] एक सी दम।

दह्यमान—वि० [सं०] जो जल रहा हो। जलनेवाला। उ०—तब कयो दह्यमान यह जीवन, चढ़ न सका मंदिर में भव तक।—माधवेनी, पृ० ८।

दह्यो—संज्ञा पुं० [हि० दही] दे० 'दही'। उ०—धीरन को दह्यो छिलछिली जागत, मैं तो मोटाह जमायो बंध खि भरिके तमो।—नंद० पं०, पृ० ३६१।

दह्ये—वि० [सं०] दग्ध। तपुः छोटा [श्री०]।

दह्ये—संज्ञा पुं० १. हृदय रूपा खान। हृदय रूपी गर्त। हृदय। २. अग्नि। आग। ३. दहानि। दाहानि। दाहानल [श्री०]।

दांड—वि० [सं० दांड] [वि० श्री० दांडी] दांड से संबद्ध। छड़ी या दांड से संबंधित [श्री०]।

दांडक्य—संज्ञा पुं० [सं० दांडक्य] दारुना। छड़ी बरदार। रक्षक। २. एक राजा का नाम [श्री०]।

दांढाजिनिक^१—संज्ञा पुं० [सं० दाण्डाजिनिक] वह जो दंड और प्रजिन धारण करके अपना अर्थसाधन करता फिरे। साधु के वेष में लोगों को धोखा देनेवाला धादमी।

दांढाजिनिक^२—वि० कपटो। छली (को०)।

दांडिक—संज्ञा पुं० [सं० दाण्डिक] वह जो दंड देने के लिये नियुक्त हो। जल्साद।

दांत^१—वि० [सं० दान्त] १. जिसका दमन किया गया हो। बधीभूत। दबाया हुआ। उ०—तो क्या मैं भ्रम में थी नितान्त। संहार-बध्य असहाय दांत।—कामायनी, पृ० २४०। २. जिसने इंद्रियों को वश में कर लिया हो। जिसका शरीर तप प्राप्ति का प्रलेख सह सके। ३. जो दांत का बना हो। ४. दांत संबंधी।

दांत^२—संज्ञा पुं० १. मेनफल। २. पहाड़ पर की बावनी। ३. विदर्भ के राजा भीमसेन के दूसरे पुत्र जो दमयंती के भाई थे। ४. दानकर्ता। दाता (को०)। ५. दमनक नाम का वृक्ष (को०)।

दांतक—वि० [सं० दान्तक] दांत से निमित्त। हाथीदांत से निमित्त। हाथीदांत का (को०)।

दांता—संज्ञा स्त्री० [सं० दांता] एक अप्सरा का नाम। (महाभारत)।

दांति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. इंद्रियनिग्रह। इंद्रिया का दमन। प्रलेख प्राप्ति सहने की शक्ति। २. वश्यता। प्रवीणता। ३. विमय। नम्रता।

दांतिक—वि० [सं० दान्तिक] दे० 'दांतक'।

दांपत्य^१—वि० [सं० दाम्पत्य] स्त्री पुरुष संबंधी। स्त्री पुरुष का सा।

दांपत्य^२—संज्ञा पुं० १. दंपती से संबंध रखनेवाले अग्निहोत्र आदि व्रतों में। २. स्त्री पुरुष के बीच का प्रेम या व्यवहार।

दांभ—वि० [सं० दाम्भ] दे० 'दांभिक'।

दांभिक^१—वि० [सं० दाम्भिक] १. दंभयुक्त। दंभक। पाखंडी। आडंबर रखनेवाला। धोखेबाज। २. अहंकारी। धर्षणो।

दांभिक^२—संज्ञा पुं० १. दंभक। दंभक। २. दंभी व्यक्ति।

दांभिकता—संज्ञा स्त्री० [सं० दाम्भिक + ता] दंभरत। आडंबरपन। दिखाऊपन।

दाँ^१—संज्ञा पुं० [सं० दाण्ड (प्रत्य०); जैसे, एकदा। दका। बार। धारी। उ०—जोरि तुरंत रथ एग दाँ रवि न सेत विधान। जैसे ही नित पवन की चलवे ही ते काम।—सप्तमण सिंह (शब्द०)।

दाँ^२—वि० संज्ञा पुं० [फ्रा०] ज्ञातः। जाननेवाला। जैसे, फारसी। उद्गदा।

दाँ^३—वि० संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'दाई'।

दाँ^४—संज्ञा स्त्री० दे० 'दाई'।

दाँक^१—संज्ञा स्त्री० [सं० दाड्डक (= चिल्लाना), हि०, बँ० डकना] उद्गड़। गरज। किसी प्राणी का भौषण स्वर। उ०—सखन बचन की धीक सो परयो समाज सनौक। जिमि सिधु गण दौक में परे सिंह की दौक।—रघुराज (शब्द०)

दाँकना—क्रि० प्र० [हि० दाँक + ना (प्रत्य०)] गरजना। दहाड़ना

उ०—जैसे ब्याल बेंग को दूके परबीरी ताके हो। जैसे सिंह आपु मुख निरखे परे दूप में दौके हो।—सूर (शब्द०)।

दाँग—संज्ञा स्त्री० [फ्रा०] १. छहर रती की तील। २. दिशा। तरफ और। ३. छठा भाग।

दाँग^१—संज्ञा पुं० [हि० डंका] नगाड़ा। डंका। उ०—दान दाँग बाँधे दरबारा। कीर्तिन गई समुंदर पारा।—जायसी (शब्द०)।

दाँग^२—संज्ञा पुं० [हि० डूंगर] १. टीला। छोटी पहाड़ी। २. पहाड़ की चोटी।

दाँगर—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'डोंगर'।

दाँगी—संज्ञा स्त्री० [सं० दण्डक (= डंडा)] वह लकड़ी जो जुलाहों की कंधी में लगी रहती है।

दाँजा^१—संज्ञा स्त्री० [सं० उवाहाय्य] बराबरी। समता। जोड़। तुलना। उ०—(क) ताके रस को इंदु नरमत सुख उ न पावत दाँज।—देवरवर्मा (शब्द०)। (ख) न दंभीबरी देह को दाँज पावै। मोराई नखे पीत कंघी लजावै।—रघुराज (शब्द०)।

दाँजा^२—संज्ञा पुं० [हि० दाँज] दे० 'दाँज'।

दाँज^३—संज्ञा स्त्री०—दोपहोड़ी। लगडोट।

दाँड़ना—क्रि० प्र० [सं० दण्डन] १. दंड देना। सजा देना। २. तुरपाना करना।

दाँड़ा^१—संज्ञा पुं० [हि० दाँड़] दे० 'डाँड़ा'।

दाँड़मेड़ा—संज्ञा पुं० [हि० दाँड़ा + मेंडा] दे० 'दाँड़मेड़ा'।

दाँड़ी^१—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'डाँड़ी'।

दाँड़ी^२—संज्ञा स्त्री० दे० 'डाँड़ी'।

दाँत^१—संज्ञा पुं० [सं० दन्त] १. भंजुर के छर में निकली हुई हड्डी जो जीवों के मुँह, नाभ, गल और पेट में होती है और आहार चबाने, तोड़ने तथा आक्रमण करने, जमीन खादने इत्यादि के काम में आती है। दाँत

विशेष—मनुष्य तथा और दूध पिलानेवाले जीवों में दाँत दाढ़ और ऊपर जबड़े के मांस में लगे रहते हैं, मछलियों और सरीसृपों में दाँत केवल जबड़ों ही में नहीं तांतु में भी होते हैं। पक्षियों में दाँत का काम बोंब से निकलता है, उनके दाँत नहीं होते। असली दाँत मनुष्यों के गड़ों में जमे रहते हैं। सरीसृप प्रादि में दाँत का जबड़ की हड्डी से अधिक घनिष्ठ लगाव होता है। रोड़वाले जंतुओं में मुँह को छोड़ छोड़ (औरन भौतर के जानेवाले तल) में और कहीं दाँत नहीं होते। बिना रोड़वाले कुछ जंतुओं में दाँतों की स्थिति और प्रकृति में परस्पर बहुत विभिन्नता होती है। किसी के मुँह में, किसी की घोंतड़ी में अथवा पेट के किसी स्थान में दाँत हो सकते हैं केकड़ा, भिगवा प्रादि के पेट में महीन महीन दाँत या ददानेदार हड्डियाँ सी होती हैं। तल के बहुत से कीड़ों में जिनका मुँह गोल या चक्राकार होता है, किनारे पर चारों ओर असंख्य महीन दाँतों का मंडल सा होता है। मनुष्य और बनमानुष में दंतावलि पूर्ण होती है, अर्थात् उनमें प्रत्येक प्रकार के दाँत होते हैं।

दाँत तीन प्रकार के होते हैं—(१) चौका या राजदंत वर्ग (सामने के दो बड़े दाँत अर्थात् राजदंत और उनके दोनों पार्श्ववर्ती दाँत), (२) कुकुरदंत या शूलदंत, जो लंबे और मुकीले होते हैं और राजदंत के बाद दो दो पड़ते हैं, (३) चौमढ़ जिनका सिरा चौड़ा और चौकोर होता है और जिनमें पीसा या चबाया जाता है । २१ या २२ वर्ष की अवस्था में जब आखिरी चौमढ़ या धकिलदाढ़ निकलती है तब ३२ दाँत पूरे हो जाते हैं । बहुत से दूध पिलानेवाले जीवों को दो बार दाँत निकलते हैं । पहले बचपन में जो दूध के दाँत निकलते हैं वे झड़ जाते हैं । पीछे स्थायी दाँत निकलते हैं । दूध के दाँतों और स्थायी दाँतों की संख्या और आकृति में भी भेद होता है । मनुष्य के बच्चे में दूध के दाँत बीस होते हैं । माँप आदि विषधर जंतुओं के दाँत के भीतर एक नली होती है जिसके द्वारा येसी से विष बाहर होता है ।

पर्या०—रद । दणन । द्विज । बर ।

यो०—दाँत का चौका = सामने के चार दाँतों की लड़ी ।

मुहा०—दाँत उखाड़ना = (१) दाँत मसूड़े से प्रसग करना ।

(१) मुँह तोड़ना । कठिन दंड देना । दाँतों उँगली काटना = दे० 'दाँत तले उँगली दबाना' । दाँत फाटी रोटी = अत्यंत घनिष्ठ मित्रता । सहरी दोस्ती । घना मेल । जैसे,—राम और श्याम बी लो दाँतफाटी रोटी है । दाँत फाड़ना = दे० 'दाँत निकालना' । दाँत किटकिटाना, दाँत किचकिचना = (१) दाँत पीसना । (२) क्रोध से दाँत पीसना । अत्यंत क्रोध प्रकट करता । दाँत किटकिटाना = (कि० अ०) नीचे कंकड़ी, रेत आदि पड़ने के कारण दाँतों का डीक न चमना । दाँत किचकिचे होना = हार मानना । हार जाना । हैरान हो जाना । दाँत कुरीदने को गिनिका न रटना = पास में कुछ न रह जाना । संवत्स चला जाना । दाँत खट्टे करना = (१) खूब हैरान करना । (२) किसी प्रकार की प्रतिद्वंद्विता या लड़ाई में परास्त करना । परास्त करना । जैसे,—मरहटों के मुगलों के दाँत खट्टे कर दिए । उ०—नूतन नूतन यंत्र प्रस्तुत कर विलायती व्यापारियों के दाँत खट्टे करने के लिये शतशः व्ययत किए जा रहे हैं । निबन्धनलब्ध (शब्द०) । दाँत खट्टे होना = हार जाना । परास्त होना । हैरान होना । (किसी पर) दाँत गड़ना = दे० ' (किसी पर) दाँत लगना ' । किसी के दाँतों चढ़ना = (१) किसी के आक्षेप आदि का लक्ष्य होना । किसी को घटकना । (२) बुरी नजर का निशाना बनना । टोंक में घटना । पैर में घटना (स्त्रि०) । जैसे,—बच्चा लोगों के दाँतों चढ़ा रहता है इसी से कल नहीं पाता । (किसी के) दाँतों चढ़ना = (१) किसी पर आक्षेप करते रहना । बुरी दृष्टि से देखना । पीछे पड़ा रहना । (२) नजर लगाना (स्त्रि०) । दाँत चबाना = नाथ से दाँत पीसना । कोप प्रकट करना । उ०—दाँत चबात चले मधुर ने धाम हमारे को ।—सूर (शब्द०) । दाँत जमना = दाँत निकलना । दाँत झड़ना = दाँत का टूटकर गिरना । दाँत झाड़ देना = दाँत तोड़ डालना ।

कठिन दंड देना । दाँत टूटना = (१) दाँत का गिरना । (२) बुढ़ापा आना । दाँत तले उँगली दबाना = (१) अचरज में आना । अकित होना । दंग रहना । (२) खेद प्रकट करना । अफसोस करना । (३) संकेत से किसी बात का निषेध करना । इशारे से मना करना ।

विशेष—जब कोई कुछ अनुचित कार्य करने चलता है तब इष्ट मित्र या गुहजन प्रकट रूप से वारण करने का अवसर न देख दाँतों के नीचे उँगली दबाकर निषेध करते हैं ।

दाँत तोड़ना = परास्त करना । परास्त करना । हैरान करना । कठिन दंड देना । उ०—मलादीन के दाँत तोड़ि निष धर्म बचायो ।—राधाकृष्णदास (शब्द०) । दाँत दिखाना = (१) हँसना । (२) डराना । घुड़कना । (३) अपना बड़प्पन दिखाना । दाँत देखना = थोड़े बेल आदि की उम्र का भंडाज करने के लिये उनके दाँत गिनना । दाँतों धरती पकड़कर = अत्यंत दरिद्रता और कष्ट से । बड़ी किरायत और तकलीफ से । जैसे,—दाँतों धरती पकड़कर किसी प्रकार दो महीने चलाए । दाँत न लगाना = दाँतों से न कुचलना । जैसे,—दाँत न लगाना, दवा थो उतार जाना । दाँत निकलना = बच्चों के दाँत प्रकट होना । दाँत जमना, दाँत निकलना = (१) दाँत उखाड़ना । (२) थोठों को कुछ हटाकर दाँत दिखाना । (३) व्यर्थ हँसना । जैसे,—बयो दाँत निकलते दो सीधे बैठो । (४) गिड़गिड़ना । दीनता दिखाना । डाँहा मारना । जैसे,—तुह दाँत निकाल माँगो दगा, तब कैसे न मरे ? (५) मुँह बा देना । टें बोल देना । डर या घबराहट से ठक रह जाना । (किसी वस्तु का) दाँत निकलना = फट जाना । दरार से युक्त होना । उखड़ना । जैसे, सूती का दाँत निकलना, दीवार का दाँत निकलना । दाँत निकलना = दे० 'दाँत निकालना' । दाँत निरोरना = दे० 'दाँत निकालना' । दाँत पर न रखा जाना = खटाई के कारण दाँतों को महन न होना । अत्यंत खटाई लगना । दाँत पर मेल न होना = अत्यंत निर्धन होना । भूखल होना । जैसे,—उसके तो दाँत पर मेल भी नहीं तब मुँह देगा क्या ? दाँतों पर रखना = चखना । मुँह में डालना । दाँतों पीसना आना = कठिन परिश्रम पड़ना । जैसे,—इस काम में दाँतों पीसना आवेगा । (बच्चे का) दाँतों पर होना = उस अवस्था को पहुँचना जिसमें दाँत निकलनेवाले हों । दाँत पीसना = दाँत पर दाँत रलकर हिलाना । दाँत किटकिटाना । दाँत बँधवाना = हिलते हुए दाँतों को तार से कसवाना । दाँत बजना = सरसी से दाढ़ के हिलने या काँपने के कारण दाँत पर दाँत पड़ना । दाँत खट खट होना । दाँत बजाना = दाँत पर दाँत पीसना । दाँत किटकिटाना । दाँत बनवाना = गिरे हुए दाँतों के स्थान में हड्डी या सीप आदि के नकली दाँत लगवाना । दाँत बैठ जाना = भूख, लकवा आदि में पेशियों की स्तब्धता के कारण दाँत की ऊपर नीचेवाली पंक्तियों का परस्पर इस प्रकार मिल जाना कि मुँह जल्यो न खुल सके । नीचे ऊपर के जबड़ों का सट जाना । दाँत मसमसाना या दाँत पीसना = दे० 'दाँत पीसना' ।

(किसी का) दाँतों में जीभ सा होना = वैरियों के बीच रहना । पशुओं से प्रतिक्षण घिरा रहना । दाँतों में तिनका-लेना = दया के लिये बहुत विनती करना । दंड प्रादि के छुट-कारे के लिये बहुत गिड़गिड़ाना । बहुत प्रवीरता और विनय से क्षमा चाहना । हा हा खाना । (किसी वस्तु पर) दाँत रखना = (१) लेने की गहरी चाह रखना । प्राप्ति के प्रयत्न में रहना । (२) दंग रखना । कीना रखना । किसी के प्रति क्रोध या द्वेष का भाव रखना । वैर लेने का विचार रखना । (किसी वस्तु पर) दाँत लगाना = (१) दाँत घँसना । दाँत घुमने का घाव होना । (२) लेने की गहरी चाह होना । प्राप्ति की विनता होना । जैसे,—जबकि उस चीज पर उसका दाँत लगा है तब वह कब तक रह सकती है ।

विशेष - बिल्ली प्रादि शिकारी जानवर जिस जंतु को एक बार मुँह से पकड़ लेते हैं फिर उसे जाने नहीं देते । इसी से यह मुहा० बना है ।

(किसी वस्तु पर) दाँत लगाना = (१) दाँत घँसना । (२) लेने की गहरी चाह रखना । प्राप्ति के प्रयत्न में रहना । लेने की चाह में रहना । दाँत से दाँत बजना = सरसों के कारण दाढ़ के कँपने से दाँत पर दाँत पड़ना । दाँती से उठाना = नड़ी कँजूसी से उठाकर रखना । कृपणता से संजिच करना । जैसे,—एक दाना गिरे तो यह दाँती से उठावे । किसी पर दाँत होना = (१) गहरी चाह होना । लेने या लेने की प्रत्यक्ष प्रतिक इच्छा होना । प्राप्ति की इच्छा होना । जैसे,—जिस वस्तु पर तुम्हारा दाँत है वह कब तक रह सकती है । (२) किसी के प्रति दंग होना । किसी के प्रति क्रोध या द्वेष का भाव होना । किसी से वैर लेने का संकल्प होना । जैसे,—जबकि उसपर तुम्हारा दाँत है तब वह कितने दिनों तक बच सकता है ? (किसी के) दाँतों से दाँत बजना = बुरे दिन आना । शर्मत आना । जैसे,—किसके तावू में दाँत जमे हैं जो ऐसी बात मुँह से निकाल सके ?

२. दाँत के आकार की निकली हुई वस्तु । घंक्र की तरह निकली हुई नुकीली वस्तु जो बहुतांश के साथ एक पंक्ति में हो । बंदाना । दाँता । जैसे, - घाँरी के दाँत, कंघी के दाँत ।

दाँतघुँघुनी - संज्ञा स्त्री० [हि० दाँत + घुँघुनी] पोस्ते के दाँत की घुँघुनी जो बच्चे का पड़ना दाँत निकलने पर बाँटी जाती है ।

दाँतना - क्रि० प्र० [हि० दाँत] १. दाँतवाला होना । बवान होना (पशुओं के लिये बोलते हैं) । २. किसी हथियार की धार का इस प्रकार कुंठित होना कि वह कहीं उभर भावे और कहीं दब जाय । मुड़कर जगह जगह घुंठला हो जाना । जैसे, कुल्हाड़ी का दाँतना ।

दाँतली - संज्ञा स्त्री० [हि० डाट] डाट । काग ।

दाँता - संज्ञा पु० [हि० दाँत] दाँत के आकार का कंगूरा । रवा । घंक्र की तरह निकली हुई नुकीली वस्तु जो बहुतांश के साथ एक पंक्ति में हो । बंदाना ।

मुहा० - दाँता पड़ना = किसी हथियार की धार में गूठने होने के कारण उभार और गूँठ हो जाना ।

दाँताकिटकिट - संज्ञा स्त्री० [हि० दाँत + किटकिट (ध्वनि)] १. कहा-मुनी । झगड़ा । वाग्पुद्ग । २. गान्धी गरीज ।

क्रि० प्र० - करना । - मचना । - होना ।

दाँताकिलकिल - संज्ञा स्त्री० [हि०] १० दाँताकिटकिट ।

दाँतिना - संज्ञा स्त्री० [हि० दाँतन] १० 'दाँतन' । उ० - पाँच दोऊ जन दाँतिन करि स्नान करि मदिग मो कृपण भट जाइ भोग सरायो । - दो सो बावन०, भा० १, पृ० ४५ ।

दाँतिया - संज्ञा पु० [?] रेह का नमक । रेह का मोटा त्रिभुज पीने के तंत्राक्ष में उसे तेज करने के लिये डालने हैं ।

दाँती - संज्ञा स्त्री० [सं० दात्री] १. हँमिया त्रिमये घाम या फल काटने हैं । २. वह बड़ा खूँटा जो नाव के घाट पर गड़ा रहता है और जिसमें नाव का रस्सा बाँध दिया जाता है । डंडा । ३. भिड़ (बरें) की धारिका एक कीड़ा जो बहुत कामना होता है । फाली पिड़ ।

दाँती - संज्ञा स्त्री० [हि० दाँत] १. दाँतों की पंक्ति । दाँतवन्ति । बनीनी ।

मुहा० - दाँती बैठना या लगना = जबदों का परस्पर सट जाना । ऊपर नीचे के दाँतों का इस प्रकार मिल जाना कि मुँह जल्दी न खुल सके । कच्चा बैठना ।

२. दो पहाड़ों के नाच की संसरो जगद्व । बरें ।

दाँती - संज्ञा पु० [सं० दन्ती] बनेना मूँछर । उ० - नड़ी, कभी रवा, माट्टी, हिरन, दूगड दाँती विराजि लिये । - भरणवृत्त०, पृ० २५ ।

दाँना - क्रि० प्र० [सं० दमन] पक्की धारा के बंटनों को बँतों से इसलिये रोदालना जिसमें डटन या दाना आता हो जाय । देवरी कमाना । उ० - इसलिये यदि यह धारा मजबूत दाँना जाय तो दो ही तीन दिन में सब दाना भी मजबूत हो जाय । - खेती की पद्धति पुराण (१८८०) ।

दाँना - संज्ञा पु० [सं० दानव] दानव । देव ।

दाँम (५) - संज्ञा पु० [सं० दाम] दाना । उ० - मेवक बरन बर जीवन निवासधर, बहुमान की नमन सुंदर परम दाम । - गोद्वार धर्म० सं०, पृ० ४८८ ।

दाँमणी - संज्ञा स्त्री० [सं० दामिनी] दे० 'दामिनी' । उ० - कीर घटा, लग दामणी बूँद २० रे २० रे २० । - डाला०, पृ० २५२ ।

दाँय - संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'दाँती' ।

दाँयी - संज्ञा स्त्री० [हि० दाँहता] दे० 'दाँती' ।

दाँव - संज्ञा पु० [हि०] दे० 'दाँव' ।

मुहा० - दाँव रोना = पड़ने का भाव । दाँव रोना । खाना । उ० - दूसरी गहरी धाँसी देइती हैं और अपने दाँव रोवती हैं । - फिमाना०, भा० ३, पृ० १०८ ।

दाँवनी - संज्ञा स्त्री० [सं० दामिनी] १. दामिनी नाम का गहना । (५२ दे० 'दामिनी' ।

दाँवरी - संज्ञा स्त्री० [सं० दाम] रस्मी । रज्जु । दामरी । खोरी ।

उ०—दाविर ले बाधन लगी जमुबा हँ बेपीर ।—व्यास (शब्द०) ।

दा^१—संज्ञा पुं० [धनु०] सितार का एक बोल । जैसे,—दा दिर दा दा इत्यादि ।

दा^२—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. रक्षा । बचाव । २. बोधन । ३. दान । ४. छेद । छेदन । ५. उपताप । ताप [को०] ।

दा^३—वि० स्त्री० [सं०] देनेवाली । दातृ । (समासांत में प्रयुक्त) ।

दा^४—प्रत्यय [पंजाबी] संबंधवाचक प्रत्यय । का ।

दाइ^५—संज्ञा पुं० [देश०] दे० 'दाय' और 'दाव' । उ०—तू जिन करि री गहर नवल तिय, आन बन्यो भलि दाइ ।—नंद० पं०, पृ० ३८६ ।

दाइजा^६—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'दाइज' । उ०—दाइज पाइ अनेक विधि, सुत सुतबधुन समेत ।—तुलसी ग्रं०, पृ० ८५ ।

दाइजा^७—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'दाइजा' । उ०—पाछे वह सब दाइजा की सामान जो हरिदास अपने घर तें ल्याए होते ।—दो सो बावन०, भा० १, पृ० २७५ ।

दाइम—क्रि० वि० [भ० दायम] सदा । हमेशा । सर्वदा । उ०—हरदम हाजिर होणा जावा, जब लग जीये बंदा । दाइम दिल सई सौ साबित पंच बखत क्या घंघा ।—बाहू०, पृ० २५८ ।

दाइल^८—वि० [हिं० दाब] दाबेवाली । उ०—हावनि बहु भावनि परति, मनसिज मन उपजाइ । दाइल वह घाइन करत पाइल पाइ बजाइ ।—स० समक० पृ० ३६५ ।

दाई^९—वि० स्त्री० [हिं० दायी] बाहिनी । जैसे, दाईं भाल ।

दाई^{१०}—संज्ञा स्त्री० [सं० दाच् (प्रत्य०), हिं० दाँ (प्रत्य०)] बारी । दफा । बार । उ०—तब नहि जानेतुं पीर पराई । अब कस रोबहु अपनी दाईं ।—विश्राम (शब्द०) ।

दाई^{११}—संज्ञा स्त्री० [सं० दात्री, फ्रा० दायट्र] १. दूसरे के बच्चे को अपना दूध पिलानेवाली स्त्री । धाय ।

दाँ०—दाई पिलाई ।

२. वह दासी जो बच्चे की देखरेख रखने या उसे खाने के लिये रखी जाय ।

दाँ०—दाई खेलाई ।

३. वह स्त्री जो म्रियों की बच्चा जनने में सहायता देती हो । प्रसूता के उपचार के लिये नियुक्त स्त्री ।

दाँ०—दाई जनाई ।

मुहा०—दाई से पेट छिपाना = जाननेवालों से कोई बात छिपाना । ऐसे मनुष्य से कोई बात गुप्त रखना जो सब रहस्य जानता हो ।

दाई^{१२}—संज्ञा स्त्री० [हिं० दादी] १. पिता की माता । दादी । २. बड़ी बुढ़ी स्त्री ।

दाई^{१३}—वि० [सं० दायिन्] दे० 'दानी' ।

दाँ^{१४}—संज्ञा पुं० [हिं० दाँव] दे० 'दाँव' । उ०—सुभा जुपारिहि आपन दाऊं ।—तुलसी (शब्द०) ।

दाँ^{१५}—संज्ञा पुं० [सं० दा > दाच् (प्रत्य०), हिं० दाब] दाब । दफा ।

बार । उ०—ऐस जो ठाकुर किय एक दाऊं । पहिले रखा मुहम्मद नाऊं ।—जायसी (शब्द०) ।

दाऊ—संज्ञा पुं० [सं० देव या तात (= पिता, पिता का भाई) हिं० ताऊ, दाऊ] १. बड़ा भाई । २. बलदेव । बलराम । कृष्ण के बड़े भाई । उ०—मैया मोहि दाऊ बहुत खिझायो । सूर०, १०. २१५ । ३. पिता का बड़ा भाई ।

दाउद—संज्ञा पुं० [भ०] पारसी, ईसाई और मुसलमानों के एक पेंगंबर का नाम ।

दाऊदखानी—संज्ञा पुं० [फा० दाऊदखानी] १. एक प्रकार का चावल । उ०—रायभोग श्री काजर रानी । भिन बरुद श्री दाऊदखानी ।—जायसी (शब्द०) । २. उनम प्रकार का सफेद गेहूं । दाऊदी गेहूं । गंगाजनी गेहूं ।

दाऊदिया—संज्ञा पुं० [भ० दाऊद] १. एक प्रकार का गेहूं । दे० 'दाऊदी' । २. गुलदावदी का फूल । ३. एक प्रकार की घातिनबाजी जो छूटने पर दाऊदी फूल की तरह दिखाई पड़ती है । एक प्रकार का कवच ।

दाऊदी^१—संज्ञा पुं० [भ० दाऊद] एक प्रकार का गेहूं जिसका छिनका बहुत सफेद और नरम होता है ।

विशेष—जहते हैं, दिल्ली के बादशाह शाह आलम के एक दरबारी, जिनका नाम दाऊद खान था, इस गेहूं को मिश्र देश से लाए थे । यह सघने प्रच्छा गेहूं समझा जाता है ।

दाउदी^२—संज्ञा स्त्री [फा० गुनदाऊदी] दे० 'गुनदाउदी' । उ०—बाहर है चाँदी की विस्तृत, भीनी चादर । जिसके पार पार दीखते हैं—बैजंती, दाऊदी, गेंदा श्री हमली के पेड़ तनावर ।—चाँदनी०, पृ० २५ ।

दाक—संज्ञा पुं० [सं०] १. दान करनेवाला व्यक्ति । दाता । २. यजमान [को०] ।

दाकखान—संज्ञा स्त्री [सं० दाक्षा] ग्रंथरी शराब । उ०—कैसा पान करोगे ? दाकखान, लाजा, शीड़, माधवीक, मैरेय ?—वेणाली०, पृ० ८

दाक्ष^३—संज्ञा पुं० [सं०] दक्षिण । दक्षिण दिशा [को०] ।

दाक्ष^४—वि० दक्ष संबंधी [को०] ।

दाक्षायणी^५—संज्ञा पुं० [सं०] १. सोना । स्वर्ण । २. प्राभूषण आदि सुनहरी चीजें । ३. स्वर्णमुद्रा । मोहर । प्रशरफी । ४. दक्ष द्वारा किया हुआ एक यज्ञ जिसकी कथा शतपथ ब्राह्मण में है ।

दाक्षायण^६—वि० १. दक्ष से उत्पन्न । २. दक्ष के गोत्र का । ३. दक्ष का । दक्ष संबंधी । जैसे, दाक्षायण यज्ञ ।

दाक्षायणी^७—संज्ञा स्त्री [सं०] १. दक्ष की कन्या । २. अश्विनी आदि नक्षत्र । ३. रोहिणी नक्षत्र । ४. दंती वृक्ष । ५. दुर्गा । ६. कश्यप की स्त्री—; अदिति । ७. रेवती नक्षत्र [को०] । ७. दिति का एक नाम जो कश्यप की स्त्री और देवों की माता थी [को०] ।

दाक्षायणी^८—वि० [सं० दाक्षायणिन्] १. सोने का । सुवर्णयुक्त । २. स्वर्णकुंडलधारी व्यक्ति ।

दाक्षायणीपति—संज्ञा पुं० [सं०] १. चंद्रमा । २. शिव [को०] ।

दाक्षायण्य—संज्ञा पु० [सं०] सूर्य । रवि [को०] ।

दाक्षाय्य—संज्ञा पु० [सं०] गिद्ध बिड़िया । गृध्र [को०] ।

दाक्षि—संज्ञा पु० [सं०] दक्ष का पुत्र [को०] ।

दाक्षिकंथा—संज्ञा स्त्री० [सं० दाक्षिकन्था] बाहलीक देश ।

दाक्षिण्य—संज्ञा पु० [सं०] १. एक होम का नाम (शनपथ ब्राह्मण) ।
२. उक्त होम में प्राप्त दक्षिण (को०) ।

दाक्षिण्य—वि० १. दक्षिण संबंधी । २. दक्षिणा संबंधी ।

दाक्षिण्यक—संज्ञा पु० [सं०] १. दे० 'दाक्षिणिक' । २. वह व्यक्ति जो इष्टापूर्त आदि यज्ञों द्वारा चंदनोक प्राप्त करे [को०] ।

दाक्षिणात्य—वि० [सं०] दक्षिणी । दक्षिण देश का । जैसे, दाक्षिणात्य ब्राह्मण ।

दाक्षिणात्य—स्त्री० पु० १. दक्षिण देश । भारतवर्ष का वह भाग जो विष्णुचक्र के दक्षिण पड़ता है । दक्षिण खंड ।

निर्देश—दक्षिण खंड के प्रत्यंत महाराष्ट्र, मलबार, कोंकण, तैलंग कर्नाटक इत्यादि प्रदेश हैं । दमंडा, ताप्ती, गोदावरी, कृष्णा और कावेरी दक्षिण की प्रधान नदियाँ हैं ; दे० 'तामिल', 'तैलंग' और महाराष्ट्र ।

२. दक्षिण देश का निवासी । ३. नारियल ।

दाक्षिणिक—संज्ञा पु० [सं०] वह बंधन जो दक्षिणाप्रधान इष्टापूर्त आदि कर्मों की कामनावश करने से होता है (गणवल्क्य) ।

दाक्षिण्य—संज्ञा पु० [सं०] १. अनुकूलता । किसी के हित की ओर प्रवृत्त होने का भाव । प्रसन्नता । २. उदारता । सरलता । गुणोलता । ३. दूसरे के हित को फेंके या प्रपन्न करने का भाव । ४. साहित्य में नाटक का एक अंग, जिसमें दाक्षिण्य या नेष्टा द्वारा दूसरे के उदामीन या अप्रमन्न हित को धरकर प्रमन्न करने का भाव दिखाया जाता है ।

दाक्षिण्य—वि० १. दक्षिण का । दक्षिण संबंधी । २. दक्षिणा संबंधी ।

दाक्षी—संज्ञा स्त्री० [सं०] २. दक्ष की कन्या । २. पाणिनि की माता का नाम ।

दाक्षी—संज्ञा पु० [सं०] दाक्षीपुत्र=पाणिनि ।

दाक्षी—संज्ञा पु० [सं०] दाक्षीपुत्र पाणिनि [को०] ।

दाक्ष्य—संज्ञा पु० [सं०] दक्षता । निपुणता । पढ़ना । कार्य-कुशलता ।

दाक्ष्य—संज्ञा स्त्री० [सं० दाक्ष्या] १. मंगूर । २. मुनक्का । ३. किशमिश ।

दाक्ष्य—वि० [सं० दक्ष] दे० 'दक्ष' । उ०—ताकों विहित बखानहों, जिनकी कविता दाक्ष्य—मतिराम (शब्द०) ।

दाक्ष्यनिरक्षिणी—संज्ञा स्त्री० [हि० दाक्ष+निर्विषी ?] हर जेबडी नाम की झाड़ी जिसकी पत्तियों और जड़ का औषध रूप में व्यवहार होता है । पुरही ।

दाक्ष्यना—वि० स० [सं० दक्षण, दक्षण] प्रकट करना । बिखाना । उ०—रिण जोषी रिणवोड़, पड़े लग दाक्ष्य

पराक्रम । पीथल पीठलदास, धार चंद्रमाण सांम धम ।—रा० ६० पु० १७ ।

दाखना—वि० स० [प्रा० दखल (= बतलाना)] बतलाना । बताना कहना । उ०—(क) ढाढी जे साहिब मिलइ, यूँ दाखविया जाइ । आख्या सीप विकासिया, स्वात ज बरसइ आइ ।—ढोला०, दू० ११६ । (ख) बहुत दिलासा दाखत, दाह दिया सिरपाव । सिरपर हुकुम चढ़ाय ली, कीषी प्रथम कहाव । रा० ६०, पु० २७ ।

दाखिल—वि० [फ़ा० दाखिल] १. प्रविष्ट । घुसा हुआ । पैठा हुआ । उ०—बीच बगाचा के महुल दाखिल भयो प्रशंस ।—गुमान (शब्द०) ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

मुहा०—दाखिल करना=देना । भेदा करना । भर देना । जमा करना । जैसे,—उसने तुरंत जुरमाना दाखिल कर दिया । दाखिल होना=भेदा कर देना । उपस्थित करना । लाकर जमा करना ।

२. शरीक । मिला हुआ । जैसे, किसी नरोह में दाखिल होना । ३. पट्टा हुआ ।

यौ०—दाखिल खारिज । दाखिल दफतर ।

दाखिलखारिज—संज्ञा पु० [फ़ा० दाखिलखारिज] किसी सरकारी कागज पर से किसी जायदाद के हुकदार का नाम काटकर उसपर उसके वारिस या किसी दूसरे हुकदार का नाम लिखने का काम ।

क्रि० प्र०—करना । होना ।

दाखिलदफतर—वि० [फ़ा० दाखिल दफतर] दफतर में इस प्रकार डाल रखा हुआ (कागज) जिसपर कुछ विचार न किया जाय ।

क्रि० प्र०—करना—होना ।

दाखिल—संज्ञा पु० [फ़ा० दाखिल] १. प्रवेश । पैठ । २. किसी संस्था, कार्यालय आदि में समिलित किए जाने का कार्य । ३. वह कागज जिसमें उस वस्तु का ब्योरा लिखा हो जो कहीं दाखिल या जमा की जाय । ४. वह कागज जिसपर किसी वस्तु के जमा होने, भेजे जाने या पाए जाने की मिति आदि टंकी हो ।

दाखिली—वि० [फ़ा० दाखिली] १. भीतर की । आंतरिक । भंदरूनी । २. हादिक । दिली [को०] ।

दाखी—संज्ञा स्त्री० [दाखी, प्रा० दाखी] दे० 'दाखी' ।

दाग—संज्ञा पु० [सं० दाग] १. जलाने का काम । दाह । २. मृतक का दाहकर्म । मुर्दा जलाने की क्रिया ।

मुहा०—दाग देना=मृतक का दाहकर्म करना । मुरबे का क्रिया कर्म करना ।

३. जलन । दाह । उ०—उर मानिक की उरबसी उटत घटत दग दाग । झुकत बाहर कड़ि मनी पिय हिय को धनुराग ।—बिहारी (शब्द०) । ४. जलने का चिह्न ।

दाग—संज्ञा पुं० [फ्रा० दाग] [वि० दागी] १. किसी वस्तु के सत पर रंग का वह भेद जो धोड़े से स्थान पर अलग दिखाई पड़ता है। धब्बा। चित्ती जैसे,—(क) उस बिल्ली की पीठ पर कई रंग के दाग हैं (ख) कपड़े पर का यह दाग धोबी से छुटगा। उ०—गुलामी जो भृगु मन मरे परे प्रेम पट दाग।—गुलामी (शब्द०)।

क्रि० प्र०—पड़ना।—लगना।

विशेष—इस शब्द का अर्थ पर प्रयोग ऐसे धब्बे के लिये होता है जो लटकता या भुगा लगता हो।

मुहा०—सफेद दाग = एक प्रकार का जोड़ जिसमें शरीर पर गफे धब्बे पड़ जाते हैं। हून।

२. निशान। चिह्न। अंक। उ०—गुलामी ने न भजे न लिखि बेनी के दाग।—गुलामी (शब्द०)।

क्रि० प्र०—पड़ना।—लगना।

यो०—दागबा।

३. फल धारि पर पड़ा हुआ गड़न या चिह्न। उ०—सूतक। देव। दोष। लोछन। उ०—पुत्र पत्नी मार जाय जो कुल में दाग लगाये।—गोविन्द (शब्द०)।

क्रि० प्र०—लगना।—लगाना।

५. जलने का चिह्न।

दागगा—संज्ञा पुं० [हि० दागना] दाहकर्म। उ०—पड़ी देह मनेह पेटा, बाग दागगु काज बेटा।—रघु० क०, पु० ११६।

दागदार—वि० [फ्रा० दागदार] जिसपर दाग लगा हो। २. धब्बेदार।

दागना—क्रि० म० [म० दाघ, हि० दाग+ना (प्रत्य०)] १. जलाना। दाघ करना। उ०—(क) लोग वियोग विषम विष बागे।—सत्यसी (शब्द०)। (ख) करि कंद की मंद दुचंद भरी फिर दागना के उर दागति हैं।—पद्माकर (शब्द०)। २. तपे लो। जो छलकर किसी के अंग को ऐसा जलाना कि चिह्न पड़ जाय। जैसे, गाँव जलाना, छोड़ा दागना।

संयो० क्रि०—देना।

३. किसी छात्र के तपे हुए पीचे को छूलाकर अंग पर उसका चिह्न डालना। तपमुद्रा से अंकित करना। जैसे, धातु चक्र दागना। ४. किसी फड़े धातु पर ऐसी तेज आग भगाना जिससे वह जल या भूषण जाय। जैसे, हाथिक या तेजाब से फुंसी दागना।

संयो० क्रि०—देना।

५. भरी हुई बंदूक में बली देना। रंजक में भाग भगाना। तोप, बंदूक आदि धोड़ना। जैसे, तोप दागना, बंदूक दागना।

दागना—क्रि० म० [फ्रा० दाग] रंग धारि से चिह्न डालना। दाग लगाना। अंकित करना। उ०—पड़ने बैठि पंख नुज धरि के पोके व रोलेनि लग।—सूर (शब्द०)।

दागबेल—संज्ञा स्त्री० [फ्रा० दाग+हि० बेल] भूमि पर फावड़े या कुदाल से बनाए हुए चिह्न जो सड़क बनाने, नींव खोदने आदि के लिये एक सीध में डाले जाते हैं। उ०—सबके सब

बराबर एक कतार में लैनडोरी डालकर धीरे दागबेल लगाकर बनाए गए हैं।—निघण्टुमाद (शब्द०)।

दागी—वि० [फ्रा० दाग] १. जिसपर दाग लगा हो। जिसपर धब्बा हो। २. जिसपर सड़ने का चिह्न हो। जैसे, दागी फल। ३. कलंकित। दोषयुक्त। लोछित। ४. दाड़ित। जिसको सजा मिल चुकी हो।

दाघ—संज्ञा पुं० [म०] गरमी। ताप। दाह। जलन। उ०—(क) कहलान एकत रहत ग्रहि मयू मृग बाध। जगत तपोवन सा क्रियो दीरघ दाघ निदाघ।—बिहारी (शब्द०)। (ख) बादि हो चंदन चाय यिम घनसार भनी धमि पंक बनानत। बादि उसीर समीर चहै दिन रेन पुरेनि के पात बिछावत। आधुहि ताप मिटी द्वि त्रदेव मुदाय निदाघ कि कोन कहावत। बावरि तू नोह जानत आज मयक लजावत मोहन आवत।—द्वि त्रदेव (शब्द०)।

दाजा—संज्ञा पुं० [?] १. अंधेरी रात। २. अंधेरा।

दाजन—संज्ञा स्त्री० [म० दाघन, हि० दाघन] दे० 'दाघन'।

दाजना—क्रि० म० [सं० दाघ या दाहन] १. जलना। २. ईर्ष्या करना। दाह करना। उ०—दाजन दे दुर जीवन को घर नाजन दे सजना कुल वारे। साजन दे मन की नव नेम निबाजन दे मनमोहन प्यारे। साजन दे ननदीन गुलाब बिराजन दे उर में गुन भारे। भाजन दे गुह लोगन को डर बाजन दे अब नेह नगारे।—गुलाब (शब्द०)।

दाजना—क्रि० म० जलाना। दाघ करना।

दाफणा—संज्ञा स्त्री० [म० दाहन] 'दाघन'।

दाफना—संज्ञा स्त्री० [सं० दाहन] जलन। उ०—पूर सतपूर के बिना पूरा विषय न होय। गुरु लामो गुरु लालचो हुनी दाफन सोय।—कबीर (शब्द०)।

दाफना—क्रि० म० [सं० दाहन] जलना। संतप्त होना। उ०—के बिरहिनि को मोचु दे के आवा दिखलाय। आठ पहर का दाफना मोर्षे सटा न जाय।—कबीर (शब्द०)।

दाफना—क्रि० म० जलाना।

दाटी—संज्ञा स्त्री० [देश०] दे० 'दाट'।

दाटना—क्रि० म० [हि० दाटना] दे० 'दाटना'।

दाटना—क्रि० म० [देश०] प्रतीत होना। उ०—कै रसराज प्रवाह को मारग बेनी बिहार सों यौ ह्य दाटी।—घनानंद, पु० ३३।

दाहक—संज्ञा पुं० [सं०] १. दाढ़। डाढ़। २. दाँत।

दाहव—संज्ञा पुं० [?] भविष्य ब्रह्मखंड के अनुसार काशी से दो योजन पश्चिम एक ग्राम जिसमें कल्कि भगवान् अष्टमी स्लेच्छो का नाश करके शांतिपूर्वक निवास करेंगे।

दाड़स—संज्ञा पुं० [हि० दाढ़] एक प्रकार का साँप।

दाड़िब—संज्ञा पुं० [सं० दाड़िम्ब] दे० 'दाड़िम'।

दाड़िम—संज्ञा पुं० [सं० दाड़िम] १. अनार।

यो०—दाड़िम प्रिय = सुधा। तोता।

२. इलायची।

दाडिमपत्रक—संज्ञा पुं० [सं० दाडिमपत्रक] दे० 'दाडिमपुष्पक [को०] ।
दाडिमपुष्पक—संज्ञा पुं० [सं० दाडिमपुष्पक] रोहितक नामक वृक्ष ।
रोहेड़ा ।

दाडिमप्रिय—संज्ञा पुं० [सं० दाडिमप्रिय] शुक । सुमान नोता ।

दाडिमा—संज्ञा स्त्री० [सं० दाडिमा] अनार । दाडिम ।

दाडिमाष्टक—संज्ञा स्त्री० [सं० दाडिमाष्टक] पद्यक में एक चूणं जिससे
अनार का छिलका पड़ता है ।

दाडिमोसार—संज्ञा पुं० [सं० दाडिम] अनार [को०] ।

दाड़ी—संज्ञा स्त्री० [सं० दाडिम] दे० 'दाडिम' ।

दाड्यो(५)†—संज्ञा पुं० [सं० दाडिम] दे० 'दाडिम' । उ०—सुन्दर
बारिषा घति भई मूक गई सब साग । गीव फल्यो बहु भाति
करि लागे दाड्यो दाष ।—गुंदा० प्र०, भा० २, पृ० ७६० ।
दाढ़ी—संज्ञा स्त्री० [सं० दाढ़ी, प्रा० दाड़, या दाँड़ा, प्रा० दाड़ा । मि०
सं० दाड़क, दाडा] १. दाढ़ी के माँतर के मोटे चौड़े दाँत ।
चोभर ।

मुहा०—दाढ़ी लगाना = दाँत में न कुचलना । दाढ़ भरम
होना = खाना खाने में धाना ।

२. शूकर का दाँत जो घागे निचला रहता है और जिससे वह
प्रहार करता है । ३. दाढ़ी । शमश्रु । (नव०) ।

दाढ़ी—संज्ञा स्त्री० [सं० दाढ़ी] १. भीषण शब्द । गरज । बहाड़ । जेजे,
सिंह की दाढ़ । २. चिल्लाहट ।

मुहा०—दाढ़ मारकर रोना = पुनः चिल्ला चिल्लाकर रोना ।
उ०—रस्सी बढते ही मुँदा नीचे गिर पड़ा और गिरते ही
दाढ़ें मार मार रोने लगा ।—(शब्द०) ।

दाढ़ना(५)†—क्रि० प्र० [सं० दाहन] १. जलना । भस्म होना ।
२. गरजना । चिल्लाना ।

दाढ़ना(५)†—क्रि० प्र० [सं० दाहन] १. जलाना । घाग में भस्म
करना । उ०—दाड़ा राड़ बलु पा दाधा । भूज बरा चाँद
जर घाधा ।—जायसी (शब्द०) । (ख) देने योग्य बिरह दब
दाढ़ ।—तुलसी । (शब्द०) । (ग) वेई मलोक निचोल मजे
सब देव वहे बिरहानल दाढ़ी ।—बेनीमनीन (शब्द०) । २.
संतभ करना । दुःखी करना ।

दाढ़ा—संज्ञा पुं० [सं० दाड़ा] १. लंबा दाँत या चोभर । दे० 'दाढ़' ।
२. समूह । झुंड (को०) । ३. मासिक । इच्छा (को०) ।

दाढ़ा—संज्ञा पुं० [हि० दाढ़] १. बन की घाग । दावानल ।
क्रि० प्र०—लगना ।

२. घाग । घाग ।

क्रि० प्र०—लगाना ।

३. दाह । जलम ।

मुहा०—दाढ़ा फूँकना = दाह उत्पन्न करना ।

दाढ़ी—वि० दग्ध । जलाया हुआ । पीड़ित ।

दाढ़ी—संज्ञा स्त्री० [हि० दाढ़ी, तुल० सं० दाढ़ा (= चोभर)] शमश्रु ।
दाढ़ी मूँछ ।

दाढ़ावा—वि० [हि० दाढ़ + बाला] १. शूरवीर । बहादुर । सुभट ।

२. दड़ियल । उ०—वेढ मनीठा वज्जिया दोय पोहर दाढाल ।
—रा० क०, पृ० २७४ ।

दाढ़ावा—वि० [हि०] दाढ़ी रखनेवाला । दड़ियल । दाढ़ीदार ।
उ०—पाछो जिकी घालिगी पुँगल, देवी थे दाढ़ावा ।—
बाँकी० प्र०, भा० ३, पृ० १३८ ।

दाढ़िका(५)†—संज्ञा स्त्री० [सं० दाढ़िका] १. दाढ़ी । शमश्रु । २. दाँत ।
दंत (को०) ।

दाढ़ीजार—संज्ञा पुं० [हि० दाढ़ीजार] दे० 'दाढ़ीजार' । उ०—
अनेक बार मैं कहीं बुझायो निभीषण । न मानि दाढ़ीजार
को कुठार वंश तीक्ष्ण ।—विश्राम (शब्द०) ।

दाढ़ी—संज्ञा स्त्री० [हि० दाढ़] १. विवृक । २. कुड़ी और दाढ़ पर
के बाल । शमश्रु ।

विशेष—दे० 'दाढ़ी' ।

दाढ़ीजार—संज्ञा पुं० [हि० दाढ़ी + जार] वह जिसकी दाढ़ी जली
हो । एक गाली, जिसे स्त्रियाँ कुपित होने पर पुरुषों को देती
हैं । उ०—स्त्रीकृति मरोवे सविपाद मेघमाध देखि बसो लुनियत
मव गाही दाढ़ीजार का ।—तुलसी (शब्द०) ।

विशेष—कुछ लोग इस शब्द की व्युत्पत्ति मंदकृत दारी (= दासी,
लौरी) + जार (= उद्यति), मानते हैं पर यह ठीक नहीं
जान पड़ता ।

दायाँ—संज्ञा पुं० [सं० दान] दाहिनी । प्रायातकर । जकात ।
उ०—जिपमें घाबू पर जानेजाने यात्रियों घादि से जो 'दाएँ'
(दाहिनी, जगात), मुँडिक (प्रति घात्री से लिया जाने-
वाला कर), पलायो, (भारंगरुप का कर) तथा बोड़े
बेल घादि से जो कर लिए जाने थे, उनकी माफ करने का
उल्लेख है ।—राज० दर्शन, पृ० ६३० ।

दात(५)†—संज्ञा पुं० [सं० दातव्य या सं० दात (= दान)] दान । उ०—
तुम सब ही के गुरु मानो धनि पूर पुर भूतल के सुर तुम्हें
दीजियत दात है ।—हनुमान (शब्द०) ।

दात—संज्ञा पुं० [सं० दाना] दे० 'दाता' । उ०—सतगुरु समाने को
सगा योध समाने दात ।—कबीर (शब्द०) ।

दान—वि० [सं०] १. विभक्त । कटा हुआ । छिन्न । २. घुला हुआ ।
स्वच्छ किया हुआ । पात्रित । शुद्ध (को०) ।

दातवा(५)†—संज्ञा पुं० [सं० दातव्य] दान । उ०—पात सुत्रस घलिघात
पयरी, दातध भसनर बात दुःख ।—रघु० क०, पृ० १६ ।

दातव्य—वि० [सं०] १. देने योग्य । २. लौटाने या वापस करने योग्य
(को०) । ३. दान से चलनेवाला (को०) जैसे,—दातव्य प्रीषणालय ।

४. जहाँ दान के रूप में या बिना मूल्य या शुल्क के कुछ दिया
जाता हो (को०) ।

दातव्य—संज्ञा पुं० १. देने का काम । दान । २. दानशीलता । उदा-
हरता । उ०—बिन दातव्य द्रव्य रहि भावै । देश विदेश चहो
फिर भावै । विश्राम (शब्द०) ।

दाता—संज्ञा पुं० [सं० दातृ] १. वह जो दान दे । दानशील । २. देने-
वाला । ३. वह जो कर्ज दे । उतामण (को०) । ४. उपदेश ।
शिक्षा (को०) । ५. अभिभावक (को०) । ६. कात्नेवाला । वह

जो कोई वस्तु का (को०) । ३. वह जो कन्या या भगिनी का विवाह में दान करता हो (को०) ।

दातापन संज्ञा पुं० [म० दाता + पन] दानशीलता ।

दातार संज्ञा पुं० [म० दातृ का बहु० दातारः] दाता । देनेवाला ।
उ०—राजन राजनान जमु यव अभिमत दातार । फन अनु-
गाभी महिमा मय अभिनाय नुहार । तुलसी (शब्द०) ।

दाति संज्ञा श्री० [म०] १. वितरण । २. दान करने की क्रिया या भाव । ३. दानकरण । विनाय (को०) ।

दाती संज्ञा श्री० [म०] देनेवाली । उ०—यतिन केन कफ
कंठ शिरोयो कल न परे दिन राती । माया मोह न धाई मृग्या
एरीऊ दुख दाती । मूर (शब्द०) ।

दातुन संज्ञा श्री० [म० दत्तपावन] दे० 'दातुन' ।

दातुरी संज्ञा श्री० [म० दातृ] दानशीलता । दातृत्व । दान की वृत्ति । उ०—दानो बड़े ते न लीन बिन ठरे दातुरी ।—घना-
नंद०, पृ० १५३ ।

दातून संज्ञा श्री० [म० दत्त] १. दाती की जड़ । २. जमावगोटे की जड़ ।

दातून संज्ञा श्री० [म० दत्त] दे० 'दातून' ।

दातृता संज्ञा श्री० [म०] दानशीलता । देने की प्रवृत्ति ।

दातृत्व संज्ञा पुं० [म०] दानशीलता । देने की प्रवृत्ति ।

दातोन संज्ञा श्री० [म० दत्तपावन] दे० 'दातुन' । उ०—जगन गया
धीर दातोन कलिये नीम का एक मोजाह लेकर लौटा ।—
कालि०, पृ० १० ।

दातोन संज्ञा श्री० [म० दत्तपावन] दे० 'दातुन' ।

दात्यूह संज्ञा पुं० [म०] १. गंधा । २. मेघ । बादल ।
३. जल । समी । ४. दान । ५. दान । ६. दान (को०) ।

दाय संज्ञा पुं० [म०] १. दान । दात्री । दाती । दान ।

दात्री संज्ञा श्री० [म०] देनेवाली ।

दात्री संज्ञा श्री० [म०] देनेवाली । दाती ।

दात्व संज्ञा पुं० [म०] १. दान करनेवाला व्यक्ति । २. दान की क्रिया । दान ।

दाद संज्ञा पुं० [म०] दान ।

दाद संज्ञा पुं० [म०] दान ।

दाद संज्ञा श्री० [म० दत्त] एक पक्षी जो जिसमें शरीर पर उभरे हुए
ऐसे चरने पंख होते हैं । दाद बड़ा तुलसी होती है । दिनाई ।

विशेष—दाद विशेषतः कमर के नीचे जड़े जड़े के पास पास
होती है जहाँ जाना होकर जाता है । दाद के नीचे एक प्रकार
के कोढ़ों में मिला जाती है । दादों की प्रतीति से पता लगा
है कि दाद एक प्रकार का सूक्ष्म पुंजी है जो जन्तुओं के चमड़े
पर छाया बिखर जमा होती है और उन्हीं के अंतःकाय से
पानी है । दाद प्रायः बरतन में गड़े पानी के ससंग से होती
है । दाद दो प्रकार की होता है—एक कागजी, दूसरी
भैंसिया । कागजी दाद का छत्ता पतला और छोटा होता है और

अधिक नहीं फैलता । भैंसिया दाद भयंकर होती है, इसके छत्ते
बड़े और मोटे होते हैं और कभी कभी शरीर भर में फैलते हैं ।

दाद संज्ञा पुं० [म०] दान ।

दाद संज्ञा श्री० [म० दाद] दान । दान । उ०—तिसों
चाहत दाद ते मन पम कोन दिसाव । तुलसी चलावत हैं गरी जे
वेकमक कमाव ।—रसनिधि (शब्द०) ।

मुहा०—दाद चाहना = किसी अत्याचार के प्रतिकार की प्रार्थना
करना । दाद देना = (१) न्याय करना । उ०—देव तो
दयानिक्त देव दाद दीन की पै मेरिये प्रभाग मेरी बार नाथ
दीन की ।—तुलसी (शब्द०) । (२) मराहना । वाह-
वाह करना ।

दाद संज्ञा पुं० [म० दत्तपावन] दे० 'दातुन' ।
दाद संज्ञा पुं० [म० दत्तपावन] दे० 'दातुन' ।
दाद संज्ञा पुं० [म० दत्तपावन] दे० 'दातुन' ।

दाद संज्ञा पुं० [म० दत्तपावन] दे० 'दातुन' ।
दाद संज्ञा पुं० [म० दत्तपावन] दे० 'दातुन' ।

दाद संज्ञा पुं० [म० दत्तपावन] दे० 'दातुन' ।
दाद संज्ञा पुं० [म० दत्तपावन] दे० 'दातुन' ।

दाद संज्ञा पुं० [म० दत्तपावन] दे० 'दातुन' ।
दाद संज्ञा पुं० [म० दत्तपावन] दे० 'दातुन' ।

दाद संज्ञा पुं० [म० दत्तपावन] दे० 'दातुन' ।
दाद संज्ञा पुं० [म० दत्तपावन] दे० 'दातुन' ।

दाद संज्ञा पुं० [म० दत्तपावन] दे० 'दातुन' ।
दाद संज्ञा पुं० [म० दत्तपावन] दे० 'दातुन' ।

दाद संज्ञा पुं० [म० दत्तपावन] दे० 'दातुन' ।
दाद संज्ञा पुं० [म० दत्तपावन] दे० 'दातुन' ।

दाद संज्ञा पुं० [म० दत्तपावन] दे० 'दातुन' ।
दाद संज्ञा पुं० [म० दत्तपावन] दे० 'दातुन' ।

दाद संज्ञा पुं० [म० दत्तपावन] दे० 'दातुन' ।
दाद संज्ञा पुं० [म० दत्तपावन] दे० 'दातुन' ।

दाद संज्ञा पुं० [म० दत्तपावन] दे० 'दातुन' ।
दाद संज्ञा पुं० [म० दत्तपावन] दे० 'दातुन' ।

दाद संज्ञा पुं० [म० दत्तपावन] दे० 'दातुन' ।
दाद संज्ञा पुं० [म० दत्तपावन] दे० 'दातुन' ।

दाद संज्ञा पुं० [म० दत्तपावन] दे० 'दातुन' ।
दाद संज्ञा पुं० [म० दत्तपावन] दे० 'दातुन' ।

दाद संज्ञा पुं० [म० दत्तपावन] दे० 'दातुन' ।
दाद संज्ञा पुं० [म० दत्तपावन] दे० 'दातुन' ।

दाद संज्ञा पुं० [म० दत्तपावन] दे० 'दातुन' ।
दाद संज्ञा पुं० [म० दत्तपावन] दे० 'दातुन' ।

दाद संज्ञा पुं० [म० दत्तपावन] दे० 'दातुन' ।
दाद संज्ञा पुं० [म० दत्तपावन] दे० 'दातुन' ।

दाद संज्ञा पुं० [म० दत्तपावन] दे० 'दातुन' ।
दाद संज्ञा पुं० [म० दत्तपावन] दे० 'दातुन' ।

दाद संज्ञा पुं० [म० दत्तपावन] दे० 'दातुन' ।
दाद संज्ञा पुं० [म० दत्तपावन] दे० 'दातुन' ।

दादि(७) — संज्ञा [सं० ददु] दे० 'दाद' ।

दादी' — संज्ञा स्त्री० [हि० दादा] पिता की माता । दादा की स्त्री ।

दादी' — संज्ञा पुं० [फ्रा० दाद] दाद चाहनेवाला । करियादी ।
न्याय का प्रार्थी ।

यौ० — दादी करियादी ।

दादु(७) — संज्ञा स्त्री० [सं० ददु] दाद । दिनाई । उ० — ममता दादु कंड
हरवाई । हरज विपाद गरह बहुताई । — तुलसी (शब्द०) ।

दादुर(७) — संज्ञा पुं० [सं० ददुर] १. मेढक । मंडूक । उ० — दादुर
पुनि बटु और मोहाई । वेद पढ़ै जनु बटु समुदाई । — तुलसी
(शब्द०) । २. दक्षिण भारत के मलय पर्वत से सटा हुआ
एक पर्वत । ३. कलम । मुंडेरा । उ० — ऊँचा दादुर
भलमलाई । धरि धरि तुलछी वेद पुराण । — बी० रासो,
पृ० ८१ ।

दादुरावृत्ति — संज्ञा स्त्री० [सं० ददुरा + वृत्ति] मेढक की तरह बार
बार कहने या डुहराने की क्रिया । पुनरावृत्ति । उ० — उपमा
तथा उत्प्रेक्षाओं की ऐसी दादुरावृत्ति, अनुप्रास एवं तुकों की
ऐसी अश्रान्त उपलब्धुष्टि तथा संगार के किसी और साहित्य में
मिल सकती है । — हि० का० प्र०, पृ० १४७ ।

दादुल — संज्ञा पुं० [हि० दादुर] दे० 'दादुर' । उ० — (क) बई हरिता
हरितें सब और । करे पिक दादुल सागर सोर । — रमरतन,
पृ० २०७ । (ख) मिया मियारे प्रीति मई है दादुल सर्प
महाई । — रमरतन दरिया, पृ० ११२ ।

दादुल(७) — संज्ञा पुं० [सं० ददुल, प्रा० ददुल] दे० 'दादुर' । उ० —
बहु नारमं सारिसारल सोरं । मनो पावसी बुद्धि दादुल
गोरं । — पृ० रा०, २०७४ ।

दादु' — संज्ञा पुं० [हि० दादा] १. दादा के लिये संबोधन या प्यार
का शब्द । २. 'माई' आदि के समान एक साधारण संबोधन ।
३. एक माधु का नाम जिसके नाम पर एक गंध बना है ।

विशेष — ऐसा प्रसिद्ध है कि दादू ग्रहमदाबाद के एक धुनिया थे ।
१२ वर्ष की अवस्था ही में दन्डोने अपना नगर परित्याग
किया और अन्ननेर, बल्याणपुर आदि स्थानों में कुछ दिनों
रहकर अंत में ३७ वर्ष की अवस्था में जयपुर से बीम कोस
पर 'नरेन' (नगणा) नामक स्थान में निवास किया ।
मृते हैं । यहाँ उन्हें प्राकणवाणी हुई, जिसके पीछे वे बहुत
दिनों तक गुप्त रहे । कबीरपंथियों में प्रसिद्ध है कि दादू ने
भी कबीर के समान ही राम नाम के रूप में निर्गुण परब्रह्म
की उपासना चलाई है । धनवर के समय में दादू अन्धे
पड़के हुए माधुओं में गिने जाते थे ।

दादुयाज — संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'दादू' — ३ ।

दादुपंथी — संज्ञा पुं० [हि० दादु + पंथी] दादू नामक साधु का अनु-
यायी । संत दादू के संप्रदाय का अनुयायी ।

विशेष — दादुपंथी तीन प्रकार के होते हैं — विरक्त, नामा और
विस्तरवारी । विरक्त केवल जसपात्र और कीपीन रखते हैं ।

नागे लोग लड़ाके होते हैं और राजाओं की सेना में भरती
होते हैं । विस्तरवारी गृहस्थ होते हैं ।

दाध(७) — संज्ञा स्त्री० [सं० दाह या, सं० दध, प्रा० दद्ध] जलन । दाह ।
ताप । उ० — (क) सही न जाय बिरह कर दाधा । — जायसी
(शब्द०) । (ख) हाड़ चून ने बिगई दही । जानै सोइ जो
दाध इमि सही । — जायसी (शब्द०) । (ग) जहँ नहँ भूमि
जरी मा रेहू । बिरह की दाध भई जनु सेहू । — जायसी
(शब्द०) । (घ) जेहि तन नेहू दाध नेहि दूना । — जायसी
(शब्द०) ।

विशेष — जायसी ने इस शब्द को कहीं स्त्रीनिग माना है और
कहीं पुल्लिग ।

दाधना(७) — क्रि० प्र० [सं० दध] जलाना । भस्म करना । उ० —
बाढ़ा राहु सेतु गा दाधा । सूरज नरा चाँद जग प्राधा । —
जायसी (शब्द०) ।

२. दाहना । पीड़ित करना । उ० — ते यहू निउ ठाँवे पर दाधा ।
प्राधा निरस, रहा पद प्राधा । — जायसी (शब्द०) ।

दाधना(७) — क्रि० प्र० जलना । सज्ज होना । पीड़ित होना । दाहयुक्त
होना । उ० — दन दाधो भस्मनि मुना प्रति दाधो तिहि
ठाई । — हिंदी प्रेमगाथा, १० २१५ ।

दाधा — वि० [सं० दध प्रा० दद्ध, दधा] [हि० स्त्री० दाधी] दध ।
जलन हुआ । जलना हुआ । उ० — (क) जीव न जीव
विशेषनी, उव का दाधा कुजली मेहरी । जीम का दाधा नु
पागुरई, नाद कहइ मुगजई गव कोई । — बी० रासो,
पृ० ३७ ।

दाधिक' — संज्ञा पुं० [सं०] १. एक प्रकार का मद्य ।

विशेष — मुश्त (उत्तमंश) के अनुसार बीजपुर का रस, धी
और इनका धीगुना दही मिलाने से यह तंत्र तैयार होता है ।
यह गुल्म और प्लीहा तथा शूल का निवारक है ।

२. दही मित्रः बोई लाख पतार्थ खानेवाला । ३. दधिविकेता ।
दही का व्यवसायी [हि०] ।

दाधिक' — वि० दही में बना हुआ । दधिमिश्रित [हि०] ।

दाधीच, दाधीचि — संज्ञा पुं० १. दधीचि के वंश का मनुष्य ।
दधीचि का गोत्र । २. 'क' गोत्रियों की उपाधि ।

दान' — संज्ञा पुं० [सं०] १. देने का कार्य । जौने, ऋणदान । २. लेने-
वाले से बदले में कुछ न चाहकर या नेक उदारतावश देने
का कार्य । धर्म के भाव से देने की क्रिया । बहु धर्माथे कर्म
जिसमें श्रद्धा या दयापूर्वक दूसरे को धन आदि दिया जाता
है । शेरान ।

क्रि० प्र० — करना । — देना ।

यौ० — कन्यादान । गोदान । दानपुण्य । दानश्रेष्ठ ।

विशेष — स्मृतियों में दान के प्रकरण में अनेक बातों का
विचार किया गया है । सबसे अधिक जोर दान ग्रहण
करनेवाले की पात्रता पर किया गया है । दान के पात्र दाहण
कहे गए हैं । ब्राह्मणों में वेदपाठी, वेदपाठियों में वेदोक्त

कर्म के कर्ता और उनमें भी शम, दम आदि से युक्त आत्म-जानी श्रेष्ठ है। दानों का विशेष विधान यज्ञ, श्राद्ध आदि कर्मों के पीछे है। इस प्रकार का दान अन्न, लूने, लंगड़े, गुँगे आदि विकलांगों को देने का निषेध है। दान के लिये दाता में श्रद्धा होनी चाहिए और उसे देनेवाले से कुछ प्रयोजनमिष्टि की अपेक्षा न रखनी चाहिए। शुद्धित्व में दान के लिये अन्न बतलाए गए हैं—दाता, प्रतिग्रहीता, श्रद्धा, धर्म, देश और काल। दान के उत्तम और निष्ठ होने का विचार इन अष्ट अंगों के अनुसार होता है। अर्थात् दाता के विचार से (जैसे, श्वपच, कुलटा आदि का दिया हुआ), प्रतिग्रहीता के विचार से (जैसे, पवित्र ब्राह्मण को दिया हुआ), श्रद्धा के विचार से (जैसे, तिरस्कारपूर्वक दिया हुआ), देश के विचार से (जैसे, गंगा के तट पर दिया हुआ), और काल के विचार से (जैसे, ग्रहण के समय का)। इनके प्रतिरिक्त द्रव्य का भी विचार किया जाता है कि जो धन दान में दिया जाय वह कैसा होना चाहिए। देवल ने लिखा है कि जो धन दूसरे को पीड़ित करके न प्राप्त हुआ हो, अपन परिश्रम से प्राप्त हुआ हो, वही दान के योग्य है। त्रय प्रकार दान का फल कहा गया है, उगी प्रकार दान के त्याग का भी फल कहा गया है। याज्ञवल्क्य स्मृति में लिखा है कि 'जो प्रतिग्रह में समर्थ अर्थात् दान लेने का पात्र होकर भी प्रतिग्रह नहीं लेता वह दानियों के जो रस्य आदि होता है उन सब को प्राप्त होता है'। इसी से ब्राह्मणों के ब्राह्मण प्रतिग्रह सभी नहीं लेते। वेदों और स्मृतियों में बहुत हुए दानों के आतात्क ग्रहों की शांति अर्थात् लिये कुछ दान दिए जाते हैं जिनका लेना बुरा समझा जाता है। इनमें कनैश्वर का दान सबसे बुरा समझा जाता है जिसमें अन्न, लोहा, बाला तिल, काला कपड़ा दिया जाता है। दान के विषय में संस्कृत में अनेक मान्यताओं के अनेक ग्रंथ हैं।

३. वह वस्तु जो दान में दी जाय। ४. वर। ५. भद्रमूल। ६. पुंगी। ७. उँगा। ८. उ०—(१) दान गमरद की नाम कहा कह को करिही। चोरी जाती बेचि दान मन दिन की भरिही।—भूर (शब्द०)। (२) दानी भए नर मगिन दान मुने पुँई कंग तो बीपिके पीही।—रघुवाम०, पु० २६। ९. राजनीति के चार उपायों में से एक। १०. देवताओं के निकट वसनाधन की नीति। ११. हाथी का मद। १२. उ०—(१) दान शृंग पंठावली भरत दान मधुवीर। मद मद धातु अल्यो कुजर कुंज समीर।—विश्वकोश (शब्द०)। (२) सुरभरि में दिग्गज दान मलिन जगदी भर, कंधन के कमलपत्र हुए तदीय सरोवर।—महावीरप्रसाद (शब्द०)। (३) दान देन जो शोभियत तीर तरनि के हाथ। दान सतिग गये राजर्षी भक्त गजन के मात।—नेत्रव (शब्द०)। १३. खेदन। कर्तन। १४. खंडन। १५. शुद्धि। १६. एक प्रकार का मधु। १७. रक्षण। १८. पालन (शब्द०)।

दान^२—संज्ञा पुं० [का०] पात्र। प्राधार। रखने की वस्तु। समा-सान में, जैसे कर्मदान।

दानक—संज्ञा पुं० [सं०] कुत्सित दान। बुरा दान।

दानकाम—[सं०] दान करने की इच्छा रखनेवाला। दानी [को०]।

दानकुल्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] हाथी का मद।

दानतोय—संज्ञा पुं० [सं०] १०. दानवारि^२।

दानधर्म—संज्ञा पुं० [सं०] दान देने का धर्म। दान पुण्य।

दानपति—संज्ञा पुं० [सं०] १. महा दान देनेवाला। २. अन्नूर का एक नाम जो स्वयंसेवक मण्डि के प्रभाव से प्रतिदिन दान दिया करता था। ३. एक दैत्य का नाम।

दानपत्र—संज्ञा पुं० [सं०] वह लेख या पत्र जिसके द्वारा कोई संपत्ति किसी को प्रदान की जाय।

विशेष—प्राचीन काल में दानपत्र तादृश पत्र आदि पर छोदे जाते थे। अनेक राजाओं के ऐसे दानपत्र मिलते हैं जिनसे बहुत सी ऐतिहासिक बातों का पता लगता है।

दानपात्र—संज्ञा पुं० [सं०] वह व्यक्ति जो दान पाने के उपयुक्त हो। दान देने के लिये उपयुक्त व्यक्ति।

दानप्रतिभाव्य—संज्ञा पुं० [सं०] ऋण दिवाने की जमानत। कर्ज की जमानत।

दानप्रतिभू—संज्ञा पुं० [सं०] वह जामिन जो यह कहे कि 'यदि इसने व्याज सहित धन न लौटाया तो मैं ही धन दे दूँगा'।

दानभिन्न—वि० [सं०] राजनीति में दान देकर फोड़ लिया गया।

दानलोला—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. कुष्ण की वह लीला जिसमें उन्होंने यालिनो से गोरस बेचने का कर वसूल किया था। २. कोई ग्रंथ जिसमें इस लीला का वर्णन दिया गया हो।

दानव—संज्ञा पुं० [सं०] [सं० दानवी] अश्वपति के पुत्र जो 'दनु' नाम की पत्नी से उत्पन्न हुए। असुर। राक्षस।

विशेष—मायावी दानवों का उल्लेख ऋग्वेद में है। महाभारत के अनुसार दानवों की कन्या दनु से शंबर, नमुचि, पुनोमा अस्ति-लोमा, वेशी, मित्रचित्ति, दुर्जंग, अपशिरी, विरुपाक्ष, महोदर, सूर्य चंद्र इत्यादि चालीस पुत्र उत्पन्न हुए। दानवों में जो सूर्य और चंद्र हुए उन्हें देवताओं से भिन्न समझना चाहिए। भागवत में दनु के ६१ पुत्र गिनार गए हैं। मनुस्मृति में लिखा है कि दानव पितरों से उत्पन्न हुए। मरीचि आदि ऋषियों से पितर उत्पन्न हुए, पितृगणों से देव दानव और देवताओं से यह वर्गचर जगत् प्रातृपुत्रिक क्रम से उत्पन्न हुआ।

दानवगुरु—संज्ञा पुं० [सं०] शुक्राचार्य।

दानवज—संज्ञा पुं० [सं०] महाभारत के अनुसार एक प्रकार के अश्व जो देवताओं और मनुष्यों की सवारी में रहते हैं। ये कभी बूढ़े नहीं होते और मन की तरह वेगवान् होते हैं। २. चार वर्णों के क्रम में तृतीय वर्ण अर्थात् वैश्य (को०)।

दानवारि^२—संज्ञा पुं० [सं० दान + वारि] १. विष्णु। २. देवता। ३. इंद्र।

दानवारि^२—संज्ञा पुं० [सं० दान + वारि] हाथी का मद।

दानवी^२—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. एक दानव की स्त्री। २. दानव जाति की स्त्री। राक्षसी।

दानवी^२—वि० [सं० दानवीय] दानवों की। दानव संबंधी। जैसे, दानवी माया।

दानवीर—संज्ञा पुं० [मं०] दान देने में साहसी पुरुष । वह जो दान देने से न हटे । अत्यंत दानी ।

विशेष—साहित्य में वीर रस के अंतर्गत चार प्रकार के जो वीर गिनाए गए हैं उनमें एक दानवीर भी है । दानवीरता में त्याग के विषय में उत्साह स्थायी भाव है, याचक धार्ष्ण्य है; अघ्य-वसाय (तीर्थगमन आदि) और दानसमय, ज्ञान आदि उद्दोषन विभाव है; सर्वस्वत्याग आदि अनुभाव तथा हर्ष और धृति आदि संचारी भाव हैं ।

दानवेन्द्र—संज्ञा पुं० [सं० दानवेन्द्र] राजा बलि ।

दानशील वि० [सं०] दानी । दान करनेवाला ।

दानशीलता—संज्ञा स्त्री० [सं०] दान करने की प्रवृत्ति । उदारता ।

दानशूर—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'दानशील' ।

दानशीलः—संज्ञा पुं० [सं० दानशीलः] दान करनेवाला । दानशील । [सं०] ।

दानसागर—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का महादान जिसका प्रचार त्र्यंशदेश में है और जिसमें भूमि, भासन आदि सोलह पदार्थों का दान किया जाता है ।

दानांतराय—संज्ञा पुं० [सं० दानांतराय] जैनशास्त्र के अनुसार वह अंतराय या पापकर्म जिसके उदय से दान के योग्य द्रव्य और वाय पाकर भी मनुष्य को दान करने में विघ्न होते हैं और वह दान नहीं कर सकता ।

दाना—संज्ञा पुं० [फ्रा० दाना] १. अनाज का एक बीज । अन्न का एक कण । कन ।

औ०—दाना दुनका = अन्न के दो चार कण । थोड़ा सा अन्न ।
उ०—गली क पूर्व से पश्चिम और पश्चिम से पूर्व दाने दुनके और गिलाजत की खोज में घावे करता ।— अभिषेक, पु० ६५ ।

मुहा०—दाने दाने को तरसना = अन्न का कष्ट सहना । भोजन न पाना । दाने को मुड़ना = अत्यंत खिन्न । दाना बदना = एक पक्षी का अपने मुँह का दाना दूसरे पक्षी के मुँह में डालना । चारा बाँटना । दाना भराना = चिड़ियों का अपने बच्चों के मुँह में चारा डालना ।

२. अनाज । अन्न । जैसे,—तुम तो इतने दुबले हो कि जान पड़ता है, कभी दाना नहीं पाते ।

औ०—दाना चारा । दाना पानी ।

३. सूखा मुना हुआ अन्न । खेना । बर्बण ।

क्रि० प्र०—खाना ।—खावना ।—भुनाना ।

४. कोई छोटा बीज जो बाल, फली या गुच्छे में लगे । जैसे, रई का दाना, पोस्ते का दाना । ५. ऐसे फल के अनेक बीजों में से एक । जैसे बीज के गूदे के साथ बिलकुल भिसे हुए अलग अलग निकल । जैसे, अनार का दाना ।

विशेष—आम, कटहल, लीची इत्यादि फलों के बीजों को दाना नहीं कहते ।

६. कोई छोटी गोल वस्तु जो प्रायः बहुत सी एक में गुँथ, पिरो, ५-३

या जोड़कर काम में लाई जाती हो । जैसे, मोती का दाना । उ०—बरसें सु वंदं मुकतान ही के दाने सी ।— पद्याकर (शब्द०) । ७. ऐसी बहुत सी छोटी वस्तुओं (या अंगों) में से एक जिनके एक में गुँथने या जोड़ने से कोई बड़ी वस्तु बनी हो । जैसे, घुँघरू का दाना, बालूबंद का दाना । ८. भाना की गुरिया । मनका । उ०—गले में सोने के बड़े बड़े दाने पड़े हैं ।—प्रताप (शब्द०) । ९. गोल या पहलवार छोटी वस्तुओं के लिये संस्था के स्थान पर धानेवाला शब्द । अदद । जैसे, चार दाने मिर्च, चार दाने अंगूर । १०. रत्ना । कण । कणिका । जैसे, दानेदार बी या शराब । ११. किसी मतह पर के छोटे छोटे उभार जो टटोलने से अलग अलग भाग्यमान हों । जैसे, नारंगी के छिलके पर के दाने, दानेदार चमड़ा । १२. शरीर के चमड़े पर महीन महीन उभार जो खुजलाने या रोग के कारण हो जाते हैं । जैसे, मंभीरी या पित्ती के दान, नेचक के दाने । १३. बरतन की नक्काशी में गोल उभार (केशरे) ।

क्रि० प्र०—देना ।

मुहा०—दाने का माल = वह बरतन जिसकी नक्काशी उभारी नहीं जानी ।

दाना^२—वि० [फ्रा० दाना] बुद्धिमान । अकलमंद ।

दानाई—संज्ञा स्त्री० [फ्रा०] अकलमंदी ।

दानाकेश—संज्ञा पुं० [?] एक प्रकार का जरदोजी का कपड़ा जो चोगे के ऊपर पहना जाता है ।

दानाचारा—संज्ञा पुं० [फ्रा० दाना + हि० चारा] खानापीना । भोजन । आहार ।

क्रि० प्र०—करना ।

दानाध्यक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] वह जिसके द्वारा दान किया हुआ द्रव्य ब्राह्मणों में बाँटा जाय । राजाओं के यहाँ दान का प्रबंध करनेवाला कर्मचारी ।

दानापानी—संज्ञा पुं० [फ्रा० दाना + हि० पानी] १. खान पान । अन्न । जल ।

क्रि० प्र०—करना ।

मुहा०—दाना पानी छोड़ना = अन्न जल ग्रहण न करना । न कुछ खाना न पीना । उपवास करना । दाना पानी छूटना = रोग के कारण कुछ खाया पीया न जाना ।

२. अन्न पोषण का आयोजन । जीविका ।

मुहा०—दाना पानी उठना = जीविका न रहना ।

३. रहने का मयोज । जैसे,—जहाँ का दाना पानी होगा वहाँ जायेंगे ।

दानाबंदी—संज्ञा स्त्री० [फ्रा० दाना + बंदी] खड़ी कमल से उपज का अंदाज करने के लिये खेत को नापने का काम ।

दानि(५)—संज्ञा पुं० [मं० दानी] उ०—दानि कहाउव प्रह कुपनाई । होइ कि खेम कुमल रोताई ।—मानस, २।३५ ।

दानिनी—संज्ञा स्त्री० [मं०] दान करनेवाली स्त्री ।

दानिया—संज्ञा पुं० [सं० दानी] दे० 'दानी' ।

दानिश—संज्ञा स्त्री० [फ्रा०] समझ । धबल । बुद्धि । विवेक ।

दौ०—दानिसमंद = चतुर । बुद्धिमान । दानिसमंद = चतुर । उ०—
इसके ऊपर नाज करना दानिसमंद का काम नहीं ।—श्रीनिवास
प्र०, पृ० ३४ । दानिसमंदी = (१) बुद्धिमत्ता । विद्वत्ता । (२)
निपुणता । कुशलता ।

दानिस—संज्ञा स्त्री० [फ्रा० दानिस्त] १. समझ । बुद्धि । २.
राय । संमति ।

दानिस्त—संज्ञा स्त्री० [फ्रा०] ज्ञान । जानकारी । धबल । बुद्धि ।
समझ । उ०—बंदगी दम दम की भरौ दानिस्त दिखाया ।
तिनुका छोट पहाड़ है बिन चस्म लगाया ।—पलटू०, भा० ३,
पृ० १२ ।

दानिस्तन—क्रि० वि० [फ्रा०] जानते हुए । जान बूझकर । उ०—
कोई कहम फना को लेके मूर तजल्ली अपना । पलटूदास मकी
हूँ हूँ का बीद दानिस्तन सुबना ।—पलटू०, भा० ३,
पृ० १२ ।

दानी^१—वि० [सं० दानिन्] [वि० स्त्री० दानिनि] जो दान करे । उदार ।

दानी^२—संज्ञा पुं० दान करनेवाला व्यक्ति । दाता ।

दानी^३—संज्ञा पुं० [सं० दानीय] १. कर संग्रह करनेवाला । महसूल
उगाहनेवाला । दान लेनेवाला । उ०—(क) घाय समुं ब ठाक
भा होइ दानी के रूप ।—जायसी (शब्द०) । (ख) परसत
ग्वारि ग्वार सब जेबत मध्य कृष्ण सुखकारी । मूर स्याम
दक्षि दानी कहि कहि आनंद घोषकुमारी ।—सूर (शब्द०) ।
(ग) दानी भए नए मागत दान सुनै जु पै कंस तो बांधि के
जेहो ।—रसखान०, पृ० २६ । २. पर्वतिमा नेपालियों की
एक जाति ।

दानीपन—संज्ञा पुं० [सं० दानी + हि० पन] दानशीलता । उ०—
मेरे सामने बहुत क्या सत्यवादी बनेगा और क्या दानीपन का
प्रतिमान करेगा ।—भारनेंदु प्र०, भा० १, पृ० २६६ ।

दानीय^१—वि० [सं०] १. दान करने योग्य । २. दान लेने या ग्रहण
करनेवाला । दान, कर या महसूल लेनेवाला ।

दानीय^२—संज्ञा पुं० दान ।

दानु^१—वि० [सं०] १. विजय पानेवाला । विजेता । २. शूर ।
वीर [को०] ।

दानु^२—संज्ञा पुं० १. वायु । २. विदु । बूँद । ३. दानव । ४. संतोष ।
५. दान । ६. दाना । दानी । ७. अभ्युन्नति । अभ्यु-
दय [को०] ।

दानेदार—वि० [फ्रा०] जिसमें दाने हों । रवादार । जैसे, दानेदार
गुड़ । दानेदार राब ।

दानो(पुं०)—संज्ञा पुं० [सं० दानव] दे० 'दानव' ।

दाप—संज्ञा पुं० [सं० दर्प, प्रा० दप्प] १. अहंकार । घमंड ।
अभिमान । गर्व । २. शक्ति । बल । जोर । उ०—रावन बान
छुपा नहि दापा । हारे सकल भुव करि दापा ।—तुलसी

(शब्द०) । ३. उत्साह । उर्मग । ४. रोब । दबदबा ।
आतंक । तेज । प्रताप । ५. क्रोध । उ०—सर संधान कीन्ह
करि दापा ।—तुलसी (शब्द०) । ६. जलन । ताप । दुःख ।
उ०—दियो क्रोध करि सिवहि सराप । करी कृपा जु भिटे
यह दाप ।—सूर (शब्द०) ।

दापक—संज्ञा पुं० [सं० दर्पक] दबानेवाला । उ०—सो प्रनु है जल
बल सब व्यापक । जो है कंस दर्प को दापक ।—सूर
(शब्द०) ।

दापन—संज्ञा पुं० [सं०] दान करने की प्रेरणा । दान की प्रेरणा
देना [को०] ।

दापना(पुं०)—क्रि० सं० [हि० दाप] १. दाबना । दबाना । २. मना
करना । रोकना । उ०—मानै न जाय गोपाल के गेहूँ चरी
चरी धाय कितेकळ दापति ।—गोकुल (शब्द०) ।

दापित—वि० [सं०] १. बाधित । जिसे कुछ देने के लिये बाध्य किया
गया हो । २. जिसपर अर्थदंड या जुर्माना लगा हो । ३.
निर्णीत [को०] ।

दाब—संज्ञा स्त्री० [सं० दर्प, हि० दाप] १. दबने या दबाने का भाव ।
एक वस्तु का दूसरी वस्तु पर उस ओर को जोर जिस ओर
वह दूसरी वस्तु हो । अपनी ओर को खींचनेवाले जोर का
उलटा । चाप ।

क्रि० प्र०—पट्टेबाना ।—लगाना ।

२. किसी वस्तु का वह जोर जो नीचे की वस्तु पर पड़े । भार ।
बोझा । जैसे,—इसपर पत्थर की दाब पड़ी है इसी से यह
चिपटा हो गया है ।

क्रि० प्र०—हालना ।—पड़ना ।

मुहा०—किसी की दाब तले होना = किसी के वश में या
अधीन होना ।

३. आतंक । अधिकार । रोब । आधिपत्य । शासन । बड़े या प्रबल
के प्रति छोटे या अधीन का संकोच या भय और छोटे या
अधीन के प्रति बड़े या प्रबल का प्रभुत्व ।

मुहा०—दाब दिखाना = अधिकार जताना । हुकूमत या डर
दिखाना । प्रभुत्व प्रकट करना । दाब मानना = किसी बड़े से
डरना या सहमना । प्रभुत्व स्वीकार करना । वश में रहना ।
जैसे,—वह लड़का किसी की दाब नहीं मानता । दाब
में रखना = शासन में रखना । जैसे,—लड़के को दाब में
रखो, नहीं तो बिगड़ जायगा । दाब में होना = कस में होना ।
अधीन होना ।

दाबकस—संज्ञा पुं० [हि० दाब + कसना] लोहारों के छेदने के
प्रोजारों (किरकिरा, बरदुआ, आदि) का एक हिस्सा ।

दाबदार—वि० [हि० दाब + प्रा० दार] रोबदार । आतंक रखने-
वाला । प्रभावशाली । प्रतापी । उ०—दाबदार निरखि
रिसानी दीह दलराय, जैसे गड़दार अड़दार गजराज को ।—
भूषण (शब्द०) ।

दाबना—क्रि० सं० [हि० दाब + ना (प्रत्यय०)] दे० 'दबाना' ।

दाबा^१—संज्ञा पुं० [हि० दाब] कलम लगाने के लिये पीछों की टहनियों को मिट्टी में गाड़ने या दबाने का काम ।

दाबा^२—संज्ञा पुं० [देश०] घाट नीचे प्रगुल लंबी एक मछली जो सिंध, संयुक्त प्रदेश और बंगाल की नदियों में पाई जाती है ।

दाबिल—संज्ञा पुं० [हि० दाब] एक बड़ी सफेद चिड़िया जिसकी चोंच दस बारह प्रगुल लंबी और छोर पर पैरों की तरह गोल और बिपटी होती है ।

दाबी—संज्ञा स्त्री० [हि०] कटी हुई कसल के बराबर बराबर बंधे हुए पूरे जो मजदूरी में दिए जाते हैं ।

दाभ—संज्ञा पुं० [सं० दभं] एक प्रकार का कुश । दाम । उ०—प्रचरों थो मग दाम गिरावत । शक्ति खुले मुख से बिलरावत ।—शकुंतला, पु० ८ ।

दाभ्य—संज्ञा पुं० [सं०] शासन के योग्य । जो शासन में आ सके ।

दाम^१—संज्ञा पुं० [सं० दामन्] १. रस्सी । रज्जु ।

यौ०—दामोदर ।

२. माला । हार । लड़ी । उ०—(क) लेहि के रचि रचि बंध बनाए । बिच बिच मुकुता दाम सुहाए ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) कहूँ कीकृत कहूँ दाम बनावत कहूँ करत भ्रंगार ।—सूर (शब्द०) । ३. समूह । राशि । ४. लोक । विषय ।

दाम^२—संज्ञा पुं० [प्रा०, मिलाओ सं०] जाल । फंदा । पाश । उ०—लोचन और बांधि प्रियाम । जात ही उन तुरत पकरे कुटिल ललकनि दाम ।—सूर (शब्द०) ।

दाम^३—संज्ञा पुं० [हि० दमड़ी] १. पैरों का चौबीसवाँ या पचीसवाँ भाग । एक दमड़ी का तीसरा भाग । उ०—कुटिल प्रलक छुटि परत मुख बढ़िगो इतो उदोत । बंक विकारी रेत जिमि दाम बर्षया होता ।—बिहारी (शब्द०) ।

मुहा०—दाम दाम भर देना = कौड़ी कौड़ी चुका देना । कुछ (अथवा) बाकी न रखना । दाम दाम भर लेना = कौड़ी कौड़ी ले लेना । कुछ बाकी न छोड़ना ।

२. बहुत धन जो किसी वस्तु के बदले में लेनेवाले को दिया जाय । मूल्य । कीमत । मोल । उ०—बिन दामन दित हाट में नेही सहज बिकात ।—रसनिधि (शब्द०) ।

कि० प्र०—देना ।—लेना ।

मुहा०—दाम उठना = किसी वस्तु की कीमत बसूल हो जाना । बिक जाना । दाम करना = (किसी वस्तु का) मोल ठहराना । मूल्य निश्चित करना । कीमत तै करना । मोल भाव करना । दाम खड़ा करना = कीमत बसूल करना । दाम चुकाना = (१) मूल्य दे देना । (२) कीमत ठहराना । मोल भाव तै करना । दाम देने जाना = मूल्य देने के लिये विवश होना । किसी वस्तु को नष्ट करने पर उसका मूल्य देना पड़ना । नुकसानी देना पड़ना । दाम भरना = किसी वस्तु को नष्ट करने पर बंधस्वरूप उसका मूल्य दे देना । नुकसानी देना । डाँड़ देना । दाम भर पावा = सारा मूल्य पा जाना ।

३. धन । रुपया पैसा । जैसे, दाम करे काम । उ०—कामिहि नारि पियारि जिमि लोमिहि प्रिय जिमि दाम ।—तुलसी (शब्द०) । ४. सिक्का । रुपया । उ०—जो पै चेरई राम की करतो न लजातो । तो तू दाम कुदाम ज्यों कर कर न बिकातो ।—तुलसी (शब्द०) ।

मुहा०—चाम के दाम चलाना = अधिकार या अवसर पाकर मनमाना प्रवेश करना । दे० 'चाम' । उ०—दिन चारिक तू पिय प्यारे के प्यार सों चाम के दाम चलाय ले री ।—परमेश (शब्द०) ।

५. दाननीति । राजनीति की एक शाखा जिसमें शत्रु को धन द्वारा बल में करते हैं । उ०—साम दाम प्रद दंड बिभदा । नृप उर बसहि नाथ कहूँ वेदा ।—तुलसी (शब्द०) ।

दाम^४—वि० [सं०] देनेवाला । दाता ।

दामकंठ—संज्ञा पुं० [सं० दामकण्ठ] एक शीतप्रवर्तक ऋषि का नाम ।

दामक—संज्ञा पुं० [सं०] १. गाड़ी के जुए की रस्सी । २. लगाम । बागडोर ।

दामग्रंथि—संज्ञा पुं० [सं० दामग्रन्थि] राजा विराट का सेनापति । (महाभारत) ।

दामचंद्र—संज्ञा पुं० [सं० दामचन्द्र] द्रुपद राजा के एक पुत्र का नाम ।

दामघ्नी—संज्ञा स्त्री० [सं० दामिनी] दामिनी । बिजली । उ०—चोमास रहूँ वे भ्रात सुचंगा लाल पटे जस ताजा । देखे राम पयोधर दामल सीत विरह तन साजा ।—रघु० क०, पु० १५६ ।

दामन्—संज्ञा पुं० [सं०] १. रस्सी । २. माला । ३. रेखा । लकीर । जैसे, विद्युत् दाम ।

दामन—संज्ञा पुं० [प्रा०] १. अंगे, कोट, कुर्ते इत्यादि का निचला भाग । पस्ला । उ०—रग बरजी बहनी सुई रेतम डोरे लाल । मगजी ज्यो मो मन सियी तुव दामन सौ लाल ।—स० सतक, पु० १२२ ।

यौ०—दामनगीर ।

२. पहाड़ों के नीचे की भूमि । पर्वत । ३. बादबान । पाल ।

कि० प्र०—छोड़ना ।

४. नाव या जहाज के जिस ओर हुन का बक्का लगता हो उसके सामने की दिशा । (लश०) ।

दामनगीर—वि० [प्रा०] १. पड़े पड़ेवाला । लिर होनेवाला । पीछे पड़ेवाला । प्रसनेवाला । उ०—प्रपनो पिड पोषिने कारन कोटि सहस्र जिय मारे । इन पापन ते क्यों उबरोने दामनगीर तिहारे ?—सूर (शब्द०) ।

मुहा०—दामनगीर होना = पीछे लगना । ऊपर आ पड़ना । प्रसना या घेरना (कष्टदायक वस्तु के लिये) । जैसे, बला दामनगीर होना ।

२. दाबा करनेवाला । दावेदार । उ०—बापुरो आदिलशाह कहीं कहूँ दिल्ली को दामनगीर सिवाजी ।—भूषण (शब्द०) ।

दामनपर्व—संज्ञा पुं० [सं० दामनपर्व] दमनक संबंधी पर्व

या उत्सव । चैत्र शुक्ला चतुर्दशी का पर्व ।

दामिनि^१—संज्ञा स्त्री० [सं० दामिनी] दे० 'दामिनी' । उ०— 'चहूँ' प्रोर क्रोधंत दामिनि घेंघ्यारी ।—ह० रासो, पृ० २० ।

दामिनी^२—संज्ञा स्त्री० [सं०] रस्मी । रज्जु ।

दामनो^३—संज्ञा स्त्री० [पा०] वह छोड़ा कपड़ा जो घोड़ों की पीठ पर डाला जाता है ।

दामर^४—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. रान जो दरार भरने के लिये नारों में लगाई जाती है । २. दे० 'दामर' ।

दामर^५—संज्ञा स्त्री० [?] छोटे कान की भेड़ । (गड़ेरिए) ।

दामरि—संज्ञा स्त्री० [सं० दाम] दे० 'दामरी' ।

दामरी—संज्ञा स्त्री० [सं० दाम] रस्मी । रज्जु । उ०—जान भक्ति दोऊ बिना हरि नहि बांधे जात । यह कहत सी दामरी घटि गइ हरि के गात ।—व्यास (शब्द०) ।

दामलिप्त—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'ताम्रलिप्त' ।

दामांचन—संज्ञा पुं० [सं० दामाञ्जन] छोड़े के पेरों की बांधने की रस्मी [को०] ।

दामांचल—संज्ञा पुं० [सं० दामाञ्चल] दे० 'दामांचन' ।

दामाञ्जन—संज्ञा पुं० [सं० दामाञ्जन] दे० 'दामांचन' ।

दामा(पु)^६—संज्ञा स्त्री० [सं० दावा] दावानल । उ०—नंद के किसोर ऐसी धाजु प्रभु को है कही पान करि लीन्हो ब्रज दीन देखि दामा को ।—विश्राम (शब्द०) ।

दामा^७—संज्ञा स्त्री० [सं०] रस्सी । रज्जु [को०] ।

दामा^८—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का पक्षी । कलचिरी ।

दामाद्—संज्ञा पुं० [प्रा० मिलाओ सं० जामात] पुत्री का पति । जमाई । जामाता ।

दामासाह—संज्ञा पुं० [हि० दाम + साह (= बनिया)] वह दिवालिया महाजन जिसका जायदार उसके लहनेदारों के बीच हिस्से के मुताबिक बँट जाय ।

दामासाही—संज्ञा स्त्री० [हि० दामासाह + ई (प्रत्य०)] किसी दिवालिया महाजन की जामदाह में से एक एक लहनेदार को मिलनेवाली रकम का निष्पन्न ।

दामिन, दामिनि—संज्ञा स्त्री० [सं० दामिनी] दे० 'दामिनी' । उ०— (क) नंददास प्रभु रस बरपत जहाँ नव धन दामिन के अनुहोरे ।—संद० ग्रं०, पृ० २७८ । (ख) दामिनि दमक रह न धन माही ४१४ ।

दामिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. बिजली । विद्युत् । उ०—सोहैं साँवरे पथिक पाछे चलना लोनी । दामिनी बरम गोरी लखि सखि तुन तोगी, बीती हैं बय किमोगी जोवन होनी ।—तुलसी ग्रं०, पृ० ३६४ । २. स्त्रियों का एक शिशुभूषण जिसे बेंदी या बिंदिया भी कहते हैं । दाँवनी । उ०—दामिनी सो दामिनी सुभासनी सँवारि सीस, कहती हुँवर होत कामिनी के ब्यों लजात ।—रघुराज (शब्द०) ।

दामी^९—संज्ञा स्त्री० [हि० दाम] कर । मातगुजारी ।

दामी^{१०}—वि० कीमती । उ०—होटल में दामी कपड़े पहने हुए पुरुषों की भीड़ लगी हुई थी ।—संन्यासी, पृ० ३३६ ।

दामोद—संज्ञा पुं० [पुं०] अथर्ववेद की एक शाखा का नाम ।

दामोदर—संज्ञा पुं० [सं०] १. श्रीकृष्ण । २. विष्णु ।

विशेष—इस नाम के तीन भिन्न भिन्न हेतु बतलाए गए हैं । हरिवंश में लिखा है कि यमसाजुन के मरने के समय यशोदा ने ताड़ना के लिये श्रीकृष्ण को पेट में रस्मी लगाकर बाँधा था इसी से गोपियाँ उन्हें दामोदर कहने लगीं । यही हेतु सबसे प्रसिद्ध है । विष्णुसहस्रनाम के भाष्यकार ने भी यही व्युत्पत्ति लिखी है । कुछ लोग दाम शब्द से विष्णु या लोक का ग्रहण करते हैं—'जिसके उदर में भारा विश्व हो' । कुछ लोग 'दामादामोदरंविदुः' महाभारत के इस वाक्य के अनुसार दम अर्थात् इन्द्रियनिग्रह में अत्यंत उदार या भ्रष्ट अर्थ करते हैं ।

३. एक जैन तीर्थंकर का नाम । ४. बंगाल की एक नदी जो छोटा नागपुर के पहाड़ों से निकलकर भागीरथी में मिलती है ।

दायँ(पु)^{११}—संज्ञा पुं० [हि० दाँव] दे० 'दाँव' ।

दायँ^{१२}—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'दाई' ।

दायँ^{१३}—संज्ञा स्त्री० [सं० दमन] दाना और भूसा अलग करने के लिये कटी हुई फसलों के डंठलों को बैलों से रीदवाने का काम । दबरी । उ०—कटन धान धरु दायँ जान जब फरवारन महुँ—प्रेमधन०, भा० १, पृ० ४४ ।

क्रि० प्र०—जाना ।

दायँ^{१४}—संज्ञा स्त्री० [?] बराबरी । तुल्यता । दे० 'दाँव' । उ०—विष्णु जुध कारण बाध रे दूनों नावे दायँ ।—बाँकी० ग्रं०, भा० १, पृ० २२ ।

दाय^{१५}—संज्ञा पुं० [सं०] १. देने योग्य धन । वह धन जो किसी को देने को हो । २. दायजे, दान आदि में दिया जानेवाला धन । ३. वह पेटक या संबंधी का धन जिसका उत्तराधिकारियों में विभाग हो सके । बारिसों में बाँटा जानेवाला धन या भिल-कियन । दे० 'दायभाग' ।

विशेष—वह धन जो स्वामी के संबंध निमित्त से ही दूसरे का हो सके, दाय कहलाता है । भिन्नधरा के अनुसार दाय दो प्रकार का है, एक संप्रतिबंध, दूसरा संप्रतिबंध । संप्रतिबंध दाय वह है जिसमें कोई बाधा न हो सके । जैसे, पुत्र पौत्रों का पिता पितामह के धन में स्वत्व । संप्रतिबंध वह है जिसका कोई प्रतिबंधक हो, जिसमें किसी के द्वारा बाधा पड़ सकती हो । जैसे, माई भतीजों का स्वत्व जो पुत्र के अभाव में होता है, अर्थात् पुत्र का होना जिसका प्रतिबंधक होता है ।

४. दान । ५. विभाग । ग्रंथ । हिस्सा (को०) । ६. स्थान । जगह (को०) । ७. क्षति । हानि (को०) । ८. खंडन । विभाजन (को०) । ९. सोल्लुठ भाषण । व्यंग्यपूर्ण कथन (को०) ।

दाय^{१६}—संज्ञा पुं० [सं० दाव] दे० 'दाव' । उ०—सिर धुनि धुनि पछितात भीषि कर, कोठ न मोत हित दुसह दाय ।—तुलसी (शब्द०) ।

दायक—संज्ञा पुं० [सं०] [जी० दायिका] देनेवाला। दाता। जैसे, मंगलदायक। उ०—बरनहुँ रघुवर विमल जस जो दायक फल चारि।—मानस, २।१।

दायज—संज्ञा पुं० [सं० दाय] दे० 'दायजा'।

दायजा—संज्ञा पुं० [सं० दाय] वह धन जो विवाह में बर पक्ष को दिया जाय। यौगुक। दहेज। उ०—कहुँ मुन व्याह कहैं कन्या को देत दायजो राई।—सूर (शब्द०)।

दायनी^(७)—वि० जी० [सं० दायिनी] देनेवाली। ऊ०—विमल कथा हरिपद दायनी।—मानस, ७।५२।

दायभाग—संज्ञा पुं० [सं०] १ पेटक धन का विभाग। २. बाप दादे या संबंधी की संपत्ति के पुत्रों, पोतों या संबंधियों में बाँटे जाने की व्यवस्था। बपोती या बरासत की मिलकियत की वारिसों या हकदारों में बाँटने का कायदा कानून।

विशेष—यह हिंदू धर्मशास्त्र के प्रधान विषयों में से है। मनु, याज्ञवल्क्य आदि स्मृतिओं में इसके संबंध में विस्तृत व्यवस्था है। ग्रंथकारों और टीकाकारों के मतभेद से पेटक धनविभाग के संबंध में भिन्न भिन्न स्थानों में भिन्न भिन्न व्यवस्थाएँ प्रचलित हैं। प्रधान पक्ष दो हैं—मिताक्षरा और दायभाग। मिताक्षरा याज्ञवल्क्य स्मृति पर विज्ञानेश्वर की टीका है जिसके अनुकूल व्यवस्था पंजाब, काशी, मिथिला आदि से लेकर दक्षिण कन्याकुमारी तक प्रचलित है। 'दायभाग' जीमूत-बाहन का एक ग्रंथ है जिसका प्रचार बंग देश में है।

सबसे पहली बात विचार करने की यह है कि कुटुंबसंपत्ति में किसी प्राणी का पुत्रस्वत्व विभाग करने के पीछे होता है प्रथवा पहले के रहता है। मिताक्षरा के अनुसार विभाग होने पर ही पुत्रस्व या एकदेशीय स्वत्व होता है, विभाग के पहले सारी कुटुंबसंपत्ति पर प्रत्येक संमिलित प्राणी का सामान्य स्वत्व रहता है। दायभाग विभाग के पहले भी अव्यक्त रूप में पुत्रस्वत्व मानता है जो विभाग होने पर व्यक्त होता है। मिताक्षरा पूर्वजों की संपत्ति में पिता और पुत्र का समानाधिकार मानता है अतः पुत्र पिता के जीते हुए भी जब चाहे पेटक संपत्ति में हिस्सा बाँट सकते हैं और पिता पुत्रों की सम्पत्ति के बिना पेटक संपत्ति के किसी ग्रंथ का दान, विक्रय आदि नहीं कर सकता। पिता के मरने पर पुत्र जो पेटक संपत्ति का अधिकारी होता है वह हिस्सेदार के रूप में होता है, उत्तराधिकारी के रूप में नहीं। मिताक्षरा पुत्र का उत्तराधिकार केवल पिता की निज की पैदा की हुई संपत्ति में मानती है। दायभाग पूर्वस्वामी के स्वत्वविभाग (पूत, पतित या संन्यासी होने के कारण) के उपरान्त उत्तराधिकारियों के स्वत्व की उत्पत्ति मानता है। उसके अनुसार जब तक पिता जीवित है तब तक पेटक संपत्ति पर उसका पूरा अधिकार है; वह उसे जो चाहे साँ कर सकता है। पुत्रों के स्वत्व की उत्पत्ति पिता के मरने आदि पर ही होती है।

यद्यपि याज्ञवल्क्य के इस श्लोक में 'भूर्या पितामहोपात्ता निबंधी इवमेव वा। तत्र स्यात् सदृशं स्वाम्य पितुः पुत्रस्य चोभयोः,' पिता पुत्र का समान अधिकार स्पष्ट कहा गया है तथापि जीमूत-

बाहन ने इस श्लोक से खींच तानकर यह भाव निकाला है कि पुत्रों के स्वत्व की उत्पत्ति उनके जन्मकाल से नहीं, बल्कि पिता के मृत्युकाल से होती है।

मिताक्षरा और दायभाग के अनुसार जिस क्रम में उत्तराधिकारी होते हैं वह नीचे दिया जाता है :

मिताक्षरा

दायभाग

१. पुत्र	१. पुत्र
२. पोत्र	२. पोत्र
३. प्रपोत्र	३. प्रपोत्र
४. विधवा	४. विधवा
५. अविवाहिता कन्या	५. अविवाहिता कन्या
६. विवाहिता अपुत्रवती निर्धन कन्या	६. विवाहिता पुत्रवती कन्या
७. विवाहिता पुत्रवती संपन्न कन्या	७. नाती (कन्या का पुत्र)
८. नाती (कन्या का पुत्र)	८. पिता
९. माता	९. माता
१०. पिता	१०. भाई
११. भाई	११. भतीजा
१२. भतीजा	१२. भतीजे का लड़का
१३. दादी	१३. बहन का लड़का
१४. दादा	१४. दादा
१५. चाचा	१५. दादी
१६. चचेरा भाई	१६. चाचा
१७. परदादी	१७. चचेरा भाई
१८. परदादा	१८. चचेरे भाई का लड़का
१९. दादा का भाई	१९. दादा की लड़की का लड़का
२०. दादा के भाई का लड़का	२०. परदादा
२१. परदादा के ऊपर तीन पीढ़ी के और पूर्वज	२१. परदादी
२२. और सविड	२२. दादा का भाई
२३. समानोदक	२३. दादा के भाई का लड़का
२४. बंधु	२४. दादा के भाई का पोता
२५. आचार्य	२५. परदादा की लड़की का लड़का
२६. मिथ्य	२६. नाना
२७. सद्गुणाय या गुरुभाई	२७. मामा
२८. राजा (यदि संपत्ति ब्राह्मण की न हो। ब्राह्मण की हो तो उसकी जाति में जाय)।	२८. मामा का लड़का
	२९. मामा का पोता
	३०. भोसी का लड़का
	३१. सकुल्य
	३२. समानोदक
	३३. और बंधु
	३४. आचार्य इत्यादि, इत्यादि

उपर जो क्रम दिया गया है उसे देखने से पता लगेगा कि मिताक्षरा माता का स्वत्व पहले करती है और दायभाग पिता का। याज्ञवल्क्य का श्लोक है—पत्नी दुहितरश्चैव पितरो भ्रातरस्तथा। तन्मुना गोत्रजा बंधुः शिष्यः सव्रह्मचारिणः ॥ इस श्लोक के पितरो' शब्द को लेकर मिताक्षरा कहती है कि 'माता पिता' इस समास में माता शब्द पहले आता है और माता का संबंध भी अधिक घनिष्ठ है, इससे माता का स्वत्व पहले है। जीमूतवाहन कहता है कि 'पितरो' शब्द ही पिता की प्रधानता का बोधक है इससे पहले पिता का स्वत्व है। मिथिला, काशी और बंबई प्रांत में माता का स्वत्व पहले और बंगाल, मद्रास तथा गुजरात में पिता का स्वत्व पहले माना जाता है। मिताक्षरा दायधिकार में केवल संबंध निमित्त मानती है और दायभाग पिंडोदक क्रिया। मिताक्षरा 'पिंड' शब्द का अर्थ शरीर करके सपिंड से सात पीढ़ियों के भीतर एक ही कुल का प्राणी ग्रहण करती है, पर दायभाग इसका एक ही पिंड से संबद्ध अर्थ करके नाती, नाना, मामा इत्यादि को भी ले लेता है।

मिताक्षरा और दायभाग के बीच मुख्य मुख्य बातों का भेद नीचे दिखाया जाता है :

- (१) मिताक्षरा के अनुसार पैतृक (पूर्वजों के) धन पर पुत्रादि का सामान्य स्वत्व उनके जन्म ही के साथ उत्पन्न हो जाता है, पर दायभाग पूर्वस्वामी के स्वत्वविनाश के उपरांत उत्तराधिकारियों के स्वत्व की उत्पत्ति मानता है।
- (२) मिताक्षरा के अनुसार विभाग (बाँट) के पहले प्रत्येक सम्मिलित प्राणी (पिता, पुत्र, भ्राता इत्यादि) का सामान्य स्वत्व सारी संपत्ति पर होता है, चाहे वह अंश बाँट न होने के कारण अश्वत्त या अनिश्चित हो।
- (३) मिताक्षरा के अनुसार कोई हिस्सेदार कुटुंब संपत्ति को अपने निज के काम के लिये बै या रेंट नही कर सकता पर दायभाग के अनुसार वह अपने अनिश्चित अंश को बंटवारे के पहले भी बेव सकता है।
- (४) मिताक्षरा के अनुसार जो धन कई प्राणियों का सामान्य धन हो, उसके किसी देश या अंश में किसी एक स्वामी के पुण्य स्वत्व का स्थापन विभाग (बंटवारा) है। दायभाग के अनुसार विभाग पुण्य स्वत्व का अयोजन मान है।
- (५) मिताक्षरा के अनुसार पुत्र पिता में पैतृक संपत्ति को बाँट देने के लिये कह सक्ता है, पर दायभाग के अनुसार पुत्र को ऐसा अधिकार नहीं है।
- (६) मिताक्षरा के अनुसार स्त्री अपने मृत पति की उत्तराधिकारिणी तभी हो सकती है जब उसका पति भाई या ब्रह्म कुटुंबियों से अलग हो। पर दायभाग में, चाहे पति अलग हो या शामिल, स्त्री उत्तराधिकारिणी होती है।
- (७) दायभाग के अनुसार कन्या यदि विधवा बध्वा या अपुत्रवती हो तो वह उत्तराधिकारिणी नहीं हो सकती। मिताक्षरा में ऐसा प्रतिबंध नहीं है।

याज्ञवल्क्य, भारद्वाज आदि के अनुसार पैतृक धन का विभाग इन अवसरों पर होना चाहिए—पिता जब चाहे तब, माता की रजोनिवृत्ति और पिता की विषयनिवृत्ति होने पर, पिता के मृत, पतित या संन्यासी होने पर।

दायम—क्रि० वि० [प्र०] हुमेणा। निरंतर। सदा। जन्म भर। उ०—बैठे दिन भरते हैं, दायम दरबार तेरे गैर महल डरते हैं।—दादू०, पृ० ६८५।

दायमी—वि० [प्र० दायम + हि० ई (प्रत्य०)] नित्य रहनेवाला। स्थायी। जो सदा के लिये हो। उ०—सत न पत्तर गालबन् उनकी विदाई दायमी साबित हो।—प्रेम० और गोर्की, पृ० ३।

दायमुल्लहस—संज्ञा पु० [प्र०] जीवन भर के लिये कैद। कालेपानी की सजा। शामिल।

दायर—वि० [फ्रा०] १. फिरता हुआ। चलता हुआ। २. चलता। जारी।

मुहा०—दायर करना = मामले मुकदमे वगैरह को चलाने के लिये पेश करना। (व्यवहार या अभियोग) उपस्थित करना। जैसे, मुकदमा दायर करना, नालिख या मपील दायर करना। दायर होना = पेश होना। उपस्थित किया जाना। जैसे, मुकदमा दायर होना।

दायरा—संज्ञा पु० [प्र० दायरह] १. गोल घेरा। कुदल। मंडल। २. वृत्त। ३. कक्षा। ४. मंडली। ५. संज्ञा। ६. डफली।

दायाँ—वि० [हि० दाहिना का संज्ञित रूप, बायाँ के अनुकरण पर] दाहिना।

मुहा०—दायाँ बोलना = तीतर का दाहिने हाथ की ओर बोलना जो चोरी के लिये अच्छा लक्षण समझा जाता है।

दाया(पुं)—संज्ञा स्त्री० [सं० दया] दे० 'दया'। उ०—कामरूप जानहि सब माया। सपनेहु जिनके भ्रम न दया।—तुलसी (शब्द०)।

दाया^२—संज्ञा स्त्री० [फ्रा०] दे० 'दाई'।

यौ०—दायागरी।

दायागत^१—वि० [सं०] बाँट बखरे में आया हुआ। मोहसी हिस्से में पड़ा हुआ।

दायागत^२—संज्ञा पु० [सं०] पंद्रह प्रकार के दासों में से एक। वह दास जो दाय के रूप में प्राप्त हुआ हो। वह गुलाम जो ब्रासत में और भीजों के साथ मिला हो। दे० 'दास'।

दायागरी—संज्ञा स्त्री० [फ्रा०] दाई का पेशा या काम।

दायाद^१—वि० [सं०] [वि० स्त्री० दायदा] जिसे दाय मिले। जो दाय का अधिकारी हो। जिसे संबंध के कारण किसी की जायदाद में हिस्सा मिले।

दायाद^२—संज्ञा पु० १. दाय पाने का अधिकारी मनुष्य। वह जिसका संबंध के कारण किसी की जायदाद में हिस्सा हो। हिस्सेदार। २. पुत्र। बेटा। ३. सपिंड। कुटुंबी।

दायादा—संज्ञा स्त्री० [सं०] कन्या।

दायादो—संज्ञा स्त्री० [सं०] कन्या।

दायाद—संज्ञा पुं० [सं०] दाय । वह चल भयवा अथवा संपत्ति जिस पर संपिड बंधु बांधवों का अधिकार हो [को०] ।

दायाधिकारी—संज्ञा पुं० [सं० दाय + अधिकारिन्] उत्तराधिकारी । वारिस ।

दायापवर्तन—संज्ञा पुं० [सं०] किसी जायदाद में मिलनेवाले हिस्से की जग्गी ।

दायित्व—वि० [सं०] दिया हुआ । दान किया हुआ ।

दायित्व—संज्ञा पुं० [सं०] १. देनदार होने का भाव । २. जिम्मेदारी । जवाबदेही ।

दायिनी—वि० स्त्री० [सं०] देनेवाली ।

दायी—वि० [सं० दायिन्] [वि० स्त्री० दायिनी] देनेवाला । दाता ।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग प्रलय कम होता है, समास में उपपद के रूप में होता है । जैसे, शांतिदायी, सुखदायी, कष्टदायी, वरदायी ।

दायें—कि० वि० [हि० दायीं] दाहिनी ओर को ।

मुहा०—दायें होना = प्रनुकूल या प्रसन्न होना ।

दागोपगतदास—संज्ञा पुं० [सं०] वह दास जो वरासत में मिला हो ।

दार^१—संज्ञा स्त्री० [सं०] स्त्री । पत्नी । भार्या ।

यौ०—दारकर्म । दारग्रहण । दारपरिग्रह ।

विशेष—संस्कृत में यद्यपि यह शब्द पुं० है तथापि हिंदी में स्त्री० ही होता है ।

दार^२—संज्ञा पुं० [सं० दार] दे० 'दार' । उ०—तिलनि माहि ज्यों तेल है सुंदर पय में चीब । दार माहि है अग्नि ज्यों बेह माहि यों सीब ।—सुंदर ग्रं०, भा० २, पृ० ७८१ ।

दार^३—संज्ञा स्त्री० [फ्रा०] सुली । उ०—चढ़ा दार पर जब श्वेत मंसूर ।—कबीर मं०, पृ० ६०६ ।

दार^४—संज्ञा स्त्री० [हि० दाल] दे० 'दाल' । उ०—(क) मुँग दार बिनु बबकल साज । केसरि सहित प्रीत रंग राखी ।—रसरत्न, पृ० २८८ । (ख) बींटी चावल लै खली, बिष में मिलि गइ दार ।—कबीर सा०, पृ० ८३ ।

दार^५—प्रत्य० [फ्रा०] रखनेवाला । वाला । जैसे,—मालदार, दूकानदार ।

दारक^१—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० दारिका] १. लौंडा । लड़का । उ०—इक कुमार पुनि मुनिन संग रहिराह रस की बात । तिस्यो कहा ऋषि तियन पहुँ की बारक ढिग सात ।—विश्राम (कम्ब०) । २. पुत्र । बेटा । ३. शावक । छोना (को०) । ४. ग्रामसूकर । सुघर (को०) ।

दारक^२—वि० [सं०] बिबीएँ करनेवाला । फाड़नेवाला ।

दारकर्म—संज्ञा पुं० [सं० दारकर्मन्] भार्याग्रहण । विवाह ।

दारक्रिया—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'दारकर्म' [को०] ।

दारग्रहण—संज्ञा पुं० [सं०] विवाह । शादी [को०] ।

दारचीनी—संज्ञा स्त्री० [सं० दार + चीन] १. एक प्रकार का तज जो दक्षिण भारत, सिहल और टेमासरिम में होता है ।

विशेष—सिहल में ये पेड़ सुगंधित छाल के लिये बहुत लगाए

जाते हैं । भारतवर्ष में यह जंगलों में ही मिलता है और लगाया भी जाता है तो बगीचों में शोभा के लिये । कोंकण से लेकर बराबर दक्षिण की ओर इसके पेड़ मिलते हैं । जंगलों में तो इसके पेड़ बड़े बड़े मिलते हैं पर लगाए हुए पेड़ भाड़ के रूप में होते हैं । पत्ते इसके तेजपत्ते ही की तरह के, पर उससे चौड़े होते हैं और उनमें बीचवाली खड़ी नस के समानांतर कई खड़ी नसें होती हैं । इसके फूल छोटे छोटे होते हैं और गुच्छों में लगते हैं । फूल के नीचे की दिउली छह फाँकों की होती है । सिहल में जो दारचीनी के पेड़ लगाए जाते हैं उनके लगाने और दारचीनी निकालने की रीति यह है । कुछ कुछ रेतीली करेन मिट्टी में ४-५ हाथ के अंतर पर इसके बीज बोए जाते या कलम लगाए जाते हैं । बोए हुए बीजों या लगाए हुए कलमों को धूप से बचाने के लिये पेड़ की डालियाँ घास पास गाड़ दी जाती हैं । ६ वर्ष में जब पेड़ ४ या ५ हाथ ऊँचा हो जाता है तब उसकी डालियाँ छिलका उतारने के लिये काटी जाती हैं । डालियों में छुरी से हलका चीरा लगा दिया जाता है जिसमें छाल जल्दी उबट घावे । कभी कभी डालियों को छुरी के बेट धादि से थोड़ा रगड़ भी देने हैं । इस प्रकार प्रलय किए हुए छाल के टुकड़ों को इकट्ठा करके दबा दबाकर छोटे छोटे पूर्णों में बाँधकर रख देते हैं । ये पूर्ण दो या एक दिन यों ही पड़े रहते हैं, फिर जालों में एक प्रकार का हलका खमीर सा उठता है जिसकी सहायता से छाल के ऊपर की फिल्ली और नीचे लगा हुआ गूदा गेरी छुरी से हटा दिया जाता है । अंत में छाल को दो दिन छाया में सुखाकर फिर धूप दिखाकर रख देते हैं ।

दारचीनी दो प्रकार की होती है—दारचीनी जोलानी और दारचीनी कपूरी । ऊपर जिस पेड़ का विवरण दिया गया है वह दारचीनी जोलानी है । दारचीनी कपूरी की छाल में बहुत अधिक सुगंध होती है और उससे बहुत अच्छा कपूर निकलता है । इसके पेड़ चीन, जापान, कोचीन और फारमोसा द्वीप में होते हैं और हिंदुस्तान में भी देहरादून, नीमगिरि आदि स्थानों में लगाए गए हैं । भारतवर्ष, अरब आदि देशों में पहले इसी पेड़ की सुगंधित छाल चीन में जाती थी, इसी से उसे दार + चीनी कहने लगे । हिंदुस्तान में कई पेड़ों की छाल दारचीनी के नाम से बिकती है । अमिलतास की जाति का एक पेड़ होता है जिसकी छाल भी व्यापारी दारचीनी के नाम से बेचते हैं पर वह असली दारचीनी नहीं है । असली दारचीनी आजकल अधिकतर सिहल से ही आती है । दक्षिण में दारचीनी के पेड़ को भी लवंग कहते हैं यद्यपि लवंग का पेड़ भिन्न है और जामुन की जाति का है । तज और दारचीनी के वृक्ष यद्यपि भिन्न होते हैं तथापि एक ही जाति के हैं । दारचीनी से एक प्रकार का तेल भी निकलता है जो दवा के लिये बाहर बहुत जाता है ।

२. ऊपर जिन पेड़ की सुगंधित छाल जो दवा और मसाले के काम में आती है ।

दारण—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० दारित] १. चीरने या फाड़ने का काम । चीर फाड़ । विदीर्ण करने की क्रिया । २. चीरने फाड़ने का प्रसू या प्रोजार । ३. फोड़ा प्रादि चीरने का काम । ४. वह प्रोष जिसके लगाने से फोड़ा प्रापसे प्राप फूट जाय ।

विशेष—सुश्रुत में चिलबिल, हंती, चित्रक, कबूतर, गोघ प्रादि की बीट तथा क्षार को दारण प्रोष कहा है ।

५. निर्मली का पोषा ।

दारणा—वि० [सं० दारण] दे० 'दारण' । उ०—दारण कर्मा लूबिया बोला । प्राप्ति लिया शिवाली बोला ।—रा० क० पृ० २५३ ।

दारणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दुर्गा [को०] ।

दारद—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक प्रकार का विष जो दरद देश में होता है । उ०—जाहि जोहि मारद भई मरी परी दुख कंद । ताहि मुषाधर क्यों कहैं दारद मारद चंद ।—स० समक, पृ० २६० । २. पारा । ३. हंगुर । ४. सागर । समुद्र (को०) ।

दारन—वि० [सं० दारण] दे० 'दारण' । उ०—पतन की कारन लगे बिचारन । प्रथम पवन नहिं हिं बड़ दारन ।—नंद० ग्रं०, पृ० २५४ ।

दारना—क्रि० ग० [सं० दारण] १. फाड़ना । विदीर्ण करना । २. नष्ट करना । ध्वस्त करना ।

दारपरिग्रह—संज्ञा पुं० [सं०] स्त्री का ग्रहण । पालिग्रहण । विवाह ।

दारपलिभुज—संज्ञा पुं० [सं० दारपलिभुज] एक । बगुना पक्षी (को०) ।

दारमदार—संज्ञा पुं० [सं०] १. आश्रय । ठहराव । २. कार्य का भार । किसी कार्य का किसी पर अवलंबित रहना । जैसे,— इस काम का दारमदार तुम्हारे ऊपर है ।

दारव—वि० [सं०] १. दाह वर्ण लकड़ी का । लकड़ी का बना हुआ । २. बाण्ड संबंधी ।

दारसंग्रह—संज्ञा पुं० [सं०] भाषाग्रहण । विवाह ।

दारी—संज्ञा स्त्री० [सं० दारा] स्त्री । पत्नी । भार्या ।

विशेष—सं० 'दार' शब्द नित्य बहुवचनार्थ है, अतः उसका प्रथमा का रूप 'दारा' होता है पर हिंदी में 'दारा' रूप ही स्त्रीलिंग में व्यवहृत होता है ।

दारा—संज्ञा पुं० [सं०] किनारा (लश०) ।

दारा—संज्ञा स्त्री [सं०] एक प्रकार की भारी मछली जो हिंदुस्तान में समुद्र के किनारे पाई जाती है । यह लंबाई से तीन हाथ और नील में दस ग्यारह सेर होती है ।

दारा—संज्ञा पुं० [सं०] १. विश्व का नियंता । ईश्वर । २. राजा । नरेश । ३. धनी । मालदार । ४. ईरान का एक बादशाह (को०) ।

दाराई—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का रेशमी कपड़ा जो न्दारनट की तरह का होता है । दरियाई ।

दाराचार्य—संज्ञा पुं० [सं० दार + प्राचार्य] पढ़ानेवाला । अध्यापन करनेवाला (को०) ।

दारि—संज्ञा स्त्री० [सं० दालि] दे० 'दाल' । उ०—दारि गली है भली विधि सों प्रस चारर हेगो सुगंध भरो पू ।—सेवक (शब्द०) ।

दारि—संज्ञा स्त्री० [सं०] विदारण । कतन । छेदन (को०) ।

दारि—संज्ञा स्त्री० [सं० दारिका] दे० 'दारी' । उ०—चंचल सरस एक काटू पे न रहे दारि ।—भूषण ग्रं०, पृ० १२३ ।

दारि—संज्ञा पुं० [सं० दारिम] दे० 'दारिम' । उ०—बिहंसत हंसत दमन तस चमके पाहन छकि । दारि सरि ओ न कह सका फाट्यो हीया दकि ।—जायसी (शब्द०) ।

दारिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. बालिका । २. बेटी । पुत्री । कन्या । उ०—ए दारिका पारिचारिका करि पालिनी कहनामई ।—तुलसी (शब्द०) ।

दारिग्रह—संज्ञा पुं० [सं० दारिग्रह] दे० 'दारिग्रह' । उ०—दारिग्रह दारिग्रह निमात्रगह बोधारगह ।—कीर्ति०, पृ० ५० ।

दारित—वि० [सं०] चीरा या फाड़ा हुआ । विदीर्ण किया हुआ ।

दारिद्र्य—संज्ञा पुं० [सं० दारिद्र्य] दरिद्रता । निर्धनता । उ०—देखत दुख दोख दुरित दाह दारिद्र्य दरनि ।—तुलसी (शब्द०) ।

दारिद्र्य—संज्ञा पुं० [सं० दारिद्र्य] दे० 'दारिद्र्य' ।

दारिद्र्य—संज्ञा पुं० [सं०] दरिद्रता । निर्धनता । गरीबी ।

दारिम—संज्ञा पुं० [सं० दारिम] दे० 'दारिम' । उ०—जमति जु हैमनि दमन की जोली । को है दारिम को है मोली ।—नंद० ग्रं०, पृ० १२३ ।

दारि—संज्ञा पुं० [सं० दारिम] दे० 'दारिम' । उ०—अधर दसन पर नागि सोभा । दारि देखि मुझ मन लोभा ।—पदमावत, पृ० १०२ ।

दारी—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक धुद्र रोग, जिसमें पैर के तलवे का चमड़ा कड़ा हो जाता है और चिड़ चिड़ाकर जगह जगह फट जाता है । बेवाई । खरवा ।

विशेष—भाष्यप्रकाश में लिखा है कि जो लोग पंडल अधिक चलते हैं उनकी बायु कुपित होकर मूखी हो जाती है, जिससे चमड़ा कड़ा होकर फट जाता है ।

दारी—संज्ञा पुं० [सं० दारिन्] वह पति जिसे कई पत्नियाँ हों । पति (को०) ।

दारी—संज्ञा स्त्री० [सं० दारिका] दासी । लौड़ी । वह लौड़ी जिसे लड़ाई में जीतकर लाया गया हो । कुलटा ।

यौ०—दारीजार ।

दारीजार—संज्ञा पुं० [हि० दारी + सं० जार] १. लौड़ी का पति । (गाली) ।

विशेष—राजा लोग कभी कभी कोई लौड़ी रख लिया करते थे । जब उससे अप्रसन्न होते थे तब उसे किसी मनुष्य को दे देते थे और उसके गुजारे के लिये कुछ जागीर दे देते थे । वह मनुष्य उस लौड़ी का पति बनता था इसी से वह 'दारीजार' कह-

लाता था। उनसे जो संतान होती थी वह 'दारीजात' कहलाती थी। कुछ लोगों का अनुमान है कि 'दारीजार' ही से बिगड़कर 'डाढ़ीजार' शब्द बना है। पर यह अनुमान ठीक नहीं जंचता।

२. दासीपुत्र। लोड़ीजादा। गुलाम।

दारु'—संज्ञा पुं० [सं०] १. काष्ठ। काठ। लकड़ी। उ०—प्रिय नागिहि प्रति सबहि मम भनिति राम जस संग। दारु विचार कि करइ कोउ बंदिय मलय प्रसंग।—मानस, १।१०।

दौ०—दासकर्म = दे० 'दासकृत्य'। दारुकृत्य = लकड़ी का काम। दारुगन्धा = विरोधा। दारुगर्भा = कठपुतली। दारुचीनी। दारुपात्र। दारुपुत्रिका। दारुयोषित। दारुवधू।

२. देवदारु का वृक्ष। ३. बड़ई। कारीगर। शिल्पी। ४. पीतल। ५. दानशील व्यक्ति। दाता (को०)।

दारु^२—वि० १. दानशील। देनेवाला। २. जड़नशील। टूटने फूटनेवाला। ३. काटनेवाला। विदारण करनेवाला (को०)।

दारुक—संज्ञा पुं० [सं०] १. देवदारु। २. श्रीकृष्ण के सारथी का नाम।

विशेष—ये बड़े कृष्णभक्त थे। सुमद्राहरण के समय इन्होंने अर्जुन से कहा था कि मुझे बांधकर तब आप सुमद्रा को रख पर ले जाइए; मैं यादवों के विरुद्ध रथ नहीं हूँ। अर्जुन के स्वर्गवास का समाचार अर्जुन को इन्होंने दिया था।

३. काठ का गुत्ता। ४. योगाचार्य जो शिव के अवतार कहे जाते हैं।—भारतेंदु ग्रं० भा० २, पृ० ४४७।

दारुकदली—संज्ञा स्त्री० [सं०] जंगली केला। कडकेला।

दारुका—संज्ञा स्त्री० [सं०] कठपुतली।

दारुकावन—संज्ञा पुं० [सं०] एक वन का नाम जो पवित्र तीर्थ माना जाता है।

दारुगन्धा—संज्ञा स्त्री० [सं० दारुगन्धा] विरोधा जो चीड़ से निकलता है दारुचीनी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'दारुचीनी'।

दारुज—वि० [सं०] १. काष्ठ से उत्पन्न। लकड़ी में पैदा होनेवाला। जैसे, दारुज कीट। २. काष्ठनिर्मित। लकड़ी का बना हुआ।

दारुज^२—संज्ञा पुं० एक प्रकार का बाजा। मर्दल।

दारुजोषित—संज्ञा स्त्री० [सं० दारुजोषित] दे० 'दारुजोषित'। उ०—उमा दारुजोषित की नाई। सबहि नचावत राम गोसाईं।—मानस, ४।११।

दारुण^१—वि० [सं०] १. भयंकर। भीषण। घोर। २. कठिन। प्रबल। विकट। दुःमह। उ०—जा कहूँ विप्रि दारुण दुख दीन्हा। ताकर मति पागे हर लीन्हा।—तुलसी (शब्द०)। ३. विदारक। फाड़नेवाला। ३. निर्दय। क्रूर (को०)। ४. तीक्ष्ण। तीव्र। तीखा (को०)।

दारुण^२—संज्ञा पुं० १. चित्रक वृक्ष। चीते का पेड़। २. भयानक रस। ३. रौद्र नामक नक्षत्र। ४. विष्णु। ५. शिव। ६. एक नरक। ५-४

का नाम। उ०—घठवाँ दारुण नरक है जेहि देखत भय होय।—विश्राम (शब्द०)। ७. राक्षस।

दारुणक—संज्ञा पुं० [सं०] घिर में होनेवाला एक धुइ रोग जिसमें चमड़ा रुखा होकर सफेद भूसी की तरह छूटता है। कसी।

दारुणा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. नर्मदाखंड की अधिष्ठात्री देवी। २. भवाय तृतीया।

दारुणारि—संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु।

दारुण(१)—वि० [सं० दारुण] दे० 'दारुण'।

दारुणटी—संज्ञा स्त्री० [सं०] कठपुतली।

दारुनारी—संज्ञा स्त्री० [सं०] कठपुतली।

दारुर्नि—वि० स्त्री० [सं० दारुण] कठोर। निर्दय। उ०—(क) मासु ननदिया दारुनि, उत्तर जनि देहु हो।—चरम०, पृ० ४७। (ख) घर मोरी मासु दारुनि, तो ननद हठीली हो।—चरम०, पृ० ६४।

दारुनिशा—संज्ञा स्त्री० [सं०] दारुहलदी।

दारुपत्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] द्विगुपत्री।

दारुपात्र—संज्ञा पुं० [सं०] काष्ठपात्र। काठ का बरतन।

विशेष—मनु ने यतियों को अश्वानुपात्र (तुमड़ी) और दारुपात्र रखने का विधान किया है।

दारुपीता—संज्ञा स्त्री० [सं०] दारुहलदी।

दारुपुत्रिका, दारुपुत्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] कठपुतली।

दारुफल—संज्ञा पुं० [सं०] पिस्ता।

दारुमय—वि० [सं०] [वि० स्त्री० दारुमयी] काठ का। काठ का बना हुआ।

दारुमुच—संज्ञा पुं० [सं०] एक स्थावर विष का नाम।

दारुमूषा—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक मोषवि का नाम।

दारुयोषा—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'दारुयोषित' (को०)।

दारुयोषित—संज्ञा स्त्री० [सं० दारुयोषित] कठपुतली।

दारुयोषिता—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'दारुयोषित'।

दारुवधू—संज्ञा स्त्री० [सं०] काठ की गुड़िया। कठपुतली (को०)।

दारुसार—संज्ञा पुं० [सं०] चंदन (को०)।

दारुसिता—संज्ञा स्त्री० [सं०] दारुचीनी।

दारुहरिद्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] दारुहलदी।

दारुहलदी—संज्ञा स्त्री० [सं० दारुहलदी] भाल की जाति का एक सवाबहार भाड़।

विशेष—यह द्विभाल के पूर्वी भाग से लेकर घासाम, पूरबी बंगाल और टनासरिम तक होता है। इसमें सफेद कृष्ण गुच्छों में लगते हैं। इसकी जड़ की छान से बहुत अच्छा पीला रंग निकलता है जिसका व्यवहार दार्जिलिंग, घासाम आदि के लोग बहुत अधिक करते हैं। इसकी जड़ और डंठल का रंग पीला होता है, इसी से इस पीछे को दारुहलदी कहते हैं। वास्तव में यह हलदी की जाति का नहीं है। दारुहलदी के

नाम से उसकी जड़ और डंठल के टुकड़े बाजार में बिकते हैं। जड़ गीठ के रूप में नहीं होती। दारुहलदी दवा के काम में भी आती है। वैद्यक में यह कड़ई, चरपगी, गरम तथा वण, प्रमेह, जुबानी, चर्मरोग इत्यादि को दूर करनेवाली मानी जाती है।

पर्या०—दार्वी। दारुहरिद्रा। द्वितीयाभा। कपोतक। पीतद्रु। कनियक। पचंपदा। पान्नी। काष्ठा। ममरी। पीतिका। पीतदाह। कामिनी। कंटकटेरी। पञ्चन्या। पीता। दारुनिधा। कामवती। हेमकातो। निर्दिष्टा।

दारुहस्त, दारुहस्तक—संज्ञा पु० [मं०] काठ की करछुल [को०]।

दारु—संज्ञा स्त्री० [फ्रा०] १. दवा। औषध।

यौ०—दवा दारु। दारु दरमन = चिकित्सा। इलाज।

२. मद्य। शराब। ३. बारूद।

दारुकार—संज्ञा पु० [फ्रा० दारु + हि० कार] शराब बनानेवाला। कलवार।

दारुका—संज्ञा पु० [फ्रा० दारु + हि० का (प्रत्य०)] [स्त्री० दारुड़ी] शराब। मद्य।

दारैषणा—संज्ञा स्त्री० [सं० दारु + एषणा] नारी की कामना। जैसे,—लोकैषणा, वित्तैषणा, दारैषणा।

दारो—संज्ञा पु० [मं० दाडिम, हि० दारिम, दारिव, दारिउं, दारिण] ३० 'दारिण'।

दारोगा—संज्ञा पु० [फ्रा० दारोग] १. निगरानी रखनेवाला प्रफसर। देलभाल रखनेवाला या पबंध करनेवाला व्यक्ति। जैसे, दारोगा जेल, दारोगा चुंगी, दारोगा घन्तबल। २. पुलिस का वह प्रफसर जो किसी घाने पर अधिकारी हो। घानेदार।

दारोगाई—संज्ञा स्त्री० [फ्रा० दारोगा] दारोगा का काम या पद।

दारुण—संज्ञा पु० [मं०] दृढ़ता।

दारुण—वि० [मं०] दुरंधर संबंधी।

दारुण—संज्ञा पु० १. दक्षिणावर्त शंख का एक भद्र। २. जल। पानी (को०)। ३. लाख। लाख (को०)।

दारुणक—वि० [मं०] मेढक संबंधी [को०]।

दारुणिक—संज्ञा पु० [सं०] कुम्हार।

दारुणिक—वि० [मं०] दारुण या मेढक संबंधी। मेढक की मूर्ति। उ०—भगवतीय उत्तरंगता के कारण दारुणिक अमर्षी त्रिज्ञा को रसना और वर्णित नेत्रों को लोचन बनाने में छीत हामी को देर नहीं लगी।—छीत० (२०). पु० ११।

दार्भ—वि० [मं०] दर्म का। कुल या दर्म संबंधी।

दारुणो—संज्ञा पु० [मं० दाडिम] घनार। उ० नासिका सरोज मधवाह से सुगंधवाह शरयो से दसब कैसे बोजुरी सो हास है।—केसव (शब्द०)।

दारुण्ड—संज्ञा पु० [सं० दारुण्ड] [स्त्री० दारुण्ड] वह जिसका मंडा काट की तरह कड़ा होता है—भयूर। मोर।

दार्भ—संज्ञा पु० [सं०] एक प्रदेश का नाम जो कूर्म विभाग के ईशानकोण में प्राधुनिक काश्मीर के अंतर्गत पड़ता था।

दार्भ—वि० काष्ठनिर्मित। दारुनिर्मित [को०]।

दार्भट—संज्ञा पु० [मं०] मंत्रणागृह। दार्भटि [को०]।

दार्भघाट—संज्ञा पु० [मं०] काठ पर घाघात करनेवाला कठफोड़वा नाम का पक्षी।

दार्भघात—संज्ञा पु० [मं०] कठफोड़वा पक्षी [को०]।

दार्भट—संज्ञा पु० [मं० तुल० फ्रा० 'दरबार' से] मंत्रणागृह। वह कांठगी जहाँ एकांत में बैठकर किसी बात का विचार किया जाय।

दार्भिका—संज्ञा स्त्री० [मं०] १. दारुहलदी से निकाला हुआ दूतिया। २. बनगोभी। गोजिया।

दार्भिका—संज्ञा स्त्री० [मं०] गोजिया [को०]।

दार्भ—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. दारुहलदी। २. गोजिया। दार्भिका [को०]। ३. हरिद्रा। हलदी [को०]। ४. देवदार वृक्ष [को०]।

यौ०—दार्भिकायोद्भव = रसाजन।

दार्भ—वि० [मं०] दर्श संबंधी। समावरण को होनेवाला [को०]।

दार्भिक—वि० [सं०] १. दर्शन जाननेवाला। २. दर्शन प्राप्त संबंधी।

दार्भिक—संज्ञा पु० दर्शनशाय जाननेवाला मनुष्य। तत्त्वज्ञानी। तत्त्ववेत्ता।

दार्भिक—वि० [मं०] १. पत्थर पर पीसा हुआ। २. टपद संबंधी। पाषाणमय। ३. खनिज [को०]।

दार्भिक—संज्ञा पु० [मं०] कात्यायन श्रौतसूत्र के अनुसार एक यज्ञ जो एषवती नदी के किनारे किया जाता था।

दार्भिक—वि० [मं० दार्भिक] ३० 'दार्भिक'।

दार्भिक—वि० [मं० दार्भिक] दृष्टा संबंधी। दृष्टा द्वारा अस्त।

दाल—संज्ञा स्त्री० [मं० दालि अथवा दल] १. दलों में किया हुआ घरहर, भूंग, उरद, चना, मसूर आदि अन्न जो उबालकर खाया जाता है। दली हुई घरहर, भूंग आदि जो साजन की तरह खाई जाती है। जैसे,—भूंग की दाल क्या भाव है?

क्रि० प्र०—दलना।

यौ०—दालमोठ।

विशेष—दाल नहीं घनाजों की होती है जिनमें कलियाँ नगती हैं और जिनके बीज बबाने से टूटकर दो दलों या खंडों में हो जाते हैं। जैसे, घरहर, भूंग, उरद, चना, मसूर, मटर।

२. हलदी, मसाले के साथ पानी में उबाला हुआ दला अन्न जो रोटी, भात आदि के साथ खाया जाता है।

मुहा०—दाल गलना = दाल का अच्छी तरह पककर नरम हो जाना। दाल का सीकना। (किसी की) दाल गलना = (किसी का) प्रयोजन सिद्ध होना। मतलब निकलना। कार्य-सिद्धि के लिये किसी युक्ति का चलना।

विशेष—इस मुहा० का प्रयोग निषेधात्मक वाक्य में ही अधिकतर होता है जैसे, वहाँ तुम्हारी दाल नहीं गलेगी, बड़े बड़े उस्ताद हैं।

दाल चपाती = (१) दाल रोटी । (२) बच्चों को डराने का एक नाम । दालचप्पू होना = एक दूसरे से लिपटकर एक हो जाना । गुत्थमगुत्था होना । जैसे, दो पतंगों का दालचप्पू होना । दाल दलिया = सूखा रूखा भोजन । गरीबों का सा खाना । दाल भात में घुसर होना = दो के मध्य में अनावश्यक, अप्रिय और अनिच्छित रूप में दखल देना । उ०—एकांत विहार में यह दाल भात में घुसर कहाँ से घा गई ? —प्रेमचन०, भा० २, पृ० ४३५ । दाल में कुछ काला होना = कुछ खटके या संदेह की बात होना । कुछ घुरा रहस्य होना । किसी बुरी बात का लक्षण दिखाई पड़ना । दाल में नोन—किसी प्रमुख वस्तु में किसी दूसरी वस्तु का उतना ही मेल मिलाना जिससे स्वाद में बृद्धि हो जाय । भाषानुसूल । ठीक अनुमान । उ०—उतना ही, (जितना) दाल में नोन पड़ सकता है ।—प्रेमचन०, भा० २, पृ० २८८ । दाल रोटी = सादा खाना । सामान्य भोजन । आहार । दाल रोटी चलना = खाना मिलना । जीविका निर्वाह होना । दाल रोटी से लुग = खाने पीने से सुखी । खाता पीता । जिसे न अधिक धन हो न खाने पीने का कष्ट हो । जूतियों दाल बँटना = मूँच लड़ाई भगड़ा होना । गहरी अनबन होना । आराम में न पटना ।

३. दाल के आकार की कोई वस्तु । ४. चेचक, फोड़े, फुंसी आदि के ऊपर का चमड़ा जो खुलकर छूट जाता है । लुंरुं । पण्डी ।

मुहा०—दाल फूटना : लुंरुं अलग होना । दाल बंधना : फुंरुं पड़ना ।

५. मूर्खपुत्री कीशे से होकर आया हुआ किरनों का समूह जो इकट्ठा होकर गोल दाल के आकार का हो जाता है और जिससे आग लग जाती है ।

मुहा०—दाल बंधना = अक्स का इकट्ठा होकर पड़ना ।

६. घड़े की जरदी ।

दाल — संज्ञा पुं० [सं० देवदार] तुल की जाति का एक पेड़ जो हिमालय पर शिमला तथा आगे गंजाव की ओर होता है ।

विशेष—इसकी लकड़ी बहुत मजबूत होती है । इसकी छालों और कड़ियाँ मकानों में लगती हैं, पुल और रेल की सड़कों पर बिछाई जाती हैं तथा और भी बहुत से कामों में आती हैं ।

लक्षण — संज्ञा पुं० [सं०] १. एक प्रकार का मधु । पेड़ के खोखरे में भिजनेवाला शहद । २. कोदो नाम का धन ।

दालचीनी — संज्ञा स्त्री० [हि० दारचीनी] दे० 'दारचीनी' ।

दालिपुत्र — वि० [सं० दारिद्र्य, दारिद्र्यता, प्रा० दालिपुत्र] दारिद्र्य । गरीब । उ०—सबकी बीसे दालदी देवी देव अना । दारिद्र्य भोजन एकदो सुंदर कमलाकंत ।—सुंदर० प्र० भा० २ पृ० ६६३ ।

दालन — संज्ञा पुं० [सं०] दाँत का एक रोग ।

दालिपुत्र — संज्ञा पुं० [सं०] एक मुनि का नाम ।

दालमोठ — संज्ञा स्त्री० [हि० दाल + मोठ (= एक मोटा धन जो राजस्थान पंजाब आदि भारत के पश्चिमी भूभाग में ज्यादा

होता है ।)] धो, तेल आदि में नमक, मिर्च के साथ तली हुई दाल जो नमकीन की तरह खाई जाती है ।

दालव — संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का स्थावर विष ।

दाला — संज्ञा स्त्री० [सं०] महाकाल नाम की लता ।

दानान — संज्ञा पुं० [फ्रा०] वह लंबा घर जिसके चारों ओर दीवार न हो, एक दो या तीन ओर खंभे आदि हों । मकान में वह छाई हुई जगह जो चारों ओर से घिरी न हो, एक दो या तीन ओर खुली हो । बरामदा । ओसारा ।

विशेष—दानान प्रायः मकान के सामने होता है ।

दालि — संज्ञा स्त्री० [सं०] १. दाल । २. देवबाली लता । ३. दाड़िम । अनार ।

दालिपुत्र — संज्ञा पुं० [सं० दारिद्र्य] दे० 'दारिद्र्य' । उ०—राम जबत दालिपुत्र भला, दूरी घर की छानि । ऊँचे मंदिर जालि दे जहाँ भगति न सारंगपानि ।—कबीर प्र०, पृ० ५३ ।

दालित्री — संज्ञा पुं० [सं० दारिद्र्य] दारिद्र्य । दरिद्रता । गरीबी । उ०—सुंदर कहत दुख दालिपुत्र निकंदनी ।—सुंदर प्र०, भा० १ (जी०), पृ० १६६ ।

दालित्री — वि० [सं० दारिद्र्य] दारिद्र्ययुक्त । दरिद्र । उ०—आलस निद्रा जा कहुँ होई । काम कोष दालित्री सोई ।—कबीर सा०, पृ० ३६ ।

दालिम — संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'दाड़िम' ।

दालिपुत्र — संज्ञा पुं० [सं० दालिम] दे० 'दालिपुत्र' । उ०—सदुर्ग दालिपुत्र फुटल अइसन दान्त ।—बर्ण०, पृ० ५ ।

दाली — संज्ञा स्त्री० [सं० दालि] दे० 'दाल' । उ०—मुद्गा, वाली घृत की ब्याली । रस के कंदर सुंदर साली ।—नंद० प्र०, पृ० ३०६ ।

दालिपुत्र — संज्ञा पुं० [सं०] १. दाल अधि के गीत का अनुषंग । २. एक नामक मुनि ।

विशेष—इन्होंने उनके बंधु थे । इन्होंने चंद्रसेन राजा की गभिणी की परशुराम के क्रोध से रक्षा की थी ।

दालिपुत्र — संज्ञा पुं० [सं०] इन्द्र ।

दाँव — संज्ञा पुं० [सं० दाव (= भाग) अथवा सं० प्रत्य० दा दाच्; जैसे एकदा] १. बार । दफा । मरतबा । २. किसी के लिये किसी बात का समय जो कई आदमियों में एक दूसरे के पीछे क्रम से आये । बारी । पारी । जैसे,—जब तुम्हारा दाँव आवेगा तब जैसा चाहता वैसा करना । उ०—तब नहिं दीनो मो कहुँ ठावें । अब कस रोवत गगने दाँव ।—(शब्द०) ।

क्रि० प्र०—आना ।

३. किसी कार्य के लिये उपयुक्त समय । अवसर । मौका । अनुकूल संयोग । उ०—(क) द्विजदेव को सो अब चुक मत दाँव, अरे पातकी पपीहा ! तू पिया की धुनि गावे ना ।—द्विजदेव (शब्द०) । (ख) कह पदमाकर त्यो साँकरो गली है अति हत उत भाजिबे को दाँवें ना लमत है ।—पद्माकर (शब्द०) ।

क्रि० प्र०—गाना ।—मिलना ।—लगना ।

मुहा०—दाँव करना = बात लगाना । बात में बैठना । दाँव

चूकना = अवसर को हाथ से जाने देना । किसी कार्यसाधन के लिये अनुकूल समय पाकर भी कुछ न करना । मौका खोना । दावें ताकना = अवसर की ताक में रहना । मौका देखते रहना । दावें मिलना = दे० 'दावें लगना' । दावें लगना = अवसर हाथ में आना । अनुकूल संयोग मिलना । मौका मिलना । दावें लगना = दे० 'दावें ताकना' । दावें लेना = जिसने बुरा व्यवहार किया हो मौका मिलने पर उसके साथ वैसा ही व्यवहार करना । बदला लेना । प्रतिकार करना । उ०—प्रसुर कुपित हूँ कणो बहुत तुम प्रसुर संहारे । अब लेहो वह दावें छाड़िहों नहि बिनु मारे ।—सूर (शब्द०) ।

४. कार्यसाधन की युक्ति । उपाय । चाल । मतलब गाँठने का ढंग ।

मुहा०—दावें पर चढ़ना = ऐसी स्थिति में होना जिससे किसी का काम निकल सके । किसी के अभिप्राय साधन के अनुकूल प्रवृत्त होना । इस प्रकार वहाँ होना कि दूसरा अपना मतलब निकाल ले । दावें पर चढ़ाना = मतलब के मुवाफिक करना । कार्यसाधन के लिये अनुकूल करना । दावें पर लाना = दे० 'दावें पर चढ़ाना' । दावें में आना = दे० 'दावें पर चढ़ना' ।

५. कुश्ती या गड़ाई जीतने के लिये काम में लाई जानेवाली युक्ति । चाल । पंच । बद । उ०—(क) तब हरि भिरे मल्ल-कीड़ा करि बहु विधि दावें दिखाए ।—सूर (शब्द०) । (ख) भटकि दूर फेंकन चहुँत चलत न कोऊ दावें (शब्द०) ।

क्रि० प्र०—करना ।

यौ०—दावें पंच ।

मुहा०—दावें पर लाना = कुश्ती में जोड़ को ऐसी स्थिति में करना कि उसपर पंच हो सके ।

६. कार्यसाधन की कुटिल युक्ति । छल । कपट ।

क्रि० प्र०—चलना ।

मुहा०—दावें खेलना = चाल चलना । धोखा देना । दावें देना = दे० 'दावें खेलना' ।

७. खेल में प्रत्येक खेलण्डी के खेलने का समय जो एक दूसरे के पीछे क्रम से आता है । खेलने की बारी । चाल । जैसे,—अब हमारा दावें है, कीड़ी हम फेंकेगे ।

मुहा०—दावें चलना = अपनी बारी आने पर शतरंज की गोटी, ताश के पत्ते आदि को रखना । दावें फेंकना = अपनी बारी आने पर पासा या जुए की कीड़ी आदि डालना । दावें पर रखना = दाया पैसा या कोई वस्तु दावें फेंकनेवाले के सामने रखना जिसमें यदि वह जीत तो उसे ले जाय और हारे तो उतना दे । बाजी पर लगाना । दावें लगाना = दे० 'दावें पर रखना' ।

८. पैसे, जुए की कीड़ी आदि का हम प्रकार पड़ना जिससे जीत हो । जीत का पामा या कीड़ी । उ०—दावें चलराम को देखि उन छन कियो मन जीयो कहन लगे मारे । देववाणी भई, जीत भई राम को, ताहूँ मूढ नाहीं सँभारे ।—सूर (शब्द०) ।

क्रि० प्र०—आना ।—पड़ना ।

मुहा०—दावें देना = खेल में हारने पर नियत दंड भोगना या

परिश्रम करना (लड़के) । उ०—तुमरे संग कहो को खेले दावें देत नहि करत रनैया ?—सूर (शब्द०) । दावें लेना = खेल में हारनेवाले से नियत दंड भोगना या परिश्रम कराना ।

†१. स्थान । ठौर । जगह । उ०—बह भाड़ी एक पहाड़ के उतार पर थी इससे सिंह को निकलने का दावें न था ।—गोपाल उपासनी (शब्द०) ।

दावेंना—क्रि० सं० [सं० दमन] दाना घीर भूमा धन्य करने के लिये कटी हुई फसल के सूखे डंठलों को बैलों में रौंदवाना । दाना भाड़ने के लिये मोड़ना ।

दावेंनी—संज्ञा स्त्री० [सं० दामिनी] माथे पर पहनने का स्त्रियों का एक गहना । बंदी ।

दावेंरी—संज्ञा स्त्री० [सं० दाम] रम्पी । रज्जु । उ०—दावेंरी ले बांधन लगी असुदा हूँ बेपीर । पै गोबंधन बांधिहो गोपति को को बीर ?—व्यास (शब्द०) ।

दावें—संज्ञा पुं० [सं०] १. वन । जंगल । २. वन की भाग । ३. भाग । धनि । ४. जलन । नाप । कष्ट । पीड़ा ।

दावें—संज्ञा पुं० [देश०] १. एक प्रकार का हथियार । २. एक पेड़ का नाम । दे० 'घावरा' ।

दावें—संज्ञा पुं० [हि० दावें] १. अवसर । सुयोग । उ०—ले सँभारि सँवारि आपुहि मिलहि नहि फिर दावें—जग० बानी, पु० ३५ । †२. रिक्त स्थान । जगह । दावें । ३. छल । कपट । इष्टसाधन की कुटिल युक्ति या चालबाजी ।

यौ०—दावपंच = दावपंच । चालबाजी । उ०—सारे दावपंच खुले पेचीदगी आने पर । धार गिरपतार हुआ धून के बहाने पर ।—बेला, पु० ६१ ।

मुहा०—दाव पंच चलना = एक दूसरे को नीचा दिखाने के लिये चालें चलना । चतुरता की चालें चलना । उ०—वाहूँ किबसा, आपके फेजान सुहबत से हम पोस्ता मगज हो गए हैं ऐसे कच्चे नहीं कि हमपर किसी का दाव पंच चले ।—फिसाना० भा० १, पु० ६ ।

४. कुप्रवसर । बुरा मौका । उ०—जिससे सुंदरदास जी के मठ का प्रसन्न को बहुत भारी नुकसान पहुँचने का दाव व संभावना का रूप हो गया है ।—सुंदर ग्रं० (जी०), भा० १ पु० १८६ ।

दावत—संज्ञा स्त्री० [सं० दमवत] १. ज्योनार । भोज । २. नाने का बुलावा । निमंत्रण । न्योता ।

क्रि० प्र०—खाना ।—देना ।—लेना ।

यौ०—दावत तवाजा = आदर सत्कार । दावतनामा = निमंत्रण-पत्र । निमंत्रण । दावते जंग = युद्ध की चुनौती । रणनिमंत्रण ।

दावदी—संज्ञा स्त्री० [फ्रा० दाउदी] एक पुष्प । दे० 'गुलदावदी' ।

दावन—संज्ञा पुं० [सं० दमने] १. दमन । नाश । उ०—जातुधान दावन परावत को फल भो ।—तुलसी (शब्द०) । २. हँसिया । ३. एक प्रकार का टेढ़ा घुरा । कुचड़ी ।

न^२—संज्ञा पुं० [क्रा० दामन] दे० 'दामन' ।

ना^१—क्रि० स० [सं० दमन] दे० 'दावना' ।

ना^२—क्रि० स० [हिं० दावन (= नाश)] दमन करना । नष्ट करना । उ०—धुनु खगपति यह कथा पावनी । त्रिविध ताप भव-बाप-दावनी ।—तुलसी (शब्द०) ।

नी^१—संज्ञा स्त्री० [सं० दामिनी] दे० 'दावनी' ।

र^१—संज्ञा पुं० [क्रा०] १. ईश्वर । खुदा । २. न्यायकर्ता । हाकिम । न्यायकारी । उ०—के इस मोहरे के तीन आलम में दावर । है अग्य वास्ते कसे हूँ इजाहर ।—दक्खिनी०, पृ० १६६ ।

रा^१—संज्ञा पुं० [देश०] घावरा नाम का पेड़ ।

री^१—संज्ञा स्त्री० [सं० दाम] दे० 'दावरी' ।

री^२—संज्ञा स्त्री० [क्रा०] १. न्याय । इंसफ । २. हुकूमत । शासन [को०] ।

रीगाह—संज्ञा स्त्री० [क्रा०] न्यायालय ।

दीक्ष—वि० [हिं० दीवादील] खल । गस्थिर । डाकूनी । उ०—ऐंद्रजालिक चेतना के स्तंभ दादादोज दुनिया में अहिम विश्वास के ।—हरी घास०, पृ० १६ ।

नी^२—संज्ञा स्त्री० [सं० दाव (= वन)] वन में लगनेवाली प्रायः जो बांस या घोर पेड़ों की डालियों के एक दूसरे में रगड़ खान से उत्पन्न होती है घोर दूर तक फैलती चली जाती है । उ०—बिठा ज्वाल सरीर वन दावा लगि लगि जाय । प्रभट धुवों नहि देखिए वर अंतर धुधुनाय ।—गिरधर (शब्द०) ।

न^२—संज्ञा पुं० [अ० दा'वा] किसी वस्तु पर अधिकार प्रकट करने का कार्य । किसी वस्तु की जोर के साथ अपना कहना । किसी चीज पर हक बाहिर करना । जैसे,—वह तुम इस मकान ही पर दावा करने लगोगे तो हम क्या करेंगे ? उ०—दावा पातहासन सों कीन्हो गिरराज नीर जेर कीनो देस, हृद् बाँधो दरबारे में ।—भूषण (शब्द०) । २. स्वर । दूक । जैसे,—इस चीज पर तुम्हारा क्या दावा है ? ३. किसी के विरुद्ध किसी वस्तु पर अपना अधिकार स्थिर करने के लिये न्यायालय आदि में दिया हुआ प्रार्थनापत्र । किसी जायदाद या ६९ पैसे के लिये चलता हुआ मुकदमा । जैसे, किसी आदमी पर अपने दण्ड का दावा करना ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

मुहा०—दावा जमाना = मुकदमा ठीक करना । हक साबित करना ।

६. नालिश । अभियोग ।

मुहा०—दावा खारिज होना—मुकदमा हारना । हक का साबित न होना ।

४. अधिकार । जोर । प्रताप । उ०—गहड़ को दावा सदा नाग के समूह पर, दावा नाग जूह पर सिंह सिरनाज को ।—भूषण (शब्द०) । ६. किसी बात को कहने में वह साहस जो उसकी पथार्थता के निश्चय से उत्पन्न होता है । दृढ़ता । जैसे,—मैं

दावे के साथ कहता हूँ कि मैं इस काम को दो दिनों में कर सकता हूँ । ७. दृढ़तापूर्वक कथन । जोर के साथ कहना । जैसे,—उनका तो यह दावा है कि वे एक मिनट में एक श्लोक बना सकते हैं ।

दावाअगन(नी)—संज्ञा स्त्री० [अ० दावा + अग्न] दे० 'दावाग्नि' । उ०—दुरग के पुत्र भतीने श्री भाई । दावाअगन साहू लागी मेघ तें मवाई ।—रा० क०, पृ० ११६ ।

दावागीर—संज्ञा पुं० [अ० दावा + गी० नी०] दावा करनेवाला । अपना हक जतानेवाला । उ०—नाई घटा बाप के बिगरे भयो अकाज । हिरनाकुम अरु नम को गयो दुहुन को राज । गयो दुहुन को राज बाप बेटा के बिगरे । दुमन दावागीर अरु महिमंडल सिगरे ।—गिरधर (शब्द०) ।

दावाग्नि—संज्ञा स्त्री० [सं०] वन में लगनेवाली प्रायः ।

दावान—संज्ञा स्त्री० [अ० दावा] न्यायी प्रायः दावत । मसिपात्र ।

दावादार—संज्ञा पुं० [अ० दावा + फा० दार] दावा करनेवाला । अपना हक जतानेवाला ।

दावानल—संज्ञा पुं० [अ०] वन की प्रायः जो बाँसों या घोर पेड़ों की डालियों के एक दूसरे से रगड़ खान से उत्पन्न होती है घोर दूर तक फैलती चली जाती है । दावाग्नि ।

यी०—दावननेन = वन में लगनेवाली प्रायः । दावाग्नि । उ०—जो पियो कृष्ण दावाननेन । तारी पदरु नई आवूध देन ।—पृ० रा०, १२ । ७० ।

दाविनी—संज्ञा स्त्री० [सं० दामिनी] १. बिल्ली । २. स्त्रियों के माथे पर वा एक गहना । जैसे ।

दावित—वि० [सं०] पंडित । दायित [को०] ।

दावी—संज्ञा पुं० [सं० दाव] धपरा । पेड़ ।

दावीदार—संज्ञा पुं० [अ० दावी + फा० दार] दे० 'दावागीर' [को०] ।

दावेदार—संज्ञा पुं० [अ० दावा + फा० दार] दे० 'दावादार' ।

दाश—संज्ञा पुं० [सं०] १. मनुष्य । शीशर । केवट ।

विशेष—निपात पुरुष और प्रायोग्य स्त्री से उत्पन्न व्यक्ति को दाश कहते हैं । ये नौका खाने हैं और केवट या केवट भी कहलाते हैं ।

यी०—दाशग्राम = दे० 'दाशपुर' । दाशनादेनी = मनुष्य । ग्राम की माना ।

२. शृण्व । नौकर । सेवक ।

दाशपुर—संज्ञा पुं० [सं०] १. शीशरों की बस्ती । २. एक प्रकार का मोथा । दैवत पुस्तक ।

दाशरथ—वि० [सं०] दशरथ नाम का ।

दाशरथ—संज्ञा पुं० दशरथ के पुत्र श्रीरामचंद्र ।

दाशरथि—संज्ञा पुं० [सं०] दशरथ के पुत्र श्रीरामचंद्र आदि ।

दाशरात्रिक—सं० [सं०] दशरात्र संबंधी (जन्म, कृत्य आदि) ।

दाशार्ण्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. दशाणं दश । २. दशाणं देश का निवासी ।

दाशाह—संज्ञा पुं० [सं०] दशाह के वंश का मनुष्य । यदुवंशी ।

दाशेय^१—वि० [सं०] [वि० श्री० दाशेयी] दाश से उत्पन्न ।

दाशेय^२—संज्ञा पुं० दाश का पुत्र । धीवरपुत्र ।

दाशेयी—संज्ञा श्री० [सं०] व्यास की माता सत्यवती (श्री०) ।

दाशेर—संज्ञा पुं० [सं०] धीवरी की मंति ।

दाशेरक—संज्ञा पुं० [सं०] १. मरु प्रदेश । मारवाड़ । २. मारवाड़ का निवासी ।

दाशौदनिक^१—वि० [सं०] दशौदन यज्ञ संबंधी ।

दाशौदनिक^२—संज्ञा पुं० दशौदन यज्ञ की दक्षिणा ।

दाशत—संज्ञा श्री० [फा०] परवरिश । पालन पोषण । देखरेख । रखवायी ।

दास्ता—संज्ञा श्री० [फा० दाशनह्] रखन । उपपत्ती (श्री०) ।

दाश्व—वि० [सं०] देनेवाला ।

दापना^१—वि० सं० [देश०] १. कहना । उ०—दापे सो दस दोष रो निरणों निपट प्रभू । रघु० ६० पुन ३२ । २. देखना ।

दास^१—संज्ञा पुं० [सं०] [श्री० दासी] १. वह जो अपने को दूसरे की सेवा का वचन मर्मापन कर दे । सेवक । चाकर । नौकर ।

विशेष मनु ने भा. प्रकार के दास लिखे हैं—ध्वजाहृत, अर्थात् युद्ध में जीता हुआ, भक्त दास, अर्थात् जो भात या भोजन पर रहे; गृहज, अर्थात् जो घर की दासी से उत्पन्न हो; क्रीत, अर्थात् मोन लिया हुआ, दात्रिम, अर्थात् जिम किसी ने दिया हो; दंडदास, अर्थात् जैसे राजा ने दास होने का दंड दिया हो; और पैगम, अर्थात् जो बाण दासों से दास में मिला हो । याज्ञवल्क्य, भारद्वाज स्मृतियों में दास पंद्रह प्रकार के गिनाए गए हैं—गृहजान, क्रीत, दास में मिला हुआ, अनाका-लभृत, अर्थात् अनायास या दुर्भिक्ष में पाला हुआ; आहित, अर्थात् जो रामा से दसहू बन लेकर उसे सेवा द्वारा पटाता हो; आणुदास, जो आणु लेकर दासत्व के बंधन में पड़ा हो; युद्धप्राप्त, अर्थात् युद्ध में जीता हुआ, स्वयं उपगत, अर्थात् जो अपने आप दास होने के लिये आया हो; प्रव्रज्यावसित, अर्थात् जो संव्रज्य में पला हुआ हो; कृत, अर्थात् जिसने कुछ काल तक के लिए आदले-आप सवा करना स्वीकार किया हो; भक्तदास; बट्टाहू, अर्थात् जो किसी बट्टा या दासी से पिछाई करने से दास हुआ हो; लब्ध, जो किसी से मिला हो; और आनायकता, जिसने आन की बेच दिया हो ।

ब्राह्मण के समय दास बन का नियम है, ब्राह्मण को छोड़ और तीनों वर्णों का दास हो सकते हैं । यदि कोई ब्राह्मण लाभदण दासत्व स्वीकार करे तो राजा उसको दंड दे (मर्द) । धर्म और वश्य दासत्व से मुक्त हो सकते हैं पर गृह दासत्व से नहीं छूट सकते । यदि वह स्वयं ग्यामो का दास बन जाय तो दूसरे स्वामी का दास होता । दाम उसे सब दिन रहना पड़ेगा क्योंकि दासत्व के लिये दाम का ग्रहण ही कहा गया है । ३. वर्णों के दो प्रकार के कर्म कहे गए हैं—शुभ (अग्नि और प्रभु (बुरे) । दरवाजे पर भाड़ देना, मल मूत्र उठाना, लूना धोना आदि बुरे कर्म माने गए हैं ।

२. शूद्र । ३. धीवर । ४. एक उपाधि जो शूद्रों के नामों के आधे

लगाई जाती है । ५. दस्यु । ६. वृत्रासुर । ७. ज्ञातात्मा । धार्मजानी । ८. दानपात्र (श्री०) । ९. कायस्थों की एक उपाधि (बंगाल) ।

दास^२—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'दासन', 'डासन' । उ०—भा निमल सब धरति प्रकास । सेज सँवारि कान्ह भल दास ।—जायसी (शब्द०) ।

दासक—संज्ञा पुं० [सं०] १. दास । सेवक । २. गोत्रप्रवर्तक एक ऋषि का नाम ।

दासजन—संज्ञा पुं० [सं० दास + जन] भृत्य । सेवक । उ०—बिधिकर, किकर दासजन अनुचर अनुग पदाति ।—प्रनेकाथं०, पृ० ७१ ।

दासता—संज्ञा श्री० [सं०] दास का कर्म । दासत्व । सेवावृत्ति ।

दासत्व—संज्ञा पुं० [सं०] १. दास होने का भाव । २. दास का कान । सेवावृत्ति ।

दासनंदिनी—संज्ञा श्री० [सं० दासनन्दिनी] धीवर की कन्या सत्यवती जो व्यास की माता थी ।

दासनपुत्र—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'डासन' ।

दासनदासापुत्र—संज्ञा पुं० [सं० दासानुदास] दे० 'दासानुदास' । उ०—सत्यासी मनि त्यागे प्रासा । प्रणवत नानक दासन-दासा ।—प्राण०, पृ० ६२ ।

दासपन—संज्ञा पुं० [सं० दास + पन (प्रत्य०)] दासत्व । सेवाकर्म ।

दासपुर—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का भोथा । कैवर्त मुस्तक ।

दासप्रथा—संज्ञा श्री० [सं० दास + प्रथा] वह पुरानी प्रथा जिसके अनुसार दास के रूप में निम्न वर्ग के मनुष्यों का क्रय विक्रय होता था । उ०—दासप्रथा दुनिया के बहुत से भागों से बहुत पहिले खतम हो चुकी ।—भा० ६०, पृ० ४६ ।

दासभाव—संज्ञा पुं० [सं० दास्यभाव] भक्ति के ६ भेदों में से एक । उ०—दासभाव सतसगति लीना । दीन हीन मन होइ अधीना ।—घट०, पृ० २४६ ।

दासमीय^१—वि० [सं०] दम देश में उत्पन्न ।

दासमीय^२—संज्ञा पुं० दम देश का निवासी ।

दासमेय—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन जनपद ।

दासा^१—संज्ञा पुं० [सं० दासी (=वेदी)] १. दीवार से सटाकर उठाया हुआ बाँध या पुश्ता जो कुछ ऊँचाई तक हो और जिसपर चीज बस्तु भो रख सकें । २. अग्नि के चारों ओर दीवार से सटाकर उठाया हुआ चबूतरा जो अग्नि के पानी को घर या दानान में जाने से रोकने के लिये बनाया जाता है । ३. वह लकड़ी या पत्थर जो दरवाजे के ऊपर दीवार के आर पार रहता है । ४. दीवार की कुर्सी के ऊपर बैठाया हुआ पत्थर ।

दासा^२—संज्ञा पुं० [सं० दशन] हंसिया ।

दासातन—संज्ञा पुं० [हि० दासापन] (दासता का) भाव । सेवा-भाव । उ०—पहिले दासातन करे सो वैराग प्रमान ।—पल्ल०, पृ० ४४ ।

दासानुदास—संज्ञा पुं० [सं० दास + अनुदास] सेवक का सेवक ।
अर्थात् पुच्छ सेवक ।

विशेष—नम्रता और शिष्टता दिखाने के लिये इस शब्द का
व्यवहार अधिक होता है ।

दासायन—संज्ञा पुं० [सं०] दासी का पुत्र (को०) ।

दासिणी—संज्ञा स्त्री० [सं० दासी] दे० 'दासी' । उ०—प्रवर मुखा
के लोभ भई हम दासि तिहारो । ज्यों लुबधी पद कमलनि
कमला चंचल नारी ।—नंद० प्र०, पृ० २७ ।

दासिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] दासी । उ०—कबरी भई है रानी हम
तो बिगनी हाथ, नऊ बिन दामन की दासिका मने रहो ।
नाथर पू छेम छुत आपु जग कोटिक लो, बित की लगन जहाँ
मयन बने रहो ।—नट०, पृ० २७ ।

दासी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. सेवा करनेवाली स्त्री । टहलनी ।
लौड़ी । २. भीवर या शूद्र की स्त्री ।

यौ०—दासीपुत्र ।

३. काकजंघा । ४. नीलाम्बान । काला कारोठा नाम का पोषा ।

५. कटसरैया । ६. वेदी । ७. वेश्या (को०) ।

दासीसुत—संज्ञा पुं० [सं०] विदुर । उ०—तजा मकल पकवान लिया
दासीसुत भाजी ।—पलटू०, पृ० ५० ।

दासेय—वि० [सं०] [वि० स्त्री० दासेयी] दास से उत्पन्न ।

दासेय—संज्ञा पुं० १. दास । गुलामजादा । २. भीवर ।

दासेयी—स्त्री० स्त्री० [सं०] व्यास की माता राखवती ।

दासेयक—संज्ञा पुं० [सं०] १. दास । २. कंवर । भीवर । ३. ऊँट ।

दासेयक—संज्ञा पुं० [सं०] १. दासीपुत्र । दासेय । २. ऊँट ।

दास्त—संज्ञा पुं० [फ़ा०] दे० 'दास्तान्' । उ०—हाँ, जगत तेरे
बिना आबाद वेसा ही रहेगा । दूसरों के कान में वह दास्त
अपनी कहेगा ।—विष्ण०, पृ० ७७ ।

दास्तान्—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] १. वृत्तान्त । २. हाल । कथा । किस्सा ।
३. बयान । बयान ।

दास्तान—संज्ञा पुं० [फ़ा० दास्तान्] कथा । वृत्तान्त । उ०—जिसे
कतम हो जाए यहीं से हम दास्तान का बयान ।—प्रेमधन०,
भा० २, पृ० ३२३ ।

दास्य—संज्ञा पुं० [सं०] दासत्व । दासपन । सेवा । उ०—द्रव्य के
लोभ से दास्य अंगीकार कहें ।—प्रेमधन० भा० २,
पृ० ७४ ।

विशेष—दास्य, भक्ति के नव भेदों में से एक है ।

दास्यमान्—वि० [सं०] जो दिया जानेवाला हो । जिसे दूसरे को
देना हो ।

दास्य—संज्ञा पुं० [सं०] अश्विनी नक्षत्र ।

दाह—संज्ञा पुं० [सं०] १. जलाने की क्रिया या भाव । भस्मीकरण ।
उ०—मयी तो दिली की पति देवत फनाह भाज, दाह मिटि
गयी तो हनीर नरनाह की ।—हमीर०, पृ० ३७ । २. शव
जलाने की क्रिया । मुर्दा फूँकने का काम ।

विशेष—शुद्धित्व में दाहकर्म के विषय में हम प्रकार लिखा
है : शव को पुत्रादि समान में ले जाकर रखें और स्नान कर
पिबदान के लिये घन पकावें । फिर मृतक के शरीर में धी
मनकर उसे मंत्रपाठपूर्वक स्नान करावें, दूसरे नए वस्त्र में
नपेटें, और घाँव, कान, नाक, मुँह इन सात छेदों में थोड़ा
लोना डालें । इतना हो चुकने पर चिता में अग्नि देनेवाला
ग्राहीनावीत होकर (अनेक को दाहिने कंधे पर डालकर)
बायाँ घुटना टेककर बैठे और मंत्र पढ़कर कुण से एक रेखा
खींचे । फिर उस रेखा पर कुण बिछावे और दाहिने हाथ में
तिलसहित जलपात्र लेकर मृतक का नाम, मोक्ष प्रादि उच्चा-
रण करता हुआ जन को कुण पर गिरा दे । इसके अनंतर
तिलसहित पिंड लेकर कुण पर विमजित करे । जब इतना
कृत्य हो जाय तब पुत्रादि चिता तैयार करें । और मुर्दे को
उसपर दबिखन और सिर करके भेदा दें । जो मामदेवी हों वे
शव का मस्तक उत्तर की ओर रखें । फिर अग्नि हाथ में लेकर
भाग देनेवाला तीन प्रदक्षिणा करे और दक्षिण ओर अपना
मुँह करके शव के मस्तक की ओर भाग लगा दे । फिर सात
लकड़ियाँ हाथ में लेकर सात रता गया करे और परेक
प्रदक्षिणा में एक एक लकड़ी चिता में डालता जाय । जब शव
जल जाय तब एक ब्राम लेकर चिता पर तीन बार पहार करे
जिससे कपाल फूट जाय । इतना करने फिर वह चिता की
ओर न ताके और जाकर स्नान कर ले ।

३. जलन : ताप । ४. एक रोग जिसमें शरीर में जलन मालूम
होती है, 'यास जगनी है और कठ मुकता है । वैद्य के मन से
यह रोग दाहपित्त के प्रकोप से होता है ।

विशेष—भावप्रकाश में दाह सात प्रकार का लिखा है,—(१)
रक्तजय दाह, जिसमें रक्त कुपित होकर सारे शरीर में दाह
उत्पन्न करता है । ऐसा जान पड़ता है, माँसे मारा शरीर
भाग से तप रहा है और क्षण क्षण पर प्यास लगती है । (२)
रक्तपूण कोष्ठज दाह, जो विषी अंग में हथियार प्रादि का घाव
लगने पर उस घाव से कोष्ठ में रक्त जाने से उत्पन्न होता है ।
(३) मबज दाह । (४) तृष्णाविरोधज दाह । (५) वातसंयज
दाह । (६) मर्माभिधातज दाह, और (७) अग्नाध्य दाह जिसमें
रोगी का शरीर ऊपर से तो ठंडा रहता है, पर भीतर भीतर
जला करता है ।

५. भोक । संताप । अत्यंत दुःख । दाह । ईर्ष्या । ६. चमकती
हुई नालियाँ । दीप लाल रंग । जैसे, भ्रातृकाण का ।

दाहक—वि० [सं०] जलानेवाला ।

दाहक—संज्ञा पुं० १. चित्रक वृक्ष । चीता । लाल चीता । २.
अग्नि । भाग ।

दाहकता—संज्ञा स्त्री० [सं०] जलाने का भाव या गुण ।

दाहकत्व—संज्ञा पुं० [सं०] जलाने का भाव या गुण ।

दाहकरण—संज्ञा पुं० [सं० दाह + क० करण] जलाने की क्रिया ।
उ०—बाँटों के दल का जीने ही वह दाहकरण ।—अपरा,
पृ० २१४ ।

दाहकर्म—संज्ञा पुं० [सं०] शवदाह कर्म । मुर्दा फूँकने का काम ।

दाहकारक—वि० [सं० दाह + कारक] दे० 'दाहक' ।

दाहकाष्ठ—संज्ञा पुं० [सं०] अग्नि त्रिमे सुगंध के लिये जलाते हैं ।

दाहक्रिया—संज्ञा स्त्री० [सं०] शवदाह कर्म । मृतक को जलाने का संस्कार ।

दाहज्वर—संज्ञा पुं० [सं०] वह ज्वर जिसमें शरीर में बहुत अधिक जलन महसूस हो ।

दाहन—संज्ञा पुं० [सं०] १. जलाने का काम । २. जलवाने का काम । भस्म कराने की क्रिया ।

दाहना—क्रि० म० [सं० दाह] १. जलाना । भस्म करना । २. संतप्त करना । सताना । दुःख पहुँचाना । उ०—ब्याल, अनल, विष ज्वाल तै राशि सई सब और । विरह अनल अब दाहिही हँसि हँसि मंदकिमोर ।—नंद० प्र०, पृ० १८० ।

दाहना—वि० [हि०] दे० 'दाहिना' ।

दाहसर, दाहस्थल—संज्ञा पुं० [सं०] मुर्दा जलाने का स्थान । भस्मान ।

दाहहर, दाहहरण—संज्ञा पुं० [सं०] खस । उशीर ।

दाहा—संज्ञा पुं० [सं० दाह (दाह)] १. गुरुत्वं के दस दिन जिसके भीतर ताजिया नखा है और दफन किया जाता है । २. ताजिया ।

दाहागुरु—संज्ञा पुं० [सं०] जलाने का अग्नि ।

दाहानल—संज्ञा पुं० [सं० दाह + अनल] दे० 'दाहानल' । उ०—मुन वे बेपरवाह विप्राणी गढ़ानल ज्वर ।—नंद० प्र० ४५६ ।

दाहिन—वि० [सं० दाहिना] १. दे० 'दाहिना' । २. अनुकूल । उ०—(क) मेला है पुरख भेजे आगे न देश । वहित बचन बाम कए सेह । दिगम्बरी ३० २०७ । (ख) तार तार बिजो नंद-नाला । मोने दाहिन होइ कृपा ।—सूर (शब्द०) ।

दाहिना—वि० [सं० दाहिना] । वि० स्त्री० 'दाहिनी' । १. उस पार्श्व का जिसके प्राणों की गैरिसे न अधिक बल होता है । उस ओर का जिस ओर के प्राण काम करने में अधिक तत्पर होते हैं । 'बायाँ का दाहिना' । दक्षिण । अपसव्य । जैसे, दाहिना हाथ, दाहिना पैर, दाहिनी आँख ।

मुहा०—दाहिनी देना—दक्षिणाओं परिक्रमा करना । प्रदक्षिणा करना । उ०—जय परम तनु दै बुधा कर कर्म बंधावे । पुष्टि दाहिनी देहि युका बं । भाव न पावे ।—सूर (शब्द०) । दाहिनी साया—दक्षिणा करना । उ०—पञ्चवटी गोदाहि प्रनाम करि कृती दाहिनी लाई ।—तुलसी (शब्द०) । (किसी का) दाहिना हाथ देना—बड़ा भारी महत्त्वक होना ।

२. उधर पड़नेवाला दिग्ग दाहिना हाथ हो । जैसे, दाहिनी दिशा । ३. अनुकूल । प्रसन्न ।

दाहिनावर्त्त—वि० [सं० दाहिनावर्त्त] १. प्रदक्षिणा । २. एक प्रत्याग का अर्थ । दे० 'दाहिनावर्त्त' ।

दाहिनी—क्रि० स्त्री० [हि०] दे० 'दाहिने' । उ०—सदा अयानो दाहिनी मनुष्य गै प्रसन्न ।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ४०२ ।

दाहिने—क्रि० वि० [हि० दाहिना] दाहिने हाथ की ओर । उस

तरफ जिस तरफ दाहिना हाथ हो । दाहिने हाथ की दिशा में । जैसे,—तुम्हारे दाहिने जो मकान पड़े उसी में पुकारना ।

मुहा०—दाहिने होना—अनुकूल होना । हित की ओर प्रवृत्त होना । प्रसन्न होना । उ०—पुनि वंदौ खल गन सति माए । जे बिनु काज दाहिने बाए ।—तुलसी (शब्द०) ।

दाहिमा—संज्ञा पुं० [सं० दाधिमय या देश] १. प्राचीन ब्राह्मण वंश, जिसमें कृष्ण पयहारी ने जन्म लिया था । उ०—दाहिमा वंश दिनकर उदय संत कमल हिय सुख दियो ।—भक्तमाल (श्री०), पृ० ४४० । २. दाहिमा या दाधिमय नाम का प्रदेश ।

दाही—वि० [सं० दाहिने] [वि० स्त्री० 'दाहिनी'] जलानेवाला । भस्म करनेवाला ।

दाही—वि० [सं०] प्रकलमंद । बुद्धिमान । उ०—दाही हजार लख है कोई पेशवा है एक ।—कबीर सं०, पृ० १२३ ।

दाहु—वि० संज्ञा पुं० [सं० दाह] दे० 'दाह' । उ०—मिटि गयी हेरत हिय को दाहु ।—नंद० प्र०, पृ० २२८ ।

दाहुक—वि० [सं०] दे० 'दाही' (को०) ।

दिक्—संज्ञा पुं० [सं० दिक्] ज्ञ नाम का छोटा कीड़ा जो सिर के बालों में पड़ता है ।

दिङ—संज्ञा पुं० [सं० दिण्ड] एक तरह का नाच । उ०—उलथा टेकी घालम सविड । पद पलटि हकमयी निरंक चिड ।—केशव (शब्द०) ।

दिंडि—संज्ञा पुं० [सं० दिण्डि] १. शिव का एक नाम । २. एक बाजा । दिंडिर ।

दिंडिर—संज्ञा पुं० [सं० दिण्डिर] प्राचीन काल का एक प्रकार का बाजा ।

दिंडी—संज्ञा पुं० [सं० दिण्डी] उन्नीस मात्राओं का एक छंद ।

विशेष—इसके संग में दो गुरु होते हैं और इसमें ६ तथा १० गार विश्राम होता है । इसमें सभी केवल दो चरणों का और कभी बार चरणों का अनुप्रास होता है । मराठी भाषा में इस छंद का विशेष व्यवहार होता है ।

दिंडोर—संज्ञा पुं० [सं० दिण्डोर] हिंडीर । समुद्रफेन ।

दिण्टी—संज्ञा पुं० [हि० दीवट] दे० 'दीवट' । उ०—तब विश्राम रुपिनी बुझि बिसव घृत पाइ । चित्त दिवा भरि धरे दह समता दिपटि बनाइ ।—मानस, ७ । ११७ ।

दिअना—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'दीया' ।

दिअरा—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'दीया' ।

दिअला—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'दीया' ।

दिअली—संज्ञा स्त्री० [हि० दीया (= छोटा कसोरा) का स्त्री०, पर्याय०] १. मिट्टी का बना हुआ बहुत छोटा दीया या कसोरे के आकार का पात्र । २. भूल के नीचे की हरे रंग की कटोरी जो कई फाँकों में बँटी होती है । ३. दे० 'बिउली' ।

दिआ—संज्ञा पुं० [सं० दीपक] दे० 'दीया' । उ०—परम प्रकास रूप विन राती । नहि कछु चहिम दिवा घृत बाती ।—मानस, ७ । १२० ।

दिशाना†—क्रि० सं० [हि० दिशाना] दे० 'दिशाना' । उ०—मब दिन राजा दान दिशावा । भइ निसि नागमती पहुँ छावा ।—जायसी (शब्द०) ।

दिश्याबत्ती—संज्ञा स्त्री० [हि० दिश्या + बत्ती] दे० 'दियाबत्ती' ।

दिश्यार†—संज्ञा पुं० [प्र० दयार] दे० 'दयार' ।

दिश्यारा†—संज्ञा पुं० [हि०] १. दे० 'दयार' । २. दे० 'दियारा' ।

दिश्यावना†—क्रि० सं० [हि० दिश्याना] दे० 'दिशाना' । उ०—
छव पीठ कइ धरत ? कौन रवि के जिय भावत ? राजा के
दरबार सभहि सुभि कौन दिश्यावत ।—भातेंतु प्र०, भा० २,
पृ० ६३४ ।

दिश्यासलाई—संज्ञा स्त्री० [हि० दिश्या + सलाई] दे० 'दियासलाई' ।

दिउरी†—संज्ञा स्त्री० [प्रा० दिप्रली] छोटा दीया ।

दिउरी†—संज्ञा स्त्री० [सं० देवालय] देवस्थान या मंदिर की
देवली । उ०—मन तारा केनी रहि रानी । दिउरी एक देखि
विधवाणी ।—डूबा०, पृ० ६५ ।

दिश्या—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'दिउरी' ।

दिश्याली†—संज्ञा स्त्री० [हि० दिप्रली] १. मुखे घाव के उपर की
पपड़ी । घुरंङ । खुट्टी । दाँत । २. दे० 'दिप्रली' । ३. मछली
के ऊपर से तूरनेवाला चिपका । सेहरा ।

दिक्—संज्ञा स्त्री० [सं०] दिशा । धोर । तरफ । उ०—थोक धनोक
को लख पूरे, मधु के मद भीरे दिक् भूले ।—घाराधना,
पृ० ४० ।

दिक्—वि० [प्र० दिक्] १. जिसे बहुत कष्ट पहुँचाया गया हो ।
हैरान । तंग । जैसे, —यह लड़का बहुत दिक् करता है ।

क्रि० प्र० कर्ना ।—रहता ।—होना ।

—परमेश्वर । बीमार ।

विशेष—इस अर्थ में इसका प्रयोग तत्प्रेषित शब्द के भाष्य होना
है । जैसे, —कई दिनों से उनकी तत्प्रेषित दिक् है ।

क्रि० प्र०—रहता ।—होना ।

दिक्—संज्ञा पुं० क्षय योग । त्रैदिक ।

दिक्चक्र—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की ऊख जिसका भुज बहुत
धनुराकार का है ।

दिग्दाह—संज्ञा पुं० [सं० दिग्दाह] दे० 'दिग्दाह' । उ०—ऊकपात
दिग्दाह दीन केरुगहि स्वान सिंगार । उदित केतु धन देतु
भइ कर्मात बागहि बर ।—तुलसी (शब्द०) ।

दिग्दली†—संज्ञा स्त्री० [हि०] दाल ; विशेषतः चने की दाल ।

दिक्दली†—संज्ञा पुं० [प्र० दलीक (—बारोक)] किसी चीज
का छोटा टुकड़ा । कतरन । धज्जो ।

दिक्दली†—वि० [प्र० दिक्दली] बहुत बड़ा चालाक । घुराट ।

दिक्दली†—संज्ञा स्त्री० [देश०] बरें । हड्डा ।

दिक्क—संज्ञा पुं० [सं०] हाथी का बच्चा ।

दिक्कत—संज्ञा स्त्री० [प्र० दिक्कत] १. दिक् का भाव । परेशानी ।
तकलीफ । तंगी । उ० ।

क्रि० प्र०—उठाना ।

२. कठिनता । मुश्किल ।

क्रि० प्र०—डालना । पहना ।

दिक्कन्था—संज्ञा स्त्री० [सं०] दिग्गन्धी वस्त्र ।

विशेष—पुराणानुसार दिग्गन्धी वस्त्रों को कन्याएँ मानी गई हैं ।
वाग्विजयपुराण में लिखा है कि जिस समय ब्रह्मा सृष्टि करने की
चिन्ता में थे उस समय उनके कान में दाँत लगाएँ निकलीं ।
ब्रह्मा ने उनसे कहा कि तुम लोगों ही जिधर इच्छा हो उधर
चली जाओ । तदनुसार मब एक एक दिशा में चली गईं ।
इसके उपरान्त ब्रह्मा ने घाट लारुणियों की सृष्टि की और
अपनी घाट कन्याओं को बुलाकर उनके लोहपाल को एक
एक कन्या प्रदान की । तदुपरांत वे स्वयं आकाश की ओर
चले गए और नीचे की ओर उड़ो । जेष को रखा ।

दिक्कर†—संज्ञा पुं० [सं०] महादेव । शिव ।

दिक्कर†—वि० [सं०] दिक्करिका] युवक । जवान ।

दिक्करबामिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] पुराणानुसार दिक्कर अर्थात्
महादेव में निवास करनेवाली एक देवी ।

दिक्करि—संज्ञा पुं० [सं० दिक्करिन्] दे० 'दिक्करी' । उ०—अभि
न मकर भामिनी दिक्करि, दृष्ट नई करत नभ चिक्करि ।
—पद्माकर प्र०, पृ० १० ।

दिक्करिका†—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. पुराणानुसार एक नदी जो मान
मरोवर के पश्चिम में बहती है ।

विशेष—यह नदी दिग्गन्धी के क्षेत्र में निकलती है इसी लिये
दिक्करिका कहलाती है । संभवतः यह नदी दिक्कराई नदी है,
जो कामरूप देश में बहती है ।

दिक्करिका†—वि० युवती । लम्बी । दिक्करी (पे) ।

दिक्करी†—वि० [सं०] युवती । जवान । तरुणी (को) ।

दिक्करी†—संज्ञा पुं० [सं० दिक्करिन्] अठों दिशाओं के ऐरावन आदि
पाठ हाथी । दिग्गन्धी ।

दिक्कांता—संज्ञा स्त्री० [सं० दिक्कांता] दे० 'दिक्कन्था' ।

दिक्कामिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'दिक्कन्था' ।

दिक्काभासीत—वि० [सं० दिक्काभासीत] दस दिशाओं और
अन्य दिशाओं, तैलान्त्य दिशाओं के परे । जो देश और काल
के बंधन से मुक्त न रहे हो ।

दिक्कुंजर—संज्ञा पुं० [सं० दिक्कुंजर] दिग्गन्धी ।

दिक्कुमार—संज्ञा पुं० [सं०] जैनियों के अनुसार स्वतन्त्र नामक
देवताओं में से एक ।

दिक्चक्र—संज्ञा पुं० [सं०] आठों दिशाओं का चक्र ।

दिक्पति—संज्ञा पुं० [सं०] १. ज्योतिष के अनुसार दिशाओं के
स्वामी यह ।

विशेष—ज्योतिष में आठ दिशाओं के स्वामी आठ ग्रह माने जाते हैं। यथा दक्षिण के स्वामी मंगल, पश्चिम के शनि, उत्तर के बुध, पूर्व के सूर्य, अग्निकोण के शुक्र, नैऋतकोण के राहु, वायुकोण के चंद्रमा और ईशान कोण के बृहस्पति।

२. दे० 'दिक्पाल'।

दिक्पाल—संज्ञा पु० [सं०] १. पुराणानुसार दसों दिशाओं के पालन करनेवाले देवता। यथा, पूर्व के इंद्र, अग्निकोण के वह्नि, दक्षिण के यम, नैऋतकोण के नैऋत, पश्चिम के वरुण, वायुकोण के भरत, उत्तर के कुबेर, ईशान कोण के ईश, ऊर्ध्व दिशा के ब्रह्मा और अधोदिशा के अनंत।

विशेष—१० 'दिक्कन्या'।

२. चौबीस मात्राओं का एक छंद जिसमें १२ मात्राओं पर विराम होता है। इसकी पाँचवीं और सत्रहवीं मात्राएँ लघु होती हैं। उर्द्ध का रेखा यही है। जैसे,—हरिनाम एक साँची सब झूठ है पसारा।

दिक्ष्या(५१)—संज्ञा स्त्री० [सं० दीक्षा] दे० 'दीक्षा'। उ०—सर भजन करि आतुर आवहु। दिक्ष्या देखे ज्ञान जेहि पावहु।—मानस, ६।५६।

दिक्शिखा - संज्ञा पु० [सं०] पूर्व दिशा [स्त्री०]।

दिक्शूल—संज्ञा पु० [सं०] फलित ज्योतिष के अनुसार कुछ विशिष्ट दिनों में कुछ विशिष्ट दिशाओं में काल का वास जो कुछ विशेष योगिनियों के योग के कारण माना जाता है।

विशेष—जिस दिन जिस दिशा में कुछ विशिष्ट योगिनियों के योग के कारण इस प्रकार काल का वास और दिक्शूल माना जाता है, उस दिन उस दिशा की ओर यात्रा करना बहुत ही प्रशुभ और हानिकारक माना जाता है। कहते हैं, दिक्शूल में यात्रा करने से मनोरथ कभी सिद्ध नहीं होता। प्राणिक हानि होती है, कोई न कोई रोग हो जाता है, और यहाँ तक कि कभी कभी यात्री की मृत्यु भी हो जाती है। निम्नलिखित दिशाओं में निम्नलिखित चारों को दिक्शूल माना जाता है—
पश्चिम की ओर शुक्र और रविवार को
उत्तर " " मंगल " बुधवार को
पूर्व " " शनि " सोमवार को
दक्षिण " " बृहस्पति वार को

किसी किसी के मत में बुध और बृहस्पतिवार को दक्षिण की ओर, बृहस्पतिवार को चारों कोणों की ओर, रवि तथा शुक्रवार को पश्चिम दिशा की ओर शूल होता है। पहले और प्रधान मत के संबंध में यह श्लोक है—'जनी चन्द्रे त्यजेत् पूर्वम्, दक्षिणस्याम् दिशी गुरी। सूर्यं शुक्रं पश्चिमाशाम्, बुधे भीमे तथोत्तरे।' लोगों ने एक चौपाई भी बना ली है जो इस प्रकार है—सोम सनीचर पुरब न चान्। मंगल बुध उत्तर दिस कातू। आदित शुक्र पश्चिम दिस राहु। बीके बछिन खंक दिस दाहू।

दिक्साधन—संज्ञा पु० [सं०] वह उपाय जिससे दिशाओं का ज्ञान हो। जैसे, जिस ओर सूर्य उदय होता हो उस ओर मुँह करके

खड़े होना और तब यह समझना कि सामने पुरब, पीछे पश्चिम, दाहिनी ओर दक्षिण और बाईं ओर उत्तर है; अथवा कुछ विशेष नियमों के अनुसार धूप में समवृत्त बनाकर और उसमें लकड़ी आदि गाड़कर उस की छाया से दिशा का पता लगाना। सूर्यसिद्धांत आदि प्राचीन ग्रंथों में इस प्रकार दिक्साधन की कई विधियाँ लिखी हैं।

दिक्सुंदरी—संज्ञा स्त्री० [सं० दिक्सुन्दरी] दे० 'दिक्कन्या'।

दिक्स्वामी—संज्ञा पु० [सं०] दे० 'दिक्पति'।

दिक्षा—संज्ञा स्त्री० [सं० दीक्षा] दे० 'दीक्षा'।

दिक्षागुरु—संज्ञा पु० [सं० दीक्षागुरु] दे० 'दीक्षागुरु'।

दिक्षिनी—स्त्री० [सं० दीक्षित] दे० 'दीक्षित'।

दिखण(५१)—संज्ञा पु० [सं० दक्षिण] दे० 'दक्षिण'। उ०—(क) अंत लघु तगण अननास पत प्रकास, पिता जम मात दिखणा हरत पेख।—रघु० ६०, पु० ५४। (ख) देश निवागूँ सजल जल, मीठा बोला लोई। माव कमणि दिखणि बर हरि दीयइ तउ होइ।—ढोला०, दू० ६६८।

दिखना—क्रि० प्र० [हि० देखना] दिखाई देना। देखने में आना।

दिखरादेना(५१)—क्रि० स० [हि०] दे० 'दिखलाना'।

दिखराना(५१)—क्रि० स० [हि०] दे० 'दिखलाना'।

दिखरावना(५१)—क्रि० स० [हि०] दे० 'दिखलाना'। उ०—हो हो करत भरत ही भावत दिखरावत बरजोरी।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पु० २६४।

दिग्गवावनी(५१)—संज्ञा स्त्री० [हि० दिखलाना] १. दिखाने का भाव या क्रिया। दिखाई। २. दे० 'दिखलवाई'। ३. नवबधू का मुख देखकर बड़ी बूढ़ी स्त्रियों द्वारा दिया जानेवाला उपहार।

दिखलवाई—संज्ञा स्त्री० [हि० दिखलाना] १. वह धन जो दिखलवाने के बदले में दिया जाय। २. दे० 'दिखलाई'।

दिखलवाना—क्रि० स० [हि० दिखलाना का प्रे० रूप] दिखलाने का काम दूसरे से कराना। दूसरे को दिखलाने में प्रवृत्त करना।

दिखलाई—संज्ञा स्त्री० [हि० दिखलाना] १. दिखलाने की क्रिया। २. दिखलाने का भाव। ३. वह धन जो दिखलाने के बदले में दिया जाय।

दिखलाना—क्रि० स० [हि० देखना का प्रे० रूप] १. दूसरे को देखने में प्रवृत्त करना। दृष्टिगोचर कराना। दिखाना। जैसे,—उन्होंने मैंमें तुम्हारा मकान दिखला दिया। २. अनुभव कराना। मालूम कराना। जताना। जैसे,—हम तुम्हें इसका नज़ा दिखला देंगे।

संयो० क्रि०—बालना।—देना।

दिखलाव—संज्ञा पु० [हि० दिखलाना] दे० 'दिखावा'। उ०—भलि! यह क्या केवल दिखलाव, मूक व्यथा का मुखर मुलाव।—पल्लव, पु० ८७।

दिखलावा—संज्ञा पु० [हि० दिखलाव] दे० 'दिखावा'।

दिखलैया—संज्ञा पु० [हि० दिखलाना + वैया (प्रत्य०)] दिखलानेवाला।

दिखवैया²—संज्ञा पुं० [हि० देखना + वैया (प्रत्य०)] देखनेवाला ।
दिखहार(पुं०)—संज्ञा पुं० [हि० देखना + हार (प्रत्य०)]
देखनेवाला ।

दिखाई¹—संज्ञा स्त्री० [हि० दिखाना + आई (प्रत्य०)] १. दिखाने
का काम । २. दिखाने का भाव । ३. वह धन जो दिखाने
के बदले में दिया जाय ।

दिखाई²—संज्ञा स्त्री० [हि० देखना + आई (प्रत्य०)] १. देखने का
काम । २. देखने का भाव । ३. वह धन जो देखने के बदले में
दिया जाय ।

दिखाऊ—वि० [हि० दिखाना या देखना + आऊ (प्रत्य०)] देखने
योग्य । दर्शनीय । २. दिखाने योग्य । ३. जो केवल देखने
योग्य हो पर काम में न आ सके । ४. दिखोआ । बनावटी ।

दिखादिखी—संज्ञा स्त्री० [हि० देखना] देखादेखी । सामना ।
उ०—जे सब होत दिखादिखी भईं समी एक भाँक । रहै
तिरोछी ठीठि भव हूँ बीछी का डीक ।—बहारी (शब्द०) ।

दिखाना—क्रि० सं० [हि०] दे० 'दिखलाना' ।

दिखाव—संज्ञा पुं० [हि० देखना + आव (प्रत्य०)] १. देखने का
भाव या क्रिया । २. दृश्य । जैसे,—इस जगह का दिखाव
बहुत अच्छा है ।

दिखावट—संज्ञा स्त्री० [हि० देखना + आवट (प्रत्य०)] १.
दिखलाने का भाव या ढंग । ऊपरी तड़क भड़क । बनावट ।

दिखावटी—वि० [हि० दिखावट + ई (प्रत्य०)] जो केवल देखने
योग्य हो पर काम में न आ सके । दिखोआ ।

दिखावटहार(पुं०)—वि० [हि० दिखाना + (प्रत्य०) हार (= वाला)]
दिखानेवाला । उ०—सतगुरु की महिमा अनंत, अनंत किया
उपगार । लोचन अनंत उघाड़िया, अनंत दिखावटहार ।—
कबीर ग्रं०, पृ० १ ।

दिखावना(पुं०)—क्रि० सं० [हि०] दे० 'दिखाना' ।

दिखावा—संज्ञा पुं० [हि० देखना + आव (प्रत्य०)] आडंबर । भूसा
ठाट । ऊपरी तड़क भड़क ।

दिखैया(पुं०)—संज्ञा पुं० [हि० देखना + ऐया (प्रत्य०)] देखनेवाला ।

दिखैया—संज्ञा पुं० [हि० दिखाना + ऐया (प्रत्य०)] दिखानेवाला ।

दिखोआ—वि० [हि० देखना + ओआ (प्रत्य०)] वह जो केवल देखने
योग्य हो पर काम में न आ सके । बनावटी । दिखाऊ ।

दिखोआ—वि० [हि० देखना + ओआ (प्रत्य०)] दे० 'दिखोआ' ।

दिग—संज्ञा पुं० [सं०] सं० 'दिक्' का समस्त-पद-प्रयुक्त रूप । जैसे,
दिगंगना, दिगोक्ष, दिग्देवता आदि ।

दिगंगना—संज्ञा स्त्री० [सं० दिगङ्गना] दिशा रूपी कन्या । दिक्कन्या ।

दिगंजल—संज्ञा पुं० [सं० दिक् + अञ्जल] दिशा । दिशा का छोर ।
दिग्भाग । उ०—नामहीन सौरभ में मज्जित हो उठता
उत्सवसित दिगंजल ।—अतिमा, पृ० १२ ।

दिगंजल(पुं०)—संज्ञा पुं० [सं० दिक् + अञ्जल] पलक जो प्राँचों को
ढँकता है । नेत्रपट । उ०—भए विचोषन चार अञ्जल ।
मनहु सकुचि निमि तजे दिगंजल ।—मानस, १२३० ।

दिगंश¹—संज्ञा पुं० [सं० दिगन्त] १. दिशा का छोर । दिशा का अंत ।

२. आकाश का छोर । क्षितिज । ३. चारो दिशाएँ । ४.
दसो दिशाएँ ।

यो¹—दिगंतगामिनी = दिशाओं के छोर तक पहुँचनेवाली ।
उत्कट प्रतीक्षा दिगंतगामिनी अभिलाषा... समुद्र गजन में संगीत
की, सृष्टि करने लगी ।—आकाश०, पृ० १०१ । दिगंत-
फलक = क्षितिज रूपी फलक या पृष्ठभूमि । उ०—हो गया
सांध्य नभ का रक्ताभ दिगंत फलक ।—अपरा, पृ० ६५ ।

दिगंत(पुं०)—संज्ञा पुं० [सं० दिग् + अन्त] घाँस का कोना । उ०—राखे
पितंबर ज्यों चढ़ी, कलु तैसिये लाली दिगंतन छाई ।—
द्विजदेव (शब्द०) ।

दिगंतर—संज्ञा पुं० [सं० दिगन्तर] दो दिशाओं के बीच का स्थान ।

दिगंबर¹—संज्ञा पुं० [सं० दिगम्बर] १. शिव । महादेव ।

२. नगा रहनेवाला जैन यती । दिगंबर यती । क्षपणक । ३.
दिशाओं का वस्त्र—ग्रंथकार । दम । अंधेरा । ४. स्कंद का
एक नाम (को०) ।

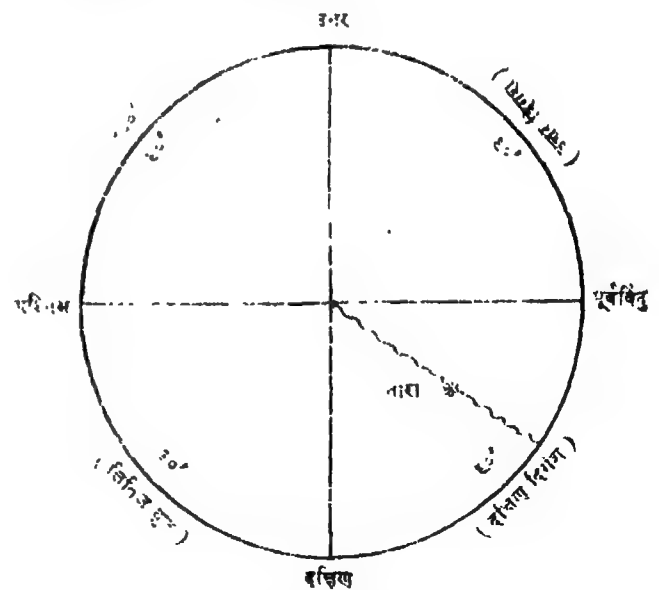
दिगंबर—वि० दिशाएँ ही जिसका वस्त्र हों, पर्याप्त नंगा । नग्न ।

दिगंबरता—संज्ञा स्त्री० [सं० दिगम्बरता] नंगापन । नग्नता ।

दिगंबरी—संज्ञा स्त्री० [सं० दिगम्बरी] दुर्गा ।

दिगंश—संज्ञा पुं० [सं०] क्षितिज वृत्त का ३६०वाँ अंश ।

विशेष—आकाश में ग्रहों और नक्षत्रों आदि की स्थिति जानने के
लिये क्षितिज वृत्त को ३६० अंशों में विभक्त कर लेते हैं और
जिस ग्रह या नक्षत्र का दिगंश जानना होता है, उसपर से
अधस्तवस्तिक और स्वस्तिक को घूटा हुआ एक वृत्त खींच
जाते हैं । यही वृत्त पूर्व बिंदु से क्षितिज वृत्त को दक्षिण
अथवा उत्तर जितने अंश पर काटता है उसने को उस ग्रह या
नक्षत्र का दिगंश कहते हैं ।



दिगंश यंत्र—संज्ञा पुं० [सं० दिगंशयंत्र] वह यंत्र जिससे किसी ग्रह
या नक्षत्र का दिगंश जाना जाय ।

दिग(पुं०)—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'दिक्' ।

दिगदन्ति(५)।—संज्ञा पुं० [सं० दिग्दन्ति] दे० 'दिग्गज' । उ०—कमठ कोल दिगदन्ति सकल भंग सजग करहु प्रभु काज । चहत चपरि सिव चाप चढ़ावन दसरण को जुवराज ।—तुलसी ग्रं०, पृ० ३१६ ।

दिगधिप—संज्ञा पुं० [सं०] दिशा का स्वामी । दिग्पाल [को०] ।

दिगपाल—संज्ञा पुं० [सं० दिक्-दिग्पाल] दे० 'दिक्पाल' । उ०—(क) बालि बचला बचल बालि दिगपाल बल पालि ऋषिराज के बचन परचंड को ।—केशव (शब्द०) । (ख) दिगपालन की भुवपालन की लोकपालन की किन मातु गई ज्ये ।—केशव (शब्द०) ।

दिगभित्ति(५)।—संज्ञा स्त्री० [सं० दिग्भित्ति] दिशारूपी भित्ति । उ०—महाराज सिवराज तब सुघर धवल ध्रुव किति । छवि छटान सौ छुवति सी छिति अमंग दिगभित्ति ।—भूषण ग्रं०, पृ० ७४ ।

दिगर—वि० [क्रा०] दे० 'दीगर' । उ०—बाबर न बरोबर बादशाह, मन दिगर न दीदम दर दुनो ।—प्रकबरी०, पृ० ६५ ।

दिगबस्थान—संज्ञा पुं० [सं०] पथन । वायु । हवा [को०] ।

दिगवारन(५)।—संज्ञा पुं० [सं० दिग्वारण] दिग्गज । दिग्वारण । उ०—कहे 'मतिराम' बल विक्रम बिहद सुनि, गरजनि परै दिगवारन बिपति में ।—मति० ग्रं०, पृ० ३८६ ।

दिगसिंधुर(५)।—संज्ञा पुं० [सं० दिग्-सिंधुर] दिशाओं के हाथी । दिग्गज । उ०—धनत कटकु दिगसिंधुर डिगही । छुभित पयोधि कुधर डगमगहि ।—मानस, ६ । ७८ ।

दिगागत—वि० [सं०] दूर से आया हुआ । दूरागत [को०] ।

दिगिभ—संज्ञा पुं० [सं०] दिग्गज ।

दिगीश—संज्ञा पुं० [सं०] दिक्पाल । दिशाओं के अधिपति ।

दिगीश्वर—संज्ञा पुं० [सं०] १. आठों दिक्पाल । २. सूर्य, चंद्रमा आदि ग्रह ।

दिगेश—संज्ञा पुं० [हि० दिग + ईश] दे० 'दिगीश' ।

दिग्गज—संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार वे आठों हाथी जो आठों दिशाओं में पृथ्वी को दबाए रखने और उन दिशाओं की रक्षा करने के लिये स्थापित हैं ।

विशेष दिशाओं के पूर्वदिक् क्रम से उनके नाम ये हैं—पूर्व में ऐरावत, पूर्वदक्षिण के कोन में पृथ्वी, दक्षिण में वामन, दक्षिणपश्चिम में कुबुर, पश्चिम में भंजन, पश्चिमोत्तर के कोने में पुष्पदंत, उत्तर में शंखभोग और उत्तर पूर्व के कोने में सप्रतीक या सुप्रतीक ।

दिग्गज^३—वि० बहुत बड़ा । बहुत भारी । जैसे, दिग्गज विद्वान्, दिग्गज पंडित ।

दिग्गज(५)।—संज्ञा पुं० [सं० दिग्गज] दे० 'दिग्गज' । उ०—डगे कोल दिग्गज अंगे सुधावै ।—दृ० रासो, पृ० ६६ ।

दिग्गयंद—संज्ञा पुं० [सं० दिक् + गयंद, प्रा० गयंद] दिग्गज । उ०—दिग्गयंद सरस्वत, परत दसकठ पवि भर । सुरबिमान हिममानु भानु संगति परस्पर ।—तुलसी ग्रं०, पृ० १५७ ।

दिग्गहा(५)।—संज्ञा पुं० [सं० दिक् + गहा (= ग्रहण करनेवाले)] दे० 'दिक्पाल' । उ०—रहत दरगह उपह दिग्गह जोति विग्रह दुमह जह जह ।—रघु० क०, पृ० २२६ ।

दिग्गी—संज्ञा स्त्री० [सं० दीर्घिका] दे० 'दिग्गी' ।

दिग्घ(५)।—वि० [सं० दीर्घ, प्रा० दिग्घ] १. लंबा । उ०—सिर दिग्घ दिग्घ दंतह सुभग जरजराइ बंगर जरिय—पृ० रा०, ६।१५५ । २. बड़ा । विशाल । उ०—कहे मतिराम सब यावर जंगम जरा आकी दिग्घ उदर दरी में दरसत है ।—मतिराम (शब्द०) ।

दिग्जय—संज्ञा स्त्री० [सं०] दिग्विजय ।

दिग्ज्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'दिग्गंश' ।

दिग्दन्ति(५), दिग्दंती—संज्ञा पुं० [सं० दिग्दन्तिन्] दिग्गज । उ०—मेरु कछु न कछु दिग्दन्ति न कुडलि कोल कछु न कछु है ।—भूषण ग्रं०, पृ० ३४ ।

दिग्दर्शक यंत्र—संज्ञा पुं० [सं० दिग्दर्शक यन्त्र] डिब्बों के आकार का एक प्रकार का यंत्र जिससे दिशा का ज्ञान होता है । कंपास । कुतुबनुमा ।

विशेष—इसके बीच में लोहे की एक सुई लगी होती है जिसके मुँह पर चुंबकत्व की शक्ति रहती है जिसके कारण सुई का मुँह सदा उत्तर दिशा की ओर रहता है । इसका विशेष व्यवहार जहाजों आदि में दिशा का ज्ञान प्राप्त करने के लिये होता है । इसे कुतुबनुमा और कंपास भी कहते हैं ।

दिग्दर्शन—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह जो कुछ उदाहरण स्वरूप बिखलाया जाय । नमूना । २. नमूना दिखाने का काम । ३. अभिज्ञान । जानकारी । ४. दे० 'दिग्दर्शक यंत्र' ।

दिग्दर्शनी—संज्ञा स्त्री० [सं० दिग्दर्शन] दे० 'दिग्दर्शक यंत्र' ।

दिग्दाह—संज्ञा पुं० [सं०] एक दैवी घटना जिसमें सूर्यास्त होने पर भी दिगाणाल और जलती हुई सी दिखलाई पड़ती है ।

विशेष—इसे लोग अशुभ मानते हैं और समझते हैं कि इसके उपरांत युद्ध, दुर्भिक्ष या रोग आदि होता है । बृहत्संहिता में इसके फल आदि का विस्तृत उल्लेख है ।

दिग्देवता—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'दिक्पाल' ।

दिग्दैवत—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'दिक्पाल' [को०] ।

दिग्द्योतक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'दिग्दर्शक यंत्र' ।

दिग्घ^१—संज्ञा पुं० [सं०] १. विषाक्त वाण । जहर में बुझाया हुआ वाण । २. तेल । ३. अग्नि । ४. प्रबंध । निबंध ।

दिग्घ^२—वि० [सं०] १. विषाक्त । जहर में बुझा हुआ । २. लिप्त । लिपा हुआ ।

दिग्घट—संज्ञा पुं० [सं० दिक्घट] १. दिशारूपी वस्त्र । उ०—भुजग विभूषण दिग्घट धारी । अर्ध अंग गिरिराज कुमारी ।—सबलसिंह (शब्द०) । २. दिशा रूपी वस्त्र धारण करने-वाला । नंगा । दिगंबर ।

दिग्घति—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'दिक्पाल' ।

दिग्पाल—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'दिक्पाल' ।

दिग्बल—संज्ञा पुं० [सं०] कलित ज्योतिष के अनुसार सप्त आदि पर स्थित ग्रहों का बल ।

विशेष—यदि लग्न से दसवें स्थान पर मंगल और रवि हों तो दक्षिण, यदि लग्न से सातवें स्थान पर शनि हों तो पश्चिम और यदि चौथे स्थान पर शुक और चंद्र हों तो उत्तर दिशा

बली मानी जाती है। इसकी सहायता से दिक्निर्णय और दूसरी कई प्रकार की गणनाएँ की जाती हैं।

दिग्बली—संज्ञा पु० [सं० दिग्बलिन्] १. कतिपय ज्योतिष में वह ग्रह जो किसी दिशा के लिये बली हो। २. वह राशि जिसमें किसी ग्रह का बल हो।

विशेष—दे० 'दिग्बल' ।

दिग्भ्रम— संज्ञा पुं० [सं०] दिशाओं का भ्रम होना । दिशा भ्रम जाना ।

दिग्भ्रांति—संज्ञा श्री० [सं० दिग्भ्रान्ति] दे० 'दिग्भ्रम' । उ०—नह-
राई दिग्भ्रांति तिमिरजा स्रोतस्विनी करालो ।—अपलक,
पृ० ५१ ।

दिग्मंडल—संज्ञा पु० [सं० दिग्मण्डल] दिशाओं का समूह ।
संपूर्ण दिशाएं ।

दिग्राज—संज्ञा पु० [मं०] दे० 'दिक्पाल' ।

दिग्बधू—संज्ञा स्त्री० [सं० दिग्बधू] दिशाओं रूपा वन या स्त्री । दिग्-
गता । उ०—दिग्बधू की पिक वाणी क्षीण दिग्ता उदास ।—
अनामिका, पृ० ५३ ।

दिग्धसन—संज्ञा पु० [सं०] दे० 'दिग्धस्त्र'.

दिग्बल—संज्ञा पुं० [सं०] १. महादेव । शिव । २. गंगा गह्वरेका-
जैन यती । अपरुणक । ३. ताम्र ।

विद्यमान्—संज्ञा पु० [सं०] पहरेदार । चौकीदार ।

दिग्धारण—संज्ञा पु० [सं०] दिग्गत्र ।

दिग्वास—संज्ञा पु० [सं० दिग्वासस्] दे० 'दिग्वस्त्र' ।

दिग्विजय---संज्ञा श्री० [सं०] १. राजाओं का अपनी वीरता दिखलाने और महत्त्व स्थापित करने के लिये देश-देशांतरों में अपनी सेना के साथ जाकर युद्ध करना और विजय प्राप्त करना । यह प्रथा प्राचीन काल में थी । उ०---अश्वमेध कर्वाव मुष्टि-ष्ठिर कुल की दोष मिटायो । कवि दिग्विजय विजय की जग में भक्त पक्ष करवायो ।---सूर (शब्द०) । २. अपने गुण, विद्या या बुद्धि आदि के द्वारा देश-देशांतरों में अपनी प्रधानता अथवा महत्त्व स्थापित करना । जैसे, शंकर दिग्विजय ।

द्विविजयो'—संज्ञा पु० [सं० द्विविजयिन्] [श्री० द्विविजयिनी]
जिसने द्विविजय किया हो । द्विविजय करने वाला । उ०—
गज भ्रूङ्कार बढ़यो द्विविजयो लोभ छत्र करि सीस । फौज
असत संगति की मेरी ऐसे हों मैं ईस ।—मर (शब्द०) ।

दिविजयो^२—वि० दिविजय करनेवाला । सभी देशों पर विजय प्राप्त करनेवाला ।

दिग्बिभाग--संज्ञा पु० [सं०] दिशा । मोर । तरफ ।

दिग्बिभक्त—वि० [सं०] प्रत्येक दिशा में जिसकी ख्याति हो (की०) ।

दिग्ब्याप्त—वि० [सं०] दिशाओं में फैला हुआ [को०] ।

दिग्ग्यापो—दि० [सं दिग्ग्यापिन्] [नि० स्त्री० दिग्ग्यापिनी] जो सब दिशाओं में व्याप्त हो ।

दिग्गत—संज्ञा पु० [म०] जैनियों का एक व्रत जिसमें वे कुछ निश्चित समय के लिये यह प्रणु कर लेते हैं कि भ्रमुक् दिशा (अथवा दिशाओं) में इतनी दूर से अधिक न जायेंगे।

दिग्शिखा—मंत्र। श्री० [मं० दिक्शिखा] पूर्वं दिशा ।

दिगसिंधुर मस ५० [म. 'दिग्'सिंधुर] दे० 'दिग्गज' ।

दिग्गुल - नञा ३० [न० दिक्गुल] ३० 'दिक्गुल' ।

दिधी---संज्ञा स्त्री० [मं०] दे० 'दिग्धा' ।

दियांच—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का पत्थी जिसको छाती सफेद,
 डेने काले और कूट पर सुन्दर होते हैं ।

दिग्धः) — वि. [सं. दीघ] दे. दीघं । उ० — कवि चंद सोर सिद्ध
 आर धन दिग्ध सद् दिग्ध आ भी । सुंकिर लयल जिम रंक
 उर ह्म भरन्य अलन भी । — ३० रा०, ६।३०१।

दिङ् - वल पु० [म०] दिङ् शब्द का समास । ह्य ।

दिङ्मन्त्र - स्था प्र० [१०] विशेष लक्षण को कथित ज्योतिष में
निम्नलिखित दिशाओं से सरल माने जाते हैं ।

विशेष - फलित ज्योतिष में माना जाता है कि नक्षत्र विशेष दिशा से पड़ने वाले होते हैं और इन्हीं के अनुसार किसी प्रश्न के अनर्गत दिनांक आदि का ज्ञान प्राप्त किया जाता है। जैसे, यदि किसी ही कोई चीज चोरी हो गयी अथवा कोई बालक लो जव हो बीम के चोरी होना प्रत्यक्ष ज्ञान के खोए जाने के समय का लक्षण देखकर पट्टा कहा जा सके है कि चोर प्रत्यक्ष बालक किस दिशा में है।

दिल्ल्याग सक्ता पू० [५०] १. दिग्गज । २. एक जोडनेशायिक प्यार
प्यार, जो मल्लिनाथ के अनुसार कालिदास से समय
में हुए थे और उनके बड़े भारी प्रतिद्वंद्वी थे ।

दिङ्नारि- संज्ञा खण्ड [५०] १ वेश्या । रङ्गी । २ बहुत से पुरुषों
के प्रेम करनेवाली छत्ती । कुन्द ।

दिकमंडल -संज्ञा पु० [म० दिक्मण्डल] दिशाओं का समूह ।

द्विभातंग -- संग्र पृ० [सं० दिग्गजतन्त्र] दिनाङ्क ।

दिहमात्र-- १५० [मं०] : दारुण भाव । केवल नमुना ।

विष्णु—[१००] १. जिसे शिग्रम हुआ हो । जो दिशाएं चल गया हो । २. मय । ये श्रुत ।

विष्णु मोह - सं. ५० [५०] २० १२०५

दिच्छन्नापि - कि० सं० [सं० दण, प्रा० दिच्छ दिच्छ] देखना । अव-
लोकना : ३० यदि भोग मूर्तेति तत्र भी मदा कर्तुं प्राण
न दिच्छन्नापि । विभिन्नीत सकल एक्य भय पुरुषात्तन तिन
बंध मयि । पृ० रा०, १/३७० ।

दिग्ध्यां - सञ्ज्ञा ल्यो [म० दीक्षा] दे० 'दीक्षा' ।

दिच्छित्तः प्रो - म ॥ पुं ॥ १० । म० दीक्षित । ३० 'दीक्षित' ।

द्विजराजः पु० । —सभा पु० । म० द्विजराज । १० 'द्विजराज' ।

द्विजोत्तम(प्रो) --संज्ञा पु० [स० द्विजोत्तम] दे० 'द्विजोत्तम' ।

दिष्टि^७—सञ्ज्ञा भ्वा० [भ० दृष्टि, प्रा० । दृष्टि] ३० 'दृष्टि' । उ०—
।दृष्टि कृतुहल क्त्वं रस तो पश्यद् दरबार ।-कीर्ति० पृ० ४६।

दिठ(पु)† - संघा गी० [सं० दांष्ट्र] दे० 'दीठ' । उ० - एकहि व्यापक
वस्तु निरंतर विश्व नही यह ब्रह्म बिलासे । ज्यों नट मंत्रवि

सों रिठ बाँधत है कछु औरई औरई भाते ।--सुंदर ग्रं०,
भा० २, पृ० ५८१ ।

क्रि० प्र०--बाँधना ।

दिठवन—संज्ञा स्त्री० [सं० देवोत्थान] दे० 'देवोत्थान' (एकादशी) ।

दिठादिठी—संज्ञा स्त्री० [हि० दीठ (आम्रडित)] देखादेखी । सामना ।
उ०--अहि सूतै घर कर गहत दिठादिठी की ईठि । गड़ी सुचित
नाहीं करति करि लनधौही डीठि ।--विहारी (शब्द०) ।

दिठाना^१—क्रि० सं० [हि० दीठ + णाना (प्रत्य०)] नजर
लगाना । दृष्टि लगाना । डीठ लगाना ।

दिठाना^२—क्रि० प्र० दीठ लगाना । नजर लगाना ।

दिठार—वि० [हि०] दृष्टिवाला । दिठियार । आँखोंवाला । देखने
की अपेक्षा रखनेवाला । उ०--भाँधर कहै सबै हम देखा ।
तहाँ दिठार बैठि मुख देखा ।--कबीर (शिष्टु०),
पृ० १६४ ।

दिठियार^३—वि० [हि० दीठ (= दृष्टि) + ह्यार (प्रत्य०)]
देखनेवाला । आँखवाला । जिसे दिखाई देता हो ।

दिठोना—संज्ञा पुं० [हि० दीठ + ओना (प्रत्य०)] दे० 'दिठोना' ।
उ०--इत दागुनो प्रकु है दिएँ एक ज्यों दिठु । दिएँ दिठोना
यो -री जानन गोभा हँदु ।--मति० ग्रं०, पृ० ४५३ ।

दिठोना^१—संज्ञा पुं० [हि० दीठ (= दृष्टि) + ओना (प्रत्य०)]
बच्चों के नख में भी के कोने के समीप लगा हुआ काजल
का बिंदु जो दाँट का दोष भात करने को लगाया जाता है ।
बहु बिंदी जो बालकों को नजर से बचाने के लिये लगाई
जाती है ।

क्रि० प्र०--लगाना ।

दिठु^१—वि० [सं० दृढ़, पा० दिठ, दिड] 'दृढ़' । उ०--जोगी
बार भाव गो जेहि दिठु के भाव । जो निरास दिठु भासन,
कत गवने केहु पाव ।--नयनो ग्रं०, पृ० २६८ ।

दिठुता^१—संज्ञा स्त्री० [सं० दृढ़ता] दे० 'दृढ़ता' ।

दिठुई^१—संज्ञा स्त्री० [हि० दिठ + ई (प्रत्य०)] दे० 'दृढ़ता' ।

दिठाना^१—क्रि० सं० [सं० दृढ़ + णाना (प्रत्य०)] १. पक्का
करना । दृढ़ करना । मजबूत करना । २. निश्चित करना ।
उ०--है दिठाइये जोग जो ताको करत दिठाव ।--भूपण
ग्रं०, पृ० ५० ।

दिठाव^१—संज्ञा स्त्री० [सं० दृढ़ता शब्दवा हि० दिठ + णा (प्रत्य०)]
दृढ़ बनना । दृढ़ता युक्त करना । दे० 'दृढ़ता' । उ०--है दिठा-
इये जोग जो, ताको करत दिठाव ।--भूपण ग्रं०, पृ० ५८ ।

दिणंद^१—संज्ञा पुं० [सं० दिनंद] सुयं । उ०--नजर परबखे
राठवड़, प्रकबर तेज दिणंद । जोगे त्योंम प्रमान सम, जोग
प्रमट्टयो हँद ।--रा० क०, पृ० १०६ ।

दिणयर, दिणियर^१—संज्ञा पुं० [सं० दिनकर; प्रा० दिणयर]
दे० 'दिनकर' । उ०--आडा हँगर भुईं चणी, ति यो मिलीजइ
एम । मनिं शिणहि न भोइइयइ, चकरो दिणियर जेम ।
--दोहा०, पृ० ७२ ।

दित—वि० [सं०] विभक्त । कटा हुआ । छिन्न । खंडित [को०] ।

दितवार^१—संज्ञा पुं० [सं० आदित्यवार] दे० 'आदित्यवार' ।

दिति^१—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. कश्यप ऋषि की एक स्त्री जो दक्ष
प्रजापति की एक कन्या और दैत्यों की माता थी ।

विशेष--जब इनके सब पुत्र (दैत्य) इंद्र और देवताओं द्वारा
मारे गए तब इन्होंने अपने पति कश्यप ऋषि से कहा कि अब
मैं ऐसा पराक्रमी पुत्र चाहती हूँ जो इंद्र का भी वध कर सके ।
कश्यप ने कहा--इसके लिये तुम्हें सौ वर्ष तक गर्भ धारण
करना पड़ेगा और गर्भकाल में बहुत ही पवित्रतापूर्वक रहना
पड़ेगा । दिति को गर्भ हुआ और वह ६६ वर्ष तक बहुत
पवित्रतापूर्वक रहीं । अंतिम वर्ष में वह एक दिन रात के समय
बिना हाथ पैर धोए जाकर सो रहीं । इंद्र तब में लगे ही थे;
इन्हें अपवित्र अवस्था में पाकर उन्होंने इनके गर्भ में प्रवेश
किया और अपने वज्र से जरागु के सम ठुकड़े कर डाले । उस
समय शिशु इतने जोर से रोया और चिल्लाया कि इंद्र
चबरा गए । तब उन्होंने सातों तुकड़ों में से हर एक के फिर
सात सात ठुकड़े किए । ये ही उनचास खंड मरुत् कहलाते
हैं । दे० 'मरुत्' ।

विशेष--इस शब्द में 'पुत्र'वाची शब्द लगाने से 'दैत्य' अर्थ होता
है । जैसे, दितिसुत, दितितनय, दितिनंदन ।

२. तोड़ने या काटने की क्रिया । खंडन । ३. दाता । वह जो
देता हो ।

दिति^२—संज्ञा पुं० राजा । नरेश [को०] ।

दितिकुल—संज्ञा स्त्री० [सं०] दैत्यवंश ।

दितिज—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० दितिजा] दिति से उत्पन्न दैत्य ।

दितिननय—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'दितिसुत' [को०] ।

दितिपुत्र—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'दितिसुत' [को०] ।

दितिसुत—संज्ञा पुं० [सं०] दैत्य । राक्षस । असुर ।

दित्य^१—संज्ञा पुं० [सं०] दैत्य ।

दित्य^२—वि० जो छेदने या काटने के योग्य हो ।

दित्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] दान करने की इच्छा ।

दित्सु—वि० [सं०] जो दान करना चाहता हो ।

दित्स्य—वि० [सं०] दान करने योग्य । जो दान किया जा सके ।

दिदार^१—संज्ञा पुं० [प्रा० दादार] दे० 'दीदार' । उ०--मोर तोर
एतन दिदार बढ़ि नहि पाइव हो ।--धरम०, पृ० ६३ ।

दिदारी^१—संज्ञा स्त्री० [प्रा० दीदार] दीदारी । वसन होना । उ०--
यही दिदारी दार है सुनहु मुसाफर लोग ।--पलटू०, भा० १
पृ० २२ ।

दिदोरा—संज्ञा पुं० [हि० दिदोरा] दे० 'ददोरा' । उ०--इसकी
परवा न रही कि ताजा हवा मिलती है या नहीं, भोजन कैसा
मिलता है, कपड़े कितने मेले हैं, उनमें कितने बिलवे पड़े हुए
हैं कि खुजाते खुजाते देह में दिदोरे पड़ जाते हैं ।--काया०,
पृ० २८२ ।

दिहत्ता—संज्ञा स्त्री० [सं०] देखने की अभिलाषा ।

दिहत्तु—वि० [सं०] जो देखना चाहता है ।

दिगृहेण्य—वि० [सं०] दे० 'दिदृक्षेण्य' ।

दिदृक्षेय—वि० [सं०] दर्शनीय । जो देखने योग्य हो ।

दिद्यु—संज्ञा पुं० [सं०] १. द्योतित वज्र । २. वाण । ३. आकाश ।
धोम (को०) ।

दिधि—संज्ञा पुं० [सं०] १. धीरता । धैर्य । २. धारण करने की क्रिया ।

दिधिषु—संज्ञा पुं० [सं०] १. पहले एक बार ग्याही हुई स्त्री का दूसरा पति । २. गर्भाधान करनेवाला मनुष्य ।

दिधिषू—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह स्त्री जिसके दो ग्याह हुए हों ।
द्विकृता । २. वह स्त्री या कन्या जिसका विवाह उसकी बड़ी बहन के विवाह के पहले हुआ हो ।

दिधिषूपति—संज्ञा पुं० [सं०] १. दे० 'दिधिषु' । २. वह व्यक्ति जो अपने भाई की विधवा स्त्री से विषयरत होता हो (को०) ।

दिधीषू—संज्ञा स्त्री० दे० [सं०] 'दिधिषू' (को०) ।

दिन—संज्ञा पुं० [सं०] १. उतना समय जिसमें सूर्य क्षितिज के ऊपर रहता है । सूर्योदय से लेकर सूर्यास्त तक का समय । सूर्य की किरणों के दिखाई पड़ने का सारा समय ।

विशेष—पृथ्वी अपने अक्ष पर घूमती हुई सूर्य की परिक्रमा करती है । इस परिक्रमा में इसका जो आधा भाग सूर्य की ओर रहने के कारण प्रकाशित रहता है, उसमें दिन रहता है, बाकी दूसरे भाग में रात रहती है ।

मुहा०—दिन को तारे दिखाई देना = इतना अधिक मानसिक कष्ट पहुँचना कि बुद्धि ठिकाने न रहे । दिन को दिन रात को रात न जानना या समझना = अपने सुख या विश्राम आदि का कुछ भी ध्यान न रखना । जैसे,—इस काम के लिये उन्होंने दिन को दिन और रात को रात न समझा । दिन बढ़ना = सूर्योदय होना । सूर्य निकलने के उपरान्त कुछ समय बीतना । दिन छिपना = सूर्यास्त होना । संध्या होना । दिन ढबना = सूर्य ढूँढ़ना । संध्या होना । दिन उलटना = संध्या का समय निकट आना । सूर्यास्त होने को होना । दिन दहाड़े या दिन दिहाड़े = बिलकुल दिन के समय । ऐसे समय जब कि सब लोग जागते और देखते हों । जैसे,—दिन दहाड़े उनके यहाँ, दस हजार की चोरी हो गई । दिन दोपहर या दिन बीले = दे० 'दिन दहाड़े' । दिन दूनी रात चौगुना होना या बढ़ना = बहुत जल्दी जल्दी और बहुत अधिक बढ़ना । खूब उन्नति पर होना । जैसे,—भाजकल उनकी जमींदारी दिन दूनी रात चौगुनी हो रही है । उ०—जो दिन दूनी और रात चौगुनी उन्नति करता ही चला जाता । —प्रेमघन०, भा० २, पृ० ३१२ । दिन निकलना = दिन बढ़ना । सूर्योदय होना । दिन बूढ़ना = दे० 'दिन ढूँढ़ना' । दिन मुँदना = दे० 'दिन बूढ़ना' । दिन होना = दिन निकलना । सूर्य उदय होना । दिन बढ़ना ।

को०—दिन रात = सर्वदा । सदा । हर वक्त ।

२. उतना समय जिसमें सूर्य पृथ्वी एक बार अपने अक्ष पर घूमती है अथवा पृथ्वी के किसी विशिष्ट भाग के दो बार सूर्य के सामने आने के बीच का समय । आठ गहर या चौबीस घंटे का समय ।

विशेष—साधारणतः दिन दो प्रकार का माना जाता है—एक नाक्षत्र, दूसरा सौर या सावन । नाक्षत्र उतने समय का होता है जितना किसी नाक्षत्र को एक बार, याम्योत्तर रेखा पर से होकर जाने और फिर दुबारा याम्योत्तर रेखा पर आने में लगता है । यह समय ठीक उतना ही है जितने में पृथ्वी एक बार अपने अक्ष पर घूम चुकती है । इसमें बटनी पड़ती नहीं होती, इसी से ज्योतिषी नाक्षत्र दिनमान का व्यवहार बहुत करते हैं । सूर्य को याम्योत्तर पर से होकर जाने और फिर दोबारा याम्योत्तर रेखा पर आने में जितना समय लगता है उतने समय का सौर या सावन दिन होता है । नाक्षत्र तथा सौर दिन में प्रायः कुछ न कुछ अंतर हुआ करता है । यदि किसी दिन याम्योत्तर रेखा पर एक ही स्थान पर और एक ही समय सूर्य के साथ कोई नाक्षत्र भी हो तो दूसरे दिन उसी स्थान पर नाक्षत्र तो कुछ पहले आ जायगा पर सूर्य कुछ मिनटों के उपरान्त आवेगा । यद्यपि नाक्षत्र और सावन दोनों प्रकार के दिन पृथ्वी के अक्ष पर घूमने से संबंध रखते हैं, और नाक्षत्र के याम्योत्तर पर आने में बराबर उतना ही समय लगता है, तथापि सूर्य याम्योत्तर पर ठीक उतने ही समय में मंदा नहीं आता, कुछ कम या अधिक समय लेता है, जिसके कारण सौर दिन का मान भी बटता बढ़ता रहता है । अतः हिमाचल ठीक रखने और सुभीते के लिये एक सौर वर्ष को तीन सौ साठ भागों में विभक्त कर लेते हैं और उनके एक भाग को एक सौर दिन मानते हैं । हिंदुओं में दिन का मान सूर्योदय से सूर्योदय तक होता है और प्रायः सभी प्राचीन जातियों में सूर्योदय से सूर्योदय तक दिन का मान होता था । भाजकल हिंदुओं और एशिया की दूसरी अनेक जातियों में तथा युरोप के आस्ट्रिया, टर्की और इटली देश में भी सूर्योदय से सूर्योदय तक दिन माना जाता है । यूरोप के अधिकांश देशों तथा मिस्र और चीन में आधी रात से आधी रात तक दिन माना जाता है । प्राचीन रोमन लोग भी आधी रात से ही दिन का प्रारंभ मानते थे । भाजकल भारतवर्ष में सरकारी कामों में भी दिन का प्रारंभ आधी रात से ही माना जाता है । पर अपनी गणना के लिये योरोप के ज्योतिषी मध्याह्न से मध्याह्न तक दिन मानते हैं ।

मुहा०—दिन दिन या दिन पर दिन = नित्य प्रति । सदा । हमेशा । हर रोज ।

३. समय । काल । वक्त । जैसे,—(क) इतने दिन की रखी हुई चीज इसने खो दी । (ख) भले दिन, बुरे दिन ।

मुहा०—दिन काटना = समय बिताना । किसी तरह समय गुजार देना । दिन गंवाना = बुरा समय खोना । दिन पूरे करना = निबाह करना । समय बिताना । दिन बिगड़ना = बुरे दिन होना । विपत्ति का अवसर आना । दिन भुगताना दिन काटना । समय बिताना ।

यौ०—पतले दिन = नाशुक वक्त । बुरे दिन । छोटे दिन ।

क्रि० प्र०—चिताना । चेतना ।

४. नियत या उपयुक्त काल । निश्चित या उचित समय । जैसे, —
कोई दिन दिखाकर चलेंगे । (ख) अब हमके दिन पूरे हो गए,
यह मरेगा ।

मुहा०—दिन घाना = समय पूरा हो जाना । प्रतिम समय घाना ।
दिन धरना = रीति ठहराना । दिन निश्चित करना । विवाह
की बिदाई का दिन स्वीकार करना । दिन पगाना = दिन
स्थिर करना । दिन निश्चित करना । मुर्त निश्चितवाना ।
उ०—अनि परम पुरर पागना गच्छि न्याय रे बहैया । × ×
× × × पालनो आनो सचहि अनि मन मायो नोको नो
दिन धराइ सपिन मगल गनाय रंग महल में पोढयो है
कन्हैया ।—सूर (शब्द०) । दिन पूरे होना या दिन पूरे हो
जाना = मृत्यु का समय आना । जिनकी पूरी होना । उ०—
रात्री, जिरगी के दिन ना पूरे हो गए । अब हम के दम का
मेहमान है । फिसाना०, भा० २, पृ० ८७ ।

५. विशेष रूप से धिक्काया जानेवाला काल । वह समय जिसके
बीच कोई विशेष बात हो । जैसे, अक्टूबर या बुरे दिन, गर्म के
दिन, जवानी का दिन ।

मुहा०—दिन गढ़ना = किसी श्री का सम्मेलन होना । दिन
पढ़ना = कुसमय का आना । गुप्त समय आना । दिन
फिरना = दुर्भाग्य का । दे उलगाव सौभाग्य का आना । बुरे
दिनों के बाद अच्छे दिन आना । उ०—दिन घोर रात्रि का
सा अन्तर हो जाता । बहुत बड़ा फल पड़ जाता । महान
अन्तर हो जाता । उ०—उत्तरार्ध और नाराज किन्तु हकी
पुष्टी के पुराण घोर आन हो मे दिन घोर रात्रि का सा
अन्तर हो गया है । अमरनाथ, भा० २, पृ० १८५ । दिन
को घोर रात्रि से अन्तर मन में उभरे ताड़न और कभी कम-
जोरी होगा । अभी राहगी घोर हम परतहिमान होना ।
दहना का प्रभाव होता । उ०—अपम-एरा भी उर किम काम
का । दिन को गरम रात्रि से अन्तर । फिसाना०, भा० ३, पृ०
२२७ । दिन पढ़ने । पढ़ी न देहना = दिन घोर मूर्त का
विचार न करना । उ०—यमपति दिन घरी न देखा । तब
हो तब रोइ गयेगा ।—नारसी यों (गुप्त) पृ० २०६ । दिन
छो देना = सुन्दर और मन मुर्त आना । उ०—गर्ज जो
चल गीत गति दे । तेरा दान गरी रही हो देई ।—जायसी
ग्रं० (गुप्त), पृ० २०६ । दिन बहुरता = दिन से अच्छे दिन
आना । दिन फिरना । उ०—घोर रम वक्त न । नवाय साहब
ने हुकरा मीठा सा दहलरी । तम फनगिरी से नव भुंके थे ।
मेन और दिन कि या न दान । उ०—अब नये के दिन बहुरे ।
—तोर०, उ० २७ । दिन भरना = दुर्भाग्य का काल घिसाना ।
बुरे दिन का । दिन लौटना = दे० दिन बहुरता । दिनों से
उत्तरना = दानों उभरना । दुर्भावस्था का बीत जाना ।

दिन^२—क्रि० वि० लट् । प्रत्येक । दिन प्रतिदिन । उ०—(क) बावरो
राखरो नाह मयानी । दानी बड़ी दिन देत दिए बिनु देव बड़ाई
भाभी ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) गुरु पितु मातु महेश

भवानी । प्रणवर्द्ध दीनबंघु दिन दानी ।—तुलसी (शब्द०) ।
(ग) हिबोरे कूलत लाल दिन पूलह दुलहिन बिहारी देखि री
ललना ।—हरिदास (शब्द०) ।

दिनअर(पु)—संज्ञा पुं० [सं० दिनकर, प्रा० दिगम्बर] सूर्य । दिनकर
उ०—(क) कीन्हेमि दिन, दिनअर, ससि राती । कीन्हेसि
नखा तराइन पाती ।—जायसी ग्रं०, पृ० १ । (ख) गहन
रूट दिगम्बर कर ममि मों भएउ मेराव । मंदिर सिंहासन
माजा बाजा नगर बधाव ।—जायसी (शब्द०) ।

दिनकंत(पु)—संज्ञा पुं० [सं० दिन + हि० कंत (= कान)] सूर्य ।

दिनकर—संज्ञा पुं० [सं०] १. सूर्य । २. आक । मंदार ।

यौ०—दिनकरकन्या । दिनकरतनय = दे० 'दिनकरसुत' । दिनकर-
तनया, दिनकरमुता = यमुना ।

दिनकरकन्या—संज्ञा स्त्री [सं०] यमुना । उ०—सुरसरि सरसइ दिनकर
कन्या । मेकल सुता गोदावरि धन्या ।—मानस, २।१३५ ।

दिनकरसुत—संज्ञा पुं० [सं०] १. यम । २. भनि । ३. सुप्रिय । ४.
धन्विनीकुमार । ५. कर्ण ।

दिनकरसुता—संज्ञा स्त्री [सं०] यमुना ।

दिनकर्ता—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'दिनकर' ।

दिनकृत—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'दिनकर' ।

दिनकेश, दिनकेशव—संज्ञा पुं० [सं०] अंधकार । अंधेरा ।

दिनक्षय—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'तिथिक्षय' ।

दिनचर्या—संज्ञा स्त्री [सं०] दिनभर का काम धंधा । दिन भर का
वर्तमान कर्म ।

दिनचारो—संज्ञा पुं० [सं० दिनचारिन्] दिन को चलनेवाला सूर्य ।

दिनउद्योति—संज्ञा स्त्री [सं० दिनउद्योतिम्] १. दिन का उजाला ।
२. धूप । घाम ।

दिनताई(पु)—संज्ञा स्त्री [सं० दीन, हि० दिन + ताई (प्रत्य०)]
दे० 'दीनता' । उ०—नागहि एहह एहह दुनिया में, गहे रहह
दिनताई ।—जग० भ०, भा० २, पृ० ८६ ।

दिनताया—संज्ञा स्त्री [सं० दीनता, हि० दिनताई] दे० 'दीनता' ।
उ०—तजहू गर्व गुमान में न हिये रहू दिनताय ।—जग०
बानी० पृ० ६६ ।

दिनदानी(पु)—संज्ञा पुं० [सं० दिन + दानी] प्रतिदिन दान करने-
वाला । रोज देनेवाला । गरीबपरवर ।

दिन दिन—क्रि० वि० [सं० दिनानुदिन] प्रतिदिन । कालक्रम से
रोजमर्रा । उ०—दिन दिन सप्रगुन भूपति भाऊ । देखि सराह
महा मुनि राऊ ।—मानस, १ । ३६० ।

दिनदीन(पु)—संज्ञा पुं० [सं० दिन + दीन] दिन दिन दीन । अत्यंत दीन ।
उ०—ऐसे दिनदीन पै क्या न छाई दई तोहि । बिष सोमो
निषम बियोग सर भारते ।—घनानंद, पृ० ५६ ।

दिनदोष—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य ।

दिनदुःखित—संज्ञा पुं० [सं०] चकवा पक्षी ।

दिनदूल्हा(पु)—संज्ञा पुं० [सं० (प्रति) दिन + हि० दूल्हा] प्रतिदिन
दूल्हा । उ०—सुंदर सावरे तै दिनदूल्हा चोप चहूँ दिस और
दरे जू ।—घनानंद, पृ० १३६ ।

दिनारा^१—वि० [सं० दि० + हि० आर (प्रत्य०)] बहुत दिनों का ढेरदिनी। पुराना।

दिनारा^२—वि० [सं० दिनारु] बहुत दिनों का। पुराना।

दिनार्द्ध—संज्ञा पुं० [सं०] मध्याह्न। दोपहर।

दिनाचा—संज्ञा स्त्री० [देश०] प्रायः ह्रास भर लंबी एक प्रकार की मछली जो हिमालय तथा आसाम की नदियों में पाई जाती है। हरद्वार में यह बहुत अधिकता से होती है।

दिनास्त—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्यास्त। दिनांत। संध्या।

दिनिधर—संज्ञा पुं० [सं० दिनकर] दे० 'दिनकर'।

दिनिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक दिन का वेतन या मजदूरी।

दिनियर^(१)—संज्ञा पुं० [सं० दिनकर प्रा० बिगियर] सूर्य।

दिनी—वि० [हि० दिन + ई (प्रत्य०)] बहुत दिनों का पुराना। प्राचीन। उ०—मसी बुद्धि तेरे जिय उपजी। ज्यों ज्यों दिनी आई त्यों निपजी।—सूर (शब्द०)।

दिनेर—संज्ञा पुं० [सं० दिनकर, हि० दिनियर] सूर्य। दिनकर। उ०—अनघन तीन सेर निशि माँहा। हो दिनेर जेहि के तू छाँहा।—जायसी (शब्द०)।

दिनेश—संज्ञा पुं० [सं०] १. सूर्य। उ०—दिनेश वंश मंडनं। महेस नाप खंडनं।—मानस, ३।४। २. प्राक। मदार। ३. दिन के अधिपति ग्रह।

दिनेशात्मज—संज्ञा पुं० [सं०] १. सूर्य के पुत्र कनि। २. यम। ३. मृषीव। ४. कर्ण।

दिनेशात्मजा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. यमुना। २. तापती नदी [को०]।

दिनेश्वर—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'दिनेश'।

दिनेस—संज्ञा पुं० [सं० दिनेश] दे० 'दिनेश'। उ०—लोल दिनेस त्रिलोचन लोचन करनघंट घंटा सी।—तुलसी ग्रं०, पु० ४६५।

दिनोदिन—क्रि० वि० [सं० दिनन्दिन] प्रतिदिन। अनुदिन। उ०—सिर पर बैठा काल दिनोदिन बाढा पूजे।—पलटू, भा० १, पु० २०।

दिनौधी—संज्ञा स्त्री० [हि० दिन + धी + ई (प्रत्य०)] आँख का एक प्रकार का रोग जिसमें दिन के समय सूर्य की तेज किरणों के कारण बहुत कम दिखाई देता है।

दिपट—संज्ञा स्त्री० [सं० दीप्ति] दे० 'दीप्ति'। उ०—दिपट पटी है नभ नखत जटी है अक्र रनन पटी है रटी राटी चुरवान में।—पद्मस, पु० १०।

दिपति^(१)—संज्ञा स्त्री० [सं० दीप्ति] दे० 'दीप्ति'।

दिपना^(१)—क्रि० प्र० [सं० दीप्ति] चमकना। प्रकाशमान होना। उ०—कोटि भानु दुति दिपत है मोहन क्षिपुरी खोर। याते बरनी छोट है द्य हेरत वह मोर।—रसनिधि (शब्द०)।

दिपना^(२)—क्रि० प्र० चमकना। प्रकाशित होना। दे० 'दिपना'। उ०—जनक कलस मुख बंद दिपानी। रहस केसि सन आवहि जाहीं।—जायसी (शब्द०)।

दिपना^(३)—क्रि० प्र० [हि० दिपना] दोष करना। चमकाना। प्रकाशित करना।

दिप्त—संज्ञा स्त्री० [सं० दीप्ति] दे० 'दीप्ति'। उ०—राति नहि तहें दिवस नाही, अजब दिप्त सुहाय।—जग० बानी, पृ० १२०।

दिष—संज्ञा पुं० [सं० दिष्य] वह परीक्षा जो निर्दोषता या अपने कथन की सत्यता प्रमाणित करने के लिये कोई दे। जैसे, अभिपरीक्षा आदि। उ०—(क) बाहे को अपराध लगावति कब कीनी हम चोरी।... जैसे जब चाहो तब तैसे बावन दिष में देहों।—(शब्द०)। (ख) माप सभा सावर लबार भए देव दिष दुसह सासति कीबे प्रागे ही या तन की।—तुलसी (शब्द०)।

दिषि—वि० [सं० दिष्य] दे० 'दिष्य'। उ०—दिषि दृष्टि करि जब देषिए तब सकल ब्रह्म बिलास दे।—सुंदर० प्र०, भा० २, पु० ८३१।

दिष्वा—संज्ञा पुं० [सं० दिष्य] दे० 'दिष्य'। उ०—कहि कै सुभे छोड़ि दई पाती। जानहु दिब्ब छुपत तसि ताती।—पद्मावत पु० २७४।

दिमंकर^(१)—संज्ञा पुं० [सं० दिवाकर] सूर्य। सहस्ररश्मि। सहस्रार। उ०—रनक झुनक बाजै आदि भक्षर विमंकर बजि तार हो।—कबीर सा०, पु० ८८।

दिमंकर सो—वि० [सं० दि + उत्तर + शत] सो घोर दो। एक सो दो।

विशेष—इसका व्यवहार पहाड़े में होता है। जैसे, सत्तरह छके दिमंकर सो—१७ × ६ = १०२।

दिमाक^(१)—संज्ञा पुं० [अ० दिमाग] दे० 'दिमाग'। उ०—बैठघी बिनोद भरघी दिन दूलह कंत दिली को दिमाक मवाई।—हम्मीर०, पु० ६।

दिमाकदार^(१)—वि० [हि०] दे० 'दिमागदार'। उ०—सोहते सवार सारदार जे दिमाकदार जुड़ माँहि ऋड जे अदम्य ठहरात हैं।—गोपाल (शब्द०)।

दिमाग—संज्ञा पुं० [अ० दिमाग] १. सिर का गुदा। मस्तिष्क। मेजा।

मुहा०—दिमाग खाना या चाटना = व्यर्थ की बातें कहना जिससे किसी के सिर में दर्द होने लगे। बहुत बकवाद करना। जैसे,—आजकल वे रोज सबेरे आकर दिमाग चाटते (या खाते) हैं। दिमाग खाली करना = दिमाग चाटना। ऐसा काम करना जिसमें मानसिक शक्ति का बहुत अधिक व्यय हो। मगजपच्ची करना। जैसे,—उन्हें सब बातें समझाने के लिये हमें घंटों दिमाग खाली करना पड़ा। दिमाग बढ़ना या आस्मान पर होना = बहुत अधिक धमंड होना। अभिमान होना। दिमाग न पाया जाना या न मिलना = दिमाग बढ़ना। दिमाग परेशान करना = दे० 'दिमाग खाली करना'। दिमाग में खलल होना = मस्तिष्क में ऐसा विकार उत्पन्न होना जिससे विवेक शक्ति न रह जाय। सिक्की होना। पागल होना।

यौ०—दिमागचट। दिमाग रोजन।

२. मानसिक शक्ति। बुद्धि। समझ। जैसे,—(क) उनका दिमाग अच्छा है, सब मामला बहुत जल्दी समझ लेते हैं। (ख) जरा दिमाग लगाओ, कोई उपाय निकल ही आवेगा।

मुहा०—दिमाग लड़ाना = बहुत अच्छी तरह विचार करना।

खूब सोचना । जैसे,—इस काम में बहुत दिमाग लगाने की जरूरत है ।

यौ०—दिमागदार ।

३. अभिमान । घमंड । शेखी ।

क्रि० प्र०—करना ।—रखना ।—होना ।

मुहा०—दिमाग झड़ना = अहंकार नष्ट होना । अभिमान टूटना ।

यौ०—दिमागदार ।

दिमागचट—वि० [अ० दिमाग + हि० चट (= चाटना)] बहुत अधिक बकवाद करके दूसरों को व्याकुल करनेवाला । बक्की ।

दिमागदार—वि० [अ० दिमाग + फ्रा० दार (प्रत्य०)] १. जिसकी मानसिक शक्ति बहुत अच्छी हो । बहुत बड़ा समझदार । २. अभिमानो । घमंडी ।

दिमागदारी—संज्ञा स्त्री० [अ० दिमाग + फ्रा० दार + ई (प्रत्य०)] १. दिमागदार होना । समझदारी । २. मगरूरी । अभिमान ।

दिमागरीशन—संज्ञा पुं० [अ० दिमाग + फ्रा० रीशन] मगरूरीजन । नास । सुधनी ।

दिमागी—वि० [अ० दिमाग + हि० ई (प्रत्य०)] १. दिमाग का । दिमाग संबंधी । २. ३० 'दिमागदार' ।

दिमात^७—संज्ञा पुं०, वि० [सं० दिमातृ] दो माताओंवाला । वह जिसकी दो माताएँ हों ।

दिमात^२—वि०, संज्ञा पुं० [सं० दिमातृ] वह जिसमें दो माताएँ हों । दो माताओंवाला ।

दिमान^७—संज्ञा पुं० [फ्रा० दीमान] दीवान । मंत्री । उ०—मुदिमान दूनहूँ दिमान खुमान सिंह सुतान में ।—पद्माकर प्र०, पृ० २३ ।

दिमाना^७—वि० [फ्रा० दीवानहूँ] [वि० स्त्री० दिमानी] ३० 'दिवाना' । उ०—स्थाम मचन घन घेरि के रस बरस्यो रसखानि । भई दिमानी पान करि, प्रेम मद्य मनभानि ।—रसखान०, पृ० १६ ।

दिम्भसा^१—संज्ञा स्त्री० [हि० दुरमट] घ.स.शर तेलों को जमा करके दुरमट से घोटने का क्रिया ।

दियंदा^१—वि० [प०] देनेवाला । उ०—साजा भना यमपत्र, दान दियंदा दीह ।—बाँकी० प्र०, भा० १. पृ० ४६ ।

दियट^१—संज्ञा स्त्री० [सं० दीरपट्ट या दीरपट्ट या दीरपीठ] ३० 'दीपट' ।

दियत^१—संज्ञा स्त्री० [हि० देना] वह धन जो किसी को मार डालने या भंग भंग करने के बदले में दिया जाय ।

दियना^७—क्रि० प्र० [सं० दीत] दीप्त होना । दिपना । चमकना । उ०—बाल केलि बात बय भलकि अलमलत सोभा की दीयट मानो रूप दीप दियो है ।—तुलसी प्र०, पृ० २७३ ।

दियना^१—संज्ञा पुं० [सं० दीप] ३० 'दीपा' ।

दियरा—संज्ञा पुं० [सं० दीप, हि० दीपा, दीया (= छोटा कसोरा) + रा (प्रत्य०)] १. एक प्रकार का पकवान जिसे मीठा भिले हुए घाटे की खोई बनाकर भीर उसके बीच में घंगूठे से गड़ा

करके घी या तेल में तलकर बनाते हैं । लोई में घंगूठे से गड़ा करने पर उसका आकार दीए का सा हो जाता है । २. ३० 'दीपा' । ३. वह बड़ा सा लुक जो शिकारी हिरनों को आकर्षित करने के लिये जलाते हैं । उ०—सुभग सकल भंग अनुज बालक संग देखि नरनारि रहैं ज्यों कुरंग दियरे ।—तुलसी प्र०, पृ० १६१ ।

दियरी—संज्ञा स्त्री० [हि० दीया] ३० 'दीया' ।

दियला^१—संज्ञा पुं० [हि० दीया + ला (प्रत्य०)] ३० 'दीया' । उ०—उर दियला राख्यो जु मैं सरस सनेह भराइ ।—स० सप्तक, पृ० १८२ ।

दियबा^१—संज्ञा पुं० [हि० दीया] ३० 'दीया' ।

दियार^१—संज्ञा स्त्री० [हि०] ३० 'दीमक' ।

दिया^१—संज्ञा पुं० [सं० दीपक] ३० 'दीया' । उ०—दिया मंदिर निसि करे झंझोरा । दिया नाहि घर मूमहि चोरा ।—जायसी (शब्द०) ।

दिया^२—क्रि० सं० [हि० देना] 'देना' क्रिया का सामान्य भूतकाल का एकवचन रूप ।

दियानत—संज्ञा स्त्री० [अ० दयानत] ३० 'दयानत' ।

दियानतदार—वि० [अ० दयानत + फ्रा० दार] ३० 'दयानतदार' ।

दियानतदारी—संज्ञा स्त्री० [अ० दयानत + फ्रा० दारी] ३० 'दयानतदारी' ।

दियाबत्ती—संज्ञा स्त्री० [हि० दीया + बत्ती] (संध्या के समय) दीया जलाने का काम ।

दियारा—संज्ञा पुं० [फ्रा० दयार (= प्रदेश)] १. नदी के किनारे की वह जमीन जो नदी के सूठ जाने पर निकल आती है । कछार । खावर । दरिया बरार । २. दयार । प्रदेश । प्रांत । उ०—का बरनउं धनि देस दियारा । जहँ मस नग उपजा उँजियारा ।—जायसी (शब्द०) ।

दियासलाई—संज्ञा स्त्री० [हि० दीया + सलाई] लकड़ी की वह तीली या सलाई जो रगड़ने से जल उठती है ।

विशेष—यह प्रायः एक अंगुल या इससे कुछ कम लंबी और पतली लकड़ी की सलाई होती है जिसके एक सिरे पर गंधक आदि कई जमकनेवाले मसाले लगे होते हैं । इस सिरे को रगड़ने से धाग निकलती है जिससे सलाई जलने लगती है । जिस सलाई के सिरे पर गंधक लगी होती है वह हर एक कड़ी चीज पर रगड़ने से जल उठती है; पर जिसके सिरे पर अन्य मसाले लगे होते हैं वह विशिष्ट मसालों से बने हुए तल पर ही रगड़ने से जलती है । इसके प्रतिरिक्त चिनगारी या धाग से इस सिरे का स्पर्श कराने से भी सलाई जल उठती है । छोटी चोकोर डबिया में दियासलाई बंद रहती है; और उसी डबिया के पार्श्व पर वह मसाला लगा होता है जिसपर रगड़ने से सलाई जलती है । लकड़ी के प्रतिरिक्त एक प्रकार की मोम की बनी हुई दियासलाई होती है जो अपेक्षाकृत अधिक समय तक जलती रहती है । आश्चर्य वैज्ञानिकों ने कागज आदि की भी सलाई बनाई है । सलाई का व्यवहार दीया जलाने और धाग सुलगाने आदि के लिये होता है ।

क्रि० प्र०—चिसना ।—जलाना ।—रगड़ना ।

मुहा०—दियामलाई लगाना = प्राग लगाना । जमाना । जैसे,—
यह किताब तो दियामलाई लगाने लायक है ।

दिरंग—संज्ञा स्त्री० [प्रा० दिरंग, दरंग] देर । विलंब । भालम्ह ।
सुस्ती । उ०—गनीमत है फुरत कल कया दिरंग । के दुनिया
किसी सूँ नहीं एक रंग ।—दक्खिनी० पृ० ८१ ।

दिर—संज्ञा पुं० [अनु०] गितार का एक बोल । जैसे—दिर दा दिर
दारा दारा दा दार दार दा दार । दिर दा दिर दारा दा दिर
दारा दा दिर दारा दार दार दा दार ।

दिरद(५)—संज्ञा पुं० [सं० दिरद] दे० 'दिरद' ।

दिरम—संज्ञा पुं० [फ० दरहम] १. मिस्र देश का चाँदी का एक
सिकका । दिरहम । २. साढ़े तीन मासे की एक तील । ३.
फारस का एक पुराना मोने का सिक्का ।

दिरमानी—संज्ञा पुं० [प्रा० दरमानह] चिकित्सा । इलाज ।

दिरमानी—संज्ञा पुं० [फा० दरमानह (= चिकित्सा) + ई (प्रत्य०)]
वैद्य । चिकित्सक । इलाज करनेवाला । उ०—मैं हरि सभन
करे न जानी । जग प्रामय भगज न कीन्ह नस, दोष कहा दिर-
मानी ।—तुलसी (शब्द०) ।

दिरहम—संज्ञा पुं० [फ० दरहम] दिरम नाम का सिक्का ।
दे० 'दिरम' ।

दिराज(५)—संज्ञा पुं० [सं० दिवराज] चंद्रमा । शशि । उ०—दंतन
सो दिग्गज दुरंतर दबाइ दोह, दीपति दिराजु चारु चटन, के
नह है ।—सुजान०, पृ० ८ ।

दिरानी—संज्ञा स्त्री० [हिं० देवराणी] दे० 'देवराणी' । उ०—सुनहु
जिठानी सुनहु दिगानी अरज एक भयी ।—कबीर ग्रं०,
पृ० ३०२ ।

दिरियक—संज्ञा पुं० [सं०] कंदुक । गेंद (गो०) ।

दिरिस(५)—संज्ञा पुं० [सं० दश्य] दे० 'दृश्य' ।

दिरस—संज्ञा पुं० [अं० ड्रेम] १. महीन कपड़े पर धड़ी हुई एक प्रकार
की छींट । बरेस । २. सँवारने या ठोक करने की क्रिया ।

दिरस^२—वि० संवारा या ठोका किया हुआ । पैम । दुस्त ।

दिहम—संज्ञा पुं० [फा० दरहम] दे० 'दिरम' ।

दिल—संज्ञा पुं० [फा०] १. कलेजा ।

मुहा०—दिल उलटना = दे० 'कलेजा उलटना' । दिन मनना =
दे० 'कलेजा मनना' । दिल मसोसकर रह जाना = दे०
'कलेजा मसोसकर रह जाना' । दिल धुकड़ धुकड़ या धुकुर
धुकुर करना अथवा होना = दे० 'कलेजा धुकड़ धुकड़ होना' ।
दिल धक धक करना या होना = दे० 'कलेजा धक धक करना' ।
२. मन । चित्त । हृदय । जी ।

शौ०—दिलगीज । दिलगुदा । दिलगना । 'दिलचस्प' । दिलचोर ।
दिलजमई । दिलजवा । दिल-रिया । दिलदोरयाव । दिलदार ।
दिलवर । दिलकबा ।

मुहा०—(किसी ने) दिल उलटना = दे० 'जी गगना' । (किसी
से) दिल घटकना = दे० 'जी लगाना' । (किसी पर) दिल
माना = दे० (किसी पर) 'जी माना' । दिल उकताना =

दे० 'जी उकताना' । दिल उलटना = दे० 'जी उलटना' । दिल
उचाट होना = दे० 'जी उचाट होना' । दिल उठना = दे० 'जी
हटना' । दिल उमड़ना = दे० 'जी भर जाना' । दिल
उलटना = (१) दे० 'जी धबराना' । (२) दे० 'जी मिचलाना' ।
दिल उठाना = चित्त हटाना । मन फेर लेना । दिल कड़ा
करना = हिम्मत बाँधना । साहस करना । चित्त में दृढ़ता
लाना । दिल कड़वा करना = दे० 'दिल कड़ा करना' । दिल
कबाब होना = दे० 'जी जलना' । दिल करना = दे० 'जी
करना' । दिल का कँदल खिलना = चित्त प्रसन्न होना ।
मन में आनंद होना । दिव का गवाही देना = मन को
किसी बात की संभावना या भविष्य का निश्चय होना ।
इस बात का विचार में आना कि कोई बात होगी या
नहीं; अथवा यह बात उचित है या नहीं । जैसे,—(क)
हमारा दिल गवाही देता है कि वह जरूर आवेगा । (ख)
उनके साथ जाने के लिये हमारा जी गवाही नहीं देता ।
दिल का गुबार निकलना = दे० 'जी का गुबार निकलना' ।
दिल का बादशाह = (१) बहुत बड़ा उदार । (२) मनमौजी ।
लहरी । दिल का बुखार निकलना = दे० 'जी का बुखार
निकलना' । दिल का भर जाना = दे० 'जी भर जाना' ।
दिल का दिल में रहना = दे० 'जी की जी में रहना' ।
दिल की फाँस = मन की पीड़ा या दुःख । दिल की कली
खिलना = चित्त प्रसन्न होना । उ०—शहजादा हुमायूँ फर
के दिल की कली खिल गई । मुहममदी मुराद पाई ।
—फिसाना०, भा० ३, पृ० १२४ । दिल की सेन बुझाना =
मन की मुराद पूरी करना । उ०—बैद कोई ऐसा नहि
जिसे दिल की सेन बुझाऊँ ।—प्रेमधन०, भा० २, पृ० १८६ ।
दिल कुढ़ना = चित्त का दुःखी होना । रंज होना । दिल
कुढ़ाना = चित्त को दुःखी करना । रंज करना । दिल
कुम्हलाना = चित्त का दुःखी वा शोकाकुल होना । मन का
सुस्त हो जाना । (किसी के) दिव के दरवाजे खुलना =
जी का हाल मालूम होना । मन की बात प्रकट होना ।
दिल के फफोले फूटना = चित्त का उद्गार निकालना । दिल
के फफोले फोड़ना = हृदय का उद्गार निकालना । किसी
को मली बुरी सुनाकर अपना जी ठंडा करना । जली
कटी कहकर अपना चित्त शांत करना । दिल को करार
होना = चित्त में धैर्य या शांति होना । हृदय का शांत या
संतुष्ट होना । दिल को पत्थर करना = मन को कड़ा करना ।
मन में शक्ति लाना । उ०—दिल पत्थर करके सोचा ।—
किन्नर०, पृ० ३२ । दिल को मसोसना = शोक या क्रोध आदि
तीव्र मनोवेगों को मन में ही दबा रखना । चित्त के उद्गार
को किसी कारखवाश निकलने न देना । दिल को लगना =
हृदय पर पूरा या गहरा प्रभाव पड़ना । किसी बात का जी में
बैठना । चित्त में चुभना । जैसे,—उपकी सब बातें हमारे दिल
में लग गईं । दिल खट्टा होना = दे० 'जी खट्टा होना' । दिल
खटकना = दे० 'जी खटकना' । दिल खींच लेना = मन
मोह लेना । किसी का हृदय आकर्षित करना । उ०—क्यों न
दिल खींच से उपज आया, जो कि उपजी कमाव भी कुछ

ले।—बोले०, पु० ८। दिल खुलना=दे० 'जी खुलना'। दिल खिलना=चित्त प्रसन्न होना। मन का प्रफुल्लित होना। दिल खोलकर=दे० 'जी खोलकर'। दिल चलना=दे० 'जी चलना'। दिल चलाना=दे० 'मन चलाना'। दिल चुराना=दे० 'जी चुराना'। दिल जमना। (१) किसी काम में चित्त लगना। ध्यान या जी लगना। जैसे,—तुम्हारा दिन तो जमता ही नहीं, तुम काम कैसे करोगे? (२) किसी विषय या पदार्थ की ओर से चित्त का संतुष्ट होना। रुचि के अनुकूल होना। जी भरना। जैसे,—(क) जिस चीज पर दिन ही वहीं जमता उसे लेकर क्या करेंगे? (ख) अगर तुम्हारा दिन जमे तो तुम भी हमारे साथ चलो। दिल जमाना=काम में ध्यान देना। चित्त लगाना। जी लगाना। जैसे—अगर तुम्हें काम करना हो तो दिल जमाकर किया करो। दिल जलना=दे० 'जी जलना'। दिल जलाना=दे० 'जी जलाना'। (किसी काम में) दिल जान या दिलो जान से लगना=दे० 'जी जान से लगना'। दिल टूटना या टूट जाना=दे० 'जी टूट जाना'। दिल ठिकाने होना=मन में शांति, संतोष या धैर्य होना। चित्त स्थिर होना। जी ठहराना। दिल ठिकाने लगाना=मन को शांति या संतुष्ट करना। जी को सहारा देना। व्याकुलता दूर करना। दिल ठुकरना=दे० 'जी ठुकरना'। दिल ठोकना=मन को दृढ़ करना। जी को पक्का करना(क०)। दिल दूबना=दे० 'जी दूबना'। दिल तड़पना=चित्त का यों ही, विशेषतः किसी के प्रेम में, बहुत व्याकुल होना। बहुत अधिक घबराहट या बेचैनी होना। उ०—दिल तड़पकर रह गया जब गाढ़ आई धांपकी। (श०२०)। दिल तोड़ना=हिम्मत तोड़ना। हतोत्साह करना। साहस भंग करना। दिल दहलना=दे० 'जी दहलना'। दिल दुखना=दे० 'जी दुखना'। दिल देखना=किसी के मन की रीक्षा करना। रुचि या प्रवृत्ति का पता लगाना। जी की बाह लेना। मन टटोलना। जैसे,—हमें रूपों की कोई जरूरत नहीं है; हम तो खाली तुम्हारा दिल देखते थे। दिल देना=आशिक होना। प्रेम करना। आसक्त होना। मुहुर्बत में पड़ना। दिल दीड़ना=दे० 'जी दीड़ना'। दिल दीड़ाना=(१) जी चलाना। इच्छा या कामना करना। (२) ध्यान दीड़ना। चिंतन करना। सोचना। दिल बड़कना=दे० 'कलेजा बड़कना'। दिल पक जाना=दे० 'कलेजा पक जाना'। दिल पकड़ लेना या दिल पकड़कर बैठ जाना=दे० 'कलेजा पकड़ लेना'। दिल पकड़ा जाना=दे० 'जी पकड़ा जाना'। दिल पकड़े फिरना=ममता में व्याकुल होकर इधर उधर फिरना। विकल होकर घूमना। दिल पर नक्श होना=किसी बात का जी में जम जाना। जी में बैठ जाना। हृदयंगम होना। दिल पर मैथ आना=मनमोटाव होना। पहले का सा प्रेम या सद्भाव न रह जाना। प्रीति भंग होना। जी फट जाना। दिल पर साँप लोटना=दे० 'कलेजे पर साँप लोटना'। दिल पर हाथ रखे फिरना=दे० 'दिल पकड़े फिरना'। दिल पसीबना=दे० 'दिल पिघलना'। दिल पाना=आशय जानना। अंतःकरण की बात जानना। मन की बाह पाना। दिल पीछे पड़ना=दे० 'जी पीछे पड़ना'।

दिल फटना या फट जाना=दे० 'जी फट जाना'। दिल फिरना या फिर जाना=दे० 'जी फिर जाना'। दिल फीका होना=दे० 'जी खट्टा होना'। दिल बढ़ना=दे० 'जी बढ़ना'। दिल बढ़ाना=दे० 'जी बढ़ाना'। दिल बहाना=दे० 'जी बहलाना'। दिल बहलाना=दे० 'जी बहलाना'। दिल बुझना=चित्त में किसी प्रकार का उत्साह या उमंग न रह जाना। मन मरना। दिल बुरा होना=दे० 'जी बुरा होना'। दिल बेकल होना=बेचैनी होना। घबराहट होना। दिल बैठा जाना=दे० 'जी बैठा जाना'। दिल भटकना=चित्त का व्यग्र या अचल होना। मन में इधर उधर के विचार उठना। दिल भर घाना=दे० 'जी भर घाना'। दिल भरना=दे० 'जी भरना'। दिल भारो करना=दे० 'जी भारी करना'। दिल मनमोसना=शोक, क्रोध या किसी दूरे की प्रतीति मनोवेग का मन में ही दब रहना। दिल मारना=दे० 'मन मारना'। दिल मिलना=दे० 'जी मिलना' या 'मन मिलना'। दिल पे घाना=दे० 'जी पे घाना'। दिल में घटना या खुशना=दे० 'जी में गड़ना या सुभना'। दिल में गँठ या गिरह पड़ना=दे० 'गँठ' के अंतर्गत पड़ना। 'मन में गँठ पड़ना'। दिल में घर करना=दे० 'जी में घर करना'। दिल में चुटकी या चुटकी लेना=दे० 'चुटकी लेना'। दिल में चुभना=दे० 'जी में गड़ना या खुशना'। दिल में चोर बैठना=दे० 'मन में चोर बैठना'। दिल में अलह करना=दे० 'जी में घर करना'। दिल में फफोले पड़ना=चित्त को बहुत अचंचल कष्ट पहुँचाना। मन में बहुत दुःख होना। दिल में फरक घाना=सद्भाव में अंतर पड़ना। मनमोटाव होना। दिल में बल पड़ना=दे० 'दिल में फरक घाना'। दिल में रखना=दे० 'जी में रखना'। दिल मैना करना=चित्त में दुःभाव उत्पन्न करना। मन मैला करना। दिल रुकना=दे० 'जी रुकना'। (किसी का) दिल रखना=दे० 'जी रखना'। दिल लगना=दे० 'जी लगना'। दिल लगाना=दे० 'जी लगाना'। दिल ललचाना=दे० 'जी ललचाना'। दिल लेना=(१) किसी को अपने पर आसक्त करना। अपने प्रेम में फँसाना। (२) अंतःकरण की बात जानना। मन की बाह लेना। दिल लोटना=दे० 'जी लोटना'। दिल से उतरना या गिरना=दृष्टि से गिर जाना। प्रिया या आदरणीय न रह जाना। निरक्तिभाजन होना। दिल से=(१) जी लगाकर। अत्यंत तरह। ध्यान देकर। (२) अपने मन से। अपनी इच्छा से। दिल से उठना=आपसे आप कोई काम करने की प्रवृत्ति होना। जैसे,—जब तुम्हारे दिल से ही नहीं उठता, तब बार बार कहकर तुमसे कोई क्या काम करावेगा? दिल से दूर करना=भुला देना। विस्मरण करना। ध्यान छोड़ देना। दिल हट जाना=दे० 'जी फिर जाना'। (किसी का) दिल हाथ में रखना=किसी को प्रसन्न रखना। किसी के मन को अपने वश में रखना। दिल हाथ में लेना=किसी को प्रसन्न करके अपने अधिकार में रखना। वशीभूत रखना। दिल हिलना=दे० 'जी दहलना'। दिल ही दिल में=चुपके चुपके। गुप्त भाव से। मन ही मन। दिलो जान से=दे० 'जी जान से'।

३. साहस । दम । जिपट । जीवट ।

मुहा०—दिल दिमाग का (धादमी) = बहुत साहसी और समझदार (धादमी) ।

यो०—दिलदार ।

४. प्रवृत्ति । इच्छा ।

दिलकश—वि० [क्रा०] चित्ताकर्षक । मनोहृक [को०] ।

दिलसुरा—वि० [फा०] मन को प्रफुल्लित करनेवाला [को०] ।

दिलगीर—वि० [फा०] १. उदार । २. दुखी । शोकाकुल ।

दिलगीरी—संज्ञा पु० [फा० दिलगीर + ई० (प्रत्य०)] १. उदासी । २. रंज । दुःख ।

दिलगुरदा—संज्ञा पु० [फा० दिल + गुरदा] हिम्मत । साहस । बहादुरी ।

दिलचला—वि० [फा० दिल + चला] १. साहसी । हिम्मतवाला । दिलेर । २. गुर । अंग । बहादुर । ३. दाता । दानी । उदार । ४. पागल (क०) ।

दिलचस्प—वि० [फा०] चित्त में जो लगे । मनोहर । चित्ताकर्षक ।

दिलचस्पी—संज्ञा स्त्री [फा०] १. दिल को लगना । २. मनोरंजन ।

दिलचोर—वि० [फा० दिल + चोर] जो काम करने में जो चुराता हो । काफिल ।

दिलजमई—संज्ञा स्त्री [फा० दिल + जम + ई० (प्रत्य०)] इतमीनान । दलीली । सतार ।

क्रि० प्र०—करना ।—कगना ।—रखना ।

दिलजला—वि० [फा० दिल + जलना] जिसका जी जला हो । जिसके चित्त को बहुत कष्ट पहुँचा हो । अत्यन्त दुःखी ।

दिलजोई—संज्ञा स्त्री [फा०] दारल जना रना । दिलजमई [को०] ।

दिलदरिया—संज्ञा पु० [फा०] दे० 'दरिया' ।

दिलदरियाब—संज्ञा पु० [फा०] दे० 'दरिया' ।

दिलदार—वि० [फा०] १. उदार । दाता । २. रसिक । ३. बेनी । प्रिय । जहाँ जिससे प्रेम किया जाय ।

दिलदारी—संज्ञा स्त्री [फा० दिल + दार + ई० (प्रत्य०)] १. उदारता । २. रसिकता । ३. प्रेमिकता ।

दिलदौर—वि० [फा०] दे० 'दिलदार' ।

दिलपसंद—वि० [फा०] जो पसंद को प्राप्त मान्य हो ।

दिलपसंद—संज्ञा पु० १. फुलवर या सुनरी की तरह का एक प्रकार का कपड़ा जिसमें बहुत सारी गोलियाँ लगी होती हैं और जो माँही या चित्तक काम में आता है । २. एक प्रकार का गीत ।

दिलफँक—वि० [फा० दिल + फँक] शीर्ष्य और मुख होनेवाला ।

दिलघर—वि० [फा०] जिसमें प्रेम किया जाय । प्यारा ।

दिलगहार—संज्ञा पु० [फा० दिल + गहार] खशगारी रंग का एक भद्र ।

दिलरुवा—संज्ञा पु० [फा०] १. वह जिससे प्रेम किया जाय । प्यारा । २. एक प्रकार का तंत्रवाद्य ।

दिलवल—संज्ञा पु० [देश०] एक प्रकार का पेड़ ।

दिलवाना—क्रि० स० [हि० दिलाना] दे० 'दिलाना' ।

दिलवाला—वि० [फा० दिल + वाला (प्रत्य०)] १. उदार । दाता । जो दूब देता हो । २. बहादुर । दिलेर । साहसी ।

दिलवैया—वि० [हि० दिलवाना + ऐया (प्रत्य०)] दिलवानेवाला । जो दूसरे को दिलाता हो ।

दिलहा—संज्ञा पु० [हि० दिलना] दे० 'दिलना' ।

दिलहेदार—वि० [हि० दिलहेदार] दे० 'दिलेदार' ।

दिलाना—क्रि० स० [हि० देना का प्रे० रूप] १. दूसरे को देने में प्रवृत्त करना । देने का काम दूसरे से कराना । दिलवाना । जैसे, रुपया दिलाना, काम दिलाना । २. प्राप्त करना ।

विशेष—इस अर्थ में इन शब्दों का व्यवहार प्रायः ऐसी ही बातों के संबंध में होता है जिनकी प्राप्ति किसी तीसरे व्यक्ति पर निर्भर न हो बल्कि जो स्वयं उसी मनुष्य में उत्पन्न की जा सकें । जैसे, मुँह दिलाना, कसर दिलाना, ध्यान दिलाना ।

संयो० क्रि०—देना ।

दिलावर—वि० [फा०] १. गुर । बहादुर । जवाँपद । २. उत्साही । साहसी ।

दिलावरी—संज्ञा स्त्री [फा०] १. बहादुरी । गुरता । २. साहस ।

दिलावेज—वि० [फा० दिल + आवेज (चलकर लेने वाला)] सुंदर । शूभदर्शन । मनोहर (को०) ।

दिलावेजी—संज्ञा स्त्री [फा० दिल + आवेजी] बुरसूरती । सौंदर्य । शोभा [को०] ।

दिलासा—संज्ञा पु० [फा० दिल + साया] तपस्वी । ठाठस । आश्वासन । धैर्य । प्रबोध ।

क्रि० प्र०—देना ।

यो०—दम दिलासा (१) तपस्वी । धैर्य । (२) दम बुता । धोखा । फरेब ।

दिलो—वि० [फा० दिल + ई० (प्रत्य०)] १. हादिक । हृदय या दिल संबंधी । जैसे, दिली मुताब । २. अत्यंत घनिष्ट । अविन्न हृदय । ज़िगरी । जैसे, दिली दोस्त ।

दिलीउ—संज्ञा स्त्री [देश० दिली] दे० 'दिल्ली' । उ०—बैठयो विनोद भग्यो दिन दूषह कन दिली को दिमाक मयाई ।—हम्मीर०, पृ० ६ ।

दिलीप—संज्ञा पु० [सं०] १. चंद्राकुवंशी एक ख्यातनाम राजा ।

विशेष—वाल्मीकि के अनुसार दिलीप राजा सगर के परपोते, अंगीर्य के पिता और रघु के पत्तादा थे । लेकिन कालिदास के अनुवर्ण के अनुसार इन्हीं राजा दिलीप की स्त्री सुवक्षिणा के गर्भ में राजा रघु उत्पन्न हुए थे । रघुवंश में लिखा है कि राजा दिलीप एक बार स्वर्ग से मर्त्य लोक में अपनी स्त्री से मिलने के लिये आते समय स्वर्गीय गी सुरभि की पूजा करना भूल गए थे । इसलिये उन्होंने उन्हें शाप दिया कि अबतक तुम मरी नंदिनी की सेवा न करोगे तबतक तुम्हें पुत्र

न होगा। जब दिलीप को कोई पुत्र नहीं हुआ तब बशिष्ठ के पास गए और पुत्र पाने की अपनी खालगा उनसे व्यक्त की। बशिष्ठ ने कामधेनु के शाप की बात बताई। उनके आदेश से सपत्नीक दिलीप आश्रम में रहते हुए सुरभि की पुत्री नंदिनी की सेवा करने लगे। कुछ दिन बीतने पर उनकी परीक्षा लेने के लिये एक बार एक शेर ने नंदिनी को खाना चाहा। दिलीप ने उसकी रक्षा के लिये शेर पर प्रहार करना चाहा पर उनका हाथ झचल हो गया। निराश राजा दिलीप ने शेर से प्रार्थना की कि वह उनको सारर अपनी श्रुषा भिटाए और नंदिनी को छोड़ दे। शेर के बहाने समझाने बुझाने पर भी वे न माने और अपने आपको उस शेर के आगे डाल दिया। इससे सुरभि प्रसन्न हो गई और सुदक्षिणा के गर्भ से रघु की उत्पत्ति हुई। लिगपुराण में लिखा है कि ये बड़े बुद्धिमान थे और इन्होंने तीनों लोकों और तीनों अग्निगणों को जीत लिया था। एक बार एक मुहूर्त के लिये वे स्वर्ग में मर्त्य लोक में भी गए थे। आगे चलकर इन्होंने फिर इसी वंश में ऐलिविल राजा के घर में जन्म लिया था। हरिवंश के अनुसार भी दिलीप राजा सगर के परपोते और अमोरघ के पुत्र थे। आगे चलकर इन्होंने एक बार फिर इसी वंश में जन्म लिया था।

२. चंदवंशी राजा कुस के वंशज एक राजा का नाम।

दिलीर—संज्ञा पुं० [सं०] भुईफोड़। दिगरी।

दिलीर—वि० [फा०] १. बहादुर। शूरवीर। २. माहमी। दिलवाला।

दिलीरी—संज्ञा स्त्री० [फा०] १. बहादुरी। वीरता २. साहस। हिम्मत।

क्रि० प्र०—करना।—दिलवाना।

दिल्लगी—संज्ञा स्त्री० [फा० दिल + हि० लगना] १ दिन लगाने की क्रिया या भाव। २. वह व्यापार, घटना या बार आदि जिसकी विलक्षणता आदि के कारण चित्त का विनोद और मनोरंजन हो। केवल चित्तविनोद या हँसने हँसाने की बात। ठट्ठा। ठठोली। मजाक। मज़ोल। मसखरी। जैसे,—(क) आप आजकल बहुत दिल्लगी करने लगे हैं। (ख) कल शानवाते ऋद्धि में अच्छी दिल्लगी देगो में आई। (ग) दोनों का सामना होगा तो बड़ी दिल्लगी होगी।

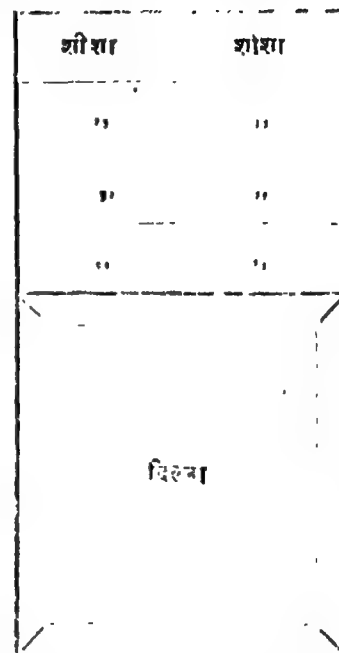
मुहा०—किसी बात की दिल्लगी उड़ाना = (किसी बात को) धमाम्य और भिन्नता उठराने के लिये (उसे) हँसो में उड़ा देना। हँसी की बात कहकर टाल देना। उपहास करना। जैसे,—(क) आप तो सब की यों ही दिल्लगी उड़ाया करते हैं। (ख) उन्होंने तुम्हारी किताब की खूब दिल्लगी उड़ाई। दिल्लगी में = केवल दिल्लगी के विचार से। यों ही। हँसी में। जैसे,—मैंने उन्हें दिल्लगी में ही यहाँ से जाने के लिये कहा था, पर वे नाराज होकर चले गए।

दिल्लगीबाज—संज्ञा पुं० [हि० दिल्लगी + फा० बाज] वह जो सदा दूसरों को हँसानेवाची बात कहता हो। हँसी या दिल्लगी करनेवाला। मसखरा। ठट्ठेन। हँगोड़। मसोलिया।

दिल्लगीबाजी—संज्ञा स्त्री० [हि० दिल्लगी + फा० बाजी] १. दिल्लगी करने का काम। २. वे० 'दिल्लगी'।

दिल्ला—संज्ञा पुं० [सं०] किवाड़ के पल्ले में लकड़ी का वह चौखटा जो शोभा के लिये बना या जड़ दिया जाता है। भाईना।

विशेष—किवाड़ों में शोभा के लिये या तो चौकोर लकड़ करके उसमें शोभा की तरह लकड़ी का चौकोर टुकड़ा फिर से बैठा देते हैं अथवा पल्ले का ही कुछ अंग काटकर और कुछ उभाड़-सार छोड़कर इस प्रकार बना देते हैं कि वह देखने में एक अलग चौकोर टुकड़ा या जान पड़ता है। इसी को दिल्ला या दिलहा कहते हैं।



दिल्ली—संज्ञा स्त्री० [हि०] जमुना नदी के किनारे बना हुआ उत्तर-पश्चिम भारत का एक बहुत पवित्र और प्राचीन नगर जो स्वतंत्र भारत की राजधानी है।

विशेष—यह नगर बहुत दिनों तक हिंदू राजाओं और मुसलमान बादशाहों की राजधानी था और सन् १९१२ ई० में फिर ब्रिटिश भारत की भी राजधानी हो गया। जिस स्थान पर वर्तमान दिल्ली नगर है, उसके चारों ओर १०-१२ मील के घेरे में भिन्न भिन्न स्थानों में यह नगर कई बार बना और कई बार उबड़ा। कुछ लोगों का मत है कि इन्द्रप्रस्थ के मयूर-वंशी अंतिम राजा विष्णु ने इसे गढ़ने का आदेश दिया था, इसी से इसका नाम दिल्ली पड़ा। यह भी पता है कि पृथ्वीराज के नाना अग्रगण्य ने एक बार एक गढ़ बनवाना चाहा था। उसकी नींव रखने के समय उनके पुरोहित ने अच्छे मुहूर्त में लोहे की एक कील पृथ्वी में गाड़ दी और कहा कि यह कील शेषनाग के मस्तक पर जा लगे है जिसके कारण आपके तीसरे वंश का राज्य प्रबल हो गया। राजा को इस बात पर विश्वास न हुआ और उन्होंने वह कील उलझवा दी। कील उखाड़ते ही वहाँ से सड़ की घारा निकलने लगी। इसपर राजा को बहुत परेशाना हुआ। उन्होंने फिर वही कील उस स्थान पर गच्चाई पर इस बार वह ठीक नहीं बैठी, कुछ ढीली रह गई। इसी से उस स्थान का नाम

'ढीली' पड़ गया जो त्रिगङ्गकर दिल्ली हो गया। पर कील या स्तंभ पर जो शिलालेख है उससे इस प्रवाद का पूरा खंडन हो जाता है क्योंकि उसमें अन्नगपाल से बहुत पहले के किसी चंद्र नामक राजा (शायद चंद्रगुप्त विक्रमादित्य) की प्रशंसा है। पृथ्वीराज रासो के अनुसार अन्नगपाल के किसी पूर्वपुरुष 'बल्हन' नाम के नरेश ने यह दिल्ली गड़वाई और नगर बसाया था। उसके बाद अन्नगपाल ने फिर दिल्ली गड़वाई (दे० पृथ्वीराज रासो 'दिल्ली दिल्ली कथा')। नाम के विषय में चाहे जो हो, पर हममें संदेह नहीं कि इसी पहली शतब्दी के बाद में यह नगर कई बार बसा और उजड़ा। सन् ११९३ में मुहम्मद गोरी ने इस नगर पर अधिकार कर लिया। तभी से यह मुसलमान बादशाहों की राजधानी हो गया। सन् १३९८ में इसे तैमूर ने ध्वंस किया और १५२६ में बाबर ने इसपर अधिकार किया। तब से यही मोगल साम्राज्य की राजधानी हो गई। सन् १८०३ में इसपर अंगरेजों का अधिकार हो गया। पहले अंगरेजी भारत की राजधानी कलकत्ते में थी; पर सन् १९१२ से उठकर दिल्ली चली गई। आजकल वर्तमान दिल्ली के पास एक नई दिल्ली बस गई है।

दिल्लीवाल—वि० [हि० दिल्ली + वाल (प्रत्य०)] १. दिल्ली संबंधी। दिल्ली का। २. दिल्ली का रहनेवाला।

दिल्लीवाल—संज्ञा पुं० दिल्ली का बना हुआ एक प्रकार का देशी जूना।

दिल्लेदार—वि० [देश० दिलहा + दार० दार०] दिलहेवाला (क्रियार्ह)। जिसमें दिलहा बना या लगा हो।

दिल्ली—संज्ञा स्त्री० [देश०] दे० 'दिल्ली'। उ०—दिल्ली से परे कोस दोह पर एक ग्राम है।—कोसी बावन०, भा० १, पृ० १३६।

दिवंगत—वि० [सं० दिव० + गत०] मृत। स्वर्गोपगत।

दिवंगम—वि० [सं० दिव० + गम०] स्वर्ग जानेवाला। मरनेवाला। जिसकी मृत्यु निकट हो [को०]।

दिव—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'दिव'।

दिव—संज्ञा पुं० [सं०] १. स्वर्ग। २. आकाश (दि०)। ३. उ०। ४. दिन। ५. नीलकंठ पक्षी (को०)।

दिवकार(पु०)—संज्ञा पुं० [सं० दिव (= दिन + कर (= कर्त्ता)] सूर्य। दिनकर। उ०—पुरुषोत्तमो धी मनमूखो, नारि पुरुष दिवकार। ते चोरासी भरमही, जो लागि चैं दिवकार।—कबीर बी० (निष्ठा०), पृ० १६६।

दिवगृह—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'देवगृह'।

दिवदाह—संज्ञा पुं० [सं०] १. उत्पत्ति। क्रांति। प्रकाशदाह [को०]।

दिवरा—संज्ञा पुं० [सं० दि + वर०] दे० 'देवर'। उ०—तुम लीजो दिवर हमारे मेरे हाथ भंगूँगी भारी।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० ६१४।

दिवरा—संज्ञा पुं० [हि० देवर] दे० 'देवर'। उ० पिय पीनम पागे पराई तिया दिवरा सोऊ डोलत बागन में।—नट०, पृ० १४०।

दिवराज—संज्ञा पुं० [सं०] स्वर्ग का राजा, इन्द्र। उ०—सूरदाम प्रभु कृपा करहिगे धरण चली दिवराज।—धूर (सम्ब०)।

दिवरानी—संज्ञा स्त्री० [हि० देवरानी] दे० 'देवरानी'।

दिवला—संज्ञा पुं० [सं० दीप, प्रा० दीव + ला (प्रत्य०)] दे० 'दीप'। उ०—येहि तन का दिवला करौ, बाती मेलौ जीव। लोहू सीची तेल ज्यों, कब मुख देखौ पीव।—कबीर सा०, पृ० १६।

दिवली—संज्ञा स्त्री० [देश०] दे० 'दिउली'।

दिवस—संज्ञा पुं० [सं०] दिन। वासर। रोज।

दिवस अंध(पु०)—संज्ञा पुं० [सं० दिवस + हि० अंध] दे० 'दिवांध'।

दिवसकर—संज्ञा पुं० [सं०] १. सूर्य। दिनकर। २. मदार का पेड़।

दिवसक्षय—संज्ञा पुं० [सं०] दिन का भवसान। सूर्यास्त [को०]।

दिवसचर—संज्ञा पुं० [सं० दिवाचर] १. श्यामा पक्षी। २. चांडाल।

दिवसचारो—वि० [सं० दिवान्चारिन्] दिन भर घूमनेवाला।

दिवसनाथ—संज्ञा पुं० [सं० दिवस + नाथ] दे० 'दिवसमणि'। २. भक्त वृक्ष।

दिवसपुष्ट—संज्ञा पुं० [सं० दिवापुष्ट] सूर्य। रवि।

दिवसमणि—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य।

दिवसमुख—संज्ञा पुं० [सं०] सबेरा। प्रातःकाल।

दिवसमुद्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक दिन का बेतन। एक दिन की तन्त्रनाह।

दिवससंजात—संज्ञा पुं० [सं० दिवससंजात] दिन भर का काम।

विशेष—मजदूर दिन भर में जितना काम करता था, उसी के अनुसार चंद्रगुप्त के समय में उसको रोजाना मजदूरी दी जाती थी।

दिवसांतर—वि० [सं०] मात्र एक दिन का।

दिवसाभिसारिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'दिवाभिसारिका'।

दिवसावसान—संज्ञा पुं० [सं० दिवस + अवसान] दिनांत। संव्या। उ०—दिवसावसान का समय, मेघमय आसमान से उतर रही है।—भररा०, पृ० १३।

दिवसेश—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'दिवसेश्वर'।

दिवसेश्वर—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य [को०]।

दिवस्पति—संज्ञा पुं० [सं०] १. सूर्य। २. तेरहवें मन्वन्तर के इंद्र का नाम।

दिवःपृश्न—संज्ञा पुं० [सं०] (वाननावतार में) पैर से स्वर्ग को छूनेवाले, विष्णु।

दिवांध—वि० [सं० दिवान्ध] जिसे दिन में न सूझें। जिसे दिनोंघों हो।

दिवांध—संज्ञा पुं० १. दिनोंघों का रोग। २. उल्लू।

दिवांधकी—संज्ञा स्त्री० [सं० दिवान्धकी] छद्मदेव।

दिवांधिका—संज्ञा स्त्री० [सं० दिवान्धिका] छद्मदेव [को०]।

दिवा—संज्ञा पुं० [सं०] १. दिन। दिवस। २. २२ अक्षरों का एक वर्णवृत्त। एक वृत्त का नाम जिसके प्रत्येक चरण में ७ भगण और १ गुरु होता है। इसके दूसरे नाम 'माधिनी' और 'मदिरा' भी हैं। जैसे,—भातस गौरि गुर्वादिन को बर राम भनू दुइ खंड कियो। ३. दे० 'दीया'।

दिवाकर—संज्ञा पुं० [सं०] १. सूर्य । आस्कर । रवि । २. काक । कीवा । ३. मदार । प्राक । ४. एक फूल ।

दिवाकीर्ति—संज्ञा पुं० [सं०] १. नापित । नाऊ । नाई । हज्राम । विशेष—प्राचीन काल में नाइयों को केवल दिन के समय ही नगर आदि में घूमने का अधिकार था, इसी से यह नाम पड़ा । २. चांडाल । ३. उल्लू ।

दिवाकीर्त्य—संज्ञा पुं० [सं०] वह सामगान जो साल भर में होनेवाले गवानयन यज्ञ में विषुव संक्रांति के दिन गाया जाता है ।

दिवाचर—संज्ञा पुं० [सं०] १. पक्षी । चिड़िया । २. चांडाल ।

दिवाचारी—वि० संज्ञा पुं० [सं० दिवाचारिन्] दिन को घूमने-वाला [की०] ।

दिवाटन—संज्ञा पुं० [सं०] काक । कीवा ।

दिवातन^१—संज्ञा पुं० [सं० दिवा + तन ?] एक दिन की मजदूरी । एक दिन की तनकाह ।

दिवातन^२—वि० दिन भर का । रोजाना । प्रति दिन का ।

दिवान—संज्ञा पुं० [फ़ा० दीवान] दे० 'दीवान' ।

दिवाना^१—संज्ञा पुं० [फ़ा० दीवानह] [श्री० दिवानी] दे० 'दीवाना' ।

दिवाना^२—क्रि० सं० [हि० देना] दे० 'दिलाना' ।

दिवानाथ—संज्ञा पुं० [सं०] दिन के स्वामी, सूर्य ।

दिवानी^१—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार का पेड़ जो बरसा में अधिकता से होता है ।

विशेष—इसकी लकड़ी ईंट के रंग की लाल होती है जिसपर भूरी और नारंगी रंग की धारियाँ पड़ी रहती हैं । इससे मेज, कुर्सी आदि सजावट के सामान बनाए जाते हैं ।

दिवानी^२—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० दीवानी] दे० 'दीवानी' । उ०—सूरदास प्रभु मिलि के बिछुरे ताने आई दिवानी ।—सूर (शब्द०) ।

दिवापुष्ट—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य ।

दिवाभिसारिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह नायिका जो दिन के समय अपने प्रेमी से मिलने के लिये, श्रुंगार करके, संकेतस्थान में जाय ।

दिवाभीष्ट, दिवाभीति—संज्ञा पुं० [सं०] १. चोर । तस्कर । २. उल्लू । ३. एक प्रकार का कमल जो रात को खिलता है (की०) ।

दिवामयि—संज्ञा पुं० [सं०] १. सूर्य । २. शर्क । मदार ।

दिवामध्य—संज्ञा पुं० [सं०] मध्याह्न । दोपहर ।

दिवार^१—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० दीवार] दे० 'दीवार' ।

दिवारत्र—क्रि० वि० [सं०] निरंतर । दिनरात [की०] ।

दिवारी^१—संज्ञा स्त्री० [सं० दीपावली] दे० 'दीवाली' । उ०—ग्राम ग्राम अनु बरत दिवारिय ।—प० रासो, पृ० १११ ।

दिवाली^१—वि० [हि० देना + वाल (प्रत्य०)] देनेवाला । जो देता हो । जैसे,—यह एक पैसे के दिवाल नहीं है (बाजार) ।

दिवाली^२—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० दीवाल] दे० 'दीवार' ।

दिवालय^१—संज्ञा पुं० [सं० देवालय] दे० 'देवालय' ।

दिवाला—संज्ञा पुं० [हि० दिया, दिवा + बालना (= जलाना)] १. वह प्रवस्था जिसमें मनुष्य के पास अपना ऋण चुकाने के लिये कुछ न रह जाय । पूँजी या धन न रह जाने के कारण ऋण चुकाने में असमर्थता । कर्ज न चुका सकना । टाट उलटना ।

विशेष—जब किसी मनुष्य को व्यापार आदि में बहुत घाटा आता है अथवा उसका ऋण बहुत बढ़ जाता है और वह उस ऋण के चुकाने में अपनी असमर्थता प्रकट करता है तब उसका दिवाला होना मान लिया जाता है । इस देश में प्राचीन काल में अपनी यह असमर्थता प्रकट करने के लिये ऋणी व्यापारी अपनी दूकान का टाट उलट देते थे और उसपर एक चोमला दीया जला देते थे जिससे लोग समझ लेते थे कि अब इनके पास कुछ भी धन नहीं बचा और इनका दिवाला हो गया । इसी दिया बालने (जलने) से 'दिवाला' शब्द बना है । राजस्थान में पहले दूकान पर उलटा ताला लगा देते थे । आजकल प्रायः सभी सभ्य देशों में दिवाले के संबंध में कुछ कानून बन गए हैं जिनके अनुसार वह मनुष्य जो अपना बड़ा हुआ ऋण चुकाने में असमर्थ होता है, किसी निश्चित न्यायालय में जाकर अपने दिवाले की दरखास्त देता है और यह बतला देता है कि मुझे बाजार का कितना देना है और इस समय मेरे पास कितना धन या संपत्ति है । इसपर न्यायालय की ओर से एक मनुष्य, विशेषतः बकील या और कोई कानून जाननेवाला नियुक्त कर दिया जाता है जो उसकी बची हुई सारी संपत्ति नीलाम करके और उसका सारा लहना बगूल करके हिस्से के मुताबिक उसका सारा कर्ज चुका देता है । ऐसी दशा में मनुष्य को अपने ऋण के लिये जेल जाने की आवश्यकता नहीं रह जाती ।

मुहा०—दिवाला निकलना = दिवाना होना । दिवाला निकालना या मारना = दिवालिया बन जाना । ऋण चुकाने में असमर्थ हो जाना ।

२. किसी पदार्थ का बिलकुल न रह जाना । जैसे, उद्योगारवाले दिन उनके यहाँ पुरियों का दिवाला हो गया ।

क्रि० प्र०—निकलना ।—निकालना ।—मारना ।

दिवालिया—वि० [हि० दिवाला + हया (प्रत्य०)] जिसने दिवाला निकाला हो । जिसके पास ऋण चुकाने के लिये कुछ न बच गया हो ।

दिवाली^१—संज्ञा स्त्री० [सं० दीपावली] दे० 'दीवाली' ।

दिवाली^२—संज्ञा स्त्री० [देश०] खराद या सान में लपेटने का वह तस्मा जिसे खींचकर उसे चलाते हैं । दवाली ।

दिवालीक—संज्ञा पुं० [सं० दिव + लोक] १. दिन का प्रकाश । २. स्वर्ग के समान या स्वर्गतुल्य लोक । उ०—कहीं भी, इस दिवालीक में घूमते घूमते संध्या तक कहीं न कहीं शरण मिल ही जायगी ।—हरा०, पृ० ११ ।

दिवावसु—संज्ञा पु० [म०] मूर्त्यु [को०] ।

दिवाशय—वि० [सं०] दिन में सोनेवाला [को०] ।

दिवाशयता—संज्ञा स्त्री० [म०] दिन को सोने की आदत या बान [को०] ।

दिवास्वप्न—संज्ञा पु० [म०] १. दिन में सोना । २. कल्पनाप्रभूत बात । मनोगज्य [को०] ।

दिवास्वाप—संज्ञा पु० [म०] १. उत्तक । उत्तल । २. दिन की निद्रा । दिन में गायन [को०] ।

दिवि' संज्ञा पु० [म० दिव] दे० 'दिव' ।

दिवि^२—संज्ञा पु० [सं०] नीलकण्ठ पक्षी ।

दिवि^३—वि० [म० दिव्य] दे० 'दिव्य' । उ० दिवि दिष्टि भाजा मेत । सब मर्म होत निकेत ।—मं० दरिया, पु० ८ ।

यौ०—दिविदिष्टि = दिव्य दृष्टि ।

दिविज—संज्ञा पु० [सं०] देव । मुर [को०] ।

दिविता—संज्ञा स्त्री० [म०] दीप्ति ।

दिविदिवि—संज्ञा पु० [देश०] एक प्रकार का छोटा पेड़ जो दक्षिण अमेरिका से भारतवर्ष में आया है ।

विशेष—यह वृक्ष प्रायः धारधार, कनारा, बीजापुर, खानदेश इत्यादि नगरों में अधिकता से उत्पन्न होता है । चमड़ा सिक्काने और रंगने के काम में इसकी पत्तियों आदि का व्यवहार होता है ।

दिविर—संज्ञा पु० [म०] नेपथ्यक । निपिक । मुंशी । उ०—राजा की सेवा में बहुत से दिविर या लेखक थे जो बहुधा कायस्थ कहलाते थे और जिनको कहलू ने अत्याचारी कहकर गालियाँ मनाई हैं । हिंदु० सभ्यता, पु० ५१६ ।

दिविरथा—संज्ञा पु० [म०] १. महाभारत के अनुसार, पुरवंधी राजा भूमन्वु के पुत्र का नाम । २. हरिवंश के अनुसार अग्न देश के राजा त्रिविवाहन के पुत्र का नाम ।

दिविपत्—संज्ञा पु० [म०] १. देव । देवता । २. स्वर्गवासी ।

दिविष्टि—संज्ञा पु० [म०] यज्ञ ।

दिविष्ठ—संज्ञा पु० [म०] १. स्वर्ग में रहनेवाला, देवता । २. ईशान कोण के एक देश का नाम जिसका उल्लेख बृहत्संहिता में है ।

दिविस्थ—संज्ञा पु० [म०] दिविष्ठ । देवता [को०] ।

दिवेश—संज्ञा पु० [म०] दिवपाल ।

दिवैया—वि० [हि० देना + यैया (प्रत्य०)] देनेवाला । जो देता हो ।

दिवोका—संज्ञा पु० [म० दिवोकम्] दे० 'दिवोक' ।

दिवोदास—संज्ञा पु० [म०] १. चंद्रवंशी राजा भीमरथ के एक पुत्र का नाम, जिनका उल्लेख काशीखंड और महाभारत में है ।

विशेष—ये इन्द्र के उपासक और काशी के राजा थे और धर्मवर्तक के अवतार माने जाते हैं । महाभारत में लिखा है कि ये राजा इंद्र के पुत्र थे और इंद्र ने शंबर राजस की १०० पुरियों में से ९९ पुरियाँ नष्ट करके बाकी एक पुरी इन्हीं को दी थी । इनके पिता के शत्रु भीमहव्य के पुत्रों ने युद्ध में इन्हें परास्त किया था । इसपर ये भारद्वाज मुनि के आश्रम में चले गए । वहाँ मुनि ने इनके लिये एक यज्ञ किया जिसके

प्रभाव से इनके प्रतर्दन नामक एक वीर पुत्र हुआ जिसने भीमहव्य के पुत्रों को युद्ध में मार डाला । सुदास नामक इनका एक पुत्र भी था । महादेव ने इन्हीं से काशी ली थी । काशीखंड के अनुसार पहले इनका नाम रिपुजय था । इन्होंने काशी में बहुत तपस्या की, जिससे प्रसन्न होकर ब्रह्मा ने इन्हें पुण्यपालन करने का वर दिया । नागराज ने अपनी अनंगमोहिनी नाम की कन्या इन्हें दी थी । देवताओं ने इन्हें आकाश से पुष्प और रत्न आदि दिए थे, इसी से इनका नाम दिवोदास हो गया ।

२. हरिवंश के अनुसार ब्रह्मर्षि इंद्रसेन के पौत्र और यमधर के पुत्र का नाम जो मेनका के गर्भ से अपनी बहन अहल्या के साथ ही उत्पन्न हुए थे । इनके पुत्र मित्रेय भी महर्षि थे ।

दिवोद्भा—संज्ञा स्त्री० [म०] इलायती ।

दिवोल्का—संज्ञा स्त्री० [सं०] दिन के समय आकाश से गिरनेवाला चमकीला पिंड या उल्का ।

दिवौका—संज्ञा पु० [म० दिवौकम्] १. वह जो स्वर्ग में रहता हो । २. देवता । ३. चातक पक्षी । ३. भृगु । हिरण्य (को०) । ४. हस्ती । हाथी (को०) । ५. मधुमक्खी (को०) ।

दिव्य^१—वि० [म०] १. स्वर्ग से संबंध रखनेवाला । स्वर्गीय । २. आकाश से संबंध रखनेवाला । अलौकिक । ३. प्रकाशमान । चमकीला । ४. बहुत बढ़िया या अच्छा । जो देखने में बहुत ही सुंदर या अनामानुस हो । मूल याक या सुंदर । जैसे,—(क) उन्होंने एक बहुत दिव्य भजन बनवाया था । (ख) आज हमने बहुत दिव्य भोजन किया है । ४. लोक से परे । लोकातीत (को०) ।

दिव्य^२—संज्ञा पु० [म०] १. यव । जौ । २. गुग्गुलु । ३. घाबला । ४. मातावार । ५. ब्राह्मी । ६. सफेद दूब । ७. हड़ । ८. लौंग । ९. सूअर । १०. तपस्वेता । ११. हरिचंदन । १२. अष्टवर्ग के अंतर्गत महाभेदा नाम की ओषधि । १३. कपूरकचरी । १४. चमेरी । १५. जीरा । १६. धूप में बरसते हुए पानी से स्नान । १७. तीन प्रकार के केतुओं में से एक । वे केतु जिनकी स्थिति भूयायु से ऊपर है । १८. तांत्रिकों के आचार के तीन भावों में से एक जिससे पंच मन्त्र, शमशान और पिता का साधन विशेष है । १९. आकाश में होनेवाला एक प्रकार का उत्पल । २०. तीन प्रकार के नायकों में से एक । वह नायक जो स्वर्गीय या अलौकिक हो । जैसे, इंद्र, राम, कृष्ण आदि ।

विशेष—साहित्य ग्रंथों में तीन प्रकार के नायक माने गए हैं दिव्य, अदिव्य और दिव्यादिव्य । दिव्य नायक स्वर्गीय या अलौकिक होते हैं, जैसे, देवता आदि और अदिव्य नायक सांसारिक या लौकिक, जैसे, मनुष्य । दिव्यादिव्य नायक वे होते हैं जो होते तो मनुष्य हैं पर जिनमें गुण देवताओं के होते हैं । जैसे, नल, पुरुषोत्तम, अर्जुन आदि । इसी प्रकार तीन प्रकार की नायिकाएँ भी होती हैं ।

२१. व्यवहार या व्याख्यान में प्राचीन काल की एक प्रकार की परीक्षा जिससे किसी मनुष्य का धराराधी या निरपराध होना सिद्ध होता था ।

क्रि० प्र०—देना । उ०—सौंप सभा साबर सकार गए देउ दिव्य दुसह साँसति कीबै आगे ही या तन की ।—सुलसी (शब्द०) ।

विशेष—ये परीक्षाएँ नौ प्रकार की हैं—घट, अग्नि, उदक, विष, कोष, तंडुल, तममाषक, फूल और घमंज। इनमें तुला या घट, अग्नि, जल, विष और कोष ये पाँच परीक्षाएँ भारी अपराधों के लिये; तंडुल चोरी के लिये, तममाषक बड़ी भारी चोरी के लिये और फूल तथा घमंज साधारण अपराधों के लिये हैं। स्मृतियों आदि में यह भी निम्ना है कि ब्राह्मण की तुला से, क्षत्रिय की अग्नि से, वैश्य की जल से और शूद्र की विष से परीक्षा लेनी चाहिए। बालक, वृद्ध, स्त्री और आतुर की परीक्षा भी घट या तुला विष से ही होनी चाहिए। स्त्रियों की विषपरीक्षा और शिशुओं तथा श्रेष्ठों में रोगियों की जलपरीक्षा, बौद्धों की अग्निपरीक्षा और शरणागत, लपटों जुपारियों, भूतों और नागिनियों की कोषपरीक्षा अदायित्व होनी चाहिए। शीतकाल में जलपरीक्षा, ग्रीष्म में अग्निपरीक्षा वर्षा में विषपरीक्षा और प्रातःकाल के समय तुलापरीक्षा नहीं होनी चाहिए। घमंज और तंडुलपरीक्षा पंच ऋतुओं में और अग्निपरीक्षा वर्षा, हेमन्त और शिशिर में तथा जलपरीक्षा ग्रीष्म में होनी चाहिए। अग्नि, घट और कोषपरीक्षा सबेरे, जलपरीक्षा दोपहर की और विषपरीक्षा रात को होनी चाहिए। वृहस्पति जिस समय सिद्धस्थ या अशुभ हो प्रदक्षिणा भृगु अस्त हो, उस समय कोई दिव्य या परीक्षा न होनी चाहिए। मलमास में और अष्टमी तथा चतुर्दशी का भी परीक्षा नहीं होनी चाहिए। परीक्षा के दिन से एक दिन पहले परीक्षा देने और लेनेवाले दोनों का उपवास करना चाहिए और कुछ विशिष्ट नियमों के अनुसार शस्त्रधारी में सब लोगों के गमन दिव्य या परीक्षा होती जाटिए। किसी किसी के भक्त से 'तुलसी' नामक एक और प्रकार का दिव्य भी है, पर इसके विषय में कोई विशेष बात नहीं मिलती।

तुलापरीक्षा में शोध या अभियुक्त को बड़े तमबूत पर बैठा कर दो बार घड़ल बदल कर तोलते थे। दूसरी बार का तोल में यदि वह बढ़ जाता तो शूद्र और बराबर उत्तर तथा यदि घट जाता तो क्षत्री सम्मान जाता था। अग्निपरीक्षा में तमबूत पर बैठे को अजली में लेकर सात मंडलों के भीतर घेर कर चारों ओर घूमना पड़ता था। यदि हाथ जलता तो अभियुक्त निर्दोष समझा जाता था। जलपरीक्षा में अभियुक्त को जल में गोता लगाना पड़ता था। गोता लगाने के समय तीन शरण छोड़े जाते थे। तीसरा बाण ठीक उभी समय छूटता था जब अभियुक्त जल में डूबता था। बाण छूटते ही एक आदमी तैर कर उस स्थान पर दौड़ जाता था जहाँ बाण गिरता और एक दूसरा आदमी उस बाण को लेकर तुरंत उस स्थान पर दौड़कर आता था जहाँ से बाण छूटा था। यदि इसके पक्ष में पड़ने तक अभियुक्त जल ही में रहता तो वह निर्दोष समझा जाता था। विषपरीक्षा में विशेष मात्रा में विष खिलाया जाता था। यदि विष पच जाता तो अभियुक्त निर्दोष माना जाता था। कोषपरीक्षा में किसी देवता के स्नान का तीन अर्जलि जल पिलाया जाता था। यदि १४ दिन के भीतर उक्त देवता के कोष से अभियुक्त को कोई धोर दुःख न होता तो वह निर्दोष या सच्चा माना जाता था। इसी प्रकार की और भी परीक्षाएँ थीं।

२२. अपथ, विशेषतः देवताओं आदि की अपथ। सोमंघ। कसम। क्रि० प्र० - देना।

२३. यग का एक नाम (की०)।

दिव्यक—संज्ञा पु० [सं०] १. एक प्रकार का सप। २. एक प्रकार का जंतु।

दिव्यकट—संज्ञा पु० [सं०] महाभारत के अनुसार प्राचीन काल का एक देल जो पश्चिम दिशा में था।

दिव्यकवच—संज्ञा पु० [सं०] १. अलौकिक तनत्राण। देवताओं का दिया हुआ कवच। २. वह स्तोत्र जिसका पाठ करने से संग्रहता हो। जैसे, रामरक्षा, नागयणकवच, देवीकवच।

दिव्यकुंड—संज्ञा पु० [सं० दिव्यकुंड] कर्नाटकी पुराण के अनुसार कामरूप के दक्षिण लोभक पर्व पर स्थित कुंडविशेष (की०)।

दिव्यक्रिया—संज्ञा स्त्री० [सं०] दिव्य के द्वारा परीक्षा लेने की क्रिया। **विशेष** १० 'दिव्य-२१'।

दिव्यगंध—संज्ञा पु० [सं० दिव्यगंध] १. लौंग। २. गंधक।

दिव्यगंगा—संज्ञा स्त्री० [सं० दिव्यगंगा] बड़ी इलायची। २. बड़ी जल का पत्त।

दिव्यगायन—संज्ञा पु० [सं०] स्वर्ग में गानेवाला, गंधर्व।

दिव्यचक्षु—संज्ञा पु० [सं० दिव्यचक्षु] १. ज्ञान रूपी नेत्र। ज्ञान-क्षुः दिव्यदृष्टि। २. अक्ष। ३. जिनमें कुछ भी दिखाई न दे। ३. चक्षुः। ऐनक। ४. बं। ५. एक प्रकार का गंधद्रव्य। ६. अर्जुन (की०)। ७. ज्योतिषी (की०)।

दिव्यचक्षु—संज्ञा पु० [सं०] दिव्य या सुंदर नेत्रोंवाला।

दिव्यतरंगिणी—संज्ञा स्त्री० [सं० दिव्यतरंगिणी] कर्नाटकी जेली की एक रागिनी (संगीत)।

दिव्यता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. दिव्य का भाव। २. देवभाव। ३. सुंदरता। उत्तमता।

दिव्यतंजा—संज्ञा स्त्री० [सं० दिव्यतंजा] ब्राह्मी वृद्धी।

दिव्यदर्शी—संज्ञा पु० [सं० दिव्यदर्शी] १. अलौकिक पदार्थों को देखने-वाला। २. ज्योतिष का ज्ञानी (की०)।

दिव्यदक्ष—संज्ञा पु० [सं० दिव्यदक्ष, ज्योतिषी] ज्योतिषी।

दिव्यदृष्टि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. अलौकिक दृष्टि जिससे गुप्त, परोक्ष अथवा अमानिज का पता दिखाई दे। २. अनेक-आपन यहाँ बैठे बैठ दिव्यदृष्टि से देख लिया कि बहुत वहाँ पहुँच गई। (चरण)। २. ज्ञानदृष्टि।

दिव्यदेवी—संज्ञा स्त्री० [सं०] पुराणानुसार एक देवी का नाम।

दिव्यदोहद—संज्ञा पु० [सं०] वह पदार्थ जो किसी घमाष्ट की सिद्धि के अभिप्राय से किसी देवता का स्मरण किया जाय।

दिव्यधर्मी—संज्ञा पु० [सं० दिव्यधर्मी] वह जिसका स्वभाव बहुत धर्मात्मा हो।

दिव्यनगर—संज्ञा पु० [सं०] ऐरावती नगरी।

दिव्यनदी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. आकाशगंगा। २. शिवपुराण के अनुसार एक नदी का नाम।

दिव्यनारी—संज्ञा स्त्री० [सं०] अप्सरा । देववधू ।

दिव्यपंचामृत—संज्ञा पुं० [सं० दिव्य पंचामृत] गाय के घी, दूध, दही, मक्खन या मधु और चीनी इन पाँच चीजों को मिलाकर बनाया हुआ पंचामृत ।

दिव्यपुष्प—संज्ञा पुं० [सं०] करबीर । कनेर ।

दिव्यपुष्पा—संज्ञा स्त्री० [सं०] बड़ा गुमा जिसका पेड़ मनुष्य के बराबर ऊँचा और फूल लाल होता है । बड़ी द्रोणपुष्पी ।

दिव्यपुष्पिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] खाल रंग का मदार ।

दिव्ययमुना—संज्ञा स्त्री० [सं०] कामरूप देश की एक नदी जो बहुत पवित्र मानी जाती है और जिसका साहाय्य पुराणों में है ।

दिव्यरत्न—संज्ञा पुं० [सं०] चितामणि नामक कल्पित रत्न जिसके विषय में यह प्रसिद्ध है कि वह सब कामनाएँ पूरी करता है ।

दिव्यरथ—संज्ञा पुं० [सं०] देवताओं का विमान ।

दिव्यरस—संज्ञा पुं० [सं०] पारद । पारा ।

दिव्यलता—संज्ञा स्त्री० [सं०] पूर्वा लता । मुरहरी । कुरनहार ।

दिव्यवस्त्र—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य का प्रकाश ।

दिव्यवस्त्र—वि० सुंदर और अकृष्ट कपड़े पहने हुए । अकृष्ट वस्त्र धारण करनेवाला ।

दिव्यवाक्य—संज्ञा पुं० [सं०] देववाणी । आकाशवाणी ।

दिव्यबाह—संज्ञा स्त्री० [सं०] बुधमानु गोप की छह कन्याओं में से एक ।

दिव्यश्रोत्र—संज्ञा पुं० [सं०] वह कान जिससे सब कुछ सुना जाय ।

दिव्यसरित्—संज्ञा स्त्री० [सं०] मंदाकिनी । आकाशगंगा ।

दिव्यसरिता—संज्ञा स्त्री० [सं० दिव्यसरित्] आकाशगंगा ।

दिव्यसानु—संज्ञा पुं० [सं०] एक विश्वदेव ।

दिव्यसार—संज्ञा पुं० [सं०] साम वृक्ष । सारू का पेड़ ।

दिव्यसूरि—संज्ञा पुं० [सं०] रामानुज संप्रदाय के बारह आचार्य जिनके नाम ये हैं—(१) कासार, (२) भूत, (३) महत् (४) भक्ति-सार, (५) शठारि, (६) कुलशेखर, (७) विष्णुचिन्ता, (८) भक्ताधि-रेणु, (९) मुनिवाह, (१०) चतुर्कवि, (११) रामानुज, (१२) गादादेवा या मधुकर कवि—रघुराज (शब्द०) ।

दिव्यस्त्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] दिव्यांगना । अप्सरा ।

दिव्यांगना—संज्ञा स्त्री० [सं० दिव्याङ्गना] देववधू । अप्सरा ।

दिव्यांशु—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य ।

दिठ्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. भाषिता । २. बाँझ डकोड़ा । ३. महा-मेदा । ४. बाह्यो जड़ी । ५. बड़ा जीरा । ६. सफेद दूध । ७. हड़ । ८. कपूर कचरी । ९. सातावर । १०. तीन प्रकार की नायिकाओं में से एक । देवलोकिय नायिका । देवांगना । स्वर्गीय या प्रलौकिक नायिका । जैसे, उर्वशी, सीता, राविका आदि । ३० 'दिव्य' (नायक) ।

दिव्यादिव्य—संज्ञा पुं० [सं०] तीन प्रकार के नायकों में से एक । वह मनुष्य या ब्रह्मलौकिक नायक जिसमें देवताओं के भी गुण हों । जैसे, नल, पुंदरवा, अभिमन्यु आदि ।

विशेष—दे० 'दिव्य' (नायक) ।

दिव्यादिव्या—संज्ञा पुं० [सं०] तीन प्रकार की नायिकाओं में से एक । वह ब्रह्मलौकिक नायिका जिसमें स्वर्गीय स्त्रियों के भी गुण हों । जैसे, दमयंती, उर्वशी, उत्तरा आदि ।

दिव्याश्रय—संज्ञा पुं० [सं०] महाभारत के अनुसार एक प्राचीन पुराणक्षेत्र जहाँ पूर्व काल में भगवान् विष्णु ने तपस्या की थी । कुक्षेत्र का वर्णन करके बलदेव जी यहीं से होते हुए हिमालय गए थे ।

दिव्यासन—संज्ञा पुं० [सं०] तंत्र के अनुसार एक प्रकार का आसन ।

दिव्यास्त्र—संज्ञा पुं० [सं०] १. देवताओं का दिया हुआ हथियार । २. शत्रुओं द्वारा चलनेवाला हथियार ।

दिव्येलक—संज्ञा पुं० [सं०] सुभुत के अनुसार एक प्रकार का साँप ।

दिव्योदक—संज्ञा पुं० [सं०] वर्षा का पानी । बरसा हुआ पानी ।

दिव्योपपादुक—संज्ञा पुं० [सं०] बिना माता पिता के उत्पन्न देवता ।

दिव्यौषध—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'दिव्यौषधि' ।

दिव्यौषधि—संज्ञा स्त्री० [सं०] मैनसिल ।

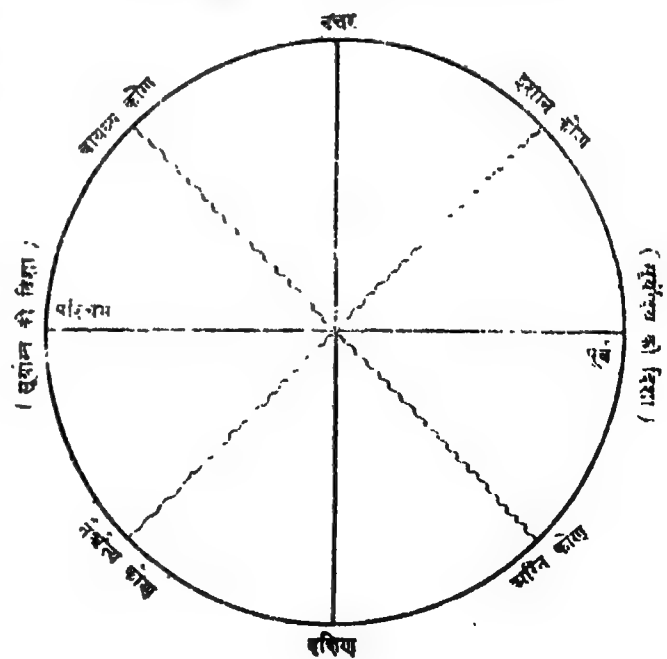
दिश—संज्ञा स्त्री० [सं०] दिशा । दिक् ।

दिश—संज्ञा पुं० एक देवता जो कान के अधिष्ठाता माने जाते हैं ।

दिशा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. नियत स्थान के प्रतिरिक्त शेष विस्तार ।

और । तरफ । जैसे,—जिस दिशा में घोड़ा भागा था उसी दिशा में वह भी चला । २. क्षितिजवृत्त के किए हुए चार कल्पित विभागों में से किसी एक विभाग की ओर का विस्तार ।

विशेष—दिशा का ठीक ठीक ज्ञान प्राप्त करने के लिये क्षितिज वृत्त चार भागों में बाँटा गया है, जिनको पूर्व, पश्चिम, उत्तर और दक्षिण कहते हैं । प्रत्येक दिशाओं के बीच में एक कोण भी होता है । पूर्व और दक्षिण के बीच के कोण को अग्निकोण, दक्षिण और पश्चिम के बीच के कोण को नैऋत्य, पश्चिम और उत्तर के बीच के कोण को



बायव्य कोण और उत्तर तथा पूर्व के बीच के कोण को ईशान कोण कहते हैं। जिस ओर सूर्य उदय होता है उस ओर मुँह करके यदि खड़े हों तो सामने की ओर पूर्व, पीछे पश्चिम, दाहिनी ओर दक्षिण और बाईं ओर उत्तर होता है। इसके प्रतिरिक्त दो दिशाएँ और भी मानी जाती हैं—एक सिर के ठीक ऊपर की ओर और दूसरी पैर के ठीक नीचे की ओर जिन्हें क्रमशः ऊर्ध्व और अधः कहते हैं। वैशेषिक का मत है कि वास्तव में दिशा एक ही है, काम चलाने के लिये इसके भेद कर लिए गए हैं। संख्या, परिमाण, पृथक्त्व, संयोग और विभाग इसके गुण हैं।

पर्याय—कुसुम। काष्ठा। आशा। हरित्। निवेशिनी। गो। बिम्ब। दिक्।

३. दस की संख्या। ४. रुद्र की एक स्त्री का नाम। ५. दे० 'दिसा'।

दिशाकाश—संज्ञा पुं० [सं० दिश + आकाश] दिशाएँ और आकाश।
उ०—लोटी लेकर रचना उदास, ताकता हुआ मैं दिशाकाश।
—अपरा, पृ० १७३।

दिशागज—संज्ञा पुं० [सं०] दिग्गज।

दिशाचक्षु—संज्ञा पुं० [सं० दिशाचक्षुस्] पुराणानुसार गरुड़ के एक पुत्र का नाम।

दिशाजय—संज्ञा पुं० [सं०] दिग्विजय।

दिशापाल—संज्ञा पुं० [सं०] दिक्पाल।

दिशाभ्रम—संज्ञा पुं० [सं०] दिशाओं के संबंध में भ्रम होना। दिग्भ्रम।

दिशावकाश—संज्ञा पुं० [सं० दिशा + अवकाश] दो दिशाओं के बीच का अंतराल (को०)।

दिशावकाशकप्रत—संज्ञा स्त्री० [सं०] जैनियों का एक प्रकार का व्रत जिसमें वे प्रातःकाल यह निश्चय कर लेते हैं कि मात्र हृष्य भगुक दिशा में इतनी दूर तक जायेंगे।

दिशावधि—संज्ञा स्त्री० [सं०] दिशा की सीमा। कितिज। उ०—दिशावधि में पल विविध प्रकार, अतस में मिलते तुम अविकार।—पल्लव, पृ० १२६।

दिशाशूल—संज्ञा पुं० [सं० दिशा + शूल] दे० 'दिक्शूल'।

दिशामूल—संज्ञा पुं० [सं० दिशा + मूल] दे० 'दिक्शूल'।

दिशि—संज्ञा स्त्री० [सं० दिश] दे० 'दिशा'।

दिशिनियम—संज्ञा पुं० [सं० दिशि + नियम] दे० 'दिशावकाशक व्रत'।

दिशेभ—संज्ञा पुं० [सं० दिशा + भ] दिग्गज।

दिश्य—वि० [सं०] दिशा संबंधी। दिशाविशेष संबंधी उ०—कहलाकर दिश्य संपदा, हम चारों मुख से पत्नी सदा।—साकेत, पृ० ३२७।

दिष्ट^१—संज्ञा पुं० [सं०] १. भाग्य। २. उपदेश। ३. दासहरिद्रा। दासहलसी। ४. काल। ५. वैवस्वत मनु के एक पुत्र का नाम।

दिष्ट^२—वि० १. नियत। उद्दिष्ट। निश्चित। २. कथित। प्रतिपादित। ३. आविष्ट। आदेशप्राप्त।

दिष्ट^३—संज्ञा स्त्री० [सं० दृष्टि] दे० 'दृष्टि'। उ०—तुव बिष्ट कुटिम कराल, म्हाँ परिग सोक बिसाल।—प० रासो, पृ० ११।

दिष्टबंधक—संज्ञा पुं० [सं० दृष्टि + बंधक] किसी पदार्थ को बंधक या रेहन रखने का एक प्रकार जिसमें रुपए का केवल सुद दिया जाता है, रेहन रखे हुए पदार्थ की प्राय या मोग आदि से रुपए देनेवाले का कोई संबंध नहीं रहता। वह रेहन जिसमें चीज पर रुपए देनेवाले का कोई कब्जा न हो, उसे सिर्फ सुद भिसता रहे।

दिष्टवान^४—संज्ञा पुं० [सं० दृष्टिमत्] दृष्टि। देखने का ढंग। उ०—दिष्टवान में ताकर चोन्हा। आद मनुष्य सो जइ छल कीन्हा।—इंद्रा० पृ० १२५।

दिष्टान्त—संज्ञा पुं० [सं० दिष्टान्त] मृत्यु। मोत।

दिष्टि^५—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. भाग्य। २. उपदेश। ३. उत्सव। ४. प्रसन्नता। ५. सवाई की एक माघ (को०)। ६. आदेश। निर्देश (को०)।

दिष्टि^६—संज्ञा स्त्री० [सं० दृष्टि] दे० 'दृष्टि'।

दिष्ट्यु—वि० [सं०] दाता। देनेवाला (को०)।

दिसंतर^७—संज्ञा पुं० [सं० देशान्तर] देशान्तर। विदेश। परदेश। उ०—(क) बेल उलटि ताड़क को लायो नस्तु माँहि भरि गेनि अरार। भली भाँति की सोदा कीयो प्राइ दिसतर या संतार।—सुंदर ग्रं०, भा० २, पृ० ५५२। (ख) स्वांगी सब ससार है, साधु कोई एक। हीरा दूरि दिसतरा, ककर और अनेक।—संतवाणी०, पृ० ८८।

दिसंतर—क्रि० वि० दिशाओं के अत तक। बहुत दूर तक।

दिसंबर—संज्ञा पुं० [अंग० डिसेंबर] ग्रेगोरी साल का बारहवाँ या अंतिम महीना जो इकतीस दिनों का होता है।

दिस^८—संज्ञा स्त्री० [सं० दिश या दिशा] दे० 'दिशा'।

दिस^९—संज्ञा पुं० [सं० दिवस] दिन। दिवस। उ०—महं अगिन निभ दिस जरे, गुरु से चाहे मान। ताको जम नेवता दियो, होउ हमार मेहनान।—कबीर सा० सं०, पृ० ४।

दिसना^{१०}—क्रि० भ० [सं० दक्षिण; प्रा० दंसण, दस्सण, दिसण] दे० 'दिसना'। उ०—हुमा क्या वो कह सोल हाली मुँजे, के दिसता है पिजरा सा खाधी मुँजे।

दिसा^{११}—संज्ञा स्त्री० [सं० दिशा] दे० 'दिशा'।

दिमा^{१२}—संज्ञा स्त्री० [सं० दिशा (= ओर)] मखस्याग करने की क्रिया। पेसाने जाना। भाड़ा फिरना।

क्रि० प्र०—जाना।—फिरना।—सगना।—होना।

यो०—दिशा फरागत।

दिसा^{१३}—संज्ञा स्त्री० [सं० दशा] दे० 'दशा'।

दिसाउर^{१४}—संज्ञा पुं० [सं० देस + अपर; प्रा० देसावर, अप० दिसाउर] दे० 'दिसावर'। उ०—हिरणाक्षी हसिनइ कहइ, करइ दिसाउर एक।—ढोला०, पृ० २२१।

दिसादाह^{१५}—संज्ञा पुं० [सं० दिशा + दाह] दे० 'दिक्दाह'।

दिसाबल—संज्ञा पुं० [देश०] वैश्यों की एक जाति ।

दिसावर—संज्ञा पुं० [म० देशान्तर] दूसरा देश । देशान्तर । परदेश । विदेश । उ०—दाता तरवर दया फन उपगारी जीवंत । पंथी चले दिसावरी बिरषा सुफल फलंत ।—कबीर ग्रं०, पृ० ७७ ।

मुहा०—दिसावर उतरना=जिस स्थान से माल आता हो प्रयत्न जहाँ जाता हो वहाँ का भाव गिरना । विदेश में भाव गिरना । दिसावर चटना=विदेश में बाजार का भाव बढ़ जाना । परदेस में दाम बढ़ जाना ।

दिसावरी—वि० [हि० दिवासर + ई (प्रत्य०)] विदेश से आया हुआ । बाहर का । बाहरी (माल आदि) ।

दिसाशूल—संज्ञा पुं० [हि० दिमा + सं० शूल] दे० 'दिक्शूल' ।

दिसासूत्र—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'दिक्शूल' ।

दिसि(पुं०)—संज्ञा स्त्री० [सं० दिशा] दे० 'दिशा' । उ०—देस काल दिसि विदिसिह माही । कहहु मो कहीं जहाँ प्रभु माहीं ।—मानस, १।१८५ ।

यौ०—दिविविदिसि ।

दिसिदि(पुं०)—संज्ञा स्त्री० [सं० दृष्टि] दे० 'दृष्टि' ।

दिसित्रासा—संज्ञा पुं० [हि० दिश + सं० त्रासा] दिग्गज । उ०—लाक जोक प्रान निन विगता मिप्र विपु सिव मनु दिमियाता । मानस, ७।८१ ।

दिसिदुग्द(पुं०)—संज्ञा पुं० [सं० दिशिद्वन्द] दिग्गज ।

दिसिनायक(पुं०)—संज्ञा पुं० [हि० दिग + नायक] दे० 'दिक्पाल' । उ०—नौके सिन विरचि दिसिनायक रहे सुवि कर कान ।—तुलसी ग्रं०, पृ० ३१६ ।

दिसिप(पुं०)—संज्ञा पुं० [हि० दिमि + सं० प (=रक्षक)] दे० 'दिक्पाल' । उ०—कर नार मुर दिसिप बिनीता । भृकुटि बलिंकत सकल सभिता । मानस, ५०२० ।

दिसिपति, दिसिपाल(उ०)—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'दिक्पाल' । उ०—(क) बाध हरि ह्व दिसिपति दिनराऊ ।—मानस, ११३२१ । (ख) भग नाग किनर दिसियाता ।—मानस, २१३४ ।

दिसिराज(पुं०)—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'दिक्पाल' । उ०—विष्णु कहा प्रम बिदिसि तब बोनि सकल दिसिराज । मानस ११६२ ।

दिसैया(पुं०)—वि० [हि० दिमना (=दिक्पाल) + ऐया (प्रत्य०)] १. देखनेवाला । २. दिशानेवाला ।

दिस्टि(पुं०)—संज्ञा स्त्री० [सं० दृष्टि] दे० 'दृष्टि' । उ०—जहाँ जो ठाँव दिस्टि सँह भावा । दरपन भाव दस्त देखरावा ।—जायसी (गद०) ।

दिस्टिवंध(पुं०)—संज्ञा पुं० [सं० दृष्टिवन्ध] इंद्रजाल । जादू । उ०—राघव दिस्टिवंध बलिह खेला । भग पकि चटक प्रम मला ।—जायसी (गद०) ।

दिस्टिवंत(पुं०)—वि०, संज्ञा पुं० [सं० दृष्टिवन्त] दे० 'दीठवंत' ।

दिस्ता—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'दस्ता' ।

दिस्सा—संज्ञा स्त्री० [सं० दिक्षा] घोर । तरफ (लक्ष०) ।

दिहंद—वि० [फा०] दे० 'दिहंदा' ।

दिहंदा—वि० [फा०] दाता । देनेवाला ।

विशेष—इसका प्रयोग प्रायः योगिक शब्दों में के अंत में होता है । जैसे, राधादिहंदा ।

दिहकानियत—संज्ञा स्त्री० [फा० देहकानियत] देहातीपन । गंवार-पन (को०) ।

दिहरा—संज्ञा पुं० [सं० देव + ग्रह (=हर) (=देवहर)] देवालया । देवमंदिर ।

दिहली—संज्ञा स्त्री० [सं० देहली] दे० 'देहलीज' । उ०—नाल भोवल पोसो गाढो, दिहली को तब बालक काढो ।—कबीर सा०, पृ० ५३८ ।

दिहाड़ा—संज्ञा पुं० [हि० दिन + हार (प्रत्य०)] १. दुर्गंत । बुरी हालत । २. दिन । उ०—रति दिहाड़े तलब तुसाडी प्रकल हलम उड़ावे है ।—घनानंद, पृ० १७७ ।

दिहाड़ी—संज्ञा पुं० [हि० दिहरा] दे० 'दिहरा' । उ०—पूजे देव दिहाड़ी महा माई माने । परगट देव निरंजना, ताकी सेव न जाने ।—दादू, पृ० ५५८ ।

दिहाड़ी—संज्ञा स्त्री० [पंजाबी. हि० दिहाड़ा + ई (प्रत्य०)] १. दिन । २. दिन भर की मजदूरी ।

दिहाती—संज्ञा स्त्री० [हि० देहात] दे० 'देहात' ।

दिहाती—वि० [हि० दिहात + ई] 'देहाती' ।

दिहातीपन—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'देहातीपन' ।

दिहुदी—संज्ञा स्त्री० [सं० देहली] दे० 'डिहाड़ी' ।

दिहुला—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का घान जो पूरब के जिलों में बोया जाता है ।

दिहेजा—संज्ञा पुं० [हि० देहेज] दे० 'देहेज' ।

दी—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'दीमक' ।

दी(पुं०)—संज्ञा पुं० [प्र० दीन] दे० 'दीन' । उ०—दुश्मन है दी का खाल सिंह मुख उपर तेरे । हिंदू से क्या प्रजब है प्रगर काफरी करे ।—कविता को०, भा० ४, पृ० २४ ।

दीधट—संज्ञा स्त्री० [हि० दीपट] दे० 'दीपट' ।

दीभा—संज्ञा पुं० [सं० दीपक] दे० 'दीया' ।

दीक—संज्ञा पुं० [देश०] जाल में मँगा देने का एक प्रकार का तेज ।

विशेष—यह तेज कादू या हिमाली के पेड़ की छाल से निकलता है और जाल में मँगा देने के काम में आता है । कादू के पेड़ दक्षिण में समुद्र के किनारे मिलते हैं ।

दीकरा—संज्ञा पुं० [देश० स्त्री० दीकरी] संतति । बेटा । वत्स । पुत्र । उ०—सहू दईरा दीकरा लीला लाड़े लोक । दई हूँत छाना दिवस, न काटे विण सोक ।—बाकी० ग्रं०, भा० २, पृ० २६ ।

दीक्षक—संज्ञा पुं० [सं०] दीक्षा देनेवाला । मन्त्र का उपदेश करनेवाला । शिक्षक । गुरु ।

दीक्षण—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० दीक्षित] १. दीक्षा देने की क्रिया । २. दे० 'दीक्षात' । ३. यज्ञोपवीत । उपनयन (को०) ।

दीक्षांत—संज्ञा पुं० [सं० दीक्षान्त] १. वह अवधूत यज्ञ जो किसी यज्ञ के समापनांत में उसकी त्रुटि आदि के दोष की क्षाति के लिये किया जाता है। २. विश्वविद्यालयों में परीक्षोत्तीर्ण स्नातकों को उपाधि या प्रमाणपत्र प्रदान करने का अवसर। ३. किसी गुरुकुल या विद्यालय में अध्ययन क्रम की समाप्ति।

यी०—दीक्षांत भाषण। दीक्षांतोपदेश = उत्तीर्ण स्नातकों को प्रमाणपत्र देने के अनंतर किसी विशिष्ट विद्वान् या कुनपति द्वारा उन स्नातकों को संबोधित कर दिया जानेवाला उपदेश।

दीक्षा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. गजन। यज्ञकर्म। सोमयागादि का संकल्पपूर्वक अनुष्ठान। २. गुरु या आचार्य का नियमपूर्वक मंत्रोपदेश। मंत्र की शिक्षा जिसे गुरु दे और शिष्य ग्रहण करे।

क्रि० प्र०—देना।—लेना।

विशेष—वैदिक गायत्री मंत्र के अतिरिक्त आज कल भिन्न भिन्न देवताओं के बहुत से सांप्रदायिक ऋग्यजुः मंत्र तंत्रोक्त रीति के अनुसार प्रचलित हैं। योगिनीय तंत्र, योगिनी तंत्र, गद्यात्मक इत्यादि तंत्र ग्रंथों में दीक्षाग्रहण का माहात्म्य तथा उसके अनेक प्रकार के नियम लिखे हुए हैं। विष्णु, शिव, शक्ति, गणेश, सूर्य इत्यादि की उपासना के प्रेक्ष से वेष्णुव, राम-तारक, शैव, शाक्त इत्यादि मंत्र प्रचलित हैं, जो शिष्य के ज्ञान में कहे जाते हैं। लोगों का साधारण विश्वास है कि बिना गुरुमंत्र लिए गति नहीं होती। तंत्रों के अनुसार जिन मंत्रों के अंत में 'हुं फट्' हो वे पुं० मंत्र, जिनके अंत में 'स्वाहा' हो वे स्त्री मंत्र और जिनके अंत में 'नमः' हो वे नपुंसक मंत्र कहलाते हैं। योगिनी तंत्र में लिखा है कि पिता, मामा, छोटे भाई और शत्रुपक्षवाले से मंत्र न लेना चाहिए। रुद्रयामल तंत्र पनि से मंत्र लेने का भी निषेध करता है, पर उससे सिद्ध मंत्र लेने की आज्ञा देता है। शूद्र को प्रणव या प्रगुवधटित मंत्र देने का निषेध है। शूद्र को गोपाल मंत्रेश्वर, दुर्गा, सूर्य और गणेश का मंत्र देना चाहिए।

३. उपनयन संस्कार क्रममें आचार्य गायत्री मंत्र का उपदेश देता है। ४. वह मंत्र जिसका उपदेश गुरु करे। गुरुमंत्र। ५. पूजन।

दीक्षागुरु—संज्ञा पुं० [सं०] मंत्रोपदेष्टा गुरु।

दीक्षापति—संज्ञा पुं० [सं०] दीक्षा या यज्ञ का रक्षक, सीमा।

दीक्षित^१—वि० [सं०] १. जिसने सोमयागादिका संकल्पपूर्वक अनुष्ठान किया हो। जो किसी यज्ञ में प्रवृत्त हो। २. जिसने आचार्य से दीक्षा ली हो। जिसने गुरु से मंत्र लिया हो। जिसने दीक्षा ग्रहण की हो।

दीक्षित^२—संज्ञा पुं० ब्राह्मणों का एक भेद।

दीखना—क्रि० अ० [हि० देखना] दिखाई देना। देखने में आना। दृष्टिगोचर होना। जैसे, उसे दूर की चीज नहीं दीखती।

संयो० क्रि०—पढ़ना।—पाना। उ०—पुनि जब दीख रूप निज पावा।—मानस. १।१३६।

दीक्षिआ^३—संज्ञा स्त्री० [सं० दीक्षा] ३० 'दीक्षा'। उ०—कठन गुरु जिसु दीक्षिआ दीनि। भरवरि प्रणवे रत्तु प्रबीन।—प्राण०, पृ० १००।

दीगर—वि० [फ्रा०] दूसरा। अन्य।

दीर्घ—वि० [सं० दीर्घ, प्रा० दिष्ट्य] बड़ा। विशाल। लंबा।

दीधी—संज्ञा स्त्री० [सं० दीधिका] बावली। पोखरा तालाब। जैसे, लालदीधी।

दीच्छा^४—संज्ञा स्त्री० [सं० दीक्षा] ३० 'दीक्षा'।

दीठ—संज्ञा स्त्री० [म० दृष्टि, प्रा० दिष्टि] १. देखने की वृत्ति या शक्ति। आँख की ज्योति। दृष्टि। उ०—पिय की धारति देखि मेरे जिय दया होत पै तेरी दीठ देखि देखि डगत।—नंद०, अं०, पृ० ३६५।

मुहा०—दीठ मारी जाना = देखने की शक्ति न रह जाना।

२. देखने के लिये नेत्रों की प्रवृत्ति। आँख की पुतली की किसी वस्तु की सोच में होने की स्थिति। टक। दृक्यात। अवलोकन। चितवन। नजर। निगाह।

क्रि० प्र०—पढ़ना।—डालना।

यी०—दीठबंद। दीठबंदी।

मुहा०—दीठ करना = दृष्टि डालना। ताकना। दीठ चूकना = नजर न पड़ना। दृष्टि का इधर उधर हो जाना। दीठ फिरना = (१) नेत्रों का दूसरी ओर प्रवृत्त होना। (२) कृपादृष्टि न रहना। हित का ध्यान या प्रीति न रहना। चित्त अप्रसन्न या खिन्न होना। दीठ फिरना = हारा होना। हरादृष्टि होना। उ०—हो गए फेर में पड़े बरसों। आप की दीठ आज भी न णिगे।—चुम्बे० पृ० २। दीठ फेरना = नजर डालना। ताकना। दीठ फेरना = (१) नजर हटा लेना। दूगरी ओर ताकना। उ०—जिधर दीठ दे दीठ फेरती, उधर मैं तुम्हें बैठ, हेरती। साकेत पृ० ३१३। (२) कृपादृष्टि न रखना। अपसन्न या खिन्न होना। किसी की दीठ बचाना = (१) (किसी के) सामने होने से बचना। आँख के सामने न आना। जान बूझकर न दिखाई पड़ना (भय, लज्जा आदि के कारण)। (२) (किसी से) छिपाना। न दिखाना। उ०—मोहन आपसी राधिका को विपरीत की चित्र चित्र बनाय कै। दीह बचाय सलोनी की धारसी में चित्लाद गयो बहल्लाइ कै।—रसकुसुमाकर (अ० २)। दीठ उठाना = इस प्रकार जादू करना कि भाँसों को धोर का धोर दिखाई दे। इंद्रजाल फैलाना। दीठ लगाना = ताकना। दृष्टि करना। उ०—नहिं लावहिं पर तिय मन दीठी।—चुनसी (अ० २)।

३. आँख की ज्योति का प्रसार जिससे वस्तुओं के रूप रंग का बोध होता है। दृक्पथ।

मुहा०—दीठ उर चढ़ना = (१) देखने में धैर्य या उत्तम जान पड़ना। निगाह में जँचना। अन्ध्रा लगने के कारण ध्यान में सदा बना रहना। पसंद आना। भावना। (२) आँखों में लटकना। किसी वस्तु का इतना बुरा लगना कि उसका ध्यान सदा बना रहे। दीठ बिछाना = (१) प्रेम या श्रद्धावश किसी के आसरे में लगातार ताकते रहना। उत्कंठापूर्वक किसी के आगमन की प्रतीक्षा करना। (२) किसी के आने पर अत्यंत श्रद्धा या प्रेम से स्वागत करना। दीठ में आना = दिखाई पड़ना। दीठ में पड़ना = दिखाई पड़ना। दीठ में समाना = अन्ध्रा या प्रिय लगने के कारण ध्यान में सदा बना रहना।

दीठ से उतरना या गिरना = श्रद्धा, विश्वास या प्रेम का पात्र न रहना । (किसी के) विचार में अच्छा न रह जाना ।

४. अच्छी वस्तु पर ऐसी दृष्टि जिसका प्रभाव बुरा पड़े । नजर ।
उ०—दूनी हूँ लागी लगन दिए दिठोना दीठ ।—बिहारो (शब्द०) ।

क्रि० प्र०—लगना ।—लगाना ।

मुहा०—दीठ उतारना या भाड़ना - मंत्र के द्वारा बुरी दृष्टि का प्रभाव दूर करना । दीठ खा जाना = किसी की बुरी दृष्टि के सामने पड़ जाना । टोक में आना । हूँस में आना । (बच्चों के संबंध में अधिक बोलते हैं) । (किसी की) दीठ चढ़ना, दीठ पर चढ़ना = दे० 'दीठ खा जाना' । दीठ जलाना = नजर उतारने के लिये राई लोन या कपड़ा जलाना ।

विशेष—जब बच्चों को नजर लगने का संदेह स्त्रियों को होता है तब वे टोटके के लिये उसके ऊपर से राई लोन घुमाकर भाग में डालती हैं, यथा जिस किसी को वे नजर लगानेवाला समझती हैं उसकी आँख की बरोनी किसी युक्ति से प्राप्त करके भाग में जलानी हैं ।

५. देखने में प्रवृत्त नेत्र । देखने के लिये खुली हुई आँख ।

मुहा०—दीठ उठाना = ताकने के लिये आँख ऊपर करना । दीठ गड़ाना, जमाना = दृष्टि स्थिर करना । एकटक ताकना । दीठ चुराना - (लज्जा या भय से) सामने न आना । जान बूझ कर दिखाई न पड़ना । दीठ जुड़ना = आँख मिलना । साक्षात्कार होना । देखादेखी होना । दीठ जोड़ना = आँख मिलाना । साक्षात्कार करना । देखादेखी करना । दीठ फिसलना = चमक दमक के कारण नजर न टहरना । आँख में चकाचौंध होना । दीठ भर देवना = 'जननी देर तक इच्छा हो उतनी देर तक देवना । जी भरकर ताकना । दीठ मारना = (१) आँख से इशारा करना । पलक गिराकर संकेत करना । (२) आँख के इशारे से रोकना । दीठ मिलना = दे० 'दीठ जुड़ना' । दीठ मिलना = दे० 'दीठ जोड़ना' । दीठ लगना = देखादेखी होने से प्रेम होना । प्रीति होना । उ०—नंददास नंदरानी छवि निरखि बारि पोवत पानी, काहू जिन दीठ लगे ।—नंद० ग्रं०, पृ० ३३६ । दीठ लड़ना = आँख के सामने आँख होना । घूर-घूरी होना । दीठ लड़ाना = आँख के सामने आँख किए रहना । घूरना ।

६. देख भाल । देख रेख । निगरानी ।

क्रि० प्र०—रखना ।

७. परख । पहचान । तमोज । घटकल । अंदाज ।

क्रि० प्र०—रखना ।

८. कृपादृष्टि । हित का ध्यान । मित्रवानी की नजर । उ०—बिरवा लाइ न मुखइ दीदै । पाँच पाँचि दीठि गो कीजै ।—जायसी (शब्द०) । ९. आण । नी दृष्टि । आपरे में लगी हुई नकटर्षी । घाम । लम्पीद ।

क्रि० प्र०—जगना ।—लगाना ।

१०. ध्यान । विचार । संकल्प । उद्देश्य ।

क्रि० प्र०—रखना ।

दीठना—क्रि० सं० [हि० दीठ + ना (प्रत्य०)] दे० 'देखना' ।
उ०—काहे काठ जो खाइया खात किनहुँ नहि दीठ ।—कबीर सा० सं०, पृ० ४१ ।

दीठबंद—संज्ञा पुं० [हि० दीठ + सं० बन्ध] इंद्रजाल की ऐसी माया जिसमें लोगों को घोर का घोर दिखाई दे । नजरबंद । जादू ।

दीठवंदी—संज्ञा स्त्री० [हि० दीठवंद] इंद्रजाल की ऐसी माया जिससे लोगों को घोर का घोर दिखाई दे । नजरवंदी । जादू ।

दीठवंत(पु)—संज्ञा पुं० [हि० दीठ + वंत (प्रत्य०)] १. वह जिसे दिखाई देता हो । सुभाखा । २. जानी ।

दीठि—संज्ञा स्त्री० [सं० दृष्टि, प्रा० दिट्ठि] दे० 'दृष्टि' । उ०—जखने दुहुक दीठि बिछुड़लि दुहु मने दुख लागु ।—विद्यापति, पृ० ३७ ।

दीठिवंत(पु)—संज्ञा पुं० [हि० दीठिवंत] दे० 'दीठिवंत' । उ०—ना वह मिला न बेहरा ऐस रहा भरिपूर । दीठिवंत कहँ नीयरे अंध मूरखहि दूर ।—जायसी (शब्द०) ।

दीठिमेरावा(पु)—संज्ञा पुं० [सं० दृष्टि + मिलन] देखादेखी । एक दूसरे को देखना । परस्पर दर्शन । उ०—होइहि एहि बिधि दीठिमेरावा ।—जायसी ग्रं०, पृ० ६१ ।

दीठी(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० दृष्टि] दृष्टि । नेत्र । उ०—मिलन मार मुमकान बचन घृदु बोली मीठी । पुलकित सीतल गात, सुमट रतनारी दीठी ।—पलटू, भा० १, पृ० १२ ।

दीत(पु)—संज्ञा पुं० [सं० आदित्य, पुं० हि० आदीत] सूर्य । (हि०) ।

दीतवार—संज्ञा पुं० [सं० आदित्यवार] इतवार । रविवार । उ०—माघ सुख द्वितिया सु तिथि, दीतवार मन हर्ष । ब्रज० ग्रं०, पृ० ५० ।

दीद(पु)—संज्ञा स्त्री० [फ्रा०] दर्शन । दीदार । उ०—दीद बरदीद परतीत आवै नहीं, दूरि की आस विश्वास भारी ।—कबीर० दे०, पृ० ५ ।

यौ०—दीद ए तर = अश्रुपूर्ण नेत्र । आद्र आँखें । दीद बरदीद = देखादेखी । आँखों के सामने । उ०—दीद बरदीद हम नजरों देखा अजया अमर निसानी ।—कबीर श्रं०, पृ० ६२ । दीदबान = (१) देखभाल करनेवाला व्यक्ति । (२) निगरानी करने के लिये बना ऊँचा स्थान । दीदबानी = निगरानी । देखभाल । उ०—करे घर की सब दीदबानी बही, देवे नेकी बंद की निशानी बही ।—दक्खिनी०, पृ० ८९ ।

दीदनी(पु)—वि० [फ्रा०] देखने योग्य । दर्शनीय । उ०—जो गुप्त घोर शुनोद है घोर दीदनी घोर दीद है ।—कबीर श्रं०, पृ० ३७१ ।

दीदा^१—संज्ञा स्त्री [फ्रा०] १. दृष्टि । निगाह । नजर । २. दर्शन । अवलोकन । देखादेखी ।

दीदा^२—संज्ञा पुं० [फ्रा० दीदह] १. आँख । नेत्र । उ०—अँकिया के नहर सुँ दीदे का पानी, कर ऐसे बागे गम की बागवानी ।—दक्खिनी०, पृ० २३७ ।

मुहा०—दीदा लगना = जी लगना । ध्यान जमाना । चित्त रमना । जैसे,—(क) यहाँ इसका दीदा क्यों लगेगा ? (ख) काम में

उसका दीदा नहीं लगता। दीदे का पानी डल जाना = बुरे काम के करने में लज्जा न रह जाना। निर्लज्ज हो जाना। दीदे का पानी भरना = निर्लज्ज या बेहया हो जाना। उ०— नजीर के दीदे का तो पानी भर गया है।—फिसाना०, भा० ३, पृ० ३३६। दीदे निकलना = क्रोध की दृष्टि से देखना। घालें नीली पीली करना। दीदाधोई = स्त्री जिसकी घालों में शर्म न हो। बेशर्म। निर्लज्ज। (स्त्रि०)। दीदे पटम होना = घालों का फूट जाना। (स्त्रि०)। दीदाफटी = स्त्री जिसकी घालों में शर्म न हो। निर्लज्ज। (स्त्रि०)। दीदा फूटना = घालें फूटना। घालें धंधी होना। दीदे फाड़कर देखना = अच्छी तरह घालें खोलकर देखना। ध्यानपूर्वक देखना। टकटकी बांधकर देखना। दीदे मटकाना = हाव भाव सहित घालों की पुतली चमकाना। घालें चमकाना।

२. ठिठाई। संकोच का अभाव। अनुचित साहम। जैसे,— उसका इतना बड़ा दीदा कि वह मर्दों के सामने बात करे—(स्त्रि०)।

दीदार—संज्ञा पुं० [फ्रा०] १. सौंदर्य। छवि। २. दर्शन। देखा देखी। साक्षात्कार। उ०—मारजूए चरमए कोसर नहीं। तिष्नालब हूँ शरबते दीदार का।—कविता को०, भा० ४, पृ० ६।

यौ०—दीदारपरस्त = (१) सौंदर्य देखनेवाला। सूरत और श्रुमारप्रेमी। (२) दर्शनाभिलाषी। दीदारबाजी = ताक भाँक। घालें लड़ना।

दीदारी—संज्ञा स्त्री० [फ्रा० दीदार] देखना। दर्शन करना। उ०— नाहक दीदारी है सारी घर न इश्क का हीर लगा।—भारतेंदु प्र०, भा० २, पृ० ५६६।

दीदारी—वि० [फ्रा० दीदार] दर्शनीय। देखने योग्य।

दीदी—संज्ञा स्त्री० [हि० दादा (= बड़ा भाई)] बड़े बहिन को पुकारने का शब्द। उमेश भगिनी के लिये संबोधन शब्द।

दीधना—क्रि० सं० [सं०] देना। प्रदान करना सं०—पूजी विनायक चाली छह जान। चौरास्या सहू दोषद छह पान।—बी० रासो०, पृ० ११।

दीधिति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. सूर्य, चंद्रमा आदि की किरण। २. उंगली।

दीन—वि० [सं०] १. दरिद्र। गरीब। जिसकी दशा हीन हो। उ०—बानी हो सब जगत के तुम एकें मंदार। दारुन दुख दुखिया के अभिमत फल दातार। अभिमत फल दातार देखन सेवें हित सों। मकल संतरा सोहू छोहू किन राखत चित सों। बरनै दीनदयाल छहि नव सुखद बखानी। तोहि सेइ जो दीन रहै तो तू कस दानी?—दीनदयाल (शब्द०)। २. दुःखित। सतप्त। कातर। उ०—आश्रम देख जानकी होना। भए विकल जस प्राकृत दीना।—तुलसी (शब्द०)।

यौ०—दीनदयाल। दीनबंधु। दीनानाथ।

३. उदास। शिथिल। जिसमें किसी प्रकार का उत्साह या प्रसन्नता

न हो। जिसका मन मरा हुआ हो। उ०—(क) नवम सरस सब सन छल हीना। मम भरोस हिय हरष न दीना।—तुलसी (शब्द०)। (ख) ऐसेई दीन मलीन हुती मन मेरो भयो अब तो प्रति प्रारत।—रसकुसुमाकर (शब्द०)। ४. दुःख या भय से अधीनता प्रकट करनेवाला। नम्र। विनीत। उ०—दीन बचन सुनि प्रभु मन भावा। भुज बिसाल गहि हृदय लगावा।—तुलसी (शब्द०)।

दीन—संज्ञा पुं० [सं०] तगर का फूल।

दीन—संज्ञा पुं० [सं०] मत। मजहब। धर्मविश्वास।

यौ०—दीन ए इलाही, दीने इलाही = सम्राट् अकबर द्वारा चलाया हुआ एक पथ जिसमें हिंदू धर्म तथा अन्य धर्मों की बातों का मिश्रण था। दीनदार। दीन दुखिया = निर्धन। निरस। दीन दुनिया = लोक परलोक। दीनदुनी।

दीन—संज्ञा पुं० [सं० दिन] दे० 'दिन'। उ०—गेल दीन पुनु पलटि न आव।—विद्यापति, पृ० ३०२।

दीनक—वि० [सं०] दुर्बलावस्था। विपन्न। दुःखी (को०)।

दीनता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. दरिद्रता। गरीबी। २. कातरता। आतंभाव। ३. उदासी। निःश्रुता। ४. दुःख से उत्पन्न अधीनता का भाव। नम्रता। विनीत भाव।

विशेष—काव्य या रसनिरूपण में दीनता एक संचारी भाव है।

दीनताई—पुं०—संज्ञा स्त्री० [सं० दीनता + ई (प्रत्यय)] दे० 'दीनता'।

दीनत्व—पुं०—संज्ञा पुं० [सं०] दीनता।

दीनदयाल—वि०, संज्ञा पुं० [सं० दीनदयालु] दे० 'दीनदयालु'। उ०—बोमल पित्त प्रति दीनदयाला।—तुलसी (शब्द०)।

दीनदयालु—वि० [सं०] दीन पर दया करनेवाला।

दीनदयालु—संज्ञा पुं० देशर का एक नाम।

दीनदार—वि० [सं० दीन + दा० वार (प्रत्यय)] अपने धर्म पर विश्वास रखनेवाला। धार्मिक। जैसे, दीनदार मुसलमान।

दीनदारी—संज्ञा स्त्री० [सं० दीन + दा० वारी (प्रत्यय)] धर्माचरण।

दीन दुनिया—संज्ञा पुं० स्त्री० [सं० दीन + का० दुन्या] धर्म और संसार। उ०—पनद दुनिया दीन में उतरी बड़ा न कोइ। साहिब वही फरीर है जो कोइ पढ़ना होइ।—पद्मद०, भा० १, पृ० ४।

मुद्रा—यौ० दीन दुनिया में बेखबर होना = व धर्म की परवाह करना और न समझनी। बेदोश होना। उ०—आजादपला तमाय सब गंधी के आलम में रहे, दीन दुनिया से बेखबर।—फिसाना० भा० ३, पृ० १०६।

दीनदुनी—संज्ञा स्त्री० [सं० दीन + का० दुन्या] लोक परलोक।

दीनबंधु—संज्ञा पुं० [सं० दीन + धनु] १. दुखियों का सहायक। २. देशर का एक नाम।

दीनहित—वि० [सं० दीन + हित] दीनों का हित करनेवाला। उ०—मो सम दीन न, दीनहित तुम समान रखीर। धम बिचारि रघुवंसमनि, बुरहु विषम भवभीर।—मानस, ७।१३०।

दीना—संज्ञा स्त्री० [सं०] मूषिका । बुढ़िया ।

दीनानाथ—संज्ञा पुं० [सं० दीन + नाथ] १. दीनों का स्वामी या रक्षक । दुखियों का रक्षक । दुखियों का पालक और सहायक । २. ईश्वर का एक नाम ।

दीनार—संज्ञा पुं० [सं०] १. स्वर्णभूषण । सोने का गहना । २. निष्क की तोल । ३. स्वर्णमुद्रा । मोहर ।

विशेष—दीनार नामक सिक्के का प्रचार किसी समय एशिया और यूरोप के बहुत से भागों में था । यह कहीं सोने का, कहीं चांदी का होता था । देशभेद से इसके मूल्य में भी भेद था ।

मुसलमानों के आने के बहुत पहले से भारतवर्ष में दीनार चलता था । 'हरिवंश' और 'महावीरचरित्' में दीनार का स्पष्ट उल्लेख है । सीची में बौद्ध स्तूप का जो बड़ा खंडहर है उसके पूर्वद्वार पर सम्राट् चंद्रगुप्त का एक लेख है । उस लेख में 'दीनार' शब्द आया है । अमरकोश में भी दीनार शब्द मौजूद है और निष्क के बराबर अर्थात् दो तोले का माना गया है । रघुनंदन के मत से दीनार ३२ रत्ती सोने का होता था । अकबर के समय में जो दीनार नाम का सोने का सिक्का जारी था उसका मान एक मिसकाल अर्थात् आधे तोले के बराबर था ।

हिंदुस्तान की तरह अरब और फारस में भी प्राचीन काल में दीनार नाम का सिक्का प्रचलित था । अरबी फारसी के कोशकारों ने दीनार शब्द को अरबी लिखा है, पर फारस में दीनार का प्रचार बहुत प्राचीन काल में था । इसके अतिरिक्त रोमन (रोमक) लोगों में भी यह सिक्का दिनारियस के नाम से प्रचलित था । धातुवर्ष पर ध्यान देने से भी दीनार शब्द आर्यभाषा ही का प्रतीत होता है । अब प्रश्न यह होता है कि यह सिक्का भारत से फारस, अरब होते हुए रोम में गया अथवा रोम से अरब आया । यदि हरिवंश आदि संस्कृत ग्रंथों की आधिक प्राचीनता स्वीकार की जाय तो दीनार को इसी देश का मानना पड़ेगा ।

दीनारी—संज्ञा पुं० [सं० दीनार] लांहारों का ठप्पा ।

दीनी—वि० [सं० दीन + क्रा० ई (प्रत्य०)] धार्मिक । धर्म संबंधी (की०) ।

दीपकर—संज्ञा पुं० [सं० दीप + कृ०] बुद्ध के अवतारों में से एक ।

दीप—संज्ञा पुं० [सं०] १. दीया । चिराग । जलनी हुई बत्ती ।

यौ०—दीपकलिका । दीपकिट्ट । दीपकुण्ड । दीपदान । दीपध्वज । दीपपुष्प । दीपमाला । दीपवृक्ष । दीपजिह्वा ।

विशेष—किसी कुल या समुदाय का दीप कहने से उस कुल या समुदाय में अंगठ का अर्थ सूचित होता है; जैसे, निरालि वदन कहि भूप रखाई । रघुकुल दीपहि चलेउ निवाई ।—तुलसी (मन्द०) ।

२. दस मात्राओं का एक छंद जिसके अंत में तीन लघु फिर एक गुरु और फिर एक लघु होता है । जैसे—जय जयति जगबन्ध, गुनि मन कुमुद खंद । श्रीलोक्य भवनीय । दशरथ कुलदीप ।

दीप—संज्ञा पुं० [सं० दीप] १० 'दीप' । उ०—रामतिलक सुनि दीप

दीप के रूप आए उपहार लिए । सीय सहित प्राचीन सिंहासन निरालि जोहारत हरष हिए ।—तुलसी ग्रं०, पृ० ४०३ ।

दीपक—संज्ञा पुं० [सं०] १. दीया । चिराग ।

यौ०—कुलदीपक = वंश को उजाला करनेवाला पुत्र ।

२. एक अर्थालंकार जिसमें प्रस्तुत (जो वर्णन का विषय हो) और अप्रस्तुत (जो वर्णन का उपस्थित विषय न हो और उपमान आदि हो) का एक ही धर्म कहा जाता है; अथवा बहुत सी क्रियाओं का एक ही कारक होता है । जैसे,— (क) सोहत भूपति दान सों फल फूलन प्राराम । इस उदाहरण में प्रस्तुत 'भूपति' और अप्रस्तुत 'प्राराम' दोनों का एक धर्म सोहत कहा गया है । (ख) ऋषिहि देखि हरष हियो राम देखि कुम्हिलाय । धनुष देखि डरपे महा बिता बिता डुनाय । इस उदाहरण में 'हरष' 'कुम्हिलाय' 'डरपे' आदि क्रियाओं का एक ही कर्ता 'हियो' कहा गया है ।

विशेष—दीपक चार आदि और प्रधान अर्थालंकारों में से है । तुल्ययोगिता में भी एक धर्म का कथन होता है पर वह या तो कई प्रस्तुतों या कई अप्रस्तुतों का होता है । दीपक में प्रस्तुत और अप्रस्तुत के एक धर्म का कथन होता है । दीपक चार प्रकार का होता है—आवृत्ति दीपक, कारक दीपक, माला दीपक और देहली दीपक । (१) आवृत्ति दीपक में या तो एक ही क्रियापद भिन्न भिन्न अर्थों में बार बार आता है अथवा एक ही अर्थ के भिन्न भिन्न पद आते हैं । जैसे,— (क) बहै रघिर सरिता, बहै किरवाने कड़ि कोस । बीरन बरहि बरौंगना, बरहि मुमट रन रोस । (ख) दीरहि संगर मरा गज धावहि हय समुदाय । (२) कारक दीपक । उ०—ऊपर देखिए । (३) माला दीपक जिसमें एकदली और दीपक का मेल होता है । जैसे,—जग की रचि ब्रजवास, ब्रज की रचि ब्रजचंद हरि । हरि रचि बंसी 'दास' । बंसी रचि मन बाँधियो । (४) देहली दीपक में एक ही पद दो और लगता है । जैसे,—हैं नरसिंह महा मनुजाद हन्यो प्रह्लाद की संकट भारी । इस उदाहरण में 'हन्यो' शब्द दो और लगता है—'मनुजाद हन्यो' और 'भारी संकट हन्यो' ।

३. संगीत में छह रागों में से एक ।

विशेष—अनुमत् के मत से यह छह रागों में दूसरा राग है । यह संपूर्ण जाति का राग है और पञ्च स्वर से आरंभ होता है । इसके गाने का समय ग्रीष्म ऋतु का मध्याह्न है । इसका सरगम यह है—स रे ग म प ध नि स ।

इसकी पाँच रागिनियाँ मानी जाती हैं—देशी, कामोदी, नाटिका, केदारी और कान्हड़ा । पुत्र पाठ हैं—कुंतल, कमल, कलिंग, चंपक, कुसुंभ, राम, लहलह और हिमाल । भारत के मत से दीपक की पालियाँ हैं—केदारा, गोरी, गोड़ी, गुजरी, व्दराणी; और पुत्र हैं कुसुम, टंक, नदनारायण, विहागरा, किरौदस्त, रभसमंगला, मंगलाष्टक और भद्राना ।

४. एक ताल का नाम जिसमें प्लुत, लघु और प्लुत होने हैं । ५. अजवायन (जो अग्निदीपक होती है) । ६. कैसर ।

कुंकुम । ७. बाज नाम का पक्षी । ८. मयूरशिखा । ९. एक प्रकार की प्रातिशबाजी ।

दीपक^२—वि० [स्त्री० दीपिका] १. प्रकाश करनेवाला । उजाला फैलानेवाला । दीप्तिकारक । २. जठराग्नि को दीप्त करने वाला । पाचन की अग्नि को तेज करनेवाला । ३. उत्तेजक । शरीर में वेग या उमंग लानेवाला ।

दीपक^३—संज्ञा पुं० [सं०] एक डिगल गीत । छंदविशेष । उ०—
तुकां बेलिये गीत रो, प्राय दुतिय चतुरंत । तिय पद दोय
हुमेल तुक, दीपक सो दाखंत ।—रघु० क०, पु० १०६ ।

दीपकमाला—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. एक वर्णवृत्त का नाम जिसके प्रत्येक चरण में भगण, भगण, जगण और गुरु होता है । जैसे,—भाभज गो कया सखी बरी । देखन ही मोरे धनू बरी । मंडप के नीचे धरी धनी । दीपकमाला सो ससै लली । २. दीपक अलंकार का एक भेद ।

दीपकलिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] दीए की टेम । चिराग की ली ।

दीपकली—संज्ञा स्त्री० [सं० दीपकलिका] चिराग की टेम । दीप-
शिखा । दीए की ली ।

दीपकवृत्त—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह बड़ा दीवट जिसमें दीप रखने के लिये कई शाखाएँ इधर उधर निकली हों । २. भाड़ ।

दीपकसुत—संज्ञा पुं० [सं०] कज्जल । काजल ।

दीपकाल—संज्ञा पुं० [सं०] दीया बालने का समय । संध्या ।

दीपकावृत्त—संज्ञा पुं० [सं०] १. दीपक अलंकार का एक भेद । २. पनसाखा ।

दीपकिट्ट—संज्ञा पुं० [सं०] कज्जल । काजल ।

दीपकूपी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दीए की बत्ती ।

दीपलोरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दीए की बत्ती (को०) ।

दीपगु—संज्ञा पुं० [सं० दीपक] ३० 'दीपक' । उ०—दीपग बरत
विवेक की तो ली याचित माहि । जो ली नारि कटाक्ष पट
भरकी लागत नाहि ।—जय० ग्रं०, पु० ८८ ।

दीपगरी—संज्ञा पुं० [सं० दीपगृह] दीवट । दीपाधार ।

दीपचंदी—संज्ञा पुं० [सं० दीपचंद्रि] संगीत का एक 'ताल' या
ठेका । उ०—कुछ संगीतज्ञों का कहना है कि 'दीपचंदी' ताल
का नहीं ठेके का नाम है ।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पु० ४६७ ।

दीपति(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० दीप्ति] १. कांति । चमक । प्रभा ।
ज्योति । २. छटा । भोभा । ३. कीर्ति । धन ।

दीपति(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० दीप्ति] ३० 'दीप्ति' । उ०—अजरज
मोहि हिंदू नुरुक बादि करन संग्राम । इक दीपति सी दीपिया
काका कासी घाम ।—प्रकवरी०, पु० ५१ ।

दीपदान—संज्ञा पुं० [सं०] १. किसी देवता के सामने दीपक जलाने का काम जो पूजन का एक अंग समझा जाता है । २. कांतिक में बहुत से दीपक जलाने का कृत्य जो राधा दामोदर के निमित्त होता है । ३. एक प्रकार का कृत्य जिसमें मरणासन्न व्यक्ति के हाथ से घाटे के जलते हुए दीये का संकल्प कराया जाता है ।

दीपदानी—संज्ञा स्त्री० [सं० दीप + प्राधान] बी, बत्ती आदि दीया जलाने की सामग्री रखने की डिबिया जो पूजा के सामानों में से है ।

दीपध्वज—संज्ञा पुं० [सं०] १. काजल । २. दीवट ।

दीपन^२—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० दीपनीय, दीपित, दीप्य] १. प्रकाशित । प्रज्वलित या प्रकाशित करने का काम । प्रकाश के लिये जलाने का काम । २. जठराग्नि को तीव्र करने की क्रिया । भूख को उभारने की क्रिया । ३. आवेग उत्पन्न करना । उत्तेजना । जैसे, काम का दीपन ।

दीपन^३—वि० दीपन करनेवाला । जठराग्निवर्धक । अग्निमांश दूर करनेवाला ।

दीपन^४—संज्ञा पुं० १. तगरमूल । तगर की जड़ या लकड़ी । २. मयूरशिखा नाम की बूटी । ३. कुंकुम । केसर । ४. पखांडु । प्याज । ५. कासमर्द । कसौदा । ६. मंत्र के उन दस संस्कारों में से एक जिनके बिना मंत्र सिद्ध नहीं होता । ७. रसेश्वर दर्शन के अनुसार पारे का सातवाँ संस्कार ।

विशेष—इस वर्णन को माननेवाले रस या पारे ही को संसार-परपार-प्राप्ति का कारण और रस-शास्त्र को देहवेषपूर्वक मुक्ति का साधन मानते हैं ।

दीपनगण—संज्ञा पुं० [सं०] जठराग्नि को तीव्र करनेवाले पदार्थों का वर्ग । भूख लगानेवाली औषधियों का वर्ग ।

विशेष—इस वर्ग के अंतर्गत चीता, बनिया, भजनोहा, जोरा, हाऊ, बेर इत्यादि हैं ।

दीपना^५(पु)—क्रि० प्र० [सं० दीपन] प्रकाशित होना । चमकना । जगमगाना ।

दीपना^६—क्रि० सं० प्रकाशित करना । चमकाना । उ०—द्वार में दिसान में दुनी में देस देसन में देख्यो दीप दीपन में दीपत दिगंत है ।—पद्माकर (अष्ट०) ।

दीपनी^१—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. मेथी । २. अजवायन । ३. पाठा ।

दीपनी^२—वि० [सं०] १. दीप्त करने योग्य । प्रकाशन के योग्य । ३. उत्तेजित करनेवाला । दीप या अभिवृद्ध करनेवाली (औषधि) ।

दीपनीय^३—संज्ञा पुं० १. यवानी । अजवायन । २. ३० 'दीपनीय वर्ग' । ३. स्वास्थ्यदायक औषधि । पुष्टिकर दवा (को०) ।

दीपनीयवर्ग—संज्ञा पुं० [सं०] चक्रवर्त्त के अनुसार एक औषधिवर्ग जिसके अंतर्गत पिप्पली, पिप्पलामूल, चव्य, चीता और नागर हैं । ये सब औषधियाँ कफ और वातनाशक हैं ।

दीपपादप—संज्ञा पुं० [सं०] दीवट ।

दीपपुष्प—संज्ञा पुं० [सं०] चंपकवृक्ष । चंपा ।

दीपमाला—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. जलते हुए दीयों की पंक्ति । जगमगाते हुए दीयों की श्रेणी । (दीवाली में इस प्रकार दीपक जलाकर पंक्ति में रखे जाते हैं) । २. दीपमाला या धारती के लिये जलाई हुई बत्तियों का समूह ।

दीपमालिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. दीयों की पंक्ति । जलते हुए

प्रदीपों की श्रेणी (जैसी दीवाली में दिखाई देती है) ।
२. दीवाली । ३. दीपदान या धारती के लिये जलाई हुई बत्तियों की पंक्ति । उ०—दीपमालिका रवि रवि साजत
पुहुपमाल मंडली विराजत ।—मूर (शब्द०) ।

दीपमाली—संज्ञा स्त्री० [सं० दीपमालिका] दीवाली । उ०—
छालिनि के संग दीपमाली के विलोकिने को श्रीभक्ति उभक्ति
औ न भक्ति करोखे ते ।—द्वित्रदेव (शब्द०) ।

दीपवती—संज्ञा स्त्री० [सं०] कालिका पुराण के अनुसार एक नदी
जो कामाख्या में है और जिसके पूर्व शृंगार नाम का प्रसिद्ध
पर्वत है ।

दीपवर्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] दीप की बत्ती [को०] ।

दीपवृक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] १. दीपट । दीपट । २. प्रकाश[को०] ।

दीपशत्रु—संज्ञा पुं० [सं०] पतंग । फतिगा जो दीपक को बुझा
देता है ।

दीपशलभ—संज्ञा पुं० [सं० दीप + शलभ] जुगमु । खद्योत । उ०—
दीपशलभ ने जिसे मिचीनी खेल खेलकर ह्वसाया ।—
वीणा, पु० ।

दीपशिखा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. दीप की टेम । चिराग की ली ।
प्रदीपज्वाला । उ०—दीपशिखा सम ज्वलतिजन मन जनि
होसि पतंग ।—तुलसी (शब्द०) । २. दीप का घुमा
या काजल ।

दीपशृङ्खला—संज्ञा स्त्री० [सं० दीपशृङ्खला] दीपकों की कतार ।
दीपों की पंक्ति [को०] ।

दीपसुत—संज्ञा पुं० [सं०] कज्जल । कात्रल ।

दीपस्तंभ—संज्ञा पुं० [सं० दीप + स्तंभ] वह स्तंभ जिसपर दीप
बलता हो । दीपाधार । दीपट ।

दीपाङ्कुर—संज्ञा पुं० [सं० दीपाङ्कुर] दीप की टेम । दीपक की
ली [को०] ।

दीपाग्नि—संज्ञा पुं० [सं०] दीप की टेम की छाँव । छाँव का एक
परिमाण जो धूम्रानि से जीवुता माला जाता है ।

दीपाधार—संज्ञा पुं० [सं० दीप + आधार] दीपक रखने का पात्र
या स्थान । दीपट । उ०—दोनों की विनय विह्वलता देख
दीपाधार पर जलती दीपशिखा रन्ध्र और निम्न रत्न गई ।
—धर्मिण, पु० ११ ।

दीपान्विता + संज्ञा स्त्री० [सं०] कार्तिक मास की अमावस्या
जिसके प्रदीपकाल में लक्ष्मीपूजन और दीपदान आदि होता
है । दीवाली ।

दीपाराधन—संज्ञा पुं० [सं०] धारती करने की क्रिया । दीप द्वारा
पूजन [को०] ।

दीपालि—संज्ञा स्त्री० [सं०] ३० 'दीपावली' [को०] ।

दीपाली—संज्ञा स्त्री० [सं०] ३० 'दीपावली' [को०] ।

दीपावती—संज्ञा स्त्री० [सं०] दीपक और मन्त्रों के योग से उत्पन्न
एक रागिनी ।

दीपावलि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. दीपश्रेणी । दीपों की पंक्ति । २.
दीवाली ।

दीपावली—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. दीपों की पंक्ति । २. दीवाली ।

दीपिका^१—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. छोटा दीया । २. एक रागिनी जो
हिंडोल राग की पत्नी मानी जाती है और प्रदीपकाल में गाई
जाती है । ३. चाँदनी । चंद्रमा का प्रकाश [को०] ।

दीपिका^२—वि० स्त्री० १. प्रकाश करनेवाली । उजाला फैलानेवाली ।
२. स्पष्ट कहनेवाली ।

दीपिकातैल—संज्ञा पुं० [सं०] एक आयुर्वेदोक्त तेल जो कान का दर्द
दूर करने के लिये कान में टपकाया जाता है ।

विशेष—इसे प्रस्तुत करने की रीति यह है कि देवदार, सलई
या चीड़ की सात छाठ अंगुल लंबी लकड़ी ले और उसे सूए
आदि से छलनी की तरह चारों ओर छेद डाले । फिर उसमें
रेसम लपेटकर तेल में खूब हुवावे और बत्ती की तरह जला
दे । इस प्रकार जलती हुई बत्ती में से जो गरम गरम तेल
बूँद बूँद गिरे उसे कान में टपकावे ।

दीपित—वि० [सं०] १. प्रकाशित । प्रज्वलित । २. चमकता हुआ ।
जगमगाता हुआ । ३. उत्तेजित ।

दीपी—वि० [सं० दीपिन्] १. जलनेवाला । दीप्त होनेवाला । चोतित ।
२. दीपन करनेवाला [को०] ।

दीपोत्सव—संज्ञा पुं० [सं०] दीवाली ।

दीप्त^१—वि० [सं०] १. प्रज्वलित । जलता हुआ । २. प्रकाशित ।
जगमगाता हुआ । चमकता हुआ ।

दीप्त^२—संज्ञा पुं० १. स्वर्ण । सोना । २. हींग । ३. नीबू । ४. सिंह ।
५. सुधूत के अनुसार नाक का एक रोग जिसमें नाक से भाप
की तरह गरम गरम हवा निकलती है और नथुनों में जलन
होती है ।

दीप्तक—संज्ञा पुं० [सं०] १. सोना । सुवर्ण । २. नाक का एक रोग ।
३० 'दीप्त'—५ ।

दीप्तकिरण—संज्ञा पुं० [सं०] १. सूर्य । २. मदार का पीछा ।

दीप्तकीर्ति—संज्ञा पुं० [सं०] कुमार कार्तिकेय [को०] ।

दीप्तकेतु—संज्ञा पुं० [सं०] १. भागवत के अनुसार दक्षसावर्णि मनु के
एक पुत्र का नाम । २. महाभारत में वर्णित एक राजा
का नाम ।

दीप्तजिह्वा—वि० [सं०] [वि० स्त्री० दीप्तजिह्वा] चलतो जवानवाला ।
भगड़ातू ।

दीप्तजिह्वा—संज्ञा स्त्री० [सं०] उत्कामुखी । शृंगाली । भादा गीदड़ ।
सियारिन ।

विशेष—गीदड़ के मुँह का अगला भाग कुछ कालापन लिए होता
है इसी से उसका नाम उत्का (लुपाठा) मुल पड़ा । उत्का
जलते हुए पिंड या प्रकाश को भी कहते हैं इसी भ्रम से दीप्त-
जिह्वा नाम रखा हुआ जान पड़ता है ।

दीप्तपिंगल—संज्ञा पुं० [सं० दीप्तपिंगल] सिंह ।

दीपमरस—संज्ञा पुं० [सं०] केंचुआ ।

विशेष—रात को अँधेरे में केंचुए के शरीर के रस से एक प्रकार
की चमक निकलती है इसी से इसका यह नाम पड़ा है ।

दीप्तरोमा—संज्ञा पुं० [सं० दीप्तरोमन्] एक विश्वदेव का नाम । (महाभारत) ।

दीप्तलोचन—संज्ञा पुं० [सं०] बिल्ली । बिडाल ।

दीप्तलौह—संज्ञा पुं० [सं०] १. तपाया हुआ लाल लोहा । २. काँसा । काँस्य ।

दीप्तवर्ण^१—वि० [सं०] जिसका शरीर कुंदन की तरह दमरुना हुआ हो ।

दीप्तवर्ण^२—संज्ञा पुं० कार्तिकेय ।

दीप्तशक्ति^१—वि० [सं०] दे० 'दीप्तवर्ण' ।

दीप्तशक्ति^२—संज्ञा पुं० कुमार कार्तिकेय (को०) ।

दीप्तांग^१—वि० [सं० दीप्ताङ्ग] जिसका शरीर चमकता हो ।

दीप्तांग^२—संज्ञा पुं० मोर । मयूर ।

दीप्तांगु—संज्ञा पुं० [सं०] १. सूर्य । २. मदार । धाक ।

दीप्ता^१—वि० स्त्री० [सं०] १. प्रकाशित । प्रकाशयुक्त । चमकती हुई । २. (दिशा) जिसमें सूर्य किसी समय स्थित हो । सूर्य से प्रकाशित । जैसे, दीप्ता दिशा ।

दीप्ता^२—संज्ञा पुं० १. लांगली वृक्ष । कलियारी । २. ज्योतिष्मती । मालकंगनी । ३. सातना नामक शूहर ।

दीप्ताक्ष^१—वि० [सं०] जिसकी आँखें चमकती हों ।

दीप्ताक्ष^२—संज्ञा पुं० बिडाल । बिल्ली ।

दीप्ताग्नि^१—वि० [सं०] १. जिसकी जठराग्नि बहुत तीव्र हो । जिसकी पाचन शक्ति अत्यंत प्रबल हो । २. जिसकी पूँख जगी हो । भूसा ।

दीप्ताग्नि^२—संज्ञा पुं० अगस्त्य मुनि (जिन्होंने समुद्र को पी लिया था और वातापि नामक राजस को पचा डाला था) ।

दीप्ति^१—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. प्रकाश । उजाला । रोशनी । २. प्रभा । आभा । चमक । छानि । ३. कांति । शोभा । छवि । जैसे, अंग की दीप्ति । ४. ज्ञान का प्रकाश जिससे विवेक उत्पन्न होता है और अज्ञानांधकार दूर हो जाता है (योग) । ५. लासा । लाज । ६. काँसा । शूहर ।

दीप्ति^२—संज्ञा पुं० एक विश्वदेव का नाम (महाभारत) ।

दीप्तिक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] शिरमोला । दुग्धपाषाण धूस ।

दीप्तिमान्^१—वि० [सं० दीप्तिमान्] [वि० स्त्री० दीप्तिमती] १. दीप्तियुक्त । प्रकाशित । चमकता हुआ । २. कांतियुक्त । शोभायुक्त ।

दीप्तिमान्^२—संज्ञा पुं० सत्यभामा के गर्भ से उत्पन्न श्रीकृष्ण के एक पुत्र का नाम ।

दीप्तीह—संज्ञा पुं० [सं०] महाभारत के अनुसार एक तीर्थ, जिसमें बहुसर नाम की एक नदी है ।

विशेष—यहाँ परशुराम ने स्नान करके अपना खोया हुआ तेज फिर से प्राप्त किया था । पूर्वकाल में भृगु ने यहीं पर कठोर तपस्या की थी ।

दीप्तीपक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्यकांत मणि ।

दीप्य^१—वि० [सं०] १. जो जलाया जाने को हो । प्रज्वलित किया जानेवाला । २. जो जलाने योग्य हो । ३. जठराग्नि दीपन करनेवाला ।

दीप्य^२—संज्ञा पुं० १. अजवायन । २. जोरा । ३. मयूरशिखा । ४. रुद्रजटा ।

दीप्यक—संज्ञा पुं० [सं०] १. अजवायन । २. अजमोदा । ३. मयूर शिखा । ४. रुद्रजटा ।

दीप्यमान—वि० [सं०] चमकता हुआ ।

दीप्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] पिंड खड्ग ।

दीप्प्र^१—वि० [सं०] दीप्तिमान् । प्रकाशयुक्त ।

दीप्प्र^२—संज्ञा पुं० अग्नि ।

दीवाचा—संज्ञा पुं० [फा० दीवाचह] प्रस्तावना । भूमिका । प्राक्कथन (को०) ।

दीवाज—संज्ञा पुं० [अ०] एक प्रकार का बहुत बढ़िया और उत्तम रेशमी वस्त्र जिसे दीबा भी कहते हैं ।

दीवाणु^१—संज्ञा पुं० [फा० दीवान] दे० 'दीवान' । उ०—बीने भागु शब्दु निरवानु । गगनंतवि तपति लाय दीवाणु ।—प्राण०, पृ० १०६ ।

दीबो^१—संज्ञा पुं० [हि० देना] दे० 'देना' ।

दीमक—संज्ञा स्त्री० [फा०] चींटी की तरह का एक छोटा कीड़ा जिसे जालीदार पर निकलते हैं । यह लकड़ी आदि में लगकर उसे खोखली और नष्ट कर देता है । बन्मीक ।

विशेष—इसका पङ्क सफेद होता है और सिर लाल या नारंगी रंग का होता है । यह दल बाँधकर रहता है । दीमकें गरम देशों में बहुत होती हैं और मिट्टी का घर बनाती हैं जिसकी दीवारें दानेदार पपड़ी की तरह होती हैं । कहीं कहीं ये घर दूह के आकार के हाथ डेढ़ हाथ ऊँचे होते हैं, और बल्मीक या बमोट कहलाते हैं । चींटियों की तरह ये कीड़े भी बड़े नियम और व्यवस्था के साथ रहते हैं । एक दल में अधिक संख्या तो कलीज कीटों की होती है जो केवल काम करने के लिये होते हैं । कुछ कलीज कीट नर के लिये मिरवाले होते हैं जो सिपाही कहलाते हैं । एक या अधिक आकीट या रानियाँ होती हैं जिनका शरीर घोंड़ों से भरे रहने के कारण कभी कभी बहुत फूला दिखाई पड़ता है । इनके आसक्ति नर भी होते हैं जो किसी किसी शत्रु में बहुत दिखाई पड़ते हैं और फतिगों की तरह उड़ते फिरते हैं । ये कीड़े काष्ठ और जंतुशरीर पर निर्वाह करते हैं । जिस वस्तु पर ये लगते हैं उसे प्रायः मिट्टी की पपड़ी में आच्छादित कर देते हैं और भीतर ही भीतर उसे खाते जाते हैं । बरसात में दीमकें लगती हैं और कागज, लकड़ी आदि को इनसे बचाना कठिन हो जाता है ।

मुहा०—दीमक खाया = (१) जिसे दीमकों ने खाकर नष्ट कर दिया हो । (२) दीमकों को खाई हुई वस्तु की तरह स्थान पर खुदा हुआ गड्ढेदार । जैसे, शीतला के दागवाला चेहरा । दीमक का चाटना = दीमक का (किसी वस्तु को) खाकर नष्ट करना जैसे,—इस किताब के पन्ने दीमकें खा गई ।

दीमान(७) — संज्ञा पु० [फ्रा० दीवान] राज्यसभा । दे० 'दीवान' ।
उ० — तुरत सर्व दिमानहि आए । — प० रासो, पृ० १०४ ।

दीयट — संज्ञा पु० [हि० दीवट] दे० 'दीवट' ।

दीयमान — वि० [सं०] जो दिया जानेवाला हो । जिसे किसी को देना हो । जो देने के लिये हो ।

दीया — संज्ञा पु० [सं० दीपक, प्रा० दीऊ] १. उजाले के लिये जलाई हुई बत्ती । जलती हुई बत्ती । विराग ।

क्रि० प्र० — जलना । — जलाना । — बलना । — बालना । — बुझना । — बुझाना ।

मुहा० — दीए का हँसना = दीए की बत्ती में फूल या गुल झड़ना । दीए की बत्ती में चमकते हुए गोल गोल रवे दिखाई पड़ना । — (इससे विवाह होने, लड़का होने आदि का शुभ संकुन समझा जाता है) । दीया जलना = दीया जलने का समय होना । संध्या होना । दीया जलाना = दीवाला निकालना ।

विशेष — पहले जो लोम दीवाला निकालते थे वे टाट उलटकर उसपर एक चौमुखी दीया जलाकर रख देते थे और काम धाम बंद कर देते थे ।

दीया जलने के समय संध्या को । शाम को । दीया ठंडा करना — दीया बुझाना । (किसी के घर का) दीया ठंडा होना = किसी के मरने से कुल में संबंधकार छा जाना । घर में रौनक न रह जाना । दीया दिखाना = रोगनी दिखाना । सामने उजाला करना । दीया बढ़ाना = दीया बुझाना । दीया बत्ती करना = जलाने के लिये दीया, बत्ती आदि ठीक करना । रोगनी का सामान करना । विराग जलाना । दीये बत्ती का समय = संध्या का समय । दीया लेकर हँदना = चारों ओर हिरान होकर हँदना । बड़ी छानबीन में खोजना । दीये से फूल झड़ना = दीये की बत्ती हुई बत्ती से चमकते हुए गोल फुचड़े या रंग निकलना । गुल झड़ना ।

२. [श्री० अल्लामा दिवली, दिगली] बत्ती जलाने का बरतन । वह बरतन जिसमें तेल भरकर जलाने के लिये बत्ती डाली जाती है ।

विशेष — दीए प्रायः मिट्टी के बने होते हैं ।

मुहा० — दीए में दही पड़ना = दाया जलने का समय होना । संध्या का समय होना ।

दीयासलाई — संज्ञा स्त्री० [हि० : या + सलाई] लकड़ी की छोटी सलाई या रोक जिसका एक सिरा रगड़ने से जल उठता है । प्राग जलाने की सीक या सलाई ।

विशेष — इन सलाईओं का एक सिरा कासफरम, पोटाशियम क्लोरेट आदि रंगद साफर जल उठनेवाले पदार्थों में डुबाया रहता है ।

दीयो(७) — संज्ञा पु० [सं० द्वि०] दीयो : उ० — कि माहृष छुट्टि मयमत । भग्य दीयो कि दृष्ट कजि । — पृ० रा०, ५। ५६ ।

दीरगा — वि० [सं० दीर्घ] दे० 'दीर्घ' । उ० — सतगुर पारस की कनी, दीरग बांने नाहि । — रिया० बानी, पृ० ४ ।

दीरघ(७) — वि० [सं० दीर्घ] दे० 'दीर्घ' । उ० — जगत तपोवन सो कियो दीरघ दास निदास । — बिहारी ।

दीरघजिह्वा(७) — संज्ञा स्त्री० [सं० दीर्घजिह्वा] वैरोचन की पुत्री एक राक्षसी । दीर्घजिह्वा । उ० — वैरोचनजा दीरघजिह्वा । सुरपति तेहि लखि लीन्हैसि लिह्वा । — विश्राम (शब्द०) ।

दीर्घ^१ — वि० [सं०] १. प्रायत । लंबा । २. बड़ा । (देश और काल दोनों के लिये, जैसे, दीर्घक्षेत्र, दीर्घवस्त्र, दीर्घकाल) ।

विशेष — कण्ठाद में दीर्घत्व को परिमाणभेद कहा है । सांख्य के मत से दीर्घत्व महत्व का अवस्थांतर है ।

३. विस्तृत । फैला हुआ (को०) । ४. ऊँचा (को०) । ५. गहरा । गंभीर । जैसे, दीर्घ श्वास ।

दीर्घ^२ — संज्ञा पु० १. लता शालवृक्ष । २. माछ वृक्ष । ३. रामशर । नर-कट । ४. ऊँट । ५. ताड़ का पेड़ । ६. गुरु या द्विमात्रिक वर्ण । वह वर्ण जिसका उच्चारण सींचकर हो । ह्रस्व का उल्टा ।

विशेष — आ, ई, ऊ, ऋ, ए, ऐ, ओ, औ, ये दीर्घ स्वर कहलाते हैं । जिन व्यंजनों में ये लगते हैं वे भी दीर्घ कहलाते हैं, जैसे, का की कू इत्यादि । संगीत में भी दो मात्राओं का नाम दीर्घ है । घ-घ को एक साथ उच्चारण करने में जो काल लगता है वह दीर्घ काल कहलाता है ।

७. ज्योतिष में पाँचवीं, छठी, सातवीं और आठवीं प्रथात् सिंह, कन्या, गुला और वृश्चिक राशि को दीर्घ राशि कहते हैं ।

दीर्घकंटक — संज्ञा पु० [सं० दीर्घकण्टक] बबूल का पेड़ ।

दीर्घकंठ^१ — वि० [सं० दीर्घकण्ठ] [वि० श्री० दीर्घकंठी] जिसकी गरदन लंबी हो ।

दीर्घकंठ^२ — संज्ञा पु० १. बगला । बक । २. एक दानव का नाम ।

दीर्घकंठक — वि०, संज्ञा पु० [सं० दीर्घकण्ठक] १० 'दीर्घकंधर' ।

दीर्घकंद — संज्ञा पु० [सं० दीर्घकन्द] मूली ।

दीर्घकंदिका — संज्ञा स्त्री० [सं० दीर्घकन्दिका] मूसली । तालमूली ।

दीर्घकंधर^१ — वि० [सं० दीर्घकंधर] [वि० श्री० दीर्घकंधरी] जिसकी गरदन लंबी हो ।

दीर्घकंधर^२ — संज्ञा पु० बगला पक्षी । बक ।

दीर्घकण्ठा — संज्ञा स्त्री० [सं०] गफेद जीरा ।

दीर्घकर्ण^१ — वि० [सं०] जिसके कान बड़े बड़े हों ।

दीर्घकर्ण^२ — संज्ञा पु० एक जाति का नाम जिसका उल्लेख प्राचीन ग्रंथों में है ।

दीर्घकांड — संज्ञा पु० [सं० दीर्घकाण्ड] सुंदरूण । गोंदना ।

दीर्घकांडा — संज्ञा स्त्री० [सं० दीर्घकाण्डा] पातालगाड़ी लता । खिरहटा । खिरटा ।

दीर्घकाय — वि० [सं०] बड़े डोलडोल का । लंबे चौड़े शरीरवाला ।

दीर्घकाष्ठ — संज्ञा पु० [सं०] एक सीध में ऊपर को गए पेड़ की लकड़ी । शहतीर (को०) ।

दीर्घकील — संज्ञा पु० [सं०] दे० 'दीर्घकीलक' ।

दीर्घकीलक — संज्ञा पु० [सं०] मकील का पेड़ ।

दीर्घकुल्या — संज्ञा स्त्री० [सं०] मंत्रपिप्पली ।

दीर्घकूरक — संज्ञा पु० [सं०] आंध्रप्रदेश में होनेवाला एक प्रकार का धान ।

दीर्घकेश^१—वि० [सं०] [वि० श्री० दीर्घकेशी] लंबे बालोंवाला ।
जिसके लंबे लंबे बाल हों ।

दीर्घकेश^२—संज्ञा पुं० १. बालू । २. कूर्म विभाग के पश्चिमोत्तर में स्थित एक देश (बृहत्संहिता) ।

दीर्घकोशा—संज्ञा श्री० [सं०] दे० 'दीर्घकोशिका' [श्री०] ।

दीर्घकोशिका, दीर्घकोशी—संज्ञा श्री० [सं०] शुक्ति नामक जल-जंतु । सुतुही ।

दीर्घकोशिका—संज्ञा श्री० [सं०] दे० 'दीर्घकोशिका' [श्री०] ।

दीर्घगति—संज्ञा पुं० [सं०] ऊँट (जो लंबे लंबे डग रखता है) ।

दीर्घमंथि—संज्ञा श्री० [सं० दीर्घमंथि] दीर्घकुल्या । गजपिप्पली [श्री०] ।

दीर्घमंथिका—संज्ञा श्री० [सं० दीर्घमंथिका] गजपिप्पली ।

दीर्घमीव^१—वि० [सं०] [वि० श्री० दीर्घमीवी] जिसकी गरदन लंबी हो ।

दीर्घमीव^२—संज्ञा पुं० १. नील कौश पक्षी । मारस । २. कूर्म विभाग के दक्षिण पश्चिम ओर स्थित एक देश (बृहत्संहिता) ।

दीर्घपाटिक^१—वि० [सं०] लंबी गरदनवाला ।

दीर्घपाटिक^२—संज्ञा पुं० ऊँट ।

दीर्घच्छद्^१—वि० [सं०] जिसके लंबे लंबे पत्ते हों ।

दीर्घच्छद्^२—संज्ञा पुं० ईल । ऊल ।

दीर्घजंगल—संज्ञा पुं० [सं० दीर्घजङ्गल] एक प्रकार की मछली । बड़ा झिगा ।

दीर्घजंघ^१—वि० [सं० दीर्घजङ्घ] जिसकी लंबी लंबी टांगें हो ।

दीर्घजंघ^२—संज्ञा पुं० १. बक । बगला । २. ऊँट ।

दीर्घजिह्वा^१—वि० [सं०] जिगकी लंबी जीभ हो ।

दीर्घजिह्वा^२—संज्ञा पुं० १. सर्प । २. दानवविशेष ।

दीर्घजिह्वा—संज्ञा श्री० [सं०] १. त्रिशूचन की पुत्री एक राक्षसी जिसे इन्द्र ने मारा था । २. मातृ गणों में से एक जो कानिकेय की अनुचरी है ।

दीर्घजिह्वी—संज्ञा पुं० [सं० दीर्घजिह्वी] कुत्ता जिसकी जीभ लंबी होती है ।

दीर्घजीवी—वि० [सं० दीर्घजीविन्] जो बहुत दिनों तक जीए : बहुत काल तक जीवित रहनेवाला ।

दीर्घतपा^१—वि० [सं० दीर्घतपस्] जिसने बहुत दिनों तक तपस्या की हो ।

दीर्घतपा^२—संज्ञा पुं० १. हरिवंश के अनुसार अश्वत्थामा नामक एक राजा जिन्होंने बहुत काल तक तप किया था । २. अहिल्या के पति गौतम का नाम [श्री०] ।

दीर्घतमा—संज्ञा पुं० [सं० दीर्घतमस्] एक ऋषि जो उत्तप्य के पुत्र थे ।

विशेष—महाभारत में इनकी कथा इस प्रकार लिखी है । उत्तप्य नामक एक तेजस्वी मुनि थे, जिनकी पत्नी का नाम ममता था । ममता जिस समय गर्भवती थी उस समय उत्तप्य के छोटे भाई देवगुरु बृहस्पति उसके पास आए और सहवास की इच्छा प्रकट करने लगे । ममता ने कहा 'मुझे तुम्हारे बड़े भाई से गर्भ है अतः इस समय तुम जाओ' । बृहस्पति ने न

माना और वे सहवास में प्रवृत्त हुए । गर्भस्थ बालक ने भीतर से कहा—'बस करो ? एक गर्भ में दो बालकों की स्थिति नहीं हो सकती । जब बृहस्पति ने इतने पर भी न सुना तब उस तेजस्वी गर्भस्थ शिशु ने अपने पैरों से वीर्य को रोक दिया । इसपर बृहस्पति ने कुपित होकर गर्भस्थ बालक को शाप दिया कि 'तू दीर्घतमम में पड़ (अर्थात् संधा हो जा)' । बृहस्पति के शाप से वह बालक संधा होकर जन्मा और दीर्घतमा के नाम से प्रसिद्ध हुआ । प्रदेयी नाम की एक ब्राह्मण कन्या से दीर्घतमा का विवाह हुआ, जिससे उन्हें गौतम आदि कई पुत्र हुए । ये सब पुत्र लोभ मोह के वशीभूत हुए । इसपर दीर्घतमा कामधेनु से गोधर्म शिक्षा प्राप्त करके उससे श्रद्धापूर्वक मैथुन आदि में प्रवृत्त हुए । दीर्घतमा को इस प्रकार मर्यादा भंग करते देख आश्रम के मुनि लोग बहुत बिगड़े । उनकी स्त्री प्रदेयी भी इस बात पर बहुत अप्रसन्न हुई । एक दिन दीर्घतमा ने अपनी स्त्री प्रदेयी से पूछा कि 'तू मुझसे क्यों दुर्भाव रखती है ?' प्रदेयी ने कहा 'स्वामी स्त्री का भरण पोषण करता है इसी से भर्ता कहलाता है पर तुम संघे हो, कुछ कर नहीं सकते । इनने दिनों तक मैं तुम्हारा और तुम्हारे पुत्रों का भरण पोषण करती रही, पर अब न कहेगी' । दीर्घतमा ने क्रुद्ध होकर कहा—'ले, आज से मैं यह मर्यादा बांध देता हूँ कि स्त्री एकमात्र पति से ही अनुसृत रहे । पति चाहे जीता हो या मरा यह कदापि दूसरा पति नहीं कर सकती । जो स्त्री दूसरा पति ग्रहण करेगी वह पतित हो जायगी' । प्रदेयी ने इसपर बिगड़कर अपने पुत्रों को आज्ञा दी कि 'तुम अपने संघे शाप की बांधकर गंगा में डाल आओ' । पुत्र आज्ञानुसार दीर्घतमा को गंगा में डाल आए । उस समय बलि नाम के कोई राजा गंगा-स्नान कर रहे थे । वे ऋषि को इस अवस्थ में देख अपने घर ले गए और उनसे प्रार्थना की कि 'महाराज ! मेरी भार्या से शाप योग्य संतान उत्पन्न कीजिए' । जब ऋषि सम्मत हुए तब राजा ने अपनी सुदेष्णा नाम की रानी को उनके पास भेजा । रानी उन्हें संधा और बुढ़ा देख उनके पास न गई और उसने अपनी दासी को भेजा । दीर्घतमा ने उस शूद्रा दासी से कक्षीवः आदि ग्यारह पुत्र उत्पन्न किए । राजा ने यह जानकर फिर सुदेष्णा को ऋषि के पास भेजा । ऋषि ने रानी का सारा क्रम टटोलकर कहा 'जाओ, तुम्हें धर्म, बंध, कलिंग, पुंड्र और सुभ नामक अत्यंत तेजस्वी पुत्र उत्पन्न होंगे जिनके नाम से देश विख्यात होंगे' ।

ऋग्वेद के पहले मंडल में मुक्त १५० से १६० तक में दीर्घतमा के रचे मंत्र हैं । इनमें कई मंत्र ऐसे हैं जिनमें उनके जीवन की घटनाओं का पता चलता है । महाभारत में उनकी स्त्री के संबंध में जिस घटना का वर्णन है उसका उल्लेख भी कई मंत्रों में है । सूक्त १५७ मंत्र ५ में एक मंत्र है जिसे दीर्घतमा ने उस समय कहा था जब लोगों ने उन्हें एक संदूक में बंध कर दिया था । इस मंत्र में उन्होंने पशिवनो देवल से उद्धार पाने के लिये प्रार्थना की है ।

दीर्घतरु—संज्ञा पुं० [सं०] ताड़ का पेड़ ।

दीर्घता—संज्ञा स्त्री० [सं०] लंबाई । बड़ाई ।

दीर्घतिमिषा—संज्ञा स्त्री० [सं०] ककड़ी । ककंटी ।

दीर्घतुंडा^१—वि० स्त्री० [सं० दीर्घतुण्डा] जिसका मुह संबा हो ।

दीर्घतुंडा^२—संज्ञा स्त्री० छद्मदर ।

दीर्घतुंडी—वि०, संज्ञा स्त्री० [सं० दीर्घतुण्डी] ३० 'दीर्घतुंडा' (को०) ।

दीर्घतृण—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की घास जिसके खाने से पशु निर्बल हो जाते हैं । पल्लिवाह तृण । ताम्रपर्णी ।

दीर्घदंड—संज्ञा पुं० [सं० दीर्घदण्ड] ३० 'दीर्घदंडक' ।

दीर्घदंडक—संज्ञा पुं० [सं० दीर्घदण्डक] १. एरंड वृक्ष । भंडी का पेड़ । रेंड । २. ताल वृक्ष । ताड़ का पेड़ (को०) ।

दीर्घदंडी—संज्ञा स्त्री० [सं० दीर्घदण्डी] गोरक्षी । गोरखइमली ।

दीर्घदर्शिता—संज्ञा स्त्री० [सं०] बहुत दूर तक की बात का विचार । परिणाम आदि का विचार करनेवाली बुद्धि । दूरदर्शिता ।

दीर्घदर्शी^१—वि० [सं० दीर्घदर्शिन] १. दूर तक की बात सोचने-वाला । बहुत सी बातों का विचार करनेवाला । दूर तक सब बातों का परिणाम सोचनेवाला । दूरदर्शी । २. विचारवान् ।

दीर्घदर्शी^२—संज्ञा पुं० [मं०] १. भालू । २. गोध ।

दीर्घदृष्टि^१—वि० [मं०] १. जिसकी दृष्टि दूर तक जाय । बहुत दूर तक देखनेवाला । २. दूर तक की बात सोचनेवाला ।

दीर्घदृष्टि^२—संज्ञा पुं० गोध ।

दीर्घदु—संज्ञा पुं० [सं०] ताड़ का पेड़ ।

दीर्घदुम—संज्ञा पुं० [सं०] शान्मली वृक्ष । सेमर का पेड़ ।

दीर्घद्वार—संज्ञा पुं० [सं०] विशाल देज के अंतर्गत एक जनपद जो गंडकी नदी के किनारे माना जाता था ।

दीर्घनाद^१—वि० [सं०] जिससे भारी शब्द निकले । जिसकी आवाज दूर तक फैले ।

दीर्घनाद^२—संज्ञा पुं० १. शंख । २. कुक्कुट । मुर्गा (को०) । ३. श्वान (को०) ।

दीर्घनाल—संज्ञा पुं० [सं०] १. दीर्घरोहिष । रोहिम घास । २. गेंदला घस । गुंड तृण । ३. ज्वार । यवनाल ।

दीर्घनिद्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] मृत्तु । भीत । भरण ।

दीर्घनिश्वास—संज्ञा पुं० [सं० दीर्घनिश्वास] लंबी साँस जो दुःख या शोक के आवेग के कारण ली जाती है ।

दीर्घपत्त—संज्ञा पुं० [मं०] कलिंग पत्ती ।

दीर्घपटोलिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का लताफल ।

दीर्घपत्र—संज्ञा पुं० [सं०] १. राजपत्रांडु । साल प्याज । २. बिष्णु-कंद । ३. हरिबभ्रं । एक प्रकार का कुश । ४. कुचला । कुचिलु । ५. एक प्रकार का ईल (सुश्रुत) । ३० 'दीर्घपत्रक' ।

दीर्घपत्रक—संज्ञा पुं० [सं०] १. साल लहसुन । २. एरंड । रेंड । भंडी । ३. बेतस । बेत । ४. द्विजल । समुद्रफल । ५. करीस । टेंटी का पेड़ । ६. जलमधुक । जल मधुमा ।

दीर्घपत्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. केतकी । २. जंगली जामुन का पेड़ जो छोटा घोर नदियों के किनारे होता है । ३. चित्रपर्णी । ४. सालपर्णी ।

दीर्घपत्रिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. सफेद वच । २. घृतकुमारी । घाकुमार । ३. सालपर्णी । सरिवन । ४. श्वेत पुनर्नवा । सफेद गदहपुरना ।

दीर्घपत्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. पलाशी लता । बौरिया पलाश । वह पलाश जो खता के रूप में फैलता है । २. महाचंडु शाक । बड़ा चेना ।

दीर्घपर्णी—वि० [सं०] जिसके लंबे लंबे पत्ते हों ।

दीर्घपर्णी—संज्ञा स्त्री० [सं०] पिठवन । पुष्पिनपर्णी ।

दीर्घपर्व—संज्ञा पुं० [सं० दीर्घपर्वन्] लंबी पोरवाला, झुं । ईल आदि ।

दीर्घपल्लव—संज्ञा पुं० [सं०] सन का पेड़ ।

दीर्घपाद^१—वि० [सं०] लंबी टाँगवाला ।

दीर्घपाद^२—संज्ञा पुं० १. कंकपक्षी । २. सारस ।

दीर्घपादप—संज्ञा पुं० [सं०] १. ताड़ का पेड़ । २. सुपारी का पेड़ ।

दीर्घपृष्ठ—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० दीर्घपृष्ठि] सर्प । साँप ।

दीर्घप्रज्ञ^१—वि० [सं०] दूरदर्शी ।

दीर्घप्रज्ञ^२—संज्ञा पुं० द्वापर के एक राजा वृषभर्वा का नाम जो असुर के अवतार थे ।

दीर्घफल—संज्ञा पुं० [सं०] अमनताम ।

दीर्घफलक—संज्ञा पुं० [सं०] अगस्त का पेड़ ।

दीर्घफला—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. जतुका लता । पहाड़ी नाम की लता । २. लंबा भंगूर ।

दीर्घफलिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. कपिल ब्राह्म । लंबा भंगूर । २. जतुका लता ।

दीर्घवाला—संज्ञा स्त्री० [सं०] बमरी । सुरा गाय ।

दीर्घबाहु^१—वि० [मं०] जिसकी भुजा लंबी हो ।

दीर्घबाहु^२—संज्ञा पुं० १. शिथ के एक अनुचर का नाम (हरिवंश) । २. घृतराधू के एक पुत्र का नाम ।

दीर्घमारुत—संज्ञा पुं० [सं०] हाथी ।

दीर्घमुख—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक यज्ञ का नाम । २. निव का एक दास । ३. हाथी ।

दीर्घमूल—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक प्रकार की बेल । मोरट लता । २. वेना की तरह की एक पीली घास । सामउजक तृण । ३. विन्वातर वृक्ष ।

दीर्घमूलक—संज्ञा पुं० [सं०] मूलक । मूली ।

दीर्घमूला—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. सालपर्णी । सरिवन । २. श्यामा लता । कालीसर ।

दीर्घमूली—संज्ञा स्त्री० [सं०] घमासा ।

दीर्घयज्ञ^१—वि० [सं०] जिसने बहुत काल तक यज्ञ किया हो ।

दीर्घयज्ञ^२—संज्ञा पुं० अयोध्या के एक राजा का नाम जो द्वापर में हुए थे (महाभारत)।

दीर्घरंगा—संज्ञा स्त्री० [सं० दीर्घरङ्गा] हरिद्रा। हलदी [को०]।

दीर्घरत^३—वि० [सं०] जो बहुत देर तक मैथुन में रत रहे।

दीर्घरत^३—संज्ञा पुं० कुत्ता।

दीर्घरद^४—वि० [सं०] जिसके निकले हुए लंबे दाँत हों।

दीर्घरद^४—संज्ञा पुं० सुअर। शूकर।

दीर्घरसन—संज्ञा पुं० [सं०] सर्प। साँप।

दीर्घरागा—संज्ञा स्त्री० [सं०] हरिद्रा। हलदी।

दीर्घरोमा—संज्ञा पुं० [सं० दीर्घरोमन्] १. आलु। २. शिव के एक अनुचर का नाम।

दीर्घरोहिण—संज्ञा पुं० [सं०] बड़ी जाति की रोहिण घास।

विशेष—यह घास मालवा, राजपूताना और मध्यप्रदेश में बहुत होती है। इसमें से बहुत अच्छी सुगंध निकलती है जो नींबू की सुगंध से मिलती जुलती होती है। इसकी जड़ से एक प्रकार का तेल निकाला जाता है।

दीर्घरोहिणक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'दीर्घरोहिण' [को०]।

दीर्घलोचन^५—वि० [सं०] बड़ी आँखवाला।

दीर्घलोचन^५—संज्ञा पुं० १. शिव के एक अनुचर का नाम। २. धृतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम।

दीर्घवंश—संज्ञा पुं० [सं०] नरसल। नरकट।

दीर्घवक्त्र^६—वि० [सं०] [वि० स्त्री० दीर्घवक्त्रा] लंबे मुँहवाला।

दीर्घवक्त्र^६—संज्ञा पुं० हाथी।

दीर्घवक्त्रिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] कुंभीर। घड़ियाल।

दीर्घवक्त्रिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] घड़ियाल। कुंभीर [को०]।

दीर्घवल्लो—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. बड़ा हस्त। २. पातालगाड़ी लता। ३. पलाश। ४. लता। ५. लता।

दीर्घवृत्त—संज्ञा पुं० [सं० दीर्घवृत्त] १. श्योनाक वृक्ष। सोनापाठा। २. लतामूल।

दीर्घवृत्तक—संज्ञा पुं० [सं० दीर्घवृत्तक] दे० 'दीर्घवृत्त' [को०]।

दीर्घवृत्ता—संज्ञा स्त्री० [सं० दीर्घवृत्ता] हृदयमिठी लता।

दीर्घवृत्तिका—संज्ञा स्त्री० [सं० दीर्घवृत्तिका] एनापर्णा।

दीर्घशर—संज्ञा पुं० [सं०] जगद। जुहरी।

दीर्घशाम्ब—संज्ञा पुं० [सं०] १. सन का पेड़। २. शाल। ३. शाल का पेड़।

दीर्घशाखिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] नीलाम्बु नाम का धूप [को०]।

दीर्घशिखिक—संज्ञा पुं० [सं० दीर्घशिखिक] शव। एक प्रकार की राई।

दीर्घशूक—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का धान।

दीर्घशूकक—संज्ञा पुं० [सं०] राजा का अन्न। राजान्न [को०]।

दीर्घश्रवा—संज्ञा पुं० [सं० दीर्घश्रवस्] दीर्घतमा श्रवण के एक पुत्र ५-६

जिनहोने अनावृष्टि होने पर जीविका के लिये बाणिज्य कर लिया था। हम बात का उल्लेख ऋग्वेद में है।

दीर्घश्रुत—वि० [सं०] १. जो दूर तक सुनाई पड़े। २. जिसका नाम दूर तक प्रसिद्ध हो।

दीर्घसक्थ—वि० [सं०] लंबी जीविताना [को०]।

दीर्घसक्थ—संज्ञा पुं० [सं०] नरकट। गारुड [को०]।

दीर्घसत्र^७—संज्ञा पुं० [सं०] १. यावज्जीवन कर्तव्य अग्निहोत्र। २. एक यज्ञ जो बड़ा दिनों में समान होता था। ३. एक तीर्थ का नाम (महाभारत)।

दीर्घसत्र^७—वि० जिसने दीर्घसत्र यज्ञ किया हो।

दीर्घसुरत—संज्ञा पुं० वह जो देर तक रति करना हो। कुत्ता।

दीर्घसूदम—संज्ञा पुं० [सं०] प्राणायाम का एक भेद।

दीर्घसूत्र—वि० [सं०] दे० 'दीर्घसूत्री'।

दीर्घसूत्रना—संज्ञा स्त्री० [सं०] प्रत्येक कार्य में विलंब करने का स्वभाव। हर एक काम में देर लगाने की आदत।

दीर्घसूत्री—वि० [सं०] दीर्घसूत्र। प्रत्येक कार्य में विलंब करनेवाला। हर एक काम में देर लगाने में उमारा देर लगानेवाला। प्रत्येक कार्य में प्रायः समय बितानेवाला। देर में काम करनेवाला।

दीर्घस्क्थ—संज्ञा पुं० [सं० दीर्घस्क्थ] ताड़ का पेड़।

दीर्घस्वर—संज्ञा पुं० [सं०] द्विमात्रिक स्वर। दे० 'दीर्घ'।

दीर्घा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. शिखर। पृष्ठिर्गर्भा। २. दस हाथ लंबी ४ हाथ चौड़ी और ४ हाथ ऊँची नाव (युक्ति-कल्पक)। ३. घर के बाहर ऊँचा सा बैठने का स्थान। गैबरो।

दीर्घाकार—वि० [सं०] दीर्घाकार का। बड़े प्रकारवाला [को०]।

दीर्घाव्यंग—संज्ञा पुं० [सं०] वह जो लंबी मर्मित चलता हो। हरकार। गायन।

दीर्घागु^८—वि० [सं० दीर्घागु] जिसकी आयु बड़ी हो। बहुत दिनों तक जीनेवाला। दीर्घजीवा। चिरजीवी।

दीर्घागु^८—संज्ञा पुं० १. मेमर का पेड़। २. कीवा। काक। ३. गानक देव का पिता। ४. जीवन दूध।

दीर्घागुव—संज्ञा पुं० [सं०] १. कुमल। २. सुअर। शूकर। ३. माही नाम का पशु जिसके पीर में लंबे लंबे काँटे होते हैं [को०]।

दीर्घागुण्य—संज्ञा पुं० [सं०] लंबी आयु। बड़ी आयु [को०]।

दीर्घाजकै—संज्ञा पुं० [सं०] नरकट। गारुड।

दीर्घाजकै—वि० [सं०] दे० 'दीर्घाजकै'।

दीर्घास्य—संज्ञा पुं० १. दाढ़। २. शिव के एक अनुचर का नाम। ३. शिवमोहक का नाम जिससे एक दिन (वृत्तमहिता)।

दीर्घाहन—संज्ञा पुं० [सं०] पाताल में जिसमें दिन बड़ा होता है।

दीर्घिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. वाक्वी। छोटा जलाशय। छोटा तालाब।

विशेष—किसी किसी के मत से ३०० अनुष संवे जलाशय को दीबिका कहते हैं ।

२. हिमपत्नी । ३. ३२ हाथ लंबी, ४ हाथ चौड़ी और ३६ हाथ ऊँची नाथ (युक्ति कल्पतरु) ।

दीर्घोर्वा—संज्ञा पुं० [सं०] लंबी लकड़ी । बेंगरी ।

दीर्घ—वि० [सं०] १. फटा हुआ । विदारित । दरका हुआ । २. अयभीत । उरा हुआ (कौ०) ।

दीक्षा—संज्ञा पुं० [फ्रा० दिल] दे० 'दिल' । उ०—दील कर भोली मन कर लुभा ।—रामानंद०, पृ० ५० ।

दीली—संज्ञा स्त्री० [हिं० दिल्ली] दे० 'दिल्ली' ।

द्यौ—दीलीपति = दिल्लीपति । दिल्ली का स्वामी । उ०—समरसिध मेवार दंड देवार अजर जर । दीलीपति अनङ्ग लरन लड़ी सुनलोह लरि ।—पृ० रा०, ७२४ ।

दीर्घका—संज्ञा स्त्री० [हिं० दीमक] दे० 'दीमक' ।

दीवट—संज्ञा स्त्री० [सं० दीपपट्ट, प्रा० दीवट्ट, दीवट्ट] पीतल, लकड़ी आदि का डंडे के आकार का आधार जिसपर दीया रखा जाता है । दीपाधार । चिरागदान ।

दीवडा—संज्ञा पुं० [सं० दीप + हिं० डा (प्रत्य०)] दे० 'दीपक' । उ०—सप्तलोक समान प्रिय ले जाके घर लक्ष्मी कुंभारी चंद्र सूरज दीवड़े ।—दक्खिनी०, पृ० २६ ।

दीवला—संज्ञा पुं० [हिं० दीवा + ला (प्रत्य०)] [स्त्री० दिवली, दिवली] दीया । दीपक । उ०—सा बाला प्री चितवड, लिंग लिंग रयणि विहाइ । तिण हर हार पर-दृश्यउ, ज्यू दीवलउ बुझाइ ।—ढोला०, पृ० ५७८ ।

दीवली—संज्ञा स्त्री० [सं० दीपावली] दे० 'दीपावली' । उ०—दीवली कई आगही, धूरि दसरावे बाल्यो राव ।—बी० रासो, पृ० १०६ ।

दीवान^(७)—संज्ञा पुं० [फ्रा० दीवान] राज्यसभा । सम्राट् । दीवान । उ०—यह जानि साहि दीवान किय, खान बहत्तरि इक हुब ।—ह० रामो, पृ० ६४ ।

दीवा^(१)—संज्ञा पुं० [सं० दीपक] दीपक । दीया । उ०—मवि करि दीपक कीजिये, सब घटि भया प्रकास । दादू दीवा हाथि करि, गया निरंजन पास ।—दादू०, पृ० ७ ।

दीवा^(२)—संज्ञा पुं० [देश०] दे० 'धव' ।

दीवाण^(१)—संज्ञा पुं० [र० दीवान] १. दीवान । प्रधान मंत्री । २. आस्था । (नास०)] उ०—दादू गाफिल खोबनै, आठे मंकि मुकाम । दरगह में दीवाण तत, पसे न बैठे पाण ।—दादू०, पृ० ८८ ।

दीवान—संज्ञा पुं० [घ०] १. राजा या बादशाह के बैठने की जगह । राजसभा । दरबार । कचहरी ।

द्यौ—दीवान ग्राम । दीवाने ग्राम ।

२. मंत्री । खजूर । राज्य का प्रबंध करनेवाला । प्रधान । उ०—भक्त ध्रुव की मटल पदवी राम के दीवान ।—(नास०) ।

द्यौ—दीवानखानसा ।

३. गजलों के संग्रह की पुस्तक । ४. एक प्रकार का बड़ा सोफा जिस पर सोया जा सके ।

दीवान ग्राम—संज्ञा पुं० [घ०] १. ग्राम दरबार । ऐसा दरबार जिसमें राजा या बादशाह से सब लोग मिल सकते हैं । २. वह स्थान या भवन जहाँ ग्राम दरबार लगता हो ।

दीवान आखम—संज्ञा पुं० [घ०] दे० 'दीवान ग्राम' ।

दीवानखाना—संज्ञा पुं० [फ्रा० दीवान खानह] घर का वह बाहरी हिस्सा या कमरा जहाँ बड़े आदमी बैठते और सब लोगों से मिलते हैं । बैठक ।

दीवानखास—संज्ञा पुं० [घ० दीवान खालसह] वह अधिकारी जिसके पास राजा या बादशाह की मुहर रहती है ।

दीवानखास—संज्ञा पुं० [घ० दीवानखास] १. खास दरबार । ऐसी सभा जिसमें राजा या बादशाह मंत्रियों तथा चुने हुए प्रधान लोगों के साथ बैठता है । २. वह जगह या मकान जहाँ खास दरबार होता हो ।

दीवानगी—संज्ञा स्त्री० [फ्रा०] पागलपन । दीवानापन (कौ०) ।

दीवाना—वि० [फ्रा०] [वि० स्त्री० दीवानी] पागल । सिद्धी । विक्षिप्त ।

मुहा०—किसी के पीछे दीवाना होना = किसी के लिये हैरान होना । किसी (वस्तु या व्यक्ति) के लिये व्यग्र होना ।

दीवानापन—संज्ञा पुं० [फ्रा० दीवाना + हिं० पन (प्रत्य०)] पागलपन । सिद्धीपन । विक्षिप्ता ।

दीवानी^(१)—संज्ञा स्त्री० [फ्रा०] १. दीवान का पद । दीवान का मोहदा । २. वह थदालत जिसमें दो फरीकों के बीच किसी तरह की हकीयत का फैसला हो । यह न्यायालय जो संपत्ति आदि संबंधी स्वत्व का निर्णय करे । व्यवहार संबंधी न्यायालय ।

दीवानी—वि० स्त्री० [फ्रा० दीवाना] पगली । बावली ।

दीवार—संज्ञा स्त्री० [फ्रा०] १. पत्थर, ईंट मिट्टी आदि की नीचे ऊपर रखकर उठाया हुआ परदा जिनमें किसी स्थान को घेर कर मकान आदि बनाते हैं । भीत ।

मुहा०—दीवार उठाना = दीवार बनाना । भीत खड़ी करना । दीवार खड़ी करना = दीवार बनाना ।

२. किसी वस्तु का घेरा जो ऊपर उठा हो । जैसे, टोपी की दीवार, झूले की दीवार, चूल्हे की दीवार ।

दीवारगीर—संज्ञा स्त्री० [फ्रा०] दीया आदि रखने का आधार जो दीवार में लगाया जाता है । ल०—सुवर्णमय दीवारगीर तथा मोतियों की झालर बनायो ।—कबीर मं०, पृ० ४५० ।

दीवारगीरी—संज्ञा स्त्री० [फ्रा० दीवारगीर] एक प्रकार का छपा हुआ कपड़ा जो दीवार में लगाया जाता है । पिछवाई ।

दीवाल—संज्ञा स्त्री० [फ्रा०] दे० 'दीवार' ।

दीवालदंड—संज्ञा पुं० [फ्रा० दीवाल + हिं० दंड] एक प्रकार की कसरत या बंड जो दीवार पर हाथ टिकाकर करते हैं ।

दीवाला—संज्ञा पुं० [हिं० दिवाला] दे० 'दिवाला' ।

दीवाली—संज्ञा स्त्री० [सं० दीपावली] कार्तिक की अमावास्या को होनेवाला एक उत्सव जिसमें संघा के समय घर में भीतर

बाहर बहुत से दीपक जलाकर पंक्तियों में रखे जाते हैं और लक्ष्मी का पूजन होता है।

विशेष—जिस दिन प्रदोष काल में अमावास्या रहेगी उसी दिन दीवाली होगी और लक्ष्मी का पूजन किया जायगा। यदि अमावास्या लगातार दो दिन प्रदोषकाल में पड़े तो दूसरे दिन की रात को दीवाली मानी जायगी और वह रात सुखरात्रिका कहलावेगी। यदि अमावास्या प्रदोषकाल में पड़े ही न, तो पहले दिन लक्ष्मीपूजा और दूसरे दिन दीपदान होगा क्योंकि पार्वण श्राद्ध उसी दिन होगा। दीवाली के दिन लोग जूआ खेलना भी कर्तव्य समझते हैं।

दीवि—संज्ञा पुं० [सं०] नीलकंठ नाम का पक्षी।

दीवी—संज्ञा स्त्री० [हि० दीवी] दीवट। निरागरान।

दीसना—क्रि० प्र० [सं० दृश् (= देखना) ; प्रा० दीसना] दिखाई देना। दिखाई पड़ना। दिखाई पड़ना। दृष्टिगोचर होना।
उ०—(क) बिदुभन प्रभु विराटमय दीसा।—तुलसी (शब्द०)।
(ख) जट मुकुट गंग दीसहि उत्तंग। सोमंत चंद्र निललाट रंग।
—पृ० रा०, ७। १०।

दीसगना—क्रि० प्र० [सं० दृश्, प्रा० दीस] देखे 'दीसना'। उ०—
परतप ही दीसरे प्राणी, विरभू भजण तगों परताप।—
रघु० क०, पु० २३।

दीसहना^(१)—क्रि० प्र० [सं० दृश्; प्रा० दीस] दिखाई पड़ना। दृष्टगोचर होना। उ०—जत गरल कंठ दीसहति बीय। जिन चित्त प्रगट संसारनीय।—पृ० रा०, ७। ६।

दीहंध—संज्ञा पुं० [सं० दिवस प्रा० दीह + सं० धन्ध] वह जो दिन में देख न सके। अज्ञ। अज्ञ।

दीह^(१)—वि० [सं० दीर्घ, प्रा० दीह] मंदा। अज्ञ। उ०—बहु तामहें दीह पताक लसे। जगु धूम में अग्नि को ज्वाला बसे।—केशव (शब्द०)।

दीह^(२)—संज्ञा पुं० [सं० दिवस, प्रा० दिग्गस, दिग्गह, दीह] दिन। दिवस। उ०—सोवे क्षाय करे नहि मुकुट, सोवे दीह खलीता।—रघु० क०, पु० १६।

दीहड़ा, दीहाड़ा—संज्ञा पुं० [सं० दिवस, प्रा० दीह + ढा (प्रत्यय)] दिन। दिहाड़ा। उ०—पढ़े गु कवि जो बंस प्रगाढ़। हवे बतीत भाव दीहाड़ा।—रा० क०, पु० १२।

दुंका—संज्ञा पुं० [सं० स्तोक] (अनाज का) छोटा कण। कन। दाना। किलकी।

दुंहुक—वि० [सं० दुहृक] छली। धूर्त। बेईमान। झूठा (को०)।

दुंहुभ—संज्ञा पुं० [सं० दुहृभ] एक प्रकार का दिग्गहीन सौव।

दुंद^(१)—संज्ञा पुं० [सं० दुन्द] १. दो मनुष्यों के बीच होनेवाला युद्ध या झगड़ा। २. ऊभम। उत्पत्ति। उपद्रव। दुश्चल। उ०—
तब ही सुरज के सुमट निकट मचायो दुंद। निकसि सकें नहि एकद्व करधो कटक मसमुंद।—सूदन (शब्द०)।

क्रि० प्र०—मचना।—मचाना।

३. जोड़ा। युग्म। उ०—बरने दीनदयाल दरसि पदमुंद अनवी।—दीनदयाल (शब्द०)।

दुंद^(२)—संज्ञा पुं० [सं० दुन्दुभि] नगाड़ा। उ०—(क) चढ़ा असाढ़ गगन घन गाड़ा। साजा बिरह दुंद दल बाजा।—जायसी (शब्द०)। (ख) बाजत डोल दुंद श्री भेरी। मींदर तुर भाँक चहुं फेरी।—जायसी (शब्द०)।

दुंदुम—संज्ञा पुं० [सं० दुन्दुम] एक प्रकार का धौसा या नगाड़ा (को०)।

दुंदु^(१)—संज्ञा पुं० [सं० दुन्दु] १. धोकृष्ण के पिता वसुदेव का नाम। २. एक प्रकार का नगाड़ा (को०)।

दुंदु^(२)—संज्ञा पुं० [हि० दुंद] जन्म और मरण का संभट।

दुंदुभ—संज्ञा पुं० [सं० दुन्दुभ] १. नगाड़ा। धौसा। २. जल का सपे। डोढ़ा (को०)। ३. शिव का एक नाम (को०)। ४. एक प्रकार की लंबी माला (को०)।

दुंदुभि^(१)—संज्ञा पुं० [सं० दुन्दुभि] १. वरुण। २. विष। ३. कौच द्वीप का एक विभाग। ४. एक पर्वत का नाम। ५. पासे का एक दाँव। ६. एक राक्षस का नाम जिसे बालि ने मारकर ऋष्य-मूक पर्वत पर फेंका था। इसपर मर्त्य ऋषि ने शाप दिया था, जिसके कारण बालि उस पर्वत के पास नहीं जा सकता था। ७. विष्णु का नाम (को०)। ८. कृष्ण (को०)। ९. संवत्सरों के क्रम में ५६ वें संवत्सर का नाम (को०)।

दुंदुभि^(२)—संज्ञा स्त्री० [सं० दुन्दुभि] नगाड़ा। धौसा। उ०—सुर सुमन बरसहि हुरल संकुल बाज दुंदुभि गहगही। संग्राम भंगन राम भंग भंगन बहु सोभा लाही।—मानस, ६। १०२।

दुंदुभिक—संज्ञा पुं० [सं० दुन्दुभिक] एक प्रकार का जहरीला कीड़ा।

दुंदुभिस्वन—संज्ञा पुं० [सं० दुन्दुभिस्वन] सुश्रुत में लिखी हुई एक प्रकार की विषाचिकित्सा।

विशेष—बच्च, घाम, गूलर, आबिला, अंकोल इत्यादि बहुत सी लकड़ियों का गोभूज में धार बनाकर और उसमें और बहुत सी छोपटियाँ मिलाकर लेप बनावे। इस लेप को दुंदुभि, तोरण पताका इत्यादि में पोते। ऐसे तोरण, दुंदुभि आदि के दर्शन, श्रवण से विष का प्रभाव दूर हो जाता है।

दुंदुभी^(१)—संज्ञा स्त्री० [सं० दुन्दुभि] देखे 'दुंदुम'। उ०—(क) तब देवन दुंदुभी बजाई।—तुलसी (शब्द०)। (ख) मानहु मदन दुंदुभी बंही।—तुलसी (शब्द०)।

दुंदुभी^(२)—संज्ञा स्त्री० [सं० दुन्दुभी] १. पासे का एक दाँव। २. एक गंधर्वों का नाम (को०)।

दुंदुभ्याघान—संज्ञा पुं० [सं० दुन्दुभ्याघात] दुंदुभी बजाने-वाला (को०)।

दुंदुमा—संज्ञा स्त्री० [सं० दुन्दुमा] घोसे की आवाज। नगाड़े की ध्वनि (को०)।

दुंदुमार—संज्ञा पुं० [सं० दुन्दुमार] १. देखे 'धुंधुमार'। २. बिडाल। बिलार (को०)। ३. गृह से उदगत धूम। घर से निकलनेवाला धमा (को०)। ४. लाल रंग का एक क्रीड (को०)।

दुंदुह(५)—संज्ञा पुं० [सं० दुण्डुभ] पानी का माँप । डेढ़हा ।

दुंदुर(५)—संज्ञा पुं० [सं० इन्दुर] मूमा । मूम ।

दुंबक—संज्ञा पुं० [सं० दुम्बक] दे० 'दुंबा' (को०) ।

दुंबा—संज्ञा पुं० [फ्रा० दुम्बाह] एक प्रकार का मेंढा, जिसकी दुम चक्की के पाट की तरह गोल और भारी होती है ।

विशेष—इसका ऊन बहुत अच्छा होता है । इस प्रकार के मेंढे पंजाब और काश्मीर से लेकर अफगानिस्तान और फारस तक होते हैं । भारतवर्ष में केड़े गानों पर ऐसे मेंढों की दोगली जाति उत्पन्न की गई है पर इसमें विशेष सफलता नहीं हुई है । बात यह है कि सीढ़वाले प्रदेशों में प्रायः दुम में कई प्रकार की बीमारियाँ पैदा हो जाती हैं ।

दुंबाल—संज्ञा पुं० [फ्रा० दुबालह] १. चौड़ी पूँछ । २. नाव की पतवार । ३. जहाज का पिछला हिस्सा ।

दुंबुर—संज्ञा पुं० [सं० उदुम्बर] गुनार की जाति का एक पेड़, जो हिमालय के किनारे जेनाब से लेकर पूरब की ओर बराबर मिलता है ।

विशेष—यह वृक्ष बंगाल, उड़ीसा और बर्मा में भी नदियों या नालों के किनारे पर होता है । इसमें लाख पाई जाती है । इसकी छाल के रेशों से छपर का काँड़ा बान आदि बंधी जाती हैं । बरसात में इसके फल पड़ते हैं और गूँसे जाते हैं । पर इन फलों का स्वाद फीका होता है । इसकी पत्तियाँ कुछ खरदरी होती हैं और बड़ही माजने के काम में आती हैं ।

दुँगरी—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार का मोटा कपड़ा ।

दुँवका—संज्ञा पुं० [देश०] गन्ना घेरने का कोल्ह ।

दुःकुंत—संज्ञा पुं० [सं० दुःकुन्त] दे० 'दुःख' ।

दुःख—संज्ञा पुं० [सं०] १. ऐसी अवस्था जिससे छुटकारा पाने की इच्छा प्राणियों में स्वाभाविक हो । कष्ट । वन्ध । सुख का विपरीत भाव । तकलीफ ।

विशेष—सांख्यशास्त्र के अनुसार दुःख तीन प्रकार के माने गए हैं—प्राथमिक, प्राधिभौतिक और प्राधिबैविक । प्राथमिक दुःख के अंतर्गत रोग, व्याधि आदि शारीरिक दुःख और क्रोध, लोभ आदि मानसिक दुःख हैं । प्राधिभौतिक दुःख वह है जो म्यावर, जन्म (पण् पक्षी सारि मच्छड आदि) मृतों के द्वारा पहुँचना है । प्राधिबैविक जो देवताओं अर्थात् प्राकृतिक शक्तियों के द्वारा पहुँचना है, जैसे,—घाँधी, वर्षा, बज्रपात, भीत, ताप इत्यादि । सांख्य दुःख को रजोगुण का कार्य और चित्त का एक धर्म मानता है, आत्मा को उससे अलग रखता है । पर न्याय और वैशेषिक दुःख को आत्मा का धर्म मानते हैं । त्रिविध दुःखों की निवृत्ति की भाँख न भ्रमन पुरुषार्थ कहा है और प्राज्ञाविज्ञाया न प्रेक्ष्य बतलाया है । प्रधान दुःख जरा और मरण है जिनसे निमज्जरी की निवृत्ति के बिना नेतन या पुनः छुटकारा नहीं पा सकता है । इस प्रकार की मुक्ति या अत्यन्त दुःखनिवृत्ति तत्त्वज्ञान द्वारा—प्रकृति और पुरुष के भेदज्ञान द्वारा—ही संभव है । वेदान्त

ने सुखदुःख ज्ञान की प्रविद्या कहा है । इसकी निवृत्ति ब्रह्मज्ञान द्वारा हो जाती है ।

योग की परिभाषा में दुःख एक प्रकार का चित्तविशेष या अंतराय है जिससे समाधि में विघ्न पड़ता है । व्याधि इत्यादि चित्तविशेषों के अतिरिक्त योग ने चित्त के राजम कार्य को दुःख कहा है । किसी विषय से चित्त में जो खेद या कष्ट होता है वही दुःख है । इसी दुःख से द्वेष उत्पन्न होता है । जब किसी विषय से चित्त को दुःख होगा तब उसमें द्वेष उत्पन्न होगा । योग परिणाम, ताप और संस्कार तीन प्रकार के दुःख मानकर सब वस्तुओं को दुःखमय कहा है । परिणाम दुःख वह है जिसका अन्वयाभाव हो अर्थात् जो भाव्य में अवश्य पहुँचे ताप दुःख वह है जो वर्तमान काल में कोई भाग रहा हो और जिसका प्रभाव या स्मरण बना हो ।

किं प्र०—होना ।

मुहा०—दुःख उठाना = कष्ट सहना । तकलीफ सहना । ऐसी स्थिति में पड़ना जिससे सुख या शांति न हो । दुःख देना = कष्ट पहुँचाना । दुःख पहुँचना = दुःख होना । दुःख पचाना = दे० 'दुःख देना' । दुःख पाना = दे० 'दुःख उठाना' । दुःख बटाना = सहानुभूति करना । कष्ट या संकट के समय साथ देना । दुःख भरना = कष्ट या संकट के दिन काटना । दुःख भुगतना या भोगना = दे० 'दुःख उठाना' ।

२. संकट । आपत्ति । विपत्ति ।

मुहा०—(किसी पर) दुःख पड़ना = आपत्ति आना । संकट उपस्थित होना ।

३. मानसिक कष्ट । खेद । रंज । जैसे,—उसकी बात से मुझे बहुत दुःख हुआ ।

मुहा०—दुःख मानना = खिन्न होना । संतप्त होना । रंजीदा होना । दुःख बिसराना = (१) चित्त से खेद निकालना । शोक या रंज की बात भूलना । (२) जो बहलाना । दुःख खगना = मन में खेद होना । रंज होना ।

४. पीड़ा । व्याथा । दर्द । ५. व्याधि । रोग । बीमारी । जैसे,—इन्हें बुरा दुःख लगा है ।

मुहा०—दुःख लगना = रोग घेरना । व्याधि होना ।

दुःखकर—वि० [सं०] जो दुःख उत्पन्न करे । क्लेश पहुँचानेवाला ।

दुःखग्राम—संज्ञा पुं० [सं०] संसार ।

दुःखखिन्न—वि० [सं०] १. कठोर । कठिन । सहन । २. कष्टग्रस्त । पीड़ित (को०) ।

दुःखछेद्य—वि० [सं०] कठिनाई से काटा जाने योग्य । २. कठिन (को०) ।

दुःखजीवी—वि० [सं० दुःखजीविन्] कष्ट से जीवन बितानेवाला ।

दुःखता—संज्ञा स्त्री० [सं०] दुःख होने का भाव । बेचैनी । कष्ट (को०) ।

दुःखत्रय—संज्ञा पुं० [सं०] तीन प्रकार के दुःखों का समूह ।

दुःखद—वि० [सं०] [वि० स्त्री० दुःखदा] दुःखदायी । कष्ट पहुँचानेवाला । कष्टकर ।

दुःखदग्ध—वि० [सं०] कष्ट में पड़ा हुआ। संतप्त। क्लेशित।
 दुःखदाता—संज्ञा पुं० [सं० दुःखदातृ] [स्त्री० दुःखदात्री] दुःख पहुँचाने-
 वाला मनुष्य। कष्ट देनेवाला व्यक्ति।
 दुःखदायक—वि० [सं०] [वि० स्त्री० दुःखदायिका] दुःख या कष्ट
 पहुँचानेवाला। जिससे दुःख हो।
 दुःखदायी—वि० [सं० दुःखदायिन्] [वि० स्त्री० दुःखदायिनी] दुःख
 देनेवाला। जिससे कष्ट पहुँचे।
 दुःखदोहा—वि० स्त्री० [सं०] (गाय) जो कठिनता से दुही जा सके।
 जो जल्दी दुहने न दे।
 दुःखनिवह—वि० [सं०] दुःसह।
 दुःखप्रद—संज्ञा पुं० [सं०] कष्ट देनेवाला। दुःखद।
 दुःखप्राय—वि० [सं०] दे० 'दुःखवहल'।
 दुःखप्रहल—संज्ञा पुं० [सं०] दुःखपूर्ण। क्लेश से भरा हुआ।
 दुःखमय—वि० [सं०] दुःखपूर्ण। क्लेश से भरा हुआ।
 दुःखलभ्य—वि० [सं०] जो दुःख या कष्ट से प्राप्त हो सके। जो
 कठिनता से मिल सके।
 दुःखलोक—संज्ञा पुं० [सं०] संसार।
 दुःखशील—वि० [सं०] कष्टसहिष्णु। दुःख सहने की क्षमता रखने-
 वाला [स्त्री०]।
 दुःखसाध्य—वि० [सं०] दुःख से होने योग्य। मुश्किल से होने योग्य।
 मुश्किल से होनेवाला (काम)। जिसका करना कठिन हो।
 दुःखांत—वि० [सं० दुःखान्त] १. जिसके अंत में दुःख हो। जिसके
 परिणाम में कष्ट हो। २. जिसके अंत में दुःख का वर्णन
 हो। जैसे, दुःखांत नाटक।
 विशेष—प्राचीन गूतान के साहित्य ग्रंथों में नाटक दो प्रकार के
 कहे गए हैं—सुखांत और दुःखांत, दुःखावसानी या भासती
 अंतः योरप के साहित्य में नाटक या उपन्यास के दो भेद
 माने जाते हैं। पर भारतीय भाषायों ने इस प्रकार का भेद
 नहीं किया है।
 दुःखांत—संज्ञा पुं० १. दुःख का अंत। क्लेश की समाप्ति। २. दुःख
 की पराकाष्ठा। अत्यंत अधिक कष्ट। तकलीफ की हद।
 दुःखातीत—वि० [सं०] दुःख से परे। कष्ट से मुक्त [स्त्री०]।
 दुःखान्वित—वि० [सं०] दुःखी। दुःख में पड़ा हुआ [स्त्री०]।
 दुःखायतन—संज्ञा पुं० [सं०] संसार। जगत्।
 दुःखार्त—वि० [सं०] कष्ट से व्याकुल।
 दुःखित—वि० [सं०] पीड़ित। क्लेशित। जिसे कष्ट या तक-
 लीफ हो।
 दुःखिनी—वि० स्त्री० [सं०] जिसपर दुःख पड़ा हो। दुःखिया।
 दुःखी—वि० [सं० दुःखिन्] [वि० स्त्री० दुःखिनी] जो कष्ट या
 या तकलीफ में हो।
 दुःशकुन—संज्ञा पुं० [सं०] बुरा शकुन। यात्रा आदि में बिछाई
 पड़नेवाला कोई ऐसा लक्षण जिसका बुरा फल समझा जाता
 है। जैसे, यात्रा में तेली का मिलना।

दुःशला—संज्ञा स्त्री० [सं०] गांधारी के गर्भ से उत्पन्न धृतराष्ट्र की
 कन्या जो सिंधु देश के राजा जयद्रथ की ब्याही थी।
 विशेष—जब महाभारत के युद्ध में जयद्रथ मारा गया तब इसने
 अपने छोटे से बालक सुरथ को राजसिंहासन पर बैठाकर बहुत
 दिनों तक राजकाज चलाया था। पांडवों के अश्वमेध के
 समय जब अर्जुन घोड़े को लेकर सिंधु देश में पहुँचे। तब
 सुरथ ने अपने पिता को मारनेवाले का युद्धार्थ आग्रह सुनकर
 भय से प्राणत्याग कर दिया। अर्जुन ने इस बात को सुनकर
 सुरथ के बालक पुत्र को मिहःमन पर बैठाया।
 दुःशासन—वि० [सं०] जिसपर शासन करना कठिन हो। जो
 किसी का दबाव न माने।
 दुःशासन—संज्ञा पुं० धृतराष्ट्र के १०० लड़कों में से एक जो दुर्यो-
 धन का अत्यंत प्रेमपात्र और मंत्री था।
 विशेष—यह अत्यंत क्रूरस्वभाव था। पांडव लोग जब जूए में
 हार गए थे तब यही द्रौपदी को पकड़कर समास्थल में लाया
 था और उसका बरबस खींचना चाहता था। इसपर भीम
 सेन ने प्रतिज्ञा की थी कि मैं इसका रक्तपान करूँगा और
 जबतक इसके रक्त से द्रौपदी के बाल न रंगूँगा तबतक वह
 बाल न बाधेगी। महाभारत के युद्ध में भीमसेन ने अपनी
 यह भयंकर प्रतिज्ञा पूरी की थी।
 दुःशील—वि० [सं०] बुरे स्वभाव का। दुर्विनीत।
 दुःशीलता—संज्ञा स्त्री० [सं०] दुःशय। दुःस्वभाव।
 दुःशोध—वि० [सं०] १ जिसका सुधार कठिन हो। २. (धातु
 आदि) जिसका शोधना कठिन हो।
 दुःश्रव—संज्ञा पुं० [सं०] काव्य में वह दोष जो कानों को कर्कश
 समनेवाले वर्णों के धाने से होता है। श्रुतिकटु दोष।
 दुःपम—वि० [सं०] निंदनीय। निध।
 दुःप्रेम—वि० [सं०] जिसका निवारण कठिन हो।
 दुःसंकल्प—संज्ञा पुं० [सं० दुःसङ्कल्प] बुरा इरादा। खोटा विचार।
 दुःसंकल्प—वि० बुरा संकल्प करनेवाला। बुरा इरादा रखने-
 वाला। खोटी नीयत का।
 दुःसंग—संज्ञा पुं० [सं० दुःसङ्ग] बुरा साथ। कुसंग। बुरी सोहबत।
 दुःसंधान—संज्ञा पुं० [सं० दुःसन्धान] केशवदास के अनुसार काव्य
 में एक रस जो उम रस पर होता है जहाँ एक तो अनु-
 कूल होता है और दूसरा प्रतिकूल, एक तो मेल की बात
 करता है और दूसरा बिगाड़ की। यथा, एक होय अनुकूल जहाँ
 दूसरा है प्रतिकूल। केशव दुःसंधान रस शोभित तहाँ समूल।
 यह पवित्र प्रकार के अंतरों में से माना गया है।
 दुःसह—वि० [सं०] जिसका सहन करना कठिन हो। जो कष्ट से
 सहा जाय। अत्यंत कष्टदायक। जैसे, दुःसह पीड़ा।
 दुःसहा—संज्ञा स्त्री० [सं०] नागदमनी।
 दुःसाध—वि० [सं०] दे० 'दुःसाध्य' [स्त्री०]।
 दुःसाधी—संज्ञा पुं० [सं० दुःसाधिन्] द्वारपाल।
 दुःसाध्य—वि० [सं०] १. जिसका साधन कठिन हो। जिसका

करना मुश्किल हो। जैसे, दुःसाध्य कार्य। २. जिसका उपाय कठिन हो। जैसे, दुःसाध्य रोग।

दुःसारा—वि० [म० दुःशाल्य] बुरे शाल्यशाला (घाव)। वह (घाव या चोट) जो बराबर पीड़ा देती हो। उ०—लासन लोटहि पोट चोट जम्बर उर लागी। कियो हियो दुःसार पीर प्रानति में पागो।—ब्रज० प्र०, पृ० १५।

दुःसाहस—संज्ञा पु० [म०] १. व्यर्थ का साहस। ऐसा साहस जिसका परिणाम कुछ न हो, या बुरा हो। ऐसी बात करने की हिम्मत जिसका होना असंभव हो या जिसका फल बुरा हो। जैसे,—उसे इस काम में रोकने जाना तुम्हारा दुःसाहस मान है। (ख) चलनी गाड़ी से कूदने का दुःसाहस कभी मत करना। २. अनुचित साहस। ऐसी बात करने की हिम्मत जो अच्छी न समझी जाती हो। ठिठकी। धृष्टता। जैसे,—बड़ों की बात का उत्तर देना तुम्हारा दुःसाहस है।

दुःसाहसिक—वि० [म०] जिसे करने का साहस करना अनुचित या निष्फल हो। जिसके लिये हिम्मत करना बुरा हो। जैसे, दुःसाहसिक कार्य।

दुःसाहसी—वि० [दुःसाहसिन] बुरा साहस करनेवाला।

दुःस्थ—वि० [म०] १. जिसकी स्थिति बुरी हो। दुर्दशाग्रस्त। २. निर्धन। दरिद्र। ३. मूलं।

दुःस्थिति—संज्ञा स्त्री० [म०] बुरी अवस्था। दुरवस्था। दुर्दशा।

दुःस्पर्श—वि० [म०] १. न छूने योग्य। जिसका छूना कठिन हो। २. जिसे पाना कठिन हो।

दुःस्पर्श—संज्ञा पु० १. कपिकच्छु। कैंवाच। २. लता करंज। ३. कंटकारी। ४. आकाशमंथा।

दुःस्पर्श—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. कटिदार मकोय। दे० 'दुःस्पर्श'।

दुःस्फोट—संज्ञा पु० [सं०] एक प्रकार का लक्ष (को०)।

दुःस्वप्न—संज्ञा पु० [म०] बुरा स्वप्न। ऐसा सपना जिसका फल बुरा माना जाता है। उ०—दुष्पा एक दुःस्वप्न सा सखि कैसा उत्पन्न। जगने पर भी वह बना वैसा ही दिन रात।—साकेत, पृ० २५१।

विशेष—क्या क्या स्वप्न देखने से क्या क्या फल होता है इसका वर्णन विस्तार के साथ ब्रह्मवैवर्तपुराण में है। स्वप्न में यदि कोई हंस, नाथना माना देखे तो समझे कि विपत्ति घानेवाली है। यदि घपने की तेल मसले, गदहे, भैंसे या ऊँट पर मजार होकर दक्षिण दिशा की जाते देखे तो समझना चाहिए कि मृत्यु निकट है। इसी प्रकार और बहुत से फल कहे गए हैं।

दुःस्वभावा—संज्ञा पु० [म०] बुरा स्वभाव। दुःशीलता। बदमाशजी।

दुःस्वभाव—वि० दुःशील। दुष्ट स्वभाव का।

दुःस्वरनाम—संज्ञा पु० [म०] वह पापकर्म जिसके उदय से प्राणियों के कठोर और हीन स्वर होते हैं (जैन)।

दु—वि० [म० द्वि, प्रा० दु, या हि० दो] 'दो' शब्द का संक्षिप्त रूप जो समास बनाने के काम में आता है। जैसे, दुविधा, दुचिता।

दुअ—वि० [सं० द्विक, प्रा० दुप] दोनों। युगल। उ०—दामिनि चमक चाह अधिकाई। दुपऊ चिते रहे चित लाई।—इंद्रा०, पृ० ६०।

दुअन—संज्ञा पु० [सं० दुमनस् या दुर्जन] दे० 'दुवन'।

दुअन्नी—संज्ञा स्त्री० [म० द्वि + प्राणक; प्रा० दु + प्राणक; हि० घाना] कप का छटमाग सिक्का जिसकी चलन अब बंद हो गई है।

दुअरवा—संज्ञा पु० [सं० द्वार] दे० 'दुपार', 'दुवार'। उ०—पियवा आय दुअरवा, उठि किन देख। दुरनभ पाय बिदेसिया, मुद अवरेख।—रहीम (शब्द०)।

दुअरिया—संज्ञा स्त्री० [सं० द्वार (-दुपार) + हया (प्रत्य०)] दे० 'दुपारी' 'दुवारी'। छोटा दरवाजा। उ०—छाकहु बसठ दुअरिया, मोजदू पाय। पिय गेलि गरमिया, विजन डोलाय।—रहीम (शब्द०)।

दुआ—संज्ञा स्त्री० [म०] १. प्रार्थना। दरखास्त। बिनती। याचना।

क्रि० प्र०—करना।

मुहा०—दुपा मांगना - प्रार्थना करना।

२. मागोवाँद। प्रमाण।

क्रि० प्र०—देना।

मुहा०—दुपा लगना - मागोवाँद का फलीभूत होना।

दुआ—संज्ञा पु० [हि० आ] गले में पहनने का एक गहना।

दुआगीर—वि० [म० दुपा + प्रा० गीर] दे० 'दुपामी'। उ०—दुआगीर इक सुलखलं मु चले।—ह० रासो०, पृ० ६७।

दुआगी—वि० [म० दुपा + प्रा० गो] दुपा करनेवाला। शुभ-चित्तक। उ०—गीर कोई दुआगी बनकर पीछा नहीं छोड़ते।—प्रेमचन०, भा० २, पृ० ८६।

दुआगीई—संज्ञा स्त्री० [म० दुपा + प्रा० गोई] दुपा देने की क्रिया या भाव [को०]।

दुआदस—संज्ञा पु० [सं० द्वादश] दे० 'द्वादश'। उ०—ससिमुख भंग मलैगिरि रानी। कनक सुगंध दुपादस बानी।—जायसी प्र० (गुप्त), पृ० १८१।

दुआब—संज्ञा पु० [प्रा० दुपाबद्] दे० 'दुपारा'।

दुआबा—संज्ञा पु० [प्रा० दुपाबद्] दो नदियों के बीच का प्रदेश।

दुआया—संज्ञा स्त्री० [म० दुपा] दे० 'दुपा'। उ०—दुपाय सलाम निवाज न कोई।—प्राण०, पृ० १६०।

दुआरी—संज्ञा पु० [म० द्वार] [स्त्री० दुपारी] द्वार। उ०—घरी पहर होइ तो बचाए रही मेरी बीर देहरी दुपार दुल पाठहू पहर को।—ठाकुर०, पृ० ३।

दुआरा—संज्ञा पु० दे० 'दुपार'। उ०—(क) लंका बाँके चारि दुपारा।—तुलसी (शब्द०)। (ख) थोड़ी बेर में उस दुखी तिरिया ने कहा, मेरा जी ठिकाने नहीं है, झूठे ही मैं इसर उभर सिर मार रही हूँ, देखो दुपारा यही है, इसको खोलो।—ठेठ०, पृ० ३८।

दुधारी—संज्ञा स्त्री० [हि० दुधार] छोटा दरवाजा । उ०—यह तो संत प्रविकल प्रविकारी । केहि कारण भावे केहु दुधारी ।
—कबीर सा०, पृ० ४८५ ।

दुधाल—संज्ञा स्त्री० [फा०] १. चमड़ा । चमड़े का तसमा । २. रिकाम का तसमा ।

दुध्यात्मा—संज्ञा पुं० [देश०] लकड़ी का एक बेलन जिसे सुनहरी छपी हुई छोटों के छायों को बैठाने के लिये फेरते हैं ।

दुध्यालो—संज्ञा स्त्री० [फा० डाल (= तसमा)] सराद का तसमा । सराद की बंदी । सान की बंदी । चमड़े का वह तसमा जिससे कसेरे कुन, सिकलीगर सान धीरे बढ़ई सराद घुमाते हैं ।

दुई—वि० [सं० द्वि] दे० 'दो' । उ०—(क) तमार एक पउषा दुई उपस्थित सेव (कैं) कर ।—वरुण०, पृ० १२ । (ख) दुई संक अजपा अपहु अंतर तजहु सबै तेवान ।—जग० बानी, पृ० ८१ । (ग) साधो मन भई करहु विचार । दुई अछर भजि उतरहु पार ।—जग० बानी, पृ० १७ ।

दुइज^(१)—संज्ञा स्त्री० [सं० द्वितीय, प्रा० दुईज] पाल की दूसरी तिथि । द्वितीया । दूज ।

दुइज—संज्ञा पुं० [सं० द्विज] दूज का चांद । द्वितीया का चंद्रमा । उ०—कहीं ललाट दुइज कह जोती । दुइजहि जोति कहीं जग जोती ।—जायसी (शब्द०) ।

दुई—संज्ञा स्त्री० [हि० दो + ई] दो की भावना । द्वैत भाव । भेद-भाव । उ०—कबीरा इशरु का माता दुई को दूर कर दिल से । जो चलना राहु नाजुक हैं हृपन सर बोभ भारी क्या ।—कबीर० सा०, भा० १, पृ० ७० ।

दुऊ—वि० [सं० द्वौ] दे० 'दोनों' । उ०—देखि दुऊ भए पायन सीने ।—केशव (शब्द०) ।

दुऔ—वि० [सं० द्वौ] दे० 'दोनों' ।

दुकठिया^(१)—संज्ञा स्त्री० [हि० दो + काठी (= शरीर)] दो होने की भावना । द्वैत भाव । अपने परायेगन भी भावना । दुई । उ०—अबकी बार दुकठिया खुटे तुम लायक यहि धोरी ।—भीखा० सा०, पृ० ७२ ।

दुकड़ा—वि० [हि० दुकड़ + हा (प्रत्य०)] [वि० स्त्री० दुकड़ही] १. जिसका मुख्य एक दुकड़ा हो । २. मुच्छ । नाबीज । ३. नीच । कमीना । अनाइत ।

दुकड़ा—संज्ञा पुं० [सं० द्विक + हि० ङा (प्रत्य०)] [स्त्री० दुकड़ी] १. वह वस्तु जो एक माथ या एक में लगी हुई दो दो हो । जोड़ा । जैसे, घोटियों का दुकड़ा, घोंगियों का दुकड़ा । २. वह जिसमें कोई वस्तु दो दो हो । वह जिसमें किसी वस्तु का जोड़ा हो । जैसे, चारपाई की दुकड़ी बुनावट, दुकड़ी गाड़ी । ३. दो दमड़ी । छदाम । एक पैसे का चौथाई भाग ।

विशेष—इसका हिसाब कड़ियों से होता है । कहीं कहीं पाई की दुकड़ा मान लेते हैं यद्यपि उसका मुख्य एक पैसे का तिहाई होता है ।

दुकड़ी^१—वि० स्त्री० [हि० दुकड़ा] जिसमें कोई वस्तु दो दो हो ।

दुकड़ी^२—संज्ञा स्त्री० १. चारपाई की वह बुनावट जिसमें दो दो बाथ एक साथ बुने जाते हैं । २. दो बूटियोंवाला साथ का पता । ३. दो घोड़ों की बगघी । उ०—जो बेगम साहब इस ठसे से दुकड़ी पर सवार हैं अभी कल तक सराय में धलारखी के नाम से मशहूर थी ।—फिसाना०, भा० ३, पृ० ३४४ । ४. घोड़ों का सामान जो दोहरा हो ।

दुकड़ी^३—संज्ञा स्त्री० [हि० दो + कड़ी] १. वह लगाम जिसमें दो कड़ियाँ होती हैं । २. दो कड़ियों का बर्तन, कड़ाहो कंडाल आदि ।

दुकना^१—क्रि० प्र० [देश०] लुकना । छिपना ।

दुकान—संज्ञा स्त्री० [फा०] वह स्थान जहाँ बेचने के लिये चीजें रखी हों और जहाँ ग्राहक जाकर उन्हें खरीदते हों । सोदा बिकने का स्थान । माल बिकने की जगह । हट्ट । हट्टी । जैसे, कपड़े की दुकान, हलवाई की दुकान, बिसाती की दुकान ।

क्रि० प्र०—खोलना ।—बंद करना ।

मुहा०—दुकान उठाना = (१) कारबार बंद करके दुकान छोड़ देना । (२) दुकान बंद करना । दुकान करना = दुकान लेकर किसी चीज की बिक्री प्रारंभ करना । दुकान जारी करना । दुकान खोलना । जैसे,—एक महीने से उन्होंने चौक में गोटे की दुकान की है । दुकान खोलना = दे० 'दुकान करना' । दुकान चलना = दुकान में होनेवाले व्यवसाय की वृद्धि होना । जैसे,—आजकल शहर में उनकी दुकान खूब चलती है । दुकान बढ़ाना = दुकान बंद करना । दुकान में बाहर रखा हुआ माल उठाकर किबाड़े बंद करना । जैसे—(क) उनकी दुकान रात को नौ बजे बंद होती है । (ख) आज न्यूते में जाना था इसीलिये दुकान जल्दी बढ़ा दी । दुकान लगाना = (१) दुकान का अस्थावर फैनाकर यथा-स्थान बिक्री के लिये रखना । वस्तुओं को बेचने के लिये फैलाकर रखना । जैसे,—जरा ठहरो दुकान लगा लें तो दें । (२) बहुत सी चीजों को इधर उधर फैनाकर रख देना । जैसे,—वह लड़का जहाँ बैठता है वहाँ दुकान लगा देता है ।

दुकानदार—संज्ञा पुं० [फा०] १. दुकान का मालिक । दुकान पर बैठकर सोदा बेचनेवाला । वह जिसकी दुकान हो । दुकान-वाला । २. वह जिसने अपनी आथ के लिये कोई ढोंग रख रखा हो । जैसे,—उन्हें साधु या त्यागी कोन कहता है, वे तो पूरे दुकानदार हैं ।

दुकानदारी—संज्ञा स्त्री० [फा०] १. दुकान या बिक्री बढ़ का काम । दुकान पर माल बेचने का काम । २. ढोंग रचकर रुपया पैदा करने का काम । जैसे,—यह सब बाबा जी की दुकानदारी है ।

दुकाना^(१)—क्रि० प्र० [हि० दुकाना] छिपाना । दुराना । उ०—बाल के बालक जिय कहैं लहैं । कब लग बाल दुकाए रहैं ।—नंद ग्रं०, पृ० १४० ।

दुकाल—संज्ञा पुं० [सं० दुष्काल] अन्नकष्ट का समय । प्रकाल । दुर्बिधा । उ०—(क) कलिनाम कामतर राम को । दलन-

हार बारिब दुकाल दुख दोष धीर बनघाम को।—तुलसी (शब्द०) (ख) कलि बारहि बार दुकाल परै। बिन धन दुखी सब लोग मरै।—तुलसी (शब्द०)।

दुकुली—संज्ञा श्री० [देश०] एक प्रकार का पुराना बाजा जिसपर बमड़ा मड़ा होता है।

दुकूल—संज्ञा पुं० [सं०] १. क्षीम वस्त्र। मन या तीमो के रेशे का बना कपड़ा। २. महीन कपड़ा। बारीक कपड़ा। ३. वस्त्र। कपड़ा। उ०—खग मृग ररिजन, नगर वन, बल कल विमल दुकूल। नाथ माथ सुरसदन सम, परनसाल सुख-मूल।—तुलसी (शब्द०)। ४. बौद्धों के शाम जातक के अनुसार शाम के पिता का नाम जो एक मुनि थे।

विशेष—शाम जातक में लिखा है कि एक दिन दुकूल अपनी पत्नी परिखा के महित फलमूल की खोज में बन में गए। वहाँ किसी दुर्घटना में दोनों अंधे हो गए। शाम दोनों को ढूँढ़कर बन से लाए और अनन्य भाव से दोनों की सेवा करने लगे। एक दिन मध्याह्न को वे अंधे मातापिता को छोड़ नदी से जल लाने गए वहाँ किसी राजा ने मृग समझकर उनपर तीर चलाया। तीर लगने से शाम की मृत्तु हो गई। राजा शाम के अंधे मातापिता के पास घाए और उन्होंने उनसे सब समाचार कह सुनाया। सबके सब मृत शाम के पास शोक करते पड़े। परिखा ने कहा यदि मेरा पुत्र सच्चा ब्रह्मचारी रहा हो और बुद्धदेव में उसकी सच्ची भक्ति रही हो तो मेरा पुत्र जी जाय। इस प्रकार की मत्स्य क्रिया करने पर शाम जी उठे और एक देवी ने प्रकट होकर उनके माता पिता का अंधापन भी दूर किया।

बौद्धों का यह आख्यान रामायण में दिए हुए अंधक मुनि के आरुण्यन का अनुकरण है जिसमें उनके पुत्र सिंधु की महा-राज दशरथ ने भाग था। अनंतर इतना था कि रामायण में दोनों अंधों का पुनश्चोक में प्रारुण्यन करना लिखा है और शाम जातक में शाम का जी उठना और अंधों का दृष्टि पाना लिखा गया है।

दुकुलिनो—संज्ञा श्री० [सं०] सरिता। नदी।

दुकृत^१—संज्ञा पुं० [सं० दुकृत] दे० 'दुकृत'। उ०—तुम हित कोन दुकृत नहि किए। मत्तग फन परि मे पग दिए।—नंद० प्र०, पृ० १५६।

दुकेला—क्रि० वि० [हि० दुका + एला (प्रत्य०)] [श्री० दुकेली] जिसके साथ कोई दूसरा भी हो। जो अकेला न हो।

यौ०—अकेला दुकेला = जिसके साथ कोई न हो या एक ही दो आदमी हों। जैसे,—(क) जहाँ कोई अकेला दुकेला निकला कि डाकुओं ने आ घेरा। (ख) कोई अकेली दुकेली सवारी मिले तो बैठा लेना।

दुकेले—क्रि० वि० [हि० दुकेला] किसी के साथ। दूसरे आदमी को साथ लिए हुए।

यौ०—अकेले दुकेले = बिना किसी को साथ लिए या एक ही दो आदमियों के साथ। जैसे,—(क) वह तुम्हें अकेले दुकेले पावेगा तो जरूर मारेगा। (ख) अकेले दुकेले मत निकलना।

दुककड़—संज्ञा पुं० [हि० दो+कूड़] १. तबले की तरह का एक बाजा। यह बाजा महनाई के साथ बजाया जाता है। इसमें एक कूड़े बहुत बड़ी धीर दूसरी छोटी होती है। २. एक में जुड़ी हुई या साथ पटी हुई दो नावों का जोड़ा।

दुकका^२—वि० [सं० द्विक] [वि० श्री० दुक्की] १. जो एक साथ दो हों। जिसके साथ कोई दूसरा भी हो। जो अकेला न हो (व्यक्ति)।

यौ०—इक्का दुक्का = अकेला दुकेला।

२. जो जोड़े में हो। जो एक साथ दो हो (वस्तु)। ३. जिसमें कोई वस्तु एक साथ दो हों।

दुक्का^३—संज्ञा पुं० ताश का वह पत्ता जिसपर दो बूटियाँ बनी हों।

दुक्की—संज्ञा स्त्री० [हि० दुक्का] ताश का वह पत्ता जिसपर दो बूटियाँ बनी हों।

दुक्ख^४—संज्ञा पुं० [सं० दुःख, प्रा० दुख] दे० 'दुःख'। उ०—तेहि क उतर पदुमावति कहा। बिछुरन दुख हिए भरि रहा।—पदमावत, पृ० २३६।

दुक्कित^५—वि० [हि० दु+कित] विशाल। अयंकर। अगाध। दे० 'दुष्कृत'। उ०—चिते रिषि देखि बिल दुक्कित। उर लग्गी अति चित मभिभू हित।—पृ० रा० १।१७३।

दुखंड—वि० पुं० [सं० द्वि + खण्ड] दो टुकड़े। छिन्न भिन्न। उ०—गुरुमुख्य बासा पिंड मे मनमुख्य हूँ ब्रह्मंड। रज्जब भीनर मैं नहीं बाहर खंड दुखंड।—रज्जब०, पृ० ७।

दुखंडा—वि० [हि० दो+खंड] दोतला। जिसमें दो खंड हों। दो भरातिब का। जैसे, दुखंडा मकान। दो खंड या टुकड़ों-वाली वस्तु।

दुखंता^६—संज्ञा पुं० [सं० दुख्यंत] दे० 'दुख्यंत'। उ०—अम दुखत कहै साकुतला। माओनालहि कामकंदला।—जायसी प्र०, (गुप्त) पृ० २५५।

दुखंता^७—वि० [सं० दुःखान्त] जिसकी समाप्ति दुःखपूर्ण हो। वियोगांत। दुःखान्त।

दुख—संज्ञा पुं० [सं० दुःख] दे० 'दुःख'।

मुहा०—दुख का मारा = विपत्ति में पड़ा। दुःखी। उ०—कोई भावे दुख का मारा, हम पर किरपा कीजे जी।—कवीर श०, भा० २, पृ० १०३। दुःख का दूर भागना = दुःख मिट जाना। बिलोक हो जाना। उ०—आनति नहीं कहै नहि देखे मिलि, गई ऐसे मनहु सगे। सूर स्याम ऐसे तुम देखे मैं आनति दुख दूरि भगे।—सूर०, १०।१७८१।

दुखड़ा—संज्ञा पुं० [हि० दुख + ड़ा (प्रत्य०)] १. दुःख का घुत्तांत। दुःख की कथा जिसमें किसी के कष्ट या शोक का वर्णन हो। तकलीफ का हाल।

क्रि० प्र०—कहना।—सुनाना।

मुहा०—दुखड़ा रोना = अपने दुःख का घुत्तांत कहना। अपने कष्ट का हाल सुनाना।

२. कष्ट। तकलीफ। मुसीबत। विपत्ति।

क्रि० प्र०—पड़ना।

मुहा०—किसी स्त्री पर दुखड़ा पड़ना = (किसी स्त्री का) रीड़ हो जाना । विषवा हो जाना । (स्त्रि०) । दुखड़ा पीटना = कष्ट भोगना । बहुत परिश्रम और कष्ट से जीवन बिताना । (स्त्रि०) । दुखड़ा भरना = दे० 'दुखड़ा पीटना' ।

दुखतर—संज्ञा स्त्री० [फा० दुखतर] पुत्री । लड़की । धी । उ०—शाहजहाँ के खानदान की बची बचाई सब कुछ मुगलानों उर्दू की दुखतर नेक अखतर बीबी चंद्रिका जोहर कि जिसका इस वृद्धावस्था में निराश्रय शीघ्र हृषा है ।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० २४ ।

दुखदंद—संज्ञा पुं० [सं० दुःखदन्ध] दुःख और कष्ट । दे० 'दुखदु' । उ०—कहत रविराम तोहि सुभक्त न कछु काम धाम धन भरा धनि मान दुखदंद में ।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० ४३२ ।

दुखद—वि० [सं० दुःखद] दे० 'दुःखद' ।

दुखदाइक—वि० [सं० दुःख + दायक] दे० 'दुःखद' । उ०—सब मद ते भनमद दुखदाइक ।—नंद० ग्रं०, पृ० २१४ ।

दुखदाई(पु)—वि० [सं० दुःखदायी] दे० 'दुःखदायी' । उ०—खन कर संग सदा दुखदाई ।—तुलसी (शब्द०) ।

दुखदानि(पु)—वि० [सं० दुःख + दान] दुःख देनेवाली । तकलीफ पहुँचानेवाली । उ०—यह सुनि गुहबानी धनु गुन तानी जानी द्विज दुखदानि ।—केशव (शब्द०) ।

दुखदु'द(पु)—संज्ञा पुं० [सं० दुःखदु'द] दुःख का उपद्रव । दुःख और आपत्ति । उ०—छन महं सकल निषानर मारे । हरे सकल दुखदु'द हमारे ।—सुर (शब्द०) ।

दुखदेना(पु)—वि० [सं०] दे० 'दुःखदायी' । उ०—खंजन प्रकट किए दुखदेना । संजोगिनि तिय के से नैना ।—नंद० ग्रं०, पृ० १६८ ।

दुखना—क्रि० प्र० [सं० दुःख से नामिक धातु] (किसी धन का) पीड़ित होना । दंद करना । पीड़ायुक्त होना । जैसे, धाख दुखना, पैर दुखना ।

दुखरा(पु)—संज्ञा पुं० [हिं० दुख + रा (प्रत्य०)] दे० 'दुखड़ा' । उ०—सुख दुख की साझनि साधिनियाँ मिलि प्रुछति हैं दुखरा तिय की ।—शकुंतला, पृ० ४६ ।

दुखवना—क्रि० प्र० [हिं० दुखाना] दे० 'दुखाना' । उ०—नाहि नै केशव साख जिन्हें बकि के तिनसों दुखवै मुख की, री ?—केशव (शब्द०) ।

दुखहाया—वि० [हिं० दुख + हाया (प्रत्य०)] [वि० स्त्री० दुखहाई] दुःख से भरा हुआ । दुःखित । उ०—दुखहाइनु बरषा नही धानन धानन धान । लगी फिर दुका दिए कानन कानन कान ।—बिहारी (शब्द०) ।

दुखाना—क्रि० प्र० [सं० दुःख] १. पीड़ा देना । कष्ट पहुँचाना । व्यथित करना ।

मुहा०—जी दुखाना = मानसिक कष्ट पहुँचाना । मन में दुःख उत्पन्न करना । जैसे,—कड़ी बात कहकर क्यों किसी का जी दुखाते हो ? २. किसी के सम्बन्धान या पके चाव इत्यादि को छू देना जिससे उसमें पीड़ा हो । जैसे, फोड़ा दुखाना ।

५-१०

दुखारा—वि० [हिं० दुख + आर (प्रत्य०)] दुःखी । पीड़ित । उ०—एक कल्प सूर देखि दुखारे ।—तुलसी (शब्द०) ।

दुखारी—वि० [हिं० दुख + आर (प्रत्य०)] दुःखी । व्यथित । खिन्न । उ०—जे न मित्र दुख होहि दुखारी । तिनहि बिनोक्त पातक भारी ।—तुलसी (शब्द०) ।

दुखारो(पु)—वि० [हिं०] दे० 'दुखारा' ।

दुखिन(पु)—वि० [सं० दुःखिन] दे० 'दुःखित' । उ०—गहि गिरि तरु भकास कपि धावहि । देखहि न दुखित फिर धावहि ।—मानस, ६।७२ ।

दुखिया—वि० [हिं० दुःख + दया (प्रत्य०)] दुःखी । जो दुःख में पड़ा हो । जिसे किसी प्रकार का कष्ट हो । उ०—तुभ ऐसे कठिन समय में दुखिया माँ को छोड़कर कहाँ गए ?—भारतेंदु ग्रं०, भा० १ पृ० ३११ ।

यौ०—दीन दुखिया ।

दुखियारा—वि० [हिं० दुखिया] [स्त्री० दुखियारी] १. दुखिया । जिसे किसी बात का दुःख हो । २. जिसे कोई शारीरिक पीड़ा हो । रोगी ।

दुखी—वि० [सं० दुःखित, दुःखी] १. जिसे दुःख हो । जो कष्ट या दुःख में हो । उ०—धन हीन दुःखी ममता बद्धा ।—तुलसी (शब्द०) । २. जिसे मानसिक कष्ट पहुँचा हो । जिसके चित्त में खेद उत्पन्न हुआ हो । जिसके दिन में रंज हो । जैसे,—उसकी बात सुनकर मैं बड़ा दुःखी हुआ । ३. रोगी । बीमार ।

दुखीला—वि० [हिं० दुख + ईला (प्रत्य०)] दुःखपूर्ण । दुःख अनुभव करनेवाला । उ०—गर्भवती की चाह से दुखीले स्वभाव को पहुँचकर उमने जो कहा मोई लाया हुआ देखा ।—बधमणसिंह (शब्द०) ।

दुखोही(पु)—वि० [हिं० दुख + ओही] [स्त्री० दुखोही] दुःखदायी । दुःख देनेवाला । उ०—तोहि पेड़े नहीं चलिये कबहुँ जेहि काँटो लगे पग पीर दुखोही ।—केशव (शब्द०) ।

दुख्त—संज्ञा स्त्री० [फा० दुखतर का संक्षिप्त रूप] दे० 'दुखतर' ।

यौ०—दुख्ते रज = प्रंगुरी शराब । उ०—जो बहके दुख्तेरज से है वह कब हनमे बहकते हैं ।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ८४७ ।

दुखतर—संज्ञा स्त्री० [फा० दुखतर] पुत्री । कन्या [स्त्री०] ।

यौ०—दुख्तरे खाना = कुमारी कन्या । दुख्तरे खोबा = सोत की लड़की । सोनेली कन्या । दुख्तरे रज = प्रंगूर की बेटो । प्रंगूर की शराब ।

दुग—संज्ञा स्त्री० [देश०] दे० 'धुक' ।

दुगई—संज्ञा स्त्री० [देश०] घोसारा । बरामदा । उ०—पति प्रदुमुत यमन की दुगई । गज बंन मुचंदन चित्रमई ।—केशव (शब्द०) ।

दुगण—वि० [सं० द्विगुण] दे० 'द्विगुण' ।

दुगदुगी—संज्ञा स्त्री० [अनु० धुक धुक] १. वह गड़गा जो गरदन के नीचे और छाती के ऊपर बीचोबीच होता है । धुकधुकी ।

मुहा०—दुग्धदुग्धो में दम होना = प्राण का कंठगत होना ।

२. गले में पहनने का एक गहना जो छाती के ऊपर तक लटका रहता है ।

दुग्ध—संज्ञा पुं० [सं० दुग्ध] दे० 'दुग्ध' । उ०—इहै तिय सी महिमा गाए । धेनु दुग्ध तें प्राणि न्हाए । जैसे घ्याए तैसे पाए । इतनी कहि सिध ऊठि मिधाए ।—पृ० रा०, १।४००।

यौ०—दुग्धनदीस = क्षीरसागर । दूध का समुद्र । उ०—इंद्र को अनुज हेरे दुग्धनदीस को ।—भूषण प्र०, पृ० ६७ ।

दुग्धघा—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'दुग्धघा' ।

दुग्धन^१—वि० [सं० द्विगुण] दे० 'दुग्धना' ।

दुग्धन^२—संज्ञा स्त्री० बाजे की दूनी तेज आवाज । दून ।

दुग्धना^१—वि० [सं० द्विगुण] [वि० स्त्री० दुग्धनी] किसी वस्तु से उतना धीरे अधिक जितनी कि वह हो । द्विगुण । दूना । जैसे—(क) चार का दुग्धना आठ । (ख) यह चादर उसकी दुग्धनी है ।

दुग्धना^२—क्रि० प्र० [देश०] दे० 'दुक्ना' ।

दुग्धनित—वि० [सं० द्विगुणित] दुग्धना । दूना । उ०—घाजु ब्रज छवि की छूट परे । इत नंदलाल लाडली उत इत दीपक ज्योति बरे । इत जरतार तास बागो उत भूषण भजन परे । इत नवखंड सीसमहला उत दुग्धनित शिब परे ।—भारतेंदु प्र०, भा० २, पृ० ८३ ।

दुग्धनित्या बठक—संज्ञा स्त्री० [हिं०] कुश्ती का एक पेंच जो उस समय किया जाता है जब पहलवान का एक हाथ जोड़ की गरदन पर होता है और जोड़ का वही हाथ पहलवान की गरदन पर होता है । इसमें पहलवान दूसरा थाली हाथ बढाकर जोड़ के जंघों में देता है और बैठक करके गरदन दबाते हुए उसे फेंक देता है ।

दुग्धम^१—वि० [सं० दुग्धम, प्रा० दुग्धम] दुग्धम । उ०—ते शरियाम निहसिया, दोय घड़ी इक जाय । मजबो कीठलदाय रो, पड़ियो खेत दुग्धम ।—रा० १०, पृ० २०७ ।

दुग्धाड़ा—संज्ञा पुं० [हिं० दो + गाड़ (= गढ़ा)] १. दुनाली बंदूक । दोनली बंदूक । २. दोहरी गोली ।

दुग्धाना^१—संज्ञा पुं० [प्रा० दुग्धानह्] वह फल जिसमें दो फल जुड़े हों । जैसे, दुग्धाना आम ।

दुग्धाना^२—क्रि० प्र० [देश० दुक्ना] दुक्ना । दिवाना ।

दुग्धासरा—संज्ञा पुं० [सं० दुग्ध + प्राश्न्य] वह गाँव जो किसी दुग्ध के किनारे हो । किसी दुग्ध के नीचे या चारों ओर बसा हुआ गाँव । उ०—गहरी अंधेरन दुग्ध आसरो । गाँव गढ़ी को दूध दुग्धासरो ।—लाल (शब्द०) ।

दुग्धुण^१—वि० [सं० द्विगुण] दे० 'द्विगुण' ।

दुग्धुण^२—वि० [सं० द्विगुण] दे० 'दुग्धना' । उ०—जय जय मुरसा बदन बढ़ावा । तासु दुग्धुण कपि रूप देखावा ।—तुलसी (शब्द०) ।

दुग्धून—वि० [हिं० दुग्धून] दे० 'दुग्धून' ।

दुग्धुल^१—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'दुग्धूल' [को०] ।

दुग्धुण^२—संज्ञा पुं० [सं० दुग्ध, प्रा० दुग्ध] दे० 'दुग्ध' । उ०—सदा दान किरवान में, बाके आनन अंभु । साहि निजाम सखा भयो दुग्ध देवगिरि खंभु ।—भूषण प्र० पृ० ६ ।

दुग्धम^२—वि० [सं० दुग्धम, प्रा० दुग्धम] दे० 'दुग्धम' । उ०—दूर दुग्धम दमसि भञ्जेघो । गाढ़ गढ़ गूढ़ीम गञ्जेघो ।—विद्यापति, पृ० १० ।

दुग्ध^१—वि० [सं०] १. दुहा हुआ । २. भरा हुआ । परिपूर्ण । ३. लीचा हुआ । चूसा हुआ । बाहर निकाला हुआ (को०) ।

दुग्ध^२—संज्ञा पुं० १. दूध । २. पीधों का श्वेत रस जो दूध सा होता है (को०) । ३. दोहना । दूहना (को०) ।

दुग्धकूपिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] भावप्रकाश में लिखा हुआ एक प्रकार का पक्वान जो पिसे हुए चावल और दूध के छेने से बनता है । विशेष—छेने के साथ चावल की गोल लोई बनावे और उसमें गड़दा करे । फिर इस लोई को थोड़ा घी में तलकर उसके गड़दे में खूब गाढ़ा दूध भर दे और गड़दे का मुँह मँदे से बंद कर दे । फिर इस दूध भरे हुए बड़े को घी में तलकर चालनी में बाल दे । यह पक्वान वायु, पित्त का नाशक, बलकारक, शुक्रवर्धक और दृष्टिवर्धक होता है ।

दुग्धतालीय—संज्ञा पुं० [सं०] १. दूध का फेन । २. मलाई ।

दुग्धदा—संज्ञा स्त्री० [सं०] गाय । दूध देनेवाली गाय [को०] ।

दुग्धपाचन—संज्ञा पुं० [सं०] १. दूध गरम करने या घोटाने का पात्र । २. एक प्रकार का नमक [को०] ।

दुग्धपापाशा—संज्ञा पुं० [सं०] एक पेड़ जिसे बंगाल की ओर खिर-गोला कहते हैं ।

दुग्धपुच्छी—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक पेड़ का नाम ।

पर्या०—सेवाकाल । नसंकरी । निशाभंगा । दुग्धयेया ।

दुग्धपुष्पी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'दुग्धपुच्छी' [को०] ।

दुग्धपोष्य—वि० [सं०] (बाधक) जो मातृ का दूध पीकर रहता हो । दुग्धमुही (अन्वा) ।

दुग्धफेन—संज्ञा पुं० [सं०] १. दूध का फेन । २. एक पीधा । क्षीर हिडोर ।

दुग्धफेनी—संज्ञा पुं० [सं०] एक छोटा पीधा । पयस्विनी । सूतारि । गोजापणी ।

दुग्धबंध—संज्ञा पुं० [सं० दुग्धबंध] खूँटा जिसमें दूध दूहने के समय गायें बाँधने हैं । दुग्धबंधक [को०] ।

दुग्धबंधक—संज्ञा पुं० [सं० दुग्धबंधक] दे० 'दुग्धबंध' [को०] ।

दुग्धबीजा—संज्ञा स्त्री० [सं०] उवार । जुहरी जिसके दानों में से सफेद रस या दूध निकलता है ।

दुग्धशाला—संज्ञा स्त्री० [सं० दुग्ध + शाला] वह स्थान जहाँ गायें रखी जाती हैं और दूध का व्यापार होता है ।

दुग्धसमुद्र—संज्ञा पुं० [सं०] क्षीरसमुद्र । पुराणानुसार सात समुद्रों में से एक । क्षीरसागर ।

यौ०—दुग्धसमुद्रतमया = लक्ष्मी ।

दुग्धांक—संज्ञा पु० [सं० दुग्धाङ्क] एक प्रकार का पत्थर । दे० 'दुग्धाक्ष' [को०] ।

दुग्धाक्ष—संज्ञा पु० [सं०] एक प्रकार का नग या पत्थर जिसपर सफेद सफेद छींटे होते हैं ।

दुग्धाग्र—संज्ञा पु० [सं०] मलाई [को०] ।

दुग्धान्ध—संज्ञा पु० [सं०] क्षीरसमुद्र ।

दुग्धान्धतनया—संज्ञा स्त्री० [सं०] लक्ष्मी ।

दुग्धाश्मा—संज्ञा पु० [सं० दुग्धाश्मन्] दुग्धपाषाण ।

दुग्धिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. दुग्दी नाम की घास या बूटी । २. गंधिका नाम की घास ।

दुग्धिनिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] ताल बिच्छड़ा । रक्षापामार्ग ।

दुग्धी^१—संज्ञा स्त्री० [सं०] दुग्धिया नाम की घास । दुग्दी ।

दुग्धी^२—वि० [सं० दुग्धिन्] दूधवाला । जिसमें दूध हो ।

दुग्धी^३—संज्ञा पु० [सं० दुग्धिन्] क्षीरवृक्ष ।

दुध—वि० [सं०] (समासात् में प्रयुक्त) देनेवाला । प्रदाता । जैसे, कामदुध = कामनाओं को देने या पूरा करनेवाला ।

दुग्धिया—वि० [हि० दो घड़ी] दो घड़ी का । जैसे, —दुग्धिया सायत, दुग्धिया मुहूर्त । उ०—लगन दुग्धियो शुभ भगुभ रामवान ब्रजमान । —राम० चर्म०, पृ० ३२१ ।

दुग्धिया मुहूर्त—संज्ञा पु० [हि० दो घड़ी + मुहूर्त] दो दो घड़ियों के अनुसार निकाला हुआ मुहूर्त । द्विघटिका मुहूर्त ।

विशेष—यह मुहूर्त होरा के अनुसार निकाला जाता है । रात दिन की साठ घड़ियों को दो दो घड़ियों में विभक्त करते हैं और फिर राशि के अनुसार शुभाशुभ समय का विचार करते हैं । इसमें दिन का विचार नहीं किया जाता है । सब दिन सब ओर की यात्रा का विधान है । इस प्रकार का मुहूर्त उस समय देखा जाता है जब यात्रा किमी दूसरे दिन पर टाली नहीं जा सकती ।

दुग्धरी—संज्ञा स्त्री० [हि० दो + घड़ी] दुग्धिया मुहूर्त । उ०—दुग्धरी साथ चले तनकाला । किय विश्राम न मगु महिपाला । —तुलसी (शब्द०) ।

दुग्धा—संज्ञा स्त्री० [सं०] दूध देनेवाली गाय । गो जो दूध देती हो [को०] ।

दुग्धं—वि० [प्रा० दाचंद] दूना । द्विगुण । दुगना । उ०—(क) पापन का पाँति महामंद मुख मैली मई, दीपति दुग्धं फैली धरम समाज की । —पद्माकर (शब्द०) । (ख) भाज नंदनंद जू भानंद भरे खेलें फाग, कोटि चंद ने दुग्धं भासदुति लाल की । —दीनदयाल (शब्द०) ।

दुग्धल्ला—संज्ञा पु० [हि० दो + लाल] वह छन जिसके दोनों ओर डाल हो ।

दुग्धित—वि० [हि० दो + चित] १. जिसका चित्त एक बात पर स्थिर न हो । जो दुविधे में हो । जो कभी एक बात की ओर प्रवृत्त हो, कभी दूसरी । अस्थिरचित्त । उ०—दुग्धित कवई परिशेष न बहूही । —तुलसी (शब्द०) । २.

चितित । फिक्कमंद । उ०—बीत गए तिहुँ काल कछु भयो न ताके बाल । जऊ सुचित सब दुखनि सो दुचित भयो भुपाल । —गुमान (शब्द०) ।

दुचितई^(१)—संज्ञा स्त्री० [हि० दुचित] १. एक बात पर चित्त के न जमने की क्रिया या भाव । चित्त की अस्थिरता । दुविधा । उ०—सोचत जनक पोच पंच परि गई है । जोरि करकमल निहोरि कहै कोसिक सों, आयगु भो राम को सो मेरे दुचितई है । —तुलसी ग्रं०, पृ० ३१३ । २. खटका । धाशंका । चिंता । उ०—शाह सुवन उर हरि रनि बाढ़ी । तामु विछोह दुचितई गाढ़ी । —रघुराज (शब्द०) ।

दुचितई^(२)—संज्ञा स्त्री० [हि० दुचित] १. चित्त की अस्थिरता । दुविधा । संदेह । उ०—(क) माँची कहहु देखि सुनि कै सुख छाड़हु छिया कुटिल दुचितई । —केशव (शब्द०) । २. खटका । चिंता । धाशंका । उ०—जब भानि मई सबको दुचितई । कहि केशव काहुपै मेटि न जाई । —केशव (शब्द०) ।

दुचित्ता—वि० [हि० दो + चित्त] [वि० स्त्री० दुचित्ती] १. जिसका चित्त एक बात पर स्थिर न हो । जो कभी एक बात की ओर प्रवृत्त हो ओर कभी दूसरी । जो दुविधे में हो । अस्थिरचित्त । अस्थिरचित्तचित्त । २. संदेह में पड़ा हुआ । दिक्के चित्त में खटका हो । चिंतित ।

दुचित्ती—संज्ञा स्त्री० [हि० दुचित्ता] दुचित्ता की स्थिति ।

दुच्छक—संज्ञा पु० [सं०] कपूर कचरी । मुरा नामक गंधद्रव्य । गंधकुटी ।

दुच्छण^(१)—संज्ञा पु० [सं० देण (= शत्रु)] सिद्ध (हि०) ।

दुच्छताना^(१)—वि० शत्रु [हि० दुचित या देश] पक्षताना । उ०—मेघनाद संगर पोरि, गयन सुगं चितु लाय । कहिय सबर भगुलन तन, मन जू भनि दुच्छतान । —प० रासो, पृ० १५४ ।

दुच्छोल^(१)—वि० [हि० दु (= दो) छोर] दोनों ओर मिला हुआ । दोरंग । दो तरह का । दो प्रकार का उ०—पठ्यो मदन बसो ही डीठ महामद लास । छिन ओरे छिन ओर सों छाव्यो छैन दुच्छोल । —छान०, पृ० २५ ।

दुज^(१)—संज्ञा पु० [सं० द्विज] १. द्विज । २. पक्षी । उ०—दुज वर कोकिल माखिना देन । —विद्यापति, पृ० १०६ । ३. दाँत । दशन । उ०—अरुन धधर, दुज कोटि वज्र दुति ससि घन रुज समाने । कुंचित धनक गिलोमुख मिलि मनु लै मकरंज उड़ावे । —मूर०, १० । १७६५ ।

यौ०—दुजगन = दाँतों की पंक्ति । उ०—संजम राखत केस नयन हू काननचारी । मुखहू माहि पवित्र रहत दुजगन सुखकारी । —ब्रज ग्रं०, पृ० १०२ ।

दुजड़^(१)—संज्ञा स्त्री० [देश०] तलवार । उ०—बंस मद्धकर ऊबरा, दुजड़ उजागर देस । —रा० रू०, पृ० ४४ ।

दुजड़ी—संज्ञा स्त्री० [देश०] कटारी । (हि०) ।

दुजन—संज्ञा पुं० [सं० दुर्जन] दे० 'दुर्जन' । उ०—तापित दुजन को है देत सुमनै गुवाय लगे प्रति कानन में बात ताप में बली ।—वीन प्र०, पृ० ४५ ।

दुजनता(५)—संज्ञा स्त्री० [सं० दुर्जनता] दुष्टता । उ०—देखहु नाथ दुजनता मेरी । महिमा कही चहौ प्रभु केरी ।—नंद० प्र०, पृ० २७० ।

दुजन्मा(५)—संज्ञा पुं० [सं० द्विजन्मा] दे० 'द्विजन्मा' ।

दुजपति—संज्ञा पुं० [सं० द्विजपति] १. दे० 'द्विजपति' । २. चंद्रमा । उ०—दुजपति धंकहु हिरन इवक निभय मुभाष प्रति ।—पृ० रा०, पृ० ६६ ।

दुजवर(५)—वि० [सं० द्विजवर] ब्राह्मण उ०—दुजवर एक सुदामा नामा ।—नंद० प्र०, पृ० २१२ ।

दुजराइ(५)—संज्ञा पुं० [सं० द्विजराज] १. ब्राह्मण । द्विजराज । उ०—देखि राज बिसमित भयो व्यासहि लीन बुसाइ । भेड़ लरे क्यों व्याघ्र सो कहौ बैन दुजराइ ।—प० रासो, पृ० २ । २. चंद्रमा ।

दुजराज(५)—संज्ञा पुं० [सं० द्विजराज] दे० 'द्विजराज' ।

दुजाई(५)—संज्ञा स्त्री० [सं० 'द्विज, हि० दुभ+आई (प्रत्य०)] द्विजस्व । ब्राह्मणत्व । उ०—तपस्या ठकुराई छीन आई मिट दुहाई देण ए । चाकर दुहाई पाव माई सुख आई वेश ए ।—रास० धर्म०, पृ० २८७ ।

दुजाति(५)—संज्ञा पुं० [सं० द्विजाति] दे० 'द्विजाति' ।

दुजानू—क्रि० वि० [फ्रा० दोजायू] दोनों घुटने के बल । जैसे, दुजानू बैठना ।

दुजोह(५)—संज्ञा पुं० [सं० द्विजिह्व] दे० 'द्विजिह्व' ।

दुजेश—संज्ञा पुं० [सं० द्विजेश] दे० 'द्विजेश' ।

दुज्जन(५)—संज्ञा पुं० [सं० दुर्जन, प्रा० दुर्जन] दे० 'दुर्जन' । उ०—(क) सुप्रण पससइ कब मफ, दुर्जन बोलइ मंद ।—कीर्ति०, पृ० ४ । (ग) दुर्जन को दाह कर देवह दिसान में ।—मतिराम (शब्द०) ।

दुद्ध—संज्ञा पुं० [फ्रा० दुय] चीर । उ०—बुनुरगी किया अज मुबारक नबी । बनाया उन्हें दुद्ध के पासबी ।—कबीर जं०, पृ० १३१ ।

दुभासा(५)—वि० [सं०] १. प्रसन्न । २. दोनों हाथों से शस्त्र धारण करनेवाला । उ०—निहारे सती नवल रो, धमगे दलाई दुभास । हिच पड़ियो रज रज हुवे, रुंदू सुखमाल ।—रा० क०, पृ० ४० ।

दुदक—वि० [हि० दो+क] दो दुकड़ों में किया हुआ । खंडित । उ०—कियो दुदक चाप देखत ही रहे चार्कन सब टाढ़ ।—सूर (शब्द०) ।

मुहा०—दुदक बात = थोड़े में वही दुर्द साफ बात । बिना धुमधुम फिरोज भी रफ़्त बात । ऐसी बात जो लगे लिपटी न हो । खरी बात । जैसे, हम तो दुदक बात कहते हैं, चाहे बुरी लगे या अच्छी ।

दुदनाई—क्रि० प्र० [हि० दुटना] खिपना । लुक्का । छोट होना ।

उ०—सोही भंगिया छोट हरी रंग साज में । दुड़िया चकवा दोय सिवाँल समाज में ।—बाँकी० प्र०, भा० १, पृ० ३७ ।

दुडि—संज्ञा स्त्री० [सं० दुडि] दुल्लि । कच्छपी ।

दुडियंद—पद्या पुं० [? या सं० द्युति + प्र० यद] सूर्य (हि०) ।

दुड़ी—संज्ञा स्त्री० [हि० दो+ड़ी (प्रत्य०)] ताश का वह पत्ता जिसमें दो वूटियाँ होती हैं । दुक्की ।

दुत^१—प्रव्य० [प्रनु०] १. एक शब्द जो तिरस्कारपूर्वक हटाने के समय बोला जाता है । दूर हो । २. एक शब्द जो उस मनुष्य के प्रति बोला जाता है जो कोई मूर्खता की या अनुचित बात कहता अथवा करता है । पूणा या तिरस्कारपूर्वक शब्द ।

विशेष—कभी कभी लोग बच्चों को प्यार से भी दुन कह देते हैं ।

दुत^२—संज्ञा स्त्री० [सं० द्युति] द्युति । ज्योति । प्रकाश । उ०—पै संज्ञा कीरत मुख पीत वारज अत्रध मूल दुत बीम ।—रघु० क०, पृ० २४६ ।

दुतकार—संज्ञा स्त्री० [प्रनु० दुत+कार] वचन द्वारा किया हुआ अपमान । तिरस्कार । भिक्कार । फटकार ।

क्रि० प्र०—देना ।—बतलाना ।—मिना ।

दुतकारना—क्रि० सं० [हि० दुतकार+ना (प्रत्य०)] १. दुत दुत शब्द करके किसी को अपन पास से हटाना । २. तिरस्कृत करना । भिक्कारना ।

दुत्तर(५)^१—वि० [सं० दुस्तर, प्रा० दुत्तर] दे० 'दुस्तर' । उ०—ममता भ्रष्ट विषय मदमाती यह सुख कबु न दुत्तर गिनी ।—दे० बानी, पृ० ६ ।

दुत्तरफा—वि० [हि० दो+प्र० तरफ] दे० 'दुतर्फ' ।

दुतर्फा—वि० [फ्रा० दुतर्फे] [वि० स्त्री० दुतर्फी] दोनों ओर का । जो दोनों ओर हो । जैसे, दुतर्फा चाल, दुतर्फा रंग ।

दुतल्ला—वि० [हि० दो+तल्ला] दो तल्ले का । दो मरातिब का । जैसे, दुतल्ला मकान ।

दुतारा^१—वि० [सं० दुस्तार, प्रा० दुतार] कठिन । दुस्तर । उ०—रनकहि पंचष अह हनार । जहव कमोर दल करि दुतार ।—प० रासो, पृ० ३६ ।

दुताबी—संज्ञा स्त्री० [हि०] एक प्रकार की तलवार (संभवतः दोहरे ताय की) । उ०—बरवी जिन चाबी दर्वाहि न दाबी दिपति दुताबी देख परै ।—पद्माकर प्र०, पृ० २८ ।

दुतारा—संज्ञा पुं० [हि० दो+तार] एक बाजा जिसमें दो तार लगे होते हैं और जो उंगली से सितार की तरह बजाया जाता है ।

दुति(५)^१—संज्ञा स्त्री० [सं० द्युति] १. दे० 'द्युति' । उ०—चौसठि कला बिनासजुत बदन कलानिधि पेखि । दुतिया की देखे कला को दुति याकी देखि ।—मति० प्र०, पृ० ४४७ । २. कागद । कागज (लष०) । उ०—दुति बिन मसि बिन धंक सो पुस्तक बचिए । बिन कर ताल बजाय चरन बिन नाचिए ।—कबीर०, भा० २, पृ० १२३ । ३. दावात ।

दुतिई(५)—वि० [सं० द्वितीया] दूसरी । द्विती । पहली के बादवाली ।

उ०—दुतिई उपमा कवि यों मनई । किय अंगन चंद निसा जगई ।—पु० रा०, ८।६२ ।

दुतिमान(५)—वि० [सं. द्युतिमान्] दे० 'द्युतिमान्' ।

दुतिय(५)—वि० [सं. द्वितीय] [वि० स्त्री० दुतिया] दे० 'द्वितीय' । उ०—दुतिय समुच्चय ताहि को कह भूषन कवि मोर ।—भूषण ग्रं०, पृ० ५६ ।

दुतिया^१—संज्ञा स्त्री० [सं. द्वितीया] दूज । पक्ष की दूसरी तिथि । उ०—दुतिया की देख कला को दुति याकी देख ।—मति० ग्रं०, पृ० ४४७ ।

दुतिया(५)^२—संज्ञा पुं० [सं. द्विस्व] दो का भाव । द्वेयभाव । उ०—ज्ञान होय परगास कुमति जूझा मे हारे । दुतिया खंडन करे एक को बैठि बिचारे ।—पलटू०, पृ० ३७ ।

दुतियन(५)—वि० [हिं. दुति + वंत (प्रत्य०)] १. आभायुक्त । चमकीला । २. सुंदर ।

दुतिवान(५)—संज्ञा पुं० [सं. द्युतिमान्, द्युतिमान् या हिं. दुति + वान (प्रत्य०)] सुयं । द्युतिमान् । उ०—चित्रमान् बृहन्मान रवि विवस्वान् दुतिवान् ।—अनेक०, पृ० १०२ ।

दुती(५)—वि० [सं. द्वितीय] दे० 'द्वितीय' । उ०—(क) दुती उपमा बरने कवि चंद । चले घट रूप दिखावत इंद ।—पु० रा०, २१।१६ । (ख) दुती उपमा कवि यों मन लगि । कि अंगन चंद निसा महि जगि ।—पु० रा०, ८।६३ ।

यो०—दुतीभाव = द्वितीय की भावना । द्वंत भाव । उ०—दादू पुरण ग्रह विचारि ले, दुतीभाव करि दूर । सब धटि साहिब देखिये राम रक्षा भरपूर ।—दादू०, पृ० ४२२ ।

दुतीय(५)—वि० [सं. द्वितीय] दे० 'द्वितीय' ।

दुतोया(५)^१—संज्ञा स्त्री० [सं. द्वितीया] दे० 'द्वितीया' ।

दुत्त(५)—संज्ञा पुं० [सं. दूत] दे० 'दूत' । उ०—मति माधव कोविद सुवर, कही बरा गुन जुत्त । तऊ साहि गोरी रूपति, फेरि मुक्कले दुत्त ।—पु० रा०, १६।१० ।

दुत्तर, दुत्तर—वि० [सं. दुस्तर, प्रा० दुत्तर] दे० 'दुस्तर' । उ०—(क) पूछे गोरख देह बीचाक । क्यों करि दुत्तर उतरहु पाक ।—प्राण०, पृ० ७८ । (ख) क्योकरि दुम्भा दुत्तर तरिमा ।—प्राण०, पृ० १०० ।

दुत्ता—अभ्य० [हिं. दुत] घृणा या तिरस्कारसूचक शब्द । दे० 'दुत' । उ०—मोहि करे दुत्ता लोग, महल मे कीन चले ।—जग० श०, पृ० १० ।

दुत्ति(५)—संज्ञा स्त्री० [सं. द्युति] दे० 'द्युति' । उ०—मानों कि दुत्ति द्रव्यनह व्योम । निच्छोल स्थाम मधि हसिय सोम ।—पृ० रा०, २।३७१ ।

दुत्ती(५)^१—संज्ञा स्त्री० [सं. दूती] दूत कार्य करनेवाली स्त्री । दूती । उ०—यों करंत दुत्तिय बियो कथा श्रवन सुनि मंत । जाको तें पतिवृत्त लिय सो भायो अलि कत ।—पृ० रा०, पृ० २५।२८८ ।

दुत्थोत्थदुत्थोय—संज्ञा पुं० [सं.] ताजिक नीलकंठ के अनुसार वर्ष-प्रवेश में एक याग ।

दुथनी—संज्ञा पुं० [देश०] पत्नी । जोड़ । (कुमाऊं) ।

दुथरी—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की मछली ।

दुधकार—संज्ञा स्त्री० [अनु० दुध + कार] धिक्कार । फटकार । दुतकार । उ०—दूर दुधकार देते अभिमानो पशुओं को ।—प्रेमघन०, भा० १, पृ० २०२ ।

दुदल^१—वि० [सं० द्विदल] फूटने या टूटने पर जिसके दो बराबर खंड या दल हो जायें । द्विदल ।

दुदल—संज्ञा पुं० १. दाल । उ०—दुदल प्रकार अनेकन माने । बरन बरन के स्वाद महाने ।—रघुगज (शब्द०) । २. एक पोधा जो हिमालय के कम ऊँचे स्थानों में तथा नीलगिरि पर्वत पर बहुत होता है ।

विशेष—इसकी जड़ ओषधि के काम में आती है और यकृत को पुष्ट करनेवाली, पसीना और पेशाब लानेवाली होती है । जिरर की बीमारी, पाँव, चर्मरोग आदि में यह उपकारी होती है । इसे कानकूल और बरन भी कहते हैं ।

दुदलाना^१—क्रि० म० [अनु०] दुतकारना । उ०—घात्रे कोइ घासरा लगाई । लागे दोष देइ दुदलाई ।—विश्राम (शब्द०) ।

दुदहई—संज्ञा स्त्री० [सं० दुग्ध + भाण्डिका, हिं० दूध + हाड़ी] दे० 'दुधहई' ।

दुदामी—संज्ञा स्त्री० [हिं० दो + दाम] एक प्रकार का सूती कपड़ा जो मालवे में बहुत बनता था । उ०—दुदामी के धान मानवा में पहले भी बनते थे, मगर शाहजहाँ बादशाह की कदरबानी से बहुत बढ़िया बनने लगे थे ।—शाहजहाँनामा (शब्द०) ।

दुदिला—वि० [हिं० दो + फा० दिल] १. दुचिता । दुबधे में पड़ा हुआ । २. खटके में पड़ा हुआ । चितित । व्यग्र । चबराया हुआ । उ०—यों रंग भच्छे दिली में धीरे । दुदिलो भयो साह कित दोरे । लाल (शब्द०) ।

दुदुकारना^१—क्रि० स० [अनु० दुदकार] दे० 'दुतकारना' ।

दुदुठ—संज्ञा पुं० [सं०] अनुवंशीय एक राजा का नाम । (हरिवंश) ।

दुद्धी—संज्ञा स्त्री० [सं. दुग्धी] १. जमीन पर फैलनेवाली एक घास । विशेष—इस घास के डंठलों में थोड़ी थोड़ी दूर पर गाँठें होती हैं जिनके दोनों ओर एक एक पत्ती होती है । इन्हीं गाँठों पर से पतले डंठल निकलते हैं जिनमें फूलों के गोल गोल गुच्छे लगते हैं । दुद्धी दो प्रकार की होती है—एक बड़ी दूसरी छोटी । बड़ी दुद्धी की पत्ती दो ढाई अंगुल लंबी, एक अंगुल चौड़ी तथा किनारे पर कुछ कुछ कटावदार होती है । अगले सिरे की ओर यह नुकीली और पीछे डंठल की ओर गोल और चौड़ी होती है । छोटी दुद्धी के डंठल बहुत पतले और लाल होते हैं । पत्तियाँ भी बहुत महीन और दोनों सिरो पर गोल होती हैं । बेलक में दुद्धी गरम, भारी कब्बी, बादी, कड़ई, मलमूत्र को निकालनेवाली तथा कोढ़ और कृमि को दूर करनेवाली मानी जाती है । बड़ी दुद्धी से लड़के गोदना गोदने का खेल भी खेलते हैं । वे इसके पृथ

से कुछ लिखकर उसपर कोयला घिसते हैं जिससे काले चिह्न बन जाते हैं।

पर्या०— क्षीरी । मरुदमवा । बाहिणी । कच्छरा । ताम्रमूला ।

२. गृहर की जाति का एक छोटा पोषा, जो भारतवर्ष के सब गरम प्रदेशों में, विशेषकर पंजाब और राजपूताने में होता है। इसका दूध दम में दिया जाता है।

दुधो^२—संज्ञा स्त्री० [हि० दूध] १. एक प्रकार की सफेद मिट्टी । खड़िया मिट्टी । २. सारिवा सता । ३. जंगलो नील । ४. एक पेड़ जो मद्रास, मध्य प्रदेश और राजपूताने में होता है । इसकी लकड़ी सफेद और बहुत मज्झी होती है और बहुत से कामों में आती है।

दुधो^३—संज्ञा स्त्री० [हि० दूध] एक प्रकार का सफेद धान, जिसका नाम सुश्रुत ने कुक्कुटाङ्कक लिखा है।

विशेष—दे० 'दुधिया'।

दुधुम—संज्ञा पुं० [म०] प्याज का हरा पोषा।

दुध—संज्ञा पुं० [म० दुग्ध, प्रा० दुग्ध] दूध का समस्त रूप । जैसे, दुधमुह, दुधहँडी।

दुधपिट्टी—संज्ञा स्त्री० [हि० दूध + पीठी] दे० 'दुधपिठवा'।

दुधपिठवा—संज्ञा पुं० [म० दुग्ध, हि० दूध + म० पिष्टक, हि० पीठा] एक प्रकार का पकवान जो गुंथे हुए मैदे की लंबी लंबी बतियों को दूध में पकाने से बनता है।

दुधमुख^१—वि० [हि० दूध + मुख] दूधपीता । दुधमुह ।

दुधमुह^१—वि० [हि० दूधमुह] दे० 'दूधमुह'।

दुधहँडी—संज्ञा स्त्री० [हि० दूध + हँडी] मिट्टी का वह छोटा बरतन जिसमें दूध रखा या गरम किया जाता है। दूध की मटकी।

दुधहँडी—संज्ञा स्त्री० [हि० दूध + हँडी] दे० 'दूधहँडी'।

दुधा—संज्ञा स्त्री० [म० दुधा, द्विविधा] दुधिया । सदेह । भ्रम । उ०—कही मान मो मन की दुधा । तनि जब कही बात यह भुधा । अर्थ०, ३० २१।

दुधार^१—वि० [हि० दूध + धार (प्रत्य०)] १. दूध देनेवाला । जो दूध देती हो । जैसे, दुधार गैया । २. जिसमें दूध हो।

दुधार^२—वि०, संज्ञा पुं० [हि० दो + धार] दे० 'दुधारा'।

दुधारा^१—वि० [हि० दो + धार] दो धारामों का । जिसमें दोनों ओर धार हो (तलवार, एगी आदि) । जैसे, दुधारा खाड़ा।

दुधारा^२—संज्ञा पुं० एक प्रकार का चौड़ा खाड़ा या तलवार जिसके दोनों ओर तेज धार होती है।

दुधारी^१—वि० स्त्री० [हि० दूध + धार (प्रत्य०)] दूध देनेवाली । जो दूध देती हो । जैसे, दुधारी गाय।

दुधारी^२—दे० स्त्री० [हि० दो + धार] जिसमें दोनों ओर धार हो । जैसे, दुधारी तलवार।

दुधारी^३—संज्ञा स्त्री० वह कटरी जिसके दोनों ओर तेज धार हो।

दुधारू—वि० [हि०] दे० 'दुधार', 'दुधारी'।

दुधित—वि० [सं०] भयभीत । व्याकुल । धबराया हुआ । दुःखी । पीड़ित [को०]।

दुधिया—वि० [हि० दूध + हया (प्रत्य०)] १. दूध मिला हुआ । जिसमें दूध पड़ा हो । जैसे,—दुधिया भाँग । २. जिसमें दूध होता हो । ३. दूध की तरह सफेद । सफेद जाति का । जैसे दुधिया गेहूँ, दुधिया धान । दुधिया पत्थर, दुधिया कंकड़।

दुधिया^२—संज्ञा स्त्री० [सं० दुग्धिका] १. दुधो नाम की घास । २. एक प्रकार की ज्वार या चरी जो बड़ोदे की ओर बहुत होती है और चौपायों को खिलाई जाती है । ३. खड़िया मिट्टी । ४. कलियारी जाति का एक विष । ५. एक चिड़िया जिसे लटोरा भी कहते हैं।

दुधियाकंजई^१—वि० [हि० दुधिया + कंजा] सफेदी लिए हुए कंजे रंग का । नीलापन लिए भूरा।

दुधिया कंजई^२—संज्ञा पुं० एक रंग जो नीलापन लिए भूरा अर्थात् कंजे के रंग से कुछ खुलता होता है।

विशेष—इस रंग में रंगने के लिये कपड़े को पहले हरे के काढ़े में डुबाकर धूप में सुखाते हैं फिर कसीस में रंगते हैं।

दुधिया पत्थर—संज्ञा पुं० [हि० दुधिया + पत्थर] १. एक प्रकार का मुलायम सफेद पत्थर जिससे प्याले आदि बनते हैं । २. एक नग या रत्न।

विशेष—दे० 'दुधिया'।

दुधियाविष—संज्ञा पुं० [हि० दुधिया + विष] कलियारी की जाति का एक विष जिसके सुंदर पोषे काश्मीर, चित्राल, हजारा के पहाड़ों तथा हिमालय के पश्चिमी भाग में मिलते हैं।

विशेष—इसका पोषा कलियारी की ही तरह का सुंदर फूलों से सुकोभिग होता है। इसकी जड़ में विष होता है। कलियारी की जड़ से इसकी जड़ छोटी और मोटी होती है। रंग भी काला-पन लिए होता है। हजारा में इसे 'मोहरी' और काश्मीर में 'बनबल नाग' कहते हैं। इस विष को 'नेलिया विष' और 'मोठा जहर' भी कहते हैं।

दुधेली—संज्ञा स्त्री० [हि० दूध+एली (प्रत्य०)] दे० 'दुधो'।

दुधेल—वि० [हि० दूध + एल (प्रत्य०)] बहुत दूध देनेवाली । दुधार । जैसे, दुधेल गाय।

दुध—वि० [सं०] १. चोट पहुँचानेवाला । हिसक । २. दुर्घवं । शक्ति-शाली । भयानक [को०]।

दुनया—संज्ञा पुं० [म० द्वि, हि० दो + सं० नदी, प्रा० एर्द्ध] वह स्थान जहाँ दो नदियाँ एक दूसरे से मिलती हों । दो नदियों का संगम स्थान।

दुनरना^१—क्रि० प्र० । क्रि० सं० [हि० दुनवना] दे० 'दुनवना'।

दुनवना^१—क्रि० प्र० [हि० दो + नवना (=भुक्ता)] किसी नरम या लचीली वस्तु का इस प्रकार भुक्ता कि उसके दोनों ओर एक दूसरे से मिल जायँ या पास पास हो जायँ । सबकर दोहरा हो जाना । इस प्रकार नमित होना कि दोनों अर्धभाग प्रायः एक दूसरे के समानांतर हो जायँ । उ०—कठि व सोचिबे

सायक, रमत न भीति । दुनए किस न टूटत यह परतीति ।—
रहीम (शब्द०) ।

दुनवना^२—क्रि० स० लबाकर दोहरा कर देना । इस प्रकार
भुक्ताना कि दोनों छोर एक दूसरे से मिल जायें या पास पास
हो जाय ।

दुनाली^१—वि० स्त्री० [हि० दो+नाल] दो मालवाली । जैसे, दुनाली
बंदूक ।

दुनाली^२—संज्ञा स्त्री० दुनाली बंदूक । वह बंदूक जिसमें दो दो गोखियाँ
एक साथ भरी जायें ।

दुनिया^१—संज्ञा स्त्री० [अ० दुनियह्] दे० 'दुनिया' । उ०—अलङ्कार
भल तिन्हकर गुरु । दीन दुनिध रीसन सुरखुरु — जायसी
प्र० (गुप्त०), पृ० १३३ ।

दुनियाँ—संज्ञा स्त्री० [अ०] १. संसार । जगत् ।

यौ०—दीन दुनियाँ = लोक परलोक ।

मुहा०—दुनियाँ के परदे पर = सारे संसार में । दुनिया की हवा
लगना = सांसारिक अनुभव होना । संसारी विषयों का अनुभव
होना । दुनियाँ भर का = बहुत या बहुत अधिक । जैसे,—
(क) दुनियाँ भर का सामान साथ ले जाकर क्या करोगे ?
(ख) दुनियाँ भर का बखेड़ा । दुनियाँ से उठ जाना = मर
जाना । दुनियाँ से चल बसना = मर जाना ।

२. संसार के लोग । लोक । जनता । जैसे,—मारी दुनियाँ इस
बात को जानती है । उ०—ये तपसी हैं गहर भरे दुनियाँ
ते दयानिधि बोलत ना ।—दयानिधि (शब्द०) । ३. संसार
का जंजाल । जगत् का प्रपंच ।

दुनियाई^१—वि० [अ० दुनिया + हि० ई (प्रत्य०)] सांसारिक ।
उ०—जाबत खेहू रेह दुनियाई । मेघ बूँद भी गगन तराई ।
—जायसी (शब्द०) ।

दुनियाई^२—संज्ञा स्त्री० [अ० दुनिया + हि० ई (प्रत्य०)] संसार ।
उ०—ते विष बान लिली कहीं ताई ! रक्त जो गुभा भीज
दुनियाई ।—जायसी (शब्द०) ।

दुनियादारी^१—संज्ञा पुं० [अ०] सांसारिक प्रपंच में ठंसा हुआ
मनुष्य । संसारी । गृहस्थ ।

दुनियादारी^२—वि० ढंग रखकर अपना काम निकालनेवाला । व्यव-
हारकुशल ।

दुनियादारी—संज्ञा स्त्री० [अ०] १. दुनियाँ का कारबार । गृहस्थी
का जंजाल । २. दुनियाँ में अपना काम निकालने का ढंग ।
वह व्यवहार जिससे अपना प्रयोजन सिद्ध हो । स्वार्थसाधन ।
३. बिल्लाऊ या बनावटी व्यवहार । गुराब । छिपाव ।

मुहा०—दुनियादारी की बात = बनावटी बात । इसर सहर की
बात जो केवल प्रसन्न करने के लिये कही जाय । लल्लो
चप्पो । जैसे,—दुनियादारी की बात रहने दो, अपना ठीक
ठीक मतलब बतलाओ ।

दुनियापरस्त—वि० [अ०] सांसारिक । कुपण । कंजूस ।

दुनियासाज—वि० [अ० दुनियासाज] १. ढंग रखकर अपना काम

निकालनेवाला । स्वार्थसाधक । २. अवसर देखकर सुहावे-
वाली बात करनेवाला । लल्लो चप्पो करनेवाला । चापलूस ।

दुनियासाजी—संज्ञा स्त्री० [अ० दुनियासाजी] १. अपना मतलब
निकालने का ढंग । स्वार्थसाधन की वृत्ति । २. चापलूसी ।
३. बात बनाने का ढंग ।

दुनी—संज्ञा स्त्री० [अ० दुनियाँ] संसार । जगत् । उ०—(क) सातो
द्वीप दुनी सब नये ।—जायसी (शब्द०) । (ख) कविबुंद
उदार दुनी न सुनी । गुन दूषन बात न कोपि गुनी ।—तुलसी
(शब्द०) । (ग) तुमही जग हो जग है तुमही में । तुमही
बिरबी मरजाद दुनी में ।—केशव (शब्द०) ।

दुनोना, दुनौना—क्रि० अ० क्रि० स० [हि० दुनवना] दे० 'दुनवना' ।

दुपकना—क्रि० अ० [म० दीपन] १. चमकना । दीप्त होना ।
२. छा जाना । छादित होना । छिपना । आवृत्त होना । डँक
जाना (लगा०) । उ०—अनेक दीप से समक रहा गगन ।
अनेक दीप से दुपक रही अरवि ।—मिलन०, पृ० २०७ ।

दुपटा^१—संज्ञा पुं० [हि० दुपट्टा] दे० 'दुपट्टा' । उ०—पीढ़े हुवे
पलंगा पर गयो मुख ऊपर मोट किए दुपटा को ।—सुंदर
(शब्द०) ।

दुपटी^१—संज्ञा स्त्री० [हि० दुपटा] चादर । दुपट्टा । उ०—(क)
सब जाति फटी दुल की दुपटी कपटी न रहे जहँ एक घटी ।
—केशव (शब्द०) । (ख) बोनी फटी सी लटी दुपटी ग्रह
पाँय उपानह की नहि सामा ।—कविता को०, भा० १,
पृ० १४६ ।

दुपट्टा—संज्ञा पुं० [हि० दो + पाट] [स्त्री० अल्पा० दुपट्टी] १. मोड़ने
का वह कपड़ा जो दो पाटों को जोड़कर बना हो । दो पाट
की चदर । चादर ।

मुहा०—दुपट्टा नानकर सोना = निश्चित होकर सोना । बेकटके
सोना । दुपट्टा बदलना = सहेंनी बनाना । सली बनाना ।
(स्त्री०) ।

२. कंधे या गले पर डालने का लंबा कपड़ा ।

दुपट्टी^१—संज्ञा स्त्री० [हि० दो + पाट] दे० 'दुपट्टा' ।

दुपद—संज्ञा पुं० [म० द्विपद] दे० 'द्विपद' । उ०—चारो वेद पदे मुख
भागर है वामन वपुषारो । अपव दुपद पशुभाषा बूझै अविगत
अरथ अहारी ।—सूर (शब्द०) ।

दुपरी—संज्ञा स्त्री० [हि० दो + प्रा० पदेह्] वह मिराई, फतुही वा
नीमस्तीन जिसमें दोनों धोर पदें हों । बगलबंदी ।

दुपलड़ी—वि० [हि० दो + पलड़ा (= पल्ला)] दो पल्लेवाली ।
दुपल्ली । उ०—इस दुपलड़ी टोपी को छोड़ो ।—प्रेमघन०,
भा० २, पृ० ८७ ।

दुपलिया^१—वि० स्त्री० [हि० दो + पल्ला] दो पल्लेवाली । जिसमें
दो पल्ले हों ।

दुपलिया^२—संज्ञा स्त्री० एक प्रकार की टोपी जिसके दोनों पल्ले सीए
रहते हैं ।

दुपहर—संज्ञा स्त्री० [हि० दो + पहर] दे० 'दोपहर' । उ०—जेहि निदाध दुपहर रहे मई माह की राति । तेहि उसीर की रावटी खरी धावटी जाति ।—बिहारी (शब्द०) ।

दुपहरि(७)—संज्ञा स्त्री० [हि० दुपहरी] दुपहरिया । दोपहर । उ०—दुपहरि तहें डाइन सी आवै ।—नद० ग्रं०, पृ० १४० ।

दुपहरिया—संज्ञा स्त्री० [हि० दुपहर + इया (प्रत्य०)] † १. मध्याह्न का समय । दोपहर । २. एक छोटा पोधा जो फूलों के लिये लगाया जाता है । उ०—पग पग मग भगमन परति चरन भ्रमन दुति भूलि । ठोर ठोर ललियत उठे दुपहरिया से फूलि ।—बिहारी (शब्द०) ।

विशेष—यह पोधा डेढ़ दो हाथ ऊँचा और एक सीधे लड़े डंठल के रूप में होता है । इसमें शालाएँ या टहनियाँ नहीं फूटतीं । पत्तियाँ इसकी छाठ दस अंगुल लंबी, अंगुल डेढ़ अंगुल चौड़ी और किनारे पर कटावदार तथा गहरे रंग की होती हैं । फूल इसके गोल कटोरे के आकार के और गहरे लाल रंग के होते हैं । इन फूलों में पाँच दल होते हैं । फूलों के झड़ जाने पर जो बीजकोश रह जाता है उसमें राई के दाने से काले काले बीज पड़ते हैं । वैज्ञक में 'दुपहरिया' मलमोषक, कुछ गरम, भारी, कफकारक, ज्वरनाशक तथा घात पित्त को दूर करने-वाली मानी जाती है ।

पर्या०—बंधूक । बंधुत्रीय । रक्त । माध्याह्निक । बंधुर । सूर्य-भक्त । प्रोक्तपुष्प । अर्धवल्गुम । हरिप्रिय । शारदपुष्प । ज्वरघ्न । सुगुण ।

३. वह जिसका गर्भाधान दुपहरिया को हुआ हो । हरामजादा । दुष्ट । पाजी । (बात्राक) ।

दुपहरी—संज्ञा स्त्री० [हि० दोपहर + ई (प्रत्य०)] दे० 'दुपहरिया' । उ०—अरे मोत या बान की देखि हिये कर गौर । रूप दुपहरी छाँह कब ठहरानो इक ठोर ।—स० ममक, पृ० १८२ ।

दुपहिया—वि० [हि० दो + पहरिया] वह (गाड़ी) जिसमें दो पहिए लगे हों । दो चक्कोंवाली (साइकिल आदि) । उ०—सुबह उठकर एक दुपहिया गाड़ी पर चढ़ बैठते ।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० १५६ ।

दुपालिया—वि० [हि० दो + पाली या पाला] दो पन्नेवाली । जिसके दो पन्ने हों । उ०—लाल किनारे की धोनी पहने, दुपालिया प्रज्ञी की रोपी लगाए ।—श्यामा०, पृ० १५० ।

दुपी(७)—संज्ञा पुं० [सं० द्विप] द्वीप ।

दुफसली—वि० [हि० दो + ध० फसल] दोनों फसलों में उत्पन्न होनेवाला । वह जिस ओर रबी और खरीफ दोनों से हो ।

दुफसली—वि० स्त्री० दुबधे का । अनिश्चित । संदिग्ध । जैसे—दुफसली बान कहना ठीक नहीं ।

दुबकना—क्रि० प्र० [हि० दुबकना] दे० 'दुबकना' ।

दुबगली—संज्ञा स्त्री० [हि० दो + बगल] मालखंभ की एक कसरत जिसमें बैठ की धोनी बगलों से निकालकर हाथ ऊँचे करके उसे ऐसा लपेटते हैं कि एक कुंडल सा बन जाता है । फिर

दोनों पैरों को सिर की ओर उड़ाते हुए उसी कुंडल में से निकलकर कलाबाजी के साथ नीचे गिरते हैं ।

दुबज्योरा—संज्ञा पुं० [हि० दूब + जेवरी] गले में पहनने का एक गहना जिसकी बनावट गोप की तरह की होती है ।

दुबड़ा—संज्ञा पुं० [हि० दूब] एक प्रकार की घास जो चारे के काम में आती है ।

दुबधा—संज्ञा स्त्री० [सं० द्विविधा] १. दो में से किसी एक बात पर चित्त के न जमने की क्रिया या भाव । अनिश्चितता । चित्त की अस्थिरता । उ०—दुबधा में दोऊ गए भाया मिले न राम ।—(शब्द०) ।

मुहा०—दुबधे में डालना = अनिश्चित दशा में करना । दुबधे में पड़ना = अनिश्चित अवस्था में पड़ना ।

२. संशय । संदेह । जैसे,—दुबधे की बात मत कहो, ठीक ठीक बताओ कि आग्रोगे या नहीं । ३. असमंजस । आगा पीछा । उ०—को जाने दुबधा संकोच में तुम उर निकट न आवै ।—सूर (शब्द०) । ४. खटका । चिंता ।

दुबरी—वि० [सं० दुर्बल] दे० 'दुबरा' ।

दुबरी—वि० [सं० दुर्बल] [वि० स्त्री० दुबरी] दुबला । शरीर से क्षीण । उ०—करी खरी दुबरी मु लींग तेरी चाह चुरेल ।—बिहारी (शब्द०) ।

दुबराई—संज्ञा स्त्री० [हि० दुबरा + ई (प्रत्य०)] १. दुर्बलता । कमजोरी । २. कमजोरी । अशक्तता । उ०—मई यदि नैमुक दुबराई । बड़े डोल नहि देन दिखाई ।—शकुंतला, पृ० ३१ ।

दुबराना—क्रि० प्र० [हि० दुबरा + ना (प्रत्य०)] दुबला होना । शरीर से क्षीण होना । उ०—(क) लखे न कंत सहृदवा फिर दुबराय । अनियाँ कमल बदनियाँ, गई कुम्हिलाइ ।—रहीम (शब्द०) । (ल) दुबर लंक अधिक दुबराई । मुके कंध मुख पे पियराई ।—शकुंतला, पृ० ४८ ।

दुबराखगोला—संज्ञा पुं० [हि० दो + ध० बैरल + हि० गोला] तोप का लंबोतरा गोला ।

दुबराख पलंग—संज्ञा पुं० [हि० दुबराखल + ध० पुलिग] पाल की वह छोरी जिसे खींचकर पाल के पेटे की हवा निकालते हैं ।

दुबला—वि० [सं० दुर्बल] [वि० स्त्री० दुबली] १. क्षीण शरीर का । जिसका बदन हलका और पतला हो । कृश ।

यौ०—दुबला पतला ।

२. अशक्त । कमजोर ।

दुबलापन—संज्ञा पुं० [हि० दुबला + पन] कृशता । क्षीणता ।

दुबाइन—संज्ञा स्त्री० [हि० दूबे का स्त्री०] दूबे की स्त्री ।

दुबागा—संज्ञा पुं० [हि० दो + ध० प्रग्रह, हि० पगहा, बगई] सन की मोटी रस्सी ।

दुबारा—क्रि० वि० [प्रा० दुबारह, हि० दो + बार] दे० 'दोबारा' ।

दुबाल—वि० [हि० दुबला] दे० 'दुबला' । उ०—देखत बानिदेन अपने मकमूर हाल । परेशान अपने भी फिकर लग दुबाल ।—विक्रमिनी०, पृ० २६८ ।

दुबाला—वि० [क्रा०] दे० 'दोबाला'। उ०—करे हैं उस परी के बाले जोवन को दुबाला सा।—नजीर (शब्द०)।

दुबाहिया—संज्ञा पुं० [सं० द्विबाह] दोनों हाथों से तलवार चलाने-वाला योद्धा।

दुविदु—संज्ञा पुं० [सं० द्विविद] दे० 'द्विविद'।

दुविध^१—संज्ञा स्त्री० [सं० द्विविधा] दे० 'दुवधा'।

दुविध^२—वि० [सं० द्विविध] दो प्रकार की। द्विविध। उ०—दुविध मनोगति प्रजा दुखारी। सरित सिंधु जंगम जनु बारी।—मानस, १। ३०१।

दुविधा^३—संज्ञा स्त्री० [सं० द्विविधा] १. दे० 'दुवधा' उ०—को जाने दुविधा संकोच में तुम डर निकट न आवै।—सूर (शब्द०)। २. दो प्रकार की भावना। भेद भाव। अच्छे बुरे की भावना। उ०—इक लोहा पूजा मैं राखत इक बर अधिक परो। सो दुविधा पारस नहि जानत कंचन करस लरो—सूर०, १। २२०।

दुविधि—संज्ञा स्त्री० [सं० द्विविधा] दे० 'दुवधा'। उ०—जेहि निरखत मन मगन, सो दुविधि नसावई।—केशव० प्रमी०, पृ० १।

दुविध्या^४—संज्ञा स्त्री० [द्विविधा] दे० 'दुवधा'। उ०—महं परम ध्यानदमय महं ज्योति निज सोह। ब्रह्मयोग ब्रह्महि भया दुविध्या रही न कोह।—सुंदर ग्रं०, भा० १, पृ० ११३।

दुबिला—संज्ञा स्त्री० [हि० दुबना] दे० 'दुबला'। उ०—कवि लखन प्रबला कहत सबला जोध कहंत। दुबिला तन मैं प्रगट जिहि, मोहत संत प्रमंत।—ह० रासो, पृ० २८। १२. औरत। नारी (बाजार)।

दुबिली—संज्ञा स्त्री० [सं० दो+बीस] एक प्रकार का कमीशन जो गवर्नमेंट किसानों को देती है। अर्थात् बीस रुपए के लगान पर दो रुपए।

दुबीचा^५—संज्ञा पुं० [हि० दो+बीच] १. दो बानों के बीच किसी एक बात का निश्चय न होना। दुवधा। २. संशय। संदेह। ३. असमंजस। धागा पीछा। ४. लटका। बिता।

दुबे—संज्ञा पुं० [सं० द्विवेदी] [स्त्री० दुबाहन] बाह्यलों का एक भेद।

दुब्या—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'दुवधा'। उ०—इससे मेरा जो दुबे में पड़ा है।—मारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० १५।

दुभना^६—क्रि० सं० [दि०] दे० 'दुहना'। उ०—काहे भूमि इतना भार लखे। दुभत धेनु नहि दुष खाखे।—दक्षिणो०, पृ०, १०२।

दुभाखी—संज्ञा पुं० [सं० द्विभाषी] दे० 'दुभाषी'। उ०—अगुन सगुन बिच नाम सुभाखी। उभय प्रबोधक चतुर दुभाखी।—मानस, १। २१।

दुभाषिया—संज्ञा पुं० [सं० द्विभाषी] दो भाषाओं का जाननेवाला ऐसा मनुष्य जो उन भाषाओं के बोलनेवाले दो मनुष्यों को एक दूसरे का अभिप्राय समझावे। दो भिन्न भिन्न भाषाएँ बोलने-वालों के बीच का मध्यस्थ।

दुभाषी—संज्ञा पुं० [सं० द्विभाषिन्] दुभाषिया।

दुभिखा^७—संज्ञा पुं० [सं० दुभिक्ष] दे० 'दुभिक्ष'।

दुभुज—वि० [सं० द्विभुज] दे० 'द्विभुज'।

दुमंजिला—वि० [क्रा० दु+मंजिल] [वि० स्त्री० दुमंजिली] दो संझ। दो मरातिब का। जैसे, दुमंजिला मकान।

दुम—संज्ञा स्त्री० [क्रा०] १. पूँछ। पुच्छ।

मुहा०—दुम के पीछे फिरना = साथ साथ लगा फिरना। पीछे पीछे घूमना। साथ न छोड़ना। दुम दबाकर भागना = डरपोक कुत्ते की तरह डरकर भागना। डर के मारे न ठहरना। दबकर भागना। (कुत्ते जब अपने से बलिष्ठ कुत्ते को देखते हैं तब डर के मारे पूँछ दोनों टाँगों के बीच दबा लेते हैं)। दुम दबा जाना = (१) डर के मारे हट जाना। डर से भाग जाना। (२) डर के मारे किसी बात से हट जाना। अवस्था किसी काम से पीछे हट जाना। डर के मारे किसी काम से अलग हो जाना। दुम में घुसना = गायब हो जाना। दूर हो जाना। जैसे,—एक चालू बूँगा मारी बश्माणी दुम में घुस जायगी। दुम में घुसा रहना = खुशामद के मारे साथ लगा रहना। शुभ्रपा के खिले पदा आय में रहना। दम में रस्सा बाँधूँ = नटखट चोपाए की तरह बाँधकर रखूँ। (एक विनोदमूक वाक्य जो प्रायः किसी पर बिगड़कर बोलते हैं। दुम हिलाना = कुत्ते का दुम हिलाकर प्रगल्भता प्रकट करना। २. पूँछ की तरह पीछे लगी। ३. बंधों हुई। जैसे, सितारे की दुम, टोपी की दुम।

सी०—दुमदार।

३. पीछे पीछे लगा रहनेवाला। धादनी। पिछलग्गू। ४. किसी काम का सबसे अंतिम पड़ावा। अंश। ५. नाम के अंत में जुड़नेवाली उपाधि। द्वयी। (अर्थ)।

दुमची—संज्ञा स्त्री० [क्रा०] १. पीछे के मात्र में वह तसमा जो पूँछ के नीचे दबा रहता है। २. दोनों नितंबों के बीच की हड्डी। पुट्टा के बीच की हड्डी। उ०—बुरजे हुनी हठ चढ़े ना सकुचे न सकाय। दूटति कटि दुमची मचक लचकि लचकि बधि जाय।—विहारी (शब्द०)।

दुमदार—वि० [क्रा०] १. पूँछवाला। २. जिसके पीछे पूँछ की सी कोई वस्तु लगी या बंधी हो। जैसे, दुमदार सितार, दुमदार टोपी।

दुमन—वि० [सं० दुर्मनस्, दुर्मना] अनमना। अप्रसन्न। खिन्न।

दुमना—संज्ञा स्त्री० [सं० दुर्मनस्] अनमना। उ०—दुमना गया बिलायती, भरती सामंत मोह।—रा० रू०, पृ० २६३।

दुमाव, दुमावा^८—वि० [सं० दुमावृ] १. बुरी माता। २. सोतेली माँ। उ०—मात को न मोह, न द्रोह दुमात को, सोच न ताव के गात गहे को। राज को लोभ न प्रान को लोभ न बंधु न बोधि रहे को।—ता रत्नभूमि में राम कह्यो मोहि सोच विभीषन भूप कहे को।—श्रीपति (शब्द०)।

दुमाका, दुमाका—संज्ञा पुं० [हि० दो + माका] पाश । फंदा ।
उ०—ऐसा मतंग फकीर किया सतन का दुमाल, मेरा तुटा बहु
जंजाल ।—दक्खिनी०, पृ० ६३ ।

दुमाही—वि० [हि० दु + माह] दो महीने पर होनेवाला । दो महीने का ।
दुमुह्राँ—वि० [हि० दो + मुह्राँ] दे० 'दोमुह्राँ' । उ०—सूर्य का सत-
मुह्राँ छोड़ा थावे तब तो यह दुमुह्राँ द्वार खुले पर थावे कैसे ।—
ध्यामा०, पृ० १०६ ।

दुययाँ—संज्ञा पुं० [सं० दुर्जन, प्रा० दुज्जन, दुयण अथवा फ्रा०
दुयमन, तुलनीय सं० दुर्मनस्] दुश्मन । शत्रु । उ०—दुयया
हाथ दिखाय ।—रा० क० पृ० ३६ ।

दुरंग—संज्ञा पुं० [सं० दुर्ग] दे० 'दुर्ग' । उ०—सहस्र उभे खुनिया
लग साथे । मुड़िया मेछ दुरंग वै माये ।—रा० क०, पृ० २२२ ।

दुरंग—वि० [हि० दो + रंग] दुरंगा । उ०—सुरंग दुरंग सोहत पाग
जाल कै, कुरंग कैसे सोचन प्रति जाने ।—नद०, पृ० ३४२ ।

दुरंग—वि० [हि० दो + रंग] दे० 'दुरंगा' ।

दुरंग—संज्ञा पुं० [सं० दुर्ग] दे० 'दुर्ग' । उ०—दुर्दमि गरज मान
न देखे, दुरंग अरुंग आयकर देखे ।—रघु० क०, पृ० ११२ ।

दुरंगा—वि० [हि० दो + रंग] [वि० स्त्री० दुरंगी] १. दो रंगों का ।
जिसमें दो रंग हों । जैसे, दुरंगा कपड़ा । २. दो तरह का ।
दो प्रकार का । ३. दो तरह की चाल चलनेवाला । दो पक्ष
प्रबलबन करनेवाला ।

दुरंगी—वि० [हि०] स्त्री० दे० 'दुरंगा' । जैसे, दुरंगी चाल । दुरंगी झीट ।

दुरंगी—संज्ञा स्त्री० द्विविधा । कुछ इस पक्ष का कुछ उस पक्ष का
प्रबलबन । जैसे, -दुरंगी छोड़ दे एक रंग हो जा ।

दुरंत—वि० [सं० दुरन्त] १. जिसका अंत या पार पाना कठिन हो ।
अपार । बड़ा भारी । उ०—कान कोट सत सरिस अति दुस्तर
दुर्ग दुरंत ।—तुलसी (शब्द०) । २. दुर्गम । दुस्तर । कठिन ।
जिसे करना या पाना सहज न हो । उ०—बहु जो हृती
प्रतिमा समीप की सुख संपत्ति दुरंत जई रो ।—मूर (शब्द०)
३. घोर । प्रबल । भीषण । ४. जिसका अंत या परिणाम बुरा
हो । अशुभ । बुरा । कुत्सित । उ०—पुत्र हौ विषवा करी तुम
कर्म कीन दुरंत ।—केशव (शब्द०) । ५. दृष्ट । लल ।

दुरंतक—संज्ञा पुं० [सं० दुरन्तक] शिव ।

दुरंधा—वि० [सं० दुरन्ध्र] दो छिद्रवाला । पार पार छेदा हुआ ।
उ०—अंधे कंधे दुरंधे करे अंग, सोधे सुगधेनु की पाह के
जंग ।—सूदन (शब्द०) ।

दुर—अव्य० या उप० [सं०] इसका प्रयोग इन अर्थों में होता है ।
(१) दूषण (बुरा अर्थ) जैसे, दुरात्मा, दुर्दिन, (२) निषेध,
जैसे, दुर्बल । (३) दुःख या कष्ट, जैसे, दुर्गम ।

दुर—अव्य० [हि० दूर] एक शब्द जिसका प्रयोग तिरस्कारपूर्वक
हटाने के लिये होता है और जिसका अर्थ है 'दूर हो' ।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग कुन्ने के लिये होता है । कभी कभी
यों ही प्यार से भी लोग बच्चों या प्रियजनों आदि को 'दूर'
कह देते हैं, जैसे,—दूर ! पगली, क्या बकती है ?

मुहा०—दूर दूर करना = तिरस्कारपूर्वक हटाना । कुरो की
तरह भगाना । दूर दूर फिट फिट = तिरस्कार ।

दुर—संज्ञा पुं० [फ्रा०] १. मोती । मुक्ता । २. मोती का वह लटकन
जो नाक में पहना जाता है । लोलक । ३. छोटी बाजी ।

उ०—काल्ह कुंवर की कनछेदन है हाथ सोहारी भेली गुर की ।
... कंचन के द्वे दूर मंगाय लिए कहीं कहीं छेदनि आतुर
की ।—सूर०, १०।१८० ।

दुरकना—क्रि० प्र० [हि० दुरना] दे० 'दुरना' । उ०—बदन फेरि
हंसि हेरि इन करि ललचोई नैन । उर उरकी दुर्की लुरक जुर
मुरकी कर सेन ।—स० सप्तक, पृ० ३६६ ।

दुरकरम—(पुं०) संज्ञा पुं० [सं० दुर, + हि० करम] दे० 'दुर्कर्म' ।
उ०—माई ! सुरी धरम सरसावो । मेछ धरम दुरकरम
मिटानो ।—रा० क०, पृ० ३६४ ।

दुरकुञ्छी—संज्ञा स्त्री० [देश०] १. अटपटापन । २. ऊब । विरक्ति ।
क्रि० प्र०—सगना ।

दुरक्ष—वि० [सं०] १. दुर्बल दृष्टिवाला । २. जिसकी निगाह
अच्छी न हो । बुरी निगाहवाला ।

दुरक्ष—संज्ञा १. जाली पासा । २. बेईमानी का जुमा [को०] ।

दुरखा—संज्ञा पुं० [देश०] [स्त्री० दुरखी] एक प्रकार का फतिगा
जो नील, तमाखू, सरसों, गेहूँ, इत्यादि की फसल को नुकसान
पहुँचाता है ।

दुरगंद—संज्ञा स्त्री० [सं० दुर्गन्ध] दे० 'दुर्गन्ध' । उ०—घरे दुरगंद का
माँड़ा । निरख कोई संत ने छाँड़ा ।—तुरसी० पं०, पृ० ३१ ।

दुरग—संज्ञा पुं० [सं० दुर्ग] दे० 'दुर्ग' । उ०—ऐसो ऊँचो दुरग
महाबली के जामें नखतावली सों बहस दीपावलि करत है ।
—भूषण प्र०, पृ० ३६ ।

दुरगत—संज्ञा स्त्री० [सं० दुर्गति] दे० 'दुर्गति' । उ०—सांत रहने
से तो और भी हमारी दुरगत होती है । हमें सांत रहना
मत सिखाओ ।—काया०, पृ० १६१ ।

दुरगति—संज्ञा स्त्री० [सं० दुर्गति] दे० 'दुर्गति' उ०—सब कोई
नाम गहो रे भाई । छोड़ो दुरगति ओ बतुराई ।—कबीर
सा०, पृ० ८१४ ।

दुरचुम—संज्ञा पुं० [देश०] दरी के ताने के दो दो सूतों को इसलिये
एक में बांधना जिसमें वे उलझ न जाय ।

दुरजन—संज्ञा पुं० [सं० दुर्जन] दे० 'दुर्जन' । उ०—रग उरकत
दूत कुदुम जुरत बतुर अति प्रीति । परति गति दुरजन हिए
दई नई यह राति ।—बिहारी (शब्द०) ।

दुरजोधन—संज्ञा पुं० [सं० दुर्योधन] दे० 'दुर्योधन' ।

दुरतिक्रम—वि० [सं०] १. जिसका अतिक्रमण न हो सके । जिसके
बाहर या विरुद्ध कोई न हो सके । प्रबल । उ०—अंडकटाह
अमित लयकारी । काल सदा दुरतिक्रम भारी ।—तुलसी
(शब्द०) । २. पाररहित । जिसका पार पाना कठिन हो ।
अपार ।

दुरस्थय—वि० [सं०] १. जिसका पार पाना कठिन हो। अपार। २. जिसका अधिकमण न हो सके। बुस्तर।

दुरथल—संज्ञा पुं० [सं० दुःस्थल] बुरा स्थान। खराब जगह।

दुरद—संज्ञा पुं० [सं० द्विरद, प्रा० दुरद] दे० 'द्विरद'। उ०—
दुरद दुरेफन के धरते दरत स्वच्छ सुमन गुलाब दल छवि भूत
छुटि छुटि।—पञ्चनेस०, पृ० १०।

दुरदाम—वि० [सं० दुर्दम] कठिन। कष्टसाध्य। उ०—हरि
राधा राधा रटत जपत मंत्र दुरदाम। बिरह बिराम महायोगी
ज्यों बीतत हैं सब याम।—सूर (शब्द०)।

दुरदाल—संज्ञा पुं० [सं० द्विरद] हाथी।

दुरदुराना—क्रि० सं० [हि० दुरदुर] तिरस्कारपूर्वक दूर करना।
अपमान के साथ भगाना या हटाना।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग विशेषतः कुत्तों के लिये होता है।

संयो० क्रि०—देना।

दुरधिगम—वि० [सं०] १. जो पहुँच के बाहर हो। दुर्गम्य। २.
जो समझ के बाहर हो। दुर्बोध।

दुरधिगम्य—वि० [सं०] दे० 'दुरधिगम'।

दुरधिष्ठित—वि० [सं०] जो अवस्थित न हो। अगवस्थित।
वैतरतीव्य (को०)।

दुरधीत—वि० [सं०] उचित ढंग से न पढ़नेवाला। अशुद्ध अध्ययन
करनेवाला (को०)।

दुरधीत—संज्ञा पुं० वेध का अशुद्ध ढंग से किया गया अध्ययन (को०)।

दुरध्व—संज्ञा पुं० [सं०] कुपध्व। कुमार्ग। बुरा रास्ता।

दुरनय—संज्ञा पुं० [सं० दुर्नय] असदाचार। अनीति। उ०—वास
नन्द ये क्रूर हैं मेरो दुर्नय जान। करिई भोर अनर्थ जे
प्रतिभा संका मान।—सं० समक, पृ० ३७२।

दुरना—क्रि० प्र० [हि० दूर] १. भाँखों के आगे से दूर होना।
छोट से होना। घाड़ में जाना। २. न दिखलाई पड़ना। न
प्रकट होना। छिपना। उ०—बैर प्रीति नहि दुरत दुगए।—
बुलसी (शब्द०)।

संयो० क्रि०—जाना।

दुरन्वय—वि० [सं०] १. दुर्ज्ञेय। जिसे समझना कठिन हो। २.
जिसका अनुगमन कठिन हो। ३. जो ठीक न हो। ४.
दुर्गम्य (को०)।

दुरन्वय—संज्ञा पुं० गलत नतीजा। अशुद्ध निष्कर्ष (को०)।

दुरपदो—संज्ञा स्त्री० [सं० द्रोपदी] दे० 'द्रोपदी'।

दुरपवाद—संज्ञा पुं० [सं०] अपवाद। निंदा। अपयश।

दुरपचा—संज्ञा पुं० [फ्रा० दुर+हि० बचना] एक मोती। छोटी
बानी जिसमें एक मोती हो।

दुरवरन—संज्ञा पुं० [सं० दुर्वर्ण] रजत। चांदी। रूपा। उ०—रुक्म
रजत दुरवरन पुनि जातरूप लज्जैर।—अनेकार्थ०, पृ० ८६।

दुरवल—वि० [सं० दुर्वल] दे० 'दुर्वल'।

दुरवास—संज्ञा पुं० [सं० दुर्वास] दुर्गंध। बुरी गंध।

दुरवास—संज्ञा पुं० [सं० दुर्वास] दे० 'दुर्वास'। उ०—अधि
भए धपर दुरवास नाम। सोइ सुनो लवण तिहि बंस नाम।
—ह० रासो, पृ० ६।

दुरबासा—संज्ञा पुं० [सं० दुर्वासम्] दे० 'दुर्वास'।

दुरविदा—संज्ञा पुं० [?] दे० 'दूरबीन'। उ०—नैन तो दुरविद करि
ले चिन्हहु देवता प्रेत।—सं० दरिया, पृ० ११०।

दुरबीन—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'दूरबीन'।

दुरवेश—संज्ञा पुं० [फ्रा० दरवेश] दे० 'दरवेश'।

दुरभिग्रह—वि० [सं०] कठिनता से पकड़ में आनेवाला।

दुरभिग्रह—संज्ञा पुं० अपामार्ग। बिचड़ी।

दुरभिग्रहा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. केवीच। कपिकच्छु। २. घमासा।

दुरभिग्रह—संज्ञा पुं० [सं० दुर्भिग्रह] अकाल। कहत। दुर्भिग्रह।
उ०—तरा घकास चले सूर होई। अन ना उपरै दुरभिग्रह
होई।—सं० दरिया०, पृ० २७।

दुरभिसंधि—संज्ञा स्त्री० [सं० दुरभिसंधि] बुरा पट्चक्र। बुरे अग्नि-
पाग से गूट बांधकर को हुई सलाह। मिल जुलकर की
हुई कुमंत्रणा।

दुरभेव—संज्ञा पुं० [सं० दुर्भवे या दुर्भेद] बुरा भाव। मनमोटाव।
मनोमालिन्य। उ०—योग दिवस करि ध्यान तहँ रूप चरणा-
भूत सेव। दुर्वास लिय जानि सब मान्यो मन दुरभेव।—
रघुराज (शब्द०)।

क्रि० प्र०—मानना।

दुरभे—संज्ञा पुं० [सं० दुर्भये] अपभय। उ०—जन को दीनता जब
प्राये। रहै अवीन दीनता भावे दुरभे दूर बहावे।—कबीर
श०, भा० १, पृ० १०००।

दुरमन—संज्ञा स्त्री० [सं० हि०] दे० 'दुर्मति'। उ०—पौचो पार
पचोमो भाई सगरि गोहार बोलायो। तेगा तरकस कस के
बाँधो, दुरमत दूर बहायो।—कबीर श०, भा० २, पृ० ७।

दुरमति—वि० [सं० दुर्मति] खल। दुष्ट। दुर्बुद्धि। दुर्मति। उ०—
दुरमति बंध गहे कर में डफ हबड़ हबड़ दे तारी।—बरम०,
पृ० ६१।

दुरमिती—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'दुर्मुम'।

दुरमुख—वि० [सं० दुर्मुख] धनराष्ट्र के एक पुत्र का नाम। उ०—
दुरमुख दुस्सासन विकणं निज व्यूहन बाँवहु।—भारतेंदु शं०,
भा० १, पृ० १०६।

दुरमुट—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'दुर्मुम'।

दुरमुख—संज्ञा पुं० [सं० दुर् (प्रत्यय) + हि० मुख (=कूटना)] गदा
के आकार का डंडा जिसके नीचे पत्थर या लोहे का भारी
टुकड़ा लगा रहता है और जिससे कंकड़ या मिट्टी पीटकर
बैठाई जाती है, अथवा मिट्टी तोड़कर महीन बनाई जाती है।

दुररीस—संज्ञा स्त्री० [सं० दुर् हि० दुर+रीति] कुबान।
अन्याय। उ०—बटे किया बाँधणी, मिटे आलर परसादी।
ईत प्रजा ऊपजे, निरख दुररीत निसादी।—रा० क०, पृ० २०।

दुरलभ—वि० [सं० दुर्लभ] दे० 'दुर्लभ'।

दुराधर्म—वि० [सं०] जिसे वश में करना या रोकना कठिन हो। जो कठिनाई से काबू में आ सके [को०]।

दुरावस्थ—वि० [सं०] जो अच्छी दशा में न हो।

दुरावस्था—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. बुरी दशा। खराब हालत। २. हीन दशा। दुःख, कष्ट या दरिद्रता की दशा।

दुरावाप—वि० [सं०] [वि० स्त्री० दुरावाप] जो कठिनाता से प्राप्त हो सके। दुःप्राप्य।

दुरवेस—संज्ञा पुं० [फ्रा० दुरवेस] दरवेस। संत। फकीर। उ०—हमहीं हैं दुरवेसा धीर ना दमर कोई।—पलटू, भा० १, पृ० १८।

दुरवेसवा—संज्ञा पुं० [हिं० दुरवेस+वा (प्रत्य०)] दे० 'दुरवेस'। उ०—ना हुआ ब्रह्मा न बिन्दु महेसवा। ना जोगी जंगम दुरवेसवा।—कबीर श०, भा० १, पृ० ४७।

दुरस—संज्ञा पुं० [हिं० दोन रस] महोदर भाई।

दुरस—वि० [हिं० दोन रस] १. बोरसा। दुहरे रसवाला। उ०—मानिक मल्लूक मालूम जिसको दुरस दिल हुरमाल है।—सुंदर श०, भा० १, पृ० २६२। २. दो प्रकार की मिट्टी-वाला। बालू मिली मिट्टीवाला।

दुरसा—वि० [फ्रा० दुरस] ठीक। उचित। यथास्थान। व्यावस्थित। उ०—गुण यज्ञबंध तणा कब गावे दुरस परायण भी दरसावे।—रा० क०, पृ० १६।

दुरसा—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रसिद्ध कवि जो राजस्थान के थे।

दुरासा—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'दुरास'।

दुराक—संज्ञा पुं० [सं०] एक स्तेच्छ जाति का नाम। २. एक देश का नाम।

दुराकृति—संज्ञा स्त्री० [सं०] बुरी प्राकृतिकता। बदमूरत [को०]।

दुराकंद—वि० [सं० दुराकंद] जोरो से रोता हुआ [को०]।

दुराक्रम—वि० [सं०] दुर्जय। जिसे जीता न जा सके [को०]।

दुराक्रमण—संज्ञा पुं० [सं०] १. छन से किया गया आक्रमण। २. दुर्गम स्थान [को०]।

दुराक्रांत—वि० [सं० दुराक्रांत] अपराजय। अविजित। उ०—भयुतलक्ष मे रहा जो दुराक्रांत, कम नड़ने को हो रहा विकल वह बार बार, अममथ मानता मन अथत हो हार हार।—अनामिका, पृ० १५०।

दुरागम—संज्ञा पुं० [सं०] अनुचित दंग से प्राप्ति [को०]।

दुरागमन—संज्ञा पुं० [सं० दुरागमन] दे० 'दुरागमन'।

दुरागौन—संज्ञा पुं० [सं० दुरागमन] बुरा का दूसरी बार अपनी ससुराल जाना।

क्रि० प्र०—करना।

मुहा०—दुरागौन दना=लड़के को दूसरी बार ससुराल भेजना। दुरागौन लाना=बहू को दूसरी बार उसके पिता के घर से लाना।

दुराग्रह—संज्ञा पुं० [सं०] १. किसी बात पर बुरे दंग से अड़ना।

हठ। जिद। २. अपने मत के सिद्ध न होने पर भी उसपर स्थिर रहने का काम।

क्रि० प्र०—करना।

दुराग्रही—वि० [सं० दुराग्रहिन्] १. बिना उचित अनुचित के विचार के अपनी बात पर अड़नेवाला। हठी। जिदी। २. अपने मत के ठीक न सिद्ध होने पर भी उसपर स्थिर रहनेवाला।

दुराचरण—संज्ञा पुं० [सं०] बुरी चाल चलन। खोटा व्यवहार।

दुराचार—संज्ञा पुं० [सं०] दुष्ट आचरण। बुरी चाल चलन। खोटी चाल। निहित कर्म।

दुराचार—वि० बुरे या निच आचरणवाला [को०]।

दुराचारी—वि० [सं० दुराचारिन्] [वि० स्त्री० दुराचारिणी] दुष्ट आचरण करनेवाला। बुरी चाल चलन का। बुरे काम करनेवाला।

दुराज—संज्ञा पुं० [सं० दुरा+राज्य] बुरा राज्य। बुरा शासन। उ०—दिन दिन दूनी देखि दारिद्र, दुकाल, दुःख, दुरित, दुराज, सुख सुकृत सकोच है।—तुलसी (शब्द०)।

दुराज—संज्ञा पुं० [हिं० दोन राज्य] १. एक ही स्थान पर दो राजाओं का राज्य या शासन। उ०—(क) जोग बिरह के बीच परम दुख मरियत है यहि दुसह दुराज।—सूर (शब्द०) (ख) दुसह दुराज प्रजानि कौं क्यों न करें प्रति दद। अधिक अंधेरी जग करत भिलि भावस रवि चंद।—बिहारी (शब्द०)। २. वह स्थान जिसपर दो राजाओं का राज्य हो। दो राजाओं की अमलदारी। उ०—साज बिलोकन देति नहीं रतिराज बिलोकन ही की दई मति।—लाल निहारिए सौह कहीं वह बाल भई है दुराज की रैयति।—तोष (शब्द०)। २. बुरा शासन। दोषपूर्ण शासन।

दुराजी—संज्ञा पुं० [सं० दुराज्य] दो राजाओं का। जिसमें दो राजा हो। उ०—नगर चैन तब जानिये जब एक राजा होय। याहि दुराजी राज में सुखी न देखा कोय।—कबीर (शब्द०)।

दुरात्मा—वि० [सं० दुरात्मन्] दुष्टात्मा। नीशाचर। खोटा।

दुरादुरी—संज्ञा स्त्री० [हिं० दुरना (=झिपना)] झिपाव। गोपन।

मुहा०—दुरादुरी करके=छिपे छिपे। गुप्त रूप से। उ०—सिय आता के समय भोम तहें आयत। दुरादुरी करि नेग, मु नात जनायत।—तुलसी (शब्द०)।

दुराधन—संज्ञा पुं० [सं०] धृतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम।

दुराधर—संज्ञा पुं० [सं०] धृतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम।

दुराधरष—वि० [सं० दुराधरष] दे० 'दुराधरष'। उ०—ब्रह्म देखि मदन भय माना। दुराधरष दुर्गम भगवाना।—मानस, १।८६।

दुराधर्ष—वि० [सं०] जिसका दमन करना कठिन हो। जो बड़ी कठिनाई से जीता जा सके। जो वश में न आ सके। प्रबल। उ०—(क) धूमकेतु शरकोटि सम दुराधर्ष भगवंत।—तुलसी (शब्द०)। (ख) दवन दुवन दल दपं बिस दुराधर्ष दिगदंति। दशरथ के सामंत अस दक्षिण कीति करति।—रघुराज (शब्द०)।

दुराधर्ष^२—संज्ञा पुं० १. पीली सरसों। २. विष्णु।

दुराधर्षता—संज्ञा स्त्री० [सं०] प्रवृद्धता। प्रबलता।

दुराधर्षा—संज्ञा स्त्री० [सं०] कुटुंबिनी का पोषा।

दुराधार—संज्ञा पुं० [सं०] महादेव।

दुरानम—वि० [सं०] जिसे कठिनाई से नुकाया जा सके [को०]।

दुराना—क्रि० प्र० [हिं० दूर] १. दूर होना। हटना। टलना।

भागना। उ०—यद्यपि सूर प्रताप श्याम की दूरि दुरात।—

सूर (शब्द०)। २. छिपना। घाड़ में होना। अलक्षित

होना। उ०—श्री पृषमानु नंदिनी ललिता दोऊ वा मग

जात। तुमहूँ जाय माधुरी कुंजन पहिलेहि क्यो न दुरात।—

हरिश्चंद्र (शब्द०)।

दुराना—क्रि० प्र० १. दूर करना। हटाना। उ०—रे भैया, केवट !

ले जतराई। रघुपति महाराज इत ठाड़े तैं कहैं नाव दुराई।—

सूर (शब्द०)। २. छोड़ना। त्यागना। न रखना। उ०—

भजह कृपानिधि कपट दुराई।—सूर० (शब्द०)। ३.

छिपाना। गुप्त रखना। प्रकट न करना। उ०—(क) तुम तो

तीन लोक के ठाकुर तुम तैं कहा दुराई।—सूर (शब्द०)।

(ख) बैर प्रीति नहि दुराई दुराई।—मानस, २। १३।

दुराप—वि० [सं०] [वि० स्त्री० दुरापा] कठिनता से मिलनेवाला।

दुष्प्राप्य। दुर्लभ।

दुराबाध—संज्ञा पुं० [सं०] शिव।

दुराराध्य^१—वि० [सं०] कठिनाई से प्राराधन करने योग्य। जिसको

पूजन या संतुष्ट करना कठिन हो। उ०—दुराराध्य मे ग्रहहि

महेषु। आमुतोष पुनि किए कलेषु।—मानस, १। ७०।

दुराराध्य^२—संज्ञा पुं० विष्णु।

दुरारुह^१—संज्ञा पुं० [सं०] १. खेल। २. नारियल। ३. तालवृक्ष।

खजूर (को०)।

दुरारुह^२—संज्ञा स्त्री० [सं०] खजूर का पेड़।

दुरारोप—वि० [सं०] जिसको चढ़ाना कठिन हो (धनुष)।

दुरारोह^१—वि० [सं०] जिसपर चढ़ना कठिन हो।

दुरारोह^२—संज्ञा पुं० ताड़ का पेड़।

दुरारोहा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. सेमर का पेड़। खजूर का पेड़।

दुरालंभ—वि० [सं० दुरालम्भ] [वि० स्त्री० दुरालम्भा] १० 'दुरालम्भ'।

दुरालम्भा—संज्ञा स्त्री० [सं० दुरालम्भा] १० 'दुरालम्भा' (को०)।

दुरालम्भ—वि० [सं०] जिसका मिलना कठिन हो। दुष्प्राप्य।

दुरालम्भा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. जवासा। धमासा। हिंगुवा। २.

कपाम।

दुरालाप^१—संज्ञा पुं० [सं०] १. बुरा वचन। बुरी बातचीत। २.

गाली। अपशब्द।

दुरालाप^२—वि० दुर्वचन कहनेवाला। कटुभाषी।

दुरालोक^१—संज्ञा पुं० [सं०] तेज चमक। चकाचौंध करनेवाला आलोक

या प्रकाश (को०)।

दुरालोक^२—वि० १. जिसे देखना कठिन हो। २. दुर्दृष्ट। (को०)।

दुराव^१—संज्ञा पुं० [हिं० दुराना] किसी बात को दूसरे से छिपाने का

भाव। अविश्वास या भय के कारण किसी से बात गुप्त रखने

का भाव। उ०—सती कीन्ह बह तहैं दुराऊ। देखहु नारि

सुभाउ प्रभाऊ।—तुलसी (शब्द०)। २. कपट। छल।

उ०—मरत सपथ तोहि सत्य कहु परिहरि कपट दुराउ।

हरष समय विसमय करसि कारन मोहि सुनाउ।—तुलसी

(शब्द०)।

दुरावना—क्रि० प्र० [सं० दूर] छिपाना। दुराना। उ०—(क)

सुनि सुनि बचन चातुरी गालिनी हंसि हंसि बदन

दुरावहि।—तुलसी प्र०, पु० ४३२। (ख) ताही सकोच

मनो मृगलोचनि लोचन बोल दुरावन लागी।—मति० प्र०,

पु० ३८३।

दुरावार—वि० [सं०] १. जिसे ठका न जा सके। २. जिसे रोका या

रखा न जा सके (को०)।

दुराश^१—वि० [सं०] जिसे दुराशा हो। जिसे भ्रष्टी उम्मीद न हो।

दुराशय^१—संज्ञा पुं० [सं०] १. दुष्ट आशय। बुरी नीयत। २. दुष्ट

स्वभाव। बुरी जगह (को०)। ३. छोटा या बुरा व्यक्ति (को०)।

दुराशय^२—वि० जिसका आशय बुरा हो। बुरी नीयतवाला।

छोटा।

दुराशा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. ऐसी आशा जो पूरी न होनेवाली

हो। अर्थ की आशा। झूठी उम्मीद। उ०—दिन दिन अधिक

दुराशा लागी सकल लोक भरमायो।—सूर (शब्द०)। २.

अनुचित चाहना। बुरी आकांक्षा।

दुरास—संज्ञा स्त्री० [सं० दुराणा] दुराणा। निष्फल कामना। न

मिलनेवाली वस्तु के मिलने की झूठी या मिथ्या आशा।

उ०—दोरथो दुरास मे दाम भयो पै कहैं बिसराम को धाम न

पायो।—सुंदर प्र० (भू०), भा० १, पु० ११४।

दुरासद^१—वि० [सं०] १. दुष्प्राप्य। २. दुःसाध्य। कठिन। उ०—

तुम ही महा दुरासद काल। घारे दह प्रबल कराल।—नद०

प्र०, पु० ३१२। ३. अद्वितीय। असमान (को०)। ४. जिसे

जीतना या वश में करना कठिन हो (को०)।

दुरासाध^१—संज्ञा स्त्री० [सं० दुराणा] ३० 'दुराणा'। उ०—सहित

दोष दुष्ट दास दुरासा। दलद नाम जिमि रवि निसि

नासा।—तुलसी (शब्द०)।

दुराह^१—वि० [सं० दुः+फा राह] गलत राह पर चलनेवाला।

उ०—हिंदू तुरक दुराह सबै इकसार चलाऊं।—ह० रासो०,

पु० ७२।

दुराही^१—संज्ञा स्त्री० [दुरा] ३० 'दुराही'। उ०—बुदा कुतुबशाह कुं

शहंशाह यर कर सो सारे जगत मे दुराही फिराया।—

दानखनी०, पु० ७३।

दुरित^१—संज्ञा पुं० [सं०] १. पाप। पातक। २. उपपातक। छोटा

पाप।

विशेष—उपना की स्मृति में पातको को दुरिष्ट और उपपातकों

को दुरित कहा गया है।

दुरित^२—वि० पापी । पातकी । अर्थात् । उ०—प्रबल दनुज दस दसि पल आष में जीवन दुरित दसावन गहिबो ।—तुलसी (शब्द०) ।

दुरितदमनी^१—वि० स्त्री० [सं०] पाप का नाश करनेवाली ।

दुरितदमनी—संज्ञा स्त्री० शमी वृक्ष ।

दुरियाना^१—क्रि० सं० [सं० दूर] दूर करना । हटाना । २. दूर-दुराना । तिरस्कार के साथ भगाना । उ०—जम की सही न आय दुर्बासा की क्या गत कीन्हा । भुवन चतुर्दश फिरे सभे दुरियाय जो बीन्हा ।—पद्म०, भा० १, पृ० १५ ।

दुरिष्ट—संज्ञा पुं० [सं०] १. पाप । पातक ।

विशेष—उपना की स्मृति में पातकों को दुरिष्ट और उपपातकों को दुरित कहा गया है ।

२. वह यज्ञ जो मारण, मोहन, उच्चाटन आदि अधिचारों के लिये किया जाय ।

विशेष—स्मृति पुराण आदि में ऐसा यज्ञ करना महापाप लिखा है । विष्णुपुराण में लिखा है कि देवता, ब्राह्मण और पितरों से द्वेष करनेवाला, दुरिष्ट यज्ञ करनेवाला, कृमिभक्ष और कृमीश नरक में जाते हैं ।

दुरिष्टि—संज्ञा स्त्री० [सं०] दुरिष्ट यज्ञ । अधिचारार्थ यज्ञ ।

दुरीषणा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. अहित कामना । २. शाप । बददुष्प्रा ।

दुरुक्त—संज्ञा पुं० [सं०] अनुचित कथन । बुरी उक्ति [को०] ।

दुरुक्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] अनुचित उक्ति । बुरी बात । दुर्वचन [को०] ।

दुरुक्ति^२—संज्ञा स्त्री० [सं० द्विरुक्ति] दे० 'द्विरुक्ति' ।

दुरुखा—वि० [क्रा० दुःख] १. जिसके दोनों ओर मुँह हो । २. जिसके दोनों ओर कोई चिन्ह या विशेष वस्तु हो । जैसे, दुःखा कागज । ३. जिसके दोनों ओर दो रंग हों । जैसे, दुःखा किनारा ।

दुरुक्चाय—वि० [सं०] (वहं जब्द) जिसका उच्चारण विषष्ट हो । कर्णकटु । उ०—दुरुक्चायं जब्दो की भरमार होने पर अथवा सहसा छंद बदल जाने पर भी भाषाप्रवाह नष्ट हो जाता है । प्रादि०, पृ० २४ ।

दुरुच्छेद—वि० [सं०] जिसका उच्छेद कठिनाता से हो । कष्ट से उच्छेद, विनाश या दूरीकरण योग्य [को०] ।

दुरुत्तर^१—वि० [सं०] जिसका पार पाना कठिन हो । जिसे पार करना कठिन हो । दुस्तर ।

दुरुत्तर^२—संज्ञा पुं० दुष्ट उत्तर । बुरा जवाब ।

दुरुद्ध—वि० [सं०] १. जिसका निभाना कठिन हो । २. जिसे बहन न किया जा सके [को०] ।

दुरुधरा—संज्ञा स्त्री० [सं० दुरोधोरिया] वृद्धजातक के अनुसार जन्मकुहली का एक योग जिसमें अनफा और सुनफा दोनों योगों का मेल होता है ।

विशेष—जन्मकुहली में यदि सूर्य को छोड़कर कोई दूसरा ग्रह चंद्रमा से बारहवें घर में हो तो अनफा योग होता है और चंद्रमा से दूसरे घर में हो तो सुनफा योग होता है । जहाँ ये

दोनों योग हों वहाँ दुःधरा योग होता है । इस योग में जिसका जन्म होता है वह बड़ा भारी वक्ता, धनी, वीर और विख्यात पुरुष होता है ।

दुरुपयोग—संज्ञा पुं० [सं०] बुरा उपयोग । अनुपयुक्त, व्यवहार । किसी वस्तु को बुरी तरह काम में लाना । बुरा इस्तेमाल ।

दुरुपयोजन—संज्ञा पुं० [सं० दुर + उपयोजन] बुरे ढंग से व्यवहार में लाना । उपयोग करने का गलत या अनुचित ढंग ।

दुरुफ—संज्ञा पुं० [?] नीलकंठ ताजिक के अनुसार फनित ज्योतिष का एक योग ।

दुरुम—संज्ञा पुं० [क्रा०] एक प्रकार का गेहूँ जिसका दाना पतला और लंबा होता है ।

दुरुस्त—वि० [क्रा०] १. जो अच्छी दशा में हो । जो टूटा फूटा या बिगड़ा न हो । ठीक । जैसे, घड़ी दुरुस्त करना । २. जिसमें दोष या त्रुटि न हो । जिसमें ऐब न हो । ठीक । उ०—दुमरा मत बहुत दुरुस्त और ठीक तो है ।—भारतेंदु प्र०, भा० ३, पृ० ३७७ ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

मुद्गा—क्रि० को दुरा करना = (१) किसी की चाल सुधारना । (२) किसी को दंड देना ।

३. अचित । मुनासिब । ४. यथार्थ । वास्तविक । जैसे,—घापका कहना दुरुस्त है ।

दुरुस्तो—संज्ञा स्त्री० [क्रा०] सुधार । संशोधन ।

दुरुह—वि० [सं०] जो विचार या ऊहा में जल्दी न आ सके । जिसका जानना कठिन हो । समझ में न आने योग्य । गूढ़ । कठिन ।

दुरेत^२—वि० [द्वेष्ट] डका हुआ । भरा हुआ । पूर्ण । उ०—दुरित दुरेत अचेत प्रेत मति हतित पतित उद्धार ।—छीब०, पृ० ४ ।

दुरेफ^२—पञ्चा पुं० [सं० द्वि, प्रा० दु + सं० रेफ] दे० 'द्विरेफ' । उ०—मुरल मुख छवि पत्र शाखा हग दुरेफ चवचो ।—सूर (शब्द०) ।

दुरेषण—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'दुरीषणा' [को०] ।

दुरेफ^३—संज्ञा पुं० [सं० द्विरेफ] दे० 'द्विरेफ' । उ०—जया पंकज वै दुरेफे लुभाए । तथा साह बंध्यो सनेहं सुभाए ।—ह० रासो, पृ० ३४ ।

दुरोद्धर—संज्ञा पुं० [सं०] १. मुमारी । २. लूभा । ३. घूत कीड़ा । पाण कीड़ा । पासा मेलना ।

दुरौधा—संज्ञा पुं० [म० द्वारोद्ध] दरवाजे के ऊपर की लकड़ी । भरेठा ।

दुकुल^२—संज्ञा पुं० [सं० दुकुल] दे० 'दुकुल' । उ०—अमी विषह से मनह से लेह सोन करि यत्न । नीचह ते उत्तम गुनन दुकुल से तय रत्न ।—चाणक्य नीति (शब्द०) ।

दुर्गंध—संज्ञा स्त्री० [सं० दुर्गंध] बुरी गंध । बुरी महक । कुवास । सुगंध का उलटा ।

दुर्गंध^३—संज्ञा पुं० १. काला नमक । २. प्याज । ३. आम का पेड़ ।

दुर्गंध^१—वि० अशुचि गंधवाला । कुवास पुक्त । बुरी गंध का [को०] ।

दुर्गंधता—संज्ञा स्त्री० [सं० दुर्गन्धता] दुर्गंध का भाव ।

दुर्गंधि^१—संज्ञा स्त्री० [सं० दुर्गन्धि] दुर्गंध । बुरी गंध ।

दुर्गंधि^२—वि० [सं०] अशुचि गंध से युक्त [को०] ।

दुर्गा^१—वि० [सं०] १. जिसमें पहुँचना कठिन हो । जहाँ जाना सहज न हो । २. जिसका समझना कठिन हो । दुर्बोध ।

दुर्गा^२—संज्ञा पु० १. पत्थर आदि की चौड़ी दीवारों से घिरा हुआ वह स्थान जिसके भीतर राजा, सरदार और सेना के सिपाही आदि रहते हैं । गढ़ । कोट । किला ।

विशेष—ऋग्वेद तक में दुर्ग का उल्लेख है । दस्युओं के ६६ दुर्गों को इंद्र ने वध कर दिया था । मनु ने छह प्रकार के दुर्ग लिखे हैं—

(१) धनुदुर्ग, जिसके चारों ओर निर्जल प्रदेश हो, (२) महीदुर्ग, जिसके चारों ओर थड़ी मेढ़ी जमीन हो, (३) जलदुर्ग (धनुदुर्ग), जिसके चारों ओर जल हो, (४) वृक्षदुर्ग, जिसके चारों ओर घने वृक्ष हों, (५) नरदुर्ग जिसके चारों ओर सेना हो और (६) गिरिदुर्ग, जिसके चारों ओर पहाड़ हो या जो पहाड़ पर हो । महाभारत में युधिष्ठिर ने जब भीम से पूछा है कि राजा को कैसे पुर में रहना चाहिए तब भीम जी ने ये ही छह प्रकार के दुर्ग गिनाए हैं और कहा है कि पुर ऐसे ही दुर्गों के बीच में होना चाहिए । मनुस्मृति और महाभारत दोनों में कोष, सेना, भस्त्र, शिल्पी, ग्राहण, वाहन, तृण, जलाशय, अन्न इत्यादि का दुर्ग के भीतर रहना अत्यंत आवश्यक कहा गया है । अग्निपुराण, कालिकापुराण आदि में भी दुर्गों के उक्त छह भेद बतलाए गए हैं ।

२. एक असुर का नाम जिसे मारने के कारण देवी का नाम दुर्गा पड़ा । ३. विश्व का नाम [को०] । ४. गुग्गुलु [को०] । ५. एक पर्वत [को०] । ६. सैकरा मार्ग [को०] । ७. ऊबड़लाबड़ जमीन । ऊँची नीची भूमि [को०] । ८. यमदंड [को०] । ९. शोक । दुःख [को०] । १०. दुःकर्म [को०] । ११. सांसारिक बंधन [को०] । १२. नरक [को०] । १३. अयंकर विघ्न, व्याधि या अयाधि [को०] ।

दुर्गकर्म—संज्ञा पु० [सं० दुर्गकर्मन्] किला बनाने का काम ।

दुर्गकारक—संज्ञा पु० [सं०] १. दुर्ग बनानेवाला मनुष्य । २. एक वृक्ष का नाम ।

दुर्गकोषक—संज्ञा पु० [सं०] किले में बगावत फैलानेवाला विद्रोही ।

विशेष—चंद्रगुप्त के समय में इसे कपड़े में लपेटकर जीता जसा दिया जाता था ।

दुर्गल्लो—संज्ञा स्त्री० [सं०] दुर्गा ।

दुर्गच्छा—संज्ञा स्त्री० [सं०] जैन दर्शन में एक प्रकार का मोहनीय कर्म जिसके उदय से मलिन पदार्थों से स्वामि उत्पन्न होती है ।

दुर्गल—वि० [सं०] १. दुर्दशाग्रस्त । जिसकी बुरी गति हो । २. बरिद्र ।

दुर्गसंकर्म—संज्ञा पु० [सं०] कौटिल्य के अनुसार वह काम जो अकाल पड़ने पर पीड़ितों की सहायता के लिये राज्य की ओर से खोला जाय ।

दुर्गतरणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक देवी का नाम । सावित्री देवी । (महाभारत) ।

दुर्गसेतुकर्म—संज्ञा पु० [सं०] कौटिल्य के अनुसार दूटे हुए मकानों की मरम्मत का काम जो दुर्मित पीड़ितों की सहायता के लिये राज्य की ओर से खोला जाय ।

दुर्गति^१—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. बुरी गति । दुर्दशा । बुरा हाल । जितलत । जैसे,—(क) मरहट्टों ने गुलाम कादिर की बड़ी दुर्गति की; उसके नाक कान काटकर उसे पिजरा में बंद कर दिया ।—(शब्द०) । (ख) पानी बरस जाने से रास्ते में बड़ी दुर्गति हुई । २. वह दुर्दशा जो परलोक में हो । नरक ।

दुर्गति^२—संज्ञा स्त्री० [सं० दुः+गति] दुर्गम होने का भाव । दुर्गमता । उ०—दुर्गति दुर्गम ही जु कुटिल गति सरितन ही में ।—केशव (शब्द०) ।

दुर्गदानो—वि० पु० [सं०] दुर्गति देनेवाला । नरक भोग देनेवाला । उ०—विश्वगुप्त दुर्गदानो, सो येहि विधि जाता हो ।—चरम० पु० ५३ ।

दुर्गपति—संज्ञा पु० [सं०] गढ़ का अधीश्वर । दुर्ग का स्वामी या रक्षक [को०] ।

दुर्गपाल—संज्ञा पु० [सं०] गढ़ का रक्षक । किलेदार ।

दुर्गपुष्पी—संज्ञा पु० [सं०] एक वृक्ष का नाम । केमपुष्पा ।

दुर्गम^१—वि० [सं०] १. जहाँ जाना कठिन हो । जहाँ जल्दी पहुँच न सके । ओषट । उ०—दुर्गम दुर्ग पहार सँ मारे प्रचंड महा भुजदंड बने हैं ।—तुलसी (शब्द०) । २. जिसे जानना कठिन हो । जो जल्दी समझ में न आवे । दुर्जय । ३. कठिन । विकट । दुस्तर ।

दुर्गम^२—संज्ञा पु० १. गढ़ । दुर्ग । किला । २. विश्व । ३. वन । ४. संकट का स्थान । कठिन स्थिति । ५. एक असुर का नाम ।

दुर्गमता—संज्ञा स्त्री० [सं०] दुर्गम होने का भाव ।

दुर्गमनीय—वि० [सं०] जहाँ जाना कठिन हो । जिसके यहाँ तक जल्दी पहुँच न हो ।

दुर्गम्य—वि० [सं०] जहाँ जाना कठिन हो । उ०—दशाद्रव्य ग्रहसन दुर्गम्य आधिकार देणु ।—चण्डी, पु० ७७ ।

दुर्गरक्षक—संज्ञा पु० [सं०] किलेदार । गढ़पति ।

दुर्गलंघन—संज्ञा पु० [सं०] दुर्गलंघन] (रेतीले दुर्गम स्थानों को पार करनेवाला) ऊँट ।

दुर्गल—संज्ञा पु० [सं०] एक देश का नाम ।

दुर्गव्यसन—संज्ञा पु० [सं०] दुर्ग या किले का कमजोर हिस्सा या नुति [को०] ।

दुर्गसंचर—संज्ञा पु० [सं०] दुर्गसंचर] दुर्गम स्थानों तक पहुँचने का साधन । जैसे, सीढ़ी, पुल, बैरा इत्यादि ।

दुर्गसंचार—संज्ञा पु० [सं०] दुर्गसंचार] १० 'दुर्गसंचर' ।

दुर्गसंस्कार—संज्ञा पु० [सं०] प्राचीन दुर्ग की मरम्मत [को०] ।

दुर्गा—संज्ञा स्त्री० [सं०] आदि शक्ति । देवी ।

विशेष—युक्ल यजुर्वेद वाजसनेय संहिता में रुद्र की भगिनी अंबिका का उल्लेख इस प्रकार है—हे रुद्र ! अपनी भगिनी अंबिका के साथ हमारा दिया हुआ भाग ग्रहण करो। इससे जाना जाता है कि शत्रुओं के विनाश के लिये जिस प्रकार प्राचीन आर्यगण रुद्र नामक क्रूर देवता का स्मरण करते थे उसी प्रकार उनकी भगिनी अंबिका का भी करते थे। वैदिक काल में अंबिका रुद्र की भगिनी ही मानी जाती थी। तलवकार (केन) उपनिषद् में यह आख्यायिका है—एक बार देवताओं ने समझा कि विजय हमारी ही शक्ति से हुई है। इस भ्रम को मिटाने के लिये ब्रह्मा यक्ष के रूप में दिखाई पड़ा, पर देवताओं ने उसे पहचाना नहीं। हाल चाल लेने के लिये पहले अग्नि उसके पास गए। यक्ष ने पूछा 'तुम कौन हो ?' अग्नि ने कहा 'मैं अग्नि हूँ और सब कुछ भस्म कर सकता हूँ।' इसपर उस यक्ष ने एक तिनका रख दिया और कहा 'इसे भस्म करो'। अग्नि ने बहुत जोर मारा पर तिनका ज्यों का स्थो रहा। इसी प्रकार वायु देवता भी गए। वे भी उस तिनके को न उड़ा सके। तब सब देवताओं ने इंद्र से कहा कि इस यक्ष का पता लेना चाहिए कि यह कौन है। जब इंद्र गए तब वह संनर्षान हो गया। थोड़ी देर बीछे एक स्त्री प्रकट हो गई जो 'उमा हैमवती' देवी थी। इंद्र के पूछने पर उमा हैमवती ने बतलाया कि यक्ष ब्रह्मा था, उसकी विजय से तुम्हें महत्त्व मिला है। तब इंद्र आदिक देवताओं ने ब्रह्मा को जाना। अस्थ्यात्म पक्षवाले 'उमा हैमवती' से ब्रह्मा विद्या का ग्रहण करते हैं। तैत्तिरीय ब्राह्मण के एक मंत्र में 'दुर्गादेवीं शरणमह प्रपद्ये वाक्य आया है और एक स्थान पर गायत्री छंद का एक मंत्र है जिसे सायण ने 'दुर्गा गायत्री' कहा है। देवी भागवत में देवी की उत्पत्ति के संबंध में कथा इस प्रकार है—महिषासुर से परास्त होकर सब देवता ब्रह्मा के पास गए। ब्रह्मा शिव तथा देवताओं के साथ विष्णु के पास गए। विष्णु ने कहा कि महिषासुर के मारने का उपाय यही है कि सब देवता अपनी त्रिपुटियों से मिलकर अपना थोड़ा थोड़ा तेज निकालें। सबके तेज मग्नू से एक स्त्री निकलेगी जो उस असुर का वध करेगी। महिषासुर को वर था कि वह किसी पुरुष के हाथ से न मरेगा। विष्णु के आज्ञानुसार ब्रह्मा ने अपने मुँह से रक्त वर्ण का, शिव ने रौप्य वर्ण का विष्णु ने नील वर्ण का और इंद्र ने विचित्र वर्ण का, इसी प्रकार सब देवताओं ने अपना अपना तेज निकाला और एक तेजस्वरूपा देवी प्रकट हुई, जिसने उस असुर का संहार किया।

कालिकापुराण में लिखा है कि परब्रह्म के अंश स्वरूप ब्रह्मा, विष्णु और शिव हुए। ब्रह्मा और विष्णु ने तो सृष्टि स्थिति के लिये अपनी अपनी शक्ति को ग्रहण किया पर शिव ने शक्ति से संयोग न किया और वे योग में मग्न हो गए। ब्रह्मा आदि देवता इस बात के पीछे पड़े कि शिव भी किसी स्त्री का पालिशग्रहण करें। पर शिव के योग्य कोई स्त्री मिलती ही नहीं थी। बहुत सोच विचार के पीछे ब्रह्मा

ने दक्ष से कहा—'विष्णुमाया के अतिरिक्त और कोई स्त्री नहीं जो शिव को लुभा सके। अतः मैं उसकी स्तुति करता हूँ और तुम भी उसकी स्तुति करो कि वह तुम्हारी कन्या के रूप में तुम्हारे यहाँ जन्म ले और शिव की पत्नी हो।' वही विष्णु की माया दक्ष प्रजापति की कन्या सती हुई जिसने अपने रूप और तप के द्वारा शिव को मोहित और प्रसन्न किया। दक्षयज्ञ के विनाश के समय सती ने जब देहत्याग किया तब शिव ने बिलाप करते करते उनके शव को अपने कंधे पर लाद लिया। फिर ब्रह्मा, विष्णु और शनि ने सती के मृत शरीर में प्रवेश किया और वे उसे खंड खंड करके गिराने लगे। जहाँ जहाँ सती का अंग गिरा वहाँ वही देवी का स्थान या पीठ हुआ। जब देवताओं ने महामाया की बहुत स्तुति की तब वे शिव के शरीर से निकलीं और शिव का मोह दूर हुआ और वे फिर योगसमाधि में मग्न हुए। इधर हिमालय की भार्या मेनका, संतति की कामना से बहुत दिनों से महामाया का पूजन करती थी। महामाया ने प्रसन्न होकर मेनका की कन्या होकर जन्म लिया और शिव से विवाह किया। भार्कंडेय पुराण में चंडी देवी द्वारा शुभ निशुंभ के वध की कथा लिखी है। जिसका पाठ चंडीपाठ या दुर्गापाठ के नाम से प्रसिद्ध है और सब जगह होता है। काशी खंड में लिखा है कि रुद्र के पुत्र दुर्ग नामक महादेश ने जब देवताओं को बहुत तंग किया तब वे शिव के पास गए। शिव ने असुर को मारने के लिये देवी को भेजा।

पर्याय—प्राद्याशक्ति। उमा। कात्यायनी। गौरी। काली। हैमवती। ईश्वरी। शिवा। भवानी। उद्याणी। भवानी। कल्याणी। अपर्णा। पार्वती। मृडाणी। चंडिका। अंबिका। शारदा। चंडी। गिरिजा। मंगला। नारायणी। महामाया। वैष्णवी। हिंडी। कोट्टी। लच्छी। माधवी। जयंती। भागवती। रंभा। सती। आमरी। दक्षकन्या। महिषमर्दिनी। हरंबजननी। सावित्री। कृष्णपिगला। शूलधरा। भगवती। ईशानो। सनातनी। महाकाशी। शिवानी। चामुंडा। विद्यावती। ध्यानदा। महामाया। भोमी। कृष्णा। चार्तंगी। बाणी। फासुनी। मानुका। तारा। कालिका। कामेश्वरी। भैरवी। भुवनेश्वरी। त्वरिता। महालक्ष्मी। वागेश्वरी। त्रिपुरा। ज्वालामुखी। बलामुखी। अक्षपूणी। अन्नदा। विद्यालक्ष्मी। सुभगा। सगुणा। धवला। पोरा। प्रेमा। वटेश्वरी। कीर्तिदा। तुमुला। कामरूपा। जंजली। मोहनी। शांता। वेदमाता। त्रिपुरसुंदरी। तापिनी। चित्रा। अर्जता इत्यादि, इत्यादि।

२. नीली। नील का पोषा। ३. अपराजिता। कोबाठोटी। ४. श्यामा पक्षी। ५. नी वष की कन्या। ६. एक रागिनी जो गौरी, माधवी, सारंग, और लीलावती के योग से बनी है।

दुर्गाद, दुर्गाध—वि० [सं०] जिसकी खोज बोन कठिन हो। दुर्गाध। जिसे पहचाना न जा सके। जो भ्रमया जाने लायक न हो। दुःखगण [को०]।

दुर्गाधिकारी—संज्ञा पु० [सं० दुर्गाधिकारिन्] गढ़ का अधिपति । किलेदार ।

दुर्गाध्यक्ष—संज्ञा पु० [सं०] गढ़ का प्रधान । किलेदार ।

दुर्गानवमी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. कार्तिक शुक्ल नवमी । इस दिन जगन्नाथी का पूजन होता है । २. चैत्र शुक्ल नवमी । ३. आश्विन शुक्ल नवमी ।

दुर्गापाश्रयाभूमि—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह भूमि जिसमें किले हों अर्थात् जो सेना रखने के उपयोगी हो ।

विशेष—कौटिल्य ने लिखा है कि राज्य करने के लिये यदि एक ओर अच्छे किलेवाली जमीन हो और दूसरी ओर पानी आबादीवाली जमीन तो पानी आबादीवाली जमीन को ही पसंद करना चाहिए, क्योंकि मनुष्यों पर ही राज्य होता है, न कि जमीन पर । जनशून्य भूमि से राज्य को आसानी नहीं हो सकती । पानी आबादीवाली भूमि को, आणव्य ने पुरुषापाश्रया भूमि लिखा है ।

दुर्गा पूजा—संज्ञा स्त्री० [सं०] आश्विन नवरात्र में होनेवाला दुर्गा जी का पूजनोत्सव । बंगाल की ओर यह एक प्रधान पर्व के रूप में मनाया जाता है ।

दुर्गाष्टमी—संज्ञा स्त्री० [सं०] आश्विन शुक्ल और चैत्र शुक्ल पक्ष की अष्टमी ।

दुर्गाह—वि० [सं०] जिसका अग्रगहन करना कठिन हो ।

दुर्गाह—संज्ञा पु० [सं०] भूमि गूगल ।

दुर्गुण—संज्ञा पु० [सं०] दुर्ग गुण । दोष । ऐव । बुराई ।

दुर्गेश—संज्ञा पु० [सं०] दुर्गाध्यक्ष । दुर्गरक्षक । किलेदार ।

दुर्गात्सव—संज्ञा पु० [सं०] दुर्गापूजा का उत्सव जो नवरात्र में होता है । दुर्गापूजा ।

दुर्मेह^१—वि० [सं०] १. जिसे कठिनता से पकड़ सकें । जो जल्दी से पकड़ में न आवे । २. जो कठिनता से समझ में आवे । दुर्ज्ञेय । ३. जिसे जीतना कठिन हो । दुर्जय (को०) ।

दुर्मेह^२—संज्ञा पु० १. अपामार्ग । बिचड़ी । २. बुरा ग्रह । कुपह (को०) । ३. अनुचित धाग्रह । बुरा धाग्रह (को०) ।

दुर्मेहा—संज्ञा स्त्री० [सं०] अपामार्ग । बिचड़ा (को०) ।

दुर्मीह—वि० [सं०] जो आसानी से पकड़ में न आए (को०) ।

दुर्घट—वि० [सं०] १. जिसका होना कठिन हो । कष्टसाध्य । मुश्किल से होने लायक । २. जिसका होना संभव न हो । असंभव (को०) ।

दुर्घटना—संज्ञा स्त्री० [पु०] १. अशुभ घटना । ऐसा व्यापार जिससे हानि या दुःख पहुँचे । ऐसी बात जिसके होने से बहुत कष्ट, पीड़ा या शोक हो । बुरा संयोग । बारदात । जैसे,—नदी का पुल टूट गया, इस दुर्घटना से बहुत हानि पहुँची । २. विपद् । आफत । आपत्ति ।

दुर्घटक—संज्ञा पु० [सं०] १. वह जो विश्वास करने लायक न हो । २. वह जो शीघ्र किसी पर विश्वास न करे (को०) ।

दुर्घोष^१—वि० [सं०] जो दुर्ग स्वर निकाले । जो कटु या कंकण ध्वनि करे ।

दुर्घोष^२—संज्ञा पु० १. भान्न । २. जोरों की चिल्लाहट । कर्णकटु शब्द या आवाज (को०) ।

दुर्जन—संज्ञा पु० [सं०] दुष्ट जन । खल । खोटा घादमी । उ०—
दुर्जन वचन सुनत दुख जैमों । बाण लगे दुख होइ न तैसों ।
—सूर (शब्द०) ।

दुर्जनता—संज्ञा स्त्री० [सं०] दुष्टता । खोटायन ।

दुर्जय^१—वि० [सं०] जिसे जीतना कठिन हो । जो जल्दी जीता न जा सके । उ०—पूर्व पुण्य के शय होने तक रापी भी तो दुर्जय है । —माकेत, पृ० ३८० ।

दुर्जय^२—१. त्रिगुण । २. कर्मपुराण के अनुसार कार्तवीर्य वंश में उत्पन्न अर्जुन राजा का एक पुत्र । ३. एक राक्षस का नाम ।

दुर्जयता—वि० [सं०] कठिनता से विजय पाने का भाव । अविजयता । उ०—प्राणवधूटी ! अंतर की दुर्जयता तुमने छूटी ।
—विश्व०, पृ० ३८ ।

दुर्जयन्युह—संज्ञा पु० [सं०] कौटिल्य के अनुसार बड़ ब्यूह जिसमें गना चार पंक्तियों में खड़ी की जाय ।

दुर्जर—वि० [सं०] जो कठिनता से पके । जो पकाने से जल्दी न पके । जिसका परिचाय करता कठिन हो ।

दुर्जरा—संज्ञा स्त्री० [सं०] ज्योतिषमयी पता । मालकौंगनी ।

दुर्जात^१—वि० [सं०] १. जिसका जन्म बुरी रीति से हुआ हो । २. जिसका जन्म व्यर्थ हुआ हो । ३. नीच । कमीना । ४. अभागा । भाग्यहीन ।

दुर्जात^२—संज्ञा पु० १. व्यसन । २. असमंजस । कठिनता । संकट ।

दुर्जाति^१—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. बुरी जाति । नीच जाति । २. अभाग्य । दुर्भाग्य । बुरी स्थिति (को०) ।

दुर्जानि^२—वि० १. बुरे कुन का । २. जिसकी जाति बिगड़ गई हो । ३. दुःस्वभाव । बुरे स्वभाव का । नीच । बुरा (को०) ।

दुर्जीव^१—वि० [सं०] हमारे के लिए अन्न पर रहनेवाला । बुरी जीविका करनेवाला ।

दुर्जीव^२—संज्ञा पु० बुरा जीवन । निन्दित जीवन ।

दुर्जय^३—वि० [सं०] जिसे जीतना अत्यंत कठिन हो । दुर्जय ।

दुर्ज्ञान—वि० [सं०] १० 'दुर्ज्ञेय' (को०) ।

दुर्ज्ञेय^१—वि० [सं०] कठिनाई से ज्ञापने योग्य । जिसे जानना अत्यंत कठिन हो । जो जल्दी समझ में न आ सके । दुर्धर्ष । उ०—
यम लेती दशक को वह दुर्ज्ञेय दया की भूखी चितवन ।
भूल रहा उस छायापट में युग युग का अर्जर जनजीवन
—आम्य, पृ० २४ ।

दुर्ज्ञेय^२—संज्ञा पु० शिव का एक नाम (को०) ।

दुर्दृष्ट—वि० [सं० दुर्दृष्ट] दुष्ट । प्रबल । जिसे कठिनाई से दंड दिया जा सके । उ०—ईशों का दुर्दृष्ट दुराचारियों की दृष्टि में --- ।—प्रेमचन्द०, भा० २, पृ० १७४ ।

दुर्धम^१—वि० [सं०] १. जिसका दमन बड़ी कठिनाई में हो सके। जो जल्दी दबाया या जीता न जा सके। २. प्रबल। प्रबल।

दुर्धम^२—संज्ञा पुं० रोहिणी के गर्भ से उत्पन्न वसुदेव के एक पुत्र का नाम।

दुर्धमता—संज्ञा स्त्री० [सं०] अदम्यता। प्रबलता। उ०—उसकी दुर्धमता में तुम भी, अपने स्वर की गूँज मिलाना। यह बीपक जो मैंने बाला, तुम भी इसमें अपने स्वर का स्नेह जलाना।—दी० ज०, पृ० १७८।

दुर्धमन^१—वि० [सं०] जिसका दमन करना बहुत कठिन हो।

दुर्धमन^२—संज्ञा पुं० जनमेजय के वंश में उत्पन्न शतानीक राजा का पुत्र।

दुर्धमनीय—वि० [सं०] १. जिसका दमन करना बहुत कठिन हो। जो जल्दी दबाया या जीता न जा सके। २. प्रबल। उ०—विश्व यह दूसरा जहाँ भोजन भरा, रूप की प्रतिकरा हुई दुर्धमनीय।—आराधना, पृ० ७६।

दुर्धम्य^१—वि० [सं०] ३० 'दुर्धम'।

दुर्धम्य^२—संज्ञा पुं० गाय का बछड़ा।

दुर्धर^१—वि० [सं० दुर्धर] ३० 'दुर्धर'।

दुर्धर^२—वि० [सं०] १. जिसे देखना अत्यंत कठिन हो। जो जल्दी दिखाई न पड़े। २. जो देखने में भयंकर हो।

दुर्धरान^१—वि० [सं०] ३० 'दुर्धर'।

दुर्धरान^२—संज्ञा पुं० कौरवों का एक सेनापति।

दुर्धरा—संज्ञा स्त्री० [सं०] बुरी दशा। मंद अवस्था। दुर्गति। खराब हालत।

क्रि० प्र०—करना। होना।

दुर्धात^१—वि० [सं० दुर्धात] १. दुर्धमनीय। २. प्रबल। प्रबल।

दुर्धात^२—संज्ञा पुं० १. गाय का बछड़ा। २. ऋग्वेद। कलह। ३. शिव।

दुर्धान—संज्ञा पुं० १. [?] ऊँचा। खड़ी।—अनेकार्थ (जन्म)।

दुर्दिन—संज्ञा पुं० [सं०] १. बुरा दिन। २. ऐसा दिन जिसमें बाढ़ल छाए हों, पानी बरसता हो और घर से निकलना कठिन हो। मेघाच्छन्न दिन। ३. दुर्दशा का समय। दुःख और कष्ट का समय। बुरा नक्त। ४. घन। अंधकार। सूचीभेद्य अंधकार (को०)। ५. वृष्टि। वर्षा (को०)। ६. किसी वस्तु की बीछार या झड़ी (को०)।

दुर्दिवस—संज्ञा पुं० [सं०] ३० 'दुर्दिन'। उ०—दुर्दिन भानि बितावत दुर्दिवस बे सुकृती सुख के भवन।—ब्रज प्र०, पृ० १०२।

दुर्दुष्ट, दुर्दुष्ट—संज्ञा पुं० [सं०] नास्तिक।

दुर्दृष्ट—वि० [सं०] जिसे देखना कष्टकर हो। अप्रियदर्शन (को०)।

दुर्दृष्ट—वि० [सं०] (व्यवहार) जिसका रोग, लोभ आदि के कारण सम्यक् निर्णय न हुआ हो। (मुकुटमा) जिसका घूम, अदा-वत आदि के कारण ठीक फैसला न हुआ हो।

विशेष—याज्ञवल्क्य स्मृति में लिखा है कि ऐसे मुकुटमा को राजा

फिर से देखे और यदि अन्याय हुआ हो तो निर्णय करनेवाले सम्मो (न्यायाधीश आदि) और मुकुटमा जीतनेवालों को उसका दूना दंड दे जितना हारनेवालों को अन्याय से हुआ हो।

दुर्देव—संज्ञा पुं० [सं०] १. दुर्भाग्य। अभाग्य, बुरी किसमत। २. बुरा संयोग। दिनों का बुरा फेर।

दुर्द्धर^१—वि० [सं०] १. जिसे कठिनाई से पकड़ सकें। जो जल्दी पकड़ में न आ सके। २. प्रबल। प्रबल। ३. जो कठिनता से समझ में आवे।

दुर्द्धर^२—संज्ञा पुं० १. एक नरक का नाम। २. पारा। ३. मिलावा। भस्मातक। ४. महिषासुर का एक सेनापति। ५. शंबरासुर के एक मंत्री का नाम। धृतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम। ७. रावण का एक सैनिक जिसे उसने अशोकवाटिका उखाड़ने पर हनुमान को पकड़ने के लिये भेजा था। यह राक्षस हनुमान के हाथ से मारा गया। ८. विष्णु।

दुर्द्धर्ष^१—वि० [सं०] १. जिसका दमन करना कठिन हो। जिसे जल्दी वश में न ला सकें। जिसे अधीन न कर सकें। २. जिसे परास्त करना कठिन हो। ३. प्रबल। प्रबल। उ०।

दुर्द्धर्ष^२—संज्ञा पुं० १. धृतराष्ट्र के पुत्र का नाम। २. रावण के दल का एक राक्षस।

दुर्द्धर्षा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. नागदीना। २. कंवारी का पेड़।

दुर्द्धर्षा—वि० [सं०] बुरी बुद्धि का। मंदबुद्धि।

दुर्द्धर्षा—संज्ञा पुं० [सं०] वह शिष्य जो गुरु की बात जल्दी न माने।

दुर्द्धर्षा—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक सता का नाम।

दुर्द्धर्म—संज्ञा पुं० [सं०] हरिष्यलाडु। हरा व्याज।

दुर्द्धर—वि० [सं०] ३० 'दुर्द्धर'। मैं कब कहता हूँ जग मेरी दुर्द्धर गति के अनुकूल बने।—इत्यलम्, पृ० १३६।

दुर्नय—संज्ञा पुं० [सं०] १. दुर्नीति। बुरी नीति। नीतिविरुद्ध आचरण। २. अन्याय।

दुर्नाद^१—संज्ञा पुं० [सं०] बुरा शब्द। अप्रिय ध्वनि।

दुर्नाद^२—वि० कंकल ध्वनि करनेवाला।

दुर्नाद^३—संज्ञा पुं० राक्षस। उ०—कौन्प अक्षय, पुन्य जन निकषासुत दुर्नाद।—अनेकार्थ, पृ० ८४।

दुर्नाम—संज्ञा पुं० [सं० दुर्नाम] १. बुरा नाम। कुख्याति। बदनामी। २. गाली। बुरा वचन। ३. बवासीर। ४. शक्ति। सीप। सुतही।

दुर्नामक—संज्ञा पुं० [सं०] अक्षर रोग। बवासीर।

दुर्नामा^१—संज्ञा पुं० [सं० दुर्नाम] ३० 'दुर्नाम'।

दुर्नामा^२—वि० कुख्यात। बदनाम (को०)।

दुर्नामारि—संज्ञा पुं० [सं०] (अक्षर रोग को दूर करनेवाला) सुरन।

दुर्नाम्नी—संज्ञा स्त्री० [सं०] शक्ति। सीप। सुतही।

दुर्निग्रह—वि० [सं०] जिसपर निग्रह न किया जा सके। जिसपर काबू पाना कठिन हो (को०)।

दुर्निमित्त—संज्ञा पुं० [सं०] होनेवाले अशुभ को सूचित करनेवाला अशुभ। बुरा सङ्ग।

दुर्निरीक्ष—वि० [सं०] १. जिसे देखते न बने । २. भयंकर । ३. क्रूर ।
दुर्निरीक्ष्य—वि० [सं०] १. जिसे देखते न बने । २. भयंकर । ३. क्रूर ।

दुर्निवार—वि० [सं०] ३० 'दुर्निवार्य' [को०] ।

दुर्निवार्य—वि० [सं०] १. जिसका निवारण करना कठिन हो । जो जल्द रोका न जा सके । जो जल्दी हटाया न जा सके । जिसे जल्दी दूर न कर सकें । ३. जिसका होना प्रायः निश्चित हो । जो जल्दी टल न सके ।

दुर्नीति—संज्ञा पुं० [सं०] १. अनुचित कर्म । बुरा कर्म । २. अभाग्य । दुर्भाग्य [को०] ।

दुर्नीति—वि० १. नीति को न माननेवाला । २. बुरी नीति का । अनैतिक [को०] ।

दुर्नीति—संज्ञा स्त्री० [सं०] कुनीति । कुचाल । अन्याय । अयुक्त साधारण ।

दुर्म्यस्त—वि० [सं०] ठीक ढंग से न रखा हुआ । अनुपयुक्त क्रम में रखा हुआ [को०] ।

दुर्बल—वि० [सं०] १. जिसे अच्छा बल न हो । कमजोर । अशक्त । २. कमजोर । दुबला पतला । ३. शिथिल । थका हुआ [को०] । ४. हलका । छोटा । साधारण [को०] ।

दुर्बलता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. बल की कमी । कमजोरी । २. कमजोरी । दुबलापन । शीथिल्य । थकावट । शिथिलता ।

दुर्बला—संज्ञा स्त्री० [सं०] अक्षयिरीस का पेड़ ।

दुर्बाध—वि० [सं०] अनिवार । दुर्निवार्य [को०] ।

दुर्बाध—संज्ञा पुं० [सं०] १. जिसके कमरे पर रोग हों और बाल ऋग्ण हों । गंजा । २. जिसके केश घुंघरासे हों [को०] ।

दुर्बुध—वि० [सं०] कमजोर बुद्धिवाला । सिद्धी [को०] ।

दुर्बाध—वि० [सं०] जिसका बोध कठिनता से हो । जो जल्दी न समझ में आवे । गूढ़ । क्लिष्ट । कठिन ।

दुर्बोध—वि० [सं०] ३० 'दुर्बोध' ।

दुर्बोधता—संज्ञा स्त्री० [सं०] समझ में न आने की क्षमता । दुर्बोध होने का भाव । उ०—प्रतिपाद्य प्रकरण की दुर्बोधता के कारण साधारण पाठक उसे समझ नहीं पाता ।—श्री०, पृ० १० ।

दुर्बल—वि० [सं०] १. जिसे जाना कठिन हो । जो जल्दी न साया जा सके । २. जाने में बुरा ।

दुर्बल—संज्ञा पुं० वह समय जिसमें भोजन कठिनता से मिले । दुर्बल । अकाल ।

दुर्बल(पुं०)—संज्ञा पुं० [सं० दुर्बल] भोजन की कहत । अकाल । दुर्बल । उ०—जन हरिया उन देखे बारी मास सुकाल । भूख तृषा नहि व्यापई दुर्बल पड़े न कास ।—राम० चर्म०, पृ० १२ ।

दुर्भग—वि० [सं०] [वि० स्त्री० दुर्भगा] जिसका भाग बुरा हो । छोटे भाग्य का । अभाग ।

दुर्भगा—वि० स्त्री० [सं०] मंद भाग्यवादी । अभाग्य ।

दुर्भगा—संज्ञा स्त्री० १. वह स्त्री जो अपने पति के स्नेह से वंचित हो । वह स्त्री जिसे स्वामी न चाहे । विरक्ता । २. बुरे स्वभाव की । कर्कशा । भगदालू [को०] । ३. विधवा [को०] ।

दुर्भर—वि० [सं०] १. जिसे उठाना कठिन हो । जो सादा न जा सके । २. भारी । गुरु । बजनी ।

दुर्भाग—संज्ञा पुं० [सं० दुर्भाग्य] ३० 'दुर्भाग्य' ।

दुर्भागी—वि० [सं० दुर्भाग्य] अभाग । मंद भाग्य का ।

दुर्भाग्य—संज्ञा पुं० [सं०] मंद भाग्य । बुरा अदृष्ट । छोटी किस्मत ।

दुर्भाव—संज्ञा पुं० [सं०] बुरा भाव । २. द्वेष । मनमोटाव । मनो-मालिन्य ।

दुर्भावना—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. बुरी भावना । २. अटका । बिता । अशेष ।

दुर्भाष्य—वि० [सं०] जिसको भावना सहज में न हो सके । जो जल्दी ध्यान में न आ सके ।

दुर्भिक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] ऐसा समय जिसमें भिक्षा या भोजन कठिनता से मिले । अकाल । कहत ।

दुर्भिक्ष(पुं०)—संज्ञा पुं० [सं० दुर्भिक्ष] ३० 'दुर्भिक्ष' ।

दुर्भिद—वि० [सं०] ३० 'दुर्भिद' [को०] ।

दुर्भिद—वि० [सं०] १. जो जल्दी भेदा न जा सके । जो कठिनता से छिदे । २. जिसके पार कठिनता से जा सकें । जिसे जल्दी पार न कर सकें ।

दुर्भेद्य—वि० [सं०] ३० 'दुर्भेद्य' ।

दुर्भृत्य—संज्ञा पुं० [सं०] बुरा नौकर जो आजा का यथावत् पालन न करे । दुष्ट सेवक [को०] ।

दुर्मकु—वि० [सं० दुर्मकु] आजा का पालन न करनेवाला [को०] ।

दुर्मन्त्र—संज्ञा पुं० [सं० दुर्मन्त्र] बुरी सलाह । कुमन्त्र । अहितकर शपथ या संमति [को०] ।

दुर्मन्त्रणा—संज्ञा स्त्री० [सं० दुर्मन्त्रणा] ३० 'दुर्मन्त्र' [को०] ।

दुर्मन्त्र—संज्ञा पुं० [सं० दुर्मन्त्र] ३० 'दुर्मन्त्र' । उ०—दुर्मन्त्र डार तहँ प्राति घनि छाया, पंखो बसेरा लेई रे ।—कबीर ज०, भा० २, पृ० ६८ ।

यो०—दुर्मात्रि ।

दुर्मति—संज्ञा स्त्री० [सं०] बुरी बुद्धि । कुमति । नासमझी ।

दुर्मति—वि० १. दुर्बुद्धि । जिसकी समझ ठीक न हो । कम अकल । २. बुरा । दुष्ट ।

दुर्मति—संज्ञा पुं० [सं०] आठ भवत्सरो में से एक जिसमें दुर्भिक्ष होता है । (ज्योतिस्तत्त्व) ।

दुर्मद—वि० [सं०] १. उन्मत्त । नष्टे प्रादि में बुरा । उ०—कुंभकरन दुर्मद रत्नरंभा ।—तुलसी (सब्द०) । २. अभिमान में बुरा । गर्व से भरा हुआ ।

दुर्मना—वि० [सं० दुर्मनस्] १. बुरे वित्त का । दुष्ट । २. उदास । शिथिल । अनमना ।

दुर्मनुष्य—वि० [सं०] बुरा व्यक्ति । छोटा व्यक्ति [को०] ।

दुर्मेर—वि० [सं०] जिसकी मृत्यु बड़े कष्ट से हो।

दुर्मेरण—संज्ञा पुं० [सं०] बुरे प्रकार से होनेवाली मृत्यु।

दुर्मेरा—संज्ञा स्त्री० [सं०] दुर्वा। दूब।

दुर्मर्प—वि० [सं०] जिसे सहन करना कठिन हो। दुःसह।

दुर्मर्पण^३—संज्ञा पुं० [सं०] विषणु का एक नाम [को०]।

दुर्मर्पण^२—वि० दे० 'दुर्मर्प'।

दुर्मल्लिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] द्रव्य काव्य के अंतर्गत उपरूपकों में से एक, जिसमें हास्यरस प्रधान होता है।

विशेष—यह चार अंकों में समाप्त होता है। इसमें गभीर नहीं होते। इसके तीन अंकों में क्रमशः बिट, विदूषक, पीठमदं आदि की विविध कीड़ाएँ रहती हैं।

दुर्मली—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'दुर्मल्लिका'।

दुर्मावलि(पुं०)—संज्ञा पुं० [सं०] दुर्मावलि] बाग। उपवन। उ०—एह कनि दुर्मावलि गुनभली। धनबन भाँति बचन फल फली।—चित्रा०, पृ० १२।

दुर्मित्र—वि० [सं०] १. दुर्मित्र। दष्ट मित्र। २. शत्रु। दुश्मन [को०]।

दुर्मिल—संज्ञा पुं० [सं०] १. भरत के मातृव लङ्के का नाम। २. एक छंद जिसके प्रत्येक चरण में १०, ८ और १४ के विराम से ३२ मात्राएँ होती हैं। अतः यह एक सगुण और दो गुरु होते हैं। इसमें जगण का नियम है। जैसे—जय जय रघुनंदन धनुष-विश्वदन, कुलमंडन यश के धारी। जनमन सुखकारी, विपिन-विहारो, नारि महिषहि सी शरी। ३. एक वर्णवृत्त जिसके प्रत्येक चरण में आठ गण होते हैं। यह एक प्रकार का सवैया है। जैसे,—सबसो करि नेह भवे रघुनंदन राजत हीरन माल हिये।

दुर्मिल^२—वि० [सं०] १. जिसे प्राप्त करना कठिन हो। कठिना से मिलनेवाला दुर्लभ। उ०—दुर्मिल जो कुछ अमिल मिल मिलकर हुआ आलस्य।—अनंता, पृ० १०। २. जो मिल न हो। अनमिल।

दुर्मुख—संज्ञा पुं० [सं०] १. घोड़ा। २. राम की सेना का एक बंदर। ३. महिषासुर के एक सेनापति का नाम। ४. रामचंद्र जी का एक गुप्तचर जिसके द्वारा वे अपनी प्रजा का वृत्तान्त जाना करते थे। इसी के मुँह से उन्होंने सीता का वह वृत्तान्त सुना था जिसके कारण सीता का द्वितीय अवतार हुआ था (उत्तर-रामचरित)। ५. एक नाम का नाम। ६. शिव। ७. धृतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम। ८. नरक के जिसका द्वार उत्तर की ओर हो। ९. साठ संवत्सरो में से एक। १०. एक यज्ञ का नाम। ११. गणेश जी का एक नाम। १२. रावण की सेना का एक राजन उ०—दुर्मुख गुरगुरु मनुज महारो।—मानस, ६। ६१।

दुर्मुख^२—वि० [सं०] स्त्री० दुर्मुखी] १. त्रयका मुख बुरा हो। (अकल मुख का। नदसूरत)। २. बुरे वचन बोलेवाला। कटुभाषी। अप्रियवादी।

दुर्मुखी—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक राजसी जिसे रावण ने जानकी को समझाने के लिये नियत किया था।

दुर्मुखी^३—वि० बुरे मुँहवाली।

दुर्मुट—वि० [हि०] दे० 'दुर्मुख'।

दुर्मुख^४—संज्ञा पुं० [सं०] दुर् (प्रत्यय) + मुख (कृता)] गदा के आकार का एक लंबा डंडा जिसके नीचे लोहे या पत्थर का भारी गोल टुकड़ा रहता है और जिससे सड़कों आदि पर कंकड़ या गिट्टी पीटकर बैठाई जाती है। कंकड़ या गिट्टी पीटने का मुखदर।

दुर्मुखी^५—संज्ञा पुं० [सं०] अशुभ मूर्त। बुरी साइत [को०]।

दुर्मुख्य—वि० [सं०] जिसका दाम अधिक हो। महंगा।

दुर्मुख्यता—संज्ञा स्त्री० [सं०] बहुमुख्य होने का भाव। महार्घता। दामोपन। उ०—इससे साहित्य का सम्मान होता है या साहित्य की दुर्मुख्यता प्रमाणित होती है।—सं० दर्शन, पृ० ४६।

दुर्मय—वि० [सं०] दुर्मयस्] संदुर्बुद्धि। नासमझ।

दुर्मधा—वि० [सं०] दुर्मधस्] दुर्बुद्धि। मूर्ख [को०]।

दुर्माह—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० दुर्माहा] १. कौवाठोड़ी। २. सफेद घुँघनी।

दुर्यश—संज्ञा पुं० [सं०] दुर्यशस्] अपयश। अपकीर्ति।

दुर्याग—संज्ञा पुं० [सं०] १. बुरा योग। दुर्भाग्यमूक योग। २. मेल न खाता दूषा। अनमेल स्त्री।

दुर्याध—वि० [सं०] जो बड़ी बड़ी कठिनाइयों को सहकर भी युद्ध में रिपर रहे। विकट लड़ाका।

दुर्याधन—संज्ञा पुं० [सं०] कुशवंशीय राजा धृतराष्ट्र के १०१ पुत्रों में ज्येष्ठ पुत्र का नाम।

विशेष—यह अपने चचेरे भाई पांडवों से बहुत बुरा मानता था। सबसे अधिक द्वेष यह भीम से रखता था। बात यह थी कि भीम के समान दुर्योधन भी गदा चलाने में अत्यंत निपुण था, पर वह भीम की बराबरी नहीं कर सकता था। पहले धृतराष्ट्र युधिष्ठिर का ही सब में बड़ा समझ युवराज बनाना चाहते थे, पर दुर्योधन ने बहुत आपत्ति की और छल से पांडवों को वन में भेज दिया। बनवास से लौटकर पांडवों ने इंद्रप्रस्थ में अपनी राजधानी बसाई और युधिष्ठिर ने वृषधाम से राजसूय यज्ञ किया। उस यज्ञ में पांडवों का भारी वेसव देख दुर्योधन जल उठा और उनके नाश का उपाय सोचने लगा। अंत में उसने युधिष्ठिर को अपने साथ पासा खेलने के लिये बुलाया। उस खेल में दुर्योधन के मामा गांधार के राजकुमार शकुनि के छल और कौशल से युधिष्ठिर अपना सारा राज्य और वन यहाँ तक कि द्रोपदी को भी हार गए। दुःशासन द्रोपदी को बलात् सभा में लाया और दुर्योधन उसे अपने जेबे पर बैठने के लिये कहने लगा। इसपर भीम ने अपनी गदा से दुर्योधन के जेबे को तोड़ने की प्रतिज्ञा की। अंत में छूत के नियमानुसार धृतराष्ट्र ने यह निर्णय किया कि पांडव चारह वर्ष बनवास और एक वर्ष अज्ञातवास करें। जब अज्ञातवास पूरा हो गया तब कृष्ण दूत होकर कौरवों के पास पांडवों की ओर से गए। पर

दुर्योधन ने पांडवों को राज्य का अंश क्या, पाँच गाँव तक देना अस्वीकार कर दिया। अंत में कुक्षेत्र का प्रसिद्ध युद्ध हुआ जिसमें कौरव मारे गए और भीम ने अपनी प्रतिज्ञा पूरी की। दुर्योधन को मुषिष्ठिर 'सुर्योधन' कहा करते थे।

दुर्योधन^२—वि० [सं०] ३० 'दुर्योध'।

दुर्योधनता—संज्ञा स्त्री० [सं०] अपराजेय होने का भाव। दुर्योध होने का भाव [को०]।

दुर्योनि—वि० [सं०] जिसका जन्म नीच कुल में हो। नीच कुल का।

दुर—संज्ञा पुं० [सं०] १. भोती। उ०—के दरनक में ज्यूँ अमोलक रतन। सदन में के ज्यूँ है ओ दुरे भदन।—दक्खिनी०, पृ० १५०। २. एक कण भूषण।

दुरी—संज्ञा पुं० [फ्रा०] कोड़ा। चाबुक। घुरी।

दुरीनी—संज्ञा पुं० [फ्रा०] अफगानी की एक जाति।

दुर्लभ्य—वि० [सं० दुर्लभ्य] दुःख से उत्लंघन करने योग्य। जिसे जल्दी लाँच न सके। उ०—अधिकार के प्रागे एक दुर्लभ्य प्रश्नवाचक लगा हुआ है।—अपरा भू०, पृ० ३।

दुर्लभ्य^१—वि० [सं०] जो कठिनता से दितलार्द पड़े। 'जो प्रायः अलभ्य हो।

दुर्लभ्य^२—संज्ञा पुं० बुरा उद्देश्य। बुरी नियत।

दुर्लभ्यी—वि० [सं० दुर्लभ्यिन् ?] कठिन लक्ष्य का भेदन करनेवाला। उ०—आहत पोछे हटे, स्तंभ से टिककर मनु ने, श्वास लिया टंकार किया दुर्लभ्यी धनु ने।—कामायनी, पृ० २००।

दुर्लभ^१—वि० [सं०] १. जो कठिनता से मिल सके। जिसे पाना सहज न हो। दुष्प्राप्य। २. अनोखा। बहुत बढ़िया। ३. प्रिय।

दुर्लभ^२—संज्ञा पुं० १. कपूर। २. विष्णु।

दुर्ललित—वि० [सं०] दुमर से बिगड़ा हुआ। मटलट। गारती। उ०—उठती अंतस्तल से सदैव दुर्ललित लालसा हो कि कांत। वह इन्चाप सा झिलझिल हो दब जाती अपने आप गांत।—कामायनी, पृ० १३६

दुर्ललित^२—संज्ञा पुं० शरारतीपन [को०]।

दुर्लभ्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. बुरा लेख। २. दुर्भाग्य का लेख। उ०—विधि के इस दुर्लभ्य को अपनी भाँखों में देखते देखकर जीना भारी हो जाता है।—सुलदा, पृ० ६।

दुर्लभ्य^३—वि० [सं०] जो बुरा लिखा हुआ हो। जो ऐसा लिखा हो कि जल्दी पढ़ा न जा सके। (स्मृति)।

दुर्लभ्य^४—संज्ञा पुं० जासी कागज पत्र [को०]।

दुर्लभ्य^५—वि० [सं०] १. जो दुःख से कहा जा सके। जिसके कहने में कष्ट हो। २. जो कठिनता से कहा जा सके।

दुर्लभ्य^६—संज्ञा पुं० दुर्वचन। गाली।

दुर्लभ्य^७—संज्ञा पुं० [सं०] दुर्वच्य। कटुवचन। गाली। उ०—कहि दुर्लभ्य कटु दसकंधर।—मानस, ६।६०।

दुर्लभ्य^८—संज्ञा पुं० [सं० दुर्वचस्] कटुवचन बोलनेवाला। कटुभाषी। कटुवादी [को०]।

दुर्लभ्य^९—संज्ञा पुं० [सं०] १. बुरा अक्षर। २. चाँदी। रजत। ३. मिश्र। मिलावट। ४. कुष्ठ का एक भेद। श्वेत कुष्ठ [को०]।

दुर्लभ्य^{१०}—वि० बुरे वर्ण या रंगवाला [को०]।

दुर्लभ्य^{११}—संज्ञा स्त्री० [सं०] चाँदी। एलुवा।

दुर्लभ्य^{१२}—वि० [सं०] जहाँ रहना या ठिकना कष्टकर हो [को०]।

दुर्लभ्य^{१३}—संज्ञा स्त्री० [सं०] बुरा निवास। रहने का कष्टदायक स्थान या बत्ती [को०]।

दुर्लभ्य^{१४}—वि० [सं०] १. जिसका बहन या धारण करना कठिन हो। जैसे, दुर्लभ्य गर्भ। २. जिसे चलना कठिन हो।

दुर्लभ्य^{१५}—संज्ञा स्त्री० [सं०] बुरा वचन। निदित वाक्य।

दुर्लभ्य^{१६}—अपवाद बोलनेवाला। बुरी बातें बकनेवाला [को०]।

दुर्लभ्य^{१७}—संज्ञा पुं० [सं०] ३० 'दुर्वचन'। उ०—उससे भी अधिक दुर्लभ्यों और कटुभाषण के.....।—अभयन, भा० २, पृ० ३००।

दुर्लभ्य^{१८}—संज्ञा पुं० [सं०] १. अपवाद। निदा। बदनामी। २. स्तुति-पूर्वक कहा हुआ अप्रिय वाक्य। ३. अनुचित, अयुक्त या निदित विवाद।

दुर्लभ्य^{१९}—वि० [सं० दुर्वादिन्] कुतर्की। दुर्जती। दुर्वाद करनेवाला।

दुर्लभ्य^{२०}—वि० [सं०] जिसका निवारण कठिन हो। जो जल्दी रोक न जा सके।

दुर्लभ्य^{२१}—वि० [सं०] ३० 'दुर्वाय' [को०]।

दुर्लभ्य^{२२}—संज्ञा पुं० [सं०] कंबोज देश का एक वीर जो महाभारत की लड़ाई में लड़ा था।

दुर्लभ्य^{२३}—वि० [सं०] जिसका निवारण कठिन हो। जो जल्दी रोक न जा सके।

दुर्लभ्य^{२४}—संज्ञा स्त्री० [सं०] बुरी इच्छा या खोटी आकांक्षा। दुष्ट कामना। उ०—दुष्टता दमन दमभवन दुःखोषहर दुर्लभ्य-सना नासकर्ता।—तुलसी, अं० पृ० ४८६। २. ऐसी कामना जो कभी पूरी न हो सके। उ०—दुर्लभ्यना कुमुद समुदाई।—मानस, ३।३८।

दुर्लभ्य^{२५}—संज्ञा पुं० [सं० दुर्वासस्] एक मुनि जो अग्नि के पुत्र थे।

विशेष—इनके नाम के विषय में महाभारत में लिखा है कि जिसका घर्म में रक्त निश्चय हो उसे दुर्लभ्य कहते हैं। ये अत्यंत क्रोधी थे। इन्होंने अग्नि मुनि की कन्या कंदला से विवाह किया था। विवाह के समय इन्होंने प्रतिज्ञा की थी कि स्त्री के सी अपराध क्षमा करेंगे। प्रतिज्ञानुसार इन्होंने सी अपराध तक क्षमा किए, अनंतर शाप देकर पत्नी को भस्म कर दिया। अग्नि मुनि ने कन्या के शाप से शोकातुर होकर शाप दिया कि तुम्हारा वंश वृणं होगा। इसी शाप के कारण राजा अंबरीष के मामले में इन्हें नीचा देखना पड़ा। इनका स्वभाव कुछ सनकी था। इनके शाप तथा बददान की अनेक कथाएँ महाभारत तथा पुराणादि में भरी पड़ी हैं।

दुर्लभ्य^{२६}—संज्ञा पुं० [सं०] दुर्बल बोध। भारी बोझ [को०]।

दुर्बिगाह—वि० [सं०] जिसका व्यवहार कठिन हो । जिसकी बाह जल्दी न लगे ।

दुर्बिगाह—वि० [सं०] १० 'दुर्बिगाह' (को०) ।

दुर्बिज्ञेय—वि० [सं०] जिसका कष्ट या कठिनता से ज्ञान हो सके । जो जल्दी जाना न जा सके ।

दुर्बिद—वि० [सं०] जिसे जानना कठिन हो । जो जल्दी जाना न जा सके ।

दुर्बिदग्ध—वि० [सं०] १. जो अच्छी तरह जला न हो । प्रथमजला । २. जो पूर्ण परिपक्व न हो । साधारण जानकारी से गविष्ठ । ३. अहंकारी । घमंडी ।

दुर्बिदग्धता—संज्ञा स्त्री० [सं०] अधकचरापन । पूरी निपुणता का अभाव ।

दुर्बिध—वि० [सं०] १. दरिद्र । २. खल । मूर्ख ।

दुर्बिधि^१—संज्ञा स्त्री० [सं०] बुरी विधि । कुनियम ।

दुर्बिधि^२—संज्ञा पुं० दुर्भाग्य ।

दुर्बिनय—संज्ञा स्त्री० [सं०] अविनय । अदृष्ट्य । उद्दंडता (को०) ।

दुर्बिनोत—वि० [सं०] अविनीत । अगिष्ठ । उद्धत । अशुद्ध ।

दुर्बिपाक—संज्ञा पुं० [सं०] १. बुरा परिणाम । बुरा फल । २. बुरा संयोग । दण्डना ।

दुर्बिभाष्य—वि० [सं०] जिसकी भावना न हो सके । जो मन में न आवे । जिनका अनुमान न हो सके ।

दुर्बिलसित—संज्ञा पुं० [सं०] दुःकाय ।

दुर्बिवाह—संज्ञा पुं० [सं०] बुरा व्याह । निहित विवाह ।

विशेष—स्मृतियों में जो साठ प्रकार के विवाह कहे गए हैं उनमें ब्रह्म आदि चार प्रकार के विवाह सुविवाह और असुर आदि चार प्रकार के विवाह दुर्विवाह कहलाते हैं ।

दुर्बिष^१—संज्ञा पुं० [सं०] महादेव (जिनपर विष का कुछ प्रभाव न हुआ ।)

दुर्बिष^२—वि० [सं०] बुरे स्वभाव का । दुष्ट (को०) ।

दुर्बिषह^१—वि० [सं०] जिसे सहना कठिन हो । दुःसह ।

दुर्बिषह^२—संज्ञा पुं० १. महादेव । शिव । २. धृतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम ।

दुर्बिद्य—वि० [सं०] जो दुःख या कठिनता से दिखाई दे । उ०—
नाना काक उलूक आदि रव से हो प्रायशः पूरिता । देतो
है बन को भयानक बना दुर्बिद्य वृक्षावली ।—पारिजात
पृ० ८५ ।

दुर्बुध^१—वि० [सं०] जिसका आचरण बुरा हो ।—दुश्चरित्र ।
दुराचारी ।

दुर्बुध^२—संज्ञा पुं० बुरा आचरण । बुरा व्यवहार ।

दुर्बुध्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. बुरी बुद्धि । बुरा पेशा । बुरा काम ।
उ०—सेवा समान प्रति दुष्टतर दुःखदाई । दुर्बुध्ति और
अवलोकन में न आई ।—द्विवेदी (शब्द०) २. खल ।
जाल फरेब । धोखा (को०) । ३. खराब आचरण । अनुचित
व्यवहार । दुराचरण (को०) ।

दुर्बुध्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. यथावश्यक वर्षा का अभाव । २.
सूखा । अनाहुति (को०) ।

दुर्वेद—वि० [सं०] १. वेदाध्ययन से विमुख ब्राह्मण । २. जो
कठिनाई से समझ में आवे । दुर्बोध्य (को०) ।

दुर्व्यवस्था—संज्ञा स्त्री० [सं०] कुप्रबंध । बदरतजामी ।

दुर्व्यवहार—संज्ञा पुं० [सं०] १. बुरा व्यवहार । बुरा बतवि ।
२. दुष्ट आचरण । ३. वह मुकदमा जिसका फैसला घूस भादि
के कारण ठीक न हुआ हो । ४. 'दुष्ट' ।

दुर्व्यसन—संज्ञा पुं० [सं०] बुरी सत । खराब आदतें । किसी ऐसी
बात का अभ्यास जिससे कोई लाभ न हो ।

दुर्व्यसनी—वि० [सं०] दुर्व्यसनिन् । बुरी सतवाला ।

दुर्व्रत^१—संज्ञा पुं० [सं०] बुरा मनोरथ । नीच आशय ।

दुर्व्रत^२—वि० १. जिसने बुरा व्रत लिया हो । बुरे मनोरथवाला ।
नीचाशय । २. आदेश न माननेवाला । आज्ञा पालन न करने-
वाला (को०) ।

दुर्हृद^१—वि० [सं०] १० 'दुर्हृदय' (को०) ।

दुर्हृद^२—संज्ञा पुं० [सं०] दुर्हृद सो सुहृद न हो । अमित्र । शत्रु ।

दुर्हृदय—वि० [सं०] कुटिल हृदय का । कुटिल । खोटा (को०) ।

दुर्हृषीक—वि० [सं०] अजितेन्द्रिय । दुर्बल इन्द्रियवाला ।

दुलक्षी—संज्ञा स्त्री० [हि०] दलकना । बोड़े की एक चाल जिसमें वह
चारों पेर धलग धलग उठाकर कुछ उछलता हुआ चलता है ।

क्रि० प्र०—चलना ।—जाना ।

दुलक्षना—क्रि० प्र० [हि०] दो + लक्षण । बार बार बतलाना ।
बार बार कहना । बार बार दोहराना ।

दुलखा—संज्ञा स्त्री० [हि०] एक कतिगा जो ज्वार, नील, तमाकू,
सरसों और गेहूँ को नुकसान पहुंचाता है ।

दुलड़ा^१—वि० [हि०] दो + लड़ । [वि० स्त्री०] दुलड़ी । दो लड़ों का ।

दुलड़ा^२—संज्ञा पुं० दो लड़ों की माला ।

दुलड़ी—संज्ञा स्त्री० [हि०] दो + लड़ । दो लड़ों की माला ।

दुलत्तो—संज्ञा स्त्री० [हि०] दो + लात । १. बोड़े आदि चीथियों का
पिछने दोनों पैरों को उठाकर लात मारना ।

क्रि० प्र०—चलना ।—मारना ।

मुहा०—दुलत्तो छोटना या भाड़ना = दोनों लातों को चलाना ।
दोनों लातों से मारना । दुलत्तो फेंकना = दोनों लात चलाना ।

२. मानसंब की एक कसरत जिसमें दोनों पैरों को मालसंब से
धलग दिखाकर ताल आदि ठोकते हैं ।

दुलदुल—संज्ञा पुं० [प्र०] वह खन्चरी जिसे इसकंदरिया (मिर्ज) के
हार्किम ने मुहम्मद साहब को नजर में दिया था ।

विशेष—साधारण लोग इसे छोड़ा समझते हैं और मुहरंम के
दिनों में इसकी नकल निकालते हैं । मुहरंम की आठवीं को
अन्वास के नाम का और नवीं को हुसैन के नाम का बिना
सवार का छोड़ा भीड़भाड़ के साथ निकाला जाता है ।

दुलना—संज्ञा पुं० [सं० दोलन] दे० 'दोलन' । उ०—सूर स्वयं सरोज-
लोचन दुलन जन जल चार ।—सूर (शब्द०) ।

दुलना—क्रि० प्र० [सं० दोलना] दे० 'दुलना' ।

दुलभ^७—वि० [सं० दुर्लभ] दे० 'दुर्लभ' ।

दुलारा—वि० [हि० दुलार] दे० 'दुलारा' ।

दुलारना^७—क्रि० प्र० [हि० दुलारना] लाड़ करना । बच्चों
को बहुलाकर प्यार करना । उ०—ग्रह लागी मोको
दुलारवन प्रेम करति तरि ऐसी ही । सुनहु सूर तुमरे छित
छित मति बड़ी प्रेम की गैसी हो ।—सूर (शब्द०) ।

दुलारना^१—क्रि० प्र० दुलारे बच्चों की सी चेष्टा करना । लाड़
प्यार का सा व्यवहार करना ।

दुलारी—संज्ञा स्त्री० [हि० दु + लर] दे० 'दुलड़ी' । उ०—फूलन की
दुलरी, हुमेल हार फूलन के, फूलन की चंपमाल, फूलन गजरा
री ।—नंद० प्र०, पृ० ३८० ।

दुलारवां—वि०, संज्ञा पुं० [हि० दुलारा + उवा (प्रत्य०)] दे० 'दुलारा' ।

दुलह^१—संज्ञा पुं० [हि० दुलहा] १. दे० 'दुल्हा' (लाक्ष०) । २. जीव ।
उ०—दुलह घर में नहीं दुलहिन भौवरि फिरे ।—कबीर दे०,
पृ० २६ ।

दुलह^७—वि० [सं० दुर्लभ] दे० 'दुर्लभ' ।

दुलहन—संज्ञा स्त्री० [हि० दुलहा] नवविवाहिता बधू । नई बहू । नई
व्याही हुई स्त्री ।

दुलहा—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'दुल्हा' ।

दुलहिन—संज्ञा स्त्री० [हि० दुलहा] दे० 'दुलहन' । उ०—दुलह घर
में नहीं दुलहिन भौवरि फिरे । प्रजब अचरज का खेल बूझै ।
—कबीर दे०, पृ० २६ ।

दुलहिनी, दुलहिनी—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'दुलहन' । उ०—तिहि
छिन दुलहिनि दसा भई जो बरनि न जाई ।—नंद० प्र०,
पृ० २१० ।

दुलहिया—संज्ञा स्त्री० [हि० दुलही + दया (प्रत्य०)] दे० 'दुलहन' ।
उ०—देह दुलहिया की बड़ी ज्यों ज्यों जीवन जोति ।—
बिहारी (शब्द०) ।

दुलही—संज्ञा स्त्री० [हि० दुलहा] दे० 'दुलहन' ।

दुलहेटा—संज्ञा पुं० [सं० दुर्लभ, प्रा० दुल्लह + हि० चेटा] दुलारा
लाड़का । लाड़ला बेटा । उ०—युग युग जियहि राज दुलहेटा
दै बसीस द्विजवारी । पाइ भील से सील जाइ घर कोंउ
आवती सुबारी ।—रघुराज (शब्द०) ।

दुलाई—संज्ञा स्त्री० [सं० तूल (= रुई) हि० लाई (प्रत्य०), हि०
तुलाई, तुराई] ओढ़ने का दोहरा कपड़ा जिसके भीतर रुई
भरी हो । रुई भरा हुआ ओढ़ना ।

दुलाना—क्रि० प्र० [सं० दोलन] दे० 'दुलाना' । उ०—पदिमिनि
कहुँ जब गोन दुलावे । तब संपट बलि बैठि न आवे ।—नंद०
प्र०, पृ० ११२ ।

दुलार—संज्ञा पुं० [हि० दुलारना] प्रसन्न करने की बहू चेष्टा जो
प्रेम के कारण लोग बच्चों या प्रेमपात्रों के साथ करते हैं ।
वैसे, कुछ बिलक्षण संबोधनों से पुकारना, शरीर पर हाथ

केटना, चूमना इत्यादि । लाड़ प्यार ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

दुलारना—क्रि० प्र० [सं० दुलारिन, प्रा० दुल्लाइन] प्रेम के
कारण बच्चों या प्रेमपात्रों को प्रसन्न करने के लिये उनके
साथ अनेक प्रकार की चेष्टा करना । वैसे, बिलक्षण संबोधनों
से पुकारना, शरीर पर हाथ फेरना, चूमना, इत्यादि । लाड़
करना । लाड़ना ।

दुलारा^१—वि० [हि० दुलार] [वि० स्त्री० दुलारी] जिसका बहुत
दुलार या लाड़ प्यार हो । लाड़ला । वैसे, दुलारा लड़का ।

दुलारा^२—संज्ञा पुं० लाड़ला बेटा । प्रिय पुत्र । उ०—रोकत मन घाज
सखी नंद को दुलारो ।—सूर (शब्द०) ।

दुलारी^१—वि० स्त्री० [हि० दुलारा] जिसका अधिक लाड़ प्यार
हो । लाड़ली ।

दुलारी^२—संज्ञा स्त्री० लाड़ली बेटा । प्रिय कन्या । उ०—सखियन संग
भूलति धृषभानु की दुलारी ।—सूर (शब्द०) ।

दुलारी^३—संज्ञा स्त्री० [हि० तुराई] दे० 'दुलाई' । उ०—इती बात
को समुझि ले तू अपने मन बाल । प्रीति दुलारी खुलत है लहि
के मगजी लाल ।—रसनिधि (शब्द०) ।

दुलाही—संज्ञा पुं० [दे०] जवाना । हिमवा ।

दुली—संज्ञा स्त्री० [सं०] छोटी कच्छपी । कच्छपी [को०] ।

दुलीचा—संज्ञा पुं० [दे०] गलीचा । कालोन । उ०—गान दुलीचा
भारि बिछावो, नाम के तकिया भरब लगावो ।—बरन०,
पृ० ७४ ।

दुलीची—संज्ञा स्त्री० [दे०] दे० 'दुलीचा' । उ०—मेवदंड पर डार
दुलीची जोमिन तारी लाया ।—कबीर श०, भा० १, पृ० २६ ।

दुलेहटा^१—संज्ञा पुं० [हि० दुलहा] दे० 'दुलहेटा' ।

दुलेचा—संज्ञा पुं० [दे०] गलीचा कालोन ।

दुलोही—संज्ञा स्त्री० [हि० दो + लोहा] एक प्रकार की तलवार जो
लोहे के दो टुकड़ों को जोड़कर बनाई जाती है ।

दुल्लभ^७—वि० [सं० दुर्लभ, प्रा० दुल्लभ] दे० 'दुर्लभ' ।

दुल्लह^७—संज्ञा पुं० [हि० दुलहा] दे० 'दुल्हा' । उ०—प्रबं दुल्लह
दुल्लह तब कहेऊ । दुलहिनि दिल में मनस, भेऊ ।—सं०
दरिया०, पृ० १ ।

दुल्ला—संज्ञा पुं० [दे०] एक पोधा ।

दुल्ली—संज्ञा स्त्री० [हि० दुल्लो] दे० 'दुल्लो' ।

दुल्लीच—संज्ञा पुं० [दे०] दुलीचा । कालोन । गलीचा । उ०—
देसम मिलम दुल्लीच मदि । जिन जोति होति दुति चिन
चंडि ।—पृ० रा०, १४ । ३६ ।

दुल्लो—संज्ञा स्त्री० [हि० दो + ला (प्रत्य०)] गोली के खेल में वह
गोली जो मीर या अगली गोली के पीछे हो । दूसरे नंबर की
गोली ।

दुल्हेया—संज्ञा स्त्री० [हि० दुल्हा + ऐया (प्रत्य०)] दे० 'दुलहन' ।
उ०—नयो नेह, नयो मेह, नई भूमि हरियारी । नवल दूल्हा
प्यारो, नवल दुल्हेया ।—नंद० प्र०, पृ० १७३ ।

दुप④—[सं० द्वि] दो ।

दुषन—संज्ञा पुं० [सं० दुर्मेनस्] १. दुष्ट चित्त का मनुष्य । खल । दुर्जन । बुरा आदमी । उ०—कै धपनी दुर्मेनि कै दवन कूरता मानि । आवे उर में सोच धनि मो मंका पहिचानि ।—पद्माकर (शब्द०) । २. शत्रु । वैरी । दुश्मन । उ०—मतिराम मुखस दिन दिन बढ़त सुनत दवन उर कटियत ।—मतिराम (शब्द०) । ३. राक्षस । दैत्य । उ०—(क) धारज सुवन को तो दया दवनहु पर मोहि सोच मोते सब विधि नसानि ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) पयज बंधाय सेन उतरे कटक कलि धाप देखि देखि दूत दागन दवन के ।—तुलसी (शब्द०) ।

दुषरवा—संज्ञा पुं० [सं० द्वार] द्वार । दरवाजा । उ०—जाके दुषरवा जमिरया सो कैसे सोइल हो ।—धरम०, पृ० ६२ ।

दुषा④—संज्ञा स्त्री० [सं० दुषा] दे० 'दुषा' । उ०—तू लीन्हें मन धालसि दवा । धौ जुग सारि चहनि पुनि छुवा ।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० ३३२ ।

दुषाज संज्ञा पुं० [?] एक प्रकार का घोड़ा । उ०—नुकरा और दवाज बोरता है छवि दूनी ।—सूदन (शब्द०) ।

दुषादस④—वि० [सं० द्वादश] दे० 'द्वादश' ।

दुषादस बानी④—वि० [सं० द्वादश (= सूर्य) + वार्त्ता] बारह बानी का । सूर्य के समान दमकता हुआ । आभायुक्त । खरा । (विशेषतः सोने के लिये) । उ०—कनक द्वादस बानि है वह सुहाग नह माँग । सेवा करे नखत समि तरह उर्वै जस माँग ।—जायसी (शब्द०) ।

दुषादसी④—संज्ञा स्त्री० [सं० द्वादशी] दे० 'द्वादशी' ।

दुषारी—संज्ञा पुं० [सं० द्वार] [भी दुषारी] दे० 'द्वार' । उ०—खोजि लीन्ह मो सरग दुषारी । वज्र जो मूँटे जाह नधारी ।—पदमावत, पृ० २२५ ।

दुषारिका—संज्ञा स्त्री० [सं० द्वारिका] दे० 'द्वारका पुरी' ।

दुषाल—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. चमड़े का तसमा । २. रिकाब का तसमा । रिकाब में लगा हुआ चमड़े का चौड़ा कौता ।

दुषालबंद—संज्ञा पुं० [सं०] चमड़े का चौड़ा तसमा जो ऊपर आदि में लपेटा जाय । चपरास या पेटी का तसमा ।

दुषाली—संज्ञा स्त्री० [सं०] रंगे या सड़े हुए कपड़े पर चमक लाने के लिये घोटने का औजार । घोट ।

दुषाली^२—संज्ञा स्त्री० [सं०] दुषाली चमड़े के छोड़े तसमों का पगल्ला या पेटी जिसमें बंदूक, तपवार आदि भटकते हैं ।

दुषालीबंद—संज्ञा पुं० [सं०] परगल्ला आदि वगैरे हुए पैयार मिषाही ।

दुषाह—वि० [हि०] १. दे० 'दुषाह' । २. (अस्त्री) जो दा बार जोती गई हो ।

दुषिद④—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'द्विदि' ।

दुषिया—संज्ञा पुं० [हि० दुषया] दे० 'दुषया' ।

दुषी, दुषी④—वि० [हि०] दुष (= दो) + उ (= ही) दोनों ।

उ०—दुषी सबति चट्टि लाट बईठी । धौ सिवलोक परा तिन्ह मोठी ।—बायसी ग्रं० पृ० २६६ ।

दुशमन—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'दुश्मन' । उ०—याम छवि निरखि नागरि नारि । प्यारी छवि निरखत मनमोहन सकत न नैन पसारि । पिय सकुचत नहि दिष्टि भिलावत सन्मुख होत लजात । श्रीराविका निडर भवलोक्त प्रतिहि हृदय हरलात । धरस परस मोहनि मोहन मिलि मंग गोपी गोपाल । सुरदाम प्रभु सब गुण लायक दुश्मन के उर साल ।—मूर (शब्द०) ।

दुशवार—वि० [सं०] [संज्ञा दुशवारी] १. कठिन । दुरूह । मुश्किल । २. दुःसह ।

दुशवारी—संज्ञा स्त्री० [सं०] कठिनता ।

दुशाला—संज्ञा पुं० [सं० द्विशाट, सं० दोशाला] पशमीने की चद्दरों का जोड़ा जिनके किनारे पर पशमीने की रंग बिरंगी बेलें बनी रहती हैं । ये बहुधा कश्मीर और पेशावर से आती हैं । कश्मीरी दुशाले अच्छे और कीमती होते हैं । उ०—तान तुक-ताला हैं विनोद के रसाला हैं, सुवाला हैं बुधाला हैं, विशाला चित्रशाला हैं ।—पद्माकर (शब्द०) ।

यौ०—दुशालापोश । दुशालाफरोश ।

मुहा०—दुशाले में लपेटकर मारना या लगाना = धाड़े हाथ लेना । छिपे छिपे आक्षेप करना । भीठी चुटकी लेना ।

दुशालापोश—वि० [सं०] १. जो दुशाला ओढ़े हो । २. जो अच्छा कपड़ा पहने हुए हो । ३. अमीर ।

दुशालाफरोश—संज्ञा पुं० [सं०] दुशाला बेचनेवाला ।

दुशासन④—संज्ञा पुं० [सं० दुःशासन] दे० 'दुःशासन' ।

दुश्चर—वि० [सं०] [संज्ञा दुश्चरण] जिसका करना कठिन हो । कठिन । दुरूह ।

दुश्चरित^१—वि० [सं०] १. बुरे आचरण का । बदचलन । २. कठिन ।

दुश्चरित^२—संज्ञा पुं० १. बुरा आचरण । कुचाल । बदचलनी । २. पाप ।

दुश्चरित्र—वि० [सं०] [वि० स्त्री० दुश्चरित्रा] बुरे चरित्रवाला । बदचलन ।

दुश्चरित्र^२—संज्ञा पुं० बुरी चाल । कुचाल । दुराचार ।

दुश्चर्मा—संज्ञा पुं० [सं० दुश्चर्मन्] वह पुरुष जिसकी मियेंद्रिय के मुख पर दाकनेवाला चमड़ा न हो ।

विशेष—इस प्रकार के लोग जन्म से ही बिना चमड़े के होते हैं । धर्मशास्त्रों का मत है कि गुरुतल्पज जन्मांतर में दुश्चर्मा उत्पन्न होते हैं । ऐसे पुरुषों को बिना प्रायश्चित्त किए कोई काम करने का अधिकार नहीं है, यहाँ तक कि बिना प्रायश्चित्त किए उनका वह कर्म और मृतक कर्म भी नहीं किया जा सकता ।

दुश्चलन—संज्ञा स्त्री० [सं० दुः + हि० चलन] दुराचरण । खोटी चाल । उ०—जिस मनुष्य के स्वरूप से दुश्चलन धनवा दुराचरण की आशंका पाई जाय उसका निरीक्षण पूर्णतया हो ।—वेनिस का बाँका (शब्द०) ।

दुश्चित्य—वि० [सं० दुश्चित्य] जो कठिनता से समझ में आवे । जिसकी भावना मन में जल्दी न हो सके ।

दुरिचकिस्स—वि० [सं०] दुरिचकिस्स्य । जिसकी चिकित्सा कठिन हो ।
दुरिचकिस्सा—संज्ञा स्त्री० [सं०] आयुर्वेद संबंधी चिकित्सा के नियमों के विरुद्ध चिकित्सा करना । निन्दित चिकित्सा ।

विशेष—स्मृतियों में इस प्रकार के अनाड़ी या दुष्ट चिकित्सकों के दंड का विधान है ।

दुरिचकिस्सित—वि० [सं०] जिसकी चिकित्सा बड़ी कठिनाई से हो सकः । जो चिकित्सनीय न हो । दुःसाध्य (रोग) ।

दुरिचकिस्स्य—वि० [सं०] १. जिसकी चिकित्सा कठिनाई से हो सके । जिसकी दवा जल्दी न हो सके । दुःसाध्य । २. जिसकी चिकित्सा हो न सके । असाध्य ।

दुरिचक्य—संज्ञा पुं० [सं०] फलित ज्योतिष के अनुसार जन्म से तीसरा स्थान ।

दुरिचत्—संज्ञा पुं० [सं०] १. लटका । चिता । घासंका । २. चबराहट । उद्विग्नता ।

दुर्येष्टा—संज्ञा स्त्री० [सं०] [संज्ञा पुं० दुर्येष्टित] बुरा काम । कुचेष्टा ।
दुर्येष्टित—संज्ञा पुं० [सं०] १. दुष्कर्म । पाप । २. नीच काम । छोटा काम ।

दुर्ययवन^१—वि० [सं०] जो जल्दी मृत न हो सके । जो जल्दी विचलित न हो ।

दुर्ययवन^२—संज्ञा पुं० इंद्र ।

दुर्ययाव^१—वि० [सं०] जो जल्दी मृत न किया जा सके ।

दुर्ययाव^२—संज्ञा पुं० शिव । महादेव ।

दुरमन—संज्ञा पुं० [क्रा०] [भाव० दुरमनी] शत्रु । वैरी । द्वेषी ।

दुरमनी—संज्ञा स्त्री० [क्रा०] वैर । शत्रुता । विरोध ।

दुरवार—वि० [क्रा०] मुश्किल । कठिन । दुस्तर । उ०—जिसका बहिष्कार अब एक प्रकार से दुस्वार है ।—प्रेमचन्द०, भा० २, पृ० ३८७ ।

दुष्कर—वि० [सं०] जिसे करना कठिन हो । दुःसाध्य । जो मुश्किल से हो सके ।

दुष्कर^२—संज्ञा पुं० आकाश ।

दुष्कर्ण—संज्ञा पुं० [सं०] वृत्तराष्ट्र के एक पुत्र का नाम ।

दुष्कर्म—संज्ञा पुं० [सं०] दुष्कर्मन्] बुरा काम करनेवाला । पापी । कुकर्मी ।

दुष्कर्मा—वि० [सं०] दुष्कर्मन्] दे० 'दुष्कर्मी' ।

दुष्कर्मी—वि० [सं०] दुष्कर्म + ई (प्रत्य०)] बुरा काम करनेवाला । पापी । दुराचारी ।

दुष्कर्मी—संज्ञा पुं० पापी । उ०—तुमने अपने को बहुत से दुष्कर्मियों का अवलम्ब बना रखा है ।—वेनिस का बाँका (लब्द०) ।

दुष्काश—संज्ञा पुं० [सं०] १. बुरा वक्ता । कुसमय । २. दुर्भिक्ष । अकाल । ३. महादेव । ४. प्रलय (की०) ।

दुष्कीर्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] कुकीर्ति । अप्रशस्ति । बदनामी ।

दुष्कुल^१—संज्ञा पुं० [सं०] नीच कुल । बुरा ज्ञानदान । अप्रतिष्ठित घराना ।

दुष्कुल^२—वि० नीच कुल का । तुच्छ घराने का ।

दुष्कुलीन—वि० [सं०] नीच कुल का । तुच्छ घराने का ।

दुष्कुलेय—वि० [सं०] दे० 'दुष्कुलीन' ।

दुष्कृत—संज्ञा पुं० [सं०] पाप । बुरा कर्म (की०)

दुष्कृति^१—संज्ञा स्त्री० [सं०] बुरा कर्म । कुकर्म ।

दुष्कृति^२—वि० [सं०] कुकर्मी । पापी ।

दुष्कृती—वि० [सं०] दुष्कृतिन्] बुरा काम करनेवाला । कुकर्मी । पापी ।

दुष्कर्म—संज्ञा पुं० [सं०] १. भ्रामक कर्म । अनुचित कर्म । २. साहित्य में क्रमबद्ध नामक दोष (की०) ।

दुष्कील—वि० [सं०] मोल लेने में जिसका धाम उचित से अधिक दिया गया हो । महंगा ।

दुष्कृष्ट^१—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'दुःख' । उ०—हिम दुष्कृष्ट वैराग मेदिनी—कीर्ति०, ५९ ।

दुष्कृष्टि—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का खैर जिसका पेड़ छोटा होता है । इसका कण्डा पीला और खाने में कटुता और कसैला होता है । इसे धुइ खदिर भी कहते हैं ।

पर्या०—कांजीजी । काजस्कंद । गोरट । अमरज । पत्रतट । बहुसार । महासार । धुइ खदिर ।

दुष्ट^१—वि० [सं०] [वि० स्त्री० दुष्टा] १. दूषित । दोषग्रस्त । जिसमें दोष हो । जिसमें नुकस या ऐव हो । २. पित्त आदि दोष युक्त । ३. दुर्जन । खल । दुराचारी । पापी । लोटा । ४. न्याय में हेतु, अर्थविचार आदि दोषों से युक्त (की०) । ५. छिन्न । नुटित (की०) । ६. बेकार का । निकम्मा (की०) । ७. अपराधी । दोषी । पापी (की०) ।

दुष्ट^२—संज्ञा पुं० १. कुष्ट । कोढ़ । २. पाप । अपराध । दोष (की०) ।

दुष्टचारी—वि० [सं०] दुष्टचारिन्] [वि० स्त्री० दुष्टचारिणी] १. दुराचारी । बुरा आचरण करनेवाला । २. दुर्जन । खल ।

दुष्टचेता—वि० [सं०] दुष्टचेतन्] १. बुरी चिन्ता करनेवाला । बुरे विचार का । २. बुरा चाहनेवाला । अहिताकांक्षी । ३. कपटी ।

दुष्टता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. दोष । नुकस । ऐव । २. बुराई । खराबी । ३. बदमाशी । दुर्जनता ।

दुष्टत्व—संज्ञा पुं० [सं०] दुर्जनता । लोटाई ।

दुष्टधी—वि० [सं०] छली । कपटाचारी । लोटा (की०) ।

दुष्टपना—संज्ञा पुं० [हि०] दुष्ट + पन (प्रत्य०)] दुष्टता । लोटाई । उ०—रे सठ रह न राज मेरे में । है धति दुष्टपनो तेरे में ।—गोपाल (लब्द०) ।

दुष्टपार्श्विमाह—वि० [सं०] (सेना) जिसके पीछे की सेना दुष्ट हो ।

दुष्टबुद्धि—वि० [सं०] दे० 'दुष्टधी' (की०) ।

दुष्टलागल—संज्ञा पुं० [सं० दुष्टलाङ्गल] चंद्रमा की प्राकृति के एक रूप का नाम (को०) ।

दुष्टवृष—संज्ञा पुं० [सं०] गरियार बैल । पुरुवा बैल । वह बैल जो स्वस्थ होते हुए भी काम से जो चुराए ।

दुष्टव्रण—संज्ञा पुं० [सं०] वज्र व्रण अथवा घाव जिसमें से दुर्गंध भावे और जो मच्छा न हो ।

विशेष—यह रोग वैद्यक में प्रसाध्य माना गया है और धर्मशास्त्र में इस रोग को पूर्वजन्मकृत महापातक का फल माना है ।

बिना प्रायश्चित्त किए इस रोग का रोगी असुख्य माना गया है और उसके दाहकर्म और प्रतक संस्कार का निषेध है ।

२. नासूर । नाडीव्रण (को०) ।

दुष्टर—वि० [सं०] दे० 'दुस्तर' ।

दुष्टसाक्षी—संज्ञा पुं० [सं० दुष्टसाक्षिन्] बुरा साक्षी । ऐसा गवाह जो ठीक ठीक गवाही न दे । प्रयोग्य साक्षी ।

विशेष—स्मृतियों में लिखा है कि साक्षी सत्यवादी, कर्तव्यपरायण, और निर्लोभ हो । यदि साक्षी ऐसा हो जिसने कभी झूठी गवाही दी हो, जो व्याधिग्रस्त हो, जिसने महापातक किए हों अथवा जिसका दो पक्षों में से किसी पक्ष के साथ अधिक संबंध, शत्रुता या मित्रता हो वह दुष्ट साक्षी है । उसका साक्ष्य ग्रहण न करना चाहिए ।

दुष्टा^१—वि० स्त्री० [सं०] खोटी । पुरे स्वभाव की ।

दुष्टा^२—१. बुरे स्वभाव की स्त्री । दुश्चरित्र स्त्री । दोषगुक्त । २. बारनारी । वेश्या (को०) ।

दुष्टाचार^१—संज्ञा पुं० [सं०] कुचाल । कुकर्म । खोटा काम ।

दुष्टाचार^२—वि० दुश्चारी । बुरा काम करनेवाला ।

दुष्टाचारी—वि० [सं० दुष्टाचारिन्] [वि० स्त्री० दुष्टाचारिणी] कुकर्म । जिसके आचरण अच्छे न हों । खोटा काम करनेवाला ।

दुष्टात्मा—वि० [सं० दुष्टात्मन्] जिसका अंतःकरण बुरा हो । दुराण्य । खोटी प्रकृति का । दुष्टात्मा ।

दुष्टाश्रम—संज्ञा पुं० [सं०] १. बिगड़ा हुआ अश्रम । बाली या सड़ा अश्रम । २. कुत्सित अश्रम । ३. वह अश्रम जो पाप हो कहाई हो । ४. नीच का अश्रम ।

दुष्टाशय—वि० [सं०] दे० 'दुष्टात्मा' (को०) ।

दुष्टि—संज्ञा स्त्री० [सं०] दोष । त्रिकार । ऐब ।

दुष्टच—वि० [सं०] १. जो कठिनाई से पके । २. जो जल्दी न पके ।

दुष्टव्र—संज्ञा पुं० [सं०] और नाशक मधुमेध ।

दुष्टद—वि० [सं०] दुःप्राप्य ।

दुष्टराज्य^१—वि० [सं०] जिसका जीतना कठिन हो ।

दुष्टराज्य^२—संज्ञा पुं० धृतराष्ट्र का एक पुत्र ।

दुष्टपरिग्रह—संज्ञा पुं० [सं०] जो जल्दी पकड़ में न आ सके । जिसे बंध में लाना कठिन हो ।

दुष्टपर्श—वि० [सं०] १. जिसे स्पर्श करना कठिन हो । जिसे छूते न बने । २. जो जल्दी हाथ न लगे । दुःप्राप्य ।

दुष्टपर्शी—संज्ञा स्त्री० [सं०] जवासा ।

दुष्टपार—वि० [सं०] १. जिसे जल्दी पार न कर सक । २. दुःसाध्य । कठिन ।

दुष्टपूर—वि० [सं०] १. जिसका भरना कठिन हो । जो जल्दी न पूरा हो सके । कठिनाई से पूर्ण होनेवाला । २. अनिवार्य ।

दुष्टप्रकृति^१—संज्ञा स्त्री० [सं०] बुरी प्रकृति । खोटा स्वभाव ।

दुष्टप्रकृति^२—वि० बुरे स्वभाव का । दुःशील ।

दुष्टप्रधर्प^१—वि० [सं०] जो जल्दी धर पकड़ में न आ सके ।

दुष्टप्रधर्प^२—संज्ञा पुं० धृतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम ।

दुष्टप्रधर्पण—वि०, संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'दुष्टप्रधर्प' (को०) ।

दुष्टप्रधर्पणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'दुष्टप्रधर्पणी' (को०) ।

दुष्टप्रधर्पा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. जवासा । हिंजुवा । २. खजूर ।

दुष्टप्रधिपिणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. कंटकारी । भटकटैया । २. बैगन । भंटा ।

दुष्टप्रवृत्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. बुरी प्रवृत्ति । २. बुरी लवण । भ्रष्ट समचार (को०) ।

दुष्टप्रवेशा—संज्ञा स्त्री० [सं०] कंधारी वृक्ष ।

दुष्टप्राप, दुष्टप्रापण—वि० [सं०] दे० 'दुष्टप्राप्य' ।

दुष्टप्राप्य—वि० [सं०] जो सहज में न मिल सके । जिसका मिलना कठिन हो ।

दुष्टप्रेक्ष—वि० [सं०] दे० 'दुष्टप्रेक्ष्य' ।

दुष्टप्रेक्ष्य—वि० [सं०] १. जिसे देखना कठिन हो । २. दुर्लभ । भीषण ।

दुष्टमंत—संज्ञा पुं० [सं० दुष्टमन्त] दे० 'दुष्यंत' ।

दुष्यंत—संज्ञा पुं० [सं० दुष्यन्त] पुरुवंशी एक राजा जो ऐति नामक राजा के पुत्र थे ।

विशेष—महाभारत में उनकी कथा इस प्रकार लिखी है—

एक दिन राजा दुष्यंत शिकार खेलते खेलते थककर कण्व मुनि के आश्रम के पास जा निकले । उस समय कण्व मुनि की पाली हुई लड़की शकुंतला वहाँ थी । उसने राजा का उचित सत्कार किया । राजा उसके रूप पर मुग्ध हो गए । पृथ्वी पर राजा को मालूम हुआ कि शकुंतला एक अप्सरा के गर्भ से उत्पन्न विद्वन्मित्र ऋषि की कन्या है । जब राजा ने विवाह का प्रस्ताव किया तब शकुंतला ने कहा 'यदि गांधर्व विवाह में कुछ दोष न हो और आप मेरे ही पुत्र को युवराज बनाएँ तो मैं सगम्य हूँ' । राजा विवाह करके शकुंतला को कण्व ऋषि के आश्रम पर छोड़ अपनी राजधानी में चले गए । कुछ दिन बीतने पर शकुंतला को एक पुत्र हुआ जिसका नाम आश्रम के ऋषियों ने सर्वदमन रखा । कण्व ऋषि ने शकुंतला को पुत्र के साथ राजा के पास भेजा । शकुंतला ने राजा के पास जाकर कहा 'हे राजन् ! यह आपका पुत्र मेरे गर्भ से उत्पन्न हुआ है और आपका औरत पुत्र है, इसे युवराज बनाइए' । राजा को सब बातें याद तो थीं पर लोक-निंदा के भय से उन्होंने उन्हें छिपाने की चेष्टा की और

शकुंतला का तिरस्कार करते हुए कहा—'हे दुष्ट ! तपस्वनी ! तू किसकी पत्नी है ? मैंने तुझसे कोई संबंध कभी नहीं किया, बल दूर हो'। शकुंतला ने भी लज्जा छोड़कर जो जो जी में आया खूब कहा। इसपर देववाणी हुई 'हे राजन् ! यह पुत्र आपही का है, इसे ग्रहण कीजिए। हम लोगों के कइने से आप इसका भरण करें और इस कारण इसका भरत नम रखें'। देववाणी सुनकर राजा ने शकुंतला का ग्रहण किया। आगे चलकर भरत बड़ा प्रतापी राजा हुआ।

इसी कथा को लेकर कालिदास ने 'अभिज्ञान शाकुंतल' नाटक लिखा है। पर कवि ने कौशल से राजा दुष्यंत को दुष्ट नायक होने से बचाने के लिये दुर्वासा के शाप की कल्पना की है और यह बिलाया है कि उसी शाप के प्रभाव से राजा सब बातें भूल गए थे। दूसरी बात कवि ने यह की है कि जिस निलज्जता और भृष्टता के साथ शकुंतला का बिगड़ना महाभारत में लिखा है उसको वे बचा गए हैं।

दुष्प्योदर—संज्ञा पुं० [सं०] एक उदर रोग जो सिंह आदि पशुओं के लक्ष्मी और रोएँ पथरा मल, मूत्र, आलंघनमिश्रित मल या एक साथ मिला हुआ जो और मधु खाने तथा गंदा पानी पीने से होता है।

विशेष—इसमें विशेष के कारण रोगी दिन दिन दुबला और पीला हो जाता है। उसके शरीर में जलन होती है और कभी कभी उसे मूर्च्छा भी आती है। जब बढती होती है और दिन बराबर रहता है तब यह रोग प्रायः उभरता है।

दुष्प—संज्ञा पुं० [सं० दुःख] दे० 'दुःख'। उ०—आनो आनो वीर हो, ईहायुग लिये जाय। भगे सबै जन जान लै, महा दुष्प तन पाय।—पं० रासो, पृ० १०४।

दुष्पमुग्धी—वि० [सं० दुःखमुग्धी] दुःखयुक्त मुखशाली। दुःखिनी। उ०—उहाँ सीधे दिखी, हठी दुष्पमुग्धी। दिव्य भद्र ताम, सहिमान राम।—पं० रा०, २। २७।

दुसंग—संज्ञा पुं० [सं० दुःसङ्ग] कुलंग। बुरा साथ। दुःख का साथ। उ०—ता उपरांत जो कोऊ बनू निचारे दूर छोरे तो दुसंग करि निषेध अष्ट होइ।—दो सो बावन०, भा० २, पृ० ३२।

दुसंत—संज्ञा पुं० [सं० दुःसंत] दे० 'दुःसंत'। उ०—जैसे दुसंतहि साकुंतला। मधवानलहि कामकंदला।—बायमी (शब्द०)।

दुसतर—वि० [सं० दुस्तर] दे० 'दुस्तर'। उ०—मरिता को पति सिंधु सोउ दुस्तर रह्यो भोई।—बोहार अभि० य०, पृ० ३०७।

दुसरा—वि० [हि० दूसरा] [वि० श्री० दूसरी] दे० 'दूसरा'। उ०—(क) तब तो यह जरिका दुसरे दिन केरि गुसाई जी के दरसन को पायो।—दो सो बावन०, भाग १, पृ० ३२८। (ख) तापर कोमल कनक भूषि मनिय मोहति मन। बिबिधत सब प्रतिबिंब मनो घर महें दुसरो बन।—मंद० सं०, पृ० ६। (ग) बोबरधन की पुरति दुसरी। श्री बोलिवचंद द्वि कुसरी।—मंद० सं०, पृ० ३०६।

दुसराना—वि० [हि० दो या दूसरा] दुहराना। उ०—(क) वह कारज अविवारित कीजे। ताहि न फिर दुसराइ सुनीजे।—पदमाकर (शब्द०)। (ख) मम माल में हान लिख्यो विषि यों, कोऊ या बज बोलत माँके नहीं। नटनागर हा अब कैसी करी, दुसराय के द्वार पे भाँके नहीं।—नट०, पृ० ८१।

दुसरिहा—वि० [हि० दूसर + हा (प्रत्य०)] १. साथ रहनेवाला दूसरा आदमी। साथी। संगी। उ०—कह्यो कि मृत्युलोक के माही। तुम्हारा कोई दुसरिहा नाहीं।—विश्राम (शब्द०)। २. प्रतिद्वंद्वी।

दुसह—वि० [सं० दुःसह] जो महा न जाय। असह्य। कठिन। उ०—जनि रिया रोक दुपह दुख सहह।—तुलसी (शब्द०)।

दुसही—वि० [हि० दुःसह + ई (प्रत्य०)] १. जो कठिनता से सह सके। २. बहावी। ईर्ष्या। जैसे, असही दुसही। उ०—असही दुसही मरहु मनहि मन बैरिन बड़हु विषाद। नुर-सुन चारि चारु बिरजीवहु अंकर गौरि प्रसाद।—तुलसी (शब्द०)।

दुसास—संज्ञा पुं० [हि० दो + सास] एक प्रकार का समाधान जिसमें दो कनखे निकले होते हैं। उ०—भाइ, दुसासे भाग, बभूला, बरम हथौर।—सुदन (शब्द०)। २. डंडे के आकार की एक छोटी लकड़ी जिसमें छोर पर दो कनखे फूटे होते हैं। इसमें चाफा (खाने का कपड़ा) बाँधकर लोग बाँग छानते हैं।

दुसाध—संज्ञा पुं० [सं० दोषाध या दुसाध्य] हिंदुओं में एक नीच जाति जो सूअर पालती है।

दुसाध—वि० नीच। अधम। दुष्ट। पाजी। (गानी)।

दुमार—संज्ञा पुं० [हि० दो + मार] धारदार छेद। वह छेद जो एक छोर से दूसरे छोर तक हो। उ०—(क) लागत कुटिल कटाछ मर ज्यो न होय बेहाल। लगत जु हिये दुमार करि तऊ रह्य नटान।—बिहारी (शब्द०)। (ख) सिंह न सखी कनु करि रह्यो बस कर लीनो मार। भेदि दुमार हियो हियो तन गति भई मार।—बिहारी र०, दा० ४४३। (ग) लागी लागी क्या करे लागत रह्यो लगार। लागी तब ही जानिए निकसी जाय दुमार।—कबीर (शब्द०)।

किं प्र०—करना।

दुमार—वि० धारदार। वारदार। एक पार से दूसरे पार तक।

दुसाल—संज्ञा पुं० [हि० दो + शल] धारदार छेद। उ०—हाल से हवाल एकक भावने पराजि नाहि। लाल नेन जवाल झाल सो भरी दुसाल बिट्ट।—सुदन (शब्द०)।

दुसाली—संज्ञा पुं० [सं०] दो प्रकार का स्वभाव या आचरण। दो बात। उ०—अणुभाजिया भजिया तणी, दीन प्रतप दुसाल। जिसका तो बायस भज, मोती मत्त मराल।—रघु० क०, पृ० ४१।

दुसाला—संज्ञा पुं० [हि० दुशाला] दे० 'दुशाला'।

दुसास—संज्ञा पुं० [सं० दुष् (= दुः) + सास] उच्छ

भाकासा। कंभी भासा। दुर्लभ भाकासा। उ०—साँवरे
पियहि सुमिरि बर बाला। भरइ उसास दुसास बिहाना।—
नंद० प्र०, पृ० १३४।

दुसासन—संज्ञा पुं० [सं० दुःसासन] दे० 'दुःसासन'।

दुसाहा—संज्ञा पुं० [देश०] दो फसली बेट। वह बेट जिसमें दो
फसले हों।

दुसील—संज्ञा पुं० [सं० दुःसील] दे० 'दुःसील'। उ०—हिरणी हुनत
उर डर भयो बय करि, सोलभाव उपज्यो दुसोलभाव बीत्यो
है।—सुंदर० प्र०, भाग १, पृ० १०।

यौ०—दुसीलभाव = दुःसीलता।

दुसुमनी—संज्ञा पुं० [फ्रा० दुसुमन] दे० 'दुसुमन'। उ०—सुमन
गई ही लैन भाई हो सु मन ओय दुसुमन मेरी ता पै बोले हैं
बवाई री।—दीन० प्र०, पृ० ११।

दुसूतो—संज्ञा स्त्री० [हि० दो + सूत] एक प्रकार की मोटी चादर
जिसमें दो तानों का ताना घोर बाना होता है। यह पंजाब
से आती है और दो या चार तहों की होती है।

दुसेजा—संज्ञा पुं० [हि० दो + सेज] बड़ी खाट। पलंग। उ०—
बहुत पलंग मन्वान दुसेजा तहत सरोटी। बरसल स्पंदन
बहल बहुत गाड़ी सुनवीटो।—सुदन (शब्द०)।

दुसौ—वि० [सं० दुःसह] दे० 'दुःसह'। उ०—साजपाज सब
तोरि के, अब खेलौंगी फाग। छैल छबीले सों दुसौ, प्रगठ करौं
धनुराग।—ब्रज० प्र०, पृ० २३।

दुस्तर—वि० [सं०] १. जिसे पार करना कठिन हो। २. दुर्बल।
बिकट। कठिन।

दुस्तार—वि० [सं० दुस्तार] दे० 'दुस्तर'। उ०—तुम भवसागर
दुस्तार।—अपरा, पृ० ७१।

दुस्त्यज—वि० [सं० दुस्त्याज्य] जो कठिनाई से छोड़ा जा
सके। जिसका त्यागना कठिन हो। उ०—देव गुह गिरा
गोरव दुस्त्यज राज्य त्यक्त श्री सकल भौमिनि भाता।—
सुलसी (शब्द०)।

दुस्थ—वि० [सं०] १. दुःख में पड़ा हुआ। दुःखी। गरीब। २.
पीड़ायुक्त। उद्विग्न। ३. जो अच्छा न हो। जो ठीक न हो।
४. भ्रष्ट। ५. लुब्ध। मुग्ध (को०)।

दुस्थित—वि० [सं०] दे० 'दुस्थ'।

दुस्पर्श—वि० [सं०] दे० 'दुस्पर्श' (को०)।

दुस्पर्शा—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'दुःस्पर्शा' (को०)।

दुस्पृष्ट—संज्ञा पुं० [सं०] १. हलका स्पर्श। हलकी छुपन। २.
जिह्वा का तालु से वह हलका स्पर्श जिससे अंतस्त्व वरुण
(य द ल व) का उच्चारण होता है (को०)।

दुस्फाट—संज्ञा पुं० [सं० दुस्फाट] एक प्रकार का ताल (को०)।

दुस्मर—वि० [सं०] जो कठिनाई से याद आए। जिसे स्मरण
रखना कठिन हो (को०)।

दुस्सह—वि० [सं०] दे० 'दुःसह'।

दुस्साध्य—वि० [सं०] दे० 'दुःसाध्य'।

दुहकर—वि० [सं० दुहकर] दे० 'दुहकर'।

दुहता—संज्ञा पुं० [सं० दोहता] [स्त्री० दुहती] बेटो का बेटा।
नाती। उ०—नूरजहाँ के साथ होदे पर उसकी दुहती भी
थी।—शिवप्रसाद (शब्द०)।

दुहत्थ—संज्ञा [सं० द्वि, प्रा० दु + सं० हस्त] दो पंक्तियों का छंद।
दे० 'दोहा'। उ०—छंद प्रबंध कवित्त जति साटक गाह
दुहत्थ। लघु गुरु मंडित संख्यहि पिगल भ्रमर भरथ्य।—
पृ० रा०, १।५१।

दुहत्था—वि० [हि० दो + हाथ] [वि० स्त्री० दुहत्थी] १. दोनों
हाथों से किया हुआ। जैसे, दुहत्थी मार। २. जिसमें दो
मूठें या बस्ते हों।

दुहत्थाशासन—संज्ञा पुं० [हि० दुहत्था + सं० शासन] दे० 'द्विदल
शासन प्रणाली'।

दुहत्थी—संज्ञा स्त्री० [हि० दो + हाथ] मालखंभ की एक कसरत
जिसमें खिलाड़ी मालखंभ को दोनों हाथों से कुहनी तक
लपेटता है और फिर जिधर का हाथ ऊपर होता है उधर
की टाँग को उड़ाकर मालखंभ पर सवारी बाँधता है और
अपना हाथ पेट के नीचे से निकाल लेता है।

दुहना—क्रि० स० [सं० दोहन] १. स्तन से दूध निचोड़कर
निकालना। दूध निकालना। उ०—(क) तिल सी तो गाय
है, छोना नो नो हाथ। सटकी भर भर दुहिए, पूँछ मठारह
हाथ।—कबीर (शब्द०)। (ख) राजनीति मुनि बहुत
पढ़ाई गुस्सेवा करवाये। सुरभी दुहत दोहनी मीनी बाँह
पसारि देवाये।—सूर (शब्द०)।

विशेष—'दूध' और 'दूधवाला पशु' दोनों इसके कर्म हो सकते
हैं। जैसे, दूध दुहना, गाय दुहना।

२. निचोड़ना। तत्त्व निकालना। सार निकालना। सार बीचना।
उ०—(क) पाछे पुषु को रूप हरि लीन्हें नाना रस दुहि
काढ़े। तापर रचना रची विधाता बहु विधि पलन बाढ़े।—
सूर (शब्द०)। (ख) दीप दीप के दीप की दिपति दुहिन
दुहि लीन। सब ससि दामिनी भा मिले वा भामिनि को
कीन।—भृ० सत० (शब्द०)।

मुहा०—दुह लेना = (१) नि.सार कर देना। सार बीच लेना।
(२) धन हर लेना। जहाँ तक हो किसी से लाभ उठाना।
चुटना। उ०—बेचहि बेच चरम दुहि लेहीं। बिसुन पराय पाप
कहि देहीं।—सुलसी (शब्द०)।

दुहनी—संज्ञा स्त्री० [सं० दोहनी] बरतन जिसमें दूध दुहा जाता है।
दोहनी।

दुहरना—क्रि० प्र० [हि०] दे० 'दोहरना'।

दुहरा—वि० [हि०] दे० 'दोहरा'।

दुहरामा—क्रि० प्र० [हि०] दे० 'दोहरामा'।

दुहराना—संज्ञा स्त्री० [हि०] दोहराने का काम। दोहराने की क्रिया
या भाव।

दुहराहट—संज्ञा स्त्री० [हि० दुहरा + हट (प्रत्य०)] पुनरावर्तन।

दुहराने का भाव या किया। उ०—गान ? जिसपर हों पके दुहराहटों के बाग ? गान जिसकी ललक से बुझ जाय धमर चिराय।—हिम कि०, पृ० १३८।

दुहौमना—कि० सं० [हि० दुहाना] ३० 'दुहाना'। उ०—खिरक दुहामिन जाति मोहि, कब अन मिलैगो भाई।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० २३३।

दुहाई^१—संज्ञा स्त्री० [सं० द्वि० (= दो) + आह्वय (= पुकारना)] १. घोषणा। पुकार। उच्च स्वर से किसी बात की सूचना जो चारों ओर दी जाय। मुनादी।

मुहा०—किसी की दुहाई फिरना = (१) राजा के सिंहासन पर बैठने पर उसके नाम की घोषणा होना। राजा के नाम की सूचना डंके आदि के द्वारा फिरना। उ०—बैठे राम राजसिंहासन जग में फिरी दुहाई। निर्भय राज राम को कहियत सुर नर मुनि सुखदाई।—सूर (शब्द०)। (२) प्रताप का डंका पिटना। प्रभुत्व की डोंडो फिरना। विजय घोषणा होना। जयजयकार। उ०—(क) बिष, उदयगिरि, भोजगिरी। काँपी सृष्टि दुहाई फिरी।—जायसी (शब्द०)। (ख) नगर फिरी रघुबीर दुहाई। तब प्रभु सीतहि बोल पठाई।—तुलसी (शब्द०)।

२. सहायता के लिये पुकार। बचाव या रक्षा के लिये किसी का नाम लेकर चिल्लाने की क्रिया। सताए जाने पर किसी ऐसे प्रतापी या बड़े का नाम लेकर पुकारना जो बचा सके। उ०—तब सतयुक्त कहे समुझाई। काहे को तुम देत दुहाई।—कबीर सा०, पृ० ५५७।

मुहा०—दुहाई देना = (संकट या आपत्ति आने पर) रक्षा के लिये पुकारना। अपने बचाव के लिये किसी का नाम लेकर पुकारना। उ०—(क) हम बचानेवाले कीन हैं, राजा दुभयत की दुहाई दे बहो बचाएगा क्योंकि तपोवनों की रक्षा राजा के सिर है।—लक्ष्मणसिंह (शब्द०)। (ख) किसी ने आकर दुहाई दी कि मेरी गाय खोर लिए जावा है।—शिवप्रसाद (शब्द०)।

३. सपथ। कसम। सीमंद। जैसे, रामदुहाई। उ०—(क) मन माला तन सुमिरनी हरि जो तिलक दियाय। दुहाई राजा राम की दूजा दूर कियाय।—कबीर (शब्द०)। (ख) अब मन मगन हो रामदुहाई। मन, वच, क्रम हरि नाम हृदय बरि जो गुरुवेद बताई।—सूर (शब्द०)। (ग) नाथ सपथ विनु चरन दुहाई। भयउ न भुवन भरत सम भाई।—तुलसी (शब्द०)।

कि० प्र०—खाना। उ०—आजु से न जैहो दधि खेचन, दुहाई लाऊँ मिया की, कन्हैया उत ठाढ़ी रहत है।

दुहाई^२—संज्ञा स्त्री० [हि० दुहना] १. गाय, भैंस आदि को दुहने का काम। २. दुहने की मजदूरी।

दुहाग—संज्ञा पु० [सं० दुर्भाग्य, प्रा० दुर्भाग्य दुहाग] १. दुर्भाग्य। २. सोहाग का उलटा। वैधव्य। रंझापा।

दुहागिनी—संज्ञा स्त्री० [हि० दुहागो] विधवा। सुहागिन का उलटा। उ०—(क) हँसि हँसि के तब पाइया जिन पाया तिन

रोय। हाँसी खेजत हरि मिले तो नहीं दुहागिन होय।—कबीर (शब्द०) (ख) सेज बिछावे सुंदरी अंतर परदा होय। तन सोये मख दे नहीं सदा दुहागिन सोय।—कबीर (शब्द०)।

दुहागिला—वि० [हि० दुहाग + इल (प्रत्य०)] १. अभागा। अनाथ। बिना मालिक का। २. सुना। खाली। उ०—तजि के दिगोसन दुहागिल के दोनों दिसि मेले हँ बदन सहै सोक की रगर को।—गुमान (शब्द०)।

दुहागी—वि० [सं० दुर्भागिन्] [वि० स्त्री० दुहागिन] दुर्भागो। अभागा। बदकिस्मत। उ०—सब जग दोखो एकला सेवक स्वामी दोह। जगत दुहागी राम बिनु साधु सुहागी सोह।—दादू (शब्द०)।

दुहाजू^१—वि० पु० [सं० द्विभाज्य] जो पहली स्त्री के मर जाने पर दूसरा विवाह करे।

दुहाजू^२—वि० स्त्री० जो स्त्री पहले पति के मर जाने पर दूसरा विवाह करे।

दुहाना—कि० सं० [हि० दुहना का प्रे० रूप] दुहने का काम दूसरे से कराना। दूध निकलवाना। जैसे, दूध दुहाना, गाय दुहाना। उ०—दूध बही जु दुहायो री बाही बही सु सही जो बही डरकायो।—रसखान (शब्द०)।

दुहाव—संज्ञा स्त्री० [हि० दुहाना] १. एक प्रथा जिसके अनुसार प्रति वर्ष जन्माष्टमी आदि त्यौहारों को किसानों की गाय भैंस का दूध दुहाकर जमींदार ले जाता है। २. वह दूध जो इस प्रथा के अनुसार किसान जमींदार को देता है।

दुहावनी—कि० सं० [सं० दोहन] ३० 'दुहाना'। उ०—मनभावती देही दुहावनी पे यह गाय तुही पे दुहावनी है।—ग्वाल (शब्द०)।

दुहावनी—संज्ञा स्त्री० [हि० दुहाना] १. वह धन जो ग्वाले को गाय दुहने के लिये दिया जाता है। दूध दुहने की मजदूरी। उ०—(क) अब औरन के घर ते हम सों तुम दूनी दुहावनी लेबो करो।—पद्माकर (शब्द०)। (ख) मन-भावनी देही दुहावनी पे यह गाय तुही पे दुहावनी है।—ग्वाल (शब्द०)।

दुहिता—संज्ञा स्त्री० [सं० दुहितृ] कन्या। लड़की।

दुहितृपति—संज्ञा पु० [सं०] जाभाता। दामाद।

दुहिन^(१)—संज्ञा पु० [सं० दुहिण] ब्रह्मा। उ०—करहि सुमंगल गान सुख सहनान्ह। जेई बसे हरि दुहिन सहित मुर भाइन्ह।—तुलसी (शब्द०)।

दुहुँचा—वि० [प्रा० हि०] दोनों ओर। दोनों तरफ। उ०—प्रेमपगो तृतिया बहूँचा की दुहुँ को लगी प्रतिही चितचाही।—रसखान०, पृ० २५।

दुहुवनि^(२)—वि० [हि०] दोनों।—शिव शक्ती वर्तत अंत दुहुवनि को नाहीं।—सुंदर ग्रं०, भाग १, पृ० ५८।

दुहुँ—वि० [दो + हुँ (प्रत्य०)] दोनों ही। उ०—(क) दुहुँ जाति असमजसे बाण बले सुख पाय।—केशव (शब्द०)।

(ल) बगल लड़गे दुहें बगले, काल रगे वीरय ।—रा० क०, पु० ४६ ।

दुहैन^(५)—वि० [हि०] दे० 'दुहें' । उ०—कबहुँक वे उनके वे उनके हों दुहैन के इक सारी ।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पु० १६१ ।

दुहेनी—संज्ञा स्त्री० [हि० दुहना] दुध देनेवाली गाय ।

दुहेली—संज्ञा पुं० [सं० दुहेला] दुःख । विपत्ति । मुसीबत । उ०—पदमावति जगज्जपमनि कहं लगि कहौ दुहेल । तेहि समुद महीं लोएउं हों का जियौ प्रकेल ।—जायसी (शब्द०) ।

दुहेला^१—वि० [दुहेला (= कठिन खेल)] [वि० स्त्री० दुहेली] १. दुःखदायी । दुःसाध्य । कठिन । उ०—(क) भक्ति दुहेली राम की नहि कायर को काम । निस्प्रेही निरधार को पाठ पहर संयाम ।—कबीर (शब्द०) (ल) दादू मारण साधु का लारा दुहेला जान । जीवित मिरतक होइ बल रामनाम नीमान ।—कबीर (शब्द०) । (ग) रामची भगती दुहेली रे बापा । सकल निस्तार चीन्ह से घापा ।—दक्खिनी०, पु० १५ । २. दुःखी । दुःखिया । दीन । उ०—(क) पदमावति निज कंत दुहेली । बिनु जल कमल सूख अनु बेली ।—जायसी (शब्द०) । (ल) भई दुहेली टेक बिहूनी । यौन नाइ उठि सकै न थूनी ।—जायसी (शब्द०) ।

दुहेला^२—संज्ञा पुं० विकट । दुःखदायक कार्य । उ०—(क) भवहि बारि तै प्रेम न खेला । का जानसि कस होय दुहेला ।—जायसी (शब्द०) । (ल) पहिल प्रेम है कठिन दुहेला । दोउ जग तरा प्रेम जेइ खेला ।—जायसी (शब्द०) ।

दुहै^१—वि० [हि०] दोनों उ०—हस्त दीर्घ दुहै नेम बिण लोखे ।—रघु० क०, पु० ५० ।

दुहोतरा^२—संज्ञा पुं० [सं० दोहितृ] [स्त्री० दुहोतरी] लड़की का लड़का । कन्या का पुत्र । नाती ।

दुहोतरा^(५)—वि० [सं० द्वि, हि० दो, दु+उत्तर] दो अधिक । दो ऊपर । उ०—ठारे गौ क दुहोतरा भगहन मास सुजान । बैठि सजल गढ़ नौहि के जिय घासेट विधान ।—भूदन (शब्द०) ।

दुष्ट—वि० [सं०] [वि० स्त्री० दुष्टा] दुहने योग्य ।

दुष्ट—संज्ञा पुं० [सं०] शर्मिष्ठा के गर्भ से उत्पन्न ययाति राजा के एक पुत्र का नाम ।

विशेष—राजा ययाति जब दिग्विजय कर चुके तब उन्होंने भूमि को अपने पुत्रों में बाँटा था । इस बाँट के अनुसार दुष्ट को पश्चिम दिशा के देश मिले थे । राजा ययाति ने जब इन्हें अपना बुढ़ापा देकर इनसे जवानी माँगी थी तब इन्होंने सस्वीकार कर दिया था । इसपर ययाति ने श्राप दिया था कि तुम्हारी कोई प्रिय अभिलाषा पूर्ण न होगी । दे० 'दुष्ट' ।

दूँगदा^१—संज्ञा पुं० [देश०] दे० 'दोगरा' ।

दूँगरा^१—संज्ञा पुं० [देश०] दे० 'दोगरा' ।

दूँदा^१—संज्ञा पुं० [सं० दृष्ट] १. ऊधम । उपद्रव ।

क्रि० प्र०—मचाना ।

२. दे० 'दृष्ट' ।

दूँदना^१—क्रि० प्र० [हि० दूँद] १. उपद्रव करना । ऊधम मचाना । २. धोर शब्द करना ।

दूँदि^(५)—संज्ञा स्त्री० [हि० दूँद] दे० 'दूँद' ।

दू—वि० [सं० द्वि] दे० 'दो' । उ०—उलंग कहइ छइ एकल । दू जण सरिस कहइ घर बास ।—बी० रासो, पु० ५२ ।

यौ—दूजण=दो जन । पनि पत्नी ।

दूआ^१—संज्ञा पुं० [दूआ] एक गहना जो कलाई पर धोर सब गहनों के पीछे की धोर पहना जाता है । पछेली ।

दूआ^२—संज्ञा पुं० [हि० दो+आ (प्रत्यय०)] १. ताश या मंजीफे में वह पत्ता जिसपर दो बूटियाँ या टिप्पियाँ हों । दुक्की । २. सोरही के खेल में, दो कौड़ियों का चित (धोर बाकी चौदह कौड़ियों का पट) पड़ना (जुमारी) । जैसे, जिसका दूआ, उसका जुमा (कहावत) । ३. किसी, विशेषतः जुएवाले खेल में, वह दाँव जिसका दो चिट्ठों, बूटियों और कौड़ियों आदि से संबंध हो ।

दूआ^३—संज्ञा स्त्री० [प्र० दुआ] दे० 'दुआ' ।

दूई^१—वि० [सं० द्वि] दे० 'दो' ।

दूईजा^१—संज्ञा स्त्री० [सं० द्वितीया] किसी पक्ष की दूसरी तिथि । दूसरी द्वितीया ।

दूई^२—वि० [हि०] दे० 'दो' । उ०—जाड़ा जाग रुई कि दूई । (लोकोक्ति) ।

दूक^(५)—वि० [सं० दूक] दो एक । कुछ । चंद । उ०—लाभ सने को पालिबो हानि समय की चूक । सदा विचारहि आव मति सुदिन कुदिन दिन दूक ।—तुलसी (शब्द०) ।

दूकान—संज्ञा पुं० [फ़ा० दुकान] दे० 'दुकान' ।

दूकानदार—संज्ञा पुं० [फ़ा० दूकानदार] दे० 'दुकानदार' ।

दूकानदारी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० दुकानदारी] दे० 'दुकानदारी' ।

दूखी—संज्ञा पुं० [सं० दुःख] दे० 'दुःख' ।

दूखन—संज्ञा पुं० [सं० दूषण] दे० 'दूषण' ।

दूखना^(५)—क्रि० प्र० [सं० दूषण + ना (प्रत्यय०)] दोष लगाना । ऐब लगाना ।

दूखना^२—क्रि० प्र० [हि०] दे० 'दुखना' ।

दूखित^१—वि० [सं० दूषित] दे० 'दूषित' ।

दूखित^२—वि० [सं० दुःखित] दे० 'दुःखित' ।

दूगला^१—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का बड़ा टोकरा या दोरा ।

दूगला^२—संज्ञा पुं० [हि० दो+गला] दे० 'दोगला' ।

दूगुना^१—वि० [सं० द्विगुण] दूना । दुगुना ।

दूगू—संज्ञा पुं० [देश०] एक तरह का बकरा जो हिमालय की तराई में होता है ।

दूज—संज्ञा स्त्री० [सं० द्वितीया, प्रा० दुदय, दुदज] किसी पक्ष की दूसरी तिथि । दुइज । द्वितीया ।

मुहा०—दूज का आवि होना=बहुत दिनों पर दिखाई पड़ना । कम दिखाई पड़ना । कम दर्शन देना ।

दूतगृह—संज्ञा पुं० [हि० दू (= दो) + जन] दो प्राणी । पति पत्नी । उ०—उलग कहीय छह एकलां । दूजण सरिस कहइ घर बास ।—वी० रासो, पृ० ५२ ।

दूजण—संज्ञा पुं० [सं० दुर्जन, प्रा० दुर्जण, दूजण] दे० 'दुर्जन' ।
दूजा—वि० पुं० [सं० द्वितीय, प्रा० दुइय, दुइज] दूसरा । अन्य । द्वितीय ।

दूजो—संज्ञा स्त्री० [देश०] घोड़ों का आभूषण विशेष । उ०—साक्षत पसबंद अथ पूजी । हीरन जटित हैकलें दूजो ।—हम्मीर०, पृ० ३ ।

दूजो—वि० स्त्री० [हि०] दे० 'दूजा' । उ०—(क) धोली मनु रचन तिय दूजो ।—मानस, २।२२१ । (ख) अब जिय चाह करी अनि दूजो । भ्रमहु न जग इच्छा तुव पूजो ।—घारतेंदु प्र०, भा० १, पृ० ६०७ ।

दूक—संज्ञा पुं० [सं० द्वेष या द्विधा] १. दुःख । कष्ट । २. द्विधा । संदेह । उ०—कबीर सोई सूरमा, मन से माँड़े दूक । पाँचो हँसो पकरि के, दूरि करे सब दूक ।—कबीर सा०सं०, पृ० २७ ।

दूकना—क्रि० प्र० [सं० द्विधा, प्रा० दुक्का] दुष्ट चिंतन करना । द्विधा में पड़ना । उ०—बात अवर कछु अवरहि दूकें । अलप ज्ञान गुनि अनमन दूकें ।—नंद० प्र०, पृ० १४५ ।

दूकना—क्रि० प्र० [सं० दोह, प्रा० दुक्क या हि० दुहना] दे० 'दूध देना' । उ०—मैंसी एकै गाह है दूकें बारह मास । सो सब हमारे संग है दाहू धातम पास ।—दादू०, पृ० १०६ ।

दूकभ, **दूकम**—वि० [सं०] १. व्यसनग्राम । पीडायुक्त । पीड़ित । २. जिसे व्यस्त या दग्ध करना कठिन हो (को०) ।

दूकाश, **दूकाश**—वि० [सं०] दे० 'दूकभ', 'दूकम' (को०) ।

दूत—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० दूती] १. वह मनुष्य जो किसी विशेष कार्य के लिये मयवा कोई समाचार पहुँचाने या लाने के लिये कहीं भेजा जाय । संदेश ले जाने या ले आनेवाला मनुष्य । चर । बसीठ ।

विशेष—प्राचीन काल में राजाओं के यहाँ दूसरे राज्यों में संधि और विग्रह आदि का समाचार पहुँचाने या वहाँ का हालचास जानने के लिये दूत रखे जाते थे । अनेक ग्रंथों में योग्य दूतों के नक्षत्र दिए हुए हैं । उनके अनुसार दूत को यथोक्तवादी, देशभाषा का अच्छा जानकार, कार्यकुशल, सहनशील, परिश्रमी, नीतिज्ञ, बुद्धिमान, मंत्रणाकुशल और सर्वगुणसंपन्न होना चाहिए । आजकल एक राष्ट्र के प्रतिनिधि दूसरे राष्ट्र में स्थायी रूप से रहते हैं वे भी दूत या राजदूत ही कहलाते हैं ।

२. प्रेमी का संदेशा प्रेमिका तक या प्रेमिका का संदेशा प्रेमी तक पहुँचानेवाला मनुष्य ।

दूतक—संज्ञा पुं० [सं०] १. दूत । २. वह कर्मचारी जो राजा की वीहई आज्ञा का सर्वसाधारण में प्रचार करता है ।

दूतकत्व—संज्ञा पुं० [सं०] १. दूत का काम । २. दूतक का काम ।

दूतकर्म—संज्ञा पुं० [सं० दूतकर्मन्] संदेशा या अवर पहुँचाने का काम । दूत का काम । दूतत्व ।

दूतघनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] गोरखमुंढी । कंदवपुष्पी ।

दूतता—संज्ञा स्त्री० [सं०] दूतत्व । दूत का काम ।

दूतत्व—संज्ञा पुं० [सं०] दूत का काम । दूतता ।

दूतपन—संज्ञा पुं० [सं० दूत + हि० पन (प्रत्यय)] दूत का काम । दूतत्व ।

दूतर—वि० [सं० जुस्तर, प्रा० दुस्तर-दूतर] दे० 'दुस्तर' । उ०—तासी नंद कहत सब ऊतर । मूरख जन मनमोहित दूतर ।—नंद० प्र०, पृ० १४४ ।

दूतावास—संज्ञा पुं० [सं० दूत + भावस] वह स्थान जो किसी दूसरे राज्य या देश में रहनेवाले किसी दूसरे राज्य या देश के राजदूत या वाणिज्यदूत के अधिकारांतर्गत हो (अं० एम्बेसी) । राजदूत या वाणिज्य दूत का कार्यालय । राजदूत या वाणिज्य दूत का निवासस्थान । कांस्युलेट । जैसे,—(क) शंघाई में कसी दूतावास पर स्थानीय पुलिस ने बड़ाई की और कितने ही आदमियों को गिरफ्तार किया । (ख) महाराज जाज के पधारने पर रोम स्थित ब्रिटिश दूतावास में बड़ा आनंद मनाया गया ।

दूति—संज्ञा स्त्री० [सं० दूती] दे० 'दूतिका' ।

दूतिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] दूती ।

दूतिरा—वि० [सं० दुस्तर] जो कठिनाई से पार किया जाय । दुस्तर । उ०—अहुँ ह्रास गल कंया पाई । चंच सुर षोड येगली लाई । अहुँट कोठि दस भागा अरो । गुरु परसाई दूतिर तिरो ।—गोरख०, पृ० २२० ।

दूती—संज्ञा स्त्री० [सं०] प्रेमी का संदेशा प्रेमिका तक या प्रेमिका का संदेशा प्रेमी तक पहुँचानेवाली स्त्री । स्त्री और पुरुष को मिलानेवाली या एक का संदेशा दूसरे तक पहुँचानेवाली स्त्री । कुटनी ।

विशेष—साहित्य में दूतिर्वा तीन प्रकार की मानी गई हैं—उत्तमा, मध्यमा और अधमा । उत्तमा दूती उसे कहते हैं जो मीठी मीठी बातें कहकर अच्छी तरह समझाती हो । मध्यमा दूती उसे कहते हैं जो कुछ मधुर और कुछ कटु बातें सुनाकर अपना काम निकालना चाहती हो । केवल कटु बातें कहकर अपना काम निकालनेवाली दूती को अधमा दूती कहते हैं । सखी, नतंकी, दासी, संन्यासिनी, धोबिन, चितेरिन, तंबोलिन, बंघिन आदि स्त्रियाँ दूती के काम के लिये उपयुक्त समझी जाती हैं ।

पर्याय—संचारिका । सारिका । दूतिका । कुटनी ।

दूत्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. दूत का भाव । २. दूत का काम ।

दूती—संज्ञा पुं० [हि० दूध] दे० 'दूध' । उ०—ले आप दूद और नान अपने हमराह । कहे मैं सिज्य पैगंबर हूँ बल्साह ।—बकिनी०, पृ० ३१५ ।

दूद—संज्ञा पुं० [फ़ा०] धुवाँ । आप । जैसे, दूद कण ।

दूद—संज्ञा पुं० [सं० दूद] दे० 'दूद' । उ०—आनक मुख मूँदत नहीं कदुर दूद लेह । बिरहिन हिय लूँदे खरी लूँदे लूँदे लेह ।—स० सतक, पृ० २६५ ।

दूधकरा—संज्ञा स्त्री० [फा०] १. घुघ्रा निकलने का मार्ग । वह छिद्र या नल जिससे घुघ्रा बाहर निकल जाय । घुघ्राकण । बिमनी । २. एक प्रकार का दमकला जिससे घुघ्रा रैकर पोषों में लगे हुए कीड़े छुड़ाए जाते हैं ।

दूधला—संज्ञा पुं० [देहा०] एक प्रकार का पेड़ जिसे डडला कहते हैं ।

दूधहूँ—संज्ञा पुं० [सं० दुग्ध] पानी का माँप । डेहड़ा । (डि०) ।

दूधहूँ—संज्ञा पुं० [सं० दुग्ध] ३० 'दुग्ध' ।

दूध—संज्ञा पुं० [सं० दुग्ध, प्रा० दुध] १. सफेद रंग का वह प्रसिद्ध तरल पदार्थ जो स्तनपायी जीवों की मादा के स्तनों में रहता है और जिससे उनके बच्चों का बहुत दिनों तक पोषण होता है । पय । दुग्ध ।

विशेष—दूध का स्वाद कुछ मीठा होता है और इसमें एक प्रकार की बिलक्षण हलकी गंध होती है । भिन्न भिन्न जातियों के प्राणियों के दूध के संयोजक अंग तो समान ही होते हैं, पर उसके भाग में बहुत कुछ अंतर होता है । एक ही जाति के भिन्न भिन्न प्राणियों और कभी कभी एक ही प्राणी में भिन्न भिन्न समयों में भी दूध के भाग में कुछ अंतर होता है । दूध का दू से दू तक अंग जल होता है और शेष भाग प्रोटीन, चरबी, शर्करा और जलक आदि का होता है । दूध जब थोड़ी देर तक यों ही छोड़ दिया जाता है तब उसकी चरबी ऊपर आ जाती है और बही परिवर्तित होकर मलाई और मक्खन बन जाती है । दूध में जब विशेष प्रकार की और उचित मात्रा में लट्टाई का अंग मिल जाता है तब वही जमकर दही बन जाता है । कभी कभी ऐसा भी होता है कि दूध में से जब और उसके संयोजक अंग अलग हो जाते हैं । इसे दूध का फटना कहते हैं । (अनुर्य जाति की) स्त्रियों के दूध से बहुत अधिक मिलता जुलता दूध गाय या भैंस का होता है, इसी लिये मनुष्य बहुधा गाय या भैंस का दूध पीते, उसका दही जमाने, मिठाइयों के लिये खोसा या छेना बनाते तथा उसमें से मक्खन मक्खन आदि निकालते हैं । कहीं कहीं बकरी और ऊँटनी आदि का दूध भी पीया जाता है । वैद्यक में भिन्न भिन्न प्राणियों के दूध के भिन्न भिन्न गुण बतलाए गए हैं । आयकल पाश्चात्य विद्वानों ने दूध का विश्लेषण करके उसके संयोजक पदार्थों के संबंध में जो कुछ निश्चय किया है उमके अनुसार १०० अंश दूध में ८६.८ अंश पानी, ४.८ अंश चीनी, २.६ अंश मेवा (मक्खन), ४.० अंश केसिन और (अंडे की) सफेदी और ०.७ अंश लज्जित पदार्थ (जैसे लड़िया, फास्फरस आदि) होता है ।

मुहा०—दूध उगलना = बच्चे का दूध पीकर कै कर देना । दूध उछालना = खींचते हुए दूध को ठंडा करने के लिये कड़ाही आदि में से उसे बार बार किसी छोटे बरतन में निकालना और उसमें से बार बार कड़ाई में दूध गिराना । दूध को ठंडा करने के लिये बार बार उसे धार बाँधकर नीचे गिराना । दूध उतरना = छातियों में दूध भर जाना । दूध और चीनी सा मिलना = विरोध लिए मिलना । उ०—कुछ न फल है दूध काजी सा मिले । जो मिले तो दूध जल वैसा मिले ।—**चुभते०**, पृ० १४ । दूध और चीनी सा मिल चलना = दो

का मिलकर और उत्तम हो जाना । उ०—निरय नैमित्तिक व्यवहार में वे दोनों दूध और चीनी की तरह मिल चले थे ।—**प्रेमघन०**, भा० २, पृ० २४४ । दूध और जल सा मिलना = सम भाव से मिलना । अमेद भाव से मिलना । उ०—मिल गए पर चाहिए फटना नहीं । तो परस्पर हों निछावर जो हिलें । कुछ न फल है दूध काजी सा मिले । जो मिले तो दूध जल वैसा मिले ।—**चुभते०**, पृ० ६४ । दूध का दूध और पानी का पानी करना = बिलकुल ठीक ठीक न्याय करना । पूरा पूरा न्याय करना । ऐसा न्याय करना जिसमें किसी पक्ष के साथ तनिक भी अन्याय न हो । जैसे,—आपने दूध का दूध और पानी का पानी कर दिया, नहीं तो वे लोग लड़ते लड़ते मर जाते । उ०—हम आताहि वह उधरि पड़ेगी दूध दूध पानी सो पानी ।—**सूर** (शब्द०) । दूध का दूध पानी या पानी होना = सब और झूठ का जुल जाना । उ०—मगर और, अब तो दूध का दूध और पानी का पानी हो गया ।—**सूर** कृ०, पृ० ४२ । दूध का बच्चा = वह बच्चा जो केवल दूध के ही आधार पर रहता हो । बहुत ही छोटा और केवल दूध पीनेवाला बच्चा । दूध का सा उबाल = बीघ जात होनेवाला क्रोध या मनोवेग आदि । दूध की मक्खी = तुच्छ और तिरस्कृत पदार्थ । दूध की मक्खी की तरह निकालना या निकालकर फेंक देना = किसी मनुष्य को बिलकुल तुच्छ और अनावश्यक समझकर अपने साथ या किसी कार्य आदि से एकदम अलग कर देना । उस तरह अलग कर देना जिस तरह दूध में से मक्खी अलग की जाती है । जैसे,—मैं लोगों ने उनको सभा से दूध की मक्खी की तरह निकाल दिया । उ०—मनसा बचन कर्मना अब हम कहत नहीं कछु राखी । **सूर** काढ़ि डारयो ब्रज तें ज्यों दूध मक्खि से माली ।—**सूर** (शब्द०) । मुँह से दूध की दू आना = अमी तक बच्चा और अनुभवहीन होना । विशेष अनुभव और ज्ञान न होना । दूध के दाँत = वे दाँत जो बच्चों की पहले पहल दूध पीने की अवस्था में निकलते हैं और छह सात वर्षों की अवस्था में उनके गिर जाने पर दूसरे दाँत निकलते हैं । दूध के दाँत न टूटना = अमी तक बच्चा होना । ज्ञान और अनुभव न होना । जैसे,—अभी तक तो उसके दूध के दाँत भी नहीं टूटे हैं, वह क्या मेरे सामने बात करेगा । दूध दुहना = स्तनों को दबाकर दूध की धार निकालना । दूध देना = अपने स्तनों से से दूध छोड़ना । अपनी छातियों में से दूध निकालना । जैसे,—उनकी भैंस ८ सेर दूध देती है । दूध बढ़ना = (१) स्तन से निकलनेवाले दूध की मात्रा का कम होना । जैसे,—इधर कई दिनों से इसकी माँ का दूध बढ़ गया है । (२) स्तन से निकलनेवाले दूध की मात्रा बढ़ना । दूध बढ़ाना = दुहते समय गाय का अपने दूध को स्तनों में ऊपर की ओर खींच लेना जिससे दुहनेवाला उसे खींचकर बाहर न निकाल सके । (प्रायः गाय भैंस आदि अपने बछड़ों के लिये स्तनों में दूध चुरा रखती हैं, इसी को दूध बढ़ाना कहते हैं ।) छठी का दूध याद आना = दे० 'छठी' के मुहा० । दूध छुड़ाना = बच्चे की दूध पीने की अवसर छुड़ाना । किसी को

दूध छोड़ने में प्रवृत्त करना। दूध डाढ़ना = बच्चों का पीए हुए दूध की कै कर देना। दूध तोड़ना = (१) गाय आदि का दूध देना बंद या कम कर देना। (२) गरम दूध को ठंडा करने के लिये हिंसा या घँघोलना। दूधों नहाओ पुतों फलो = धन और संतान की वृद्धि हो। संपत्ति और संतान खूब बढ़े (आशीर्वाद)। दूध पिछाना = बालक का मुँह स्तन के साथ लगाकर उसे दूध की धार खींचने देना। दूध पीता बच्चा = गोद का बच्चा। बहुत छोटा बच्चा। दूध पीना = स्तन को मुँह में लगाकर उसमें से दूध की धार खींचना। स्तनपान करना। किसी चीज का दूध पीना = (किसी चीज का) ऐसी दशा में रहना जिसमें उसके नष्ट होने आदि का खटक न रहे। जैसे, —आप चबराइए नहीं, आपके रूपए दूध पीते हैं। दूध फटना = सटाई आदि पड़ने के कारण दूध का जल अलग और सार भाग या छेना अलग हो जाना। दूध बिगड़ना। दूध फाड़ना = किसी क्रिया से दूध का पानी और छेना या सार भाग अलग अलग करना। दूध बढ़ाना = दूध छुड़ाना। बच्चे की दूध पीने की आवश्यकता। उ० — दूध बढ़ाने के पीछे गंगा जी ने दोनों लड़के बालमोक जी को सौंप दिए। —सीताराम (शब्द०)। (स्तनों में) दूध भर घाना = बच्चे की ममता या स्नेह के कारण माता के स्तनों में दूध उतर घाना। माता का प्रेम बढ़ना।

२. घनाज के हरे बीजों का रस जो पीछे से जमकर सत हो जाता है।

मुहा० —दूध पड़ना = घनाज में रस पड़ना। घनाज का तैयारी पर घाना।

३. दूध की तरह का वह तरल पदार्थ जो अनेक प्रकार के पौधों की पत्तियों और डंठलों में रहता और उनके तोड़ने पर निकलता है। जैसे, मदार का दूध, बरगद का दूध।

दूधचढ़ी —वि० स्त्री० [हि० दूध + चढ़ना] दूध देने में बढ़ी हुई। जिसके स्तनों में दूध पूर्व की अपेक्षा बढ़ गया हो। उ० — गैया गनी न जाहि तरणि सब बन्धु बड़ी। ते चरहि अमुन के कल्लू बूने दूध चढ़ी। —सूर (शब्द०)।

दूधपिलाई —संज्ञा स्त्री० [हि० दूध + पिलाना] १. दूध पिलानेवाली दाई। २. ग्याह की एक रस्म जिसमें बारात के समय घर के घोड़ा या पालकी आदि पर चढ़ने के पूर्व माता घर की दूध पिलाने की सी मुद्रा करती है। ३. वह धन या नेत्र जो माता की इस क्रिया के बदले में मिलता है।

दूधपूत —संज्ञा पु० [हि० दूध + पूत (= पुत्र)] धन और संतति। उ० — दूधपूत की छोड़ी आस। मोघन भरता करे निराम। सचि हित हरि सों कियो। —सूर (शब्द०)।

दूधफेनी' —संज्ञा स्त्री० [सं० दुग्धफेनी] एक प्रकार का पोषा जो दवा के काम में आता है।

दूधफेनी^२ —संज्ञा स्त्री० [हि० दूध + फेनी] फेनी नाम का पकवान जो मेदे का बना हुआ और मूत के लच्छों के रूप में होता है और जो दूध में पकाकर खाया जाता है।

दूधबहन —संज्ञा स्त्री० [हि० दूध + बहन] ऐसी बालिका जो किसी ऐसी स्त्री का दूध पीकर पनी हो जिसका दूध पीकर और कोई बालिका या बालक भी पला हो।

विशेष —जब कोई स्त्री किसी दूसरी स्त्री की बालिका को अपना दूध पिलाकर पालती है तब वह बालिका उस पहली स्त्री के लड़कों या लड़कियों की दूधबहन कहलाती है।

दूधभाई —संज्ञा पु० [हि० दूध + भाई] [स्त्री० दूधबहिन] ऐसे दो बालकों में से एक जो एक ही स्त्री के स्तन का दूध पीकर पले हों पर जिनमें से कोई एक दूसरे माता पिता से उत्पन्न हो।

विशेष —जब कोई स्त्री किसी दूसरी स्त्री के बालक को अपना दूध पिलाकर पालती है तब उन दोनों स्त्रियों के बालक परस्पर दूधभाई कहलाते हैं।

दूधमलाई —संज्ञा स्त्री० [हि० दूध + मलाई] एक प्रकार की बूटोदार मलमल।

दूधमसहरी —संज्ञा स्त्री० [हि० दूध + मसहरी] एक प्रकार का रेशमी कपड़ा।

दूधमुँहा —वि० [हि० दूध + मुँहा] जो अभी तक माता का दूध पीता हो, अथवा जिसके दूध के दाँत अभी न दूँटे हों। छोटा बच्चा। बालक।

दूधमुख —वि० [हि० दूध + सं० मुख] छोटा बच्चा। बालक। दूधमुँहा। उ० — नाथ करहु बालक पर छोह। सुध दूधमुख करिय न कोह। —तुलसी (शब्द०)।

दूधराज —संज्ञा पु० [देश०] १. एक प्रकार की बुलबुल जो भारत, अफगानिस्तान, तुर्किस्तान में पाई जाती है। भारत में यह स्थिर रूप से रहती है। इसे गाह बुलबुल भी कहते हैं। २. एक प्रकार का सौंप जिसका फन बहुत बड़ा होता है।

दूधवाला —संज्ञा पु० [हि० दूध + वाला (प्रत्य०)] [स्त्री० दूध-वाली] दूध बेचनेवाला। ग्याला।

दूधसार —संज्ञा पु० [हि० दूध + सं० सार] एक प्रकार का केला।

दूधहंडी —संज्ञा स्त्री० [हि० दूध + हंडी] मिट्टी की वह हंडी जिसमें दूध रखकर आग पर पकाते हैं। मेटिया।

दूधा —संज्ञा पु० [हि० दूध] १. एक प्रकार का धान जो अगहन के महीने में तैयार हो जाता है और जिसका आवन वर्षों तक रह सकता है। २. अन्न के कच्चे दानों में का रस जो दूध के रंग का होता है।

दूधाधारी^१ —वि० [हि० दूध + सं० आधारी या आधारी] दुग्धाधारी। दूध मात्र पीकर रहनेवाला।

दूधाभासी —संज्ञा स्त्री० [हि० दूध + भात] विवाह की एक रस्म जिसमें घर और कन्या दोनों अपने अपने हाथ से एक दूसरे को दूध और भात खिलाते हैं। यह रस्म विवाह से चौथे दिन होती है।

दूधाधारी —वि० [हि०] ३० 'दूधाधारी'।

दूधिया' —वि० [हि० दूध + दया (प्रत्य०)] १. दूध संबंधी। जिसमें दूध मिला हो अथवा जो दूध से बना हो। जैसे, दूधिया भांग। २. दूध के रंग का। सफेद। श्वेत। ३. कच्चा।

होने के कारण जिसके अंदर का दूध अभी तक सूखा न हो।
वैसे, दूधिया सिचाड़ा।

दूधिया^२—संज्ञा पुं० १. एक प्रकार का सफेद बड़िया और चमकीला
पत्थर जिसकी गिनती रत्नों में होती है।

विशेष—कभी कभी इसके रंग में कुछ लाली, भूरापन या हरापन
भी रहता है। इसमें रेत का भाग अधिक रहता है और कुछ
सोहा भी रहता है। यह कई प्रकार का होता है और इसमें
धूपछाई की सी चमक होती है। अंगूठियों में इसका नग बना
जाता है।

२. एक प्रकार का सफेद, घटिया मुलायम पत्थर जिसकी प्यालियाँ
आदि बनती हैं जिन्हें पथरी कहते हैं। ३. एक प्रकार का हलुवा
सोहन जो दूध मिलाते के कारण कुछ नरम हो जाता है।

दूधियाकंजई—संज्ञा पुं० [हि० दूधिया + कंजई] दे० 'दूधिया कंजई'।

दूधियाखाकी—संज्ञा पुं० [हि० दूधिया + खाकी] सफेद राख का
सा रंग।

दूधियापत्थर—संज्ञा पुं० [हि० दूधिया + पत्थर] दे० 'दूधिया'।

दूधियाविष—संज्ञा पुं० [हि० दूधिया + सं० विष] तेलिया विष।
मीठा जहर।

दूधी^१—संज्ञा स्त्री० [हि० दुधी] दे० 'दुधी'।

दून^१—संज्ञा स्त्री० [हि० दूना] १. दूने का भाग।

मुहा०—दून की लेना या हाँकना=बहुत बड़ चढ़कर बातें
करना। अपनी शक्ति के बाहर की या असंभव बातें कहना।
डोंग मारना। मोली हाँकना। दून की सूझना=अपनी शक्ति
के बाहर की बातें सूझना। बहुत बड़ी या असंभव बात का
ध्यान में आना।

२. जितना समय लगाकर गाना या बजाना आरंभ किया जाय
उसके आधे समय में गाना या बजाना। साधारण से कुछ
जल्दी जल्दी गाना।

दून^२—वि० [हि० दूना] दे० 'दूना'।

दून^३—संज्ञा पुं० [सं० द्रोणि] दो पहाड़ों के बीच का मैदान। तराई।
बाटी।

दूनर(५)—वि० [सं० दिनर] जो मचककर दोहरा हो गया हो।
उ०—दंतनि अक्षर दाहि दूनर भई सी आपि ओघर पचीघर
के नूनर निबरे है।—पद्माकर प्र०, पृ० ८२।

दूनसिरिस—संज्ञा पुं० [देग०] सफेद सिरिस का पेड़ जो बहुत
ऊँचा होता है और जल्दी बढ़ जाता है।

विशेष—इसकी साल हरापन लिए सफेद और हरी की लकड़ी
भूरी, चमकदार और मजबूत होती है। तोल इसकी प्रति
घनफुट १५ से २० सेर तक होती है। इसकी लकड़ी से
ईख वेरने का कोरू, मूसल, पहिए, चाय के सटक और
सेती के छोजार बनाए जाते हैं। इमारत और पुलों के
काम में भी यह आती है और इसका कोयला भी बनाया
जाता है। इसमें से तेल बहुत निकलता है और इसके
फूल बड़े सुगंधित होते हैं। हिमालय पर्वत पर यह बोधी
ऊँचाई तक होता है।

दूना—वि० [सं० द्विगुण] [वि० स्त्री० दूनी] दुगुना। दोबारा।
दो बार उतना ही। वैसे,—यह दूनी मकई का काम है।

उ०—अस कस कहहु मानि मन ऊना। सुख सोहायु तुम्ह
कहु दिन दूना।—मानस, २। २१।

मुहा०—बिल दूना होना=मन में खूब उत्साह और उमंग होना।
दिन दूना रात चौगुना होना=दे० 'दिन' के मुहा०।

दूनिया(५)^१—संज्ञा स्त्री० [सं० दुनिया] दे० 'दुनियाँ'। उ०—
दुनिया दुश्मती सुमति ते बीछुड़ी, धंध बोला किया कुमति
बानी।—कबीर दे०, पृ० ८।

दूनै^१—वि० [प्रा० दोगिण, दोगिन] दोनों। उ०—बिप्र साप ते दूनै
भाई। लामस प्रसुर देह तिन्ह पाई।—मानस, १। १२२।

दूनै(५)^१—वि० [प्रा० दोगिण] दे० 'दोनों'।

दूनै^२—वि० दे० 'दूना'। उ०—जु कुछ जन्म उत्सव में कीनी।
ब्रजपति ताते दूनै दीनी।—नंद० प्र०, पृ० २८४।

दूप(५)—वि० [सं० दूष] पुष्ट। बलवान। उ०—उपज्यो धनम
धनूपम रूपं। नहि आकृति अक्षर नर दूप।—पृ० रा०, १।
२५७। (क) मुष चंद्रगुप्त सम चंद्र रूप। प्रतापसिंह आरेन
दूप।—पृ० रा०, १। २८७।

दूप—वि० [सं०] शक्तिमान्। बलवान् [को०]।

दूष—संज्ञा स्त्री० [सं० दूषा] एक प्रकार की प्रसिद्ध चास जो पश्चिमी
पंजाब के थोड़े से बलुए भाग को छोड़कर समस्त भारत में
और पहाड़ों पर आठ हजार फुट की ऊँचाई तक बहुत अधिकता
से होती है। बोधी चास। हंगियाली।

विशेष—यह सब तरह की जमीनों पर और प्रायः सब ऋतुओं
में होती है और बहुत जल्दी तथा सहज में फैल जाती है।
इसकी बाहरी गाँठे जहाँ जमीन से छू जाती हैं वहीं जम जाती
हैं और उनमें लंबी और बहुत पतली पत्तियाँ निकलने लगती
हैं। गाँव और थोड़े दूरे बड़े प्रेम से खाते हैं और इससे उनका
बल खूब बढ़ता है। गाँव और भैंसे आदि इसे खाकर खूब
मोटी हो जाती हैं और अधिक दूध देने लगती हैं। यह सुखान-
कर भी बरसों रखी जा सकती है। जिस स्थान पर एक बार
यह हो जाती है वहाँ से इसे बिलकुल निकालना बहुत कठिन
होता है। यह साधारणतः तीन प्रकार की होती है;—हरी,
सफेद और गाँवर [दे० 'गाँवर' २]। वैद्यक में दूष की
साधारणतः कसेली, मधुर, छोटल और पित्त, तृषा, अरुचि,
दाह, मूर्च्छा, कफ, मूतबाधा और श्रम को दूर करनेवाली
कहा है। हिंदू लोग इसका व्यवहार लक्ष्मी और गणेश आदि
के पूजन में करते और इसे मंगलद्रव्य मानते हैं।

दूषदू—क्रि० वि० [फ्रा०] सामने सामने। मुकाबले में। आमने सामने।
मुहामुह। वैसे,—जबतक उनसे दूषदू बातें न हों, तबतक
इस विषय में कुछ नहीं कहा जा सकता। उ०—करे गुप्तगु
उनसे जो दूषदू। मती सारे उनके न कोई अदू।—कबीर मं०,
पृ० १३२।

दूबर^१—वि० [सं० दुर्बल] [वि० स्त्री० दुबरि] दे० 'दूबरा'।
उ०—तुया गुन सुंदरि मति भेल दूबरि गुनि गुनि प्रेम
तोहरि।—विद्यापति, पृ० ११६।

दूबरा^७—वि० [सं० दुर्बल] [वि० स्त्री० दूबरी] १. दुबला । पतला । क्षीण । कृष्ण । उ०—बहु दूबरी होत क्यों यों जब बूझी सास । ऊतर कह्यो न बाल मुख ऊँचे लेत उसास ।—मति० प्र०, पृ० २६६ । २. कमजोर । निर्बल । नाजुक । उ०—बहुत दिन के दूबरे ये कहीं ली बिलवाहि ।—वनानंद, पृ० ४७५ । ३. दबल । दीन । उ०—श्री हरिदास के स्वामी श्याम कुंजबिहारी कर जोरि मीन हूँ, दूबरे की रंधी जोर कहो कीने साई है ?—हरिदास (सन्द०) ।

दूबला—वि० [सं० दुर्बल] दे० 'दुबला' ।

दूबा—संज्ञा स्त्री० [हि० दूबा] दे० 'दुब' ।

दूबिया—वि० [हि० दूब + द्या (प्रत्य०)] एक प्रकार का रंग । हरी चास का सा रंग ।

दूबे—संज्ञा पुं० [सं० द्विवेदी] द्विवेदी ब्राह्मण ।

दूबर—वि० [सं० दुर्भर (= जिसका निर्वाह कठिन हो)] जिसके करने में बहुत कठिनता हो । कठिन । मुश्किल । दुःसाध्य । जैसे,—इस घोषहर को तो उनके यहाँ जाना बहुत दूबर मालूम होता है । उ०—कहीं मुझको स्थान एक तिल, जहाँ श्री गया दूबर, झिलमिल । दया दृष्टि ही जो उमरा बिल, छोड़ी वे जो कड़ियाँ ली थीं ।—भारावना, पृ० ८१ ।

दूमणी—वि० [सं० दुर + मन, प्रा० दुम्भण] [वि० स्त्री० दूमणी] उदास । खिन्नमन । उ०—मालवणी मनि दूमणी, भावी बरग विमासि । रहवारी पुछी करी, भाई करहा पासि ।—छोला०, दृ० १०२ ।

दूमना^७—क्रि० प्र० [सं० दूम] हिलना । झोतना । उ०—दूम दूम बार बार झूमि पिक बरजोर घूमि धनधोर मोर जूमि बहु ओर टेरि टेरि ।—दीन० प्र०, पृ० ४१ ।

दूमा—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का चमड़े का छोटा थैला जिसमें तिब्बत से चाय भरकर आती है । इसमें प्रायः तीन सेर तक चाय आती है ।

दूमुहों—वि० [हि० दो + मुँह] दे० 'दुमुँह' ।

दूयन—संज्ञा पुं० [सं०] ज्वर । ताप [को०] ।

दूरदेश—वि० [प्रा०] आगापीछा सोचनेवाला । दूर तक की बात विचारनेवाला । होशियार । अग्रगोची । दूरदर्शी ।

दूरदेशी—संज्ञा स्त्री० [प्रा०] दूर की बात पहले से ही सोच लेना । दूरदर्शिता ।

दूर—क्रि० वि० [सं०, मि० प्रा० दूर] देश, काश या संबंध आदि के विचार से बहुत अनर पर । बहुत फासले पर । पास या निकट का उलटा । जैसे,—(क) वे टहलते टहलते बहुत दूर चले गए । (ख) आप दूर से ही रास्ता बतलाना शुरू जानते हैं । (ग) अभी सड़के की सादी बहुत दूर है । (घ) हमारा इनका बहुत दूर तक का रिश्ता है । (ङ) दिल्ली की करते करते वे बहुत दूर तक पहुँच गए, बाप बाबे तक की मालिमा देने लगे ।

मुहा०—दूर करना = (१) भलग करना । जुदा करना । अपने पास से हटाना । (२) न रहने देना । मिटाना । जैसे,—(क)

कपड़े का चम्भा दूर कर दो । (ख) दो चार दफे जाने जाने से तुम्हारा डर दूर हो जायगा । दूर की कीड़ी लाना = दूर की सुक । कल्पना की उड़ान । उ०—क्योंकि वह भी बहुत दूर की कीड़ी लाया है ।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० २२७ । दूर की सुझाना = अनुपस्थित या भविष्य की फलक दिखाना । उ०—सुझकर सुझता नहीं जिनको वे उन्हें दूर से सुझाते हैं ।—बोले०, पृ० ३८ । दूर की सुझना = असंबद्ध बात कहना । उ०—बरफ नहीं एक बहु लामो संक्षिपा इनके सिये बरफ साधो ! क्या दूर की सुझी है ।—फिसाना०, भा० ३, पृ० ३१ । दूर क्यों जायें या जाइए = अपरिचित या दूर का दृष्टांत न लेकर परिचित और निकटवाले का ही विचार करें । जैसे,—दूर क्यों जायें अपने अपने पड़ोसी की ही बात सोजिए । दूर दूर करना = पास न आने देना । प्रत्यंत घृणा और तिरस्कार करना । दूर भागना या रहना = बहुत घृणा या तिरस्कार के कारण बिल्कुल भलग रहना । बहुत बचना । पास न जाना । जैसे,—हम तो ऐसे लोगों से सदा दूर भागते (या रहते) हैं । दूर रहना = कोई संबंध न रखना । बहुत बचना । जैसे,—ऐसी बातों से जरा दूर रहा करो । दूर होना = (१) हट जाना । भलग हो जाना । छट जाना । (२) मिट जाना । लुप्त हो जाना । न रहना । दूर पहुँचना = (१) साधन या सामर्थ्य के बाहर । शक्ति आदि के बाहर । (२) दूर की बात सोचना । बहुत बारीक बात सोचना । दूर की बात = (१) बारीक बात । (२) कठिन या दुःसाध्य बात । (३) बहुत धागे चलकर आनेवाली बात । अनुपस्थित बात । दूर की कहना = बहुत समझवारी की बात कहना । दूरदर्शिता की बात कहना ।

दूर^२—वि० जो दूर हो । जो फासले पर हो । जैसे, दूर देश ।

दूरदेशी—संज्ञा स्त्री० [प्रा०] दे० 'दूरदेशी' । उ०—मनुष्य के मन में जो वृत्ति प्रबल होती है वह उसी के अनुसार काम किया चाहता है और दूरदेशी की सब बातों को सहसा भूल जाता है ।—श्रीनिवास प्र०, पृ० २२६ ।

दूरग^२—संज्ञा पुं० [सं० दुरंग] दे० 'दुरंग' । उ०—पाई कंकण सिर बंधीयो मोड़ । प्रथम पयाण उ^३ दूरग चोतोड़ ।—वी० रासो, पृ० १२ ।

दूरग^२—वि० [सं०] दूर तक जानेवाला । दूर तक गया हुआ ।

दूरगामी—वि० [सं० दूरगामिन्] दूर तक चलनेवाला ।

दूरग्रहण—संज्ञा पुं० [सं०] दूर की (प्रतीत या भविष्य की) वस्तु देखने की शक्ति [को०] ।

दूरतः—क्रि० वि० [सं० दूरतम्] दूर से ही [को०] ।

दूरता—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'दूरत्व' ।

दूरत्व—संज्ञा पुं० [सं०] दूर होने का भाव । अंतर । दूरी । फासला ।

दूरदर्शक^२—वि० [सं०] दूर तक देखनेवाला ।

दूरदर्शक^२—संज्ञा पुं० पंडित । बुद्धिमान् ।

दूरदर्शकयंत्र—संज्ञा पुं० [सं० दूरदर्शक + यन्त्र] दूरबीन नाम का यंत्र जिससे बहुत दूर की चीजें दिखाई पड़ती हैं ।

दूरदर्शन—संज्ञा पुं० [सं०] १. गिद्ध । २. विद्वान् । पंडित । ३. समझदार । ४. दूरबीन ।

दूरदर्शिता—संज्ञा स्त्री० [सं०] दूर की बात सोचने का गुण । दूरदर्शी ।

दूरदर्शी^१—संज्ञा पुं० [सं० दूरदर्शिन] १. पंडित । २. गृध्र । गीघ ।

दूरदर्शी^२—वि० बहुत दूर की बात सोचने या समझनेवाला । जो पहले से ही बुरा भला परिणाम समझ ले । अग्रगोची । दूरदेश ।

दूरदृक्—वि०, संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'दूरदर्शी' [को०] ।

दूरदृष्टि—संज्ञा स्त्री० [सं०] भविष्य का विचार । दूरदर्शिता । दूरदेशी ।

दूरनिरीक्षण—संज्ञा पुं० [सं०] दूरबीन नाम का यंत्र ।

दूरपात—वि० [सं०] दूर से आने के कारण थकी (सेना) । विशेष दे० 'नवागत' ।

दूरषा(७)—संज्ञा पुं० [सं० दूर्षा] दे० 'दूर्षा' ।

दूरबीन—संज्ञा पुं० [फ्रा०] दूरबीन नाम का यंत्र जिससे बहुत दूर तक की चीजें साफ साफ दिखाई पड़ती हैं ।

विशेष—यह यंत्र एक गोल नल के आकार का होता है जिसमें आगे घोर पीछे दो गोल लींसे लगे होते हैं । आगेवाले लींसे को प्रधान लेंस और पीछेवाले लींसे को उपलेंस या चक्षुर्लेंस कहते हैं । प्रधान लेंस अपने सामनेवाले पदार्थ का प्रतिबिम्ब ग्रहण करके अपने पीछेवाले लेंस पर फेंकता है और पीछे वाला लेंस या उपलेंस उस प्रतिबिम्ब को विस्तृत करके आँखों के सामने उपस्थित करता है । आवश्यकतानुसार प्रधान लेंस आगे या पीछे हटाया बढ़ाया भी जा सकता है । दर्शनीय पदार्थों की आकृति की छोटाई या बड़ाई इन्हीं दोनों लेंसों की दूरी पर निर्भर रहती है । कभी कभी दोनों आँखों से देखने के लिये एक ही तरह के दो नलों को एक साथ जोड़ कर भी दूरबीन बनाई जाती है ।

दूरबीन का आविष्कार पहले पहल हालैंड देश में सत्रहवीं शताब्दी के प्रारंभ में हुआ था । एक बार एक चर्मनाला अपनी दुकान पर बैठा हुआ काम कर रहा था । इतने में उसकी लड़की सहसा चिल्ला उठी कि देखो वह मामने का बुज्ज कितना पास आ गया । चर्मनाले ने देखा कि उसकी लड़की दोनों लींशों को आगे पीछे रखकर देख रही है । जब उसने भी इसी प्रकार इन लींशों को रखकर देखा तब उसे उसका उपयोग जान पड़ा । इसके तुरन्त उसने अनेक प्रकार की परीक्षाएँ करके कुछ सिद्धांत स्थिर किए और उन्हीं के अनुसार दूरबीन का आविष्कार किया । उसके कुछ ही दिनों के उपरांत प्रसिद्ध ज्योतिषी गैलीलियो ने भी स्वतंत्र रूप से एक प्रकार की दूरबीन का आविष्कार किया था । तब से दूरबीन बनाने के काम में बराबर उन्नति होती आई है । आजकल दूरबीन का उपयोग सूर के लिये, दूर के अच्छे अच्छे दृश्य देखने, युद्धक्षेत्र में शत्रुओं की सेना आदि का पता लगाने और आकाशिय तारों आदि को देखने में होता है । आकाश के तारे

आदि देखने के लिये आजकल की वेधशालाओं में जो दूरबीनें होती हैं वे बहुत ही भारी होता हैं । उनके नलों की लंबाई सात फुट तक और व्यास तीन फुट तक होता है ।

२. छोटी दूरबीन के आकार का लड़कों का एक खिलौना जिसमें एक घोर लींसा लगा रहता है और जिसमें आँख लगाकर देखने से रंग बिरंगे फूल आदि दिखाई देते हैं ।

दूरभिन्न—वि० [सं०] अत्यधिक आहत । बहुत घायल [को०] ।

दूरमूल—संज्ञा पुं० [सं०] मूँज ।

दूरयात्री—वि० [सं० दूरयात्रिन्] दूर जानेवाला । दूरगामी [को०] ।

दूरवर्ती—वि० [सं० दूरवर्तिन्] दूर का । दूरस्थ । जो दूर हो ।

दूरवस्त्रक—वि० [सं०] निर्वस्त्र । नग्न [को०] ।

दूरवासी—वि० [सं० दूरवासिन्] दूर का रहनेवाला [को०] ।

दूरवीक्षण—संज्ञा पुं० [सं०] दूरबीन ।

दूरवेधी—वि० [सं० दूरवेधिन्] दूर से मारनेवाला । दूर ही से लक्ष्य पर प्रहार करनेवाला [को०] ।

दूरस्थ—वि० [सं०] जो दूर हो । दूर का । समीपस्थ का उलटा ।

दूरस्थित—वि० [सं०] 'दे० 'दूरस्थ' ।

दूरान्तरित—वि० [सं० दूरान्तरित] दूर रहनेवाला [को०] ।

दूरागत—वि० [सं०] दूर से आया हुआ । उ०—आज किसी के मसले तारों की वह दूरागत भंकार ।—यामा, पृ० १४ ।

दूरात्—क्रि० वि० [सं०] दूर से [को०] ।

दूरान्वय—संज्ञा [सं०] विशेष्य विशेषण, कर्ता क्रिया आदि का इतनी दूर होना जिससे अर्थव्यक्ति में बाधा पड़े । काव्य का एक दोष [को०] ।

दूरापात—संज्ञा पुं० [सं०] वह अस्त्र जिससे दूर से फेंककर मारा जाय ।

दूरारूढ—वि० [सं० दूरारूढ] १. गहरा । २. बड़मूल । ३. तीव्र । ४. दूर पहुँचा या बढ़ा हुआ [को०] ।

दूरि(७)—वि० [सं० दूर] दे० 'दूर' । उ०—भगति पञ्च हउ नहि सठताई । दुष्ट तर्क सब दूरि बहाई ।—मानस, ७ । ४६ ।

दूरिट्टा—वि० [सं० दूरस्थित, प्रा० दूरिट्ट] दे० 'दूरस्थ' । पूमल पिमल राठ, नल राजा नरबरे मयरे । अदिठः दूरिट्टा ये, सगाई दीव संयोगे ।—ढोला०, दू० १ ।

दूरी^१—संज्ञा स्त्री० [हि० दूर + ई (प्रत्यय)] दो वस्तुओं के मध्य का स्थान । दूरत्व । अंतर । फासला । बीच । अवकाश । जैसे,—जरा इन दोनों लंबों के बीच की दूरी तो नापो ।

दूरी^२—संज्ञा स्त्री० [देश०] छाकी रंग की एक प्रकार की लबा (चड़िया) ।

दूरीकरण—संज्ञा पुं० [सं०] दूर करना । दूर हटाना [को०] ।

दूरुडा—संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक के अनुसार एक प्रकार का क्षुद्र रोग ।

दूरेचमित्र—संज्ञा पुं० [सं०] उनवास मस्तों में से एक मद्य का नाम ।

दूरेचर—वि० [सं०] १. दूर रहनेवाला । २. दूर दूर घूमनेवाला [को०] ।

दूरैरितेक्षण—वि० [सं०] ऐंवाताना [को०] ।

दूरेभवा—वि० [सं० दूरेभवस्] जिसका यत्न दूर तक सुनाई पड़े ।
बहुत प्रसिद्ध ।

दूरोह—संज्ञा पु० [सं०] आविर्भूतलोक जहाँ बढ़कर जाना
असंभव है ।

दूहोहण—संज्ञा पु० [सं०] सूर्य ।

दूर्य—संज्ञा पु० [सं० दूर्य्य] १. छोटा कचूर । २. बिष्टा ।
पुरीष । मल ।

दूर्वा—संज्ञा स्त्री० [सं०] दूब नाम की घास ।

विशेष—दे० 'दूब' ।

दूर्वाकुर—दूब का नवीन, कोमल, भागे का भ्रूवुवा ।

दूर्वाक्षी—संज्ञा स्त्री० [सं०] भागवत के अनुसार वसुदेव के भाई
शुक की स्त्री का नाम ।

दूर्वाद्य घृत—संज्ञा पु० [सं०] वैद्यक में एक विशिष्ट प्रकार से बनाया
हुआ नकरी का घी जिसमें दूब, मजीठ, एलुधा, सफेद
चंदन आदि मिलाया जाता है और जिसका व्यवहार शूलि,
मुँह, नाक, कान आदि से रक्त जाने में होता है ।

दूर्वाष्टमी—संज्ञा स्त्री० [सं०] भादों सुदी अष्टमी, जिस दिन व्रत
आदि करते हैं ।

दूर्वासोम—संज्ञा पु० [सं०] सुश्रुत के अनुसार एक प्रकार की
सोमलता ।

दूर्ध्विका, दूर्ध्वष्टका—संज्ञा स्त्री० [सं०] यज्ञ की वेदी में काम आने-
वाली एक प्रकार की ईंट ।

दूर्जन—संज्ञा पु० [सं० दोलन] दे० 'दोलन' ।

दूर्लभा—वि० [सं० दुर्लभ] दे० 'दुर्लभ' ।

दूर्लभा—वि० [सं० दुर्लभ] कठिनता से प्राप्त होने योग्य । दुर्लभ ।

दूर्लभ—संज्ञा पु० [सं० दुर्लभ, प्रा० दुर्लभ] १. वह मनुष्य जिसका
विवाह अभी हाल में हुआ हो या शोध ही होने को हो ।
दुलहा । बर । नीला । २. पति । स्वामी । आविर् । ३.
हिंदी के अलंकार ग्रंथ 'कविकुलकटाक्षर' के रचयिता
एक कवि ।

दूर्लभु—संज्ञा पु० [हि० दूर्लभ] दे० 'दुलहा' । उ०—जस दूर्लभ
तस बनी बराता । कौतुक विविध होहि मय जाता ।—मानस,
१६४ ।

दूर्लिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'दुर्ली' ।

दूर्ली—संज्ञा स्त्री० [सं०] नील । नील का पेड़ ।

विशेष—दे० 'नील' का विशेष ।

दूर्लहा—संज्ञा पु० [सं० दुर्लभ, प्रा० दुर्लभ] दे० 'दुलहा' ।

दूर्ला—संज्ञा पु० [हि०] दे० 'दूधा' ।

दूर्वार—संज्ञा पु० [सं० द्वार] दे० 'द्वार' । उ०—कई पंडव पंथ
संचर, कह जाय सेवसू गंग दूर्वार ।—बी० रासो, पृ० ४४ ।

दूर्य—संज्ञा पु० [सं०] तंभू । सेमा ।

दूषक—संज्ञा पु० [सं०] १. दोष लगावेवाला मनुष्य । वह जो

किसी पर दोषारोपण करे । उ०—ऐसे दरिद्र दूषक अरे
तिनहें सौं जो कहत बन, धिक्कार जनम वा अघम को सदा
सर्वदा मलिन मन ।—ब्रज ग्रं०, पृ० ११२ । २. वह जो दोष
उत्पन्न करे । दोष उत्पन्न करनेवाला पदार्थ ।

दूषक—वि० १. दोषजनक । बुरा । २. दोष करनेवाला । अपराधी ।
३. निंदक । कलंकित करनेवाला [को०] ।

दूषण—संज्ञा पु० [सं०] १. दोष । ऐब । बुराई । अवगुण । उ०—
तब हरि कह्यो हृदयो बिन दूषण हलधर भेद बतायो । वह
जादू खोज तुम कीजो द्वारावति धरि भायो ।—मूर
(शब्द०) । २. दोष लगाने की क्रिया या भाव । ऐब
लगाना । उ०—संदेह के अनंतर स्वप्न के स्थापन और
प्रतिपक्ष के दूषण करने पर जो अर्थ का अवधारण होता है
सो निगुण कहलाता है ।—सिद्धांतसंग्रह (शब्द०) । ३.
रावण के भाई एक राक्षस का नाम जो लर के साथ पंचवटी
में शूर्पणखा की रक्षा के लिये नियुक्त किया गया था और जो
शूर्पणखा की नाक और कान कट जाने पर पीछे रामचंद्र के
हाथ से मारा गया । ४. जैनियों के सामयिक धर्म में ३२
त्याग्य बातें या अवगुण जिनमें १२ कायिक, १० वाचिक
और १० मानसिक हैं । ५. दोष । अपराध (को०) । ६. पार-
स्परिक समझौता तोड़ना । विरोध या प्रतिवाद करना (को०) ।

दूषण—वि० [सं०] विनाशक । संहारक । मारनेवाला । उ०—
लक्ष्मण अहं शत्रुघ्न रीह दानव दल दूषण ।—केशव
(शब्द०) ।

दूषणारि—संज्ञा पु० [सं०] दूषण को मारनेवाले रामचंद्र ।

दूषणीय—वि० [सं०] दोष लगाने योग्य । जिसमें ऐब लगाया
जा सके ।

दूषण—संज्ञा पु० [सं० दूषण] दे० 'दूषण' ।

दूषणा—संज्ञा पु० [सं० दूषण] दोष लगाना । कलंकित करना ।

दूषि—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'दूषिका' ।

दूषिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. शूल की मेल । २. कुंभी । कलम ।
तूलिका (को०) । ३. एक प्रकार का चावल (को०) ।

दूषित—वि० [सं०] जिसमें दोष हो । खराब । बुरा । शेषयुक्त ।
कलंकित ।

दूषित—धोखा । धल [को०] ।

दूषिता—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह कन्या जो विवाह के पूर्व दूषित हो ।
दूषणप्राप्त कन्या [को०] ।

दूषो—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'दूषि' [को०] ।

दूषीका—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'दूषिका' ।

दूषीविष—संज्ञा स्त्री० [सं०] सुश्रुत के अनुसार शरीर में रहनेवाला
एक प्रकार का विष जो धातु को दूषित करता है और जिसे
हीन विष भी कहते हैं ।

विशेष—यदि किसी प्रकार का स्थावर, जंगम या कृत्रिम विष
शरीर में प्रविष्ट हो जाने के उपरांत पूरा पूरा बाहर नहीं
निकलता, उसका कुछ अंश शरीर में रहकर कार्य हो जाता

है अथवा विषनाशक धोषधों से दबाने या नष्ट करने पर भी पूर्ण रूप से नष्ट नहीं होना, तब वह कफ से आच्छादित होकर दूषी विष कहलाता और बरसों तक शरीर में ग्यास रहता है। जिसके शरीर में यह विष रहता है उसका रंग पीला पड़ जाता है, मल का रंग बदल जाता है, मुँह में दुर्गंध और विरसता होती है, प्यास लगती है, मुर्छा और के होती है और दूष्योदर के से लक्षण दिखाई देने लगते हैं। जब यह विष पक्काशय में रहता है तब मनुष्य के सिर और शरीर के बाल झड़ जाते हैं। जब इसका कोष होने लगता है तब जैभाई आती है, घंग दूटते हैं, रोएँ सके हो जाते हैं, शरीर पर चकसे पड़ जाते हैं, हाथ पैर सूज जाते हैं तथा इसी प्रकार के और उपद्रव होते हैं।

दृष्य^१—वि० [सं०] १. दोष लगाने योग्य। जिसमें दोष लगाया जा सके। २. निन्दनीय। निंदा करने योग्य। ३. तुच्छ। ४. राज्य को हानि पहुँचानेवाला (मनुष्य)।

दृष्य^२—संज्ञा पु० १. कपड़ा। वस्त्र। तबू। खेमा ३. पीव। पूय (को०)। ४. विष।

दृष्यमहामात्र—संज्ञा पु० [म०] वह न्यायाधीश या महामात्र नामक राजकर्मचारी जो भीतर भीतर राज्य का शत्रु हो या शत्रु का साथी हो।

दृष्ययुक्त—वि० [म०] राजविद्रोहियों से युक्त (सेना)।

विशेष—कोटिल्य ने लिखा है कि दृष्ययुक्त तथा दृष्यपाणिप्राह (जिसके पीछे की सेना दृष्य हो) सेना में दृष्ययुक्त सेना उत्तम है, क्योंकि आस पुष्टों के आधिपत्य में वह लड़ सकती है, पर पीछे के आक्रमण में घबड़ाई हुई दुष्ट पाणिप्राह सेना नहीं लड़ सकती है।

दृष्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] हाथी को बांधने का चमड़े का तस्मा या बंधन।

दूष्योदर—संज्ञा पु० [सं०] एक प्रकार का उदररोग। उ०—परिश्रम करने से शोष होय तो इसकी दूष्योदर संज्ञा कहते हैं।—माधव०, पु० १६५।

दूसना—क्रि० सं० [सं० दूषण] दे० 'दूषना'। उ०—कहि रेसम के सम दूसत है।—प्रेमघन०, भा० १, पु० २१०।

दूसरी—वि० [हि०] दे० 'दूसरा'।

दूसरा—वि० [हि० दो] [वि० स्त्री० दूसरी] १. जो क्रम में दो के स्थान पर हो। पहले के बाद का। द्वितीय। जैसे,—गली में बाएँ हाथ का दूसरा मकान उन्हीं का है। २. जिसका प्रस्तुत विषय या व्याक्ति से संबंध न हो। अन्य। अपर। और। गैर। जैसे,—हम लोग भाषण में लड़ें और बाहें भगड़ें, दूसरे से मतलब ?

मुहा०—दूसरों के सिर ठोकरा फोड़ना = दूसरों पर दोष मढ़ना। उ०—दूसरों की उबार सेते हैं एक दो बीर हो विपद में गिर। पर बहुत लोग पाक बनते हैं ठोकरा फोड़ दूसरों के सिर।—चुभते०, पु० १२।

बी०—दूसरी माँ = जो अपनी माँ न हो। सीतेजी माँ।

दूहना—क्रि० सं० [सं० दोहन] दे० 'दुहना'।

दूहनी—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'दोहनी'।

दूहा(उ)—संज्ञा पु० [हि०] दे० 'दोहा'।

दूहियाँ—संज्ञा पु० [देश०] एक प्रकार का जूहा।

टंभू—संज्ञा पु० [सं० टम्भू] दे० 'टम्भू'।

टक्—संज्ञा पु० [सं०] टस का समासप्राप्त रूप। दे० 'टग'।

टक^१—संज्ञा पु० [सं०] छिद्र। छेद।

टक^२—संज्ञा पु० [?] हीरा। उ०—निःकंठा टक बज्र पुनि हीरा पदक जु ऐन। निष्क सकुच तिय निरखि तन भूप भवन छवि मैन।—नंददास (शब्द०)।

टकाण—संज्ञा पु० [सं०] दे० 'टक्काण'।

टक्कार्य—संज्ञा पु० [सं०] साँप। अधुलवा।

विशेष—ऐसा प्रवाद है कि साँप सुनने का काम भी घ्राण से ही लेता है।

टक्कर्म—संज्ञा पु० [सं०] ज्योतिष में वह क्रिया या संस्कार जो ग्रहों को अपने स्थिति पर लाने के लिये किया जाता है और जिससे ग्रहों के योग, चंद्रमा की शृंगोन्नति तथा ग्रहों और नक्षत्रों के उदयास्त का पता चलता है। यह संस्कार दो प्रकार का होता है—आसटक् और प्रायनटक्।

टक्काण—संज्ञा पु० [यू० डेकानस, तुल० सं० ट्रेक्काण] फलित ज्योतिष में एक राशि का तीसरा भाग जो दश ग्रंथों का होता है।

विशेष—प्रत्येक राशि तीस ग्रंथों की होती है। राशि को तीन भागों में विभक्त करके एक एक भाग को टक्काण कहते हैं। इस प्रकार किसी एक राशि में प्रथम, द्वितीय और तृतीय तीन टक्काण होते हैं। उस राशि का ही अधिपति प्रथम टक्काण का स्वामी होता है, उससे पाँचवीं राशि का द्वितीय टक्काण का, और उससे नवीं राशि का तृतीय टक्काण का। जैसे, मेष राशि का स्वामी मंगल है। अतः मेष राशि के प्रथम टक्काण का स्वामी मंगल, द्वितीय टक्काण का रवि, (जो मेष से पाँचवीं राशि, सिंह का स्वामी है) और तृतीय टक्काण का बृहस्पति (जो मेष से नवीं राशि, धनु, का स्वामी है) होगा। यह टक्काण फलित ज्योतिष में काम आता है। शुभ ग्रहों के टक्काण का नाम 'जल' और अशुभ ग्रहों के टक्काण का 'दहन' है। जल टक्काण में जिसका जन्म होता है उसकी मृत्यु जल में होती है और दहन टक्काण में जिसका जन्म होता है उसकी मृत्यु अग्नि से होती है। राशियों के अनुसार टक्काणों के अनेक नाम कल्पित किए गए हैं।

टक्कस्य—संज्ञा पु० [म०] दृष्टि शक्ति का ह्रास। आँखों का कमजोर होना (को०)।

टक्क्षेप—संज्ञा पु० [सं०] १. दृष्टिपात। अवलोकन। २. दशम लग्न के नतांश की भुज ज्या।

विशेष—इसका काम सूर्यग्रहण के स्पष्टीकरण में पड़ता है। मध्य ज्या को उदय ज्या से गुणित कर भुजलगाव की विव्या

से भाग देते हैं फिर भागफल को वर्ग करके और उसमें मध्य ज्या के वर्ग को घटाने से जो शेष शंक रहता है उसका वर्गमूल निकालते हैं। यही वर्गमूल का शंक एकलेश कहलाता है।

दृक्पथ—संज्ञा पु० [सं०] दृष्टि का मार्ग। दृष्टि की पहुँच।

मुहा०—दृक्पथ में जाना = दिखाई पड़ना।

दृक्पात—संज्ञा पु० [सं०] दृष्टिपात। अवलोकन।

दृक्प्रसाद—संज्ञा स्त्री० [सं०] कुलस्था। कुलस्थाजन।

दृक्प्रिया—संज्ञा स्त्री० [सं०] कांति। शोभा। सुंदरता।

दृक्शक्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. प्रकाशरूप चैतन्य। २. आत्मा।

दृक्श्रुति—संज्ञा पु० [सं०] साँप।

दृगंचल—संज्ञा पु० [सं० दृगञ्चल] पलक। उ०—मए विलोचन चाह अंचल। मनहु सकुच निमि मए दृगंचल।—तुलसी (शब्द०)।

दृग्—संज्ञा पु० [सं०] दृश का समासगत रूप। नेत्र। आँख [स्त्री०]।

दृगु—संज्ञा पु० [सं० दृश, समास दृक्] १. आँख। उ०—जथा सुमंजन अंजि दृग साधक सिद्ध सुजान। कौतुक देखहि सौं वन भूतल भूरि निधान।—तुलसी (शब्द०)।

मुहा०—दृग झोलना या देना = नजर डालना। देखना। उ०—पाई परे हुतै प्रीतम स्यो कहि केशव क्यों हूँ न मैं दृग दोनी।—केशव (शब्द०)। दृग केरना = आँख केरना। अप्रसन्न रहना। उ०—दुःख और मैं कासों कहों को सुनै ब्रज की बनिता दुग फेरै रहै।—पद्माकर (शब्द०)।

२. देखने की शक्ति। दृष्टि। उ०—भ्रवण घटहु पुनि दृग घटहु घटो सकल बल देह। इते घटे घटिहै कहा जो न घटे हरि नेह।—(शब्द०)। ३. दो की संख्या।

दृगव्यक्त—संज्ञा पु० [सं०] सूर्य का एक नाम [स्त्री०]।

दृगनवंत—वि० [हिं० दृगन (बहु०) + वंत] आँखवाला। दृष्टि-वाला। उ०—भीजि बसन सुंदर तन लपटनि। दृगनवंत कहै अति सुख लपटनि।—नंद० ब्रं०, पृ० २६०।

दृगमिवाच—संज्ञा पु० [हिं० दृग + मिवाच] आँख मिचोची का खेल। उ०—मूँदे तहाँ एक अचलोके अनोखे दृग सु दृगमिवाच नेक क्यासन हितै।—पद्माकर (शब्द०)।

दृगमिवाच—संज्ञा पु० [हिं० दृग + मिवाच] दे० 'दृगमिवाच'।

दृगगणित—संज्ञा पु० [सं०] ग्रहों का वेध करके गणित करना।

दृगगणितैक्य—संज्ञा पु० [सं०] ग्रहों को किसी समय पर गणित से स्पष्ट करके फिर उसे वेध कर मिलाना और न्यूनता या अधिकता प्रतीत होने पर उसमें संस्कार करना जिससे ग्रहों के वेध और स्पष्ट में प्रागे भेद न पड़े।

दृगति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. दृष्टि की गति या पहुँच। २. वसाम-जन की नताश कोटिज्या।

विशेष—इसका काम सूर्यग्रहण निकालने में पड़ता है। इसकी रीति यह है कि मध्य ज्या को उदय ज्या से गुणित करे और गुणफल को चिज्या से भाग दे। फिर भागफल का वर्ग करे

और वर्गफल से चिज्या का वर्ग घटावे। इस प्रकार जो शेष शंक बचेगा उसका वर्गमूल दृगति कहलावेगा।

दृगोच्चर—वि० [सं०] जो आँख से दिखाई दे।

दृगोल—संज्ञा पु० [सं०] वह वृत्त जिसे ऊर्ध्व स्वस्तिक और अधः-स्वस्तिक में होता हुआ कल्पित करके जिधर ग्रहों का उदय होता है ऊपर घुमाकर उनकी स्थिति का पता चलाया जाता है। इसे दृग्मंडल और दृगवल्य भी कहते हैं।

दृग्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] दृग्मंडल या दृगोल के लस्वस्तिक से जो ग्रह जितना लटका रहता है उसे नताश कहते हैं और इसी नताश की ज्या दृग्या कहलाती है।

दृग्भू—संज्ञा पु० [सं०] १. वज्र। २. सूर्य। ३. सर्प।

दृग्लंबन—संज्ञा पु० [सं० दृग्लम्बन] ग्रहण स्पष्ट करने में जब सूर्य चंद्र गर्भाभिप्राय से एक सूत्र में आ जाते हैं, पर पुष्ठाभिप्राय से एक सूत्र में नहीं आते तब उन्हें पुष्ठाभिप्राय से एक सूत्र में लाने के लिये जो पूर्वापर संस्कार किया जाता है उसे दृग्लंबन कहते हैं।

दृग्विष—संज्ञा [सं०] वह साँप जिसकी आँखों में निध होता है।

दृग्वृत्ता—संज्ञा पु० [सं०] क्षितिज।

दृक्नति—संज्ञा स्त्री० [सं०] ग्रहण स्पष्ट करने में सूर्य चंद्र का जब अमांतकालीन स्पष्ट करते हैं और वे गर्भाभिप्राय से एक सूत्र में आ जाते हैं पर पुष्ठाभिप्राय से नहीं आते, तब पुष्ठाभिप्राय से उन्हें एक सूत्र में लाने के लिये जो याम्योत्तर संस्कार किया जाता है उसे दृक्नति कहते हैं।

दृग्मंडल—संज्ञा पु० [सं० दृग्मण्डल] दृगोल।

दृद्ध—वि० [सं० दृढ] दे० 'दृढ'। उ०—महा बंक गढ़ दृद्ध बुरजि कंगुर बर सोहै।—हम्मीररासो, पृ० १७।

दृढ़—वि० [सं० दृढ] १. जो शिथिल या ढीला न हो। जो खूब कसकर बंधा या मिला हो। प्रगाढ़। जैसे,—दृढ़ बंधन या गठि, दृढ़ आसिगन। २. जो जल्दी न हटे फूटे। पुष्ट। मजबूत। कड़ा। ठोस। जैसे,—इस फल का छिनका बहुत दृढ़ होता है। ३. बलवान्। बलिष्ठ। हृष्ट पुष्ट। जैसे, दृढ़ मंग। ४. जो जल्दी दूर, नष्ट या विचलित न हो सके। स्थायी। जैसे, दृढ़ आसन, दृढ़ संकल्प, दृढ़ सिद्धांत। ५. जो अन्यथा न हो सके। निश्चित। प्रुब। पक्का। जैसे, किसी बात का दृढ़ होना। ६. ठोठ। कड़े दिल का। जैसे, दृढ़ मनुष्य।

दृढ़^२—संज्ञा पु० १. लोहा। २. विष्णु। ३. धृतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम। ४. संगीत में सात रूपकों में से एक। ५. तेरहवें मनुष्य के एक पुत्र का नाम। ६. गणित में वह शंक जो दूसरे शंक से पूरा पूरा विभाजित न हो सके। जैसे,—१, २, ५, ७, ११, १७, इत्यादि।

दृढ़कंटक—संज्ञा पु० [सं० दृढ़कण्टक] श्लुद्रफलक वृक्ष।

दृढ़कर्मा—वि०—[सं० दृढ़कर्मन्] जो अपने कर्म में दृढ़ रहे। धैर्य और स्थिरता के साथ काम करनेवाला।

दृढ़कन्यूह—संज्ञा पु० [सं० दृढ़कन्यूह] कीटिल्य कवित यह भ्यूह जिसमें पक्ष तथा कक्ष कुछ कुछ पीछे हटे हों।

हृदकांड—संज्ञा पुं० [सं० हृदकाण्ड] १. वह वस्तु जिसके पीर या गठिं पुष्ट हों। २. बांस। ३. रोहिण बांस।
 हृदकांडा—संज्ञा स्त्री० [सं० हृदकाण्डा] छिरेटा। पातालगाढ़ी लता।
 हृदकारी—वि० [सं० हृदकारिन्] १. हृता से काम करनेवाला। २. मजबूत करनेवाला।
 हृदक्षत्र—संज्ञा पुं० [सं० हृदक्षत्र] धृतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम।
 हृदक्षुरा—संज्ञा स्त्री० [सं० हृदक्षुरा] बल्लजा वृण। सागे बागे।
 हृदगात्रिका—संज्ञा स्त्री० [सं० हृदगात्रिका] राव। खड़।
 हृदमंथि^१—वि० [सं० हृदमंथि] जिमकी गठिं मजबूत हों।
 हृदमंथि^२—संज्ञा पुं० बांस।
 हृदचेता—वि० [सं० हृदचेतस्] हृद विचारवाला। पक्के हरादे का (घादमी)।
 हृदच्छद—संज्ञा पुं० [सं० हृदच्छद] दीर्घ रोहिण वृण। बड़ी रोहिण।
 हृदच्युत—संज्ञा पुं० [सं० हृदच्युत] अगस्त्य मुनि के एक पुत्र का नाम जो परपुरंजय नामक राजा की कन्या के गर्भ से उत्पन्न हुआ था। (भागवत)।
 हृदतरु—संज्ञा पुं० [सं० हृदतरु] धव का पेड़।
 हृदता—संज्ञा स्त्री० [सं० हृदता] १. हृ होने का भाव। हृत्व। २. मजबूती। ३. स्थिरता। ४. पक्कापन।
 हृदतृण—संज्ञा पुं० [सं० हृदतृण] मूँज नाम की घास।
 हृदतृणा—संज्ञा स्त्री० [सं० हृदतृण] बल्लजा वृण।
 हृदत्व—संज्ञा पुं० [सं० हृदत्व] हृदता।
 हृदत्वच्^१—वि० [सं० हृदत्वच्] जिमकी रचना या छाल कड़ी हो।
 हृदत्वच्^२—संज्ञा पुं० १. उबार का पेड़। २. एक प्रकार का सरपत।
 हृददंशक—संज्ञा पुं० [सं० हृददंशक] एक जलजंतु।
 हृददंशु—संज्ञा पुं० [सं० हृददंशु] एक ऋषि जो हृदच्युत के पुत्र थे।
 हृदधन—संज्ञा पुं० [सं० हृदधन] शाक्य मुनि। बुद्ध।
 हृदधन्वा—संज्ञा पुं० [सं० हृदधन्व] १. जो धनुष चलाने में दृढ़ हो या जिसका धनुष दृढ़ हो। २. एक पुरुवंशीय राजा का नाम।
 हृदधन्वी—वि० [सं० हृदधन्विन्] १. जिसका धनुष दृढ़ हो।
 हृदनाभ—संज्ञा पुं० [सं० हृदनाभ] बाल्मीकि के अनुसार जलों की एक रोक जिसे विश्वामित्र जी ने रामचंद्र जी को बतलाया था।
 हृदनिश्चय—वि० [सं० हृदनिश्चय] जो अपनी बात पर जमा रहे। जो अपने संकल्प पर दृढ़ रहे। स्थिरप्रतिज्ञ।
 हृदनीर—संज्ञा पुं० [सं० हृदनीर] नारियल, जिसके भीतर का जल धीरे धीरे जमकर कड़ा हो जाता है।
 हृदनेत्र—संज्ञा पुं० [सं० हृदनेत्र] बाल्मीकि रामायण के अनुसार विश्वामित्र जी के चार पुत्रों में से एक। (बाल्मीकि)।
 हृदनेमि^१—वि० [सं० हृदनेमि] जिसकी नेमि दृढ़ हो। जिसकी धुरी मजबूत हो।
 हृदनेमि^२—संज्ञा पुं० अजमीद वंशीय एक राजा का नाम जो सत्यधृत के पुत्र थे।

हृदपत्र^१—वि० [सं० हृदपत्र] जिसके पत्ते हृ हों।
 हृदपत्र^२—संज्ञा पुं० बांस।
 हृदपत्री—संज्ञा स्त्री० [सं० हृदपत्री] बल्लजा वृण। सागे बागे।
 हृदपद्—संज्ञा पुं० [सं० हृदपद] तेईस मात्राओं का एक मात्रिक छंद जिसमें १३ धीर १० मात्राओं पर विश्राम होता है धीर भंत में दो गुरु होते हैं। इसे उपमान भी कहते हैं। जैसे,—बाहु बंध करमूल में आखावलि राजै। लपटे फणि श्रीखंड की लतिका अनु राजै। कुंड जु रच्यो सुहोम को, अनु नाभि मुहाई। रोमावलि मिस धूम की रेखा बलि छाई।
 हृदपाद^१—वि० [सं० हृदपाद] हृदनिश्चयी। विचार का पक्का।
 हृदपाद^२—संज्ञा पुं० ब्रह्मा का एक नाम (को०)।
 हृदपादा—संज्ञा स्त्री० [सं० हृदपादा] यवतिक्ता।
 हृदपादी—संज्ञा स्त्री० [सं० हृदपादी] भूम्यामलकी। भूमिविला।
 हृदप्रतिज्ञ—वि० [सं० हृदप्रतिज्ञ] जो अपनी प्रतिज्ञा से न टले।
 हृदप्ररोह—संज्ञा पुं० [सं० हृदप्ररोह] बड़। बरगद।
 हृदफल—संज्ञा पुं० [सं० हृदफल] नारियल।
 हृदबंधिनी—संज्ञा स्त्री० [सं० हृदबंधिनी] अनंतमूल नाम की लता। श्यामा और सारिवा भी इसी को कहते हैं।
 हृदबीज^१—संज्ञा पुं० [सं० हृदबीज] १. चक्रमर्द। चक्रबड़। २. अमरुद। ३. कीकर। बबूर। ४. बंदरीफल। बेर। ५. बट। बरगद (को०)।
 हृदबीज^२—वि० कड़े बीजवाला (को०)।
 हृदभूमि—संज्ञा स्त्री० [सं० हृदभूमि] योगशास्त्र में मन को एकाग्र और स्थिर करने का एक अभ्यास, जिसमें मन अविचल हो जाता है, इसर उधर नहीं जाता। इस अवस्था को प्राप्त करने पर वैराग्य की प्राप्ति निकट हो जाती है।
 हृदमुष्टि^१—वि० [सं० हृदमुष्टि] १. जो मुट्ठी में जोर से पकड़े। कसकर पकड़नेवाला। २. कृपण। कंजूस।
 हृदमुष्टि^२—संज्ञा पुं० (मुट्ठी में पकड़कर चलाए जानेवाले) लज्जादि भाव।
 हृदमूल—संज्ञा पुं० [सं० हृदमूल] १. मूँज। २. मध्या नाम की घास जो तालों में होती है। मध्याक वृण। ३. नारियल।
 हृदरंगा—संज्ञा स्त्री० [सं० हृदरङ्गा] फिटकिरी (जिससे रंग पक्का होता है)।
 हृदरोह—संज्ञा पुं० [सं० हृदरोह] पाकर का पेड़। पकड़।
 हृदलता—संज्ञा स्त्री० [सं० हृदलता] पातालगाढ़ी लता। छिरेटा।
 हृदलोम^१—वि० [सं० हृदलोमन्] [स्त्री० हृदलोमनी, हृदलोमा] जिसके रोएं कड़े हों।
 हृदलोम^२—संज्ञा पुं० सुधर।
 हृदलोमा—वि०, संज्ञा पुं० [सं० हृदलोमन्] दे० 'हृदलोम' (को०)।
 हृदवर्मा—संज्ञा पुं० [सं० हृदवर्मन्] धृतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम।
 हृदवल्कल^१—वि० [सं० हृदवल्कल] जिसकी छाल कड़ी हो।
 हृदवल्कल^२—संज्ञा पुं० १. सुपारी का पेड़। २. लकुर का पेड़।

दृढवल्का—संज्ञा स्त्री० [सं० दृढवल्का] धंक्का ।
 दृढबीज^१—वि० [सं० दृढबीज] जिसके बीज कड़े हों ।
 दृढबीज^२—संज्ञा पुं० १. चकवड़ । २. बेर । ३. बबूल ।
 दृढवृक्ष—संज्ञा पुं० [सं० दृढवृक्ष] नारियल ।
 दृढदय—संज्ञा पुं० [सं० दृढदय] एक ऋषि का नाम ।
 दृढप्रत^१—वि० [सं० दृढप्रत] स्थिरसंकल्प । अपने संकल्प पर जमा रहनेवाला ।
 दृढप्रत^२—संज्ञा पुं० धृतराष्ट्र का एक पुत्र (की०) ।
 दृढसंध^१—वि० [सं० दृढसन्धि] संकल्प का पक्का । प्रतिज्ञा पर दृढ़ रहनेवाला ।
 दृढसंध^२—संज्ञा पुं० धृतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम ।
 दृढसंधि—वि० [सं० दृढसन्धि] १. जो एक में मिलकर सट गया हो । मजबूती से मिला हुआ । २. जिसके अंग के जोड़ पुष्ट हों (की०) ।
 दृढसूत्रिका—संज्ञा स्त्री० [सं० दृढसूत्रिका] मूर्वा नाम की लता । मुरी ।
 दृढस्कंध—संज्ञा पुं० [सं० दृढस्कन्ध] १. पिंड लपूर । २. खिरनी का पेड़ ।
 दृढस्यु—संज्ञा पुं० [सं० दृढस्यु] लोषामुद्रा के गर्भ से उत्पन्न अगस्त्य ऋषि के एक पुत्र का नाम ।
 दृढहस्त^१—वि० [सं० दृढहस्त] जो हथियार आदि पकड़ने में पक्का हो ।
 दृढहस्त^२—संज्ञा पुं० धृतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम ।
 दृढांग^१—वि० [सं० दृढाङ्ग] जिसके अंग दृढ़ हों । कड़े बदन का । दृष्ट पुष्ट ।
 दृढांग^२—संज्ञा पुं० जीरक । जीरा (या हीरा) ।
 दृढाई^(१)—संज्ञा स्त्री० [हि० दृढ़] दृढ़ता । मजबूती । उ०—तेनह के ज्ञान जग रहे समाई । घर घर आए कुल बान दृढ़ाई ।—कबीर सा०, पृ० ११३ ।
 दृढ़ाना^१—क्रि० प्र० [हि० दृढ़+ना (प्रत्य०)] दृढ़ करना । पक्का करना । मजबूत करना । उ०—(क) बड़े बात जो जनक दृढ़ाई । वेहे घरे विदेह कहाई ।—कबीर (शब्द०) । (ख) चलत गगन भई गिरा सुहाई । जय अहेस भलि अक्ति दृढ़ाई ।—तुलसी (शब्द०) । (ग) बात दृढ़ाई कुमति होति सोली । कुमल विहंग कुलह अनु सोली ।—तुलसी (शब्द०) । (घ) पाछे विविध ज्ञान जननी को दोन्हों कपिल दृढ़ाव । सांख्य योग भरु ज्ञान अक्ति दृढ़ बरनी विविध बनाय ।—सूर (शब्द०) ।
 दृढ़ाना^२—क्रि० प्र० १. कड़ा होना । पुष्ट या मजबूत होना । २. स्थिर या पक्का होना ।
 दृढ़ायु—संज्ञा पुं० [सं० दृढ़ायु] १. तृतीय मनु सारणि के एक पुत्र का नाम । २. महाभारत में वर्णित उर्वशी के गर्भ से उत्पन्न ऐल राजा का एक पुत्र ।

दृढ़ायुध^१—वि० [सं० दृढ़ायुध] अस्त्र ग्रहण करने में पक्का । युद्ध में तत्पर ।
 दृढ़ायुध^२—संज्ञा पुं० १. शिव का एक नाम । २. धृतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम ।
 दृढ़ाश्व—संज्ञा पुं० [सं० दृढ़ाश्व] हरिवंश पुराण के अनुसार धृष्ट-भार के एक पुत्र का नाम ।
 दृढ़ेषुधि—वि० [दृढ़ेषुधि] दृढ़ तरकस या तूणीरवाला (की०) ।
 दृष्ट—वि० [सं०] [वि० स्त्री० दृष्टा] १. सम्मानित । भाएत । २. चीखें । विदीर्ण (की०) ।
 दृष्टा—संज्ञा स्त्री० [सं०] जीरा ।
 दृष्टाप्रवेग^१—वि० [सं०] (सेना) जिसका अग्रभाग नष्ट हो गया हो ।
 दृष्टाप्रवेग^२—वि० दे० 'प्रतिहत' ।
 दृष्टि—संज्ञा पुं० [सं०] १. चमड़ा । खाल । २. खाल का बना हुआ पात्र । ३. मशक । ४. मेघ । ५. एक प्रकार की मछली । ६. गलकंबल । गाय, बैल आदि के गले के नीचे झूलता हुआ चमड़ा ।
 दृष्टिधारक—संज्ञा पुं० [सं०] एक पौधा जिसे बंग देश में प्राकन-पाता कहते हैं ।
 पर्या०—धानंदी । वामन ।
 दृष्टिवातवतोरयन—संज्ञा पुं० [सं०] एक अयनसत्र का नाम । एक प्रकार का यज्ञ ।
 दृष्टिहरि^१—संज्ञा पुं० [सं०] (खाल या चमड़ा चुरानेवाला) कुत्ता ।
 दृष्टिहरि^२—[सं०] गलकंबलवाला (पशु) । जिसे गलकंबल हो (की०) ।
 दृष्टिहार—संज्ञा पुं० [सं०] मशक ढोनेवाला । भिखी ।
 दृष्ट्यू—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. सर्प । साँप । २. बज्र । बिद्युत् । ३. चक्र । पहिया (की०) ।
 दृष्ट्यू^२—संज्ञा पुं० सूर्य (की०) ।
 दृष्ट्यू—संज्ञा पुं० [सं०] १. बज्र । २. सूर्य । ३. राजा । ४. साँप । ५. पहिया । ६. घम । अंतक (की०) ।
 दृष्ट^१—वि० [सं०] १. गर्वित । इतराया हुआ । २. हर्ष से फूला या चमकता हुआ ।
 दृष्ट^२—संज्ञा पुं० विष्णु का एक नाम (की०) ।
 दृष्ट—वि० [सं०] १. प्रचंड । प्रबल । २. इतराया हुआ । घमंडी ।
 दृष्ट^३—वि० [सं०] १. अंधित । गुंथा हुआ । २. भीत । डरा हुआ ।
 दृष्ट^४—संज्ञा पुं० १. भय । स्त्रीक । डर । २. डोरा । धागा । डोरी (की०) ।
 दृश^१—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० दृश्य] १. देखना । दर्शन । २. प्रदर्शक । दिखानेवाला । ३. देखनेवाला ।
 दृश^२—संज्ञा स्त्री० १. दृष्टि । २. भाव । ३. दो की संख्या । ४. ज्ञान ।
 दृशद्—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'दृषद्' ।
 दृशद्वती—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'दृषद्वती' ।

दृशा—संज्ञा स्त्री० [सं०] दृश ।

दृशाकाक्ष्य—संज्ञा पुं० [सं० दृशाकाक्ष्य] कमल ।

दृशान—संज्ञा पुं० [सं०] १. प्रकाश । आभा । २. विरोचन नाम का दैत्य । ३. आचार्य । गुरु । ४. प्रजा का पालन करनेवाला राजा । लोकपाल । ५. बाह्यण ।

दृशालु—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य [को०] ।

दृशि—संज्ञा स्त्री० [सं०] ३० 'दृशी' ।

दृशी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. दृष्टि । २. प्रकाश । ३. चेतन पुरुष । ४. शास्त्र ।

दृशोपम—संज्ञा पुं० [सं०] द्रव्येय कमल । पुंढरीक ।

दृश्य^१—वि० [सं०] १. जो देखने में आ सके । जिसे देख सकें । दृग्गोचर । जैसे, दृश्य पदार्थ । २. जो देखने योग्य हो । दर्शनीय । ३. मनोरम । ४. जानने योग्य । ज्ञेय ।

दृश्य^२—संज्ञा पुं० १. देखने की वस्तु । वह पदार्थ जो आँखों के सामने हो । नेत्रों का विषय । जैसे, वन और पर्वत का दृश्य । २. तमाशा । वह मनोरंजक व्यापार जो आँखों के सामने हो । ३. वह काव्य जो अभिनय द्वारा दर्शकों को दिखलाया जाय । नाटक । ४. गणित में ज्ञात या दी हुई संख्या ।

दृश्यमान—वि० [सं०] १. जो दिखाई पड़ रहा हो । २. चमकीला । सुंदर ।

दृश्यावली—संज्ञा स्त्री० [सं०] दृश्यों की पंक्ति । दर्शनीय वस्तुओं का समूह । उ०—दृश्यावली सुघर दर्शक दक्षिणा मनोहर । अपरा, पृ० १६४ ।

दृषन्—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. शिला । पर्वत की चट्टान । २. शिल । पट्टी । ३. पत्थर ।

दृषद्—संज्ञा स्त्री० [सं०] ३० 'दृषत्' ।

दृषद्गुती^१—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक नदी जिसका नाम ऋग्वेद में आया है । इसे आजकल चम्बर और राप्ती कहते हैं । यह बानेश्वर से १३ मील दक्षिण है । महाभारत में यह कुरुक्षेत्र के अंतर्गत मानी गई है । मनुस्मृति में इसे ब्रह्मावर्त की सीमा पर लिखा है । २. विश्वामित्र की एक पत्नी का नाम । ३. दुर्गा का एक रूप [को०] ।

दृषद्गुती^२—वि० [सं०] पथरीली ।

दृषद्गुत्—वि० [सं० दृषद्गुत्] [वि० स्त्री० दृषद्गुती] पाषाणयुक्त । जिलाभय । पथरीला ।

दृष्ट^१—वि० [सं०] १. देखा हुआ । २. जाना हुआ । ज्ञात । प्रकट । ३. लौकिक और गोचर । प्रत्यक्ष ।

विशेष—पातञ्जल दर्शन में दो प्रकार के विषय दृष्ट बतलाए गए हैं अर्थात् स्त्री, अन्न, पान आदि लौकिक विषय जिन्हें इंद्रियाँ भोगती हैं और आनुभविक विषय जो वेद प्रतिपादित स्वर्ग आदि से संबंध रखते हैं । इन दोनों प्रकार के विषयों से एक साथ निस्पृह हो जाने से बलीकार नामक वैराग्य उत्पन्न होता है ।

दृष्ट^२—संज्ञा पुं० १. दर्शन । २. साक्षात्कार । ३. साक्ष्य में तीन प्रकार

के प्रमाणों में से एक । प्रत्यक्ष प्रमाण । ४. स्वयंकी और परचक्र से होनेवाला भय [को०] । ५. डाकुओं का डर [को०] ।

दृष्टकूट—संज्ञा पुं० [सं०] १. पहेली । २. कोई ऐसी कविता जिसका अर्थ केवल शब्दों के वाचकार्य से न समझा जा सके बल्कि प्रसंग या कड़ अर्थों से जाना जाय । जैसे,—हरिसुत पावक प्रगट भयो री । मास्त सुत भ्राता पितु प्रोहित ता प्रतिपालन छाड़ि गयो री । हरसुत बाहून ता रिपु भोजन सों लागत भँग भनल भयो री । युगमय स्वाव मोद नहि भावन दधिसुत भागु समान भयो री । बारिधि सुतपति क्रोध कियो सखि मेदि धकार सकार सयो री । सूरदास प्रभु सिधुसुता बिनु कोषि समर कर चाप लयो री ।—सूर (शब्द०) ।

दृष्टनष्ट—वि० [सं०] जो एक बार दिखाई देकर लुप्त हो जाय [को०] ।

दृष्टपृष्ठ—वि० [सं०] पीठ दिखानेवाला । युद्धभूमि से भागा हुआ [को०] ।

दृष्टफल—संज्ञा पुं० [सं०] किसी कर्म का अन्त परिणाम (दर्शन) ।

दृष्टमान^(क)—वि० [सं० दृष्टमान] प्रकट । व्यक्त । उ०—(क) दृष्टमान नास सब होई । साक्षी व्यापक नसे न सोई ।—सूर (शब्द०) । (ख) दृष्टमान सब बिनसे अदृष्ट लखे न कोइ । कीन कोइ गाहक मिले बहुत सुख सो होइ ।—कबीर (शब्द०) ।

दृष्टरजा—संज्ञा स्त्री० [सं० दृष्टरजस्] वह लड़की जिसका रजोदर्शन हो गया हो ।

दृष्टवत्—वि० [सं०] १. प्रत्यक्ष के समान । २. लौकिक । सांसारिक ।

दृष्टवाद—संज्ञा पुं० [सं०] वह दार्शनिक सिद्धांत जो केवल प्रत्यक्ष को ही मानता है ।

दृष्टवान्—वि० [सं० दृष्टवत्] जो प्रत्यक्ष के तुल्य हो । देखे हुए के समान [को०] ।

दृष्टांत—संज्ञा पुं० [सं० दृष्टान्त] १. अज्ञात वस्तुओं या व्यापारों आदि का धर्म आदि बतलाते हुए समझाने के लिये समान धर्मवाली किसी ऐसी वस्तु या व्यापार का कथन जो सबको विदित हो । उदाहरण । मिसाल । जैसे,—(क) बहुत से पत्ते गोल होते हैं, जैसे, कमल के । (ख) जब मनुष्य एक बार पतित हो जाता है तब बराबर पतित ही होता जाता है । जैसे,—पत्थर का गोला जब पहाड़ पर से लुढ़कता है तब गिरता ही जाता है ।

इस दूसरे वाक्य में पत्थर के गोले के दृष्टांत द्वारा मनुष्य के पतित होने की दशा समझाई गई है ।

विशेष—न्याय के सोलह पदार्थों में से दृष्टांत भी एक है । न्याय के अनुसार जिस पदार्थ के संबंध में लौकिक (साधारण) जनों और परीक्षकों (तात्त्विकों) का एक मत हो उसे दृष्टांत कहते हैं । ऐसी प्रत्यक्ष बात जिसे सब जानते या मानते हों दृष्टांत है । 'जहाँ घुमा होता है वहाँ आग होती है', इस बात को कहकर किसी ने कहा 'जैसे रसोईघर में' तो यह दृष्टांत हुआ । न्याय के ग्रन्थों में उदाहरण के लिये इसकी कल्पना होती है अर्थात् जिस दृष्टांत का व्यवहार तर्क में होता है उसे उदाहरण कहते हैं ।

२. एक अर्थात्कार जिसमें एक ओर तो उपमेय और उसके साधारण धर्म का वर्णन और दूसरी ओर बिब प्रतिबिब भाव से उपमान और उसके साधारण धर्म का वर्णन होता है। जैसे,—दुसह दुराज प्रजानि को क्यों न करे प्रति दंड। अधिक धंधेरो जग करत मिलि भावस रविचंद।—बिहारी। यही उपमेय दुराज में अधिक दंड या धंधेरे का होना और उसी के अनुसार उपमान रविचंद मिलन में अधिक धंधेरे का होना वर्णित है। प्रतिवस्तूपमा से इस अलंकार में यह भेद है कि प्रतिवस्तूपमा में लब्धभेद से एक ही वस्तु का कथन होता है पर इसमें धर्म भिन्न भिन्न (जैसे, दंड होना और धंधेरा होना) होते हैं। पंडितराज जगन्नाथ ने इन दोनों में बहुत कम भेद माना है और कहा है कि इन्हें एक ही अलंकार के दो भेद समझना चाहिए।

३. शास्त्र। ४. मरण।

दृष्टार्थ—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह शब्द जिसका अर्थ स्पष्ट हो। २. वह शब्द जिसके अर्थ से श्रोता को किसी ऐसे धर्म का बोध हो जिसका प्रत्यक्ष इस संसार में होता हो। जैसे, 'गंगा' इस शब्द के अर्थ से मनुष्य को एक ऐसी नदी का बोध होता है जो भारतवर्ष के उत्तरीय भाग में प्रत्यक्ष देखी जा सकती है। यह अदृष्टार्थ शब्द का विरोधी है। जैसे, स्वर्ग, नरक, कीरसमुद्र, अप्सर, देवता आदि जो किसी स्थल में प्रत्यक्ष नहीं हो सकते।

दृष्टि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. देखने की दृष्टि या शक्ति। शील की उद्योति।

मुहा०—दृष्टि मारी जाना = देखने की शक्ति न रह जाना।

२. देखने के लिये नेत्रों की प्रवृत्ति। देखने के लिये शील की पुतली के किसी वस्तु के सीध में होने की स्थिति। टक। रूपात। अवलोकन। नजर। निगाह।

क्रि० प्र०—डालना।

मुहा०—दृष्टि करना = दृष्टि डालना। ताकना। दृष्टि चलाना = नजर डालना। दृष्टि चूकना = नजर का इधर उधर हो जाना। शील का दूसरी ओर फिर जाना। जैसे,—जहाँ चूकी गिरे। दृष्टि देना = नजर डालना। ताकना। दृष्टि फिरना = (१) नेत्रों का दूसरी ओर प्रवृत्त होना। शील का दूसरी ओर हो जाना। (२) रूपादृष्टि न रहना। हित का ध्यान या प्रीति न रहना। चित्त अप्रसन्न या खिन्न होना। दृष्टि फेंकना = नजर डालना। ताकना। दृष्टि फेरना = नजर हटा लेना। दूसरी ओर देखना। (किसी ओर) ताकते न रहना। (किसी से) दृष्टि फेरना = (किसी पर) रूपादृष्टि न रहना। अप्रसन्न या विरक्त होना। खिन्न होना। (किसी की) दृष्टि बचाना = (१) सामने होने से बचना। किसी के शील के सामने न जाना। जान बूझकर दिखाई न पड़ना। (अथ, लज्जा आदि के कारण)। (२) (किसी से) छिपाना। न दिखाना। दृष्टि बाँधना = इस प्रकार का बाधू करना कि शीलों को और का और दिखाई पड़े। इन्द्रजाल फैलाना। दृष्टि खचाना = (१) स्थिर होकर ताकना। टकटकी बाँधना। (२) (किसी ओर देखने के लिये) शील से जाना। ताकना।

उ०—इसी दुवार ताल का लेखा। उलटि दृष्टि जो साव सो देखा।—जायसी (शब्द०)।

३. शील की उद्योति का प्रसार जिससे वस्तुओं के अस्तित्व, रूप, रंग आदि का बोध होता है। रूपात।

मुहा०—दृष्टि घाना = दे० 'दृष्टि में घाना'। दृष्टि पड़ना = दिखाई पड़ना। उ०—(क) दृष्टि परी इन्द्रासन पुरी।—जायसी (शब्द०)।—(ख) मेरी दृष्टि परे जा बिन तें ज्ञान मान हरि लीनो री।—सूर (शब्द०)। दृष्टि पर चढ़ना = (१) देखने में बहुत अच्छा लगना। निगाह में जँचना। अच्छा लगने के कारण ध्यान में सदा बना रहना। पसंद आना। जाना। जैसे,—वह छोटी तुम्हारी दृष्टि पर चढ़ी हुई है। (२) शीलों में खटकना। किसी वस्तु का इतना बुरा लगना कि उसका ध्यान सदा बना रहे। जैसे,—तुम उसकी दृष्टि पर चढ़े हुए हो, वह तुम्हें बिना मारे न छोड़ेगा। दृष्टि बिखाना = (१) प्रेम या अस्वाभाव किसी के आसरे में लगातार ताकते रहना। उत्कंठापूर्वक किसी के आगमन की प्रतीक्षा करना। उ०—पवन स्वास तासों मन लाई। जाँवे मारग दृष्टि बिछाई।—जायसी (शब्द०)। (२) किसी के जाने पर अत्यंत अस्वाभाव या प्रेम प्रकट करना। दृष्टि में घाना = देखने में घाना। दिखाई पड़ना। उ०—जग कोउ दृष्टि न धावै पुरन होय सकाम।—जायसी (शब्द०)। दृष्टि में पड़ना दिखाई पड़ना (शब्द०)। दृष्टि से उतरना या गिरना = अस्वाभाव, विश्वास या प्रेम का पाव न रहना। (किसी के) बिचार में अच्छा न रह जाना। तुच्छ या बुरा ठहरना।

४. देखने में प्रवृत्त नेत्र। देखने के लिये खुली हुई शील।

मुहा०—दृष्टि उठाना = ताकने के लिये शील ऊपर करना। दृष्टि गड़ाना या बमाना = दृष्टि स्थिर करना। एकटक ताकना। (किसी से) दृष्टि चुराना = (लज्जा या भय से) सामने न घाना। जान बूझकर दिखाई न पड़ना। नजर बचाना। (किसी से) दृष्टि जुड़ना = शील मिलना। देखा देखी होना। साक्षात्कार होना। (किसी से) दृष्टि जोड़ना = शील मिलाना। देखादेखी करना। साक्षात्कार करना। दृष्टि फिसलना = चमक दमक के कारण नजर न ठहरना। शील में चकाचौंध होना। दृष्टि भर देखना = जितनी देर तक इच्छा हो उतनी ही देर तक देखना। जी भर कर ताकना। उ०—कव मन नंदनंदन ध्यान। सेह चरन सरोज सीतल तजु विषय रसपान। सूर श्री गोपाल की छवि दृष्टि भरि लखि लेहि। प्रानपति की निरखि लोभा पलक परम न देहि।—सूर (शब्द०)। दृष्टि मारना = (१) शील से इल्लारे करना। पलक गिराकर संकेत करना। (२) शील के इल्लारे से रोकना। दृष्टि मिलना = नजर में जँचना। अच्छा लगने के कारण ध्यान में बना रहना। जाना। उ०—वह सभी की दृष्टि में समा गया।—वेनिस का बाँका (शब्द०)। दृष्टि मिलना = दे० 'दृष्टि जोड़ना'। उ०—बिहारी हिया करहु पिय टेका। दृष्टि गया करि मिलवहु एका।—जायसी (शब्द०)। (किसी वस्तु

पर) दृष्टि रखना = किसी वस्तु को देखते रहना जिससे वह इधर उधर न हो जाय निगरानी रखना। (किसी पर) दृष्टि रखना = देख रख में रखना। चौकसी में रखना। दशा का निरीक्षण करते रहना। जैसे,—इस लड़के पर भी दृष्टि रखना, इधर उधर खेलने न पावे। दृष्टि लगाना = (१) नजर पड़ना। दृष्टिपात होना। (२) देखा देखी होने से प्रेम होना। प्रीति होना। दृष्टि लगाना = (१) स्थिर होकर ताकना। टकटकी बाधना। उ०—भूनि चकोर दृष्टि जो लावा। मेघ घटा मद चंच दिखावा।—जायसी (शब्द०)। (२) किसी ओर देखने के लिये झल्ल ले जाना। ताकना। (३) प्रेम करना। प्रीति करना। (४) नजर लगाना। बुरी दृष्टि का प्रभाव डालना। (किसी से) दृष्टि लड़ना = (१) (किसी की) झल्ल के सामने झल्ल होना। घुरा घुरी होना। देखादेखी होना। (२) प्रेष होना। (किसी से) दृष्टि लड़ाना = झल्ल के सामने झल्ल किए रहना। घूरना। मूक ताकना। देर तक झल्ल से झल्ल मिलाना।

४. परख। पहचान। तमीज। घटकल। प्रंदाज। १. कृपा-दृष्टि। हित का ध्यान। मिहृबानी की नजर। जैसे,—भाज कल आपकी वह दृष्टि मेरे ऊपर नहीं है। उ०—(क) तपे बीज जस भरती गुल बिरह के घाम। कब सो दृष्टि करि बरसे तन तखवर होइ जाम।—जायसी (शब्द०)। (ख) बिरवा लाइ न मूलन दीजै।—जायसी (शब्द०)। ७. आना की दृष्टि। आसरे में लगी हुई टकटकी। प्रास। उम्मीद। ८. ध्यान। विचार। अनुमान। जैसे,—मेरी दृष्टि में तो ऐसा करना अनुचित है। ९. उद्देश्य। अग्रिप्राय। नीयत। जैसे,—कुछ बुरी दृष्टि से मैंने ऐसा नहीं किया।

दृष्टिकूट—संज्ञा पु० [सं०] दे० 'दृष्टकूट'।

दृष्टिकृन्—संज्ञा पु० [सं०] १. दर्शक। २. स्थल पथ।

दृष्टिकृत—संज्ञा पु० [सं०] दे० 'दृष्टिकृत्' [क्रि०]।

दृष्टिकोण—संज्ञा पु० [सं०] देखने या समझने का प्रंदाज। विचार।

दृष्टिक्षेप—संज्ञा पु० [सं०] दृष्टिपात।

दृष्टिगत—वि० [सं०] जो दिखाई पड़ा हो। जो देखने में आया हो।

क्रि० प्र०—होना। उ०—जो दृश्य दृष्टेगत हुए तुम्हें ही सके किसी ने दृष्टिगत—सागरिका, पृ० ११३।

दृष्टिगत—संज्ञा पु० १. नेत्र का विषय। २. झल्ल का एक रोग।

दृष्टिगम्य—वि० [सं०] जो देखने में आ सके। दृष्टिगोचर। उ०—जो दृश्य दृष्टिगत हुए तुम्हें ही सके किने ने दृष्टिगम्य—सागरिका, पृ० ११३।

दृष्टिगुण—संज्ञा पु० [सं०] लक्ष्य। निशाना [क्रि०]।

दृष्टिगोचर—वि० [सं०] नेत्रेन्द्रिय के द्वारा जिसका बोध हो। जो देखने में आ सके।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

दृष्टिदोष—संज्ञा पु० [सं०] १. देखने का दूषित ढंग। २. देखने का घुरा प्रभाव। नजर।

दृष्टिघृक—संज्ञा पु० [सं०] राजा इक्ष्वाकु के एक पुत्र का नाम।

दृष्टिनिक्षेप—संज्ञा पु० [सं०] दृष्टि फेंकना। नजर डालना। देखने की क्रिया। उ०—उसने क्षुधापीड़ित गीर क्षुब्ध मानवता की ओर दृष्टिनिक्षेप किया।—बी० श० महा०, पृ० ४२।

दृष्टिनिपात—संज्ञा पु० [सं०] दे० 'दृष्टिपात'।

दृष्टिपथ—संज्ञा पु० [सं०] दृष्टि का फैलाव। नजर की पहुँच।

मुहा०—दृष्टिपथ में आना = दिखाई पड़ना।

दृष्टिपात—संज्ञा पु० [सं०] दृष्टि डालने की क्रिया या भाव। ताकने या देखने की क्रिया। अवलोकन।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

दृष्टिपूत—वि० [सं०] १. जो देखने में शुद्ध हो। जो देखने में शुद्ध जान पड़े। २. जिसके देखने से झल्लें पवित्र हों। ३. मन्त्रों तरह देखा भाला हुआ।

दृष्टिफल—संज्ञा पु० [सं०] फलित ज्योतिष में एक राशि में स्थित ग्रह का दूसरी राशि में स्थित ग्रह पर दृष्टि फेरने से होनेवाला फल।

विशेष—दे० 'दृष्टिस्थान'।

दृष्टिबंध—संज्ञा पु० [सं० दृष्टिबन्ध] १. वह क्रिया जिससे देखने-वालों की दृष्टि में भ्रम हो जाय। दीठबंदी। ईद्रजाल। माया। जादू। २. बालाकी। हाथ की सफाई। हस्तलाभन। उ०—राघो दृष्टिबंध कटिहू खेला। सभा माँझ चेटक अस मेला।—जायसी (शब्द०)।

दृष्टिबंधु—संज्ञा पु० [सं० दृष्टिबन्धु] लघोत। जुगपू।

दृष्टिभंगी—संज्ञा स्त्री० [सं० दृष्टिभङ्गी] देखने का ढंग। उ०—नाहित्यकारों में उन्मुक्त स्वच्छंद दृष्टि विकसित हुई थी।—हि० का० प्र०, पृ० १४१।

दृष्टिमान्—संज्ञा पु० [सं० दृष्टिमान्य] दृष्टि का कमजोर होना। कम दिखाई देना।

दृष्टिमान्—वि० [सं० दृष्टिमत्] [वि० स्त्री० दृष्टिमती] जिसे दृष्टि हो। दीठवाला। झल्लवाला।

दृष्टिराग—संज्ञा पु० [सं०] देखने का ढंग। दृष्टि का प्रभाव। २. दर्शनजन्य अनुराग [क्रि०]।

दृष्टिरोध—संज्ञा पु० [सं०] १. दृष्टि की रोक। नजर पहुँचने में रुकावट। २. बाड़। छोट। व्यवधान।

दृष्टिवंत—वि० [सं० दृष्टि + वंत (प्रत्य०)] दृष्टिवाला। २. जानी। जानवान्। जानकार। उ०—ना वह मिला न बिहारा ऐस रह्य भरपूर। दृष्टिवंत कहूँ नियरे घंघ मूखलहि दूर।—जायसी (शब्द०)।

दृष्टिवाक्—संज्ञा पु० [सं०] १. वह सिद्धांत जिसमें दृष्टि या प्रत्यक्ष प्रमाण ही की प्रधानता हो। २. धर्मियों के बारह धर्मों में से एक जिनकी रचना गणेश्वर लोग तीर्थंकरों के उपदेशों को लेकर करते हैं।

विशेष—ये षादशांग धर्म धर्म के मूल ग्रंथ हैं। ग्यारह धर्म तो मिलते हैं पर यह दृष्टिवाद नहीं मिलता। जैनधर्म सत्त्व-

कीति रचित 'तत्त्वार्थसारदीपक' में इसका जो उल्लेख मिलता है उससे पाया जाता है कि इसमें चंद्र, सूर्य आदि की गति प्रायु आदि, प्राणायाम चिकित्सा, मंत्र, तंत्र तथा अनेक प्रकार के विषय संमिलित हैं।

दृष्टिविज्ञेय—संज्ञा पुं० [सं०] १. कटाक्ष। तिरछी नजर। २. अवलोकन। देखना (को०)।

दृष्टिविद्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] प्रकाश विज्ञान। आलोक विज्ञान।

दृष्टिविभ्रम—संज्ञा पुं० [सं०] दृष्टि का विलास। दृष्टिविक्षेप।

दृष्टिविषय—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का साँप।

दृष्टिस्थान—संज्ञा पुं० [सं०] कुंडली में वह स्थान जिसपर किसी दूमे स्थान में स्थित ग्रह की दृष्टि पड़ती हो।

विशेष—ग्रहों की दृष्टि का सामारण नियम यह है कि जिस स्थान में ग्रह हो उससे तीसरे और दसवें स्थानों को एक चरण से, नवें और पंचवें को दो चरणों से, चौथे और आठवें को तीन चरणों से और सातवें को पूर्ण दृष्टि से देखेगा।

दृष्ट्याकाश—संज्ञा पुं० [सं०] आकाश की ओर दृष्टि लगाए हुए। आकाश की ओर देखता हुआ। उ०—ऊढं लक्ष करे इहि भाँती। दृष्ट्याकाश रहे दिन राती।—सुंदर० ग्रं०, भा० १, पृ० १०५।

देवका—संज्ञा पुं० [देश०] दे० 'दीमक'।

देह—संज्ञा स्त्री० [सं० देह] देह। शरीर। उ०—कैसे भारत करी तिहारी। महामलिन गति देह हमारी।—घरनी०, पृ० १६।

देही—संज्ञा स्त्री० [सं० देह] दे० 'देह'। उ०—होता बीज मीट के लोह सो देही का राजा।—मत्क०, पृ० १२।

दे—संज्ञा स्त्री० [सं० देत्री] स्त्रियों के लिये एक आदरसूचक शब्द। उ०—यह छवि सुरदास मदा रहे बानी। नंदनंदन राजा रासिका दे रानी।—सूर (शब्द०)।

दे^३—संज्ञा पुं० [सं० देव] बंगाली कायस्थों का एक भेद।

देही—संज्ञा स्त्री० [सं० देवी] दे० 'देवी-२'। उ०—भनइ विद्यापति एहु एस जान, राजा सिर्वासिष रूपनरायन लखिमा देह रमान।—निद्यापति, पृ० ५८।

देई—संज्ञा स्त्री० [सं० देवी] १. देवी। उ०—देव देई सुंदर लखन बन देखियत कुंजन में मुनियत गुंजन मलीन की।—देव (शब्द०)। २. स्त्रियों के लिये एक आदरसूचक शब्द।

देउ^३—संज्ञा पुं० [सं० देव] दे० 'देव'। उ०—पुनि रे बसब घर आपुन पूजि बिसेसर देउ।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० २४६।

देवर^३—संज्ञा पुं० [सं० देवर] दे० 'देवर'।

देउर^३—संज्ञा पुं० [सं० देवर] देवल। मंदिर। देहरा। उ०—धोधा-उरि बाने मविरा साध। देउर भांगि मसीद बाँध।—कीर्ति०, पृ० ४४।

देउरानी^३—संज्ञा स्त्री० [सं० देवर] दे० 'देवरानी'।

देउली—संज्ञा पुं० [हि० देवल] दे० 'देवल'। उ०—देउल के पीछे नामा मल्लख पुकारे। जदर जदर नामा उदर देउल ही छोरे।—बकिशनी०, पृ० १८।

देख—संज्ञा स्त्री० [हि० देखना] देखने की क्रिया या भाव। अवलोकन। जैसे, देख रेख, देखभाल।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग अकेले कम होता है, समस्त पदों में होता है।

मुहा०—देख में = आँख के सामने। समझ।

देखन(गु)ी—संज्ञा स्त्री० [हि० देखना] देखने की क्रिया या भाव। २. देखने का ढंग।

देखनहारा(गु)ी—संज्ञा पुं० [हि० देखना + हारा (प्रत्य०)] स्त्री० देखनहारी] देखनेवाला। उ०—सखि सब कीतुक देखनहारे।—तुलसी (शब्द०)।

देखना—क्रि० सं० [सं० दृष्ट्, द्रष्टयति, प्रा० देख्वाह] १. किसी वस्तु के अस्तित्व या उसके रूप, रंग आदि का ज्ञान नेत्रों द्वारा प्राप्त करना। अवलोकन करना।

संयो० क्रि०—लेना।

यौ०—देखना भालना = निरीक्षण करना। जाँच करना।

मुहा०—देखना सुनना = जानकारी प्राप्त करना। जानना बूझना। पता लगाना जैसे,—बिना देखे सुने उसके विषय में कोई क्या कह सकता है? देखने में = (१) बाह्य लक्षणों के अनुसार। बाहरी चेष्टाओं से। साधारण व्यवहार में। जैसे,—देखने में तो वह बहुत सीधा है पर बड़ी बड़ी चालें चलता है। (२) रूप रंग में। वस्त्र, आकृति आदि में। जैसे,—यह पेड़ देखने में बड़ा सुंदर है। किसी के देखने = रहते हुए। समक्ष। सामने। उपस्थिति में। मौजूद रहते। जैसे,—(क) हमके देखते तो ऐसा कभी नहीं हो सकता। (ख) मेरे देखते क्या कोई चीज ले जा सकता है। देखते देखते = (१) आँखों के सामने। (२) सूरत। फौरन। चटपट। जैसे,—देखते देखते वह बड़ी उड़ा ले गया। देखते रह जाना = हुक्का बक्का रह जाना। चकपका जाना। चकित हो जाना। ऐसी स्थिति में हो जाना जिसमें कुछ करते धरते न बने। किकर्तव्य विमूढ़ हो जाना। जैसे,—वह एकबारगी धाकर उसे मारने लगा, मैं देखता रह गया। देखना चाहिए देखा चाहिए, देखो या दोखए = (क्या होगा) मान्य नहीं। (भाग की बात) कोन जाने? कह नहीं सकते (कि ऐसा होगा कि नहीं) (हय) देख लेंगे = उपाय करेंगे। प्रतिकार करेंगे। जो कुछ करना होगा करेंगे। जैसे,—उन्हें जो जी में भावे करने दो, हम देख लेंगे। देखा जायगा = (१) फिर विचार किया जायगा। (२) पीछे जो कुछ करना होगा किया जायगा। जैसे,—इस समय तो इन्हें ढालो, फिर देखा जायगा। देखो = (१) ध्यान दो। विचारो। सोचो। जैसे,—देखो, इसी रूप के लिये लोभ कितना कष्ट उठाते हैं। (२) सावधान रहो। ख्याल रखो। खबरदार। जैसे,—देखो, फिर कभी ऐसा न करना। (३) सुनो। इधर आओ। (पुकारने का शब्द) सुनो।

२. जाँच करना। दशा या स्थिति जानने के लिये निरीक्षण करना। मुखायना करना। जैसे,—कल इंस्पेक्टर साहब स्कूल देखने आवेंगे। ३. दूँड़ना। खोजना। तलाश करना। पता

लगाना । जैसे,—तुम अपने संदुक में तो देखो, सायब उसी में हो । ४. परीक्षा करना । आजमाना । अनुभव करना । परखना । जैसे,—(क) इस घोष का गुण देख लें सब कुछ कहें । (ख) सबको देख लिया है, उस समय किसी ने मेरा साथ नहीं दिया । ५. किसी वस्तु पर ध्यान रखना जिसमें वह इधर उधर न होने पावे । निगरानी रखना । ताकते रहना । जैसे,—मेरा सामान भी देखते रहना, मैं बोझा पानी पी आऊँ । ६. समझना । सोचना । विचारना । जैसे, भलाई बुराई देखकर काम करना चाहिए । ७. अनुभव करना योगना । जैसे,—(क) उसने अपने जीवन में बहुत दुःख देखा । (ख) इन्होंने अच्छे दिन देखे हैं । उ०—एक यही दुख देखत केशव होत वहाँ सुरलोक बिहारी ।—केशव (शब्द०) । ८. पढ़ना । बाँचना । जैसे,—उन्होंने बहुत ग्रंथ देखे हैं । ९. नुटि आदि जानने या दूर करने के लिये अवलोकन करना । परीक्षा करना । जाँचना । गुण दोष का पता लगाना । जैसे,—(क) देखो इस भंगूठी का सोना कैसा है । (ख) मेरे इस लेख को देख जाओ । १०. ठीक करना । संशोधित करना । सोचना । जैसे, प्रूफ देखना ।

संयो० क्रि०—देना ।—लेना ।

देखनि^५—संज्ञा स्त्री० [हि० देखना] दे० 'देखन' ।

देखनु देखनो^५—क्रि० स० [हि० देखना] देखने का उग । देखन । उ०—(क) मोर मुकुट छवि देत, मंद हंसनि, रंग देखनु ।—नंद ग्रं०, पृ० ३६५ । (ख) सखि मोर मुकुट छवि देति, बंक दगन हंसि देखनो ।—नंद० ग्रं०, पृ० ३८५ ।

देखभास—संज्ञा स्त्री० [हि० देखना + भासना] १. जाँच पड़ताल । निरीक्षण । निगरानी । २. दर्शन । देखादेखी । साक्षात्कार ।

देखराना^५—क्रि० स० [हि० देखलाना] दे० 'देखलाना' ।

देखरावना^५—क्रि० स० [हि० देखलाना] दे० 'देखलाना' ।

देखरेख—संज्ञा स्त्री० [हि० देखना + सं० प्रेक्षण] देख भास । निरीक्षण । निगरानी । जैसे,—उनकी देखरेख में यह काम हो रहा है ।

क्रि० प्र०—रखना ।

देखाऊ—वि० [हि० देखना] १. जो केवल देखने के लिये हो । जो केवल ऊपर से देखने में भड़कीला या सुंदर हो, काम का न हो । झूठी तड़क भड़कवाला । जैसे, देखाऊ चीजें । देखाऊ सामान । २. जो ऊपर से दिखाने के लिये हो, वास्तविक न हो । बनावटी । जैसे, देखाऊ प्रेम ।

देखादेखो^१—संज्ञा स्त्री० [हि० देखना] धार्मिकों से देखने की दशा या भाव । दर्शन । साक्षात्कार । अवलोकन । उ०—कहन सुनन की है नहीं, देखादेखो नाय । सार सबद जो बिन्ही, सोई मिलेशा प्राय ।—कबीर सा०, पृ० ४७५ ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

देखादेखी^२—क्रि० वि० दूसरों को करते देखकर । दूसरों के अनुकरण पर । जैसे,—(क) देखादेखी पाप, देखादेखी पुण्य । (ख) इसकी देखादेखी तुम भी ऐसा करने लगे ।

विशेष—यह वास्तव में संज्ञा शब्द है जिसके प्रागे 'दे' विभक्ति लुप्त है अतः लिंग उर्ध्व का र्थो रहता है ।

देखाना^५—क्रि० स० [हि० दिखाना] दे० 'दिखाना' ।

देखाभासी—संज्ञा स्त्री० [हि० देखना + भासना] दे० 'देखभास' ।

देखाब—संज्ञा पुं० [हि० देखना] १. दृष्टि की सीमा । नजर की पहुँच ।

मुहा०—देखाब में = नजर के सामने । समक्ष ।

२. रूप, रंग दिखाने की क्रिया या भाव । बनाव । ३. ठाट-बाट । तड़क भड़क ।

देखावना—क्रि० स० [हि० देखाना] दे० 'दिखाना' ।

देखीआ—वि० [हि० देखाऊ] दे० 'देखाऊ' ।

देग^१—संज्ञा पुं० [फ्रा० देग] चौड़े मुँह और चौड़े पेटे का बड़ा बरतन जिसमें खाना पकाया जाता है । तबिया ।

यौ०—देगबंदाज = बावर्ची । रसोइया ।

देग^२—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का बाज पक्षी ।

देगचा—संज्ञा पुं० [फ्रा० देगचह] [स्त्री० छल्पा = देगची] छोटा देग ।

देगची—संज्ञा स्त्री० [फ्रा० देगचा] छोटा देगचा ।

देदीप्यमान—वि० [सं०] अत्यंत प्रकाशयुक्त । चमकता हुआ । दमकता हुआ ।

देन—संज्ञा स्त्री० [हि० देना] १. देने की क्रिया या भाव । दान । २. दी हुई चीज । प्रदत्त वस्तु । जैसे,—यह तो ईश्वर की देन है ।

देनदार—संज्ञा पुं० [हि० देना + फ्रा० दार] ऋणी । कर्जदार ।

देनदारी—संज्ञा स्त्री० [हि० देन + फ्रा० दारी] ऋणी होने की अवस्था ।

देनलेन—संज्ञा पुं० [हि० देना + लेना] व्याज पर रुपया उधार देने का व्यापार । महाजनी का व्यवसाय ।

देनहार^५—वि० [हि०] दे० 'देनहरा' ।

देनहारा^५—वि० [हि० देना + हारा (प्रत्य०)] देनेवाला ।

देना^१—क्रि० स० [सं० दान] १. किसी वस्तु पर से अपना स्वत्व हटाकर उसपर दूसरे का स्वत्व स्थापित करना । दूसरे के अधिकार में करना । प्रदान करना । जैसे,—(क) उसने अपना मकान एक ब्राह्मण को दे दिया । (ख) जो दे उसका भला, जो न दे उसका भला ।

संयो० क्रि०—डालना ।—देना ।

२. अपने पास से भलग करना । सोपना । हवाले करना । जैसे,—इसे हमें दे दो हम रखे रहें, जब काम पड़े ले लेना । ३. हाथ पर या पास रखना । धरना । जैसे,—(क) छड़ी उसे दे दो और छाता तुम ले लो, तब चलो । (ख) जरा यह बिट्टी उन्हें तो दे दो, वे पढ़कर देख लें । ४. रखना, लगाना या डालना । स्थापित, प्रयुक्त या मिश्रित करना । जैसे,—(क) सिर पर टोपी देना । (ख) छाता देना । (ग) जोड़ में पच्चड़ देना । (घ) तरकारी में चीनी देना । (ङ) यहाँ से लेकर वहाँ तक लकीर देना । उ०—बक बिकारी देत ज्यों दाम रुपया होत ।—बिहारी (शब्द०) । ५. मारना । प्रहार करना । जैसे,—बप्पड़ देना, चाँटा देना, पेट में कटारी देना ।

मुहा०—दे मारना = पटक देना । (किसी व्यक्ति को) । पकड़ कर जमीन पर गिरा देना ।

६. अनुभव कराना । भोगाना । जैसे,—कष्ट देना, दुःख देना, सुख देना, प्राराम देना । ७. उत्पन्न करना । निकालना । जैसे,—(क) यह गाय कितना दूध देती है ? (ख) इस बकरी ने दो बच्चे दिए हैं । ८. बंद करना । मिटाना । जैसे,—किवाड़ देना, बोटल में डाट देना ।

विशेष—इस क्रिया का प्रयोग प्रायः सब सकर्मक क्रियाओं के साथ संयो०क्रि० के रूप में होता है जैसे, कर देना, मार देना, गिरा देना, दे देना, बना देना, बिगाड़ देना, निकाल देना इत्यादि । बहुत सी क्रियाओं में तो इसे लगाने से यह भाव निकलता है कि ये क्रियाएँ दूसरे के लिये हैं । जैसे,—मेरा या उनका यह काम कर दो । मेरी बड़ी बना दो ।

जो क्रियाएँ केवल कर्ता ही के लिये होती हैं दूसरे के लिये नहीं, उनके साथ 'लेना' का प्रयोग होता है । जैसे, खा लेना, पी लेना । एक ही क्रिया केवल कर्ता के लिये भी हो सकती है और दूसरे के लिये भी । जैसे,—घपना काम कर लो, मेरा काम कर दो । घपनी बड़ी बना लो, मेरी बड़ी बना दो । स० क्रि० के अतिरिक्त कुछ अ० क्रि० के साथ भी संयो० क्रि० के रूप में 'देना' का प्रयोग होता है, जैसे,—चल देना, हँस देना, रो देना इत्यादि ।

देना^२—संज्ञा पुं० ऋण जिसे चुकाना हो । कर्ज । उधार लिया हुआ रुपया । जैसे,—तुम प्रपना सब देना चुकता कर दो ।

औ०—देना पावना ।

देनिहारा^३—संज्ञा पुं० [हि० देना + हारा (= बाला)] देने-बाला । दाता ।

देमान^४—संज्ञा पुं० [फ्रा० दीवान] मंत्री । अमात्य । उ०—देमान अब दगल गढ़ बर, कुरु बर वैलल अदप कह ।—कीर्ति०, पृ० ६२ ।

देव—वि० [सं०] देने योग्य । दान योग्य । दातव्य ।

देवधर्म—संज्ञा पुं० [सं०] दान धर्म ।

विशेष—सिलसिलों में इस शब्द का विशेष रूप से प्रयोग मिलता है ।

देवासी^५—संज्ञा पुं० [सं० देवोपासिन्] देवता का उपासक । भोक्ता ।

देर^६—संज्ञा पुं० [प्रा० देर (= दार)] द्वार । दरवाजा । उ०—काली बीसल दे कियो, दरब सिलातल देर । बिलल कियो बधराच यह, दरब समपि अजमेर ।—बाँकी० पं०, भा० १, पृ० ५० ।

देर^७—संज्ञा स्त्री० [फ्रा०] १. अतिकाल । बिलंब । नियमित, उचित या आवश्यक से अधिक समय । जैसे,—(क) देर हो रही है, चलो । (ख) इस काम में देर मत करो ।

क्रि० प्र०—करना ।—लगाना ।—होना ।

२. समय । वक्त । जैसे—तुम कितनी देर में आओगे ।

विशेष—इस अर्थ में इस शब्द का प्रयोग अभी होता है जब

उसके पहले कोई परिमाणवाचक विशेषण होता है । जैसे,—कितनी देर, बहुत देर ।

देश^८—संज्ञा पुं० [हि० देश] दे० 'देश' । उ०—बड़ी बड़ी का सेवा लेहू । कर्माधिक देश भर देहू ।—रामानंद०, पृ० २६ ।

देरी^९—संज्ञा स्त्री० [फ्रा०] दे० 'देर' । उ०—यों ही शंस असंख्य हो गए लगी न देरी ।—साकेत, पृ० ५१० ।

देवंगा^{१०}—संज्ञा पुं० [सं० देवज] देवज । ज्योतिर्विद् । ज्योतिषी । गणक । उ०—एक सुखिन देवंग सों बोलिय राज नरिद । देउ मुहूरत दुज सु गुर तिहि हम करे अनंघ ।—पु० रा०, २४। ३५४ ।

देवका^{११}—संज्ञा स्त्री० [दे०] दे० 'दीमक' ।

देवकारा^{१२}—संज्ञा पुं० [दे०] दे० 'दीमक' ।

देव—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० देवी] १. स्वर्ग में रहने या क्रीड़ा करनेवाला अमर प्राणी । दिव्य शरीर धारी । देवता । सुर । २. पूज्य व्यक्ति । ३. तेजोमय व्यक्ति । ४. ब्राह्मणों की एक उपाधि । ५. बड़ों के लिये एक आदरसूचक शब्द या संबोधन । ६. राजा के लिये आदरसूचक शब्द या संबोधन । ७. मेघ । बादल । ८. पारा । ९. देवदार । १०. देवर । ११. ज्ञानेश्वर । १२. ऋषि । १३. विष्णु (को०) । महादेव । शिव (को०) । १४. सुरराज । इंद्र (को०) । १५. इन्द्रिय (को०) । १७. ईश्वर । परमात्मा (को०) । १८. स्नेही । प्रेमी (को०) । १९. (को०) । २०. शिशु । वस्त्र । बच्चा (को०) । २१. मूल । देवकूफ (को०) ।

देव^{१३}—वि० १. देव संबंधी । देवों से संबद्ध । २. स्वर्गिक । स्वर्गीय । स्वर्गसंबंधी । ३. सामान्य । पूज्य । आदरणीय । ४. ज्योतिष । दीप्त । चमकदार (को०) ।

देव^{१४}—संज्ञा पुं० [फ्रा०] १. दैत्य । राजस । दानव । २. काम्य या भीमकाय व्यक्ति (को०) ।

देवअंशी—वि० [सं० देव + अंशिन्] जो देवता के अंश से उत्पन्न हो । जो किसी देवता का अवतार हो ।

देवअण—संज्ञा पुं० [सं०] देवताओं के लिये कर्तव्य । यज्ञादि ।

देवअधि—संज्ञा दे० [सं०] देवताओं के लोक में रहनेवाले नारद आदि ऋषि ।

विशेष—नारद, अत्रि, मरीचि, भरद्वाज, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, भृगु इत्यादि ऋषि देवधि माने जाते हैं ।

देवक^{१५}—संज्ञा पुं० [सं०] १. देवता । २. एक यदुवंशी राजा जो देवकी के पिता अर्थात् श्री कृष्णचंद्र के नाना थे । इन्हें चार पुत्र और तीन कन्याएँ थीं । सभी कन्याओं का विवाह इन्होंने वसुदेव के साथ कर दिया था । उपरान्त इनके बड़े भाई थे । ३. युधिष्ठिर के एक पुत्र का नाम ।

देवक^{१६}—वि० १. देवतुल्य । देवसंबंधी । देवसदृश । २. कीड़ाबील । बेसाड़ी (को०) ।

देवकन्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'देवकन्या' ।

देवकन्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] देवता की पुत्री । देवी ।

देवकपास—संज्ञा स्त्री० [देश०] नरमा । मनवा । राम कपास ।
देवकर्म्म—संज्ञा पुं० [सं०] एक सुगन्ध द्रव्य, जो चंदन, अमर,
कपूर और केसर को एक में मिलाने से बनता है ।

देवकर्म—संज्ञा पुं० [सं० देवकर्मन्] देवताओं को प्रसन्न करने के
लिये किया हुआ कर्म । जैसे, यज्ञ, बलिदेवदेव इत्यादि ।

देवकौंडर—संज्ञा स्त्री० [सं० देव + काण्ड] एक बहुत छोटा पोषा
जिसकी पत्तियों और बंठों में राई की सी आल होती है ।

विशेष—यह ऊँचे करारेवाली बड़ी नदियों के किनारे होती है ।
गंगा के तट पर बहुत मिलती है । इसकी पत्तियाँ कटावदार
और फाँकों में विभक्त होती हैं । यह पोषा उमरी हुई
मिलटी बैठाने की अच्छी दवा है । अचार भी इसका पड़ता
है । इसे लटपूरिया भी कहते हैं ।

देवकार्य—संज्ञा पुं० [सं०] देवताओं को प्रसन्न करने के लिये किया
हुआ कर्म । होम, पूजा आदि ।

देवकाष्ठ—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का देवदार ।

देवकिरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक रागिनी जो मेघराग की भार्या
मानो जाती है ।

ललिता मालती गौरी नाट देवकिरी तथा ।

मेघरागस्य रागिण्यो भवतीमा सुमध्यमाः ।

—संगीत दामोदर ।

देवकी—संज्ञा स्त्री० [सं०] वसुदेव की स्त्री और श्रीकृष्ण की माता ।

विशेष जब वसुदेव के साथ इनका विवाह हुआ तब नारद ने
आकर मथुरा के राजा कंस से कहा कि मथुरा में तुम्हारी
जो भव्त्री बहन देवकी है, उसके आठवें गर्भ से एक ऐसा
बालक उत्पन्न होगा जो तुम्हारा वध करेगा । कंस ने एक
एक करके देवकी के छह बच्चों को मरवा डाला । जब
सातवाँ शिशु गभ में आया तब योगमाया ने अपनी शक्ति
से उस शिशु को देवकी के गर्भ से आकषित करके रोहिणी
के गर्भ में कर दिया । आठवें गर्भ के समय देवकी पर कड़ा
पहरा बैठाया गया । आठवें महीने में आठो बड़ी अष्टमी
की रात को देवकी के गर्भ से श्रीकृष्ण का जन्म हुआ ।
उसी रात को यशोदा को एक कन्या हुई । वसुदेव रातोंरात
देवकी के शिशु श्रीकृष्ण को यशोदा को दे आगे और
यशोदा की कन्या को लाकर उन्होंने देवकी के पास सुला
दिया । कंस ने उस कन्या का वध करने के लिये उसे पटक
दिया । कहते हैं, कन्या, जो योगमाया थी, उसके हाथ से
छूटकर आकाशमार्ग से उड़कर विष्णु पर्वत पर आई । इधर
कृष्ण यशोदा के यहाँ बड़े हुए । दे० 'कृष्ण' ।

देवकीनन्दन—संज्ञा पुं० [सं० देवकीनन्दन] श्रीकृष्ण ।

देवकीपुत्र—संज्ञा पुं० [सं०] श्रीकृष्ण ।

विशेष—छांदोग्य उपनिषद् में भी घोर आगिरस ऋषि के शिष्य
देवकीपुत्र श्रीकृष्ण का उल्लेख है ।

देवकीमातृ—संज्ञा पुं० [सं०] श्रीकृष्ण (जिनकी माता देवकी हैं) ।

देवकीसुनु—संज्ञा पुं० [सं०] देवकी के पुत्र, श्रीकृष्ण [को०] ।

देवकीय—वि० [सं०] देवता संबंधी । देवता का ।

देवकुंड—संज्ञा पुं० [सं० देवकुण्ड] १. प्राकृतिक जलाशय । आपसे
आप बना हुआ पानी का गड्ढा या ताल । २. वह जलाशय
जो किसी देवता के निकट या नाम पर होने के कारण पवित्र
माना जाता है ।

देवकुट—संज्ञा पुं० [सं०] देवालय । देवमंदिर [को०] ।

देवकुम्भा—संज्ञा पुं० [सं० देवकुम्भा] बड़ा गुमा । गोमा ।

देवकुल—संज्ञा पुं० [सं०] जंबूद्वीप के छह खंडों में से एक खंड जो
सुमेरु और निषध के बीच माना गया है । (जैन हरिवंश) ।

देवकुल—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक प्रकार का देवमंदिर, जिसका द्वार
अत्यंत छोटा हो । २. देवताओं का समूह । देवताओं का
वर्ग [को०] ।

देवकुल्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. गंगा नदी । २. मरीचि और पूर्णिमा
की कन्या ।

देवकुसुम—संज्ञा पुं० [सं०] सवंग । लौंग । उ०—देवकुसुम श्री संग
पुनि जायक जाको नाउ ।—प्रनेकार्य० पृ० ८१ ।

देवकूट—संज्ञा पुं० [सं०] १. कुबेर के घाट पुत्रों में से एक, जो शिव-
पूजन के लिये सूँघकर कमल से गया या जिसके कारण वह
कंस का भाई हुआ और श्रीकृष्ण चंद्र द्वारा मारा गया । २.
एक पवित्र आश्रम जो वसिष्ठ के आश्रम के निकट था ।
(महाभारत) ।

देवकुञ्ज—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का व्रत जिसमें लपसी, शाक,
दूध, दही, घी, इनमें से क्रमशः एक एक वस्तु तीन दिन तक
खाते थे और उसके बाद तीन दिन तक वायु पर ही रहते थे ।

देवकेसर—संज्ञा पुं० [सं०] सुगुप्ताग । एक प्रकार का पुष्पाग ।

देवखरा—संज्ञा पुं० [सं० देवगृह] देवघर । देवस्थान उ०—भूत परेतन
देव बहाई । देवखर लीपे मोर बलाई ।—मत्स्य०, पृ० ६ ।

देवखरा—संज्ञा पुं० [हि० देवखरा] [स्त्री० अल्पा० देवखरी] दे०
'देवहरा' । उ०—(क) हिंदू पूजें देवखरा, मुखमान महजीव ।
पलटू पूजें बोलता जो खाय दीद बर दीद ।—पलटू०, भा०
३, पृ० ११० । (ख) माटी देवखरी बाँधि मुए की पूजा लावे ।
—पलटू०, पृ० ७३ ।

देवखात—संज्ञा पुं० [सं०] १. प्रकृतिम जलाशय । ऐसा ताल या
गड्ढा जो आपसे आप बन गया हो । २. देवमंदिर के पास
निर्मित जलाशय । देवमंदिर का तालाब ।

विशेष—मनु ने लिखा है कि नदी, देवखात, तड़ाग, सरोवर,
वर्षा और प्रसवण में नित्य स्नान करना चाहिए ।

१. गुफा । खोह । कंदरा ।

देवखातक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'देवरात' [को०] ।

देवगंगा—संज्ञा स्त्री० [सं० देवगङ्गा] एक छोटी नदी का नाम जो
आसाम में है । इसे वही 'दिवंग' कहते हैं ।

देवगंधर्व—संज्ञा पुं० [सं० देवगन्धर्व] १. नारद । २. गायन की पद्धति-
विशेष [को०] ।

देवगंधा—संज्ञा स्त्री० [सं० देवगन्धा] महामेधा ।

देवगंधार—संज्ञा पुं० [सं० देवगन्धार] दे० 'देवगंधार' ।

देवगङ्गु—संज्ञा स्त्री० [सं० देव + गौ] कामधेनु । उ०—कामना

बानि खुमान लखे न कछु सुरकुल न देवगऊ है।—भूषण सं०, पु० ३४।

देवगढ़ी—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की ईल।

देवगण—संज्ञा पुं० [सं०] १. देवताओं का वर्ग। देवताओं का अलग अलग समूह।

विशेष—वैदिक देवताओं के ये गण हैं—८ वसु, ११ रुद्र, १२ आदित्य। इनमें इंद्र और प्रजापति मिला देने से ३३ देवता होते हैं (शतपथ ब्राह्मण)। पीछे से इन गणों के अतिरिक्त ये गण और माने गए—३० तुषित, १० विश्वेदेवा, १२ साध्य, १४ आभास्वर, ४६ मरुत, २२० महाराजिक। इस प्रकार वैदिक देवताओं के गण और परवर्ती देवगणों को कुल संख्या ४१८ होती है। बौद्ध और जैन लोग भी देवताओं के कई गण या वर्ग मानते हैं।

२. कलित ज्योतिष में नक्षत्रों का एक समूह जिसके अंतर्गत आश्विनी, रेवती, पुष्य, स्वाती, हस्त, पुनर्वसु, अनुराधा, युग-शिरा और श्रवण है। ३. किसी देवता का अनुचर।

देवगणिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] अप्सरा। स्वर्गस्था [को०]।

देवगति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. मरने के उपरांत उत्तम गति। स्वर्ग-लाभ। उ०—श्री रघुनाथ वनुष कर लीनो लागत बाण देव-गति पाई।—सूर (शब्द०)। २. मरने पर देवयानि की प्राप्ति।

देवगान्धारी—संज्ञा पुं० [सं० देवगण] दे० 'देवगण'।

देवगर्जन—संज्ञा पुं० [सं०] मेघगर्जन। बादल का गरजना [को०]।

देवगर्भ—संज्ञा पुं० [सं०] वह मनुष्य जो देवता के वीर्य से उत्पन्न हो। जैसे, कण, जो सूर्य से उत्पन्न हुए थे।

देवगांधार—संज्ञा पुं० [सं० देवगान्धारी] एक राग का नाम जो भैरव राग का पुत्र माना जाता है। यह संपूर्ण जाति का राग है और इसमें ऋषभ और भैरव कोमल लगते हैं। इसका स्वर-ग्राम इस प्रकार है—ग म प ध नि स रे।

देवगांधारी—संज्ञा स्त्री० [सं० देवगान्धारी] एक रागिनी जो श्रीराग की भार्या मानी जाती है। यह शिशिर ऋतु में तीसरे पहर से लेकर प्राची रात तक गाई जाती है।

देवगायक—संज्ञा पुं० [सं०] गंधर्व।

देवगायन—संज्ञा पुं० [सं०] गंधर्व।

देवगिरा—संज्ञा स्त्री० [सं०] देववाणी। संस्कृत।

देवगिरि—संज्ञा पुं० [सं०] रैवतक पर्वत जो गुजरात में है। गिरनार। २. दक्षिण का एक प्राचीन नगर जो आजकल बीलताबाद कहलाता है और निजाम राज्य के अंतर्गत है।

विशेष—यह यादव राजाओं की बहुत दिनों तक राजधानी रहा। प्रसिद्ध कलचुरि वंश का जब अक्षयपति हुआ तब इसके आसपास का सारा प्रदेश द्वारसमुद्र के यादव राजाओं के हाथ आया। कई शिलालेखों में इन यादव राजाओं की जो बंशावली मिली है वह इस प्रकार है—

५-१६

सिधन (१ ला)

मल्लुगि

भित्तम (शक सं० ११०६-१११३)

जैतुगि (१ ला) वा जैत्रपाल, जैत्रासह (शक १११३-११३१)

सिधन (२रा) वा त्रिभुवनमल्ल (शक ११३१-११६६)

जैतुगि (२ रा) वा जैत्रपाल

कृष्ण या कन्हार (शक ११६६-११८२) महादेव (शक ११८३-११९३)

रामचंद्र या रामदेव (शक ११९३-१२३१)

द्वितीय सिधन के समय में ही देवगिरि यादवों की राजधानी प्रसिद्ध हुआ। महादेव की समा में बोंपदेव और हेमाद्रि ऐसे प्रसिद्ध पंडित थे। कृष्ण के पुत्र रामचंद्र रामदेव बड़े प्रतापी हुए। उन्होंने अपने राज्य का विस्तार खूब बढ़ाया। शक सं० १२१६ में अलाउद्दीन ने देवगिरि पर एकस्मात् चढ़ाई कर ली। राजा वहाँ तक लड़ते बना वहाँ तक लड़े पर अंत में दुर्ग के भीतर सामग्री घट जाने ने उन्होंने आत्मसमर्पण किया। शक सं० १२२८ में रामचंद्र ने कर देना अस्वीकार कर दिया उस समय दिल्ली के सिंहासन पर अलाउद्दीन बैठ चुका था। उसने एक लाख सवारों के साथ मलिक काफूर को दक्षिण भेजा। राजा हार गए। अलाउद्दीन ने समानपूर्वक उन्हें फिर देवगिरि भेज दिया। शहर मलिक काफूर दक्षिण के और राज्यों में लूटपाट करने लगा। कुछ दिन बीतने पर राजा रामचंद्र का जामाता हरिपाल मुसलमानों को दक्षिण से भगाकर देवगिरि के सिंहासन पर बैठा। छह वर्ष तक उसने पूर्ण प्रताप के साथ राज्य किया। अंत में शक सं० १३४० में दिल्ली के बाबकाह ने उसपर चढ़ाई की और कपटयुक्ति से उसको परास्त करके मार डाला। इस प्रकार यादव राज्य की समाप्ति हुई। मुहम्मद जोगलक पर जब अपनी राजधानी दिल्ली से देवगिरि ले जाने की सवक चढ़ी थी तब उसने देवगिरि का नाम दोलतबाद रखा था।

देवगिरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक रागिनी जो सोमेश्वर के मत से वसंत राग की, भरत के मत से हिंदोल राग के पुत्र नागध्वनि की, संगीतदर्पण के मत से नटवर्याण की और हनुमंत के मासकोश राग की भार्या मानी जाती है।

विशेष—यह हेमंत ऋतु में दिन के चौथे पहर से लेकर प्राची रात तक गाई जाती है। किसी के मत से यह रागिनी संकर है और शुद्ध पुषी और सारंग के मेल से और किसी के मत से सरस्वती, मालश्री और गांधारी के मेल से बनी है। यह संपूर्ण जाति की रागिनी है और इसमें सब शुद्ध स्वर लगते हैं।

देवगुह—संज्ञा पुं० [सं०] १. देवताओं के गुह । वृहस्पति । २. देवताओं के गुह अर्थात् पिता । कश्यप ।

देवगुही—संज्ञा स्त्री० [सं०] सरस्वती ।

देवगुह्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. गृह्य । २. वह रहस्य जो केवल देवताओं को ही ज्ञात हो [को०] ।

देवगृह—संज्ञा पुं० [सं०] १. देवताओं का घर । देवालय । २. राज-भवन । राजमहल (को०) ।

देवगिग—संज्ञा पुं० [सं० देवज, प्रा० देवग] दे० 'देवज' । उ०—सुख संयोग अंतर धरी कहत बचन देवगि । सोइ सु दिन ध्यान करि चली मुराज गुनगि ।—पृ० रा०, २४। ३५६ ।

देवघन—संज्ञा पुं० [देश०] एक पेड़ जो बगीचों में लगाया जाता है ।

देवचक्र—संज्ञा पुं० [सं०] गवामयन यज्ञ के प्रसिद्ध का नाम ।

देवचर्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] देवपूजा । देवाचन [को०] ।

देवचाली—संज्ञा पुं० [सं०] इंद्रताम्र के छह भेदों में से एक ।—(संगीत रामोदर) ।

देवचिकित्सक—संज्ञा पुं० [सं०] १. अश्विनीकुमार । २. दो की संख्या ।

देवचेली—संज्ञा स्त्री० [सं० देव + 'ह० चेली] देवदासी । उ०—देवी देवताओं को प्रसन्न करने के लिये किसी निर्धन की लड़की खरीदकर मंदिर में अर्पण कर देते हैं और वह देवचेली (देवदासी) कहलाने लगती है ।—नेपाल०, पृ० ७ ।

देवच्छन्द—संज्ञा पुं० [सं० देवच्छन्द] एक प्रकार का हार, जो किसी के मत में १०० या १०८ लड़ियों का और किसी के मत में ८१ लड़ियों का होता है ।

देवज—वि० [सं०] देवता से उत्पन्न । देवसंभूत ।

देवज^२—संज्ञा पुं० १. सामभेद । २. सूर्यवंशीय संयम राजा के एक पुत्र का नाम ।

देवजग्ध—संज्ञा पुं० [सं०] रोहिष तृण । रोहिम घास ।

देवजग्धक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'देवजग्ध' ।

देवजन—संज्ञा पुं० [सं०] उपदेव । गंधर्व ।

देवजनविद्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] गंधर्वविद्या । संगीत विद्या ।

देवजानी—संज्ञा स्त्री० [सं० देवजानी] दे० 'देवजानी' ।—वरुण०, पृ० ५ ।

देवजुष्ट—वि० [सं०] देवता को बड़ा हुआ ।

देवट—संज्ञा पुं० [सं०] शिल्पी । कारीगर ।

देवठान—संज्ञा पुं० [सं० देवोत्थान] १. विष्णु भगवान् का सोकर उठना । २. कार्तिक शुक्ला एकादशी । इस दिन विष्णु भगवान् सोकर उठते हैं इससे इसका माहत्म्य बहुत माना जाता है ।

देवड़ा—संज्ञा पुं० [सं०] अग्नि की एक जाति । उ०—केई कीची केई देवड़ा केई महिलोत सरिस परमार ।—बी० रासो, पृ० १७ ।

देवडोगरी—संज्ञा पुं० [सं० देव + देश० डोगरी] देवदाली नता । बंदाव ।

देवड़ी—संज्ञा स्त्री० [हि० उघोड़ी] दे० 'उघोड़ी' ।

देवदह—संज्ञा पुं० [सं०] १. देवताओं के दह ।

विशेष—स्वर्ग के दस पाँच माने जाते हैं,—मंदार, पारिजात, संतान, कल्पवृक्ष और हरिचंदन ।

२. चैत्य पर का दह । चैत्यवृक्ष (को०) ।

देवतर्पण—संज्ञा पुं० [सं०] ब्रह्मा, विष्णु, आदि देवताओं का नाम ले लेकर पानी देने की क्रिया ।

देवता—संज्ञा पुं० [सं०] स्वर्ग में रहनेवाला अमर प्राणी ।

विशेष—वेदों में देवता शब्द से कई प्रकार के भाव लिए गए हैं । साधारणतः वेदमंत्रों के जितने विषय हैं वे देवता कहलाते हैं । विल, लोढ़े, मूसल, भोलवी, नदी, पहाड़ इत्यादि से लेकर घोड़े, भेड़क, मनुष्य (नागार्जुन), इंद्र, वरुण, आदित्य इत्यादि तक वेदमंत्रों के देवता हैं । काश्यायन ने अनुक्रमशः का में मंत्र के वाक्य विषय को ही उसका देवता कहा है । निरुक्त-कार यास्क ने 'देवता' शब्द को दान, दीपन और सुस्थान-गत होने से निकाला है । देवताओं के संबंध में प्राचीनों के चार मत पाए जाते हैं,—ऐतिहासिक, याज्ञिक, नैस्तिक और आध्यात्मिक । ऐतिहासिकों के मत से प्रत्येक मंत्र भिन्न भिन्न घटनाओं या पदार्थों को लेकर बना है । याज्ञिक लोग मंत्र ही को देवता मानते हैं जैसा जमिनी ने मीमांसा में स्पष्ट किया है । मीमांसा दर्शन के अनुसार देवताओं का कोई रूपविग्रह आदि नहीं, वे मंत्रात्मक हैं । याज्ञिकों ने देवताओं को दो श्रेणियों में विभक्त किया है—सोम्य और असोम्य । अष्टवमु, एकादश रुद्र, ढादश आदित्य, प्रजापति और ऋषिदेव ये ३३ सोम्य देवता कहलाते हैं । एकादश प्रयाजा, एकादश अनुयाजा और एकादश उपयाजा ये असोम्य देवता कहलाते हैं । सोमपायी देवता सोम से मनुष्ट हो जाते हैं और असोमपायी यज्ञपथ से तुष्ट होते हैं । नैस्तिक लोग स्थान के अनुसार देवता लेते हैं और तीर्थ ही देवता मानते हैं; अर्थात् पृथिवी का अग्नि, अंतरिक्ष का इंद्र या वायु और सुस्थान का सूर्य । बाकी देवता या तो इन्हीं तीनों के संतर्भूत हैं अथवा होता, अष्टव्यु, ब्रह्मा, उद्दाना आदि के कर्मभेद के लिये इन्हीं तीनों के भलग भलग नाम हैं । ऋग्वेद में कुछ ऐसे मंत्र भी हैं जिनमें भिन्न भिन्न देवताओं को एक ही के अनेक नाम कहा है, जैसे, बुद्धिमान नाग इंद्र, मित्र, वरुण और अग्नि कहते हैं । इनके एक होने पर भी इन्हें बहुत बतलाते हैं । (ऋग्वेद १। १५४। ४६) । ये ही मंत्र आध्यात्मिक पक्ष या वेदांत के मूल बीज हैं । उपनिषदों में इन्हीं के अनुसार एक ब्रह्म की भावना की गई है ।

प्रकृति के बीच जो वस्तुएँ प्रकाशमान, ध्यान देने योग्य और उत्पत्ती देस पड़ी उनकी स्तुति या वरुण अग्निधियों ने मंत्रों द्वारा किया । जिन देवताओं को प्रसन्न करने के लिये यज्ञ आदि होते थे उनकी कुछ विशेष स्थिति हुई । उनसे लोग धनदायक युद्ध में जय, शत्रुओं का नाश आदि चाहते थे । क्रमशः देवता शब्द में ऐसी ही अगोचर सत्ताओं का भाव समझा जाने लगा और धीरे धीरे पौराणिक काल में रुचि के अनुसार और भी अनेक देवताओं की कल्पना की गई । ऋग्वेद में जिन देवताओं के नाम आए हैं उनमें से कुछ ये हैं,—अग्नि, वायु, इंद्र, मित्र,

वरुण, अश्विद्वय, विश्वेदेवा, मरुद्गण, ऋतुगण, ब्रह्मणस्पति, सोम, स्वष्टा, सूर्य, विष्णु, पुषि, यम, पर्जन्य, अर्यमा, पूषा, रुद्रगण, वसुगण, आदित्यगण, उषना, वित, अन्न, अहिर्बुध्न, अज, एकपात, ऋमुखा, गुरुमान इत्यादि। कुछ देवियों के नाम भी आए हैं, जैसे,—सरस्वती, सुनुता, इला, इंद्राणी, होत्रा, पुषिबी, उषा, आत्री, रोदसी, राका, मिनीबासी, इत्यादि।

ऋग्वेद में मुख्य देवता ३३ माने गए हैं—८ वसु, ११ रुद्र, १२ आदित्य तथा इंद्र और प्रजापति। ऋग्वेद में एक स्थान पर देवताओं की संख्या ३३३६ कही गई है। (३।६।६)। ऋतपथ ब्राह्मण और सांख्यायन श्रौतसूत्र में भी यह संख्या दी हुई है। इसपर सायण कहते हैं कि देवता ३३ ही हैं, ३३३६ नाम महिमा प्रकाशक हैं। देवता मनुष्यों से अन्न अथवा प्राणी माने जाते थे। इसका स्पष्टतः ऋग्वेद में स्पष्ट है—‘हे असुर वरुण ! देवता हों या मर्त्य (मनुष्य) हों, तुम सबके राजा हो।’ (ऋक् २।२७।१०)।

पीछे पौराणिक काल में, जिसका थोड़ा बहुत सूचनात शुक और सूत के समय में हो चुका था, वेद के ३३ देवताओं से ३३ कोटि देवताओं की कल्पना की गई। इंद्र, विष्णु, रुद्र, प्रजापति, इत्यादि वैदिक देवताओं के रूप रंग, कुटुंब आदि की भी कल्पना की गई। अस्थान के वैदिक देवता विष्णु (जो १२ आदित्यों में थे) आगे चलकर ननुभुज, शंखचक्र-महापद्मधारी, लक्ष्मी के पति हो गए। वैदिक रुद्र जटी, त्रिशूल-धारी, पार्वती के पति, गणेश और स्कंद के पिता हो गए और वैदिक प्रजापति वेद के वक्ता, चार मुंहवाले ब्रह्मा हो गए। देवताओं की भावना और उपामना में यह वेद महाभारत के समय से ही कुछ कुछ बढ़ने लगा। कृष्ण के समय तक वैदिक इंद्र की पूजा होती थी जो पीछे बढ़ हो गई, यद्यपि इंद्र देवताओं के राजा और स्वर्ग के स्वामी बन रहे। आज्ञा देने वालों में उपासना के लिये पाँच देवता मुख्य माने गए हैं—विष्णु, शिव, सूर्य, गणेश और दुर्गा। ये देवता कहे जाते हैं।

यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद और पुराणों के अनुसार इंद्र, रुद्र आदि देवता कश्यप से उत्पन्न हुए। पुराणों में लिखा है कि कश्यप की दिति नाम की स्त्री से दैत्य और अदिति नाम की स्त्री से देवता उत्पन्न हुए।

बौद्ध और जैन लोग भी देवताओं को आधारगण आदि भी मानते हैं और इसी पौराणिक रूप में; मेव केवल इतना ही है कि वे देवताओं को बुद्ध, बोधिसत्व या तीर्थंकरों से निम्न श्रेणी का मानते हैं। बौद्ध लोग भी देवताओं के कई गण या वर्ग मानते हैं, जैसे,—चातुरमहाराजिक, तृप्तिक आदि। जैन लोग चार प्रकार के देवता मानते हैं—भैरविक या कल्पभव, कल्पासीत, अवेधक और अनुत्तर। वैदिक १२ हैं—सीधर्म, ईशान, सनत्कुमार, महेश, ब्रह्मा, अंतक, शुक, सह-आर, नल, प्राणत, आरण्य और अच्युत।

देवताङ्क—संज्ञा पुं० [सं० देवताङ्क] १. एक प्रकार का तृण या पौधा जिसमें इधर उधर टहनियाँ नहीं निकलतीं, तलवार की

तरह दो ठाई हाथ तक लंबे सीधे पत्ते पेड़ी से चारों ओर निकलते हैं।

विशेष—यह पौधा अपने लंबे और कड़े पत्ते के कारण देखने में चीकूँवार के पीछे सा मालूम होता है। इस पीछे के पत्ते कड़े और कुछ नीलापन लिए होते हैं। इसके बीच का कांड बड़े की तरह छह सात हाथ ऊपर निकल जाता है जिसके सिरे पर फूलों के गुच्छे लगते हैं। पत्तों के रेशों से बहुत मजबूत रस्से बनते हैं। इसे रामबाँस भी कहते हैं।

२. दे० ‘देवताङ्की’। ३. राहु (को०)। ४. अग्नि (को०)।

देवताङ्क—संज्ञा पुं० [सं० देवताङ्क] दे० ‘देवताङ्की’ (को०)।

देवताङ्की—संज्ञा स्त्री० [सं० देवताङ्की] १. देवदाली लता। बेंदाल। २. तुरई। तरौई।

देवतात—संज्ञा पुं० [सं०] १. कश्यप जिनसे देवता उत्पन्न हुए। २. देवकार्य। यज्ञ (को०)।

देवताति—संज्ञा पुं० [सं०] १. देवता। ईश्वर। २. एक यज्ञ (को०)।

देवतात्मा—संज्ञा पुं० [सं०] १. अश्वत्थ वृक्ष जिसमें देवता रहते हैं। २. हिमवान् पर्वत जो देवनिवास के कारण देवस्वरूप है (को०)।

देवताधिप—संज्ञा पुं० [सं०] इंद्र।

देवताध्याय—संज्ञा पुं० [सं०] सामवेद का एक ब्राह्मण।

देवतापितृ—संज्ञा पुं० [सं० देव + पितृ] देवता और पितर। उ०—मैं तो बतेरा देवता पितर मनाता रहा।—किन्नर०, पृ० ८३।

देवतीर्थ—संज्ञा पुं० [सं०] १. देवदुर्गा के लिये उपयुक्त समय। २. भंगूठे की छोड़ उंगलियों का अग्रभाग जिससे होकर संकल्प या तर्पण का जल गिरता है।

देवतुमुल—संज्ञा पुं० [सं०] बादल की ध्वनि, मेघ की गरज। (को०)।

देवतुष्टिपति—संज्ञा पुं० [सं०] देवपूजक। पुजारी।

देवत्त—वि० [सं०] देवता का दिया हुआ। देवदत्त।

देवत्ता—संज्ञा पुं० [सं० देवता] दे० ‘देवता’। उ०—देवत्त देव देवाधिवर। नीत न मानस यजि सुवर। कर्हिंयंत गोप गोपी सुवर। विधि विधान निरमान नर।—पृ० १।०, २।३४०।

देवदण्ड—वि० [सं० देव, या देवत्व] विवाह का एक भेद जिसे देव कहते हैं। उ०—देवदण्ड व्याह बहुमान कीन।—पृ० १।०, २।१।१३६।

देवत्रयी—संज्ञा पुं० [सं०] ब्रह्मा, विष्णु और शिव इन तीन देवताओं का समूह।

देवत्रिय—संज्ञा स्त्री० [सं० देवस्त्री] देवांगना। स्वर्वश्या। अस्तरा। उ०—गंगा संगम देवत्रिय, जान विमान अनंतु।—केशव शं०, १।१३५।

देवत्व—संज्ञा पुं० [सं०] देवता होने का भाव या धर्म।

देवदंडा—संज्ञा स्त्री० [सं० देवदण्डा] नागबला। गंगेरन।

देवदत्त—वि० [म०] १. देवता का दिया हुआ । देवता से प्राप्त ।
२. जो देवता के निमित्त दिया गया हो ।

देवदत्त—संज्ञा पु० १. देवता के निमित्त दान की हुई संपत्ति । २. शरीर की पचि वायुओं में से एक जिससे जर्माई आती है ।
३. अजुन के शंख का नाम । ४. अष्टकुल नागों में से एक ।
५. शाक्यवंशीय एक राजकुमार जो गौतम बुद्ध का भव्नेरा भाई था और उनसे बहुत बुरा मानता था ।

विशेष—बुद्ध और देवदत्त दोनों ही साथ पले थे, इससे सब बातों में बुद्ध को विशेष कुशल और तेजस्वी देखकर वह मन ही मन बहुत चिढ़ता था । यशोधरा से पहले यही विवाह करना चाहता था । जब यशोधरा ने बुद्ध को स्वीकार कर लिया तब यह और भी जला और बदला लेने की ताक में रहने लगा । गौतम के बुद्धत्व प्राप्त करने पर भी इसने द्वेष न छोड़ा । अवदानगतक में लिखा है कि बुद्ध जिस समय जैनवन धाराम में ठहरे थे, देवदत्त ने उन्हें मारने के लिये बहुत से चातक भेजे थे । पीछे से यह बुद्ध के संघ में मिल गया था और अनेक प्रकार के उपाय बुद्ध और संघ की हानि पहुँचाने के लिये किया करता था । कौशांबी में धानंद और सारिपुत्र मोदगलान्न की प्रभानता से क्रुद्धकर यह संघ छोड़कर राजगृह चला गया और वहाँ अजातशत्रु को मिलाकर उसने बुद्ध को अनेक प्रकार के कष्ट पहुँचाए, उनपर मल हाथी छुड़ाया, पत्थर लुढ़काया । अंत में जब वह कुछ रोग आदि से पीड़ित और जीवन से निराश हुआ तब बुद्ध से क्षमा माँगने के लिये चला । बुद्ध ने उसे माता पुनकर कहा वह भेरे पान नहीं खा सकता । संयोगवश वह पाने के पहले तालाब में नहान घुसा और वही कीचड़ में फँसकर मर गया ।

देवदर्शन—संज्ञा पु० [सं०] १. देवता का दर्शन । २. नारद ऋषि का एक नाम (भागवत) ।

देवदानी—संज्ञा स्त्री० [म०] बही तोरई ।

देवदार—संज्ञा पु० [सं० देवदार०] एक बहुत ऊँचा पेड़ जो हिमालय पर ६००० फुट से ८००० फुट तक की ऊँचाई पर होता है ।

विशेष—देवदार के पेड़ अस्सी गज तक सीधे ऊँचे चले जाते हैं और पच्छिमी हिमालय पर कुमाऊँ से लेकर काश्मीर तक पाए जाते हैं । देवदार की अनेक जातियाँ संसार के अनेक स्थानों में गई जाती हैं । हिमालयपाल देवदार के प्रतिरिक्त एशियाई कोवक (तुर्की का एक माग) तथा लुब्ना और साइप्रस टापू के देवदार प्रसिद्ध हैं । हिमालय पर के देवदार की डालियाँ भौंघो और कुछ नीचे की ओर झुकी होती हैं, पत्तियाँ महीन महीन होती हैं । डालियों के सहित सारे पेड़ का घेरा ऊपर की ओर जगमग कम अर्थात् सावदुम होता जाता है जिससे देखने में यह जग के आकार का जान पड़ता है । देवदार के पेड़ डेढ़ दो दो बी वर्ष तक पुराने पाए जाते हैं । ये जितने ही पुराने होते हैं उनसे ही विशाल होते हैं । बहुत पुराने पेड़ों के घड़ या तने का घेरा १५-१५ हाथ

तक का पाया गया है । इसके तने पर प्रति वर्ष एक मंडल या छस्ला पड़ता है, इसलिये इन छस्लों को गिनकर पेड़ की अवस्था बतलाई जा सकती है । इसकी लकड़ी कड़ी, सुंदर, हलकी, सुगंधित और सफेदी लिए बादामी रंग की होती है और मजबूती के लिये प्रसिद्ध है । इसमें घुन कीड़े कुछ नहीं लगते । यह इमारतों में लगती है और अनेक प्रकार के सामान बनाने के काम आती है । काश्मीर में बहुत से ऐसे मकान हैं जिनमें चार चार सौ बरस की देवदार की धरनें आदि लगी हैं और अभी ज्यों की त्यों हैं । काश्मीर में देवदार की लकड़ी पर बकशी बहुत अच्छी होती है । कांगड़े में इसे घिसकर चंदन के स्थान पर लगाते हैं । इससे एक प्रकार का अलकतरा और तारपीन की तरह का तेल भी निकलता है, जो चीपारों के घाव पर लगाया जाता है । देवदार को दियार, कंगू और कहीं कहीं केलोन भी कहते हैं ।

पर्या०—अकपादप । पांडिक । अरुदास । मुक्तिजिम । पीड़दास । दास । पुनिकाठ । मुरदास । शिगधदास । दाहक । अमरदास । शाभव । भूतहारि । अवदास । भद्रात् । इन्द्रदास । देवकाष्ठ ।

देवदारा—संज्ञा स्त्री० [सं०] देवताओं की स्त्री । अत्तरा । उ०—जिसे देखने के लिये ये देवदारा और गवर्ग कम्पाएँ । प्रमथन०, भा० २, पृ० ११६ ।

देवदारु—संज्ञा पु० [म०] देवदार ।

देवदार्वादि—संज्ञा पु० [सं०] भावप्रकाश के अनुसार एक वंश जिससे प्रसूता स्त्री को पिलाने से ज्वर, दाह, सिर की पीड़ा, अतीसार, मूर्च्छा आदि उपद्रव शांत हो जाते हैं ।

विशेष—इस काढ़े में ये वस्तुएँ बराबर बराबर पड़ती हैं—देवदार, बब, कुड़, पिप्पली, सोठ, चिरायना, कायफन, भाषा, कुटकी, धनिया, हड़, गजपिप्पली, जवामा, गाखर भटकट्या (कंदकारि), गुलचकंद, काकड़ासीवी और स्याहजीरा । काढ़ा तैयार हो जाने पर उसमें हींग और नमक डाल देना चाहिए ।

देवदालिका—संज्ञा स्त्री० [म०] महाकांत वृक्ष ।

देवदाली—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक नता जो देवने में तुरई की बेल से मिलती जुलती होती है ।

विशेष—इसकी पत्तियाँ भी तुरई की पत्तियों के सामान पर उन से छोटी होती हैं और कोनों पर नुकीली नहीं होती । फल कपोड़े (खेवसे) की तरह काटेदार होते हैं । वेद्यक में यह कड़ुई, तीक्ष्ण, वमनकारक, विरेचक, विषनाशक, अथरोगनाशक, तथा ज्वर, खाँसी, अरुचि, हिचकी, कृमि, जुड़े के विष इत्यादि को दूर करनेवाली मानी जाती है ।

पर्या०—जीपूतक । कंदफला । गराशरी । वेणी । सह्य । कोशफला । कटुकला । घोरा । बंबा । विषहा । ककटो । सारपुषिका । आलुविषहा । पुत्तकोषा । घोषा । विषघ्नो । दासी । सोमसपत्रिका । तुरमिका ।

देवदास—संज्ञा पु० [सं०] देवता का दास । देवोपासक । २. देव-मंदिर का दास या सेवक [को०] ।

देवदासी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. वेश्या । २. मंदिरों की दासी या नर्तकी ।

विशेष—ये जगन्नाथ से लेकर दक्षिण के प्रायः सब मंदिरों में नाचती गाती हैं और वेश्यावृत्ति करती हैं । इनके माता, पिता बन्धन ही में उन्हें मंदिर को दान कर देते हैं, जहाँ उस्ताद लोग इन्हें नाचना गाना सिखाते हैं । मदरास के बिलगपट जिले के कोरियों (कपड़ा बुननेवालों) में यह रीति है कि वे अपनी सबसे बड़ी लड़की को किसी मंदिर को दान कर देते हैं । इस प्रकार की दान की हुई कुमारियों को महाराष्ट्र देश में 'मुरली' और तैलंग देश में 'वसवा' कहते हैं । इन्हें मंदिरों से गुजारा मिलता है । मरने पर इनका उत्तराधिकारी पुत्र नहीं होता, कन्या होती है । मंदिरों में देवदासियाँ रखने की प्रथा प्राचीन है । कालिदास के मेघदूत में महाकाश के मंदिर में वेश्याओं के नृत्य करने की बात लिखी है । मिस्र, यूनान, बाबिलन आदि के प्राचीन देव-मंदिरों में भी देवनातिकाँयाँ होती थीं ।

३. जंगली बिजोरा नीबू । बिजोरा नीबू ।

देवदीप—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह दीपक जो किसी देवता के निमित्त जलाया गया हो । २. मालि । नेत्र ।

देवदुर्गुभिः—संज्ञा पुं० [सं० देवदुर्गुभिः] १. लान तुलसी । २. देवताओं का नगाड़ा । ३. इंद्र का एक नाम (की०) ।

देवदूत—संज्ञा पुं० [सं०] १. अग्नि । आग । २. देवताओं का दूत (की०) ।

देवदूती—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. स्वर्ग की अप्सरा । २. बिजोरा नीबू ।

देवदेव—संज्ञा पुं० [सं०] १. शिव । २. ब्रह्मा । ३. विष्णु । ४. गणेश । ५. इंद्र । उ०—तर्ह राजा दशरथ लसे देवदेव अनुरूप ।—केशव (शब्द०) ।

देवधुर—संज्ञा पुं० [सं०] भरतवंशीय एक राजा जो देवाजित् के पुत्र थे (भागवत) ।

देवद्रुम—संज्ञा पुं० [सं०] १. कल्पवृक्ष, पारिजात आदि स्वर्ग के वृक्ष । देवतृष । उ०—सूकी तब सेवत कहा बिहंग देवद्रुम सेव ।—दीन० प्र०, पृ० २२२ । २. देवदार ।

देवद्रोणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. भरघा जिसमें स्वयम्भू लिंग स्थापित किया जाता है । २. देवयात्रा । किसी देवता की मूर्ति को बाजे गात्रे के साथ ग्राम से घुमाना ।

देवधन—संज्ञा पुं० [सं०] देवता के निमित्त उत्सर्ग किया हुआ धन । उ०—यों ही बहुतेरे चिल्ला रहे हैं कि देवधन के विषय में...।—प्रेमचन०, भा० २, पृ० २१ ।

देवधानी—संज्ञा स्त्री० [सं०] अमरपुरी । इंद्रपुरी (की०) ।

देवधान्य—संज्ञा पुं० [सं०] उवार ।

देवधाम—संज्ञा पुं० [सं० देवधामन्] तीर्थस्थान । देवस्थान ।

मुहा०—देवधाम करना = तीर्थयात्रा करना ।

देवधुनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] गंगा नदी । उ०—हमहि अगम गति वरस मुहारा । अस मरुधरनि देवधुनि बारा ।—तुलसी (शब्द०) ।

देवधूप—संज्ञा पुं० [सं०] गुग्गुलु । गुग्गुलु ।

देवधेनु—संज्ञा स्त्री० [सं०] कामधेनु ।

देवनंदी—संज्ञा पुं० [सं० देवनन्दिन्] इंद्र का द्वारपाल ।

देवन—संज्ञा पुं० [सं०] १. व्यवहार । २. किसी से बढ़ बढ़कर होने की वासना । जिगीषा । ३. क्रीड़ा । खेल । ४. लोलो-सान । बगीचा । ५. पक्ष । कमल । ६. परिवेदना । खेद । रंज । शोक । ७. द्युति । कांति । ८. स्तुति । ९. गति । १०. द्यूत । जुभा । ११. पासे का खेल । बीसर ।

देवनक्षत्र—संज्ञा पुं० [सं०] वे नक्षत्र जो यम नक्षत्र से भिन्न हों । दक्षिणायन के प्रारंभिक १४ नक्षत्र (की०) ।

देवनटी—संज्ञा स्त्री० [सं० देव + नटी (= नाचनेवाली)] अप्सरा । उ०—नितंति देवनटी छबि जटी । लटके अनु कि छटन की छटी ।—तंद० प्र०, पृ० २२७ ।

देवनदी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. गंगा । उ०—देवनदी ग्रहियान पदी महिमान बर्षा स्रुति साख बिसेली ।—घनानंद०, पृ० १४८ । २. सरस्वती और द्युवती नदी ।

देवनल—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का नरकट या नरसत ।

देवना—संज्ञा पुं० [सं०] १. क्रीड़ा । खेल । २. मेवा । ३. द्यूतक्रीड़ा (की०) । ४. शोक (की०) ।

देवनागरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] भारतवर्ष की प्रधान लिपि जिसमें संस्कृत, हिंदी, मराठी आदि देशभाषाएँ लिखी जाती हैं ।

विशेष—'नागरी' शब्द की उत्पत्ति के विषय में मतभेद है । कुछ लोग इसका केवल 'नगर की' या 'नगरों में व्यवहृत' ऐसा अर्थ करके पोछा छुड़ते हैं । बहुत लोगों का यह मत है कि गुजरात के नागर ब्राह्मणों के कारण यह नाम पड़ा । गुजरात के नागर ब्राह्मण अपनी उत्पत्ति आदि के संबंध में स्कंदपुराण के नागर खंड का प्रमाण देते हैं । नागर खंड में चमत्कारपुर के राजा का वेदवेत्ता ब्राह्मणों को बुलाकर अपने नगर में बसाना लिखा है । उसमें यह भी वर्णित है कि एक विशेष घटना के कारण चमत्कारपुर का नाम 'नगर' पड़ा और वहाँ जाकर बसे हुए ब्राह्मणों का नाम 'नागर' । गुजरात के नागर ब्राह्मण आधुनिक बड़नगर (प्राचीन आनंदपुर) को ही 'नगर' और अपनी स्थापना बतलाते हैं । अतः नागरी अक्षरों का नागर ब्राह्मणों से संबंध मान लेने पर भी यही मानना पड़ता है कि ये अक्षर गुजरात में वहाँ से गए जहाँ से नागर ब्राह्मण गए । गुजरात में दूसरी ओर सातवीं शताब्दी के बीच के बहुत से शिलालेख, ताम्रपत्र आदि मिले हैं जो ब्राह्मी और दक्षिणी ग्रेनी की पश्चिमी लिपि में हैं, नागरी में नहीं । गुजरात में सबसे पुराना प्रामाणिक लेख, जिसमें नागरी अक्षर भी हैं, गुर्जरवंशी राजा जयमट (तीसरे) का कमचुरि (चेदि) संवत् ४५६ (ई० स० ७०६) का ताम्रपत्र है । यह ताम्रपत्र आधिकांश गुजरात की तत्कालीन लिपि में है, केवल राजा के हस्ताक्षर (स्वहस्ता मम श्री जयमटस्य) उत्तरीय भारत की लिपि में है जो नागरी से मिलती जुलती है । एक बात और भी है । गुजरात

में जितने दानपत्र उत्तरीय भारत की अर्थात् नागरी लिपि में मिले हैं वे बहुधा कान्यकुब्ज, पाटलि, पुंड्रवर्धन आदि से लिए हुए ब्राह्मणों की ही प्रदत्त हैं। राष्ट्रकूट (राठीड़) राजाओं के प्रभाव से गुजरात में उत्तरीय भारत की लिपि विशेष रूप से प्रचलित हुई और नागर ब्राह्मणों के द्वारा व्यवहृत होने के कारण वहाँ नागरी कहलाई। यह लिपि मध्य आर्यावर्त की थी जो सबसे सुगम, सुंदर और नियमबद्ध होने के कारण भारत की प्रधान लिपि बन गई।

‘नागरी लिपि’ का उल्लेख प्राचीन ग्रंथों में नहीं मिलता। इसका कारण यह है कि प्राचीन काल में वह ब्राह्मी ही कहलाती थी, उसका कोई अलग नाम नहीं था। यदि ‘नगर’ या ‘नागर’ ब्राह्मणों से ‘नागरी’ का संबंध मान लिया जाय तो अधिक से अधिक यही कहना पड़ेगा कि यह नाम गुजरात में जाकर पड़ गया और कुछ दिनों तक उधर ही प्रसिद्ध रहा। बौद्धों के प्राचीन ग्रंथ ‘ललितविस्तर’ में जो उन ६४ लिपियों के नाम गिनाए गए हैं जो बुद्ध को सिलाई गईं, उनमें ‘नागरी लिपि’ नाम नहीं है, ‘ब्राह्मी लिपि’ नाम है। ‘ललितविस्तर’ का चीनी भाषा में अनुवाद ई० स० ३०८ में हुआ था। जैनों के ‘पञ्चवर्णा’ सूत्र और ‘समवायग सूत्र’ में १८ लिपियों के नाम दिए हैं जिनमें पहला नाम अभी (ब्राह्मी) है। उन्हीं के भगवतीसूत्र का आरम्भ ‘नमो बंभीए लिपि’ (ब्राह्मी लिपि को नमस्कार) से होता है। नागरी का सबसे पहला उल्लेख जैन धर्मग्रंथ नंदीसूत्र में मिलता है जो जैन विद्वानों के अनुसार ४५३ ई० के पहले का बना है। ‘निर्याणोडशिकार्याव’ के भाष्य में भास्करानंद ‘नागर लिपि’ का उल्लेख करते हैं और लिखते हैं कि नागर लिपि में ‘ए’ का रूप त्रिकोण है (कोणत्रयबुद्धो लेखो यस्य तत् । नागरलिप्या साम्प्रदायिकैरेकारस्य त्रिकोणाकारतयं लेखनात्)। यह बात प्रकट ही है कि प्रणोक्तिर्लि में ‘ए’ का आकार एक त्रिकोण है जिसमें फेरफार होते होते आजकल की नागरी का ‘ए’ बना है। शेषकृष्ण नामक पंडित ने त्रि-दे साढ़े सात सौ वर्ष के लगभग हुए, अपभ्रंश भाषाओं को गिनाते हुए ‘नागर’ भाषा का भी उल्लेख किया है।

सबसे प्राचीन लिपि भारतवर्ष में अशोक की पाई जाती है जो सिंध नदी के पार के प्रदेशों (गंधार आदि) को छोड़ भारतवर्ष में सर्वत्र बहुधा एक ही रूप की मिलती है। अशोक के समय से पूर्व के अब तक दो छोटे से लेख मिले हैं। इनमें से एक जो नेपाल की तराई में ‘विप्रवा’ नामक स्थान में शाक्य जातिवासियों के बनवाए हुए एक बौद्ध स्तूप के भीतर रखे हुए पत्थर के एक छोटे गे पात्र पर एक ही गति में खुदा हुआ है और बुद्ध के थोड़े ही पीछे का है। इस लेख के अक्षरों और अशोक के अक्षरों में कोई विशेष अंतर नहीं है। अंतर इतना ही है कि इनमें दीर्घ स्वरचिह्नों का अभाव है। दूसरा अक्षरेर से कुछ दूर बहली नामक ग्राम में मिला है जो [महा] कीर सवत् ८४ (ई० स० पूर्व ४४३) का है। यह स्तंभ पर खुदे हुए किसी बड़े लेख का खंड है। उसमें

‘वीराय’ में जो दीर्घ ‘ई’ की मात्रा है वह अशोक के लेखों की दीर्घ ‘ई’ की मात्रा से बिल्कुल निरासी और पुरानी है। जिस लिपि में अशोक के लेख हैं वह प्राचीन आर्यों या ब्राह्मणों की निकली हुई ब्राह्मी लिपि है। जैनो के ‘प्रज्ञापनासूत्र’ में लिखा है कि ‘अधमागधी भाषा जिस लिपि में प्रकाशित की जाती है वह ब्राह्मी लिपि है’। अधमागधी भाषा मथुरा और पाटलिपुत्र के बीच के प्रदेश की भाषा है जिससे हिंदी निकली है। अतः ब्राह्मी लिपि मध्य आर्यावर्त की लिपि है जिससे क्रमशः उस लिपि का विकास हुआ जो पीछे नागरी कहलाई। मगध के राजा आश्वमेधसेन के समय (ईसा की सातवीं शताब्दी) के कुटिल मागधी अक्षरों में नागरी का वर्तमान रूप स्पष्ट दिखाई पड़ता है। ईसा की नवीं और दसवीं शताब्दी से तो नागरी अपने पूर्ण रूप में मिलने लगती है। किस प्रकार अशोक के समय के अक्षरों से नागरी अक्षर क्रमशः रूपांतरित होते होते बने हैं यह पंडित गौरीशंकर हीराचंद मोहपा ने ‘प्राचीन लिपिमाला’ पुस्तक में और एक नकशे के द्वारा स्पष्ट दिखा दिया है। वह नकशा यहाँ अलग छापकर लगा दिया गया है जिससे नागरी लिपि का क्रमशः विकास स्पष्ट हो जायगा। इन अक्षरों का पहला रूप अशोक लिपि का है उसके उपरांत, दूसरे, तीसरे, चौथे रूप क्रमशः पीछे के हैं जो भिन्न भिन्न प्राचीन लेखों से चुने गए हैं।

वि० शामशास्त्री ने भारतीय लिपि की उत्पत्ति के संबंध में एक नया सिद्धांत प्रकट किया है। उनका कहना कि प्राचीन समय में प्रतिमा बनने के पूर्व देवताओं की पूजा कुछ सांकेतिक चिह्नों द्वारा होती थी, जो कई प्रकार के त्रिकोण आदि यंत्रों के मध्य में लिखे जाते थे। ये त्रिकोण आदि यंत्र ‘देवनगर’ कहलाते थे। उन ‘देवनगरों’ के मध्य में लिखे जानेवाले अनेक प्रकार के सांकेतिक चिह्न कालांतर में अक्षर माने जाने लगे। इसी से इन अक्षरों का नाम ‘देवनागरी’ पड़ा।

देवनाथ—संज्ञा पु० [सं०] भिन्न। महादेव।

देवनामा—संज्ञा पु० [सं० देवनामन्] १. कुण्डोप के एक वर्ष का नाम। २. कुण्डोप के राजा हिरण्यरेता के एक पुत्र।

देवनायक—संज्ञा पु० [सं०] सुगति। ईश्वर।

देवनाम—संज्ञा पु० [सं०] एक प्रकार का नरमल। बड़ा नरकट।

देवनिन्दक—संज्ञा पु० [सं० देवनिन्दक] देवताओं की निंदा करनेवाला। नास्तिक [को०]।

देवनिन्दा—संज्ञा स्त्री० [सं० देवनिन्दा] देवताओं की निंदा। नास्तिकता [को०]।

देवनिकाय—संज्ञा पु० [सं०] १. देवताओं का समूह। २. देवताओं का स्थान। स्वर्ग।

देवनिर्मित—वि० [सं०] १. प्राकृतिक। नैमगिक। २. देवताओं द्वारा निर्मित [को०]।

देवनिर्मिता—संज्ञा स्त्री० [सं०] गुडूची। गुस्स।

देवनी—संज्ञा स्त्री० [सं० देव + नी (हि०)] देव की स्त्री । उ०—
तो मैं क्या कहूँ । आप भी तो देवनी से आजमाने चले ।
आज आपको मालूम हो जायगा कि मैं इससे क्यों इतना
दबता हूँ ।—काया०, पृ० २५४ ।

देवपति—संज्ञा पुं० [सं०] सुरपति । इन्द्र ।

देवपत्तन—संज्ञा पुं० [सं०] सोमनाथ नामक देवस्थान जो काठिया-
वाड में है ।

विशेष—पुराणों में इस स्थान या क्षेत्र का नाम प्रभास और
शिलामेखों में देवपत्तन मिलता है । इसे देवनगर भी कहते थे ।

देवपत्नी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. देवता की स्त्री । २. मध्वायु । एक
प्रकार का कंद ।

देवपथ—संज्ञा पुं० [सं०] १. छायापथ । आकाश । २. वह मार्ग
जो किसी देवमंदिर की ओर जाता हो ।

देवपद्मिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] आकाश में बहनेवाली गंगा का
एक नाम ।

देवपर—संज्ञा पुं० [सं०] वह मनुष्य जो संकट पड़ने पर कोई
उद्योग न करे, किसी देवता का भरोसा किए बैठा रहे ।

देवपर्ण—संज्ञा पुं० [सं०] माषीपत्र ।

देवपशु—संज्ञा पुं० [सं०] १. देवता के नाम उत्सर्ग किया हुआ
पशु । २. देवता का उपासक ।

देवपात्र—संज्ञा पुं० [सं०] अग्नि ।

देवपाद—संज्ञा पुं० [सं०] राजा या आश्रयदाता के लिये प्रयुक्त
आदरव्यंजक शब्द ।

देवपान—संज्ञा पुं० [सं०] सोमपान करने का एक पात्र ।

देवपाल—संज्ञा पुं० [सं०] शाकद्वीप के एक पर्वत का नाम ।

देवपालित—वि० [सं०] १. (देश) जिसमें वृष्टि ही के जल से
वेनी आदि का काम चलता हो । २. देवताओं द्वारा रक्षित
(की०) ।

देवपुत्र—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० देवपुत्री] देवता का पुत्र ।

देवपुत्रिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'देवपुत्री' ।

देवपुत्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. देवता की पुत्री । २. इलायची ।
३. कपुरी साग ।

देवपुर—संज्ञा पुं० [सं०] अमरावती ।

देवपुरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] इन्द्र की राजधानी अमरावती जो स्वर्ग
में है ।

देवपुरोहित—संज्ञा पुं० [सं०] बृहस्पति । देवगुरु (की०) ।

देवपू—संज्ञा पुं० [सं०] अमरावती । देवपुरी (की०) ।

देवपूजा—संज्ञा स्त्री० [सं०] देवताओं का पूजन ।

देवपूज्य—संज्ञा पुं० [सं०] देवगुरु । बृहस्पति (की०) ।

देवप्रतिकृति—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'देवप्रतिमा' ।

देवप्रतिमा—संज्ञा स्त्री० [सं०] देवता की पावाण या भातु आदि
से निरूपित मूर्ति (की०) ।

देवप्रयाग—संज्ञा पुं० [सं०] हिमालय में टिहरी जिले के अंतर्गत

एक तीर्थ जो गंगा और अलकनंदा के संगम पर है । स्कंद-
पुराण के हिमवद् खंड में इस तीर्थ का माहात्म्य वर्णित है ।

देवप्रश्न—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह प्रश्न जो नक्षत्र, ग्रह, ग्रहण
आदि के संबंध में हो । २. शुभाशुभ संबंधी वह प्रश्न जो
किसी देवता के प्रति समझा जाय और जिसका उत्तर किसी
युक्ति से निकाला जाय ।

देवप्रसूत—संज्ञा पुं० [सं०] जल । पानी (की०) ।

देवप्रस्थ—संज्ञा पुं० [सं०] एक पुरी का नाम जो कुरुक्षेत्र से पूर्व
पड़ती थी और जिसका राजा सेनाविदु था ।

देवप्रिय—संज्ञा पुं० [सं०] १. अगस्त का पेड़ या फूल । २. पीत
भृंगराज । पीली भंगरेया । ३. देवताओं के प्रिय, शिव (की०) ।

देववंद—संज्ञा पुं० [सं० देववन्द] घोड़ों की एक भैंवरी जो उनकी
छाती पर होती है और शुभ लक्षण गिनी जाती है । जिस
घोड़े में यह भैंवरी हो उसमें यदि और शोष भी हों तो वे
निष्फल समझे जाते हैं ।

देववत्सा—संज्ञा पुं० [सं०] सहदेव । सहदेव का नाम की बूटी ।

देववत्सभा—संज्ञा स्त्री० [सं० देववत्सल] दे० 'देववत्सल' ।
उ०—कासमीर कुंकुम रुचिर देववत्सलभा नाउ ।—अनेकार्ण०,
पृ० २३ ।

देवबाँस—संज्ञा पुं० [सं० देव + हि० बाँस] एक प्रकार का मजबूत
और ऊँचा बाँस ।

विशेष—यह बाँस पूरबी बंगाल और आसाम में बहून होता है
और उड़ीसा तक पाया जाता है । यह १५-२० हाथ से ४०-
४५ हाथ तक ऊँचा होता है । यह मजबूत होता है और
भक्तियों की छाजन में लगाने तथा चटाई, टीकरा आदि बनाने
के काम में आता है । इसके नरम कल्लों का प्रचार भी
पड़ता है ।

देवब्रह्मन्—संज्ञा पुं० [सं०] नारद ।

देवब्राह्मण—संज्ञा पुं० [सं०] वह ब्राह्मण जो किसी देवता की पूजा
करके जीवननिर्वाह करे । पुजारी । पंडा ।

देवभवन—संज्ञा पुं० [सं०] १. देवताओं का घर या स्थान । २. स्वर्ग ।
३. अश्वस्थ । पीपल ।

देवभाग—संज्ञा पुं० [सं०] देवताओं को दिया जानेवाला भाग । किसी
वस्तु या संपत्ति का वह अंश जो देवता के लिये निकाला
गया हो ।

देवभाषा—संज्ञा स्त्री० [सं०] संस्कृत भाषा ।

देवभिषक्—संज्ञा पुं० [सं० देवभिषज्] अश्विनीकुमार ।

देवभू—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'देवभूमि' ।

देवभू—संज्ञा पुं० देवता (की०) ।

देवभूति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. देवताओं का ऐश्वर्य । २. मंदाकिनी ।

देवभूमि—संज्ञा स्त्री० [सं०] स्वर्ग ।

देवभृत्—संज्ञा पुं० [सं०] (देवताओं का भरण करनेवाले) १.
इन्द्र । २. विष्णु ।

देवभोक्तृ—संज्ञा पु० [सं०] भ्रमृत ।

देवमंजर—संज्ञा पु० [सं० देवमंजर] कीस्तुम मणि ।

देवमंदिर—संज्ञा पु० [सं० देवमन्दिर] वह घर जिसमें किसी देवता की मूर्ति आदि स्थापित हो । देवालय ।

देवमई^(५)—वि० [सं० देवमयी] देव-भंग-युक्त । दिव्य । उ०—
देवक जादेव के एक कन्या । देवमई देवकी सुषन्वा ।—नंद०
प्र०, पु० २२१ ।

देवमणि—संज्ञा पु० [सं०] १. सूर्य । २. कीस्तुम मणि । ३. घोड़े की भँवरी । ४. महामेदा नाम की ओषधि ।

देवमाता—संज्ञा स्त्री० [सं० देवमातृ] १. देवता की माता । २. भद्रिनि । ३. दाक्षायणी ।

देवमातृक—वि० [सं०] (देश) जिसमें खेती आदि के लिये वर्षा का ही जल यथेष्ट हो । जहाँ इतनी वर्षा होती हो कि खेती आदि का सब काम उसी से चल जाता हो ।

देवमादन—संज्ञा पु० [सं०] देवताओं की भोहित या मत्त करनेवाला, सोम ।

देवमान—संज्ञा पु० [सं०] काल की गणना में देवताओं का मान । जैसे, मनुष्यों के एक सौर वर्ष का देवताओं का एक दिन ।

देवमानक—संज्ञा पु० [सं०] देवमणि । कीस्तुम मणि ।

देवमाया—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. देवताओं की माया । २. परमेश्वर की माया जो प्रविष्टा रूप होकर जीवों को बंधन में डालती है ।

देवमार्ग—संज्ञा पु० [सं०] देवयान ।

देवमास—संज्ञा पु० [सं०] १. गर्भ का आठवाँ महीना ।

विशेष—आठवें महीने में गर्भ में स्मृति और भोज की उत्पत्ति हो जाती है । इसमें उसे देवमास कहते हैं ।

२. देवताओं का महीना जो मनुष्यों के तीस वर्ष के बराबर होता है ।

देवमित्र—संज्ञा पु० [सं०] णाकृत्य ऋषि का एक नाम ।

देवमित्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] कुमार की अनुचरी एक मातृका ।

देवमीढ—संज्ञा पु० [सं० देवमीढ] १. आत्मोक्ति रामायण में वर्णित मिथिला के एक प्राचीन राजा जो कीर्तिरथ के पुत्र और जनक (मौर्यवज्र) के पूर्वज थे । २. गुरुवंशीय एक राजा ।

देवमीढुष—संज्ञा पु० [सं०] वसुदेव के पितामह का नाम ।

देवमुख्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] वस्तु । कामांश ।

देवमुनि—संज्ञा पु० [सं०] १. नारद ऋषि । २. सूर नामक ऋषि ।

देवमूक—संज्ञा पु० [सं०] एक पर्वत का नाम । (गर्वमंहुता) ।

देवमूर्ति—संज्ञा पु० [सं०] देवता की प्रतिमा ।

देवयजन—संज्ञा पु० [सं०] यज्ञ की वेदी ।

देवयजनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] पुष्पिनी ।

देवयजि—संज्ञा पु० [सं०] देवता की धाराधना करनेवाला व्यक्ति । पुजारी (स्त्री०) ।

देवयज्ञ—संज्ञा पु० [सं०] होमादि कर्म जो पंचयज्ञों में से एक है और गृहस्थों का प्रतिदिन का कर्तव्य है ।

विशेष—दे० 'पंचयज्ञ' ।

देवयात—वि० [सं०] देवत्व प्राप्त । जो देवता हो गया हो ।

देवयात्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] किसी देवता या पूज्य महापुरुष की सवारी निकालने का पर्व (स्त्री०) ।

देवयात्री—संज्ञा पु० [सं० देवयात्रिन्] हरिवंश में वर्णित एक वानव का नाम ।

देवयान—संज्ञा पु० [सं०] शरीर से भलग होने के उपरांत जीवात्मा के जाने के लिये जो मार्गों में से वह मार्ग जिससे होता हुआ वह ब्रह्मलोक को जाता है ।

विशेष—उपनिषदों में जीवात्मा के उत्क्रमण अर्थात् एक शरीर से दूसरे शरीर या एक लोक से दूसरे लोक की प्राप्ति की कथा बहुत आई है । प्रश्नोपनिषद् में लिखा है कि सवत्सर ही प्रजापति दे । दक्षिण और उत्तर उसके दो भयन हैं । जो कोई इष्टापूर्त और कृत (यज्ञ आदि कर्मकांड) की उपासना करते हैं वे चांद्रमस लोक को प्राप्त होते हैं और फिर वही से लौटकर दक्षिणायन को पाते हैं । जो 'रयी' (खाल, घान्य) या पितृयाण कहलाता है । इसी प्रकार जो तप, ब्रह्मचर्य, श्रद्धा और विद्या से आत्मा का अन्वेषण करते हैं वे उत्तरायण मार्ग से आदित्य लोक को प्राप्त करते हैं । इस मार्ग से गमन करनेवाले नहीं लौटते । छांदोग्य उपनिषद् में लिखा है कि जो श्रद्धा और तप की उपासना करते हैं वे अग्नि (आग की लौ) को पाते हैं । अग्नि से अह्न (दिन), अह्न से आपूर्वमाण या शुक्ल पक्ष, आपूर्वमाण पक्ष से उत्तरायण के छह महीनों का, उत्तरायण से सवत्सर, सवत्सर से आदित्य को, आदित्य से चंद्रमा को, चंद्रमा से विद्युत् को प्राप्त होते हैं और वही अमानव (अर्थात् देव) हो जाते हैं । इसी मार्ग को देवयान कहते हैं जिससे मरनेवाला ब्रह्म को पाता है । बृहदारण्यक उपनिषद् में सूर्य से एकबारगी विद्युत् को प्राप्त होना लिखा है, चंद्रमा को छोड़ दिया है और 'अमानव' के स्थान पर 'अमानस' शब्द आया है जिसका अभिप्राय वही है । देवयान और पितृयाण का अभिप्राय केवल यही है कि ब्रह्मज्ञानी मरने पर उत्तरोत्तर प्रकाशमान लोकों या स्थितियों में होते हुए ब्रह्मलोक या ब्रह्म को प्राप्त करते हैं । और कर्मकांड में रत मनुष्य धूमराग्नि कृष्णपक्ष, दक्षिणायन आदि उत्तरोत्तर अंधकार की स्थिति को प्राप्त करते हैं और लौटकर फिर जन्म लेते हैं । सारांश यह कि एक और प्रकाश की उत्तरोत्तर वृद्धिपरंपरा का क्रम रखा गया है और दूसरी ओर अंधकार की । वेदांतयुक्त के तीसरे और चौथे अध्याय में जीव के इन दोनों मार्गों पर बहुत उद्घापोह किया गया है । गीता के आठवें अध्याय में श्रीकृष्ण ने भी इन मार्गों का उल्लेख किया है । उपनिषद् में जो उत्तरायण को देवयान और दक्षिणायन को पितृयाण कहा गया, इस कारण सूर्य जब उत्तरायण रहता है तब मरना मोक्षदायक माना जाता है । इसीलिये महाभारत में भीष्म का

उत्तरायण सूर्य होने तक शरदऋतु पर पड़ा रहना लिखा गया है।

देवयानी—संज्ञा जी० [सं०] शुक्राचार्य की कन्या जो राजा ययाति को व्याही थी।

विशेष—बृहस्पति का पुत्र कच मृतसंजीवनी विद्या सीखने के लिये दैत्यगुरु शुक्राचार्य का शिष्य हुआ। शुक्राचार्य की कन्या देवयानी उसपर अनुरक्त हुई। असुरों को जब यह विदित हुआ कि कच मृतसंजीवनी विद्या देने के लिये आया है तब उन्होंने उसको मार डाला। इसपर देवयानी बहुत विलाप करने लगी। तब शुक्राचार्य ने अपनी मृतसंजीवनी विद्या के बल से उसे जिंदा दिया। इसी प्रकार कई बार असुरों ने कच का विनाश करना चाहा पर शुक्राचार्य उसे बचाते गए। एक दिन असुरों ने कच को पीसकर शुक्राचार्य के पीने की सुरा में मिला दिया। शुक्राचार्य कच की सुरा के साथ पी गए। जब कच कहीं नहीं मिला तब देवयानी बहुत विलाप करने लगी और शुक्राचार्य भी बहुत खबरए। कच ने शुक्राचार्य के पैरों में से ही सब व्यवस्था कह सुनाई। शुक्राचार्य ने देवयानी से कहा कि 'कच तो मेरे पेट में है, अब बिना मेरे मेरे उसकी रक्षा नहीं हो सकती।' पर देवयानी को इन दोनों में से एक बात भी नहीं मंजूर थी। अंत में शुक्राचार्य ने कच से कहा कि यदि तुम कच रूपी इंद्र नहीं हो तो मृतसंजीवनी विद्या ग्रहण करो और उसके प्रभाव से बाहर निकल आओ। कच ने मृतसंजीवनी विद्या पाई और वह पेट से बाहर निकल आया। तब देवयानी ने उससे प्रेमप्रस्ताव किया और विवाह के लिये वह उससे कहने लगी। कच गुरु की कन्या से विवाह करने पर किसी तरह राजी न हुए। इसपर देवयानी ने आप दिया कि तुम्हारी सीखी हुई विद्या फलवती न होगी। कच ने कहा कि यह विद्या असोष है। यदि मेरे हाथ से फलवती न होगी तो जिसे मैं सिलाऊंगा उसके हाथ से होगी। पर तुमने मुझे व्यर्थ आप दिया। इससे मैं भी आप देता हूँ कि तुम्हारा विवाह ब्राह्मण से नहीं होगा।

दैत्यों के राजा वृषपर्वा की कन्या शर्मिष्ठा और देवयानी में परस्पर सखी भाव था। एक बार दोनों किनारे पर कपड़े रख जलाशय में जलविहार के लिये चुसी। इंद्र ने वायु का रूप धरकर दोनों के बल एक स्थान पर कर दिए। शर्मिष्ठा ने जल्दी में देखा नहीं और निकलकर देवयानी के कपड़े पहन लिए। इसपर दोनों में झगड़ा हुआ और शर्मिष्ठा ने देवयानी को कुएँ में डकेल दिया। शर्मिष्ठा यह समझकर कि देवयानी मर गई, अपने घर चली आई। इसी बीच नहुष राजा का पुत्र ययाति शिकार खेलने आया था। उसने देवयानी को कुएँ से निकाला और उससे दो बार बातें करके वह अपने नगर की ओर चला गया। इधर देवयानी ने एक दासी से अपना सब वस्त्रांत शुक्राचार्य के पास कहला भेजा। शुक्राचार्य ने आकर अपनी कन्या को घर चलने के लिये बहुत कहा

पर उसने एक भी न सुनी। वह शुक्राचार्य से कहने लगी कि 'शर्मिष्ठा तुम्हारा बहुत तिरस्कार करती थी, अतः मैं अब दैत्यों की राजधानी में कदापि न जाऊँगी।'।

यह सब सुनकर शुक्राचार्य भी दैत्यों की राजधानी छोड़ पन्यन जाने को तैयार हुए। यह खबर राजा वृषपर्वा को लगी और वह आकर शुक्राचार्य से बड़ी विनती करने लगा। शुक्राचार्य ने कहा 'देवयानी को प्रसन्न करो'। वृषपर्वा देवयानी को प्रसन्न करने की चेष्टा करने लगा। देवयानी ने कहा, 'मेरी इच्छा है कि शर्मिष्ठा सहस्र और कन्याओं सहित मेरी दासी हो। जहाँ मेरा पिता मुझे दान करे वहाँ वह मेरी दासी होकर जाय'। वृषपर्वा इसपर सम्मत हुआ और अपनी कन्या शर्मिष्ठा को देवयानी की दासी बनाकर शुक्राचार्य के घर भेज दिया। एक दिन देवयानी अपनी नई दासियों के सहित कहीं क्रीड़ा कर रही थी कि राजा ययाति वहाँ आ पहुँचे। देवयानी ने ययाति से विवाह करने की इच्छा प्रकट की। राजा ययाति ने स्वीकार कर लिया और शुक्राचार्य ने कन्यादान कर दिया। कुछ दिन पीछे ययाति ने शर्मिष्ठा को एक पुत्र उत्पन्न हुआ। जब देवयानी ने पूछा तब शर्मिष्ठा ने कहा कि यह बच्चा मुझे एक वैजस्वी ब्राह्मण से उत्पन्न हुआ है। इसके उपरांत देवयानी के गर्भ से यदु और तुतंसु नाम के दो पुत्र और शर्मिष्ठा के गर्भ से द्रुह्य, धनु और पुरु ये तीन पुत्र हुए। ययाति ने शर्मिष्ठा को तीन पुत्र हुए, यह जाबकर देवयानी अत्यंत कुपित हुई और अपने पिता के पास इसका समाचार भेजा। शुक्राचार्य ने क्रोध में आकर ययाति को आप दिया कि 'तुमने अधर्म किया है इसलिये तुम्हें बहुत शीघ्र बुढ़ापा धरेगा'। ययाति ने शुक्राचार्य से वितनपूर्वक कहा—'महाराज मैंने कामवश होकर ऐसा नहीं किया, शर्मिष्ठा ने ऋतुमती होने पर ऋतुरक्षा के लिये प्रार्थना की। उसकी प्रार्थना की अस्वीकार करना मैंने पाप समझा। मेरा कुछ दोष नहीं'। शुक्राचार्य ने कहा 'अब तो मेरा कहा हुआ निष्फल नहीं हो सकता। पर यदि कोई तुम्हारा बुढ़ापा ले लेगा तो तुम फिर ज्यों के त्यों जवान हो जाओगे।'।

देवयु०—संज्ञा पु० [सं०] ईश्वर। देवता।

देवयु०—वि० १. वर्णाश्रमा। पुण्याश्रमा। धार्मिक। २. देवकार्य में सहयोग देनेवाला [को०]।

देवयुग—संज्ञा पु० [सं०] सत्ययुग।

देवयोनि—संज्ञा जी० [सं०] स्वर्ग, अंतरिक्ष, आदि में रहनेवाले उन सब जीवों की सृष्टि जो देवताओं के अंतर्गत माने जाते हैं।

विशेष—अमरकोश में विद्याधर, अप्सरा, यक्ष, राजस, गंधर्व, किन्नर, पिशाच, गुह्यक और सिद्ध ये देवयोनि के अंतर्गत गणित हैं।

देवयोषा—संज्ञा जी० [सं०] देवस्त्री। अप्सरा [को०]।

देवर—संज्ञा पु० [सं०] [जी० देवरानी] १. पति का छोटा भाई। २. पति का भाई (छोटा या बड़ा)।

विशेष—मनुस्मृति में लिखा है कि यदि किसी विधवा को अपने पति से कोई संतान न हो तो वह अपने देवर या पति के किसी अन्य सपिंड से एक संतान उत्पन्न करा ले, एक से अधिक नहीं। पर पराक्षर ने कलिकाल में इसका निषेध किया है।

देवरक्षित^१—वि० [सं०] जो देवताओं के द्वारा रक्षित हो।

देवरक्षित^२—संज्ञा पुं० देवक राजा के एक पुत्र का नाम।

देवरक्षिता—संज्ञा स्त्री० [सं०] देवक राजा की एक कन्या।

देवरथ—संज्ञा पुं० [सं०] १. देवताओं का रथ। विमान। २. सूर्य का रथ।

देवरा^१—संज्ञा पुं० [सं० देव + हि० रा (प्रत्य०)] [स्त्री० देवरी] छोटा मोटा देवता। उ०—पुरुष पूजे देवरा, तिय पूजे रघुनाथ।—रहीम (शब्द०)।

देवरा^२—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का पटसन जो सुतली बनाने के काम में आता है।

देवराज—संज्ञा पुं० [सं०] १. देवताओं के राजा इंद्र। २. बुद्ध का नाम (बी०)। ३. राजा। नरेश (बी०)।

देवराजा(पु०)—संज्ञा पुं० [सं० देवराज] देवराज इंद्र। उ०—देवराजा लिए देवरानी मनो पुत्र संयुक्त भूलोक में सोहिये।—केशव (शब्द०)।

देवराज्य—संज्ञा पुं० [सं०] स्वर्ग।

देवरात—संज्ञा पुं० [सं०] १. (देवताओं से रक्षित) राजा वरीक्षित। २. निमिर्वंश का एक राजा जो सुकेतु का पुत्र था। ३. शुनः-शेष का एक नाम जो विश्वामित्र के यहाँ जाने पर पड़ा था। उ०—शुनःशेष का दूसरा नाम देवरात कहा जाता है।—प्रा० भा० पृ०, पु० १५१। ४. याज्ञवल्क्य ऋषि के पिता का नाम। ५. एक प्रकार का सारस।

देवरानी^१—संज्ञा स्त्री० [हि० देवर] देवर की स्त्री। पति के छोटे भाई की स्त्री।

देवरानी^२—संज्ञा स्त्री० [हि० देव + रानी] देवराज इंद्र की रानी, शची। इंद्राणी। उ०—देवराजा लिए देवरानी मनो पुत्र संयुक्त भूलोक में सोहिए।—केशव (शब्द०)।

देवराज(उ०)—संज्ञा पुं० [सं० देवराज] दे० 'देवराज'।

देवरिपु—संज्ञा पुं० [सं०] असुर। दैत्य (बी०)।

देवरिषि(पु०)—संज्ञा पुं० [सं० देवर्षि] दे० 'देवर्षि'। उ०—होइ न भूषा देवरिषि आला। जमा सो बचनु हूय बरि राखा।—मानस, १।१८।

देवरी—संज्ञा स्त्री० [हि० देवरा] छोटी मोटी देवी।

देवर्षि—संज्ञा पुं० [सं०] ऋषियों के एक प्रसिद्ध स्वविर का नाम जिन्होंने ऋषि सिद्धांत लिपिबद्ध किया था।

देवर्षि—संज्ञा पुं० [सं०] १. देवताओं में ऋषि। २. नारद ऋषि का नाम (बी०)।

विशेष—नारद, ऋषि, मरीचि, भरद्वाज, पुलस्त्य, पुलह, ऋतु, भृगु इत्यादि ऋषि देवर्षि माने जाते हैं।

देवल^१—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह जो देवताओं की पूजा करके जीविका-निर्वाह करे। पुजारी। पंडा।

विशेष—देवल ब्राह्मण पतित माना जाता है। हव्य, कव्य, भाद्र आदि में ऐसे ब्राह्मणों का निषेध है।

२. धार्मिक पुरुष। ३. देवर। ४. नारद मुनि। ५. भर्मशास्त्र के वक्ता एक मुनि जो असित के पुत्र और वेदव्यास के शिष्य माने जाते हैं। ६. एक स्मृतिकार।

देवल^२—संज्ञा पुं० [सं० देवालय] देवालय। देवमंदिर। उ०—रूप अपूरव पेखीयई, इसी अस्त्री नहीं सयल संसार। ईसीय न देवल पुताली, बह बरि भावी भोज कुंवार।—बी० रासी०, पृ० २८।

देवल^३—संज्ञा पुं० [सं० देव ?] एक प्रकार का चावल। उ०—बनिया देवल और अजाना। कहे लगि बरनत जावी धाना।—बायसी (शब्द०)।

देवलक—संज्ञा पुं० [सं०] देवल। पुजारी ब्राह्मण। पंडा।

देवजता—संज्ञा स्त्री० [सं०] नवमल्लिका। मेवारी।

देवज्ञांगुलिका—संज्ञा स्त्री० [सं० देवज्ञाङ्गुलिका] बुद्धिकाली।

देवज्ञा^१—संज्ञा पुं० [हि० देवा, दिवला] [स्त्री० अल्पा० देवली] छोटा दीया।

देवज्ञा^२—संज्ञा स्त्री० [देश०] दे० 'दिल्ली'।

देवज्ञोक—संज्ञा पुं० [सं०] १. स्वर्ग। देवताओं का लोक। उ०—देव-लोक इंद्रलोक विधिलोक शिवलोक, वैकुण्ठ के सुललो गणितानंद गायी है।—सुंदर० पं०, भा० २, पृ० ६२२।

२. भूः, भुवः आदि सात लोक।

विशेष—मत्स्यपुराण में भू, भुव, इत्यादि सातों लोक देवज्ञोक कहे गए हैं।

देवज्वर—संज्ञा पुं० [सं०] (देवताओं का मुँह) अग्नि।

विशेष—देवताओं के निमित्त हव्य, कव्य आदि का अग्नि में हुवन होता है, इस कारण यह नाम पड़ा।

देववती—संज्ञा स्त्री० [सं०] ग्रामणी नामक गंधर्व की कन्या जो सुकेतु राजस की पत्नी और मातृव्यान, सुमाली और माजी की माता थी।

देववधू—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. देवता की स्त्री। २. देवी। अप्सरा।

देववर्णिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] वाल्मीकि रामायण में उल्लिखित भरद्वाज मुनि की कन्या जो विश्वामुनि की पत्नी और कुबेर की माता थी।

देववर्त्म—संज्ञा पुं० [सं० देववर्त्म] आकाश।

देववर्द्धकि—संज्ञा पुं० [सं०] विश्वकर्मा।

देववर्द्धन—संज्ञा पुं० [सं०] राजा देवक के एक पुत्र का नाम। देवकी के एक भाई और श्रीकृष्ण के मामा (भागवत)।

देववर्ष—संज्ञा पुं० [सं०] एक द्वीप का नाम (भागवत)।

देववक्षा—संज्ञा स्त्री० [सं०] सहदेवी। सहदेई नाम की वृत्ती।

देववत्सल—संज्ञा पुं० [सं०] १. देवताओं को प्रिय। २. सुरपुत्राग ब्रह्म। ३. केसर।—अनेकार्थ (शब्द०)।

देववाणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. संस्कृत भाषा । २. धाकावाणी । किसी प्रत्यय देवता का बचन जो अंतरिक्ष में सुनाई पड़े । उ०—ब्रह्म बलराम को देखि उन छल कियो रक्त भीत्यो कह्य लगे सारे । देववाणी भई जीत भई राम की ताहु पै मूढ़ नाहीं सँभारे ।—सूर (शब्द०) ।

देववात—संज्ञा पुं० [सं०] एक वैदिक ऋषि का नाम ।

देववाद—संज्ञा पुं० [सं० देव + वाद] वह वाद या मत जिसके अनुसार प्राकृतिक दृश्यों और वस्तुओं में देवत्व की कल्पना की जाती है । उ०—प्राचीन भार्य काव्य में—क्या भारत के क्या योरप के—रहस्यवाद का नाम तक नहीं, सीधा देववाद है ।—चितामणि, भा० २, पृ० १३८ ।

देववायु—संज्ञा पुं० [सं०] बारहवें मनु के एक पुत्र का नाम ।

देववाहन—संज्ञा पुं० [सं०] अग्नि (जो देवताओं का इन्ध ले जाकर पहुँचाते हैं) ।

देवविद्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. देवताओं की विद्या । २. निवृत्त (की०) ।

देवविभाग—संज्ञा पुं० [सं०] १. देवता का भंग । देवांग । २. उत्तर दिशा । उड़ीची (की०) ।

देवविसर्ग—संज्ञा पुं० [सं०] देने योग्य किसी वस्तु को दे देना (की०) ।

देवविभाग—संज्ञा पुं० [सं० देवविभाग] एक राग जो कल्याण और विहाग अथवा सारंग और पूरबी के योग से बना है । यह संपूर्ण जाति का है ।

देववृक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] १. मंदार वृक्ष । २. गूगल । ३. सतिवन ।

देवव्रत—संज्ञा पुं० [सं०] १. भीष्म पितामह का नाम । २. एक प्रकार का सामगान । ३. देवताओं का प्रिय भोजन । ४. कार्तिकेय । स्कंद (की०) ।

देवराज—संज्ञा पुं० [सं०] असुर । राक्षस ।

देवशाक—संज्ञा पुं० [सं०] एक संकर राग जो संकराभरण, कान्हड़ा और मल्हार से मिलकर बना है । इसमें गंधार कोमल लगता है । इसका गानसमय १७ दंड से २० दंड तक है ।

देवशिखी—संज्ञा पुं० [सं० देवशिखिन्] विष्णुकर्मा ।

देवशुनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] देवलोका की कुतिया, सरमा ।

विशेष—इस देवशुनी की कथा महाभारत में इस प्रकार लिखी है—राजा जनमेजय कोई बड़ा यज्ञ कर रहे थे । इसी बीच एक कुत्ता वहाँ आया । जनमेजय के आद्यों ने उसे मारकर मना दिया । उस कुत्ते ने अपनी माता सरमा से जाकर कहा—‘मैंने कोई अपराध नहीं किया था, यज्ञ की कोई सामग्री नहीं छुई थी, इसपर भी बिना अपराध के लोगों ने मुझे मारा’ । देवशुनी सरमा यह सुनकर जनमेजय के पास जाकर बोली—‘मेरे इस पुत्र ने कोई अपराध नहीं किया था । तुम्हारा भी यदि कुछ भी नहीं खाटा था । तुमने मेरे इस पुत्र को बिना अपराध के मारा, इससे तुम्हारे ऊपर अकस्मात् कोई दुःख पड़ेगा’ । यह बात देकर देवशुनी चली गई । विशेष—१० ‘सरमा’ ।

देवशेखर—संज्ञा पुं० [सं०] हसनक । सीने का पीचा ।

देवशेष—संज्ञा पुं० [सं०] यज्ञ में देवताओं का भंग निकालने से बचा हुआ भाग (की०) ।

देवश्रवा—संज्ञा पुं० [सं० देवश्रवस्] १. विश्वामित्र के एक पुत्र का नाम । २. वसुदेव के भाई ।

देवश्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] लक्ष्मी ।

देवश्री—संज्ञा पुं० यज्ञ (की०) ।

देवश्रुत—संज्ञा पुं० [सं०] १. ईश्वर । २. विष्णु (की०) । ३. नारद । ४. वाल्मीकि । ५. शुक्राचार्य के एक पुत्र का नाम । ६. अवसपिण्डी के एक जिन का नाम ।

देवश्रेणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. देवताओं की पंक्ति । २. मूर्ता । मरीरफली । मुरी ।

देवश्रेष्ठ—संज्ञा पुं० [सं०] २. देवताओं में श्रेष्ठ । २. बारहवें मनु के एक पुत्र का नाम ।

देवसंघ—संज्ञा पुं० [सं० देवसंघ] देवी । देविक । अमानवीय (की०) ।

देवसंसद्—संज्ञा स्त्री० [सं० देवसंसद्] दे० ‘देवसभा’ ।

देवस—संज्ञा पुं० [सं० देवस] दे० ‘देवस’ । उ०—एक देवस कोनिउ तिथि छाई । मानसरोदक धली अन्हूई ।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० १५८ ।

देवसखा—संज्ञा पुं० [सं०] बाल्मीकि रामायण में बर्णित उत्तर दिशा का एक पर्वत ।

देवसत्र—संज्ञा पुं० [सं०] एक यज्ञ का नाम ।

देवसद्—संज्ञा पुं० [सं०] देवस्थान ।

देवसदन—संज्ञा पुं० [सं०] १. देवताओं का आचार । २. पीपल का वृक्ष । ३. देवालय । मंदिर । ४. स्वर्ग ।

देवसभा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. देवताओं का समाज । २. राजसभा । ३. सुधर्मा नामक सभा जिसे मय ने धनुंन या युधिष्ठिर के लिये बनाया था । ४. दूतगृह । ब्रह्मचर (की०) ।

देवसभ्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. देवता का पुजारी । देवाराधक । २. जुआ खेलनेवाला व्यक्ति । जुमाड़ी । ३. वह व्यक्ति जो जुआ खिलाता हो । जुआ खिलानेवाला (की०) ।

देवसमाज—संज्ञा पुं० [सं०] सुधर्मा नाम की सभा ।

देवसरि—संज्ञा स्त्री० [सं०] गंगा नदी । उ०—उत्तरि देवसरि दूसर वासु । रामसखा सब कोन्ह सुपासु ।—मानस, २।३२१ ।

देवसरित्—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० ‘देवसरि’ (की०) ।

देवसर्प—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की सरसों ।

देवसहा—संज्ञा स्त्री० [सं०] सफेद फूल का दंडोत्पल ।

देवसाक—संज्ञा पुं० [सं० देवसाक] दे० ‘देवसाक’ ।

देवसायुज्य—संज्ञा पुं० [सं०] देवता में सीन हो जाना । देवस्वरूप प्राप्त करवा (की०) ।

देवसार—संज्ञा पुं० [सं०] इंद्रताम्र के छह भेदों में से एक ।

देवसाधर्वि—संज्ञा पुं० [सं०] ठेरहवें मनु का नाम (मानवत) ।

देवसिंह—संज्ञा पुं० [सं०] शिव (की०) ।

देवसूत्र—संज्ञा स्त्री० [सं०] मदिरा । मद्य ।

देवसेक(७१)—क्रि० वि० [सं० दिवस + एक] एक दिन । उ०—
देवसेक घाह हाय पे मेला । जायसी शं० (गुप्त),
पृ० २३६ ।

देवसेना—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. देवताओं की सेना । २. प्रजापति
की कन्या जो सावित्री के गर्भ से उत्पन्न हुई थी । इनका दूसरा
नाम पृथ्वी या महापृथ्वी भी है । ये मानवजातियों में खेष्ट हैं
और लिखुओं का पालन करनेवाली हैं ।

विशेष—महभारत में कथा है कि इनको एक बार केही दानव
हर ले गया । इंद्र ने इनकी रक्षा की और स्कंद के साथ
इनका विवाह करा दिया । विवाह में बृहस्पति ने होम, जप
आदि किया था । ब्राह्मणों ने देवसेना की पृथ्वी, सक्मी,
प्राणा, सुखप्रदा, मिनीबाली, कुहू, मदयुति और अपराजिता
नामों से पुकारा । जिस पंचमी तिथि को स्कंद श्रौष्ठ कृत हुए
थे, वह श्रीपंचमी कहलाई । जिस पृथ्वी को स्कंद कृतकार्य
हुए थे वह पृथ्वी महातिथि कहलाई ।

देवसेनापति—संज्ञा पुं० [सं०] स्कंद ।

देवसेनाप्रिय—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'देवसेनापति' (को०) ।

देवस्थान—संज्ञा पुं० [सं०] १. देवताओं के रहने की जगह । २.
देवालय । ३. एक ऋषि का नाम (महाभारत) ।

विशेष—इन्होंने पांडवों को उस समय सनुपदेश दिया था जब
वे बनवास करते थे । पीछे जब युधिष्ठिर ने राज्य प्राप्त
किया तब इन्होंने अनेक प्रकार के उपदेश देकर उन्हें
राज्य छोड़ने से रोका था ।

देवस्थ—संज्ञा पुं० [सं०] १. देवता की सेवा के लिये अर्पित किया
हुआ धन । वह जायदाद जो किसी देवता की पूजा आदि
के लिये अलग निकाल दी जाय । २. यक्षशील मनुष्य का
धन (मनुस्मृति) ।

विशेष—जो इस धन को लोभ से हरता है वह परलोक में
नीच का जूठा साकर होता है ।

देवहंस—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की बत्तख ।

देवहर—संज्ञा पुं० [सं० देवहर] देवमंदिर । देवालय । उ०—देवहर
पूजत समय सिरानी, कोऊ नंग न जाती :—मुलान०,
पृ० ६ ।

देवहरा(७१)—संज्ञा पुं० [हि० देव + हर] देवालय । मंदिर । —
उ०—पल्लव तन कद देवहरा मन रह मालिगराम :—पल्लव,
पृ० ६५ ।

देवहरिया—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की नाल ।

देवहवि—संज्ञा स्त्री० [सं० देवहविस्] देवता के निमित्त यज्ञ का
यगु (को०) ।

देवहा—संज्ञा स्त्री० [सं० देवहा या देविका] सरगू नदी ।

देवहू—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. देवताओं का आह्वान । २. अनाथ से
भरो गाड़ी । ३. बायाँ कान (भागवत) । ४. एक ऋषि
का नाम ।

देवहूति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. देवताओं का आवाहन (को०) ।
स्वायंभुव मनु की तीन कन्याओं में से एक जो कदंम पु
को ब्याही थी । उ०—देवहूति पुनि तासु कुमारी । जो मु
कदंम के प्रिय नारी ।—मानस, १ । १४२ ।

विशेष—भागवत में इनके संबंध में लिखा है कि महर्षि कद
ने इनकी सेवा से प्रसन्न होकर इन्हें दिव्य ज्ञान दिया
इनके गर्भ से नौ कन्याएं और एक पुत्र हुआ । सांख्यशास्त्र में
कर्ता कपिल इन्हीं के पुत्र हैं ।

देवदेहन—संज्ञा पुं० [सं०] देवता के प्रति किया गया अपराध (को०) ।

देवदेति—संज्ञा स्त्री० [सं०] देवास्त्र ।

देवहृद—संज्ञा पुं० [सं०] श्री पर्वत पर एक सरोवर जिसमें स्नान
करने से यज्ञ का फल होता है । (महाभारत) ।

देवांगना—संज्ञा स्त्री० [सं० देवाङ्गना] १. देवताओं की स्त्री ।
स्वर्ग की स्त्री । अमरी । २. अप्सरा ।

देवांतक—संज्ञा पुं० [सं० देवान्तक] एक राक्षस जो रावण का पुत्र
था और जिसे हनुमान ने राम-रावण युद्ध में मारा था ।

देवाधस—संज्ञा पुं० [सं० देवाधस्] १. धर्म । २. देवता के निवेद्य
का धन ।

देवांश—संज्ञा पुं० [सं०] १. देवता का भाग । २. ईश्वर का अंशभूत ।
परमात्मा का अंशावतार (को०) ।

देवा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. पंचचारिणी लता । २. पटसन ।

देवा—वि० [हि० देना] देनेवाला । जैसे, पानीदेवा । † २.
देनदार । ऋणी ।

देवाक्रोड—संज्ञा पुं० [सं० देवाक्रोड] देवताओं का उद्यान । इंद्र का
बगीचा ।

देवागार—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'देवभवन' (को०) ।

देवाजीव—संज्ञा पुं० [सं०] देवताओं की पूजा करनेवाला ।
पुजारी । पंडा ।

देवाजीवी—वि० [सं० देवाजीविन्] दे० 'देवाजीव' (को०) ।

देवाट—संज्ञा पुं० [सं०] हरिहर क्षेत्र नामक तीर्थ (वाराहपुराण) ।

देवातन—संज्ञा पुं० [सं० देवातन] देवालय । मंदिर । उ०—
देव को देवातन गयी तो कहा भयो बीर । पीतार की मोक्ष
सुती नाहि कछु गयो है ।—सुंदर० मं०, भा० १, पृ० ४६६ ।

देवातिथि—संज्ञा पुं० [सं०] पुरुवंशी एक राजा का नाम (भागवत) ।

देवातिदेव—संज्ञा पुं० [सं०] १. विष्णु । २. दे० 'देवाधिदेव' ।

देवात्मा—संज्ञा पुं० [देवात्मन्] १. देवस्वरूप । २. अप्सवस्थ ।
पीपल ।

देवाधिदेव—संज्ञा पुं० [सं०] १. ईश्वर । सर्वश्रेष्ठ देवता । २.
शिव जी । ३. विष्णु । ४. बुद्ध (को०) ।

देवाधिप—संज्ञा पुं० [सं०] १. देवताओं के अधिपति । २. परमेश्वर ।
३. इंद्र ।

देवान(७१)—संज्ञा पुं० [प्रा० दीवान] १. दरबार । कचहरी । राज-
सभा । उ०—मारे बायबाव ते पुकारत देवाव ये उचारे

बाग संग्रह देखाए चाय तन मैं ।—तुलसी (शब्द०) ।

२. अमात्य । मंत्री । बजीर । ३. प्रबंधकर्ता ।

देवानांप्रिय—संज्ञा पु० [सं० देवानांप्रिय] १. देवताओं को प्रिय । २. बकरा । ३. मूख ।

देवाना^१—वि० [फ्रा० दीवानह] दे० 'दीवाना' ।

देवाना^२—संज्ञा पु० एक बिड़िया ।

देवानोक—संज्ञा पु० [सं०] १. देवताओं की सेना । २. तीसरे मनु सावर्णि के एक पुत्र का नाम । ३. समर के वंश का एक राजा ।

देवानुग—संज्ञा पु० [सं० देव + अनुग] १. देवता का उपासक । २. दे० 'देवानुचर' [को०] ।

देवानुचर—संज्ञा पु० [सं०] १. देवताओं के साथ चलनेवाले विद्याधर आदि उपदेव । २. दे० 'देवानुग' ।

देवानुयायो—संज्ञा [सं० देवानुयायिन्] दे० 'देवानुग' [को०] ।

देवान्न—संज्ञा पु० [सं०] हवि । चरु ।

देवापगा—संज्ञा स्त्री० [सं०] देवताओं भी नदी, गंगा [को०] ।

देवापि—संज्ञा पु० [सं०] एक राजा का नाम ।

विशेष—इस राजा के संबंध में वैदिक कथा इस प्रकार है । ऋषियेण राजा के दो पुत्र थे—देवापि और शांतनु । दोनों में देवापि बड़े थे पर राज्य शांतनु को मिला और देवापि तपस्या में लगे । शांतनु के राज्य में १२ वर्ष की अनावृष्टि हुई । ब्राह्मणों ने कहा कि तुम जेठे भाई के रहने राजसिंहासन पर बैठे हो इससे देवता लोग रुष्ट होकर पानी नहीं बरसाते हैं । इसपर शांतनु ने देवापि को सिंहासन पर बैठाया । देवापि ने शांतनु से कहा कि तुम यज्ञ करो, हम तुम्हारे पुरोहित होंगे । देवापि ने यज्ञ कराया जिससे खूब पानी बरसा । (निरुक्त २ । १०) ।

महाभारत के अनुसार देवापि, पुरुवंशी राजा प्रतीप के पुत्र थे । महाराज प्रतीप के तीन पुत्र थे—देवापि शांतनु और वाह्लोक । इनमें देवापि अत्यंत धर्मात्मा थे । इन्होंने तपोबल से ब्राह्मणत्व प्राप्त किया । ये बाल्यावस्था से ही संसारत्यागी हो गए थे । ये अमलक सुमेरु पर्वत पर कलापग्राम में योगी के रूप में हैं । कलियुग समाप्त होने पर सत्ययुग में ये चंद्रवंश स्थापित करेंगे ।

देवाश्रु—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की जेई जो धामर, गोंद, जूना, बीरुन और पानी मिलाकर बनाई जाती है ।

देवाभियोग—संज्ञा पु० [सं०] किसी ऐसे देवता का शरीर में प्रवेश जो अनुचित कर्म करावे । (जैन) ।

देवाभीष्टा—संज्ञा स्त्री० [सं०] पान ।

देवायतन—संज्ञा पु० [सं०] देवमंदिर । देवालय । [को०]

देवायु—संज्ञा स्त्री० [सं० देवायुस्] देवताओं की आयु । देवताओं का जीवनकाल जो बहुत अधिक होता है ।

देवायुध—संज्ञा पु० [सं०] १. देवताओं का अस्त्र । २. इंद्रधनुष ।

देवार^१—संज्ञा पु० [सं० फ्रा० दयार या हि० + वारि ?] दे० 'दियारा' । जैसे,—इसका कछारा जिसको बोली में देवार कहते हैं बहुत विस्तृत और चौड़ा होता है ।

देवार^२—वि० [देश०] देनेवाना । देवाला । जैसे, दंड देवार ।

देवारण्य—संज्ञा पु० [सं०] १. देवताओं का वन या उपवन । २. एक तीर्थ का नाम (महाभारत) ।

देवाराधन—संज्ञा पु० [सं०] देवताओं की पूजा ।

देवारि—संज्ञा पु० [सं०] असुर ।

देवारी^१—संज्ञा स्त्री० [सं० दीपावली] दे० 'दीवाली' । उ०—अबहूँ निठुर घाउ एहि बारा । परब देवारी होइ संसारा ।—जायसी (शब्द०) ।

देवार्चन—संज्ञा पु० [सं०] दे० 'देवाराधन' ।

देवार्चना—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'देवाराधन' ।

देवार्पण—संज्ञा पु० [सं०] देवता के निमित्त किसी वस्तु का दान ।

देवार्थ—संज्ञा पु० [सं०] एक ग्रहंत के एक गण का नाम (जैन) ।

देवार्ह—संज्ञा पु० [सं०] सुरपण । मावीपत्र ।

देवाक्षा^१—वि० [हि० देना] देनेवाला । दाता ।

देवाक्ष^२—संज्ञा स्त्री० [फ्रा० दीवार] दे० 'दीवार' । उ०—पलटू देवाल कहकहा मत कोउ झंकिन जाय ।—पलटू, पृ० ३ ।

देवालय—संज्ञा पु० [सं०] १. स्वर्ग । २. वह घर जिसमें किसी देवता की मूर्ति रखी जाय । मंदिर ।

देवान्ना^१—संज्ञा पु० [हि०] दे० 'दिवाला' ।

देवाला^२—संज्ञा पु० [सं० देवालय] दे० 'देवालय' ।

देवालिया^१—वि० [हि० दिवाला] दे० 'दिवालिया' । उ०—ए बाबू देवालिया ऊँचा ताला मार ।—बाँकी० प्र०, भा०, २, पृ० ६६ ।

देवाली—संज्ञा स्त्री० [सं० दीवाली] दे० 'दिवाली' ।

देवालेही^१—संज्ञा स्त्री० [हि० देना + लेना] देने और लेने का काम । लेनदेन ।

देवावसथ—संज्ञा पु० [सं०] देवालय [को०] ।

देवावास—संज्ञा पु० [सं०] १. पीपल का पेड़ । २. स्वर्ग । ३. देवता का मंदिर ।

देवावृधू—संज्ञा पु० [सं०] एक पर्वत (हरिवंश) ।

देवावृधू—संज्ञा पु० [सं०] एक राजा का नाम (हरिवंश) ।

देवाश्रु—संज्ञा पु० [सं०] उच्चैःश्रवा ! इंद्र का घोड़ा ।

देवासुर—संज्ञा पु० [सं०] देवता और दैत्य । उ०—सृष्टि के प्रारंभ ही से देवता और दैत्यों के साथ ही उत्पत्ति का प्रमाण पाते और देवासुर संग्राम की कथा सुनाते हैं ।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० २३६ ।

देवाहार—संज्ञा पु० [सं०] अमृत ।

देवाह्वय—संज्ञा पु० [सं०] एक राजा का नाम ।

देविक—वि० [सं०] [वि० स्त्री० देविकी] १. देवता संबंधी । देवता का । २. दिव्य । स्वर्गिक । ३. धर्मप्राण [को०] ।

देविका—संज्ञा स्त्री० [सं०] बाघरा नदी, जिसमें मिलने के कारण सरजू को लोग देवहा कहते हैं । एक नदी का नाम जिसमें कालिकापुराण के मत से सरजू मिली है ।

विशेष—पद्मपुराण के मत से यह माया योजन चीड़ी और पाँच योजन लंबी है। मत्स्यपुराण के मत से यह नदी हिमालय के पावदेव से निकली है।

देविता—संज्ञा पुं० [सं० देवितृ] धूतकीड़क। जुमारी [को०]।

देविल—वि० [सं०] १० 'देविक'।

देवी—संज्ञा स्त्री० [सं०] देवता की स्त्री। देवपत्नी। २. दुर्गा। ३. वह रानी जिसका राजा के साथ विवाह हुआ हो। पटरानी। ४. ब्राह्मण स्त्रियों की एक उपाधि। ५. दिव्य गुणवाली स्त्री। सुशीला और सदाचारिणी स्त्री (भास्वरसूचक)। ६. मुर्दा। मरोरफली। मुरा। ७. पुष्पा नाम की सुगंधित घास। घसवरग। ८. आविश्यभक्ता। हुलहुल। हुरहुर। ९. सिंगिनी लता। पंचगुरिया। १०. बल ककोड़ा। बाँझ लकड़ा। ११. बालपत्नी। सरिवन। १२. महाश्रीणी। बड़ा गुमा। १३. पाठा। १४. नागरभोज। १५. सकेव इंद्रायन। १६. हरीतकी। हड़। हुरं। १७. झलसी। तीसी। १८. प्यामा पत्नी। ३०—(क) अहि सुरंग मनि दुसि देवि मंडे तंडव गति। बासमीक बिल घस इक फनि कुटिल क्रोध भरि।—पु० रा०, १७।३०। (ख) इतें देवि उड़ि बैठि धँस, चंचु गिराइय साग। दोरि महर तब हृष्य किय, ले नरिह तुष भाग।—पु० रा० (उ०), पु० २०५। ११. रवि सकाति जो बड़ी पुण्यजनक समझी जाती है। २०. सरस्वती का नाम (को०)। २१. सावित्री का एक नाम (को०)।

देवी^१—संज्ञा पुं० [सं० देविन्] जुमारी। वह जो धूत खेलता हो [को०]।

देवी^२—संज्ञा स्त्री० [सं० देविद्] १. लकड़ी का एक मजबूत चौकटा, जिसमें दो लकड़े खंभों के ऊपर आड़ा बल्ला लगा रहता है। यह मस्तूल आदि के सहारे के लिये होता है। २. जहाज के किनारे पर लकड़ी या मोहे को दो चोंच की तरह बाहर की ओर झुके हुए खंभे जिसमें चिरनियाँ लगी होती है। इन चिरनियों पर पड़े हुए रस्सों के द्वारा कश्चित् जहाज पर चढ़ाई या जहाज से नीचे उतारी जाती है (लक्ष०)।

देवीकोट—संज्ञा पुं० [सं०] बाणासुर की राजधानी शोणितपुर का दूसरा नाम।

देवीगृह—संज्ञा पुं० [म०] १. देवी दुर्गा का मंदिर। देवीमंदिर। २. पट्टमहिषी का भवन [को०]।

देवीपुराण—संज्ञा पुं० [म०] एक उपपुराण, जिसमें देवी का माहात्म्य आदि वर्णित है।

देवीभोज—संज्ञा पुं० [सं०] १० 'देवीभोज'।

देवीभागवत—संज्ञा पुं० [सं०] एक पुराण जिसकी गणना बहुत से लोग उपपुराणों में और कुछ लोग पुराणों में करते हैं।

विशेष—श्री मद्भागवत के समान इस पुराण में भी बारह स्कंध और १८००० श्लोक हैं। अतः इसका निर्णय कठिन है कि कौन पुराण है और कौन उपपुराण। पुराणों में एक दूसरे का विषय, श्लोक संख्या आदि दी हुई है जिसके अनुसार पुराणों की प्रामाणिकता का प्रायः निर्णय किया जाता है। मत्स्यपुराण में लिखा है कि 'जिस वंश में

गायत्री का प्रवर्धन करके धर्मतत्व का सविस्तर वर्णन हो और वृत्रासुर के वध का पुरा वर्णित हो, जिसमें सारस्वत कल्प के बीच नरों और देवताओं की कथा हो - - - और १८००० श्लोक हों, वही भागवत पुराण है। शैवपुराण के उत्तर खंड में लिखा है कि 'जिसमें भगवती दुर्गा का चरित्र हो वह भागवत है, देवी पुराण नहीं'। इसी प्रकार की व्यवस्था कालिका नामक उपपुराण में भी दी है। यह तो शैव और शाक्त पुराणों का साक्ष्य हुआ। अब वैष्णव पुराणों की व्यवस्था सुनिए। पद्मपुराण में लिखा है कि 'सब पुराणों में श्रीमद्भागवत श्रेष्ठ है, जिसमें प्रति पक्ष में ऋषियों द्वारा कहा हुआ कृष्ण का माहात्म्य है। इस कथा को शरीरहित की सभा में बैठकर भुक्तदेव जी ने कहा था'। नारद पुराण में भागवत उसको कहा गया है, जिसके दशम स्कंध में कृष्ण का बाल और कीमरचरित्, जब में स्थिति, किशोरावस्था में मथुरावास, यौवन में द्वारकावास और भुमारहरण आदि विषय हों।

देवी भागवत में प्रथम ही निपदा गायत्री है किंतु विष्णु भागवत में नहीं, उसमें केवल 'बोमहि' इतना ही पद आया है। वृत्रासुर के वध की कथा दोनों में है। पर मत्स्यपुराण में बतलाया हुआ सारस्वतकल्प प्रसंग विष्णुभागवत में नहीं है, उसमें पापकल्पप्रसंग है। मत्स्यपुराण में जो लक्षण दिया हुआ है उसमें सांप्रदायिक भाव की गंध नहीं जान पड़ती। शैव और वैष्णव विद्वानों में इन दोनों पुराणों के विषय में बहुत दिनों तक झगड़ा चलता रहा। दुर्जनमुखचपेटिका, दुर्जनमुखमहाचपेटिका, दुर्जनमुखपदपपादुका आदि कई ग्रंथ इस विवाद में लिखे गए। बात यह है कि ये दोनों पुराण सांप्रदायिक विशेषताओं से परिपूर्ण हैं। ऐसा जान पड़ता है कि भागवत नाम का कोई प्राचीन पुराण था, जो लुप्त हो गया था। बौद्ध धर्म के उपरान्त हिंदुधर्म की जब फिर नए रूप में स्थापना हुई और शैवों वैष्णवों की प्रबलता हुई तब पुराणों में दिए गए लक्षण के अनुसार वैष्णव पंडितों ने श्रीमद्भागवत की और शैव पंडितों ने देवी भागवत की रचना की। रचना के विचार से यह देखा जाय तो देवी भागवत की शैली अधिक अनुकुल और भागवत की शैली पांडित्यपूर्ण काव्य की शैली को लिए हुए है। जिस प्रकार श्रीमद्भागवत में दार्शनिक भावों की प्रधानता है उसी प्रकार देवीभागवत में तांत्रिक भावों की है। इसमें देवी के गिरिजा, काली, भद्रकाली, महामाया आदि रूपों की उपासना की गई है। पार्वती के पीठस्थानों का वर्णन है। भैरव और वेताल विषि की उत्पत्ति और उनकी पूजा की विधि बतलाई गई है। यहाँ तक कि इसमें आसाम देश के कामरूप देश और कामाक्षी देवी का बड़े विस्तार के साथ वर्णन है। अस्तु, अपने वर्तमान रूप में देवी भागवत ईसा की १६ वीं और ११ वीं शताब्दी के बीच बना होगा।

देवीभोजा—संज्ञा पुं० [हि० देवी + भोजना (= भुजाना)] देवी को माननेवाला। भोजी। सोझा।

देवीवीर्य—संज्ञा पुं० [सं०] गंधक ।

देवीसूक्त—संज्ञा पुं० [सं०] १. ऋग्वेद शाकल संहिता का एक सूक्त जिसका देवता देवी है । २. मार्कंडेय पुराणांतर्गत दुर्गा सप्तमती का एक सूक्त या स्तोत्र ।

देवेन्द्र—वि० [सं० देवेन्द्र] देवताओं का राजा, इंद्र ।

देवेव्य—संज्ञा पुं० [सं०] बृहस्पति । देवगुरु [को०] ।

देवेश—संज्ञा पुं० [सं०] १. देवताओं का राजा, इंद्र । २. परमेश्वर । ३. महादेव । ४. विष्णु ।

देवेश्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. परमेश्वर । २. विष्णु ।

देवेशी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. पार्वती । २. देवी ।

देवेश्वर—संज्ञा पुं० [सं०] देवेश । इंद्र ।

देवेश्वर—संज्ञा पुं० [सं०] १. देवताओं की प्रिय । २. गुग्गुलु । महामेद ।

देवेश्वरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] बड़ा बिजोरा ।

देवैः—संज्ञा स्त्री० [सं० देवकी] दे० 'देवकी' । उ०—देवै कूल न प्रीतिरि आवा । ना जसवै से गोद खिलावा ।—कबीर भं०, पृ० २४३ ।

देवैया—संज्ञा पुं० [हि० देना] देनेवाला ।

देवोत्तर—संज्ञा पुं० [सं०] वह संपत्ति जो किसी देवता के नाम प्रलग निकाल दी गई हो । देवता को अर्पित किया हुआ धन ।

देवोत्थान—संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु का शेष की गोया पर से उठना जो कार्तिक शुक्ला एकादशी को होता है ।

देवोत्थान—संज्ञा पुं० [सं०] देवताओं के बगीचे जो चार हैं—नंदन, वैजयन्त, वैभ्राज और सर्वनोभद्र । त्रिकांशयोग के अनुसार चार बगीचों के नाम ये हैं—वैभ्राज, वैजयन्त, मिश्रक और सिद्धकावण ।

देवोन्माद—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का उन्माद ।

विशेष—देवोन्माद में रोगी पवित्र रहता है, सुसंभित फूलों की माला पहनता है, अस्त्रें बंद नहीं करता और संस्कृत बोलता है । यह देवता के कोप से होता है । सुश्रुत में अमानुष प्रतिषेध के अंतर्गत इसका उल्लेख है ।

देवौकस—संज्ञा पुं० [सं०] देवताओं का स्थान । सुमेरु पर्वत ।

देवुन्माद—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का उन्माद या रोग ।

विशेष—इस उन्माद में रोगी को पक्षाघात होता है, शरीर सुख जाता है, मुँह और हाथ पाँव टेढ़े हो जाते हैं तथा स्मरण शक्ति जाती रहती है । कहीं कहीं इसे बिलासनी देवी या मायल्या भी कहते हैं ।

देश—संज्ञा पुं० [सं०] १. विस्तार, जिसके भीतर सब कुछ है । दिक् । स्थान ।

विशेष—ग्याय या वैशेषिक के अनुसार जिसके आगे पीछे, ऊपर नीचे, उत्तर दक्षिण आदि का प्रत्यय होता है वह देश या दिग्ब्रह्म है । काल के समान संख्या, परिमाण, पुष्कत्व, संयोग और विभाग देश के भी गुण हैं । देश के विभु और एक होने पर भी उपाधिभेद से उत्तर दक्षिण, आगे पीछे आदि भेद मान लिए गए हैं । देश संबंधी 'पूर्व' और 'पर'

का विपर्यय हो सकता है, पर काल संबंधी पूर्वापर का नहीं । पश्चिमी दार्शनिकों में काल आदि के देश (और काल) को मन से बाहर की कोई वस्तु नहीं माना है, अंतःकरण का आरोप माना है जो वस्तु संबंध ग्रहण के लिये वह अपनी ओर से करता है । दे० 'काल' ।

यौ०—देशकाल ।

२. पृथ्वी का वह विभाग जिसका कोई प्रलग नाम हो, जिसके अंतर्गत कई प्रांत, नगर, ग्राम आदि हों तथा जिसमें अधिकतर एक जाति के और एक भाषा बोलनेवाले लोग रहते हों । जनपद ।

विशेष—देश तीन प्रकार के होते हैं—जाल्प्य, प्रसूय और साधारण । तीन प्रकार के और देश माने गए हैं—देवमातृक (जिसमें वर्षा ही के जल से होती आदि के सारे कार्य हों), नदीमातृक और उभयमातृक ।

३. वह भूभाग जो एक ही राजा या शासक के अधीन व्यवसाय एक शासनव्यवस्था के अंतर्गत हो । राष्ट्र । ४. स्थान । जगह । ५. शरीर का कोई भाग । अंग । जैसे, स्कंध देश, कटि देश । ६. एक राग जो किसी के मत से संपूर्ण जाति का और किसी के मत से पांडव (ऋग्विजित) है । ७. जैनशास्त्रानुसार चौथा पंचक जिसका द्वारा अर्थात्संज्ञानपूर्वक तपस्या अर्थात् गुह, जन, गुहा, स्मशान और नर की वृद्धि होती है ।

देशक—संज्ञा पुं० [सं०] १. उपदेश करनेवाला । उपदेशक । उपदेश । २. शासन करनेवाला । शास्ता (को०) । ३. शिक्षक । निशा देनेवाला (को०) । ४. निर्देशक (को०) ।

देशकली—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक रागिनी जिसमें गांधार कोमल और बाकी सब स्वर शुद्ध लगते हैं ।

देशकार—संज्ञा पुं० [सं०] संपूर्ण जाति का एक राग जो सबेरे एक बंद से पाँच बंद तक गाय जाया जाता है ।

विशेष—यह राग परज, सोरठ और सरस्वती को मिलाने से बनता है । यह दीपक राग का पुत्र माना जाता है । इसका स्वरग्राम इस प्रकार है—

स ऋ ग म प ध नि +

अथवा

घ नि स ऋ ग म प +

देशकारी—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक रागिनी ।

विशेष—हनुमत के मत से यह मेघ राग की पत्नी और किसी किसी के मत से द्विषोल राग की पत्नी माना जाती है । यह संपूर्ण जाति की है । इसका सरगम इस प्रकार है—

स ऋ ग म प ध नि स +

इसके गाने का काल वर्षा ऋतु का निशांत या प्रातःकाल है ।

देशगांधार—संज्ञा पुं० [सं० देशगान्धार] एक राग जो सबेरे एक बंद से पाँच बंद तक गाय जाया जाता है ।

देशाचारि—संज्ञा पुं० [सं०] देश की प्रथा । रवाज । (को०) ।

देशाचारि—संज्ञा पुं० [सं०] जैनशास्त्रानुसार गार्हस्थ्य धर्म ।

विशेष—इसके १२ भेद हैं—(१) प्राणतिपात विरमण व्रत । (२) स्थूल मृषावाच विरमण व्रत । (३)—थूल भद्रसदान विरमण व्रत । (४) मैथुन विरमण व्रत । (५) स्थूल परिग्रह विरमण व्रत । (६) दिव्य परिमाण व्रत । (७) भोगोपभोग विरमण व्रत । (८) अनर्थ दंड विरमण व्रत । (९) सामयिक व्रत । (१०) दिवावकाशिक व्रत । (११) पोषधोषवास व्रत । (१२) अतिथि संविभाग व्रत ।

देशज^१—वि० [सं०] देश में उत्पन्न ।

देशज^२—संज्ञा पु० शब्द के तीन विभागों में से एक । वह शब्द जो न संस्कृत हो, न संस्कृत का अपभ्रंश, बल्कि किसी प्रदेश में लोगों की बोलचाल से यों ही उत्पन्न हो गया हो ।

देशज्ञ—संज्ञा पु० [सं०] देश का हाल जाननेवाला । देश की रीति, नीति आदि जाननेवाला ।

देशदूषण—वि० [सं०] देश का कलंक रूप । जिससे देश दूषित हो । उ०—जो लेखक.....देश जाति के हिताहित का ध्यान नहीं रखते या परखते वे.....देशदूषण ही ठहरते हैं ।—रस क०, पृ० ६ ।

देशद्रोही—वि० [सं० देश + द्रोहिन्] देश के साथ विश्वासघात करनेवाला । उ०—उपर विभीषण ने रावण को पुनः प्रेमवश समझाया । पर उस साधु पुरुष ने उलटा देशद्रोही पद पाया—साकेत, पृ० ३६० ।

देशधर्म—संज्ञा पु० [सं०] देश की रीति नाति, आचार व्यवहार । देश का आचार व्यवहार ।

विशेष—मनु का मत है कि राजा देश के धर्म का आदर करे और उसी के अनुसार शासन करे ।

देशाना—संज्ञा स्त्री० [सं०] उपदेश (जैन) ।

देशनिकास—संज्ञा पु० [हि० देश + निकालना] देश से निकाल दिए जाने का दंड ।

क्रि० प्र०—देना ।—पाना ।—होना ।

देशपाखी—संज्ञा स्त्री० [सं०] देशकारी रागिनी का दूसरा नाम ।

देशपीडन—संज्ञा पु० [सं० देशपीडन] प्रजा पर अत्याचार । राष्ट्र का हानि पहुँचाना (की०) ।

देशभक्त—संज्ञा पु० [सं०] देशहित के लिये सर्वस्व निष्ठावर कर देनेवाला व्यक्ति । वह जो व्यक्तिगत से देशहित को अयस्कृत समझे ।

देशभक्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] देश के प्रति अनुराग । देशप्रेम ।

देशभाषा—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह भाषा जो किसी देश या प्रांत विशेष में ही बोली जाती हो । जैसे, बंगला, मराठी, गुजराती, इत्यादि ।

देशमन्त्रार—संज्ञा पु० [सं०] संपूर्ण जाति का एक राग जिसमें सब स्वर लगते हैं ।

देशमुख—संज्ञा पु० [सं०] देश का मुख्य या प्रधान । अनुया । पञ्च-प्रवर्गक । उ०—...विरोधियों का यह कहना कि कांग्रेस

कदापि देशमुख नहीं हो सकती, अनर्गल है ।—प्रेमचन्द०, भा० २, पृ० २७२ ।

देशरक्षा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. देश को शत्रुओं से बचाना । राष्ट्र की बाहरी और भीतरी शत्रुओं से रक्षा करना । उ०—भृत्यभरण उपजाप सेना प्रचार देशरक्षा बलाबलज्ञान संघय व्यूह-रचना ।—वर्ण०, पृ० ३ ।

देशराज—संज्ञा पु० [सं०] आत्मा ऊपर के पिता का नाम जो राजा परमात्म (प्रमदिदेव) के सामंतों में थे ।

देशरूप—संज्ञा पु० [सं०] देश के अनुरूप । प्रीक्षित्य । मुनासिबत । उपयुक्तता (की०) ।

देशव्यवहार—संज्ञा पु० [सं०] किसी देश की चाल या रस्म । देश विशेष की प्रथा या व्यवहार (की०) ।

देशस्थ^१—वि० [सं०] देश में स्थित । देश में रहनेवाला ।

देशस्थ^२—संज्ञा पु० महाराष्ट्र ब्राह्मणों का एक भेद ।

विशेष—महाराष्ट्र ब्राह्मणों में दो भेद होते हैं—कोंकणस्थ और देशस्थ ।

देशांकी—संज्ञा स्त्री० [?] एक रागिनी । हनुमत् के मत से जिसका स्वरप्राम यों है—ग म प ध धी सा ग, अथवा ग म प ध नि सा रे ग ।

देशांतर—संज्ञा पु० [सं० देशान्तर] १. अन्य देश । विदेश । परदेश । २. भूगोल में ध्रुवों से होकर उत्तर दक्षिण गई हुई किसी सर्व-मान्य मध्य रेखा से पूर्व या पश्चिम की दूरी । जंबांश ।

विशेष—भारतवर्ष में पड़ने यह मध्य रेखा लंका या उज्जयिनी से सुमेरु तक मानी जाती थी । अब यह यूरोप और अमेरिका के भिन्न भिन्न स्थानों से गई हुई मानी जाती है । इस मध्य रेखा से किसी स्थान की दूरी उस कोण के अक्षों के हिसाब से बतलाई जाती है जो उस स्थान पर से होकर गई हुई रेखा ध्रुव पर मध्य रेखा से मिलकर बनाती है ।

देशांतरित पण्य—संज्ञा पु० [सं० देशान्तरित पण्य] देशावरी मास । विदेशी मास । दूर देश का मास (की०) ।

देशांतरी—वि० [सं० देशांतरिन्] परदेशी । विदेशी (की०) ।

देशांश—संज्ञा पु० [सं०] रे० 'देशांतर' ।

देशाका—संज्ञा पु० [सं०] एक रागिनी । इसका सरगम यह है—ग म प ध नि स + ।

देशास्त्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक रागिनी जो हनुमत् के मत से द्विषोल की दूसरी रागिनी है । यह वाक्व जाति की है । स्वर गांधार होता है । गाने का समय वसंत ऋतु का मध्याह्न है ।

देशाचार—संज्ञा पु० [सं०] देश की चाल या देश का व्यवहार ।

देशाटन—संज्ञा पु० [सं०] देशभ्रमण । भिन्न भिन्न देशों की यात्रा ।

देशासिद्धि—संज्ञा पु० [सं०] वह जो किसी अन्य देश से आया हो । परदेशवासी । विदेशी (की०) ।

देशाधिपति—संज्ञा पु० [सं०] बादशाह । सम्राट् । उ०—एक दिव्य बीरबल देशाधिपति सों रजा लेकर श्री गोकल में बर्षन कूं आयो ।—अकबरी०, पृ० ६१ ।

देशाधीश—संज्ञा पुं० [सं०] देश का स्वामी । राजा । नृपति । उ०—
जैसे किसी देशाधीश के प्राप्त होने से देश का रंग रंग बदल
जाता है ।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ११ ।

देशावकाशिक (व्रत) —संज्ञा पुं० [सं०] जैन शास्त्रानुसार एक शिवा-
व्रत, जिसमें स्वार्थ के लिये सब दिशाओं में घाने जाने का जो
प्रतिबंध है उनको घोर भी सक्षिप्त और कठिन करके पालन
किया जाता है ।

देशिक^१—संज्ञा पुं० [सं०] १. पथिक । बटोही । २. गुप्त ।
शिक्षक । उपदेशक (को०) । ३. निर्देशक (को०) । ४. स्थानीय
व्यक्ति (को०) ।

देशिक^२—वि० देश का । देशसंबंधी (को०) ।

देशित—वि० [सं०] १. आदेशप्राप्त । आज्ञा । २. उपदिष्ट । जिसे
उपदेश दिया गया हो ।

देशिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. सुखी । २. तर्जनी अंगुली ।

देशी^१—वि० [सं०] देशीय १. देश का । देश संबंधी । २. स्वदेश का ।
अपने देश का । ३. अपने देश में उत्पन्न या बना हुआ । जैसे,
देशी चीनी, देशी माल ।

गुहा—देशी कीया मरहठी भाषा = देश का होते हुए भी विदेशी
भाषा विचार की तकल करना । उ०—देशी कीया मरहठी
भाषा बोल रहे हैं ।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ५६ ।

देशी^२—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. एक रागिनी ।

विशेष—हनुमत् के मत से यह दीपक राग की आर्या है । इसमें
पंचम वर्तित है । इसके गाने का समय श्रीराम काल का मध्याह्न
है । यह मधुमाधव, सारंग पहाड़ी और टोड़ी के योग से
बनी है ।

२. संगीत के दो भेदों में से एक ।

विशेष—संगीतदर्पण में नाचने, गाने और बजाने तीनों को
संगीत कहा है । संगीत दो प्रकार का है—मार्ग अर्थात्
शास्त्रीय और देशी अर्थात् देशविशेष का संगीत ।

३. तांडव नृत्य का एक भेद जिसमें अंगविशेष अधिक और
अभिनय कम होता है ।

देशीय—वि० [सं०] देशी ।

देशोपकारक—वि० [सं०] देश का उपकार या भला करनेवाला ।
उ०—बापेस से सब प्रकार का देशोपकारक कार्य होमा ।—
प्रेमघन० भा० २, पृ० २३२ ।

देश्य^१—वि० [सं०] १. देशी । २. स्थानीय । ३. देश में उत्पन्न
होनेवाला (को०) ।

देश्य^२—संज्ञा पुं० १. पूर्व पक्ष । प्रमाणित किया जानेवाला विषय ।
२. प्रत्यक्षदर्शी । ३. देशवासी ।

देष्णु^१—वि० [सं०] १. उदार । २. घृष्ट । ढीठ (को०) ।

देष्णु^२—संज्ञा पुं० राजक । घोड़ी (को०) ।

देसंतर—संज्ञा पुं० [सं०] देशान्तर १. 'देशांतर' । उ०—तरवर छाना

फल नहीं, पिरवी से बनराय । सतगुरु छाना सिल नहीं, पुर
देसंतर जाय ।—हरिया० बानी, पृ० ३६ ।

देस—संज्ञा पुं० [सं०] देश १. 'देश' ।

देसकार—संज्ञा पुं० [सं०] देशकार १. 'देशकार' ।

देसदुनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] देश + दुनिया [दुनिया] देश दुनिया । संसार ।
जगत् । उ०—अकेली क्यों है, जो देसदुनी का रखवाला है
तो तो तेरे पास बैठा है ।—शकुंतला, पृ० ५६ ।

देसपति—संज्ञा पुं० [सं०] देशपति राजा । नृपति ।

देसरा—संज्ञा पुं० [सं०] देश + रा (प्रत्यय०) उ०—नहि पावस मोहि
देसरा, नहि हेवत बसत ।—जायसी ग्रं०, पृ० १५८ ।

देसवाल—वि० [हि०] देश + वाला स्वदेश का, दूसरे देश का नहीं
(अनुव्य के लिये) । जैसे, देसवाल बनिया ।

देसवाल^२—संज्ञा पुं० एक प्रकार का पटसन ।

देसांतर—संज्ञा पुं० [सं०] देशान्तर १. 'देशांतर' । उ०—तीति
रजनिघांतिनि जुगे जनिघा दोठिहुक मोत देसांतर रे ।—
विद्यापति०, पृ० ६८ ।

देसाधिपति—संज्ञा पुं० [सं०] देशाधिपति देश का स्वामी । राजा ।
उ०—पाछे देसाधिपति सों मिलि के गोधरा के हाकिम की
पट्टा बढ़ाई के गोधरा में आए ।—दो सी बावन०, भा० १,
पृ० १६ ।

देसावर—संज्ञा पुं० [सं०] देश + अवर [अव्यय] देश । विदेश । परदेस ।
देशांतर । जैसे, देसावर का मान ।

देसावरी—वि० [हि०] देसावर + ई (प्रत्यय०) देसावर का । दूसरे
देश से आया हुआ (वस्तु या माल के लिये) । जैसे, देसावरी
माल ।

देसिल—वि० [सं०] देशीय देशी । उ०—देसिल बयना सब जन
मिट्टा । तं तैसन जंघमो भवहट्टा ।—कीर्ति०, पृ० ६ ।

देसी—वि० [सं०] देशीय स्वदेश का । दूसरे देश का नहीं ।
जैसे, देसी आदमी, देसी मान ।

देहभर—वि० [सं०] देहभर अपने ही शरीर का पोषण करनेवाला ।

देह^१—संज्ञा स्त्री० [सं०] [वि०] देही २. शरीर । तन । बदन । उ०—
(क) नाम एकतनु हेत तेहि देह न घरी बहोरि ।—गुबसी
(शब्द०) । (ख) अपराध बिना ऋषि देह घरी ।—केशव
(शब्द०) । (ग) है हिय रहति हई छई नई युक्ति यह जोय ।
आलिन आलिन लगी रहै देह दूबरो होय ।—बिहारी (शब्द०) ।

विशेष—शरीर आरंभ काल में कुछ दिनों तक बराबर बढ़ता
है इससे उसका नाम देह (विहृ = वृद्धि) है । न्याय के मत
से पार्थिव देह दो प्रकार की होती है योनिज और अयोनिज ।
जरायुज और अंडज योनिज तथा स्वेदज और उद्भिज्ज
अयोनिज कहलाते हैं । शुक्र शोणित आदि की योजना से
स्वतंत्र अलौकिक देह को (जैसे, नारद आदि की) भी
अयोनिज कहते हैं । इसी प्रकार सांख्य आदि के मत से स्थूल

धीर सूक्ष्म आदि भी शरीर के भेद माने गए हैं। विशेष
दे० 'शरीर'।

मुहा०—देह मूटना=जीवन समाप्त होना। मृत्यु होना। देह
छोड़ना=मरना।—उ०—मम कर तीरथ छोड़िहि देहा।—
तुलसी (शब्द०)। देह धरना=जन्म लेना। उ०—देह
धरे कर ग्रह फल पाई। भजहु राम सब काम बिहाई।—
तुलसी (शब्द०)। देह सेना=दे० 'देह धरना'। देह
विचारना=तन की सुधि न रखना। होश हवास न रखना।

२. शरीर का कोई अंग। ३. जीवन। जिंदगी। उ०—(क)
सेइय सहित सनेहु देह भरि कामधेनु कबि कासी।—तुलसी
(शब्द०)। (ख) जन्म जहूँ तहूँ राखे सौ निबहूँ भरि
देह सनेहु सगाई।—तुलसी (शब्द०)। ४. विग्रह। मूर्ति।
चित्र।

देह^२—संज्ञा पुं० [क्रा०] गाँव। खेड़ा। मोखा। जैसे, गंगा प्रहीर,
साकिन देह...।

यौ०—देहकान। देहात।

देहकर—संज्ञा पुं० [सं०] जनक। पिता [को०]।

देहकर्ता—संज्ञा पुं० [सं० देहकर्तृ] १. पिता। २. सूर्य। ३. पंच महाभूत
(भित्ति, जल, अग्नि, आकाश और वायु)। ४. ईश्वर [को०]।

देहकान—संज्ञा पुं० [क्रा० देहकान] १. किसान। कुचक। २. गँवार।
ग्रामीण।

देहकानियत—संज्ञा स्त्री० [प्र० देहकानियत] देहातीपन। गँवार-
पन [को०]।

देहकानी—वि० [क्रा० देहकानी] गँवार। ग्रामीण।

देहकृत्—संज्ञा पुं० [सं०] १. ईश्वर। २. पंच महाभूत [को०]।

देहकोष—संज्ञा पुं० [सं०] १. चमड़ा। २. पंख। पक्ष। [को०]।

देहज—संज्ञा पुं० [सं०] पुत्र। बेटा [को०]।

देहजा—संज्ञा स्त्री० [सं०] पुत्री। कन्या [को०]।

देहत्याग—संज्ञा पुं० [सं०] मृत्यु।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

देहद—संज्ञा पुं० [सं०] पारा। पारद।

देहदीप—संज्ञा पुं० [सं०] चमड़ा। घाल [को०]।

देहदसा—संज्ञा स्त्री० [सं० देह + दशा] देह की अवस्था। शरीर की
दशा। शरीरस्थिति। उ०—सो यह पालने को भाव रेंडा
मुनिके देहदसा भूलि गए।—दो मो बाबन०, भा० २,
पृ० ७२।

देहधारक—संज्ञा पुं० [सं०] १. आत्मा। २. शरीर को धारण करने-
वाला। ३. अस्थि। हाड।

देहधारण—संज्ञा पुं० [सं०] १. शरीररक्षा। जीवनरक्षा। २. जन्म।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

देहधारी—संज्ञा पुं० [सं० देहधारिन्] [स्त्री० देहधारिणी] शरीर
को धारण करनेवाला। जिसे शरीर हो। शरीरी।

देहधि—संज्ञा पुं० [सं०] पक्ष। चिड़ियों का पंख। डैना।

देहधृक्—संज्ञा पुं० [सं० देहधृज्] दे० 'देहधृज्'।

देहधृज्—संज्ञा पुं० [सं०] (शरीर को धारण करनेवाला) वायु।

देहपात—संज्ञा पुं० [सं०] मृत्यु। मोत।

क्रि० प्र०—होना।

देहपुरा^(७)—संज्ञा पुं० [सं०] शरीर। कायागढ़। उ०—करत पयाम
अपत वह नाकें। लिहे न बसेर देहपुर गाऊँ।—इंद्रा०,
पृ० २६।

देहबंध—संज्ञा पुं० [सं० देहबन्ध] शरीर का ढाँचा [को०]।

देहभाक्—संज्ञा पुं० [सं० देहभाज्] १. शरीरधारी। २. मनुष्य
[को०]।

देहभुक्—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'देहभुज्' [को०]।

देहभुज्—संज्ञा पुं० [सं०] १. देहाभिमानी जीव। २. सूर्य।

देहभृत्—संज्ञा पुं० [सं०] जीव।

देहवष्टि—संज्ञा स्त्री० [सं०] शरीरकपी छड़ी। उ०—देहवष्टि जैसे
किसी दिव्य कारीगर ने हीरे के समूचे अलंङ्ग टुकड़े से
यत्नपूर्वक खोदाई कर गढ़ी थी।—दे० न०, पृ० २०।

देहयात्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. मरण। मृत्यु। २. मरण बोधण।
पालन। ३. भोजन।

देहर^१—संज्ञा स्त्री० [सं० देवहृद] वह नीची भूमि जो किसी नदी
के किनारे हो और जहाँ नदी के बढ़ने पर पानी आ
जाता हो।

देहर^२—संज्ञा पुं० [हि० देव + धर] दे० 'देहरा'। उ०—रहस के देहर
नाद बाज्या। एहि कारण भेव जटा धारि निकस्या। जा
उद्यान मान पकरि रह्या।—रामानंद०, पृ० १६।

देहरा^१—संज्ञा पुं० [हि० देव + धर] देवावास। देवालय। उ०—
(क) नेव बिहना देहरा, देव बिहना देव। कबिरा तहूँ
बिलबिया करे अलख की सेव।—कबीर (शब्द०)। (ख)
वरसे बा सुम देहरी रामो पीर उबार।—रा० क०,
पृ० ३०५।

देहरा^२—संज्ञा पुं० [हि० देह + रा (प्रत्यय०)] नरशरीर। नरदेह।
उ०—कोठे ऊपर दोरना सुख नींदरी न सोय। पुराये पाया
देहरा छोछी ठीर न सोय।—कबीर (शब्द०)।

देहरि^(७)—संज्ञा स्त्री० [सं० देहली] दे० 'देहरी'। उ०—संगहि
सखिए, सुत देहरि बहसुरे। कहसे कए बाहर होएत बाजत
नेपूरे।—विद्यापति, पृ० १५३।

देहरिया^(७)—संज्ञा स्त्री० [हि० देहली] दे० 'देहरी'। उ०—समचिन
की तो अतिहि चिकनी फिसिल फिसिल सब जात। देह-
रिया रंग भीन रही जहँ प्रविसत सबै बरात।—भारतेंदु
सं०, भा० २, पृ० ३७६।

देहरी^(७)—संज्ञा स्त्री० [सं० देहली] १. द्वार की चौखट की वह
लकड़ी जो नीचे होती है और जिसे लाँचते हुए लोग भीतर
धुसते हैं। दहलीज। उ०—(क) राम नाम मनि दीप बह
जीह देहरी द्वार। तुलसी भीतर बाहिरो जो चाहति
उबियार।—तुलसी (शब्द०)। (ख) एक पग भीतर सु एक

देहरी ये घरे, एक कर कंज एक कर है किंवार पर ।
—पद्याकर (शब्द०) । २ ३० 'देहर' ।

देहलक्षण—संज्ञा पु० [सं०] शरीर का तिल [को०] ।

देहला—संज्ञा बी० [सं०] (शरीर को पुष्टि देनेवाली) मदिरा । शराब ।

देहली—संज्ञा बी० [सं०] द्वार की चौखट की वह सफ़ाई जो नाचे
होती है और जिसे बाँधकर लोग भीतर घुसते हैं । देहलीज ।

देहलीदीपक—संज्ञा पु० [सं०] १. देहली पर रखा हुआ दीपक जो
भीतर बाहर दोनों ओर प्रकाश फैलाता है ।

यौ०—देहलीदीपक भ्याय = देहली पर रखे हुए दोनों ओर प्रकाश
फैलानेवाले दीपक के समान दोनों ओर लगनेवाली बात ।

२. एक व्यर्थालंकार जिसमें किसी एक मध्यस्थ शब्द का अर्थ
दोनों ओर लगाया जाता है । उ०—हैं नरसिंह महा मनुबाद
हृष्यो प्रह्लाद को संकट भारी । दास विभीषणी खंक दई निज
रंक सुदामा को संपति भारी । शीपदी थीर बढ़ायो जहान में
पांडव के जस की उजियारी । गहिन के खनि गबं बहावत
हीनन के सुख ओ गिरधारी ।—(शब्द०) ।

विशेष—ऊपर लिखे हुए सवैए के प्रत्येक चरण में यह अलंकार
है । हृष्यो, बर्द, बढ़ायो और बहावत शब्दों का अर्थ दोनों
ओर लगता है । इस अलंकार का लक्षण यह है—परे एक पद
धीरे में दुहु बिस लागे सोय । सो है दीपक देहरी जानत है
सब कोय ।

देहवत^१—वि० [सं०] देहवत् का बहुव० । जिसके देह हो । जो
तनुधारी हो । उ०—(क) देहवत प्राणी जो कसकवत होतो
कहैं सोने में सुगंध के सराहिबे को को हतो ।—ठाकुर
(शब्द०) । (ख) नाक मथुनी के गण मोतिन की आभा, कैवो
देहवत प्रगटित द्विजे को हुलास है ।—(शब्द०) ।

देहवत^२—संज्ञा पु० वह जो शरीरवान् हो । शरीरधारी व्यक्ति ।
प्राणी । शरीरी । उ०—संतोष सम सीतल सदा दम देहवत
न लेखिए ।—तुलसी (शब्द०) ।

देहवान्^१—वि० [सं०] शरीरधारी ।

देहवान्^२—संज्ञा पु० [सं०] १. शरीरधारी व्यक्ति । देही । २.
सजीव प्राणी ।

देहशंकु—संज्ञा पु० [सं०] देहशङ्कु । पत्थर का खंभा ।

देहशोधन—संज्ञा पु० [सं०] शरीर को शुद्ध करने की प्रक्रिया ।
देहशुद्धि । उ०—मलसंशय को मुखवास द्वारा ऊपर को
अथवा गुद द्वारा नीचे को निकाल दे, तिसको देहशोधन कहते
हैं ।—आर्जुनचर सं०, पृ० २७ ।

देहसंचारिणी—संज्ञा संज्ञा [सं०] देहसंचारिणी । कन्या । लड़की ।

देहसार—संज्ञा पु० [सं०] मज्जा घातु ।

देहांत—संज्ञा पु० [सं०] देहान्त । मृत्यु । मरण । मौत ।

कि० प्र०—होना ।

देहांतर—संज्ञा पु० [सं०] देहान्तर । १. दूसरा शरीर । २. दूसरे शरीर
की प्राप्ति । जन्मांतर । उ०—बहुरूपी ताहि रोहिनी ज्ये ।

देहांतर बिनु कैसे बने ।—नंद० प्र०, पृ० २१६ । ३.
मृत्यु । मरण ।

यौ०—देहांतरप्राप्ति = मृत्यु के अनंतर आत्मा का दूसरे शरीर
को प्राप्त करना ।

देहात—संज्ञा बी० [क्रा०] [वि० देहाती] गाँव । गाँव । ग्राम ।

देहाती—वि० [क्रा०] देहात । १. गाँव का । गाँव में होनेवाला ।
जैसे, देहाती बीज । २. गाँव में रहनेवाला । ग्रामीण ।
३. गाँव ।

देहातीपन—संज्ञा पु० [हि० देहाती + पन] देहाती होने का भाव ।
ग्रामीण होने का भाव । गाँवरपन ।

देहातीत—वि० [सं०] १. जो शरीर से परे हो । जो देह से परे हो ।
जो देह से स्वतंत्र हो । २. जिसे देहाभिमान न हो । जिसे
शरीर की ममता न हो ।

देहात्मवाद—संज्ञा पु० [सं०] एक दार्शनिक सिद्धांत । चार्वाक
मत [को०] ।

देहात्मवादी—संज्ञा पु० [सं०] देहात्मवादिन् । वह जो शरीर के
अतिरिक्त आत्मा को न माने शरीर ही को आत्मा माने,
जैसा चार्वाक मानता है ।

देहाध्यास—संज्ञा पु० [सं०] देहधर्म को ही आत्मा समझने का भ्रम ।
देह या शरीर का मिथ्या ज्ञान । उ०—देहाध्यास इनको
व्यापी नहीं ।—दो सी बाबन०, भा० १, पृ० ४५ ।

देहानुसंधान—संज्ञा पु० [सं०] देहानुसंधान । शरीर की सुख बुझ ।
उ०—सो देहानुसंधान न रह्यो ।—दो सी बाबन०, भा० १,
पृ० ३३ ।

देहावरण—संज्ञा पु० [सं०] १. कवच । जिरह वस्त्र । २. शरीर
कपी आवरण । ३. अंगरक्षा । वस्त्र [को०] ।

देहावसान—संज्ञा पु० [सं०] मृत्यु । देहांत । शरीरगत । उ०—
देहावसान सबसे अधिक निश्चित एक भविष्य तथ्य है ।—
चितामणि, भा० २, पृ० ६६ ।

देहिक्का—संज्ञा बी० [सं०] एक कीड़े का नाम ।

देही—संज्ञा पु० [सं०] देहिन् । (देह को धारण करनेवाला)
जीवात्मा । आत्मा ।

विशेष—देह चैतन्य नहीं है पर देही चैतन्य है । आत्मा देह के
आमय से सुख दुःख आदि का भोगनेवाला होता है । पर
शुद्ध देही नित्य, अवश्य आदि है । वि० द० 'आत्मा',
'जीवात्मा' ।

देहुरा—संज्ञा पु० [दे०] दे० 'देहरा' । उ०—नीच बिहूणी
देहुरा देह बिहूणी देव । कबीर तहाँ बिलबिया, करे असख की
सेव ।—कबीर ग्रं०, पृ० ४१ ।

देहेरवर—संज्ञा पु० [सं०] देहाविष्ठाता आत्मा ।

देत—संज्ञा पु० [सं०] दे० 'देत्य' । उ०—रावण सहत यहाँ
अस रावण रावण देत बहूले ।—रघु० क०, पृ० ६५ ।

देती—संज्ञा बी० [दे०] दे० 'देती' ।

देी—प्रत्य० [हि०] से । उ०—भट दे उचकि लियो गिरि ऐसे ।
सापि बैठता को सिमु जैसे ।—नंद० प्र०, पु० ३०८ ।

देव०—संज्ञा पु० [सं० देव] दे० 'देव' । उठ—सुनि अस लिखा
उठा जरि राजा । जानी देउ तइपि घन गाजा ।—जायसी
(शब्द०) ।

देजा—संज्ञा पु० [हि० दायजा] दे० 'दहेज', 'दायजा' ।

देत—संज्ञा पु० [सं० दैत्य] दे० 'दैत्य' । उ०—नहि हरिनाकुस उदर
बिदारा । दैत अनेग नहि छलि छलि मारा ।—स० हरिया,
पु० ४ ।

दैतेय^१—वि० [सं०] दिति से उत्पन्न ।

दैतेय^२—संज्ञा पु० १. दिति की संतान । दैत्य । २. राहु का एक नाम ।

यौ०—दैतेयगुरु, दैतेयपुरोधा, दैतेयपूज्य=दे० 'दैत्यपुरोधा' ।
दैतेयनिपूदन=विष्णु । दैतेयमाता=दे० 'दैत्यमाता' । दैतेय
मेदजा=पृथिवी का नाम ।

दैत्य—संज्ञा पु० [सं०] १. दिति की संतति । कश्यप के वे पुत्र जो
दिति नाम्नी स्त्री से पैदा हुए थे । असुर । २. सबे डील या
असाधारण बल का मनुष्य । जैसे,—वह पूरा दैत्य है । ३.
अति करनेवाला आदमी । जैसे,—वह खाने में दैत्य है । ४.
दुराचारी । नीच । दुष्ट व्यक्ति । ५. लोहा ।

दैत्यगुरु—संज्ञा पु० [सं०] शुक्राचार्य ।

दैत्यदेव—संज्ञा पु० [सं०] दैत्यों के देवता—१. बरुण । २. वायु ।

दैत्यद्वीप—संज्ञा पु० [सं०] गरुड के पुत्रों में से एक (महाभारत) ।

दैत्यधूमिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] तारा देवी की सांत्विक उपासना में
एक मुद्रा जिसमें उल्टी हथेलियों को मिलाकर विशेष उँगलियों
को एक दूसरे से फँसाते हैं ।

दैत्यपति—संज्ञा पु० [सं०] दैत्यों के अधिपति—१. हिरण्यकशिपु ।
२. प्रह्लाद । ३. बाँन (भागवत) ।

दैत्यपुरोधा—संज्ञा पु० [सं० दैत्यपुरोधस] दैत्यों के पुरोहित शुक्राचार्य ।

दैत्यमाता—संज्ञा स्त्री० [सं० दैत्यमातृ] दैत्यों की माता दिति ।

दैत्यमेदज—संज्ञा पु० [सं०] १. गुग्गुलु । गूगल ।

दैत्यमेदजा—संज्ञा स्त्री० [सं०] पृथ्वी । धरित्री । दैतेय मेदजा ।

विशेष—पुराणानुसार पृथिवी को उत्पत्ति मनुकैदभ को मज्जा से
कही गई है ।

दैत्ययुग—संज्ञा पु० [सं०] दैत्यों का युग जो देवताओं के १२ हजार
बरसों या मनुष्यों के चार युगों के बराबर होता है ।

दैत्यसेना—संज्ञा स्त्री० [सं०] प्रजापति की एक कन्या ।

विशेष—यह देवसेना की बहुत थी और केशो दानव को बहुत
चाहती थी । केशो इसे हर ले गया था और अपने इसके साथ
विवाह किया था ।

दैत्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. दैत्य जाति की स्त्री । २. गुरा । कपूर
कचरी । ३. चंडीशक्ति । ४. मछ । माँदरा ।

दैत्यारि—संज्ञा पु० [सं०] दैत्यों के शत्रु—१. विष्णु । २. इंद्र । ३.
देवता मान ।

दैत्याहोरात्र—संज्ञा पु० [सं०] दैत्यों का एक रात दिन जो मनुष्य के
वर्ष के बराबर होता है ।

दैत्येन्द्र—संज्ञा पु० [सं० दैत्येन्द्र] १. दैत्यों का राजा । २. गंधक ।

दैत्येज्य—संज्ञा पु० [सं०] दैत्यों के गुरु शुक्राचार्य ।

दैधिपण्य—संज्ञा पु० [सं०] स्त्री के दूसरे पति का पुत्र ।

दैनंदिन—वि० [सं० दैनन्दिन] प्रतिदिन का । दिन दिन होनेवाला ।
नित्य का ।

दैनंदिन^२—क्रि० वि० १. प्रतिदिन । रोज रोज । २. दिनों दिन ।

दैनंदिनी^१—संज्ञा पु० [सं० दैनन्दिन] पुराणानुसार एक प्रकार
का प्रलय जो ब्रह्मा के पचास वर्ष बीतने पर होता है ।
मोहरात्रि ।

दैनंदिनी^२—संज्ञा स्त्री० [सं० दैनन्दिन + हि० ई (प्रत्य०)] प्रति
दिन का कार्य व्यापार आदि लिखने की पुस्तिका । डायरी ।
रोजनामचा ।

दैन^१—संज्ञा पु० [सं०] १. दीन होने का भाव । दीनता । २. शोक ।
दुःख । परचात्ताप (को०) । ३. निम्नता । नीचता (को०) ।
४. निर्बलता (को०) ।

दैन^२—वि० [सं०] दिन संबंधी ।

दैन^३—संज्ञा स्त्री० [हि० देना] दे० 'देय' ।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग समास में विशेषणरूप में होता है
जैसे,—सुखदैन—सुख देनेवाला । उ०—नैन सुखदैन मन मैं
अनय लेखिए ।—केशव (शब्द०) ।

दैन—संज्ञा पु० [सं०] ऋण । कर्ज । उ०—बंदगी होय उसकी
सब पर फर्ज दैन । खतक ऊपर ज्यों सर बसर मानिद दैन ।—
दक्खिनी०, पु० १९३ ।

दैनिक^१—वि० [सं०] १. प्रतिदिन का । रोज रोज का । २. जो
रोज हो । नित्य होनेवाला । ३. जो एक दिन में हो । ४.
दिन संबंधी ।

दैनिक^२—संज्ञा पु० एक दिन का नेतन । रोजाना मजदूरी ।

दैन्य—संज्ञा पु० [सं०] १. दीनता । दरिद्रता । २. गर्व या अहंकार
के प्रतिकूल भाव । विनीत भाव । अपने को तुच्छ समझने का
भाव । ३. काव्य के संचारी भावों में से एक, जिसमें दुःखादि
सं चित्त अति नम्र हो जाता है । कातरता ।

दैया—संज्ञा पु० [सं० देव] दे० 'देव' । उ०—भिषल दीप राज घर
बारी । महा शरूप दैय भवतारी ।—जायसी प्र० (गुप्त),
पु० १५५ ।

दैयत—संज्ञा पु० [सं० दैत्य] दैत्य । दानव । राक्षस । असुर । उ०—
(क) वह हरी हठि हरिनाक्ष दैयत दखि सुंदर देहु सो ।
—केशव (शब्द०) । (ख) आपन ही रंग रच्यो सँवरो
शुक ज्यों बैठि पढ़ावे । दासो हुती असुर दैयत की सब कुलबधु
कहावे ।—सूर (शब्द०) ।

दैया^१—संज्ञा पु० [हि० दई] दई । देव ।

मुहा०—दैयन के = दई दई करके । किसी प्रकार । कठिणता से ।

देवा^२—प्रथमः प्राश्नार्थः, भय या दुःखसूचक शब्द जिसे स्त्रियाँ बोलती हैं। हे दई ! हे परमेश्वर ! उ०—बूझिहूँ चवेया तब कहौ कहा, देया ! इत पारिगो को, मैया, मेरी सेज पे कन्हैया को ।—पद्याकर (शब्द०) ।

देया^३—संज्ञा स्त्री० दे० 'दाई' ।

देयागतिः—संज्ञा स्त्री० [दे०] दे० 'देवगति' ।

देर—संज्ञा पुं० [फ्रा०] इबादतगाह । देवमंदिर (को०) ।

यौ०—देरोहरम = मंदिर घोर मस्जिद । उ०—देरो हरम को इबादत को क्यों मुझसे छुड़ाया ।—भारतेंदु प्र०, भा० २, पृ० ५६१ ।

दैर्घ्य—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'दैर्घ्य' (को०) ।

दैर्घ्य—संज्ञा पुं० [सं०] दीर्घता । लंबाई । बडाई ।

दैव^१—वि० [सं०] [वि० स्त्री० देवी] १. देवता संबंधी । जैसे, देव कार्य, देवश्राद्ध । २. देवता के द्वारा होनेवाला । जैसे, दैवगति, दैवघटना । ३. देवता को अर्पित ।

दैव^२—संज्ञा पुं० [सं०] १. योगियों के योग में होनेवाले पाँच प्रकार के विघ्नों में से एक प्रकार का विघ्न या उपसर्ग जिसमें योगी उन्मत्तों की तरह भाँखें बंद करके चारों ओर देखता है (माकंडेय पुराण) । २. वह अर्जित शुभाशुभ कर्म जो फल देनेवाला हो । प्रारब्ध । अट्ट । भाग्य । होनेवाली बात या फल । होनी ।

विशेष—मत्स्यपुराण में जब मनु ने मत्स्य से पूछा कि देव और पुरुषकार दोनों में कौन श्रेष्ठ है, तब मत्स्य ने कहा—'पूर्व जन्म के जो भले बुरे अर्जित कर्म रहते हैं वे ही वर्तमान जन्म में देव या भाग्य होते हैं । देव यदि प्रतिकूल हो तो पौरुष से उसका नाश भी हो सकता है । यदि पूर्व जन्म के कर्म अच्छे हों तो भी बिना पौरुष के वे कुछ भी फल नहीं दे सकते अतः पौरुष श्रेष्ठ है ।

यौ०—दैवगति । दैवज्ञ ।

२. विधाता । ईश्वर । जैसे,—दुर्बल को दैव भी सताता है ।

मुहा०—(किसी को) दैव लगना = (किसी पर) ईश्वर का कोप होना । बुरे दिन आना । शपथ आना ।

३. आकाश । आसमान ।

मुहा०—दैव बरसना = मँह बरसना । पानी बरसना ।

४. एक प्रकार का श्राद्ध । दैवश्राद्ध (को०) । ५. दे० 'दैवतीर्थ' (को०) ।

दैवकृत—वि० [सं०] दे० 'दैवी' ।

दैवकृतदुर्ग—संज्ञा पुं० [सं०] कीर्तिलय द्वारा कथित वह स्थान जो प्राकृतिक रूप में ही दुर्ग के समान रूढ़ और चारों ओर रक्षित हो ।

दैवकोविद्—संज्ञा पुं० [सं०] १. देवताओं का विषय जाननेवाला । २. दैवज्ञ । ज्योतिषी ।

दैवगति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. ईश्वरीय बात । दैवी घटना । २. भाग्य । कर्म । अट्ट । प्रारब्ध ।

दैवचित्तक—संज्ञा पुं० [सं० दैवचित्तक] ज्योतिषी ।

दैवज्ञ—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० देवज्ञा] १. ज्योतिषी । गणक । २. वंग देश में ब्राह्मणों की एक जाति ।

दैवतंत्र—वि० [सं० दैवतंत्र] भाग्याधीन ।

दैवत^१—वि० [सं०] देवता संबंधी ।

दैवत^२—संज्ञा पुं० १. देवता संबंधी प्रतिमा आदि । २. देवता । ३. निरुक्त का वह भाग जिससे वेदमंत्रों के देवताओं का परिचय होता है ।

दैवतपति—संज्ञा पुं० [सं०] इंद्र ।

दैवत-संयोग-ख्यापन—संज्ञा पुं० [सं०] किसी देवी देवता के साथ संबंध प्रसिद्ध करना । यह बात केवलाना कि हमें अमुक देवता इष्ट है या अमुक देवता ने हमें विजय प्राप्त करने का आशीर्वाद दिया है या युद्ध में अमुक देवता हमारी सहायता पर है ।

विशेष—कीर्तिलय ने अपने पक्ष की सेना को उत्साहित और शत्रु सेना को उद्विग्न तथा हतोत्साहित करने के लिये यह नीति या ढंग बतलाया है । उसने कई प्रयोग कहे हैं । सुरंग के द्वारा देवमूर्ति के नीचे पहुँचकर कुछ बोलना, रात में सह्या प्रकाश दिखाना, पानी के ऊपर रात को रस्सी में बंधी कोई वस्तु तैरा कर फिर उसे गायब कर देना ।

दैवतीर्थ—संज्ञा पुं० [सं०] आचमन करने में उंगलियों के अग्रभाग का नाम । उंगलियों की नाक ।

दैवत्त^१—वि० [सं० दैवत] देवतुल्य । देवसदृश । उ०—दैवत्त बाह दिग कमल रूप । अनपुच्छ लोह जानिये भूप ।—पृ० रा०, १२।२०।

दैवत्त^२—संज्ञा पुं० [सं० दैवत या दैवत्य] देव । भाग्य । देवता । उ०—जब दैवत्त दिवाइ है तब सच्चा मुझ बैन । मृगतस्ना ज्यों देखिये, प्यास न बुझै नैन ।—पृ० रा०, १७।२६।

दैवत्य—संज्ञा पुं० [सं०] देव । देवता (को०) ।

दैवदत्त—वि० [सं०] नैसर्गिक । प्राकृतिक (को०) ।

दैवदीप—संज्ञा पुं० [सं०] नेत्र । आँख (को०) ।

दैवदुर्विपाक—संज्ञा पुं० [सं०] दैव की प्रतिकूलता । भाग्य की सोटाई ।

दैवदोष—संज्ञा पुं० [सं०] दुर्मर्त्य । भाग्य दोष (को०) ।

दैवपर—वि० [सं०] भाग्य की सब कुछ माननेवाला । भाग्यतादी ।

दैवप्रमाण—संज्ञा पुं० [सं०] वह जो भाग्य पर विश्वास रखकर हाथ पर हाथ धरे बैठा रहे ।

विशेष—बाणभट्ट के मत में ऐसे व्यक्तियों को उपनिवेश बसाने के लिये भेज देना चाहिए । निर्जन स्थान में पहुँचकर वे अपने आप कर्म करेंगे, अन्यथा कष्ट देंगे ।

दैवप्रश्न—संज्ञा पुं० [सं०] १. भविष्य कथन । २. ज्योतिष । ३. देव-वाणी । आकाशवाणी । ४. भविष्य संबंधी शुभाशुभ की जिज्ञासा (को०) ।

दैवयुग—संज्ञा पु० [सं०] देवताओं का युग, जो मनुष्यों के चारों युगों के बराबर होता है।

विशेष—मनुष्यों के एक वर्ष का देवताओं का एक रात दिन होता है।

दैवयोग—संज्ञा पु० [सं०] भाग्य का आकस्मिक फल। संयोग। इतिहास। जैसे,—दैवयोग से वह हमें मार्ग ही में मिल गया।

दैवल—संज्ञा पु० [सं०] १. देवल ऋषि की संतति। २. दे० 'दैवलक' (को०)।

दैवलक—संज्ञा पु० [सं०] भूतसेवक। भोत। प्रेतपूजक [को०]।

दैवलेश्वर—संज्ञा पु० [सं०] ज्योतिषी। गणक।

दैवधर्म—संज्ञा पु० [सं०] देवताओं का धर्म जो १३१५२१ सौर दिनों का होता है।

दैवधरा—क्रि० वि० [सं०] संयोग से। दैवयोग से। अकस्मात्। कदाचित्।

दैवधरा—क्रि० वि० [सं०] दे० 'दैवधरा'।

दैववाणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. आकाशवाणी। २. संस्कृत।

दैववादी—संज्ञा पु० [सं० दैववादिन्] १. भाग्य के भरोसे रहनेवाला। पुरुषार्थ न करनेवाला। २. भालसी। निरयोगी।

दैववदू—संज्ञा पु० [सं०] ज्योतिषी। गणक।

दैवविवाह—संज्ञा पु० [सं०] स्मृतियों में लिखे आठ प्रकार के विवाहों में से एक।

विशेष—ज्योतिषीय आदि बड़ा यज्ञ करनेवाला यदि उसी यज्ञ के समय ऋषिष्व या पुरोहित को असंकुत कन्या शान करे तो यह दैवविवाह हुआ।

दैवभ्रातृ—संज्ञा पु० [सं०] वह भ्रातृ जो देवताओं के उद्देश्य से हो।

दैवसर्ग—संज्ञा पु० [सं०] देवताओं की सृष्टि।

विशेष—सांख्यकारिका में कहा है कि इसके अंतर्गत आठ भेद हैं—आहारा, प्राजापत्य, ऐंद्र, वैश्व, नाथर्व, यज्ञ, राक्षस और वैशाख।

दैवहीन—वि० [सं०] भाग्यहीन। अभाग। दुर्भाग्यवस्तु [को०]।

दैवाकरि—संज्ञा पु० [सं०] दिवाकर अर्थात् सूर्य के पुत्र—१. यम, २. अग्नि।

दैवाकरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] (सूर्य की पुत्री) यमुना नदी।

दैवागत—वि० [सं०] दैवी। आकस्मिक। सहसा होनेवाला।

दैवात्—क्रि० वि० [सं०] अकस्मात्। दैवयोग से। इतिहास से। अचानक। उ०—दैवात्, दो तीन वर्ष यदि उक्त कारणों से किसान को कुछ न मिला।—प्रेमचन्द०, भा० २, पृ० २६८।

दैवात्यय—संज्ञा पु० [सं०] दैवकृत उत्पात। अचानक आपसे आप होनेवाला अनर्थ।

दैवाधीन—वि० [सं०] भाग्य के अधीन। दैवतंत्र [को०]।

दैवायत्त—वि० [सं०] दे० 'दैवाधीन' [को०]।

दैवारिष—संज्ञा पु० [सं०] शंस।

दैवाहोरात्र—संज्ञा पु० [सं०] देवताओं का दिन। देवताओं का रात दिन [को०]।

दैविक—वि० [सं०] १. देवता संबंधी। देवताओं का। जैसे, दैविक आद्य। २. देवताओं का किया हुआ। उ०—दैहिक दैविक भौतिक तापा। राम राज्य काहुँ नहि व्यापा।—तुलसी (शब्द०)।

दैवी—वि० स्त्री० [सं०] १. देवता संबंधिनी। २. देवताओं की की हुई। जैसे, दैवी लीला। ३. आकस्मिक। प्रारब्ध या संयोग से होनेवाली। जैसे, दैवी घटना। ४. सात्विक। जैसे, दैवी संपत्ति।

दैवी—संज्ञा स्त्री० १. दैव विवाह द्वारा व्याही हुई पत्नी। २. एक वैदिक छंद।

दैवी—संज्ञा पु० [सं० दैविन्] ज्योतिषी। गणक [को०]।

दैवी गति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. ईश्वर की की हुई बात। २. प्रारब्ध। भावी। होनहार। अवृष्ट।

दैव्य—वि० [सं०] देवता संबंधी।

दैव्य—संज्ञा पु० १. दैव। २. भाग्य।

दैशिक—वि० [सं०] [वि० स्त्री० दैशिकी] १. देश संबंधी। राष्ट्रीय। २. स्थानीय। ३. प्रदर्शक। बतानेवाला।

दैशिक—संज्ञा पु० १. गुप्त। विद्यादान करनेवाला। २. राहु दिखानेवाला। पथप्रदर्शक [को०]।

दैष्टिक—वि० [सं०] भाग्य में लिखा हुआ। बदा हुआ [को०]।

दैष्टिक—संज्ञा पु० नियतिवादी। भाग्य पर विश्वास रखनेवाला व्यक्ति [को०]।

दैहिक—वि० [सं०] १. देह संबंधी। कारीरिक। उ०—दैहिक दैविक भौतिक तापा।—तुलसी (शब्द०)। २. देह से उत्पन्न।

दैह्य—वि० [सं०] देह संबंधी। दैहिक [को०]।

दैह्य—संज्ञा पु० आत्मा। कहूँ [को०]।

दौकना—क्रि० प्र० [दौ०] गुराना।

दौकी—संज्ञा स्त्री० [दौ०] धौकनी।

दौगा—संज्ञा पु० [हि० द्विरागमन] दे० 'गोना'।

दौचा—संज्ञा स्त्री० [हि० दौच] दे० 'दोच'।

दौचना—संज्ञा स्त्री० [हि० दोचना या दोचना] दे० 'दोचना'।

दौचनार—क्रि० प्र० [हि० दोचन] बनाव में डालना। उ०—तंदुल मांगि दौचि के साईं सो दीन्हों उपहार।—सूर (शब्द०)। २. दबा देना। दबाना।

दौर—संज्ञा पु० [देश०] एक प्रकार का साँप।

दो—संज्ञा पु० [सं० दोस्] भुजा। बाहु [को०]।

दो—वि० [सं० द्वि] एक और एक। तीन से एक कम।

मुहा०—दो एक=कुछ। थोड़े। जैसे,—उनसे दो एक बातें करके चले आबेंगे। दो गाल हँसने बोलने का मीका मिलना = दो चार बातें कर लेने का सुमनसर प्राप्त करना। उ०—अव्यासी—(अपने दिल में) खुदा करें आएँ। दो गाल हँसने बोलने का मीका मिले।—फिसाना०, भा० १, पृ० १४०। (बाँवें) दो चार होना=सामना होना। उ०—दो चार छ

तुम्हें क्यों कर होए हमबरमी के दावे से।—कविता की०, भा० ४, पृ० ४३। दो दिन का = बहुत ही थोड़े समय का। दो दो दाने को फिरना = बहुत ही दरिद्र दशा में दूसरों से मांगते हुए फिरना। दो दो बातें करना = संक्षिप्त प्रश्नोत्तर करना। कुछ बातें पूछना और कहना। दो मार्गों पर पैर (पाँव) रखना = दो पक्षों का अवलंबन करना। दो पदार्थों का आश्रय लेना। उ०—दुइ तरंग दुइ नाव पार्वी धरि ते कहि कवन न मूटे।—सूर (शब्द०)। किसके दो सिर हैं? = किसके फालतू सिर हैं? किसमें असंभव सामर्थ्य है। कौन इतना समर्थ है कि मरने से नहीं डरता। उ०—अनहित तोर प्रिया केइ कीन्हा। केहि दुइ सिर, केहि जम यह सीमा?—तुलसी (शब्द०)।

दोषवस्त्री—संज्ञा स्त्री० [हि० दो + वस्त्र] भेद स्त्रि०। एक नजर से न देखना। भेदभाव का बरताव करना। उ०—अभी घंटे भर वहाँ बैठे चिकनी चुपड़ी बातें करते रहे तो नहीं देर हुई, मैं क्षण भर को बुलाती हूँ तो आगे जाते हो। इसी दोषवस्त्री की तो तुम्हें सबा मिल रही है।—काया०, पृ० १२१।

दोष्मा—संज्ञा स्त्री० [म० दुष्मा] दे० 'दुष्मा'। उ०—फेरि दोष्मा पड़ि, घामुलता सुनि, सकक पढ़ाने।—प्रेमचन०, भा० १, पृ० २१८।

दोष्मातरा—वि० [क्रा०] जो दो बार भ्रम के में लींचा या चुप्राया गया हो। दो बार का लींचा या उतारा हुआ। जैसे, दो घातना कराव, दो घातना गुलाब।

विशेष—एक बार भ्रम या शराव आदि लींच चुकने पर कभी कभी उसको बहुत तेज करने के लिये फिर से लींचते या चुप्राते हैं। ऐसे ही भ्रम या शराव आदि को दोष्मातरा कहते हैं।

दोष्माव—संज्ञा पुं० [क्रा०] दो नदियों के बीच का प्रदेश। किसी देश का वह भाग जो नदियों के बीच में पड़ता हो।

दोष्मावा—संज्ञा पुं० [क्रा० दोष्माव] दे० 'दोष्माव'।

दोई—वि० [सं० द्वौ] दे० 'दो'। उ०—दूँ दल जाइ दोइ में कीन्हा।—घट०, पृ० २३७।

दोई—संज्ञा पुं० दे० 'दो'।

दोईवा, दोइति—संज्ञा पुं० [सं० द्वैत] द्वैत। दो का भाव। द्वैतवा। उ०—गुरु चेला दोइत बिधि साजा।—घट०, पृ० ११२। (ख) साध हमारी घातमा हम साधन के दास। पलट जो दोइति करे होय नरक में बास।—पलट०, भा० ३, पृ० १०६।

दोई—वि० [देश०] दे० 'दोई'। उ०—नोलख कंबल पार दल दोई परे चारि दल सोई हो।—घट०, पृ० ३३।

दोई—वि० [हि० दो] दोनों।

दोई—वि० [हि० दो] दोनों।

दोई—संज्ञा पुं० [हि० दो + का (प्रत्य०)] दो वर्ष की उम्र का बछेड़ा।

दोई—संज्ञा पुं० [हि० दुकड़ा] दे० 'दुकड़ा'।

दोई—संज्ञा पुं० [हि० दुकड़ा] दे० 'दुकड़ा'।

दोई—संज्ञा पुं० [हि० दो + कल] १. दो कल या पेंचवाला ताला। वह ताला जिसके धंदर दो कलें या पेंच होते हैं। २. एक प्रकार की मजबूत बेड़ी।

दोई—संज्ञा पुं० [हि० दो + कोह (= कूबर)] दो कूबरवाला ऊँट। वह ऊँट जिसकी पीठ पर दो कूबर हों।

दोई—संज्ञा पुं० [हि० दो + खंभा] एक प्रकार का नैचा जिसमें कुल्फी नहीं होती। यह नैचा काटकर लोहे की कमानी पर बनाया जाता है।

दोई—संज्ञा पुं० [सं० दोष] दे० 'दोष'। उ०—चढ़त न चातक चित कबहुँ प्रिय पयोद के दोई।—तुलसी ग्रं०, पृ० १०६।

दोई—संज्ञा पुं० [हि० दोष + ना (प्रत्य०)] दोष लगाना। ऐह लगाना।

दोई—संज्ञा पुं० [हि० दोष] १. दे० 'दोष'। २. ऐबी। जिसमें कोई ऐब हो। ३. सनु। द्वैती। वैरी (द्वै०)।

दोई—संज्ञा स्त्री० [हि० दो + गंगा] दो नदियों के बीच का प्रदेश।

दोई—संज्ञा स्त्री० [हि० दो + गंडी (= गोल घेरा या चिह्न)] १. वह चिह्नी या हमली का बीघा जिसे लड़के जुमा खेलने में बेईमानी करने के लिये दोनों ओर से घिस लेते हैं और जिसके दोनों ओर का कासा घंश निकल जाता और सफेद घंश निकल जाता है। २. भगड़ा बखेड़ा करनेवाला मनुष्य। फसाबी। उत्पाती। उपद्रवी।

दोई—संज्ञा पुं० [हि० दूँवर (= पहाड़ी)] दुगहर देश का निवासी जिसे डोगरा कहते हैं।

दोई—संज्ञा पुं० [क्रा० दोगलह] [स्त्री० दोगली] १. वह मनुष्य जो अपनी माता के असली पति से नहीं बल्कि उसके पार से उत्पन्न हुआ हो। आरज। २. वह जीव जिसके माता पिता भिन्न भिन्न जातियों के हों। जैसे, देशी और विलायती से उत्पन्न दोगला कुत्ता।

दोई—संज्ञा पुं० [हि० दो + कल] बाँस की कमबियों का बना एक गोल और कुछ गहरा (टोकरी का सा) पात्र जिससे किसान लोग पानी उलीचते हैं।

दोई—संज्ञा पुं० [सं० द्विक, हि० दुक्का] १. एक प्रकार का लिहाफ जो मोटे देशी कपड़े पर बेल बूटे छापकर बनाया जाता है। उ०—दोई पहरे लाल बनात का कनपोट दिए...उन्हीं के पीछे लड़ा था।—बयामा०, पृ० १४५। २. पानी में खोला हुआ घूना जिससे सफेदी की जाती है।

दोई—संज्ञा पुं० [हि० दो + गाह (= गड़ा)] ?] दोनली बंदूक।

दोई—वि० [हि०] दे० 'दुगना'।

दोई—वि० [देशी] जोड़ा। जुड़वा। युग्मक।—देशी०, पृ० २०३।

दोई—वि० [क्रा०] दुगना।

दोई—संज्ञा स्त्री० [हि० दोष] १. दुबधा। असमंजस। २. कष्ट। दुःख। उ०—मनहि बह परतीत घाई दूर हरिहो दोष।—सूर

प्रभु हिलि मिलि रहौंगी लाज डारौ मोच ।—सूर (शब्द०) ।
३. दबाव । दबाए जाने का भाव ।

दोचन—संज्ञा स्त्री० [हि० दबोचन] १. दुबसा । असमंजस । २. दबाव में पड़ने का भाव । ३. कष्ट । दुःख । उ०—भवन मोहि भाँटी सो लागत मरत सोचही सोचन । ऐसी गति मेरी तुम प्रागे करत कहा जिय दोचन ।—सूर (शब्द०) ।

दोचना—क्रि० स० [हि० दोच] दबाव डालना । कोई काम करने के लिये बहुत जोर देना ।

दोचल्ला—संज्ञा पुं० [हि० दो + चल्ला (= पल्ला) ?] वह छाजन जो बीच में उभरी हुई धोर दोनों धोर ढालुई हो । दोपलिया छाजन ।

दोचित्ता—वि० [हि० दो + चित्ता] [वि० स्त्री० दोचित्ती] जिसका चित्त एकाग्र न हो, दो कामों या बातों में बँटा हो । उद्विग्न-चित्त ।

दोचित्ता—संज्ञा स्त्री० [हि० दो + चित्त] दोचित्त होने का भाव । चित्त की उद्विग्नता । ध्यान का दो कामों या बातों में बँटा रहना ।

दोचोबा—संज्ञा पुं० [हि० दो + फा० चोब] वह बड़ा खेमा जिसमें दो दो चोबें लगती हो ।

दोजङ्ग—संज्ञा स्त्री० [हि० दो] पक्ष की द्वितीया तिथि । दूज । उ०—दोज मसी ज्यों प्रेम, राजत म्याम प्रकार में । झाड़ी भीत जु नेम, ता ऊपर हो देख ले ।—रसनिधि (शब्द०) ।

दोज^३—संज्ञा पुं० [सं०] संगीत में षष्ठताल का एक भेद ।

दोजई—संज्ञा स्त्री० [देश०] नक्काशों का एक झोझर जो गोलाकार बुत्ता बनाने के काम में आता है । यह खैनी के आकार का होता है ।

दोजक—संज्ञा पुं० [फा० दोजख] दे० 'दोजख' । उ०—माल लेखूँ तो दोजक पढ़ूँ, दीन छोड़ दुनियाँ की भूँ ।—दक्खिनी, पृ० २० ।

दोजकि(७)—संज्ञा पुं० [फा० दोजख] दे० 'दोजख' । उ०—तो पापी छोड़ दोजक जागोह ।—प्राण०, पृ० ३३ ।

दोजख^१—संज्ञा पुं० [फा० दोजख] १. मुसलमानों के धार्मिक विश्वास के अनुसार नरक जिसके सात विभाग हैं और जिसमें दुष्ट तथा पापी मनुष्य मरने के उपरांत रखे जाते हैं । उ०—दोजख ही सही सिर का झुकाना नहीं अच्छा ।—भारतेंदु खं०, भा० १, पृ० ४८० । २. पेट ।

दोजख^२—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का पीधा जिसके फूल बहुत सुंदर होते हैं ।

दोजखी—वि० [फा० दोजखी] १. दोजख संबंधी । दोजख का । २. पापी । बहुत बड़ा अपराधी जो दोजख में भेजे जाने के योग्य हो ।

दोजगा—संज्ञा पुं० [फा० दोजख] दे० 'दोजख' । उ०—आगल सुरग कपाट भय, दोजग भगुमो देख ।—बाँकी० खं०, भा० २, पृ० ४६ ।

दोजरबा—वि० [फा०] दो बार भ्रमके में खींचा या चुभाया हुआ । दो घातका । जैसे,—दोजरबा शराब । दोजरबा घरक ।

दोजर्बा—संज्ञा स्त्री० [फा०] दोनली बंदूक ।

दोजा^१—संज्ञा पुं० [हि० दो] वह पुरुष जिसका दूसरा विवाह हो । दोबारा व्याहृत हुआ आदमी । कल्याणभार्य ।

दोजा^२—वि० [हि० दूजा] दे० 'दूजा' ।

दोजानू—क्रि० वि० [फा० दोजानू] घुटनों के बल या दोनों घुटने टेककर (बैठना) ।

दोजिया—संज्ञा स्त्री० [हि० दो + जी या जीव] गर्भवती स्त्री । वह स्त्री जिसके पेट में बच्चा हो ।

दोजीरा—संज्ञा पुं० [हि० दो + जीरा] एक प्रकार का चावल ।

दोजोवा—संज्ञा स्त्री० [हि० दो + जीव] गर्भवती स्त्री । वह स्त्री जिसके पेट में बच्चा हो ।

दोटूक—वि० [हि० दो + टुकड़ा] स्पष्ट । साफ साफ । खरी (बात) ।

दोटना—क्रि० प्र० [हि०] दे० 'दोड़ना' । उ०—नाखे बारंबार निसासा, हत्था तेग गही चंद्रहासा । कोषो दाखण काय प्रकासा, दोट सिया सिर देख ।—रघु०, पृ० २१ ।

दोढ़ी—संज्ञा स्त्री० [हि० ड्योढ़ी] दे० 'ड्योढ़ी' । उ०—दोढ़ी सिर दवार नरेह निहारती । मिल कोसल्या मात, उतारी आरती ।—रघु०, पृ० ६५ ।

दोती—संज्ञा स्त्री० [फा० दवात] दे० 'दावात' ।

दोतरफा^१—वि० [फा०] दोनों तरफ का । दोनों ओर संबंधी ।

दोतरफा^२—क्रि० वि० दोनों तरफ । दोनों ओर ।

दातरफा—वि० पुं० [फा०] दे० 'दोतरफा' ।

दोतला—वि० [हि०] दे० 'दोतल्ला' ।

दोतल्ला—वि० [हि० दो + तल] दो खंड का । दोमजिला । का । दोमजिला जैसे, दोतल्ला मकान ।

दोतही—संज्ञा स्त्री० [हि० दो + तह] १. एक प्रकार की देसी मोटी चादर जो बोहरी करके बिछाने के काम में आती है । २. दोमूती ।

दोता—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'दोतही' ।

दोतारा^१—संज्ञा पुं० [हि० दो + तार (= सूत)] एक प्रकार का दुसाला ।

दोतारा^२—संज्ञा पुं० [हि० दो + तार (= धातु)] एकतारे की तरह का एक प्रकार का बाजा । एकतारे की अपेक्षा इसमें यह विशेषता होती है कि इसमें बजाने के लिये एक के बदले दो तार होते हैं ।

विशेष—दे० 'एकतारा' ।

दोदना—क्रि० स० [हि० दो (= दोहराना)] किसी की कही प्रत्यक्ष बात से इनकार करना । प्रत्यक्ष बात से मुकरना ।

दोदरी—संज्ञा स्त्री० [नेपाली] एक प्रकार का सदाबहार पेड़ जो बारजिलिंग, सिकिम, भूटान और पूर्वी बंगाल में पाया जाता है । इसकी लकड़ी काली, चिकनी और कड़ी होती है और इमारत के काम में आती है ।

दोदश—संज्ञा पुं० [सं० द्विदश] १. चने की दाल या तरकारी ।
२. कचनार की कलियाँ जिसकी तरकारी बनती है और
अचार भी पड़ता है ।

दोदस्ता—वि० [फा० दुदस्तह्] दोनों ओर । दुतरफा [को०] ।

दोदस्ता खिलाल—संज्ञा पुं० [फा० दोदस्ता खिलाल] ताश के
तुरफ के खेल में किसी एक खिलाड़ी का एक साथ बाकी
दोनों खिलाड़ियों की मात करना ।

दोदस्ती—संज्ञा स्त्री० [फा०] १. दोनों हाथों तलवार चलाना ।
२. कुश्ती का एक ढाँचा [को०] ।

दोदा—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का बड़ा कीवा (पत्ती)
जिसकी लंबाई छेड़ दो हाथ होती है ।

विशेष—इसका रंग काला, तथा चोंच और पैर चमकीले होते
हैं । यह गाँव, देहात या जंगलों में बहुत होता है । इसकी
छादों मामूली कीड़े की मी होती हैं । यह ऊँचे वृक्षों पर
घोसना बनाता है और घूस से फागुन तक भंडे देता है ।
एक बार में इसके पाँच भंडे होते हैं ।

दोदाना—क्रि० सं० [हि० दोदना] किसी को दोदने में प्रवृत्त करना ।
दोदने का काम दूसरे से कराना ।

दोदामी—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'दुदामी' ।

दोदिन—संज्ञा पुं० [देश०] रीठे की जाति का एक पेड़ जिसके फलों
का व्यवहार साबुन की तरह कपड़े साफ करने में होता है ।
इसके पत्ते चौपाथे की खिलाए जाते हैं और बीज दवा के
काम में आते हैं ।

दोदिला—वि० [फा० दुदिलह्] १. जिसका मन दो कामों या बातों
में बँटा हो, एकाग्र न हो । जिसका चित्त एक बात पर जमा
न हो बलिक दो तरफ बँटा हो । दोचित्रा । विभित ।
२. बहमी ।

दोदिलो—संज्ञा स्त्री० [हि० दो + दिल] दोदंभा होने का भाव ।
चित्त की अस्थिरता । दोचित्री ।

दोध—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० दोधी] १. ग्वाला । गह्वर ।
२. बछड़ा । गाय का बच्चा । ३. वह स्त्री जो पुरस्कार के
लिये कविता करता हो ।

दोधक—संज्ञा पुं० [सं०] एक दण्डवृत्त जिसमें तीन भरण और अंत
में दो गुं होते हैं । इसका दूसरा नाम 'बंधु' भी है । जैसे,—
भागु न गो दुहिं दे नदलाला । पाणि गहे कहती बजबाला ।
दोध करे सब प्रारत बानी । या मिम ले घर जाये सयानी ।

दोधार—संज्ञा पुं० [हि० दो + धार] आना । बरछा (डि०) ।

दोधारी—वि० [हि० दो + धार] [वि० स्त्री० दोधारी] दोहरी
बाढ़ का । जिसके दोनों ओर धार या बाढ़ हो ।

दोधारा—संज्ञा पुं० एक प्रकार का गृहर ।

दोन—संज्ञा पुं० [सं० द्रोण] दो पहाड़ों के बीच की नीची जमीन ।

दोन—संज्ञा पुं० [हि० दो + नद] १. दो नदियों के बीच की जमीन ।
घोसावा । २. दो नदियों का संगम स्थान । ३. दो नदियों

का मेल । ४. दो वस्तुओं की संबंध या मेल । ५.—तिय
तिय तरणि किशोर वध पुन्यकाल सम दोन । काहू पुन्यनि
पाइयत बैस संवि संक्रोन । —बिहारी (शब्द०) ।

दोन—संज्ञा पुं० [सं० द्रोण] काठ का वह लंबा और बीच से
खोखला टुकड़ा जिससे धान के खेतों में सिंचाई की जाती है ।

विशेष—यह धान कटने की ढेरली के आकार का होता है और
उसी की तरह जमीन पर अगा रहता है । पानी लेने के लिये
इसका एक सिरा बहुत छोड़ा होता है जो एक तान में रहता
है । इस सिरों को पहले तान में डुबाते हैं और जब उसमें
पानी भर आता है तब उसे ऊपर की ओर उठाते हैं, जिससे
उसका दूसरा सिरा नीचे हो जाता है और उसके खोखले मार्ग
से पानी नाली में चला जाता है ।

२. धन्न की एक माप । द्रोण ।

दोनली—वि० [हि० दो + ल] दो नालवाली । जिसमें दो नालें
हों । जैसे, दोनली बंदूक ।

दोनो—संज्ञा पुं० [हि० दोना] दे० 'दोना' । उ०—दोनो मखरा
चंपक फूला । तामे जीव बसे कर तुला ।—कबीर द०,
पृ० २४० ।

दोना—संज्ञा पुं० [सं० द्रोण] [स्त्री० दोनी] पत्तों का बना हुआ
कटोरे के आकार का छोटा गहरा पात्र जिसमें खाने की चीजें
आदि रखते हैं । उ०—कंपूल फल भरि भरि दोना । चले
रंक अनु चूटन सोना ।—सुलमी (शब्द०) ।

मुहा०—दोना चढ़ाना = किसी की समाधि आदि पर फूल
चढ़ाना । दोना देना = (१) दोना चढ़ाना । (२) अपने
भोजन के बाल में से कुछ भोजन किसी को दे देना जिससे
देनेवाले की प्रसन्नता और पानेवाले का सम्मान प्रगट होता है ।
दोना खाना या चाटना = बाजार की मिठाई आदि खाना ।
दोनो की चाट पड़ना = बाजारो भोजन का चस्का पड़ना ।

दोना—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'दोना' (मत्वा) ।

दोनिया—संज्ञा स्त्री० [हि० दोना का स्त्री० ग्रन्था०] छोटा दोना ।
उ०—यक दोनिया महँ दिखो बतासा । कह्यो हेतु यक यक
सब पासा ।—रघुराज (शब्द०) ।

दोनी—संज्ञा स्त्री० [हि० दोना का स्त्री० ग्रन्था०] छोटा दोना ।
उ०—(क) तुलसी स्वामी स्वामिनी जोड़े मोही हैं भामिनी,
सोया सुषा पिये करि प्रीतियाँ दोनी ।—तुलसी (शब्द०) ।
(ख) दूध भगत की दोनी देहों सोने चोंच मँहों । जब सिय
सहित बिलोकि नयन भरि राम लखन उर लेहों ।—तुलसी
(शब्द०) ।

दोनु—वि० [हि०] दे० 'दोनों' । उ०—तुम दोनु ही एक समान
करी ।—नट०, पृ० ३३ ।

दोनों—वि० [हि० दो + नों (प्रत्य०)] एक और दूसरा । ऐसे
विशिष्ट दो (अनुष्य या पदार्थ) जिनका पहले कुछ वर्णन हो
चुका हो और जिनमें से कोई भी छोड़ा न जा सकता हो ।
उपम । जैसे,—(क) राम और कृष्ण दोनों गए । (ख) वह

कल और आज दोनों दिन थाया । (ग) वह घन और मान दोनों चाहता है । (घ) उसके माँ बाप दोनों धंधे हैं ।

दोपंधो—संज्ञा स्त्री० [हि० दो+पंध] एक प्रकार की दोहरे खाने की जाली, स्त्रियाँ प्रायः जिसकी कुरतियाँ बनाती हैं ।

दोपट्टा—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'दुपट्टा' ।

दोपलका—वि० [हि० दो+पलक या फलक] १. दो पल्ले का नगीना । वह नगीना जिसके भीतर नकली या हलका नग हो और ऊपर असली या बढ़िया हो । दोहरा नगीना । २. एक प्रकार का बत्तनर ।

दोपल्लियाँ—वि०, संज्ञा स्त्री० [हि० दो+पल्ल] दे० 'दोपल्ली' ।

दोपल्ली—वि० [हि० दो+पल्ल+ई (प्रत्य०)] दो पल्लेवाला । जिसमें दो पल्ले हों ।

दोपल्ली—संज्ञा स्त्री० मलमल, भट्टी आदि की एक प्रकार की टोपी जिसमें कपड़े के दो टुकड़े एक साथ सिले होते हैं । इसका व्यवहार सखनऊ, प्रयाग और काशी आदि में अधिकता से होता है ।

दोपहर—संज्ञा स्त्री० [हि० दो+पहर] मध्याह्नकाल । सवेरे और संध्या के बीच का समय । वह समय जब सूर्य मध्य आकाश में रहता है ।

मुहा०—दोपहर उलना = दोपहर के उपरांत और समय बीतना ।

दोपहरियाँ—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'दोपहर' ।

दोपहरी—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'दोपहर' । उ०—आ आकर विचित्र पशु पक्षी यहाँ बिताते दोपहरी ।—पंचवटी, पृ० ८ ।

दोपीठा—वि० [हि० दो+पीठ] दोरखा । दोनों ओर समान रूप रंग का ।

दोपीठा—संज्ञा पुं० कागज आदि का एक ओर छपने के उपरांत दूसरी ओर छपना (मुद्रण) ।

दोपीवा—संज्ञा पुं० [हि० दो+पाव] १. पान की आधी डोनी । (तंबोली) । २. किसी वस्तु का आधा ।

दोप्याजा—संज्ञा पुं० [फ्रा० दोप्याज़] एक प्रकार का पका हुआ मांस जिसमें तरकारी नहीं पड़ती और प्याज दो बार पड़ता है । एक प्रकार का मांस जिसमें पानी नहीं पड़ता केवल प्याज पड़ता है । उ०—कोर्मा होना, कलिया होती पुलाव दोप्याजे की तसरियाँ होती और रात रात भर बातन के काग फटाफट खुलते रहते ।—भराबी, पृ० १०४ ।

दोफसली—वि० [हि० दो+फ० फसल+ई (प्रत्य०)] १. दोनों फसलों के संबंध का । जैसे, दोफसली जमीन । २. जो दोनों ओर लग सके । दोनों ओर काम देने योग्य । जैसे, दो फसली बात ।

दोबल—संज्ञा पुं० [दे०] दोष । अपराध । उ०—(क) दोबल कहा देति मोहि सखी तू तो बड़ी सुजान । अपनी सी मैं बहुत कोन्ही रहति न तेरी भान ।—सूर (शब्द०) । (ख) दोबल देति भान ।—सूर (शब्द०) । (ग) दोबल देति सबे मोही को उन पठयो मैं आयो ।—सूर (शब्द०) ।

क्रि० प्र०—देना ।

दोबारा—क्रि० वि० [फ्रा०] दूसरी बार । दूसरी दफा । एक बार होने के उपरांत फिर एक बार ।

दोबारा—संज्ञा स्त्री० [फ्रा०] १. दो घातला शराब । २. दो घातला शरक आदि । ३. दो बार साफ की हुई चीनी । ४. एक बार तैयार होने के उपरांत उसी तैयार चीज से फिर दूसरी बार तैयार की हुई चीज ।

दोबाळा—वि० [फ्रा० दुबाला] दुना । दुगुना ।

दोभा(पुं०)—वि० [दे०] ढोला । मुलायम । उ०—छोछा कुल में अपना दोभा ढावड़ियाँह । हीले बोले होट में मूरख मावड़ियाँह ।—बाँकी० ग्रं०, भा० २, पृ० १७ ।

दोभापिया—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'दुभापिया' ।

दोमंजिला—वि० [फ्रा० दुमंजिलह] दो खंड का । दोखंडा । जिसमें दो मंजिलें हों । जैसे, दोमंजिला मकान ।

दोमट—संज्ञा स्त्री० [हि० दो+मिट्टी] वह भूमि जिसकी मिट्टी में कुछ बालू भी मिला हो । दूमट भूमि ।

दोमहला—वि० [हि० दो+महल] दो खंड का । दोमंजिला । जैसे, दोमहला मकान ।

दोमरगा—संज्ञा पुं० [हि० दो+मार्ग] एक प्रकार का देशी मोटा कपड़ा जिसकी जनानी धोतियाँ बनाई जाती हैं । यह मिर्जापुर में बहुत बनता है ।

दोमाहा—संज्ञा पुं० [फ्रा० दुमाहह] दो महीने का वेतन या तनखाह (को०) ।

दोमुह—वि० [हि० दो+मुँह] १. दो मुँहवाला । जिसे दो मुँह हों । जैसे, दोमुह साँप । २. दोहरी बाल बनने या बात करनेवाला । कपटी ।

दोमुह साँप—संज्ञा पुं० [हि० दोमुह+साँप] १. एक प्रकार का साँप जो प्रायः हाथ भर लंबा होता है और जिसकी दुप मोटी होने के कारण मुँह के समान जान पड़ती है ।

विशेष — न तो इसमें बिब होता है और न यह किसी को काटता है । इसके विषय में लोगों में यह प्रमिद्ध है कि यह महीने इसकी दुम का सिरा मुँह बन जाता है और पहेनेवाला मुँह दुम बन जाता है ।

२. दो तरह की बातें कहनेवाला । कुटिल और कपटी व्यक्ति ।

दोमुही—संज्ञा स्त्री० [हि० दो+मुँह] सोनारों का एक औजार जो नक्काशी के काम में आता है ।

दोय(पुं०)—वि० [सं० द्वी] १. दे० 'दो' । २. दे० 'दोनों' ।

दोय—संज्ञा पुं० दे० 'दो' ।

दोयज(पुं०)—वि० [हि० दोय+ज] दुबिधेवाला । उलझन से भरा । जिताजनक । उ०—दोयज घंघा जगत का लागि रहै दिन रैन । कुटुंब महा दुख देत है कैसे पावे जैन ।—सहजो०, पृ० ५० ।

दोयण(पुं०)—संज्ञा पुं० [सं० दुयंज, प्रा० दुयण, दुयण] १. दे० 'दुयंज' । २. जनु । दुश्मन । उ०—जाहूर जग जीवाङ्गो, मारी दोयण मेह ।—बाँकी० ग्रं०, भा० १, पृ० २१ ।

दोयम—वि० [फ्रा०] दूसरा । दूसरे नंबर का । जो क्रम में दो के स्थान पर हो ।

दोयरी—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक जंगली पेड़ जो दारजिलिंग के जंगलों में बहुत होता है ।

विशेष—इसकी लकड़ी सफेद और मजबूत होती है और संदूक आदि बनाने तथा इमारत के काम आती है । इसकी लकड़ी का कोयला भी बनाया जाता है जो बहुत देर तक ठहरता है ।

दोयल—संज्ञा पुं० [देश०] बया पक्षी ।

दोरंगा—वि० [हिं० दो + रंग] १. दो रंग का । जिसमें दो रंग हों । जैसे, दोरंगा किनारा, दोरंगा कागज । २. जो दो-मुँहा या दोतरफा हो । जो दोनों ओर जग या चल सके । दोनों पक्षों में आ सकनेवाला । ३. जो व्यभिचार से उत्पन्न हुआ हो । अशंसकर । दोगला (क०) ।

दोरंगी^१—संज्ञा स्त्री० [हिं० दो + रंग + ई (प्रत्यय०)] १. दो-रंगे या दोमुँहे होने का भाव । दोनों ओर चलने या लगने का भाव । २. छल । कपट ।

दोरंगी^२—वि० स्त्री० [हिं० दोरंगा] ३० 'दोरंगा'—२. । उ०—यह दुनिया दोरंगी भाई । जिव गहू धरण भसुर की जाइ ।—कबीर सा०, पृ० ८१६ ।

दोरा^१—संज्ञा स्त्री० [हिं० दो] दोबारा जोती हुई जमीन । वह जमीन जो दो बरके जोती गई हो ।

दोर(पु)^२—संज्ञा पुं० [सं०] डोर । रस्सी । उ०—मन बेलार तन चंग नव उड़त रंग रस डोर । दूरिहि डोर बटोर जब जब पारे तब ठोर ।—स० सप्तक, पृ० २५१ ।

दोरक—संज्ञा पुं० [सं०] १. डोरी । डोर । २. धागा । डोरा । बीणा के पक्षों को बाँधने में काम आनेवाली तत [स्त्री०] ।

दोरदंड(पु)^१—वि० [सं० दुर्दण्ड] ३० 'दुर्दंड' ।

दोरदंड(पु)^२—संज्ञा पुं० [सं० दोर्दण्ड] ३० 'दोर्दंड' ।

दोरना^१—क्रि० प्र० [हिं० दोड़ना] ३० 'दोड़ना' । उ०—तब कप बबनेदी दोरे ई प्राए ।—दो सी बावन०, भा० १, पृ० १६२ ।

दोरसा^१—संज्ञा पुं० [हिं० दो + रस] ३० 'दोमट' ।

दोरसा^२—वि० [हिं० दो + रस] दो प्रकार के स्वाद या रसवाला । जिसमें दो तरह के रस या स्वाद हों ।

दोरसा^३—संज्ञा पुं० एक प्रकार का पीने का तमाकू जिसका धुआँ कड़ुआ और मोठा मिला हुआ होता है ।

दोराही^१—संज्ञा पुं० [देश०] हुल के मुठिया के पास लगी हुई बाँस की वह नली जिसमें बोने के लिये बीज डाला जाता है । भाला ।

दोराही^२—संज्ञा पुं० [सं० दोरक] डोरा । दोर । दोरक ।

दोराना^१—क्रि० प्र० [हिं० दोरना] ३० 'दोड़ना' । उ०—तब तत्काल नाव दोराई ।—दो सी बावन०, भा० १, पृ० ११० ।

दोराहा—संज्ञा पुं० [हिं० दो + राह] वह स्थान जहाँ से आगे की ओर दो मार्ग जाते हों ।

दोरी^१—संज्ञा स्त्री० [हिं० दोर] ३० 'डोरी' ।

दोखला—वि० [फ्रा० दोखल] १. जिसके दोनों ओर समान रंग या बेल बूटे हों । जैसे, दोखला कपड़ा, दोखली साड़ी, दोखला साफा । २. जिसके एक ओर एक रंग और दूसरी ओर दूसरा रंग हो । कपड़ों की इस प्रकार की रंगाई प्रायः सलनऊ और बीकानेर में होती है । ३. सोनारों का एक औजार जो हंसुली बनाने के काम में आता है ।

दोरेजो—संज्ञा स्त्री० [फ्रा०] नील की वह दूसरी फसल जो पहले साल की फसल कट जाने के उपरांत उसकी जड़ों से फिर होती है ।

दोर—संज्ञा पुं० [सं०] दोः का समासप्राप्त रूप ।

दोर्ग्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] सूर्यसिद्धांत के अनुसार वह ज्या जो भुज के आकार की हो ।

दोर्दंड—संज्ञा पुं० [सं० दोर्दंड] भुजदंड ।

दोल^१—संज्ञा पुं० [सं०] १. झूला । हिडोला । उ०—राधा माधव झूलियों, झलि को झलि प्रति बैन । तेई दोल जनमोल है, लोल लसे सुख दें ।—दीन० ग्रं०, पृ० ४ । २. डोली । चंडोल । ३. एक उत्सव । दोनोत्सव ।

दोल^२—संज्ञा पुं० [फ्रा०] डोल । कुए से पानी निकालने का बर्तन [स्त्री०] ।

दोलड़ा^१—वि० [हिं० दो + लड़] [वि० स्त्री० दोलड़ी] दो लड़कों का । जिसमें दो लड़ें हों ।

दोलत्तो—संज्ञा पुं० [हिं०] ३० 'दुलत्तो' ।

दोलना—क्रि० प्र० [सं० दोलन] १. हिलना । काँपना । लरजना । उ०—हरी बिछली बास । दोलती कलगी झरहरी बाजरे की ।—हरी बास०, पृ० ५७ । २. डोलना । घूमना । उ०—दिन दिन गढ़ जोधांणी डोला । रसता भपट मिटें नहू रोला ।—रा० क०, पृ० २८४ ।

दोला—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. नील का पेड़ । २. हिडोला । झूला । ३. डोली या चंडोल । ४. ३० 'दोलायन' (स्त्री०) । ५. अनिश्चयात्मक स्थिति (स्त्री०) ।

दोलाधिकरूढ़—वि० [सं० दोलाधिकरूढ़] १. झूले वा हिडोले पर चढ़ा हुआ । २. अनिश्चित (लक्ष०) ।

दोलायन—संज्ञा पुं० [दोलायन] वैद्यों का एक यंत्र जिसकी सहायता से वे ओषधियों के भर्क उतारते हैं ।

विशेष—एक घड़े में कुछ द्रव पदार्थ (तेल, घी, पानी आदि) भर कर उसे धाग पर चढ़ाते हैं । कुछ ओषधियों की पोटली बाँधकर उस पोटली को एक डोरे से घड़े के मुँह पर रखी हुई लकड़ी से इस तरह लटकाते हैं कि वह पोटली उस द्रव पदार्थ के बीच में रहे पर घड़े की पेंदी से न छू जाय । इस प्रकार उन ओषधियों का भर्क उस तरल पदार्थ में उतर आता है ।

दोलायमान—वि० [सं०] १. झूलता हुआ । हिलता हुआ । २. अस्थिर । अचल । दुलभुल (स्त्री०) । ३. झूलता हुआ अचंचल । अचंचल (स्त्री०) ।

दोसायित—वि० [सं०] दोलित । झूलता हुआ (को०) ।

दोसायुद्ध—संज्ञा पुं० [सं०] वह युद्ध जिसमें बार बार दोनों पक्षों की हार जीत होती रहे और जल्दी किसी एक पक्ष की अंतिम विजय न हो ।

दोसाबा—संज्ञा पुं० [?] वह कुर्मी जिसमें दोनों ओर दो गरा-दियां लगी हो ।

दोलिका—संज्ञा स्त्री० [म०] १. हिडोला । झूला । उ०—झूलत पिय नंदलाल, झुलत सब बज की बाज, वृंदा बन नवल-कुंज सोल दोलिका । -भारतेन्दु ग्रं०, भा० २, पृ० ३६३ । २. डोली । पालकी ।

दोलित—वि० [मं०] १. झूलता हुआ । २. कपित । हिलता हुआ । उ०—ऊपर शोभित मेघ छत्र सित, नीचे अमित नील जल दोलित । -प्रपरा, पृ० २४ ।

दोली—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. डोली । पालकी । २. झूला ।

दोलू—संज्ञा पुं० [?] दांत (हि०) ।

दोलोत्सव—संज्ञा पुं० [सं०] वेष्मणों का एक त्योहार जिसमें वे अपने ठाकुर जी की कूलों के हिटोले पर झुलाते हैं । यह उत्सव फागुन की पूर्णिमा को होता है ।

दोलोही—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'दुलोही' ।

दोवटी^७—संज्ञा स्त्री० [हि०] दोपट्टी दे० 'दुपट्टी' । उ०—सैन तेरी कोई न समझे जीम पकरी धानि । पाँच गज दोवटी मींगी नून लीयी सानि । -कबीर ग्रं०, पृ० १६४ ।

दोवड^७—वि० [देशी] दे० 'दोहरा' । उ०—दूजा दोवड चोवड़ा, ऊँट कटाल उ खारि । जिए मुख नागरिलियाँ सो करहुट केकाण । -ढोला०, पृ० ३०६ ।

यौ०—दोवड चोवड़ ।

दोवण^७—संज्ञा पुं० [मं०] दुर्मन्त्र, हि० दुबन] जात्र । वेरी । उ०—महाराजधिराज सूर्यीय मन्त्रा मारा कारज सारे । कीषो भूप पुरी केकभा दोवण दूर बिदारे । -रघु० ७०, पृ० १५६ ।

दोवाँ—संज्ञा पुं० [हि० देववास] देववास नाम का वाँस जो बंगाल में बहुत होता । वि० दे० 'देववास' ।

दोश—संज्ञा पुं० [देश] एक प्रकार का लाख जिसका व्यवहार रंग बनाने में होता है ।

दोशमाल—संज्ञा पुं० [फ्रा०] वह धौंसा या तोलिया जो कसाई अपने पास रखते हैं ।

दोशाखा—संज्ञा पुं० [फ्रा० दुगखह] १. वह समतल जिसमें दो बलियाँ हो । दो डाला की दोशामीर । २. भाँग छानने की लकड़ी जिसमें दो शाखें होती हैं और जिसमें साफ़ी बाँध कर भाँग छानते हैं । इसका आकार ऐसा होता है—<

दोशाला—संज्ञा पुं० [फ्रा०] दे० 'दुगाना' ।

दोशीजमी—संज्ञा स्त्री० [फ्रा० दोशा डमी] बलहट अवस्था । कुवारा-पन (को०) ।

दोशीजा^१—संज्ञा स्त्री० [फ्रा० दोशीजह्] कुमारी कन्या । बलहट और युवा लड़की । अंकुरितयोवना ।

दोशीजा^२—वि० अंकुरितयोवना । बलहट । उ०—कुंजों में छिप छिप छेड़ रहा दोशीजा कलियों को फागुन । -ठंडा०, पृ० २७ ।

दोष^१—संज्ञा पुं० [सं०] १. बुरापन । खराबी । अवगुण । ऐब । नुक्स । जैसे, माँस या कान का दोष, लिखने या पढ़ने का दोष, शासन के दोष आदि ।

मुहा०—दोष लगाना = किसी के संबंध में यह कहना कि उसमें अमुक दोष है । दोष का आरोप करना । दोष निकालना = दोष का पता लगाना । अवगुण को प्रसिद्ध या प्रकट करना ।

यौ०—दोषकर, दोषकारी = दे० 'दोषकृत्' । दोषग्राही । दोषज्ञ । दोषत्रय = कफ, पित्त और वायु । दोषदृष्टि । दोषपत्र । दोषभाक् = दोषी । अपराधी । दोषदर्शी = दोष दिखलाने-वाला । ऐब दिखलानेवाला ।

२. लगाया हुआ अपराध । अभियोग । लाँछन । कलंक ।

मुहा०—दोष देना या लगाना = लाँछन या कलंक का आरोप करना ।

यौ०—दोषारोपण = दोष देना या लगाना ।

३. अपराध । कसूर । जुर्म । ४. पाप । पातक । ५. वैद्यक के अनुसार शरीर में रहनेवाले वात, पित्त और कफ, जिनके कुपित होने से शरीर में विकार भयवा व्याधि उत्पन्न होती है । ६. न्याय के अनुसार वह मानसिक भाव जो मिथ्या ज्ञान से उत्पन्न होता है और जिसकी प्रेरणा से मनुष्य भले या बुरे कार्यों में प्रवृत्त होता है । ७. नव्य न्याय में वह त्रुटि जो तर्क के अवयवों का प्रयोग करने में होती है । यह तीन प्रकार की होती है—अतिव्याप्ति, अव्याप्ति और असम्बन्ध । ८. सीमांसा में वह अष्टफल जो विधि के न करने या उसके विपरीत प्राचरण से होता है । ९. साहित्य में वे बातें जिनसे काव्य के गुण में कमी हो जाती है ।

विशेष—यह पाँच प्रकार का होता है—पददोष, पदांशदोष, वाक्यदोष, अर्थदोष और रसदोष । इनमें से हर एक के अलग अलग कई गौण भेद हैं ।

१०. भागवत के अनुसार षाठ वसुधों में से एक का नाम । ११. प्रदोष । गोधूलिकाल । १२. विकार । खराबी (को०) । १३. अशुद्धि । गलती (को०) । १४. भ्रम । बछड़ा (को०) ।

दोष^२—संज्ञा पुं० [सं०] द्वेष । विरोध । शत्रुता । उ०—सो जन जगत जहाज है जाके राग न दोष । तुलसी वृष्णा त्यागि के गहरे नील संतोष । -तुलसी (शब्द०) ।

दोषक—संज्ञा पुं० [सं०] बछड़ा । गो का बच्चा ।

दोषकृत्—वि० [सं०] दोष करनेवाला । बुराई करनेवाला । अहितकर (को०) ।

दोषग्राही—संज्ञा पुं० [मं० दोषग्राहिन्] दुष्ट । दुर्जन ।

दोषघ्न^१—संज्ञा पुं० [सं०] वह औषध जिससे कुपित कफ, वात और पित्त का दोष शांत हो ।

दोषघ्न^२—वि० दोषों का शमन करनेवाला (को०) ।

दोषज्ञ—संज्ञा पुं० [सं०] पंडित । विद्वान् ।

दोषणी^१—संज्ञा पुं० [सं० दूषण] दोष । उ०—वयण सगाई वेष्ट,
मिल्या सचि दोषण मिटै ।—रा० क०, पृ० १३ ।

दोषण^२—संज्ञा पुं० [सं०] दोष लगाना [को०] ।

दोषता—संज्ञा स्त्री० [सं०] दोष का भाव ।

दोषत्व—संज्ञा पुं० [सं०] दोष का भाव ।

दोषदृष्टि—वि० [सं०] बुराई दूँदनेवाला । छिद्रान्वेषी । दोष देखने-
वाला [को०] ।

दोषन^३—संज्ञा पुं० [सं० दूषण] दोष । दूषण । अपराध । उ०—
महरि तुमहि कछु दोषन नाही । हमको देखि देखि मुसकाहीं ।
—सूर (शब्द०) ।

दोषना^४—क्रि० सं० [सं० दूषण + हि० ना (प्रत्य०)] अपवा स०
दोषण] दोष लगाना । अपराध लगाना । उ०—(क) चोरी
होय सुलि पर मोखी । देय जो सूरि ठेहि नहि दोखी ।
—जायसी (शब्द०) । (ख) कह कह फेरा नित यह दोषे ।
बारहि बार फिरे संतोषे ।—जायसी (शब्द०) ।

दोषपत्र—संज्ञा पुं० [सं०] वह कागज जिसपर किसी अपराधी के
अपराधों का विवरण लिखा हो । फरद करारदाद जुर्म ।

दोषरण—संज्ञा पुं० [सं० दोष + रण] १. वह जो दोषों को मिटा दे ।
वह जो भक्तों के दोष को दूर करे । २. दोषों से युद्ध । दोष
का संघर्ष । उ०—चलता नहीं हाथ, कोई नहीं साथ, उलत,
बिनत भाष, दो शरण, दोषरण ।—गीतगुंज, पृ० ५० ।

दोषल—संज्ञा पुं० [सं०] जिसमें दोष हो । दोषयुक्त । दूषित ।

दोषा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. रात्रि । रात ।

बौ०—दोषाकर ।

२. संघ्या । ३. भुजा । बाँह ।

दोषाकर—संज्ञा पुं० [सं०] १. चंद्रमा । २. दोषों का भाकर । दोष
समूह [को०] ।

दोषाकलेशी—संज्ञा स्त्री० [सं०] बनतुलसी ।

दोषाक्षर—संज्ञा पुं० [सं०] लगाया हुआ अपराध । अभियोग ।

दोषातिलक—संज्ञा पुं० [सं०] प्रदीप । दीपक । दीपा ।

दोषारोपण—संज्ञा पुं० [सं०] किसी पर दोष का आरोप करना ।
कसक लगाना ।

दोषावह—वि० [सं०] दोषयुक्त । दोषपूर्ण । जिसमें दोष हो ।

दोषास्थ—संज्ञा पुं० [सं०] प्रदीप । दीप । दीपा [को०] ।

दोषिक^१—संज्ञा पुं० [सं०] रोग । बीमारी ।

दोषिक^२—वि० दे० 'दूषित' ।

दोषित—वि० [सं० दूषित] दोषवाला । दोषयुक्त । ऐसी [को०] ।

दोषिनी—संज्ञा स्त्री० [हि० दोषी] १. अपराधिनी । २. पाप करने-
वाली स्त्री । ३. वह कन्या जिसने कुंवारेपन ही में पुनर्व्रतसंग
किया हो ।

दोषिला—संज्ञा पुं० [प्रा० दोषिल] दे० 'दोषल' । उ०—साम दोष
गोहूँ के साथे । बिछुरा प्रीतम दोषिल पायें ।—इंद्रा०,
पृ० ८५ ।

दोषी—संज्ञा पुं० [सं० दोषिन्] [स्त्री० दोषिणी] १. अपराधी ।
कसूरवार । २. पापी । ३. मुजरिम । अभियुक्त । ४. जिसमें
दोष हो । जिसमें ऐब या बुराई हो ।

दोषैकदृक्, दोषैकदृष्टि—वि० [सं०] छिद्रान्वेषी । दोष मात्र ही
देखनेवाला [को०] ।

दोस^३—संज्ञा पुं० [सं० दोष] दे० 'दोष' ।

दोस^४—संज्ञा पुं० [फ्रा० दोस्त] दोस्त । मित्र । जैसे, दोसवार,
दोसदारी में 'दोस' ।

दोसत^५—संज्ञा पुं० [फ्रा० दोस्त] दे० 'दोस्त' । उ०—दादू दोसत
जीव का जन रज्जव जग माहि । के जिन सिरजे सो सही
तीजा कोई नाहि ।—रज्जव०, पृ० ३ ।

दोसदार^६—संज्ञा पुं० [फ्रा० दोस्तदार] मित्र । यार । उ०—
किनायत भजव गंज है पायदार । फना जिसको हरगिज नहीं
बोसदार ।—दक्कनो०, पृ० २१२ ।

दोसदारी^७—संज्ञा स्त्री० [फ्रा० दोस्तदारी] मित्रता । दोस्ती ।

दोसरा—वि० [हि०] दे० 'दूसरा' उ०—नायिकाक दोसर शरीर
भइसन ध्यामाजाति सखी ।—वर्ण०, पृ० ५ ।

दोसरता^८—संज्ञा पुं० [हि० दूसरा + ता (प्रत्य०)] द्विरागमन ।
गोता । मकलावा ।

दोसरा^९—वि० [हि० दूसरा] [वि० स्त्री० दोसरि, दोसरी] दे० 'दूसरा' ।
उ०—(क) भलेहि रंग तोहि माछरि राता । मोहि बोसरे
सो भाव न बाता ।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० २६१ । (ख)
जो भोगिहि सुठि बंदर काटा । एके जोग न दोसरि बाटा ।—
जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० २६८ ।

दोसरी^{१०}—संज्ञा स्त्री० [हि० दो] दो बार जोती हुई जमीन ।

दोसरी^{११}—वि० स्त्री० [हि० दूसरा] दे० 'दूसरा' । उ०—सोवारी
रहट घाट बोसीस प्रकार पुरबिन्धास, कथा कहजोका, जनि
बोसरी अमरावति क अवतार आ ।—कीर्ति०, पृ० २८ ।

दोसा^{१२}—संज्ञा स्त्री० [सं० दोषा] दे० 'दोषा' ।

दोसा^{१३}—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की घास जो पानी में हंती है ।
इसका बहुत संत पानी में डूबा रहता है और इसमें एक प्रकार
के दाने अधिकता से होते हैं ।

दोसाध—संज्ञा पुं० [हि० दुसाध] दे० 'दुसाध' ।

दोसाल—संज्ञा पुं० [देश०] बरमा के हाथियों की एक जाति ।

विशेष—इस जाति का हाथी कुमरिया से कुछ छोटा होता है
और साधारणतः एकड़ियाँ आदि देने या सवारी आदि के
काम में आता है ।

दोसाखा^{१४}—वि० [हि० दो + खाल (= वर्ष)] दो वर्ष का । दो
वर्ष का पुराना ।

दोसाखा^{१५}—संज्ञा पुं० [फ्रा० दुसाल] दे० 'दुसाल' । उ०—केसरि
को यह तिलक पीतमर दोसाला ।—सं० दरिया, पृ० १०३ ।

दोसाही^{१६}—वि० [हि० दो + ?] दोफसला । (जमीन) जिसमें साल
में दो फसलें पैदा हों ।

दोसी^{१७}—संज्ञा पुं० [देश०] बही ।

दोसी

दोसी^१—संज्ञा पुं० [सं० दोषी] १० 'दोषी' ।

दोसूती—संज्ञा स्त्री० [हिं० दो + सूत] दोतही या दुसूती नाम की मोटी चादर जो बिछाने के काम में आती है ।

दोस्त—संज्ञा पुं० [फ्रा०] १. मित्र । स्नेही । २. वह जिससे अनुचित संबंध हो । यार (बाजारू) ।

दोस्तदार—संज्ञा पुं० [फ्रा०] ३० 'दोस्त' ।

दोस्तदारी—संज्ञा स्त्री० [फ्रा०] ३० 'दोस्ती' ।

दोस्ताना^१—संज्ञा पुं० [फ्रा० दोस्तानह] १. दोस्ती । मित्रता । २. मित्रता का व्यवहार ।

दोस्ताना^२—वि० दोस्ती का । मित्रता का ।

दोस्ती—संज्ञा स्त्री० [फ्रा०] १. मित्रता । स्नेह । २. अनुचित संबंध । याराना (बाजारू) ।

दोस्ती रोटी—संज्ञा स्त्री० [फ्रा० दोस्ती + हिं० रोटी] एक प्रकार की रोटी जो घाटों की दो लोहियों के बीच में घी लगाकर और एक को दूसरी पर रखकर बेकते और तब तब पर घी लगाकर पकाते हैं । दो परत की रोटी । दुपड़ी ।

विशेष—पकने पर इसमें की दोनो लोहियां छलग हो जाती हैं ।

दोस्थ—संज्ञा पुं० [सं०] १. नोकर । दास । २. सेवा । दासत्व । ३. खेल । क्रीड़ा । ४. खेलनेवाला व्यक्ति [को०] ।

दोह^(१)—संज्ञा पुं० [सं० द्रोह] ३० 'द्रोह' ।

दोह^२—संज्ञा पुं० [सं०] १. बोहन । दुहना । २. दुध । दूध । ३. दूध दुहने का बर्तन । ४. किसी से लाभ उठाना । किसी वस्तु से फायदा प्राप्त करना [को०] ।

यो०—दोहापनय । दोहज ।

दोहगा—संज्ञा पुं० [सं० दुर्भाग्य या दुर्भाग, प्रा० दोहग] विपरीत भाग्य । दुर्भाग्य । उ०—मन मिलिया तन गड़िया दोहग दूरि गयाह । सज्जन पाणी और ज्यू खिलोखिल बयाह ।
—दोला०, दू० ५५३ ।

दोहगा—संज्ञा स्त्री० [सं० दुर्भाग] वह स्त्री जिसका पति मर गया हो और जिसको किसी दूसरे पुरुष ने रख लिया हो । रखनी । सुरेतिन । उपरनी । उ०—दोहगा सुतिय सोहागिन मेरी । गून जाति अन्धुन कुल केरी । —विश्राम (शब्द०) ।

दोहज—संज्ञा पुं० [म०] दूध ।

दोहता—संज्ञा पुं० [सं० दोहित] [स्त्री० दोहती] लड़की का लड़का । नाती । नवामा ।

दोहती^१—संज्ञा स्त्री० [फ्रा० दोस्ती] ३० 'दोस्ती रोटी' ।

दोहती^२—संज्ञा स्त्री० [सं० दोहितृ] लड़की की लड़की । बेटी की बेटी । नतिनी ।

दोहथड़—संज्ञा स्त्री० [हिं० दो + हाथ या देश० हथवन] दोनों हाथों से मारा हुआ थप्पड़ ।

क्रि० प्र०—पीटना । —मारना ।

दोहथा^१—क्रि० वि० [हिं० दो + हाथ] दोनों हाथों से । दोनों हाथों के द्वारा ।

दोहथा^२—वि० दोनों हाथों का । जो दोनों हाथों से हो ।

दोहद—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. गर्भवती स्त्री की इच्छा । उकीना ।

उ०—प्रथम दोहद क्यौं करौं निष्फल सुनि यह बात । —केशव (शब्द०) । २. गर्भवती स्त्री की मतली इत्यादि । ३. गर्भ-वस्था । ४. गर्भ का चिह्न । ५. गर्भ । ६. एक प्राचीन विश्वास । कविसमय । कविप्रसिद्धि ।

विशेष—इसके अनुसार सुंदर स्त्री के स्पर्श से प्रियंगु, पान की पीक धुकने से मौलसिरी, चरणाघात से अशोक, दृष्टिपात से तिलक, घालिगन से कुवंक, मृदुवार्ता से मंदार, हंसी से पटु, फूँक मारने से चंपा, मधुर गान से आम और नाचने से कच-नार इत्यादि वृक्ष फूलते हैं । इस संबंध में संस्कृत साहित्य में निम्नांकित श्लोक प्रचलित है—'स्त्रीणां स्पर्शात् प्रियंगुविकसति बहुलः क्षीघ्रगंदूष सेकात् । पादाघातादशोकस्तिलककुरवकी धोक्षणाविगनाभ्याम् । मंदारो नर्मवाक्यात् पटु मृदुहसनात् चम्पको वक्त्रवातात् । चूतो गीतासमेकविकसति च पुरां नत-नात् कणिकारः ।

७. फलित ज्योतिष के अनुसार यात्रा के समय दिशा, बार या तिथि के भेद से उनके दोष की शांति के लिये खाए या पीए जानेवाले कुछ निश्चित पदार्थ ।

विशेष—इनको छलग छलग दिग्बोहद, बारबोहद और तिथि-बोहद कहते हैं । जैसे,—यदि पूर्व की ओर जाने में कोई दोष हो, तो उसकी शांति भी खाने से होती है । पश्चिम जाने में कोई दोष हो तो वह मछली खाने से, दक्षिण की ओर का दोष तिल की खीर खाने से और उत्तर की ओर का दोष दूध पीने से शांत होता है । इसी प्रकार रविवार को घी, सोमवार को दूध, मंगल को गुड़, बुध को तिल, वृहस्पति को दही, शुक को जी और शनिवार को उड़द खाने से यात्रा संबंधी बारदोष की शांति हो जाती है । प्रतिपदा को मदार का पत्ता, द्वितीया को चावल का धोया हुआ पानी, तृतीया को घी आदि खाने से यात्रा संबंधी तिथिदोष की शांति हो जाती है । इस प्रकार बोहद से किसी दिशा, बार या तिथि की यात्रा से होनेवाले समस्त अनिष्टों या दुष्ट कर्मों का निवारण हो जाता है ।

दोहदलक्षण—संज्ञा पुं० [सं०] १. गर्भ का लक्षण या चिह्न । २. गर्भ-क्षिणु । भ्रूण । ३. अवस्थांतर । जीवन की एक अवस्था से दूसरी में गमन या प्रवेश [को०] ।

दोहदबली—संज्ञा स्त्री० [सं०] गर्भिणी । गर्भवती स्त्री जिसने गर्भ धारण किया हो ।

दोहदान्विता—संज्ञा स्त्री० [सं०] ३० 'दोहदबली' ।

दोहदी—वि० [सं० दोहदिन्] अत्यंत इच्छुक । प्रबल इच्छायुक्त [को०] ।

दोहदोहोय—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का वैदिक गीत या साम ।

दोहन—संज्ञा पुं० [सं०] १. दुहना । गाय भैंस इत्यादि के स्तनों से दूध निकालना । २. बोहनी ।

दोहना^(१)—क्रि० स० [सं० द्रोह, प्रा० दोह + हिं० ना (प्रत्य०)] अथवा सं० दोष + ना (प्रत्य०)] १. दोष लगाना । दुषित ठहराना । २. तुच्छ ठहराना । उ०—बेनी नवबाला की बनाव गूही बलभद्र, कुसुम असन पाट मन मोहियत है । काशी

सटकारी नीकी राजत नितंब नीचे पन्नग की नारिन की देह दोहियत है।—बलमत्र (शब्द०)।

दोहनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. दूध दुहने की हाँडी। मिट्टी का वह बरतन जिसमें दूध दुहते हैं। उ०—दोहनी हाथ की हाथे रही न रह्यो मनमोहनी को मन हाथ में।—शंभु (शब्द०)। २. दूध दुहने का काम।

दोहर—संज्ञा स्त्री० [हि० दो + हरा (=तह)] एक प्रकार की चादर जो कपड़ों की दो परतों को एक में सीकर बनाई जाती है।

विशेष—इसके चारों ओर गोट लगी रहती है। इसमें कभी कभी कपड़े की दोनों तहें एक ही कपड़े की होती हैं और कभी एक तह किसी मोटे कपड़े या छोट घादि की होती है और दूसरी तह मलमल घादि सहोत कपड़े की।

दोहरना^१—क्रि० प्र० [हि० दोहरा] १. दो बार होना। दूसरी प्राप्ति होना। २. दोहरा होना। दो परतों का किया जाना।

संयो० क्रि०—उठना।—जाना।

दोहरना^२—क्रि० सं० दोहरा करना।

संयो० क्रि०—देना।

दोहरफ—संज्ञा पुं० [फा०] धक्कार। झानत।

क्रि० प्र०—भेजना।

दोहरा^१—वि० पुं० [हि० दो + हरा (प्रत्य०)] [वि० स्त्री० दोहरी]

१. दो परत या तह का। २. दुगुना।

दोहरा^२—संज्ञा पुं० १. एक ही पत्त में लपेटे हुए पान के दो बीड़े (तंबोली)। २. कतरी हुई सुपारी। सुपारी के छोटे छोटे टुकड़े। सुपारी, करवा, लोम, तंबाकू, घूने का मिश्रण। ३. दोहा नाम का छंद। उ०—साखी मबदी दोहरा कहि निहनी उपखान। भर्गात निरूपहि भगत कवि निर्द्वि वेद पुरान।—मुलसी प्र०, पृ० १५१। वि० दे० 'दोहा'।

दोहराना—क्रि० सं० [हि० दोहरा] १. किसी बात को पुनः करना या किसी काम को पुनः करना। किसी बात को दूसरी बार कहना या करना। किसी काम या बात की पुनरावृत्ति करना। २. किसी कपड़े या कागज घादि की दो तहें करना। दोहरा करना।

क्रि० प्र०—बालना।—देना।

दोहराहट—संज्ञा पुं० [हि० दोहरा + हट (प्रत्य०)] दोहराने की किया या भाव। दोहरापन। उ०—प्रभाव का अर्थ दोहराहट नहीं और यदि अन्यत्र कहीं हो तो भी मध्य प्रदेश में बिनकुल नहीं।—शुक्ल अभि० प्र० (सा०), पृ० ८६।

दोहरी पट—संज्ञा स्त्री० [हि० दोहरी + पट] कुश्नी का एक पेंच।

दोहरी मखी—संज्ञा स्त्री० [हि० दोहरी + मखी] कुश्ती का एक पेंच।

दोहल—संज्ञा पुं० [सं०] इच्छा। दोहद।

दोहलवती—संज्ञा स्त्री० [सं०] गर्भवती स्त्री।

दोहला—वि० [हि० दो + हला] दो बार की गवाई हुई (नी घादि) (बहु गी घादि) जिसने दो बार बच्चा दिया हो।

दोहली^१—संज्ञा पुं० [सं०] १. अक्ल का वृक्ष। २. पाक का पेड़। संवार।

दोहली^२—संज्ञा स्त्री० वह भूमि जो ब्राह्मण को दी गई हो।

दोहा—संज्ञा पुं० [हि० दो + हा (प्रत्य०)] १. एक हिंदी छंद, जिसमें होते तो चार चरण हैं, पर जो लिखा दो पंक्तियों में जाता है, अर्थात् पहला और दूसरा चरण एक पंक्ति में और तीसरा और चौथा चरण दूसरी पंक्ति में लिखा जाता है। इसके पहले और तीसरे चरण में १३-१३ मात्राएँ और दूसरे तथा चौथे चरण में ११-११ मात्राएँ होती हैं। दूसरे और चौथे चरण का तुकांत मिलना चाहिए। जैसे,—राम नाम मणि दीप धर, जोहू बेहरी द्वार। तुलसी भीतर बाहिरो, जो बाहसि उजियार।

विशेष—इसी को उलट देने से संरठा हो जाता है।

२. संकीर्ण राग का एक भेद।

दोहाई—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'दुहाई'। उ०—घरम की दोहाई देने, पाप पाप करने का कीन काम है।—ठेठो, पृ० २६।

दोहाका—संज्ञा पुं० [सं० दीर्घाग्य] दे० 'दोहाग'।

दोहाग(गुं)—संज्ञा पुं० [सं० दीर्घाग्य] दुर्भाग्य। बदनीसीबी। बद-किस्मती। अभाग्य। उ०—परम सोहाग निराहि न पारी। या दोहाग सेवा जब हारी।—जायसी (शब्द०)।

दोहागणी(गुं)—संज्ञा स्त्री० [हि० दोहाग] दुर्भाग्यवती। अभागिन स्त्री। उ०—नामि बिना दोहागणी भूली आवउ जाउं।—प्राण०, पृ० २१७।

दोहागा—संज्ञा पुं० [हि० दोहाग] [स्त्री० दोहागिन] अभाग। बदकिस्मत।

दोहागिण(गुं)—संज्ञा स्त्री० [प्रा० दुहागिणी, हि० दोहागिन] दे० 'दुहागिन'। उ०—उत्तर भाज म उत्तरउ, सीय पड़ेमी बट्ट। सोहागिण घर भागणइ, दोहागिण रह घट्ट।—दोला०, पृ० २६०।

दोहाना—संज्ञा पुं० [दे०] नोजवान बैल। बछवा।

दोहापनय—संज्ञा पुं० [सं०] दूध।

दोहाब—संज्ञा पुं० [हि० दुहना] कार्तकारों की गोश्यों का वह दूध जो जमींदार के घर जाता है।

दोहित^१—वि० [सं०] दूहा हुआ। जिसे दुह लिया गया हो (को०)।

दोहित^२—संज्ञा पुं० [सं० दोहित] बेटी का बेटा। नाती।

दोहिता—संज्ञा स्त्री० [सं० दुहिता] पुत्री। लड़की। तनया। उ०—सुता दोहिता कंठ लगाइ। लिए वस्त्र भूखन पहिराइ।—अर्घ०, पृ० ५।

दोहिया—संज्ञा पुं० [दे० ?] एक प्रकार का पोधा।

दोही^१—संज्ञा पुं० [हि० दो] एक छंद जो दोहे की भांति चार चरणों का होने पर भी दो ही पंक्तियों में लिखा जाता है। इसके पहले और तीसरे चरण में पंद्रह पंद्रह मात्राएँ और दूसरे तथा चौथे चरण में ग्यारह ग्यारह मात्राएँ होती हैं। इसके अंत में एक लघु होना चाहिए। जैसे—विरद सुमिरि सुधि करव नित हो, हरि तुव चरन निहार। यह भव जल निधि तें मुहि गुरत, कब प्रभु करिहु पार।

दोही^२—संज्ञा पुं० [सं० दोहिन] १. दूध दुहनेवाला। २. ग्वाला।

दोहो^१—संज्ञा स्त्री० [हि० दुहाई] दे० 'दुहाई' । उ०—दोहो को ओर कहे नहि ओर फिरी दग रावरे रूप की दोहो ।—
धनानंद, पृ० ६ ।

दोहुरी—संज्ञा स्त्री० [देश०] वह भूमि जिसमें बानू अधिक हो ।
बलुई जमीन ।

दोहा^२—वे० [सं०] दूहने योग्य । जो दूहा जा सके ।

दोहा^३—संज्ञा पुं० १. दूध । २. गाय भेड़ आदि जानवर जो दूध
जाते हैं ।

दो^४—अव्य० [सं० प्रयत्न] वा । प्रयत्न ।

विशेष—दे० 'धो' ।

दो^५—संज्ञा स्त्री० [सं० दव] दे० 'दो' ।

दोँकना^६—क्रि० प्र० [हि० दमकना] दे० 'दमकना' ।

दोँगड़ा, दोँगरा—संज्ञा पुं० [हि० दो (= घाग या गरमी)] वह
हलही वर्षा जो गरमी के दिनों में तभी हुई भरती पर
होती है । बोछार ।

क्रि० प्र०—पड़ना ।

दोँच—संज्ञा स्त्री० [हि०] ? दे० 'दोच' । २. दाब पड़ने से चातु
में पड़ी हुई लकड़ी या बिटापन ।

दोँचना^७—क्रि० प्र० [हि० दबोचना] १. दबाव डालकर लेना ।
किसी वस्तु को प्रहार लेना । २. लेने के लिये पड़ना । उ०—
तनु मीन दोँच के लाई मो दोनों उपहार । फाटे बसन
बाँध के दिवस प्रति पुनः तन हार ।—सुर (शब्द०) ।

दोँजा—संज्ञा पुं० [देश०] गन्ना । पाड़ ।

दोरी—संज्ञा स्त्री० [हि० दोना या दोरना] १. एक साथ रस्ती में
बंधे हुए दोनों का झुंड जो कठी कमन के डंठलों पर दाना
आड़न के लिये फिराया जाता है ।

क्रि० प्र०—नचना ।—चनाना ।—नाचना ।—हँकना ।

२. वह रस्ती जिसे उन दोनों के गने में डालते हैं जो दाने के
लिये फिराए जाते हैं । ३. झुंड ।

दो^८—संज्ञा स्त्री० [सं० दव] १. प्राण । जंगल की प्राण । उ०—
(क) मन गति के बस परा मन के बस नहीं गाँव । जित
देखो जित दो बगी, जिन भागी जित भाँच ।—कबीर
(शब्द०) । (ख) तो लीं गातु आधु गीके हरिबो । जो लो
हो उपावों रपुनीरहि दिन दस धोर दूगह दुख सहिबो । ...लंक
दाह उर आनि मानिबो मानु रामसेवक को कहिबो । तुलसी
प्रभु को सुर सुख गैरे मिटि गैहैं सबको सोच दो दहिबो ।—
तुलसी (शब्द०) । २. संताप । ताप । ज्वलन । उ०—ससि ते
शोतन मोको लागे माई री तरनि । याके उप बरति अधिक
प्रेम प्रीति दो । याके उप मितति रजनि बनित जरनि । सब
विपरीत भये माघे बिनु, हित जो करत अनहित सत की
करनि । तुलसीदास स्वामिंदर विरह की दुसह दसा सो
मोपे परति नही बरनि ।—तुलसी (शब्द०) ।

दोकूल^९—वे० [सं०] कपड़े का । दुकूल संबंधी ।

दोकूल^{१०}+संज्ञा पुं० १. उत्कृष्ट सिल्क । उत्तम चीनांशुक । २. रथ या
गाड़ी जो रेलमो वस्त्रों से आच्छादित हो [को०] ।

दोगूल—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'दोकूल' [को०] ।

दोड़—संज्ञा स्त्री० [हि० दोड़ना] १. दोड़ने की क्रिया या भाव ।
साधारण से अधिक वेग के साथ गति । द्रुतगमन । धावा ।
तेजी से चलने या जाने की क्रिया ।

यो०—दोड़ मारना=(१) वेग के साथ जाना । (२)
दूर तक पहुँचना । लंबी यात्रा करना । जैसे,—कलकत्ते से
यहाँ आ पहुँचे, बड़ी लंबी दोड़ मारी । दोड़ लगाना=दे० 'दोड़
मारना' । जैसे,—बड़ी लंबी दोड़ लगाई ।

२. धावा । वेगपूर्वक आक्रमण । चढ़ाई । ३. उद्योग में इधर
उधर फिरने की क्रिया । प्रयत्न ।

मुहा०—दोड़ मारना=उद्योग में इधर उधर फिरना । कोलिका
में हैरान होना ।

४. द्रुतगति । वेग ।

मुहा०—मन की दोड़ (दोर)=चित्त की सूझ । कल्पना ।
उ०—भक्ति रूप भगवत की भेष जो मन की दोर ।—कबीर
(शब्द०) ।

५. गति की सीमा । पहुँच । जैसे,—मुल्ला की दोड़ मसजिद तक ।

६. उद्योग की सीमा । प्रयत्नों की पहुँच । अधिक से अधिक
उपाय या यत्न जो हो सके । ७. बुद्धि की गति । धबल
की पहुँच । जैसे,—जहाँ तक जिसकी दोड़ होगी वहीं तक न
अनुमान करेगा । ८. विस्तार । लंबाई । आरत । जैसे, दुपाले
की बेल या हाशिये की दोड़ । ९. सिपाहियों का दल जो
अपराधियों को एकबारगी पकड़ने के लिये जाय । जैसे,
पुलिस की दोड़ ।

क्रि० प्र०—माना ।—जाना ।—पहुँचना ।

१०. जहाज पर की वह चरखी जिसमें लकड़ी डालकर घुमाने से
बहुत ज़ोर लिसकती है जिसमें पतवार बंधा रहता है । ११.
दोड़ने की प्रतियोगिता । जैसे,—इस बार की दोड़ में वह प्रथम
भाया है ।

दोड़घपाड़—संज्ञा स्त्री० [हि० दोड़ + घपाड़] दे० 'दोड़घूप' ।

दोड़घूप—संज्ञा स्त्री० [हि० दोड़ + घूप] किसी कार्य के लिये इधर
उधर फिरने की क्रिया या भाव । किसी काम के लिये बार
बार चारों ओर घाना जाना । परिश्रम । प्रयत्न । उद्योग ।
जैसे,—(क) उसने बहुत दोड़घूप की है । (ख) सभी
रोग का आरंभ है दोड़घूप करोगे तो अच्छा हो जायगा ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

दोड़ना—क्रि० प्र० [सं० घोरण, हि० घोरना] १. साधारण से
अधिक वेग के साथ गमन करना । द्रुतगति से चलना ।
मामूली चलने से ज्यादा तेज चलना । जैसे,—(क) दोड़कर
न चलो गिर पड़ोगे । (ख) वह लड़का उधर दोड़ा जा
रहा है ।

संयो० क्रि०—घाना ।—जाना ।

मुहा०—दोड़ पड़ना = एकबारगी वेग के साथ गमन करना ।
जैसे,—जहाँ वह दिखाई दिया कि भाप उसकी ओर दोड़ पड़े ।
चढ़ दोड़ना = चढ़ाई करना । घावा करना । आक्रमण करना ।
दोड़ दोड़कर घाना = जल्दी जल्दी घाना । बार बार घाना ।
जैसे,—मेरे पास क्या दोड़ दोड़कर आते हो, मैं कुछ नहीं कर सकता ।
दोड़ दोड़कर जाना = जल्दी जल्दी जाना । बार बार जाना ।
जैसे,—उसके घर क्या रखा है जो दोड़ दोड़कर आते हो ?

२. सहसा प्रवृत्त होना । झुक पड़ना । ढलना । जैसे,—तुम बुरा भला नहीं देखते हो, जो बात हुई उसी के पीछे दोड़ पड़ते हो ।
क्रि० प्र०—पड़ना ।

३. किसी प्रयत्न में इधर उधर फिरना । किसी काम के लिये चारों ओर बार बार घाना जाना । उद्योग करना । कोशिश में हिरान होना । उपाय या चेष्टा करना । जैसे,—(क) भोकरी के लिये बहुत दोड़ा, पर न मिली । (ख) उसकी बीमारी में वह बहुत दोड़ा ।

थी०—दोड़ना धूपना ।

४. फैलना । व्याप्त होना । छा जाना । जैसे, स्याही दोड़ना, लाभी दोड़ना, चेहरे पर खून दोड़ना ।

क्रि० प्र०—जाना ।

दोड़ाई—संज्ञा स्त्री० [हि० दोड़ + घाई (प्रत्य०)] १. दोड़ने का भाव या क्रिया । २. परेशानी । दोड़ धूप ।

दोड़ादोड़ी—क्रि० नि० [हि० दोड़ + दोड़] [संज्ञा दोड़ादोड़ी]
अविश्वात । बेतहाशा । बिना कहीं रुके हुए । जैसे,—घभी वहाँ से दोड़ादोड़ चला आ रहा है ।

दोड़ादोड़^२—संज्ञा स्त्री० ३० 'दोड़ादोड़ी' ।

दोड़ादोड़ी—संज्ञा स्त्री० [हि० दोड़ना] १. दोड़धूप । २. बहुत से लोगों की एक साथ इधर उधर दोड़ने की क्रिया । ३. रबारवी । घानुरता । हड़बड़ी । जैसे,—दोड़ादोड़ी में कोई काम ठीक नहीं होता ।

दोड़ाना—संज्ञा स्त्री० [हि० दोड़ना] १. दोड़ने की क्रिया या भाव । द्रुतगमन । २. वेग । भौक । ३. मलसिला । ४. केरा । बारी । पारी ।

दोड़ाना—क्रि० स० [हि० दोड़ना का सकर्मक रूप] १. दोड़ने की क्रिया कराना । साधारण से अधिक वेग में चलाना । द्रुत-गमन कराना । जैसे, घोड़ा दोड़ाना, सिपाही दोड़ाना ।

संयो० क्रि०—देना ।

२. बार बार घाने जाने के लिये कहना या विवक्ष करना । हिरान करना । जैसे,—बार रूप के लिये क्यों बार बार दोड़ाने हो ? ३. किसी वस्तु को यहाँ से वहाँ तक ले जाना । एक जगह से सींचकर दूसरी जगह करना । जैसे,—इस चारपाई को जरा उधर दोड़ा दो ।

संयो० क्रि०—देना ।

५-२०

४. फैलाना । पोतना । जैसे, स्याही दोड़ाना ।

संयो० क्रि०—देना ।

५. केरना । जैसे, दोवार पर कूँची दोड़ाना ।

दोड़ाहा—संज्ञा पु० [हि० दोड़ + हा (प्रत्य०)] दोरा करनेवाला हाकिम । उ०—दोड़ाहा (दोरा करनेवाला हाकिम) किसानों के भूमि संबंधी झगड़ों को निपटाने के लिये प्रपची पल्टन लेकर तराई में दोरा करने के लिये राणा सरकार की ओर से दूसरे तीसरे वर्ष भेजा जाता था ।—नेपाल०, पृ० १२० ।

दोड़ा—क्रि० [सं० द्वि + ध्रं] डेढ़ । उ०—दोड़ पहर हिंदू तुरक, कहर लड़े रिए ढाँण ।—रा० ४०, पृ० २७२ ।

दोत्य—संज्ञा पु० [सं०] दूत का काम ।

दोन^(१)—संज्ञा पु० [सं०] ३० 'दमन' ।

दोना^२—संज्ञा पु० [सं० दुर्मनस्, हि० दुधन] शत्रु । पेरी । उ०—महाँ सुरा पूरा कोन महिनिधि लूँ भँ दुरजन दोन ।—प्राण०, पृ० २७० ।

दोना^३—संज्ञा पु० [सं० दमनक] एक पीधा जिसकी पतियाँ गुल-दाऊबी की तरह कटावदार होती हैं और जिनमें से तेज पर कड़ई सुगंध आती है ।

विशेष—इस पीधे की हालियों के सिरे पर एक पतली सीक में मंजरी खनती है जिसमें महीन महीन फूल होते हैं । फूलों के झड़ जाने पर उस मंजरी के बीचकोशों में छोटे छोटे दाने पड़ते हैं जो पकने पर झड़ जाते हैं । पीधे बीजों से उत्पन्न होते और बरसात में उगते हैं पर पुराने पेड़ भी सालों रह जाते हैं । वैद्यक में दोना शीतल, कड़भा, कसेला, हृदय को हितकारी तथा खुजली, विस्फोटक आदि को दूर करनेवाला माना जाता है ।

दोना^४—संज्ञा पु० [देश०] ३० 'दोना' । उ०—अरी माई मेरो मन हरि लीन्हों बंद को डोटोना । बितवन में बाके कछु टोना । ...बोलत नहीं रहत बहु मोना । दधि लै छीनि खात रह्यो दोना ।—सूर (शब्द०) ।

दोना^५—क्रि० स० [सं० दमन, हि० दोन] दमन करना । उ०—केकई करी धौ चतुराई कोन ? राम लखन सिध बनहि पठाए पति पठए सुरमोन । कहा भनो धौ मयो भरत को लगे तरुन तन दोन ।—तुलसी (शब्द०) ।

दोनागिरि—संज्ञा पु० [सं० द्रोणगिरि] द्रोणगिरि नामक पर्वत जो क्षीरोद समुद्रस्थ लिखा गया है । लक्ष्मण को शक्ति लगने पर हनुमान जी यहीं घोषधि लेने के लिये भेजे गए थे । उ०—दोनागिरि हनुमान मिधाए । संजीवनी को भेद न पायो तब सब शील उचायो ।—सूर (शब्द०) ।

दोनाचल^(६)—संज्ञा पु० [सं० द्रोणाचल] ३० 'दोनागिरि' ।

दौर^७—संज्ञा पु० [प्र० दौर] १. चक्कर । भ्रमण । केरा । २. दिनों का केर । कालचक्र । ३. अभ्युदय काल । बढ़ती का समय ।

दो०—दोरदोरा = (१) प्रधानता । प्रबलता । चलती । उ०—
कामवेले के समय में प्रजासत्तात्मक राज्य स्थापित होने पर
प्युरिटन लोगों का जैसा दोरदोरा ग्रेट ब्रिटेन में था, वैसा ही,
इस समय अमेरिका के न्यू इंग्लैंड नामक मूके में है ।—
स्वाधीनता (शब्द०) । (२) आतंक । उ०—दुर्मन्य से भार-
तीय इतिहास की विवेचना में अभी तक इसी लाल बुझकड़
व्याख्याशीली का जोर रहा है जोर विद्यापियों की पाठ्यपुस्तकों
में तो उसका एकमात्र दोरदोरा है ।—भारत० नि०, पृ० ७ ।

४. प्रताप । प्रभाव । हुकूमत । ५. दे० 'दोरा' । उ०—दोर जीत
पूरब दिसि लीन्हो । दोर दोर पश्चिम की कीन्हो ।—खान
(शब्द०) । ६. बारी । पारी ।

मुहा०—दोर चलना = सराव के प्याले का बारी बारी से सबके
सामने लाया जाना ।

७. बार । दफा । जैसे,—दूसरे दोर में यह इतना काम भी पूरा
हो जायगा ।

दोर०—संज्ञा स्त्री० १. दे० 'दोड़' । २. धावा । आक्रमण । उ०—
एक दोर करो रोर मेरो भर कोर कवि एक बार सिधुधर
सबको बहायही ।—हनुमान (शब्द०) । ३. वेग । द्रुतगति ।
उ०—जैती लहर समुद्र की तेती मन की दोर ।—कवीर
(शब्द०) । ४. प्रयत्नों की पहुँच या सीमा । उ०—सीतापति
रघुनाथ जी तुम लगि मेरी दोर ।—(शब्द०) ।

दोरना०—क्रि० प्र० [हि० दोड़ना] १. दे० 'दोड़ना' । २.
फैलना । छा जाना । उ०—दूरि ली दोरत दसन की दुति
ज्यों अक्षरा उपरें अति मोठे ।—तोष (शब्द०) ।

दोरानी०—संज्ञा स्त्री० [हि० देवर] दे० 'देवरानी' । उ०—आबो,
आबो, दोरानी मेरी आबो ।—जोदार अमि० प्र०, पृ० ११३ ।

दोरा०—संज्ञा पुं० [प्र० दोर] १. भारी ओर घूमने की क्रिया ।
चक्कर । भ्रमण ।

क्रि० प्र०—करना ।

२. केरा । भ्रमण । गश्त । इधर उधर जाने या घूमने की क्रिया ।
३. अफसर का अपने इलाके में जाँच परताल या देखभाल के
लिये घूमना । निरीक्षण के लिये भ्रमण ।

क्रि० प्र०—करना ।

मुहा०—दोरे पर रहना या होना = जाँच परताल या देखभाल
के लिये सदर से बाहर रहना या होना । (असाभी या
मुकदमा) बीग मुदद करना = (असाभी या मुकदमे को)
बिचार या फैसले के लिये सेशन जज के पास भेजना । (फौज-
दारी के भारी मुकदमों को मजिस्ट्रेट सेशन जज के पास भेज
देते हैं ।) दोरा मुदद होना = सेशन जज के पास बिचार के
लिये भेजा जाना । उ०—हाकिम ने उन्हें बीग मुदद कर
दिया ।—सेवा०, पृ० १४ ।

४. ऐसा आना जाना जो समय समय पर होता रहता है ।
सामयिक आगमन । केरा । जैसे,—डाकुओं के दोरे अब इधर
फिर होने लगे हैं । ५. बार बार होनेवाली बात का किसी
बार होना । ऐसी बात का प्रकट होना जो समय समय पर

होती रहती है । १. किसी ऐसे रोग का लक्षण प्रकट होना
जो समय समय पर होता हो । आवर्तन । जैसे, मिरगी का
दोरा । पागलपन का दोरा ।

दोरा०—संज्ञा पुं० [सं० द्रोण] [स्त्री० अस्था० दोरी] बाँस की फट्टियों,
कास, मूँच, बेंत आदि का बना हुआ टोकरा ।

दोरात्म्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. दुरात्मा का भाव । दुर्जनता । २.
दुरात्मा का काम । दुष्टता । उ०—कुछ भी मुझको ज्ञान
न था यह सीष्ठन का दोरात्म्य विशेष । मैं न जानता था
जय में है, उदासीनता ही निःशेष ।—कुंकुम, पृ० १३ ।

दोरादोरी—क्रि० वि० [हि० दोड़ना] १. लगातार । अविश्रांत ।
२. घुन से । तेजी से ।

दोरादोरी०—संज्ञा स्त्री० [हि० दोड़ना] दे० 'दोड़ादोड़ी' । उ०—
भानंद प्रकासी सब पुरवासी करत ते दोरादोरी । भारती
उतारें सरबस वारें अपनी अपनी पीरी ।—केशव (शब्द०) ।

दोरान—संज्ञा पुं० [क्रा०] १. दोरा । चक्र । २. कालचक्र । दिनों
का केर । ३. फेरा । बारी । पारी । ४. सिलसिला । क्रोंक ।

दोराना०—क्रि० प्र० [हि० दोड़ना] दे० 'दोड़ना' । उ०—
(क) भयो रजायसु जन दोराये ।—जायसी (शब्द०) ।
(ख) दोरावत चहुँ ओर हय देखत बात सजात ।—
गुमान (शब्द०) ।

दोरित—संज्ञा पुं० [सं०] क्षति । हानि ।

दोरी०—संज्ञा स्त्री० [हि० दोरा] बाँस या मूँच की छोटी टोकरी ।
बगेरी । डलिया ।

दोर्गन्ध्य—संज्ञा पुं० [सं० दोर्गन्ध्य] दुर्गन्धि । बबू [स्त्री०] ।

दोर्ग—वि० [सं०] १. दुर्ग संबंधी । दुर्ग का । २. दुर्गा संबंधी ।
दुर्गा का ।

दोर्गन्थ—संज्ञा पुं० [सं०] १. दुर्गन्ति । बुरी हालत । २. गरीबी । ३.
व्यथा । पीड़ा [स्त्री०] ।

दोर्ग्य—संज्ञा पुं० [सं०] कठिनाई [स्त्री०] ।

दोर्ग्रह—संज्ञा पुं० [सं०] अश्वमेध यज्ञ [स्त्री०] ।

दोर्जन्य—संज्ञा पुं० [सं०] दुर्जनता । दुष्टता ।

दोर्जल्य—संज्ञा पुं० [सं०] दुर्जलता । कमजोरी ।

दोर्भाग्य—संज्ञा पुं० [सं०] दुर्भाग्य ।

दोर्भात्र—संज्ञा पुं० [सं०] भाई भाई का प्रापसी झगड़ा । भाइयों का
कलह [स्त्री०] ।

दोर्मनस्य—संज्ञा पुं० [सं०] 'दुर्मनस' होने का भाव । दुर्जनता । चित्त
की लोटाई ।

दोर्घ—संज्ञा पुं० [सं०] दूरी । उ०—ज्योतिष वसिष्ठादि ऋषियों की
कृत है । उसमें वेद, अलव्याय तथा रेखा बीजगणित तथा
सूरीदि ग्रहों का दोर्घ, सामीप्य ओर आवस का संयोग
वियोग आदिक व्यवहार लिखे हैं ।—अष्टाराम (शब्द०) ।

दोर्घोधनि—संज्ञा पुं० [सं०] दुर्घोषन के गोत्र में उत्पन्न व्यक्ति ।

दोर्वृत्य—संज्ञा पुं० [सं०] दुराचार । दुर्घृत्त का भाव [स्त्री०] ।

दीर्घार्ध—संज्ञा पुं० [सं०] १. दुर्हृद होने का भाव । दुष्ट स्वभाव ।
२. दुर्भाव । वैर ।

दीर्घद—संज्ञा पुं० [सं०] १. हृदय की लोटाई । दुष्टता । २. दोहद ।

दीर्घदय—संज्ञा पुं० [सं०] १. क्षत्रुता । वैर । २. मन की
मलिनता [को०]

दीर्घदिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] गर्मिणी स्त्री [को०] ।

दीर्घत—संज्ञा पुं० [प्र०] धन । संपत्ति ।

क्रि० प्र०—उठाना ।—संचना ।—समाना ।

दीर्घतखाना—संज्ञा पुं० [फ्रा० दीर्घतखाना] विवासस्थान । घर ।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग दूसरे के लिये आदरार्थक होता
है । अपने लिये गरीबखाना लाया जाता है । जैसे,—आपका
दीर्घतखाना कहाँ है ? मेरा गरीबखाना देहली है ।

दीर्घतमंद्—वि० [फ्रा०] धनी । संपन्न ।

दीर्घतमंद्दी—संज्ञा स्त्री० [फ्रा०] संपन्नता । मालवारी । धनवधता ।

दीर्घति—संज्ञा स्त्री० [फ्रा० दीर्घत] दे० 'दीर्घत' । उ०—साहिब के
उमराव जितेक सिवा सरजा सब लूटि लिए हैं । भूपन ते बिनु
दीर्घति हूँ के फकीर हूँ देसबिदेस गए हैं । लोग कहैं दमि
दखिन जेय सिधोबिया रावरे हाल ठए हैं ? देत रिसाय के
उत्तर यों हमही दुनिया ते उदास भए हैं ।—भूषण प्र०,
पृ० ७० ।

दीर्घी—अभ्य० [दे०] चारों ओर । उ०—दीर्घी चौकी साहरी,
विष दिल सकल सभाग । सोई फिर सामुद्र में, ज्वालवती
बढ़ाय ।—रा० क०, पृ० ३१ ।

दीर्घेय—संज्ञा पुं० [सं०] कच्छप । कछुवा ।

दीर्घिम—संज्ञा पुं० [सं०] इन्द्र ।

दीर्घारिक—संज्ञा पुं० [सं०] १. द्वारपाल । २. एक प्रकार का
वास्तु देव ।

दीर्घारिकी—संज्ञा स्त्री० [सं०] प्रतिहारी । द्वारपालिका [को०] ।

दीर्घालिक—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक देश का नाम । उस देश का
निवासी ।—(महाभारत) ।

दीर्घार्थ्य—संज्ञा पुं० [सं०] दुर्धर्मा होने का भाव । दे० 'दुर्धर्मा' ।

दीर्घार्थ्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. दुष्टता । २. बुरा आचरण । बुरा
कर्म [को०] ।

दीर्घबुद्धि—संज्ञा स्त्री० [सं० दीर्घबुद्धि] दे० 'दीर्घबुद्धि' । उ०—सो
काहे ते ? जो याते वेष्णव पर दीर्घबुद्धि कीनी, (ओर)
तासों द्वेष किया ।—दो सो बावन०, भा० १, पृ० ३४२ ।

दीर्घकुल—संज्ञा पुं० [सं०] निम्न वंश या हीन वंश में उत्पन्न [को०] ।

दीर्घय—संज्ञा पुं० [सं०] दुष्टता । नीचता [को०] ।

दीर्घ्यंत—संज्ञा पुं० [सं० दीर्घ्यंत] १. दुष्मंत (दुष्मंत) का पुत्र । २.
दुष्मंत के कुल में उत्पन्न व्यक्ति ।

दीर्घ्यंति—संज्ञा पुं० [सं० दीर्घ्यंति] दे० 'दीर्घ्यंत' ।

दीर्घ्यंति—संज्ञा पुं० [सं० दीर्घ्यंति] १. दुष्मंत का पुत्र भरत, जिसका
बाबल का नाम सर्वदमन था । २. दुष्मंत के वंश में
उत्पन्न व्यक्ति ।

दीर्घन—संज्ञा पुं० [सं० दीर्घन] दे० 'दीर्घन' । उ०—कोई गमनी
तजि सौहन, दीर्घन, भोजन सेवा । अंजन भंजन, चंदन द्विज
पतिदेव निवेदा ।—नंद० प्र०, पृ० ४० ।

दीर्घित्र—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० दीर्घित्रो] १. लड़की का लड़का ।
नाती ।

विशेष—घमंछाल में पीत्र और दीर्घित्र में कोई विशेष अंतर
नहीं माना गया है । पीत्र के समान दीर्घित्र पिंडदान आदि
द्वारा उद्धार करता है । जबतक दीर्घित्र न हो जाय, पिता
कन्या के घर भोजन आदि नहीं कर सकता । यदि करे तो
नरकगामी होता है ।

२. लड़ग । तलवार । ३. तिल । ४. गाय का धी ।

दीर्घित्रक—वि० [सं०] दीर्घित्र संबंधी ।

दीर्घित्रायण—संज्ञा पुं० [सं०] दीर्घित्र का पुत्र [को०] ।

दीर्घित्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] कन्या की कन्या । नतिनी [को०] ।

दीर्घी—संज्ञा स्त्री० [हि० दुर्हाई] दे० 'दुर्हाई' । उ०—दस दिसा साह
दीर्घी फिरे । बन बीरा रस भुगिहै ।—पृ० रा०, २४।३२४ ।

दीर्घद—संज्ञा पुं० [सं०] वह इच्छा जो स्त्रियों को गर्मिणी होने की
दशा में होती है । दीर्घद ।

दीर्घदिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] गर्भवती स्त्री ।

द्यविद्ययो—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक दिन ।

द्याकार—संज्ञा पुं० [सं०] शूद्र । अतुर्थ वर्ण का व्यक्ति । उ०—ये सब
राजकुमार इस समय द्याकारों (शूद्रों) और सुनारों के
घरों में छिपे हैं ।—प्रा० भा० प०, पृ० १६२ ।

द्याना—संज्ञा पुं० [हि० दिलाना] १. देना का प्रेरणार्थक कृप ।
विलंबाना । दिलाना । उ०—फिरि सुधि दै सुधि चाह्यों इहि
निरबई निरास । नई नई बहुरथी दई बई उसास उसास ।—
बिहारी (शब्द०) । २. देना । प्रदान करना । उ०—अब
तजइ नहि कोइली, सरवर साजुराह । राज द्विबद मा पातरउ,
या भणु यउ अबरौह ।—दोला०, दृ० ८ ।

द्यावना—संज्ञा पुं० [हि० द्याना] दे० 'दिलाना' ।

द्यु—संज्ञा पुं० [सं०] १. दिन । २. आकाश । ३. स्वर्ग । ४. अग्नि ।
५. सूर्यलोक ।

द्युक्—संज्ञा पुं० [सं०] उलूक । उलू [को०] ।

द्युकारि—संज्ञा पुं० [सं०] काक । कोप्रा । वायस [को०] ।

द्युग—संज्ञा पुं० [सं०] १. आकाश में गमन करनेवाला प्राणी ।
२. पक्षी । खग ।

द्युगण—संज्ञा पुं० [सं०] ग्रहों की मध्यगति के साधक ग्रह दिन ।

द्युचर—संज्ञा पुं० [सं०] १. ग्रह । २. पक्षी ।

द्युउपा—संज्ञा स्त्री० [सं०] अहोरात्र वृत्त की व्यासरूप उपा ।

द्युत्—संज्ञा पुं० [सं०] किरण ।

द्युत—वि० [सं०] प्रकाशवान ।

द्युति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. दीप्ति । कांति । चमक । २. शोभा ।
खडि । ३. आचरण । ४. रश्मि । किरण ।

पुति^२—संज्ञा पुं० एक ऋषि का नाम जो चतुर्थ मनु के समय में थे ।
(हरिवंश) ।

पुतिकर^१—वि० [सं०] प्रकाश उत्पन्न करनेवाला । चमकनेवाला ।

पुतिकर—संज्ञा पुं० ध्रुव ।

पुतित—वि० [सं०] दे० 'द्युतित' [को०] ।

पुतिधर^२—वि० [सं०] प्रकाश या कीर्ति को धारण करनेवाला ।

पुतिधर^१—संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु ।

पुतिमंत—वि० [सं० द्युतिमत्] दे० 'द्युतिमान्' ।

पुतिमा—संज्ञा स्त्री० [सं० द्युति + मा (प्रत्यय)] प्रभा । प्रकाश ।
तेज । उ०—अग जग मग बासी लखि कहई । द्युतिमा भवन
कवन में अहई ।—विश्राम (शब्द०) ।

पुतिमान्^१—वि० [सं० द्युतिमत्] [वि० स्त्री० द्युतिमती] प्रकाश-
वाला । जिसमें चमक या आभा हो ।

पुतिमान्^२—संज्ञा पुं० १. स्वयंभुव मनु के एक पुत्र का नाम । २.
भारत देश के एक राजा का नाम (महाभारत) । ३.
प्रियव्रत राजा के पुत्र जिन्हें त्रिव द्वीप का राज्य मिला था
(विष्णुपुराण) ।

पुधुनि—संज्ञा स्त्री० [सं०] मंदाकिनी । आकाशगंगा [को०] ।

पुन—संज्ञा पुं० [सं०] नग्न से सातवाँ स्थान ।

पुनदी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'पुधुनि' [को०] ।

पुनिवासी—संज्ञा पुं० [सं० पुनिवासिन्] देवता [को०] ।

पुनिश—संज्ञा स्त्री० [सं०] अहर्निश । दिन रात ।

पुपति—संज्ञा पुं० [सं०] १. सूर्य । २. इंद्र ।

पुपथ—संज्ञा पुं० [सं०] आकाशमार्ग ।

पुमणि—संज्ञा पुं० [सं०] १. सूर्य । २. मदार । ३. परिशोधित
तांबा । मोषा हुआ तांबा ।

पुमत्सेन—संज्ञा पुं० [सं०] भारत देश के एक राजा जो सत्यवान
के पिता थे । ये दुर्भयवश मथे हो गए । जब सब लोगों ने
षड्यंत्र करके इन्हें मर्दा पर मे उतार दिया तब ये अपनी पत्नी
और मिथु को लेकर वन में अले गए । वि० दे० 'सत्यवान्',
'गावित्री' ।

पुमद्गान—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का मासमान ।

पुमयी—संज्ञा स्त्री० [सं०] विश्वकर्मा की कन्या । सूर्य की पत्नी ।

पुमान्—वि० [सं० पुमन्] [वि० स्त्री० पुमती] प्रकाशवाला ।
कीर्तिशाल । चमकीला ।

पुम्न—संज्ञा पुं० [सं०] १. धन । २. सूर्य । ३. धन । ४. बल ।
५. कीर्ति [को०] ।

पुयोषित्—संज्ञा स्त्री० [सं०] अण्डसर्प । स्वर्णशर्पा [को०] ।

पुल्लोक—संज्ञा पुं० [सं०] स्वर्गलोका ।

विशेष—पैदिक ग्रंथों में पुल्लोकी तीन कक्षाएँ कही गई हैं,
पहली 'पुल्लवती', दूसरी 'पुल्लमती' और तीसरी 'पुल्लो' है ।
इन तीन कक्षाओं को ही क्रमशः नाक, स्वर्ग और पितृलोक
कहते हैं । उदन्वती कक्षा में अंशमा है, पुल्लमती कक्षा में सूर्य

हैं और तीसरी प्रची कक्षा में अनेक लोक लोकांतर हैं ।
इन लोकों में जाना ही अश्वमेध आदि बड़े बड़े यज्ञों का फल
कहा गया है ।

पुवन्—संज्ञा पुं० [सं०] १. सूर्य । २. स्वर्ग ।

पुषद्—संज्ञा पुं० [सं०] १. देवता । २. नक्षत्र । ३. ग्रह ।

पुसध—संज्ञा पुं० [सं० पुसधन्] स्वर्ग ।

पुसरित्—संज्ञा स्त्री० [सं०] स्वर्ग की नदी मंदाकिनी ।

पुसिधु—संज्ञा स्त्री० [सं० पुसिधु] स्वर्ग की नदी मंदाकिनी ।

पुसधव—संज्ञा पुं० [सं० पुसधव] उच्चैःश्रवा नामक घोड़ा । इंद्र
का अश्व [को०] ।

पु—वि० [सं०] जुमा खेलनेवाला । जुमारी ।

पुस—संज्ञा पुं० [सं०] जुमा । वह खेल जिसमें दाँव बधा जाय और
हारनेवाला जीतनेवाले को कुछ दे ।

विशेष—मनु ने लिखा है कि राजा को चाहिए कि जुमा और
पशु पक्षियों का दंगल अपने राज्य में न होने दे । जो जुमा
खेले या खेलावे उसे राजा तब तक का दंड दे सकता है ।
याज्ञवल्क्य ने कूटयूत का इसी प्रकार निषेध किया है ।

पुतकर—संज्ञा पुं० [सं०] जुमा खेलनेवाला जुमारी ।

पुतकार—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'पुतकर' ।

पुतकारक, पुतकृत्—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'पुतकर' [को०] ।

पुतकीड़ा—संज्ञा स्त्री० [सं०] जुए का खेल । जुमा खेलना [को०] ।

पुतदास—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० पुतदासी] वह दास जो जुए की
जीत में मिला हो ।

पुतपूणिमा—संज्ञा पुं० [सं०] कोजाग्रती । आश्विन की पूर्णिमा ।
इस दिन प्राचीन काल में जुमा खेला जाता था और लोग रात
को जागते थे ।

पुतप्रतिपदा—संज्ञा स्त्री० [सं० पुतप्रतिपत्] कार्तिक शुक्ल प्रति-
पदा । इस दिन लोग जुमा खेलते हैं ।

पुतफलक—संज्ञा पुं० [सं०] वह चौकी, तख्ता आदि जिसके ऊपर
पासा बिछाया या खेला जाय । वह चौकी जिसपर जुए की
कोड़ी फेंकी जाय ।

पुतबीज—संज्ञा पुं० [सं०] कोड़ी ।

पुतभूमि—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह स्थान जहाँ जुमा खेला जाय ।
जुमाना ।

पुतमंडल—संज्ञा पुं० [सं०] वह मंडली या स्थान जिसमें जुमा
खेला जाय ।

पुतवृत्ति—संज्ञा पुं० [सं०] जिसकी जीविका घूत हो । जुमा खेलनेवाला ।
२. जुमा खेलनेवाला [को०] ।

पुतासमाज—संज्ञा पुं० [सं०] वह मंडली या स्थान जिसमें जुमा
खेला जाय ।

पुताध्यक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] वह राजकीय अधिकारी जो जुए का
निरीक्षण करता था और जुमारियों से राजकीय भाग ग्रहण
करता था ।

विशेष—कौटिल्य ने लिखा है कि स्थान स्थान पर बने हुए जुए

के सरकारी अड्डे इसी के निरीक्षण में रहते थे। जो कोई किसी दूसरे स्थान पर लूट्टा खेलता था उसे १२ पण जुर्माना देना होता था।

द्युताभियोग—संज्ञा पुं० [सं०] जुष्ठा संबंधी मुकदमा।—(को०)।

द्युतावास—संज्ञा पुं० [सं०] जुष्ठास्थान।—(को०)।

द्युन—संज्ञा पुं० [सं०] लग्न से सातवीं राशि।

द्यौ—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. स्वर्ग। २. आकाश। ३. शतपथ ब्राह्मण और देवीभागवत के अनुसार आठ वसुधों में से एक।

विशेष—महाभारत, अग्निपुराण और भागवत में आठ वसुधों के के जो नाम दिए गए हैं उनमें यह नाम नहीं है। देवीभागवत में इस वसु के संबंध में यह कथा लिखी है। एक बार सब वसु अपनी स्त्रियों को लेकर क्रीड़ा कर रहे थे। वे घूमते, फिरते वसिष्ठ के आश्रम पर जा निकले। सो की स्त्री ने वसिष्ठ की गाय नंदिनी को देखा और अपने स्वामी से उसे लेने के लिये कहा। सो गाय को हार ले गया। इसपर वसिष्ठ ने क्रुद्ध होकर शाप दिया। इस शाप के कारण सो का पृथ्वीतल पर जीवम के रूप में जन्म हुआ।

द्योकार—संज्ञा पुं० [सं०] वह कारीगर जो प्रासादादि बनाने का काम करता हो। यवई। राजगीर।

द्योत—संज्ञा पुं० [सं०] १. प्रकाश। २. आतप। धूप।

द्योतक—वि० [सं०] १. प्रकाशक। प्रकाश करनेवाला। २. दर्शक। ३. बतलानेवाला।

द्योतन^१—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० द्योतित] १. दर्शन। २. प्रकाशन। प्रकाशित करने या जलाने का काम। ३. शिखरान। बिलाने का काम। ४. दीपक। ५. प्रकाश। ६. वह जो प्रकाश करे। प्रकाशक (को०)।

द्योतन^२—वि० १. प्रकाशमान। चमकीला। २. बतलाने या दिखानेवाला। सूचक (को०)।

द्योति—संज्ञा स्त्री० [सं० द्योतिस्] १. ज्योति। आभा। २. तारा (को०)।

द्योतित—वि० [सं०] प्रकाशित।

द्योतिरिङ्गण—संज्ञा पुं० [सं० द्योतिरिङ्गण] लद्योत। जुगनु।

द्योभूमि—संज्ञा पुं० [सं०] पत्नी।

द्योषद्—संज्ञा पुं० [सं०] देवता।

द्योस^(१)—पुं० [सं० दिवस्] दे० 'द्यौस'।

द्योहरा^(२)—संज्ञा पुं० [सं० देवगृह] दे० 'देवघर'।

द्यौहड़ा—संज्ञा पुं० [सं० देवगृह या देवस्थान] देवस्थान। वह स्थान जहाँ देवता स्थापित हों। उ०—आगम उपरि दौहड़ा, मुल नीदड़ी न सोह। पुंनै पाये दौहड़े, ओधी ठीर न सोह।—कबीर सं०, पृ० २७।

द्यौ—संज्ञा पुं० [सं०] १. दिवस। दिन। २. आकाश। व्योम। उ०—द्यौ अर्थात् आकाश एक देवता है।—३. अग्नि। ४. स्वर्ग। हिंदु० सम्यता, पृ० ४१।

द्यौर्वीर्य—संज्ञा स्त्री० [हिं० देवरात्री] देवर की स्त्री। देवरात्री।

उ०—तुम बीजों चोरीनी हमारी मेरे हाथ परमिया भारी।—पोद्दार अभि० सं०, पृ० ११४।

द्यौस^(३)—संज्ञा पुं० [सं० दिवस्] दिन। उ०—राति गँवाई सोह के, द्यौस गँवाया लाय। हीरा जनम अमोल है कोड़ी बदले जाय।—कबीर (चन्द०)।

द्यौ—द्यौस निसि=दिवस निसि। दिन रात। उ०—दुःख देखि के देखिही तब मुख आनंदकंद। तपन ताप तपि द्यौस निसि, जैसे क्षीतल चंद—केशव (चन्द०)।

द्यौसक^(४)—संज्ञा पुं० [सं० दिवस, हिं० द्यौस + क (प्रत्य०)] दिन। दिवस। यो एक दिन। उ०—(ग) छोरे गति छोरे बचन भयो बचन रंग छोरे। द्यौसक ते पिय चित चढ़ी, कहे चढ़ीहैं रथोर।—बिहारी (चन्द०)।

द्रंक्षण—संज्ञा पुं० [सं० द्रंक्षण] तोलने का एक मान जो दो कर्ष अर्थात् एक तोले के बराबर होता था। उ०—कोल को धुद्रम वा बटक या द्रंक्षण नामों से भी बोलते हैं।—शङ्कर सं० पृ० ७।

पर्या०—कोल। बटक। कर्षादं।

द्रंग^(५)—संज्ञा पुं० [सं० द्रङ्ग] १. वह नगर जो पत्तन से बड़ा और कंबर से छोटा हो। २. दुर्ग। गढ़। किला। उ०—साहिब कच्छ न जाइयइ जहाँ परेरउ द्रंग।—दोला०, दू० २२६।

द्रकट—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'द्रगड'।

द्रग^(६)—संज्ञा पुं० [सं० द्रग] नेत्र। आँख। चक्षु। उ०—मुहियत द्रगि के अक्षरिज मारे। चलहि आन तन आनहि मारे।—नंद० सं०, पृ० १२२।

द्रगड, द्रगण—संज्ञा पुं० [सं०] एक बाजा। दगड़ा।

द्रदिमा—संज्ञा पुं० [सं० द्रदिमन्] दृढ़ता।

द्रदिष्ठ—वि० [सं०] अधिक दृढ़। बहुत दृढ़।

द्रप्पन^(७)—संज्ञा पुं० [सं० द्रपण] दर्पण। आईना। उ०—द्रप्पन सम आकास सवत जल संभृत हिमकर। उज्जल जल मलिता सु सिद्धि सुंदर सरोज सर।—पु० रा०, ६१।४२।

द्रस^(८)—संज्ञा पुं० [सं०] १. वद पदार्थ जो गाढ़ा न हो। २. मट्टा। ३. रस। ४. शुक। ५. दही। दधि (को०)।

द्रप्स^(९)—वि० १. द्रुतगति युक्त। तेज चलनेवाला। २. जूने या रिसने वाला। प्रसवणशील।

द्रप्स्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह पदार्थ जो गाढ़ा न हो। २. मट्टा। ३. शुक। ४. रस।

द्रमिल—संज्ञा पुं० [सं०] एक देश का नाम। दे० 'तामिल'।

द्रम्म—संज्ञा पुं० [सं० मि० अ० प्रा० द्रिम] १६ पण के मूल्य का चाँदी का एक प्राचीन सिक्का (लीलावती)।

विशेष—मुसलमानों के आक्रमण के पूर्व इसका व्यवहार विशेष रूप से था। लीलावती में प्रश्न आदि निकालने में इसी का प्रयोग किया गया है। उसमें लिखा है कि २० कोड़ी बराबर एक काकिली के, ४ काकिली बराबर १ पण के, १६ पण बराबर १ द्रम्म के तथा १६ द्रम्म बराबर १ निष्क के होता है।

द्रवन्ती—संज्ञा स्त्री० [सं० द्रवन्ती] १. नदी। २. मूषकपर्णी। मूसाकानी। चोटा।

द्रव्य^१—संज्ञा पुं० [सं०] १. द्रवण । २. बहाव । ३. पलायन । दीड़ । ४. वेग । ५. भासव । ६. रस । ७. परिहास । क्रीड़ा । ८. द्रवत्व ।

द्रव्य^२—वि० १. तरल । पानी की तरह पतला । २. आर्द्र । गीला ।
क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

३. पिचला हुआ । घाँच साकर पानी की तरह फैला हुआ ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

द्रवक—वि० [सं०] १. भागनेवाला । भगेहू । २. बहनेवाला । प्रवाह-युक्त । ३. रसनेवाला । चूनेवाला । क्षरणशील ।

द्रवज—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह वस्तु जो रस से बनाई जाय । २. गुड़ ।

द्रवण—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० द्रवित] १. गमन । गति । दीड़ । २. क्षरण । बहाव । ३. पिचलने या पसीजने की क्रिया या भाव । ४. हृदय पर करुणापूर्ण प्रभाव पड़ने का भाव । चिरा के कोमल होने की वृत्ति । ५. पलायन । भागना (को०) ।

द्रवता—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'द्रवत्व' ।

द्रवत्पत्री—संज्ञा [सं०] एक पोषा जिसे कहीं कहीं बंगोनी कहते हैं । बंगाल में इसे शिमुड़ी भी कहते हैं । यह मोषव के काम में आता है ।

द्रवत्व—संज्ञा पुं० [सं०] १. बहने का भाव । पानी की तरह पतला होने का भाव ।

विशेष—वैशेषिक के अनुसार यह एक गुण है जो द्रव्यों में रहता है । यद्यपि वैशेषिक दर्शन में गुणों की परिगणना में द्रवत्व गुण नहीं आया है तथापि प्रवृत्तिपाद भाष्य में इसे गुण लिखा है । इस गुण के होने से वस्तुओं का बहना होता है । प्राचीन काल के विद्वानों ने द्रवत्व को भूत और सामान्य गुण माना है और द्रवत्व के दो भेद किए हैं—सांख्यिक अर्थात् स्वाभाविक और नैमित्तिक अर्थात् जो कारणों से उत्पन्न हो । ऐसे लोगों का मत है, कि स्वाभाविक या सांख्यिक द्रवत्व केवल जल में है और पृथ्वी में नैमित्तिक द्रवत्व है जो संसर्ग से आ जाता है । आधुनिक विद्वान् द्रवत्व को द्रव्य का एक रूप या उसकी अवस्था मान मानते हैं । उस पदार्थ का, जिसमें यह गुण होता है, कोई निज का आकार नहीं होता, किंतु जिस वस्तु के आधार में वह रहता है उसी के आकार का वह हो जाता है । वही पानी जब बोतल में भर दिया जाता है तब बोतल के आकार का और जब कटोरे, लोटे, गिलास आदि में रहता है तब उन उभ पत्रों के आकार का हो जाता है । द्रवत्व और विभुत्व में भेद केवल इतना ही है कि द्रव पदार्थ परिमित अवकाश को घेरता है और विभु पदार्थ पूरे अवकाश में व्याप्त रहता है ।

२. बहना । डलना ।

द्रवना^७—क्रि० प्र० [सं० द्रवण] १. प्रवाहित होना । बहना । २. पिचलना । उ०—निज परितोष द्रव्य नवनीता । परदुख द्रवहि सुसंत पुनीता ।—तुलसी (शब्द०) । ३. पसीजना । दयाार्द्र होना । दया करना । उ०—(क) मूक होइ बाबाज पंगु चढ़इ गिरिवर बहन । आमु कृपा, सो दयाल द्रव सकल कबिमल बहन ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) कहियत परम

उदार कृपानिधि अंतर्दामी त्रिभुवन तात । द्रवत हैं आपु देत दासन को रीभत हैं तुलसी के पात ।—सूर (शब्द०) ।

द्रवरसा—संज्ञा स्त्री० [सं०] सास । साह ।

द्रवशील—वि० [सं०] द्रवित होनेवाला । द्रवणशील ।

द्रवाधार—संज्ञा पुं० [सं०] १. अंजलि । चुल्लू । २. लघु पात्र । छोटा बर्तन (को०) ।

द्रविड—संज्ञा पुं० [सं० द्रविड, ता० तिरमिक] १. दक्षिण भारत का एक देश जो उड़ीसा के दक्षिण पूर्वीय सागर के किनारे रामेश्वर तक है । २. द्रविण देश का रहनेवाला ।

विशेष—मनु ने द्रविड़ों को सर्वार्थ स्त्री से उत्पन्न आर्य क्षत्रियों की संतति कहा है । महाभारत में भी लिखा है कि परशुराम के मय से बहुत से क्षत्रिय दूर दूर के पहाड़ों और जंगलों में भाग गए । वहाँ वे अपने कम ब्राह्मणों के बदलन आदि के कारण भूल गए और ब्रह्मत्व को प्राप्त हो गए । वे ही द्रविड़, आभीर, शबर, पुंड्र आदि हुए । दे० 'तामिल' ।

३. ब्राह्मणों का एक वर्ग जिसके अंतर्गत पाँच ब्राह्मण हैं—माध, कर्णाटक, गुर्जर, द्राविड़ और महाराष्ट्र ।

मुहा०—द्रविड प्राणायाम = दे० 'द्राविड़ी प्राणायाम' ।

द्रविड़ी—संज्ञा स्त्री० [सं० द्रविड़ी] एक रागिनी का नाम ।

द्रविण—संज्ञा पुं० [सं०] १. धन । २. कांचन । सोना । ३. पराक्रम । बल । ४. पृथु राजा का एक पुत्र । ५. भागवत के अनुसार कुशाद्वीप का एक सीमावर्त । ६. श्रीच द्वीप के अंतर्गत एक वर्ष । ७. महाभारत के अनुसार घुर नामक वसु के एक पुत्र का नाम । ८. पदार्थ । वस्तु (को०) । ९. आकांक्षा । अभिलाषा (को०) ।

द्रविणनाशन—संज्ञा पुं० [सं०] लोभांजन । सहिष्णु का पेड़ ।

विशेष—स्मृतियों में लोभांजन भक्षण का निषेध है ।

द्रविणप्रद—संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु (को०) ।

द्रविणाधिपति—संज्ञा पुं० [सं०] कुबेर । धनपति (को०) ।

द्रविणेश्वर—संज्ञा पुं० [सं०] कुबेर (को०) ।

द्रविणोदय—संज्ञा पुं० [सं०] धन की प्राप्ति (को०) ।

द्रविणोदा^१—संज्ञा पुं० [सं० द्रविणोदस्] वेद का एक देवता जो धन देनेवाला कहा गया है । अग्नि ।

द्रविणोदा^२—वि० धन देनेवाला ।

द्रवित—वि० [सं०] दे० 'द्रवीभूत' ।

द्रवीभूत—वि० [सं०] १. जो द्रव हो गया हो । जो पानी की तरह पतला हो गया हो । २. पिचला हुआ । गला हुआ । ३. पसीजा हुआ । दयाार्द्र । दयालु ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

द्रवेतर—वि० [सं०] द्रव पदार्थ से भिन्न । कड़ा । ठोस (को०) ।

द्रवोत्तर—वि० [सं०] अत्यधिक पतला या तरल (को०) ।

द्रव्य^१—संज्ञा पुं० [सं०] १. वस्तु । पदार्थ । चीज । वह पदार्थ जो क्रिया और गुण अथवा केवल गुण का आश्रय हो । वह पदार्थ जिसमें गुण और क्रिया अथवा केवल गुण हो और जो समवायि कारण हो ।

विशेष—वैशेषिक में द्रव्य नौ कहे गए हैं—पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश, काल, दिक्, आत्मा और मन । इनमें से पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आत्मा और मन ये छह द्रव्य ऐसे हैं जिनमें क्रिया और गुण दोनों हैं । आकाश, दिक् और काल ये तीन ऐसे हैं जिनमें क्रिया नहीं केवल गुण हैं । पाँच द्रव्यों में से केवल चार साध्यव्य हैं—पृथ्वी, जल, तेज और वायु । ये चार द्रव्य उत्पत्ति धर्मवाले माने गए हैं । ये परमाणु रूप से नित्य और कार्य (स्थूल) रूप से धनित्य हैं । इन्होंने परमाणुओं के योग से सृष्टि होती है । प्रशस्तपाद माध्य में लिखा है कि जीवों के कर्मफल भोग का समय जब आता है तब जीवों के अष्ट के बल से वायु के परमाणुओं में चलन उत्पन्न होता है । इस चलन से परमाणुओं में परस्पर संयोग होता है । दो दो परमाणुओं के मिलने से 'द्व्यगुण' और तीन द्व्यगुणों के मिलने से 'त्रसरेणु' उत्पन्न होता है । इस प्रकार एक महान् वायु की उत्पत्ति होती है । महान् वायु में परमाणुओं के संयोग से क्रमशः जल द्व्यगुण, जल त्रसरेणु और फिर महान् जलनिधि उत्पन्न होता है । इस जल में पृथ्वी परमाणुओं के परस्पर संयोग द्वारा द्व्यगुणादि क्रम से महान् पृथ्वी की उत्पत्ति होती है । फिर उसी जलनिधि में तेजस् परमाणुओं के परस्पर संयोग से तेजस द्व्यगुणादि क्रम से महान् तेजोराशि की उत्पत्ति होती है । इस प्रकार वैशेषिक ने चार भूतों के अनुसार चार तरह के परमाणु माने हैं,—पृथ्वी परमाणु, जल परमाणु, तेज परमाणु और वायु परमाणु । इन्होंने परमाणुओं से ये चार भूत उत्पन्न होते हैं । पाँचवाँ द्रव्य आकाश निरवयव, विभु और नित्य है, न उसके टुकड़े होते हैं और न उसका नाश होता है । आकाश की ही तरह काल और दिक् भी विभु और नित्य हैं । आत्मा एक अमूर्त द्रव्य है जो ज्ञान का अधिकार और किसी किसी के मत से ज्ञान का समवायिकारण है । मन नित्य और मूर्त माना गया है, क्योंकि यदि मूर्त न होता तो उसमें क्रिया न होती । वैशेषिक मन को अणुरूप मानता है क्योंकि एक क्षण में एक ही इन्द्रिय का संयोग उसके साथ हो सकता है । जीवों के अनुसार द्रव्य गुणों और पर्यायों का स्थान है और मदा एकरस रहता है, उसके भीतर भेद नहीं पड़ता । जैन ६ द्रव्य मानते हैं—जीव, धर्म, अधर्म, पुद्गल, आकाश और काल ।

पदार्थज्ञान में आजकल पश्चिम के देशों में बहुत उन्नति हुई है । साध्यव्य सृष्टि के वैशेषिक में चार मूल भूत कहे गए हैं और उसी के अनुसार चार प्रकार के परमाणु भी माने गए हैं पर आजकल की परीक्षाओं से ये चारों मूलभूत कहे जानेवाले पदार्थ कई मूल द्रव्यों के योग से बने पाए गए हैं । जल और वायु कई मूल द्रव्यों के योग से बने परीक्षा द्वारा सिद्ध हो चुके हैं । पाश्चात्य रसायन में जलानिक मूल द्रव्य माने गए हैं, जिनके परमाणुओं के रासायनिक संयोग से भिन्न भिन्न पदार्थ बने हैं । अतः इस हिसाब से भी परमाणु जलानिक प्रकार के हुए । मूल द्रव्यों परमाणुओं के गुरुत्व का यदि परस्पर मिलान किया जाय तो उनमें एक हिसाब से चलता हुआ

क्रम पाया जाता है जिससे सिद्ध होता है कि ये सब मूल द्रव्य भी एक ही परम द्रव्य से निकले हैं ।

१. सामयी । सामान । उपादान । वह जिससे कोई वस्तु बनी हो । ४. धन । दौलत । रुपया पैसा । ५. पीतल । ६. ओषध । भेषज । ७. मद्य । ८. लेप । ९. गोंद । १०. गाय (को०) । ११. शिष्टता । विनय । विनम्रता (को०) ।

द्रव्य—वि० १. द्रुम संबंधी । पेड़ का । पेड़ से निकला हुआ । २. पेड़ के ऐसा ।

द्रव्यक—वि० [सं०] किसी द्रव्य या पदार्थ को उठाने या ले जानेवाला (को०) ।

द्रव्यकृश—वि० [सं०] गरीब । धनहीन (को०) ।

द्रव्यगण—संज्ञा पु० [सं०] बिक्रिसा शास्त्र में सैंतीस समान द्रव्यों का समूह (को०) ।

द्रव्यत्व—संज्ञा पु० [सं०] द्रव्य का भाव । द्रव्यपन ।

द्रव्यपति—संज्ञा पु० [सं०] १. कलित ज्योतिष के अनुसार बिन्न भिन्न द्रव्यों या पदार्थों की अधिपति बिन्न भिन्न राशियाँ । जैसे,—कंबल, मसूर, गेहूँ, जाल बुझ, जौ इत्यादि की अधिपति मेष राशि है । इसी प्रकार धान, कपास, लता इत्यादि मिथुन राशि के अधीन हैं । २. द्रव्य का स्वामी । धनी । धनशाला ।

द्रव्यपरिग्रह—संज्ञा पु० [सं०] धनसंचय । द्रव्य इकट्ठा करना (को०) ।

द्रव्यमय—वि० [सं०] १. धन से युक्त । धनवान् । २. किसी द्रव्य से निर्मित । (को०) ।

द्रव्यवती—वि० की० [सं० द्रव्यवत्] धनवती । संपत्तिशाली (को०) ।

द्रव्यवन—संज्ञा पु० [सं०] कोटिल्य के अनुसार लकड़ियों के लिये रक्षित वन । वह जंगल जहाँ से लकड़ी छाती हो ।

द्रव्यवन भोग—संज्ञा पु० [सं०] वह जागीर या उपनिवेश जिसमें लकड़ी तथा और जांगलिक पदार्थों की बहुतायत हो ।

विशेष—प्राचीन आचार्य ऐसे ही उपनिवेश को पसंद करते थे जिसमें जांगलिक पदार्थ बहुतायत से हों । परंतु आणव्य का मत है कि लकड़ियाँ तथा जांगलिक पदार्थ सभी स्थानों में पैदा किए जा सकते हैं । इसलिये उत्तम उपनिवेश वही है जिसमें हाथीवाले जंगल हों ।

द्रव्यवनादीपिक—संज्ञा पु० [सं०] कोटिल्य के अनुसार लकड़ी छादि के लिये रक्षित जंगल में छाग लगानेवाला ।

द्रव्यवाचक—वि० [सं०] वह शब्द जिससे किसी द्रव्य का ज्ञान हो ।

द्रव्यवान्—वि० [सं० द्रव्यवत्] [वि० की० द्रव्यवती] धनवान् । धनी ।

द्रव्यशुद्धि—संज्ञा की० [सं०] किसी द्रव्य या वस्तु को निर्मल करना । किसी चीज को धोकर साफ करना (को०) ।

द्रव्यसंस्कार—संज्ञा पु० [सं०] वज्र में प्रयुक्त होनेवाले वस्तुओं की सफाई (को०) ।

द्रव्यसार—संज्ञा पु० [सं०] बहुमुख्य पदार्थ । उपयोगी पदार्थ ।

द्रव्यांतर—संज्ञा पु० [सं० द्रव्यान्तर] दूसरा द्रव्य ।

द्रव्याधीश—संज्ञा पु० [सं०] कुबेर ।

द्रव्यार्जन—संज्ञा पु० [सं०] धन पैदा करना । संपत्ति कमाना (को०) ।

द्रव्याश्रित—वि० [सं०] बोलत पर मुनहसर । द्रव्य में निहित (को०) ।

द्रष्टव्य—वि० [सं०] १. देखने योग्य । दर्शनीय । २. जिसे दिखाना हो । जो दिखाया जानेवाला हो । ३. जिसे बतलाना या जताना हो । ४. साक्षात् कर्तव्य । ५. सुंदर । मोहक (को०) । ६. समझने योग्य । विचारणीय (को०) ।

द्रष्टा^१—वि० [सं० द्रष्टृ] १. देखनेवाला । २. साक्षात् करनेवाला । ३. दर्शक । प्रकाशक ।

द्रष्टा^२—संज्ञा पुं० १. साक्ष्य के अनुसार पुरुष और योग के अनुसार आत्मा ।

विशेष—आत्मा द्रष्टा और अंतःकरण दृश्य माना जाता है । इन दोनों का संयोग ही दुःख का कारण है । सुख, दुःख आदि ये बुद्धिद्रव्य के विकार हैं । इंद्रियों का संबंध होने से अंतःकरण या बुद्धिद्रव्य ही विषय या मुख दुःख रूप में परिणत होता है, आत्मा नहीं । आत्मा द्रष्टा के रूप में रहता है ।

२. निर्णायक । जज । विचारपति । न्यायाधीश (को०) ।

द्रष्टार—संज्ञा पुं० [सं०] विचारक । द्रष्टा (को०) ।

द्रह—संज्ञा पुं० [सं०] १. हृद । ताल । भीम । २. वह स्थान जहाँ गहरा जल हो । गह ।

द्राक्षा—संज्ञा स्त्री० [सं०] दाख । अंगूर ।

द्राधिमा—संज्ञा पुं० [सं० द्राधिमन्] १. बोधिता । लंबाई । २. वे कल्पित रेखाएँ जो भूमध्य रेखा के समानांतर पूर्व पश्चिम की माने गई हैं । इन रेखाओं से प्रक्षांश सूचित होता है ।

द्राधिष्ठ^१—संज्ञा पुं० [सं०] भानू । भल्लुक । रीछ (को०) ।

द्राधिष्ठ^२—वि० सबसे संज्ञा । बहुत लंबा (को०) ।

द्राण^१—वि० [सं०] १. सुम । सोया हुआ । २. पलायित । भगेडू ।

द्राण^२—संज्ञा पुं० [सं०] १. स्वप्न । २. पलायन । भगना ।

द्राप^१—संज्ञा पुं० [सं०] १. आकाश । २. कीड़ी । ३. मूल व्यक्ति (को०) । ४. शिव का एक नाम (को०) । ५. कदंब । कीबड़ । पक (को०) ।

द्राप^२—वि० १. मूल । २. सुम ।

द्रामिल^१—वि० [सं० द्रामिल] द्रामिल या द्रविड़ देशवासी ।

द्रामिल^२—संज्ञा पुं० [सं०] चाणक्य का एक नाम ।

द्राव—संज्ञा पुं० [सं०] १. गमन । २. क्षरण । ३. बहने या एमीजने की क्रिया । गलने या पिघलने की क्रिया । ४. अनुताप । ५. ताप । उष्मा (को०) ।

द्रावक—वि० [सं०] १. द्रवरूप में करनेवाला । ठोस चीज को पानी की तरह पतल करनेवाला । २. बहानेवाला । ३. गलानेवाला । ४. पिघलानेवाला । ५. हृदय पर प्रभाव डालनेवाला । जिससे चित्त घाट हो जाय । ६. चतुर । चालाक । ७. पीछा करनेवाला । भगानेवाला । ८. घुसानेवाला । चोर । ९. हृदयणही ।

द्रावक^२—संज्ञा पुं० १. बदकांत मणि । २. जार । अमिचारी । ३. मोम । ४. सुहागा ।

द्रावककंद—संज्ञा पुं० [सं० द्रावककन्द] तैलकंद तिलकंदरा ।

द्रावकर—संज्ञा पुं० [सं०] सुहागा ।

द्रावण—संज्ञा पुं० [सं०] १. द्रवीभूत करने का कार्य या भाव । गलाने या पिघलाने की क्रिया या भाव । २. भगाने का काम । ३. चीठा ।

द्राविका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. लार । २. मोम ।

द्राविड^१—वि० [सं० द्राविड] [वि० स्त्री० द्राविड़ी] द्रविड़ देशवासी । द्रविड़ संबंधी ।

द्राविड^२—संज्ञा पुं० [सं० द्रविड] १. द्रविड़ देश । २. कन्नूर । ३. आमिया हल्दी ।

द्राविडक—संज्ञा पुं० [सं० द्राविडक] १. विट्त्वण । सौंघर नमक । २. कचिया हल्दी ।

द्राविडगौड़—संज्ञा पुं० [सं०] एक राग जो रात के समय गाया जाता है । इसमें शृंगार और वीर रस अधिक गाया जाता है ।

द्राविड़ी^१—संज्ञा स्त्री० [सं० द्राविड़ी] छोटी इलायची ।

द्राविड़ी^२—संज्ञा स्त्री० [सं० द्रविड] १. द्रविड़ जाति की स्त्री ।

द्राविड़ी^३—वि० द्रविड़ संबंधी । द्रविड़ देश का ।

मुद्रा^१—द्राविड़ी प्राणायाम = किसी सीधी तरह होनेवाली बात को बहुत घुमाव फिराव के साथ करना ।

विशेष—इस मुद्रा की उत्पत्ति ठीक ठीक नहीं मालूम होती । द्रविड़ लोग प्राणायाम करने में पहले दाहिने हाथ की छुटकी बजाते हुए फिर के घास हाथ घुमाते हैं, पीछे नाक दबाकर प्राणायाम करते हैं । शायद इसी में विशेषता देखकर उत्तरीय भारत के लोग ऐसा कहने लगे हों ।

द्रावित—वि० [सं०] १. द्रव किया हुआ । २. गलाया या पिघलाया हुआ । ३. भगाया हुआ ।

द्राह्यायण—संज्ञा पुं० [सं०] एक ऋषि का नाम । ये द्रह ऋषि के गोत्र में उत्पन्न हुए थे । सामवेद के कल्प, श्रौत और गृह्यसूत्र इनके बनाए हुए हैं ।

द्रिग^१—संज्ञा पुं० [सं० द्रिक्, दृग्] दे० 'दृग्' । उ०—धर तपे चंद अन दपे करि तामस द्रिग विकराल मन । सम गवरि अंग अंग सिध उसिध नृपति समंतन असुर बन ।—पृ० रा०, १। ५०५ ।

द्रिदा^१—वि० [सं० द्रि] दे० 'दृष्टि' । उ०—ज्यूं सुख त्यूं दुख द्रिद मन राखै एकादसी इकतार करे ।—कबीर ग्रं०, पृ० १५० ।

द्रिष्टि^१—संज्ञा स्त्री० [सं० दृष्टि] दे० 'दृष्टि' । उ०—ज्यूं पर सुं पर बंधिया युं बंधे सब लोई जाके आत्म द्रिष्टि है । साचा जन सोई ।—कबीर ग्रं०, पृ० १४९ ।

द्रु—संज्ञा पुं० [सं०] १. वृक्ष । २. गाला । ३. लकड़ी । काष्ठ (को०) । ४. काष्ठ निमित कोई भी वंश (को०) ।

द्रुकलिस—संज्ञा पुं० [सं०] देवदार ।

दुर्गंध^१—संज्ञा स्त्री० [सं० दुर्गन्ध] दे० 'दुर्गंध' । उ०—बहुत सुगंध दुर्गंध करि भरिये आजन अंबु । सुंदर सब मैं देखिये सूरय की प्रतिबिंबु ।—सुंदर ग्रं०, भा० २, पृ० ७८१ ।

दुग्ध^१—वि० [सं०] १. जिससे द्रोह किया गया हो। जिसके विरुद्ध बाल चली गई हो। २. चाहत (को०)।

दुग्ध^२—संज्ञा पुं० कुरा कर्म। जुर्म। अपराध (को०)।

दुग्ध^३—संज्ञा पुं० [सं०] १. सोहे का मुगदर। २. परशु या फरसे के आकार का एक मत्स्य, जिसका सिरा मुड़ा हुआ होता था। इससे भुंकाने, गिराने, फोड़ने और चीरने का काम लेते थे। ३. कुठार। कुल्हाड़ी। ४. ब्रह्मा। ५. भूचंदा।

दुग्धनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] कुल्हाड़ी (को०)।

दुग्ध^४—संज्ञा पुं० [सं०] १. धनुष। २. सङ्ग। ३. बिच्छू। भृंगी कीड़ा। ४. दुष्ट या कुटिल व्यक्ति (को०)।

दुग्धस—वि० [सं०] जिसकी नाक लंबी हो। लंबी नाकवाला (को०)।

दुग्ध^५—संज्ञा पुं० म्यान। कोश (को०)।

दुग्धा—संज्ञा स्त्री० [सं०] धनुष की ज्या। धनुष की डोरी।

दुग्धि, दुग्धी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. कछुही। कच्छपी। २. कनख-ज्वरा। ३. कठवत। काष्ठपात्र।

दुग्ध^६—वि० [सं०] १. दबीभूत। पिचला या गला हुआ। २. क्षीघ्रगामी। तेज। ३. भागा हुआ। ४. क्षीघ्रतायुक्त। स्वरायुक्त (को०) ५. अस्पष्ट। विकीर्ण (को०)।

दुग्ध^७—संज्ञा पुं० १. बिच्छू। २. वृक्ष। ३. बिल्ली। ४. ताल की मात्रा का आधा जिसका चिह्न ० है। इसके देवता शिव और इसकी उत्पत्ति जल से मानी जाती है। इसका उच्चारण चिड़िया की बोली के समान होता है।

पयि०—विदु। व्यंजन। सन्ध। अर्धमात्रक। आकाश। व्यंजन। रूप। वलय।

५. वह लय जो मध्यम से कुछ तेज हो। दूज।

द्रुतगति^१—वि० [सं०] क्षीघ्रगामी।

द्रुतगति^२—संज्ञा स्त्री० तीव्र वेग। तेज गति (को०)।

द्रुतगामी—वि० [सं० द्रुतगामिन्] [वि० स्त्री० द्रुतगामिनी] क्षीघ्रगामी। तेज चलनेवाला।

द्रुतत्रिताली—संज्ञा स्त्री० [सं० द्रुत + त्रिताली] दे० 'इन्द्र त्रिताली'।

द्रुतपद्—संज्ञा पुं० [सं०] एक छंद जिसके प्रत्येक चरण में बारह अक्षर होते हैं, जिसमें चौथा, ग्यारहवाँ और बारहवाँ अक्षर गुरु और शेष लघु होते हैं।

द्रुतपाठ—संज्ञा पुं० [सं०] वह पाठ जो बच्चों की ज्ञानवृद्धि और मनोरंजन के लिये सहायक हो। तेजी से पढ़ना। उ०—द्रुतपाठ शिक्षण के उद्देश्य साधारण गद्यपाठ की अपेक्षा भिन्न होते हैं।—भा० शिक्षण, पृ० १२७।

द्रुतमय्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक अर्धसमवृत्त का नाम। इसके प्रथम और तृतीय पाद में ३ अक्षर और २ गुरु होते हैं (SII SII SII SS) तथा द्वितीय और चतुर्थ चरण में १ नगण, २ अक्षर और १ अक्षर (III ISI ISI ISS) होता है। जैसे,—रामहि सेवहु रामहि गायो। तन मन वै निर सोस

नवायो। जन्म अनेकन के भव जारो। हरि हरि गा निव जन्म सुचारो।

द्रुतबिलंबित—संज्ञा स्त्री० [सं० द्रुतबिलम्बित] एक वर्णवृत्त जिसके प्रत्येक चरण में १ नगण, २ अक्षर और एक अक्षर (न म म र) (III, SII, SII SIS) होता है। इसे सुंदरी भी कहते हैं। जैसे,—भजन जो सखि बालमुकुंदरी। जग न सोहत यद्यपि सुंदरी।

द्रुति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. द्रव। २. गति।

द्रुतै०—क्रि० वि० [सं० द्रुत] जल्दी हो। क्षीघ्र हो।

द्रुतस्व—संज्ञा पुं० [सं०] कौटा।

द्रुपद—संज्ञा पुं० [सं०] १. महाभारत के अनुसार उत्तर पांचाल का एक राजा।

विशेष—यह चंद्रवंशी पुष्य का पुत्र था। द्रोणाचार्य और द्रुपद बचपन में एक साथ खेला करते थे और दोनों में बड़ी मित्रता थी। पुष्य के घर जाने पर द्रुपद पांचाल का राजा हुआ। द्रुपद। उस समय द्रोणाचार्य जी उसके पास गए और उन्होंने अपनी बचपन की मित्रता का परिचय देना चाहा, पर द्रुपद ने उनका निरस्कार कर दिया। जब द्रोणाचार्य जी को भीष्म जी ने कौरवों और पांडवों की शिक्षा देने के लिये बुलाया और द्रोण जी ने उनको बाण विद्या की उत्तम शिक्षा दी तब गुरु-दक्षिणा में उन्होंने कौरवों और पांडवों से यही मंगिा कि तुम द्रुपद को बांधकर मेरे सामने ला दो। कौरव तो उनकी आज्ञा का पालन नहीं कर मके पर पांडवों ने द्रुपद को जीता और उसे बांधकर अपने गुरु को अर्पित किया। द्रोणाचार्य जी ने द्रुपद से कहा कि तुम गंगा के दक्षिण किनारे राज्य करो, उत्तर के किनारे का राज्य हम करेंगे। द्रुपद उस समय तो मान गया पर उसके मन में द्रोणाचार्य की ओर के द्वेष बना रहा। उसने याज्ञ और उपयाज्ञ नामक दो ऋषियों की सहायता से ऐसे पुत्र की प्राप्ति के लिये, जो द्रोणाचार्य का नाश कर सके, यज्ञ करना प्रारंभ किया। यज्ञ के प्रसाद से धृष्टद्युम्न नाम का पुत्र और कृष्णा नाम की एक कन्या हुई। द्रुपद के एक और पुत्र था जिसका नाम शिखंडी था। कृष्णा धनुर्न आदि पांडवों से व्याही गई थी। द्रुपद महाभारत के युद्ध में मारा गया।

२. खंभे का पाया। ३. सड़ाई।

द्रुपदा—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक वैदिक ऋचा जिसके आदि में द्रुपद शब्द आता है।

द्रुपदात्मज—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० द्रुपदात्मजा] १. शिखंडी। २. धृष्टद्युम्न।

द्रुपदादित्य—संज्ञा पुं० [सं०] काशीखंड के अनुधार सूर्य की एक मूर्ति जिसे द्रोपदी ने स्थापित किया था।

द्रुम—संज्ञा पुं० [सं०] १. वृक्ष। २. पारिजात। ३. कुबेर। ४. एक राधा का नाम जो पूर्वजन्म में शिवि नामक देव था।

१. हरिवंश के अनुसार कृष्णचंद्र के एक पुत्र का नाम जो रुक्मिणी से उत्पन्न हुआ था।

हुमकंटिका—संज्ञा स्त्री० [सं० हुमकण्टिका] सेमर का पेड़।

हुमनख—संज्ञा पुं० [सं०] कांटा।

हुमपातन—संज्ञा पुं० [सं०] पेड़ गिराना। पेड़ काटना। उ०—ग्याध को पिता कह हुमपातन की शिक्षा ली।—अधरा, पृ० २१३।

हुमव्याधि—संज्ञा पुं० [सं०] १. पेड़ का रोग। २. साक्ष। साक्ष।

हुमसर—संज्ञा पुं० [सं०] कांटा। कंटक।

हुमवासी—संज्ञा पुं० [सं० हुमवासिन्] बंदर। कपि।

हुमशीर्ष—संज्ञा पुं० [सं०] १. पेड़ का सिरा। २. एक प्रकार की छत या गोल मंडप जो पेड़ की तरह फैला हुआ होता है। ३. ताड़ का पेड़। (को०)।

हुमश्रेष्ठ—संज्ञा पुं० [सं०] ताड़ का पेड़।

हुमबंध—संज्ञा पुं० [सं० हुमबन्ध] पेड़ों का झुरमुट। तरनिकुंभ। वृक्षावली (को०)।

हुमसार—संज्ञा पुं० [सं०] दाड़िम। अनार। उ०—अस्तबीज हानीक कर गूक पीक हुमसार। ये दाड़िम हमि देख बलि कछु तुम दसनाकार।—नंददास (शब्द०)।

हुमसेन—संज्ञा पुं० [सं०] १. कीर्यों के पक्ष का एक थोड़ा जो धृष्टद्युम्न के हाथ से मारा गया था। २. महाभारत के अनुसार एक राजा जो पूर्वजन्म में गविष्ट नाम का असुर था।

हुमामय—संज्ञा पुं० [सं०] १. पेड़ का रोग। २. साक्ष। साक्ष।

हुमारि—संज्ञा पुं० [सं०] हाथी।

हुमालय—संज्ञा पुं० [सं०] जंगल।

हुमाली—संज्ञा स्त्री० [सं०] वृक्षों की पंक्ति। पेड़ों की कतार। उ०—उद्यानों की छाज देखिए, कैसी छटा निराली है। नए पत्तियों में आभूषित मन मोहती हुमाली है।—लंछिता, पृ० १४४।

हुमाश्रव—संज्ञा पुं० [सं०] (जा पेड़ पर चले) गिरगिट।

हुमिणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] ५न। जंगल।

हुमिल—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक दानव का नाम। यह शीघ्र देश का राजा था। २. जब योगेश्वरों में से एक।

हुमिला—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक छंद जिसके प्रत्येक चरण में ३२ मात्राएँ होती हैं। इसके प्रत्येक चरण के अंत में युग्म होता है तथा १० और १८ मात्रा पर यति होती है। जैसे,—उत्तर यह देके दूत पठे के असदखान यह रोख भन्धी। बोह्यो सब बीरन कुल के बीरन, जिन न चरन रन उसटि चरपी। तुम करो तयारी सब इस बारी, मैं दिस यह इतकाव करपी। भुझको तो सरना देर न करना आहूह साहू को काव करपी।—सुदन (शब्द०)।

हुमेश्वर—संज्ञा पुं० [सं०] १. चंद्रमा। २. ताड़। ताड़ का पेड़। ३. पारिजात।

हुमोत्पल—संज्ञा पुं० [सं०] कण्टिकार वृक्ष। कनकचंपा। कनियारी।

हुवय—संज्ञा पुं० [सं०] १. लकड़ी की माप। पैमाना। २. परिमाण।

हुसल्लक—संज्ञा पुं० [सं०] पियाल वृक्ष। चिरीजी का पेड़।

हुह—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० हुही] १. पुत्र। २. वृक्ष। ३. मील।

हुहण—संज्ञा पुं० [सं०] १. ब्रह्मा। २. विष (को०)। ३. विष्णु (को०)।

हुहिरण—संज्ञा पुं० [सं०] ब्रह्मा। दे० 'हुहण'।

हुहिन(५)—संज्ञा पुं० [सं० हुहिरण] ब्रह्मा। उ०—सृष्टाचतुरानन विषन हुहिन स्वयंभू सोह।—अनेकार्थ०, पृ० ६६।

हुही—संज्ञा स्त्री० [सं०] कन्या।

हुह्यु—संज्ञा पुं० [सं०] १. प्राचीन भाषों का एक वंश या जनसमुह। उ०—राजवंशों की तालिका देते हुए पाजिटर ने यादव, हुह्य हुह्य तथा दक्षिणी पंचाल को गिनाया है।—प्रा० जा०, पृ० २१। २. क्षत्रिणों के गर्भ से उत्पन्न ययाति राजा का ज्येष्ठ पुत्र, जिसने ययाति का बुढ़ापा लेना अस्वीकार किया था।

विशेष—ययाति से इसने कहा था—जराग्रस्त मनुष्य, स्त्री, रथ, हाथी इत्यादि को नहीं भोग सकता। ययाति ने इसपर इसे साप दिया कि 'तेरी कोई अभिलाषा पूरी नहीं होगी। जहाँ रथ, पालकी, हाथी, घोड़े आदि की सवारी हो नहीं होती, जहाँ कूद फाँदकर चलना पड़ता है, जहाँ 'राजा' शब्द का व्यवहार ही नहीं है वहाँ तुझे रहना पड़ेगा। द्रुह्य के वंश में कोई राजा नहीं हुआ (महाभारत)। पर आसाम के पास स्थित त्रिपुरा के राजवंश की जो वंशावली 'राजमाला' नाम की है उसमें त्रिपुरा राजवंश का चंद्रवंशी एक राजा द्रुह्य से चलना लिखा गया है। पर विष्णुपुराण और हरिवंश के अनुसार द्रुह्य को वभु और सेतु नामक दो पुत्र हुए। सेतु के पौत्र का नाम गांधार था जिसके नाम से देश का नाम पड़ा। अस्तु, पुराणों के अनुसार द्रुह्य भारत के पश्चिमी कोने पर गया था न कि पूर्वी। राजमाला की कथा कल्पित है।

हु—संज्ञा पुं० [सं०] सोना।

हुषाण—संज्ञा पुं० [सं०] हुषीड़ा। दुधण (को०)।

हुष्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. वृश्चिक। बिच्छू। २. अनुष। धम्बा (को०)।

हुष्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] कौटिल्य के अनुसार लकड़ी का अनुष।

हुका—संज्ञा स्त्री० [सं०] महानिब। बकायन।

हुकक—संज्ञा पुं० [यू० डेकनस] राशि का तृतीयांश। दे० 'हुकाण'।

हुककण्य—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'हुकाण' (को०)।

हुककाण्य—संज्ञा पुं० [यू० डेकनस] राशि का तृतीयांश। दे० 'हुकाण'।

हुकाण्य—संज्ञा पुं० [यू० डेकनस] राशि का तृतीयांश। दे० 'हुकाण'।

उ०—सूर्य चंद्र जिस ग्रह के राशि हुकाण में बैठे हों।

—बृहत्०, पृ० ३३४।

द्रोण—संज्ञा पुं० [सं०] १. लकड़ी का एक कलश या बरतन जिसमें वैदिक काल में सोम रखा जाता था। २. जब आदि रखने का लकड़ी का बरतन। कठमठ। ३. एक प्राचीन माप जो

चार घाड़क या १६ सेर घोर किसी किसी के मत से ३२ सेर की मानी जाती थी।

पर्याय—घट। कलश। उन्मान। उल्बण। धर्मण।

४. पत्ते का दोना। ५. नाव। डोंगा। ६. धरणी की लकड़ी। ७. लकड़ी का रव। ८. डोम कोषा। काला कोषा। उ०—करता रव दूर द्रोण था।—साकेत, पृ० ३०६। ९. चिन्मू। १०. वह जलाशय या तालाब जो चार सी भुज संवा चौड़ा हो। यह पुष्करिणी घोर दीविका से बड़ा होता है। ११. मेघों के एक नायक का नाम। जिस वर्ष यह मेघनायक होता है उस वर्ष वर्षा बहुत अच्छी होती है। १२. वृक्ष। पेड़। १३. द्रोणाक्ष नाम का पहाड़।

विशेष—रामायण के अनुसार यह पर्वत क्षीरोद समुद्र के किनारे है और जिसपर विश्वयक्त्रिणी नाम की संजीवनी जड़ी होती है। पुराणों के अनुसार यह एक वर्षपर्वत है।

१४. एक फूल का नाम। १५. नील का पोषा। १६. केला। १७. महाभारत के प्रसिद्ध ब्राह्मण योद्धा जिनसे कौरवों और पांडवों ने अस्त्रशिक्षा पाई थी। दे० 'द्रोणाचार्य'।

द्रोणक—संज्ञा पुं० [सं०] समुद्रतट पर बसा हुआ चारों ओर से सुरक्षित नगर [को०]।

द्रोणकलश—संज्ञा पुं० [सं०] लकड़ी का एक पात्र जिसमें यज्ञों में सोम छाना जाता था। यह वैकंक की लकड़ी का बनाया जाता था।

द्रोणकाक, द्रोणकाकल—संज्ञा पुं० [सं०] काला कोषा। डोम काषा।

द्रोणक्षीरा—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक दोना दूध देनेवाली गाय [को०]।

द्रोणगंधिका—संज्ञा स्त्री० [सं० द्रोणगन्धिका] रास्ता।

द्रोणगिरि—संज्ञा पुं० [सं०] एक पर्वत का नाम।

विशेष—पुराणानुसार यह एक वर्षपर्वत है। वाल्मीकाय रामायण में इसे क्षीरोद समुद्र में लिखा है। हनुमान विश्वयक्त्रिणी संजीवनी जड़ी लेने इसी पर्वत पर गए थे।

द्रोणवा—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'द्रोणक्षीरा' [को०]।

द्रोणदुग्धा, द्रोणदुधा—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'द्रोणक्षीरा'।

द्रोणपर्णी—संज्ञा स्त्री० [सं०] भूकदली।

द्रोणपुष्पी—संज्ञा स्त्री० [सं०] गुमा।

द्रोणमुख—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह गाँव जो ४०० गाँवों के बीच प्रचल हो। २. चार सौ गाँवों के बीच का किला।

द्रोणमेघ—संज्ञा पुं० [सं०] गहरी वर्षा करनेवाला बादल। दे० 'द्रोण'—११ [को०]।

द्रोणवृद्धि—संज्ञा स्त्री० [सं०] द्रोण नामक बादल से होनेवाली वर्षा [को०]।

द्रोणशर्मपद्—संज्ञा पुं० [सं०] महाभारत के अनुसार एक तीर्थ का नाम।

द्रोणस—संज्ञा पुं० [सं०] एक दानव का नाम।

द्रोणा—संज्ञा स्त्री० [सं०] गुमा।

द्रोणाचल—संज्ञा पुं० [सं०] एक पर्वत। द्रोणगिरि।

द्रोणाचार्य—संज्ञा पुं० [सं०] महाभारत में प्रसिद्ध ब्राह्मण वीर जिनसे कौरवों और पांडवों ने अस्त्रशिक्षा पाई थी।

विशेष—इनकी कथा इस प्रकार है। गंगाद्वार (हरद्वार) के पास भरद्वाज नाम के एक ऋषि रहते थे। वे एक दिन गंगा-स्नान करने जाते थे, इसी बीच घृताची नाम की अप्सरस नहाकर निकल रही थी। उसका वस्त्र छूटकर गिर पड़ा। ऋषि उसे देखकर कामातं हुए और उनका वीर्यपात हो गया। ऋषि ने उस वीर्य को द्रोण नामक यज्ञपात्र में रख छोड़ा। उसी द्रोण से जो तेजस्वी पुत्र उत्पन्न हुआ उसका नाम द्रोण पड़ा। भरद्वाज ने अपने शिष्य अग्निवेश को जो अस्त्र दिए थे अग्निवेश ने वे सब द्रोण को दिए। भरद्वाज के शरीरपात के उपरान्त द्रोण ने भरद्वाज की कन्या कृपी के साथ विवाह किया जिससे उन्हें अवस्थामा नामक वीर पुत्र उत्पन्न हुआ जिसने जन्म लेते ही उच्चैःश्रवा घोड़े के समान घोर शब्द किया। द्रोण ने महेंद्र पर्वत पर जाकर परशुराम से अस्त्र और अस्त्र की शिक्षा पाई। वहाँ से लौटने पर इनके दिन वरिद्धता में बीतने लगे। द्रुपद नामक एक राजा भरद्वाज के सखा थे। उनका पुत्र द्रुपद आश्रम पर आकर द्रोण के साथ खेलता था। द्रुपद जब उत्तर पांचाल का राजा हुआ तब द्रोण उसके पास गए और उन्होंने उसे अपनी बालमैत्री का परिचय दिया। पर द्रुपद ने राजमद के कारण उनका तिरस्कार कर दिया। इसपर दुःखित और क्रुद्ध होकर द्रोणाचार्य हस्तिनापुर चले गए और वहाँ अपने सारे कृपाचार्य के यहाँ ठहरे। एक दिन युधिष्ठिर आदि राजकुमार बेंद खेल रहे थे। उनका बेंद कुएँ में गिर पड़ा। बहुत यत्न करने पर भी वह बेंद नहीं निकलता था, इसी बीच में द्रोण उधर से निकले और उन्होंने अपने बाणों से मार मारकर बेंद को कुएँ के बाहर कर दिया। जब यह खबर भीष्म को लगी तब उन्होंने द्रोण को राजकुमारों की अस्त्रशिक्षा के लिये नियुक्त किया। तब से वे द्रोणाचार्य के नाम से प्रसिद्ध हुए। इन्हीं की शिक्षा के प्रताप से कौरव और पांडव ऐसे बड़े भुवंधर और अस्त्रकुशल हुए। द्रोणाचार्य के सब शिष्यों में अर्जुन श्रेष्ठ थे। अस्त्रशिक्षा के बुकने पर द्रोणाचार्य ने कौरवों और पांडवों से कहा,—'हमारी गुरुदक्षिणा यही है कि द्रुपद राजा को बाँधकर हमारे पास लाओ।' कौरवों और पांडवों ने पंचाल देश पर चढ़ाई की। अर्जुन द्रुपद को युद्ध में हराकर उसे द्रोणाचार्य के पास पकड़कर लाए। द्रोणाचार्य ने द्रुपद को यही कहकर छोड़ दिया कि 'तुमने कहा था कि राजा का मित्र राजा ही हो सकता है, अतः भागीरथी के दक्षिण में तुम राज्य करो, उत्तर में मैं राज्य कहूँगा।' द्रुपद के मन में इस बात की बड़ी कसक रही। उन्होंने ऋषियों की सहायता से पुत्रेष्टि यज्ञ द्रोण को मारनेवाले पुत्र की कामना से किया। यज्ञ के प्रभाव से उसे धृष्टद्युम्न नामक पुत्र और कृष्णा (द्रोपदी) नाम की कन्या हुई। कुरुक्षेत्र के युद्ध में द्रोणाचार्य ने भी दिन तक कौरवों की ओर से घोर युद्ध किया।

अंत में जब युधिष्ठिर के मुख से 'अश्वत्थामा मारा गया हाथी' यह सुना तब पुत्रशोक में नीचा सिर करके वे हूब गए। इसी अवसर पर धृष्टद्युम्न ने उनका सिर काट लिया।

द्रोणि^१—संज्ञा पुं० [सं०] १. द्रोण का पुत्र अश्वत्थामा। २. अष्टम मन्वन्तर के एक ऋषि।

द्रोणि^२—संज्ञा स्त्री० दे० 'द्रोणी'।

द्रोणिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. नील का पोषा। २. पात्र। बास्टी (को०)।

द्रोणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. डोंगी। २. दोनियाँ। छोटा दोना। ३. लकड़ी का बना हुआ पात्र। कठवत। ४. काठ का प्याला। डोकिया। ५. दो पर्वतों के बीच की भूमि। दून। ६. कैला। ७. दर्रा। ८. इद्रायन। ९. एक नदी। १०. द्रोण की स्त्री, कृपी। ११. नील का पोषा। १२. एक परिमाण जो दो सूर्य या १०८ सेर का होता था। १३. एक प्रकार का नमक। १४. शीघ्रता।

द्रोणीदल—संज्ञा पुं० [सं०] केतकी का फूल।

द्रोणीलवण—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का लवण जो कर्णाटक देश के आसपास होता है। इसे बिरिया लोन भी कहते हैं। यह अति उष्ण, भदक, स्निग्ध, शूलनाशक और अल्प पित्तवर्धक माना गया है।

पर्यां—द्रोण्य। वर्ण्य। द्रोणीज। वारिज। वाधिभव। द्रोणी। चित्रकूट। लवण।

द्रोणोदन—संज्ञा पुं० [सं०] सिद्धहस्त के पुत्र का नाम जो शामय मुनि बुद्ध के चाचा थे।

द्रोण्यामय—संज्ञा पुं० [सं०] शरीर के भीतर का एक रोग।

द्रोन—संज्ञा पुं० [सं० द्रोण] दे० 'द्रोण'।

द्रोनाकार—वि० [सं० द्रोणाकार] चार सौ धनुष लंबा और इतना ही चौड़ा जलाशय आदि। उ०—हिम अग्नि सौ घिरघो अग्नि मंडल यह करो। सोहत द्रोनाकार मृष्टि सुखमा सुख-पुरी।—का० सुषमा, पृ० ५।

द्रोपदी, द्रोपदी—संज्ञा स्त्री० [सं० द्रोपदी] दे० 'द्रौपदी'। उ०—अहिल्या ब्राह्मणी से इंद्र ने छन किया। द्रोपदी पंच भरतार कीन्हीं।—कबीर रे०, पृ० ४५।

मुह—द्रोपदी (द्रोपती) का चौर होना = किसी चीज का अंत न होना। असीमित होना। अपार होना। उ०—केता हो उड़ाया तो न पाया पार लोगो। देवो वंस हरम द्रोपती को चौर होगो।—शिक्षर०, पृ० ६०।

द्रोह—संज्ञा पुं० [सं०] [लो०, द्रोही] दूसरे का अहितचिंतन। प्रतिहिंसा का भाव। बैर। द्वेष। अपमान। युटि। हिंसन।

द्रोहचिंतन—संज्ञा पुं० [सं० द्रोहचिंतन] किसी का अहित विचारना। अनिर्गन्धितन। बुरा सोचना (को०)।

द्रोहबुद्धि^१—वि० [सं०] शत्रुता की बुद्धि रखनेवाला। अनिष्ट चाहने-वाला (को०)।

द्रोहबुद्धि^२—संज्ञा स्त्री० [सं०] शत्रुता की बुद्धि। अनिष्ट करने की नीयत (को०)।

द्रोहभाव—संज्ञा पुं० [सं०] शत्रुता की भावना। बुरी नीयत (को०)।

द्रोहाट—संज्ञा पुं० [सं०] १. वैदाल व्रतिक। ऊपर से देखने में साधु पर भीतर भीतर बुराई रखनेवाला व्यक्ति। २. मृगलुम्भक। शिकारी। व्याध। ३. वेद की एक शाखा। ४. ढोंगी या भूठा व्यक्ति (को०)।

द्रोही^१—[सं० द्रोहिन्] [वि० स्त्री० द्रोहिणी] द्रोह करनेवाला। बुराई चाहनेवाला। विरोध करनेवाला।

द्रोही^२—संज्ञा पुं० वह जो द्रोह रखे। वैरी। शत्रु।

द्रौणायन—संज्ञा पुं० [सं०] अश्वत्थामा।

द्रौणायनि—संज्ञा पुं० [सं०] अश्वत्थामा। द्रोणाचार्य का पुत्र।

द्रौणि—संज्ञा पुं० [सं०] १. अश्वत्थामा। २. एक ऋषि जो पुराणा-नुसार उनतीसवें द्वापर में होंगे।

द्रौणिक^१—संज्ञा पुं० [सं०] वह क्षेत्र जिसमें एक द्रोण (३८ सेर) बीज बोया जाय।

द्रौणिक^२—वि० द्रोण संबंधी।

द्रौणिकी—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह बरतन जिसमें एक द्रोण परिमाण की वस्तु जावे।

द्रौणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. काठ का पात्र। कठवत। २. पर्वत की घाटी (को०)।

द्रौण्य—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का नमक (को०)।

द्रौनी—वि० [सं० द्रावणी] प्रवाहित करनेवाली। द्रवित करने वाली। उ०—कै बसुधा पे सुधाधार ब्रह्मद्रव द्रोनी।—का० सुषमा, पृ० ६। २. पर्वतों के बीच की। पर्वतों के मध्य में स्थित (भूमि)।

द्रौपद—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० द्रौपदी] द्रुपद का पुत्र।

द्रौपदी—संज्ञा स्त्री० [सं०] राजा द्रुपद की कन्या कृष्णा जो पाँचों पांडवों की ब्याही गई थी।

विशेष—राजा द्रुपद ने जब द्रोण को मारनेवाले पुत्र की कामना से पुत्रेष्टि यज्ञ किया था तब उसे धृष्टद्युम्न नाम का एक पुत्र और कृष्णा नाम की कन्या उत्पन्न हुई थी। जब कन्या बड़ी हुई तब द्रुपद ने उसका विवाह अर्जुन से करना विचार। पर लाक्षागृह में आग लगने के उपरांत जब पांडवों का पता बहुत दिनों तक न लगा तब द्रुपद ने उपयुक्त वर प्राप्त करने के लिये धूमधाम से एक स्वयंवर रचा। उसमें ऊपर एक मछली टांग दी गई जिससे कुछ नीचे हटकर एक चक्र घूम रहा था। द्रुपद ने प्रतिज्ञा की कि जो कोई उस मछली की घाल को बाण से बेधेगा उसी को द्रौपदी दी जायगी। स्वयंवर में बहुत दूर दूर से राजा लोग आए थे, पाँचों पांडव भी घूमते घूमते ब्राह्मण के वेश में वहाँ पहुँचे। जब कोई क्षत्रिय लक्ष्यभेद न कर सका तब कर्ण उठा। पर द्रौपदी ने कहा कि मैं सूतपुत्र के साथ विवाह नहीं कर सकती। अंत में ब्राह्मण वेशधारी अर्जुन ने उठकर लक्ष्यभेद किया। पाँचों पांडव उन दिनों युद्ध रूप से दृक्

ब्राह्मण के यहाँ माता सहित रहते थे। अतः द्रौपदी को लेकर पाँचो भाई ब्राह्मण के आश्रम पर गए और द्वार पर माता को पुकार कर बोले माँ, आज हम लोग एक रमणीय मिष्ठा मँगकर लाए हैं। कुंती ने भीतर से कहा, अच्छी बात है, पाँचो भाई मिलकर भोग करो। माता के वचन की रक्षा के लिये पाँचो भाइयों ने द्रौपदी को ग्रहण किया। नारद के सामने यह प्रतिज्ञा की गई कि जिस समय एक भाई द्रौपदी के पास हो उस समय दूसरा वहाँ न जाय, यदि जाय तो बारह वर्ष उसे वनवास करना पड़े। दुर्योधन के सय जुवा खेलते खेलते युधिष्ठिर जब सब कुछ हार गए तब द्रौपदी को भी हार गए। इसपर दुर्योधन ने भरी सभा में दुःशासन के द्वारा द्रौपदी को पकड़ बुलाया। दुःशासन भरी सभा के बीच उसका वस्त्र खींचना चाहता था पर वस्त्र न बिध सका। इस अपमान पर क्रुपित होकर भीम ने प्रतिज्ञा की कि दुर्योधन, जिस जंघे को तूने द्रौपदी को दिखाया है उसे मैं अवश्य तोड़ूँगा और दुःशासन का बायाँ हाथ तोड़कर उसके कलेजे का रक्तपान करूँगा। कुरुक्षेत्र के युद्ध में भीम ने अपनी यह प्रतिज्ञा पूरी की। पुराणों में द्रौपदी की गणना पंचकन्याओं में है।

पर्याय—कृष्णा। पांचाली। संरिध्री। नित्ययीवना। याज्ञसेनी। वेदिजा।

द्रौपदेय—संज्ञा पुं० [सं०] द्रौपदी के पुत्र।

द्रौह—संज्ञा पुं० [सं०] द्रुह्य के गोत्र में उत्पन्न पुरुष।

द्वंद्व—संज्ञा पुं० [सं० द्वन्द्व] १. युग्म। मिथुन। जोड़ा। उ०—प्वज कुलिश अंकुश कंजयुत वन फिरत फंटक जिन लहे। पद कंज द्वंद्व मुकुंद राम रमेश नित्य मजामहे।—तुलसी (शब्द०)। २. जोड़ा। प्रतिद्वंद्वी। ३. द्वंद्व युद्ध। दो आदमियों की परस्पर लड़ाई। ४. भगड़ा। कलह। बखेड़ा। उ०—धनि यह द्वैज लक्ष्मी ग्रहो नय्यो दग्नि दुल द्वंद्व। तुव भागनि पूरव उयो जहाँ प्रपूरव चंद—विहारी (शब्द०)।

क्रि० प्र०—मचना।—मचाना।

५. दो परस्पर विरुद्ध वस्तुओं का जोड़ा। जैसे, गर्मी सर्दी, राग द्वेष, सुख दुःख, दिन रात इत्यादि। उ०—बधुनय निरुदय द्वंद्व चनं। महिपाल विलोकिय दीनजनं।—तुलसी (शब्द०)। ६. उत्तम। बखेड़ा। अंकट। जंजाल। उ०—जो मन लागे रामचरन अम। देह गेह मुत वित कलत्र मर्हं मगन होत बिनु कतन किए अस। द्वंद्व रहित गतमान जानरन बिषमविरत सटाइ नानाकस।—तुलसी (शब्द०)। ७. कष्ट। दुःख। उ०—सोरह सहस्र जोष कुमारि। देखि सबको श्याम रीके रह्यो भुजा पसारि। बोलि लीन्हो कदम के तर इहाँ आबहु नारि। प्रगट भए तहाँ सबनि को हरि काम द्वंद्व निवारि।—सूर (शब्द०)। ८. उपद्रव। भगड़ा। ऊधम। उ०—कहा करों हरि बहुत सिखाई। सहि न सकी रिस ही रिस गरि गई बहुते ठीठ कम्हाई। मेरो कह्यो नैकु नहि मानत करत आपनी टेक। और होत उरहन लै आबत बज की बधु अनेक। किरत जहाँ तहाँ द्वंद्व मचावत घर न रहत जन एक। सूर श्याम

निभुवन को करता यशुमति कहति जनेक।—सूर (शब्द०)।
क्रि० प्र०—मचना।

९. रहस्य। गुप्त बात। १०. आशंका। मय। डर। ११. दुविधा। दोषिस्तापन। संशय। १२. वह बड़ियाल जिसपर घटा बजाया जाय (को०)। १३. व्याकरण में समास का एक भेद।

विशेष—३० 'द्वंद्व'।

द्वंद्व—संज्ञा स्त्री० [सं० दुन्दुभी] 'दुंदुभी'। उ०—बाजे डोल द्वंद्व भी भेरी। मंदिर तूर आँक बहुत फेरी।—जायसी (शब्द०)।

द्वंद्वज—वि० [सं०] ३० 'द्वंद्वज'।

द्वंद्वजुद्ध, द्वंद्वयुद्ध—संज्ञा पुं० [सं० द्वन्द्वयुद्ध] ३० 'द्वंद्वयुद्ध'। उ०—बहुरि राम सब तन चितइ बोले बचन गभीर। द्वंद्वजुद्ध देखहु सकल समित भए अति वीर।—मानस, ६। ८८।

द्वंद्वर—वि० [सं० द्वन्द्वार] भगड़ा। उ०—दीन गरीबी दीन को द्वंद्वर को अभिमान। द्वंद्वर ताँ विष से भरा दीन गरीबी जान।—कबीर (शब्द०)।

द्वंद्व—संज्ञा पुं० [सं० द्वन्द्व] १. युग्म। दो वस्तुएँ जो एक साथ हों। जोड़ा। २. स्त्री पुरुष या नर मादा का जोड़ा। ३. दो परस्पर विरुद्ध वस्तुओं का जोड़ा। जैसे, शीत उष्ण, सुख दुःख, मला बुरा, पाप पुण्य, स्वर्ग नरक इत्यादि। ४. रहस्य। भेद की बात। गुप्त बात। ५. दो आदमियों की लड़ाई। ६. भगड़ा। बखेड़ा। कलह।

क्रि० प्र०—मचना।—मचाना।

७. एक प्रकार का समास, जिसमें मिलनेवाले सब पर प्रधान रहते हैं और उनका अन्वय एक ही क्रिया के साथ होता है जैसे, हाथ पाँव बाँधो, रोटी दाल खाओ।

विशेष—यह समास और आदि संयोजक पदों का लोप करके बनाया जाया है। जैसे, -हाथ और पाँव से 'हाथ पाँव', रात और दिन से 'रात दिन'।

८. दुर्ग। किला। ९. शंका। संदेह (को०)। १०. मिथुन राशि (को०)। ११. एक प्रकार का रोग (को०)।

द्वंद्वचर—वि० [सं० द्वन्द्वचर] जोड़े के साथ चलने या रहनेवाला।

द्वंद्वचर—संज्ञा पुं० चक्रवाक। चकवा।

द्वंद्वचारी—संज्ञा पुं० [सं० द्वन्द्वचारिन्] [स्त्री० द्वंद्वचारिणी] चकवा।

द्वंद्वज—वि० [सं० द्वन्द्वज] १. सुख दुःख, राग द्वेष आदि द्वंद्वों से उत्पन्न (मनोवृत्ति)। २. कलह से उत्पन्न। ३. बात, पित्त और कफ नाम के त्रिदोषों में से दो दोषों से उत्पन्न (रोग)।

यौ०—द्वंद्वज गुल्म—बात, पित्त और कफ आदि त्रिदोषों में से किन्हीं दो दोषों से उत्पन्न गुल्म रोग। उ०—गुल्म के मिश्र लक्षण को द्वंद्वज गुल्म कहते हैं।—माधव, पु० १६७।
द्वंद्वज बवासीर—बवासीर नामक रोग जो दो दोषों के कारण होता है। उ०—दो दो दोषों के कारण और लक्षण मिलें तो द्वंद्वज बवासीर भई।—माधव, पु० ५४।

द्वंद्वतर्क—संज्ञा पुं० [सं० द्वन्द्वतर्क] द्वंद्वात्मक औत्तिकवाद का तर्क

या बनील । उ०—मनोदूत इतिहासभूत सक्रिय, सकरण, बड़ चेतन । द्वंद्वतक से अभिव्यक्ति पाता युग युग में मूलन ।—युगवाणी, पृ० ३६ ।

द्वंद्वभिः—संज्ञा स्त्री० [सं० द्वन्द्वभिः] दे० 'दुन्दुभी' । उ०—पंचम भंडा नाव वष्ट वीणा धुनि होई । सप्तम बज्रहि मेरि अष्टम द्वंद्वभि दोई ।—सुंदर मं०, भा० १, पृ० ४६ ।

द्वंद्वभूत—वि० [सं० द्वन्द्वभूत] अनिश्चित । संदेहास्पद [को०] ।

द्वंद्वमोह—संज्ञा पुं० [सं०] दुविधे के कारण उत्पन्न कष्ट । संदेहाजन्य दुःख [को०] ।

द्वंद्वयुद्ध—संज्ञा पुं० [सं० द्वन्द्वयुद्ध] वह लड़ाई जो दो पुरुषों के बीच में हो । कुशती । हाथा पाई ।

द्वंद्वी—वि० [सं० द्वन्द्वी] १. कलहप्रिय । कलहालू । २. जोड़ा तैयार करनेवाला । ३. विषम । परस्पर प्रतिकूल [को०] ।

द्वय^१—वि० [सं०] [वि० स्त्री० द्वयी] १. दो । २. द्वैत संबंधी ।

द्वय^२—संज्ञा पुं० १. युग्म । युगल । जोड़ा (समासांत में प्रयुक्त) । २. दो भिन्न प्रकार का स्वभाव या वृत्ति । ३. व्याकरण में पुं० और स्त्रीलिंग ।

द्वयवादी—वि० [सं० द्वयवादिन्] १. दुबधे की बातें करनेवाला । २. द्वैतवाद की माननेवाला [को०] ।

द्वयहीन—वि० [सं०] जो द्वय अर्थात् पुलिग और स्त्रीलिंग न हो । नपुंसक लिंग का । नपुंसक (व्याकरण) ।

द्वयान्नि—संज्ञा पुं० [सं०] लाल चोता ।

द्वयातिग—वि [सं०] जिसके सत्वगुण ने शेष दो गुणों अर्थात् रजस् और तमोगुण को दबा लिया हो । जिसमें सत्वगुण प्रधान हो, और शेष दो गुण दबकर अधीन हो गए हो ।

द्वाःस्थ—संज्ञा पुं० [सं०] १. द्वारपाल । २. नंदिकेश्वर ।

द्वाःस्थित—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'द्वास्थ' ।

द्वाष्ठा^१—संज्ञा स्त्री [सं० दुष्ठा] दे० 'दुष्ठा' । उ०—द्वाष्ठा दे दरवेश पाव नहि गारि पारि जा ।—कीर्ति०, पृ० ४२ ।

द्वा—वि० [सं० द्वि] संस्कृत द्वि का समासगत रूप ।

द्वाचत्वारिंश—वि० [सं०] बयालीसवाँ ।

द्वाचत्वारिंशत्—वि० [सं०] जो संख्या में बयालीस से दो अधिक हो । बयालीस ।

द्वाचत्वारिंशत्^२—संज्ञा पुं० [सं०] बयालीस की मर्यादा ।

द्वाज—संज्ञा पुं० [सं०] किसी स्त्री का वह पुत्र जो उसके पति से उत्पन्न न हो, दूसरे पुरुष से उत्पन्न हो । आरज । दोगला ।

द्वात्रिंश—वि० [सं०] बत्तीसवाँ ।

द्वात्रिंशत्^१—वि० [सं०] जो संख्या में तीस और दो हो । बत्तीस ।

द्वात्रिंशत्^२—संज्ञा पुं० बत्तीस की संख्या या धंक ।

द्वादश^१—वि० [सं०] १. जो संख्या में दस और दो हो । बारह । २. बारहवाँ ।

द्वादश^२—संज्ञा पुं० बारह की संख्या या धंक ।

द्वादशक—वि० [सं०] बारह का ।

द्वादशकर—संज्ञा पुं० [सं०] १. कार्तिकेय । २. बृहस्पति । ३. कार्तिकेय का एक अनुचर । ४. हर्षण योग ।

द्वादशपत्रक—संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु का द्वादशाक्षर मंत्र । २. ब्रह्मा द्वारा सनत्कुमार को उपदिष्ट योगविशेष ।

द्वादशपवन—संज्ञा पुं० [सं०] हठयोग के अनुसार वह साँस जो बारह मंगुल तक प्रसारित होती है । उ०—द्वादस पवन भर पीठा । उसट घर भीम को चढ़ाना ।—रामानंद०, पृ० ९ ।

द्वादशभाव—संज्ञा पुं० [सं०] फलित ज्योतिष में जन्मकुंडली के बारह घर त्रिनके क्रम से तनु आदि नाम फलानुसार रखे गए हैं ।

विशेष—जन्मकालीन लग्न से पहले घर से तनु (अर्थात् क्षीर कीण होगा कि स्थूल, सबल कि निर्बल, नाटा कि संवा इत्यादि), दूसरे घर से जन क्षीर कुटुंब; तीसरे से युद्ध क्षीर विक्रम आदि; चौथे से बंधु, वाहन, सुख क्षीर मालय; पाँचवें से बुद्धि, मंत्रणा क्षीर पुत्र; छठे से चोट क्षीर शत्रु, सातवें से काम, स्त्री क्षीर पथ; आठवें से आयु, मृत्यु, अपवाद आदि; नवें से गुरु, माता, पिता, पुण्य आदि; दसवें से मान, भाजा क्षीर कर्म; ग्यारहवें से प्राप्ति क्षीर आय, बारहवें घर से मंत्री क्षीर व्यव का विचार किया जाता है ।

द्वादशरात्र—संज्ञा पुं० [सं०] बारह दिनों में होनेवाला एक यज्ञ ।

द्वादशल्लोचन—संज्ञा पुं० [सं०] कार्तिकेय ।

द्वादशवर्गी—संज्ञा स्त्री [सं०] फलित ज्योतिष में नीलकण्ठ ताविक के अनुसार वर्षकाल में ग्रहों का फलाफल निकालने में बारह वर्गों की समष्टि ।

विशेष—बारह वर्ग ये हैं—क्षेत्र, होरा, द्रव्यकाण, चतुर्भाज, पंचभाज, षष्ठीय, सप्तभाज, अष्टभाज, नवभाज, दशभाज, एकादशांश और द्वादशांश ।

द्वादशवार्षिक—संज्ञा पुं० [सं०] बारह वर्ष का एक व्रत जो ब्रह्महत्या लगने पर किया जाता है ।

विशेष—इसमें हत्यारे को वन में कुटी बनाकर, सब वासनाओं को त्याग करके रहना पड़ता है । यदि वनफलों से निर्वाह न हो तो एक चिह्न धारण करके बस्ती में भिक्षा माँगनी पड़ती है ।

द्वादशशुद्धि—संज्ञा स्त्री [सं०] वैष्णव संप्रदाय में तथोक्त बारह प्रकार की शुद्धि ।

विशेष—देवगृह परिष्कार, देवगृह गमन, प्रदक्षिणा, ये तीन प्रकार की पंचशुद्धि हैं । पूजा के लिये फूल पत्ते तोड़ना, प्रतिमोक्षन (स्पर्श आदि) यह हस्तशुद्धि हुई । भगवान् का नामकीर्तन वाक्यशुद्धि है । हरिकथा श्रवण, प्रतिमा उत्सव आदि का दर्शन नेत्रशुद्धि हुई । विष्णुपादोदक और निर्माल्यधारण तथा प्रणाम शिर की शुद्धि तथा निर्माल्य और गंध पुष्पादि का सूँघना घ्राणशुद्धि है ।

द्वादशांग^१—वि० [सं० द्वादशाङ्ग] जिसके १२ अंग या अवयव हों ।

द्वादशांग^२—संज्ञा पुं० १. बारह गंधद्रव्यों के योग से बनी हुई पुजा में बचाने की धूप ।

विशेष—बारह द्रव्य ये हैं—गुग्गुल, चंदन, तेजपात, कुड, अजर, केसर, आयफल, कपूर, जटामासी, नागरमोषा, तब और लस ।

२. जैनों का वह ग्रंथसमुह जिसे वे गणधरों का बनाया मानते हैं ।

विशेष—इसके बारह भेद हैं—आचारांग, सूत्रकृतांग, स्थानांग, समावायांग, भगवत्सूत्र, ज्ञानधर्मकथा, उपासक दशांग, अंतकृद्वांग, अनुसरोपपत्तिकांग, प्रश्नव्याकरण, विपाकसूत्र और दृष्टिवाद ।

द्वादसांगी—संज्ञा स्त्री० [सं० द्वादशाङ्गी] जैनों के द्वादश ग्रंथों का समूह ।

द्वादशांगुल—संज्ञा पुं० [सं० द्वादशाङ्गुल] एक बालिष्ठ । एक बिता परिमाण । बारह अंगुल की नाप [को०] ।

द्वादशांशु—संज्ञा पुं० [सं०] बृहस्पति ।

द्वादशा०—संज्ञा पुं० [सं० द्वादशाक्ष] १. कातिकेय । उ०—उभे अष्टदश द्वादशा अक्ष कहिए पुनि बीस । है सहस्र लोचन बके सुंदर ब्रह्म न दीस ।—सुंदर प्र०, भा० २, पृ० ७९५ ।

द्वादशाक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] १. कातिकेय । २. बुद्धदेव ।

द्वादशाक्षर—संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु का एक मंत्र जिसमें बारह अक्षर हैं । वह मंत्र यह है, 'ओं नमो भगवते वासुदेवाय' ।

द्वादशाख्य—संज्ञा पुं० [सं०] बुद्धदेव ।

द्वादशात्मा—संज्ञा पुं० [सं० द्वादशात्मन्] १. सूर्य । २. आक का पेड़ ।

द्वादशायतन—संज्ञा पुं० [सं०] जैनों के दर्शन के अनुसार पाँच ज्ञानेंद्रियों, पाँच कर्मेंद्रियों तथा मन और बुद्धि का समुदाय ।

द्वादशाह—संज्ञा पुं० [सं०] १. बारह दिनों का समुदाय । २. एक यज्ञ जो बारह दिनों में किया जाता था । ३. वह आद्व जो किसी के निमित्त उसके मरने से बारहवें दिन किया जाय ।

द्वादशी—संज्ञा स्त्री० [सं०] प्रत्येक पक्ष की बारहवीं तिथि ।

द्वादस—वि० [हि०] ३० 'द्वादश' ।

यौ०—द्वादसनगर=पाँच तत्त्व, तीन गुण, मन, बुद्धि, चित्त, और अहंकार इन्होंने बारह से बना शरीररूपी नगर । द्वादशायतन । उ०—द्वादसनगर मंभार जो पुरुष बिराजहीं ।—धरम०, पृ० ४१ । द्वादस नाड़ी=द्वादश कला युक्त नाड़ी । पिंगला नाड़ी । उ०—षोडस नाड़ी चंद्र प्रकास्या द्वादसनाड़ी मानं । सहस्र नाड़ी प्राण का मेला जहाँ अर्धसं कला सिख धामं ।—गोरक्ष०, पृ० ३७ ।

द्वादसबानी०—वि० [देश०] ३० 'बारहबानी' । उ०—वह पद-मिनि चित्तवर जो धानी । काया कुंदन द्वादसबानी ।—आयसी (शब्द०) ।

द्वादसा०—संज्ञा पुं० [सं० द्वादश] प्राणवायु । उ०—द्वादसा पक्ष करि सुरति वो दल बरी । दमो परकार अनहद बजायो ।—बरख० बानी, पृ० १३६ ।

द्वादसि०—संज्ञा स्त्री० [सं० द्वादसी] ३० 'द्वादसी' । उ०—एक सप्त द्वादसि दिसि बोरी । उठे नंद कछु मति आई बोरी ।—नद० प्र०, पृ० ३१४ ।

द्वापर—संज्ञा पुं० [सं०] बारह युगों में तीसरा युग । पुराणों में यह युग ८,६४,००० वर्ष का माना गया है ।

विशेष—आदों की कृष्ण त्रयोदशी बृहस्पतिवार को इस युग की उत्पत्ति मानी गई है । मत्स्यपुराण के अनुसार द्वापर लगते ही बर्म आदि में घटती आरंभ हुई । जिनके करने से त्रेता में पाप नहीं लगता था वे सब कर्म पाप समझे जाने लगे । प्रजा लोभी हो चली । अज्ञान के कारण भुक्ति स्मृति आदि का यथाथ बोध लुप्त होने लगा । नाना प्रकार के भाष्य आदि बनने और मतभेद चलने लगे । उक्त पुराण के अनुसार द्वापर में मनुष्यों की परमायु दो हजार वर्ष की थी ।

द्वाव—संज्ञा पुं० [फ्रा० दोभावा] दो नदियों के बीच का भूभाग । उ०—प्रायः बीस वर्ष तक गंगा यमुना का द्वाव का भूभाग दक्षिण भारत के शासक के हाथों में रहा ।—पू० म० भा०, पृ० ४० ।

द्वाभा—संज्ञा स्त्री० [सं० द्वि+भाभा] रात दिन की संघिषेला । संघ्या या उषःकाल । उ०—जादों की सूनी द्वाभा में भूल रही निशि छाया गहरी । बूब रहे निःप्रभ विवाद में खेत, बाग, गृह, तह, तट सहरी ।—प्राय्या, पृ० ६४ ।

द्वामुख्यायण—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह पुरुष जो दो मनुष्यों का पुत्र हो (एक का धीरस और दूसरे का दत्ताक) । २. वह पुरुष जो दो ऋषियों के गोत्र में उत्पन्न हुआ हो । ३. उद्दालक मुनि का नाम । ४. गौतम मुनि का नाम ।

द्वा—संज्ञा पुं० [सं०] १. किसी छोड़ करनेवाली या रोकनेवाली वस्तु (जैसे, दीवार परदा आदि) में वह छिद्र या खुला स्थान जिससे होकर कोई वस्तु आरपार या भीतर बाहर जा या सके । मुल । मुहाना । मुहडा । जैसे, गंगाद्वार । २. घर में जाने आने के लिये दीवार में खुला हुआ स्थान । दरवाजा ।

मुहाना—(किसी बात के लिये) द्वार खुलना=किसी बात के बराबर होने के लिये मार्ग या उपाय निकलना । द्वार द्वार फिरना=(१) कार्यसिद्धि के लिये चारों ओर बहुत से लोगों के यहाँ जाना । (२) घर घर भीख माँगना । द्वार लगना=(१) किबाड़ बंद होना । (२) किसी आसरे में दरवाजे पर लड़ा रहना । उ०—यह जान्यो जिय राधिका द्वारे हरि लागे । गर्व कियो जिय प्रेम को ऐसे अनुरागे ।—सुर (शब्द०) । (३) चुपचाप किसी बात की आहट लेने के लिये किबाड़ के पीछे छिपकर लड़ा होना । द्वार लगाना=किबाड़ बंद करना ।

३. इंदियों का मार्ग या छेद । जैसे, आँख, कान, मुँह, नाक आदि । उ०—नो द्वारे का पीँजरा तामें पंछी पोन । रहने को आश्चर्य है, गए अचंसा कोन ।—कबीर (शब्द०) । ४. उपाय । साधन । जरिया । जैसे,—दया कमाने का द्वार ।

विशेष—सांख्यकारिका में अंतःकरण ज्ञान का प्रधान स्थान कहा गया है और ज्ञानेंद्रियाँ उसका द्वार बतलाई गई हैं ।

द्वाकण्टक—संज्ञा पुं० [सं० द्वारकण्टक] १. किबाड़ । कपाट । २. द्वार की भंगला या सिटिकनी ।

द्वाकपाट—संज्ञा पुं० [सं०] द्वार या दरवाजे का पल्ला [को०] ।

द्वारका—संज्ञा स्त्री० [सं०] काठियावाड़ गुजरात की एक प्राचीन नगरी । उ०—धर पिच्छम निरक्षण मनधारे । परसख हरि द्वारका पधारे ।—रा० क०, पृ० १२ ।

विशेष—पुराणानुसार यह सात पुरियों में मानी गई है । यही द्वारकानाथ जी का मंदिर है । हिंदू लोग इसे चार धामों में मानते हैं और बड़ी श्रद्धा से यही आकर स्नान लेते हैं । इसे द्वारावती भी कहते हैं । यही श्रीकृष्णचंद्र जरासंध के उत्पातों के कारण मथुरा छोड़कर जा बसे थे । यही उस समय यादवों की राजधानी थी । पुराणों में लिखा है कि श्रीकृष्ण के देह-स्थान के पीछे द्वारका समुद्र में मग्न हो गई । पोरबंदर से १५ कोस दक्षिण समुद्र में इस पुरी का स्थान लोग अब तक बताते हैं । द्वारका का एक नाम कुण्डस्थली भी है ।

द्वारकाधीश—संज्ञा पुं० [सं०] १. श्रीकृष्णचंद्र । २. कृष्ण की वह मूर्ति जो द्वारका में है ।

द्वारकानाथ—संज्ञा पुं० [सं०] १. कृष्णचंद्र । २. कृष्णचंद्र की वह मूर्ति जो द्वारका में है ।

द्वारकेश—संज्ञा पुं० [सं०] द्वारकानाथ ।

द्वारगोप—संज्ञा पुं० [सं०] द्वाररक्षक । द्वारपाल (को०) ।

द्वारचार—संज्ञा पुं० [सं० द्वार + चार (= व्यवहार)] वह रीति जो लड़कीवाले के दरवाजे पर बारात पहुँचने पर पर होती है ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

द्वारछेकाई—संज्ञा स्त्री० [हि० द्वार + छेकना] १. विवाह में एक रीति । जब वर विवाह कर मधू समेत अपने पर माता है तब कोहबर के द्वार पर उसकी बहन उसकी राह रोकती है । उस समय वर कुछ नेग देता है तब वह राह छोड़ देती है । २. वह नेग जो द्वारछेकाई में दिया जाता है ।

द्वारदर्शी—संज्ञा पुं० [सं० द्वारदर्शिन] द्वारपाल । दरवान (को०) ।

द्वारद्वार—संज्ञा पुं० [सं०] सागीन की एकड़ी (को०) ।

द्वारनायक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'द्वारप' (को०) ।

द्वारपंडित—संज्ञा पुं० [सं० द्वारपण्डित] १. किसी राजा के यहाँ का प्रधान पंडित । २. विद्यार्थियों की जाँच पड़ताल करके उन्हें गुरुकुल या विद्यालय के द्वार के भीतर प्रवेश की अनुमति देनेवाला पंडित । उ०—द्वारपंडित (विद्यार्थियों को प्रवेश करानेवाले) धर्मकोष आदि प्रमुख विश्वविद्यालय के कर्मचारी थे ।—आ० भा०, पृ० ४६३ ।

द्वारप—संज्ञा पुं० [सं०] १. द्वारपाल । उ०—पदभूष तब कोपित वेषा । दियो द्वारपन तुरत संदेसा ।—सूक्त (स० १०) । २. विष्णु ।

द्वारपटी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. द्वारपर टंगा हुआ परदा । चिक (को०) ।

द्वारपट्ट—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'द्वारपटी' (को०) ।

द्वारपाल—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० द्वारपाली, द्वारपालिन] १. वह पुरुष जो दरवाजे पर रक्षा के लिये नियुक्त हो । ड्योड़ीदार । दरवान ।

पर्या०—प्रतीहार । दाःस्थ । द्वारप । दशक । दीःसाधिक । बर्त-रूप । गर्बाट । द्वारस्थ । क्षता । दीवारिक । दंडी ।

२. तंत्र के अनुसार वह देवता जो किसी मुख्य देवता के द्वार का रक्षक हो । इन देवताओं की पूजा पहले की जाती है । ३. एक तीर्थ । महाभारत में इसे सरस्वती के किनारे लिखा है ।

द्वारपालक—संज्ञा पुं० [सं० द्वारपाल] ।

द्वारपिंडी—संज्ञा स्त्री० [सं० द्वारपिण्डी] देहली । ड्योड़ी । बहलीज ।

द्वारपिधान—संज्ञा पुं० [सं०] प्ररगल । दरवाजा बंद करने के लिये लगी हुई किल्ली (को०) ।

द्वारपूजा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. विवाह में एक कृत्य जो कन्यावाले के द्वार पर उस समय होता है जब बारात के साथ वर पहले पहल आता है । कन्या का पिता द्वार पर स्थापित कलश आदि का पूजन करके अपने छट मित्रों सहित वर को उत्तारता और मधुपर्क देता है । २. जैनों की एक पूजा ।

द्वारबलिभुक्—संज्ञा पुं० [सं०] १. बक । बगला । २. काक । कौआ ।

द्वारबलिभुज—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'द्वारबलिभुक्' ।

द्वारयंत्र—संज्ञा पुं० [सं० द्वारयन्त्र] ताला ।

द्वारवती—संज्ञा स्त्री० [सं०] द्वारावती । द्वारका ।

द्वारसमुद्र—संज्ञा पुं० [सं०] दक्षिण का एक पुराना नगर ।

विशेष—यहाँ कर्नाटक के राजाओं की राजधानी थी । इसके सड़हर अब तक श्रीरंगपट्टन से वायुकोण पर सी मील पर है ।

द्वारस्थ—वि० [सं०] जो द्वार पर बैठा हो ।

द्वारस्थ—संज्ञा पुं० द्वारपाल ।

द्वारा—संज्ञा पुं० [सं० द्वार] १. द्वार । दरवाजा । फाटक । उ०—
नुनि के शब्द भेटफ भनकारा । बैठे भय पुरुष के द्वारा ।—
जायसी (शब्द०) । २. मार्ग । राह । उ०—साधन नाम
मोच्छ करि द्वारा । पाइ न जेहि परलोक संवारा ।—तुलसी
(शब्द०) ।

द्वारा—अव्य० [सं० द्वारान्] जरिए से । बसीले से । साधन के ।
हेतु से । कारण से । कर्तृत्व से । मार्फत ।

मुद्रा—किसी के द्वारा = (१) किसी के करने से । जैसे,—यह
कार्य उसी के द्वारा हुआ है । (२) किसी के योग या सहायता
से । किसी की मध्यस्थता द्वारा । किसी के मार्फत । जैसे,—
चिट्ठी माधमी के द्वारा भेज दो । (३) किसी वस्तु के उपयोग
से जैसे,—मशीन के द्वारा काम चलती होया ।

द्वाराचार—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'द्वारचार' ।

द्वारादेयशुल्क—संज्ञा पुं० [सं०] कीटस्थ के अनुसार द्वार पर देव
कर । दरवाजे पर लिया जानेवाला महसूल । चुंगी ।

द्वाराधिप—संज्ञा पुं० [सं०] द्वारपाल ।

द्वाराध्यक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'द्वाराधिप' (को०) ।

द्वारापुर—संज्ञा पुं० [सं० द्वार + पुर] द्वारकापुरी । द्वारावती ।
उ०—हालाँकि ते बेहाल, स्वप्न द्वारापुर भायो । चोकि चकित
हैं रहै रूप बेरी को छायो ।—नट०, पृ० ४३ ।

द्वारामती—संज्ञा स्त्री० [सं० द्वारावती] दे० 'द्वारावती' । उ०—
द्वारामती शरीर न छाड़ा । जगननाथ से प्यंड नगाड़ा ।
—कबीर ग्रं०, पृ० २४३ ।

द्वारावति^(७)—संज्ञा स्त्री० [सं० द्वारावती] दे० 'द्वारावती' । उ०—
ग्रहो चंद रस कंद हो, जात अगहि उहि देख । द्वारावति नंद-
नंद सौं, कहियो बलि संदेस ।—नंद०, ग्रं०, पृ० १६२ ।

द्वारावती—संज्ञा स्त्री० [सं०] द्वारका ।

द्वारासन—संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार वैकुण्ठ के द्वार पर स्थित
आसन जिसके द्वारपाल जय और विजय कहे गए हैं । उ०—
हिरनाकुश पर जन्म धराई । सो द्वारासन लेही भाई ।—
कबीर सा०, पृ० ८४६ ।

द्वारिक—संज्ञा पुं० [सं०] द्वारपाल । दरबान ।

द्वारिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'द्वारका' । उ०—पूर्व में सबिया
परशुराम कुंड से द्वारिका तक ही पहुंच पाए ।—किन्नर०,
पृ० १०२ ।

द्वारी^१—संज्ञा स्त्री० [सं० द्वार + ई (प्रत्यय)] छोटा द्वार । दरवाजा ।
उ०—द्वारी निहारि पछोति की भीति में डेर सखी मुल बात
सुनाई ।—प्रताप (शब्द०) ।

द्वारी^२—संज्ञा पुं० [सं० द्वारिन्] द्वारपाल ।

द्वाल—संज्ञा पुं० [फ्रा० दुवाल] दे० 'दुवाल' ।

द्वालबंद—संज्ञा पुं० [फ्रा० दुवालबंद] दे० 'दुवालबंद' । उ०—
द्वालबंद कर कसे कमाने तीर अचूक ना होई ।—स० दरिया,
पृ० ११० ।

द्वाला^(७)—संज्ञा पुं० [हिं०] दल, छंद या गीत का चरण । उ०—
विष अवर अवर दालो बगै जात विरूप सो जाणै ।
—रघु० क०, पृ० १४ ।

द्वाली—संज्ञा स्त्री० [देश०] दे० 'दुवाली' ।

द्वारिंश—वि० [सं०] बाईसवां ।

द्वारिंशति—वि० [सं०] जो संख्या में बीस और दो हो । बाईस ।

द्वारिष्ठ—वि० [सं०] बासठवां ।

द्वारिष्ठि—वि० [सं०] जो गिनती में साठ और दो हो । बासठ ।

द्वारिष्ठत—वि० [सं०] बहत्तरवां ।

द्वारिष्ठति—वि० [सं०] जो गिनती में सत्तर और दो हो । बहत्तर ।

द्वारिष्ठ—संज्ञा पुं० [सं०] द्वारपाल ।

द्विः—अव्य० [सं० द्विर्] दो बर्फ । दो बार [कौ०] ।

द्वि—वि० [सं०] दो ।

द्विक^१—वि० [सं०] १. जिसमें दो अवयव हों । २. दोहरा । ३.
दूसरा । द्वितीय (कौ०) ।

द्विक^२—संज्ञा पुं० [सं०] १. काक । २. कोक । चकवा ।

द्विककार—संज्ञा पुं० [सं०] १. चक्रवाक । चकवा । २. कौवा [कौ०] ।

द्विककुट्ट—संज्ञा पुं० [सं०] ऊँट ।

द्विकर—संज्ञा पुं० [सं०] दोनों हाथ । उ०—ग्रहो मेरे द्विकर, ग्रहो, मेरे
अवर, ग्रहो मेरे इतर, ग्रहो मेरे अयन ।—द्वारावती, पृ० ४७ ।

द्विकर्मक—वि० [सं०] (क्रिया) जिसके दो कर्म हों ।

द्विकल—संज्ञा पुं० [हिं० द्वि + कल] छंदशास्त्र या पिंगल में दो
मात्राओं का समूह ।

विशेष—यह दो प्रकार का होता है : एक में तो तीनों मात्राएँ
पृथक् पृथक् रहती हैं, जैसे, --जन, जन, जन, धन इत्यादि
और दूसरे में एक ही अक्षर दो मात्राओं का होता है जैसे,—
सा, जा, ला, घा, का इत्यादि ।

द्विक्षार—संज्ञा पुं० [सं०] छोरा और मज्जी ।

द्विगु^१—वि० [सं०] जिसमें दो गाएँ हों ।

द्विगु^२—संज्ञा पुं० वह कर्मधारय समास जिसका पूर्वपद संख्या-
वाचक हो ।

विशेष—यह समास तीन प्रकार का होता है—तद्धितार्थ, जैसे—
पंचगु अर्थात् जिसे पाँच गो देकर मोल लिया हो; उत्तरपद,
जैसे,—पंचकोण अर्थात् जिसमें पाँच कोण हों; और समा-
हार, जैसे, त्रि-लोक, अर्थात् तीनों लोक, त्रिभुवन । पाणिनि
ने इस समास को अभास के अंतर्गत रखा है पर और
वैयाकरण इसे एक स्वतंत्र समास मानते हैं ।

द्विगुण—वि० [सं०] दुगुना । दूना ।

द्विगुणित—वि० [सं०] १. दो से गुणा किया हुआ । जिसे दुगुना
किया गया हो । २. दूना । दुगुना । उ०—नौका मेरी
गति से चल गड़ी ।—अरुण, पृ० ३४ ।

द्विगुह—संज्ञा पुं० [सं० द्विगूह] नाट्य के दस अंगों में से एक । वह
गीत जिसमें सब पद सम और सुंदर हों, संघिया वर्तमान
द्विगुणित हों तथा रस और भाव सुमंगल हों (नाट्यशास्त्र) ।

द्विचटिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] दो चट्टियों के हिमाब से निकाला
हुआ मुहूर्त ।

विशेष—यह मुहूर्त होरा के अनुसार निकाला जाता है । रात
दिन की साठ चट्टियों को दो दो चट्टियों में विभक्त कर देते
हैं और फिर शुभाशुभ का विचार करते हैं । इस मुहूर्त में
दिन का विचार नहीं होता । सब दिन सब ओर की यात्रा
हो सकती है । इसका आचार्य उग्र-सूत्र पर होता है जहाँ
कई दिन ठहरने पर रहने का आचार्य होता है ।

द्विचत्वारिंश—वि० [सं०] ब्यासीसवां ।

द्विचत्वारिंशतु—वि० [सं०] जो चत्वारिंशतु से अधिक हो । ब्यासीस ।

द्विचरण—संज्ञा पुं० [सं०] दो पैरों से चलने वाला [कौ०] ।

द्विज^१—संज्ञा पुं० [सं०] जो दो बार उत्पन्न हुआ हो । जिसका जन्म
दो बार हुआ हो ।

द्विज^२—संज्ञा पुं० [सं०] १. भंडव पाणी । २. पक्षी । ३. हिंदुओं में
ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य वर्गों के पुरुष त्रिनको शास्त्रानुसार
यज्ञोपवीत धारण करने का अधिकार है । मनु के धर्मशास्त्र
के अनुसार यज्ञोपवीत मनुष्य का दूसरा जन्म माना गया है ।
४. ब्राह्मण । उ०—जीवी कोरि बरीम असीसत द्विज बंदी-
जन बोलत बिहदाय ।—घनानंद, पृ० ४८० । ५. चंद्रमा ।

विशेष—पुराणों में कहा है कि चंद्रमा का दो बार जन्म हुआ था। एक बार ये ऋषिपुत्र हुए थे और दूसरी बार समुद्र के मंथन के समय समुद्र से निकले थे।

१. दांत। उ०—द्विज पंखों को कहत कवि, द्विज कहिए पुषि चंत। तीन बहन द्विज तब भले, जब जानै भगवंत।—अनेकार्य०, पृ० १३५। ७. तुंगुरु। नेपाली धनियाँ। ८. तारा। तारका (की०)। ९. अश्वचिकित्सा के अनुसार एक प्रकार का घोड़ा। अश्व का एक भेद (की०)।

द्विजचक्र(५)—संज्ञा पु० [सं०] ब्राह्मण वर्ष। ब्राह्मणों का समूह। उ०—मंद करी मुख रवि चंद चकता की कियो भूषन भुषित द्विजचक्र जान पान सों।—भूषण प्र०, पृ० ४२।

द्विजजानि—संज्ञा पु० [सं०] दो पत्नीवाला पुरुष। वह जिसकी दो पत्नियाँ हों (की०)।

द्विजता—संज्ञा की० [सं०] ब्राह्मणत्व। द्विजत्व। उ०—द्विजता तक आतायिनी, वध में है कब बोधदायिनी।—साकेत, पृ० ३७५।

द्विजदंपति—संज्ञा पु० [सं० द्विज + दम्पती] चाँदी का एक पत्तर जिसपर स्त्री पुरुष या लक्ष्मीनारायण का युगल चित्र खुदा रहता है। यह स्त्रियों के मृतक कर्म में ब्रह्मा के बाद ब्राह्मण को दान में दिया जाता है।

द्विजदेव—संज्ञा पु० [सं०] अयोध्यानरेश महाराज मानसिंह का कविता में प्रयुक्त उपनाम। उ०—गिरिधरदास (भारतेंदु के पिता) और द्विजदेव (अयोध्यानरेश महाराज मानसिंह) और सेवक बहुत अच्छे कवि हुए।—प्रेमचन०, भा० २, पृ० ३६६।

द्विजनारि(५)—संज्ञा की० [सं० द्विज + नारी] ब्राह्मणी। उ०—जमुमति महाप्रवीन एक द्विजनारि बुलाई।—नंद० प्र०, पृ० १६४।

द्विजन्मा^१—वि० [सं० द्विजन्मन्] जिसका दो बार जन्म हुआ हो।

द्विजन्मा^२—संज्ञा पु० ३० 'द्विज'।

द्विजपति—संज्ञा पु० [सं०] १. ब्राह्मण। २. चंद्र। ३. कपूर। ४. गरुड़।

द्विजप्रिया—संज्ञा की० [सं०] सोम।

द्विजवंधु—संज्ञा पु० [सं० द्विजवन्धु] संस्कार या कर्महीन द्विज। नाममान का द्विज।

द्विजशुभ—संज्ञा पु० [सं०] १. नाममान का द्विज, जिसका जन्म तो द्विज माता पिता से हुआ हो पर वह स्वयं द्विजों के संस्कार और कर्म से हीन हो। २. ब्राह्मणशुभ। नाम मान का ब्राह्मण।

द्विजराज—संज्ञा पु० [सं०] १. ब्राह्मण। २. चंद्रमा। ३. कपूर। ४. गरुड़। ५. श्रेष्ठ ब्राह्मण।

द्विजलिङ्गो—संज्ञा पु० [द्विजलिङ्गिन्] १. शूद्र या दूसरे वर्ण का होकर ब्राह्मण का वेश धारण करनेवाला मनुष्य।

विशेष—मनु ने ऐसे मनुष्य का दंड बंध लिखा है।

२. क्षत्रिय।

द्विजबाहन—संज्ञा पु० [सं०] विष्णु।

द्विजव्रण—संज्ञा पु० [सं०] दाँत का एक रोग। दाँताबुंद।

द्विजशप्त—संज्ञा पु० [सं०] बवंट। भटवांस। (ब्राह्मण इसे नहीं खाते)।

द्विजसेवक—संज्ञा पु० [सं०] द्विज का सेवक। शूद्र (की०)।

द्विजांगिका—संज्ञा की० [सं० द्विजाङ्गिका] कुटकी।

द्विजांगी—संज्ञा की० [सं० द्विजाङ्गी] कुटकी।

द्विजा—संज्ञा की० [सं०] १. ब्राह्मण या द्विज की स्त्री।

२. रेणुका। संभालू का बीज। यह गंधद्रव्यों में है। ३.

पासक का शाक (यह एक बार काटे जाने पर फिर होता है)। ४. भारंगी। ५. पान की बेल। उ०—साँझी,

अहिबलरी, द्विजा, पान की बेल।—मंद प्र०, पृ० १०९।

द्विजाग्रज—संज्ञा पु० [सं०] ब्राह्मण।

द्विजाग्र्य—संज्ञा पु० [सं०] ब्राह्मण।

द्विजाति—संज्ञा पु० [सं०] १. ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य, जिनको शास्त्रानुसार यज्ञोपवीत धारण करने का अधिकार है। द्विज। २. ब्राह्मण। ३. प्रंजव। ४. पत्नी। ५. दाँत।

द्विजानि—संज्ञा पु० [सं०] वह पुरुष जिसके दो स्त्रियाँ हों।

द्विजायनी—संज्ञा की० [सं०] यज्ञोपवीत।

द्विजिह्व^१—वि० [सं०] १. जिसे दो जीभें हों। २. इधर उधर लगाने-वाला। सूचक। युगलखोर। ३. जल। दुष्ट। ४. चोर। ५. दुःसाध्य।

द्विजेह्व^२—संज्ञा पु० [सं०] १. साँप। २. एक रोग।

द्विजेन्द्र—संज्ञा पु० [सं० द्विजेन्द्र] १. चंद्रमा। २. ब्राह्मण। ३. गरुड़। ४. कपूर।

द्विजेन्द्रलक्ष—संज्ञा पु० [सं०] बँगला भाषा के स्यातनाम कवि और नाटककार का नाम।

द्विजेरा—संज्ञा पु० [सं०] १. चंद्रमा। २. ब्राह्मण। ३. कपूर। ४. गरुड़।

द्विजोत्तम—संज्ञा पु० [सं०] द्विजों में श्रेष्ठ। ब्राह्मणश्रेष्ठ।

द्विट—संज्ञा पु० [सं०] द्विष् शब्द का समासगत रूप।

द्विट्सेवी—संज्ञा पु० [सं० द्विट्सेविन्] राजकनूसेवी। वह जो राजा के शत्रु से मिला हो या मित्रता रखता हो।

विशेष—मनु ने ऐसे मनुष्य का दंड बंध लिखा है।

द्विट—संज्ञा पु० [सं०] १. विसर्ग। २. स्वाहा।

द्वित—संज्ञा पु० [सं०] १. एक देवता का नाम। २. एक ऋषि का नाम जो तीन भाई थे—एकत, द्वित और त्रित।

द्वितय^१—वि० [सं०] [वि० की० द्वितयी] १. जिसके दो अंग हों। जो दो से मिलकर बना हो। २. दोहरा।

द्वितय^२—संज्ञा पु० जोड़ा। मिथुन (की०)।

द्वितिय(५)—वि० [सं० द्वितीय] [वि० की० द्वितीया] ३० 'द्वितीय'। उ०—(क) बाएँ दाहिने हैं सहिदानी। एक द्विज वर्ण द्वितिय वर्ण जानी।—कबीर सा०, पृ० ८९। (ख)

प्रथमा, द्वितीया, तृतीया आदि ।—शोहर अभि०
प्र०, पु० ३२१ ।

द्वितीय^१—वि० [सं०] [वि० ली० द्वितीया] दूसरा ।

द्वितीय^२—संज्ञा पु० १. पुत्र ।

विशेष—आत्मा ही पुत्र रूप से जन्म ग्रहण करता है । इससे
यह नाम पड़ा ।

२. साथी । सहायक । मित्र (विशेषतः समासांत में प्रयुक्त) ।
३. जोड़ । समकक्ष (की०) । ४. वर्ग का दूसरा प्रक्षर—ख,
ख, ठ, थ और फ (की०) । ५. मध्यम पुरुष (व्याकरण) ।
६. भाषा । अर्धभाग (की०) ।

द्वितीय—कि० वि० [सं० द्वितीयम्] दूसरी बार । फिर (की०) ।

द्वितीयक—वि० [सं०] दूसरा ।

द्वितीयत्रिफला—संज्ञा ली० [सं०] गंधारी ।

द्वितीया—संज्ञा ली० [सं०] १. प्रत्येक पक्ष की दूसरी तिथि । दूज ।
२. वाम भाग के अनुसार मांस । ३. पत्नी । स्त्री ।
सहधर्मिणी (की०) ।

द्वितीयाकृत—वि० [सं०] जेत जो दो बार जोता गया हो ।

द्वितीयाभा—संज्ञा ली० [सं०] दाहहृत्दी ।

द्वितीयाश्रम—संज्ञा पु० [सं०] गार्हस्थ्य आश्रम ।

द्विरच—संज्ञा पु० [सं०] १. दो भाव । २. दोहरे होने का भाव ।
२. दो की संख्या (की०) ।

द्विदंश—वि० [सं० द्विदंश] दो दाँतोंवाला । जिससे दो दाँत हों ।

द्विदंश^१—वि० [सं०] १. जिसमें दो दल या पंख हों । जो दो पैरों
संघों से मिलकर बना हो जो खूब जुड़े हों, पर कटने,
दवाने आदि से बखल हो सकें । जैसे, घरद्वार, बना आदि
अल । २. जिसमें दो पंख हों । ३. जिसमें दो पटल या पंख-
द्विधौ हों । ४. जिसमें दो दल हों । जिसमें दो गुट हों ।

द्विदंश^२—संज्ञा पु० वह अल जिसमें दो दल हों । बाल ।

द्विदंश शासनप्रणाली—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की
शासन प्रणाली या सरकार जिसमें शासन अधिकार दो भिन्न
व्यक्तियों के हाथ में रहता है । द्वैत शासनप्रणाली । दुहस्ता
शासन । वि० दे० 'द्वैतार्थी' ।

द्विदश—वि० [सं० द्वि + दश] बारह । उ०—ये कार्य भी द्विदश
वत्सर की अवस्था । ऊँचो न क्यों फिर नरत्न मुकुट होंगे ।—
प्रिय०, पु० १९९ ।

द्विदामा—संज्ञा ली० [सं०] दे० 'द्विदाम्नी' । २. दो रस्तियों से
बँधी हुई चोड़ी । उ०—दो रस्तियों में बँधी हुई चोड़ी द्विदामा
तथा जुनी हुई चोड़ी उदामा कही जाती थी ।—संपूर्णा०
अभि० प्र०, पु० २८४ ।

द्विदाम्नी—संज्ञा ली० [सं०] वह गाय जो दो रस्तियों से बँधी हो ।
चटखट गाय ।

द्विदेवता^१—वि० [सं०] १. दो देवताओं के संबंध रखनेवाला
(चर आदि) । जो दो देवताओं के लिये हो । २. जिसके
दो देवता हों ।

द्विदेवता^२—संज्ञा पु० विष्णुवा नक्षत्र ।

द्विदेह—संज्ञा पु० [सं०] गणेश ।

विशेष—पुराणों में कहा है कि गणेश का सिर एक बार कट
गया था, फिर हाथी का सिर जोड़ा गया था ।

द्विद्वादश—संज्ञा पु० [सं०] फलित ज्योतिष का एक योग । जब
बर के जन्मलग्न से कन्या का जन्मलग्न दूसरे पक्षे और कन्या
के जन्मलग्न से बर का जन्मलग्न बारहवें पक्षे तो उसे 'द्विद्वादश'
कहते हैं । यह विवाह की गणना में प्रतिशय अशुभ माना
गया है ।

द्विध—वि० [सं०] दो भागों में बँटा हुआ ।

द्विधा^१—कि० वि० [सं०] १. दो प्रकार से । दो तरह से । २. दो
संघों में । दो टुकड़ों में ।

द्विधा^२—संज्ञा ली० [द्वि० दुबधा] दे० 'दुबधा' । उ०—द्विधा रहित
अपलक नयनों की भूखमरी दर्शन की प्यास ।—कामायनी,
पु० १२ ।

द्विधाकरण—संज्ञा पु० [सं०] दो हिस्सों में बाँटना । दो भागों में
विभाजन (की०) ।

द्विधागति—संज्ञा पु० [सं०] १. उभर जंतु । २. मगर । ३.
केकड़ा (की०) ।

द्विधातु^१—वि० [सं०] जो दो वातुओं के संयोग से बना हो ।

द्विधातु^२—संज्ञा पु० १. दो वातुओं मेल से बनी हुई मिश्रित वातु ।
२. गणेश ।

द्विधात्मक—संज्ञा पु० [सं०] जायफल ।

द्विधाद्वंद्व—संज्ञा पु० [सं० द्विधाद्वंद्व] १. संदेह । भ्रम । २. विघ्न ।
बाधा (की०) ।

द्विधालेख्य—संज्ञा पु० [सं०] हिताल का पेड़ ।

द्विदग्धक—संज्ञा पु० [सं०] दे० 'दुग्धर्मा' ।

द्विदधति—वि० [सं०] बानवे ।

द्विनेत्रभेदी—संज्ञा पु० [सं० द्विनेत्रभेदिन्] वह मनुष्य जिसने किसी
की दोनों आँखें फोड़ दी हों ।

विशेष—कोटिल्य ने यह लिखा है कि जो लोग यह अपराध
करते थे उनकी दोनों आँखें योगांजन लगाकर फोड़ दी जाती
थीं । घुरमाने के रूप में ८०० पण देकर लोग इस दंड से बच
सकते थे ।

द्विपंचमूली—संज्ञा ली० [सं० द्विपञ्चमूली] दशमूली ।

द्विपंचाशत्—वि० [सं०] बावन ।

द्विपंचाशत्तम—वि० [सं० द्विपञ्चाशत्तम] बावनवाँ ।

द्विप—संज्ञा पु० [सं०] १. हाथी । २. नागकेसर ।

द्विपक्ष^१—वि० [सं०] १. जिसके दो पक्ष हों । २. जिसमें दो पक्ष हों ।

द्विपक्ष^२—संज्ञा पु० १. पक्षी । चिड़िया । २. महीना । मास ।

द्विपक्षमूली—संज्ञा पु० [सं०] दशमूल ।

द्विपटवान—संज्ञा पु० [सं०] कोटिल्य के अनुसार दोहरे अर्थ का
कपड़ा ।

द्विपथ—संज्ञा पुं० [सं०] वह स्थान जहाँ दो पथ आकर मिलते हैं। दोराहा।

द्विपद^१—वि० [सं०] १. जिसके दो पैर हों। जैसे, मनुष्य, पदी।
२. जिसमें दो पद या शब्द हों।

द्विपद^२—संज्ञा पुं० १. वह जंतु जिसके दो पैर हों। २. मनुष्य। ३. ज्योतिष के अनुसार मिथुन, तला, कुम्भ, कन्या और मनु लग्न का पूर्व भाग। ४. आगम का एक कोटा।

द्विपदा—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह प्रत्यय जिसमें केवल दो पद या पाद हों।

द्विपदिक—संज्ञा पुं० [सं०] शृङ्गाय का एक भेद।

द्विपदिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. 'द्विपदी' की०।

द्विपदी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. वह छंद या धारा जिसमें दो पद हों।
२. दो पदों का गीत। ३. एक प्रकार का चित्र काव्य जिसमें किसी दोहे आदि का शायरी का तीन पंक्तियों में लिखते हैं।

विशेष—यह चित्र काव्य इस प्रकार लिखने है कि दोहे के पहले चरण का आदि अक्षर पहले कोठे में, फिर एक-एक अक्षर छोड़कर पहली पंक्ति के कोठों में भरता है, इसके उपरान्त छूटे हुए अक्षरों को दूसरी पंक्ति के कोठों में एक-एक करके रख देते हैं। इसी प्रकार तीसरी पंक्ति के कोठों में बाँचे के दूसरे अक्षरों के अक्षर, एक-एक पंक्ति छोड़ते हुए, रखते हैं। इसी तीन कोष्ठ पंक्तियों से पूरा दोहा पढ़ लिया जाता है। पढ़ने का क्रम यह होना चाहिए कि पहले कोठे के अक्षर को पढ़कर उसके नीचेवाले कोठे के अक्षर को पढ़ें, फिर पहली पंक्ति के दूसरे अक्षर को पढ़कर उसके नीचे के (दूसरी पंक्ति के दूसरे) कोठे के अक्षर को पढ़ें तीसरी पंक्ति के कोठों के अक्षरों को नीचे से ऊपर इस क्रम से पढ़ें अर्थात् प्रथम द्वितीय कोष्ठ के क्रम से पढ़कर फिर तृतीय द्वितीय कोष्ठ के अक्षरों को पढ़ें, जैसे,—

रा	दे	न	दे	ग	प	गु	र	म	धा
म	व	र	य	ति	र	ष	न	द	रि
बा	दे	ग	दे	ग	प	कु	र	ह	बा

राभदेव नरदेव गति, परगु धन मद धारि।

वामदेव गुरदेव गति, पर कुपयन इव धारि।

द्विपर्णी—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार के जंगली बेर का पेड़। बनकीली।

द्विपाद^१—वि० [सं०] १. जिसमें दो पैर हों। दो पैरोंवाला (पशु)।
२. जिसमें दो पद या चरण हों (छंद आदि)।

द्विपाद^२—संज्ञा पुं० मनुष्य, पक्षी आदि दो पैरवाले जंतु।

द्विपादवध—संज्ञा पुं० [सं०] दो पैर काटने का दंड।

विशेष—कोटिल्य ने लिखा है कि जो लोग मृग पुरुष की जाय-दाव आदि की शरीर करते थे, उन्हें यह दंड दिया जाता था।

द्विपाथ—संज्ञा पुं० [सं०] निर्दिष्ट दंड से दूना दंड की०।

द्विपाथी—संज्ञा पुं० [सं० द्विपाथिन्] [स्त्री० द्विपाथिनी] हाथी।

द्विपाथ्य—संज्ञा पुं० [सं०] गणेश (जिनका मुख हाथी के मुख के समान है)।

द्विपृष्ठ—संज्ञा पुं० [सं०] जैनों के भी वासुदेवों में से एक।

द्विबाहु^१—वि० [सं०] जिसके दो बाहु हों। द्विभुज।

द्विबाहु^२—संज्ञा पुं० मनुष्य आदि दो पैरवाले जीव।

द्विबिंदु—संज्ञा पुं० [सं० द्विबिन्दु] विसर्ग (:)।

द्विभात—संज्ञा पुं० [सं०] प्रकाश। चमक। द्वाभा [स्त्री०]।

द्विभाव^१—संज्ञा पुं० [सं०] दो भाव। दुराव।

द्विभाव^२—वि० जिसमें दो भाव हों। कपटी। बुरे स्वभाव का।

द्विभाषी—संज्ञा पुं० [सं० द्विभाषिन्] [स्त्री० द्विभाषिणी] वह पुरुष जो दो भाषाएँ जानता हो। दुभाषिया।

द्विभुज^१—वि० [सं०] जिसके दो हाथ हों। दो हाथवाला।

द्विभुज^२—संज्ञा पुं० कोण। वह स्थान जहाँ दो भुज मिलें।

द्विभूम—वि० [सं०] दोतला (घर)।

द्विमातृ—संज्ञा पुं० [सं०] (दो माताओं के गर्भ से उत्पन्न) जरासंध।

द्विमातृज—संज्ञा पुं० [सं०] (दो माताओं के गर्भ से उत्पन्न) १. जरासंध। २. गरुड।

द्विमात्र—संज्ञा पुं० [सं०] वह वर्ण जो दो मात्राओं का हो। दीर्घ। जैसे,—आ, ऊ, की इत्यादि।

द्विमीढ—संज्ञा पुं० [सं०] हरिवंश के अनुसार हस्तिनापुर बसानेवाले महाराज हस्ति का एक पुत्र। यह अजमीढ़ का भाई था।

द्विमुख—वि० [सं०] [वि० स्त्री० द्विमुखा] जिसके दो मुँह हों।

द्विमुख^२—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक प्रकार के कृमि जो पेट के भल में उत्पन्न हो जाते हैं। २. दो मुँहवाला साँप। भूँगी।

द्विमुखा—संज्ञा स्त्री० [सं०] जोंक।

द्विमुखी^१—वि० स्त्री० [सं०] दो मुँहवाली।

द्विमुखी^२—संज्ञा स्त्री० १. वह गाय जो बच्चा दे रही हो।

विशेष—बच्चा देत समय गाय के पीछे की ओर बच्चे का मुँह निकलता है, इससे देखने में गाय के दोनों ओर मुँह दिखाई पड़ता है। ऐसी गाय के दान का बड़ा माहात्म्य समझा जाता है।

द्वियजुष^१—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की ईंट जो यज्ञों में यज्ञकुंड, मंडप आदि बनाने में काम आती थी।

द्वियजुष^२—संज्ञा पुं० यजमान।

द्विर—संज्ञा पुं० [सं०] ३० 'द्विरेफ' की०।

द्विरद—संज्ञा पुं० [सं०] १. हाथी। १. दुर्योधन का एक भाई। उ०—
द्विरदहि बहुरि बोलाह नरेना। सौपि गर्वद यूथ उपदेखा।—
सबल (शब्द०)।

द्विरद^२—वि० दो रद अर्थात् दाँतोंवाला।

द्विरदांतक—संज्ञा पुं० [सं० द्विरदान्तक] सिंह की०।

द्विरदाशन—संज्ञा पुं० [सं०] सिंह।

द्विरसन—संज्ञा पुं० [सं०] साँप।

द्विसना—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. सपिणी । २. दो प्रकार की बातें करनेवाली स्त्री । धूर्ता स्त्री । उ०—जी द्विसने हमको मार, कठिन तेरा उचित न्याय विचार ।—साकेत, पृ० १७६ ।

द्विरागमन—संज्ञा पुं० [सं०] १. पुनरागमन । फिर दूसरी बार जाना । २. वधू का अपने पति के घर दूसरी बार जाना । वीणा ।

द्विरात्र—संज्ञा पुं० [सं०] दो रातों में होनेवाला एक यज्ञ ।

द्विराप—संज्ञा पुं० [सं०] हाथी ।

द्विरुक्त^१—वि० [सं०] दो बार कहा गया । दुहराकर कहा गया ।

द्विरुक्त^२—संज्ञा पुं० पुनरुक्त कथन । दो बार कही गई बात [को०] ।

द्विरुक्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] दो बार कथन ।

द्विरुद्धा—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह स्त्री जिसका एक बार एक पति से और दूसरी बार दूसरे पति से विवाह हुआ हो । पुनर्भू ।

द्विरेतस्—संज्ञा पुं० [सं०] १. दो भिन्न भिन्न पशुओं से उत्पन्न पशु । जैसे, चोड़े और गदहे से उत्पन्न लखर । २. बोगला ।

द्विरेता—संज्ञा पुं० [सं० द्विरेतस्] बोगला पशु [को०] ।

द्विरेक—संज्ञा पुं० [सं०] भ्रमर । भोरा । उ०—दुर्जन द्विरेक वाक्पुत्र भ्रंकार के मचाने में कभी न चूकेंगे ।—श्यामा०, पृ० ४ ।

द्विषकत्र—संज्ञा पुं० [सं०] १. बोगुही खाँस । २. एक कुमिरीय ।

द्विषकत्र^२—वि० दो मुँहवाला [को०] ।

द्विषन्—संज्ञा पुं० [सं०] दो का बोझ करानेवाला बचन (व्याकरण) ।

द्विषज्ज—संज्ञा पुं० [सं०] वह घर जिसमें सोलह कोण हों । सोलहकोना घर ।

द्विषादिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] झूला । हिंडोला [को०] ।

द्विषिन्दु—संज्ञा पुं० [सं० द्विषिन्दु] विसर्ग ।

द्विषिद्—संज्ञा पुं० [सं०] १. रामायण के अनुसार एक बंदर जो रामचंद्र की सेना का एक सेनापति था । २. विष्णुपुराण के अनुसार एक बंदर । यह नरकासुर का पिता था । इसे बलदेव जी ने मारा था ।

द्विषिष^१—वि० [सं०] दो प्रकार का ।

द्विषिष^२—वि० [सं०] दो प्रकार से ।

द्विषिषा^३—संज्ञा पुं० [सं० द्विषिष] दुश्मन ।

द्विषेद्—वि० [सं०] दो वेद पढ़नेवाला ।

द्विषेदी—संज्ञा पुं० [सं० द्विषेदिद्] ब्राह्मणों की एक उपजाति । द्वे ।

द्विषेश^४—संज्ञा स्त्री० [सं०] दो पहियों की छोटी गाड़ी ।

द्विषय—संज्ञा पुं० [सं०] दो प्रकार के वस्त्र या पाव ।

विरोध—सुश्रुत ने वृण दो प्रकार के माने हैं । एक सारीर दुस्वरा धार्यतुक । जो पाव वायु, रक्त, पित्त और कफ से कोड़े यादि के कप में होता है उसे सारीर वृण और जो किसी वस्तु के काटने यादि से हो उसे धार्यतुक वृण कहते हैं ।

द्विशत—वि० [सं०] दो सौ ।

द्विशत्य—वि० [सं०] दो सौ देकर लारीदा गया [को०] ।

द्विशफ—संज्ञा पुं० [सं०] वह पशु जिसके सूर फटे हों । दो सूरवाला पशु । जैसे, गाय, भेड़, हिरन इत्यादि ।

द्विशरीर—संज्ञा पुं० [सं०] ज्योतिष के अनुसार कन्या, मिथुन, वज्र और मीन राशियाँ, जिनका प्रथमार्ध स्थिर और द्वितीयार्ध चर माना जाता है ।

द्विशिर—वि० [हि० द्वि + शिर] दो शिरवाला । जिसके दो शिर हों ।

मुद्गा—कोन द्विशिर है ?—किसे फालतू शिर है ? किसे अपने मरने का भय नहीं है ? उ०—तुम्हारे दुःख का कारण न जानने से हमको बड़ा श्लेश होता है । क्या हमसे कोई अपराध हुआ सबवा और किसी ने द्विशिर होना चाहा है ?—कादंबरी (लघु०) ।

द्विशीष^१—वि० [सं०] जिसके दो शिर हों ।

द्विशीष^२—संज्ञा पुं० अग्नि ।

द्विषंतप—वि० [सं०] जनुओं को ताप देनेवाला [को०] ।

द्विप्^१—वि० [सं०] द्वेष करनेवाला ।

द्विप्^२—संज्ञा पुं० जनु । बैरी ।

द्विष^१—संज्ञा पुं० [सं०] जनु । दुश्मन ।

द्विष^२—वि० दे० 'द्विप्' ।

द्विषत्—वि० संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'द्विष' ।

द्विष्ट^१—वि० [सं०] जिससे द्वेष हो ।

द्विष्ट^२—संज्ञा पुं० ताम्र । ताँबा ।

द्विष्ट—वि० [सं०] दो में संमिलित । उभयनिष्ठ [को०] ।

द्विसप्तति^१—वि० [सं०] १. बहनार । २. बहतरनी ।

द्विसप्तति^२—संज्ञा स्त्री० बहनार की संख्या ।

द्विसप्ताह—संज्ञा पुं० [सं०] पक्ष । पाख । पंद्रह दिन [को०] ।

द्विसम—वि० [सं०] दो समान अक्ष या भागवाला [को०] ।

द्विसमत्रिभुज—संज्ञा पुं० [सं०] वह त्रिभुज जिसकी कोई दो रेखाएँ समान हों [को०] ।

द्विसहस्र—वि० [सं०] १. दो हजार में कीत । २. दो हजार [को०] ।

द्विसहस्राक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] शेष नाग [को०] ।

द्विसाहस्र—वि० [सं०] दे० 'द्विसहस्र' [को०] ।

द्विसीत्य—वि० [सं०] एक बार लंबाई और फिर चौड़ाई में जोता हुआ । दो बार जोता हुआ (खेत आदि) ।

द्विस्विन्नान्न—संज्ञा पुं० [सं०] उबाले हुए भान का चावल । भुजिया चावल ।

विरोध—ब्रह्मवैवर्त पुराण में यति, विषया और ब्रह्मचारी के लिये इसका ज्ञान निषिद्ध कहा गया है । देवपूजन आदि में भी इसका व्यवहार अच्छा नहीं कहा गया है ।

द्विह—संज्ञा पुं० [सं०] हाथी (जो सूँठ से मारता है) ।

द्विहरिद्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] दारुहृत्क्षी ।

द्विहृत्क्षय—वि० [सं०] दे० 'द्विसोत्थ' [को०] ।

द्विहा—संज्ञा पुं० [सं० द्विहृत्] हाथी । करी ।

द्विहायन—वि० [सं०] दो वर्ष का [को०] ।

द्विहायनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दो वर्ष की गाय [को०] ।

द्विहृत्क्षय—वि० स्त्री० [सं०] गर्भिणी । गर्भवती ।

द्वीन्द्रिय—संज्ञा पुं० [सं० द्वीन्द्रिय] वह जंतु जिसके दो ही इंद्रियां हों ।

द्वीत(५)—संज्ञा पुं० [सं० द्वीत] दे० 'द्वीत' । उ०—सुंदर समुद्र एक है धनसमर्थ को द्वीत । उभे रहित सद्गुरु कहे सोई बचना-तीत ।—सुंदर ग्रं०, भा० २, पृ० ६७१ ।

द्वीपंती(५)—संज्ञा स्त्री० [सं० द्वीपवती] नदी । सरित् । उ०—शंखालनि, स्रोतस्विनी, द्वीपंती, जलमाल । आप मान को बार में, सोच कहा है बाल ।—नंद ग्रं०, पृ० ६८ ।

द्वीप—संज्ञा पुं० [सं०] १. स्थल का वह भाग जो चारों ओर जल से घिरा हो ।

विशेष—बड़े द्वीपों को महाद्वीप कहते हैं । बहुत से छोटे छोटे द्वीपों के समूह को द्वीपपुंज या द्वीपमाला कहते हैं । द्वीप दो प्रकार के होते हैं—साधारण और प्रवालज । साधारण द्वीप दो प्रकार में बनते हैं—एक तो भूगर्भस्थ अग्नि के प्रकोप से समुद्र के नीचे से उभड़ आते हैं । दूसरे आसपास की भूमि के घँस जाने से और वहाँ पानी भा जाने से बनते हैं । प्रवालज द्वीपों की सृष्टि मूँगो से होती है । ये बहुत सूक्ष्म कृमि हैं जो धुँहर के पेड़ के आकार के पिंड बनाकर समुद्रतल में जमे रहते हैं । इन्हीं छोटे छोटे कीड़ों के शरीर से सहस्रों वर्ष में एकट्ठा होते होते बड़ा सा पर्वत बन जाता है और समुद्र के ऊपर निकल आता है जिसे प्रवालज द्वीप कहते हैं । इन दोनों के अतिरिक्त एक तीसरे प्रकार का द्वीप भी होता है जिसे सविदम्ब कह सकते हैं । इस प्रकार के द्वीप प्रायः बड़ी बड़ी नदियों के मुहानों पर, जहाँ के समुद्र में गिरती हैं, बन जाते हैं । उन द्वीपों में कितने तो इतने छोटे होते हैं कि समुद्र में एक छोटे से टीले से अधिक नहीं दिखाई पड़ते पर बड़े द्वीप भी होते हैं जिनमें पेड़ पोखे होते हैं और पशु पक्षी मनुष्य आदि रहते हैं ।

२. पुराणानुसार पृथ्वी के सात बड़े विभाग ।

विशेष—पुराणों में पृथ्वी सात सात द्वीपों में विभक्त की गई है । समुद्र और द्वीपों की उत्पत्ति के संबंध में यह कहा है । महाराज प्रियव्रत ने यह सोचा कि एक बार मैं सूर्य पृथिवी के एक ही ओर उजाला करता है जिसमें दूसरी ओर अंधकार रहता है । उन्होंने एक पहिए की एक चमरमानी गाड़ी पर सवार होकर सात बार पृथिवी की परिक्रमा की । गाड़ी के पहिये के बंसने से पृथिवी पर सात वतुलंगकार गड्ढे पड़ गए जो सात समुद्र बन गए । इन्हीं सातों समुद्रों से वेष्टित होने से सात द्वीपों की सृष्टि हुई । इनमें सबसे बीच में जंबूद्वीप है जो चारों पार से आर समुद्र से वेष्टित है और जिसके बीच में मेरु पर्वत है । आर समुद्र के उध पार दूसरा द्वीप प्लाक्षद्वीप है

जो जंबूद्वीप से दूना बड़ा है । तीसरा द्वीप शास्मली द्वीप है, यह प्लाक्षद्वीप से भी द्विगुण है । चौथे द्वीप का नाम कुशद्वीप है जो शास्मली का भी दूना है । पाँचवाँ द्वीप कौशद्वीप है, जो कुशद्वीप का दूना है । छठवाँ द्वीप शाकद्वीप कौच से दूना बड़ा है और सातवें द्वीप का नाम पुष्करद्वीप है । यह कौचद्वीप का दूना है । पर भास्कराचार्य जी का मत है कि पृथ्वी के पाँचे भाग में आरसमुद्र से वेष्टित जंबूद्वीप है और आधे में जेग प्लाक्षद्वीपादि छह द्वीप हैं । ये सातों द्वीप यथाक्रम आर, लवण, शीर, दधि, रस आदि समुद्रों से आवेष्टित हैं ।

३. प्रवलंबन का स्थान । आघार । ४. व्याघ्र चर्म ।

द्वीपकपूर—संज्ञा पुं० [सं०] चीनी कपूर ।

द्वीपकुमार—संज्ञा पुं० [सं०] जैन मतानुसार एक प्रकार का देवता । यह भुवनपति नामक देवगण के प्रसंगत है ।

द्वीपस्वर्जूर—संज्ञा पुं० [सं०] महा पारेवत ।

द्वीपवत्—संज्ञा पुं० [सं०] १. समुद्र । २. नद ।

द्वीपवती—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. एक नदी का नाम । २. भूमि ।

द्वीपवान्—वि० [सं० द्वीपवत्] द्वीपवाला । जिसमें द्वीप हों [को०] ।

द्वीपवान्—संज्ञा पुं० १. समुद्र । २. नद [को०] ।

द्वीपशत्रु—संज्ञा पुं० [सं०] शतावरी । शतावर ।

द्वीपिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] शतावरी । शतावर ।

द्वीपिनस्त्र—संज्ञा पुं० [सं०] १. बाण का नक्ष । २. एक सुगंध द्रव्य [को०] ।

द्वीपो—संज्ञा पुं० [सं० द्वीपिन्] १. व्याघ्र । बाघ । २. चीता । ३. चित्रक वृक्ष । चीता ।

द्वीप्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. वेदव्यास । २. एक प्रकार का कोसा । ३. रुद्र [को०] ।

द्वीप्य—वि० द्वीप में उत्पन्न [को०] ।

द्वीश—वि० [सं०] १. जो दो का स्वामी हो । २. जिसके दो स्वामी हों । ३. (एक आदि) जो दो देवताओं के लिये हो ।

द्वीश—संज्ञा पुं० विशाला नक्षत्र ।

द्व्यूच—संज्ञा पुं० [सं०] १. दो ऋचाओं का समूह । ४. वह सुक्त जिसमें दो ही ऋचाएँ हों ।

द्वेष—संज्ञा पुं० [सं०] वित्त को अप्रिय लगने की वृत्ति । विद्व । शत्रुता । वैर ।

विशेष—योगशास्त्र में द्वेष उस भाव को कहा गया है जो प्रशंसा का साम्रासार होने पर उससे या उसके कारण से हटने या बचने की प्रेरणा करता है ।

द्वेषण—संज्ञा पुं० [सं०] १. शत्रु । २. वैर । दुश्मनी । ३. प्रशंसा । ४. शत्रुता [को०] ।

द्वेषण—वि० द्वेष करनेवाला [को०] ।

द्वेषी—वि० [सं० द्वेषिन्] [वि० स्त्री० द्वेषिणी] विरोधी । वैरी । विद्व रक्षनेवाला ।

द्वेषी—संज्ञा पुं० शत्रु । वैरी ।

द्वेष्टा

द्वेष्टा—वि० [सं० द्वेष्ट] [की० द्वेष्टी] द्वेष करनेवाला । विरोधी ।
बेरी । कानु ?

द्वेष्ट्य—वि० [सं०] जिससे द्वेष किया जाय ।

द्वेष्ट्य—संज्ञा पुं० कानु । बेरी ।

द्वेष्ट—संज्ञा पुं० [सं० द्वेष] दे० 'द्वेष' । उ०—नेह दुरावत दुहुन को
द्वेष्ट बैत सुख भूरि । राति मिलत है रति हंसत होत रखाई
भूरि ।—स० सप्तक, पु० ३७७ ।

द्वेष्ट—वि० [सं० द्वेष] दो । दोनों । उ०—(क) पुर तें निकसी
रघुबीर बभू धरि धीर दियो मग क्यों डग है ।—सुनसी
(शब्द०) । (ख) गुन गेह सनेह को भाजन सों सबही सों
उठाइ कहों भुज है ।—दुलसी (शब्द०) ।

द्वेष्ट—वि० [हि०] दो एक ।

द्वेष्टि—वि० [सं०] द्विगुणवादी । दुना आश सेनेवाला । दुना
सुन जानेवाला (महाजन) ।

द्वेष्ट्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. सत्त्व, रज और तम इन तीनों गुणों में
से किन्हीं दो से युक्त । २. द्वैत । ३. दुना द्वय या दुना
परिमाण (को०) ।

द्वेष्ट—संज्ञा की० [सं० द्वितीय, प्रा० दुष्ट्य] द्वितीया । दुष्ट । उ०—
द्वैत सुखा दीपित कला, यह लखि दीठ लगाय । मनो भकाम
मगस्तिथा, एक कली लजाय ।—बिहारी (शब्द०) ।

द्वैत—संज्ञा पुं० [सं०] १. दो का भाव । युग्म । युगत । २. अपने
धीर पराए का भाव । भेद । अंतर । भेदभाव । उ०—सेवत
साधु द्वैत भय भागी । श्री रघुबीर चरन चित लागे ।—
दुलसी (शब्द०) । ३. दुवधा । भ्रम । उ०—सुख संगति गुह
द्वैत सों समुझी नाहि सवीर । बात करे अद्वैत की पढ़ि गुनि
भवा लवार ।—कबीर (शब्द०) । ४. प्रज्ञान । उ०—
भाष्य सब न द्वैत कहि लेखे । प्रणतपाल प्रण तोर, मोर
प्रण जियहु कमलपद देखे । जनक जननि गुरु बंधु सुद्वैत
पति सब प्रकार हितकारी । द्वैत रूप तम रूप परों नहीं सो
कछु जतन बिचारी ।—दुलसी (शब्द०) । ५. द्वैतवाद ।

द्वैतवन—संज्ञा पुं० [सं०] एक सपोवन, जिसमें युधिष्ठिर ने वनवास
के समय कुछ काल तक निवास किया था ।

द्वैतवाद—संज्ञा पुं० [सं०] वह दार्शनिक सिद्धांत जिसमें आत्मा और
परमात्मा अर्थात् जीव और ईश्वर दो भिन्न पदार्थ मानकर
विचार किया जाता है ।

विरोध—उत्तरमीमांसा या वेदांत को छोड़ शेष पाँचो द्वाय द्वैत-
वादी माने जाते हैं । द्वैतवादियों का कथन है कि ब्रह्म
और जीव का भेद निश्चय है पर अद्वैतवादी कहते हैं कि
यह भेदज्ञान भ्रम है । जिस समय जीव अपने को ब्रह्म स्वरूप
समझ लेता है उस समय वह मुक्त हो जाता है । केवल
उपाधि के कारण जीव अपने को ब्रह्म से भिन्न समझता
है, उपाधि हट जाने पर वह ब्रह्म में मिल जाता है । द्वैत-
वादी जीव की उपाधि को निश्चय मानते हैं पर अद्वैतवादी
उसे हटाने की चेष्टा करने का उपदेश देते हैं । जिस प्रकार
अद्वैतवादी 'तत्त्वमसि' उपनिषद् के इस महावाक्य को सुख

मानकर चलते हैं उसी प्रकार द्वैतवादी भी । पर दोनों
उससे भिन्न भिन्न अर्थ लेते हैं । अद्वैतवादी 'तत्त्वमसि' का
सीधा अर्थ लेते हैं कि 'तुम वही (ब्रह्म) हो', पर द्वैतवादी
मध्वाचार्य ने सीधे तानकर उसका अर्थ लगाया है 'तस्य त्वं
असि' अर्थात् तुम उसके हो । न्याय और वैशेषिक में तीन
नित्य पदार्थ माने गए हैं—जीवात्मा, परमेश्वर और पर-
माणु । इस प्रकार के द्वैतवाद का खंडन ही मकर ने
अपने अद्वैतवाद द्वारा किया है । जिस प्रकार शंकराचार्य
ने वेदांतसूत्र का आध्य करके अपना अद्वैतवाद स्थापित
किया है उसी प्रकार मध्वाचार्य ने उक्त सूत्र का एक
आध्य रखकर द्वैतवाद का मंडन किया है । उनके मत से
परमेश्वर स्वतंत्र है और जीव परमेश्वर के अधीन है ।
वेदांती लोग जो जगत् को ईश्वर से अभिन्न अथवा
रज्जु संप्रवत् मानते हैं और जीव में ईश्वर का आरोप
करते हैं वह ठीक नहीं । जगत् और जीव सत्य है और
ईश्वर से भिन्न है । 'एकमेवाद्वितीय' वाक्य का अर्थ यह
नहीं है कि ईश्वर के अतिरिक्त और कुछ है ही नहीं,
बस कि अद्वैतवादी करते हैं । उसका अर्थ है कि ईश्वर
बहुत नहीं एक ही है । 'एव' शब्द से मध्वाचार्य यह ध्वनि
निकालते हैं कि ईश्वर सदा एक ही रहता है, एकत्व उसका
स्वभाव है वह प्रनेक हो नहीं सकता । अद्वितीय का अर्थ
यह है कि द्वितीय जो जीव और जगत् है सो वह नहीं
है । जीव और जगत् उसकी मृष्टि है । इस प्रकार मध्वाचार्य
ने द्वैतभाव का मंडन किया है । रामानुज का विशिष्टाद्वैत
वाद द्वैत और अद्वैत के बीच का मार्ग है, द्वैतवाद से उसमें
बहुत अधिक भेद नहीं है । दे० 'वेदांत' ।

२. वह दार्शनिक सिद्धांत जिसमें भूत और चित्शक्ति अथवा
शरीर और आत्मा दो भिन्न पदार्थ माने जाते हैं ।

द्वैतवादी—वि० [सं० द्वैतवादिन्] [वि० की० द्वैतवादिनी] द्वैत-
वाद को माननेवाला । ईश्वर और जीव में भेद माननेवाला ।

द्वैतात्मिका—वि० की० [सं०] द्विरूपात्मिका । द्वैतभाव से युक्त । उ०—
लोचमुष्टि से ब्रह्म को समोचर रखनेवाली कीचुकनीला
द्वैतात्मिका माया की क्रीड़ा है ।—शैली, पु० २ ।

द्वैती—वि० [सं० द्वैतिन्] द्वैतवादी ।

द्वैतीकीक—वि० [सं०] द्वितीय । दूसरा (को०) ।

द्वैत—संज्ञा पुं० [सं०] १. विरोध । परस्पर विरोध । राजनीति के
वर्गगुणों में से एक जिसमें परस्पर के व्यवहार में गुप्त और
प्रकट स्वभाव रखना रहता है अर्थात् मुख्य उद्देश्य गुप्त रख-
कर दूसरा उद्देश्य प्रकट किया जाना है ।

द्वैतशासन प्रणाली—संज्ञा की० [सं०] दे० 'द्विदल शासनप्रणाली' ।

द्वैतीकरण—संज्ञा पुं० [सं०] किसी चीज के दो टुकड़े करना ।

द्वैतीभाव—संज्ञा पुं० [सं०] १. द्विधा भाव । अनिश्चय । २. भीतर
कुछ और भाव, बाहर कुछ और भाव ।

द्वैतीभाव—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक से लड़ना तथा दूसरे के साथ
संधि करना । २. दोनों ओर मिलकर रहना ।

विरोध—कामंडक ने लिखा है कि जो राजा सबल न हो और जिसके इधर उधर बलवान राज्य हों वह द्वेधीभाव से काम चलावे अर्थात् अपने आपको दोनों पक्षों का मित्र प्रकट करता रहे।

द्वेप—संज्ञा पुं० [सं०] १. बाघ से संबंध रखनेवाली या बाघ से निकली या बनी हुई वस्तु। २. व्याघ्रचर्म। बाघ का चमड़ा। ३. द्वीप से संबंधित या उत्पन्न (वस्तु आदि)।

द्वेपायन—संज्ञा पुं० [सं०] १. व्यास जी का एक नाम।

विशेष—वेदव्यास का जन्म यमुना नदी के एक द्वीप में हुआ था, इसी से उनका यह नाम पड़ा।

२. एक हृदय या ताल जिसमें कुरुक्षेत्र के युद्ध में दुर्योधन भागकर छिपा था।

द्वैप्य—वि० [सं०] द्वीप संबंधी [को०]।

द्वेमातुर^१—वि० [सं०] जिसकी दो माताएं हों।

द्वेमातुर^२—संज्ञा पुं० [सं०] १. गणेश।

विशेष—स्कंदपुराण के गणेशखंड में लिखा है कि गणेश करेण्य नामक राजा के घर उनकी रानी पुष्पका देवी के गर्भ से त्रैलोक्य की विष्णुशक्ति के लिये उत्पन्न हुए। पर उनकी आकृति और तेज आदि को देखकर राजा डर गए और उन्हें पार्श्वमुनि के आश्रम के पास एक जलशय में फेंकवा दिया। वही मुनि की पत्नी दीपवत्सला ने उन्हें पाला। इस प्रकार दो माताओं के द्वारा पलने के कारण गणेश का नाम द्वेमातुर पड़ा।

२. जरासंध।

द्वेमातृक—संज्ञा पुं० [सं०] वह भूमि या देश जहाँ सेती नदी के जल (सिंचाई) द्वारा भी की जाती है और वर्षा से भी होती हो।

द्वैयह्निक—वि० [सं०] जो दो दिन में किया जाय या दो दिन का हो।

द्वैराज्य—संज्ञा पुं० [सं०] एक ही देश पर दो राजाओं का राज्य।

विशेष—इसी को वैराज्य भी कहते थे। कौटिल्य ने इसे अक्षम्व कहा है। परंतु कहीं कहीं इस प्रकार का राज्य होने का प्रमाण मिलता है।

द्वैविध्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. दो प्रकार होने का भाव। २. दुवधा।

द्वैषणीया—संज्ञा स्त्री० [सं०] नागवल्ली का एक भेद।

द्वैसमिक—वि० [सं०] दो वर्ष का [को०]।

द्वैसात^१—वि० [सं० द्वि + सात] चौबह। उ०—चौदे (यह) एकारांत है, पुरुष लिंग विख्यात। कम सौ धरे विभक्ति को रूप होत द्वैसात।—पोद्दार अभि० सं०, पृ० ५१४।

द्वैहायन—संज्ञा पुं० [सं०] दो साल का समय [को०]।

द्वौ^१—वि० [हि० दो + ऊ, दोड़] दोनों।

द्वौ^२—वि० दे० 'दव'।

द्वयक्ष—वि० [सं०] दो नेत्रोंवाला। दो आँखवाला [को०]।

द्वयगवक्ष विभाग—संज्ञा पुं० [सं०] कौटिल्य द्वारा वर्णित वह व्यूह जिसके पक्ष में सैनिक, पार्श्व में हाथी, पीछे रथ और आगे शत्रु के व्यूह के अनुसार व्यूह बना हो।

द्वयगुणक—संज्ञा पुं० [सं०] वह द्रव्य जो दो अणुओं के संयोग से उत्पन्न हो। दो अणुओं का एक संघात। एक भाग जो दो अणुओं की हो।

द्वयर्थ—वि० [सं०] दो अर्थ रखनेवाला। दुहरे अर्थवाला [को०]।

द्वयर्थक—वि० [सं०] दे० 'द्वयर्थ' [को०]।

द्वयशीति—वि० [सं०] जो गिनती में अस्सी से दो अधिक हो। बयासी।

द्वयष्ट—संज्ञा पुं० [सं०] ताम्र, ताम्र।

द्वयज्ञागण—संज्ञा पुं० [सं०] एक ऋषि का नाम।

द्वयग्नि—संज्ञा पुं० [सं०] लाल चीता बुल [को०]।

द्वयात्मक—संज्ञा पुं० [सं०] दो स्वभाव की राशियाँ जो ये हैं—मियुन, कन्या, शत्रु और मीन।

द्वयामुष्यायण—संज्ञा पुं० [सं०] वह पुत्र जो एक से तो उत्पन्न हुआ हो और दूसरे के द्वारा दत्तक के रूप में ग्रहण किया गया हो और दोनों पिता उसे अपना अपना पुत्र मानते हों। ऐसा पुत्र दोनों को पित्रदान देता है और दोनों की संघर्षा का अधिकारी होता है। वि० दे० 'दत्तक'।

ध

ध—द्विदो या संस्कृत वर्णमाला का द्वासीसवाँ व्यंजन और तवर्ग का चौथा वर्ण जिसका उच्चारण स्थान दंतमूल है। इसके उच्चारण में आभ्यंतर प्रयत्न आवश्यक होता है और जीभ की नोक ऊपरी दाँतों की जड़ में लगानी पड़ती है। बाह्य प्रयत्न संवार, नाद, घोष महापाण हैं।

धंक्रना^१—क्रि० घ० [हि० धंक्र] क्रुद्ध होना। क्रुद्धना। क्रोडना। उ०—सुननकि बान गजि गोम धंक्र। कायर पुलंत सुरा निमंक्र।—पृ० रा०, १।६५८।

धंक्रा^२—संज्ञा पुं० [हि०] १. दे० 'धक्का'। उ०—सिंह की

सिंह चपेट सहे गजराज सहे गजराज को धंक्रा।—सूरण घं०, पृ० ६५। २. चोट। घाघात।

धंग^१—संज्ञा पुं० [देश०] कीर्ति। यक्ष। उ०—धव गाड़ी डरकाय दे बबल धंग हिरदेश।—सूरण अभि० घं०, पृ० ७८।

धंगर—संज्ञा पुं० [देश०] चरबाहा। खाल। झहीर।

धंगरिया^१—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'धींगरी'। उ०—बात कहत मुँह फारि सात है मिली बमधुसरि धंगरिया—कबीर सा० सं०, पृ० १६।

धंगी—संज्ञा पुं० [देश०] खोसी। डोसी।

धंद^५—संज्ञा पुं० [सं० दन्द्] धंवा । व्यवसाय । उ०—कीन्हेसि बुद्ध
भी कोटि धनंहु । कीन्हेसि दुख बिता धी धंद ।—जायसी०,
धं०, पृ० २ ।

धंदर—संज्ञा पुं० [दे०] एक प्रकार का चारीदार कपड़ा ।

धंध^५—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'धुंध' । उ०—राम बिना संसार
धंध कुहेरा ।—कबीर धं०, पृ० १६५ ।

धंध^५—संज्ञा पुं० [हि० धंधा] धोला । कपट । छल । उ०—धंध
धोला किया कुमति ठानी ।—कबीर दे०, पृ० ८ ।

धंध^५—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'धंधा' । उ०—दादू सतगुरु सो सगा,
दूधा धंध विकार ।—दादू०, पृ० २७ ।

धंध^५—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'धंध' । उ०—धंध जिस बीज तत्व
करत है धंध जू ।—सुंदर धं०, भा० २, पृ० ५८८ ।

धंध^५—संज्ञा पुं० [दे०] जवाला । उ०—तुलन तोपिके हूँ मतिधंध
हुतासन धंध प्रहारन चाहै ।—भिलारी० धं०, भा० २, पृ० ८१ ।

धंधक^५—संज्ञा पुं० [हि० धंधा] काम धंधे का घाड़ंबर । जंजाल ।
बखेड़ा । उ०—तिन महुँ प्रथम देख जग मोरी । धिक धरम-
ध्वज धंधकधोरी ।—तुलसी (शब्द०) ।

धंधक^५—संज्ञा पुं० [प्रनु०] एक प्रकार का ढोल ।

धंधकधोरी—संज्ञा पुं० [हि० धंधक + धोरी] काम धंधे का बोक लादे
रहनेवाला । हर घड़ी काम में जुता रहनेवाला । उ०—तिन
महुँ प्रथम देख जग मोरी । धिक धरमध्वज धंधकधोरी ।—
तुलसी (शब्द०) ।

धंधका—संज्ञा पुं० [प्रनु०] [श्री० धन्वा० धंधकी] एक प्रकार
का ढोल ।

धंधरक—संज्ञा पुं० [हि० धंधा] काम धंधे का घाड़ंबर । जंजाल ।
बखेड़ा ।

धंधरकधोरी—संज्ञा पुं० [हि० धंधरक + धोरी] काम धंधे का बोक
लादे रहनेवाला । हर घड़ी काम में जुता रहनेवाला ।

धंधा—संज्ञा पुं० [सं० धनधात्र्य या दे०] १. धन या जीविका के लिये
उद्योग । काम काज । जैसे,—बहु घर का कुछ काम धंधा
नहीं करती ।

धी०—काम धंधा । गोरखधंधा ।

२. उद्यम । व्यवसाय । कारबार । पेशा । रोजगार । जैसे,
(क) उसे किसी काम धंधे में लगा दो । (ख) भाजकज कोई
काम धंधा नहीं है, खाली बैठे हैं ।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग लिखने पढ़ने की भाषा में 'काम'
शब्द के साथ अधिक होता है ।

धंधार—संज्ञा पुं० [दे०] लकड़ी का लंबा घीजार जो भारी पत्थरों
या लकड़ियों के उठाने के काम में आता है ।

धंधारी^३—वि० [दे०] एकाकी । अकेला ।

धंधारी^३—संज्ञा श्री० [सं० धूमधार या दे०] जवाला । लपट ।

धंधारी^३—संज्ञा श्री० [हि० धंधा] गोरखधंधा जिसे गोरखधंधी साधु
सिखे रहते हैं ।

धंधारी^३—संज्ञा श्री० १. एकांत । निजंमता । अकेलापन । २. धुन-
सान । सन्नाटा ।

धंधाला—संज्ञा श्री० [हि० धंधा] कुटनी । दूती । दलाल ।

धंधालू—वि० [हि० धंधा] काम धंधे में लगा रहनेवाला । उ०—बहु
धंधालू आव धरि कासू करइ वदेम ।—ढोला०, दू० १७८ ।

धंधु^५—संज्ञा पुं० [हि० धंधा] उद्यम । काम । उ०—धंधु धंधु
धवलोकितुम जानि परे मध दंग । भीम बिसे यह बसुमती
जैहै तेरे मंग ।—भिलारी० धं०, भा० २, पृ० ६२ ।

धंधूणी^५—क्रि० वि० [सं० धृज, प्रा० धृग] हिला हुलाकर ।
उ०—बोलइ नहीं ज बाल, धण धंधूणी जोइयउ ।—ढोला०,
दू० ६०३ ।

धम्मिल^५—संज्ञा पुं० [सं० तथा प्रा० धम्मिल्ल] स्त्रियों के बालों का
जूड़ा । उ०—मीम जटा कवि गोविंद एनहि, धोपन सौं प्रति
धम्मिल जाल है ।—पोद्दार धम्मि० धं०, पृ० ४३५ ।

धंस^५—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'ध्वंस' । उ०—राम कृष्ण जय सूर ससि,
करन मोहू धन धंस ।—मारतेंदु धं०, भा० १, पृ० ३५७ ।

धंधरक—संज्ञा पुं० [हि० धंधा या दंग + रक < ढोंग + रक] दे०
'धंधरक' । उ०—तिन महुँ प्रथम देख जग मोरी । धिक
धरमध्वज धंधरक धोरी ।—तुलसी (शब्द०) ।

धंधरकधोरी—संज्ञा पुं० [हि० धंधरक + धोरी] दे० 'धंधरकधोरी' ।
उ०—तिनमहुँ प्रथम देख जग मोरी । धिक धरमध्वज धंधरक
धोरी ।—तुलसी (शब्द०) ।

धंधला—संज्ञा पुं० [हि० धंधा] १. छल धुंद । कपट का घाड़ंबर ।
भूठा दंग । दंग । उ०—धंध काल कोइ काम न आवै ।
फोफट फाफट धंधला ।—सुंदर धं०, भा० २, पृ० ६०६ ।
२. हीला । बहाना । (ध्रु०) ।

क्रि० प्र०—करना ।

मुहा०—(किसी को) धंधे में लाने हैं = धंधे में लाने का अभ्यास है ।

धंधलाना—क्रि० धं० [हि० धंधला] छल धुंद करना । दंग रचना ।

धंधार—संज्ञा पुं० [हि०] जवाला । लपट । उ०—कंधा जरे
भागि नभ लाई । बिरहु धंधार जरत न बुझाई ।—जायसी
(शब्द०) ।

धंधारी—संज्ञा श्री० [हि० धंधा + री (प्रत्य०)] दे० 'धंधारी' ।
उ०—मेखल सिंधी धंधारी । नीन हाथ तिरसूल संधारी ।
—जायसी (शब्द०) ।

धंधेरा—संज्ञा पुं० [दे०] राजपूतों की एक जाति ।

धंधोर—संज्ञा पुं० [प्रनु० धायं धायं (= प्राण दहकने की ध्वनि)] १.
होलिका । होली । २. भाग श्री लपट । जवाला । उ०—(क)
रहै प्रेम मन उरझा जटा । बिरहु धंधोर परहि सिर जटा ।—
जायसी (शब्द०) । (ख) कंधा जरे धगिनि जनु लाए । बिरहु
धंधोर जरत न जराए ।—जायसी (शब्द०) ।

धंस—संज्ञा पुं० [हि० धंसना] जल आदि में प्रवेश । डुबकी । गोता ।
क्रि० प्र०—सेना ।

धँसन—संज्ञा स्त्री० [हि० धँसना] १. धँसने की क्रिया या ढंग । २. धुसने या पेठने का ढंग । गति । चाल । उ०—तुलसी भेड़ी की धँसनि जड़ जनता सनमान ।—तुलसी (शब्द०) ।

धँसना^१—क्रि० घ० [सं० दंशन (= दाँत चुभना)] २. किसी कड़ी वस्तु का किसी नरम वस्तु के भीतर दाब पाकर घुसना । गड़ना । जैसे, पैर में काँटा धँसना, दीवार में कील धँसना, कीचड़ या दलदल में पैर धँसना ।

संयो० क्रि०—जाना ।

विशेष—‘चुभना’ और ‘धँसना’ में अंतर यह है कि ‘चुभना’ का प्रयोग विशेषतः जीवधारियों के शरीर में घुसने के अर्थ में होता है । जैसे, पैर में काँटा चुभना । दूसरी बात यह है कि ‘चुभना’ तुकड़ी वस्तुओं के लिये पाता है, जैसे, काँटा, सुई आदि ।

मुहा०—जी या मन में धँसना—(१) चिन्ता में प्रभाव उत्पन्न करना । मन में निश्चय या विश्वास उत्पन्न करना । दिल में प्रसर करना । जैसे,—उसे लाख समझाओ उसके मन में कोई बात धँसती ही नहीं । (२) हृदय में अंकित होना । अच्छा लगने के कारण ध्यान में बराबर रहना । चिन्ता से न हटना । ध्यान पर बराबर चढ़ा रहना । उ०—मन मई धँसी मनोहर मुरति टरति नहीं वह टारे ।—सूर (शब्द०) ।

२. किसी ऐसी वस्तु के भीतर जाना जिसमें पहले से धक्का न रहा हो । अपने लिये जगह करते हुए घुसना । इधर उधर दबाकर जगह खाली करते हुए बढ़ना या पेठना । जैसे, पानी में धँसना, भीड़ में धँसना, दलदल में धँसना । उ०—(क) जोर जगी जमुना जल भार में धाय धँसी जलकैल की माती ।—(शब्द०) । (ख) धायो जौन तेरी धीरी धारा में धँसत जात तिनको न होत सुरपुर ते निपात है ।—पद्माकर (शब्द०) ।

संयो० क्रि०—जाना । पड़ना ।

①३. नीचे की ओर धीरे धीरे जाना । नीचे लसकना । उतरना । उ०—(क) लरी लसति गोरे गरे धँसति पान की पीक ।—विहारी (शब्द०) । (ख) जनु कनिधनंदिनि मनि इंदनील सिक्कर परसि धँसति लसति हँसि अणि संकुलन अधिकीहै ।—तुलसी (शब्द०) । (ग) पति पहिचानि बँसी मंदिर तें, भूर, तिया अभिराम । आवहु कंत सखहु हरि को हित पाँव चारिए धाम ।—सूर (शब्द०) । ४. तल के किसी अंश या दबाव प्राप्ति पाकर नीचे हो जाना जिससे गड़दा सा पड़ जाय । नीचे की ओर बैठ जाना । जैसे,—(क) जहाँ गोला गिरा वहाँ जमीन नीचे धँस गई । (ख) बीमारी से उसकी छाँटें धँस गई हैं ।

विशेष—पोसी वस्तु के लिये इस अर्थ में ‘पचकना’ का प्रयोग होता है ।

५. किसी गड़ी या नोर्व पर खड़ी वस्तु का जमीन में और नीचे तक खसा जाना जिससे वह ठीक खड़ी न रह सके । बैठ जाना । जैसे,—इस मकान की नोर्व कमजोर है, बरसात में यह धँस जायगा ।

धँसना②—क्रि० घ० [सं० ध्वंसन] ध्वस्त होना । नष्ट होना । मिटना । उ०—निज प्रातम अज्ञान ते है प्रतीति जग खेद । धँसे सु ताके बोध ते यह भाखत मुनि वेद ।—विचारसागर (शब्द०) ।

धँसनि③—संज्ञा स्त्री० [हि०] ३० ‘धँसन’ ।

धँसान—संज्ञा स्त्री० [हि० धँसना] १. धँसने की क्रिया या ढंग । २. ऐसी जमीन जिसपर कीचड़ के कारण पैर धँसता हो । दलदल । ३. ऐसी जमीन जिसपर नीचे की ओर पैर फिसले । ढाल । उतार ।

धँसाना—क्रि० स० [हि० धँसना] १. गड़ाना । चुभाना । नरम चीज में घुसाना । २. पैठाना । प्रवेश कराना । जैसे, बल में धँसाना । ३. तल या सतह की दबाकर नीचे की ओर कराना । नीचे की ओर बैठाना ।

धँसाव—संज्ञा पुं० [हि० धँसना] १. धँसने की क्रिया । २. ऐसी जमीन जिसपर पैर धँसे । दलदल ।

ध^२—संज्ञा पुं० [सं०] १. बह्मा । २. कुबेर । ३. गुण । नैतिक गुण । ४. वैवत स्वरसंकेत (संगीत) । ५. धर्म । ६. धन । संपत्ति (को०) ।

ध^३—[प्रत्य०] धारण करनेवाला (को०) ।

धई—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक पोषा जिसकी जड़ या कंद को छोटा नागपुर की पहाड़ी जातियों के लोग खाते हैं ।

धउरहरा—संज्ञा पुं० [हि०] ३० ‘वीरहर’ ।

धउल④—वि० [हि०] ३० ‘धवल’ । उ०—साने धरती धउल अकास ।—प्राण०, पु० १ ।

धक^२—संज्ञा स्त्री० [अनु०] १. दिन के बढ़कने का शब्द या भाव । हस्तकंप का शब्द या भाव । हृदय के जल्दी जल्दी चलने, कूदने का भाव या शब्द । (भय या उद्वेग होने अर्थात् किसी बात से चौंक पड़ने पर भी में बढ़कन होती है) । उ०—गुंघर हों निरखीं धव लों मुख पीरी परी छतियां धक छाई ।—गुंघर (शब्द०) ।

मुहा०—जी धक धक करना = भय या उद्वेग से जी बढ़कना । जी धक हो जाना = (१) भय या उद्वेग से जी बढ़क उठना । डर से जी दहल जाना । (२) चौंक उठना । जी धक होना, या धक से होना = (१) उद्वेग या घबराहट होना । (२) घाशंका होना । भय होना । जी दहलना । धक से रह जाना = ३० ‘जी धक होना या धक से रह जाना’ । उ०—हुस्न धारा और उनकी कुल बहनें और भी धुमलानी धीर धम्बासी धक से रह गई ।—फिसाना०, भा० १, पृ० २६१ ।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग खट, पट आदि और अनु० शब्दों के समान प्रायः ‘से’ विभक्ति सहित क्रि० वि० बतू ही होता है ।

२. उर्मय । उद्वेग । चोप । उ०—रहत अछक पे मिट न धक जीवन की निपट जो नाँगी डर काहू के डरे नहीं ।—भूषण (शब्द०) ।

धक^३—क्रि० वि० अचानक । एकबारगी । उ०—धानन सीकर सी कहिए धक सोवत तें अकुलाव उठी क्यों ?—कैलाश (शब्द०) ।

धक^१—संज्ञा स्त्री० [देश०] छोटी पूँ। सील से बड़ी पूँ।

धकधक—क्रि० वि० [धनु०] धक धक की ध्वनि के साथ। दहकता हुआ। उ०—भाब घनल धक धक कर जला।—अपरा, पृ० ६।

क्रि० प्र०—जलना।

धकधकाना—क्रि० घ० [धनु० धक] १. (हृदय का) धड़कना। भय, उद्वेग आदि के कारण हृदय का जोर जोर से जल्दी जल्दी चलना। उ०—धकधकात जिय बहुत संभारे। क्यों मारों सो बुद्धि विचारे।—सूर (शब्द०)। २. (आग का) दहकना। भयकना। लपट के साथ जलना।

धकधकाहट—संज्ञा स्त्री० [धनु० धक] १. जो धक धक करने की क्रिया या भाव। धड़कन। २. लटका। धाशंका। ३. धागा पीछा।

धकधकी—संज्ञा स्त्री० [धनु० धक] १. जो धक धक करने की क्रिया या भाव। जो की धड़कन। उ०—(क) घावत देख्यो विप्र जोरि कर खिमनि धई। कहा कहैगो धानि द्विये धकधकी लगई।—सूर (शब्द०)। (ख) दसकंवर उर धकधकी धव जनि धावै धनुधारि।—तुलसी (शब्द०)। (ग) सरजू के सरकत धकधकी सरकत, मोन कोन सकुरत सरकत जातु है।—मिहारी० शं०, भा० २, पृ० ३३। २. घने और छाती के बीच का गद्दा जिसमें स्पर्शन मालुम होता है। धुकधुकी। धुगधुगी।

मुहा०—धुकधुकी धरकना=छाती धड़कना। जो धकधक करना। धकस्मात् धाशंका या लटका होना। उ०—मिथनि बिजोकि धरत रघुवर की। सुरगन समय धकधकी धरकी।—तुलसी (शब्द०)।

धकना^१—क्रि० घ० [हि०] दे० 'दहकना'। उ०—बिचरा उड्यो सो डोसै हियरो बख्योई करे।—बनारस०, पृ० ७६।

धकपक^१—संज्ञा स्त्री० [धनु०] जो की धड़कन। धकधकी। उ०—(क) लुक्त हकीम खाँ घमीरनु के धक सो जी बकसी के जिय में परी है धकपक सी।—सुदन (शब्द०)। (ख) इंदू को धकधक, बातालू की धकपक, संभू जी की सकपक केसोवास को कहे?—केसव (शब्द०)।

धकपक^२—क्रि० वि० धड़कत हुए जी के साथ। दहकते हुए। डरते हुए।

धकपकाना—क्रि० घ० [धनु० धक] जी में बहलना। दहकत जाना। डरना। उ०—भुवन जनत दिल्लीपति सौ धकपकात बाक सुनि राव जलसाल भरवाने की।—भुवन (शब्द०)।

धकपकना^१—क्रि० घ० [हि० धकपक] दहल जाना। डरना। उ०—वरनि बसत धकपक धीर धाराधर मुकत।—पद्माकर शं०, पृ० २८५।

धकपेल—संज्ञा स्त्री० [धनु० धक + पेलना] धकधकका। रेलापेल। उ०—धमकत सगि करें धकपेल।—सुदन (शब्द०)।

धका^१—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'धक्का'। उ०—दुर्जय कुंभ कुम्हार का, एके धका धरार।—संतबाणी०, पृ० ५०।

धका^२—संज्ञा पुं० [हि०] धोर। तरफ। उ०—साग जरबके ले गयो एक धके धकमाल।—रा० क०, पृ० ३१३।

धकाधक—क्रि० [धनु०] धकधक माना में। बहुत। उ०—भाब तो तूने धकाधक भागि धोर धकाधक जहुआन की धच्छी ठहराई।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० १७०।

धकाधकी—संज्ञा स्त्री० [हि० धक्का] धक्कम धक्का। उ०—कीनी धकाधकी रिस मन में न भाव्ये।—भक्तमाल, पृ० ४८८।

धकाधूम—संज्ञा स्त्री० [धनु० धक + धूम] भीड़भाड़। रैलपेल।

धकाना^१—क्रि० स० [हि० दहकाना] दहकाना। मुलगाना। जलाना। उ०—धुनी ध्यान धकामो रैन दिन फिकिर फाहुरी सोई।—कबीर (शब्द०)।

धकापेल—संज्ञा स्त्री० [हि० धक्का + पेलना] धक्कम धक्का। भीड़भाड़ में होनेवाली धक्केबाजी।

धकार—संज्ञा पुं० [सं०] ध धझर।

धकारा^१—संज्ञा पुं० [धनु० धक] धकधकी। धाशंका। लटका। उ०—तुम तो जीला करत सुरन मन परो धकारो।—सूर (शब्द०)।

क्रि० प्र०—पड़ना।—होना।

धकिया^१—संज्ञा स्त्री० [हि० धक्का] धाक। प्रभाव। उ०—काल कराल जेजाल डरहिगे धविनासी की धकिया।—भीखा० शं०, पृ० ७२।

धकियाना^१—क्रि० स० [हि० धक्का] धक्का देना। ठकेलना।

धकेलना—क्रि० स० [हि० धक्का] ठकेलना। ठेलना। धक्का देना। उ०—मेघों को एकत्रित करती हवा, हाथियों को धकेलती, उड़ बसो धरे लोगों उस निबेल पुण्य पुण्य की करो मदद कुछ, तुम्हें चाहता था जो इतना।—बंदन०, पृ० १०२।

संयो० क्रि०—देना।

विशेष—दे० 'ठकेलना'।

धकेलू—संज्ञा पुं० [हि० धकेलना] ठकेलनेवाला। धक्का देनेवाला।

धकैल—क्रि० [हि० धक्का + ऐत (प्रत्य०)] धक्का देनेवाला। धक्कम धक्का करनेवाला। उ०—दुत धीर धकैत गयो धंसि के।—गोपाल (शब्द०)।

धकोना—क्रि० स० [हि०] दे० 'धकियाना'।

धकौ^१—संज्ञा पुं० [हि० धक्का] धाकमण। हमला। उ०—धको न साहे मीरजा, बाहे सार गरउज।—रा० क०, पृ० ४६।

धक्का^१—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'धक्'।

धक्का^२—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'धक्का'। उ०—हा कहत उडत ही कहत ठहु। गिर परत धक्क जिन कोठ गहु।—पृ० रा०, १।११५।

धक्कपक्क—संज्ञा स्त्री० क्रि० वि० [हि०] दे० 'धक्कपक'। उ०—धक्क धक्क, धक्क पक्क धरधरात धावित जात।—सुदन (शब्द०)।

धक्कमधक्का—संज्ञा पुं० [हि० धक्का] १. बार बार बहुत अधिक या बहुत से आदमियों का परस्पर धक्का देने का काम। धक्कापेल। २. ऐसी भीड़ जिसमें लोगों के शरीर एक दूसरे से रगड़ खाते हों। रेलापेल। जैसे, -मंदिर के भीतर बहुत धक्कमधक्का है।

धक्का—संज्ञा पुं० [सं० धक्, हि० धक्क, धोंक या मं० धक्क (= नष्ट करना)] १. एक वस्तु का दूसरी वस्तु के साथ ऐसा वेगयुक्त स्पर्श जिससे एक या दोनों पर एकबारगी भारी दबाव पड़ जाय अथवा गति के वेग का वह भारी दबाव जो एक वस्तु के साथ दूसरी वस्तु के एकबारगी आ लगने से एक या दोनों पर पड़ता है। आघात या प्रतिघात। टक्कर। रेला। झोंका। जैसे, —(क) सिर में होवार का धक्का लगना। (ख) चलती गाड़ी के धक्के से गिर पड़ना।

क्रि० प्र०—देना।—पहुँचना।—पहुँचाना।—मारना।—लगना।—लगाना।—सहना।

यौ०—धक्कापेल। धक्कमधक्का।

विशेष—केवल गुरुत्व के कारण जो दबाव पड़ता है उसे 'धक्का' नहीं कह सकते, गति के वेग के अथवा प्रयत्न से जो दबाव एकबारगी पड़ जाता है उसी को धक्का कहते हैं।

२. किसी व्यक्ति या वस्तु को उसकी जगह से हटाने, लिसकाने गिराने आदि के लिये वेग से पहुँचाया हुआ दबाव अथवा इस प्रकार का दबाव पहुँचाने का काम। ठकेलने की क्रिया। झोंका। चपेट। जैसे, —इसे धक्का देकर निकाल दो।

क्रि० प्र०—करना।—देना।—मारना।—लगाना।—सहना।—होना।

मुहा०—धक्का खाना=धक्का सहना। उपेक्षित होना। धक्के देकर निकालना=तिरस्कार और अपमान के साथ सामने से हटाना।

३. ऐसी भारी भीड़ जिसमें लोगों के शरीर एक दूसरे से रगड़ खाते हों। कसमरग। कसमस। जैसे, —मंदिर के भीतर बड़ा धक्का है, मत जाओ। ४. झोंक या दुःख का आघात। दुःख की चोट। संताप। जैसे, —भगड़े के मर जाने से उसे बड़ा धक्का पहुँचा।

क्रि० प्र०—पहुँचना।—पहुँचाना।

५. आपदा। विपत्ति। आफत। दुर्घटना। ६. हानि। टोटा। घाटा। नुकसान। जैसे, —इस व्यापार में उसे लाखों का धक्का बैठा।

क्रि० प्र०—खाना।—बैठना।

७. कुत्ती का एक पैर जिसमें बायीं पैर आगे रखकर बिपक्षी की छाती पर दोनों हाथों से गहरा धक्का या चपेट देकर उसे गिराते हैं। छाप। ठोड़।

धक्काड़—वि० [हि० धक्का + ढड़ना] प्रभावशाली। जिसकी खूब बलवती हो।

धक्कामुक्की—संज्ञा स्त्री० [हि० धक्का + मुक्का] ऐसी सड़ाई

जिसमें एक दूसरे को ठकेले और घूसों से मारे। मुठभेड़। मारपीट।

धखना—क्रि० घ० [हि० धक्का] जनना। प्रज्वलित होना। उ०—मद्य बककर भक्कर कोप धखे।—हु० रासो, पृ० २१८।

धगड़—संज्ञा पुं० [सं० धव (= पति ?)] जार। उपपति।

धगड़बाज—वि० स्त्री० [हि० धगड़ + बाज] जार के पास आने जानेवाली अभिचारिणी। कुलटा।

धगड़ा—संज्ञा पुं० [सं० धव (= पति ?)] किसी स्त्री का जार। उपपति।

धगड़ी—संज्ञा स्त्री [हि० धगड़ा] अभिचारिणी स्त्री। कुलटा स्त्री।

धगधागना—क्रि० घ० [हि० धक्ककाना] धक्कक करना। धक्कना (छाती या जी का)। उ०—जब राजा तेहि मारन लाग्यो। देखी काली मन धगधाग्यो।—सूर (शब्द०)।

धगरा—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'धगड़ा'।

धगरिन—संज्ञा स्त्री० [हि० धागर] धागर जाति की स्त्री जो जन्मे हुए बच्चों का नास काटती है।

धगवरी—वि० [हि० धगड़ा (= पति या पार)] १. पति की दुलारी। लसम की मुँहलगी। २. कुलटा। झिनाल। अभिचारिणी। उ०—जन्म की स्त्रीभूत हरि रोये झूठहि मोहि लगावति धगरी।—सूर (शब्द०)।

धगा—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'धागा' (तागा)। उ०—सूरजदास काँच धर कंचन एकहि धगा पिरोयो।—सूर (शब्द०)।

धगुला—संज्ञा पुं० [देश०] हाथ में पहनने का कड़ा।

धगड़—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'धगड़'।

धक्कचाना—क्रि० स० [देश०] डराना। दहलाना।

धक्कना—क्रि० घ० [देश०] दलदल में धंसना।

धक्का—संज्ञा पुं० [देश०] धक्का। झटका। झोंका। आघात।

मुहा०—धक्का उठाना = नुकसान उठाना। घाटा सहना।

धक्कना—क्रि० स० [सं० धक्कण, हि० धक्कना] मारना। धक्क करना। उ०—सुद्ध सहस्रध्व के विपच्छिन के धक्कने को मच्छ कच्छ आदि कला कच्छिबो करत हैं।—पद्माकर वं०, पृ० २४३।

धज—संज्ञा स्त्री० [सं० ध्वज (= चिह्न, पताका)] १. सजावट। बनाव। सुंदर रचना।

यौ०—सजधज = तैयारी। सज सामान। जैसे, —धरात बड़ी सजधज से निकली।

२. सुंदर ढंग। मोहित करनेवाली बात। तरह। ३. बैठने उठने का ढब। ठबन। ४. ठसक। नल्लरा। ५. रूप रंग। शोभा। आकृति या ढील ढील। ६. झंडा। ध्वजा। पताका। उ०—रथ ऊपर धज फरहरई। सेहाडंबर नवि सुझा जाण—बी० रासो, पृ० १२।

धजना—क्रि० घ० [हि० धज] सजधज करना। सजना।

उ०—घावर कियो है धजि के रीमेहि आए अजि के ।—बज०
पं०, पु० ११ ।

धजनेज(७)—संज्ञा स्त्री० [हि० धज + नेज] नेजे में लगी हुई ध्वजा ।
उ०—धजनेज मोख नीसान डल मनु वसंत रंजिय बिपन ।—
पु० रा०, १ । ६१७ ।

धजबड़(७)—संज्ञा स्त्री० [हि० धज (= ध्वजा) + बड़ (= बढ़ानेवाला)]
तलवार । (हि०) । उ०—धजबड़ बल मेवाड़ धर, जीती तू
यह जोष ।—बाँकी० पं०, भा० १, पु० ७२ ।

धजा^१—संज्ञा स्त्री० [सं० ध्वज] १. ध्वजा । पताका । उ०—सुने सेत
ध्वज धजा नेज माही ।—पु० रा०, १ । ६३२ । २. कपड़े की
धज्जी । कतरन । पीर । ३. धज । रूपरंग । मोखडोल ।

धजा(७)^२—संज्ञा स्त्री० [हि० धज] सजधज । सजावट । उ०—बिज्जयी
रिखि मारी । दियो काम डारी । भयो पुत्र तन्त्र । धजा मोद
सम्भ ।—पु० रा०, १ । ५७ ।

धजी(७)—संज्ञा स्त्री० [हि०] ३० 'धज्जी' । उ०—साज लपेटी कहाँ
लौ रहिय धुनि धीरज की करति धजी है ।—धनानंद,
पु० १४७ ।

धजीला—वि० [हि० धज + ईला (प्रत्यय)] [वि० स्त्री० धजीली]
सजीला । सरहदार । सुंदर ढंग का ।

धज्जी—संज्ञा स्त्री० [सं० धटी] १. कपड़े, कागज, चमड़े इत्यादि
(चदर के रूप की वस्तुओं) की कटी हुई लंबी पतली
पट्टी । कटा हुआ लंबा पतला टुकड़ा । २. लोहे की चदर या
छकड़ी के पतले तख्ते की प्रथम की हुई लंबी पट्टी ।

मुहा०—धज्जिया उड़ना = (१) फट या कटकर टुकड़े टुकड़े हो
जाना । बिदीर्ण होना । पुरजे पुरजे होना । (२) (किसी की)
खूब दुर्गति होना । निदा या तिरस्कार होना । दोषों का खूब
उधेड़ना जाना । धज्जिया उड़ाना = (१) टुकड़े टुकड़े करना ।
बिदीर्ण करना । खंड खंड करना । (२) (किसी के) दोषों
को खूब उधेड़ना । दुर्गति करना । निदा या उपहास करना ।
उ०—धज्जिया उड़ाने बहुतसे जो नहीं । सिर उतारते किसलिये
वे सी करें ।—धुमते०, पु० १ । (३) मारकर टुकड़े टुकड़े
करना । बोटी बोटी काट डालना । धज्जिया लगना = गरीबी
से कपड़े फटे रहना । बहुत गरीबी आना । धज्जिया लेना =
निदा या उपहास करना । (किसी के) दोषों को उधेड़ना ।
बनाना । दुर्गति करना । धज्जी हो जाना = सुखकर उठरी
हो जाना । बहुत दुबला पतला हो जाना । पर्यंत दुर्बल और
अशक्त हो जाना (रोग आदि के कारण) ।

धट—संज्ञा पुं० [सं०] १. तुला । तराजू । २. तुला राशि । ३. तुला-
परीक्षा । ४. धर्म ।

धटक—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन तौल जो ४२ रत्तियों की
होती थी ।

धटिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. पाँच सेर की एक तौल । पंचेरी ।
१. पीर । वस्त्र । ३. कीरीन । मंगोटी । ४. गर्भ के पश्चात्
स्त्री द्वारा पहना जानेवाला वस्त्र (को०) ।

धटी^१—संज्ञा [स्त्री०] १. पीर । कपड़े की धज्जी । २. कीरीन ।

लिंगोटी । ३. वह वस्त्र जो स्त्रियों को गर्भाधान के पीछे
पहनने को दिया जाता था ।

विशेष—फलित ज्योतिष के अनुसार गर्भाधान के पीछे मूल,
श्रवण, हस्त, पुष्य, उत्तराषाढ़, उत्तराभाद्र या मृगशिरा नक्षत्रों
में स्त्री को धन्ने बिन धटी वस्त्र पहनाना चाहिए ।

यौ०—धटीदान = गर्भाधान के बाद स्त्री को पुराना वस्त्र देना ।

धटी^२—वि० [सं० धटिन्] [वि० स्त्री० धटिनी] तुलाधारक । डाँड़ी
पकड़नेवाला ।

धटी^३—संज्ञा पुं० १. तुला राशि । २. शिव । ३. व्यापारी ।
बनिषा (को०) ।

धडंग—वि० [हि० धड़ + धंग] नंगा ।

यौ०—नंग धडंग ।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग प्रायः अकेले नहीं होता 'नंग' शब्द
के साथ समस्त रूप में होता है ।

धड़^१—संज्ञा पुं० [सं० धर (= धारण करनेवाला)] १. शरीर का
स्थूल मध्य भाग जिसके अंतर्गत छाती, पीठ और पेट होते हैं ।
सिर और हाथ पैर (तथा पशु पक्षियों में पूँछ और पंख)
को छोड़ शरीर का बाकी भाग । सिर और हाथों को छोड़
कटि के ऊपर का भाग । उ०—धड़ सुनी सिर कंगुरे, तड न
बिसाह तुम्ह ।—संतवाणी०, पु० ३६ ।

यौ०—धड़ट्टा ।

मुहा०—धड़ में डालना या उतारना = पेट में डालना । खा
जाना । (किसी का) धड़ रह जाना = शरीर स्तब्ध हो
जाना । देह सुन्न हो जाना । मकमा मार जाना । धड़ से सिर
अलग करना = सिर काट लेना । मार डालना ।

२. पेड़ का वह सब मोटा कड़ा भाग जो धड़ से कुछ दूर ऊपर
नक रहता है और जिससे निकलकर डालियाँ इधर उधर
फेली रहती हैं । पेड़ी । तना ।

धड़^२—संज्ञा स्त्री० [धनु०] वह शब्द जो किसी वस्तु के एकबारगी
गिरने, वेग से गमन करने आदि से होता है । जैसे,—(क) वह
धड़ से नीचे गिरा । (ख) गाड़ी धड़ से निकल गई ।

यौ०—धड़ धड़ ।

विशेष—'कट' 'पट' आदि धनु० शब्दों के समान प्रायः इस
शब्द का प्रयोग भी 'से' विभक्ति के साथ क्रि० वि० वत् हो
होता है ।

धड़क—संज्ञा स्त्री० [धनु० धड़] १. हृदय का स्पंदन । हृदय के
आकुंचन प्रसारण की क्रिया जो हाथ रखने से मालूम होती
है । दिल के चक्कने या उछलने की क्रिया । हृदय के स्पंदन
का शब्द । दिल के कूदने की आवाज । तड़प । तपाक ।
३. भय, आशंका आदि के कारण हृदय का अधिक स्पंदन ।
अँसे से या बहुतसे से दिल का जल्दी जल्दी और जोर जोर
से कूदना । जो धक धक करने की क्रिया । ४. आशंका ।
खटका । अँसेना । भय ।

यौ०—धड़क = बिना किसी खटके के । बिना किसी असमंजस

या प्राणा पीछा के । निर्द्वन्द्व । बिना किसी रुकावट या संकोच के । जैसे,—तुम बेचड़क भीतर चले जाओ ।

५. हिचक । झिझक । संकोच ।

बड़कन—संज्ञा स्त्री० [हि० बड़क] हृदय का स्पंदन । दिल का कूबना ।

बड़कना—क्रि० प्र० [हि० बड़क] १. हृदय का स्पंदन करना । दिल का उछलना या कूदना । छाती का धक धक करना ।

संयो० क्रि०—उठना ।

मुहा०—छाती, जी या दिल बड़कना = भय या आशंका से हृदय का जोर जोर से भीर जल्दी जल्दी उछलना । जी बहलना । हृदय कांपना ।

२. बड़ बड़ शब्द करना । किसी भारी वस्तु के गिरने का सा शब्द करना । जैसे, गोला बड़कना ।

बड़का—संज्ञा पुं० [अनु० बड़] १. दिल की बड़कन । २. दिल के बड़कने का शब्द । ३. खटका । भ्रंश । भय ।

मुहा०—बड़का झुलना = साहस होना । भय जाता रहना ।

४. गिरने पड़ने का शब्द । ५. पयाल का पुतला या डंडे पर रखी हुई काशी हाड़ी आदि जिसे बिड़ियों को डराकर भगाने के लिये बेटों में रखते हैं । घोखा ।

बड़काना—क्रि० प्र० [हि० बड़क] १. दिल में बड़क पैदा करना । जी धक धक कराना । २. जी बहलाना । डराना । खटका या आशंका उत्पन्न करना ।

संयो० क्रि०—देना ।

३. बड़ बड़ शब्द उत्पन्न कराना । कोई ऐसी वस्तु फेंकना, गिराना या छोड़ना जिससे भारी शब्द हो । जैसे, गोला बड़काना ।

बड़कका—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'बड़का' ।

बौ०—धूम बड़कका = लूब भीड़ भाड़ और धूम धाम । गहरा समारोह और ठाटबाट ।

बड़चना^(१)—क्रि० प्र० [सं० चर्वण] १. मारना । उ०—जोराबरी पीठ भुज जेही, बड़वे सो तू हिज अवधेस ।—रघु० क०, पृ० २८३ । फाड़ना । बिदीछा करना । उ०—बड़च कनाता धार सूँ, गोरहवास भभार ।—रा० क०, पृ० २८३ ।

बड़चा^(२)—संज्ञा पुं० [हि० बड़का] भय । आशंका ।

बड़च्छना^(३)—क्रि० प्र० [हि०] १. दे० 'बड़कना' । उ०—सुत प्राणंद महेस, लगे पंडवेस बड़च्छे ।—रा० क०, पृ० २०६ ।

बड़ट्टा—वि० [हि० बड़ + टटना] १. जिनकी कमर भुकी हुई हो । २. कुबड़ा ।

बड़धड़^(४)—संज्ञा स्त्री० [अनु०] १. किसी भारी वस्तु के एकबारगी गिरने, फेंके जाने, गमन करने या झूटने से उत्पन्न लगातार होनेवाला धीपण शब्द । २. बड़कन । उ०—बैसा उनके सुब्ब हृदय में बड़ धड़ धड़ था ।—साकेत, पृ० ४०३ ।

बड़धड़^(५)—क्रि० प्र० १. बड़ बड़ शब्द के साथ । जैसे, बड़ बड़ गोले छूट रहे हैं । २. बेचड़क । बिना रुकावट के ।

बड़धड़काना—क्रि० प्र० [अनु० बड़धड़] बड़ बड़ शब्द करना ।

भारी चीज के गिरने, पड़ने की सी आवाज करना । जैसे,—गोले बड़बड़ा रहे हैं ।

मुहा०—बड़बड़ाता हुआ = (१) बड़ बड़ शब्द और वेग के साथ । गड़गड़ाहट और झोंक के साथ । जैसे,—गाड़ी बड़बड़ाती हुई निकल गई । (२) बिना रुकावट के और झोंक के साथ । बिना किसी प्रकार के खटके या संकोच के । बेचड़क । जैसे,—तुम बड़बड़ाते हुए भीतर चले जाना ।

बड़ल्ला—संज्ञा पुं० [अनु० बड़] १. बड़ बड़ शब्द । बड़ाका । वेग के साथ गिरने, पड़ने, गमन करने आदि का शब्द ।

मुहा०—बड़ल्ले से या बड़ल्ले के साथ = (१) बिना किसी रुकावट के । झोंक से । (२) बेचड़क । बिना किसी प्रकार के भय या संकोच के । जैसे, जो कुछ कहना हो बड़ल्ले के साथ कहो ।

२. धूमधड़ाका । भीड़ भाड़ और धूमधाम । ३. कलमकल । कलमस । गहरी भीड़ ।

बड़वा—संज्ञा पुं० [दे०] एक प्रकार की येना ।

बड़वाई—संज्ञा पुं० [हि० बड़ा] तोलनेवाला ।

बड़हड़ना^(६)—क्रि० प्र० [अनु०] कांपना । लरजना । उ०—सुंदर घरती घड़ेहड़ गगन लगे उड़ि धूरि ।—सुंदर प्र०, भा० २, पृ० ७३६ ।

बड़ा^(७)—संज्ञा पुं० [सं० बट] १. परस्पर लोहे आदि का बोक जो बंधी हुई तोल का होता है और जिसे तराजू के एक पलके पर रखकर दूसरे पलके पर उसी के बराबर चीज रखकर तोलते हैं । बाट । बटकरा ।

मुहा०—बड़ा करना = कोई वस्तु रखकर तोलने के पहले तराजू के दोनों पलकों को बराबर कर लेना ।

विशेष—जब किसी वस्तु को बरतन के सहित तोलना रहता है तब पहले बरतन को पलके पर रखकर दोनों पलकों को बराबर कर लेते हैं । इसी को बड़ा करना कहते हैं ।

बड़ा बांधना = (१) दे० 'बड़ा करना' । (२) दोबारोपख करना । कलंक लगाना ।

२. चार सेर की एक तोल ।

विशेष—कही कहीं पाँच सेर का बड़ा माना जाता है ।

३. तराजू । तुला ।

मुहा०—बड़ा उठाना = तोलना । वजन करना ।

बड़ा^(८)—संज्ञा पुं० [हि० बड़कका] बल । जल्पा । झुंड । समूह ।

मुहा०—बड़ा बांधना = दल बांधना ।

बड़ाका^(९)—संज्ञा पुं० [अनु०] दे० 'बड़ाका' ।

बड़ाका^(१०)—संज्ञा पुं० [अनु० बड़] 'बड़' 'धड़' शब्द । किसी भारी चीज से गिरने, झूटने, चलने आदि से उत्पन्न जोर शब्द । धमाके या गड़गड़ाहट का शब्द । जैसे, बड़क का बड़ाका, दीवार गिरने का बड़ाका ।

क्रि० प्र०—होवा ।

मुहा०—धड़ाधड़े से = फट से। जल्दी से। चटपट। बिना रुकावट के। जैसे,—धड़ाधड़े से यह काम कर डालो।

धड़ाधड़—क्रि० वि० [धनु० धड़] १. लगातार 'धड़' 'धड़' शब्द के साथ। बार बार धड़ाधड़े के साथ। जैसे,—ऊपर से धड़ाधड़ ईंटें गिर रही हैं। उ०—(क) धक्कों की धड़ाधड़ धड़ंग की धड़ाधड़ में, हँस रहे कड़ाकड़ सुदंतों की कड़ाकड़ी।—पद्माकर प्र०, पृ० ३०७। (ख) चलो तोप धी धी धधा धधा जगगी। धड़ाधड़ धड़ाधड़ धड़ा होने लगी।—पद्माकर प्र०, पृ० ११। २. एक दूसरे के पीछे लगातार। बराबर जल्दी जल्दी। बिना रुके हुए। जैसे,—वह सब बातों का धड़ाधड़ जवाब देता गया।

धड़ाधड़ी—संज्ञा स्त्री० [हि० धड़ा + प्रा० धड़ी] १. धड़ा बाँधने का काम। २. सड़ाई के पहले दो पक्षों का अपनी अपनी सेना का बल एक दूसरे के बराबर करना।

धड़ाम—संज्ञा पुं० [धनु० धड़] ऊपर से एकबारगी कुब या गिरकर जोर से जमीन पानी आदि पर पड़ने का शब्द। जैसे,—छत पर से वह धड़ाम से कूद पड़ा।

विशेष—सट, पट आदि धनु० शब्दों के समान इस शब्द का प्रयोग केवल 'से' विभक्ति के साथ क्रि० वि० बतू ही होता है।

धड़ी—संज्ञा स्त्री० [सं० घटिका, घटी] १. चार या पाँच सेर की एक तोल। उ०—कहा बोझ सीरा में कहिये तो ऊपर एक धड़ी।—संतबाणी० पृ० ७७।

मुहा०—धड़ी मरना = बजन करना। धड़ी धड़ी करके लुटना = तिनका तिनका लुटना। इस प्रकार लुटना कि पास में कुछ भी न रह जाय। धड़ी धड़ी करके लुटना = तिनका तिनका लुटना। लूके लुटना। कुछ भी न छोड़ना। घड़ियों = डेर का डेर। बहुत सा। बहुत अधिक।

२. पाँच सौ रुपए की रकम। ३. रेखा। मकीर। ४. वह लकीर जो मिस्सी लगाने या पान खाने से घोटों पर पड़ जाती है।

क्रि० प्र०—जमाना = घोटों पर मिस्सी की तह जमाना।
-लगाना = दे० 'धड़ी जमाना'।

धड़कना(७)—क्रि० प्र० [हि० धड़कना] गरजना। मड़मड़ाना। उ०—धुरि प्रसाद धड़कया मेह।—बी० रासो, पृ० ७०।

धड़(७)—संज्ञा स्त्री० [सं० धग्धा] स्त्री। पत्नी। उ०—धड़क बोल बस्यो जने माहि।—बी० रासो, पृ० ३३।

धड़ी(७)—संज्ञा पुं० [हि० धनी] स्वामी। मालिक। धनिपति। उ०—सोनीगरा का हँ कर्क बषाण, हाडा कुंरी का धणी।—बी० रासो, पृ० ३१८।

धतू—अव्य० [धनु०] १. दुतकारने का शब्द। तिरस्कार के साथ हटाने का शब्द। दूर हो। हट जा। २. हाथी को पीछे हटाने का शब्द।

धतू—संज्ञा स्त्री० [सं० रत, हि० रत] रत। दुरी बान। सराब आरत। देव।

क्रि० प्र०—पड़ना।

धतूकारना—क्रि० सं० [धनु० धतू] १. दुतकारना। दुरदुराना।

तिरस्कार के साथ हटाना। २. धिक्कारना। जानत मला-मल करना।

संयो० क्रि०—देना।

धता—वि० [धनु० धतू] चलता। हटा हुआ। जो दूर हो गया हो या किया गया हो। जो आया या भगाया गया हो (बाजार)।

मुहा०—धता करना = चलता करना। हटाना। भगाना। टालना। धता बताना = (१) चलता करना। हटाना। उ०—जब सी डेढ़ सौ रुपए हो जाते, तो वह नौकरी को धता बता देते। किन्नर०, पृ० १००। (२) जो किसी बात के लिये धड़ा हो उससे हजर हजर का बहाना करके अपना पीछा छुड़ाना। बोझा देकर टालना। टालटूट करना। धता होना = चलता होना। चल देना।

धतिंगड़—संज्ञा पुं० [देश०] दे० 'धतींगड़'।

धतिया—वि० [हि० धत] जिसे किसी बात की धत पड़ गई हो। दुरी लत वाला। लती।

धतींगड़—संज्ञा पुं० [देश०] १. बड़े डील का। बेडोल घादमी। मोटा ताबा घादमी। मुस्टंड। २. जारज। दोगला।

धतींगड़ा—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'धतींगड़'।

धतूरा^१—संज्ञा पुं० [सं० धतूर] दे० 'धतूरा'।

धतूर^२—संज्ञा पुं० [धनु० धू + सं० तूर] तरसिहा नाम का बाजा। ऋषु। सिंहा। तुरही। उ०—दसएँ मास मोहन भए मेरे माँगल बाजे धतूर।—सूर (शब्द०)।

धतूरा—संज्ञा पुं० [सं० धुस्तूर अथवा सं० धतूरक] दो तीन हाथ ऊँचा एक पीथा जिसके पत्ते सात आठ धंगुल तक लंबे और पाँच छह धंगुल चौड़े तथा कोनदार होते हैं।

विशेष—इसमें घंटों के आकार के बड़े बड़े और मुहावने सफेद फूल लगते हैं। फल इसके झंडी के फलों के समान गोल और कटिहार पर उनसे बड़े बड़े होते हैं। झंडी के फल के ऊपर जो कटि निकले होते हैं वे घने लंबे और मुलायम होते हैं, पर धतूरे के फल के ऊपर कटि कम, छोटे और कुछ अधिक कड़े होते हैं। कंटकहीन फलवाला धतूरा भी होता है। फलों के भीतर बीज भरे होते हैं जो बहुत बिखले होते हैं। जब ये बीज पुष्ट हो जाते हैं तब फल फट जाते हैं। धतूरे कई प्रकार के होते हैं पर मुख्य भेद दो माने जाते हैं। सफेद धतूरा और काला धतूरा। कहीं कहीं पीला धतूरा भी मिलता है। इसके फूल सुनहले रंग के होते हैं। काले धतूरे के बंठल, टहनियाँ और पत्तों की जसे गहरे जगनी रंग की होती हैं तथा फूलों के निचले भाग भी कुछ दूर तक रक्तकृष्णाम होते हैं। साधारणतः लोगों का विश्वास है कि काला धतूरा अधिक विषैला होता है, पर यह भ्रम है। औषध में लोग काले धतूरे का व्यवहार अधिक करते हैं। वैद्य लोग धतूरे के बीज तथा पत्तों के रस का दम में सेवन कराते और बात की पीड़ा में उसका बाहरी प्रयोग करते हैं। डाक्टरों ने भी परीक्षा करके इन दोनों रोगों में धतूरे को बहुत उपकारी पाया है। सूखे पत्तों या बीजों के धूप से भी दमे का कष्ट दूर होता है। पहले डाक्टर

धनदेव—संज्ञा पु० [सं०] कुवेर ।

धनधन^७—वि० [हि० धन + धन] धन्य । धन्य धन्य । उ०—गुरु देव संघ भाँवरि लेहूँ धन धन बाध हमार ।—कबीर सा०, पृ० ८० ।

धनधन्नि^७—वि० [हि० धनधन्] धन्य धन्य । उ०—धनधन्नि गरिद सुलोह नर ।—पृ० रा०, १२।१४१ ।

धनधानी—संज्ञा स्त्री० [सं०] खजाना [को०] ।

धनधान्य—संज्ञा पु० [सं०] धन और धान आदि । सामग्री और संपत्ति । जैसे, धन-धान्य-पूर्ण देश ।

धनधाम—संज्ञा पु० [सं०] घरबार और रुपया पैसा ।

धनधारी—संज्ञा पु० [सं० धन + धारी] १. कुवेर । उ०—राम निष्ठावरि जेन को हठि होत भिखारी । बहुरियत तेहि देखिए मानहु धनधारी ।—तुलसी (शब्द०) । २. बहुत बड़ा धनी । परम धनवान् ।

धननन्द—संज्ञा पु० [सं० धननन्द] सिंहल के महावंश नामक ग्रंथ के अनुसार मगध के नन्दवंश का अंतिम राजा जिसका बाल्यक द्वारा नाक हुआ । ३० 'नन्दवंश' ।

धननाथ—संज्ञा पु० [सं०] १. कुवेर ।

धनपति^७—संज्ञा पु० [सं०] १. कुवेर । २. पुराण के अनुसार वायु का नाम ।

विशेष—वराहपुराण में लिखा है कि ब्रह्मा ने जब सृष्टि की तब उनके मुख से वायु देवता निकले । ब्रह्मा ने उनसे मूर्तिमान होकर शांत भाव धारण करने के लिये कहा और वर दिया कि 'देवताओं का जितना धन है सबके रक्षक तुम हो । जो एकादशी के दिन प्राण में एक अन्न न लायगा उसके प्रति प्रसन्न होकर पुनः धनधान्य दोगे' ।

धनपति^७—संज्ञा पु० [सं० धनपति] ३० 'धनपति' । उ०—जीव जीव धनपति सुहाय्य ।—पृ० रा०, पृ० १४ ।

धनपत्र—संज्ञा पु० [सं०] बही खाता ।

धनपातर^७—संज्ञा पु० [सं० धनपात्र] ३० 'धनपात्र' । उ०—पूछेसि इहाँ साहु कोउ बहई । धनपातर जा कहँ जग कहई ।—बिना०, पृ० २३४ ।

धनपात्र—संज्ञा पु० [सं०] धनत्रय । धनी ।

धनपाल^१—वि० [सं०] १. धन का रक्षक । २. खजांची [को०] ।

धनपाल^२—संज्ञा पु० कुवेर ।

धनपिशाच—संज्ञा पु० [सं०] ३० 'धनपिशाच' ।

धनपिशाचिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] अविशेषपूर्वक धनसंग्रह करने की वृत्ति । धनलोलुपता । [को०] ।

धनपिशाची—संज्ञा स्त्री० [सं०] धनलोलुपता [को०] ।

धनप्रयोग—संज्ञा पु० [सं०] धन को किसी व्यापार में लगाने वा व्याज पर उधार देने का कार्य । रुपया लगाने का काम ।

विशेष—मूहूर्तचिन्तामणि, ज्योतिषप्रकाश आदि फलित ज्योतिष के ग्रंथों में इस बात का विचार किया गया है कि किन किन नक्षत्रों या दिनों में धनप्रयोग करना चाहिए, किन किन में नहीं ।

धनप्रिया—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का छोटा जामुन ।

धनमद—संज्ञा पु० [सं०] धन का धमंठ ।

धनमान^७—वि० [हि०] ३० 'धनवान' । उ०—संमति हम लोग अपने बिरादर कुलीन धनमानों को देंगे ।—प्रेमचन्द, भा० २, पृ० २७६ ।

धनमाली—संज्ञा पु० [सं० धनमालिन्] एक प्रसन्न का संहार ।

धनमूल—संज्ञा सं० [सं०] पूँजी । मूलधन [को०] ।

धनराज^७—संज्ञा पु० [सं० धन + राज] धनी । धनवान । उ०—बानि गण्डिरा दामा दयाल । धनराज कीण भोगी सुपाल ।—पृ० रा०, १६।१५३ ।

धनवंत—वि० [हि०] ३० 'धनवान' । उ०—(क) आशा तृष्णा जेहि बर व्यापे धनवंता सो सो चाह मिलापे ।—कबीर सा०, पृ० ४८५ । (ख) तपसी धनवंत दरिद्र गृही । कबिकीतुक तास न जात कही ।—मानस, ७ ।

धनवती^१—वि० स्त्री० [सं०] धन रखनेवाली ।

धनवती^२—संज्ञा स्त्री० धनिष्ठा नक्षत्र ।

धनवा^१—संज्ञा पु० [हि० धान] एक प्रकार की बास ।

धनवा^२^७—संज्ञा पु० [हि०] ३० 'धन्वा' । उ०—भए कर प्रगले संग जाके । खँबत बार बार धनवा के ।—सकुंतला, पृ० ३१ ।

धनवान्—वि० [सं०] [वि० स्त्री० धनवती] जिसके पास धन हो । धनी । शीलतमं ।

धनवारा^७—वि० [हि० धन + वाला (प्रत्य०)] धनी । उ०—सोऊ नहीं मनभावन नायक, आवन जो बहुते धनवारो ।—मति० प्र०, पृ० २६० ।

धनशाली—वि० [सं० धनशालिन्] [वि० स्त्री० धनशालिनी] धनवान् । धनिक ।

धनसार—संज्ञा पु० [हि० धान + सार (शाला)] धनाज भरने की कोठरी या धेरा जिसमें केवल दो खिड़कियाँ धनाज रखने और निकालने के लिये होती हैं ।

धनसिरी—संज्ञा स्त्री० [सं० धन + श्री] एक चिड़िया ।

धनसुंघा—संज्ञा पु० [हि० धन + सुंघना] धन सुंघनेवाले । सूँघकर धन की जानकारी करनेवाले । उ०—कुछ लोग धनसुंघा होते हैं, और बिना देखे ही जान जाते हैं कि किस चीज में रुपया छिपाया गया है ।—जिप्सी, पृ० ३३ ।

धनसू—संज्ञा पु० [सं०] धनेस नाम की चिड़िया ।

धनस्थान—संज्ञा पु० [सं०] १. खजाना । २. कुंडली में लग्न के दूसरा स्थान जिसमें पड़े ग्रहों की स्थिति के आधार पर किसी का धनी या निर्धन होना जाना जाता है [को०] ।

धनस्यक^१—वि० [सं०] धन की लालसा रखनेवाला ।

धनस्यक^२—संज्ञा पु० गोक्षुरक । गोखरु ।

धनस्वामी—संज्ञा पु० [सं० धनस्वामिन्] कुवेर ।

धनहटा—संज्ञा स्त्री० [सं० धन + हि० हाट] धान्यहाट । धान की बंदी । उ०—अचूर पोरेजन पर सम्हार सम्हार, धनहटा,

हुटा, पनहुटा, पनकानहुटा, मछहुटा करेओ सुख रनकथा कहूँ।—कीर्ति०, पृ० २८।

धनहर^१—वि० [सं०] धन हरनेवाला।

धनहर^१—संज्ञा पु० १. चोर। लुटेरा। २. चोर नामक गंधद्रव्य। ३. उत्तराधिकारी। वारिस (को०)।

धनहार्य—वि० [सं०] जिसे धन देकर बलीभूत किया जाय (को०)।

धनहीन—वि० [सं०] निर्धन। दरिद्र। कंयास।

धना^१—संज्ञा जी० [?] एक रागिनी।

धना^५—संज्ञा जी० [सं०] धनिका, हि० धनिया (= युवती) युवती। बधू (पौत या कबिता)।

धनाक्य—वि० [सं०] धनवान्। मालदार।

धनाधिकार—संज्ञा पु० [सं०] धन या संपत्ति का अधिकार (को०)।

धनाधिप—संज्ञा पु० [सं०] कुबेर।

धनाधीश—संज्ञा पु० [सं०] धन + अधीश धनपति। धनिक। उ०—
जो सैकड़ों धनाधारों की कामना है।—ज्ञान०, पृ० ५०।

धनाध्यक्ष—संज्ञा पु० [सं०] १. खजानची। २. कुबेर।

धनाना—कि० प्र० [सं०] धेनु (= नवसूतिका गाय) १. गाय का गंधवली होना। बच्चे से होना। २. गाय का बरदान। गाय का सड़ि से संयोग करना।

धनानी^५—संज्ञा पु० [सं०] धन धनी। धनिक। उ०—किन्नर घर विद्याधरा मल्लादि धनानी।—सुंदर० प्र०, भा० १, पृ० २०६।

धनापहार—संज्ञा पु० [सं०] १. प्रयंदड। २. लूट। (को०)।

धनापित्त—वि० [सं०] मृत्यवान् उपहारों को देकर संतुष्ट किया हुआ (को०)।

धनाह—वि० [सं०] धन + बाह धनी। धनपति। उ०—मेरा पति धनाह छेठि सहस्रभार स्वर्ण का अधिपति था।—वैखान्सी०, पृ० १७१।

धनाशा—संज्ञा जी० [सं०] धनप्राप्ति की भाषा (को०)।

धनाश्री—संज्ञा जी० [सं०] एक रागिनी जो हनुमान् के मत से ओ राग की तीसरी पत्नी मानी जाती है।

विशेष—इसकी जाति पांडव, ऋषभ वंशज गृहस्थन्यास चक्र है। माने का समय किसी किसी के मत से दिन का दूसरा पहर और किसी के मत से तीसरा पहर है। इसका प्रयोग बीर रस में विशेष होता है। इसका सरगम इस प्रकार है—
स। ग। म। प। ध। नि। स।

वरत के मत से यह बांधार राग की भार्या और कल्किनाथ के मत से मेघराग की चतुर्थ भार्या है।

धे^५—संज्ञा जी० [सं०] धनी युवती। बधू। उ०—धनि वै धनि सारथ की रसियाँ पिय की रसियाँ बधि सोवति हैं।—(चम्प०)।

धे^१—वि० [सं०] धन्य २० 'धन्य'। उ०—धनि धनि भारत की खजानी।—हरिवंश (चम्प०)।

धे^३—संज्ञा पु० [हि०] २० 'धनी'। उ०—जी वे धनि का हुकुम किया। जी वे बोध का प्यासा पिया।—वसिष्ठजी०, पृ० १२२।

धनिक^१—वि० [सं०] १. धनी। जिसके पास धन हो। २. गुणयुक्त (को०)।

धनिक^२—संज्ञा पु० १. धनी मनुष्य। २. पति। स्वामी। ३. हथका उधार देनेवाला मनुष्य। महाजन। उत्तमर्ण। ४. धनिया। ५. ईमानदार धनिया। व्यापारी (को०)। ६. प्रियंगु का पेड़ (को०)।

धनिका—संज्ञा जी० [सं०] १. धनी स्त्री। २. धन्य स्त्री। बधू। युवती। ३. प्रियंगु वृक्ष।

धनिता—संज्ञा जी० [सं०] धनीपना। धनाध्यता।

धनिप—संज्ञा पु० [सं०] धनी। स्वामी। उ०—बट्टाम सहस्र पर जित्ति धनिप दिल्लिय धनिप।—प० रासो, पृ० ३८।

धनिया^१—संज्ञा पु० [सं०] धन्याक, धनिका धनवा धनीयक एक छोटा पौधा जिसके मुगंधित फल मसाले के काम में आते हैं।

विशेष—यह पौधा हिंदुस्तान में सर्वत्र बोया जाता है। प्राचीन काल में धनिया प्रायः भारतवर्ष ही से मिश्र आदि पश्चिम के देशों में जाता था पर धन उत्तरी अफ्रीका तथा रूस, हंगरी आदि योरोप के कई देशों में इसकी खेती अधिक होने लगी है। धनिप का पौधा हाथ भर से बड़ा नहीं होता था। इसकी टहनियाँ बहुत नरम और लता की तरह लचीली होती हैं। पत्तियाँ बहुत छोटी और कुछ बानाई लिए होती हैं पर उनमें टेढ़े मेढ़े तथा इधर उधर निकले हुए बहुत से कटाव होते हैं। इन पत्तियों को सुगंध बढ़ी मनोहर होती है जिससे वे पट्टी में हरी पोसकर डाली जाती हैं। टहनियों के छोर पर इधर उधर कई सीकें निकलती हैं जिनके सिरों पर छत्ते की तरह फैले हुए सफेद फूलों के गुच्छे लगते हैं। फूलों के झड़ जाने पर गेहूँ से भी छोटे छोटे खंजातर फल लगते हैं जो सुखाकर काम में लाए जाते हैं।

भारतवर्ष में इसकी खेती भिन्न भिन्न प्रदेशों में भिन्न भिन्न ऋतुओं में होती है। जैसे, बंगाल और उत्तरप्रदेश में जाड़े में, बंबई प्रदेश में बरसात में और मद्रास में शिशिर ऋतु में। मसाले के अतिरिक्त योरोप में धनिप का तेल भी सबके से अधिक निकालकर निकाला जाता है, जो खाने और दवा के काम में आता है। वैद्यक में धनिया शीतल, स्निग्ध, शीघ्र, पाचन, वीर्यकारक कृमिनाशक तथा पित्तज्वर, साँसी, प्यास और दाह को दूर करनेवाला माना जाता है। डाक्टर लोग जी पेट को वायु दूर करने और शरीर में फुरती जाने के लिये इसका प्रयोग करते हैं।

पर्या०—धन्याक। धनिक। धानक। धनिका। धनाधान्य। कुस्तुबुह। विमुन्नक। सुगंधि। सूक्ष्मपत्र। जनप्रिय। वेधक। वधिधान्य।

मुद्रा०—धनिप की कोपड़ी में पानी पिलाना = प्यास मारना। बहुत कठिन दंड देना। बहुत तंग करना। (लि०)।

धनिया^५—संज्ञा जी० [सं०] धनिका (= युवती) युवती। बधू। स्त्री। उ०—सहस्रान्न गुन गने गनत न धनियाँ। सूर स्याम सब सुखी चोर धनियाँ।—सूर (चम्प०)।

धनियामाल—संज्ञा स्त्री० [हि० धनी + माला] गले में पहनने का एक गहना ।

धनिष्ठा—वि० [सं०] धनी । धनाढ्य ।

धनिष्ठा—संज्ञा स्त्री० [सं०] सप्ताह्य नक्षत्रों में से तेईसवीं नक्षत्र जो ६ ऊर्ध्वमुख नक्षत्रों में से है और जिसमें पाँच तारे संयुक्त हैं । इसके अधिपति देवता वसु हैं और इसकी प्राकृति मृदग की सी है । फलित ज्योतिष के अनुसार धनिष्ठा नक्षत्र में जिसका जन्म हो वह दीर्घकाय, कामातुर, कफयुक्त, उत्तम शास्त्रवेत्ता और कीर्तिमान् होता है ।

पर्याय—अविष्ठा । वसुदेवता । भूति । निधान । धनवती ।

विशेष—दे० 'नक्षत्र' ।

धनी^१—वि० [सं० धनिन्] १. धनवान् । जिसके पास धन हो । मालदार । रुपए पैसेवाला । बोलतमब ।

यौ०—धनी धोरी = मर्यादावाला । यापवाला । धनी मानी = धनी और प्रतिष्ठित ।

मुहा०—बात का धनी = बात का सच्चा । दृढ़प्रतिज्ञ ।

२. जिसके पास कोई गुण आदि हो । दक्षतासंपन्न । जैसे, तलवार का धनी ।

धनी^२—संज्ञा पुं० १. धनवान् पुरुष । मालदार आदमी । २. रखने-वाला आदमी । वह जिसके अधिकार में कोई हो । अधिपति । मालिक । स्वामी । जैसे, कोशलधनी । उ०—सो राम रमानिवास संतत दास वग त्रिभुवन धनी ।—तुलसी (शब्द०) । ३. पति । शोहर ।

धनी^३—संज्ञा स्त्री [सं०] युवती स्त्री । वधू । उ०—श्री हरिदाम के स्वामी म्याम तमाले उठेगि बैठा धनी ।—हरिदाम (शब्द०) ।

धनीका—संज्ञा स्त्री [सं०] युवती । तरुणी [को०] ।

धनीमानी^४—संज्ञा पुं० [सं० धन + मान + ई (प्रत्य०)] धनी । धनवान् । उ०—सभी धनीमानी एव गुणी व्यक्तियों में साहित्यिक अभिरुचि आद्यत थी ।—अकबरी०, पृ० १६ ।

धनीयक—संज्ञा पुं० [सं०] धनिया ।

धनुःपट—संज्ञा पुं० [सं०] पिनाल वृक्ष ।

धनुःशास्त्रा—संज्ञा पुं० [सं०] विद्याल वृक्ष ।

धनुःश्रेणी—संज्ञा स्त्री [सं०] १. मूर्वा । मुरी । २. भट्टेद्वाराणी ।

धनु—संज्ञा पुं० [सं०] १. धनुस् । बाण । कमान ।

विशेष—दे० 'धनुस्' ।

२. ज्योतिष की बारह राशियों में से नवीं राशि जिसके अंतर्गत मूल और पूर्वाषाढ़ नक्षत्र तथा उत्तराषाढ़ा का एक चरण आता है । इसे सौमिक भी कहते हैं ।

विशेष—दे० 'राशि' ।

३. फलित ज्योतिष में एक लग्नविशेष जिसका परिमाण ५।१७।२० है ।

विशेष—प्रत्येक दिन रात में बारह लग्न माने जाते हैं । पूस के महीने में सूर्योदय धनु लग्न में होता है ।

४. हठयोग के एक आसन का नाम । ५. विद्याल वृक्ष । ६. बार हाथ की एक माप । ७. गोल क्षेत्र के आधे से कम अंश का क्षेत्र । ८. रेतीला तट (को०) । ९. तीरंदाज (को०) ।

धनुश्चा—संज्ञा पुं० [सं० धन्वन्, धन्वा] १. धनुष । कमान । २. तीर की डोरी की लंबी कमान जिससे धुनिए कई धुनते हैं ।

धनुर्ही—संज्ञा स्त्री [सं० धनु + ई (प्रत्य०)] छोटा धनुष ।

धनुक—संज्ञा पुं० [सं० धनुक्] दे० 'धनुष्' । उ०—मौह धनुक धनुः पे हारा । नैनहि साध बान बिष मारा ।—जायसी (शब्द०) ।

धनुकना—क्रि० सं० [हि०] दे० 'धनुकना' ।

धनुकबाई—संज्ञा पुं० [हि० धनुक + बाई] लकड़े की तरह का एक वायुरोग जिसमें जवड़े बैठ जाते हैं, और मुँह नहीं खुलता ।

धनुजाग^५—संज्ञा पुं० [सं० धनु + यज्ञ] धनुर्यज्ञ । उ०—द्विज मुदित अनहित रुदित मुख छवि कहत कबि धनुजाग की ।—तुलसी ग्रं०, पृ० ५५ ।

धनुधर^६—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'धनुधर'—१ । उ०—जनु धनुधर भयनि लखन भारत धार सो धाई ।—नंद० ग्रं०, पृ० ३६६ ।

धनुराकार—वि० [सं०] धनुष की प्राकृति या । वक्र । टेढ़ा [को०] ।

धनुरासन—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का आसन [को०] ।

धनुर्—संज्ञा पुं० [सं०] धनुस् का समासगत रूप ।

धनुर्गुण—संज्ञा पुं० [सं०] धनुष की डोरी । पतंगिका । चित्ला ।

धनुर्गुणा—संज्ञा स्त्री [सं०] मूर्वा । मरौर फली । चुरनहार ।

धनुर्ग्रह—संज्ञा पुं० [सं०] १. धनुधर । २. धनुर्विद्या । ३. धृतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम । ४. एक परिमाण जो २७ अंगुल के बराबर था [को०] ।

धनुर्माहि—संज्ञा पुं० [सं०] धनुधर [को०] ।

धनुर्ग्या—संज्ञा स्त्री [सं०] धनुष की डोरी । प्रत्यंबा [को०] ।

धनुर्दुम—संज्ञा पुं० [सं०] बाल ।

धनुर्दुर्ग—संज्ञा पुं० [सं०] मरुस्थल से सुरक्षित स्थान [को०] ।

धनुर्द्वार—संज्ञा पुं० [सं०] १. धनुष धारण करनेवाला पुरुष । कमनैत । तीरंदाज । २. धृतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम । ३. विष्णु [को०] । ४. धनु राशि [को०] ।

धनुर्द्वारा^७—वि० [सं० धनुर्द्वारिन्] [स्त्री० धनुर्द्वारिणी] धनुष धारण करनेवाला ।

धनुर्द्वारी—संज्ञा पुं० धनुधर । कमनैत । वीर योद्धा ।

धनुर्भूत—संज्ञा पुं० [सं०] १. धनुष धारण करनेवाला योद्धा । वीर । २. विष्णु [को०] । ३. धनु राशि [को०] ।

धनुर्मेख—संज्ञा पुं० [सं०] धनुर्यज्ञ ।

धनुर्मार्ग—संज्ञा पुं० [सं०] धनुष की तरह टेढ़ी रेखा [को०] ।

धनुर्माता—संज्ञा स्त्री [सं०] मूर्वा । चुरनहार । मरौर फली । मुरी ।

धनुर्मास—संज्ञा पुं० [सं०] वह अवधि जब सूर्य धनु राशि में स्थित होता है [को०] ।

धनुर्मुष्टि—संज्ञा स्त्री० [सं०] २७ अंगुल का एक परिमाण [को०] ।

धनुर्यज्ञ—संज्ञा पुं० [सं०] धनुस् संबंधी उत्सव । एक यज्ञ जिसमें धनुस् का पूजन तथा उसके चलाने आदि की परीक्षा भी होती थी ।

विशेष—मिथिला के राजा जनक ने अपनी कन्या सीता के विवाहायं वर चुनने के लिये इस प्रकार का यज्ञ किया था । कंस ने भी छलपूर्वक कृष्ण को बुलाने के लिये इस प्रकार के यज्ञ का अनुष्ठान किया था ।

धनुर्यास—संज्ञा पुं० [सं०] जवासा ।

धनुर्लता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. सोमलता । २. धनुष (को०) ।

धनुर्वक्त्र—संज्ञा पुं० [सं०] कातिकेय के एक धनुचर का नाम ।

धनुर्वात—संज्ञा पुं० [सं०] १. धनुकबाई । २. एक वायुरोग जिसमें शरीर धनुस् की तरह झुककर टेढ़ा हो जाता है ।

धनुर्विद्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] धनुस् चलाने की विद्या । तीरंदाजी का हुनर ।

विशेष—दे० 'धनुर्वेद' ।

धनुर्वृक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] १. धाभिन का पेड़ । २. बांस । ३. मिलावा । ४. पीपल का पेड़ ।

धनुर्वेद—संज्ञा पुं० [सं०] वह शास्त्र जिसमें धनुष चलाने की विद्या का निरूपण हो ।

विशेष—प्राचीन काल में प्रायः सब सभ्य देशों ने इस विद्या का प्रचार था । भारत के अतिरिक्त फारस, मिस्र, यूनान, रोम आदि के प्राचीन इतिहासों और चित्रों आदि के देखने से उन सब देशों में इस विद्या के प्रचार का पता लगता है । भारतवर्ष में तो इस विद्या के बड़े बड़े ग्रंथ थे जिन्हें क्षत्रियकुमार अभ्यासपूर्वक पढ़ते थे । मधुसूदन सरस्वती ने अपने प्रस्थानभेद नामक ग्रंथ में धनुर्वेद को यजुर्वेद का उपवेद लिखा है । आजकल इस विद्या का बखूब कुछ ग्रंथों में थोड़ा बहुत मिलता है । जैसे, मुकुतीति, कामधकीनीति, अग्निपुराण, वीरचितामणि, बुद्धशास्त्रधर, युद्धजयाशंख, युक्तिकल्पतरु, नीतिमयूख, इत्यादि । धनुर्वेदसंहिता नामक एक बलग पुस्तक भी मिलती है पर उसकी प्राचीनता और प्रामाणिकता में संदेह है ।

अग्निपुराण में ब्रह्मा और महेश्वर इस वेद के आदि प्रकटकर्ता कहे गए हैं । पर मधुसूदन सरस्वती लिखते हैं कि विश्वामित्र ने जिस धनुर्वेद का प्रकाश किया था, यजुर्वेद का उपवेद वही है । उन्होंने अपने प्रस्थानभेद में विश्वामित्रकृत इस उपवेद का कुछ संक्षिप्त व्योरा भी दिया है । उसमें चार पाद हैं—वीक्षापाद, संग्रहपाद, सिद्धिपाद और प्रयोगपाद । प्रथम वीक्षापाद में धनुर्वक्षण (धनुस् के अंतर्गत सब हथियार किए गए हैं) और अधिकारियों का निरूपण है । आधुन चार प्रकार के कहे गए हैं—मुक्त, अमुक्त, मुक्तामुक्त, और यंत्रमुक्त । मुक्त आधुष, जैसे चक्र । अमुक्त आधुष, जैसे, कद्ग । मुक्ता-मुक्त, जैसे, बाबा, बरछा । मुक्त को अस्त्र और अमुक्त को

शस्त्र कहते हैं । अधिकारी का लक्षण कहकर फिर दीक्षा, अभिषेक, शकुन आदि का बखण है । संग्रहपाद में आचार्य का लक्षण तथा अस्त्रशस्त्रादि के संग्रह का बखण है । तृतीयपाद में संप्रदाय सिद्ध विशेष विशेष शस्त्रों के अभ्यास, मंत्र, देवता और सिद्धि आदि विषय है । प्रयोग नामक चतुर्थ पाद में देवार्चन, सिद्धि, अस्त्रशस्त्रादि के प्रयोगों का निरूपण है ।

वैशंपायन के अनुसार शार्ङ्ग धनुस् में तीन जगह झुकाव होता है पर वैष्णव धर्मात् बांस के धनुस् का झुकाव बराबर क्रम से होता है । शार्ङ्ग धनुस् ६॥ हाथ का होता है और अश्वारोहियों तथा गजारोहियों के काम का होता है । रथी और पैदल के लिये बांस का ही धनुस् ठीक है । अग्निपुराण के अनुसार चार हाथ का धनुस् उत्तम, साढ़े तीन हाथ का मध्यम और तीन हाथ का अधम माना गया है । जिस धनुष के बांस में नौ गाँठें हों उसे 'कोदंड' कहना चाहिए । प्राचीन काल में दो डोरियों की गुल्ल भी होती थी जिसे उपलक्ष्यक कहते थे । डोरी पाट की और कनिष्ठा उंगली के बराबर मोटी होनी चाहिए । बांस छीलकर भी डोरी बनाई जाती है । हिरन या भैंसे की त्राँत की डोरी भी बहुत मजबूत बन सकती है ।—(बुद्धशास्त्रधर) ।

बाण दो हाथ से अधिक लंबा और छोटी उंगली से अधिक मोटा न होना चाहिए । शर तीन प्रकार के कहे गए हैं—जिसका अगला भाग मोटा हो वह स्त्रीजातीय है, जिसका पिछला भाग मोटा हो वह पुरुषजातीय और जो सर्वत्र बराबर हो वह नपुंसक जातीय कहलाता है । स्त्रीजातीय शर बहुत दूर तक जाता है । पुरुषजातीय भिड़ता खूब है और नपुंसक जातीय निशाना साधने के लिये अच्छा होता है । बाण के फल अनेक प्रकार के होते हैं । जैसे, पारामुख, क्षुरप्र, गोपुच्छ, अर्धचंद्र, सूचीमुख, भल्ल, वत्सदंत, द्विभल्ल, काणिक, काकतुंड, इत्यादि । तीर में गति सीधी रखने के लिये पीछे पंखों का लगाना भी आवश्यक बताया गया है । जो बाण सारा लोहे का होता है उसे नाराच कहते हैं ।

उक्त ग्रंथ में लक्ष्यभेद, शराकर्वण आदि के संबंध में बहुत से नियम बताए गए हैं । रामायण, महाभारत, आदि में शब्द-भेदी बाण मारने तक का उल्लेख है । अंतिम हिंदू सम्राट् महाराज पृथ्वीराज के संबंध में भी प्रसिद्ध है कि वे शब्दभेदी बाण मारते थे ।

धनुर्वेदी^१—संज्ञा पुं० [सं० धनुर्वेदिन्] शिव । महादेव [को०] ।

धनुर्वेदी^२—वि० धनुर्वेद जाननेवाला [को०] ।

धनुर्वी^३—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'धनुषा' । उ०—सुरति मोक्ष नरियर को फोड़ो । अगम पान चढ़ि पनवाँ तोड़ो ।—चट०, पृ० २४५ ।

धनुष—संज्ञा पुं० [सं० धनुस्] दे० 'धनुस्' ।

धनुषधरन^४—वि० [सं० धनुष्+हि० धरना] धनुष धारण करने-वाला । धनुधर । उ०—मोहि अवधेष मोही बख जीवन, धनुषधरन अरु माखनधोर ।—वंद० पृ० १२३ ।

धनुषमल—संज्ञा पुं० [सं०] धनुषमल । उ०—रामहि बने निबाह
धनुषमल मिसु करि ।—तुलसी शं०, पृ० ४८ ।

धनुषाकृति—संज्ञा स्त्री० [सं०] धनुष का आकार या आकृति । उ०—
मेढर मेढर है धनुषाकृति मेघकटाई की रेख गई रहि ।—
मिहारी० शं०, भा० १, पृ० १०१ ।

धनुषाकार—वि० [सं०] धनुष के आकार का । धनुष जैसा मुका
हुषा [को०] ।

धनुष्कर—संज्ञा पुं० [सं०] १. धनुंकर । २. धनुषनिर्माता [को०] ।

धनुष्कांड—संज्ञा पुं० [सं० धनुष्काण्ड] धनुष और बाण [को०] ।

धनुष्कार—संज्ञा पुं० [सं०] धनुष बनानेवाला [को०] ।

धनुष्कोटि—संज्ञा पुं० [सं०] १. धनुष का छोर । २. एक तीर्थ जो
बदरिकाश्रम के मार्ग में स्थित है [को०] । ३. रामेश्वर के
दक्षिण पूर्व दिशा में स्थित एक तीर्थ [को०] ।

धनुष्कोटितीर्थ—संज्ञा पुं० [सं०] रामेश्वर से दक्षिणपूर्व एक स्थान
जहाँ समुद्र में स्नान करने का माहात्म्य है ।

धनुष्पाणि—वि० [सं०] जिसके हाथ में धनुष हो [को०] ।

धनुष्मान्—संज्ञा पुं० [सं० धनुष्मत्] १. उत्तर दिशा का एक पर्वत ।
(बृहत्संहिता) । २. धनुंकर [को०] ।

धनुस्—संज्ञा पुं० [सं०] १. फनदार तीर फेकने का वह यन्त्र जो बांस
या मोहे के लचीले डंडे को झुका कर और उनके दोनों छोरों
के बीच डोरी या तंतु बांधकर बनाया जाता है । कमान ।

यौ०—धनुंकर । धनुविद्या । धनुर्वेद ।

विशेष—१० 'धनुर्वेद' ।

२. ज्योतिष में एक राशि । धनु राशि । ३. एक लग्न । ४. हठयोग
का एक आसन । ५. पियाल कुश । ६. चार हाथ की एक
माप । ७. गोल क्षेत्र के प्राये से कम अंश का क्षेत्र ।

धनुस्तंभ—संज्ञा पुं० [सं० धनुस्तम्भ] वातजन्य एक रोग जिसमें शरीर
धनुष के समान टेढ़ा हो जाता है । उ०—जो बाण धनुष के
समान शरीर को बाँका कर दे उसको धनुस्तंभ कहते हैं ।—
माधव, पृ० १३८ ।

धनुहो—संज्ञा पुं० [सं० धनुष्] [स्त्री० धनुही] धनुष ।

धनुहाई—संज्ञा स्त्री० [हि० धनु + हाई] धनुस् की लड़ाई । उ०—
परम कुशल जे नेपाल लोक, पालनि पै धनुहाई हैं है मन
धनुमान के ।—तुलसी (शब्द०) ।

धनुहिया—संज्ञा स्त्री० [हि०] ३० 'धनुही' ।

धनुही—संज्ञा स्त्री० [हि० धनु + ही (प्रत्य०)] लड़कों के खेलने
की कमान । उ०—बहु धनुही तोरेउ लरिकई ।—तुलसी
(शब्द०) ।

धनु—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. धनुष । २. अल का मंडार [को०] ।

धनुर्क—संज्ञा पुं० [सं० धनुष्] ३० 'धनुक' । उ०—धनुक पिनाक
धरे वाम हस्ते ।—पृ० रा०, १।११० ।

धनेयक—संज्ञा पुं० [सं०] धनिया ।

धनेश—संज्ञा पुं० [सं०] १. धन का स्वामी । २. कुबेर । ३. शत्रु से
दूसरा स्वामी । ४. विष्णु ।

धनेश्वर—संज्ञा पुं० [सं०] १. धन का स्वामी । २. कुबेर । ३. विष्णु ।
धनेस—संज्ञा पुं० [सं० धनस् ?] बगले के आकार की एक चिड़िया
जिसकी गरदन और चौंख लंबी होती है ।

विशेष—यह बैर, बरगद आदि के पेड़ों पर रहती है । लोग बाने
के लिये इसका छिकार करते हैं । इसे पकाकर एक प्रकार
का तेल भी निकालते हैं जो वात के दर्द में लगाया जाता है ।

धनेस—संज्ञा पुं० [सं० धनेश] कुबेर । उ०—कहै पदमाकर
प्रमानमासा पुन्यन की गंगाज की धार धनमासा है धनेस
की ।—पदमाकर शं०, पृ० २६६ ।

धनैया—संज्ञा स्त्री० [सं० धनु + दया (प्रत्य०)] छोटा धनुष ।
उ०—नंददास प्रभु जानि तोरयो है पिनाक तानि बांस की
धनैया जैसे बालक तनक की ।—नंद० शं०, पृ० ३२४ ।

धनैषणा—संज्ञा स्त्री० [सं०] धन की इच्छा [को०] ।

धनैषो—वि० [सं० धनैषिन्] धन का इच्छुक । धन चाहनेवाला ।

धनोष्मा—संज्ञा स्त्री० [सं० धनोष्मन्] धन की गरमी [को०] ।

धन्न—संज्ञा पुं० [सं० धन्य] धन्य । उ०—सबके ऊपर टिकस जवाँ,
धन है मुझको वल ।—भारतेंदु शं०, भा० १, पृ० ४७३ ।

धन्नधान—संज्ञा पुं० [हि०] ३० 'धनधान्य' । उ०—कपूर और
सागर सुनीर । सह धन्नधान बौहर सुहीर ।—पृ० रा०, ४।१६

धन्ना—संज्ञा पुं० [हि०] ३० 'धरना' ।

धन्नासिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक रागिनी जिसका यह षड्ज है और
जो श्रुतजित है । यह बीर और शृंगार रस के लिये गाई
जाती है ।

धन्नासेठ—संज्ञा पुं० [हि० धन + सेठ] बहुत धनी आदमी । प्रसिद्ध
धनाढ्य । भारी मालदार ।

मुहा०—धन्नासेठ का नाती = बहुत धनाढ्य कुल का (अर्थ) ।

धन्नि—संज्ञा पुं० [सं० धन्य] धन्य । उ०—धन्नि पुरुष अस नवै
न बाए । सो सुपुरुष होइ देस पराए ।—जायसी (शब्द०) ।

धन्नी—संज्ञा स्त्री० [सं० (गो) धन] १. गायों बैलों की एक
जाति जो पंजाब में नमकवाले पहाड़ों के आसपास पाई
जाती है । २. घोड़े की एक जाति । उ०—धन्नी, जीमावसी,
काठिया, मारवाड़, मधिदेसी ।—रघुराज (शब्द०) । ३.
बेगार का आदमी ।

धन्यमन्य—वि० [सं०] अपने आपको भाग्यशाली या धन्य मानने-
वाला [को०] ।

धन्य—वि० [सं०] १. पुण्यवान् । सुकृती । श्लाघ्य । प्रशंसा के
योग्य । बड़ाई के योग्य । कृतार्थ । भाग्यशाली ।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग साधुवाद देने के लिये प्रायः होता
है । जैसे, किसी को कोई अच्छा काम करते देख या सुन-
कर लोभ बोल उठते हैं—धन्य ! धन्य ! २. धन देने-
वाला । जिससे धन प्राप्त हो ।

धन्य—संज्ञा पुं० १. धन्यकरुण कुल । २. धनिया । ३. विष्णु ।
४. वास्तिक । ५. भाग्यशाली व्यक्ति [को०] ।

धन्य^३—अन्य० साधुवाद या धन्यवाद का व्यंजक [की०] ।

धन्यता—संज्ञा स्त्री० [सं०] धन्य होने की स्थिति [की०] ।

धन्यवाद—संज्ञा पुं० [सं०] १. साधुवाद । कावाशी । प्रशंसा । वाहवाह । २. किसी उपकार या अनुग्रह के बदले में प्रशंसा । कृतज्ञतासूचक शब्द । शुक्रिया ।

क्रि० प्र०—करना ।—देना ।—सेना ।

धन्यधाम—संज्ञा पुं० [सं० धन्य + धाम] भाग्यशाली घर । धन्य घर । उ०—देखा 'सरोज' को धन्यधाम ।—प्रनामिका, पु० १२८ ।

धन्या^१—वि० स्त्री० [सं०] प्रशंसायोग्य । पुण्यशील । भाग्यशालिनी ।

धन्या^२—संज्ञा स्त्री० १. उपमाता । २. वनदेवी । ३. मनु की एक कन्या जिसका विवाह ध्रुव के साथ हुआ था । ४. घामलकी । छोटा घाँवला । ५. धनियाँ ।

धन्याक—संज्ञा पुं० [सं०] धनिया ।

धन्यार्ग—संज्ञा पुं० [सं० धन्य + अर्ग] धामिन का पेड़ ।

धन्यन्तर—संज्ञा पुं० [सं० धन्यन्तर] चार हाथ की एक माप ।

धन्यन्तरि—संज्ञा पुं० [सं० धन्यन्तरि] १. देवताओं के वैद्य जो पुराणानुसार समुद्रमंथन के समय और सब वस्तुओं के साथ समुद्र से निकले थे ।

विशेष—हरिवंश में लिखा है कि जब ये समुद्र से निकले तब तेज से चिन्ताएँ जगमगा उठीं । ये सामने विष्णु को देखकर ठिठक रहे, इसपर विष्णु भगवान् ने इन्हें अन्ध कहकर पुकारा । भगवान् के पुकारने पर इन्होंने उनसे प्रार्थना की कि यज्ञ में मेरा भाग भीर स्थान नियत कर दिया जाय । विष्णु ने कहा भाग भीर स्थान तो बँट गए हैं पर तुम दूसरे जन्म में विशेष सिद्धि प्राप्त करोगे, अष्टिमादि सिद्धियाँ तुम्हें गर्भ से ही प्राप्त रहेंगी और तुम सनरीर देवत्व प्राप्त करोगे । तुम धायुर्वेद को छाठ भागों में विभक्त करोगे । द्वार पर युग में काशिराज 'धन्य' ने पुत्र के लिये तपस्या और अश्वमेध की आराधना की । अश्वमेध ने धन्य के घर स्वयं अवतार लिया और भरद्वाज ऋषि से धायुर्वेद शास्त्र अध्वन्य करके प्रजा को रोगमुक्त किया ।

माघप्रकाश में लिखा है कि इंद्र ने धायुर्वेद शास्त्र सिखाकर धन्यन्तरि को लोक के कस्याण के लिये पृथ्वी पर भेजा । धन्यन्तरि काशी में उत्पन्न हुए और ब्रह्मा के घर से काशी के राजा हुए । महाराज विक्रमादित्य की राजा के को नवरत्न मिलाए गए हैं उनमें भी एक धन्यन्तरि का नाम है । पर जब नवरत्नवाली बात ही कल्पित है तब इन धन्यन्तरि का पता लगना कठिन ही है ।

२. विक्रमादित्य के नवरत्नों में से एक (की०) । ३. सूर्य (की०) ।

धन्यन्तरिप्रस्ता—संज्ञा स्त्री० [सं० धन्यन्तरिप्रस्ता] कुटकी ।

धन्य^३—संज्ञा पुं० [सं० धन्यन्] १. मरुभूमि । मरुस्थल । २. तट । तीर । ३. जाकास । ४. धनुष (की०) ।

धन्य^४—संज्ञा पुं० [सं०] १. धनुस् । २. मरुस्थल । रेगिस्तान (की०) ।

धन्यधर—वि० [सं०] १. मरुस्थल में बसने या रहनेवाला (की०) ।

धन्यज—वि० [सं०] मरुदेश में उत्पन्न ।

धन्यदुर्ग—संज्ञा पुं० [सं०] ऐसे दुर्ग या गढ़ जिनके चारों ओर पाँच पाँच योजन तक निर्जल और मरुभूमि हो ।

धन्यधि—संज्ञा पुं० [सं०] धनुष की लोकी (की०) ।

धन्यन—संज्ञा पुं० [सं०] १. धामिन का पेड़ । २. धनुष (की०) । ३. इन्द्रधनुष (की०) । ४. धनु राशि (की०) ।

धन्यववास—संज्ञा पुं० [सं०] दुरालभा । जवासा ।

धन्यववासक—संज्ञा पुं० [सं०] दुरालभा । जवासा (की०) ।

धन्यवास—संज्ञा पुं० [सं०] दुरालभा । जवासा (की०) ।

धन्या—संज्ञा पुं० [सं० धन्यन्] १. धनुस् । कमान । उ०—प्रभु धन्या न बढ़ा सके यदि ?—साकेत, पु० ३५५ । २. जलहीन देश । मरुभूमि । रेगिस्तान । ३. स्थल । सूखी जमीन । ४. जाकास । अंतरिक्ष ।

धन्याकार—वि० [सं०] धनुष के आकार का । कमान की सुरत का । मोलाई के साथ झुका हुआ । टेढ़ा ।

धन्यायो^१—वि० [सं० धन्यायिन्] धनुर्धर ।

धन्यायो^२—संज्ञा पुं० बड़ ।

धन्यिन—संज्ञा पुं० [सं०] शूकर । धुधर ।

धन्यो^१—वि० [सं० धन्यिन्] १. धनुर्धर । कमानेत् । उ०—कूल सरन को मुगघनि बस के जाहिरे सो जग मनमथ धन्यो ।—मिलारी० वं०, भा० १, पु० २१४ । २. निपुण । चतुर । चालाक ।

धन्यो^२—संज्ञा पुं० १. दुरालभा । जवासा । २. अर्जुन वृक्ष । ३. बकुल । मौलसिरी । ४. अर्जुन पांडव । ५. विष्णु । ६. शिव । ७. नामस मनु के एक पुत्र । ८. धनु राशि (की०) ।

यो०—धन्योश्चान = धनुर्धर की एक मुद्रा या स्थिति । धन्यियों की मुद्राएँ वैष्णव, समवाद, वैशाख, मंडल, लीड और प्रत्यालीड कही गई हैं—वैष्णवं समवादं च वैशाखं मण्डलं तथा । प्रत्यालीडं तथा लीडं स्थान्येतानि धन्यिणाम् ।

धप^१—संज्ञा स्त्री० [धनु०] किसी भारी और मुलायम चीज के गिरने का शब्द ।

धप^२—संज्ञा पुं० धोख । धप्पड़ । तमाचा ।

क्रि० प्र०—देना ।—मारना ।

धपना—क्रि० घ० [सं० धावन या हि० धाप] १. जोर से चलना । दौड़ना । २. ऋपटना । धपकना । उ०—कीला नाम खामिनी तेहि गहे कृष्ण धपि धाई हो ।—सूर (धन्य०) ।

धपाड़ा—संज्ञा स्त्री० [हि० धपना] धपने की क्रिया या स्थिति ।

धपाना—क्रि० स० [हि० धपना] १. दौड़ाना । २. धधर उधर फिराना । धुमाना । सैर कराना । टहलाना ।

धप्या—संज्ञा पुं० [धनु० धप] १. धप्पड़ । धोल । तमाचा । २. हानि का आघात । घाटा । टोटा । नुकसान ।

क्रि० प्र०—बीठना ।—धगना ।

मुहा०—धम्मा मारना = नुकसान करा देना। धोखा देकर कुछ माल ले लेना। उड़ा लेना।

धम्पाड़—संज्ञा स्त्री० [हि० धप] दीड़।

धब धब—संज्ञा स्त्री० [धनु०] १. किसी भारी और मुलायम चीज के गिरने का शब्द। २. बड़े, मोटे आदमी के पैर रखने का शब्द।

धबला—संज्ञा पुं० [देश०] १. कटि के नीचे का धंग ढाँकने के लिये कोई ढीलाढाला पहनावा। ढीला पायजामा। २. स्त्रियों का सहंगा। घाघरा।

धबीला—वि० [हि० धम्बा + ईला (प्रत्य०)] धम्बेदार। धम्बेवाला।

धम्बा—संज्ञा पुं० [देश०] १. किसी सतह के ऊपर थोड़ी दूर तक फैला हुआ ऐसा स्थान जो सतह के रंग के मेल में न हो और भद्दा लगता हो। दाग पड़ा हुआ चिह्न जो देखने में बुरा लगे। निशान। जैसे, कपड़े पर स्याही का धम्बा।

क्रि० प्र०—पड़ना।—लगना।

२. कलंक। दोष। ऐब।

क्रि० प्र०—लगना।—लगाना।

मुहा०—नाम में धम्बा लगाना = कीर्ति को मिटानेवाला काम करना। (किसी पर) धम्बा रखना = कलंक लगाना। दोषा-रोपण करना।

धमंकना^१—क्रि० प्र० [हि० धमक] तस्त होना। दहलना। उ०—तहाँ तेज सो हैं तबस्ली तमके। गजे बीर बानैत धू ली धमके।—पद्याकर ग्रं०, पृ० २४८।

धम^१—संज्ञा पुं० [सं०] १. चंद्रमा। २. कृष्ण। ३. यमराज। ४. ब्रह्मा (को०)।

धम^२—संज्ञा स्त्री० [धनु०] भारी चीज के गिरने का शब्द। धमाका। जैसे, धम से गिरना, धम से कूएँ में कूदना।

विशेष—लट, पट, प्रादि और धनु० शब्दों के समान इसका प्रयोग भी अधिकतर 'से' विभक्ति के साथ ही क्रि० वि० भव होता है।

धम^३—संज्ञा पुं० [हि०] ३० 'धम'।

धमक^१—संज्ञा स्त्री० [धनु० धम] १. भारी वस्तु के गिरने का शब्द। भार डालते हुए जमीन पर पड़ने की ध्वनि। आघात का शब्द। २. पैर रखने की आवाज। पैर की आहट। ३. वह कंप जो किसी भारी वस्तु की गति के कारण हृत्तर उठर मालूम हो। आघात प्रादि से उत्पन्न कंप या विचलता। जैसे,—(क) पत्थर इतने जोर से गिरा कि धमक से मेज हिल गई। (ख) रेल के पास जाने पर जमीन में धमक सी मालूम होती है। ४. आघात। चोट। ५. वह आघात जो किसी भारी शब्द से हृदय पर मालूम हो। बहल। ६. गड्ढा (पालकीवाले)।

धमक^२—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० धमिका] १. धौंकनेवाला। २. लोहार। कर्मकार।

धमकना—क्रि० प्र० [हि० धमक] १. धम शब्द के साथ गिरना। धमाका करना।

मुहा०—आ धमकना = आ पहुँचना। तुरंत आ जाना। देखते देखते उपस्थित होना। आ धमकना = आ पहुँचना। धमक पड़ना = दे० 'आ धमकना'।

२. आघात सा होता हुआ जान पड़ना। रह रहकर दर्द करना। व्यथित होना। (सिर के लिये)। जैसे, सिर धमकना।

३. धूम धाम करना। उ०—रमकि भूमिकि धमकत चपला सी धमकत मिलि इकठोरी।—ब्रज० ग्रं०, पृ० १६५।

४. बजना। उ०—धमकत डोल, बजत डफ, भाँक भनेक एक संग।—प्रेमघन०, भा० १, पृ० ३४। ५. वेग दिखलाना।

उ०—(क) प्रथम पैठि पाताल सँ धमकि चढ़े आकास।—दरिया०, पृ० १३। (ख) ते ऊँचे चढ़ि के सरहरे। धमकि धमकि नरकन में परे।—नंद० ग्रं०, पृ० २२६।

धमका—संज्ञा पुं० [सं० धमा] गरमो। ऊमस। उ०—सेनापति नैक दुपहरी के डरत, होत धमका बिषम, ज्यों न पात खरकत है।—कविता०, पृ० ५८।

धमकाना—क्रि० प्र० [हि० धमक] १. डराना। भय दिखाना। बंड देने या धमिष्ट करने का विचार प्रकट करना। २. डाँटना। धुड़कना।

संयो० क्रि०—देना।

धमकार^१—संज्ञा स्त्री० [हि० धमक] धमक की आवाज। उ०—धम धमकार डेर सुन मुरली फुरक फुरक फुरकाना।—राम० धर्म०, पृ० ३६७।

धमकी—संज्ञा स्त्री० [हि०] दंड देने या धमिष्ट करने का विचार जो भय दिखाने के लिये प्रकट किया जाय। डर दिखाने की क्रिया। त्रास दिखाने की क्रिया। २. धुड़की। डाँट डपट।

क्रि० प्र०—देना।

मुहा०—धमकी में आना = डराने से डरकर कोई काम कर बैठना।

धमक्का^१—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'धमाका'।

धमगज्जर—संज्ञा पुं० [धनु० धम + सं० गज्जन] १. उत्पात। ऊधम। उपद्रव। २. लड़ाई। युद्ध।

धमण^१—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'धौंकनी'। उ०—जड से भारण धमण जिमि, दम गमिया बहु दीह।—बाँकी० ग्रं०, भा० २, पृ० ४०।

धमधम^१—संज्ञा पुं० [सं०] कार्तिकेय के गण जो पावती के क्रोध से उत्पन्न हुए थे (हुरिवंश)।

धमधम^२—संज्ञा पुं० [धनु०] धूमधाम। ठाटबाद। उ०—तुम्ह जानहु आबै पिय साआ। यह धमधम सब मोकहु बाजा।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० ३११।

धमधमाना—क्रि० प्र० [धनु० धम] 'धम धम' शब्द करना। कूद फाँव या चल फिरकर कंप और शब्द उत्पन्न करना। जैसे,—घोड़े धमधमाते हुए आ पहुँचे।

धमधूसरि^१—वि० [हि०] दे० 'धमधूसर'। उ०—बात कहत मुँह फारि छातु है मिली धमधूसरि घंगरिया।—कबीर ज०, भा० २, पृ० ५६।

धमधूसर—वि० [धनु० धम + सं० धूसर (= घटमैला या गदहा)] भटा । मोटा घादमी । स्थूल और बेडोच मनुष्य । उ०—धमधूसर होइ रहे बात में सबसे लड़ते ।—पलटू०, भा० १, पृ० १८ ।

धमनी—संज्ञा पु० [सं०] १. हवा से फूँकने का काम । २. पोली नली जिसमें हवा भरकर फूँके । फूँकनी । धौकनी । ३. नरकट । नरसल । नर नामक वृक्ष । ४. गजाना । पिघलाना (को०) ।

धमनी^२—वि० १. फूँकनेवाला । २. क्रूर । निष्ठुर (को०) ।

धमनी^३—क्रि० सं० [सं० धमन] धौकना । फूँकना । नल आदि में हवा भरकर वेग से छोड़ना ।

धमनी^४—क्रि० प्र० जलना । प्रज्वलित होना । उ०—जति जनि धमिध धनल, धमिक विमन हेम ।—विद्यापति, पृ० १०२ ।

धमनि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. धमनी । नाडी । २. प्रह्लाद के भाई ह्लाद की स्त्री । बानासि और इल्लव की माँ । ३. वाक् । शब्द । ४. नरकट (को०) । ५. कठ । प्रीवा (को०) ।

धमनिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] तूट । तूटही । बाजा । (को०) ।

धमनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] शरीर के भीतर की वह छोटी या बड़ी नली जिसमें रक्त आदि का संचार होना रहता है ।

विशेष—मनुष्य के अनुसार धमनियाँ २४ हैं और नाभि से निकलकर १० ऊपर की ओर गई हैं, १० नीचे की ओर तथा चार बगल की ओर । ऊपर जानेवाली धमनियों द्वारा शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध, प्रशवास, जंभाई, धीक, हँसना, रोना, खेचना इत्यादि व्यापार होते हैं । ये ऊर्ध्वगामिनी धमनियाँ हृदय में पहुँचकर तीन तीन शाखाओं में विभक्त होकर ३० हो जाती हैं । इनमें से २ वातवह, २ पित्तवह, २ कफवह, २ रक्तवह और २ रसवह, दस तो ये हैं । इनके प्रतिरिक्त ८ शब्द, रूप, रस और गंध को वहन करनेवाली हैं । फिर २ से मनुष्य खेचना है, २ से शोष करता है, २ से सोता है, २ से जागता है, २ धमनियाँ मनुष्यादिनी हैं और २ स्थियों के स्तनों से दूध या पुरुषों के शरीर में शुक्र प्रवर्तित करनेवाली हैं । यह तो हुई ऊर्ध्वगामिनी धमनियों की बात । अब इसी प्रकार अधोगामिनी धमनियाँ बात, मूत्र, पुराण, बीर्य, आर्तव इनका नीचे का ओर ले जाती हैं । ये धमनियाँ पहले शिखाग्र से जाकर स्वाग्नीय हुए रस को उष्णता से शुद्ध करके उसे ऊर्ध्वगामिनी और तिर्यगामिनी धमनियों तथा सारे शरीर में पहुँचाती हैं । ये १० अधोगामिनी धमनियाँ भी धामाणय और पञ्चशय के बीच में पहुँचकर तीन तीन भागों में विभक्त होकर ३० हो जाती हैं । इनमें से दो दो धमनियाँ आयु, पित्र, कफ, रक्त और रस को वहन करने के लिये हैं । आँतों में लगी हुई २ धमन्यादिनी हैं, २ जलवादिनी हैं और २ मूत्रवादिनी । मूत्रवस्ति से लगी हुई २ धमनियाँ शुक्र उत्पन्न करनेवाली और २ प्रवर्तित करने या निकालनेवाली हैं । मोटी धमि सं लगी हुई २ मल को निकालती हैं । बाकी ८ धमनियाँ तिरछी जानेवाली धमनियों की पत्नी होती हैं । ४ तिर्यगामिनी धमनियाँ हैं । उनकी सहस्रां लाखों शाखाएँ होकर शरीर के भीतर जाल की तरह फैली हुई हैं ।

२. वह नली जिसमें हृदय से शुद्ध मात्र रक्त हृदय के स्पंदन द्वारा क्षण क्षण पर जाकर शरीर में फैलता रहता है । नाडी (आधुनिक) ।

विशेष—‘धमनी’ शब्द ‘धम’ धातु से बना है जिसका अर्थ है धौकना । हृदय का जो स्पंदन होता है वह बाथी के फूलने पचकने के समान होता है । अतः मनुष्यादिना नाडियों को धमनी कहना बहुत उपयुक्त है । उ०—नाडी ।

३. हलदी । ४. कठ । प्रीवा । गदन (को०) । ५. वाक् । वाणी (को०) । ६. नरकट (को०) ।

धमनील—वि० [सं०] धमनी म युक्त (को०) ।

धमनील—संज्ञा स्त्री० [देश०] बहुनायक । प्रदिग्ग । उ०—चीथा सुंदर भाव दूधे धूम्रा को धमनील—गुंदर० प्र० (जी०), भा० १, पृ० ४३ ।

धमनी^५—वि० [हि०] दे० ‘धमन’ । उ०—वंग के धमन नाको समय आयो ।—ग० ६०, पृ० ११० ।

धमस—संज्ञा स्त्री० [धनु०] १. ममज्जम धमधूमि । धमना । उ०—प्यारी थी वह धमस धमस भी, तब पत्नीने बड़ने थे —मिट्टी०, पृ० ६८ । २. छोट । घायल । उ०—ज्यों धोकी की धमस सहि ऊजल होय मुनीर ।—अचर०, पृ० २० ।

धमसा—संज्ञा पु० [सं०] धोष । लज्जा ।

धमसील^६—संज्ञा पु० [धनु० धम + सं० ल (= जोर, जेर)] ऊधम । धमावीकड़ी । उ०—धम धम रहूँ कण प्रथ पंध धमनील ।—गुंदर प्र०, भा० १, पृ० ३१२ ।

धमाका—संज्ञा पु० [धनु०] १. भारी मात्र के गिने का शब्द । ऊपर से वेग के साथ नीचे पड़ने या उड़ने का शब्द । २. बंदूक का शब्द । ३. घायल । धक्का । ४. पथरकला बंदूक । हाथी पर लादने की तोप ।

धमाचीकड़ी—संज्ञा स्त्री० [धनु० धम + सं० चीकड़ी] १. उखल कूद । कूदफाँद । कई धमाचियों का एक साथ होकर, उड़ना, हाथ पैर खलना या उड़ना करना । उदाहरण—उधम । जैसे,—लड़कों, यहाँ धमाचोरों को पन मनाओ प्री । उदाहरण—मेले । २. धौगाथीगी । मारपीट ।

क्रि० प्र०—मचाना । मचाना ।

मुहा०—धमाचीकड़ी मचाना = उधम मचाना । उधम होना । उ०—आखिण कुछ कदु तो यह का । धमाचो हो मची-थी ।—फिसाना०, भा० ३, पृ० २१२ ।

धमइना—क्रि० सं० [धनु० धम + सं० इना] उड़ करना ।

धमाधम—क्रि० वि० [धनु० धम] १. लगातार कई बार ‘म’ ‘धम’ शब्द के साथ । लगातार कई धमकों के साथ । लगातार गिरने का शब्द उठने हुए । वेग, लज्ज, धमाधम नीचे गिरे । २. लगातार कई धमकों के साथ । कई धमाकों के शब्द के साथ । लगातार उड़ना या उड़ने की धमाधम के साथ । जैसे—(क) उड़ उठे धमाधम मार रहा है । (ख) इसपर धमाधम धन मारो तब यह दूरेगा ।

धमाधम^२—संज्ञा स्त्री० १. कई बार गिरने से लगातार धम धम शब्द । लगातार गिरने पड़ने की आवाज । २. आघात । प्रतिघात । प्रहार । मार पीट । उपद्रव । उत्पात ।

क्रि० प्र०—मचना ।—मचाना ।—होना ।

धमार^१—संज्ञा स्त्री० [धनु०] १. उखलकूद । उपद्रव । उत्पात । धमाचोकड़ी । उ०—बसंत झलकी धाम के मीर संगे जिन पर और के डेरा जमे, धमार की मार होने लगी ।—ब्यामा०, पृ० ८० ।

क्रि० प्र०—मचना ।—मचाना ।—होना ।

२. गटों की उखलकूद । कलावाजी ।

क्रि० प्र०—करना ।—खेलना ।

३. विशेष प्रकार के साधुओं की दहकती भाग पर कूदने की क्रिया ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

धमार^२—संज्ञा पुं० १. होली के गाने का एक ताल । २. होली में गाने का एक प्रकार का गीत ।

धमारि^१—संज्ञा स्त्री० [हि०] धमाचोकड़ी । उ०—विधि न करए हूर खेल ए पासा सारि । सापक संगे सिबे रचलि धमारि ।—विद्यापति, पृ० ५११ ।

धमारिया^१—संज्ञा पुं० [हि० धमार] १. उखलकूद करनेवाला नट । कलाबाज । २. होली के धमार गानेवाला । ३. भाग में कूदनेवाला । साधु ।

धमारिया^२—वि० उपद्रव करनेवाला । भाग न रहनेवाला । उत्पाती ।

धमारो^१—वि० [हि० धमार] उपद्रवी । उत्पाती ।

धमारो^२—संज्ञा स्त्री० [हि० धमार] धमाचोकड़ी । उत्पात । उ०—पिड संजोम धनि जोवन बारी । अंबर पुद्गल सन करहि धमारी ।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० ३४८ ।

धमास—संज्ञा पुं० [हि० धमार] दे० 'धमार' । उ०—लगु गुरु मोहरा लेखै धारो गीत धमाल ।—रघु० १०, पृ० १२८ ।

धमासा—संज्ञा पुं० [सं० धमासा] बवामा । हिगुना । दुलाह ।

धमि—संज्ञा स्त्री० [सं०] फूँकने की क्रिया [को०] ।

धमिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. लोहारिन । लोहार की स्त्री ।

धमित्र—संज्ञा पुं० [सं०] भाग चलाने का एक साधन । धोकनी [को०] ।

धमिल^१—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'धम्मिल्ल' । उ०—धमिल लोलि कहूँ पकरावै ।—नद० ग्रं०, पृ० १५७ ।

धमूका—संज्ञा पुं० [धनु० धम] १. धमाका । प्रहार । आघात । उ०—सतगुरु शब्दी खेलै सहै धमूका माध ।—चरण० बानी, पृ० ३ । २. धुंसा । मुक्का ।

धमेख—संज्ञा स्त्री० [सं० धमंख] काशी से दो कोस पर वह स्तूप जो उस स्थान पर बनाया गया था जहाँ बुद्धदेव ने अपना धमंख धर्मान् धर्मोपदेश आरंभ किया था । दे० 'सारनाथ' ।

धमोड़ना^१—क्रि० सं० [धनु०] आघात करना । प्रहार करना ।

उ०—(क) बत सत्राँ मुँह धावु घोड़े, घोष पाड़िया लेल धमोड़े ।—रा० ६०, पृ० २५८ । (ख) उर सेल धमोड़े बेल एम ।—रा० ६०, पृ० २५९ । (ग) पूगा हाथी लाति रे, देता कुंत धमोड़ ।—रा० ६०, पृ० ८७ ।

धम्म^१—संज्ञा स्त्री० [धनु०] दे० 'धम' । उ०—मज्झिम लकड़ी का बौद्ध मुकाम पर लाकर धम्म से फेंककर निश्चित हुआ ।—गीतिका (सू०), पृ० १ ।

धम्मन—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की घास । दे० 'धरवा' ।

धम्मल—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'धम्मिल्ल' [को०] ।

धम्माल—संज्ञा स्त्री० पुं० [हि० धमाल] दे० 'धमार' ।

धम्मिल्ल—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'धम्मिल्ल' [को०] ।

धम्मिल्ल—संज्ञा पुं० [सं०] १. लपेटकर बांधे हुए बाल । बँधी चोटी । जूड़ा । २. मोतियों, फूलों आदि से सजाया हुआ जूड़ा या केशकलाप [को०] ।

धम्हा—संज्ञा पुं० [देश०] धातु बसाने की मट्टी ।

धय—वि० [पुं०] पीनेवाला । घूलनेवाला । जैसे, स्तनधय ।

विशेष—केवल लमासात रूप में इसका व्यवहार होता है ।

धयना^१—क्रि० ध० [हि०] दोड़ना । उ०—देवीसिंह उदंत मल्लसिंह नीर हैं । ए सुजान के संग धए गरि धीर हैं ।—सुजान०, पृ० १२३ ।

धरंग^१—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'धङ्ग' । उ०—तरफंत सीस धरंग निनारे ।—पृ० रा०. १३।११७ ।

धरंत—वि० [हि० धरना] धरा हुआ । रखा हुआ ।

धरंता^१—वि० [हि० धरना] धरनेवाला । पकड़नेवाला ।

धरंती^१—संज्ञा स्त्री० [सं० धरणी] दे० 'धरणी' । उ०—पृ० रा०, पृ० १४० ।

धर^१—वि० [सं०] [वि० स्त्री० धरा, धरी] १. धारण करनेवाला । ऊपर लेनेवाला । संभालनेवाला । जैसे, धनधर, धनुषधर, धसृधर, गदाधर, गंगाधर, दिव्यांबरधर, सुधर, महीधर आदि । उ०—स्वाद तोष सम सुगति सुधा के । कमठ सेष सम धर वसुधा के ।—मानस, १।२० । २. ग्रहण करनेवाला । ग्रामनेवाला । जैसे, चक्रधर, धनुधर, मुरलीधर ।

विशेष—इन अर्थों में इस शब्द का प्रयोग समस्त पदों में ही होता है ।

धर^२—संज्ञा पुं० १. पर्वत । पहाड़ । २. कपास का डोडा । ३. कूर्म-राज । कच्छप जो पृथ्वी को ऊपर लिए है । ४. एक वसु का नाम । ५. विष्णु । ६. श्रीकृष्ण । ७. चिट । व्यभिचारी पुरुष ।

धर^३—संज्ञा स्त्री० [सं० धरा] पृथ्वी । धरती । उ०—(क) धर, कोई जीव न जानों मुख रे बकत कुबोल ।—जायसी ग्रं० पृ० ८३ । (ख) काग्ह जनमदिन सुर नर फूले । नम धर निसिबासर समतूले ।—मिहारी० ग्रं०, भा० १, पृ० २२९ ।

धर^४—संज्ञा स्त्री० [हि० धरना] धरने या पकड़ने की क्रिया ।

यो०—धर पकड़ = भागते हुए आवमियों को पकड़ने का व्यापार। गिरफ्तारी। उ०—बैठे, जब धर पकड़ी होने लगी तब लुटेरे धर उधर भाग गए।

धर(५)^१—संज्ञा स्त्री० [सं० धरा] पृथ्वी। धरती। उ०—(क) मानहु नेष प्रशेषधर धरनहार बरिबंड।—केशव (शब्द०)। (ख) सरस सरिता तट नगर बसे बर। अवधनाम यशधाम धर।—केशव (शब्द०)।

धर(५)^२—संज्ञा सं० [हि० धड़] दे० 'धड़'। उ०—जाल अघर में के सुधा, मधुर किए बिनु पान। कहा अघर में सेत हो, धर में रहत न प्रान।—विहारी० बं०, भा० २, पृ० २४२।

धरक(५)^१—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'धड़क'।

धरक^२—संज्ञा पुं० [सं०] अनाज की मंडी में अनाज तोलने का काम करनेवाला। बया।

धरकना—क्रि० प्र० [हि०] दे० 'धड़कना'। उ०—धरकी हमारी केर धतिपाई कहूँ धौ बीर।—प्रेमचन०, भा० १, पृ० २१५।

धरकार—स्त्री० पुं० [देश०] बस की डलिया आदि बनानेवाली एक जाति। बैसोर।

धरकना(५)^१—क्रि० प्र० [हि०] दे० 'धरकना'। उ०—धरकके धरणी करके सुसोय।—प० रासो, पृ० ८५।

धरण—संज्ञा पुं० [पुं०] १. धारण। रखने, धामने, ग्रहण करने या संभालने की क्रिया। २. एक तोल जो कहीं २४ रत्ती, कहीं १० पल, कहीं १६ मासे, कहीं ३६ सतमान, कहीं १६ निप्याव, कहीं ३ कर्ष, कहीं ३६ पल की मानी गई है। ३. बांध। पुन। ४. संसार। जगत्। ५. सूर्य। ६. स्तन। ७. घान। ८. एक नाग का नाम। ९. पहाड़ का किनारा (को०)। १०. हिमालय (को०)। ११. सहारा। माघार (को०)।

धरणप्रिया—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक जैन देवी जो १६ वें अर्हत के अनुशासन में रहती है (को०)।

धरणि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. पृथ्वी। २. जाल्मलि वृक्ष। ३. नाड़ी (को०)। ४. सहतीर (को०)।

धरणिधर—संज्ञा पुं० [सं०] १. पृथ्वी को धारण करनेवाला। २. कच्छप। ३. पर्वत। ४. विष्णु। ५. शिव। ६. शेषनाग। ७. राजा (को०)।

धरणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. पृथ्वी। उ०—केवल उनके ही लिये नहीं यह धरणी। है धीरों की भी भार धारिणी धरणी।—साकेत, पृ० २१३। २. जाल्मलि वृक्ष। ३. नाड़ी। ४. सहतीर (को०)।

धरणीकंद—संज्ञा पुं० [सं०] एक कंद का नाम। बनकंद।

धरणीकीलक—संज्ञा पुं० [सं०] (पृथ्वी को कील की तरह दबाए रहनेवाला) पर्वत। पहाड़।

विशेष—पुराणों के अनुसार पृथ्वी को पहाड़ दबाकर संभाले हुए है।

धरणीकोरा—संज्ञा पुं० [सं०] एक कोश ग्रंथ जिसके रचयिता का नाम धरणीदास था।

धरणीज—संज्ञा पुं० [सं०] १. मंगल। २. नरकामुर (को०)।

धरणीजा—संज्ञा स्त्री० [सं०] सीता (को०)।

धरणीधर—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'धरणिधर'।

धरणीधृत—संज्ञा पुं० [सं०] १. पर्वत। २. विष्णु। ३. शेषनाग (को०)।

धरणीपति—संज्ञा पुं० [सं०] राजा (को०)।

धरणीपुत्र—संज्ञा पुं० [सं०] १. मंगल। २. नरकामुर। (को०)।

धरणीपुत्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] सीता (को०)।

धरणीपूर—संज्ञा पुं० [सं०] समुद्र।

धरणीप्लव—संज्ञा पुं० [सं०] समुद्र (को०)।

धरणीभृत्—संज्ञा पुं० [सं०] १. राजा। २. पर्वत। ३. विष्णु। ४. शेषनाग (को०)।

धरणीमंडल—संज्ञा पुं० [सं० धरणीमण्डल] भूमंडल (को०)।

धरणीय—वि० [सं०] १. जिसे धारण किया जा सके। २. जिसका सहारा लिया जा सके (को०)।

धरणोरुह—संज्ञा पुं० [सं०] वृक्ष (को०)।

धरणोरुह—संज्ञा पुं० [सं०] १. राजा। २. विष्णु। ३. शिव (को०)।

धरणीमुल—संज्ञा पुं० [सं०] १. मंगल। २. नरकामुर।

धरणीमुला—संज्ञा स्त्री० [सं०] सीता।

धरता—संज्ञा पुं० [हि० धरना या वैदिक धर्तृ] १. किसी का रूप धरनेवाला। देनदार। ऋणी। कर्जदार। २. किसी रकम को देते हुए उसमें से कुछ बंधा हुआ या धर्मापेक्षित निकाल लेना। कटौती। ३. धारण करनेवाला। कोई कार्य आदि अपने ऊपर लेनेवाला।

यो०—कर्ता धरता = सब कुछ करने शरदेवाला।

धरती—संज्ञा स्त्री० [सं० धरित्री] १. पृथ्वी। जमीन।

मुहा०—धरती का फूल = (१) लुमी। खरक। कुकुरपुला।

(२) नया उमरा हुआ धनी। नया निकला हुआ धनीर।

(३) मेढक। धरती बाहुना = (१) जमीन जोतना। (२) परिश्रम करना। मशक्कत करना।

२. संसार। दुनिया। जगत्।

धरती(५)^१—संज्ञा स्त्री० [धरती] दे० 'धरती'। उ०—जूँडो वीरम धर चक्रवर्ती। धार सार मुँह लयी धरती।—रा० क०, पृ० १४।

धरधर(५)^१—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'धराधर'।

धरधर^२—संज्ञा स्त्री० [अनु०] दे० 'धड़धड़'।

धरधर^३—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'धरहर'।

धरधरा(५)^१—संज्ञा पुं० [अनु०] धड़कन। धकधकाहट। उ०—कर धर देखो धरधरा धरती न उरते जात।—विहारी (शब्द०)।

धरधराना(५)^१—क्रि० प्र० [हि०] दे० 'धड़धड़ाना'।

धरधराना^२—क्रि० प्र० दे० 'धड़धड़ाना'।

धरधार(५)^१—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'धराधर'। उ०—बरी एक रत्न रंग, सुदृढ़ धरधार यही धर।—प० रा०, १।६५४।

धरन^१—संज्ञा स्त्री० [हि० धरना] १. धरने की क्रिया, पाव, वंच।

उ०—ऐसी धरन धरे जो कोई, निश्चय पार पाड़े सोई।—
बबोर० गा०, पृ० १०१७। २. लकड़ी लोहे आदि का वह
संवा लट्ठा जो इसी प्रकार के घोर लट्ठों के साथ दो खड़ी
समानांतर दीवारों या ऊँचे पर ठहराए हुए दो समानांतर
लट्ठों पर इस लये आड़ा रखा जाय जिसमें उसके ऊपर पाटन
(खत आदि) या कोई चीज ठहर सके। कड़ी। धरनी। ३.
बहु नग ना गर्भाशय को रक्ता में जड़ड़े रहती है जिससे वह
इधर उधर नहीं टपता। गर्भाशय का आधार।

मुहा०—धरन रखना, उगाना, खमाना = गर्भाशय की नम का
अपनी जगह से हट जाना जिससे गर्भाशय इधर उधर हो
जाता है।

६. गर्भाशय। ५. टट्टा। ६. धड़।

धरनी—संघा पु० [हि०] १. धरनी। उ०—मिथुनीर रघुवीर गए
पुन निवा घर उरन गे।—चुराज (शब्द०)।

धरनी—संघा पु० [सं० धरणी] धरती। जमीन।

धरनी—[सं० धरणी] धरणी करीबना। उ०—कल्प कमल
बर विनय के बैंग, यधु जीवन के धंधु लाल सीला के धरन
है।—भिलायी ग्रं०, भा० २, पृ० २५।

धरनहार—[सं० धरणी + हार (प्रत्यय)] धरणी करने-
वाला। उ०—धरनहार धर धर धर धरनहार बरिबंद।
—कल्याण (शब्द०)।

धरनी—[सं० धरणी] १. किसी वस्तु को इस प्रकार खड़ा
से राख जाना या ठहरा देना कि वह जल्दी छूट न सके
अथवा इधर-धर जा पाए। उ०—पकड़ना। धामना।
ग्रहण करना। जैसे,—(क) चोर धरनी। (ख) इसका हाथ
लोर में धरे पड़ी, नहीं तो भाग जायगा। (ग) यह बिमटी
आँखों तरफ धरनी ली।

गो०—करना धरनी। धरनी पकड़ना।

संयो० क्रि०—लेना।

मुहा०—धरनी रखना—(१) पकड़कर वश में कर
जाना। उ०—धरनी रखकर धरनी लेना। किसी घर इस प्रकार
आपड़ना कि वह खरीद या बेचना न कर सके। आक्रांत
करना। जैसे—कुछ धरनी का घर उरोचा। (२) लकड़ें
या बिनास में पड़ाई करना। धर पकड़कर = बचाने।
नगाना। जैसे—धरनी पर बड़ा काम होता है?

२. स्थगित करना। स्थगित करना। रखना। ठहराना। जैसे,—
(क) धरनी पर धर दो। (ख) जोक मिर पर धर
लो। उ०—लोचन पुत्र के बंधु की सुंदरी पाव नखभत भंगद
क लक। दोहरा मंगल क समयभार बड़े बल के धरती पग भू
पह।—भिलायी ग्रं०, भा० २, पृ० २३७।

संयो० क्रि०—देना। लेना।

३. धरन रखना। धरना रखना। जैसे,—(क) यह हमारी
पूजाक धरे हुए है, देना नहीं। (ख) यह चीज उनके यहाँ
धर दो, कहीं जायगा नहीं।

संयो० क्रि०—देना।—लेना।

यौ०—धर रखना।

मुहा०—धरा ढका = समय पर काम आने के लिये बचाकर रखी
हुई वस्तु। संचित वस्तु। जैसे,—कुछ धरा ढका होगा, लाभो।
धरा रह जाना = काम न आना। व्यर्थ हो जाना।

४. धारण करना। देह पर रखना। पहनना। जैसे, सिर पर
टोपी धरना।

संयो० क्रि०—देना।—लेना।

५. आरोपित करना। धवलंबन करना। भंगीकार करना।
जैसे, रूप धरना, वेश धरना, पर्य धरना। ६. व्यवहार के लिये
हाथ में लेना। ग्रहण करना। जैसे, हथियार धरना। ७.
सहायता या सहारे के लिये किसी को धरना। पट्टा पकड़ना।
आश्रय ग्रहण करना। जैसे,—उन्हीं को धरो, व हो कुछ कर
सकते हैं। ८. किसी फैलनेवाली वस्तु का किसी दूसरी वस्तु में
लगना या चू जाना। जैसे—फूल गोला है इसी से आग धरती
नहीं है। ९. किसी चीज को रखना। बैठा लेना। रखली को
तरह रखना। उ०—व्याही लाख, धरी दम कुबरी अनहि कान्ह
हमारी।—पूर (शब्द०)। १०. गिरावो रखना। गहन
रखना। रेंहन रखना। बंधक रखना। जैसे,—(क) अपना
चीज धरकर तब रुपया लाए है। (ख) कोई चीज धरकर
भा तो रुपया नहीं देता। ११. अपनाना। ग्रहण करना।
उ०—पर जो मेरा गुण, 'कर्म', स्वभाव धरेंगे वे मोक्ष को भी
तार पार उतरंग।—साकेत, पृ० २१६।

धरनी—संघा पु० कोई धान या प्राथना पूरी करने के लिये किसी के
पास या द्वार पर झुके बैठना और जबतक वह बात या
प्राथना पूरी न कर ले जाय जबतक धरनी न ग्रहण करना।
जैसे,—हमारा काम न दोग तो हम तुम्हारे दरवाजे पर धरना
देगे। दे० 'धरनी'।

क्रि प्र०—देना।—बैठना।

धरनी(५)—संघा पु० [सं० धरणी] दे० 'धरणी'। उ०—चुरवी
होहि न धनि यह धरनी धरनी नई कोद। जारत आवत जगत
को पावस प्रथम पयोद।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ४६५।

धरनिधनी(५)—संघा पु० [सं० धरणी + हि० धनी (= स्वामी)]
राजा। भूपति। उ०—या जग में धनि धन्य तू महज सबोने
गात। धरनिधनी जो बस किसी कहा और की बात।—
पद्माकर ग्रं०, पृ० १३०।

धरनिधर(५)—संघा पु० [सं० धरणीधर] १. पर्वत। भूधर। उ०—
गुननिधन हिमवान धरनिधर धरनिधर। मैना तासु परान धर
निधुवन तिमिरान।—तुलसी ग्रं०, पृ० २६। २. हिमालय।
पावेंती के जनक। उ०—लोक वेद बिधि कीन्ह सीन्ह जल कुस
कर। कन्यादान संकल्प कीन्ह धरनिधर।—तुलसी ग्रं०,
पृ० ४१। ३. दे० 'धरणीधर'।

धरनिमुता(५)—संघा पु० [सं० धरणीमुता] जानकी। सीता।
उ०—सिय पितु मातु सनह बस बिकल न सकी संभारि।
धरनिमुता धीरजु धरेउ समउ सुधरमु विचारि।—मानस,
२। २८५।

धरनी—संघा पु० [सं० धरणी] दे० 'धरणी'। उ०—अगमि
पूरन ससि मनी धरनी पर धावे।—बनारंद, पृ० ४५५।

मुहा०—धरनी मिलाना = मिट्टी में मिलाना । समाप्त करना ।

उ०—हते अष्टक सूर धरनी मिलायो ।—प० रासो, पृ० ४५ ।

धरनी^२—संज्ञा स्त्री० [हि० धारना या सं० धारण] किसी बात पर दृढ़तापूर्वक बड़े रहना । टेक । उ०—तुलसी अब राम को दास कहाइ हिये धर बातक की धरनी ।—तुलसी (शब्द०) ।

धरनीतल—संज्ञा पुं० [हि० धरनी + तल] पृथ्वी की सतह । समस्त पृथ्वी । उ०—दारिद दी करि बारिद सौं बलि त्यों धरनीतल सीतल कीनो ।—भूपाल प्र०, पृ० ४८ ।

धरनीधर(पु)—संज्ञा पुं० [सं० धरणीधर] १. शेषनाग । उ०—तुलसी जिन्हें धाए धुके धरनीधर धीर धकानि सौं मेरु हले हैं । ते रनतीर्थनि लखन लामन दानि ज्यों दारिद कवि दले हैं ।—तुलसी प्र०, पृ० १६० । २. विश्व या राम । उ०—जड़ पंच मिले जेहि देह करो, करनी लख धौं धरनीधर की । जन को कहूँ क्यों करि ठे न संभार, जो सार करे सबराचर की ।—तुलसी प्र०, पृ० २०४ । ३. दे० 'धरणीधर' ।

धरनीधरन(पु)—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'धरणीधर' । उ०—शेष, महाप्रहि, शर्पपति, धरनीधरन, अनंत ।—प्रनेकायं, पृ० ६० ।

धरनेत—संज्ञा पुं० [हि० धरना + एत (प्रत्य०)] धरना देने वाला । किसी बात के लिये अड़कर बैठनेवाला ।

धरनी(पु)—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'धरनी' । उ०—प्रनल पल भनु परिध दृष्टि आकास धरनीय । भयो छोर बर सह परधी महि छय बरन्निध ।—हम्मीर रा०, पृ० ११३ ।

धरपकड़--संज्ञा स्त्री० [हि० धरना + पकड़ना] १. गिरफ्तारी । पकड़ धकड़ । २. रोकगाय । नियंत्रण ।

धरपत्ती(पु)—संज्ञा पुं० [सं० धर + पत्ति] राजा । उ०—धर हर प्रस हए धररती ।—रा० क०, पृ० ६ ।

धरम(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० धर्म] दे० 'धर्म' ।

धरमदुवार(पु)—संज्ञा पुं० [हि० धरम + दुवार] धर्मद्वार । स्वर्ग । उ०—धरम दुवार गयो छोटे धर ।—रा० क०, पृ० २६४ ।

धरमपण(पु)—वि० [हि०] दे० 'धर्मपरायण' । उ०—बड़बाण रुद्र एकादशी प्राणपुर गति धरमपण ।—रघु० क०, पृ० ३ ।

धरमबहिर्मुख--वि० [हि० धरम + सं० बहिर्मुख] धर्मविरोधी । उ०—जेन प्रसर्पा निदक नास्तिक धरम बहिर्मुख ।—नंद० प्र०, पृ० २४ ।

धरमराइ(पु)—संज्ञा पुं० [हि० धरम + राइ] धर्मराज । उ०—धरमराइ न रंजन होई ।—घट०, पृ० २१४ ।

धरमसारी—संज्ञा स्त्री० [सं० धर्मशाला] १. धर्मशाला । २. सदा-वर्त । दीरानखाना । उ०—रानी धरमसार पुनि याजा । बंदि मोक्ष जेहि पारवाह राजा ।—जायसी (शब्द०) ।

धरमान्छेप(पु)—संज्ञा पुं० [सं० धर्म + भाक्षेप] धर्मक्षेप । उ०—धर्मान्छेप सदा है बरनत सब मुख पाइ ।—पोद्दार अभि० प्र०, पृ० ४५८ ।

धरमादी(पु)—संज्ञा पुं० [सं० धर्म + आदीन] धर्मशास्त्र । धार्मिक ।

उ०—विश्वगुप्त धरमादी राजा ।—धरनी०, पृ० ५३ ।

धरमावतार(पु)—संज्ञा पुं० [सं० धर्म + अवतार] दे० 'धर्मावतार' ।

उ०—अरु हृदय भए कामा उदार । करदन तैं भी धरमावतार ।—हम्मीर रा०, पृ० ५ ।

धरमी(पु)—वि० [हि०] दे० 'धर्मी' । उ०—(क) अरु यह तुम्हारे रूप धरम के धरमाह मोहै ।—नंद प्र०, पृ० ११ । (ख) जे अनभजतनि भजैं तीन धरमी मुखबारी ।—नंद० प्र०, पृ० ३१ ।

धरम्म(पु)—संज्ञा पुं० [सं० धर्म] दे० 'धर्म' । उ०—भड़ पुँतारे आपरा धारे साथ धरम्म ।—रा० क०, पृ० २६० ।

धरम्मूरत—वि० [हि० धरम + मूरत] धर्ममूर्ति । सधु । धरम्मूरत मैं तो आवैई हो ।—श्री निवास० प्र०, पृ० ५६ ।

धरवान(पु)—संज्ञा पुं० [हि० धर + वान] पृथ्वी । भूमि । उ०—जाइ सपत्नी समर बंदि दिल्ली धरवाँ । बहुआना रे हृथ दूत बीनी कुरमान ।—पृ० रा०, २४ । ३६ ।

धरवाना—क्रि० सं० [हि० धरना का प्र० रूप] १. धरने का काम करना । रकड़ना । बमाना । २. रखवाना । ३. गिरफ्तार या बंदी कराना ।

धरपना(पु)—क्रि० सं० [सं० धरण] १. खाना । मर्दन करना । उ०—(क) रिपुबल धरपि ह्राय कपि बालितनय बलपुंज पुलक जगीर नयन जल गहे राम पदकज । तुलसी (शब्द०) (ख) डगे दिगकुंजर कमठ कोल कमले डाले धराधर धाँ धराधर धरपा ।—तुलसी (शब्द०) । २. नृणं करन (को०) । ३. फाड़ना (को०) ।

धरसना^१—क्रि० प्र० [सं० धरण] दब जाना । डर जाना । सह जाना । उ०—बिलसत उर बाह्यार लसत मणि उड़ग धरसत ।—गोपाल (शब्द०) ।

धरसना^२—क्रि० सं० खाना । धारमान्न करना ।

धरसनी(पु)—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'धर्मशाला' ।

धरदूरी^१—संज्ञा स्त्री० [हि० धरना + दूर (प्रत्य०)] १. बा पकड़ । लोगों को हम प्रार्थना पकड़न का कार्य कि वे इस उधर भाग न सकें । गिरफ्तारी ।

क्रि० प्र०—होना ।

२. दो या अधिक लड़नेवालों को धर रकड़कर लड़ाई लड़ करने का कार्य । जीव विवाद । उ०—ललित प्रहसितु निकर मनहु समि सन स्मर लरत धरदूर करत छवि जनु जुग फनी ।—तुलसी (शब्द०) । ३. मारे या मार जाने से बचाने का काम । बचाव । रक्षा । ४. धर्म । नीरव । उ०—सन सूखयो, बीतयो बनी, ऊखी लई उलारि । हूर हरी धरहर अजौ धर धरहर हिय नारि ।—विहारी (शब्द०) ।

धरहर(पु)^२—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'धरहरा' । उ०—धरहर तियं बरये हनु ।—प्राण०, पृ० ६६ ।

धरहरना(५)—क्रि० प्र० [धनु०] धड़धड़ाना। धड़ धड़ शब्द करना। उ०—रथ राजत चाका धरहर पर परजा का धर हरे।—गोपाल (शब्द०)।

धरहरा—संज्ञा पुं० [सं० धवल गृह] खंभे की तरह ऊपर बहुत दूर तक गया दृष्टा मकान का भाग जिसपर चढ़ने के लिये भीतर ही भीतर सीढ़ियाँ बनी हों। धोरहर। मीनार। जैसे, माधव-राय का धरहरा।

धरहराना(५)—क्रि० म० [हि० धरहरना] धरहराना। धड़कन पैदा होना। उ०—धरहरात देश देश के गणपति सुन बाक धरहरात।—प्रकवरी ०, पृ० १०८।

धरहरि(५)¹—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'धरहर'। उ०—(क) जो पहिले प्रपुने सिर परई। सो का काहू के धरहरि करई।—जायसी शं०, पृ० २५७। (ख) जब जमजाल पसार परैगो हरि जिनु कोन करैगो धरहरि।—पूर (शब्द०)।

धरहरि²—संज्ञा स्त्री० [सं० धैर्य ?] रूढ़ विश्वास। निश्चय। उ०—जम करि मुँह तरहरि पर्यो इहि धरहरि चित लाउ। विषयनृपा परिहरि अजो नरहरि के गुन गाउ।—बिहारी (शब्द०)।

धरहरिया¹—संज्ञा पुं० [हि० धरहरि] बीच बिचाव करा देनेवाला। धर पकड़ करके बचानेवाला। बचाव करनेवाला। रक्षक। उ०—जनहु दीन्ह उगलाह देव प्राय तम बीच। रहान कोउ धरहरिया करे जो सोउ महुँ बीच।—जायसी (शब्द०)।

धरा¹—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. पृथ्वी। जमीन। धरती। २. संसार। दुनिया। उ०—धरा की प्रमाण यही तुलसी जो करा सो भरा सो बरा लो बुताना।—तुलसी (शब्द०)। ३. गर्भाशय। ४. एक वर्षावृत्त, जिसके प्रत्येक चरण में एक लगण और गुरु होता है। जैसे,—राधा कहो। बाधा टरे। श्यामा कहो। कामा मरे। ५. मेढ। ६. नाड़ी। ७. भेंट। भेंट या दान स्वरूप ब्राह्मणों को दी जानेवाली स्वर्ण प्राणि की राशि (को०)। ८. मञ्जा (को०)।

धरा²—संज्ञा स्त्री० [हि० धडात्] १. तोल की बराबरी। किसी वस्तु की तोल के बराबर का ढाट या बोझ। बटसरा।

क्रि० प्र०—बाधना।—माधना।

२. चार सेर की एक तोल।

धरावरा¹—संज्ञा पुं० [हि०] १. धरोहर। २. जतन से रखी हुई चीज या वस्तु।

धराऊ—वि० [हि० धरना + धाऊ (प्रत्य०)] जो सधारण से अधिक अन्ध्रा होने के कारण नित्य व्यवहार में न आया जाय, यस्त के साथ रखा रहे और कभी कभी विशेष धन-मरों पर निकाला जाय। माझुनी से अन्ध्रा। बहुमूल्य। जैसे, धराऊ कपड़ा, धराऊ जोड़ा।

धराक(५)²—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'धड़ाक'।

धराकदंब—संज्ञा पुं० [सं० धराकदम्ब] एक प्रकार का कदंब। धाराकदंब।

धराका¹—संज्ञा पुं० [हि० धड़ाका] दे० 'धड़ाका'।

धरातल—संज्ञा पुं० [सं०] १. पृथ्वी। धरती। २. सतह। केवल लंबाई चौड़ाई का गुणनफल जिसमें मोटाई गहराई या ऊँचाई का कुछ भी विचार न किया जाय। ३. रफा। लंबाई और चौड़ाई का गुणनफल।

धरात्मज—संज्ञा पुं० [सं०] १. मंगलग्रह। २. नरकासुर।

धरात्मजा—संज्ञा स्त्री० [सं०] सीता।

धरादेव—संज्ञा पुं० [सं०] ब्राह्मण (को०)।

धराधर—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह जो पृथ्वी को धारण करे। राजा। उ०—कहत धरेस सब धराधर सेस ऐसी, और धरा-धरन को सेट्यो ग्रहमेव है।—भूपण शं०, पृ० ५१। २. जेब-नाग। ३. पर्वत। ४. विष्णु।

धराधरन(५)—संज्ञा पुं० [सं० धरा + धरण] दे० 'धराधर'।

धराधरा—संज्ञा पुं० [सं०] संगीत में एक ताल का नाम।

धराधर—संज्ञा पुं० [सं०] १. राजा। २. विष्णु (को०)।

धराधार—संज्ञा पुं० [सं०] जेबनाग।

यौ०—धराधारधारी = महादेव।

धराधिप—संज्ञा पुं० [सं०] राजा (को०)।

धराधिपति—संज्ञा पुं० [सं०] राजा।

धराधोश—संज्ञा पुं० [सं०] राजा।

धराना—क्रि० स० [हि० धरना का प्रे० रूप]। १. पकड़ाना। बसाना। २. धारण कराना। पहनाना। उ०—तब श्री गुसाई जी ने एक बागा तो श्री नवनीतप्रिय जी को धरायो।—दो सो बावन, भा० १, पृ० १७२।

संयो० क्रि०—देना।—लेना।

३. स्थिर करना। ठहराना। निश्चित कराना। मुकर्रर कराना। जैसे, दिन धराना, नाम धराना। उ०—(क) राम तिलक हित लगन धराई।—तुलसी (शब्द०)। (ख) सुदिन, सुन-सत, सुचरी सोचाई। वेगि वेद विधि लगन धराई।—तुलसी (शब्द०)।

धरापति—संज्ञा पुं० [सं०] १. राजा। २. विष्णु (को०)।

धरापुत्र—संज्ञा पुं० [सं०] मंगलग्रह। उ०—धरापुत्र ज्यों स्वर्णमाला प्रकाश।—केशव (शब्द०)।

धरापृष्ठ—संज्ञा पुं० [सं० धरा + पृष्ठ] धरती की सतह। धरतीतल। भूतल। पृथ्वी। उ०—जब उसके अभिमान और मोरव की वस्तु धरापृष्ठ पर नहीं बची।—कंकाल, पृ० ७८।

धराभुक्—संज्ञा पुं० [सं० धराभुक् या धराभुज] राजा (को०)।

धराभुत्—संज्ञा पुं० [सं०] पर्वत (को०)।

धरामर—संज्ञा पुं० [सं०] ब्राह्मण (को०)।

धरारी(५)—वि० [हि० धरना] धारण करनेवाली। उ०—बिजरेव भवछरि संगीन प्रति रूप धरारी।—पृ० रा०, २५।७२।

धराव—संज्ञा पुं० [हि० धरना + आव (प्रत्य०)] १. पकड़ने की क्रिया या स्थिति। २. पकड़। ३. पंहुच।

धरावटी—संज्ञा स्त्री० [हि० धरना+वाट (प्रत्य०)] जमीन की वह माप या क्षेत्रफल जो कृतकर मान लिया गया हो ।

धरावना—क्रि० सं० [हि०] दे० 'धराना' ।

धराशायी—वि० [सं० धराशायिन्] १. धरती पर गिरा हुआ । गिरा हुआ । पराजित । उ०—भाज धराशायी है मानव, गिरा नजर से मैं तो क्या !—मिट्टी०, पृ० १०६ । २. धरती पर सोनेवाला । ३. युद्ध में मृत ।

धरासुत—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'धरासूत' (को०) ।

धरासुर—संज्ञा पुं० [सं०] बाह्यण । उ०—मुजदंड पीन मनोहरायत हर धरासुर पद लस्यो ।—तुलसी (शब्द०) ।

धरामूल—संज्ञा पुं० [सं०] १. मगलग्रह । २. नरकासुर (को०) ।

धरास्त्र—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का अस्त्र ।

विशेष—विश्वामित्र और वशिष्ठ की लड़ाई में विश्वामित्र ने वशिष्ठ पर यह अस्त्र चलाया था ।

धराहर—संज्ञा पुं० [हि० धुर (=ऊपर)+हर] लंबे की तरह ऊपर बहुत दूर तक गया हुआ मकान का भाग जिसपर चढ़ने के लिये भीतर ही भीतर सीढ़ियाँ लगी हों । मीनार । उ०—देखि धराहर कर उजियारा । छिपि गए चाँद सुरुज भी तारा ।—जायसी (शब्द०) ।

धरिगा—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का चावल ।

धरित्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] धरती । पृथ्वी ।

यौ०—धरित्रीभूत = राजा ।

धरिमा—संज्ञा स्त्री० [सं० धरिमन्] १. तराजू । २. आकार । शकल (को०) ।

धरिया(७)—संज्ञा स्त्री० [सं० धरजा] पृथ्वी । धरती । उ०—पवन को पलट कर मुझ में धर किया, धरिया में अधर भरपूर देखा ।—कबीर सा०, भा० १, पृ० ६६ ।

धरो^१—संज्ञा स्त्री० [हि० धरा] चार सेर की एक तोल ।

धरो^२—संज्ञा स्त्री० [हि० धरना] रखनी । रखनी स्त्री ।

धरो^३—संज्ञा स्त्री० [हि० डार] डार । धरिया । कान में पहनने का स्थियों का एक गहना ।

धरगु—संज्ञा पुं० [सं०] १. अट्ट । २. स्वर्ग । ३. जल । पानी । ४. संवत् । राय । ५. वस्तु को सुरक्षित रखने का स्थान । ६. अग्नि । ७. दुध पीनेवाला बछड़ा । ८. आधार । सहारा । ९. कड़ी मिट्टी । १०. होज (को०) ।

धरेवा—संज्ञा पुं० [हि० धरना+एवा (प्रत्य०)] दे० 'धरेल' ।

धरेजा(७)—संज्ञा पुं० [?] एक प्रकार का अस्त्र । उ०—चलै चक्र निमूल सुनेजा । सक्ति पास वनु बान धरेजा ।—हम्मीर रा०, पृ० १०५ ।

धरेजा^१—संज्ञा पुं० [हि० धरना+एजा (प्रत्य०)] १. किसी स्त्री को रख लेना । रखनी रखना । २. छोटी जातियों में एक स्त्री के मर जाने पर दूसरी स्त्री को बिना व्याह किए वरती की तरह रखना ।

विशेष—इसमें मात लेकर बिरादरीवाले उस स्त्री को जाति के भीतर स्थान देते हैं ।

धरेजा^३—संज्ञा स्त्री० दे० 'धरेल' ।

धरेध—संज्ञा स्त्री० [हि० धरना+एला (प्रत्य०)] रखेली स्त्री । ऐसी स्त्री जिसे कोई बिना व्याह के घर में रख ले ।

धरेल—संज्ञा स्त्री० [हि० धरना+एल (प्रत्य०)] उपपत्नी । रखेल ।

धरेला—संज्ञा स्त्री० [हि० धरना+एला (प्रत्य०)] वह पति जिसे कोई स्त्री बिना व्याह के ही ग्रहण कर ले ।

धरेली—संज्ञा स्त्री० [हि० धरना+एली (प्रत्य०)] उपपत्नी । रखेली ।

धरेश—संज्ञा पुं० [सं०] राजा (को०) ।

धरेस(७)—संज्ञा पुं० [सं० धर+ईस] राजा । धरापति । उ०—कहत धरेस सब धराधर सेस ऐसी, और धरानरन को मेढो बहमेव है ।—मूषण ग्रं०, पृ० ५१ ।

धरैया—संज्ञा पुं० [हि० धरना+ऐया (प्रत्य०)] १. धरनेवाला । पकड़नेवाला । २. धारण करनेवाला । उ०—(क) धंसि-धंसि धरनि धर के धरैया कहत जमकातर रुठे ।—पद्माकर ग्रं०, पृ० १६ । (ख) धौसा धुकारन घसमसे धर के धरैया कसमसे ।—पद्माकर ग्रं०, पृ० ८ ।

धरोड़ी—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'धरोहर' ।

धरोहर—संज्ञा स्त्री० [हि० धरना (धर) +देही० धरोहर] वह वस्तु या द्रव्य जो किसी के पास इस विश्वास पर रखा हो कि उसका स्वामी जब माँगेगा तब वह दे दिया जायगा । याती । अमानत । उ०—(क) प्राण धरोहर है धन धानंद लेह न तो सब लेहिगे गाहक ।—घनानंद (शब्द०) । (ख) जो कोई धरी धरोहर नाटे । भ्रम पच्छन के पर जो काटे । साधुहि दोष लगावे जोई । सोइ विष्टा कर कोरा होई ।—विश्राम (शब्द०) ।

कि० प्र०—धरना ।—रखना ।

धरोहरा(७)—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'धरोहरा' उ०—जम धर्मा के धरोहरा, जस बालू के रेत । हुवा लगे नब मिटि गए, जस करतब के प्रेत ।—धरम०, पृ० ८ ।

धरोली—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक छोटा पेड़ जो भारतवर्ष में प्रायः सब जगह विशेषतः हिमालय की तराई में व्यास नदी के किनारे से लेकर सिक्किम तक पाया जाता है । यह अफ्रीका और आस्ट्रेलिया के गरम भागों में भी होता है ।

विशेष—इसकी टहनियाँ लंबी और पत्तियाँ सीक के दोनों ओर घामने सामने लगती हैं । इसमें सफेद लाल या पीले फूल लगते हैं । इस पेड़ के किसी भाग में यदि चाब किया जाय तो उसमें से पीला दूध निकलता है जिसे पानी में घोलने से खासा पीला रंग तैयार हो सकता है । इसके बीजों के ऊपर कुछ रोई सी होती है । बीजों का तेल दवा के काम में आता है । छाल और जड़ सपि काटने और बिच्छू के डंक मारने की दवा समझी जाती है । बकड़ी इसको भीतर से सफेद चिकनी और मजबूत निकलती है और इसपर छराद और नक़ाशी का काम बहुत अच्छा होता है ।

धरोवा—संज्ञा पुं० [हि० धरना+ओवा (प्रत्य०)] बिना विधिपूर्वक विवाह किए स्त्री को रखने की बात ।

धर्मस, धर्मसि, धर्मी—वि० [सं०] १. टेकनेवाला। २. बनवान्।
समर्थ। ३. टिकाऊ। गुरुद्व (को०)।

धर्ती—संज्ञा पु० [सं० वैदिक धर्तृ] १. धारण करनेवाला। २.
कोई काम ऊपर लेनेवाला।

धर्ती०—वि० [हि० धरना या धार] ऋणी। कर्जदार।

यो०—कर्ता धर्ती = जिसे सब कुछ करने धरने का अधिकार हो।

धर्ती—संज्ञा स्त्री० [हि० धर्ती] दे० 'धर्ती'।

धर्तृ—संज्ञा पु० [सं०] धर्तुरा (को०)।

धर्नि०—संज्ञा पु० [हि०] दे० 'धरणी'। उ०—सो करो धनि
मुच्छा सु त्वाय।—हम्पीर रा०, पृ० ४६।

धर्नी०—संज्ञा स्त्री० [सं० धर्मी] दे० 'धरणी'। उ०—हृन्पी प्रस्व
मलखान धर्नी मिलाय।—प० रा०, पृ० ८४।

धर्म—संज्ञा पु० [सं०] १. धर। भवन। २. यज्ञ। ३. गुण। नैति-
कता। ४. सहारा। टेक। ५. पुण्य (को०)।

धर्म—संज्ञा पु० [सं०] किसी वस्तु या व्यक्ति की वह वृत्ति जो उसमें
सदा रहे, उसमें कभी अन्तर्ग न हो। प्रकृति। स्वभाव, नित्य
नियम। जैसे, पाल का धर्म देखना, शरीर का धर्म बचाव
होना, सपे का धर्म फाटना, दुष्ट का धर्म दुख देना।

विशेष—ऋग्वेद (१।२२।१८) में धर्म शब्द इस अर्थ में
प्राया है। यह अर्थ सबसे प्राचीन है।

२. अलंकार शास्त्र में वह गुण या वृत्ति जो उपमेय और उपमान
में समान रूप में हो। वह एक ही बात जिसके कारण एक
वस्तु की उपमा दूसरी से दी जाती है। जैसे, कमल के ऐसे
कोमल और लाल चरण, हम उदाहरण में कोमलता और
लाल रंग साधारण धर्म है। ३. किसी मान्य ग्रंथ, आचार्य या
ऋषि द्वारा निर्दिष्ट वह कर्म या क्रिय जो पारलौकिक सुख
की प्राप्ति के अर्थ किया जाय। यह कृत्य या विधान जिसका
फल शुभ (स्वर्ग या उत्तम लोक की प्राप्ति आदि) बताया
गया हो। जैसे, प्रतिग्रह, यज्ञ, व्रत, होम इत्यादि। शुभदृष्टि।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

यो०—धर्म धर्म।

विशेष—सामान्य के अनुसार वेदविहित जो गतादि कर्म हैं उन्हीं
का विधिपूर्वक अनुष्ठान धर्म है। जैमिनि ने धर्म का जो
व्याख्यान दिया है उसका प्रतिपाद यही है कि जिसके करने की
प्रेरणा (वेद आदि में) हो, वही धर्म है। संज्ञा में लेकर
सूत्रबन्धों तक धर्म की यही मुख्य भावना रही है। कर्मकाण्ड का
विधिपूर्वक अनुष्ठान करनेवाले ही धार्मिक रहे होते थे। यद्यपि
श्रुतियों में 'न हि साधुर्मर्त्यभूतानि' आदि वाक्यों द्वारा
साधारण धर्म का भी उपदेश है पर वैदिक काल में विशेष
लक्ष्य कर्मकाण्ड ही की ओर था।

४. वह कर्म जिसका करना किसी संबंध, स्थिति या गुणविशेष
के विचार में उचित और आवश्यक हो। वह कर्म या
व्यापार जो समाज के कानूनात्मक के निर्वाह के लिये
आवश्यक और उचित हो। वह काम जिसे मनुष्य को किसी

विशेष कोटि या अवस्था में होने के कारण अपने निर्वाह तथा
दूसरों की सुखमता के लिये करना चाहिए। किसी जाति,
कुल, वर्ग, पद इत्यादि के लिये उचित ठहराया हुआ व्यवसाय
या व्यवहार। कर्तव्य। फर्ज। जैसे, ब्राह्मण का धर्म, क्षत्रिय
का धर्म, माता पिता का धर्म, पुत्र का धर्म इत्यादि।

विशेष—स्मृतियों में आचार ही को परम धर्म कहा है और वरुण
और आश्रम के अनुसार उसकी व्यवस्था की है, जैसे ब्राह्मण के
लिये पढ़ना पढ़ाना, दान लेना, दान देना, यज्ञ करना, यज्ञ
कराना, क्षत्रिय के लिये प्रजा की रक्षा करना, दान देना, वैश्य
के लिये व्यापार करना और शूद्र के लिये तीनों वर्णों की सेवा
करना। जहाँ देश काल की विचारीता से अपने अपने वर्ण के
धर्म द्वारा निर्वाह न हो सके वहाँ शास्त्रकारों ने आपठर्म की
व्यवस्था की है जिसके अनुसार किसी वर्ण का मनुष्य अपने से
निम्न वर्ण की वृत्ति स्वीकार कर सकता है, जैसे ब्राह्मण—क्षत्रिय
या वैश्य की, क्षत्रिय—वैश्य की, वैश्य या शूद्र—शूद्र की, पर
अपने से उच्च वर्ण की वृत्ति ग्रहण करने का आपठकाल में भी
निषेध है। इसी प्रकार ब्राह्मण, गृहस्थ, वानप्रस्थ, और
संन्यासी इनके धर्मों का भी अन्तर्ग अन्तर्ग निरूपण किया गया
है। जैसे व्रतचारी के लिये स्वाध्याय, भिक्षा माँगकर भोजन,
जंगल से लकड़ी चुनकर लाना, गुरु की सेवा करना इत्यादि।
गृहस्थ के लिये पत्र महायज्ञ, बलि, यज्ञियाँ को भोजन और
भिक्षुक, संन्यासियों आदि को भिक्षा देना इत्यादि। वानप्रस्थ
के लिये सामग्री सहित गृह की अग्नि को लेकर वन में वास
करना, जटा, नख, शमश्रु आदि रखना, भूमि पर सोना, शीत-
ताप सहना, अग्निहोत्र दर्शनीयमात्र, बलिकर्म आदि करना
इत्यादि। संन्यासी के लिये सब वस्तुओं को त्याग अग्नि और
गृह से रहित होकर भिक्षा द्वारा निर्वाह करना, नख आदि को
कटाए और वड कर्मण्डलु लिए रहना। यह तो वर्ण और
आश्रम के अलग अलग धर्म हुए। इन दोनों के संयुक्त धर्म को
वर्णधर्म धर्म कहते हैं। जो ब्राह्मण ब्राह्मण का पलाशदंड
धारण करना। जो धर्म किसी गुण या विशेषता के कारण हो
उसे गुणधर्म कहते हैं—जैसे, जिसका शास्त्रीय रीति से अभिषेक
हुआ हो, उस राजा का प्रजापालन करना। निमित्त धर्म वह है
जो किसी निमित्त से किया जाय। जैसे शास्त्रीय कर्म न करने
वा शास्त्रविरुद्ध करने पर प्रायश्चित्त करना। इसी प्रकार के
विशेष धर्म कुलधर्म, जातिधर्म आदि हैं।

५. वह श्रुति या आचरण जो लोक या समाज की रक्षा के
लिये आवश्यक हो। वह आचार जिससे समाज की रक्षा
और सुख शांति की वृद्धि हो तथा परलोक में भी उत्तम
गति मिले। कल्याणकारी कर्म। सुकृत। सदाचार। श्रेय।
पुण्य। सत्कर्म।

विशेष—स्मृतिकारों ने वर्ण, आश्रम, गुण और निमित्त धर्म के
अतिरिक्त साधारण धर्म भी कहा है जिसका मानना ब्राह्मण
से लेकर चांडाल तक के लिये समान रूप से आवश्यक है।
मनु ने वेद, स्मृति, साधुओं के आचार और अपनी आत्मा
की तुष्टि को धर्म का साक्षात् लक्षण बताकर साधारण धर्म

में इस बातें कहीं हैं—धृति (धैर्य), क्षमा, दम, अस्तेय (चोरी न करना), शौच, इन्द्रियनिग्रह, धी, विद्या, सत्य और अक्रोध । मनुष्य मात्र के लिये जो सामान्य धर्म निरूपित किया गया है वही समाज को धारण करनेवाला है, उसके बिना समाज की रक्षा नहीं हो सकती । मनु ने कहा है कि रक्षा किया हुआ धर्म रक्षा करता है । अतः प्रत्येक सभ्य देश के जनसमुदाय के बीच अट्टा भक्ति, दया प्रेम, आदि चित्त की उच्चतम मनो-वृत्तियों से संबंध रखनेवाले परोपकार धर्म की स्थापना हुई है, यहाँ तक कि परबोध आदि पर विश्वास न रखने-वाले योरप के आधिभौतिक तत्त्ववेत्ताओं को भी समाज की रक्षा के निमित्त इस सामान्य धर्म का स्वीकार करना पड़ा है । उन्होंने इस धर्म का लक्षण यह बताया है कि जिस कर्म से अधिक मनुष्यों को अधिक सुख मिले वह धर्म है । बौद्ध शास्त्रों में इसी धर्म को नील कहा गया है । जैन शास्त्रों ने अहिंसा को परम धर्म माना है ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

मुहा०—धर्म कमाना=धर्म करके उसका फल संचित करना । धर्म की धूम=धर्म का प्रत्यक्ष प्रचार । उ०—पवित्र वैदिक धर्म की ही धूम थी ।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ३७५ । धर्म खाना=धर्म की शयन खाना । धर्म की दुहाई देना । धर्म बिगाड़ना=(१) धर्म के विरुद्ध आचरण करना । धर्म-भ्रष्ट करना । (२) स्त्री का सतीत्व नष्ट करना । धर्म रक्षना=धर्म के विरुद्ध आचरण करने से बचना या बचाना । धर्म लगती कहना=धर्म का ध्यान रखकर कहना । ठीक ठीक कहना । सत्य कहना । उचित बात कहना । जैसे,—हम तो धर्म लगती कहेंगे, चाहे किसी को भला लगे या बुरा । धर्म से कहना=सत्य सत्य कहना । ठीक ठीक कहना । उचित बात कहना ।

१. किसी आचार्य या महात्मा द्वारा प्रवर्तित ईश्वर, परबोध आदि के संबंध में विशेष रूप का विश्वास और आराधना की विशेष प्रणाली । उपासनाभेद । मत । संप्रदाय । पंथ । मजहब । जैसे, हिंदू धर्म, ईसाई धर्म, इस्लाम धर्म ।

क्रि० प्र०—छोड़ना ।—बदलना ।

विशेष—इस अर्थ में इस शब्द का प्रयोग प्राचीन नहीं है । ७. परस्पर व्यवहार संबंधी नियम जिसका बालन राजा, आचार्य या मुख्यस्थ द्वारा कराया जाय । नीति । न्याय-व्यवस्था । कायदा । कानून । जैसे, हिंदू धर्मशास्त्र ।

श्री०—धर्मराज । धर्माधिकारी । धर्माध्यक्ष ।

विशेष—आचार और व्यवहार दोनों का प्रतिपादन स्पृतियों में हुआ है । राजवत्स्य स्पृति में आचाराध्याय और व्यव-हाराध्याय अलग अलग हैं । दायविभाग, सीमाविवाद, श्रृंगारान, वंद्योग्य अपराध आदि सब विषय अर्थात् दीवानों और फौजदारी के सब मामले व्यवहार के अंतर्गत हैं । राज-

सभा में या धर्माध्यक्ष के सामने इन सब व्यवहारों (मुक-दमों) का निर्णय होता था ।

८. उचित अनुचित का विचार करनेवाली चित्तवृत्ति । न्याय-बुद्धि । विवेक । ईमान । उ०—जैसा तुम्हारे धर्म में पावे करो, भारो चाहे छोड़ो ।—लक्ष्मण सिंह (शब्द०) ।

मुहा०—धर्म में माना=अंतःकरण में उचित जान पड़ना ।

९. धर्मराज । यमराज । १०. धनुष । कमान । ११. सोमपायी । १२. वर्तमान अवसरिणी के १५ वें अर्धतु का नाम (जैन) । १३. जन्मलग्न से नवें स्थान का नाम जिसके द्वारा यह विचार किया जाता है कि बानक कहीं तक भाग्यवान् और धार्मिक होगा । १४. युधिष्ठिर । धर्मराज (को०) । १५. मत्स्य (को०) । १६. प्रकृति । स्वभाव । तरीका । ढंग । १७. आचार (को०) । १८. ग्रहिमा (को०) । १९. एक उरनिपद् (को०) । २०. आत्मा (को०) । २१. निष्पक्ष होने का भाव या स्थिति (को०) ।

धर्मकथक—संज्ञा पु० [मं०] विवि. नियम या कानून का व्याख्याता (को०) ।

धर्मकर्म—संज्ञा पु० [मं०] १. वह कर्म या विधान जिसका करना किसी धर्मग्रंथ में आवश्यक ठहराया गया हो । जैसे, संध्यो-पासन आदि । २. विहित या उचित कर्म (को०) ।

धर्मकाम—वि० [मं०] १. धर्मकृत्य में संलग्न । उचित कार्य करने-वाला (को०) ।

धर्मकाय—संज्ञा पु० [मं०] १. बुद्ध । २. एक जैन मुनि (को०) ।

धर्मकारण—संज्ञा पु० [मं०] धर्म का प्रेरक हेतु (को०) ।

धर्मकार्य—संज्ञा पु० [मं०] धार्मिक कृत्य । धर्म का काम (को०) ।

धर्मकील—संज्ञा पु० [मं०] १. राज्यशासन । शासन । २. पति (को०) ।

धर्मकृच्छ्र—संज्ञा पु० [मं०] धर्म के निवार से किसी कार्य को किया जाय या न किया जाय, यह द्वैधाभाव । धर्मपालन के मार्ग में उत्पन्न बाधक स्थिति (को०) ।

धर्मकृत्य—संज्ञा पु० [मं०] धार्मिक कार्य या कर्मरंड (को०) ।

धर्मकेतु—संज्ञा पु० [मं०] १. कश्यपवंशीय सुकेतु राजा के पुत्र का नाम । २. बुद्धदेव ।

धर्मकोश, धर्मकोष—संज्ञा पु० [मं०] कानूनों या नियमों का संग्रह । विधानकोश (को०) ।

धर्मक्रिया—संज्ञा की० [मं०] धार्मिक कृत्य । धर्मकार्य (को०) ।

धर्मक्षेत्र—संज्ञा पु० [मं०] १. कुक्षेत्र । २. भारतवर्ष जो धर्म के संबंध के लिये कर्मभूमि माना गया है । ३. धार्मिक पुरुष (को०) ।

धर्मगुप्त^१—संज्ञा पु० [मं०] विष्णु (को०) ।

धर्मगुप्त^२—वि० धर्म का रक्षण और पालन करनेवाला (को०) ।

धर्मग्रंथ—संज्ञा पु० [मं०] धर्मग्रंथ । वह ग्रंथ या पुस्तक जिसमें किसी जनसमाज के आचार व्यवहार और उपासना आदि के संबंध में शिक्षा हो ।

धर्मघट—संज्ञा पु० [मं०] सुगंधित जल से भरा हुआ घड़ा जिसके वैशाख

में दान देने का माहात्म्य काशीखंड, हेमाद्रि दानखंड आदि में है ।

धर्मघड़ी—संज्ञा स्त्री० [म० धर्म + हि० घड़ी] बड़ी घड़ी जो ऐसे स्थान पर लगी हो जिसे सब कोई देख सके ।

धर्मघन—वि० [सं०] धर्मघातक । धर्महीन । अधार्मिक [को०] ।

धर्मचक्र—संज्ञा पुं० [म०.] १. धर्म का समूह । २. प्राचीन काल का एक प्रकार का चक्र (वाल्मीकि०) । ३. बुद्ध की धर्मशिक्षा जिसका आरंभ काशी से हुआ था । ४. बुद्धदेव । ५. अशोक स्तंभ पर निर्मित चक्र जो तिरंगे भंडे पर है । उ० धर्मचक्र रक्षित तिरंग ध्वज उठ अविजित फहराता ।—युगपथ, पृ० ८८ ।

धर्मचरण—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'धर्मचर्या' [को०] ।

धर्मचर्या—संज्ञा स्त्री० [म०] धर्म का आचरण ।

धर्मचारिणी—संज्ञा स्त्री० [म०] १. पत्नी । २. पतिव्रता [को०] ।

धर्मचारी—वि० [सं० धर्मचारिन्] [वि० स्त्री० धर्मचारिणी] धर्म का आचरण करनेवाला ।

धर्मचिंतक—वि० [सं० धर्मचिन्तक] १. धर्म का विचार करनेवाला । २. स्मृतिकार [को०] ।

धर्मचिंतन—संज्ञा पुं० [म० धर्मचिन्तन] धर्म की भावना । धर्मसंबंधी बातों का विचार ।

धर्मचिन्ता—संज्ञा पुं० [म० धर्मचिन्ता] दे० 'धर्मचिंतन' [को०] ।

धर्मचक्रल—संज्ञा पुं० [सं०] धर्म का अतिप्रमाण या उत्कर्षण [को०] ।

धर्मच्युत—वि० [म०] धर्मभ्रष्ट । पतित [को०] ।

धर्मज^१—वि० [म०] धर्म से उत्पन्न ।

धर्मज^२—संज्ञा पुं० १. धर्मपत्नी से उत्पन्न प्रथम धर्म पुत्र (क्योंकि उसके द्वारा पिता पित्रागण से मुक्त होता है) । २. धर्मपुत्र युधिष्ठिर । ३. एक बुद्ध का नाम । ४. नरनारायण ।

धर्मजन्मा—संज्ञा पुं० [म० धर्मजन्म] युधिष्ठिर [को०] ।

धर्मजन्य—वि० [सं०] धर्म से उत्पन्न । धर्म विषयक [को०] ।

धर्मजिज्ञासा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. धर्म के विषय में जानकारी करने की इच्छा । २. धर्मनिष्ठ आचरण की जिज्ञासा [को०] ।

धर्मजीवन^१—संज्ञा पुं० [म०] धर्मवृत्त काकर जीविका अर्जन करनेवाला व्यवसाय ।

धर्मजीवन^२—वि० १. जानि धर्म के अनुकूल आचरण करनेवाला । धर्मनिरूपण करनेवाला [को०] ।

धर्मज्ञ—वि० [म०] धर्म की जाननेवाला ।

धर्मण—संज्ञा पुं० [म०] १. धार्मिक वृत्ति । २. धर्मन सौव । ३. धार्मिक पक्षी ।

धर्मतः—अव्य० [म०] धर्म से । धर्म का ध्यान रखते हुए । धर्म की साक्षी करके । मध्य सत्य । जैसे,—जो कुछ हुआ है, धर्मके धर्मतः कहो ।

धर्मतात—संज्ञा पुं० [म० धर्म + तात] युधिष्ठिर । उ०—धर्मतात सृष्टतातपि कौतेय क्रुराह ।—धनेकायं, पृ० ३४ ।

धर्मत्याग—संज्ञा पुं० [सं०] १. धर्म का आचरण न करना । २. अपना धर्म छोड़ देना [को०] ।

धर्मद^१—वि० [सं०] अपने धर्म का फल दूसरे को देनेवाला [को०] ।

धर्मद^२—संज्ञा पुं० [सं०] कार्तिकेय का एक अनुचर [को०] ।

धर्मदक्षिणा—संज्ञा स्त्री० [सं०] धार्मिक कर्म करानेवाले को दिया जानेवाला द्रव्य या धन [को०] ।

धर्मदा—वि० स्त्री० [सं० धर्म + दा] धर्म प्रदान करनेवाली । उ०—धरा जिनको देहदा । जिनकी न भूमा धर्मदा ।—अग्नि०, पृ० ६२ ।

धर्मदान—संज्ञा पुं० [सं०] वह दान जो किसी निमित्त से या विशेष फल की प्राप्ति (जैसे, ग्रहों की शांति आदि) के ध्येय न किया जाय, केवल धर्म या आत्त्विक बुद्धि की प्रेरणा से किया जाय ।

धर्मदापन—संज्ञा पुं० [म०] समझाने बुझाने से या अपने आप जब श्रेणी श्रेण का धन सोटावे, तो उसको धर्मदापन कहते हैं ।

धर्मदार—संज्ञा स्त्री० [सं०] धर्मपत्नी ।

धर्मदारा—संज्ञा स्त्री० [सं०] धर्मपत्नी । ग्राह कर लाई हुई स्त्री [को०] ।

धर्मदुधा—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह गाय जिसका दूध केवल धार्मिक कृत्यों के लिये दुहा जाता हो [को०] ।

धर्मदेशक—संज्ञा पुं० [म०] धर्मोपदेशक [को०] ।

धर्मद्रवो—संज्ञा स्त्री० [सं०] गंगा नदी ।

धर्मद्रोही^१—वि० [म०] धर्म न माननेवाला । अधर्मी [को०] ।

धर्मद्रोही^२—संज्ञा पुं० राक्षस । दैत्य [को०] ।

धर्मधक्का—संज्ञा पुं० [म० धर्म + हि० धक्का] १. वह कष्ट जो धर्म के लिये सहना पड़े । वह हाँसे या काँटनाई जो परोपकार आदि के लिये सहनी पड़े । २. वह कष्ट या प्रयत्न जिससे निज का कोई लाभ न हो । व्यर्थ का कष्ट ।

धर्मधातु—संज्ञा पुं० [म०] बुद्धदेव ।

धर्मधारी—वि० [सं० धर्म + धारिन्] धार्मिक । धर्मनिरूपण आचरण करनेवाला । उ०—महा धर्मधारी करमचर भूप । तिनके रत्नसिंघ मनमध्यरूप ।—प० रामे, पृ० ६ ।

धर्मधुर्य—वि० [म०] जो ध्याय करने में सबसे आगे हो [को०] ।

धर्मध्वज—संज्ञा पुं० [सं०] १. धर्म का आचरण खड़ा करके स्वार्थ साधनेवाला मनुष्य । धार्मिकों का सा वेश और ढग बनाकर लोगों से पूजानेवाला मनुष्य । पालंडी । उ०—धिक धर्मध्वज ध्वज योरी ।—तुलसी (शब्द०) । २. मिथिला के एक जनक-वंशीय राजा जिनकी कथा महाभारत के शांतिपर्व में है । ये सन्यासधर्म और मोक्षधर्म के जाननेवाले परम ब्रह्मज्ञानी राजा थे ।

विशेष—एक बार सुलभा नाम की एक संन्यासिनी सारी पुष्टी पर घूमती हुई धर्मध्वज की परीक्षा के लिये उनकी सभा में योगबल से अत्यंत मनोहर रूप धारण करके आई । राजा चकित होकर उसका परिचय आदि पूछ ही रहे थे कि उसने

अपनी बुद्धि द्वारा राजा की बुद्धि में घोर नेत्र द्वारा राजा के नेत्र में यह देखने के लिये प्रवेश किया कि वे मोक्षधर्म के वेत्ता हैं या नहीं। राजा उसका धर्मिप्राय समझ गए और लिंग शरीर धारण करके उससे उसका परिचय पृथक् लगे और उसे उसके धारण के लिये भला बुरा कहने लगे। राजा ने कहा—तुमने अपनी बुद्धि द्वारा जो हमारे शरीर में प्रवेश किया उसमें अनुचित सहयोग हुआ, इससे तुम्हें तो व्यभिचार होष लगा ही, मैं भी उसका भागी हूँ। सुनभा ने आत्मज्ञान की अनेक बातें कहकर राजा को इस प्रकार समझाया—‘मेरा संपर्क तो अपने शरीर के साथ नहीं है, आपके शरीर के साथ क्योंकर हो सकता है? मैंने अपने मन्त्रगुण के धन से आपके शरीर में प्रवेश किया। यदि धार जीवन्मुक्त हैं तो मेरे प्रवेश से आपका कोई अपकार नहीं हो सकता। वन के बीच शून्य कुटी में प्रवेश करना संन्यासी का धर्म है अतः मैं भी आपके वैपश्यण शरीर में प्रवेश किया है और आज भर रहकर कल बली जाऊँगा’। राजा यह सुनकर चुप हो रहे।

धर्मशास्त्र—संका ५० [सं० धर्मशास्त्र] पांचवीं । १० ‘धर्मशास्त्र’।

धर्मशास्त्र—संका ५० [सं० धर्मशास्त्र] युधिष्ठिर (को०)।

धर्मशास्त्र—संका ५० [सं० धर्मशास्त्र] एक बौद्ध संस्कृत जिन्होंने कई बौद्धशास्त्रों का चीनी भाषा में अनुवाद किया था।

धर्मशास्त्र—संका ५० [सं०] १. जैनों के पञ्चदश तीर्थंकर।

विशेष—जैन धर्मों के अनुसार ये रत्नपुरी नाम की नगरी में इक्ष्वाकु कुल से उत्पन्न हुए थे। इनके पिता का नाम भानुनाथ और माता का नाम सुप्रता देवी था। इनका उम्र १५ वर्ष का और आयु दस लाख वर्ष की थी। दीक्षा के लिये इन्होंने दो दिन का उपवास किया था। विशेषतः वृक्ष इनका दीक्षा-स्थल था। शुक्ला महाप्रयोगी की इतनी दाढ़ी हुई थी। दीक्षा के पीछे तो बर्षों तक ये अल्पवयस्क रहे, फिर वृद्ध की प्रकृति का इन्होंने आनन्द प्राप्त किया।

नाम—संका ५० [सं०] १. विष्णु । २. एक स्त्री का नाम।

निरपेक्ष—वि० [सं० धर्मशास्त्र] (बहु राक्षस या क्षत्रिय) जहाँ किसी धर्म की मुख्यता न हो, सभी धर्मों का समान आदर हो।

निवेश—संका ५० [सं०] धर्म में भक्ति या निष्ठा (को०)।

निष्ठ—वि० [सं०] धर्मपरायण धर्म में निष्ठा की भावना हो। धार्मिक।

निष्ठा—संका ५० [सं०] धर्म में आस्था। धर्म में अट्ठा, भक्ति और प्रवृत्ति।

निष्पत्ति—संका ५० [सं०] १. कर्तव्यपालन। २. नैतिक या धार्मिक धारण (को०)।

पट्ट—संका ५० [सं०] वह व्यवस्थापक जो किसी राजा या धर्मि-कारी की ओर से दिया जाय।

धर्मपति—संका ५० [सं०] धर्म पर अधिकार रखनेवाला पुरुष। धर्मपति । २. वरुण देवता।

धर्मपत्तन—संका ५० [सं०] १. वृद्धत्वहिता के अनुसार कर्मविभाग में वृद्धि के दास का एक जनस्थान जो कदाचित् धार्मिक धर्मपट्ट (जिला मजदूर) के आश्रयस्थ रहा हो। २. नावस्ती नगरी। ३. गोल भिन्न।

धर्मपत्नी—संका ५० [सं०] वह स्त्री जिसके साथ धर्मशास्त्र की रीति से विवाह हुआ हो। विवाहिता स्त्री।

विशेष—वृद्धत्वहिता में लिखा है कि प्रथमा स्त्री ही धर्मपत्नी है। अर्थात् वह ही दूसरी स्त्री को कामपत्नी कहा गया है।

धर्मपत्र—संका ५० [सं०] गूलर (जिसके पत्ते यज्ञादि धर्मकार्यों में काम आते हैं)।

धर्मपथ—संका ५० [सं०] धर्ममार्ग। नैतिक मार्ग (को०)।

धर्मपर—वि० [सं०] धर्मपरायण। धर्मानुसार धारण करने-वाला (को०)।

धर्मपरायण—वि० [सं०] धर्मपरायण। धर्मानुसार कार्य करने-वाला (को०)।

धर्मपरिणाम—संका ५० [सं०] योग दशन के अनुसार सब भूतों और इंद्रियों के रूप या स्थिति से दूसरे रूप या स्थिति में प्राप्त होने की वृत्ति। एक धर्म के निवृत्त होने पर दूसरे धर्म की प्राप्ति। जैसे, मिट्टी के पिष्टारूप धर्म के निवृत्त होने पर घटस्वरूप धर्म की प्राप्ति।

विशेष—पञ्चजल ने अपने योगदर्शन में चित्त के जिस प्रकार निरोध, समाधि और एकाग्रता से तीन परिणाम कहे हैं उसी प्रकार सूक्ष्म, स्थूल भूतों तथा इंद्रियों के भी तीन परिणाम बनना हैं—धर्मपरिणाम, लक्षणपरिणाम और अवस्थापरिणाम। पुरुष के अतिरिक्त और सब वस्तुएँ इन परिणामों के अंगीण अर्थात् परिणामी हैं। प्रत्येक धर्म अर्थात् धार्मिक उद्योग तीन प्रकार के धर्मों से युक्त है—जात, लब्ध और अध्याप्यधर्म। वस्तु का जो धर्म अपना आधार कर चुका हो, वह जातधर्म कहलाता है। जैसे, घट के फूट जाने पर वस्त्व, बीज के अंकुरित हो जाने पर बीजत्व। जो धर्म विद्यमान रहता है उसे उद्यत कहते हैं, जैसे, घट के बने रहने पर घटत्व। जो धर्म प्राप्त होनेवाला है और व्यक्त या निश्चित हो सकने पर जो शक्ति रूप से स्थित या निश्चित रहता है उसे लब्धधर्म कहते हैं, जैसे बीज में वृक्ष होने का धर्म।

धर्मपरिषद्—संका ५० [सं०] धर्ममंडल। न्याय करनेवाली सभा। न्यायाधियों का मंडल।

धर्मपाठक—संका ५० [सं०] धर्मशास्त्र का अध्यापक (को०)।

धर्मपाल—संका ५० [सं०] १. धर्म का पालन या रक्षा करनेवाला। २. दंड (जिसके धन से लोग धर्म का पालन करते हैं) ३. राजा वरारक्ष के पुत्र यंत्री का नाम।

धर्मपीठ—संज्ञा पु० [सं०] १. धर्म का प्रधान स्थान । २. काशी ।
३. वह स्थान जहाँ धर्म की व्यवस्था मिले ।

धर्मपीडा—संज्ञा स्त्री० [सं० धर्मपीडा] धर्म या न्याय के विरुद्ध आचरण ।

धर्मपुत्र—संज्ञा पु० [सं०] १. धर्म के पुत्र युधिष्ठिर । २. नरनाराण ।
३. धर्मानुसार पुत्र कहकर जिसका ग्रहण किया गया हो ।

धर्मपुरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] यमपुरी जहाँ शरीर छूटने पर प्राणियों के किए हुए धर्म अधर्म का विचार होता है । २ कचहरी । न्यायालय ।

धर्मपुस्तक—संज्ञा स्त्री० [सं० धर्म + पुस्तक] धर्म विषयक पुस्तक ।
धर्मग्रंथ [को०] ।

धर्मप्रचार—संज्ञा पु० [सं०] (लाक्ष०) सखार [को०] ।

धर्मप्रतिरूपक—संज्ञा पु० [सं०] परार्थों को दिया हुआ ऐसे सगुण और संवन्न मनुष्य का दान जिसके अपने लोग (कुटुंबी आदि) कष्ट में हो ।

विशेष—मनु ने कीर्ति, गण आदि के लिये दिए हुए ऐसे दान को धर्म नहीं कहा है, धर्म का प्रतिरूपक (नकल) कहा है ।

धर्मप्रधान—वि० [सं०] जिसमें धर्म मुख्य या निर्दिष्ट हो [को०] ।

धर्मप्रभास—संज्ञा पु० [सं०] बृद्ध का एक नाम ।

धर्मप्रवक्ता—संज्ञा पु० [सं० धर्मप्रवक्ता] १. निष्ठा या कानून का व्याख्याता । २. धर्म का प्रचारक [को०] ।

धर्मप्रवचन—संज्ञा पु० [सं०] १. बृद्ध का एक नाम । २. धर्म की व्यवस्था या कर्तव्यशास्त्र (को०) । ३. नियम या कानून की व्याख्या (को०) ।

धर्मवक्ता—संज्ञा पु० [सं०] धर्म के आचरण का बल [को०] ।

धर्मवाणिजिक—संज्ञा पु० [सं०] १. वह जो बनिष् के समान धर्म द्वारा लाभ पाने की चेष्टा करता है । २. वह जो धार्मिक कार्य फलाणा से करता है, जैसे लाभ की भाणा से बनिया व्यापार करता है [को०] ।

धर्मबाध—वि० [सं०] धर्मविरुद्ध [को०] ।

धर्मबुद्धि—संज्ञा स्त्री० [सं०] धर्म अधर्म का विवेक । भले बुरे का विचार ।

धर्मबुद्धि—वि० १. धर्मानुसूल आचरण करनेवाला । २. उचित अनुचित का विचार करनेवाला [को०] ।

धर्मभगिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. जो धर्म के नाते बहन हो । २. गुरुकन्या [को०] ।

धर्मभारिणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] धर्मपरायण पत्नी [को०] ।

धर्मभाणक—संज्ञा पु० [सं०] कथा पुराण बचिनेवाला । कथक्कड़ ।

धर्मभ्राता—संज्ञा पु० [सं० धर्मभ्राता] १. गुरुभाई । २. धर्म के नाते भाई । ३. गुरुपुत्र [को०] ।

धर्मभिक्षु—संज्ञा पु० [सं०] वह जिसने धर्मार्थ भिक्षावृत्ति ग्रहण की हो ।

विशेष—मनु ने भी प्रकार के धर्मभिक्षु गिनाए हैं—पुत्र की

कामना से विवाह चाहनेवाला; यज्ञ की इच्छा रखनेवाला; पथिक; जो यज्ञ में अपना सर्वस्व लगाकर निर्धन हो गया हो; गुरु माता और पिता के भरणपोषण के लिये धन चाहनेवाला; अध्ययन की इच्छा रखनेवाला विद्यार्थी और रोगी । ये नव धर्मभिक्षु ब्राह्मण श्रेष्ठ स्नातक हैं । इन्हें यज्ञ की वेदी के भीतर बैठकर दक्षिणा के सहित धनदान देना चाहिए । इनके प्रतिरिक्त जो और ब्राह्मण हों उन्हें वेदी के बाहर बैठाना चाहिए ।

धर्मभोरु—वि० [सं०] जिसे धर्म का भय हो । जो अधर्म करते हुए बहुत डरता हो ।

धर्मभृत्—संज्ञा पु० [सं०] १. राजा । २. धर्मपरायण व्यक्ति । धर्मनिष्ठ व्यक्ति [को०] ।

धर्मभ्रष्ट—वि० [सं०] वह जो धर्म से पतित हो गया हो । धर्मच्युत [को०] ।

धर्ममति—वि० संज्ञा पु० [सं०] दे० 'धर्मबुद्धि' ।

धर्ममहापात्र—संज्ञा पु० [सं०] धर्मविभाग का मंत्री [को०]

धर्ममूल—संज्ञा पु० [सं०] धर्म के आधार वेद [को०] ।

धर्ममेघ—संज्ञा पु० [सं०] योग में असंप्रज्ञात समाधि के अंतर्गत एक समाधि जिसमें वैराग्य के अभ्यास से चित्त सब वृत्तियों से रहित हो जाता है, अर्थात् इतना असमर्थ हो जाता है कि उसका रहना न रहना बराबर हो जाता है, फल कुछ संस्कार मात्र रह जाता है ।

धर्मयज्ञ—संज्ञा पु० [सं०] ऐसा यज्ञ जिसमें किसी की बलि न दी जाय [को०] ।

धर्मयुग—संज्ञा पु० [सं०] सत्ययुग ।

धर्मयुद्ध—संज्ञा पु० [सं०] १. वह युद्ध जिसमें किसी प्रकार का अन्याय या नियम का भंग न हो । २. धर्म की रक्षा या प्रचार के लिये किया जानेवाला युद्ध । जिहाद ।

धर्मयूप, धर्मयोनि—संज्ञा पु० [सं०] विष्णु [को०] ।

धर्मरक्षित—संज्ञा पु० [सं०] योग (यवन) देशीय एक बौद्ध धर्मोपदेशक या स्थविर जिसे महाराज अशोक ने अपरांतक (बिह्लिचिस्तान) देश में उपदेश देने के लिये भेजा था ।

धर्मरत्न—वि० [सं०] धर्मानुयायी । धर्मपरायण । [को०] ।

धर्मरति—संज्ञा स्त्री० [सं०] धर्मानुराग । धर्मप्रेम [को०] ।

धर्मरति—वि० धर्मपरायण [को०] ।

धर्मराज, धर्मराई(१)—संज्ञा पु० [सं० धर्म + राज] दे० 'धर्मराज' । उ०—तीजे प्रकाश रहे धर्मराई । नर्क सुगं जिन लीन बनाई । करमन फल जीवन भुगताई । ऐसा अवल पसारा है ।—कबीर श०, मा० १, पृ० ६२ ।

धर्मराज—संज्ञा पु० [सं०] १. धर्म का पालन करनेवाला, राजा । २. युधिष्ठिर । ३. यमराज । ४. जिन । ५. न्यायकर्ता । न्यायाधीश । उ०—सेनापति बुधजन, मंगल गुरुगण, धर्मराज मन बुद्धि वनी ।—केशव (खण्ड०) ।

धर्मराज^२—वि० धर्मशील [को०] ।

धर्मराज^३—संज्ञा पु० [सं० धर्मराजम्] युधिष्ठिर [को०] ।

धर्मराजपरीक्षा—संज्ञा स्त्री० [सं०] स्मृतियों के अनुसार धर्म में अभि-
युक्त दोषी है या निर्दोष, इसकी एक दिव्य परीक्षा ।

विशेष—बृहस्पति, पितामह आदि स्मृतिकारों ने जो विधान
लिखे हैं वे छोड़े बहुत भिन्न होने पर भी वस्तुतः एक ही
से हैं । धर्म और अधर्म की दो श्रेत और कृष्ण मूर्तिगी
भोजपत्र पर बनाकर और उनकी प्राणप्रतिष्ठापूर्वक पूजा
करके मिट्टी के दो बराबर पिण्डों में उन्हें रखे । फिर दोनों
पिण्डों को दो नए घड़ों में रखकर अभियुक्त को दुन्नावे और
किसी घड़े पर हाथ रखने के लिये कहें । यदि उसका हाथ
धर्मपिण्डवाले घड़े पर पड़े तो उसे निर्दोष समझें ।

धर्मराजिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] सारनाथ का एक बौद्ध स्तूप [को०] ।

धर्मरायः—संज्ञा पु० [सं० धर्मराज] राम । दे० 'धर्मराज' । उ०—
घोड़े जीव विधायहो धर्मराय धरि लाय ।—कबीर सा०,
पृ० १५२२ ।

धर्मरोधी—वि० [सं० धर्मरोधिन] धर्माविरुद्ध । अन्यायपूर्ण । [को०] ।

धर्मलक्षण—संज्ञा पु० [सं०] १. धर्म या व्यवस्था का मूल चिह्न
या लक्षण । २. वेद [को०] ।

धर्मलक्षणा—संज्ञा स्त्री० [सं०] भीमामा दर्शन [को०] ।

धर्मलुपता उपमा—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह उपमा जिसमें धर्म प्रसिद्ध
उपमान और उपमेय में समान रूप से पाई जानेवाली बात का
कथन न हो । दे० 'उपमा' ।

धर्मलोप—संज्ञा पु० [सं०] १. अधर्म । अनाचार । २. कर्तव्य का
लोप [को०] ।

धर्मवस्तु—वि० [सं०] जिसे धर्म या कर्तव्य द्वारा हो [को०] ।

धर्मवर्ती—वि० [सं० धर्मवर्तिन्] धार्मिक । धर्मानुयायी । धर्मावरण
करनेवाला [को०] ।

धर्मवर्धन—संज्ञा पु० [सं०] शिव [को०] ।

धर्मवर्मा—संज्ञा पु० [सं० धर्मवर्मन्] धर्मरक्षक [को०] ।

धर्मवाद—संज्ञा पु० [सं०] धर्म या कर्तव्य के विषय में उत्पन्न वाद
पर विचार [को०] ।

धर्मवान्—वि० [सं० धर्मवान्] धर्मनिष्ठ । धर्मात्मा [को०] ।

धर्मवासर—संज्ञा पु० [सं०] १. पुण्यमा । २. बीना हुआ दिन या
काल [को०] ।

धर्मवाहन—संज्ञा पु० [सं०] १. वह जिसका वाहन धर्म हो । जिन ।
२. धर्मराज का वाहन महिष । भैंसा ।

धर्मविजयी—संज्ञा पु० [सं०] वह जो नम्रता या विनय ही से संतुष्ट
हो जाय ।

विशेष—कौटिल्य के अनुसार दुर्बल राजा को पहले धर्मविजयी
राजा का सहारा लेना चाहिए ।

धर्मविद्—वि० [सं०] धर्मज्ञाता [को०] ।

धर्मविद्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] धर्मविधान या कर्तव्य का ज्ञान [को०] ।

धर्मविधि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. धर्म संबंधी व्यवस्था । २. नियम
या कानून की व्यवस्था [को०] ।

धर्मविप्लव—संज्ञा पु० [सं०] १. धर्म का व्यभिचर । २. धार्मिक
क्रांति या उथल पुथल [को०] ।

धर्मविपर्यय—संज्ञा पु० [सं०] धर्मपरिवर्तन । उ०—अकबर के पूर्व
भुसलमानों के जो आक्रमण हुए थे उनमें मूर्तियों के खंडन,
अनेक अनाचार तथा अत्याचार, धर्मविपर्यय आदि के दृष्टियों
ने जनता में अवतारवाद के विषद भावना भर दी ।—
अकबरी० (भू०), पृ० ३ ।

धर्मविवेचन—संज्ञा पु० [सं०] १. धर्म के संबंध में चिन्तन । २. धर्म
अधर्म का विचार । ३. दूसरे के किए हुए कर्म का विचार
कि वह सदोप है या निर्दोष । किसी के दोषी या निर्दोष होने
का निर्णय ।

धर्मवीर—संज्ञा पु० [सं०] वह जो धर्म करने में गाढ़सी हो ।

विशेष—रत्नगुप्त के ग्रंथों में वीरराम के भ्रान्तों में चार प्रकार के
वीर कहे गए हैं—युद्धवीर, धर्मवीर, दानवीर और दयावीर ।

धर्मवृद्ध—संज्ञा पु० [सं०] जो धर्माचरण द्वारा भेद हो ।

धर्मवैतसिक—संज्ञा पु० [सं०] वह जो पाप के द्वारा धन कमाकर
सोगों को दिलाने और धार्मिक प्रसिद्धि होने के लिये बहुत
दानपुण्य करता हो ।

धर्मव्यवस्था—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. किसी प्रश्न पर अधिकारी विद्वानों
द्वारा प्रदत्त धर्मानुमोदित मत या निर्णय । २. निर्णय ।
फैसला [को०] ।

धर्मव्याध—संज्ञा पु० [सं०] मिथिलापुर निवासी एक व्याध जिसने
कौशिक नामक एक तपस्वी वेदाध्यायी ब्राह्मण को धर्म का
तरव समझाया था ।

विशेष—महाभारत (वन पर्व) में इसकी कथा इस प्रकार है ।
कौशिक नामक एक तपस्वी ब्राह्मण एक पेड़ के नीचे बैठकर
वेदाष्टक कर रहे थे, इतने में एक बगली ने पेड़ पर से उनके
ऊपर बीज कर दी । कौशिक ने कुछ कुद होकर उसकी ओर
देखा और वह घरकर गिर रही । इसपर कौशिक को बड़ा
दुःख हुआ और वे भिक्षा मांगने के लिये एक परिचित गृहस्थ
के घर पहुँचे । उसकी गृहिणी उन्हें बैठाकर भीतर अन्न आदि
लागे गई । पर इसी बीच में उसका पति भूखा व्याध कहीं
से आ गया और वह उसकी सेवा में लग गई । पीछे जब
उसे द्वार पर बैठे हुए ब्राह्मण की सुध हुई तब वह भिक्षा लेकर
तुरंत बाहर आई और विलंब का कारण बताकर क्षमाप्रार्थना
करने लगी । कौशिक इसपर बहुत बिगड़े और ब्राह्मण के
क्रोध का भयंकर फल बताकर उसे डराने लगे । इसपर उस
स्त्री ने कहा—'मैं बगली नहीं हूँ । आपके क्रोध से मेरा क्या
हो सकता है ? मैं पति को अपना परम देवता समझती हूँ ।
उनकी सेवा से छुट्टी पाकर तब मैं भिक्षा लेकर आई हूँ । क्रोध
बहुत बुरी वस्तु है । जो क्रोध के बश में नहीं होता देवता
उसी को ब्राह्मण समझते हैं । यदि आपको धर्म का यथार्थ

तत्त्व जानना ही तो मिथिला में 'धर्मव्याध' के पास जाइए'।
 कौशिक प्रवाक् हो गए और घरने को धिक्कारने हुए मिथिला
 की ओर चले पड़े। वही जाकर उन्होंने देखा कि धर्मव्याध
 नाना प्रकार के पशुओं का मांस रखकर बेच रहा है। धर्म-
 व्याध ने ब्राह्मण देवता की देवने ही आदर में उठकर बैठाया
 और कहा—'आरतों एक ब्राह्मणी ने मेरे पास भेजा है।'।
 कौशिक की बड़ा प्रश्नचर्चा हुआ और उन्होंने धर्मव्याध से
 कहा—'तुम इनने जानसंन होकर ऐसा निकृष्ट कर्म क्यों
 करने हो?' धर्मव्याध ने कहा, 'महाराज! यह गिरुतरंपरा
 से चला आता हुआ मेरा कुतर्क है; धर्म में इसी में स्थित
 हूँ। मैं अपने माता पिता और परिवारियों की सेवा करता हूँ,
 देवपूजन और शक्ति के अनुसार दान करता हूँ, झूठ नहीं
 बोलता, बेईमानी नहीं करता। जो काम बेचना है वह दूसरों
 के माते हुए पशुओं का होता है। मेरी व्रत भंगकर अवश्य
 है, पर किया क्या जाय? मेरे लिये वही निर्दिष्ट की गई है।
 वही मेरा कुनोचित धर्म है, उसका त्याग करना उचित नहीं।
 पर साथ ही सदाचार के आचरण में मुझे कोई बाधा नहीं।'।
 इसके उपरान्त धर्मव्याध ने अपने पूर्वजन्म का वृत्तान्त इस
 प्रकार सुनाया—'मैं पूर्वजन्म में वेदाध्ययी ब्राह्मण था। मैं
 एक दिन अपने मित्र एक राजा के साथ शिकार में गया और
 वही जंगल में एक मृगा के ऊपर तीर चलाया। पीछे जान
 पड़ा कि मृगी के शरीर में एक ऋषि थे। ऋषि ने मुझे शाप
 दिया कि 'तू मनुज बना धर्मव्याध मारा इसमें तू सुदयोनि में
 जाकर एक व्याध के घर उत्पन्न होगा।'।

धर्मव्रत—वि० [सं०] धर्म का व्रत लेनेवाला : धर्मपरायण [को०]।

धर्मव्रता—संज्ञा स्त्री० [सं०] विश्वरूप के गर्भ से उत्पन्न धर्म नामक
 एक राजा की कन्या।

विशेष—वागुपुराण में आया है कि अपने पानिग्रथ की प्राप्ति
 के लिये धार तप किया था। मनीष ऋषि ने उसे पुत्रहीन पर
 सब से बड़ी प्रतिष्ठा दत्त उसके साथ विवाह किया था।

धर्मशास्त्रा—संज्ञा पुं० [सं०] वह महान् जो धर्मियों या याज्ञिकों के
 करने के लिये धर्मस्थ बना हो और जिसका कुछ भाग प्रादि
 न लगता हो। २. वह स्थान जहाँ पुण्य के लिये नियमपूर्वक
 दान प्रादि दिया जाता हो। मतः। ३. वह स्थान जहाँ धर्म
 धर्म का निर्णय हो। न्यायस्थान। ४. धर्मस्थान।

धर्मशासन—संज्ञा पुं० [सं०] ३० धर्मशास्त्र [को०]।

धर्मशास्त्र—संज्ञा पुं० [सं०] किसी जयसमूह के लिये उचित
 आचार व्यवहार की व्यवस्था या किसी महत्त्व या आचार्य
 की ओर से होने के कारण या समझी जाता है। वह ग्रन्थ
 जिसमें समाज के शासन के निश्चित नीति और सदाचार
 संबंध नियम हो जैसे, मानव धर्मशास्त्र।

विशेष—हिंदुओं के धर्मशास्त्र 'स्मृति' के नाम से प्रसिद्ध है। इन
 में मनुस्मृति सबसे प्रधान समझी जाती है। मनु के प्रतिरिक्त
 यम, अश्विष्ठ, अत्रि, दक्ष, विष्णु, अगिरा, उज्जना, बृहस्पति,
 व्यास, व्यासस्व, शीतम, कात्यायन, नारद, याज्ञवल्क्य,

पराशर, मंत्र, शंख और हारीत भी स्मृतिकार हुए हैं।
 २० 'स्मृति'।

धर्मशास्त्री—संज्ञा पुं० [सं० धर्मशास्त्रिन्] धर्मशास्त्र के अनुसार
 व्यवस्था देनेवाला। धर्मशास्त्र जाननेवाला पंडित।

धर्मशील—वि० [सं०] धर्म के अनुसार आचरण करनेवाला।

धर्मशीलता—संज्ञा स्त्री० [सं०] धर्मशील होने का भाव।
 धर्माचरण की वृत्ति।

धर्मसंकट—संज्ञा पुं० [सं० धर्मसंकट] विवेक की वह स्थिति जिसमें
 किसी कार्य का करना भी उचित लगे और न करना भी
 उचित। कार्य को करने की कठिनाई [को०]।

धर्मसंग—संज्ञा पुं० [सं० धर्मसङ्ग] १ धर्मानुराग। धर्म से लगाव।
 २. डोंग [को०]।

धर्मसंगीति—संज्ञा स्त्री० [सं० धर्मसङ्गीति] १. धर्म के संबंध में वाद-
 विवाद। २. बौद्धों का धर्मसमयन [को०]।

धर्मसंघ—संज्ञा पुं० [सं० धर्म + संघ] धर्म का संगठन। धर्मसभा [को०]

धर्मसंहिता—संज्ञा स्त्री० [सं०] विधि विधानों का समुच्चय, जिनकी
 रचना मनु और याज्ञवल्क्य जैसे ऋषियों ने की है [को०]।

धर्मसभा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. न्यायालय। कचहरी। वह स्थान
 जहाँ बैठकर न्यायाधीश न्याय करे। अदालत। उ०—धर्मसभा
 महं रामहि जाना। श्वान चलो निज पीर बलानो।—केशव
 (शब्द०)। २. वह स्थान जहाँ धार्मिक विषयों की चर्चा या
 उपदेश हो।

धर्मसमय—संज्ञा पुं० [सं०] नियम या कानून की अनिवार्यता [को०]।

धर्मसहाय—संज्ञा पुं० [सं०] धर्मकृत्यों में साध देनेवाला [को०]।

धर्मसार—संज्ञा पुं० [सं०] १. पुण्य कर्म। उत्तम कर्म। २. धर्मनित्य
 [को०]।

धर्मसारी—संज्ञा स्त्री० [सं० धर्मसारी] धर्मसाला। उ०—राजान
 इस पंडित पीर तुम्हारे... पूँट पैठ दे बहुधा हमको नहीं
 रचो धर्मसारी।—सूर (शब्द०)।

धर्मसावणि—संज्ञा पुं० [सं०] पुराणों के अनुसार ग्यारहवें मनु।

धर्मशीलता—संज्ञा स्त्री० [सं० धर्मशीलता] ३० 'धर्मशीलता'।

उ०—यह कावे धर्मशीलता तोरी : हमहुँ सुनी कृत पर त्रिय
 श्रीरी।—मानस, ६।२२।

धर्मसुत—संज्ञा पुं० [सं०] युधिष्ठिर [को०]।

धर्मगू—संज्ञा पुं० [सं०] १. धर्मरेकर। २. धूम्याट पक्षी।

धर्मसूत्र—संज्ञा पुं० [सं०] जैमिनि प्रणीत धर्मनिरुपण पर एक ग्रंथ।

धर्मसेतु—संज्ञा पुं० [सं०] सेतु की तरह धर्म को पारण करनेवाला।

धर्मसेन—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक प्राचीन महाकवि या बौद्ध
 महात्मा जो ऋषिपत्तन (मारनाथ, काशी) संघ के प्रधान थे।
 विशेष—अनुराधापुर (सिंहलद्वीप) के राजा दुल्लभामिनी ने जब
 महास्तूप की स्थापना की थी (ई० पू० १५७) तब ये बारह
 हजार अनुचरों के साथ उपस्थित हुए थे।

२. जैनों के द्वादश अंगविदों में से एक।

धर्मसेवन—संज्ञा पुं० [सं०] धर्म का आचरण या पालन [को०]।

धर्मसंघ—संज्ञा पुं० [सं० धर्मसंघ] धर्मास्तिकाय पदार्थ । (जैन) ।

धर्मस्थ—संज्ञा पुं० [सं०] धर्माध्यक्ष । न्यायाधीश ।

विशेष—भारतीय धार्मिकों में लोक को व्यवस्थित करनेवाले नियम जिनका पालन राज्य करता था, धर्म ही कहलाते थे । कानून भी धर्म कहलाते थे । कानून धर्म से अलग नहीं माना जाता था ।

धर्मस्थ—संज्ञा पुं० [सं०] धार्मिक कार्य करनेवाली संस्था या समाज (को०) ।

धर्मस्व—वि० धर्मकार्यों के लिये समर्पित (द्रव्य आदि) ।

धर्मस्थोप—संज्ञा पुं० [सं०] न्यायालय ।

धर्मस्थायि—वि० धर्म विषयक । नियम या कानून संबंधी (को०) ।

धर्मस्वामी—संज्ञा पुं० [सं० धर्मस्वामिन] बुद्ध (को०) ।

धर्मांग—संज्ञा पुं० [सं० धर्माङ्ग] बक । बगला (जिनका अंग धर्म के समान शुभ होता है) ।

धर्मांतर—संज्ञा पुं० [सं० धर्मा + अंतर] भिन्न धर्म ।

धर्मांतरण—संज्ञा पुं० [सं० धर्मा + अंतरण] धर्म परिवर्तन । भिन्न धर्म स्वीकार करना (को०) ।

धर्माध—वि० [सं० धर्मा + अध] धर्म में अंध भ्रष्टा रखनेवाला । कट्टर धार्मिक (को०) ।

धर्माशु—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य ।

धर्माशु—संज्ञा पुं० [सं०] ३० 'धर्माशु' । ज०—यदि धर्माशु संबंधी संघानि तत्पश्चात् लोचन दिव्य देह दाता ।—सुलसी (१३३०) ।

धर्मा—संज्ञा पुं० [हि०] ३० 'धर्मा' । उ०—कर्मा धर्मा स्त्रावग वि० १—षट्०, पृ० २६३ ।

धर्मागम—संज्ञा पुं० [सं० धर्मा + आगम] धर्मशास्त्र (को०) ।

धर्माचरण—संज्ञा पुं० [सं० धर्मा + आचरण] धर्माचार आचरण । पुरुष कृत्य (को०) ।

धर्माचार्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. धर्म का शिक्षा देनेवाला गुरु । २. ऋग्वेदियों में उन ऋषियों में एक जिनके निमित्त तर्पण किया जाता है ।

धर्मातिक्रमण—संज्ञा पुं० [सं० धर्मा + अतिक्रमण] धर्म का उल्लंघन । धर्म या आदित्य का विरोध (को०) ।

धर्मात्मज—संज्ञा पुं० [सं०] धर्मात्मज (को०) ।

धर्मात्मा—वि० [सं० धर्मात्मन्] धर्मशील । धर्म करनेवाला । धार्मिक ।

धर्मादा—संज्ञा पुं० [सं० धर्मा + दा] धर्म कार्य के लिये निकास हुआ धन (को०) ।

धर्माधर्म—संज्ञा पुं० [सं० धर्मा + अधर्म] धर्म और अधर्म (को०) ।

धर्माधर्मविद्—संज्ञा पुं० [सं० धर्मा + अधर्म + विद्] धर्म और अधर्म का ज्ञाता । मोक्षार्थक (को०) ।

धर्माधिकरण—संज्ञा पुं० [सं०] वह स्थान जहाँ राजा व्यवहारों (मुकदमों) पर विचार करता है । विचारालय ।

धर्माधिकरणिक—संज्ञा पुं० [सं०] धर्म अधर्मा की व्यवस्था देनेवाला । विचारक । न्यायाधीश (को०) ।

धर्माधिकरणी—संज्ञा पुं० [सं० धर्माधिकरणिक] ३० 'धर्माधिकरणिक' (को०) ।

धर्माधिकार—संज्ञा पुं० [सं०] १. धर्मकृत्यों का निरीक्षण । २. न्याय व्यवस्था । ३. न्यायाधीश का पद (को०) ।

धर्माधिकारी—संज्ञा पुं० [सं०] धर्माधिकार की व्यवस्था देनेवाला । विचारक । न्यायाधीश । २. वह जो किसी राजा या बड़े शासकी की ओर से धर्माध्यक्ष नियुक्त हुए द्रव्य को पात्रापात्र का विचार करके बाँटने आदि का प्रबंध करता है । पुरुष साते का प्रबंधकर्ता । दानाध्यक्ष ।

धर्माधिकृत—संज्ञा पुं० [सं० धर्मा + अधिकृत] धर्माध्यक्ष । (को०) ।

धर्माधिष्ठान—संज्ञा पुं० [सं०] न्यायालय (को०) ।

धर्माध्यक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] १. धर्माधिकारी । २. विष्णु । ३. शिव ।

धर्मानुप्राणित—वि० [सं० धर्मा + अनुप्राणित] धर्म में प्रभावित । धर्ममय । उ०—भारतीय प्रत्येक कार्य धर्मानुप्राणित होता है ।—सं० शास्त्र, पृ० १२७ ।

धर्मानुष्ठान—संज्ञा पुं० [सं०] धर्माचरण ।

धर्मानुमृति—संज्ञा पुं० [सं० धर्मा + अनुमृति] धर्म के विषय में चिंतन (को०) ।

धर्मापन—वि० [सं०] धर्मरहित । अन्यायपूर्ण (को०) ।

धर्मापेते—संज्ञा पुं० १. धर्मा । २. अधर्मा (को०) ।

धर्माभास—संज्ञा पुं० [सं० धर्मा + आभास] धर्म का भास । धर्म मृति से भिन्न भावों द्वारा दिखावन कल्पित धर्म (को०) ।

धर्माभिनिवेश—संज्ञा पुं० [सं० धर्मा + अभिनिवेश] धर्म का प्रवेश । धर्म का ग्रहण । उ०—नहू नहने है कि धर्मावाह (धर्माभिनिवेश) तो प्रकार का है : सहज और विवक्षित ।—संपूर्णाधर्मिक, पृ० ३३६ ।

धर्मारण्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. नवीन । २. एक तोय जिनके विषय में बराहपुराण में कहा जाता लीखी है कि जब चंद्रमा ने शुक्रास्त्री तारा का दृग्गम किया तब धर्म व्याकुल होकर एक मृगजल में डुब गया । उस जल का नाम ब्रह्मा ने धर्मारण्य रखा । ३. नया के अंतर्गत एक तीर्थस्थान । ४. द्वाविभाग के मध्य भाग में एक देश (मुहम्मदिया) ।

धर्मार्थ—संज्ञा पुं० [सं०] धर्म के निमित्त । कथन धर्म या पुरुष के उद्देश्य से । उल्लेख १० । लय । जैमि, - उसने १००) धर्मार्थ दिए हैं ।

धर्मावसार—संज्ञा पुं० [सं०] १. संज्ञात् धर्मावसार । धर्मयुक्त धर्मावसार ।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग उल्लेख के रूप में छोटी की ओर से बड़ी के प्रति आदर्शार्थ होता है ।

२. धर्मावसार का निरोध करनेवाला पुरुष । न्यायाधीश । ३. युधिष्ठिर ।

धर्मावसथि—संज्ञा पुं० [सं०] पुरुष विभाग का अधिकारी ।

विशेष—बाणभ्य के समय में इसका कार्य यात्रियों तथा वैरागियों की शहर में ठहरने के लिये स्थान देना था ।

कारीगर तथा शिल्पी अपनी जिम्मेवारी पर रिश्तेदारों, साधुओं संन्यासियों तथा श्रोत्रियों को अपने मकान में बसाते थे। यही बात व्यापारियों को करनी पड़ती थी।

धर्मावस्थायी—संज्ञा पुं० [सं०] पुण्य विभाग का अधिकारी। दे० 'धर्मावस्थायी'।

धर्माश्रित—वि० [सं०] १. धर्मानुसारी। धर्मसम्मत। २. न्यायपूर्ण [को०]।

धर्मासन—संज्ञा पुं० [सं०] वह आसन या चौकी जिसपर बैठकर न्यायाधीश न्याय करता है। उ०—हैं प्रतिहारी, तू हमारा नाम लेकर पशुन मंत्रों से कह दे कि बहुत जागने से हममें धर्मासन पर बैठने की सामर्थ्य नहीं रही इसलिये जो कुछ काम काज प्रजासंबंधी हो, लिखकर हमारे पास यहीं भेज दे।—सप्तमण सिंह (शब्द०)।

धर्मास्तिकाय—संज्ञा पुं० [सं०] जैन शास्त्रानुसार छह द्रव्यों में से एक जो एक अरूपी पदार्थ है और जीव और पुद्गल की गति का आधार या सहायक होता है।

धर्मिणी^१—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. पत्नी। २. रेणुका।

धर्मिणी^२—वि० धर्म करनेवाली।

विशेष—हिंदी में इसका प्रयोग समस्त पक्षों में ही होता है, जैसे, महधर्मिणी।

धर्मिणी^(३)—वि० [सं० धर्मिक] धर्मावरण करनेवाला। धार्मिक। उ०—बरनी राजकुमार को बानी। धर्मिणी श्री पंडित ज्ञानी।—इंद्रा०, पृ० ६।

धर्मिष्ठ—वि० [सं०] धार्मिक। पूज्यात्मा। सदाचारी।

धर्मो^१—वि० [सं० धर्मिन्] [स्त्री० धर्मिणी] १. जिसमें धर्म हो। धर्म या गुणविशिष्ट। जैसे, प्रसवधर्मो। २. धार्मिक। पूज्यात्मा। ३. मत या धर्म हो माननेवाला। जैसे, निमग्नधर्मो।

धर्मो^२—संज्ञा पुं० १. धर्म का आधार। गृण या धर्म का आश्रय। जैसे द्रवत्व धर्म का आधार जल है। २. धर्मत्मा मनुष्य। ३. विष्णु।

धर्मोपुत्र—संज्ञा पुं० [सं०] नट। नाटक का कोई पात्र या अभिनयकर्ता।

धर्मोद्व—संज्ञा पुं० [सं० धर्मोद्व] १. यमराज। २. युधिष्ठिर [को०]।

धर्मयु—संज्ञा पुं० [सं०] पुरुवंशी राजा रीद्राश्व का एक पुत्र।

धर्मेश, **धर्मेश्वर**—संज्ञा पुं० [सं०] यमराज [को०]।

धर्मोत्तर—वि० [सं० धर्मा + उत्तर] धर्म से पर। धर्म से बढ़ा। महान्। देवी। उ०—हैं काम तुम्हारा धर्मोत्तर।—अपरा, पृ० १७८।

धर्मोन्माद—संज्ञा पुं० [सं० धर्मा + उन्माद] धार्मिक या सांप्रदायिक कट्टरता या असहिष्णुता जातिवादात्मक।

धर्मोपदेश—संज्ञा पुं० [सं०] १. धर्म की शिक्षा। वह कथन या व्याख्यान जो धर्म का तत्व समझाने या धर्म की ओर प्रवृत्त करने के लिये हो। २. धर्म की व्यवस्था। धर्मशास्त्र।

धर्मोपदेशक—संज्ञा पुं० [सं०] धर्म का उपदेश देनेवाला।

धर्मोपाध्याय—संज्ञा पुं० [सं०] पुरोहित।

धर्म्य—वि० [सं०] जो धर्म के अनुकूल हो। धर्म या न्याययुक्त।

धर्म्यविवाह—संज्ञा पुं० [सं०] स्मृतियों में जो विवाह गिनाए गए हैं उन में से ब्राह्म, देव, आर्ष, गांधर्व और प्राजापत्य ये पांच धर्म्यविवाह कहलाते हैं।

धर्माट—संज्ञा स्त्री० [अनु०] दे० 'धड़वड़ाहट'। उ०—बोड़ों और सामान का बाहर निकलना या कि तबेला 'धरर धर्माट' करके गिर गया।—सुंदर प्र० (जी०), भा० १, पृ० ३६।

धर्म—संज्ञा पुं० [सं०] १. अविनीत व्यवहार। अविनय। धृष्टता। गुस्ताखी। संकोच या शिष्टता का अभाव। २. असहनशीलता। तुलुकमिजाजी। ३. धैर्य का अभाव। अवीरता। बेसब्री। ४. शक्तिबंधन। अशक्त होने या करने का भाव। बेकाम करने या होने का भाव। ५. रोक। दबाव। ६. नामर्द करने या होने का भाव। ७. नामर्द। नपुंसक। हिजड़ा। ८. हिंसा। जो दुखाने का कार्य। ९. अनादर। अपमान। हतक। १०. (स्त्री का) सतीत्वहरण।

धर्मक^१—संज्ञा पुं० [सं०] १. दबानेवाला। दमन करनेवाला। २. अपमान करनेवाला। तिरस्कार करनेवाला। ३. असहनशील। ४. सतीत्वहरण करनेवाला। व्यभिचारी। ५. अभिनय करनेवाला। नकल करनेवाला। नट।

धर्मक^२—वि० १. दमन करनेवाला। २. अपमान या तिरस्कार करनेवाला। ३. व्यभिचारी। ४. दिठाई करनेवाला [को०]।

धर्मकारी—वि० [सं० धर्मकारिन्] [वि० स्त्री० धर्मकारिणी] १. दबाने या दमन करनेवाला। हरानेवाला। नीचा दिखानेवाला। २. अपमान करनेवाला। अवज्ञा करनेवाला।

धर्मकारिणी—वि० [सं०] जिसका सतीत्व नष्ट हुआ हो। प्रसूती। व्यभिचारिणी।

धर्मण—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० धर्मणीय, धर्मित] १. अनादर। अपमान। अवज्ञा। २. दबोचना। आक्रमण। दबाव या दमन करने का कार्य। हराने का कार्य। नीचा दिखाने का कार्य। ३. असहनशीलता। ४. एक अस्त्र का नाम। ५. स्त्रीप्रसंग। रति। ६. शिव।

धर्मणा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. अपमानना। अवज्ञा। अपमान। हतक। २. दबाने या हराने का कार्य। नीचा दिखाने का कार्य। ३. सतीत्वहरण। ४. संभोग। रति।

धर्मणि—संज्ञा स्त्री० [सं०] प्रसूती स्त्री। कुलटा [को०]।

धर्मणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] प्रसूती स्त्री। कुलटा।

धर्मणीय—वि० [सं०] धर्मण के योग्य।

धर्मित^१—वि० [सं०] १. जिसका धर्मण किया गया हो। दबाया या दमन किया हुआ। परिभूत। हराया हुआ। २. जिसे नीचा दिखाया गया हो। अपमानित।

धर्मित^२—संज्ञा पुं० १. रति। मैथुन। २. अभिमान [को०]। ३. असहिष्णुता [को०]।

धर्मिता—संज्ञा स्त्री० [सं०] कुलटा। व्यभिचारिणी स्त्री [को०]।

धर्षी—वि० [सं० धर्षन्] [वि० क्री० धर्षणी] १. धर्वण करनेवाला। २. धर दवानेवाला। आक्रमण करनेवाला। दबोचनेवाला। ३. हरानेवाला। ४. नीचा दिखानेवाला। ५. अपमान करनेवाला। ५. संभोग करनेवाला (क्री०)।

धलंङ—संज्ञा पुं० [सं० धलएङ्] धंकोल का पेड़। डेरा।

धव—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक जंगली पेड़ जिसकी पत्तियाँ घमकव या शरीफे की पत्तियों जैसी होती हैं। उ०—कुतक खिदर धव काठरा, विदर पञ्चावण वेस।—बाँकी०. ग्रं०, भा० २, पृ० ८६।

विशेष—इसकी छाल सफेद और चिकनी तथा होर की लकड़ी बहुत कड़ी और चमकीली होती है। फल छोटे छोटे होते हैं। इसकी कई जातियाँ होती हैं जो हिमालय की तराई से लेकर दक्षिण भारत तक पाई जाती हैं। बड़ी जाति का जो पेड़ होता है उसे घीरा या भाकली कहते हैं। इसकी लकड़ी बहुत भजबूत होती है और नाव, लेनी के सामान आदि बनाने के काम में आती है। कोयला भी इसका बहुत भस्त्रा होता है। पत्तियों से चमड़ा सिझाया और कमाया जाता है। इसके पेड़ से एक प्रकार का गोबर निकलता है जिसे छोट छापनेवाले काम में लाते हैं। छोटी जाति का पेड़ विष्णु पर्वत पर तथा दक्षिण भारत की ओर होता है। धव के नाम से प्रायः यही अधिक प्रसिद्ध है और दवा के काम में आता है। वैद्यक में धव चरचरा कसेला, कफवातनाशक, पित्तनाशक, शीपन, रुचिवर्धक और पांडुरोग को दूर करनेवाला माना जाता है। पत्ती, फल और जड़ जीनों दवा के काम में आते हैं।

पर्या०—पिशाचवृक्ष। शकटाक्ष। घुरंधर। टड़तर। गोर। कपाय। मधुरत्वक्। शुष्कांग। पांडुवर। धवल। पांडुर। घट। नदितर। स्थिर। पीतफल।

२. पति। स्वामी। जेठे, माधव। ३. पुरुष। मर्द। ४. धूर्त। आदमी। ५. एक वसु का नाम।

धवई—संज्ञा स्त्री० [सं० धातकी, धावनी] एक पेड़ जो हिमालय से लेकर सारे उत्तरीय भारत में अधिकता से होता है। दक्षिण में यह कम मिलता है। इसे धाय भी कहते हैं।

विशेष—इसकी पत्तियाँ बनार की पत्तियों से मिलनी बुलती पर कुछ गीलापन लिए और खुरदुरी होती हैं। फूल लाल रंग के होते हैं और दवा तथा रंगाई के काम में आते हैं। ये फूल लेश्वर से बसंत तक लगते हैं और इकट्ठे करके सुखाए जाते हैं। प्रवर रोग में वैद्य लोग इन फूलों का काड़ा देते हैं। छाल भी दवा के काम में आती है। वैद्यक में धवई या धाय चरचरी, शीतल, कसेली, मदकारक, कड़ई, रक्तप्रवाहिका, तथा पित्त, तृषा विसर्प व्रण, कुमि और अतिसार को दूर करनेवाली मानी जाती है। पर और धूलों की अपेक्षा फूलों में अधिक गुण कहा जाता है। धवई के पेड़ से एक प्रकार का गोबर भी निकलता है।

पर्या०—धाय। धातकी। ताम्रपुष्पी। धात्री। धावनी। धातु-५-२७

पुष्पिका। वहिपुष्पी। अग्निज्वाला। सुमिता। पार्वती। कुमुदा। सीधुपुष्पी। कुंवरा। मासवासिनी। गुच्छपुष्पी। बल्लिशिखा इत्यादि।

धवणि^(५)—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'धवनी'। उ०—धवणि धवती रह गई, बुझि गये अंगार।—कबीर ग्रं०, पृ० ७५।

धवन^(५)—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'धावन'। उ०—पृथिवी रमन धवन नहीं करिया। पैठि पताल नहीं बलि छलिया।—कबीर बी० पृ० २६१।

धवना^(५)—क्रि० सं० [हि० धौकना] धौकना। उ०—धवणि धवती रहि गई बुझि गए अंगार।—कबीर ग्रं०, पृ० ७५।

धवनी^१—संज्ञा स्त्री० [सं० धमनी] लोहारों की धौकनी। भाषी। उ०—भट्टो मोह कुमानु रवि धवनि स्वास मद दाव। निसि दिन धन दरवी बरप कम फुट काल लोहाव।—(शब्द०)।

धवनी^२—संज्ञा स्त्री० [सं०] मालिपगर्गी। सरिखन।

धवर^१—संज्ञा पुं० [सं० धवन] एक पक्षी जिसका कंठ लाल और सारा शरीर सफेद होता है।

विशेष—भावप्रकाश में धवल पक्षी का मांस बातजन बताया गया है।

धवर^(५)—वि० [सं० धवल] सफेद। उजला।

धवरहर—संज्ञा पुं० [सं० धवल + गृह] खंभे की तरह ऊपर दूर तक गया हुआ मकान का एक भाग जिसपर चढ़ने के लिये भीतर सीढ़ियाँ बनो हों। धरहरा। मोनार। उ०—चढ़ि धवरहर विलोकि दक्षिण दिशि धूम धौ पथिक कहाँ ते आये वे हैं।—बुलसी (शब्द०)।

धवरा^१—वि० [सं० धवल] [वि० क्री० धवरी] उजला। सफेद।

धवराना^(५)—क्रि० सं० [१] स्नान पिलाना। उ०—पेट घरे जायो पेछे, धवरायो मल धोय।—बाँकी० ग्रं०, भा० २, पृ० ३०।

धवराहर—संज्ञा पुं० [हि० धवरहर] दे० 'धवरहर'। उ०—सात खंड धवराहर साजा।—जायसी (शब्द०)।

धवरी^१—वि० क्री० [हि० धवरा] सफेद। उजली।

धवरी^२—संज्ञा स्त्री० १. धवर पक्षी की मादा। २. सफेद रंग की गाय।

धवल^१—वि० [सं०] १. श्वेत। उजला। सफेद। २. निर्मल। भ्रूकाभक। ३. सुंदर। मनोहर।

धवल^२—संज्ञा पुं० १. धव का पेड़। २. चीनिया कपूर। ३. सिंदूर। ४. सफेद मिर्च। ५. धवर पक्षी। सफेद परेवा। ६. भारी बेल। महोष्ण। उ०—भू वृषु गणपत नाम ले, जोति धवलो ज्यार।—बाँकी ग्रं०, भा० १, पृ० ३७। ७. क्षप्य छंद का ४५वाँ भेद। ८. अर्जुन वृक्ष। ९. श्वेत कुष्ठ। सफेद कीड़। १०. एक राग जो भरत के मत से हिंडोल राग का घाठवाँ पुत्र माना जाता है। ११. सफेद रंग। श्वेत वर्ण (क्री०)।

धवल^(५)—संज्ञा पुं० [सं०] महल। आराम करने का स्थान। निवास। उ०—गुरु वारं सुभ जोमं। राजा संपन्न धवल ममभेनं।—पृ० रा०, २४। २८२।

धवलकोटी—संज्ञा स्त्री० [सं० धवलकोटिन्] वैश्यों की एक जाति ।
धवलगिरि—संज्ञा पुं० [सं०] एक पर्वत का नाम । धवलागिरि ।
धवलगृह—संज्ञा पुं० [सं०] १. सूत्र से पुता हुआ ऊँचा भवन । २. महल [को०] ।
धवलता—संज्ञा स्त्री० [सं०] सफेदी । उजलापन ।
धवलत्व—संज्ञा पुं० [सं०] सफेदी । उजलापन ।
धवलना—क्रि० प्र० [सं० धवल] उज्ज्वल करना । निखारना । चमकाना । प्रकाशित करना । उ०—स्वामिकाज करिहों रन-रारी । जस धवलिहों भुवन दस चारी ।—तुलसी (शब्द०) ।
धवलपत्र—संज्ञा पुं० [सं०] १. शुक्ल पत्र । उजला पत्र । २. हंस (जिसके पर सफेद होते हैं) ।
धवलमृत्तिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] खरिया मिट्टी । दुदी ।
धवलश्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक रागिनी जिसमें पंचम और गांधार वर्जित हैं ।
धवलहर—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'धवरहर' । उ०—धणी बिहूँणा धवलहर हहि डहि डेर धियाह ।—राम० धर्म०, पृ० ६८ ।
धवलांग—संज्ञा पुं० [सं० धवलाङ्ग] हंस ।
धवला—वि० स्त्री० [सं०] सफेद । उजली ।
धवला—संज्ञा स्त्री० १. सफेद गाय । २. गोर वणुंवाला स्त्री (को०) ।
धवला—संज्ञा पुं० [सं० धवल] सफेद वेल ।
धवला—संज्ञा पुं० [देश०] लट्ठा । उ०—जाला की भीसी धवली, धवला में मीठा मसाला ।—पोद्दार अभि० संग्र०, पृ० १२५ ।
धवला—संज्ञा पुं० [सं० धवल] १. सफेदी । श्वेतता । २. बुद्धावस्था । उ०—जब जीवन जमी धवला प्राप्ति तब कर बैठती ।—सुंदर० संग्र०, भा० १, पृ० २३६ ।
धवलाई—संज्ञा स्त्री० [सं० धवल + भाई (प्रत्य०)] सफेदी । उजलापन ।
धवलागिरि—संज्ञा पुं० [सं० धवल + गिरि] हिमालय पहाड़ की एक प्रख्यात चोटी ।
धवलित—वि० [सं०] १. जो सफेद किया गया हो । जैसे, सुधार-धवलित पुत्र । २. जो साफ ऋतु किया गया हो ।
धवलिमा—संज्ञा पुं० [सं० धवलिमा] १. सफेदी । श्वेतता । २. पीलापन । पाँच बरुं [को०] ।
धवली—संज्ञा स्त्री० [सं०] सफेद गाय । २. एक रोग जिसमें बाल सफेद हो जाते हैं । ३. सफेद मित्र ।
धवलीकृत—वि० [सं०] जो सफेद किया गया हो ।
धवलीभूत—वि० [सं०] जो सफेद हुआ हो ।
धवलित्यल—संज्ञा पुं० [सं०] कुम्भ ।
धवस—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'धवसा' । उ०—यह कहि युकार धवसन लगिय सत्तर सहस्र पयानिधय ।—राम०, पृ० १३४ ।
धवा—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'धव' ।
धवायक—संज्ञा पुं० [सं०] वायु ।

धवान—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'धुप' । उ०—धवान है दवान की कृपान हीय सज्जियो ।—सुजान०, पृ० १० ।
धवाना—क्रि० प्र० [हि० धावना का प्रे० रूप] दौड़ाना । उ०—(क) तहाँ सुधन्वा रथहि धवाई । अर्जुन दल बानन भरि लाई ।—रघुराज (शब्द०) । (ख) तिनके काज महोर पठाए । विलस करहु जिनि सुरत धवाए ।—सूर (शब्द०) ।
धवित्र—संज्ञा पुं० [सं०] हिरन के चमड़े का पंखा [को०] ।
धस—संज्ञा पुं० [हि० धंसना (= पैठना)] १. जल आदि में प्रवेश । डुबकी । गोता । उ०—(क) जो पथ मिला महेसहि खेद । भयो समुद मोही धस लेई ।—जायसी (शब्द०) । (ख) जम धस लीन्ह समुद मरजीया ।—जायसी (शब्द०) । (ग) तेहि का कहिय रहन कहं जो है प्रीतम लाग । जो बहि सुनै लेइ धस, का पानी का भाग ।—जायसी (शब्द०) ।
क्रि० प्र०—लेना ।
 २. एक प्रकार की जमीन या मिट्टी जो भुरभुरी होती है ।
धसक—संज्ञा स्त्री० [अनु०] १. ठन ठन शब्द जो सूखी खासी में गले से निकलता है । २. सूखी खाँसी । ठमक ।
धसक—संज्ञा स्त्री० [हि० धसकना] किसी के लाभ या बढ़ती को देख दुःख से दब जाने की वृत्ति । डाह । ईर्ष्या ।
धसक—संज्ञा स्त्री० [हि० धसकना] १. धसकने की क्रिया या भाव । २. डर । भय । दहशत । जैसे,—उनके मन में कुछ धसक बैठ गई ।
धसकन—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'धसक' ।
धसकना—क्रि० प्र० [हि० धंसना] १. नीचे को धंस जाना । नीचे को खसक जाना । दब जाना । बैठ जाना । उ०—(क) जीवन पंडू रेत में नए खोज या द्वार । प्रागे उठि पाछे धसकि रहे नितंबन भार । लक्ष्मणसिंह (शब्द०) । (ख) तजो धीर धरति धरनिधर धसकत धरधर धीर भार महि न सवतु है ।—तुलसी (शब्द०) । २. किसी का लाभ या बढ़ती देख दुःख से दबना । डाह करना । ईर्ष्या करना ।
धसकना—क्रि० प्र० [हि० धंसना] मन में भय उत्पन्न होना । जो दहलना । उ०—गवनचार पदमावति रूना । उठा धसकि जिउ धी सिर घुना ।—जायसी (शब्द०) ।
धसका—संज्ञा पुं० [हि० धसक] चौपायों का एक रोग जो फेफड़ों में होता है । यह रोग छून से फैलता है ।
धसना—क्रि० प्र० [सं० धवसन] ध्वस्त होना । नष्ट होना । भिटना । उ०—निज घातम घजान ते है प्रतीत जग खेद । धरी मुता के बोध ने यह आहत मुभि वेद ।—निश्चल (शब्द०) ।
धसना—क्रि० प्र० [हि० धंसना] दे० 'धंसना' । उ०—उनके मन में जग जय धसका । उनके हग से कुल भय धसका ।—धर्चना, पृ० ४७ ।
धसनि—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'धंसनि', 'धसन' ।

धसमसकना(५)—[हि० धसना + मसकना] धसमसाना । काँपना ।
उ०—धसमसक धरणी कसक कूरम, ससक नासा सेस ।—
रघु० क०, पु० २२० ।

धसमसाना(५)—क्रि० प्र० [हि० धंसना] धंस जाना । धरती में
समाना । उ०—मेरु धसमसे समुद्र सुखाई ।—जायसी (शब्द०) ।

धसरना—क्रि० प्र० [हि० धसना का घनु०] धंसना । प्रवेश करना ।
उ०—बर बारन ज्यों जल में धसरे । सत सत घनु चहुँ दिशि
पय पसरे ।—नद० प्र०, पु० २८० ।

धसान—संज्ञा स्त्री० [हि० धंसना] दे० 'धंसान' ।

धसान—संज्ञा स्त्री० [सं० धसानं] एक छोटी नदी जो पूरबी
मानवा और बुंदेलखंड से होकर बहती है ।

विशेष—पूरबी मालवा प्राचीन काल में दशाणं देश कहलाता
था और यह नदी भी उसी नाम से प्रसिद्ध थी ।

धसाना—क्रि० प्र० [हि० धंसाना] दे० 'धंसाना' ।

धसाव—संज्ञा पु० [हि० धंसाव] दे० 'धंसाना' ।

धसोरा(५)—संज्ञा पु० [?] दोष ग्रन्थाय । धधली । उ०—हरे धन
विराना धसोरा लगावे ।—धरनो० पु० ६ ।

धह(५)—क्रि० वि० [सं० धावन्] दौड़कर । उ०—धह मंगि धंमि
मंगल पवन । सबे होइ जोजन समय ।—पु० रा०, २५।५३ ।

धहधहाना—क्रि० प्र० [घनु०] धधकना । उ०—हाँ धब तक एक
कलेजे में दुख का आग धहधहा रही है, अब तक एक जन
भी आँसों से प्रसू नहुता है, वह देवबाला के लिये बावला
बन रहा है ।—टेठ०, पु० ७६ ।

धहलना(५)—क्रि० प्र० [हि० दहलना] दहलना । बरना । उ०—
हम उभट कमला कदम आयो, पुरी लंक प्रजाल । जो लंकाल
जो लंकाल कपडर धहलियो लंकाल । रघु० क०, पु० १६४ ।

धाँधा—संज्ञा स्त्री० [सं० धान्धा] इलायची ।

धाँक—संज्ञा पु० [देश०] एक जंगली ज.ति जिसको रहत सहन
भीलों से बहुत कुप्य मिलती चुनती है ।

धाँव(५)—संज्ञा पु० [हि० धाम] उर्मग । उ०—रिणवास पयारे
सुर कत्र मारे अग प्रपार धाँव धरे ।—रघु० क०, पु० २३५ ।

धाँवड़—संज्ञा पु० [देश०] १. एक घनाय जंगली जाति जो विषय
और केमोर पहाड़ियों पर रहती है । २. एक जाति जो
कुएं और तालाब खोदने का काम करती । उ०—अब कत
धाँवड़ देखिभोय जाइ लें । गोर मारि मिसिमल कए पाइलें ।
—कीर्ति०, पु० ६० ।

धाँगर—संज्ञा पु० [हि०] दे० 'धांगड़' ।

धाँदल(५)—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'धाँदल' । उ०—मुस्का पो चड़
के दुश्मन धाँदल मँधाया देखो ।—दक्खिनी०, पु० २६६ ।

धाँधना—क्रि० प्र० [सं०] १. बंद करना । भेडना । उ०—(क)
बारण पासाहु अगन बाँधो । राख्यो ताहि कोठरी धाँधो ।—
रघुराज (शब्द०) । (ख) पुनि लकरी पट अंगनि बाँधो ।
आवि लगायो कोठरि धाँधो ।—कबीर (शब्द०) । २. बहुत
अधिक खा लेना । दुसना ।

धाँधल—संज्ञा स्त्री० [घनु०] १. ऊधम । उपद्रव । नटखटी ।

क्रि० प्र०—मचाना ।

२. फरेब । धोखा । दगा । ३. बहुत अधिक जरदो । जैसे,—तुम
तो धाँधल हो खाने के लिये धाँधल मचाने लगते हो ।

क्रि० प्र०—मचाना ।

धाँधलपन—संज्ञा पु० [हि० धाँधल + पन (प्रत्य०)] १. पाजीपन ।
भरारत । २. धोखेबाजी । दगाबाजी ।

धाँधला(५)—संज्ञा पु० [हि०] दे० 'धाँधल'—२ । उ०—धारे ऊहड़
धाँधला साम तणें छन सार । रा० क०, पु० ७१ ।

धाँधली—संज्ञा स्त्री० [हि० धाँधल] १. गड़बड़ी । अव्यवस्था । २.
धोखेबाजी । ३. मनमानी । ४. घनाचार । उपद्रव । ५.
शीघ्रता । जल्दबाजी ।

धाँधली—वि० १. ऊधम करनेवाला । उपद्रवी । २. धूर्त ।
धोखेबाज ।

धाँधली—वि० [हि० धाँधल + ई (प्रत्य०)] १. उपद्रवी । शरीर ।
पाजी । नटखट । २. धोखेबाज । दगाबाज ।

धाँधल—संज्ञा पु० [हि०] दे० 'धाम' । उ०—अवसथ, वसति, व
आवसति, धाम, कुंज सुषवाम ।—नंद० प्र०, पु० १०८ ।

धाँय—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'धाय' ।

धाँस—संज्ञा स्त्री० [घनु०] सूखे तंबाकू या भिन्न आदि की तेज गंध
जिससे खाँसी आने लगती है ।

धाँसना—क्रि० प्र० [घनु०] पशुओं का खाँसना ।

धाँसी—संज्ञा स्त्री० [घनु०] घोड़े की खाँसी ।

धाँ—संज्ञा पु० [सं०] १. ब्रह्मा । २. वृद्धमति ।

धाँ—वि० धारक । धारण करनेवाला ।

धाँ—प्रत्य० तरह । मति । प्रकार । जैसे, नवधा भक्ति । उ०—
देखि देखी सबे कोटिधा के मनो । जीव जीवेश के बीच माया
मनो ।—केशव (शब्द०) ।

धाँ—संज्ञा पु० [सं० धेवन] मंगल में धेवन शब्द या स्वर का
संकेत ।

धाँ—संज्ञा पु० [घनु०] तरबे का एक बीन । जैसे, धाँ धाँ धिनता ।

धाँ—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'धाय' ।

धाँ—संज्ञा पु० [हि०] दे० 'धव' ।

धाँ—संज्ञा स्त्री० [हि० धाय] दे० 'धाय' । उ०—हो तो धाँ
तिहारे सुन की मया करत हो रहियो ।—गोदर अमि० प्र०,
पु० १५७ ।

धाँ—संज्ञा पु० [सं० धव] धर का पड़ । उ०—राजति है यह ज्यों
कुसकन्या । धाँ विराजति है मंग पन्या ।—केशव (शब्द०) ।

धाँ—संज्ञा स्त्री० [हि० धाय] दे० 'धाय' ।

धाँ—संज्ञा पु० [सं० धाव] नाच का एक भेद । उ०—बहु उडारति
तिरंगपति पड़ाल । अब लाग धाँ रायड रंगाल ।—केशव
(शब्द०) ।

धाऊ^१—संज्ञा पुं० [सं० धावन] वह आदमी जो आवश्यक कार्यों के लिये बीड़ाया जाय। हरकारा। उ०—नाऊ बारी महर सब धाऊ धाय समेत। नेमचार पाए धमित रह्यो जामु जस हेत।—रघुराज (शब्द०)।

धाऊ^२—संज्ञा पुं० [सं० धातकी] धव का पेड़।

धाक^१—संज्ञा पुं० [सं०] १. धव। २. घाहारा। भोजन। भात। ३. धस। धनाज। ४. स्तम्भ। खंभा। ५. आघार। ६. होज (की०)। ७. ब्रह्मा (की०)।

धाक^२—संज्ञा की० १. रोब। दबदबा। धातंक। उ०—(क) धरम धुरंधर धरा में धाक धाए ध्रुव ध्रुव सों समुद्रत प्रताप सब काल है।—रघुराज (शब्द०)। (ख) महाधीर क्षत्रपाल नंदराय भाव सिंह तेरी धाक भरिपुर जात मय मोय से।—मतिराम (शब्द०)।

मुहा०—धाक जमना—प्रभाव होना। रोब या दबदबा होना। धाक बांधना—रोब या दबदबा होना। धातंक छाना। जैसे,—शहर में उसके बोलने की धाक बंध गई। धाक बांधना = रोब जमाना। जैसे,—ये जहाँ जाते हैं वहाँ धाक बांध देते हैं। धाक होना = धातंक होना। प्रभाव होना। रोब होना। उ०—देख देख में हमारी धाक थी।—चुभते० (भू०), पृ० २।

२. प्रसिद्धि। शोहरत। शोर। उ०—सूरदास प्रभु खात ग्याल संग ब्रह्मलोक यह धाक।—सूर (शब्द०)।

धाक^३—संज्ञा पुं० [हि० ठाक] ठाक। पलाश।

धाकना^१—क्रि० प्र० [हि० धाक + ना (प्रत्य०)] धाक जमाना। रोब जमाना। उ०—दास तुलसी के बिरुद्ध बरतन बिदुष नीर बिरुद्ध बर बैरि धाके।—तुलसी (शब्द०)।

धाकर^१—संज्ञा पुं० [दे०] १. काव्यकुञ्ज और सरस्वती नद्याणां में वह ब्राह्मण जो प्रसिद्ध कुलों के धर्मगत न हो और हमसे नीचा समझा जाता हो। २. राजपूतों की एक जाति जो आगरे के आसपास पाई जाती है। ३. पंजाब का एक धान जो बिना पानी के पैदा होता है।

धाकरा^२—वि० दोगला।

धाका^१—संज्ञा की० [हि० धाक] दे० 'धाक'।

धाखा^१—संज्ञा पुं० [दे०] पलाश का पेड़।

धागा^१—संज्ञा पुं० [हि० तागा] बटा हुआ सूत। डोग। तागा।

यौ०—धागा मंडा—तंत्र मंत्र से पवित्र किया हुआ वह डोरा जो हाथ की कलाई में बांधा जाता है। उ०—उसके माना पिता ने बड़े बड़े गुणी तथा वैदिकों को बुलाकर धागा मंडा बांधवाया।—कबीर मं०, पृ० ४७७।

मुहा०—धागा भरना = कपड़े के छेद आदि में तागे भरकर उसे रफू करना। धागे धागे करना = किसी कपड़े के बहुत ही छोटे छोटे टुकड़े करना। बिधड़े बिधड़े करना।

धाङ्गांगी—संज्ञा पुं० [अनु०] मृदंग का धमाका। उ०—शोर हँसी हुल्लड़, हुल्लड़। धमक रहा धाङ्गांग मृदंग।—ब्राम्हा, पृ० ४६।

धाजा^१—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'ध्वजा'। उ०—दिवि प्रिस्टि धाजा सेत। सब मर्म होत निकेत।—सं० दरिया, पृ० ८।

धाङ्गा^१—संज्ञा की० [दे०] १. दे० 'डाङ्'। २. दे० 'दहाङ्'। ३. दे० 'ठाङ्'।

मुहा०—धाङ् मारकर = जोर से चिल्लाकर।

धाङ्^२—संज्ञा की० [हि० धार] १. डाकुओं का आक्रमण।

क्रि० प्र०—पड़ना।

२. जल्दी। शीघ्रता।

मुहा०—धाङ् पड़ना = बहुत जल्दी होना। बहुत शीघ्रता होना। जैसे,—ऐसी कीन सी धाङ् पड़ी है जो अभी उठकर चले।

३. लुटेरों का समूह। उ०—धाङ् पुकार पड़ लाखि धाङ्। रवि उदय अस्तलग पंच राहु।—रा० क०, पृ० ७३। ४. जल्था। झुंड। गिरोह। जैसे, धाङ् की धाङ् बंदर घा गए।

धाङ्ना^१—क्रि० प्र० [हि० दहाङ्ना] दे० 'दहाङ्ना'।

धाङ्ना^२—क्रि० प्र० [हि० धाङ्] डाका मारना। उ०—दिन दिन धाङ् बीड़ती, दूधे सविण मास।—राम० धर्म०, पृ० २५६।

धाङ्बी^१—संज्ञा पुं० [हि० धाङ्] डाकू। उ०—रामदास जी महाराज के वास्ते एक दुष्ट धाङ्बी ने बुरी नज़र से देखा कि कहीं चले गए इनको रास्ते के बीच ही सोस लेऊंगा।—राम० धर्म०, पृ० २८८।

धाङ्सा^१—संज्ञा की० [हि०] दे० 'ढारस'।

धाङ्गा^२—संज्ञा की० [हि०] दे० 'धाङ्'—१। उ०—उ०—परा सखि रात को धाङ्गा।—घट०, पृ० ३०६।

धाङ्गो—संज्ञा की० [हि० धाङ्] भारी लुटेरा या डाकू।

धाणक—संज्ञा पुं० [सं०] १. प्राचीन काल का एक प्रकार का परिमाण। २. एक अनार्य छोटी जाति।

धाणा^१—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'धाङ्'। उ०—कर कर बाड़ा कपटारा धाणा पाड़ण धाम।—बांकी० प्र०, भा० २, पृ० ७।

धात^१—संज्ञा की० [सं० धातु] दे० 'धातु'। उ०—मर्दनोक्त मर्दन करै, बड़े धात तन बेल।—पृ० रा०, १। १३०।

धात^२—संज्ञा की० [सं० धातु (वैद्यक)] उ०—इस धात उज्ज सरस कीता आखिर फिर पञ्चताया।—दक्खिनी०, पृ० ५५।

धातको—संज्ञा की० [सं०] १. धव का फूल। २. एक प्रकार का झाड़ जो मारे भारत में होता है और जिसके फूलों का व्यवहार रंगाई के काम में होता है।

विशेष—साल में एक बार इसके पत्ते झड़ जाते हैं।

धातविक—वि० [सं०] १. धातु से निर्मित। २. धातु से संबंधित [की०]।

धाता^१—संज्ञा पुं० [सं० धातृ] १. ब्रह्मा। २. विष्णु। ३. शिव। महादेव। ४. भृगुमुनि के पुत्र का नाम। ५. ४६ वायुओं में से एक। ६. शेषनाग। ७. १२ सूर्यों में से एक। ८. ब्रह्मा के एक पुत्र का नाम। ९. विधाता। विधि। १०. साठ संवत्सरों में से एक। ११. टगण के आठवें भेद की संज्ञा (।।।।।)। १२।

सहा (की०) । १३. रक्षक । धारक (की०) । १४. धारमा (की०) ।
१५. सतषि (की०) । १६. जार । उपपति (की०) । १७.
प्रबंधक । व्यवस्थापक (की०) । १८. पोषक (की०) ।

थी०—धातापुत्र = सनत्कुमार ।

धाता^२—वि० १. पालक । पालनेवाला । २. रक्षक । रक्षा करने-
वाला । ३. धारण करनेवाला ।

धातापुष्पिका—संज्ञा स्त्री० [सं० धातु + पुष्पिका] धातुकी (की०) ।

धातापुष्पी—संज्ञा स्त्री० [सं० धातु + पुष्पी] धातुकी (की०) ।

धातु^१—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. वह मूल द्रव्य जो अपारदर्शक हो, जिसमें
एक विशेष प्रकार की भ्रमक हो, जिसमें से होकर ताप और
विद्युत् का संचार हो सके तथा जो पीटने प्रथवा तार के रूप
में खींचने से खंडित न हो । एक खनिज पदार्थ ।

विशेष—प्रसिद्ध धातुएँ हैं—सोना, चाँदी, ताँबा, लोहा, सीसा
और रंगी । इन धातुओं में गुरुत्व होता है, यहाँ तक कि रंगी
जो बहुत हलका है वह भी पानी से सात गुना अधिक घना या
भारी होता है । ऊपर लिखी धातुओं में केवल सोना,
चाँदी और ताँबा ही विशुद्ध रूप में मिलते हैं; इससे इन
पर बहुत प्राचीन काल में ही लोगों का ध्यान गया । कहीं
कहीं, विशेषतः उत्कापिडों में, लोहा भी विशुद्ध रूप में मिलता
है । युरोपियनों के जाने के पहले अमेरिकीवाले उत्कापिडों के
लोहे के प्रतिरिक्त और किसी लोहे का व्यवहार नहीं जानते
थे । सीसा और रंगी विशुद्ध धातु के रूप में प्रायः नहीं
मिलते, बल्कि खनिज पिंडों को गलाकर साफ करने से निकलते
हैं । रंगी, सीसा, जस्ता आदि शुद्ध रूप में न मिलनेवाली
धातुओं का ज्ञान लोगों को कुछ काल पीछे, जब वे मिश्र धातु
आदि बनाने लगे, तब हुआ । बहुत दिनों तक लोग पीतल तो
बना लेते थे पर ज्ञात की अच्छी तरह नहीं जानते थे । यही
हाल रंगी का भी सम्झिए । पारे को भी लोग बहुत दिनों से
जानते हैं । यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है क्योंकि पारा
शुद्ध धातु के रूप में भी बहुत मिलता है । पारा अर्धद्रव
अवस्था में मिलता है इसी से युरोप में बहुत दिनों तक लोग
इसे धातुओं में नहीं गिनते थे । पीछे भाग्य हुआ कि वह
सर्दी से जम सकता है और उसका पत्तर बन सकता है ।
मूल धातुओं के मोग से मिश्र धातुएँ बनती हैं—जैसे ताँबे और
रंगी के योग के काँसा आदि । इनके प्रतिरिक्त अब धातु-
मिनियम, प्लेटिनम, निकल, कोबाल्ट आदि बहुत सी नई
धातुओं का पता लगा है । इस प्रकार धातुओं की संख्या अब
बहुत हो गई है । रेडियम नामक धातु का पता लगे अभी थोड़े
ही दिन हुए हैं ।

यद्यपि साधारणतः धातु उन्हीं द्रव्यों को कहते हैं जो पीटने से
बिना खंडित या चूर हुए बढ़ सकें, तथापि अब धातु शब्द के
अंतर्गत चूर होनेवाले द्रव्य भी लिए जाते हैं और अर्ध-
धातु कहलाते हैं, जैसे संक्षिया, हरताल, मुरमा, सज्जीखार
इत्यादि । इस प्रकार क्षार उत्पन्न करनेवाले मूल पदार्थ
भी धातु के अंतर्गत आ गए हैं । ऊपर कहा जा चुका है कि
धातुओं की गणना मूल द्रव्यों में है । प्राधुनिक रसायन

शास्त्र में मूल द्रव्य उसको कहते हैं जिसका विश्लेषण
करने पर किसी दूसरे द्रव्य का योग न मिले । इन्हीं मूल द्रव्यों
के अणुयोग से जगत् के भिन्न भिन्न पदार्थ बने हैं । आज तक
१०० से अधिक मूल द्रव्यों का पता लग चुका है जिनमें से
गंधक, फास्फोरस, अम्लजन, उज्जन, इत्यादि ११ की गणना
धातुओं में नहीं हो सकती बाकी सब धातु ही माने जाते हैं ।

तपे हुए लोहे, सीसे, ताँबे आदि के साथ जब अम्लजन नामक
वायव्य द्रव्य का योग होता है तब वे विद्रुत हो जाते हैं
(मुरबा इसी प्रकार का विकार है) । विद्रुत होकर जो
पदार्थ उत्पन्न होता है, उसे भस्म या धार कह सकते हैं,
यद्यपि वैद्यक में प्रचलित भस्म और हमारे प्रकार से प्राप्त
द्रव्यों को भी कहते हैं । देशी वैद्य भस्म, क्षार और लवण में
प्रायः भेद नहीं करते, कहीं कहीं तीनों शब्दों का प्रयोग वे एक
ही पदार्थ के लिये करते हैं । पर प्राधुनिक रसायन में क्षार
और अम्ल के योग से जो पदार्थ उत्पन्न होते हैं उनकी
लवण कहते हैं । इन प्रकार प्रायः वैज्ञानिक व्यवहार में
लवण शब्द के अंतर्गत तृतीया, द्वीरा, कमीर आदि भी आ
जाते हैं । ताँबे के चूर को यदि हम में (जिसमें अम्लजन
रहता है) तथा या गलाकर उदम छोड़ा या गंधक का
तेजाब हाल में तो तेजाब का अम्ल गुग नष्ट हो जाएगा
और इस योग से तृतीया उत्पन्न होगी । अतः तृतीया भी
लवण के अंतर्गत हुआ ।

इधर के वैद्यक के ग्रंथों में सोना, चाँदी, ताँबा, रंगी, लोहा,
सीसा और जस्ता ये सप्त धातु माने गए हैं । सोना, चाँदी,
रूपामासी, तृतीया, रंगी, पीतल, सिद्धर और शिलाजतु ये
सात उपधातु कहलाते हैं । पारे को रस कहा है । गंधक,
इंगुर, अश्रुक, हरताल, मैनमिल, मुरमा, मुहागा, रावटी,
चुबक, फिटकरी, गेरू, आइया, कसाय, खपरिया, बालू,
मुरदासंख, ये सब उपरस कहलाते हैं । धातुओं के भस्म का
सेवन वैद्य लोग अनेक रोगों में करते हैं ।

२. शरीर को धारण करनेवाला द्रव्य । शरीर को बनाए रखने-
वाले पदार्थ ।

विशेष—वैद्यक में शरीरस्थ सात धातुएँ मानी गई हैं—रस,
रक्त, मांस, मेद, अस्थिमज्जा और शुक्र । मुश्रुत में इनका
विवरण इस प्रकार मिलता है । जो कुछ खाया जाता है
उससे जो द्रव रूप में सार बनता है वह रस कहलाता है
और उसका स्थान हृदय है जहाँ से वह शरीर के द्वारा
सारे शरीर में फैला है । यह रस अधिकृत अवस्था में ऐष
(पित्त के कार्य) के साथ मिश्रित होकर लाल रंग का
हो जाता है और रक्त कहलाता है । रक्त से मांस, जो
से मेद, मेद से हड्डी, हड्डी से मज्जा और मज्जा से शुक्र
बनता है । वात, पित्त और कफ की भी धातु संज्ञा है ।

३. बुद्ध या किसी महात्मा की अस्थि आदि जिसे बौद्ध लोग
डिब्बे में बंद करके स्थापित करते थे ।

थी०—धातुगर्भ ।

४. शुक्र । वीर्य ।

मुहा०—धातु गिरना = पेशाब के साथ या यों ही वीर्य गिरने का रोग होना । प्रमेह होना ।

धातु^१—संज्ञा पुं० १. भूत । नख । उ०—जाके उदित नचत नाना विधि गति अपनी अपनी । मुरदास सब प्रकृत धातुमय बति विचित्र मजनी ।—गूर (शब्द०) ।

विशेष—पंचभूतों और पंचतन्मात्र की भी धातु कहते हैं । बीद्यों में अष्टाह धातुएँ मानी गई हैं—बभ्रुधातु, धाणुधातु, श्रोत्रधातु, जिह्वाधातु, कायधातु, स्पर्शधातु, शब्दधातु, गंधधातु, रसधातु, स्वादध्वधातु, चक्षुर्विज्ञानधातु, श्रोत्रविज्ञान धातु, प्राणविज्ञान धातु, त्रिधाविज्ञानधातु, कायविज्ञानधातु, मनोधातु, धर्मधातु, मनोविज्ञानधातु ।

२. शब्द का मूल । क्रियावाचक प्रकृति । वह मूल त्रिभसे क्रियाएँ बनती हैं या बनती हैं । जैसे, संस्कृत में भू, कृ, पृ इत्यादि (व्याकरण) ।

विशेष—यदि किसी भाव या धातुओं की कल्पना नहीं की गई है, तथापि जो कार्य हो रहा है, जैसे, करना का 'कर' हँसना का 'हँस' इत्यादि ।

३. परमात्मा ।

धातुकाक्ष—संज्ञा पुं० [सं० धातु + काक्ष] इतिहास में वह युग जब मनुष्य ने अपने शरीर में धातु का उपयोग करना सीखा । धातुयुग । उ०—यह नरकाली पाषाणकाल के उत्तरकाल में स धातुयुग का प्रारंभ गढ़ती ।—प्रा० भा० पृ० (भू०), पृ० १ ।

धातुकाशीश—संज्ञा पुं० [सं०] वसोम ।

धातुकासीस—संज्ञा पुं० [सं०] वसोम ।

धातुकुशल—संज्ञा पुं० [सं०] धातु के कार्य में निपुण (को०) ।

धातुक्षय—संज्ञा पुं० [सं०] १. रोगों का रोग जिससे शरीर क्षीण हो जाता है । २. प्रसूति आदि रोग प्रसव शरीर में बहुत वीर्य निकल जाता है । अथरोग ।

धातुगर्भ—संज्ञा पुं० [सं०] वह कण्टारिडम्बा या पात्र जिसमें बोझ रोग बुझ या घटा हुआ हो, साथ ही महात्माओं के दाँत या हड्डियाँ आदि रखा है । देहगर्भ ।

धातुगोष—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'धातुगर्भ' ।

धातुघ्न—संज्ञा पुं० [सं०] वह पदार्थ जिससे शरीर का धातु नष्ट हो । जैसे, काँची, पारा आदि ।

धातुचैतन्य—वि० [सं०] धातु (वीर्य) का उत्पन्न या चैतन्य करनेवाला । रसमें जोर बल ।

धातुज—संज्ञा पुं० [सं०] जन्म या पर्वण से उत्पन्न जन्म (को०) ।

धातुद्रावक—संज्ञा पुं० [सं०] मोटागा, जिसके चलने से सोना आदि गल जाता है ।

धातुनाशक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'धातुघ्न' ।

धातुप—संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक के अनुसार शरीर में का वह रस या पतला धातु जो भोजन के उपरांत तुरंत ही तैयार होता है और जिससे शेष धातुओं का पोषण होता है ।

विशेष—२० 'धातु' ।

धातुपाक—संज्ञा पुं० [सं० धातु + पाक] शुक्रजन्य एक रोग जिसमें रोग की वृद्धि के साथ साथ बल क्षीण होता जाता है । उ०—धातु पाक बाह्य उत्तरोत्तर रोग की वृद्धि और बल की हानि होकर शुक्रादि धातु सहित मूत्रादिकों का जो पाक होय उसे धातुपाक कहते हैं ।—माधव०, पृ० २८ ।

धातुपाठ—संज्ञा पुं० [सं०] पाणिनि की व्याकरणक पद्धति पर लिखित धातुओं की सूची ।

विशेष—इन धातुओं की रचना सभ्यतः पाणिनि ने ही अपने मूत्रों के परिशिष्ट के रूप में की है ।

धातुपुष्ट—वि० [सं०] वीर्य को गाढ़ा करनेवाला । जिससे वीर्य गाढ़ा होकर बढ़े ।

धातुपुष्टि—संज्ञा स्त्री० [सं०] धातुओं की पुष्टि । धातुपोषण (को०) ।

धातुपुष्पिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] घव का फूल ।

धातुपुष्पी—संज्ञा स्त्री० [सं०] घव का फूल ।

धातुप्रधान—संज्ञा पुं० [हि०] वीर्य ।

धातुभृन्^१—संज्ञा पुं० [सं०] पर्वत । द्वाड़ ।

धातुभृन्^२—वि० जिससे धातु का पोषण हो ।

धातुवेरी—संज्ञा पुं० [सं० धातुवैरिन्] गंधक ।

धातुमत्ता—संज्ञा स्त्री० [सं०] धातुमान् होने का गुण या भाव (को०) ।

धातुमग—वि० [सं०] खनिज पदार्थों से परिपूर्ण । जिसमें खनिज पदार्थ प्रचुर मात्रा में हो (को०) ।

धातुममो—संज्ञा पुं० [सं०] कच्चे धातु को साफ करना, जो ६४ कलाओं के अंतर्गत है । धातुवाद । उ०—सूचिकमें धातुमर्म सूत्र कीड़नोलिह ।—विश्राम (शब्द०) ।

धातुमल—संज्ञा पुं० [सं०] १. वैद्यक के अनुसार कफ, पित्त, पशान, नास्तुर, बाल, मूत्र या कान की मल आदि जिसकी सृष्टि किसी धातु के परिपक्व हो जाने पर उसके बचे हुए निरर्थक अंश या मल से होती है । २. मीसा (को०) ।

धातुमाक्षिक—संज्ञा पुं० [सं०] गोनामक्खी नाम की उपधातु ।

धातुमान्—वि० [सं० धातुमत्] जिसमें या जिसके पास धातुएँ हों (को०) ।

धातुमारिणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] सुहृदा ।

धातुमारी—संज्ञा पुं० [सं० धातुमारिन्] गंधक (को०) ।

धातुयुग—संज्ञा पुं० [सं० धातु + युग] दे० 'धातुकाल' ।

धातुराग—संज्ञा पुं० [सं०] धातुओं से निकला हुआ रंग । जैसे, हंगुर, गेरू, मैन्सिल आदि । उ०—मिय घंग लिले धातुराग सुमनन भूषन विभाग तिलक करनि बधों कही कलानिधान की ।—तुलसी (शब्द०) ।

धातुराजक—संज्ञा पुं० [सं०] शुक्र या वीर्य जो शरीर के सब धातुओं में श्रेष्ठ माना जाता है ।

धातुरेचक—वि० [सं०] वीर्य को बढ़ानेवाला । जो वीर्य को बढ़ाकर निकास दे ।

धातुवर्द्धक, धातुवर्धक—वि० [सं०] वीर्य को बढ़ानेवाला। जिससे वीर्य बढ़े।

धातुवर्द्धक—संज्ञा पुं० [सं०] सोहागा।

धातुवाद्—संज्ञा पुं० [सं०] १. चौमठ कलाओं में से एक, जिसमें कच्ची धातु को साफ करते, तथा एक में मिली हुई-अनेक धातुओं को मलग मलग करते हैं। २. रसायन बनाने का काम। ३. तंबे से सोना बनाना। ४. कीमियागिरी। उ०—धातुवाद निष्पाधि सय सदगुरु लाभ सुगीन। देव वरस कलिकाल में पोषित दुरे समीन।—तुलसी (शब्द०)।

धातुवादी—संज्ञा पुं० [सं० धातुवादिन्] रसायन की सहायता से सोना या चाँदी बनानेवाला। कारंथमी। रसायनी। कीमियागर।

धातुवैरी—संज्ञा पुं० [सं०] धातुवैरिन्। गधक।

धातुशेखर—संज्ञा पुं० [सं०] १. बनीम। २. सीमा।

धातुशोधन—संज्ञा पुं० [सं०] सीमा।

धातुसंज्ञ—संज्ञा पुं० [सं०] सीमा।

धातुसंभव—संज्ञा पुं० [सं० धातुसम्भव] सीमा।

धातुसाम्य—संज्ञा पुं० [सं०] जात, पित्त, कफ की सम्यक् प्रवस्था। अन्ध्या स्वास्थ्य (को०)।

धातुस्तंभक—वि० [सं० धातुस्तम्भक] वीर्य को रोकनेवाला। जिससे वीर्य का स्तंभन हो और वह देर न स्थगित हो।

धातुहन—संज्ञा पुं० [सं०] गंधक।

धातू—संज्ञा स्त्री० [सं० धातु] दे० 'धातु'।

धातूपल—संज्ञा पुं० [सं०] स्वर्ण मिट्टी। खरी। दुधिया गा दुड़ी।

धातुपुत्र—संज्ञा पुं० [सं०] ब्रह्मा के पुत्र सनत्कुमार।

धातुपुष्पिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] धातु के पुष्प।

धातुपुष्पी—संज्ञा स्त्री० [सं०] धातु के पुष्प।

धात्र—संज्ञा पुं० [सं०] धात्री। दत्तक।

धात्रिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] धात्री।

धात्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. माता। माँ। २. वह स्त्री जो किसी शिशु को दूध पिलाने और उसका लाभन पालन करने के लिये नियुक्त की जाय। दाई। उ०—धात्री कहिए आँखें धात्री धात्र बलान।—अनेकार्थ०, पृ० १३६। ३. गायत्री स्वरूपिणी भगवती। ४. तंजा। ५. धात्री। ६. धूमि। पुष्पी। ७. सेना। फौज। ८. गाय। ९. धाया छंद का एक मेढ जिसमें १६ गुरु और १६ सधु मात्राएँ होती हैं।

धात्रीकर्म—संज्ञा पुं० [सं० धात्रीकर्मन्] धाया का काम। दाई का काम (को०)।

धात्रीपत्र—संज्ञा पुं० [सं०] १. तासीस पत्र। २. आँखों की पत्ती।

धात्रीपुत्र—संज्ञा पुं० [सं०] नट। धाया का लड़का।

धात्रीफल—संज्ञा पुं० [सं०] धात्रीला। आमला।

धात्रीविद्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह विद्या जिसकी सहायता से दाह्या गंधवती स्त्रियों को प्रसव कराती और प्रगुता तथा शिशु की

रसा आदि करती हैं। लड़का जनाने और उसे पालने आदि की विद्या।

धात्रेयिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] धात्री। धाय। दाई। (को०)।

धात्रेयी—संज्ञा स्त्री० [सं०] धात्री। धाय। दाई।

धात्वर्थ—संज्ञा पुं० [सं०] धातु से निकलनेवाले (किसी शब्द के) अर्थ। मूल और पहला अर्थ।

धान्वीय—वि० [सं०] १. धातुनिमित्त। २. धातु से संबंधित (को०)।

धाधक हाहू(पु)—संज्ञा पुं० [सं०] कष्ट। पीडा। हाहाकार। उ०—बड़े उ कमठ कहें दाह करह। धाधक या धाधक हाहू।—इंद्रा०, पृ० ६८।

धाधना—वि० [सं०] देखना।

धाधिन—संज्ञा पुं० [सं०] डोलने बाने का एक स्वर या ताल। उ०—उड़ रहा दाँध धाधिन, धाधिन।—आनंद, पृ० ३१।

धानंतर(पु)—संज्ञा पुं० [सं० धानंतरि] दे० 'धानंतरि'। उ०—लखी रूप हरि भगति, धर्म हिंदू धानंतर।—ग० क०, पृ० १८०।

धान^१—संज्ञा पुं० [सं० धान्य] तृण जाति का एक पौधा जिसके बीज की गिनती अर्द्ध अन्न में है। शालि। रोहि।

विशेष—भारतवर्ष तथा आग्नेय विद्या के कुछ भागों में यह जंगली होता है। इसकी बहुत अधिक खेती भारत, चीन, बर्मा, मलाया, अमेरिका (संयुक्त राज्य और कोलम्बिया) तथा थोड़ी बहुत इटली और सोन आदि यूरोप के दक्षिणी भागों में होती है। इसके लिये तर बचीन और गरमी चाहिए। यह संसार के उत्तरी गरम भागों में होता है जहाँ वर्षा अच्छी होती है या मिचाई के लिये पृथ्वी मिनना है। धान की खेती बहुत प्राचीन काल से होनी आ रही है इसी से उसके अनेक भेद हो गए हैं।

अग्नेय में धाना और धान्य शब्द आए हैं। धाना शब्द का अर्थ साधारण न कृता हुवा जो किया है, पर धान्य का अर्थ दूसरा नहीं किया है। इसके धातिरिक्त अयस्वेद, शाखायन आग्नेय, शतपथ आग्नेय, कात्यायन श्रौतम्न इत्यादि में धान्य शब्द का प्रयोग मिलता है। पर कहीं कहीं धान्य शब्द अन्न-मात्र के अर्थ में भी है। गोविन्द पर्वता, वात्सनेय संहिता आदि में त्रीह शब्द बार बार आया है। काण्वजुर्वेद में शुक्ल और कृष्ण त्रीह का उल्लेख है। फारसी में भी 'विहज' शब्द चावल के लिये प्रयुक्त है जो निश्चय ही त्रीह से संबंध रखता है। उग्र १२२ है कि प्राचीन आर्यों को धान का पता उस समय भी था जब उनका विस्तार मध्य एशिया तक था। उनाम २८०० वर्ष पूर्व शिवनग राजा के समय में चीन में एक व्योहार बनाया जाता था जिसमें ५ प्रकार के अन्न की बुवाई आरंभ होती थी। उन पाँच अन्नों में धान का नाम भी है। चीन में धान जंगली भी पाए जाते हैं और धान की खेती भी बहुत दिनों से होती आ रही है।

जापान, चीन, हिन्दुस्तान, बर्मा, मलाया इत्यादि में चावल बहुत खाया जाता है। यद्यपि हममें मान बनानेवाला अंश बहुत कम होता है तथापि गरम देशों के लिये यह अन्न बहुत उपयुक्त होता है।

भारतवर्ष में सबसे अधिक धान बंगाल में होता है। वहाँ इसके तीन मुख्य भेद माने जाते हैं—(१) धामन (अगहनी), जो जेठ आषाढ़ में बोया जाता है, और अगहन पूस में कटता है। (२) धावस (भदई) जो वैशाख जेठ में बोया जाता है और भादों कुषार में कटता है, और (३) जो पूस माघ में बोया जाता और वैशाख जेठ में कटता है। जो धान एक स्थान से उखाड़कर दूसरे स्थान पर लगाकर पैदा किया जाता है उसे जड़हन कहते हैं, क्योंकि वह जाड़े में तैयार होता है। यो तो भिन्न भिन्न स्थानों में धान की बोवाई पूस में लेकर आषाढ़ तक होती है और कटाई जेठ से अगहन तक, पर उत्तरीय भारत में अधिकतर धान आषाढ़ सावन में बोया जाता है। साधारण धान तो भादों कुषार तक तैयार हो जाता है पर जड़हन अगहन में कटता है। महीन चावल के धान अन्ध्र समझे जाते हैं। अन्धी जाति के बड़िया चावल प्रायः जड़हन के ही होते हैं। धान या चावल के बहुत अधिक भेद हैं। सन् १८७२ में अजायबघर में रखने के लिये जो चावलों का संग्रह हुआ था उसमें पाँच हजार प्रकार के चावल बतलाए गए थे। इस संख्या को ठीक न मानकर प्रायो तिहाई भी ले तो भी बहुत भेद होते हैं। महीन सुगन्धित चावलों में बासमती सबसे प्रसिद्ध है। जड़हानया अगहन में बासमती के प्रतिरिक्त लटेरा, रामभोग, रानीकाजर, तुलसीबास मोतीचूर, समुद-फेन, कनकजीरा इत्यादि भी अच्छे चावल माने जाते हैं। साधारण धान भी बहुत प्रकार के होते हैं; जैसे, बगरी, दुडी, साठी, सरया, रामजवाहन इत्यादि। पहाड़ों के बीच की तर जमीन में भी धान अच्छे होते हैं—जैसे, कांगड़े में, हूबो-केश के पास तर्पवन में तथा जूना गाँव में कश्मीर में भी अनेक प्रकार के अच्छे अच्छे चावल होते हैं।

मुहा०—धान का सेत पयार से जानना।—फल अथवा अर्थ में कार्य का बहुतव समाप्ति। उ०—ज्यों कधु भल किए उद-गारत केग। रवि के न धरानो। मुंदरवास प्रसिद्धि दिपायन धान को पत पयार से जानो।—मुंदर० अ०, भा २, पृ० ६३०।

धान^(१)—संज्ञा स्त्री० [सं० धान] दे० 'धान'। उ०—दुख भीनी पंजर हुई। धान से भादई निज्या सरि न्दाण।—बी० रासो, पृ० १७।

धान^(२)—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'धान'। उ०—धान न भावे नींद न प्राये, बिरह सतये कोय।—संतबाणी०, पृ० ७१।

धानक^१—संज्ञा पुं० [सं०] १. धनिया। २. एक रत्ती का चौथाई भाग।

धानक^२—संज्ञा पुं० [सं० धानुक] १. धनुष चलानेवाला। धनुर्धारी।

तीरंदाज। कमनैत। उ०—भौंह धनुष धन धानक दूसर सरि न कराय। गगन धनुक जो उगवे लाजहि सो छवि जाय।—जायसी (शब्द०)। २. धनिया। खई धुननेवाला। ३. एक पहाड़ी जाति का नाम जो पूरब में पाई जाती है।

धानको—संज्ञा पुं० [हि० धानुक] १. धनुर्धर। धनुर्धारी। २. कामदेव (डि०)।

धानख^(१)—संज्ञा पुं० [हि० धनुष] एक विशेष प्रकार का धनुष जिसकी सबाई साढ़े तीन हाथ होती है। उ०—हाथी तहवर खान रो, गो सो धानख भज्ज।—रा० रू०, पृ० ४६।

धानजई—संज्ञा पुं० [हि० धान + जई] एक प्रकार का धान।

धानपान^१—संज्ञा पुं० [हि० धान + पान] विवाह से कुछ ही पहले होनेवाली एक रसम जिसमें वर पक्ष की ओर से कन्या के घर धान और हल्दी भेजी जाती है।

विशेष—जहाँ तिलक होता है वहाँ प्रायः तिलक के बाद यह रसम होती है। इस रसम के उपरांत विवाह संबंध प्रायः पूर्ण रूप से निश्चित हो जाता है।

धानपान^२—वि० दुबला पतला। नाजुक। (बाजारू)।

धानमाली—संज्ञा पुं० [सं०] किसी दूसरे के चनाए हुए अन्न को रोकने की एक प्रिया। उ०—अरु विनीत तिमि मत्तहि प्रसमन तैमहि पार विमाली। खिर बुलित मत पिपु सीमनस धन धानहु धृन माली।—रघुराज (शब्द०)।

धानव^(१)—संज्ञा पुं० [सं० धानुक] दे० 'धानुक'। उ०—धानव पर धानव चढ़ि धाए।—हिंदी प्रेमगाथा०, पृ० २२४।

धाना^१—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. भूना हुआ जो या चावल। बहुरी। २. धनिया। ३. अन्न का कण। खुद्दी। ४. सत्तू। ५. धान। ६. अन्न मान।

धाना^(२)—क्रि० प्र० [सं० धावन] १. बीड़ना। तेजी से चलना। भागना। उ०—धूम श्याम धोरी धन धाए। सेत धुजा बग पति दिखार।—जायसी (शब्द०)।

मुहा०—धाय पूजना = दूर रहना। अलग रहना। हाथ जोड़ना। संबंध न रखना। जैसे,—धाय पूज इस नौकरी से २. कोशिश करना। प्रयत्न करना।

धानाचूर्ण—संज्ञा पुं० [सं०] सत्तू।

धानाभर्जन—संज्ञा पुं० [सं०] अनाज भूनना (क्रि०)।

धानातवर्त—संज्ञा पुं० [सं०] एक नंदर्व का नाम।

धानी^१—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. वह जो धारण करे। वह जिसमें कोई वस्तु रखी जाय। २. स्थान। जगह। जैसे, राजधानी। उ०—समथल ऊँच नीच नहि कतहूँ पूर्ण धर्म धन धानी। सरस सुरस रंजित नीरस हृत् कोसलपति रजधानी।—रघु-राज (शब्द०)। २. पीलू का पेड़। ३. धनिया।

धानी^२—संज्ञा स्त्री० [हि० धान + ई (प्रत्य०)] एक प्रकार का हलका हरा रंग जो धान की पत्ती के रंग का सा होता है। तोतई।

विशेष—यह प्रायः पीले और नीले रंग को मिलाकर बनाया जाता है।

धानी^१—वि० धान की पत्ती के रंग का। हलके हरे रंग का।

धानी^१—संज्ञा स्त्री० [सं० धाना] भूना हुआ जो या गेहूँ।

यौ०—गुड़धानी।

धानी^५—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'धान्य'।

धानी^१—संज्ञा स्त्री० संपूर्ण जाति की एक संकर रागिनी।

धानुक—संज्ञा पुं० [सं० धानुक] १. धनुर्धर। धनुर्धारी। धनुष चलानेवाला। कमनैत। २. एक जाति। इस जाति के लोग प्रायः ब्याह शादी में तुरही आदि बजाते हैं।

धानुर्दण्डिक—संज्ञा पुं० [सं० धानुर्दण्डिक] दे० 'धानुक' [को०]।

धानुपंधर^५—संज्ञा पुं० [हि० धनुष + धर] धनुष धारण करनेवाला। धनुर्धर। धनुर्धारी। उ०—अनेक धानुपंधर अनेक चक्र सेवर। चले सबहु वेदयं धरे मरेति वेदयं।—पु० रा०, २।११४।

धानुष्क—संज्ञा पुं० [सं०] धनुष् चलाकर अपनी जीबिका का निर्वाह करनेवाला। कमनैत। धनुर्धर।

धानुष्का—संज्ञा स्त्री० [सं०] अपामार्ग। चिचड़ा।

धानुष्य—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का बीस।

धानेय, धानेयक—संज्ञा पुं० [सं०] धनिया।

धान्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. चार तिल का एक परिमाण या तोल। २. धनिया। ३. कैथरी मुरतक। एक प्रकार का नागरमोथा। ४. धान। खिलके समेत चावल। ५. अन्न मात्र।

विशेष—अन्न मात्र को धान्य कहते हैं। किसी किसी स्मृति में लिखा है कि खेन में के अन्न को शस्य और खिलके सहित अन्न के बाने को धान्य कहते हैं।

यौ०—धनधान्य।

६. प्राचीन काल का एक प्रकार का अस्त्र जिसका प्रयोग शत्रु के अस्त्र निष्फल करने में होता था और जो वार्ष्णीयिक के अनुसार विश्वामित्र से रामचंद्र को मिला था।

धान्यक—संज्ञा पुं० [सं०] १. धनिया। २. धान्य। धान।

धान्यकलक—संज्ञा पुं० [सं०] अन्न के दाने का खिलका [को०]।

धान्यकूट—संज्ञा पुं० [सं०] अन्न रखने का स्थान। बलार [को०]।

धान्यकोश—संज्ञा पुं० [सं०] बलार [को०]।

धान्यकोष्ठक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'धान्यकोष्ठक' [को०]।

धान्यकोष्ठक—संज्ञा पुं० [सं०] अनाज भरने के लिये बना हुआ घर या बरतन। कोठिला। गोला।

धान्यक्षेत्र—संज्ञा पुं० [सं०] धान का खेत [को०]।

धान्यचमस—संज्ञा पुं० [सं०] चूड़ा [को०]।

धान्यचारी—संज्ञा पुं० [सं० धान्यचारिन्] पक्षी [को०]।

धान्यजीवी—संज्ञा पुं० [सं० धान्यजीविन्] पक्षी [को०]।

१-२८

धान्यतुपोद—संज्ञा पुं० [सं०] काँजी।

धान्यधेनु—संज्ञा स्त्री० [सं०] पुराणानुसार दान के लिये एक कल्पित गाय जिसकी कल्पना धान की डेरी में की जाती है।

विशेष—इसका दान विपुष मंत्रांति या कार्तिक मास में सब प्रकार का सुख, सौभाग्य और पुण्य संचय करने के लिये होता है।

धान्यपंचक—संज्ञा पुं० [सं० धान्यपञ्चक] १. भावप्रकाश के अनुसार शालि, ग्रीहि, शूक, शिबी और क्षुद्र ये पाँचों प्रकार के धान। २. वैद्यक में एक प्रकार का पाचक पानी जो पाँचों प्रकार के धान, बेल और घाम आदि को मिलाकर बनाया जाता है और जिसका व्यवहार घाम, शूल तथा अनिसार आदि रोगों में होता है। ३. वैद्यक में एक पाचक औषध, जिसे धनिया, सोंठ, वेनगिरी, नागरमोथा और त्रायमाण को मिलाकर बनाते हैं।

विशेष—इसका व्यवहार घाम, अनिसार तथा उदरशूल आदि रोगों में होता है।

धान्यपनि—संज्ञा पुं० [सं०] १. चावल। २. जौ।

धान्यपानक—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का पन्ना जो धनिया से बनाया जाता है।

विशेष—इसके बनाने के लिये पहले धनिया को मिल पर पीसकर पानी के साथ छान लेते हैं और तब उसमें नमक, मिर्च, चीनी और सुगंधित पदार्थ आदि छोड़ देते हैं।

धान्यबीज—संज्ञा पुं० [सं०] १. धनिया। २. धान का बीज।

धान्यभोग—संज्ञा पुं० [सं०] वह भूमि या जागीर जिसमें अन्न बहुत होता हो।

धान्यमालिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] रावण के यहाँ रहनेवाली एक राक्षसी जिसे उसने जानकी को समझाने के लिये नियुक्त किया था।

विशेष—किसी किसी का मत है कि रावण की स्त्री मंदोदरी का ही दूसरा नाम धान्यमालिनी था।

धान्यमाय—संज्ञा पुं० [सं०] १. अनाज का व्यापारी। २. अन्न तोलने वाला [को०]।

धान्यमाप—संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल का एक परिमाण जो दो धान के बराबर होता था।

धान्यमुख—संज्ञा पुं० [सं०] सुभ्रा के अनुसार एक प्रकार का अस्त्र जिसका व्यवहार प्राचीन काल में चौरफाड़ में होता था।

धान्यमूला—संज्ञा पुं० [सं०] काँजी।

धान्ययूप—संज्ञा पुं० [सं०] काँजी।

धान्ययोनि—संज्ञा पुं० [सं०] काँजी।

धान्यराज—संज्ञा पुं० [सं०] जौ।

धान्यवनि—संज्ञा स्त्री० [सं०] अन्न का उर [को०]।

धान्यवर्ग—संज्ञा पुं० [सं०] पाँचों प्रकार के धान। धान्यपंचक।

धान्यवर्धन—संज्ञा पु० [सं०] धान उधार देने का व्यवहार जिसमें ऋणी से देयता या मवाया लिया जाता है।

धान्यवाप—संज्ञा पु० [सं०] कीटस्थ के अनुसार वह स्थान जिसमें धान बहुतायत से पैदा होता हो।

धान्यबीज—संज्ञा पु० [सं०] दे० 'धान्यबीज'।

धान्यबीर—संज्ञा पु० [सं०] उरद। माप।

धान्यशर्करा—संज्ञा स्त्री० [सं०] चीनी मिला हुआ धनिया का पानी जो घृत-दीह जात करने के लिये पिया जाता है।

धान्यशीर्षक—संज्ञा पु० [सं०] धान की मंजरी।

धान्यशुंठी—संज्ञा स्त्री० [सं०] धान्यशुंठी [वेद्यक में एक औषध जो ज्वरातिमार और कफ के प्रकोप को नाश करता है।

विशेष—इसे बनाने के लिये एक तोला धनिया और २ तोला मोठ कूटकर प्राथमिक पानी में मिलावे और उसे घाग पर चढ़ा देते हैं, और जब प्राथमिक पानी बच जाता है तब उसे उतार लेते हैं।

धान्यशूक—संज्ञा पु० [सं०] दूँड़ [को०]।

धान्यशील—संज्ञा पु० [सं०] पुराणानुसार धान करने के लिये वह कल्पित पर्वत जिसकी कल्पना धान की ढेरी में की जाती है।

विशेष—वहते हैं कि इसके धान करनेवाले को स्वर्ग में सेवा के लिये सम्मरण और गंधर्व मिलते हैं और यदि वह किसी प्रकार इस लोक में मरा जाय तो राजा होता है।

धान्यसंग्रह—संज्ञा पु० [सं०] धान्यसङ्ग्रह धनाज का भंडार [को०]।

धान्यसार—संज्ञा पु० [सं०] तंदूर। चावल।

धान्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] धनिया।

धान्याक—संज्ञा पु० [सं०] धनिया।

धान्याकृत—संज्ञा पु० [सं०] वेतिहर। कृषक।

धान्याभ्रक—संज्ञा पु० [सं०] १. वेद्यक में भस्म बनाने के लिये धान की सहायता से शोषा और माफ किया हुआ अभ्रक।

विशेष—पहले अभ्रक को सुखाकर खरल में सूब महीन पीस लेते हैं और तब उस चूर्ण को चौथाई धान के साथ मिलाकर एक कदम में बांधकर तीन दिन तक पानी में रखते हैं। तीन दिन बाद उग पोटली को हाथ से इतना मसते हैं कि वह धनकर नीचे पानी में गिर जाता है। उसी अभ्रक को निधारकर सूखा लेते हैं। भस्म बनाने के लिये ऐसा अभ्रक बहुत अच्छा समझा जाता है।

२. अभ्रक को इस प्रकार शोषने की किया।

धान्याभ्रक—संज्ञा पु० [सं०] धान से बनाई हुई खटाई या काँजी।

विशेष—दूध जल के साथ धान को एक बंद बरतन में रखकर गाड़ दे। नात दिन पीछे उसे निकालकर उसका पानी छान ले। यह धान पानी काँजी है।

धान्यारि—संज्ञा पु० [सं०] चूहा।

धान्यार्थ—संज्ञा पु० [सं०] चावल या धनाज के रूप में संपत्ति [को०]।

धान्याशय—संज्ञा पु० [सं०] धानशाला। भंडार घर।

धान्यास्थि—संज्ञा स्त्री० [सं०] भूमी [को०]।

धान्योत्तम—संज्ञा पु० [सं०] शालि। धान।

धान्वंतयं—संज्ञा पु० [सं०] धान्वन्तयं धन्वंतरि देवता के होम आदि। वह होम आदि जिनमें धन्वंतरि आदि देवता प्रधान हों।

धान्व—वि० [सं०] धन्व देश संबंधी। धन्व देश का।

धान्वन—वि० [सं०] दे० 'धान्व' [को०]।

धाप^१—संज्ञा पु० [हि० टप्पा] १. दूरी की एक नाप जो प्रायः एक मील की धीर कहीं दो मील की मानी जाती है। २. लंबा चौड़ा मैदान। ३. खेत की नाप या लंबाई चौड़ाई।

धाप^२—संज्ञा पु० [हि० धार] पानी की धार (लघ०)।

धाप^३—संज्ञा स्त्री० [हि० धापना] जी भरना। तृप्ति। संतोष।

धापना^४—क्रि० घ० [सं० तपण ?] संतुष्ट होना। तृप्त होना। भ्रमाना। जी भरना। उ०—(क) लपट धूत पूत दमरी को विषय जाप को जापी। भ्रम भ्रम भ्रमेय पान करि कबहुँ न मनसा धापी।—सूर (शब्द०)। (ख) दूतन कछो बड़ो यह पापी। इन तो पाप किए हैं धापी।—सूर (शब्द०)। (ग) कबिरा धौंधी कोपड़ी कबहुँ धाये नाहि। तीन लोक को संपदा कब आवे घर माहि।—कबीर (शब्द०)।

धापना^५—क्रि० स० संतुष्ट करना। तृप्त करना।

धापना^६—क्रि० घ० [सं० धावन ?] दोड़ना। भागना। जल्दी जल्दी चलना। उ०—इमन चढे सब सखा पुकारत मधुर सुनावहु बैन। जनि धापहु बलि चरन मनोहर कठिन काँट मग ऐन।—सूर (शब्द०)।

धावरी—संज्ञा स्त्री० [देश०] कबूतरों का दरवा।

धावा—संज्ञा पु० [देश०] १. छत के ऊपर का कमरा। छटारी। वह स्थान जहाँ पर कच्ची या पक्की रमोई (मोल) मिलती हो।

धावाई—संज्ञा पु० [हि० धा (= धाय) + वाई] दूधवाई।

धाम^१—संज्ञा पु० [सं०] १. महाभारत के अनुसार एक प्रकार के देवता। २. विष्णु।

धाम^२—संज्ञा पु० [सं० धामन्] १. गृह। घर। भवन। उ०—धामने धामने धाम कहूँ, कूष मवासिन कीन।—प० रासो, पु०, १०७। २. देह। शरीर। तन। ३. बागडोर। जगाम। ४. शोभा। ५. प्रभाव। ६. देवस्थान या पुण्यस्थान। जैसे, परम धाम, चारो धाम आदि। ७. जन्म। ८. विष्णु। ९. उद्योति। १०. ब्रह्मा। ११. चारदीवारी। जहन्नमनाह। १२. किरण। १३. तेज। १४. परलोक। १५. स्वर्ग। १६. अवस्था। गति।

धाम^३—संज्ञा पु० [देश०] फालसे की जाति का एक प्रकार का छोटा वृक्ष जो मध्य और दक्षिण भारत में पाया जाता है।

विशेष—इसकी पत्तियाँ तीन से छह चौ तक लंबी और गोलाई लिए होती हैं।

धामक—संज्ञा पु० [सं०] माशा (तोख)।

धामक धूमक^४—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'धूमधाम'। उ०—बस्तु प्रलय है बहुत पसारा धामक धूमक भरि कोई चले।—रामानंद०, पु० ३५।

धामकेशी—संज्ञा पुं० [सं० धामकेशिन्] सूर्य [को०] ।

धामच्छद्—संज्ञा पुं० [सं०] अग्नि [को०] ।

धामन^१—संज्ञा पुं० [देश०] १. फालसे की जाति का एक प्रकार का पेड़ जो देहरादून से आसाम तक साल आदि के जंगलों में होता है ।

विशेष—इसकी लकड़ी प्रायः बहंगी के डंडे या कुल्हाड़ी आदि के दस्ते बनाने के काम में आती है ।

२. एक प्रकार का बाँस ।

धामन^२—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'धामिन' ।

धामन^(३)—संज्ञा स्त्री० [सं० धामन्] एक प्रकार की घास जो नरम और रेतीली भूमि में बहुत अधिकता से होती है ।

विशेष—यह प्रायः वर्षा ऋतु में बहुत होती है और पशुओं के लिये बहुत अच्छी समझी जाती है ।

धामनिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'धमनी' ।

धामनिधि—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य ।

धामनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'धमनी' ।

धामभाज्—संज्ञा पुं० [सं०] यज्ञस्थान में भाग लेनेवाला देवता ।

धामश्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की रागिनी जिसके गाने का समय दिन में २५ बंद से २८ बंद तक है ।

धामसधूमस^(४)—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'धूमधाम' । उ०—धामस धूमस जगि रह्यो सठ आय अचानक तोहि पछारे ।—सुंदर० पं०, भा० १, पृ० ४११ ।

धामा^१—संज्ञा पुं० [सं० धाम] १. भोजन का निमंत्रण । खाने का नेवता । २. अनाज आदि रखने का बड़ा टोकरा । (पश्चिम) ।

धामार्गव—संज्ञा पुं० [सं०] १. लाल बिचड़ा । २. बीघातोरी ।

धामासा—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'धमासा' ।

धामिन—संज्ञा स्त्री० [हि० धामा (= दीङ्ग?)] १. एक प्रकार का माँप जो कुछ हरापन या पीलापन लिए सफेद रंग का होता है ।

विशेष—यह बहुत लंबा होता है और इसकी पूँछ में बहुत बिष होता है । यह काटता नहीं बल्कि पूँछ से ही कोड़े की तरह मारता है । शरीर के जिस स्थान पर इसकी पूँछ लग जाती है उस स्थान का मांस गल गलकर गिरने लगता है । यह बहुत तेज दौड़ता है ।

२. एक प्रकार का वृक्ष जो दक्षिण भारत, राजपूताने तथा आसाम की पहाड़ियों में अधिकता से होता है ।

विशेष—इसकी लकड़ी मजबूत और सारे रंग की होती है और मेज कुरसी और अलमारी आदि बनाने के काम में आती है ।

धामिनो^(५)—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'धाम' । उ०—धामिन मैं तुम भाय गए भर, छाड़ि गए घर के पुर धामिनि । नट०, पृ० ४१ ।

धामिया—संज्ञा पुं० [हि० धाम] एक पंख का नाम । २. इस पंख का आदमी ।

धाय^१—संज्ञा स्त्री० [अनु०] किसी पदार्थ के जोर से गिरने या तोप, बंदूक आदि छूटने का शब्द ।

विशेष—खट, पट, आदि शब्दों के समान इसका प्रयोग भी 'से' विभक्ति के साथ क्रि० वि० वत् ही प्रायः होता है ।

धायं धायँ—क्रि० वि० [अनु०] १. धायं धायँ की आवाज के साथ । २. वेग के साथ जलते हुए ।

धाय^२—संज्ञा स्त्री० [सं० धात्री] वह स्त्री जो किसी दूसरे के बालक को दूध पिलाने और उसका पालन पोषण करने के लिये नियुक्त हो । धात्री । आई ।

धाय^३—संज्ञा पुं० [सं० धातकी] धवई का पेड़ ।

विशेष—दे० 'धवई' ।

धाय^४—वि० [सं०] धायक [को०] ।

धायक—वि० [सं०] अधिकार में रखनेवाला । स्त्रिय में रखने-वाला [को०] ।

धाय आई—संज्ञा पुं० [हि० धाय + आई] धाय से उत्पन्न होने के कारण आई जैसा ।

धाया—संज्ञा स्त्री० [सं०] अग्नि प्रज्वलित करते समय पड़ा जाने-वाला वेदमंत्र [को०] ।

धायी—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'धाय' ।

धय्य—संज्ञा पुं० [सं०] पुरोहित ।

धय्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह वेदमंत्र जो अग्नि प्रज्वलित करते समय पड़ा जाता है ।

धार^१—संज्ञा पुं० [सं०] १. जोर से पानी बरसना । जोर की वर्षा । उ०—धार से निखरे हुए ऋतु के सुझाए बाग में । धाम भरने के न झोले बन गए तो क्या हुआ ?—बेना, पृ० ६६ । २. इकट्ठा किया हुआ वर्षा का जल जो वेद्यक के अनुसार त्रिदोष नाशक, सधु, सोम्य, रसायन, बनकारक, तृप्तिकर और पाचक तथा मुखी, संद्रा, दाह, श्कावट और प्यास आदि को दूर करनेवाला है । कहते हैं, (गंगन और भादो में यह जल बहुत ही हितकारक होता है ।

विशेष—वेद्यक के अनुसार यह जल दो प्रकार का होता है—गांग और समुद्र । आकाशगंगा से जल लेकर मेघ जो जल बरसाते हैं वह गांग कहलाता है और अधिक उत्तम माना जाता है; और समुद्र से जो जल लेकर मेघ वर्षा करते हैं वह जल समुद्र कहलाता है । आश्विन मास में यदि भूयं स्वाती और विशाखा जक्षत्र में हो तो उस महीन की वर्षा का जल गांग होता है । इसके प्रतिरिक्त शेष जल समुद्र होता है । साधारणतः समुद्र जल खारा, नमतीन, शुक्रनाशक, दृष्टि के लिये हानिकारक, बलनाशक और दोषप्रदायक माना जाता है । पर अगस्त तारे के उदय होने के उपरांत समुद्र जल भी गांग जल की तरह गुणकारी माना जाता है ।

३. ऋण । उधार । कर्ज । ४. प्रांत । प्रदेश ।

धार^२—वि० [सं०] गंभीर । गहरा ।

धार^३—संज्ञा स्त्री० [सं० धारा] १. किसी आधार से लगे हुए

अथवा निराधार द्रव पदार्थ की गतिपरंपरा । अखंड प्रवाह । पानी आदि के गिरने या बहने का तार । जैसे, नदी की धार, पेणाब की धार, खून की धार । उ०—गुरु सिध सार धार एक जानी । उयों जल मिलि जलधार समानी ।—घट०, पृ० २४६ ।

यो०—धारधूरा ।

मुहा०—धार चढ़ाना = किसी देवी देवता या पवित्र नदी आदि पर दूध, जल आदि चढ़ाना । धार टूटना = गिरने का प्रवाह खंडित होना । लगानार गिरना या निकलना बंद हो जाना । धार देना = (१) दूध देना । (२) कोई उपयोगी काम करना । (व्यंग) । जैसे,—यहाँ बंटे हुए क्या धार देते हो ? (३) दे० 'धार चढ़ाना' । धार निकलना = दूध टूटना । स्तनों से दूध निकलना । धार मारना = जोर से पेणाब करना । (किसी चीज पर) धार मारना या (किसी चीज को) धार पर मारना = किसी चीज को बहुत ही मुश्किल और अप्रत्याशित ममभना । जैसे, हम ऐसे रूप पर धार मारते हैं, या ऐसा कपड़ा धार पर मारते हैं । धार बाँधना = किसी तरल पदार्थ का धार बनकर गिरना । धार बाँधना = किसी तरल पदार्थ को इस प्रकार गिराना जिसमें उसकी धार बन जाय ।

३. पानी का सोता । कपमा । ४. जल उपक्रमध्य (लक्ष०) ।

५. किसी काटनेवाले हथियार का बहुत तेज मिरा या किनारा जिससे कोई चीज काटते हैं । बाठ । जैसे, तलवार की धार धाकू की धार, केची की धार ।

मुहा०—धार बाँधना = मंत्र आदि के बल से बाँधनेवाले अस्त्र की धार का निकम्मा हो जाना । धार बाँधना = मंत्र आदि के बल से किसी हथियार की धार को निकम्मा कर देना ।

विशेष—प्राचीनों का विश्वास था कि मंत्र के बल से हथियार की धार निकामी की जा सकती है और तब वह हथियार काट नहीं सकता ।

६. किनारा । मिरा । छोर । ७. देना । फौज । ८. किसी प्रकार का डाका, धाकमग्न या हटना । उ०—जात मजन कहे देखिए कही कबीर पुकार । अनन्त होहु तो चेत ले दिवस परत है धार ।—कबीर (शब्द०) । ९. धार । तरफ । दिशा । उ०—महुरि पैठल सदन भीतर श्रीक बाँई धार ।—सूर (शब्द०) । १०. जहाँ जों क तस्वी की संधि या जाड़ । दरगु (लक्ष०) ।

धार^१—संज्ञा पुं० [सं० धारण] चौबदार या द्वारपाल (दि०) ।

धार^२—संज्ञा पुं० [सं० धारण] वह पेड़ का तना या काठ का टुकड़ा जो कच्चे रूख के मूँड़ पर इसलिये लगा दिया जाता है जिसमें उसका ऊपरी भाग अंदर न गिरे ।

धारक^१—वि० [सं०] १. धारण करनेवाला । धारनेवाला । २. रोकनेवाला । ३. ऋण देनेवाला । कर्जदार ।

धारक^२—संज्ञा पुं० [सं०] कलश । घड़ा ।

धारका—संज्ञा स्त्री० [सं०] योनि । स्त्री की मूर्तद्रिय ।

धारण—संज्ञा पुं० [सं०] किसी पदार्थ को अपने ऊपर रखना अथवा

अपने किसी अंग में लेना । धारणा, लेना या अपने ऊपर ठहराना । जैसे, शेष जी का पृथ्वी को धारण करना, शिव जी का गंगा को धारण करना, हाथ में छड़ी या अस्त्र धारण करना । २. परिधान । पहनना । जैसे, वस्त्र या आभूषण धारण करना । ३. सेवन करना । खाना या पीना । जैसे, शिव जी का विष धारण करना, घोषध धारण करना । ४. अवलंबन करना । अंगीकार करना । ग्रहण करना । जैसे, पदवी धारण करना । मोन धारण करना । ५. ऋण लेना । कर्ज लेना । उधार लेना । ६. कश्यप के एक पुत्र का नाम । ७. शिव जी का एक नाम ।

धारणक—संज्ञा पुं० [सं०] ऋणी । कर्जदार [को०] ।

धारणशीलता—संज्ञा स्त्री० [सं०] धारण करने की शक्ति । टिकाए रखने की क्षमता ।

धारणा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. धारण करने की क्रिया या भाव । २. वह शक्ति जिससे कोई बान्धन मन में धारण की जाती है । समझने या मन में धारण करने की वृत्ति । बुद्धि । प्रकल । समझ । ३. दृढ़ निश्चय । पक्का विचार । ४. मर्यादा । जैसे,—नीति की यह धारणा है कि पानी में मुँह न देखा जाय । ५. मन या ध्यान में रखने की वृत्ति । याद । स्मृति । ६. योग के आठ अंगों में से एक । मन की वह स्थिति जिसमें कोई और भाव या विचार नहीं रह जाता केवल ब्रह्म का ही ध्यान रहता है ।

विशेष—उस समय अनृत्य केवल संस्वर का चिंतन करता है, उसमें किसी प्रकार की वाचना नहीं उत्पन्न होती और न उसकी इंद्रियाँ विचलित होती हैं । यही धारणा पीछे स्थायी होकर 'ध्यान' में परिणत हो जाती है ।

७. ब्रह्मसंहिता के अनुसार एक योग जो उच्छेष्ट शुक्ला षष्ठमी से एकादशी तक एक विशिष्ट प्रकार की वायु चलने पर होता है ।

विशेष—इससे इस बात का पता लगता है कि आगामी वर्षा ऋतु में यथेष्ट पानी बरमेगा या नहीं । यह वर्षा के गर्भधारण का योग माना जाता है, इसी लिये इसे धारणा कहते हैं ।

धारणायोग—संज्ञा पुं० [सं०] १. गंधीर समाधि । २. एक प्रकार का योग । दे० 'धारण'—७ [को०] ।

धारणावान्—संज्ञा पुं० [सं० धारणावत्] [स्त्री० धारणावती] वह जिसकी धारणा शक्ति बहुत प्रबल हो । मेधाशाली ।

धारणाशक्ति—संज्ञा स्त्री० [सं० धारणा + शक्ति] किसी बात या तथ्य को अधिक समय तक मस्तिष्क में धारण किए रहने की क्षमता [को०] ।

धारणक—संज्ञा पुं० [सं०] १. ऋणी । धरता । कर्जदार । २. वह आशमी या कोठी जिसके पास धन जमा किया गया हो ।

धारणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. नाइका । नाड़ी । २. श्रेणी । पंक्ति । ३. धारण करनेवाली । पृथ्वी । ४. सीधी लकीर । ५. बौद्ध तंत्र का एक अंग जो प्रायः हिंदू तंत्र के कवच के समान है ।

विशेष—इसका प्रचार नेपाल, तिब्बत, तथा बर्मा के बौद्धों में अधिकता से है । बौद्ध तांत्रिक इसे अभीष्टसिद्धि और दीर्घ

जीवन का साधन मानते हैं। इसके अधिकांश के उपदेष्टा बुद्ध और श्रोता आनंद या वज्रपाणि माने जाते हैं।

१. १६० हाथ लंबी, २० हाथ चौड़ी और १६ हाथ ऊंची नाव।
(मुक्तिकल्पतरु) ।

धारणीमति—संज्ञा स्त्री० [सं०] योग में एक प्रकार की समाधि।

धारणीय—वि० [सं०] धारण करने योग्य। जो धारण किया जा सके। रखने योग्य।

धारणीय^२—संज्ञा पुं० [सं०] तांत्रिकों का एक प्रकार का यंत्र जो सोने की कलम से केसर, रोचन, लाख, कस्तूरी, चंदन और हाथी के मूत्र से लिखा जाता है।

विशेष—यह यंत्र पूजा के यंत्र से भिन्न होता है और शरीर पर धारण किया जाता है। जमीन या शव से छू जाने, जलने अथवा लीने जाने में यह यंत्र अशुद्ध हो जाता है और धारण करने योग्य नहीं रहता।

धारणीया^१—वि० [सं०] धारण करने योग्य। रखने योग्य। जो धारण किया जा सके। उ०—बड़ों की बात है अविचारणीया, मुकुट मण्डित तुल्य शिरसा धारणीया।—साकेत, पु० ६३।

धारणीया^२—संज्ञा पुं० [सं०] १. धारणीकंद। २. दे० 'धारणीय'।

धारदार—वि० [हि० धार + धार] धारवाला। पैना।

धारधूरा^१—संज्ञा पुं० [हि० धार + धूरा (= धूल)] नदी की रेत से बनी हुई या नदी के दृष्ट जाने से निकली हुई जमीन। गंगबरार।

धारन—संज्ञा पुं० [सं० धारण] १. हाथी के खिलाने के लिये तैयार की हुई दवा। २. दे० 'धारण'।

धारना^१—क्रि० स० [सं० धारण] १. धारण करना। अपने ऊपर लेना। २. ऋण करना। उधार लेना।

धारना^२—क्रि० स० [हि०] दे० 'धारन'।

धारयिता—संज्ञा पुं० [सं० धारयितृ] [स्त्री० धारयित्री] धारण करनेवाला।

धारयित्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. धारण करनेवाली। २. पृथ्वी।

धारयिष्णु—वि० [सं०] धारण या ग्रहण करने योग्य [स्त्री०]।

धारयिष्णुता—संज्ञा स्त्री० [सं०] देव [स्त्री०]।

धारस—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'धारस'।

धारांकुर—संज्ञा पुं० [सं० धारांकुर] १. सरल का गोंद। २. धनोपल। मोला। विनोरी।

धारांग—संज्ञा पुं० [सं० धाराङ्ग] एक प्राचीन तीर्थ का नाम। २. सङ्ग।

धारा—संज्ञा स्त्री० [सं०] छोटे की चाल।

विशेष—प्राचीन भारतवासियों ने घोड़ों की पाँच प्रकार की चालें मानी थीं—धास्कंपित, धारितक, रेखित, वल्लित और प्लुत।

५. किसी द्रव पदार्थ की गतिपरंपरा। पानी आदि का बहाव या गिराव। अखंड प्रवाह। धार। ३. लगातार गिरता या बहता हुआ कोई द्रव पदार्थ। ४. पानी का भरना। सोता। चरमा। ५. काटनेवाले हथियार का तेज सिरा। बाढ़। धार। ६. बहुत

अधिक वर्षा। ७. समूह। झुंड। ८. सेना अथवा उसका अगला भाग। ९. घड़े आदि में बनाया हुआ छेद या सुरास। १०. संतान। घोलाद। ११. उत्कर्ष। उन्नति। तरक्की। १२. रथ का पहिया। १३. यश। कीर्ति। १४. प्राचीन काल की एक नगरी का नाम जो दक्षिण देश में थी। १५. महा-भारत के अनुसार एक प्राचीन तीर्थ। १६. वाक्यावलि। पंक्ति। १७. लकीर। रेखा। १८. पहाड़ की चोटी। १९. मालवा की एक राजधानी जो राजा भोज के समय में प्रसिद्ध थी। कहते हैं, भोज ही उज्जयिनी से राजधानी धारा लाए थे। २०. बाग का घेरा (को०)। २१. रात्रि (को०)। २२. हल्दी (को०)। २३. कान का सिरा (को०)। २४. बाणी (को०)। २५. कर्ज। ऋण (को०)। २६. एक प्रकार का पत्थर (को०)। २७. अफवाह। चर्चा (को०)। २८. क्रम। पद्धति। २९. नियम या विधान का एक अंग। उपा (को०)। ३०. साहित्यिक प्रवृत्ति अथवा उपविभाजन। साहित्य का कोई प्रवाह या उपविभाग। जैसे, छायावादी काव्यधारा, निर्गुण काव्यधारा।

धाराकदंब—संज्ञा पुं० [सं० धाराकदम्ब] एक प्रकार का कदम का पेड़।

धारागृह—संज्ञा पुं० [सं०] वह स्थान या घर जिसमें कुहरा लगा हो।

धाराप्र—संज्ञा पुं० [सं०] बाण का चौड़ा सिरा (को०)।

धाराट—संज्ञा पुं० [सं०] १. चानक। २. मेघ। बादल। ३. घोड़ा। ४. मस्त हाथी।

धारावर—संज्ञा पुं० [सं०] १. मेघ। बादल। २. सङ्ग। तलवार।

धारानिपात—संज्ञा पुं० [सं०] १. जलधारा का गिरना। वर्षा होना। २. तेज वर्षा (को०)।

धारापात—संज्ञा पुं० [सं०] जलधारा का गिरना। वर्षा होना। २. तेज वर्षा (को०)।

धारापूष—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का पूषा (पशुपति) जो सैदे की घी मिले हुए दूध में स्नानकर और तब घी में स्नानकर बनाया जाता है और जिसमें पीछे से खाई या चीनी मिला दी जाती है।

विशेष—भावप्रकाश के अनुसार यह बलकारक, हविकारक और पित्त तथा बालनाशक है।

धाराप्रवाह—वि० [सं० धारा + प्रवाह] लगातार। अविराम (को०)।

धाराफल—संज्ञा पुं० [सं०] मदनवृक्ष। मैतफन वृक्ष।

धारायंत्र—संज्ञा पुं० [सं० धारायन्त्र] वह यंत्र जिससे पानी की धार छूटे। कुहरा।

धाराल—वि० [सं०] १. जिसकी धार तेज हो। धारदार (हथियार)। २. धारा में बहनेवाला (को०)।

धारासी—संज्ञा स्त्री० [सं० धारासी] १. तलवार। सङ्ग। कटारी। (हि०)।

धारावनि—संज्ञा पुं० [सं०] वायु। हवा।

धारावर—संज्ञा पुं० [सं०] मेघ। बादल।

धारावप—संज्ञा पु० [सं०] लगातार वृष्टि । अविराम वृष्टि [को०] ।

धारावपण—संज्ञा पु० [सं०] धारावर्ष [को०] ।

धारावाहिक—वि० [सं०] धाराप्रवाह । अविराम गति से चलने-वाला [को०] ।

धारावाहिकता—संज्ञा स्त्री० [सं० धारावाहिक + ता (प्रत्य०)] धारावाहिक होने की स्थिति । निरंतरता । उ०—पद के अंत में दो गुरु मात्राओं के स्थान पर लघु गुरु या दो लघु मात्राओं का प्रयोग कथापद्यन की धारावाहिकता के लिये अधिक उपयोगी प्रमाणित हुआ है ।—रजत० (विज्ञप्ति) ।

धारावाही—वि० [सं०] जो धारा के रूप में आगे बढ़ता हो । बिना रोक टोक बढ़ने या चलनेवाला ।

धाराविष—संज्ञा पु० [सं०] सङ्ग । तलवार ।

धारासंपात—संज्ञा पु० [सं० धारासम्पात] बहुत तेज और अधिक वृष्टि । जोरों की बारिश ।

धारासभा—संज्ञा स्त्री० [सं० धारा + सभा] व्यनस्थापिका सभा ।

धारासार—वि० [सं०] लगातार वृष्टि । बराबर पानी बरसना ।

धारास्तुही—संज्ञा स्त्री० [सं०] धारा का स्तूप ।

धारि(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० धार] १. दे० 'धार' । २. समूह । झुंड । उ०—(क) धारों धारों धारों सुनि धाए जातुधान धारिधार उते दे जलद ज्यो नसावनो ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) रामायण धारिब सुधारि । विबुध धारि भइ गुनद गोहारी । तुलसी (शब्द०) । ३. एक वरुण जिसके प्रत्येक चरण में एक रमण और एक लघु होता है । जैसे,—री बली न । जात कोन । वस्त्र हारि । मोन धारि ।

धारिणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. धरणी । पृथ्वी । भूमि । जमीन । २. शालमली । समर का पेड़ । ३. जोदह देवताओं की स्त्रियाँ जिनके नाम ये हैं—शची । वनस्पति । गार्गी । पूषोष्णी । रुधिरावृत्ति । सिन्धुवाला । कुट्ट । रक्षा । अनुमति । आयाति । प्रज्ञा । सत्ता । वर ।

धारिणी—वि० स्त्री० धारण करनेवाली ।

धारित—वि० [सं०] १. धारण किया हुआ । २. सम्हाला हुआ । रखा हुआ [को०] ।

धारित—संज्ञा पु० [सं०] छोड़े की एक चाल [को०] ।

धारितक—संज्ञा पु० [सं०] छोड़े की एक चाल । धारित [को०] ।

धारी—वि० [सं० धारिणी] [स्त्री० धारिणी] १. धारण करनेवाला । जिसने धारण किया हो ।

विशेष—इस अर्थ में इसका प्रयोग योगिक शब्दों के अंत में होता है । जैसे, धारिणी ।

२. किसी वंश के नात्पर्य की भली भाँति जाननेवाला । ३. धारण लेनेवाला । कर्जदार । ३. पीतु का पेड़ ।

धारी—संज्ञा पु० १. एक वरुण जिसके प्रत्येक चरण में पहले तीन अंग और तब एक अंग होता है । जैसे,—जु काव रंहु धवि

देखत बीते । तुम्होर प्रभू गुण गावत ही ते । कृपा करि देहु बहे गिरिधारी । याची कर जोरि सुभक्ति तिहारी । २. दे० 'धारि'—३ । ३. पीतु का पेड़ ।

धारी—संज्ञा स्त्री० [सं० धारा] १. सेना । फौज । २. समूह । झुंड । ३. रेखा । लकीर । जैसे,—यदि इस कपड़े पर कुछ धारियाँ होतीं तो धीरे भी अच्छा होता ।

धौ०—धारोदार ।

४. पुष्टता ।

धारी(पु)—संज्ञा स्त्री० [प्रा० धाडय] लुटेरों की एक जाति । उ०—सतगुरु नायक के संग मिलि चल लूट सकै नहि धारी ।—चरण० बानी, पृ० ६७ ।

धारीदार—वि० [हि० धारी + प्रा० दार] जिसमें लंबी लंबी धारियाँ या लकीरें पड़ी अथवा बनी हों । जैसे, धारीदार मलमल ।

धारुजल—संज्ञा पु० [हि०] सङ्ग । तलवार ।

धाराण्य—संज्ञा पु० [सं०] थन से निकला हुआ ताजा दूध जो प्रायः कुछ गरम होता है और स्तन से निकलने के कुछ समय बाद तक गरम रहता है ।

विशेष—वैद्यक के अनुसार ऐसा दूध अमृत के समान और भ्रम हरनेवाला, निद्रा नानेवाला, वीर्य और पुष्टार्थ बढ़ानेवाला ? पुष्टिकारक, अग्नि को बढ़ानेवाला, प्रति स्वादिष्ट और निदोष को हरनेवाला होता है ।

धार्तराष्ट्र—संज्ञा पु० [सं०] १. काले रंग की चौंच और पैरों वाला हंस । २. एक नाग का नाम । ३. [स्त्री० धार्तराष्ट्री] धृतराष्ट्र के वंश का आदमी ।

धार्तराष्ट्रपदो—संज्ञा स्त्री० [सं०] हंसपदी लता । लाल रंग का लज्जालु ।

धार्म—वि० [सं०] धर्म संबंधी ।

धार्मिक—वि० [सं०] १. धर्मशील । धर्मात्मा । धर्माचरण करने-वाला । पुण्यात्मा । जैसे,—आप बड़े हो धार्मिक हैं । २. धर्म-संबंधी । जैसे, धार्मिक क्रियाएँ ।

धार्मिकता—संज्ञा स्त्री० [सं०] धर्मशीलता । धार्मिक होने का भाव ।

धार्मिक्य—संज्ञा पु० [सं०] दे० 'धार्मिकता' ।

धार्मिण्य—संज्ञा पु० [सं०] धार्मिक व्यक्तियों की सभा [को०] ।

धार्मिण्य—संज्ञा पु० [सं०] धार्मिक स्त्री का पुत्र [को०] ।

धार्मिणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] धार्मिक स्त्री की पुत्री [को०] ।

धार्म्य—वि० [सं०] धारण करने के योग्य । धारणीय ।

धार्म्य—संज्ञा पु० [सं०] वस्त्र । कपड़ा ।

धार्म्यत्व—संज्ञा पु० [सं० धार्म्यत्व] धारण करने का भाव या क्रिया ।

धालना(पु)—क्रि० ल० [हि०] दे० 'ढालना' । उ०—उपजो ग्यान ध्यान प्रेम रस धाला ।—रामानंद०, पृ० ५० ।

धाष्ट—संज्ञा पु० [सं०] धृष्टता ।

धाष्ट्य—संज्ञा पु० [सं०] धृष्टता [को०] ।

धाव^१—संज्ञा पुं० [सं० धव] एक प्रकार का लंबा घोर बहुत सुंदर पेड़ जिसे गोलरा, धावरा, बकली घोर खरधाया भी कहते हैं।

विशेष—३० 'धव'।

धाव^२—संज्ञा स्त्री० [?] लंबाई। उ०—प्रथम ही प्रयोध्या नगर जिसका जगाव, बारें जोजन तो बोड़े सोलै जोजन की धाव।—रघु० क०, पृ० २३७।

धाव^३—वि० [सं०] धोनेवाला। साफ करनेवाला [को०]।

धावक—संज्ञा पुं० [सं०] १. दीड़कर चलनेवाला। हरकारा। उ०—धावक धाव महोब जहें, सोम बबी सुनु वत्त।—प० रासो, पृ० ११०। २. बोबी। रजक। ३. संस्कृत साहित्य के एक प्राचार्य और यद्यि जिनका नाम कामिदास के मालविकाग्निमित्र नाटक तथा काव्यप्रकाश और साहित्यसार में आया है।

धावड़ा—संज्ञा पुं० [हिं० धव + टा (प्रत्य०)] धव का पेड़।

धावण—संज्ञा पुं० [सं० धावन] दूत। हरकारा (हिं०)।

धावन—संज्ञा पुं० [सं०] १. बहुत जल्दी या दीड़कर जाना। २. दूत। हरकारा। चिट्ठी या भेदशा पहुँचानेवाला। उ०—(क) द्विविध करि कोय हरि पुरी आयो। तप सुदक्षिणा जर्यो जरी धाराणसो धाव धावन जबहि यह सुनायो।—सूर (शब्द०)। (ख) एहि विधि सोचत भरत मन धावन पहुँचे आइ। गुह अनुसासन श्रवण सुनि चले गनेस बनाइ।—तुलसी (शब्द०)। ३. धोने या साफ करने का काम। ४. वह चीज जिससे कोई चीज धोई या साफ की जाय। उ०—निद्रा हास्य मदर्णत बोले। नजि रद धावन भूठ न बोले।—विश्राम (शब्द०)।

धावना^(१)—क्रि० प्र० [सं० धावन (=गमन)] वेग से चलना। दौड़ना। भागना। जल्दी जल्दी जाना। उ०—धाराधर यावत धरा पे गजत है।—हमीर०, पृ० २४।

धावनि^(१)—संज्ञा स्त्री० [सं० धावन (=गमन)] १. जल्दी जल्दी चलने की क्रिया या भाव। दौड़। उ०—वा पट पीत की फहरान। कर धरि चक्र चरन की धावनि नहि। बसरति बहु बान।—सूर (शब्द०)। २. धावा। चढ़ाई। उ०—सिंधु पार परे सब आनंद सो भरे कपि गावै शंख बाजे शंख बाजे सब लंका पर धावनि।—हनुमान (शब्द०)।

धावनि^२—संज्ञा स्त्री० [सं०] पिठवन। पुश्तिपत्नी लता।

धावनिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. कंटकारीका। ऊटेरी। २. पिठवन। पुश्तिपत्नी। ३. कंटोली मकोय।

धावनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. पुश्तिपत्नी लता। पिठवन। २. कंटकारी। ३. धव का फूल।

धावमान—वि० [सं०] दीड़ता हुआ।

धावर—वि० [सं० धाव + र (ठ) (प्रत्य०)] दीड़नेवाला। धावक। उ०—धावर सुकन्ह बहुमान की। बोसि बीर चच्चिग महुर।—पृ० रा०, १७। ३०।

धावरा^१—संज्ञा पुं० [सं० धव + हिं० रा (प्रत्य०)] ३० 'धव'।

धावरा^२—संज्ञा पुं० [हिं० धवरा] ३० 'धवरा'।

धावरी^(१)—संज्ञा स्त्री० [सं० धवल] सफेद गाव। घीरी।

धावरी^२—वि० सफेद। उज्ज्वल। उ०—वगन सता तें बलित हैं जहें

तमाल तरजाल। धेनु धावरी रावरी लखि आई गोपाल।—रामसहाय (शब्द०)।

धावल्य—संज्ञा पुं० [सं०] धवलता। सफेदी [को०]।

धावा—संज्ञा पुं० [सं० धावन] १. जल से लड़ने के लिये दल बल सहित तैयार होकर जाना। आक्रमण। हमला। चढ़ाई।

मुहा०—धावा बोलना = (१) अधिकारी का अपने सैनिकों को आक्रमण करने की आज्ञा देना। (२) चढ़ाई कर देना। (३) किसी काम के लिये जल्दी जल्दी जाना। दौड़। धावा मारना = जल्दी जल्दी चलना। जैसे,—इस धूप में हम तीन कोस का धावा मारकर आ रहे हैं।

धावित—वि० [सं०] १. स्वच्छ किया हुआ। धोया हुआ। २. दीड़ता हुआ। ३. तेजी से जाता हुआ [को०]।

धाविता—संज्ञा पुं० [सं० धावितृ] दीड़कर जानेवाला। धावक [को०]।

धाह^१—संज्ञा स्त्री० [धनु०] जोर से चिल्लाकर रोना। धाड़। उ०—(क) देखि नंद जबे पर आवन। पैठन पोचि छींक भई बाई रोह दाहिने धाह सुनावन।—सूर (शब्द०)। (ख) ऊनै आई बाधरी बरगन लग्न अंगार। उठि कबीरा धाह दै दाफत है संसार।—कबीर (शब्द०)। (ग) जिन्ह रिपु मारि सुरारि नारि तेह सोल उधारि दिवाई धाहैं।—तुलसी (शब्द०)।

मुहा०—धाह मारना = ३० 'धाड़ मारना'। धाह मेलना = जोर जोर से रोना।

धाह^(२)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] ३० 'धाड़'। उ०—जागि न रोवे धाह दे, सोवन गई बिहाइ।—दादू०, पृ० ७३।

धाहड़ना^(१)—क्रि० प्र० [हिं० धाह] पुकारना। उ०—(क) मंके मेड़ी मुख घईला, कंदरि करिया पगड़े।—दादू०, पृ० ५२०। (ख) देवलि देवलि धाहड़ो। कबीर पं०, पृ० ११।

धाहना^(२)—क्रि० प्र० [सं० धनन] ढाहना। ध्वंस करना। नष्ट करना। उ०—देवांगर दुग है पुरनि गाहि। बालका जीति है जाय धाहि।—पृ० रा०, १। ३७५।

धाही^(१)—संज्ञा स्त्री० [सं० धात्री] दूध पिलानेवाली स्त्री। दाई। दाध। उ०—तस्य देवन भृष्टबुधि नामा। रहो माइ धाही तेहि धामा।—विश्राम (शब्द०)।

धिगा—सं० स्त्री० [सं० दृढाङ्ग या धनु० तीगाधीगी] धीगाधीगी। ऊषम। उपद्रव। शरागत। उ०—धन रथों भवानी सिंह। गढ़ लेन कपिय धिग।—सूर (शब्द०)।

धिगड़—संज्ञा, पुं० [हिं०] ३० धीगरी—२। उ०—आणु ने दूसरा धिगड़ ठाढ़ किया।—कबीर रे०, पृ० ३२।

धिगरा—संज्ञा पुं० [हिं० धीगरा] ३० 'धीगरी'।

धिगा^१—संज्ञा पुं० [सं० दृढाङ्ग] १. बदमाश। शरीर। उपद्रवी। २. वेशर्म। निर्लज्ज।

धिगाई—संज्ञा स्त्री० [सं० दृढाङ्गी] १. शरागत। उपद्रव। ऊषम। बदमाशी। उ०—जानि बूझ इन करो धिगाई। मेरो बलि पर्वतहि चढ़ाई।—सूर (शब्द०)। २. वेशर्म। निर्लज्जता।

धिगाधीगी—संज्ञा स्त्री० [हिं०] ३० 'धीगाधीगी'।

धिगाना—संज्ञा पु० [हि० धिग] धीगाधीगी करना । उपद्रव करना । ऊषम मचाना ।

धिगी—संज्ञा स्त्री० [सं० दृढाङ्गी] बढमाश स्त्री । निलम्ब स्त्री । दृढदगी धीरत ।

धि—संज्ञा पु० [सं०] भांडार । भागार [को०] ।

विशेष—यह समास के अंत में प्रयुक्त होता है । जैसे, उदधि, इधुधि, वारिधि, जलधि ।

धिआ—संज्ञा स्त्री० [सं० दुहिता, प्रा० धीमा] १. बेटी । कन्या । २. कोई छोटी लड़की ।

धिआन(पुं०)—संज्ञा पु० [सं० ध्यान] दे० 'ध्यान' ।

धिआना(पुं०)—क्रि० म० [हि०] दे० 'ध्याना' या 'ध्यावना' ।

धिक—अव्य० [सं०] १. तिरस्कार, अनादर या घृणामुचक एक शब्द । जानत । २. निंदा । शिकायत ।

धिक अव्य० [सं० धिक्] धिक् । जानत । उ०—धिक धर्मध्वज धंधकधोरी ।—तुलसी (शब्द०) ।

धिकना—क्रि० प्र० [सं० दग्ध या हि० दहकना] गरम होना । नम होना । आग की गरमी से लाल हो जाना । उ०—जरहि जो पर्वन लख अकाया । बनखैंउ धिकहि पचास कोपासा ।—जायसी (शब्द०) ।

धिकवना(पुं०)—क्रि० स० [हि० धाकना] गरम करना । तपाना । उ०—तोहि से परिहृ सो बयरा जम धिकवे भायो । स्वारथ के सब लोग घोरर के कोऊ न साथी ।—पलटू, भा० १, पृ० ५५ ।

धिकाना—क्रि० म० [सं० दग्ध या हि० दहकना] तपाना । गूब गरम करना । तपाकर लान करना ।

धिकार—संज्ञा स्त्री० [सं०] तिरस्कार, अनादर या घृणामुचक शब्द । जानत फटकार ।

क्रि० प्र०—करना ।—देना ।

धिकारना—क्रि० म० [सं० धिक्] धिक् कहकर बहुत तिरस्कार करना । बहुत बुराबना कहना । जानत मलामत करना । फटकारना ।

धिकृत—वि० [सं०] जो धिकारा जाय । जिसे धिक् कहा जाय । जिसका तिरस्कार हो ।

धिकृत—संज्ञा पु० [सं०] तिरस्कार । लताड़ [को०] ।

धिकृत्रिया—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'धिकार' ।

धिकृपाकृत्य—संज्ञा पु० [सं०] डाँट फटकार । निंदा [को०] ।

धिख(पुं०)—अव्य० [हि०] दे० 'धिक' । उ०—भिक्षपाल गजगव विष्ट भइ, धिख गदा व भीषण उवरधर ।—रघु० क०, पृ० २२४ ।

धिग(पुं०)—अव्य० [सं० धिक्] दे० 'धिकार' ।

धिगानौ(पुं०)—वि० [हि० धिग] तिरस्कारणीय । धिकार के योग्य । उ०—ध्यान हो इजाबत है लायो तू धिगानो रे ।—ब्रज० प्र०, १३२ ।

धिगई—संज्ञा पुं० [सं० धिगई] दंड के रूप में धिकार [को०] ।

धिगवण—संज्ञा पुं० [सं०] मनु के अनुसार एक संकर जाति जे ब्राह्मण पिता और अयोगवी माता से उत्पन्न मानी जाती है

धिगवाह—संज्ञा पुं० [सं०] तिरस्कारपूर्ण वाक्य या वचन [को०] ।

धित—वि० [सं०] १. रखा हुआ । २. संतुष्ट । तृप्त [को०] ।

धिप्पु—वि० [सं०] १. धोखा देने की इच्छा करनेवाला । २. धोखेबाज [को०] ।

धिमचा—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की हमली ।

धिजाइ(पुं०)—क्रि० स० [हि० धीरज] धीरज दिनाकर । विश्वास उत्पन्न करके । उ०—सुध बुध जीव धिजाइ करि, माला संकल बाहि ।—दादू०, पृ० २८७ ।

धिजावना(पुं०)—क्रि० स० [?] पुकारना । बुलाना । उ०—दुष्ट धिजावै बहुत बिधि आनि नवाये सोस ।—सुंदर० प्र०, भा० २, पृ० ७२३ ।

धिङंग(पुं०)—वि० [हि०] दे० 'धङंग' । उ०—दुर्बल रोगी, नग धिङंग जिनके शिशुगन ।—प्रेमघन०, भा० १, पृ० ५६ ।

धिद्धर(पुं०)—वि० [सं० धृष्ट] धृष्ट । डोढ । उ०—तेन सहस्सं तेय दस्सं, भुभक्क जस्स धिद्धर ।—पु० रा०, ६ । ११८ ।

धिन(पुं०)—वि० [हि०] दे० 'धन्य' । उ०—तृतीय बंदि गिन संतर, सब के लागू पाय ।—राम० धर्म०, पृ० १८५ ।

धिनी(पुं०)—वि० [हि०] दे० 'धन्य' । उ०—जय धिनी पंखी जात, सुख पंख जेण सु गात ।—रा० क०, पृ० ६८ ।

धिन्न(पुं०)—वि० [हि०] दे० 'धन्य' । उ०—दिल्ली खेतन छंडियो, धारण चारण धिन्न ।—रा० क०, पृ० ४० ।

धिय(पुं०)—संज्ञा स्त्री० [सं० दुहिता] १. कन्या । बेटी । उ०—शमी गरम भे धनल ज्यो ज्यो तेरी धिय गंत । धारति तेज दियो जो दुर प्रजा हेत दुष्यत ।—लक्ष्मणसिंह (शब्द०) । २. लड़की । बालिका ।

धियांपति—संज्ञा पुं० [सं० धियाम्पति] वृद्धस्पति [को०] ।

धिया—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'धिय' ।

धियान(पुं०)—संज्ञा पुं० [हि०] 'ध्यान' । उ०—वामदेव से देव बलि जाको घरत धियान ।—मंद० प्र०, पृ० ६२ ।

धिरकारी—संज्ञा स्त्री० [सं० धिकार] दे० 'धिकार' । उ०—नाम बिना धिरकार है । सुंदर धनवंत भूप ।—सतवाणी०, पृ० १५५ ।

धिरग(पुं०)—अव्य० [हि०] दे० 'धिक' । उ०—धन छोदा पन सुख भहा धिरग बड़ाई क्वार ।—सहजो०, पृ० ३६ ।

धिरज(पुं०)—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'धीरज' । उ०—परतिरि मानव सीति धिरवै मनोभव जीति ।—विद्यापति, पृ० १२७ ।

धिरवना—क्रि० स० [सं० धर्यण] धमकना । उ०—(क) समय परे की बात बाज कहूँ धिरवै फुदकी ।—गिरधर (शब्द०) । (ख) मुख भगरति आनंद उर धिरवति है घर जाहु ।—सुर (शब्द०) । (ग) कोठ उठि भागत पुनि नहि आवत धिरवत अंगुलि दिखाई ।—रघुराज (शब्द०) ।

धिराना(७)¹—क्रि० सं० [हि० धिरवना] डराना । समकाना । भय दिखाना । उ०—(क) जाति पाति सो कहीं भयगरी यह कहि सुनिहि धिरावति ।—सूर (शब्द०) । (ख) आना मारन मोहि धिरावे देखे मोहि न भावत ।—सूर (शब्द०) ।

धिराना²—क्रि० प्र० [सं० धीर] १. धीमा होना । गति में मंद पड़ना । उ०—उपचार विचार किए न धिरानो ।—केशव (शब्द०) । २. स्थिर होना । धैर्य धारण करना ।

धियावसु—संज्ञा पुं० [म०] सरस्वती के वर्ग के एक वैदिक देवता जो 'धी' अर्थात् बुद्धि के देवता माने जाते हैं ।

धिषण्य¹—संज्ञा पुं० [सं०] १. बृहस्पति । २. ब्रह्मा । ३. नारायण । विष्णु । ४. गुरु । शिक्षक । ५. निवास । वासस्थान (को०) ।

धिषण्य²—वि० [सं०] बुद्धिमान । प्रबलमंद । समझदार ।

धिषण्या—संज्ञा स्त्री० [म०] १. बुद्धि । अस्मत् । २. स्तुति । ३. नाक्षत्रिक । ४. पुष्टी । ५. स्थान । ६. व्याला (को०) ।

धिषण्याधिप—संज्ञा पुं० [सं०] बृहस्पति ।

धिपन(७)—संज्ञा पुं० [सं० धिषण्य] ३० 'धिषण्य' । उ०—सप्त चतुरानन धिपन, द्रुहिन स्वयंभू सोह ।—भक्तिकार्य०, पृ० ६१ ।

धिष्ट(७)—वि० [हि०] ३० 'धृष्ट' । उ०—आरि अरिष्ट मन दिष्ट धिष्ट धारन धर सुस्वर ।—पृ० रा०, १२।१७७ ।

धिष्ट्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. स्थान । जगह । २. घर । ३. नक्षत्र । ४. भाग । ५. शक्ति । ६. शुक्राचार्य ।

धिष्ठण्य¹—वि० [सं०] १. जिसकी प्रशंसा की जाय । २. जिसके विषय में गंभीर रूप से सोचा जाय । ३. जो उच्च स्था का अधिकारी हो । ४. सजग । सावधान । ५. उदार । दयालु (को०) ।

धिष्ठण्य²—संज्ञा पुं० १. हवन गुंड । २. शुक्राचार्य । ३. शुक्र ग्रह । ४. शक्ति । बल । ५. स्थान । ६. भवन । घर । ७. उल्का । ८. अग्नि । ९. तारा (को०) ।

धिस्त(७)—संज्ञा पुं० [म० धिषण्य] ३० 'धिषण्य' । उ०—अपन धिस्त पुनि आसपद आतप निलप निकेत ।—भक्तिकार्य०, पृ० ४३ ।

धिस्म(७)—संज्ञा पुं० [सं० धिषण्य] भवन । घर । उ०—गेह, वेस्म, शंकेन, लप, मंडप, धिस्म आसपद ।—नंद० शं०, पृ० १०८ ।

धींगी¹—संज्ञा पुं० [सं० डिङ्गर (= शठ) या दडांग] हटा कट्टा मनुष्य । उ०—धींगरी धींग बाचरि करै मोहि बुलावत साक्ष ।—सूर (शब्द०) ।

धींगी²—वि० १. मजबूत । जोरावर । २. शरीर । बदमाश । उपद्रवी । ३. कुमारी । पारी । कुरा । उ०—घरनायो तुलसी सो धींग धमपूसरो ।—तुलसी (शब्द०) ।

धींगड़ी¹—वि० [म० डिङ्गर] [स्त्री० धीगड़ी] १. पाजी । बदमाश । हुष्ट । २. हटा कट्टा । हुष्ट पुष्ट । ३. बर्त्सक । दोमला । हरामी ।

धींगड़ा—संज्ञा पुं० [हि०] ३० 'धींगड़' ।

धींगधुकड़ी¹—संज्ञा स्त्री० [हि० धींग] १. धींगामुश्ती । २. पाजीपन । धींगमधूंगा(७)—संज्ञा स्त्री० [हि०] ३० 'धींगाधींगी' । उ०—घरे हारे पलटू आखिर बड़े मे बड़े दिन चार का धींगमधूंगा ।—पलटू, भा०, पृ० ७७ ।

धींगरा—संज्ञा पुं० [म० डिङ्गर] १. हटा कट्टा । मुमंड । मोटा साजा । २. शठ । बदमाश । कुकर्मी । गुंडा ।

धींगरी¹—संज्ञा स्त्री० [हि० धींग + री (प्रत्य०)] पाजी । उपद्रव करने वाली स्त्री । उ०—धींग तुम्हारो पून धींगरी हमको कीन्ही ।—सूर (शब्द०) ।

धींगा—संज्ञा पुं० [म० डिङगर (= शठ)] शरीर । बदमाश । उपद्रवी । पाजी ।

धी०—धींगामुश्ती ।

धींगाधींगी—संज्ञा स्त्री० [हि० धींग] १. शरारत । बदमाशी । उपद्रव । पाजीपन । २. जबरदस्ती । बलप्रयोग ।

धींगामस्ती—संज्ञा स्त्री० [हि०] ३० 'धींगामुश्ती' ।

धींगामुश्ती—संज्ञा स्त्री० [हि० धींग + मस्ती] १. शरारत । बदमाशी । उपद्रव । पाजीपन । २. जबरदस्ती लड़ना । हाथाबाही ।

धीन्द्रिय—संज्ञा स्त्री० [सं० धीन्द्रिय] वह इंद्रिय जिससे किसी बात का ज्ञान किया जाय । जैसे, मन, शक्ति, कान, त्वक्, जीभ, नाक । ज्ञानेंद्रिय ।

धीवर—संज्ञा पुं० [हि०] ३० 'धीवर' ।

धी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. बुद्धि । अस्मत् । समझ ।

विशेष—३० 'बुद्धि' ।

२. मन । ३. कर्म । ४. कल्पना (को०) । ५. विचार (को०) । ६. शक्ति (को०) । ७. यज्ञ (को०) । ८. उद्देश्य (को०) ।

धी²—संज्ञा स्त्री० [म० दुहिना, प्रा० धीघा] लड़की । बेटा । उ०—झंडे ले लेकर निकली धा और बहूटी पहिन की ।—बेला, पृ० ४७ ।

धी(७)¹—वि० धैर्यवान । सुस्थिर । उ०—नाटक प्रमान कर्ण्य । मुनि राजन धी दिल्लीम ।—पृ० रा०, २५।१ ।

धीआ—संज्ञा स्त्री० [हि०] ३० 'धीया' ।

धीगम(७)—संज्ञा पुं० [हि० धीगा] मनमानी । अग्न्याय । उ०—अध-रम आओ गाँठि न्यात्र धिनु धीगम मूहा ।—पलटू, भा० १, पृ० १०२ ।

धीगुण—सं० पुं० [सं०] सूक्ष्मा, अणु पादे बुद्धि के आठ धर्म (को०) ।

धीजना—क्रि० सं० [म० √ धि, धार्य, धैर्य] १. ग्रहण करना । स्वीकार करना । अंगीकार करना । उ०—(क) पाती ले के बल्थो धिय छिद्रवहि पुरी गयो, नयो नाव जान्यो एपे कैष्ट तिया धीजिए । कहो तुम जाह रानी बैठी सग ग्राई मोको बोल्यो न सोहाय प्रभु सेवा मोक धीजिए ।—विद्यादास (शब्द०) । (ख) धरिया कुं भोजु नहीं गहूँ अघर की बाहि । धरिया अघर पहिचःनियाँ तो कछु घरावहि नाहि ।—कबीर

धीरत्व—संज्ञा पु० [सं०] धीर होने का भाव । धीरता ।

धीरपत्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] जमीकंद ।

धीरप्रशान्त—संज्ञा पुं० [सं० धीरप्रशान्त] दे० 'धीरशान्त' ।

धीरमति—वि० [सं० धीर + मति] धैर्यवान् । धीरज रखनेवाला ।
उ०—वे धरम धुरधर धीरमति सूर सिरोमन संत जन ।—
ब्रज० प्र०, पृ० ६५ ।

धीरललित—संज्ञा पुं० [सं०] साहित्य में वह नायक जो सदा बना-
ठना धीर प्रसन्नचित्त रहता हो ।

धीरवना^(५)—वि० प्र० [सं० धीर] धैर्य धरना । धीरतायुक्त होना ।
उ०—जह धीरा मन धीरवह, तउ मन भीतर लाह ।—डोना०,
दृ० २१६ ।

धीरशान्त—संज्ञा पुं० [सं० धीरशान्त] साहित्य में वह नायक जो
सुशील, दयावान्, गुणवान् धीर पुरुषवान् हो ।

धीरा^१—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. साहित्य में वह नायिका जो अपने
नायक के शरीर पर पर-स्त्री-रमण के चिह्न देखकर व्यग्न से
क्रोध प्रकाशित करे । ताने से अपना क्रोध प्रकट करनेवाली
नायिका । २. गुरिच । गिलोच । ३. काकोली । ४. माल-
कंगनी ।

धारा^२—वि० [सं० धीर] यह । धीमा ।

धीरा^३—संज्ञा पुं० [सं० धैर्य] धीरज । धैर्य ।

धीराधी—संज्ञा स्त्री० [सं०] शीशम का पेड़ [सो०] ।

धीराधीरा—संज्ञा स्त्री० [सं०] साहित्य में वह नायिका जो अपने
नायक के शरीर पर पर-स्त्री-रमण के चिह्न देखकर कुछ गुप्त
धीर कुछ प्रकट रूप से अपना क्रोध जतला दे ।

धीरावी—संज्ञा स्त्री० [सं०] शीशम का पेड़ ।

धीरी—संज्ञा स्त्री० [?] भाख की पुतली ।

धीरे—क्रि० वि० [हि० धीर] १. आहिस्ते से । मंद मंद । धीमी
गति से । 'जोर से' का उलटा । २. छुरके से । इस प्रकार
जिसमें कोई सुन या देख न सके । इस प्रकार जिसमें किसी
को आहत न मिले । जैसे,—धीरे से चल दो ।

धीरे धीरे—अव्य० [हि० धीरे + धीरे] १. आहिस्ते । मंद मंद गति
से । क्रमशः । ३. धीमे स्वर में ।

धीरोदात्त—संज्ञा पुं० [सं०] १. साहित्य के अनुसार वह नायक जो
निरभिमानी, दयालु, क्षमाशील, बलवान्, धीर, दृढ़ और
गोढ़ा हो । जैसे, रामचंद्र, युधिष्ठिर आदि । २. वीर-रस-
प्रधान नाटक का मुख्य नायक ।

धीरोदात्त^(५)—संज्ञा पुं० [सं० धीरोदात्त] दे० 'धीरोदात्त' । उ०—
जेष विषे प्रभेद जनाव धीरोदात्त धीरललितान्नि धन ।—
बांकी० प्र०, भा० ३, पृ० ११५ ।

धीरोद्धत—संज्ञा पुं० [सं०] साहित्य में वह नायक जो बहुत प्रचंड
धीर चंचल हो धीर दुमरे का गर्व न सह सके धीर सदा
अपने ही गुणों का बखान किया करे । जैसे, भीमसेन ।

धीरोध्रत^(५)—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'धीरोद्धत' । उ०—जेष विषे
प्रभेद जताव धीरोदात्त धीर ललितान्नि धन । धीर सांत
धीरोध्रत आव ।—बांकी० प्र०, भा० ३, पृ० १५० ।

धीरोष्णी—संज्ञा पुं० [सं० धीरोष्णिन्] एक विश्वदेव [सो०] ।

धीर्ज—संज्ञा पुं० [सं० धैर्य] दे० 'धीरज' । उ०—धीर्ज शब्द सों धन
उजियारा, सुमत शब्द सों वल पसारा ।—कबीर सा०,
पृ० १०२ ।

धीर्य^(५)—संज्ञा पुं० [सं०] कातर ।

धीर्य^२—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'धैर्य' । उ०—प्रापा प्रपण देय धैर्य
दृढ़ता गहो । जमा नील संतोष दया धारे रहो ।—भक्ति पं०
पृ०, ७८ ।

धीलटि—संज्ञा स्त्री० [सं०] पुत्री । कन्या [सो०] ।

धीलटो—संज्ञा स्त्री० [सं०] पुत्री । कन्या [सो०] ।

धीवर—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० धीवरी] १. एक जातिविशेष जो
प्रायः मछली पकड़ने और बेचन का काम करती है । इस
जाति का छुआ जल द्विज लोग ग्रहण करने न दे । मधुवा ।
मस्साह । केवट । उ०—सुनो, मैं शुक्राचार का धीवर हूँ ।—
शकुंतला, पृ० १०१ । २. क्षिप्रगतार । सेवक । ३. काला
मनुष्य । ४. मत्स्यपुराण के अनुसार एक देश । ५. उक्त देश
का निवासी ।

धीवरक—संज्ञा पुं० [सं०] मस्साह । मधुवा [सो०] ।

धीवरो—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. मस्साहिन । २. मछली मारने की
कटिया । ३. मछली रखने की टोकरी [सो०] ।

धीहड्डी—संज्ञा स्त्री० [हि० धी] पुत्री । लड़की ।

धुंकार—संज्ञा स्त्री० [सं० ध्वनि + कार] जोर का शब्द । गरज ।
गड़गड़ाहट । उ०—धुंकार बोलन की बड़ी दुकार भूमिपतीन
यो ।—गोपाल (शब्द०) ।

धुंजा—वि० [हि० धुंध] धुंधली । मंददृष्टि । उ०—बिन गोपाल
देरिनि भइ कुंज ।—सुरदास प्रभु तुम्हरे वरस को मग जोवत
धंसियाँ भइ धुंज ।—सुर (शब्द०) ।

धुंदा^१—संज्ञा स्त्री० [हि० धुंध] दे० 'धुंध' ।

धुंदा^२—संज्ञा पुं० [हि० धुंध] दे० 'धुंध' ।

धुंदा—वि० [हि० धुंध] धंध ।

धुंदुल—संज्ञा पुं० [सं०] मझोले कद का एक पेड़ ।

विशेष—यह बंगाल और मलाबार में अधिकता से होता है ।
इसकी लकड़ी सफेद रंग की होती है और गाड़ियों के पहिए
तथा मेज कुर्सी आदि बनाने के काम में आती है । इसके
फलों से एक प्रकार का तेल निकलता है जो जलाया और
सिर में लगाया जाता है । इससे से एक प्रकार का गोद भी
निकलता है ।

धुंध^१—संज्ञा स्त्री० [सं० धुम्र + धन्ध] १. वह धंधेला जो हवा में
मिली धूल के कारण हो ।

यौ०—धंधाधुंध ।

२. हवा में उड़ती हुई धूल । ३. आँव का एक रोग जिसके कारण
ज्योति मंद हो जाती है और कोई वस्तु स्पष्ट नहीं दिखाई देती ।

धुंध^(५)—वि० घना । अत्यधिक । उ०—साधो ऐसा धुंध आंध-
यारा । इस बट अंतर बाग बगीचे इसी में सिरजनहारा ।—
कबीर सा०, भा० १, पृ० ६३ ।

धुंधक—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'धुंध'।

धुंधकार—संज्ञा पुं० [हि० धुंधकार] १. धुंधकार। गरज। गड़गड़ाहट।
२. धुंधकार। धंधेरा।

धुंधकारी—संज्ञा पुं० [सं० धुंधकारिन्] १. गोकर्ण के भाई का नाम जो अपने भाई से भागवत सुनकर तर गया था। २. उपद्रवी या अनाचारी व्यक्ति (ला०)।

धुंधमई—वि० [हि० धुंध + मई (प्रत्य०)] धुंधला। मलीन। जो साफ दिखाई न पड़े। स्पष्ट। उ०—धुंधमई का मेला नाही, नहीं गुरु महि चेला। सकल पसारा जिहि दिन नाही, जिहि दिन पुरुष अकेला।—कबीर श०, भा० २, पृ० ६१।

धुंधमार—संज्ञा पुं० [धुंधुमार] दे० 'धुंधुमार'। उ०—विक्रम में विक्रम धरम सुत धरम में, धुंधमार धोर में, धनेस बागें धन में।—मतिराम श०, पृ० ३७३।

धुंधमाल—संज्ञा पुं० [सं० धुंधुमार] दे० 'धुंधुमार'।

धुंधरी—संज्ञा स्त्री [हि० धुंध] १. गंदे गुबार। हवा में उड़ती हुई धूल। २. गंदे या धूल उड़ने के कारण होनेवाला धंधेरा। तारीकी।

धुंधरि(५)—संज्ञा स्त्री [हि०] दे० 'धुंधर'। उ०—दसी दिया धुंधरि रहिय, जलब धोणु बरपत।—प० रागो, पृ० ३२।

धुंधु—संज्ञा पुं० [सं० धुंधु] एक राक्षस का नाम जो मधु राजस का पुत्र था।

विशेष—हरिवंश में लिखा है कि धुंधु एक बार मरुभूमि में बाल के नीचे छिपकर संसार को नष्ट करने की कामना से कठिन तपस्या कर रहा था। वह जब साँस लेता था तब उसके माथे धुंधा और भंगारे निकलते थे, भूकंप होता था और बड़े बड़े पहाड़ तक हिलने लगते थे। जब महाराज बृहदश्व वानप्रस्थ ग्रहण करके और अपना राज्य अपने लड़के कुवलयश्व को देकर वन की ओर जाने लगे तब महर्षि उत्तंक ने जाकर उनसे धुंध की शिष्यायन की ओर कहा कि यदि आप इस दुष्ट राक्षस को न मारेंगे तो बड़ा अनर्थ हो जायगा। बृहदश्व ने कहा कि मैं तो वानप्रस्थ ग्रहण कर चुका हूँ और अब मैं नहीं उठा सकता। हाँ मेरा लड़का कुवलयश्व उसे अवश्य मार डालेगा। तदनुसार कुवलयश्व अपने सौ लड़कों को लेकर उत्तंक के साथ धुंधु को मारने चला। उस समय रिधगु ने भी लोकहित के विचार से उसके शरीर में प्रवेश किया था। कुवलयश्व और उसके लड़कों को देखकर धुंधु क्रोध से फुफकार छोड़न लगा जिससे कुवलयश्व के ६७ लड़के मारे गए। अंत में कुवलयश्व ने उसे मार डाला। तभी से कुवलयश्व का नाम धुंधुमार पड़ गया।

धुंधकार—संज्ञा पुं० [हि० धुंध + कार] १. धुंधकार। धंधेरा।
२. धुंधलापन। ३. नगाड़े का शब्द। धुंधकार। उ०—धराधर झुल्ले धरधर धुंधुकारन सों धार नर तजेंगे धरेया बल बाहु के।—गुमान (शब्द०)।

धुंधुमार—संज्ञा पुं० [सं० धुंधुमार] १. राजा विशंकु का पुत्र।
२. कुवलयश्व का एक नाम।

विशेष—दे० 'धुंधु'।

धुंधुरि—संज्ञा स्त्री [हि० धुंध] गंदे गुबार या धूँ के कारण होनेवाला धंधेरा। उ०—ढोल बजाती पावती गीत मचावती धुंधरि धूरि के धारनि।—द्विजदेव (शब्द०)। (ज) बीर अबीर की धुंधरि में कछु केर सों कै मुख फेरि कै भाँकी।—पद्माकर (शब्द०)। (ग) विकट कटक सबि नल के चलत दल धुंधुरि प्रताप सिषी धूम मलिनार्ई है।—गुमान (शब्द०)।

धुंधुरित—वि० [हि० धुंधुर + इत (प्रत्य०)] १. धुंधला किया हुआ। धूमिल। उ०—भुवन धुंधुरित धूलि धूलि धुंधुरित सुधूमहू।—पद्माकर (शब्द०)। २. दृष्टिहीन। धुंधली दृष्टिवाला। उ०—कलि गुलाल सों धुंधुरित सकल खालिनी खाल। रोरी मोहन के सुमिस गोरी गहे गुपाल।—पद्माकर (शब्द०)।

धुंधूकार(५)—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'धुंधकार'। उ०—प्रलय होय जब धुंधूकारा।—कबीर सा०, पृ० २८८।

धुंधूकारि—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'धुंधुकार'। उ०—आपि गुरु आपे ही चेला। धुंधूकारि प्रभु रहे अकेला।—प्राण०, पृ० ६७।

धुंसक(५)—वि० [हि०] दे० 'ध्वंसक'। उ०—आयो रच्छक जदुवंस की। धुंसक असुर बंस कंस की।—नंद० शं०, पृ० २२७।

धुँझा—संज्ञा पुं० [सं० धूमक] दे० 'धुँझा'।

धुँझाँस—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'धुँझाँस' [की०]।

धुँझाँसा^१—संज्ञा पुं० [हि० धुँझा] अत्यधिक धुँझा लगने से उत्पन्न कालिल [की०]।

धुँझाँसा^२—वि० १. धुँझे के कारण काला। २. धुँझे के स्वाद का।

धुँझाना—क्रि० स० [हि० धुँझा] धुँझ से युक्त होना। अधिक धुँझा के कारण काला होना।

धुँझायेंध—संज्ञा स्त्री [हि० धुँझा] धुँझ की गंध। धुँझ के कारण उत्पन्न गंध।

धुँझारा—वि० [हि० धुँझा] धुँझ के रंग का काला।

धुँझी—संज्ञा स्त्री [हि०] दे० 'धूँनी'।

धुँकार—संज्ञा स्त्री [सं० ध्वनि + कार] जोर का शब्द। गरज। गड़गड़ाहट। उ०—कहै पद्माकर त्यों दुँदुभी धुँकार सुनि अकबक बोले यो गनीम श्री गुनाही है।—पद्माकर (शब्द०)।

धुँगार—संज्ञा स्त्री [सं० धूम्र + आघार] बघार। तड़का। झोंक। उ०—तुरई चचेड़े टेढ़स तरे। जीर धुँगार मेल सब धरे।—जायसी (शब्द०)।

धुँगारना^१—क्रि० स० [हि० धुँगार] बघारना। झोंकना। तड़का देना। उ०—छाँछ छबीली घरी धुँगारी। अहरे उठत भार की न्यारी।—सूर (शब्द०)।

धुँगारना^२—क्रि० स० [अनु०] मारना। पीटना।

धुँदला(५)—वि० [हि०] दे० 'धुँधला'। उ०—उसका मस्तिष्क धुँदला हो गया।—ज्ञानदान, पृ० १५७।

धुँध—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'धुँधुमि' । उ०—जोगी होइ निसरा जो राजा । सुन नगर जानहुँ धुँध बाजा ।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० ३६७ ।

धुँधका—संज्ञा पुं० [हि० धुँध] दीवार या छत पर बना हुआ वह बड़ा छेद जो धुँध निकलने के लिये बनाया जाता है । धुँधका । धुँधारा ।

धुँधराना—क्रि० प्र० [हि० धुँधला] दे० 'धुँधलाना' । उ०—नव-पल्लव दीखत धुँधराये । होम धुँधौ जिन ऊपर छाये ।—लक्ष्मणसिंह (शब्द०) ।

धुँधलका—वि० [हि० धुँधलका] दे० 'धुँधला' । उ०—इस कारण उनकी कथाओं का वातावरण प्रायः रहस्यमय, धुँधलका और कुछ कुछ भय भोगा रोमांच जगा देनेवाला सा हो गया है ।—शुक्ल अभि० ग्रं०, पृ० ६२ ।

धुँधलका—संज्ञा पुं० वह स्थिति जब कुछ उजाला और कुछ अंधकार के कारण चीजें धुँधली दिस्तती हैं । यह स्थिति सूर्यास्त के बाद और सूर्योदय से पूर्व हुआ करती है ।

धुँधला—वि० [हि० धुँध + ला] १. कुछ कुछ काला । नएँ के रंग का । २. अस्पष्ट । जो साफ दिखाई न दे । ३. कुछ कुछ अंधेरा ।
मुहा०—धुँधले का वक्त = वह समय जब कुछ अंधेरा हो जाय और स्पष्ट दिखाई न दे । बहुत सवेरे या संध्या का समय ।

धुँधलाई—संज्ञा स्त्री० [हि० धुँधला + लाई (प्रत्य०)] दे० 'धुँधलापन' ।

धुँधलाना—क्रि० प्र० [हि० धुँधला] । धुँधला पड़ना ।

धुँधलापन—संज्ञा पुं० [हि० धुँधला + पन] धुँधले या अस्पष्ट होने का भाव । कम दिखाई देने का भाव ।

धुँधली—संज्ञा स्त्री० [हि० धुँधल + ई (प्रत्य०)] दे० 'धुँध' ।

धुँधली—वि० स्त्री० [हि० धुँध] अस्पष्ट । धूमिल । वह दृष्टि जिससे कम दिखाई दे । उ०—भास जब बाह्य ने बाह्यति दी तब यद्यपि यज्ञ के धुँध से उसको दृष्टि धुँधली हो रही थी, बाह्यति अग्नि ही में पड़ी ।—शकुंतला, पृ० ६७ ।

धुँधियाला—संज्ञा पुं० [हि० धुँधला] धुँधलापन । अंधेरा । उ०—ज्यों मोन शिशिर मे धुँधियाली बन व्याप्य किया करती कीड़ा ।—दीप०, पृ० १०६ ।

धुँधुआँ—संज्ञा पुं० [हि० धुँधु] धुँध निकलने के लिये छत में बना हुआ मोला या बड़ा छेद ।

धुँधुआना—क्रि० प्र० [हि० धुँधु] धुँध के साथ जलना । धुँध देते हुए जलना ।

धुँधुरी—संज्ञा स्त्री० [हि० धुँधुरि] १. गर्द गुबार से उत्पन्न अंधेरा । २. धुँधलापन । ३. भ्रष्ट का धुँध नष्टक रोग ।

धुँधुरी—वि० [हि०] दे० 'धुँधुरी' । उ०—धुँधुरी दिस दिस सबग दिसा । दिशि पीत सु पतिय अद निसा ।—पृ० २०, २४, १८४ ।

धुँधुवाना—क्रि० प्र० [सं० धूम, हि० धुँध] धुँध देना । धुँध दे देकर जलना । उ०—बिता ज्वाल शरीर बन दावा लागि

लगी जाय । प्रगट धुँधौ नहि देखिए उर अंतर धुँधुवाय ।—गिरिधर (शब्द०) ।

धुँधेरी—संज्ञा स्त्री० [हि० धुँध या धुँधुरि] धुँध । गर्द गुबार के कारण होनेवाला अंधेरा । उ०—दिग्गज दबड दबकत दिग्गपाल धुरि, धुरि की धुँधेरी सौं अंधेरी आभा मानु की ।—गुमान (शब्द०)

धुँधेला—संज्ञा पुं० [हि० धुँध + ऐला (प्रत्य०)] १. बदमाश । पाजी । २. दगाबाज । धोखेबाज ।

धुँधौ—संज्ञा पुं० [सं० धूम] दे० 'धुँध' ।

धुँधौकश—संज्ञा पुं० [हि० धुँध + कश] दे० 'धुँधौकश' ।

धुँधौदान—संज्ञा पुं० [हि० धुँध + दान (प्रत्य०)] दे० 'धुँधौदान' ।

धुँधौधार—वि० [हि० धुँधौधार] दे० 'धुँधौधार' ।

धुँधौधार—क्रि० वि० [हि०] दे० 'धुँधौधार' ।

धुँध—संज्ञा पुं० [सं० ध्रुव] दे० 'ध्रुव' । उ०—उवरघी नाक सु नाग धुँध दिव अस्तुति परमान ।—पृ० २०, १ । १६६ ।

धुँधौ—संज्ञा पुं० [सं० धूम्र] १. सुलगती या जलती हुई चीजों से निकलकर हवा में मिलनेवाली भारी जा कोयले के लुहम अगुओं से लदी रहने के कारण कुछ नीलापन या कालापन लिए होती है । धूम । उ०—बिता ज्वाल शरीर बन दावा लागि लागि जाय । प्रगट धुँधौ नहि देखिए उर अंतर धुँधुवाय ।—गिरिधर (शब्द०) ।

धुँधौ—धुँधौ धक्कड़ = (१) धुँधौ होना । धुँधौ फैलना । (२) शोरगुल । हल्ला गुल्ला । उ०—गरमागरम कचोड़ी मसाले-दार चिल्लाते धुँधौ धक्कड़ मचाते हलुवाई लोग अपनी दुकान की नौकायें बढ़ाते चले जाते ।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ११४ ।

क्रि० प्र०—उठना ।—छूटना ।—छोड़ना ।—निकलना ।—होना ।

मुहा०—धुँधे का धीरहर = थोड़े ही काल में मिटने या नष्ट होनेवाली वस्तु या आयोजन । अणभंगुर वस्तु । उ०—(क) कांबरा हरि की भक्ति बिन धिक् जीवन ससार । धुँधौ का भा धीरहर जात न लागे बार ।—कबीर (शब्द०) । (ख) धुँधौ को सो धीरहर देखि तू न भुले रे ।—तुलसी (शब्द०) । धुँधे के बादल उड़ाना = भारी गप हँकना । झूठ मूठ बड़ी बड़ी बातें कहना । धुँधौ देना = (१) सुलगती हुई वस्तु का धुँधौ छोड़ना । धुँधौ निकालना । जैसे,—यह तेल जलने में बहुत धुँधौ देता है । (२) धुँधौ लगाना । धुँधौ पड़वाना । जैसे,—उसकी नार में मिचों का धुँधौ दो । धुँधौ निकालना या काढ़ना = बढ़ बढ़कर बातें कहना । शेखी हाँकना । उ०—जस अपने मुँह काढ़े धुँधौ । बाहेसि परा नरक के कुप्रा ।—जायसी (शब्द०) । धुँधौ रमना = धुँधे का छाया रहना । धुँधौ सा मुँह होना = चेहरे की रंगत उड़ जाना । चेहरा फीका पड़ जाना । लज्जा से मुँह मलिन हो जाना । (किसी वस्तु का) धुँधौ होना = काला पड़ना । अंधेरा होना । धूमला होना । मुँह धुँधौ होना = दे० 'धुँधौ सा मुँह होना' ।

२. घटाटोप । उमड़ती हुई वस्तु । भारी समूह । ३. घुरा । घउशी । उ०—धुआँ देखि करदूषण केरा । जाय सुपनसा रावण प्रेरा ।—तुलसी (शब्द०) ।

मुहा०—धुएँ उड़ाना = धजियाँ उड़ाना । ध्वन्न भिन्न करना । टुकड़े टुकड़े करना । नाश करना । धुएँ बखेरना = दे० धुएँ उड़ाना ।

धुआँकश—संज्ञा पुं० [हि० धुआँ + का० कश (= खींचना)] भाप के जोर से चलनेवाली नाव या जहाज । प्रगिनबोट । स्टीमर ।

धुआँदान—संज्ञा पुं० [हि० धुआँ + दा० धाधान से हि० प्रत्य० दान] दान में धुआँ निकलने के लिये बना हुआ छेद । चिमनी ।

धुआँधार^१—वि० [हि० धुआँ + धार] १. धुएँ से भरा । धूममय । २. गहरे रंग का । भड़कीला । तड़क भड़क का । भय । ३. धुएँ का भा । काला । रयाह । ४. बड़े जोर का । बड़े वेग का और बहुत अधिक । प्रचंड । घोर । जैसे, धुआँधार वर्षा, धुआँधार घटा, धुआँधार नशा । उ०—भट्टो नहि सिल लोड़ा नहि घोरधार । पल्लव की फेरन में चढ़त धुआँधार ।—भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० ८७ ।

धुआँधार^२—क्रि० वि० बड़े वेग से और बहुत अधिक । बहुत जोर से । जैसे, धुआँधार गरमना ।

धुआँना—क्रि० प्र० [हि० धुआँ से नामिक यातु] धुएँ से बस जाना । अधिक धुएँ में रहने के कारण स्वाद और गंध में बिगड़ जाना (रुक्वान आदि के लिये) ।

धुआँयँध^१—वि० [हि० धुआँ + यँध] जिसमें धुएँ की महक बस गई हो । घुरा की तरह पड़नेवाला ।

धुआँयँध^२—संज्ञा स्त्री० धूमन न पकने के कारण धानेवाली डकार । धूम ।

धुआँरा—संज्ञा पुं० [हि० धुआँ + रा (प्रत्य०)] दान में धुआँ निकलने के लिये बना हुआ छेद या छिड़की । चिमनी ।

धुआँस—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'धुआँस' ।

धुआँसा^१—संज्ञा पुं० [हि० धुआँ] धर की छत में जमी हुई धुएँ की कजरी । भाग जलने के स्थान के ऊपर की छत में जमा कानिष्ठ या धुआँ ।

धुआँसा^२—वि० धुएँ से बना हुआ । धाव दीकन लगने के कारण स्वाद और गंध में बिगड़ा हुआ (रुक्वान आदि के लिये) ।

धुआँ(उ)—संज्ञा पुं० [हि०] नाश । मरण ।

धुईं(उ)—सं० स्त्री० [हि०] दे० 'धुईं' । उ०—धध पुंड लज्जाट रेखा चक्र भोग सुहावन । चंद्रहास विगार बीरी धुईं ध्यान जराबन ।—पल्लव, भा० ३, पृ० ६४ ।

धुकंतो(उ)—संज्ञा स्त्री० [हि० धुकना] धाम । प्रगिन । जवाना । दाढ़ । उ०—विण जागरी माड जिउ, गया धुकती मेल्ह ।—हीना, दू० १६३ ।

धुक—संज्ञा स्त्री० [देश०] कजाबलू बटने की सलाई ।

धुकड़धुकड़—संज्ञा पुं० [धनु०] १. भय आदि की आसंका से

होनेवाली चित्त की अस्थिरता । बबराहट । २. आगा पीछा । पसोपस ।

धुकड़ी—संज्ञा स्त्री० [देश०] छोटी थैनी । बटुआ ।

धुकधुकी—संज्ञा स्त्री० [धुक धुक से धनु०] १. वक्षस्थल का वह भाग जो नीचे होता है । पेट और छाती के बीच का भाग जो कुछ गहरा सा होता है । २. कलेजा । हृदय । ३. कलेजे की चड़कन । कंप । उ०—आज धुकधुकी में मेरी भी ऐसा ही उद्दीप्त मनोत ।—साकेत, पृ० २८३ । ४. डर । भय । खौफ ।

क्रि० प्र०—लगना ।

५. एक गहना जो गले में पहना जाता है और छाती पर लटकता रहता है । पदिक । जुगनू ।

धुकना^१—क्रि० प्र० [हि० झुकना] नीचे की ओर ढलना । निहुरना । नबना । उ०—ढगमगात गिर परत पइन पर भुज भ्राजत नंदलाल । जनु श्रीधर श्रीधरत अधोमुख धुकत भरानि मानो नमि नाल ।—सूर (शब्द०) । २. गिर पड़ना । उ०—(क) लेत उसास नयन जल भरि भरि धुकि जु परो धरि धरणी ।—सूर (शब्द०) । (ख) रंड पर रंड धुकि परे धरि धरणि पर गिरत ज्यों सग करि बज्र वारे ।—सूर (शब्द०) । ३. वेग से दूटना । झपटना । दूट पड़ना । उ०—(क) तुलसिदास रघुनाथ नाम धुनि प्रकनि गीध धुकि धायो ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) मानो प्रतच्छ परबत की नभ लीक लसी कपि ज्यो धुकि धायो ।—तुलसी (शब्द०) । ४. घातंकित होना । अस्त होना । चबड़ाना । उ०—राजन रात सबे उमराध खुमान की धाक धुके यों कहै है ।—भूषण ग्रं०, पृ० १२७ ।

धुकनी^१—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'धुनी' । उ०—सुगंध को धुकनी से अम्लान नाकों में दम धा गया ।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० २२ ।

धुका—संज्ञा पुं० [धनु०] एक प्रकार का बाजा । उ०—बाजे बाजन जूझि के, धुका दमामा भार ।—चित्रा०, पृ० १६१ ।

धुकाना^१—संज्ञा स्त्री० [हि० धमकना] धुंधकार । धुंकार । घोर शब्द । गड़गड़ाहट का शब्द । उ०—सैयद समर्थ भूर मली प्रकबर दल, चलत बजाय मारु हुंहुमी धुकान की ।—गुमान (शब्द०) ।

धुकाना^२—क्रि० प्र० [हि० धुकना] १. झुकना । नबना । उ०—भूषण की भ्रम औरंग के सिब भौसिला भूप की धाक धुकाए ।—भूषण ग्रं०, पृ० ६५ । २. गिराना । ढकेलना । ३. पछाड़ना । पटकना । उ०—करत सरस जल केलि कबहुँ मीनहि गहि लावन । कबहुँ ह्वै असवार धाय डड्डार धुकावत ।—सुदन (शब्द०) ।

धुकाना^३—क्रि० प्र० [धनु० धूम + करण] धुनी देना ।

धुकार—संज्ञा स्त्री० [धु से धनु०] १. नगाड़े का शब्द । उ०—इं दुहुभी धुकार गगन महँ बरसे फूल अमाने ।—रघुराज (शब्द०) ।

२. ध्वनि । आवाज । उ०—मननात गोतिन की मनक अनु धुनि धुकार मिलीन की ।—हि० मत०, छंद ८० ।

धुकारी(५)†—संज्ञा स्त्री० [हि० धुकार + ई (प्रत्य०)] दे० 'धुकार' ।

धुकरपुकर—संज्ञा पुं० [धनु०] दे० 'धुकड़पुकड़' ।

धुककना(५)†—क्रि० प्र० [हि० धुकना] दे० 'धुकना' ।

धुक्करना—क्रि० प्र० [हि० धुकार] गरजना । चिल्लाना । चीखना । उ०—मदजल धार बरषत जिमि धाराधर, धक्कनि सौ धुक्करे धरनिधर आए तैं ।—मति० बं०, पृ० ३८६ ।

धुक्कारना(५)†—क्रि० प्र० [हि०] दे० 'धुकाना' ।

धुखना(५)—क्रि० प्र० [हि० धुकना] जलना । मझकना । उ०—धड़के डर कातर क्षीर धुखे ।—रा० क० पृ० ३४ ।

धुगधुगी†—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'धुकधुकी' ।

धुज(५)—संज्ञा पुं० [सं० ध्वज] दे० 'ध्वज' ।

धुजटी—संज्ञा पुं० [सं० धुजटि] दे० 'धुजटि' ।

धुजा(५)†—संज्ञा स्त्री० [सं० ध्वजा] १. दे० 'ध्वजा' । २. विष्णु के तलवे का झंडे का चिह्न । उ०—बिनवत जुग प्रकृतित जलज, करि कलि केक समान । धुजा भुजा की छाहि में, देहु अभय पद दान ।—भारतेन्दु ग्रं०, भा० २, पृ० ६२६ ।

धुजाना(५)—क्रि० प्र० [सं० ध्वज (= कपन), गुज० धुजवु] १. करि करन । उ०—मुगट उतार मुघट दसमुखर, लेकर उधट गुहाई लंका ।—रघु० क०, पृ० १८० । २. उड़ाना । फैलाना । उ०—गगनि धरत मग धरनि धुजावें धूरि ।—हम्मीर०, पृ० २३ ।

धुजिनी(५)†—संज्ञा स्त्री० [सं० ध्वजिनी] सेना । फौज । उ०—करि धुजिनी महें धंसे धाय खल खलमल भदो न थोरा ।—रघुराज (शब्द०) ।

धुज(५)—संज्ञा पुं० [सं० ध्वज हि० ध्वज] दे० 'ध्वज' । उ०—गुंजत निमान फहरात धुज ।—ह० रामो, पृ० ८१ ।

धुडंगी(५)†—वि० [हि० धूर + अंगी] जिसके शरीर पर कोई वस्त्र न हो, केवल धूल ही धुन हो ।

धुणि संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'ध्वनि' । उ०—धासणु चरती धुणि अवाज । 'धर्म कमल मुख कीया बिनासु ।—प्राण०, पृ० १३४ ।

धुत^१—वि० [सं०] १. कपित । हिलता हुआ । २. स्थल । तजा हुआ । ३. तिरस्कृत । डाँटा या लताड़ा हुआ (स्त्री) ।

धुत^२—अव्य० [हि०] दे० 'धुत' ।

धुतकार—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'धुतकार' ।

धुतकारना—क्रि० प्र० [हि०] दे० 'धुतकारना' ।

धुताई(५)†—संज्ञा स्त्री० [हि० धूत + आई (प्रत्य०)] दे० 'धूतता' ।

धुतारा(५)—वि० [सं० धूत (= धुत) + हि० धारा (प्रत्य०)] धूत । पाजी । दुष्ट । उ०—पीसुन मिले सबहि धुतारा सबहीं ज्ञान लावनहारा ।—कबीर सा०, पृ० ५३७ ।

धुति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. हिलना । कपना (स्त्री) ।

धुतू—संज्ञा पुं० [धनु०] दे० 'धूत' ।

धुतूरा—संज्ञा पुं० [सं० धुस्तूर] दे० 'धूतूरा' ।

धुत्ता†—वि० [धनु०] बेहोश । बेमुध । नशे में चुर ।

धुत्ता^१—संज्ञा पुं० [सं० धूतता] धूतता । दगाबाजी । कपट । छल । क्रि० प्र०—देना ।—बताना ।

धुत्ता^२—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की मछली ।

धुधराना(५)—क्रि० प्र० [हि० धंध] जलाना । उड़ाइना । नष्ट करना । उ०—इन मूर्तिमान ढेर धर धुधरावा ।—कबीर ग्रं०, पृ० ३१७ ।

धुधुकना(५)—क्रि० प्र० [धनु०] दे० 'धधकना' । उ०—जेहि विधि धधुकत नाद मनाटद तेहि विधि मुरत लगावे ।—भीखा० भा०, पृ० १७ ।

धुधुकार—संज्ञा स्त्री० [धुधु से धनु०] १. धू धू शब्द का शोर । धोर शब्द । कड़ा शब्द । गरज के समान शब्द । उ०—बाजन अवाजन को कहाँ लो गनावे कोउ धनकनि धोमा की धुकारन गो धुधुकार ।—गोपाल (शब्द०) ।

धुधुकारी—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'धुधुकार' । उ०—माची धोसन की धुधुकारी ।—रघुराज (शब्द०) ।

धुधुकी—संज्ञा स्त्री० [धनु०] दे० 'धुधुकार' ।

धुन^१—संज्ञा पुं० [सं० धून, धातु धुनुति से] कपने की क्रिया या भाव । कपन ।

धुन^२—संज्ञा स्त्री० [हि० धुनना] १. किसी काम को निरंतर करते रहने की अनियमित प्रवृत्ति । बिना आगा पीछा सोचे धीरे धीरे कोई काम करते रहने की इच्छा । लगन । जैसे,—आज कल उन्हें अपना पैदा करने की धुन है ।

क्रि० प्र०—लगना ।—समाना ।

धुन^३—धुन का पक्का = वह जो आरम्भ किए हुए काम को बिना पूरा किए न छोड़े ।

२. धन की तरंग । मीज । जैसे,—धुन ही तो है, उठे और चल पड़े । ३. मोच । विचार । फिक्र । चिंता । खयाल । जैसे,—इस समय वे किसी धुन में बैठे हैं, उनसे बोलना ठीक नहीं ।

मुहा०—धुन समा जाना = विचार में आ जाना । मति निश्चित हो जाना । उ०—एक दिन धुन जो समाई तो आजाद मिरजा ऐन वक्त कचहरी से नदरत हो गए ।—फिसाना०, भा० ३, पृ० ५० ।

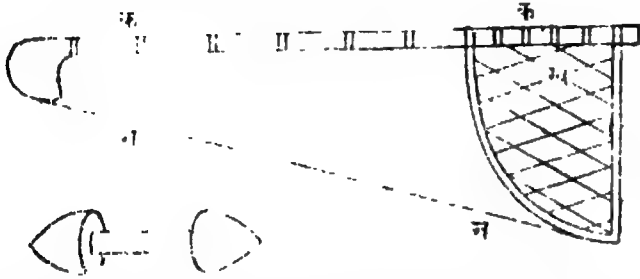
धुन^४—संज्ञा स्त्री० [सं० धुनि] १. स्वरों के उतार चढ़ाव आदि के विचार से किसी गीत को गाने का ढंग । गाने का तर्ज । जैसे,—यह गजन कई धुनों में गाया जा सकता है । २. संपूर्ण जाति का एक राग जिसमें सब शुद्ध स्वर लगते हैं । ३. दे० 'ध्वनि' ।

मुहा०—धुन धुन रोना = सिर धुन धुन कर रोना । अत्यधिक दुःखी होना । उ०—सुख तजि जम के बलि परे मूढ़ धुने धुन रोत ।—प्राण०, पृ० २५३ ।

धुनकना—क्रि० सं० [धनु०] १० 'धुनना' ।

धुनकार—संज्ञा स्त्री० [सं० ध्वनि] ध्वनि । आवाज । स्वर । उ०—
पंच शब्द धुनकार धुन, बाजे गगन निसान । —कबीर सा०
सं०, पृ० १० ।

धुनकी—संज्ञा स्त्री० [सं० धनुस्] १. धुनियों का वह धनुस् के
आकार का छोटा जिनसे वे रई धुनते हैं । पिजा । फटका ।



विशेष—इसमें (दे० बिज) क क हलकी पर मजबूत लकड़ी
का एक डंडा होता है और इसके सिरे पर काठ का एक और
टुकड़ा ख होता है । इस सिरे से क क लकड़ी के दूसरे सिरे
तक एक तंतु ग ग खूब कसकर बंधी होती है । धुननेवाला क
क डंडे को बाए हाथ में पकड़कर उकड़ू बैठ जाता है और तंतु
को रई के ठेर पर रखकर उसपर बार बार प्रायः हाथ भर
लंबी लकड़ी के एक दस्ते से, जिसके दोनों सिरे अधिक मोटे
और लट्ठदार होते हैं और जिसे मुठिया, बेसन या हथ्था
कहते हैं, आघात करता है जिससे रई के रेशे अलग अलग हो
जाते और बिनीले निकल जाते हैं । कभी कभी अधिक सुबोते
के लिये क क डंडे को ऊपर छन में लटकते हुए किसी छोटे
धनुस् से भी बांध देते हैं ।

२. छोटा धनुस् जो प्रायः लड़कों के खेलने अथवा कभी कभी
थोड़ी बहुत रई धुनने के भी काम में आता ।

धुनना—क्रि० सं० [हि० धुनकी] १. धुनकी से रई साफ करना
जिसमें उसके बिनीले अलग हो जायें, गर्द निकल जाय और
रेशे अलग अलग हो जायें । २. खूब मारना पीटना ।

मुद्दा० धुन के रख देना = बहुत अधिक पीटना । बहुत मारना ।
उ०—तुम लोगों की कजा आई है । अब मैं धुन के रख
दूंगा । —फिसाना०, भा० ३, पृ० ३०० । —गिर धुनना =
दे० 'मिर' के० मुद्दा० ।

संगो० क्रि०—डालना । —देना ।

३ बार बार कहना । कहने ही जाना । जैसे,—तुम तो अपनी ही
धुनते हो दूसरे की सुनने ही नहीं । ४. किसी काम को बिना रुके
बराबर करते जाना । जैसे,—धुने चलो अब थोड़ी ही दूर है ।

धुनवाना—क्रि० सं० [हि० 'धुनना' का प्रे० रूप] धुनने का काम
दूसरे से कराना । दूसरे को धुनने में प्रवृत्त कराना । २. संयोग
कराना (बाजकर) ।

धुनवी—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'धुनकी' ।

धुनही—संज्ञा स्त्री० [सं० धनुष] धनुष । धनुड़ी । उ०—तीन पनच
धुनहीं करन । बड़े कटन तंडी । —पृ० रा०, ७१७६ ।

धुना—संज्ञा पु० [हि०] दे० 'धुनिया' ।

धुनाई—संज्ञा स्त्री० [हि० धुनना] १. पिटाई । मरम्मत । २. धुनने
का पारिश्रमिक ।

धुनि—संज्ञा स्त्री० [सं०] नदी । उ०—वा जमुना के तीर सोई धुनि
आँखिन आवे । —भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० १३२ ।

धुनि^२—संज्ञा स्त्री० [सं० ध्वनि] १. दे० 'ध्वनि' । उ०—आनन सरद
सुधाकर सम तसु बोले मधुर धुनि बानी । —विद्यापति, पृ०
२१८ । २. चक्र और कुंडलिनी शक्ति के संपर्क से उत्पन्न
ध्वनि । उ०—बाँधिया मूल देखिया अस्थूल, गगन गरजंत धुनि
ध्यान लागा । —गमानंद०, पृ० ३ ।

धुनिआ—संज्ञा पु० [हि० धुनिया] दे० 'धुनिया' । —बख्तरला-
कर, पृ० १ ।

धुनिकारि—संज्ञा स्त्री० [सं० ध्वनि] दे० 'ध्वनि' । उ०—निकर
करे धनहु धुनिकारि । —प्राण०, पृ० १११ ।

धुनियाँ—संज्ञा पु० [हि० धुनना] वह जो रई धुनने का काम करता
हो । वेहना ।

विशेष—भारत में प्रायः मुसलमान ही रई धुनने का काम
करते हैं ।

धुनिया—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'धुनी' । उ०—कोठा ऊपर कोठरी,
जोगी धुनिया रमाया हो । भंग मभूत लगायके जोगी रैन
गँवाया हो । —कबीर सा०, भा० २, पृ० ७७ ।

धुनिहारा—संज्ञा पु० [देश०] हड़डी में का दर्द ।

धुनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] नदी ।

यौ०—गुरधुनी ।

धुनी^१—संज्ञा स्त्री० [सं० ध्वनि] दे० 'ध्वनि' ।

धुनी^२—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'धुनी' ।

धुनीनाथ—संज्ञा पु० [सं०] सागर । समुद्र ।

धुनेचा—संज्ञा पु० [देश०] एक प्रकार के सन का पीछा जिसे बंगाल में
काली मिर्च की बेलों पर छाया रखने के लिये लगाते हैं ।

धुनेहा—संज्ञा पु० [हि०] दे० 'धुनिया' ।

धुन्नना—क्रि० सं० [हि०] दे० 'धुनना' । उ०—धम्म सुमिर निज
सीस धुन्नइ । —कीर्ति०, पृ० १८ ।

धुन्नी—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'ध्वनि' । उ०—बजे बाज अन्नेक
धुन्नी अपारं । —पृ० रा०, पृ० १७७ ।

धुपना—क्रि० प्र० [हि० धुनना] धुनना । धोना । उ०—(क)
सेहूँ को सों धाँक तपाये प्रगट ललायो । नैन नीर सों
धुयो और हूँ जन जमकायो । —अपास (शब्द०) । (ख)
मुरत नैन समाय धुये केहँ नहि धोये । —अपास (शब्द०) ।

धुपाना—क्रि० प्र० [हि० धूप (= सुगंध द्रव्य)] धूप देना । धूप के
धूप से सुवासित करना । उ०—मनसा मंदिर माहि धूप धुपाइये ।
प्रेम प्रीति की माल राम चढाये । —रै० बाणी, पृ० ६६ ।

धुपाना^२—क्रि० सं० [हि० धूप (= सुगंधित)] किसी चीज को सुखाने
आदि के लिये धूप में रखना । धूप दिखाना ।

धुपेना—संज्ञा स्त्री० [हि० धूप+एना (प्रत्यय)] वह पात्र जिसमें प्राग
रखकर ऊपर से धूप डाल देते हैं । धूप सुलगाने का पात्र ।
धूपदानी ।

धुपेली—संज्ञा स्त्री० [हि० धूप + एषा (प्रत्य०)] गरमी में पसीने के कारण निकलनेवाली फुंसी। घंभीरी। पिली।

धुप्पला—संज्ञा स्त्री० [बोल०] धोला। छल। प्रवचना।

धुप्पसा—संज्ञा स्त्री० [बोल०] धुप्पल।

धुप्पु—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'धूप'। उ०—बहु जागि न सोवे खाइ न भुषा जिसदे धुप्पु न छाही।—सुंदर ग्रं०, भाग १, पृ० २०६।

धुब(५)—वि० [सं० धूम्र, हि० धुप] क्रोध से जलते हुए। उ०—धर्तसेन तहस्वर धाहने। मिल लाख धले धुब एक मते।—रा० क०, पृ० ८१।

धुबला—संज्ञा पुं० [सं०] लहंगा। धवरा।

धुबिया(५)—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'धोबी'। उ०—धुबिया फिर मर जायगा बाहर लीजे धोय।—पलटू०, भा० १, पृ० ४।

धुबे(५)—वि० [हि० धूप (= प्रचंड) वेग] प्रबल (वेग)। मयंकर। उ०—जबना राठोड़ी धुबे जंग। उणु दिखा भीम धायी मयंग।—रा० क०, पृ० ७३।

धुमई—वि० [सं० धूम्र + ई (प्रत्य०)] धूएँ के रंग का। जिसका रंग धूएँ की तरह काला हो।

धुमई^२—संज्ञा पुं० [सं० धूम्र] वह बैल जिसका रंग धूएँ का मा हो।

विशेष—ऐसा बैल साधारणतः मजदूर और तेज समझा जाता है।

धुमक(५)—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'धमक'। उ०—तदनंतर भउ कहसन, धुमक सम्मार—वरण०, पृ० १५।

धुमरा—वि० [सं० धूम + हि० रा० (प्रत्य०)] दे० 'धूमिल'।

धुमला—संज्ञा पुं० [सं० धूम्र + हि० ला (प्रत्य०)] जिसे दिखाई न दे। धंधा।

धुमलाई—संज्ञा स्त्री० [हि० धूमिल + घाई (प्रत्य०)] १. धूमिल होने का भाव। २. धंधकार। धंधेरा।

धुमरा—वि० [सं० धूम्र + धारा (प्रत्य०)] धूएँ के रंग का। धूमिल।

धुमिला—वि० [हि०] दे० 'धूमिल'।

धुमिलना—क्रि० प्र० [हि० धूमिल] धूमिल होना। धुंधलावा।

धुमिलाना—क्रि० प्र० [हि० धूमिल से नामिक धातु] धूमिल करना। धुंधला करना।

धुमैला—वि० [हि०] दे० 'धूमिल' उ०—मुखज तांबुल बेई धधर सुरग सेइ सो काहे भेज धुमैला।—विद्यापति, पृ० ८४।

धुमैला—वि० [हि०] दे० 'धुमैला'।

धुमैली—वि० [हि० धूमिल] धुंधला। धुंधली। उ०—छा वर्ष तक हम लोग श्री नगर में रहे। मुझे वही की बहुत ही धुमैली सी याद है।—बिप्लवी, पृ० ४१।

धुम्म(५)—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'धूम'। उ०—भुजाय भाग मेर बाध ५-३०

इंद्र बाग धमक्यं। बरन्न धुम्म धुम्मरं, सुरं पुरं सु धुम्बं।—पृ० रा०, २। १४७।

धुम्मर(५)—वि० [हि० धूमिल] धूमिल। धुंधला। उ०—भुजाय भाग मेर नान इंद्र बाग धमक्यं। बरन्न धुम्म धुम्मरं, सुरं पुरं सु धुम्बं।—पृ० रा०, २। १४७।

धुरंधर^१—वि० [सं० धुरन्धर] १. भार उठानेवाला। १. जो सब में बहुत बड़ा, भारी या बली हो। जैसे, धुरंधर पंडित। २. श्रेष्ठ। प्रधान।

धुरंधर^२—संज्ञा पुं० १. बोक ढोनेवाला जानवर। जैसे, बैल, खच्चर, गधा आदि। २. वह जो बोक ढोता हो। बोक ढोनेवाला कोई जीव। ३. रामायण के अनुसार एक राक्षस जो प्रहस्त का मंत्री था। ४. धी का पेड़।

धुर^१—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. जूझा जो बैलों आदि के कंधे पर रखा जाता है। २. बोक। भार। ३. गाड़ी आदि का घुरा। घस। ४. खूंटो। ५. शीर्षस्थान। मन्दी घोर ऊँची जगह। ६. उंगली। ७. बिनगरी। ८. भाग। धंश। ९. धन। संपत्ति। १०. गंगा का एक नाम।

धुर^२—संज्ञा पुं० [सं० धुर] १. गाड़ी या रथ आदि का घुरा। घस। २. शीर्ष या प्रधान स्थान। ३. भार। बोक। उ०—जो न होत जग जन्म भरत को। सकल धर्म धुर धरणि भरत को।—तुलसी (मन्द०)। ४. धारंभ। शुरु। उ०—धुर ही ते लोढो लायो है लिए फिरत सिर भारी।—धुर (शब्द०)।

मुहा०—धुर सिर से = बिल्कुल धारंभ से। बिल्कुल शुरु से। जैसे,—तुमने बना बनाया काम बिगाड़ दिया, अब हमें फिर धुर सिर से करना पड़ेगा।

५. जूझा जो बैलों आदि के कंधे पर रखा जाता है। ६. जमीन की माप जो बिस्वे का बीसवां भाग होता है। बिस्वांसी। ७. प्रथम। उ०—जलबा काज नरकी जादम। धुर उठी पतिव्रत सखी प्रम।—रा० क०, पृ० १७। ८. आसामी। उ०—बदले तुसरे बाणिजी, धुर गोढ़ा लै धान।—बिकी० ग्रं०, भा० २, पृ० ६५।

धुर^३—अव्य० [सं० धुर] न धर न उधर। बिल्कुल ठीक। सटीक। सीधे। जैसे, धुर ऊपर, धुर नीचे। उ०—धंतःपुर धुर बाध उतारें धारवी। निरलि पुत्र को कप सख्य बिसारती।—रघुनाथ (शब्द०)। २. एक दम दूर। बिल्कुल दूर। उ०—मोती सादन पिय गए धुर पटना गुजरात।—गिरिधर (शब्द०)।

धुर^४—वि० [सं० धुव] पक्का। धड़।

धुरई—संज्ञा स्त्री० [हि० धुर + ई] कुर्र के खंभों आदि के बीच में घाड़े टिकाए हुए वे दोनो बाँम या लंबी लकड़ियाँ जिनके जमीन पर वाले सिरे आपस में सटाकर मजबूती से बांधे रहते हैं और दूसरे सिरों के बीच में वह छोटी लकड़ी या खूंटो जड़ी रहती है जिसमें गराड़ी पहनाई होता है।

धुरकट—संज्ञा पुं० [हि० धुर (= सिर या आगे, आरंभ) + कुट (= कटीतो या कुत)] वह लगान जो छमागी जमींदार को जेठ में पेशगी देते हैं।

धुरकिल्ली—संज्ञा स्त्री० [हि० धुरा + कील] गाड़ी में वह कील जो धुरी को घाँक से घटकाने के लिये भीतर की ओर धुरी के सिरे पर लगा दी जाती है।

धुरचट—संज्ञा पुं० [?] अधिकता। प्रचुरता।

धुरजटी—संज्ञा पुं० [सं० धूर्जटि हि०] दे० 'धूर्जटि'।

धुरड्डो—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'धुल्लेडी'।

धुरना—संज्ञा पुं० [सं० धूर्ण] १. पीटना। मारना। २. बजाना। ३. पहुँचे जाय राजगिरि द्वारे धुरे निशान सुदेश। —सूर(शब्द०)। ३. दाएँ हुए घान के पयाण को सूसा बनाने के लिये फिर से दाना। पुष्पारी करना।

धुरपद—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'धूपद'।

धुरमुटा—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'दुरमुस'।

धुरवा—संज्ञा पुं० [सं० धूर + वाह] बादल। मेघ। उ० बाल-रंध मुख अगर धूम जनु जलगर धुरवा। —संद० ग्रं०, पृ० २०३।

धुरहट्टा—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'धुल्लेडी'। उ०—दोषहर को धुरहट्टा खेलने के समय नशे में रहने के कारण कुछ लोगों में दंगा हो गया।—अमिट०, पृ० ६६।

धुरहरी—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'धुल्लेडी'। उ०—फेर धुरहरी भई दूसरे दिन जब अगिन जुभोरी।—भारतेंदु ग्रं०, भाग १, पृ० ५०५।

धुरा—संज्ञा पुं० [सं० धूर] लवड़ी या लोहे का वह टंटा जो पहिए की गराड़ी के बीचोबीच रहता है। वह डंटा बिममे पहिया पहनाया रहता है और जिसपर वह घूमता है। अक्ष।

धुरा—संज्ञा पुं० [सं०] मार। बोक।

धुराधुर—संज्ञा पुं० [हि० धुरा] सहाय। आचार।

धुराना—संज्ञा पुं० [पुराना का यत्न] अंग का। छोर का। उ०—अपने मिलनेवालों में से एक कोई बड़े पड़े लिये धुराना बराने डाग, बड़े धाग वह लटगान लाए । (उपोद्वात), पृ० २।

विशेष—इसका प्रयोग पुराना के साथ ही होता है। जैसे—पुराना धुराना। पुरानी धुरानी।

धुरियाधुरंग—संज्ञा पुं० [देश०] वह गाना जो बाजे या माल के साथ न गाया जाय। जिस (गाने) को बाजे या माल की अंग्रेजा न हो। २. अकेला। जिसके साथ और कोई न हो।

धुरियाना—संज्ञा पुं० [हि० धूर] १. किसी वस्तु को धूल से ढँकना। किसी वस्तु पर धूल डालना। २. ऊँच के खेत को पहले पहल मोड़ना। ३. किसी ऐब या बदनामी को किसी मुक्ति से दबा देना।

धुरियाना—संज्ञा पुं० १. किसी चीज का धूल से ढँका जाना।

२. ऊँच के खेत का पहले पहल मोड़ा जाना। ३. किसी ऐब या बदनामी का किसी प्रकार दबना या दबाया जाना।

धुरियामल्लार—संज्ञा पुं० [देश० धुरिया + मल्लार] एक प्रकार का मल्लार जो संपूर्ण जाति का है और जिसमें सब शुद्ध स्वर लगते हैं।

धुरी—संज्ञा स्त्री० [हि० धुरा] दे० 'धुरा'।

धुरीण—संज्ञा पुं० [सं०] १. बोक सँभालनेवाला। २. मुख्य। प्रधान। ३. धूरंधर। ४. जिसे कोई काम सौंपा जाय। जिसे कोई उत्तरदायित्व प्रदान किया जाय।

धुरीण—संज्ञा पुं० १. रथ आदि में जोते जानेवाले छोटे आदि। २. कार्यभार सँभालनेवाला व्यक्ति। ३. प्रमुख व्यक्ति। अग्रणी पुरुष।

धुरीन—संज्ञा पुं० [सं० धुरीण] दे० 'धुरीण'।

धुरीय—संज्ञा पुं०, वि० [सं०] दे० 'धुरीण' [को०]।

धुरीराष्ट्र—संज्ञा पुं० [हि० धुरी + सं० राष्ट्र] प्रमुख राष्ट्र। बड़े देश। दूसरे महायुद्ध के पहले जर्मनी, इटली और जापान त्रिनका विश्व की राजनीति में एक गुट था।

धुरेडो—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'धुल्लेडी'।

धुरेटना—संज्ञा पुं० [हि० धूर + टटना (प्रत्य०)] धूल से लपेटना। धूल से ढँकना। धूल लगाना। उ०—(क) सग झूवरेंट चार पट को लपेटे अंग गोरज धुरेटे ये हैं बेटे नंदराय के। —दीनदयाल (शब्द०)। (ल) त्यों द्विजदेव लू नाहक ही मुख भोरे एने अग्रविंद धुरेटत। —द्विजदेव (शब्द०)।

धुरेटा—संज्ञा पुं० [हि० धूल] धूल।

धूमपान—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'धूमपान'। उ०—का जल सयन साधे निमु व्याकुल का धूमपान धुँपा दिग राता।—सं० दरिया, पृ० ६१।

धूर्य—संज्ञा पुं० [सं० धूर्य] १. ऋषभ नामक ओषधि जो लहसुन की तरह होती और हिमालय पर मिलती है। २. विष्णु। ३. बैल।

धूर्य—संज्ञा पुं० [सं० धूर्य] १. धूरंधर। २. श्रेष्ठ। ३. बोक देनेवाला।

धूर्ग—संज्ञा पुं० [हि० धूर] किसी चीज का अत्यंत छोटा भाग। कण। रजकण। नर्ग। पुषा।

मुहाना—धूरें उड़ाना या उड़ा देना = (१) किसी वस्तु के अत्यंत छोटे छोटे टुकड़े कर डालना। अस्त व्यस्त या नष्ट भ्रष्ट कर डालना। बहुत दुर्गति करना। (२) बहुत अधिक भारना या पीटना। धूरें त्रिगाड़ना = दे० 'धूरें उड़ाना'।

धुलना—संज्ञा पुं० [हि० धोना का प्र० रूप] १. पानी की सहायता से साफ या स्वच्छ किया जाना। धोया जाना। जैसे—कपड़े धुल गए हों तो ले आओ। २. लगातार पानी पड़ने या बहने से जमीन आदि का कटना।

धुलवाना—संज्ञा पुं० [हि० धुलना का प्र० रूप] धोने का काम दूसरे से कराना। किसी को धोने में प्रवृत्त करना।

धुलाई—संज्ञा स्त्री० [हि० धोना] १. धोने का काम। २. धोने

का भाव । ३. धोने की मजदूरी । ४. मारने पीटने का काम ।
पिटार्ई (लाक्ष०) ।

धुलाना—क्रि० सं० [सं० धवल] धोने का काम दूसरे से कराना ।
धुलवाना ।

धुलि(५)—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'धूल' । उ०—धुलि क समूह,
भ्रमरानिल क वेग ।—वर्ण०, पृ० १६ ।

धुलियापोर—संज्ञा पु० [हि० धूल + प्रा० पोर] एक कल्पित शीर
जिसका नाम बच्चे खेल आदि में लिया करते हैं ।

धुलियामिटया—वि० [हि० धूल + मिट्टी] १. जिसपर धूल या
मिट्टी पड़ी हो अथवा ढाली गई हो । २. दबाया या जनि
किया हुआ (भगड़ा बखेड़ा आदि) ।

धुलेंडी—संज्ञा स्त्री० [हि० धूल + रङ्गाना या धूल + हाथी] १. हिंदुओं
का एक त्योहार जो होली जलन के दूसरे दिन चैत बदी
१ को होता है । इस दिन प्रातःकाल लोग होली की राख
मस्तक पर लगाते और दूसरों पर धबीर गुसाल आदि
सूखे वृणें डालते हैं । उ०—फिर तो धुलेंडी मच जाती है ।
कीचड़, गोबर राख कुछ नहीं बचने पाता ।—शुक्ल अभि०
प्र०, पृ० १४० । २. उक्त त्योहार का दिन ।

धुव(५)†—संज्ञा पु० [सं० ध्रुव] दे० 'ध्रुव' । उ०—ध्रुव ने ऊँच
वेग ध्रुव उवा । सिर दे पाउ देह सो लुवा ।—जायसी प्र०
(गुप्त), पृ० २०२ ।

ध्रुव^२—संज्ञा पु० [हि०] क्रोध । क्रोध । गुस्सा ।

ध्रुवका†—संज्ञा स्त्री० [सं० ध्रुवक] गीत का पहला पद । तैक ।

ध्रुवच्छर(५)—वि० [सं० ध्रुव + चर] अविनाशी । अविनाश्वर ।
उ०—सनकादिक रिषदेव हस मोहनो ध्रुवच्छर ।—सुजान०,
पृ० ३ ।

ध्रुवन^१—संज्ञा पु० [सं०] ग्राम ।

ध्रुवन^२—वि० अजानवाला । कौरानेवाला । हिलानेवाला ।

ध्रुवा†—संज्ञा पु० [सं० ध्रुम, हि० ध्रुवा] दे० 'ध्रुवा' । उ०—नवरत्नव
रीत्यत ध्रुवाए, होम ध्रुवां त्रिन उपर छाए ।—रघुसहि
(शब्द०) ।

ध्रुवाकश—संज्ञा पु० [हि०] दे० 'ध्रुवाकश' ।

ध्रुवाधार—वि०, क्रि० वि० [हि०] दे० 'ध्रुवाधार' ।

ध्रुवावज(५)—संज्ञा पु० [सं० ध्रुमवज] अग्नि । (हि०) ।

ध्रुवारा—संज्ञा पु० [हि० ध्रुवा + दार] छत में ध्रुवा निकलने के निचे
बना हुआ छेद या लिङ्गकी । चिमनी ।

ध्रुवास—संज्ञा स्त्री० [हि० ध्रुव + माष । या 'ध्रुमसी'] उरद का
भाटा जिससे पापड़ या कचोड़ी बनती है ।

ध्रुवाना—क्रि० सं० [हि० 'धोना' किया का प्र० रूप] दे० 'धुलाना' ।

ध्रुवित्र—संज्ञा पु० [सं०] १. प्राचीन काल का एक प्रकार का पंखा
जो हिरन के चमड़े आदि से बनाया जाता था और जिसका
व्यवहार याज्ञिक लोग यज्ञ की आग बहकाने के लिये करते
थे । २. ताड़ का पंखा (को०) ।

ध्रुसूर—संज्ञा पु० [सं०] धतूरा (को०) ।

ध्रुसूर—संज्ञा पु० [सं०] धतूरा ।

ध्रुस्स—संज्ञा पु० [सं० ध्वंस] १. गिरे हुए घरों की मिट्टी या ईंट
पत्थर का ढेर । मिट्टा आदि का ऊँचा ढेर । टीला । २. नदी
आदि के किनारे पर बाँधा हुआ बाँध । बंद । ३. चोट या
ठोकर जिसमें मृत्यु न निकले ।

ध्रुस्सा—संज्ञा पु० [सं० द्विषाट] मोटे ऊन की लोई जो धोने के
काम आती है ।

ध्रूकल(५)—संज्ञा पु० [?] उपद्रव । उ०—तुरक घड़ा नव तेरही
तेरह साख कमध । इल ध्रूकल कलि ऊपजे ज्यां कपिदल
दसकंध ।—ग० रू०, पृ० ७० ।

ध्रूङ्गना(५)—क्रि० सं० [हि०] दे० 'ध्रूङ्गना' । उ०—बम्भन आया
ध्रूङ्गन ध्रूङ्गत लगत लगत गाव मों ।—दक्खिनी०, पृ० ४५ ।

ध्रूण(५)—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'ध्रुव' । उ०—रज्जव पीवे बूण
दे । दीरध दावे गाय ।—रज्जव०, पृ० १० ।

ध्रूध—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'ध्रुव' । उ०—ध्रूम ध्रूध छाई घर मंदर
नमकत बिच बिच जाल ।—सूर (शब्द०) ।

ध्रूधय(५)—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'ध्रुव' । उ०—भिर भय धोम सु
ध्रूधय भार ।—पृ० रा०, १६।२२० ।

ध्रूधर—वि० [सं० ध्रुव] ध्रुवला ।

ध्रूधर—संज्ञा स्त्री० १. हवा में छाई हुई धूल । उ०—भिर विचकारी
की मची धाँधी उड़त गुलाल । यह ध्रूधर धंसि लोबिए पकरि
छबोने जाल ।—स० ममक, पृ० ३६० । २. ध्रुवला जो हवा
में छाई हुई धूल के कारण हो । ३. धूमधाम । उत्सव । उ०—
ध्रूधर करो भली हिलि मिलि कै अंशुध्रुव मची रो । न सुकत
कधु चढ़ी धोरी ।—भारतेंदु प्र०, भा० २, पृ० ७६२ ।

ध्रूधरि(५)—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'ध्रूधर' । उ०—ध्रूधरि बिलक
बोध बीच कीध सो टिके ।—बनानंद, पृ० ४४ ।

ध्रूधरी—संज्ञा स्त्री० [हि० ध्रूधर] दे० 'ध्रूधरी' । उ०—तुधुम धूरि
ध्रूधरी सु कुंजे ।—नंद० ब० पृ० १६५ ।

ध्रूधला†—वि० [हि० ध्रूधला] दे० 'ध्रूधला' ।

ध्रूधलाना(५)—क्रि० प्र० [हि० ध्रूध] ध्रुवा देना । ध्रुवा देते हुए
घोरे घोरे जलना । उ०—दव की दाघो लाकड़ी सिलग सिलग
ध्रूधलाय ।—रा० धर्म०, पृ० १६ ।

ध्रूध्रकार—संज्ञा पु० [हि०] दे० 'ध्रूध्रकार' । उ०—उनमन जोगी
दनवै शार । नार व्यंद ले ध्रूध्रकार ।—गोरख०, पृ० ४७ ।

ध्रूधसा†—संज्ञा पु० [हि०] दे० 'धोसा' ।

ध्रूध†—वि० [सं० ध्रुव] स्थिर । अचल ।

ध्रूधु†—संज्ञा पु० १. ध्रुम तांग । २. दे० 'ध्रु' । उ०—रामकथा
वरनी न बनाय, मुनी कथा प्रह्लाद न धू की ।—तुलसी
(शब्द०) । ३. धुरी । उ०—श्री हरिदास के स्वामी स्यामा
को समयो अरु नोकी हिलि मिलि केलि घटन भई धू पर ।—
स्वामी हरिदास (शब्द०) ।

ध्रू†—संज्ञा पु० [?] सिर । उ०—ध्रुदुन महान बाते सुनि धू ध्रुयो
करे ।—नट०, पृ० ६६ ।

धू^५—संज्ञा स्त्री० [सं० दुहिता] दे० 'धी' । उ०—पिगल राजा
ताम धू मेल्या बाँकइ पास ।—ढोला०, दू० १२१ ।

धू^६—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'धूम्र' ।

मुहा०—धूमाँ धक्कड़ मचाना=हलचल पैदा करना । उपद्रव
करना ।

धू^७—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'धुआँधार' ।

धू^८—संज्ञा स्त्री० [हि० धूमाँ] धूनी ।

धू^९—संज्ञा पुं० [सं०] १. वायु । २. धूर्त मनुष्य । ३. काल । ४.
धूमि (की) ।

धू^{१०}—संज्ञा पुं० [फ्रा० दूक (=तकला)] कलाबत्तू बटने की मलाई ।

धू^{११}—संज्ञा स्त्री० [हि० दुकना] किसी ओर बढ़ना या
झुकना । उ०—हस्ती घोड़ धाई जो धूका । ताहि कीन्ह सों
रहिर भूका ।—जायसी (शब्द०) ।

धू^{१२}—संज्ञा पुं० [सं० धूर्जटि] शिव । महादेव ।

धू^{१३}—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'धूल' । उ०—मोती धूड़ मिलाविया,
तैं सादूल तमाँम ।—बाँकी० ग्रं०, भा० १, पृ० ३५ ।

धू^{१४}—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'धूल' । उ०—खोजे बाबू हथ्यडा, धूड़ि
मरेमो मूठि ।—ढोला०, दू० ३६१ ।

धू^{१५}—संज्ञा पुं० [सं०] धूप का धुआँ या धूनी (की) ।

धू^{१६}—वि० [सं०] १. कपित । कपता हुआ । धरधराता हुआ । डग-
मगाता हुआ । हिलता हुआ । २. जो धमकाया गया हो ।
जो डाँटा गया हो । ३. स्थगित । छोड़ा हुआ । ४. तर्कित ।
सुविचारित । उ०—धो दिया श्रेष्ठ कुन धर्म धूत ।—अपरा,
पृ० २०२ ।

धू^{१७}—वि० [सं० धूत] धूत । रगाबाज । उ०—(क) ऐसेई
जन धूत कहावत ।—सूर (शब्द०) । (ख) समय सगुन मारग
मिरहि छन मलीन लल धूत ।—तुलसी (शब्द०) ।

धू^{१८}—वि० [सं० धावन] दोड़ा हुआ । दीडकर पहुँचा हुआ ।
उ०—धूत दूत कलधीठ तन हंग सरूप विराज ।—पृ० रा०,
२५ । २२ ।

धू^{१९}—संज्ञा पुं० [सं० धूत] जुआ । उ०—कैं करि जोरी धूत हि
खेली । कैं काह को, गुरमा भेली ।—चरण० बानी,
पृ० २१८ ।

धू^{२०}—वि० [सं०] पापमुक्त । निष्पाप । पवित्र (की) ।

धू^{२१}—संज्ञा पुं० [सं०] १. सदाचार । २. संचार । सद्गुण (की) ।

धू^{२२}—संज्ञा स्त्री० [हि० धूत] धूर्तता करना । धोखा देना ।
ठगना । उ०—(क) हों तेरे हो संग जरीगी यह कहि प्रिया
पूति धन लायो ।—सूर (शब्द०) । (ख) सत्य वचन मानस
विमल कपट रहित करतूति । तुलसी रघुबर सेन कहि मकैं न
कलियुग धूति ।—तुलसी (शब्द०) । (ग) तुम गलानि
जिय जानि गरहु समझि मातु करतूति । तात कैं कहि दोष
नहि गई गिरा मति धूति ।—तुलसी (शब्द०) ।

धू^{२३}—वि० धँसना करनेवाली । छलनेवाली । उ०—इनके वेध

मात्र पूतना । महापापिनी जगत धूतना ।—नंद० ग्रं०,
पृ० २७३ ।

धू^{२४}—वि० [सं०] जिसके पाप दूर हो गए हों । जो पाप या दोष
से रहित हो गया हो ।

धू^{२५}—संज्ञा स्त्री० [सं०] काशी की एक पुरानी छोटी नदी या नाला
जिसके विषय में कहा जाता है कि वह पंचगंगा के पाम
गंगा में मिलती थी । यह नदी अब पट गई है ।

विशेष—काशीखंड में इसके माहात्म्य के संबंध में एक कथा है ।
पूर्व काल में वेदशिरा नामक एक ऋषि वन में तपस्या कर
रहे थे । उस वन में शुचि नाम की एक अम्बरा को देख मुनि
ने कामातुर होकर उसके साथ संभोग किया । संभोग से धूत-
पापा नाम की कन्या उत्पन्न हुई । पिता की आज्ञा से वह कन्या
घोर तप करने लगी । अंत में ब्रह्मा ने प्रसन्न होकर उसे बर
दिया तू संसार में सबसे पवित्र होगी, तेरे रोम रोम में सब
तीर्थ निवास करेंगे । एक दिन धूतपापा को अकेले देख धर्म
नामक एक मुनि उससे विवाह करने के लिये कहने लगे । धूत-
पापा ने पिता की आज्ञा लेने के लिये कहा । पर धर्म बार-
बार उसी समय शीघ्र विवाह करने का हठ करने लगे । इस
पर धूतपापा ने क्रुद्ध होकर शाप दिया, 'तुम बड़ नब होकर
बहो' । धर्म ने धूतपापा को शाप दिया, 'तुम पत्थर हो जाओ' ।
पिता ने जब यह वृत्तांत सुना तब कन्या से कहा, 'अच्छा
तू काशी में चंद्रकांत नाम की शिला होगी । चंद्रोदय होने पर
तुम्हारा शरीर द्रवीभूत होकर नदी के रूप में बहेगा और तुम
अत्यंत पवित्र होगी । उसी स्थान पर धर्म भी धर्मनद होकर
बहेगा और तुम्हारा पति होगा ।

महाभारत (भीष्म पर्व १ अ०) में भी धूतपापा नाम की एक
नदी का उल्लेख है पर कुछ विवरण नहीं है । इससे कहा नहीं
जा सकता कि इसी नदी से अभिप्राय है या किसी दूसरी से ।

धू^{२६}—संज्ञा स्त्री० [सं०] स्त्री । भार्या ।

धू^{२७}—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'धूर्तता' । उ०—माता सों इन कीन्ही
धूता ।—कबीर सा०, पृ० २४८ ।

धू^{२८}—वि० [हि०] दे० 'धूर्त' । उ०—धूतारा ते जे धूर्त प्राप,
मिथ्या भोजन नहीं संताप ।—गोरख०, पृ० १९ ।

धू^{२९}—संज्ञा स्त्री० [हि० धूत] धूर्तता । छल । कपट ।

धू^{३०}—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. कपल । हिलना । २. हवा करना । ३.
हठयोग के अंतर्गत शरीरशुद्धि की एक क्रिया (की) ।

धू^{३१}—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक चिड़िया । उ०—बाँसा बटेर सब और
सिचान । धूती व चिप्पका चटक मान ।—सूरन (शब्द०) ।

धू^{३२}—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'धूधर' । उ०—मैं भई धूधल तू
सूरज मेरा ।—माधवानल०, पृ० १२६ ।

धू^{३३}—संज्ञा पुं० [अनु०] धाग के दहकने का शब्द । धाग की लपट
उठने का शब्द । उ०—बार जने मिल खाट उठाइन बड़ दिख
धूधू ऊठन हो । कहल कबीर सुनो भाई साधो जग से नाटा
छूटन हो ।—कबीर सा०, भा० १, पृ० ३ ।

धूप^१—वि० [सं०] १. कंषित । २. गरमी अथवा प्यास से पीड़ित (को०) ।

धूप^२—संज्ञा पु० [हि०] दे० 'दूध' ।

धूपक—संज्ञा पु० [सं०] १. हिलाने डुलानेवाला । चालाक । २. साल का गोंद । राल । ३. धूप ।

धूपन—संज्ञा पु० [सं०] १. हवा । २. कंषन । ३. विचलन । क्षोभ (को०) ।

धूपना^१—क्रि० सं० [हि० धूनी] धूनी देना । किसी वस्तु को जलाकर उसका धुआँ उठाना । सुलगाना । जलाना । उ०—
पाँवरनि पाँवड़े परे हैं पुर पीरि सगि धाम धाम धूपनि के
धूम धुनियत हैं ।—देव (शब्द०) ।

धूपना^२—क्रि० सं० [हि० धुनना] दे० 'धुनना' ।

धूना^१—संज्ञा पु० [हि० धूनी] गुग्गुलु की जाति का एक बड़ा पेड़ जो आसाम तथा खसिया की पहाड़ियों पर बहुत होता है ।

विशेष—इसका गोंद भी धूप की तरह जलाया जाता है और यह वारनिश बनाने के काम में आता है ।

धूना^२—संज्ञा [हि०] दे० 'धूनी' । उ०—पंचम नाम हरी पद
सुना । छठवाँ चदर अघर पर धूना ।—घट०, पृ० १६ ।

धूनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] हिलाना । कंषाना (को०) ।

धूनीत^१—वि० [हि०] दे० 'धुनित' । उ०—ताकिर सब बन
धूनीत कियो । काहू भाँक रही नहिं हियो ।—नद० प्र०,
पृ० २६३ ।

धूनी—संज्ञा स्त्री० [हि० धूई] १. गुग्गुलु, लोबान आदि गंधद्रव्यों या और किसी वस्तु को जलाकर उठाया हुआ धुआँ । धूनी । धूप ।

मुहा०—धूनी देना = गंध मिश्रित या विशेष प्रकार का धुआँ उठाना या पहुँचाना । जैसे, इसे मिर्चों की धूनी दो तो भूत छोड़ेगा ।

२. वह प्राण जिसे साधु या तो टंड से बचने के लिये अथवा शरीर को तपाने या कष्ट पहुँचाने के लिये अपने सामने जलाए रहते हैं । साधुओं के तपने की प्राण । उ०—विरहाग्नि
धूनी चारों ओर लगाई ।—आरतेदु प्र०, भा० १, पृ० ४२६ ।

मुहा०—धूनी जगना या लगना = (साधुओं के पास की) (१) प्राण जलना । (२) शरीर तपाना । तप करना । (३) साधु होना । विरक्त होना । योगी होना । धूनी रमाना = (१) सामने प्राण जलाकर शरीर तपाने बैठना । तप करना । (२) साधु हो जाना । विरक्त हो जाना । घर बार छोड़ देना ।

धूनी^२—संज्ञा पु० [हि०] दे० 'धुनिया' । उ०—रज मोक्ष बंकी
करकी कमान । धूनी तूल धूनी मनो कट्ट यान ।—पृ० रा०,
१२ । ३१६ ।

धूप^१—संज्ञा पु० [सं०] १. देवपूजन में या सुगंध के लिये कपूर, पाग, गुग्गुलु, आदि गंधद्रव्यों को जलाकर उठाया हुआ धुआँ । सुगंधित धूम ।

क्रि० प्र०—देना ।

२. गंधद्रव्य जिसे जलाने से सुगंधित धुआँ उठता और फैलता है । जलाने पर महकनेवाली चीज ।

विशेष—धूप के लिये पाँच प्रकार के द्रव्यों में से किसी न किसी का व्यवहार होता है—(१) निर्यास अर्थात् गोंद । जैसे, गुग्गुलु, राल । (२) चूर्ण । जैसे, जायफल का चूर्ण । (३) गंध । जैसे, कस्तूरी । (४) काष्ठ । जैसे, अमर की लकड़ी । (५) कृत्रिम अर्थात् कई द्रव्यों के योग से बनाई हुई धूप । कृत्रिम धूप कई प्रकार की होती है; जैसे, पंचांग धूप, षष्ठांग धूप, दशांग धूप, द्वादशांग धूप, सोडशांग धूप । इनमें से दशांग धूप अधिक प्रसिद्ध है जिसमें दस चीजों का मेल होता है । ये दस चीजें क्या क्या होनी चाहिए इसमें मतभेद है । पञ्चपुराण के अनुसार कपूर, कुष्ठ, अमर, चंदन, गुग्गुलु, केसर, सुगंधबाला तेजपत्ता, खस और जायफल ये दस चीजें होनी चाहिए । मगध यह कि साल और सलई का गोंद, मेनमिल, अमर, देवदार, पद्याल, मोक्षराम, मोथा, जटामासी इत्यादि सुगंधित द्रव्य धूप देने के काम में आते हैं ।

धूप^२—संज्ञा पु० [हि०] १. सूर्य का प्रकाश और ताप । धाम । प्राप्त । जैसे,—धूप में मन निकमो ।

मुहा०—धूप खाना = इन स्थिति में होना कि धूप ऊपर पड़े । धूप में गरम होना या तपना । जैसे,—(क) चार दिन धूप खायोगी तो लकड़ो मुख जायगी । (ख) जाड़े में लोग बाहर धूप खाते हैं । धूप खिलाना = धूप भर खाना । धूप लगने देना । धूप चढ़ना = सूर्योदय के पीछे प्रकाश और ताप फैलना । धाम खाना । धूप पड़ना = सूर्य का ताप अधिक होना । धूप में बात या चूँड़ा सफेद करना = बूढ़ा हो जाना और कुछ जानकारी न प्राप्त करना । बिना कुछ अनुभव प्राप्त किए जीवन का बहुत सा भाग बिता देना । धूप लेना = गरमी के लिये शरीर को धूप में रखना । धूप ऊपर पड़ने देना । जैसे, जाड़े में धूप लेने के लिये बाहर बैठना ।

२. चौड़ या धूप सरल नाम का वृक्ष जिसमें गंधाबिरोजा निकलता है । वि० दे० 'चौड़' ।

धूपक—संज्ञा पु० [सं०] धूप आदि सुगंधित वस्तुओं को देनेवाला । गंधी (को०) ।

धूपघड़ी—संज्ञा स्त्री० [हि० धूप + घड़ी] एक यंत्र जिससे धूप में समय का ज्ञान होता है ।

विशेष—काठ या बातु का एक गोल चक्कर बनाकर उसके चार भाग कर ले और एक एक भाग में छह छह ममान भाग करे और उस चक्कर की कोर थोड़ा छोड़ दे । उस कोर में साठ भाग करे और बीच में एक एक धांगुल चौड़ी दो पट्टियाँ ऐसी लगावे जिनसे उस चक्कर के चार विभाग पूरे हो जायें । दोनों पट्टियाँ जहाँ मिलें वहीं बीचोबीच एक छेद करके एक कील लगा दे और चूँबक की सुई से या और किसी प्रकार उत्तर दक्षिण दिशा ठीक ठीक जान ले । उस स्थान के बितने अक्षांश हों उतनी वह कील उत्तर की ओर उठी रहे । उस कील की छाया मध्याह्न से पहले पश्चिम की ओर और मध्याह्न के पीछे पूर्व की ओर पड़ेगी । मध्याह्न के बिन्दु से

पश्चिम की ओर जिम चिह्न पर छाया हो उतनी ही चड़ी मध्याह्न में घटती जाने। इसी प्रकार पूर्व का भी जान ले।

धूपछाँव—संज्ञा श्री० [हि० धूप + छाँव] धूप और छाया। प्रकाश और छाया।

मुहा०—धूपछाँव होना = कभी धूप कभी छाया की तरह बराबर बदलते रहना। उ०—जयाना क्या धूपछाँव है। यही जोगिन अभी कन तक खाना खराब की भाँज यह ठाठ है कि सदहा प्रादमी इनके सबब से परिवरित पाते हैं।—फिसाना०, भा० ३, पृ० १।

धूपछाँह—संज्ञा श्री० [हि० धूप + छाँह] एक रंगीन कपड़ा जिसमें एक ही स्थान पर कभी एक रंग दिखाई पड़ता है कभी दूसरा।

विशेष—यह कपड़ा इस प्रकार बुना जाता है कि ताने का सूत एक रंग का होता है और रान का दूसरे रंग का। इसी से देखने वाले की स्थिति और कपड़े की स्थिति के अनुसार कभी एक रंग दिखाई पड़ता है, कभी दूसरा। दो रंगों में से एक रंग जाल होता है, दूसरा हरा, नीला या बैंगनी।

यी०—धूपछाँह का रंग = यी हग प्रकार मिले हुए रंग कि एक ही स्थान पर कभी एक रंग दिखाई पड़े, कभी दूसरा।

धूपछाँही—वि० [हि० धूपछाँह] जिसका वह रूप जिममें एक प्रकट होना है और दूसरा छिपता है। उ०—उन सभी साहित्यकारों का वाणी में प्रोज, शक्ति, भाषा तथा सरल भाषाशा क प्रत्येक धूपछाँही रूप सजीव हो उठे हैं।—इति०, पृ० २२।

धूपट(पु)—क्रि० वि० [?] पूरा रूप से। उ०—धूपट तीनों लोक भुजायो, जेत करो जम जीत।—रघु० क०, पृ० २११।

धूपदान—संज्ञा श्री० [हि० धूपदान] १. धूप रखने का डिब्बा या बरतन। २. वह बरतन जिसमें गंधद्रव्य या धूपबत्ती रखकर सुगंध के लिये जलाई जाती है। घागयारी।

धूपदानी—संज्ञा श्री० [हि० धूपदान] धूप रखने का छोटा बरतन।

धूपन—संज्ञा पु० [सं०] [वि० धूपित] १. धूप देने की क्रिया। गंधद्रव्य जलाकर सुगंधित धुआँ उठाने का कार्य। २. धूप द्रव्य (की०)। ३. केतु का प्रदर्शन (ज्योतिष) (की०)।

धूपना(पु)—क्रि० प्र० [सं० धूपन] धूप देना। गंधद्रव्य जलाना।

धूपना^२—क्रि० प्र० धूप देना। गंधद्रव्य जलाकर सुगंधित धुआँ पहुँचाना। सुगंधित धुएँ से बासना। उ०—बारन धूपि भगारन धूपि के धूम प्रख्याती पसारी महा है।—प्रतिराम (शब्द०)।

धूपना^३—क्रि० प्र० [सं० धूपन (= संतप्त वा श्रांत होना)] दोड़ना। हैरान होना।

विशेष—केवल समस्त पद से इसका प्रयोग होता है।

यी०—दोड़ना धूपना।

धूपपात्र—संज्ञा पु० [सं०] धूप रखने का बरतन। वह बरतन जिसमें गंधद्रव्य जलाकर धूप देते हैं।

धूपबत्ती—संज्ञा श्री० [हि० धूप + बत्ती] मसाला लगी हुई सीक या बत्ती जिसे जलाने से सुगंधित धुआँ उठकर फैलता है।

धूपवास—संज्ञा पु० [सं०] स्नान के पीछे सुगंधित धुएँ से शरीर, बाल आदि बासने का कार्य।

विशेष—प्राचीन काल में भारतवासी स्नान के उपरांत कुछ काल सुगंधित धुएँ में रहकर गीले शरीर या श्वात को सुखाते थे जिसमें वह सुगंध से बम जाय। रघुवंश, मेघदूत आदि काव्यों में इस प्रथा का उल्लेख है।

धूपवृक्ष—संज्ञा पु० [सं०] मलई या गुग्गुलु का पेड़ जिसका गोंद धूप की सामग्री है। सरल वृक्ष।

धूपसरल—संज्ञा पु० [सं० सरल] चीड़ का वृक्ष जिससे गंधाबिरोजा निकलता है। वि० दे० 'चीड़'।

धूपांग—संज्ञा पु० [सं० धूपाङ्ग] मरल का पत्र (पत्र)।

धूपायित—वि० [सं०] १. सुगंधित धुएँ से भसा हुआ। धूप दिया हुआ। २. चलने आदि से थका हुआ। हैरान। श्रांत और संतप्त।

धूपिक—संज्ञा पु० [सं०] धूप आदि सुगंधित वस्तुएँ बेचनेवाला।

धूपित—वि० [सं०] १. धूप दिया हुआ। सुगंधित धुएँ में बसा हुआ। उ०—सेज बसन सब धूपित है।—सं० प०, पृ० १५५। २. चलने आदि से थका हुआ। हैरान। श्रांत और संतप्त।

धूम^१—संज्ञा पु० [सं०] १. धुआँ। धूमा।

पर्या०—मग्नाह। क्षतमास। शिपिह्वय। प्रगिताह। तरी।

२. प्रजीत या प्रपच में उठनेवाली श्वात। ३. विषय प्रकार का धूमा जिसका कई रोगों में सेवन कराया जाता है।

विशेष—सुश्रुत ने पाँच प्रकार के धूम बतते हैं—प्रायोगिक (जो मसाले से लपेटो हुई सीक जलाने में हो), स्नेहन (जो बत्ती में मसाला छपेटकर घी या तेल में जलाने में हो), वैरेनन (जो विष्पली, विडंग, धूपामार्ग इत्यादि नस्य द्रव्यों की बत्ती में हो), कासघ्न (जो काकटानगी, कंटकारी, वृद्धी आदि कासघ्न औषधों की बत्ती में हो), और वामनय (जो स्नायु, चमड़े, सींग, सूखी मछली या हडि आदि को जलाने में हो)।

४. धूमकेतु। ५. उत्कापान। ६. एक शृङ्खला का नाम।

धूम^२—संज्ञा श्री० [सं० धूम (= धूमा)] १. बहुत से लोगों के इकट्ठा होने, जाने, और गुन करने, हिलने डोलने आदि का व्यापार। रेलपेल। हलबल। भादोलन। जैसे, मेले मसाले की धूम, उत्सव की धूम। लूटमार की धूम।

क्रि० प्र०—मचना।—मचाना।

२. हल्ला और उछल कूद। लपट। उत्पान। उथम। जैसे,—यही धूम मत मचाओ, और जगह सेलो। उ०—बंदर की तरह धूम मचाना नहीं अच्छा।—हरिश्चंद्र (शब्द०)।

मुहा०—धूम बानना = ऊथम करना। हल्ला गुल्ला करना। उ०—तेरे कलसार ब कद में धूम डाला है गुलिस्तान में। उधर बुलबुल सिसकती है इधर कुमरी बिलकती है।—कविता की०, भा० ४, पृ० ४३।

३. चीड़ काड़ और तैयारी। टाट बाट। ममारोह। भारी धावो-जन। जैसे,—भारत बड़ी धूम से निकली। उ०—घाई धाम धाम धूम धोसा की धुकार धूरि।—हम्मीर०, पृ० २४।

यौ०—धूमधड़का । धूमधाम ।

४. कोनाहन । हल्ता । शोर । उ०—दृष्टो धनुष धूम भद्र भारी ।—कबीर सा०, पृ० ३७ । ५. चारों ओर मुनाई देने वाली वर्षा । जनरव । शुद्धरत । प्रसिद्धि । जैसे,—शहर में इस बात की बड़ी धूम है ।

मुहा०—धूम होना = धाक या प्रतिष्ठा होना । प्रभाव होना । उ०—स्वर्ग में हमारी धूम थी ।—चुमते० (दो दो बातें), पृ० १ ।

धूम^२—संज्ञा स्त्री [देश] एक घास जो तालों में होती है ।

धूमक—संज्ञा पुं० [सं०] १. धुआँ । २. एक शाक का नाम ।

धूमकधूआ—संज्ञा स्त्री [हिं० धूम] उछल कूद धीर हस्ता गुल्ता । उपद्रव । उत्पान । शोरगुन ।

क्रि० प्र० मचना । मथाना ।

धूमकेतन—संज्ञा पुं० [सं०] १. अग्नि (जिसकी पताका धुआँ है) । १. केतु ग्रह ।

धूमकेतु—संज्ञा पुं० [सं०] १. अग्नि (जिसकी पताका धुआँ है) । २. केतुग्रह (जिसका चिह्न है धुएँ या भाप के आकार की पुँछ) । पुच्छल तारा ।

विशेष—३० 'केतु' ।

३. जिव । महादेव । ४. गह्र पोड़ा जिसकी पुँछ में भँवरी हो ।

विशेष ऐसा जो बहुत अमंगल समझा जाता है ।

५. रावण की सना का एक राक्षस । उ०—कुमुद, अकंपन, कुलिसरद, धूमकेतु प्रतिमाय ।—तुलसी (शब्द०) ।

धूमगंधि—संज्ञा पुं० [सं० धूमगन्धि] रोहिण तृण । कसा घास ।

धूमगन्धिक—संज्ञा पुं० [सं० धूमगन्धिक] धूमगंधि [को०] ।

धूमग्रह—संज्ञा पुं० [सं०] राहुग्रह ।

धूमज—संज्ञा पुं० [सं०] १. (धुएँ से उत्पन्न) बादल । २. मुस्तक । मोथा ।

धूमजांगज—संज्ञा पुं० [सं० धूमजाङ्गज] नखलार । नौसादर ।

धूमजात—संज्ञा पुं० [सं०] बादल । उ०—रक्त क्लेश भीहैं सतर नहि सोहे ठहरात । मान हितू हरि बात तैं धूमजात भों जात ।—म० समक, पृ० २६७ ।

धूमदर्श—संज्ञा पुं० [सं० धूमदर्शिन] वह मनुष्य जिसकी आँख के सामने धुआँ या दिखाई पड़ता हो । धुँधला देखनेवाला आदमी ।

विशेष—सुपन के अनुसार धुँधला दिखाई पड़ने का रोग कोक, श्रम और मिर की पीड़ा के कारण होता है ।

धूमधड़का—संज्ञा पुं० [हिं० धूम + धड़का] भीड़ भाड़ धीर तैयारी समारोह । भारी आयोजन । ठाट बाट । जैसे,—ब्याह में धूम धड़का मत करना ।

क्रि० प्र० करना ।—होना ।

धूमधर—संज्ञा पुं० [सं०] अग्नि । आग ।

धूमधाम—संज्ञा स्त्री [हिं० धूम + धाम] भीड़ भाड़ धीर तैयारी । ठाट बाट । समारोह । भारी आयोजन । जैसे,—

बड़ी धूम धाम से सवारी निकली । उ०—धूमधाम धुंधारित भूमि असमान न सुज्जे ।—हम्मीर०, पृ० ३१ ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

धूमधामी—वि० [हिं० धूमधाम] १. धूमधाम से युक्त । तड़क भड़क वाला । २. आडंबरपूर्ण । दिखावटी ।

धूमध्वज—संज्ञा पुं० [सं०] अग्नि । आग ।

धूमन—संज्ञा पुं० [सं०] केतु का अदर्शन या अस्पष्टता [को०] ।

धूमप—वि० [सं०] केवल होम का धुआँ पीकर तपस्वा करनेवाला [को०] ।

धूमपथ—संज्ञा पुं० [सं०] १. धुआँ निकलने का रास्ता । २. पितृयान ।

धूमपान—संज्ञा पुं० [सं०] १. सुश्रुत के अनुसार विशेष प्रकार का धुआँ जो नस के द्वारा रोगी को सेवन कराया जाता है ।

विशेष—नेत्ररोग तथा फोड़े फुँसी आदि में सुश्रुत ने कुछ मसानों तथा घोषधियों के धुएँ को नल के द्वारा मुँह में खींचने का विधान बताया है ।

२. तमाकू, धुएँ आदि पीने का कार्य ।

धूमपोत—संज्ञा पुं० [सं०] धुआँकस । अग्निबोट ।

धूमप्रभा—संज्ञा स्त्री [सं०] नरक जो सदा धुएँ से भरा रहता है ।

धूमयोनि—संज्ञा पुं० [सं०] (धुएँ से उत्पन्न) बादल ।

धूमरी^१—वि० [हिं०] ३० 'धूसल' । उ०—धूमर धूलि धान रख जोती ।—हिं० क० का०, पृ० २२३ ।

धूमर^(२)—संज्ञा पुं० [सं० धूमर] ३० 'धूमर' । उ०—उरण ठोट जिए रा रिषां आश्रम जाग धूमर जागिया ।—रघु० क०, पृ० १२६ ।

धूमरज—संज्ञा पुं० [सं०] १. घर का धुआँ । २. घर के धुएँ की कानिख जो छत और दीवार में लग जाती है ।

धूमरी^२—वि० [सं० धूमर] [वि० स्त्री० धूमरी] कृष्ण लोहित वर्ण का । धुएँ के रंग का । कानापन लिए हुए लाल । सुँधनी रंग का ।

धूमरि^(३)—संज्ञा स्त्री [हिं०] एक प्रकार का सेन । वि० ३० 'धूमर' । उ०—बड़े खिरकि में धूमरि खेलन ।—नद० प्र०, पृ० ३८७ ।

धूमरी^४—संज्ञा स्त्री [सं०] कुहरा [को०] ।

धूमल^१—वि० [सं०] धुएँ के रंग का । लालिमा युक्त काले रंग का । सुँधनी रंग का ।

धूमल^२—संज्ञा पुं० १. बैंगनी रंग । २. एक वाद्य [को०] ।

धूमलता—संज्ञा स्त्री [सं०] टेढ़े मेढ़े धुएँ की राशि । कुंचित धूमराशि [को०] ।

धूमला—वि० [सं० धूमल] [स्त्री० धूमली] १. धुएँ के रंग का । ललाई लिए काले रंग का । सुँधनी रंग का । २. धुँधला । जो बटकीला न हो । जो क्लेश न हो । ३. जिसकी कांति मंद हो । मंथित । उ०—जैसे, यह बात सुनने ही उसका चेहरा धूमला पड़ गया ।

क्रि० प्र०—करना ।—पड़ना ।—होना ।

धूमली^१—वि० [हिं० धूमल] धुँधला । धूमिल । उ०—धूमली रत्ति में बंक पग, मनो बंद हैं विस्तरिय ।—पृ० रा०, ११।३५३ ।

धूम्रलो^२—कि० सं० [?] कपाना । हिलाना । उ०—बजा पताष
धूम्रलो, समूह सन संमनी । दईत दून दोरयं, करे सनाह
जोरयं ।—पृ० रा०, २।११५ ।

धूम्रवान्—वि० [सं० धूम्रवत्] [श्री० धूम्रवती] जिसमें या जहाँ धुआँ
हो । धुएँवाला ।

विशेष—बाहुल्य या अधिकता के अर्थ में धूम्र विशेषण होता है ।

धूम्रसंहति—संज्ञा श्री० [सं०] धूम्रगति [को०] ।

धूम्रसपूतः—संज्ञा पुं० [हि० (ध + सपूत)] मेघ । उ०—मुर्दर
बलाहक तडितपति कामुक धूम्रसपूत ।—अनेकार्थ०, पृ० ८२ ।

धूम्रसार—संज्ञा पुं० [सं०] घर का धुआँ ।

धूम्रसी—संज्ञा श्री० [सं०] १. धूम्रमि । उरद का छाँटा ।

विशेष—यह गन्ध भावप्रकाश में धूम्रता है, किसी प्राचीन ग्रंथ
में नहीं; इसमें गढ़ा हुआ जान पड़ता है ।

२. उरद का बड़ा (को०) ।

धूम्रांग^१—वि० [सं० धूम्राङ्ग] जिसका अंग धुएँ के समान हो ।

धूम्रांग^२—संज्ञा पुं० शीशम का पेड़ ।

धूम्राक्ष—वि० [सं०] [वि० श्री० धूम्राक्षी] धुएँ के रंग की छाँवोंवाला
[को०] ।

धूम्रग्नि—संज्ञा पुं० [सं०] बिना ज्वाला या लपट की आग (जिमी लपट
निकल जाने पर गोहरे या जल की दहती है) ।

धूम्राभ—वि० [सं०] धुएँ के रंग का ।

धूम्रायन—संज्ञा पुं० [सं०] १. धूम्र देना । भाप देना । २. गरमी ।
ताप [को०] ।

धूम्रायमान—वि० [सं०] धुएँ से सरपूरा [को०] ।

धूम्रावती—संज्ञा श्री० [सं०] दश महा नित्याश्री में से एक देवी ।

विशेष—तंत्रों में इसकी उत्पत्ति की गया इस प्रकार है । एक
बार पार्वती को बहुत दुःख लगी और उन्होंने महादेव से कुछ
खाने की माँगा । महादेव ने थोड़ा दहने के लिये कहा । पर
पार्वती धुआँ में आगें आतुर होकर महादेव की निम्न गई ।
महादेव को निम्नजन पर पार्वती के शरीर से धुआँ निकलने
लगा । अतः में महादेव ने पकड़ होकर कहा—‘तुमने जब
हमें खाया तब विषया हो धुआँ । अतः वर से तुम इस वेश
में पूरी जाओगी ।’ इसावती देवी का नाम बड़ा मजिन और
भयकर बताया गया है ।

धूम्रिका—संज्ञा श्री० [सं०] लोहा [को०] ।

धूम्रित^१—वि० [सं०] १. जिसमें धुआँ लगा हो । २. जो धुएँ से
धुँसला हो गया हो [को०] ।

धूम्रित^२—संज्ञा पुं० तंत्रों के अनुसार वह दूषित संज्ञ जो सादे प्रसंगों
का हो ।

धूम्रिता—संज्ञा श्री० [सं०] वह दिशा जिसमें धुएँ जातेगया हो ।

धूम्रिनी—संज्ञा श्री० [सं०] दे० ‘धूम्री’ [को०] ।

धूम्रिनी^१—वि० [सं० धूम्रिनी] १. धुएँ के रंग का । ललाई लिए

काला रंग का । २. धुँसला । उ०—मुख धरविद धार मिलि
सोभित धूम्रिनी नील अगाध । मनहु बाल रवि रस समीर
संकित तिमिर कूट हूँ आध ।—सूर (शब्द०) ।

धूम्रिलता—संज्ञा श्री० [हि० धूम्रिल + ता (पत्य०)] धूम्रिल
होने का भाव । धुँसलापन । उ०—तुम विश्वास करो मेरे
कवन तन, चंदन मन पर, धूम्रिलता की रेख नहीं लय
पाएगी ।—ठंडा०, पृ० ४३ ।

धूम्रो^१—वि० [सं० धूम्रिन्] जिसमें या जहाँ बहुत धुआँ हो । धुएँ
से भरा हुआ ।

विशेष—जहाँ बाहुल्य या अधिकता का भाव नहीं होता वहाँ
धूम्रवान् रूप होता है ।

धूम्रो^२—संज्ञा श्री० १. प्रजमीठ की एक पत्नी का नाम । २. अग्नि
की एक जिह्वा का नाम ।

धूम्रोत्थ^१—वि० [सं०] धुएँ से निकला हुआ ।

धूम्रोत्थ^२—संज्ञा पुं० वज्रधार । नीसादर ।

धूम्रोद्गार—संज्ञा पुं० [सं०] प्रजीर्ण या अपच के कारण आनेवाली
धुएँ की सी कड़वी बकार ।

धूम्रोपहत^१—संज्ञा पुं० [सं०] एक रोग [को०] ।

धूम्रोपहत^२—वि० धुएँ के कारण जिसका गला घुट गया हो [को०] ।

धूम्रोणा—संज्ञा श्री० [सं०] १. यमपत्नी । २. मार्कंडेय पत्नी ।

धूम्र्या—संज्ञा श्री० [सं०] धूम्रराशि [को०] ।

धूम्र्याट—संज्ञा पुं० [सं०] एक पक्षी । भिंगराज नाम की एक
चिड़िया । भृंग ।

धूम्र^१—वि० [सं०] धुएँ के रंग का । कृष्णलोहित । ललाई लिए
काले रंग का । सुँघनी या धुरे रंग का । बैंगनी ।

धूम्र^२—संज्ञा पुं० १. कृष्णलोहित वर्ण । ललाई लिए काला रंग ।
सुँघनी या भूरा रंग । २. जिलारस नाम का गंधद्रव्य । ३.
एक धूप का नाम । ४. शिव । महादेव । ५. मेढ़ा । ६.
कुमार के एक अनुचर का नाम । ७. फलित ज्योतिष में एक
योग का नाम । ८. मानिक या लाल का धुँसलापन जो
एक दोष समझा जाता है । ९. राम की सेना का एक
भाग । १०. पाप [को०] । ११. शरारत । दुष्टता [को०] ।
१२. ऊँट [को०] ।

धूम्रक—संज्ञा पुं० [सं०] ऊँट ।

धूम्रकान्त—संज्ञा पुं० [सं० धूम्रकान्त] एक रत्न या नग का नाम ।

धूम्रकेतु—संज्ञा पुं० [सं०] भरतराजा के पुत्र का नाम (भागवत) ।

धूम्रकेश—संज्ञा पुं० [सं०] १. राजा पृथु के एक पुत्र का नाम । २.
कृष्णाश्व का एक पुत्र जो अचि नाम की स्त्री से उत्पन्न हुआ
था (भागवत) ।

धूम्रपत्रा—संज्ञा श्री० [सं०] एक पोषे का नाम जो आयुर्वेद में तीता,
रुचिकारक, गरम, अग्निदीपक तथा क्षोष, कृमि और सर्पों को
दूर करनेवाला माना गया है ।

पर्या०—सुलभा । स्वयंभुवा । धूम्रपत्रा । धूम्राक्षी । धूम्रिनी ।

धूम्रपान—संज्ञा पुं० [सं० धूम्रपान] दे० 'धूमपान' [को०] ।

धूम्रमल्लिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] शूली नामक वृक्ष ।

धूम्ररक्त—वि० [सं० धूम्ररक्त] कृष्ण लोहित वर्ण का [को०] ।

धूम्रलोचन—संज्ञा पुं० [सं०] १. कबूतर । २. शुभ नामक दानव का एक सेनापति ।

विशेष—शुभ निशुभ के वध के लिये जब देवी ने एक परम सुंदरी का रूप धारण करके कहा था कि जो मुझे युद्ध में जीतेगा उसे मैं वरमाला पहनाऊँगी तब शुभ ने उन्हें पकड़ने के लिये इसी धूम्रलोचन को भेजा था ।

धूम्रलोहित—संज्ञा पुं० [सं०] शंकर । शिव [को०] ।

धूम्रलोहित—वि० गहरा लाल या गुलाबी [को०] ।

धूम्रवर्ण—वि० [सं०] धुएँ के रंग का । सलाईपन लिए काला । धूमला ।

धूम्रवर्ण—संज्ञा पुं० १. धुएँ का रंग । सलाई लिए काला रंग । २. लोबान [को०] ।

धूम्रवर्णक—संज्ञा पुं० [सं०] माँद में रहनेवाला एक जानवर । लोमड़ी [को०] ।

धूम्रवर्ण—संज्ञा स्त्री० [सं०] अग्नि की सात जिह्वाओं में से एक ।

धूम्रशूक—संज्ञा पुं० [सं०] ऊँट ।

धूम्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. एक प्रकार की ककड़ी । २. दुर्गा [को०] । ३. सूर्य की बारह कलाओं में से एक [को०] ।

धूम्राक्ष—वि० [सं०] जिसकी आँखें धूमले रंग की हों ।

धूम्राक्ष—संज्ञा पुं० १. रावण का एक सेनापति जो राम-रावण-युद्ध में हनुमान के हाथ में मारा गया था । २. विभुवंशोय राजा हेमचंद्र के पुत्र । (मागवत) ।

धूम्राक्षि—संज्ञा पुं० [सं०] भट्टे रंग का मोती [को०] ।

धूम्राट—संज्ञा पुं० [सं०] धूम्राट पक्षी । भिंगराज ।

धूम्राभ—संज्ञा पुं० [सं०] १. वायु । २. वायुमंडल [को०] ।

धूम्राचि—संज्ञा स्त्री० [सं०] आँख की दस कलाओं में से एक । (चारदातिका) ।

धूम्राश्व—संज्ञा पुं० [सं०] इक्ष्वाकुवंशीय एक राजा ।

धूम्रिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] शीशम का पेड़ ।

धूर-पुं०—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'धूल' । उ०—मानुष हो कोइ मुवा नहि मुवा सो उगर धूर ।—कबीर ग्रं०, पृ० ३६५ ।

धूर—संज्ञा स्त्री० [हि०] एक धाम ।

धूर—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'धूर' । उ०—गवं गुमान में जो है पुरा रहै सदा सो धूर प्रभु ।—कबीर सा०, पृ० ५८६ ।

धूरकट—संज्ञा पुं० [हि०] लता का कुछ पेशगी जिसे बसामी जेठ बसाव में जमींदार को देने हैं ।

धूरजटी—संज्ञा पुं० [सं० धूर्जटि] दे० 'धूर्जटि' ।

धूरडाँगर—संज्ञा पुं० [अंग०] सोंगवाला चौपाया । डोर ।

धूरत(पुं०)—वि० [सं० धूर्त] दे० 'धूर्त' । उ०—कपट रूप तुझ सो मिले करि धूरत का भेष ।—प्रथ०, पृ० ४४ ।

धूरतताई—संज्ञा स्त्री० [हि० धूरत + ताई (प्रत्य०)] धूर्तता । धूल । उ०—धूरतताई की नदना ।—प्रेमघन०, भा० १, पृ० ६५ ।

धूरधान—संज्ञा पुं० [हि० धूर + धान] धूल की राशि । गंद का डेर । उ०—बानन के बाहिरे को कर में कमान कमि घाई धूरधान घासमान में मड़े लगी । पद्याकर (शब्द०) ।

धूरधानी—संज्ञा स्त्री० [हि० धूरधान] १. गंद की डेरी । धूल की राशि । २. ध्वंस । विनाश । ३.—लंकुर जारि, मकरी विदारि बार बार जानुधान धारि धूरधानी करि डारी है ।—तुलसी (शब्द०) । ३. पथरकला बंदूक ।

धूरवा—वि० [हि०] दे० 'ध्रुव' । उ०—नीजै सुनी तब धूरवा मीति, कवू बिचिचार को मारग नीजै ।—नट०, पृ० ५६ ।

धूरसंभा—संज्ञा स्त्री० [सं० धूलि + संघा] गोधूनी का समय । संघा ।

धूरा—संज्ञा पुं० [हि० धूर] १. धूल । गंद । २. चूर्ण । बुकनी । चूरा ।

मुहा०—धूरा करना या देना = शीत में धंश सुन्न होने पर गरम गन्ध, सोंठ की बुकनी आदि मलना । धूरा देना = इधर उधर की बात कहकर या चापलूसी करके गों पग लाना । अपने अनकूल करना । बहकाना । धोखा देना ।

धूरि—संज्ञा स्त्री० [सं० धूरि] दे० 'धूल' । उ०—कंठके कवलु कलेबर मुख मालन धूरि ।—विद्यापति, पृ० २६५ ।

मुहा०—धूर लपेटा मानिक = धूलि में लिपटने से क्षिरा दुषा माणिक । सामान्य वेण में धमामान्य जन । उ०—केरे भेल रहै भा तथा । धूरि लपेटा मानिक छरा ।—जायसी ग्रं०, पृ० ६ ।

धूरिक्षेत्र—संज्ञा पुं० [हि० धूरि + क्षेत्र] धूरि । धरती । उ०—धूरिक्षेत्र में घाह कम करि, हरिद पावै ।—नंद० ग्रं०, पृ० १७६ ।

धूरियावेला—संज्ञा पुं० [हि० धूर + वेला] एक प्रकार का वेला ।

धूरिया मल्लार—संज्ञा पुं० [हि० धूर + मल्लार] मल्लार राग का एक भेद ।

धूरीण—वि० [हि०] दे० 'धूरीण' । उ०—धूरीण विद्वान् बना दिया ।—कबीर ग्रं०, पृ० २५० ।

धूर्जटि—संज्ञा पुं० [सं०] शिव । महादेव ।

धूर्जटी—संज्ञा पुं० [सं० धूर्जटि] दे० 'धूर्जटि' । उ०—जटी, पिनाकी, धूर्जटी, नीलकंठ, धृदु, मोइ ।—नंद० ग्रं०, पृ० ६२ ।

धूर्त—वि० [सं० धूर्त] १. धैर्यशील । मज्जु । जलवाज । २. बचक । प्रतारक । धोखा देनेवाला । दगाबाज । ३. संपट [को०] । ४. क्षत्रिय [को०] ।

धूर्त—संज्ञा पुं० १. ग्राह्य में शठ नायक का एक भेद । २. विद्व

लवण । खागी नमक । ३. लोहकिट्ट । लोहकिट्टी । लोहे की
मैल । ४. धतूरा । ५. खोर नामक गंधद्रव्य । ६. जूपासी ।
७. दावपक्ष करनेवाला घादमो । ८. धानि पर्वचाना (कीच) ।

धूर्तक—सखा प्र० [अ० धूर्तक] १. जुआरी । २. भृंगान । गोखड़ ।
३. कोरुण्ड कृत्त का नाम । (मर्यादावत ।)

धूर्तकितव - मधा पु० । म०] जुआगे । (१०; ।

धृतकृत्य — राधा पु० [५०] चतुर्ग [५०] ।

धूतकृत^२ विद्यमान । ज्ञानवान् । (गो.)

धूर्तचरित सभा पु० [म० नं० ११] १. सर्वा का नीचता २.
सकीर्ण नाटक का एक अङ्क ।

भूतजंतु—गंधा पु० । सं० भवत्तु, । अन्त्य (पु०) ।

धूर्तता - मंजु श्री० [म०] भा० । ग. य. । अ. य. । व. य. ।
 नृपति । नायक ।

धूर्तमता(धु) - संज्ञा श्री० [हि० सं + मता (मति या बुद्धि)]
 धूर्तता । योग्यता । उ० - धूर्तमता श्री० कि० मह० शर्मा ।
 कबीर सा०, पृ० ३२९ ।

धूर्तमानुषा म. म. श्री० [सं० पत्रिका] मद्रास ।

धूर्तरचना संका क्र० [५०] ११ । म.पट । प्रेम । प्रेम । प्रेम ।

धूर्कर - संज्ञा पु० [सं०] बोभा ॥ ११० ॥ ॥ भाषाः ॥

धूर्य -- संज्ञा पु० [मं०] वि० ।

धूर्धह'—वि० । म० । ४. भार प्रियवत् । २. कर्म का भाव
संभालनवाला (को०) ।

पूर्वहः संधा पुं लोभ दानेयाना जगत्सु ॥

धूर्वा - संज्ञा स्त्री० । धं० । रश्मिः । अश्विनः । अश्विनः ।

धृज—संज्ञा स्त्री० । धृजः । १ धिनी, येन धर्मो ज्ञातः प्रसिद्धः ।
 २ जगत् ।

[illegible]

धूल ध्यानते रहे । (किमी की) धूल भड़ना = (किसी पर)
मार पटना । पिटना । (विनोद) । (किसी की) धूल भाड़ना =
(१) (किसी की) मारना । पीटना । (विनोद) । (२)
मृथ्वा करना । खुशामद करना । जैसे, —उमका तो दिन भर
धमारो की धूल भाड़ते जाता है । (किसी बात पर) धूल
धानना — (१) (किसी बात की) हथर उधर प्राप्त न होने
देना । फैलाने न देना । दवाना । (२) ध्यान न देना । जैसे
अधारी पर धूल डालना । धूल भाड़ना = (१) मारा मारा
फिरना । हुदशा में होना । उ०— धूल उनकी है उड़ाई जा
रही । धूल में मिल धूल वे हैं फाँकी — चुभते०, पृ० २७ ।
(२) सरामर भूट बोलना । जैसे — बगी धूल फाँकी हो,
मेरे लहंगे लुढ़ देखना था । धूल में धूल उगाता । गिरफ्त जगह
में भी गच्छाई या गच्छाई धान दिना । उ०— दूसरे धूल में
धूल धान है, हथ धूल में भी धूल ही हाथ आती है । —
चुभते० (दो दो बातें), पृ० ५ । (तृती पर) धूल बरसना =
उत्तम वरसना । बहुत पहल न रहना । रोना न रहना ।
उ०— पात्र दिन धूल है बरसती की । धूल बरसना रहा जहाँ
सब दिन, — चुभते०, पृ० २४ । धूल में मिलना = नष्ट होना ।
घोषट होना । खराब होना । ध्वस्त होना । जाता रहना । न
रह जाना । उ०— धूल उनकी है उड़ाई जा रही । धूल में
मिल धूल वे हैं फाँकी । — चुभते०, पृ० २७ । धूल में मिल
जाना = ३० ' धूल में मिलना ' । उ०— धूल में छाक मिल गई
मागी । रह गए रोब दाब के न पने । चुभते०, पृ० २४ ।
धूल में मिला देना = ३० ' धूल में मिलाना ' । उ०— बीज की
धूल में मित्रावर भी । लो नही धूल में मिला देने । — चुभते०,
पृ० ८ । धूल में मित्राना — नष्ट करना । घोषट करना ।
खराब करना । बरबाद करना । धूल में रस्मी बटना = ३०
' धूल की रस्मी बटना ' । उ०— धूल में मत घटा करो रस्मी ।
धूल में धूल दाने क्यों हो । — चोमे०, पृ० १६ । (कहीं
की) धूल न डालना — (तृती पर) बहुत अधिक और बार
बार जाना । बराबर पहुँचा रहना । बहुत फेरे लगाना ।
धूल दाख आना = निमार वस्तु का हाथ लगना । निरर्थक
जान पना । उ०— दूसरे धूल में फूल उगाते हैं, हथे फूल में
भी धूल ही हाथ आती है । चुभते० (दो दो बातें), पृ०
५ । धूल में मिला देना = ३० ' धूल में मिलाना ' । उ०—
आप जान की धूल में मिला दिया । — प्रेमधन०, भा० २,
पृ० २६१ । पैर की धूल — अमृत कुच्छ दस्तु या शक्ति ।
नामीन । मिर पर धूल डालना = पक्षताना । मिर धुनना ।
उ०— धूलकी धूल धवन उगाता धूरी । हस्ति लाज मेलहि मिर
धनो । — चायमी (शब्द) ।

५. युद्ध के समाप्त बुद्धि वस्तु । जंग, - - इनके सामने यह ध्वज है ।

गुहा- मूल समभवा = अत्यंत तुच्छ समभवा । किसी गिनती
न में जाता । बिजकुल नाभीय अयात करना ।

धूलक मन्त्र ३० [स०] विष । जहर ।

गणपतकृत— अंश पु० [हि० धूल + धवका] चारो ओर लहनेवाली
धूल । गर्द गुबार ।

विशेष - इनकी कथा महाभारत में इस प्रकार पाई है ।

पुरुवंश में शांतनु नाम के एक राजा हुए जिन्होंने गंगा से विवाह किया। गंगा में उन्हें देवव्रत नामक पुत्र हुए जो भीष्म के नाम से प्रसिद्ध हुए। भीष्म ने विवाह न करने की प्रतिज्ञा करके अपने पिता का विवाह सत्यवती या मत्स्यवंश से होने दिया। यह मत्स्यवती जब बची थी तभी उसे पराजय से एक पुत्र उत्पन्न हुआ था जिसका नाम द्विपायन पड़ा था। यही द्विपायन महाभारत के वर्तमान प्रसिद्ध महर्षि वेदव्यास हुए। सत्यवती के गर्भ से शांतनु को दो पुत्र हुए। विचित्रवीर्य और चित्रांगद। चित्रांगद गुरावस्था के पूर्व ही एक गधर्व द्वारा मारे गए। विचित्रवीर्य राजा हुए और उन्होंने काशिराज की अशिका और अशालिका नाम की दो कन्याओं से विवाह किया। कुछ दिन पौष्टे विचित्रवीर्य बिना कोई संतान छोड़े मर गए। वन गिर गन्धर्वों के लिये सत्यवती ने अपने पुत्र वेदव्यास को बुलाकर दोनों पुत्रवधुओं के साथ नियोग करने के लिये कहा। अशिका ने समगम के समय वेदव्यास का कृष्णवर्ण और जटायु देह धारण कर लिया। इसपर वेदव्यास ने कहा कि आपके गर्भ में यम प्रतापी पुत्र उत्पन्न होगा, पर यह अश्विनी मन्त्र के दोष से अशुभ होगा। अशालिका के साथ नियोग होने पर पांडु का उत्पत्ति हुई और सुदेष्णा दासी के साथ नियोग होने पर निदुर का जन्म हुआ। धृतराष्ट्र अपने ये, इमलिये पांडु राजा हुए। धृतराष्ट्र का पिताह गांधार देश के राजा की कन्या गांधारी में हुआ था। इन्हीं गांधारी के गर्भ से दुर्योधन, दुःशामन, विकर्षा, चित्रमेन इत्यादि सौ पुत्र हुए जो कौरव कहलाए और महाभारत के युद्ध में पांडवों के हाथ से मारे गए।

४. एक नाग का नाम। ५. गधर्वों के एक राजा का नाम (बौद्ध)। ६. अनमेजय के एक पुत्र का नाम। ७. एक प्रकार का हंस।

धृतराष्ट्रो—संज्ञा स्त्री [म०] १. ब्रह्मण ऋषि की पत्नी साय्या से उत्पन्न ५ कन्याधा में से एक जो हनो की आदिमातृ की। २. धृतराष्ट्र की स्त्री।

धृतलक्ष्य—वि० [स०] जो धारणा लक्ष्य प्राप्त करने में लगा हो (को०)।

धृतवर्मा—संज्ञा पुं० [सं० धृतवर्मान्] १. वह जो कबच धारण किए हो। २. त्रिगर्त का राजकुमार जिसके साथ अर्जुन को उस समय युद्ध करना पड़ा था जब वे अश्वमेध के बाड़े के साथ गए थे।

धृतचक्रय—संज्ञा पुं० [म०] तीनकर तीर्थ पदार्थ बेचना (को०)।

धृतव्रत—संज्ञा पुं० [म०] १. वह जिसने व्रत धारण किया हो। २. पुरुवंशीय जयद्रथ के पुत्र विजय का गोत्र। ३. इंद्र (को०)। ४. वरुण (को०)। ५. प्राग्न (को०)।

धृतव्रत—वि० १. जिसने कोई व्रत धारण किया हो। धार्मिक क्रिया करने वाला। २. निष्ठाशील। जिसकी निष्ठा टूट हो।

धृतात्मा—वि० [सं० धृतात्मन्] आत्मा को स्थिर रखनेवाला। धीर।

धृतात्मा—संज्ञा पुं० १. धीर पुरुष। २. विष्णु।

धृति—संज्ञा स्त्री [सं०] १. धारण। धरने या पकड़ने की क्रिया। २.

स्थिर रहने की क्रिया या भाव। ठहराव। ३. मन की दृढ़ता चित्त की प्रविचलता। धैर्य। धीरता। उ०—कृष्ण देह, विभा भरी भरी, धृति सुखी, स्थिति ही हरी हरी।—साकेत, पु० ३२१।

विशेष—साहित्यदर्पण के अनुसार यह व्यभिचारी भावों में से एक है। मनु ने इसे धर्म के दस लक्षणों में कहा है।

४. सोलह मातृकाओं में से एक। ५. अठारह अक्षरों के वृत्तों की संज्ञा। ६. दक्ष की एक कन्या और धर्म की पत्नी। ७. अश्वमेध की एक आहुति का नाम। ८. कलित ज्योतिष में एक योग। ९. ब्रह्मा की सोलह कलाओं में से एक। १०. संतोष। आनंद (को०)। ११. विचार। सावधानता (को०)। १२. अठारह (१८) की संख्या (को०)। १३. यज्ञ (को०)।

धृति—संज्ञा पुं० १. जयद्रथ राजा का पुत्र। २. एक विश्वदेव का नाम। ३. यदुवंशीय वभु का पुत्र।

धृतिगृहीत—वि० [म०] धृतिशील। धृतिमान् (को०)।

धृतिमान्—वि० [सं० धृतिमत्] १. धैर्यवान। धीर। उ०—देखकर भी न कदापि भयोर हुए तुम लोकोत्तर धृतिमान् :- सागरिका, पु० ८। २. संतुष्ट (को०)।

धृतिहोम—संज्ञा पुं० [सं०] विवाह कार्य में किया जानेवाला होम (को०)।

धृत्वरि—संज्ञा स्त्री [सं०] पृथ्वी (को०)।

धृत्वा—संज्ञा पुं० [सं० धृत्वा] १. विष्णु। २. ब्रह्मा। ३. सद्गुण। धार्मिकता। ४. आकाश। ५. समुद्र। ६. चतुर आदर्मी (को०)।

धृम—संज्ञा पुं० [हि०] १. 'धर्म'। उ०—अचारि प्रग लखी प्रमः न धृम द्वाय प्रग दिदा।—पु० रा०, २४। ४५७।

धृमजघट—संज्ञा पुं० [?] धर्मयुद्ध। उ०—उठे सुण धृमजघट धायो धीग क्रोध उर दारै।—रघु० क०, पु० १५३।

धृषित—वि० [सं०] बहादुर। वीर। साहसी (को०)।

धृपु—संज्ञा पुं० [सं०] डेर। राशि। समूह (को०)।

धृपु—वि० १. बहादुर। वीर। २. चतुर। होशियार (को०)।

धृष्ट—वि० [सं०] [वि० स्त्री० धृष्टा] १. संकोच या लज्जा न करनेवाला। जो कोई अनुचित या बेठंगा काम करते हुए कुछ भी न सहमे। निसंज्ज। बेहया। प्रगल्भ।

विशेष—साहित्य में 'धृष्ट नायक' उसको कहते हैं जो अपराध करता जाता है, अनेक प्रकार का तिरस्कार सहता जाता है, पर अनेक बहाने करके बातें बनाकर नायिका के पीछे लधा ही रहता है।

२. अनुचित साहस करनेवाला। डीठ। गुस्ताख। उद्धत। ३. बहादुर। साहसी (को०)। ४. आत्मविश्वासी (को०)। ५. निर्दयी। क्रूर।

धृष्ट—संज्ञा पुं० १. वेदिवंशीय कुति का पुत्र (हरिवंश)। २. सप्तम मनु के एक पुत्र का नाम (भागवत)। ३. अश्वों का संहार (वाल्मीकि०)। ४. साहित्य के अनुसार वह नायक जो बार बार अपराध करता है, अनेक प्रकार के अपमान

सहता है, पर फिर भी किसी न किसी प्रकार बातें बनाकर नायिका के साथ लगा रहता है। उ०—लाज घरे मन में नहीं, नायक धृष्ट निदान।—मतिराम (शब्द०)।

धृष्टकेतु—संज्ञा पु० [सं०] १. चेदि देश के राजा शिशुपाल का पुत्र जो कुरुक्षेत्र के युद्ध में पांडवों की ओर से लड़ा था और द्रोणाचार्य के हाथ से मारा गया था। २. जनकवंशीय सुघ्नति के पुत्र (रामायण)। ३. मनु रोहित के पुत्र। ४. सन्नति राजवंशीय सुकुमार का एक पुत्र (हरिवंश)।

धृष्टता—संज्ञा स्त्री [सं०] १. ढिठाई। अनुचित साहस। गुस्ताखी। २. निर्लज्जता। संकोच का भाव। बेहयाई।

धृष्टद्युम्न—संज्ञा पु० [सं०] राजा द्रुपद का पुत्र और द्रौपदी का भाई जो पांडवों की सेना का एक नायक था।

विशेष—पुष्य राजा का द्रुपद नामक एक पुत्र था। पुष्य राजा से भरद्वाज ऋषि की बहुत मित्रता थी, इससे वे नित्य द्रुपद को लेकर ऋषि के आश्रम पर जाया करते थे। ऋषयः द्रुपद और ऋषिपुत्र द्रोण में बड़ा स्नेह हो गया था। द्रुपद जब राजा हुआ तब द्रोण उसके पास गए; पर उसने उनकी अवज्ञा की। इसपर द्रोण दीन भाव से इधर उधर घूमने लग्य और अंत में उन्होंने कौरवों और पांडवों की अस्त्रशिक्षा का भार लिया। अर्जुन युद्ध के अपमान का बदला चुकाने के लिये द्रुपद को बंदी करके लाए। द्रुपद ने द्रोण को आधा राज्य देकर छुटकारा पाया। इस अपमान का बदला लेने के लिये द्रुपद ने याज्ञ और अनुयाज नामक दो ऋषिपुत्रों को सहायता से एक बड़े यज्ञ का अनुष्ठान किया। इस यज्ञ से एक अत्यंत तेजस्वी पुष्प खट्वा, चर्म, धनुर्वाण म सुसज्जित उत्पन्न हुआ। देववाणी हुई कि यह राजपुत्र द्रुपद का शोक का नाश करेगा और द्रोणाचार्य का वध इसी के हाथ से होगा। कुरुक्षेत्र के युद्ध में जिस समय द्रोणाचार्य अपने पुत्र अश्वत्थामा की मृत्यु की बात सुनकर योग में मग्न हुए थे उस समय इसी धृष्टद्युम्न ने उनका सिर काटा था। महाभारत के युद्ध के पीछे अश्वत्थामा ने अपने पिता का बदला लिया और सोते में धृष्टद्युम्न का सिर काट लिया।

धृष्टधी—वि० [सं०] निर्लज्ज। बेहया (को०)।

धृष्टमानी—वि० [सं० धृष्टमानिन्] १. अपने को बहुत बड़ा समझने वाला। २. धृष्ट। ढिठा (को०)।

धृष्टवादी—वि० [सं० धृष्टवादिन्] १. अश्रुतापूर्वक बात करनेवाला। २. दुढ़ता या साहस से बात करनेवाला (को०)।

धृष्टा—संज्ञा स्त्री [सं०] असती स्त्री। कुलटा (को०)।

धृष्टि—संज्ञा पु० [सं०] १. हिरण्याक्ष का एक पुत्र। २. दशरथ के एक मंत्री का नाम। ३. एक यज्ञपात्र।

धृष्टि^२—वि० दृढ़। साहसी (को०)।

धृष्टि^३—संज्ञा स्त्री दृढ़ता। साहस (को०)।

धृष्ट्याक्—वि० [सं० धृष्ट्याक्] १. बहादुर। साहसी। २. निर्लज्ज। बेहया (को०)।

धृष्ट्याता—संज्ञा स्त्री [सं०] धृष्टता।

धृष्ट्यात्व—संज्ञा पु० [सं०] धृष्टता।

धृष्टि—संज्ञा पु० [सं०] किरण।

धृष्ट्या^१—वि० [सं०] १. धृष्ट। प्रगल्भ। २. ढिठा। उद्धत। ३. निर्लज्ज। बेहया (को०)। ४. दृढ़। शक्तिशाली (को०)।

धृष्ट्या^२—संज्ञा पु० १. वैवस्वत मनु के एक पुत्र। २. सावरण मनु के एक पुत्र। ३. एक रुद्र का नाम।

धृष्ट्यावोजा—संज्ञा पु० [सं० धृष्ट्यावोजस्] कातवीर्य के एक पुत्र।

धृष्ट्य—वि० [सं०] धर्मण योग्य। धर्मणीय।

धेख^(१)—संज्ञा पु० [सं० धेख ?] ईर्ष्या। उ०—करबा एक राह मन कीधी। लेख प्रमाण धेख दत्त लीधी।—रा० क०, पृ० ५७।

धेठा^(१)—वि० [सं० धृष्ट] छिटा। धृष्ट। उ०—धेठा भणी इमारत धारे। बात करे उर घात विचारे।—रा० क०, पृ० २२५।

धेड़^(१)—संज्ञा पु० [देश०] दे० 'धेर'। उ०—जा तन सँ मुझे कछु नहि प्यार। असते के नहि हिंदु धेड़ चमार।—दक्खिनी०, पृ० १००।

धेड़ी कौवा—संज्ञा पु० [देश० धेड़ी + हि० कौवा] बड़ा काला कौवा। डोम कौवा।

धेधक धोना^(१)—संज्ञा पु० [अनु०] रास रंग। ताल धिनाधिन। नाच। गान। उ०—धेधक धोना तूँ गये सु हरिबोली हरिबोल।—सुंदर य०, भाग १, पृ० ३१६।

धेन^१—संज्ञा पु० [सं०] १. समुद्र। २. नदी।

धेन^(२)—संज्ञा स्त्री [सं० धेनु] दे० 'धेनु'। उ०—बधो धेन मारे। प्रलंब प्रहारे।—पृ० रा० २४६।

धेना—संज्ञा स्त्री [सं०] १. नदी। २. बाणी। ३. तुही गाय (को०)।

धेनिका—संज्ञा स्त्री [सं०] धनिया (को०)।

धेनु—संज्ञा स्त्री [सं०] १. वह गाय जिसे बच्चा जने बहुत दिन न हुए हों। सवत्सा गो।

पयो०—नवप्रयुक्ता। नवमृतिका।

२. गाय। उ०—कोसल्यादि मातु सब आई। निरखि बच्छ जनु धेनु लवाई।—तुलसी (शब्द०)। ३. पृथ्वी (को०)। ४. भेंट (को०)।

धेनुक—संज्ञा पु० [सं०] १. एक राक्षस का नाम जिसे बलदेव जी ने मारा था (हरिवंश)। २. महाभारत के अनुसार एक तीर्थ। यहाँ स्नान करके तिल की धेनु दान करने का विधान है। ३. रतिमंजरी के अनुसार सोलह प्रकार के रतिबंधों में से एक।

धेनुकसूदन—संज्ञा पु० [सं०] बलराम (को०)।

धेनुका—संज्ञा स्त्री [सं०] १. धेनु। २. हस्तिनी स्त्री। ३. उपहार। भेंट (को०)। ४. मादा पशु (को०)। ५. धनिया (को०)। ६. कटार (को०)। ७. पावंती (को०)।

धेनुदुग्ध—संज्ञा पु० [सं०] १. गाय का दूध। २. चिमटा।

धेनुदुग्धकर—संज्ञा पु० [पु०] बाणर।

धेनुमात्रिका—संज्ञा स्त्री० [म०] बड़े मच्छड़ जो चौपायों को लगते हैं। डीमा। डंम।

धेनुमती—संज्ञा स्त्री० [म०] १. गोमती नदी। २. भरतवंशीय देवगुप्त की पत्नी।

धेनुमुख—संज्ञा पुं० [म०] गामुख नाम का यात्रा। उ०—बाजे शिपुल शंख घरियारा। गरि धेनुमुख परिवार दुबारा।—सबन्धविह (शब्द०)।

धेनुपट्टरी—संज्ञा स्त्री० [म०] वह मवत्मा गाय जिसने दूध देना बंद कर दिया (को०)।

धेनुव्या—संज्ञा स्त्री० [म०] वह गाय जो बंधक रखी हो।

धेय—वि० [म०] १. पारण करने योग्य। धार्य। ध्येय। उ०—धेय मश पद प्रवृत्त मार। ध्येयित गृण महिमा जु प्रपाय। न०० प्र०, पृ० ३२६। २. पोषण करने योग्य। पोष्य। ३. पीने योग्य। पीन का। पेय।

धेय—संज्ञा पुं० १. पोषण। २. पान। ३. पकड़। पहण (को०)।

धेयना(प्र)—क्रि० प्र० [म० ध्यान] ध्यान करना। उ०—सेइ न धेइ न सुमिर के पद प्रीति सुधारी। पाठ सुसाहस राम सो भरि पेट विगारी। तुलसी (शब्द०)।

धेर—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का शीत।

विशेष—इस प्रांत के लोग राजस्थान पंजाब और वही कहीं उत्तर प्रदेश के आदर रहते हैं। राजस्थान में मरे हुए गाय बैल आदि का चमड़ा निकालकर ये जमारों के हाथ बेचते हैं। राजस्थान के धेर सुप्रसिद्ध। मांस नहीं खाते।

धेरा—वि० [म०] भेगा।

धेरिया—संज्ञा स्त्री० [हि० घी] लड़की। पुत्री।

धेखना—संज्ञा पुं० [हि० धेखा] पुराने आर्य के बराबर का गिरजा। धेखा के पूज्य का नाम।

विशेष—अब यह सिक्का बड़ी लड़ी बनना।

धेला—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'धेय'।

धेली—संज्ञा स्त्री० [हि० धेल] साधा धरया। घाट घाने का सिक्का। धरणी।

धैताला—वि० [अनु०] १. धैर्य। २. धैर्य। ३. धैर्य। उ०—धैताला का पनाल।—प्रताप (शब्द०)।

धैनवा—वि० [म०] गाय में उत्पन्न।

धैनव—संज्ञा पुं० गाय का बछड़ा।

धैना—क्रि० प्र० [हि० धैना] धकना। उ०—बिहतर कदह होय धैना मे नइ के खोलण। जुरे भी धैना धरे गोव धै सेवा करिए।—पलटन, भा० १, पृ० ५२।

धी०—धे—पकड़ या डकड़। उ०—मैंदिन गून विउ धनतै बसा। सेव नागिनी धे धे उमा।—नायसी प्र० (गुप्त), पृ० ३५६।

धेना(प्र)—क्रि० प्र० [हि० धेना या धेना] १. पकड़ी हुई टेब। धावत स्वभाव। उ०—कह गिरधर कविराय फुहर के

याही बना। कजरीटा नहि होइ लुकाठे धाँवै नैना।—गिरधर (शब्द०)। २. काम धन्दा।

धेनु०—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'धेनु'। उ०—धीरी धूमरि धेनु बिबिध रंग सोमित ठाऊं ठाऊं।—नंद० प्र०, पृ० ३५६।

धेनुक—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक रतिबंध। २. गायों का झुंड।—संपूर्ण० धर्म० प्र०, पृ० २५६।

धैया धामक धैया०—संज्ञा पुं० [अनु०] नृत्य का ताल। उ०—धुनुकट धुनुकट धुनुकट धुनुकट धुनुकट धुनुकट। गरे जाल भाँझि परभन कल कल त त त त त धैया धामक धैया।—प्रकयरी०, पृ० ४४।

धैर्य—संज्ञा पुं० [म० धैर्य] १. धीरता। चित्त की स्थिरता। संकट, बाधा, कठिनाई या विपत्ति आदि उपस्थित होने पर घबराहट का न होना। अश्रयता। अश्रयकुलता। धीरज। जैसे,—बुद्धिमान् विपत्ति में धैर्य रखते हैं। २. उतावला न होने का भाव। हड़बड़ी न मचाने का भाव। सब्र। जैसे, थोड़ा धैर्य करो, अभी वे आते होंगे। ३. चित्त में उद्वेग न उत्पन्न होने का भाव। निर्विकारचित्ता।

विशेष—साहित्यदर्पण के अनुसार धैर्य नायक या पुरुष के आठ सत्वज गुणों में से एक है।

क्रि० प्र०—छोड़ना।—घरना।—रखना।

४. साहस (को०)। ५. धृष्टता (को०)।

धैवत—संज्ञा पुं० [म०] संगीत के सात स्वरों में से छठा स्वर जो मध्यम के आगे खींचा जाता है।

विशेष—नारदीय शिखा के अनुसार छोड़े के दिनदिनाने के समान जो स्वर निकले वह धैवत है। तानमेन ने इस स्वर को मेढ़क के स्वर के समान कहा है। संगीतदामोदर के मत से जो स्वर तामि के नीचे प्राकर बाँस्त स्थान से फिर ऊपर दीड़ना हुआ कंठ तक पहुँचे वह धैवत है। संगीतदर्पण के मत से यह स्वर ऋषिकुल में उत्पन्न धीर क्षत्रिय वर्ण का है। इसका वर्ण पीत, जन्मस्थान श्वेतद्वीप, ऋषि नृबल, देवता गणेश और उद उष्णिक् (मर्तांतर में जगती) माना गया है। यह षाड्ज जाति का स्वर माना गया है। इसकी ७२० तानें मानी गई हैं जिनमें प्रत्येक के ४८ भेद होने से सब ३४,५६० तानें हुईं। श्रुतियाँ इसकी तीन हैं—रम्पा, रोहिणी और मंदी।

धैवत्य—संज्ञा पुं० [सं०] चतुराई। होशियारी (को०)।

धौंक०—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'धौंका'। उ०—सत गुरु के परताप सो, मिट गए सबही धौंक।—कबीर सा०, पृ० ८५७।

धौंहाल—वि० [हि० धौंघा ?] (जमीन या मिट्टी) जिसमें ढेले, कंकड़ पत्थर के ढोंके हों।

धौंघका—संज्ञा पुं० [म० धूँघ, हि० धुँघा] [स्त्री० धौंघकी] घर का धुँघा निकलने के लिये चौंघे की तरह निकला हुआ छेद।

धौंघा—संज्ञा पुं० [सं० दुण्ड] १. लोढ़ा। बेडोल पिडा। उ०—मैं भी मिट्टी का धौंघा ही हूँ।—सरस्वती (शब्द०)। २. बड़ा धीर बेडोल धरीर। मोटी धीर बेडोल मूर्ति।

मुहा०—मिट्टी का धोधा = (१) मूर्ख । नासमझ । जड़ । (२) निकम्मा । घालसी ।

धोखों पोंपों—संज्ञा स्त्री० [धनु०] धोखों पोंपों की ध्वनि । उ०—इतने में बाजों की धोधों पोंपों सुनाई दी ।—काया०, पृ० ३५८ ।

धोखन(७)—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'धोवन' । उ०—दूसरी ने कहा था, रमानाथ तो उसके पाँवों का धोखन भी नहीं है ।—ठेठ, पृ० ३१ ।

धोखाउरि(७)—वि० [हि० धोना] धुला हुआ । उ०—बोझावरि घाने मदिरा साध, देवरि भांगि मसीद बांध ।—कीर्ति०, पृ० ४४ ।

धोई^१—संज्ञा स्त्री० [हि० धोना] १ छिलका निकाली हुई उरद या मूंग की दाल ।

विशेष—पानी में भिगोई हुई दाल को हाथ से मलकर छिलका छलक करते हैं इसी लिये दाल को धोई कहते हैं ।

२. मफीम के बरतन का धोवन ।

धोई(७)^२—संज्ञा पुं० [हि० धवई] राजगीर । धवई । उ०—राजा केर लाग गढ धोई । फूट जहाँ धुंवारे सोई ।—जायमी (शब्द०) ।

धोक(७)^१—संज्ञा पुं० [?] नमस्कार । साष्टांग प्रणाम । उ०—गह चढ़िया संतोष गज, धर पड़ ज्याँ नूँ धोक । चढ़िया ज्याँ नूँ चहुरजे, लालच गरबध धोक ।—बाँकी० ग्रं०, भा० ३, पृ० ५६ ।

धोक(७)^२—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'धोखा' । उ०—आ काठां चढ़सी मवस, धरणीधर दे धोक ।—बाँकी० ग्रं०, भा० २, पृ० २ ।

धोकड़—वि० [दे०] हट्टा कट्टा । मोटा ताजा । हट्ट पुष्ट । मुट्ठडा ।

धोकड़ा—संज्ञा पुं० [दे०] एक प्रकार का बूझ जो राजस्थान में होता है ।

धोका^१—संज्ञा पुं० [सं० स्तोत्र, प्रा० धोक] पाँच मुट्ठी भर इठलों का पूला ।

धोका^२—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'धोखा' ।

धोख(७)—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'धोखा' । उ०—(क) बोल गया माया काया में, एक तखत बना है ।—रामानंद०, पृ० ३६ । (ख) भाइयू लावहु धोख जनि धाजु काज बह भोहि । सुनि सरोव बोले सुभट वीर धधीन न होहि ।—तुलसी (कव्०) ।

धोखा—संज्ञा पुं० [सं० धूकता (= धूर्तता)] १. मिथ्या व्यवहार जिससे हमारे के मन में मिथ्या प्रतीति उत्पन्न हो । धूर्तता या छल जिससे दूसरा भ्रम में पड़े । ऐसी युक्ति या चालाकी जिसके कारण दूसरा कोई अपना कर्तव्य भूल जाय । भुलावा । छल । दगा । जैसे, हमारे माथ ऐसा धोखा !

धो०—धोखा पड़ी । धोखेबाज ।

२. किसी की धूर्तता, चालाकी, झूठ बात आदि से उत्पन्न मिथ्या प्रतीति । ऐसी बात का विश्वास जो ठीक न हो और जो किसी के रंग डग या बात चीत आदि से हुआ हो । दूसरे के छल द्वारा उपस्थित भ्रांति । डाला हुआ भ्रम । भुलावा ।

मुहा०—धोखा खाना = किसी की धूर्तता या चालाकी न समझकर कोई ऐसा काम कर बैठना जो विचार करने पर ठीक न

ठहरे । किसी के छल या कपट के कारण भ्रम में पड़ना । ठगा जाना । प्रतारित होना । उ०—धोर न धोखा देत ओ प्रापुहि धोखा खान ।—व्यास (शब्द०) । धोखा देना = (१) ऐसी मिथ्या प्रतीति उत्पन्न करना जिससे दूसरा कोई भ्रयुक्त कार्य कर बैठे । भ्रम में डालना । भुलावा देना । बुत्ता देना । छलना । जैसे, —लोगों को धोखा देने के लिये उसने यह सब ढंग रचा है । (२) भ्रम में डाल या रखकर अनिष्ट करना । झूठा विश्वास दिलाकर हानि करना । विश्वासघात करना । किसी को ऐसी हानि पहुँचाना जिससे सबंध में वह सावधान न हो । जैसे, यह नौकर किसी न किसी दिन धोखा देगा । उ०—रहिए लटपट काटि दिन बर धामहि में सोय । छाँह न बाकी बैठिए जो तरु पनरो होय । जो तरु पतरो होय एक दिन धोखा देंहे । जा छिन बड़े बयार दूटि वह जर से जैहे ।—गिरिनर (शब्द०) । (३) भ्रममात् भरकर या नष्ट होकर दुःख पहुँचाना । जैसे, (क) इस बुद्धि में वह पुत्र को लेकर दिन काटना था, उसने भी धोखा दिया (अर्थात् वह चल बसा) । (ख) यह विमनो बहुत कमजोर है किसी दिन धोखा देगी ।

३. ठीक ध्यान न देने या किसी वस्तु के बाहरी रूप रंग आदि से उत्पन्न मिथ्या प्रतीति । भ्रम । पारणा । भ्रम । भ्रांति । भूल । जैसे, (क) इस रंग पत्थर को देखने में भ्रमल लग का धाखा होता है । (ख) भ्रममात् मुनन न धोखा हुआ, मैंने ऐसा भी नहीं कहा था । उ०—पोंडन द्विधे परे नहि धोखा ।—जायमी (शब्द०) ।

क्रि० प्र०—होना ।

मुहा०—धोखा खाना = भ्रम में पड़ना । भ्रान्त होना । धोर का भ्रम समझना । उ०—त्रिमि कपूर के हंभ सों हंभी धोखा खाय ।—हस्तिचंद्र (शब्द०) । धोखा पड़ना = भूल ब्रूक होना । भ्रम होना ।

४. ऐसी वस्तु या विषय जिसमें मिथ्या प्रतीति उत्पन्न हो । भ्रांति उत्पन्न करनेवाली वस्तु या धारोचन । भ्रम में डालनेवाली वस्तु । भ्रम्य वस्तु । माया । जैसे,—(क) यह संसार धोखा है । (ख) राम भरोमा भरी है धोर मय धावा धारी है ।

मुहा०—धोखे की टट्टी = (१) वह परदा या टट्टी जिसकी फ्रेट में छिपकर शिकारी शिकार पकड़ते हैं । (२) यथार्थ वस्तु या बात को छिपानेवाली वस्तु । भ्रम में डालनेवाली चीज । उ०—मैं उनके धोखे से धोखे की टट्टी हटाता हूँ ।—शिवप्रसाद (शब्द०) । (३) ऐसी वस्तु जिसमें कुछ तथ्य न हो । दिखाने की चीज । धोखा खड़ा करना या रखना = भ्रम में डालने के लिये धाँवर खड़ा करना । माया रचना । उ०—चित्त धोखा, मन निर्मला, बुद्धि उत्तम, मति धोर । मो धोखा नहि विरचही मनगुह मिने कबीर ।—स्वीर (शब्द०) ।

५. जानकारी का भ्रम । ध्यान का न होना । भ्रान्त ।

मुहा०—धोखे में या धोखे से = जान में नहीं । जान बूझकर नहीं । भूल से । जैसे,—धोखे से लग गया छमा करना ।

उ०—(क) त्रिभि धोखे मदपान करि मचिब मोच तेहि भाँति ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) काज कहा नरतन धरि सास्यो । पर-उपकार सार श्रुति को सो धोखेदु में न विचारयो ।—तुलसी (शब्द०) ।

६. धनिष्ट की संभावना । जोखों । जैसे, —(क) यह बड़े धोखे का काम है । (ख) इसमें जान जाने का धोखा रहता है ।

मुहा०—धोखा उठाना—भूठी बात का विश्वास करके हानि सहना । भ्रम में पड़कर हानि या कष्ट उठाना । सावधान न रहने के कारण नुकसान सहना । उ०—धच्छो सरह जान लिया करो, नहीं तो धोखा उठाओगे ।—निबन्धमाद (शब्द०) ।

७. धन्यथा होने की संभावना । जैसा सम्झा या कहा जाय उसके विरुद्ध होने की आशंका । संशय । शक । उ०—(क) या में कष्टु धोखो नहीं नेही मूर समान । दोऊ सम्मुख सद्ध हैं हग धानियारे बान ।—रतनहजारा (शब्द०) ।

मुहा०—धोखा पड़ना—धन्यथा होना । धोखे का धोखा होना । जैसा सम्झा या कहा जाय उसके विरुद्ध होना । उ०—पंडितन कहा परा नहि धोखा । कौन धगस्त समुद्रहि सोखा ।—जायसी (शब्द०) ।

८. भूल । त्रुटि । प्रमाद । त्रुटि । कमर । जैसे, जितना काम मुझसे हो सकेगा उसमें धोखा नहीं लगाऊँगा ।

मुहा०—धोखा लगना—त्रुटि या कमर होना । त्रुटि होना । धमी होना । उ०—हीरामन तेँ प्रान परेवा । धोख न लाग करत तुव सेवा ।—जायसी (शब्द०) । धोखा लगाना—त्रुटि या कमर करना । त्रुटि करना । धमी करना । जैसे, —कटने में अपनी ओर से मैं धोखा नहीं लगाऊँगा ।

विशेष—इन दोनों मुहावरों का प्रयोग प्रायः निम्न वाक्य (या काकु से प्रश्न) में ही होता है ।

९. लकड़ी में ग्याल, कपड़ा आदि लपेटकर बनाया हुआ पुतला जिसे किमान बिड़ियों को डराने के लिये सेत में खड़ा करते हैं । बिड़िया । धुनकार । उ०—तुला तिनक सङ्ग तुम त्रिभुवन भट बटोरि सबके बल जोने । परसुगम मे मूर तिमोमनि पल महँ भए सेन के धोखे ।—तुलसी (शब्द०) । १०. रस्मी लगी हुई लकड़ी जो फनदार पेड़ों पर इगलिये बाँधी जाती है कि नीचे से रस्मी खींचने से खट खट आवाज ही धीरे धीरे निकल आये । खटखटा । ११. बेसा का एक पकवान जिसमें धोतर नरम कटहन, मसाला आदि इस प्रकार भरा रहता है कि देखने से कबाब का भ्रम होता है ।

धोखेबाज—संज्ञा स्त्री [हि० धोखा + बाज] हि० संज्ञा धोखेबाजी । धोखा देनेवाला । छत्री । काटी । धुन ।

धोखेबाजी—संज्ञा स्त्री [हि० धोखेबाज] धुन । कपट । धुन ।

धोटा—संज्ञा पुं [हि० या देश०] दे० 'ढोटा' ।

धोड़—संज्ञा पुं [सं० धोड़] एक प्रकार का स्तंभ ।

धोतर^१—संज्ञा पुं [सं० धधोवस्त्र] एक छोटा कपड़ा जो गाँठे की तरह का होता है । धधोहर ।

धोतरा^२—संज्ञा स्त्री [हि०] दे० 'धोती' ।

धोतरा^३—संज्ञा पुं [हि०] दे० 'धधोवस्त्र' । उ०—धोतरा न धोवो रे धधो भगिन खावो रे भाई ।—गोरख०, पृ० ७६ ।

धोति—संज्ञा स्त्री [हि०] दे० 'धोती' । उ०—गजमोतियन को चौक सो तहाँ पुराइए । तापर नारियर धोति, मिष्टान्न धरा-इए ।—कबीर ज०, भा० ४, पृ० ४ ।

धोती—संज्ञा स्त्री [सं० धधोवस्त्र, हि० धधोतर या सं० धोत (धोत-वस्त्र)] नीचे हाथ लंबा धीरे दो ढाई हाथ चौड़ा कपड़ा जो पुरुष की काट से लेकर घुटनों के नीचे तक का शरीर धोते-धोती का प्रायः सर्वांग ढाकने के लिये कमर में लपेटकर खोसा या मोड़ा जाता है । उ०—मूरज जेहि की तपे रसोई । गिनहि बसंदर धोती धोई ।—जायसी (शब्द०) । (ख) धीन पुनीत मनोहर धोती । हरत बाल रति दापिनि जोती ।—तुलसी (शब्द०) ।

क्रि० प्र०—पहनना ।

मुहा०—धोती बाँधना = (१) धोती पहनना । उ०—मुद्रा श्रवण जनेऊ कधि । कनक पत्र धोती कटि बांधे ।—जायसी (शब्द०) । (२) तैंगार होना । सन्नद्ध होना । धोती ढोली करना = डर जाना । धमकी भरी होना । डरकर भागना । धोती ढीली होना = भय होना । डर होना । उ०—यह सामान देखकर चंद्रापीड की धोती ढीली हुई ।—गदाधरसिंह (शब्द०) ।

धोती^२—संज्ञा स्त्री [सं० धोति] १. धोत की एक क्रिया । दे० 'धोति' । २. एक धधुल चौड़ी धीरे चौवन (५४) धधुल लंबी कपड़े की धधुली जिसे हठयोग की 'धोति' क्रिया में मुँह से निकलते हैं ।

धोती^३—संज्ञा पुं [देश०] एक प्रकार का बाज जिसकी मादा की बेसरा कहते हैं ।

धोना—क्रि० सं [सं० धावन] पानी डालकर किसी वस्तु पर से मैल गर्द आदि हटाना । पानी से साफ करना । जन से रक्षक करना । प्रक्षालित करना । पलारना ।

विशेष—जिस वस्तु पर से गर्द मैल आदि हटाई जाती है तथा जो नगी हुई वस्तु (गर्द मैल आदि) हटाई या छुड़ाई जाती है दोनों का प्रयोग कर्म में होता है । जैसे, हाथ धोना, कपड़ा धोना, घर धोना, बरतन धोना । इसी प्रकार भोल धोना, कानिब धोना, रंग धोना इत्यादि । उ०—(क) जिन एहि बाँति न मानस धोए । ते कावर कलिकाल विगोए ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) मूरदास हरि कृपा बारि मों कनिबल धोय बहावै ।—मूर (शब्द०) ।

संयो० क्रि०—डालना ।—देना ।—लेना ।

मुहा०—(किसी वस्तु से) हाथ धोना = लो देना । गँवा देना । बंजित रहना । जैसे,—जो कुछ उसके पास था वे उससे भी हाथ धो बैठे । हाथ धोकर पीछे पड़ना = सब काम धाम छोड़कर प्रवृत्त होना । सब छोड़कर लग जाना । धोया धाया = (१) निष्कर्षक । निर्दोष । साफ । (२) ऐसा मनुष्य जो बुराई करके भी धोरो के सामने उसी प्रकार लज्जित न हो जिस प्रकार निर्दोष आदमी । निर्विषय । बेहया । धृष्ट ।

२. दूर करना। हटाना। मिटाना। उ०—(क) करी गोपाल की सब होय। जो अपने पुरुषारथ मानत प्रति झूठी है सोय। साधन मंत्र, यंत्र, उद्यम, बल यह सब डारो घोय। जो कुछ लिखि राखी नंदनंदन मेदि सके नहि कोय।—सूर (शब्द०)। (ख) तू ने शकुंतला के अपमान का दुख सब घो दिया है।—लक्ष्मणसिंह (शब्द०)।

संयो० क्रि०—डालना।

मुहा०—घो बहाना = न रहने देना। झोड़ देना या खो देना।

घोष(५१)—संज्ञा स्त्री० [सं० घूर्वा; घर्बन् (= काटनेवाला) ?] तलवार। शृंग। उ०—(क) छत्रमाल जेहि दिमि पिलै काठि घोष कर माहि। तेहि दिसी सीस गिरीम पै बनत बटोरत नाहि।—लाल (शब्द०)। (ख) भूषण हालि उठे गढ़ भूमि पठान कबंधन के धमके ते। मीरन के अवसान गये मिटि घोषनि सों चपला चमके ते।—भूषण (शब्द०)। (ग) एक हाथ घोष द्वै सों कोष यह जनावत हे एक तोय हाथ पर ठोंक्यो एक भाल नी।—हनुमान (शब्द०)। (घ) भंगद सुधीष एक दोनों गए राम दिग सुसो महाराज मिधु करी बान घोष की।—हनुमान (शब्द०)।

घोष—संज्ञा पुं० [हि० घोवना] घुलावट। घोए जाने की क्रिया।

मुहा०—घोव पड़ना = घोया जाना। घुलने की क्रिया होना। जैसे,—इस कपड़े पर कई घोव पड़े पर रंग नहीं उड़ा।

घोबइनी—संज्ञा स्त्री० [हि० घोबिन] दे० 'घोबिन'—३। त०—घोबइन, तलीचटैया कोड़ेनी चरमा इत्यादि।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० २०।

घोबनी—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'घोबिन'।

घोबिषटा—संज्ञा पुं० [हि० घोबी + षाट] बड़ षाट जहाँ घोबी कपड़ा घोते हैं।

घोबिन—संज्ञा स्त्री० [हि० घोबी] १. कपड़ा धोनेवाली स्त्री। घोबी जाति की स्त्री। २. घोबी की स्त्री। ३. दस बारह अंगुल लंबी एक चिट्ठीया जो जल के किनारे रक्षी है। उ०—आएँ अकासी घोबिन आई। लोवा दरमन पाई देलाई।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० २१२।

विशेष—यह पत्थर आदि के नीचे अंडे देती है और ऋतु के अनुसार रंग बदलती है।

घोबिन^२—संज्ञा स्त्री० [देश०] शीशम की जाति का एक प्रकार का बड़ा वृक्ष जिसकी लकड़ी इमारत के काम में जाती है।

विशेष—इसकी लकड़ी परतदार होती है। अर्थात् हममें एक मोटी तह सफेद लकड़ी की होती है और तब उसपर काने रंग की बहुत पतली एक और तह होती है। इसी तह पर से इस लकड़ी के तक्ते बहुत सहज में चीरे जा सकते हैं।

घोबिया—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'घोबी'। उ०—नैहर में राग सगाय पाव चुँदरी। ऊँर परेजवा को मरम न जानी, नहि मिले घोबिया कौन करे उजरी।—कबीर श०, भा० १, पृ० २३।

घोबी—संज्ञा पुं० [हि० घोवन] [स्त्री० घोबिन] १. कपड़ा धोनेवाला। वह जो मैले कपड़ों को वा और साफ करके अपनी जीविका करता हो। रजक। उ०—गुरु घोबी, सिख कापड़ा साबुन सिरजनहार। सुरति सिला पर घोइए निकसी रंग अपार।—कबीर (शब्द०)। २. वह जाति जो कपड़ा धोने का व्यवसाय करती है।

विशेष—हिंदुओं में यह जाति पहले नीच और अस्पृश्य समझी जाती थी।

मुहा०—घोबी का कुत्ता = वह जो एक ठिकाने जमकर कोई काम न करे। अर्थ इधर उधर फिरनेवाला। निकम्मा आदमी। घोबी का पैला = (१) दूसरे के माल पर इतरानेवाला। मँगनी या पराई चीज का घमंड करनेवाला। (२) मँगनी कपड़े पहनकर निकलनेवाला।

घोबोचास—संज्ञा स्त्री० [हि० घोबी + चास] छोटी दूब। दूर्वा।

घोबो पछाड़—संज्ञा पुं० [हि० घोबी + पछाड़ना] कुपती का एक पेंच जिसमें जोड़ का हाथ पकड़कर कंधे की ओर खींचते हैं और उसे कमर पर सादकर चित गिरा देते हैं।

घोबीपाट—संज्ञा पुं० [हि० घोबी + पाट] दे० 'घोबीपछाड़'।

घोम—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'घूम'। उ०—मंगाय अग्नि तब कियी होम। यह स्वान मांस प्रतिवास घोम।—पृ० रा०, १।३७७।

घोयो—संज्ञा पुं० [सं०] संस्कृत का एक कवि।

विशेष—इसका उत्प्लेख जयदेव ने गीत गोविंद में किया है जिससे यह पता चलता है कि यह कहीं का राजा था। इसका रचा हुआ वायुदूत ग्रंथ अब तक मिलता है और मेघदूत के अंग का है।

घोयो—संज्ञा स्त्री० [हि० घोया] उड़द, मूँग आदि की बिना छिलके की दाल।

घोर—संज्ञा स्त्री० [सं० घोर (= किनारा)] १. पास। सामीप्य। निकटता। २. किनारा। घाट। बाढ़। उ०—खोदि लई मणि कणिका, भूमि चक्र की घोर। मो थल भरयो प्रस्वेदजल भयो हरन धध घोर।—केशव (शब्द०)।

घोरण—संज्ञा पुं० [सं०] १. मचारी। २. घोड़े की सरपट चाल। ३. दौड़।

घोरणि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. घेगी। परंपरा। २. निरंतर गति। अबाध गति (को०)।

घोरणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'घोरणि' (को०)।

घोरित—संज्ञा पुं० [सं०] १. घायात करना। चोट पहुँचाना। २. गति। गमन। ३. घोड़े की द्रुत चाल। घोड़े की तेज चाल (को०)।

घोरी—संज्ञा पुं० [सं० धीरेय] १. घुरे को उठानेवाला। भार उठानेवाला। उ०—(क) केत मनहि मातुकुन लोरी। चखत भगति बस धीरज घोरी।—तुलसी (शब्द०)। (ख) तिन महुँ प्रथम रेख जग मोरी। विष घरमज्ज बंधक घोरी।—तुलसी (शब्द०)। २. बैल। कुपम। उ०—समरघ घोरी कंध धरि रख मे और निबाहि। मारग माहि न मेलिए

पीछहि विरह लजाहि ।—दाहु (शब्द०) । ३. प्रधान । मुखिया । सरदार । उ०—(क) मन मैं मंजु मनोरथ धोरी । सोहर गौर प्रसाद एक तैं कीसिक कृपा चौगुनी भोरी । कुधर कुधरि सब मंगल मूरति नृप दोउ चरम धुरंधर धोरी । राज समाज भूरि भागी जिन्ह चौगुन नाहु लही एहि ठोरी ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) अब यह फौज नूट ही ली है । धोरिन घाउ न कोऊ कीजे ।—लाल (शब्द०) । ४. ओष्ठ पुरुष । बड़ा आदमी । उ०—म्लेच्छ चमार बूढ़रे कोरी । तिनतें भरबावत द्विज धोरी ।—निहचल (शब्द०) ।

धोरे(५)† क्रि वि० [सं० धर (= किनारा)] पास । निकट । समीप । उ०—उज्ज्वल देखि न धीजिए बग ज्यों मंडि ध्यान । धोरे बैठि चपेटसी यों लै बूढ़े ज्ञान ।—कबीर (शब्द०) । (ख) बिनये चतुरानन कहि धोरे । नुब प्रताप जा-यों नहि प्रभु पू कर स्तुति कर धोरे । अपराधी मतिहीन नाथ हो नूक परी निज धोरे । हम कृत दोष छमी करुणामय ज्यों धू परसत धोरे ।—सूर (शब्द०) । (ग) कौकुरियाँ भनकैगी खरी खनकैगी घुरी तनिकी सन तोरे । दास पू जागती पाय अलीं परिहास करेगीं सबै उठि धोरे । सौह तिहारो हों भागि न जाईगी आइ हों लाल तिहारे ही धोरे । केलि को रेनि परी है धरीक गई करि जाहु दई के निहोरे-दास (शब्द०) ।

धौ—धोरे धोरे = पास पास ।

धोरे(५)†—वि० [सं० धवल] १. धवल । २. धुले हुए । उ०—देखन के सब गोरे नव नव पानिप धोरे ।—नंद० ग्रं०, पृ० २०५ ।

धोल(५)†—वि० [हि०] दे० 'धवल' । उ०—मोति सु आई नीयरी भयो ध्याम नैं रोल । सुंदर ग्रं०, भा० १, पृ० ३१७ ।

धोला†—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'धोल' ।

धोलधक—संज्ञा पुं० [देश०] एक पेड़ का नाम ।

धोलहरा(५) संज्ञा पुं० [हि० धोरहर] महल । भवन । उ०—तोल-हरा चमगाँव लै, उ भाराखी भाग ।—बाँकी० ग्रं०, भा० ३, पृ० २ ।

धोला—संज्ञा पुं० [सं० दुर्गलभा] जवासा । यमासा । दिगुव ।

धोलाना†—क्रि० म० [हि० धुलाना] दे० 'धुलाना' ।

धोलो(५)†—वि० स्त्री० [पं०] धोली । सीधी सादी । उ०—मंडरी जिद तुमहिं लाल लगी धोलो ब्रजमोहन मतबालिया ।—बनानंद, पृ० ५१६ ।

धोवनी†—संज्ञा स्त्री० [सं० धोवधल] धोती । (शब्द०) । उ०—टटकी धोई रोवती, चटकीली मुख जोति । फिरति रसोई के बगर जगर मगर दुति होति ।—बिहारी (शब्द०) ।

धोवन—संज्ञा पुं० [हि० धोना] १. धोने का भाव । पछारने की क्रिया । २. वह पानी जिससे कोई वस्तु धोई गई हो । जैसे, पैर का धोवन, चावल का धोवन ।

मुहा०—किसी के पैर का धोवन होना = किसी की अपेक्षा अत्यंत तुच्छ होना । किसी के मुकाबले बिल्कुल नापीज होना ।

धोवना(५)†—क्रि० स० [हि० धोना] जल की सहायता से साफ करना । धोना । उ०—मुँह धोवति एड़ी बसति हँसति अनगवति तीर । धँसति न इंदीवर नयनि कालिंदी के नीर ।—बिहारी (शब्द०) ।

धोवा(५)†—संज्ञा पुं० [हि० धोना] १. धोवन । २. जल । प्रकं । उ०—संग नील बधू लिये दोई घटा पर बैठे बिलोकत जोन्ह धरी । रघुनाथ गुलाब को धोवो बनाइ मंगाई के वाखणी पास धरी ।—रघुनाथ (शब्द०) ।

धोवा†—वि० स्त्री० धोई हुई । जैसे, धोवा दाल ।

धोवाना(५)†—क्रि० स० [हि० धोना] धुलाना । उ०—कोउ परात कोउ सोटा लाई । साहू सभा सब हाथ धोवाई ।—जायसी (शब्द०) ।

धोवाना†—क्रि० प्र० [हि० धोना का प्रकर्मक०] धुलाना । धो जाना । साफ होना । उ०—गोये गोय न जाहि मे धोये ते न धोवाहि । मली लाल लाली जुई लोयन कोयन माहि ।—शृ० सत० (शब्द०) ।

धोसा—सं० पुं० [हि० टोस] गुड़ आदि का सूखा हुआ लोटा । मिस्सा । भेली ।

धौ(५)†—अव्य० [सं० ध्रुववा हि० द्यौ, दृष्टि] १. एक अव्यय जो ऐसे प्रश्नों के पहले लगाया जाता है जिनमें प्रश्नात्मा का भाव कम और संज्ञय का भाव अधिक होता है । विचिकित्सा सूचक एक शब्द । न जाने । कौन जाने । मालूम नहीं । कहा नहीं जा सकता । उ०—(क) कौन मोहनी धी हुन तोही । जो तोहि बिषा सो उपजी मोही ।—जायसी (शब्द०) । (ख) कला निधान सकल गुन आगर गुं धी कहा पढ़ाए ।—सूर (शब्द०) । (ग) सीय स्वयंवर देखिय जाई । इस काहि धौ देहि बड़ाई ।—तुलसी (शब्द०) । (घ) चितवत मोहि लगी चौधो सी जानों न कौन कहाँ ते धौं प्राए ।—तुलसी (शब्द०) । २. प्रश्न के रूप में मानेवाले दो विकल्प या संदेहसूचक वाक्यों में से दूसरे या दोनों के पहले लगनेवाला शब्द । कि । या । अथवा । (इस अर्थ में प्रायः 'कि' या 'के' के साथ आता है) । उ०—(क) सुनत सुदामा जात मनहि मन चीन्हेंगे धौं नाहीं ।—सूर (शब्द०) । (ख) की धौं वह परां कुटी कहूँ धोर, किधौं वह लक्ष्मण होय नही ।—केशव (शब्द०) । ३. एक शब्द जिसका प्रयोग जोर देने के लिये ऐसे प्रश्नों के पहले 'तो' या 'असा' के अर्थ में होता है जिनका उत्तर काहु से 'नही' होता है । यह प्रायः 'कहु' या 'कहो' के साथ आता है और 'कहो तो' का अर्थ देता है । उ०—(क) तुलसी जेहि के रघुबीर से नाथ समर्थ सो सेवत रीभत धोरे । कहा भवभीर परी तेहि धौं बिचरै धरनी तिनसों तिन तोरे ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) कंध न देइ मसलरी करई । कहु धौं कौन भाँति निस्तरई ।—जायसी (शब्द०) । (ग) मोहि परतीति यहि भाँति नहिं आवई । प्रीति कहु धौं सु नर बानरहि क्यों भई ।—केशव (शब्द०) । (घ) बानी जगरानी की उदारता बखानी जाय ऐसी मति कहो धौं उदार कौन की भई ।—केशव (शब्द०) । ४. किसी वाक्य के पूरे होने पर उससे

मिले हुए प्रश्नवाक्य का आरंभसूचक शब्द जो 'कि' अर्थ देता है। उ०—(क) हमदु न जाने धौ सो कहाँ।—जायसी (शब्द०)। (ख) कहो सो विपिन है धौ केति दूर?—तुलसी (शब्द०)। ५. विधि, आदेश आदि वाक्यों के पहले आनेवाला एक शब्द जो केवल जोर देने के लिये उसी प्रकार आता है जिस प्रकार 'सोचिए तो', 'कर तो', 'समझ तो' आदि वाक्यों में 'तो'। उ०—जिमि भानु बिनु दिन, प्रान बिनु तनु, चंद बिनु जिमि जामिनी। तिमि प्रबध तुलसीबास प्रभु बिनु समुझ धौ जिय जामिनी।—तुलसी (शब्द०)।

धौक—संज्ञा स्त्री० [हि० धौकना] १. धाग दहकाने के लिये भायी को दबाकर निकाला हुआ हवा का झोंका। अग्नि पर पहुँचाया हुआ वायु का आघात।

क्रि० प्र०—मारना—लगाना।

२. गरमी की लपट। ताप। तू।

मुहा०—धौक लगना = शरीर पर ताप का प्रभाव पड़ना। झूलना।

धौकना—क्रि० स० [सं० धम् (= धोकना, फूंकना)] धमक = धौकनेवाला] १. धाग पर, उसे दहकाने के लिये, भायी दबाकर हवा का झोंका पहुँचाना। अग्नि को प्रज्वलित करने के लिये उसपर वायु का आघात पहुँचाना।

संयो० क्रि०—देना।—लेना।

२. ऊपर डालना। भार डालना या सहन कराना। ३. दंड आदि लगाना। जैसे, किसी पर जुरमाना धौकना।

धौकनी—संज्ञा स्त्री० [हि० धौकना] १. बाँस या गानु की एक नली जिससे लोहार सोनार आदि धाग फूँकते हैं। फुँकनी। २. भायी।

मुहा०—धौकनी लगना = साँस चढ़ना। धम फूलना।

धौकल(७)—वि० [देश०] उपद्रव। उ०—मजबूताह भ्रमपत्तिशी, प्रगट दिलायो पाण। उगी दिन पाँकल इना, उगी दिन प्रारीण।—रा० क०, पृ० २०२।

धौका—संज्ञा स्त्री० [हि० धौकना] गरमी में चलनेवाली गरम हवा। तप्त वायु। तू।

क्रि० प्र०—चलना।

मुहा०—धौका लगना = गरमी के दिनों में तपी हुई हवा का शरीर से घसर करना। झूलना।

धौकिया—संज्ञा पुं० [हि० धौकना] १. भायी चलानेवाला। धाग फूँकनेवाला। २. एक प्रकार के व्यापारी जो भायी आदि लिए नगरों की गलियों में फिरकर फूटे बरतनों की मरम्मत किया करते हैं।

धौकी—संज्ञा स्त्री० [सं० धौकना] धौकनी।

धौज—संज्ञा स्त्री [हि० धौजना] १. बौड़ धूप। धाव धूप। उ०—एक करे धौज एक सोज से निकारे एक धौजि पानी कीकें सीकें बनत न प्रावनी।—तुलसी (शब्द०)। २. चबराहट। उद्विग्नता। हिरानी। व्याकुलता। उ०—आयो आयो आयो सोई बानर बहुरि मयो सोर चहुँ ओर संका आये युवराज के। एक काढ़े

सोज एक धौज करे कहूँ है पोच भई महा सोच सुभट समाज के।—तुलसी (शब्द०)।

धौजन—संज्ञा स्त्री० [हि० धौज] दे० 'धौज'।

धौजना—क्रि० स० [सं० ध्वञ्जन (= चलना फिरना)] दोड़ना धुपना। दौड़धुप करना।

धौजना—क्रि० स० १. किसी वस्तु को पैरों से रोदना। २. रोदकर या मल दलकर तह बिगाड़ना (कपड़े आदि की)। जैसे, विस्तर धौजना।

धौटा—संज्ञा पुं० [हि० धंघ + घोट] कोल्हू में चलनेवाले बैल की गाँलों का ढक्कन। धंधियारी। ढोका।

धौताल—वि० [हि० धनु + ताल] १. जिसे किसी बान की धुन लग जाय। फुरतीला। चुस्त चालाक। काम को कुछ न समझनेवाला। २. साहसी। दड़। ३. हट्टा कट्टा। मजबूत। हेंकड़। ४. निपुण। पटु। तेज। जैसे,—वह खाने में बड़ा धौताल है। ५. शरारती। उ०—होरी के दिन चारिक ते तुम भए हो निपट धौताल हो।—चनानंद, पृ० ५६२।

धौवाँ—संज्ञा पुं० [धनु०] दमामा बजाने से निकलनेवाली धावाज। उ०—बसन धुजा पताका प्रति फरफरात गरजि गरजि धौ धौ दमामो री बजायो।—नंद० ग्रं० पृ० ३७३।

धौधौमार—संज्ञा स्त्री० [धनु० धमधम + हि० मार] हड़बड़ी। उतावली। लीधता।

क्रि० प्र०—करना।—मचाना।—होना।

धौना(७)—क्रि० स० [हि०] दे० 'धाना'। उ०—ना धिर रहै न हटका माने, पलक पलक उठि धौना।—जग० श०, पृ० १५।

धौर—संज्ञा स्त्री० [सं० धवल] एक प्रकार की ईल जो सफेद होती है।

धौस—संज्ञा स्त्री० [सं० दंश] १. धमकी। धुड़की। डाँट। डपट। उ०—कोई रोसा है कोई हँसता है कोई नाथे है कोई गाता है। कोई छीने झपटे से भागे कोई पौंस का डर दिखलाता है।—नजीर (शब्द०)।

क्रि० प्र०—दिलाना।—देना।

२. धाक। अधिकार। रोब दाब।

क्रि० प्र०—जमना।—जमाना।—बंधना।—बाँधना।

३. झौंसा पट्टी। मुलावा। धोखा। छल।

क्रि० प्र०—देना।

यौ०—धौसपट्टी।

मुहा०—धौस की चलना = चाल चलना।

४. वह रुपया जो मालगुजारी या लगान ठीक समय पर न देने के कारण दंडस्वरूप जमींदार या प्रसामी से वसूल किया जाय। बाकी वसूल होने का खर्च जो जमींदार या प्रसामी को देना पड़े।

मुहा०—धौस बाँधना = खर्च जिम्मे करना। खर्चा मढ़ना।

धौसना—क्रि० स० [सं० दवंसन, दसन] १. दबाना। दड देना। दमन करना। धमकी देना। धुड़की देना। डराना। उ०—

अपने नुप को यह सुनायो। वजनारी वटपारिन हैं सब चुगली
आपुहि जाय लगायो। राजा बड़े बात यह सभकी तुम को
हम पे धौस पठायो। फँसिहारिन कैसे तुम जानी तुम कहूँ
नाहिन प्रकट देखायो। ब्रजवनिता फँसिहारी जो सब महतारी
काहे न बनायो। फँदा फौमि धनुष बिष काहूँ सुर श्याम नहि
हमै बतायो।—सूर (शब्द०)। ३. मारना। पीटना।
धौसपट्टी—संज्ञा स्त्री० [हि० धौस + पट्टी] भुसावा। भौसा पट्टी।
दम दिलासा।

क्रि० प्र०—देना।

मुहा०—धौस पट्टी में घाना—गुलाबे में घाना। बहकाने से कोई
काम कर बैठना।

धौसा—संज्ञा पुं० [हि० धौसना] १. बड़ा नगागा। डंका। उ०—
(क) दादुर दमाम भौमिनी गरजनि धौसा दामिनि
मसाले देखि दुरै जगजीव से।—देव (शब्द०)। (ख)
जरासंध सब असुर सेना से धौसा दे चला।—लल्लू (शब्द०)।
(घ) धुंकार धौमन को बड़ी हुंकार भूमिपतीन की।—गोराल
(शब्द०)। (ङ) धौसा लगे घहरान संख लगे हहरान
छन लगे थहरान नेतु लगे फहरान।—गोपाल (शब्द०)।

क्रि० प्र०—बजाना।—बजाना।

मुहा०—धौसा देना या बजाना—चढ़ाई का डंका बजाना।
चढ़ाई की घोषणा करना। उ०—जरासंध सब असुर सेना ले
धौसा दे चला।—लल्लू (शब्द०)।

२. सामर्थ्य। शक्ति। शोभाकार। वृत्ता। उ०—उसका क्या
धौसा है जो इतना खर्च उठावे।

धौसिया—संज्ञा पुं० [हि० धौसना] १. धौस जमानेवाला। धौस
से काम चलानेवाला। २. भौसा पट्टी देनेवाला। धौसेबाज।
३. धौसेवाला। नगरा बजानेवाला। ४. बड़ जो मालगुजारी
के बाकीदारों से मालगुजारी वसूल करने का खर्च लेता है।

धौ—संज्ञा पुं० [सं० धव] एक ऊँचा भाड़ या सदाबाहार पेड़ जो
हिमालय पर ५००० फुट की ऊँचाई तक होता है और
भारतवर्ष में प्रायः सर्वत्र जगता में मिलता है।

विशेष—इसकी पत्तियाँ प्रमद की पत्तियों से मिलनी जुलती
होती हैं और छाल सफेद होती है जो चमड़ा सिमान के
काम में आती है। इसके फूल की रंगमाला छाल के रंग में
मिलाकर माल रंग बनाते हैं। इससे एक प्रकार का गोद
निकलता है जिसे छोटी रंगों में मिलाकर कपड़ा छापते हैं।
लकड़ी इसकी सफेद होती है और टल, मूल, कुरुदाड़ी का
बेट आदि बनाने के काम में आती है। इसका प्रयोग औषध
में भी होता है और वैद्यक में यह चरपरा, कसेना, कफनाशक,
नाशक, रुचिकारक और शीपन बतलाया गया है। वैद्य लोग
इसका प्रयोग पांडुरोग, अग्नि, शरीर और वात रोग में करते हैं।

पर्या०—विशालवृक्ष। घुरंधर। गौर। पांडु। नंदिन। स्थिर।
शुक्ल तक्ष। धवल। शाकटारु।

धौकरा—संज्ञा पुं० [सं० धव] बाकली की जाति का एक प्रकार का
वृक्ष जो अवध, बुंदेलखंड और मध्यप्रदेश में पाया जाता है।

विशेष—इसकी लकड़ी खेती के सामान बनाने के काम में
आती है।

धौत—वि० [सं०] १. धोया हुआ। साफ। जैसे, धौत वसन। धौत
पाप इत्यादि। २. उजला। जैसे, धौत शिला। ३. नहाया
हुआ। स्नात। उ०—हरि की विमल यश गावत गोपांगना।
मणिमय आंगन नंदराय की बाल गोपाल तहाँ करे रंगना।
गिरि गिरि परत घुट्टवनि टेकत खेलत हैं दोउ छगन मंगना।
घूसरि घूरि धौत तनु मडित मानि यशोदा लेत उछंगना।
—सूर (शब्द०)।

धौत—संज्ञा पुं० रूपा। चादी।

धौतकट—संज्ञा पुं० [सं०] मोटे कपड़े का पैना [को०]।

धौतकांपज—संज्ञा पुं० [सं०] माड़ी किया हुआ या स्वच्छ किया
हुआ रेशम [को०]।

धौतकौशेय—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'धौतकौषज' [को०]।

धौतखंडो—संज्ञा स्त्री० [सं० धौतखण्डो] मिश्री [को०]।

धौतय—संज्ञा पुं० [सं०] संधा नमक [को०]।

धौतशिला—संज्ञा स्त्री० [सं०] स्फटिक। बिलौर।

धौतात्मा—वि० [सं० धौतात्मन्] जिसकी आत्मा शुद्ध हो गई हो।
पवित्रात्मा।

धौति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. शुद्ध। २. हठयोग की एक क्रिया जो शरीर
को भीतर और बाहर से शुद्ध करने के लिये की जाती है।

विशेष—पेरंडसंहिता में इसका पूरा वर्णन है। उभमें धौति चार
प्रकार की बड़ी गई है—अंतर्धौति; दंतधौति; हृद्घौति और
मूलधौति। अंतर्धौति के भी चार भेद हैं—वातसार, वारि-
सार, वह्निसार, और वहिष्कृत। वातसार में मुँह की कोख की
बीच की तरह निकालकर हवा खींचकर पेट में भरते हैं और
उसे फिर मुँह से निकालते हैं। वारिसार में गले तक पानी
पीकर अधोमांस से निकालते हैं। अग्निसार में साँस को
रोककर और पेट को पचकाकर नाभि की सी चार मेरुदंड
(रीढ़) से नगाना पड़ता है। वहिष्कृत में कोख की बीच की
तरह मुँह करके पेट में हवा भरते हैं और उसे चार दंड वहाँ
रखकर अधोमांस से निकालते हैं। इसके पीछे नाभि तक जल
में लड़े होकर धौतियों को बाहर निकालकर मल धौते हैं और
फिर उन्हें उदर में स्थापित करते हैं। दंतधौति भी पाँच
प्रकार की होती है—दंतमूल, जिह्वामूल, रंध्र, कण्ठदार और
कपालरंध्र। इनमें से जिह्वामूल की शुद्धि जीभ की चिमटी से
खींचकर करते हैं। रंध्र धौति में नाक से पानी पीकर मुँह
से और मुँह से सुझकर नाक से निकालना पड़ता है। इसी
प्रकार और भी शुद्धियों की समझिए।

३. योग की एक क्रिया।

विशेष—इसमें दो अंगुल चौड़ी और आठ बस हाथ लंबी कपड़े
की बज्जी मुँह से पेट के नीचे उतारते हैं, फिर पानी पीकर
उसे धीरे धीरे बाहर निकालते हैं। इस क्रिया से धौति शुद्ध
हो जाती है।

४. योग की क्रिया में काम आनेवाली कपड़े की खंवी बज्जी।

बीली—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'बीलि' [को०] ।

बीलीय—संज्ञा पुं० [सं०] सेंधा नमक [को०] ।

बीम्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक ऋषि जो देवल के भाई और पांडवों के पुरोहित थे ।

विशेष—ये उत्कोच नामक तीर्थ में रहते थे । चित्रस्थ के आदेशानुसार युधिष्ठिर ने इन्हें अपना पुरोहित बनाया था ।

२. एक ऋषि जो महाभारत के अनुसार व्याघ्रपद नामक ऋषि के पुत्र और बड़े शिवभक्त थे ।

विशेष—ये सतयुग में थे और बचपन में ही माँ से वृष्ट होकर शिव का तप करके अजर अमर और दिव्यज्ञान संपन्न हो गए थे ।

३. एक ऋषि का नाम जिन्हें आयोद भी कहते थे ।

विशेष—इनके आरुणि, उपमन्यु और वेद नामक तीन पुत्र थे ।

४. एक ऋषि जो तारा ऋषि में पश्चिम दिशा में स्थित हैं ।

विशेष—इनका नाम महाभारत में उषंगु, कवि और परिव्याघ के साथ आया है ।

बीम्य^१—वि० [सं०] घुएँ के रंग का । घुमैला [को०] ।

बीम्य^२—संज्ञा पुं० घुमैला [को०] ।

बीर^१—संज्ञा पुं० [हि० धीरा (= सफेद)] एक चिड़िया । सफेद परेवा ।

बीर^२—वि० [सं० बल] श्वेत । सफेद । उ०—हाड़ देखि के तजत तिय ज्यो कोली के रूप । त्यों ही धीरे केस लखि बुरी लगत नर रूप ।—ब्रज० ब्रं०, पृ० ७८ ।

बीरहर^१—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'धीराहर' । उ०—नए धीरहर सुखद सुपासा । जनु घर पर दूसर कैलासा ।—तंद० ब्रं०, पृ० ११६ ।

बीरहरिया^१—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'धीराहर' । उ०—सैया मोर सुनल धीरहरिया ।—घरम०, पृ० ६३ ।

धीरा^१—वि० [सं० बल] [वि० स्त्री० धीरी] श्वेत । सफेद । उजला । उ०—धूम, श्याम, श्वरे धन पाए । श्वेत पुजा बग पाति दिखाए ।—जायसी (शब्द०) । (ख) धीरी धेनु बजावन कारन मधुरे धेनु बनावै ।—सूर (शब्द०) । (ग) आयो जीन तेरी धीरी धारा में धंसत जात तिनको न होत मुरपुर त निपात है ।—पद्माकर (शब्द०) ।

धीरा^२—संज्ञा पुं० १. धी का पेड़ । २. सफेद रंग का बैल । ३. एक पक्षी । एक प्रकार का पंजुक जो कुछ बड़ा और खुलते रंग का होता है । उ०—धीरी पंजुक कहि पिय ठाऊँ । जो चित रोख न दूसर नाऊँ ।—जायसी (शब्द०) ।

धीरा^३—संज्ञा पुं० दे० 'बाकली' ।

धीराक्षित्य—संज्ञा पुं० [सं०] शिवपुराण के अनुसार एक तीर्थ का नाम ।

धीराहर—संज्ञा पुं० [हि० धीर (= ऊपर) + हर] ऊँची छतारी । भवन का वह भाग जो खंभे की तरह बहुत ऊँचा गया हो और जिसपर चढ़ने के लिये भीतए सीढ़ियाँ बनी हों । घरहरा । बुजं । उ०—(क) पदमावति धीराहर चढ़ी ।—जायसी

(शब्द०) । (ख) राम जपु राम जपु राम जपु बावरे । धीर मख नीर निधि नाम निज नाव रे ।—जग सभ वाटिका रही है फलि फूल रे । घुमाँ कैसी धीराहर देखि तू न भूलि रे ।—तुलसी (शब्द०) । (ग) बीरे मन रहन अटल करि जाना । घन दारा सुत बंधु कुटुंब कुल निरखि निरखि बोराना । जीवन जन्म सपनों सो समुक्ति देखि अल्पमन माहीं । बादर छाहँ धूम धीराहर जैसे बिर न रहाहीं ।—सूर (शब्द०) ।

धीरितक—संज्ञा पुं० [सं०] घोड़े की पाँच चालों में से एक ।

धीरिय^१—संज्ञा पुं० [सं० धीरेय] बैल । उ०—नैनन कंधे धीरियन मरे नहीं घुर लाइ । कैस मन को बोक धरि घर लों सके चलाइ ।—रसनिधि (शब्द०) ।

धीरिया^१—संज्ञा पुं० [सं० धीरेय] दे० 'धीरेय' ।

धीरी^१—संज्ञा स्त्री० [हि० धीरा] १. सफेद रंग की गाय । कपिला । उ०—साँझ की कारा घटा धिरि भाई महा भर सों बरसे भरि सावन । धीरिहु कारिहु भाइ गई सु रम्हाइ कें धाड़ कें लागी चुलावन ।—देव (शब्द०) । २. एक प्रकार की चिड़िया । उ०—धीरी पंजुक कहि पिय नाऊँ । जो चित रोख न दूसर ठाऊँ ।—जायसी (शब्द०) ।

धीरी^२—वि० स्त्री० श्वेत । सफेद ।

धीरी^३—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'बाकली' ।

धीरे—क्रि० वि० [हि०] दे० 'धीरे' ।

धीरेय^१—वि० [सं०] [वि० स्त्री० धीरेयी] १. धुर खींचनेवाला । रथ आदि खींचनेवाला । २. भार या बोझ ले जाने योग्य (को०) ।

धीरेय^२—संज्ञा पुं० १. वह बैल जो गाड़ी खींचता है । २. घोड़ा (को०) । ३. बोझ ले जानेवाला जानवर (को०) । ४. मुखिया । प्रधान । नेता (को०) ।

धीरेहरा^१—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'धीराहर' । उ०—पलटू नर तब जात है बास के ऊपर सीत । धूम्र का धीरेहरा ज्यों बालू की भीत ।—पद्म०, भा० १, पृ० २२ ।

धीरितक—संज्ञा पुं० [सं०] धूर्तता । बेईमानो । दुष्टता [को०] ।

धीरितिक—संज्ञा पुं० [सं०] धूर्तता [को०] ।

धीर्य—संज्ञा पुं० [सं०] धूर्तता ।

धीर्य—संज्ञा पुं० [सं० धीर्य] घोड़े की एक चाल । धीरय ।

धील^१—संज्ञा स्त्री० [अनु०] १. हाथ के पजे का भारी आघात जो सिर या पीठ पर पड़े । चप्पा । चाँटा । चप्पड़ । उ०—पुनि आवइ तो इक धील लगे सब पड़ति दूर दुरे चट तैं ।—गोपाल (शब्द०) ।

क्रि० प्र०—देना ।—पड़ना ।—मारना ।—लगना ।—लगाना ।

धील^२—धील चप्पड़ । धील घप । धील चक्का । धील चप्पा ।

मुहा०—धील कसना, या जमाना = चाँटा लगाना, चप्पड़ मारना । धील खाना = चाँटा सहना । चप्पड़ की मार सहना ।

२. हानि का आघात । नुकसान का चक्का । हानि । टोटा । जैसे,—बैठे बैठाए ५००) की धील पड़ गई ।

क्रि० प्र०—पड़ना ।—खगना ।

धौल^२—संज्ञा स्त्री० [सं० धवल] १. धौल नाम की ईस जिसकी खेती कानपुर, बरेली आदि में होती है। २. ज्वार का हरा बंठल।

धौल^३—संज्ञा पुं० [सं० धवल] धौ का पेड़। धौरा। बकली।

धौल^४—वि० [सं० धवल] उजला। सफेद। उ०—देव कहैं अपनी अपनी धवलोकन तीरथराज बलो रे। देखि भिटै अपराध प्रगाथ निमज्जत साधु समाज भलो रे। सोहैं सितावित को मिलिबो तुलसी हलग हिय हेरि हिलोरे। मानो हरो तून चार चरें बगरे मुरखेन के धौल कलारे।—तुलसी (शब्द०)।

मुहा०—धौल घूत : गहरा धन। पक्का चालबाज। उ०—ऊधो हम यह कैसे मानें। धन धौल लपट जैसे पट हरि तैसे धोरन जाने।—मुर (शब्द०)।

धौल^५—संज्ञा पुं० [हि० धौराहर] धरहरा। धौराहर। उ०—कंटक बनाए बेण राम ही को जायो पापी मेरो मन धुआँ को सो धौल नभ छाये है।—हनुमान (शब्द०)।

धौल(पु)^६—संज्ञा पुं० [सं० धवल] हाथी। उ०—धौल मंदलिया वेलर बाबी।—बकीर ध०, पृ० ६२।

धौलधक्का—संज्ञा पुं० [हि० धौल + धक्का] मारपीट। दंगा। ऊधम। उपद्रव।

धौलधक्का(पु)—संज्ञा पुं० [हि० धौल + धक्का] घाघात। चपेट। उ०—तुलसी जिनहैं धार घुके धरनी धर, धौलधकान तें मेह हूँ है।—तुलसी (शब्द०)।

धौलधक्का—संज्ञा पुं० [हि० धौल + धक्का] घाघात। चपेट।

धौलधप्पड़—संज्ञा पुं० [हि० धौल + धप्पा] १. मारपीट। धक्का मुक्का। २. दंगा। उपद्रव। ऊधम।

क्रि० प्र०—करना।—मचना।—मचाना।

धौलधप्पा—संज्ञा पुं० [हि० धौल + धप्पा] दे० 'धौलधपड़'। उ०—धौलधप्पा उस शरापा नाज का गवा नहीं। हम ही कर बैठे थे गालिब गजदस्ती एक दिन।—गालिब०, पृ० १८५।

धौलहर(पु)—संज्ञा पुं० [हि० धौराहर] धौराहर। उ०—कबिरा हरि की भक्ति बिनु भिक जीवन संसार। धूँपा का गा धौलहर जात न लागे बार।—कबीर (शब्द०)।

धौलहरा(पु)—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'धौराहर'।

धौलांजर—संज्ञा पुं० [सं० धवलाचल] एक पर्वत जो पंजाब के कांगड़ा जिले में है।

धौला^१—वि० [सं० धवल] [वि० स्त्री० धौली] सफेद। उजला। श्वेत। उ०—दाहू काले थे धौला भया।—दाहू०, पृ० २०७।

धौला^२—संज्ञा पुं० १. धौ का पेड़। धौरा। २. सफेद रेश।

धौला(पु)^३—संज्ञा पुं० [सं० धवल] धवलता। श्वेतता। सफेदी। उ०—सहजो धौले आइया अरुन लागे दीछ। तन गुंऊन पड़ने लगी सुखन लागी छति।—सहजो० पृ० २६।

धौलाई—संज्ञा स्त्री० [हि० धौल + धाई (प्रत्य०)] सफेदी। उजलावन।

धौला खैर—संज्ञा पुं० [हि० धौला + खैर] बबूल की जाति का एक पेड़

जिसकी छाल सफेद होती है। यह बंगाल, बिहार, आसाम और दक्षिण भारत में होता है।

धौलागिरि—संज्ञा पुं० [सं० धवलगिरि] दे० 'धवलगिरि'।

धौलाधर(पु)—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'धौराहर'। उ०—साठ कोठा धौलाधर नाऊँ। तीनों लोक मही तेहि ठाँऊँ।—चट०, पृ० ४६।

धौलो^१—संज्ञा स्त्री० [सं० धवल] एक बड़ा पेड़ जो बाढ़ में पसियाँ झाड़ता है।

विशेष—इसकी लकड़ी नरम और भूरी होती है तथा पालकी, खिलोने, खेती के सामान बनाने के काम में आती है। इसकी भीतर की छान दवाओं में पड़ती है और चमड़ा सिझाने के काम में भी आती है। यह पेड़ पंजाब, अवध, मध्यप्रदेश तथा मद्रास में भी थोड़ा बहुत होता है।

धौलो^२—संज्ञा पुं० [सं० धवलगिरि] एक पर्वत जो उड़ीसा में भुवनेश्वर के दक्षिण में है।

विशेष—यहाँ अनेक प्राचीन मंदिर हैं। इसके शिखर पर महाराज प्रणोद के अनुशासन खुदे हैं।

ध्मांक्ष—संज्ञा पुं० [सं० ध्माक्ष] दे० 'ध्वांक्ष'।

ध्मांक्षजंघा—संज्ञा स्त्री० [सं० ध्माक्षजङ्घा] काकजंघा [को०]।

ध्मांक्षजंघु—संज्ञा पुं० [सं० ध्माक्षजम्बु] काकजंघु [को०]।

ध्मांक्षतुंडी—संज्ञा स्त्री० [सं० ध्माक्षतुण्डी] एक प्रकार की लता। काकनासा [को०]।

ध्मांक्षतुंडी—संज्ञा स्त्री० [सं० ध्माक्षतुंडी] काकतुंडी [को०]।

ध्मांक्षनखी—संज्ञा स्त्री० [सं० ध्माक्षनखी] काकतुंडी [को०]।

ध्मांक्षनाशिनी—संज्ञा स्त्री० [सं० ध्माक्षनाशिनी] हाऊबेर।

ध्मांक्षपुष्ट—संज्ञा पुं० [सं० ध्माक्षपुष्ट] कोकिल [को०]।

ध्मांक्षवल्ली—संज्ञा स्त्री० [सं० ध्माक्षवल्ली] कौघाठोठो। काकनासा।

ध्मांक्षानो—संज्ञा स्त्री० [सं० ध्माक्षानो] काकतुंडी।

ध्मांक्षाराति—संज्ञा पुं० [सं० ध्माक्षाराति] खल्लु [को०]।

ध्मांक्षी—संज्ञा स्त्री० [सं० ध्माक्षी] १. ककरोलिका। शीतलघनी। १. कीबे की मादा [को०]।

ध्मांक्षोली—संज्ञा स्त्री० [सं० ध्माक्षोली] काकोली।

ध्माकार—संज्ञा पुं० [सं०] लोहार।

ध्मात—वि० [सं०] १. फुलाया हुआ। २. फूँककर बजाया हुआ। ३. उत्तेजित किया हुआ। उभारा हुआ। झुंझ किया हुआ [को०]।

ध्मान—संज्ञा पुं० [सं०] (फूँककर) बजाने की क्रिया [को०]।

ध्मापन—संज्ञा पुं० [सं०] फूँककर फुलाने की क्रिया [को०]।

ध्मापित—वि० [सं०] राख किया हुआ। राख में परिणत [को०]।

ध्मंम(पु)—संज्ञा स्त्री [हि०] दे० 'धम्म'। उ०—नाचंत तेन पैरव सुखस घरनि ध्मंम पुजिय बसकि।—पृ० रा०, ६। ११३।

ध्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] विचार। चिंतन [को०]।

ध्यात—वि० [सं०] चिंतित। विचारा हुआ। ध्यान किया हुआ।

ध्यातव्य—वि० [सं०] १. ध्यान देने योग्य । विचारणीय । २. जिस-पर ध्यान दिया जाय । ध्यान देने योग्य । विचारणीय ।
३. ध्यान में लाने योग्य [को०] ।

ध्याता—वि० [सं० ध्यातृ] [वि० स्त्री० ध्यातृ] १. ध्यान करने-वाला । २. विचार करनेवाला । उ०—ज्ञाता ज्ञेयः ज्ञान जो ध्याता धेयः ध्यान । द्रष्टा दृश्यः द्रव्य जो निपुरी शब्दा-मान ।—कबीर (शब्द०) ।

ध्यात्व—संज्ञा पु० [सं०] विचार । मनन [को०] ।

ध्यान—संज्ञा पु० [सं०] १. बाह्य इंद्रियों के प्रयोग के बिना केवल मन में लाने की क्रिया या भाव । अंतःकरण में उपस्थित करने की क्रिया या भाव । मानसिक प्रत्यक्ष । जैसे, किसी देवता का ध्यान करना, किसी प्रिय व्यक्ति का ध्यान करना ।
उ०—बहुरि गौरि कर ध्यान करेहू । भूप किशोर देखि किन लेहू ?—तुलसी (शब्द०) ।

क्रि० प्र०—करना ।—लगना ।—लगाना ।

मुहा०—ध्यान में डूबना या मग्न होना=कोई बात इतना मन में लाना कि और सब बातें भूल जायें । ध्यान घटना = मन में स्थापित करना । स्वरूप आदि को मन में लाना । (किसी के) ध्यान में लगना = मन में लाकर मग्न होना ।
उ०—परसत पोंछत लखि रहत लजि कपोल के ध्यान । कर लै पिय पाटल विमल प्यारी पटए पान ।—विहारी (शब्द०) ।

२. सोच विचार । चिंतन । मनन । जैसे,—आजकल तुम किस ध्यान में रहते हो । ३. भावना । प्रत्यय । विचार । खयाल ।
जैसे,—(क) चलते समय तुम्हें यह ध्यान न हुआ कि धोती लेते चलें ? । (ख) मन में इस बात का ध्यान बना रहता है ।

क्रि० प्र०—होना ।

मुहा०—ध्यान आना = भावना होना । विचार उत्पन्न होना । ध्यान जमना = विचार स्थिर होना । खयाल बैठना । ध्यान बँधना = विचार का बराबर या बहुत देर तक बना रहना । लगातार खयाल बना रहना । जैसे,—उसे जिस बात का ध्यान बँध जाता है, वह उसके पीछे पड़ जाता है । ध्यान रखना = विचार बनाए रखना । न भूलना । ध्यान लगना = मन में विचार बराबर बना रहना । बराबर खयाल बना रहना । जैसे, मुझे तुम्हारा ध्यान बराबर लगा रहता है । उ०—ध्यान लगे मोहि तोरा रे ।—गीत (शब्द०) ।

४. रूपों या भावों को भीतर लेने या उपस्थित करनेवाला अंतःकरण विधान । चित्त की ग्रहण वृत्ति । चित्त । मन । जैसे,—तुम्हारे ध्यान में यह बात कैसे आई कि मैंने तुम्हारे साथ ऐसा किया होगा ।

क्रि० प्र०—में आना ।—में लाना ।

मुहा०—ध्यान में न आना = (१) चित्त न करना । परवाह न करना । (२) न सोचना समझना । न विचारना ।

५. चित्त का अकेले या इंद्रियों के सहित किसी विषय की ओर

जब्य जिससे उस विषय का स्थान अंतःकरण में सबके ऊपर हो जाय । किसी के संबंध में अंतःकरण की जाग्रत स्थिति, चेतना की प्रवृत्ति । चेत । खयाल । जैसे,—(क) इसकी कारी-गरी को ध्यान से देखो तब खूबी मानूम होगी । (ख) मेरा ध्यान दूसरी ओर था, फिर से कहिए । (ग) इधर ध्यान दो और सुनो ।

मुहा०—ध्यान जमना = मन का एक ही विषय के ग्रहण में बराबर तत्पर रहना । खयाल इधर उधर न जाना । चित्त एकाग्र होना । ध्यान आना = चित्त का किसी ओर प्रवृत्त होना । दृष्टि पड़ना और बोध होना । जैसे,—जब मेरा ध्यान उधर गया तब मैंने उसे टहकते देखा । ध्यान दिलाना = दूसरे का चित्त प्रवृत्त करना । खयाल कराना, दिखाना या जताना । चेत कराना । चेताना । सुझाना । ध्यान देना = (अपना) चित्त प्रवृत्त करना । चित्त प्रवृत्त करना । चित्त एकाग्र करना । खयाल करना । गौर करना । ध्यान पर चढ़ना = मन में स्थान कर लेना । चित्त से न हटना । अच्छे लगने या और किसी विशेषता के कारण न भूलना । जैसे,—तुम्हारे ध्यान पर तो वही खोज चढ़ी हुई है, और कोई खोज पसंद ही नहीं आती । ध्यान बँटना = चित्त का इधर भी रहना उधर भी । चित्त एकाग्र न रहना । खयाल इधर उधर होना । जैसे,—काम करते समय कोई बातचीत करता है तो ध्यान बँट जाता है । ध्यान बँटाना = चित्त को एकाग्र न रहने देना । खयाल इधर उधर ले जाना । ध्यान बँधना = किसी ओर चित्त स्थिर होना । चित्त एकाग्र होना । ध्यान लगना = चित्त प्रवृत्त होना । मन का विषय के ग्रहण से तत्पर होना । चित्त एकाग्र होना । जैसे,—उसका ध्यान लगे तब तो वह पढ़े । ध्यान लगाना = ३० 'ध्यान देना' ।

६. बोध करनेवाली वृत्ति । समझ । बुद्धि ।

मुहा०—ध्यान पर चढ़ना = ३० 'ध्यान में आना' । ध्यान में जमना = मन में बैठना । चित्त में निश्चित होना । विश्वास के रूप में स्थिर होना ।

७. धारणा । स्मृति । याद ।

क्रि० प्र०—होना ।

मुहा०—ध्यान आना = स्मरण होना । याद होना । ध्यान दिलाना = स्मरण कराना । याद दिलाना । जैसे,—जब भूलोगे तब तुम्हें ध्यान दिला दूँगे । ध्यान पर चढ़ाना = स्मृति में आना । स्मरण होना । याद होना । ध्यान रखना = स्मृति बनाए रखना । याद रखना । न भूलना । ध्यान रहना = स्मृति में न रहना । याद न रहना । विस्मृत होना । भूलना ।

८. चित्त को चारों ओर से हटाकर किसी एक विषय (जैसे, परमात्मचित्तन) पर स्थिर करने की क्रिया । चित्त को एकाग्र करके किसी ओर लगाने की क्रिया । जैसे, योगियों का ध्यान लगाना ।

विशेष—योग के आठ अंगों में 'ध्यान' सातवाँ अंग है । यह चारणा और समाधि के बीच की अवस्था है । जब योगी प्रत्याहार द्वारा अपने चित्त की वृत्तियों पर अधिकार प्राप्त कर

लेता है तब उन्हें चारों ओर से हटाकर नाभि धारि स्थानों में से किसी एक में लगाता है। इसे धारणा कहते हैं। धारणा जब इस अवस्था को पहुँचती है कि धारणीय वस्तु के साथ चित्त के प्रत्यय की एकता ज्ञात होती है तब उसे ध्यान कहते हैं। यही ध्यान जब चरमावस्था को पहुँच जाता है तब समाधि कहलाता है जिसमें ध्येय के अनिरिक्त ओर कुछ नहीं रह जाता अर्थात् ध्याता ध्येय में इतना तन्मय हो जाता है कि उसे अपनी सत्ता भूल जाती है। बौद्ध और जैन धर्मों में भी ध्यान एक आवश्यक गंग है। जैन शास्त्र के अनुसार उत्तम संहनन युक्त चित्त के अवरोध का नाम ध्यान है।

क्रि० प्र०—करना।—लगना।—लगाना।

मुद्रा०—ध्यान धृष्टता = चित्त की एकाग्रता का नष्ट होना। चित्त इधर उधर हो जाना। उ०—रोवन लथो सुत घृतक जान। रुदन करत सुटयो ऋषि ध्यान।—सूर (शब्द०)। ध्यान धरना = ध्यान लगाना। परमात्मचित्तन आदि के लिये चित्त को एकाग्र करके बैठना।

ध्यानगम्य - वि० [सं०] केवल ध्यान से प्राप्य [को०]।

ध्यानतत्पर—वि० [सं०] ध्यानस्थ। ध्यानलीन। विचारों में डूबा हुआ [को०]।

ध्यानना(पु)—क्रि० सं० [सं० ध्यान] ध्यान करना। (शब्द०)। उ०—जिन्नु हरि भक्त सब जगत की यही रोति भयो हरि भक्ति की मनत पद ध्यानिये।—प्रियादास (शब्द०)।

ध्याननिष्ठ—वि० [सं०] ध्यानलीन। विचारों में डूबा हुआ [को०]।

ध्यानपर—वि० [सं०] ध्याननिष्ठ [को०]।

ध्यानमग्न - वि० [सं०] ध्यानलीन। ध्याननिष्ठ [को०]।

ध्यानमुद्रा - संज्ञा स्त्री० [सं०] किसी देवी या देवता का ध्यान करने की विहित मुद्रा [को०]।

ध्यानयोग—संज्ञा पु० [सं०] १. वह योग जिसमें ध्यान ही प्रधान गंग हो। २. तन्त्र या ह्रदयान की एक क्रिया जिसके द्वारा मन में किसी प्राकृतिक की कल्पना करके शत्रु का नाश किया जाता है।

ध्यानरत—वि० [सं०] ध्यान में डूबा हुआ। ध्यानमग्न [को०]।

ध्यानरम्य—वि० [सं० ध्यान + रम्य] ध्यान करने में प्रिय। जिसका ध्यान करना प्रसन्न लगे। उ०—नहिं जे जाता नहिं ज्ञान गम्य नहिं ध्याता नहिं ध्यान रम्य।—सुंदर ग्रं०, भा० १, पृ० ७८।

ध्यानलीन—वि० [सं०] ध्यानरत। ध्यानमग्न [को०]।

ध्यानशील—वि० [सं०] ध्यानस्थ। ध्याननिष्ठ [को०]।

ध्यानसाध्य—वि० [सं०] ध्यान से साधित या सिद्ध होनेवाला [को०]।

ध्यानस्थ—वि० [सं०] ध्यानरत। ध्यानलीन [को०]।

ध्याना(पु)—क्रि० सं० [सं० ध्यान] १. ध्यान करना। उ०—(क) हिंदू ध्यावहिं देहरा मुगलमान गसीत। दास कबीर तहँ ध्यावहिं तहाँ दोनों परसीत।—कबीर (शब्द०)। (ख) भजुपत नंद नंदन चरन। परम पंकज प्रति मनोहर सकल सुख के करन। सनक शंकर आहि ध्यावत निगम धारन चरन। शेष

धारद ऋषि सुनारद संत चितत चरन।—सूर (शब्द०)। २. स्मरण करना। सुमरना। उ०—हरि हरि हरि सुमरो सब कोई। हरि हरि सुमिरत सब सुख होई।…………… हरिहि मित्रविदा चित ध्यायो। हरि तहाँ जाइ बिलंब न लायो।—सूर (शब्द०)।

ध्यानाभ्यास—संज्ञा पु० [सं०] ध्यान लगाने का अभ्यास। समाधि [को०]।

ध्यानावधार—संज्ञा पु० [सं०] बौद्ध शास्त्रानुसार एक प्रकार के देवता।

ध्यानावस्थित—वि० [सं० ध्यान + अवस्थित] ध्यान में डूबा हुआ। ध्यान में मग्न। उ०—अथवा बैठे होंगे आप रहस्य शिखर पर। अमर सोक कं, निभृत भोन में ध्यानावस्थित।—युगपथ, पृ० ११४।

ध्यानिक—वि० [सं०] ध्यानसाध्य। जिसकी प्राप्ति ध्यान द्वारा हो। ध्यान से सिद्ध होने योग्य।

ध्यानिबुद्ध—संज्ञा पु० [सं०] एक प्रकार के बुद्ध।

विशेष—इनकी संख्या कोई ५ या ६ और कोई १० से भी अधिक बताते हैं।

ध्यानिबोधिस्तत्त्व—संज्ञा पु० [सं०] दे० 'ध्यानिबुद्ध' [को०]।

ध्यानी—वि० [सं० ध्यानिन्] १. ध्यानयुक्त। समाधिस्थ। २. ध्यान करनेवाला। जो ध्यान में रहता हो।

ध्याम^१—संज्ञा पु० [सं०] १. दमनक। दीना। २. गंधतृण।

ध्याम^२—वि० १. ध्यामल। साँवला। २. गंदा। मैला [को०]।

ध्यामक—संज्ञा स्त्री० [सं०] रोहिण पात। रोहिण सौधिया।

ध्यावना(पु)—क्रि० सं० [हि०] दे० 'ध्याना'। उ०—सदा निरक्षय राज नित सुख, सोई कैसन ध्यावनं।—केशव० अष्टी०, पृ० २।

ध्येय^१—वि० [सं०] १. ध्यान करने योग्य। २. जिसका ध्यान किया जाय। जो ध्यान का विषय हो।

ध्येय^२—संज्ञा पु० १. ध्यान की वस्तु। ध्यान का विषय। २. लक्ष्य। ध्येय [को०]।

ध्रंगदा(पु)—संज्ञा पु० [हि०] दे० 'धुंग'। उ०—कै जासी सुर ध्रंगदे, कै भासो रणजीत—बाँकी ग्रं०, भा० १, पृ० ८।

ध्र—वि० [सं०] धारण करनेवाला।

विशेष—यह समासों में प्रयुक्त होता है। जैसे, महीध्र, ऋध्र।

ध्रजि—संज्ञा स्त्री० [सं०] वेगपूर्ण गति (वायु आदि की) [को०]।

ध्रतारा(पु)—संज्ञा पु० [हि०] दे० 'ध्रुवतारा'। उ०—ध्रतारो कम छंडइ ठामि ?—बी० रासो, पृ० ६०।

ध्रम(पु)—संज्ञा पु० [सं० धर्म] दे० 'धर्म'। उ०—रहि जुगन बीच मुचित्त, ध्रम स्वामि धरि हरि मित्त।—प० रासो, पृ० ८०।

ध्रमसुत(पु)—संज्ञा पु० [सं० धर्मसुत] दे० 'धर्मसुत'। उ०—एकादश से पंचदह विक्रम जमि ध्रमसुत। त्रितय साक प्रथिराज की लिख्यो विप्र गुन गुत।—पृ० रा०, १। ३२५।

ध्रवना(पु)—वि० सं० [सं० ध्र + धावप] वृत्त करना। उ०—ध्रन मुखरी पुहमो ध्रवै, दुसह निवार दुकास।—बाँकी० ग्रं०, भा० १, पृ० ५३।

प्राचा—संज्ञा स्त्री० [सं०] प्राचा। दास।

प्राजि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. वेगपूर्ण गति। २. प्रवृत्ति। ३. प्राची।
तुकान [को०]।

ध्रोह^(५)—संज्ञा स्त्री० [?] ध्वनि। आवाज। घाह। उ०—सखी
अमीणी साहिबी सुणे नगरा ध्रोह।—बांकी० ग्रं०, भा०
१, पृ० ६।

ध्रुव^(५)—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'ध्रुव'। उ०—ध्रुव सगलानि जपेउ
हरि नाऊं। पायेउ अचल अनूपम ठाऊं।—मानस, १। २६।

ध्रुति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. विधि। आग्य। २. अध्यागति। कदाचार
[को०]।

ध्रुपद—संज्ञा पुं० [सं० ध्रुवपद] एक गीत जिसके चार तुक होते हैं—
अस्थायी, अंतरा, संचारी और आभोग। कोई मिलातुक नामक
इसका एक पाँचवाँ तुक भी मानते हैं। इसके द्वारा देवताओं
की लीला, राजाओं के यश तथा युद्धादि का वर्णन गूढ़ राग
रागिनियों से युक्त गाया जाता है।

विशेष—इसके गाने के लिये स्त्रियों के कोमल स्वर की आवश्यक-
कता नहीं। इसमें यद्यपि हृत्तलय ही उपकारी है, तथापि यह
विस्तृत स्वर से तथा विलंबित लय से गाने पर भी भला
मालूम होता है। किसी किसी ध्रुपद में अस्थायी और अंतरा
दो ही पद होते हैं। ध्रुपद कानड़ा, ध्रुपद केवारा, ध्रुपद
एमन आदि इसके भेद हैं। इस राग को संस्कृत में ध्रुवक
कहते हैं। संगीतदामोदर के मत से ध्रुपद सोलह प्रकार
का होता है—जयंत, शेलर, उत्साह, मधुर, निर्मल, कुतल,
कमल, सानंद, चंद्रशेखर, सुखद, कुमुद, जायी, कल्प, जय-
मंगल, तिलक और ललित। इनमें से जयंत के पाद में
ग्यारह अक्षर होते हैं फिर आगे प्रत्येक में पहले से एक एक
अक्षर अधिक होता जाता है; इस प्रकार ललित में सब २६
अक्षर होते हैं। छह पदों का ध्रुपद उत्तम, पाँच का मध्यम
और चार का अधम होता है।

ध्रुव^१—वि० [सं०] १. सदा एक ही स्थान पर रहनेवाला। इधर उधर
न हटनेवाला। स्थिर। अवल। २. मदा एक ही अवस्था में
रहनेवाला। निश्च। ३. निश्चित। दृढ़। ठीक। पक्का।
जैसे,—उनका धरना ध्रुव है।

ध्रुव^२—संज्ञा पुं० १. आकाश। २. शंहु। कील। ३. पर्वत। ४.
स्थान। खंभा। पून। ५. वट। वरगव। ६. आठ वसुधों में
से एक। ७. ध्रुवक। ध्रुपद। ८. एक यज्ञपात्र। ९. क्षारारि
नामक पक्षी। १०. विष्णु। ११. हर। १२. फलित ज्योतिष
में एक शुभ योग जिसमें उत्पन्न बालक बड़ा विद्वान्, बुद्धिमान्
और प्रसिद्ध होता है। १३. ध्रुवतारा। १४. नाक का अग्रभाग।
भाग। १५. गीत। १६. पुराणों के अनुसार राजा उस्तानपाद
के एक पुत्र जिनकी माता का नाम सुनीति था।

विशेष—राजा उस्तानपाद की दो स्त्रियाँ थी; सुखि और
सुनीति। सुखि में उत्तम और सुनीति से ध्रुव उत्पन्न हुए।
राजा सुखि को बहुत चाहते थे। एक दिन राजा उत्तम को
गोद में लिए बैठे थे इसी बीच में ध्रुव खेलते हुए वहाँ आ

पहुँचे और राजा की गोद में बैठ गए। इसपर उनकी विमाना
सुखि ने उन्हें अश्वजा के साथ वहाँ से उठा दिया। ध्रुव हम
अपमान को सह न सके; और घर से निकलकर तप करने गये
गए। विष्णु अगवान् उनकी भक्ति से बहुत प्रसन्न हुए और
उन्हें बर दिया कि 'तुम सब लोगों और ग्रहों नक्षत्रों के ऊपर
उनके आधार स्वरूप होकर अचल भाव में स्थित रहोगे और
जिस स्थान पर तुम रहोगे वह ध्रुव लोक कहलावेगा। इसके
उपरान्त ध्रुव ने घर आकर पिता में राज्य प्राप्त किया और
शिशुमार को कन्या भूमि से विवाह किया। इसी नाम की
इनकी एक और पत्नी थी। भूमि के गर्भ से कलर और वत्सर
तथा इला के गर्भ से उत्कल नामक पुत्र उत्पन्न हुए। एक बार
इनके सोतेले भाई उत्तम को यक्षों ने मार डाला इसलिये इन्हें
उनमें युद्ध करना पड़ा जिसे पितामह मनु ने जान किया। अंत
में क्षत्तीम हजार वर्ष राज्य करके ध्रुव विष्णु के दिए हुए
ध्रुवलोक में चले गए।

१७. शरीर की भीरी।

विशेष—वक्षस्थल, मस्तक, रंध्र, उपरंध्र, माल और अपमान इन
स्थानों की भीरियाँ ध्रुव कहलाती हैं। (अभ्यर्थचिन्तामणि)।

१८. सुगोल विद्या में पृथ्वी का अक्ष देश। पृथ्वी के वे दोनों सिरे
जिससे होकर अक्षरेखा गई हुई मानी जाती है।

विशेष—सूर्य की परिक्रमा पृथ्वी लट् की तरह घूमती हुई करती
है। एक दिन रात में उसका इस प्रकार का घूमना एक बार
हो जाता है। जिस प्रकार लट् के बोझोबीच एक कील गई
होती है जिसपर वह घूमता है उसी प्रकार पृथ्वी के गर्भकेंद्र
से गई हुई एक अक्षरेखा मानी गई है। यह अक्षरेखा जिन
दो सिरों पर निकली हुई मानी गई है उन्हें 'ध्रुव' कहते हैं।
ध्रुव दो हैं—उत्तर ध्रुव या सुमेरु और दक्षिण ध्रुव या
कुमेरु। इन स्थानों से २३½ अंश पर पृथ्वी के तल पर एक
एक वृत्त माने गए हैं जिन्हें उत्तर और दक्षिण शीतकटिबंध
कहते हैं। ध्रुवों और इन वृत्तों के बीच के प्रदेश अत्यंत ठंडे
हैं। उनमें समुद्र आदि का जल सदा जमा रहता है। ध्रुव
प्रदेश में दिन रात २४ घंटों का नहीं होता, वर्ष भर का
होता है। जब तक सूर्य उत्तरायण रहते है तब तक उत्तर
ध्रुव पर दिन और दक्षिण ध्रुव पर रात और जब तक
दक्षिणायन रहते हैं तब तक दक्षिण ध्रुव पर दिन और
उत्तर ध्रुव पर रात रहती है। अर्थात् मोटे हिमाच से कहा
जा सकता है कि वहाँ छद्म महीने की रात और छद्म महीने
का दिन होता है। इसी प्रकार वहाँ मंघ्या और उषा काल
भी लंबा होता है। वही सूर्य और चंद्रमा पूर्व में पश्चिम
जाते हुए नहीं माने होते बल्कि चारों ओर कोन्ह के बेल
की तरह घूमते दिखाई पड़ते हैं। ध्रुव प्रदेश में उषा काल
और मंघ्या काल की लंबाई सितित्र के ऊपर नीचे दिन
तक घूमती दिखाई पड़ती है। यहीं तक नहीं, ग्रह-नक्षत्र-
युक्त राशिचक्र भी ध्रुव के चारों ओर घूमता दिखाई पड़ता है।

शब्द की गति ध्रुव प्रदेश में बहुत तेज होती है, सीधों पर होनेवाला शब्द ऐसा जान पड़ता है कि पास ही हुआ है। इस भाग में सबसे मनोहर मेरुज्योति है जो चित्र विचित्र धीरे नाना वर्णों के धानों के रूप में कुछ काल तक दिखाई देती है।

१६. फलित ज्योतिष में एक नक्षत्रगण जिसमें उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढ़ा, उत्तर भाद्रपद और रोहिणी है। २०. रणु का अक्षरही भेद जिसमें पहले एक लघु, फिर एक गुरु और फिर तीन लघु होते हैं। २१. तागु का एक रोग जिसमें लम्बाई और सूजन आ जाती है। २२. सोमरस का वह भाग जो प्रातःकाल से मायंकाल तक बिना किसी देवता को अर्पित हुए खा रहे।

ध्रुवक—संज्ञा पुं० [मं०] १. रणगु। ध्रुव। संभा। २. ध्रुपद नामक गीत। ३. ध्रुपद की टेक (को०)। ४. नक्षत्र की दूरी।

विशेष—गीत राशि के जेष से जिस नक्षत्र का योग तारा जितनी दूर पर रहता है उसने को उस नक्षत्र का ध्रुवक कहते हैं।

ध्रुवका—संज्ञा स्त्री० [मं०] ध्रुपद।

ध्रुवकेतु—संज्ञा पुं० [मं०] गृहसंहिता के अनुसार एक प्रकार का केतु तारा।

विशेष—इस प्रकार के केतुओं का न तो आकार नियत है, न वर्ण या प्रमाण, यहाँ तक कि उनकी गति भी नियत या नियमित नहीं होती। देखने में वे स्थिर होते हैं और फलित ज्योतिष में इनके तीन भेद माने गए हैं। विध्य, अंतरिक्ष और भोम। इनका फल भी अनियत है। कभी अच्छा, कभी बुरा, कभी मम।

ध्रुवगति—संज्ञा स्त्री० [मं०] दृढ़ या ध्रुव गति (को०)।

ध्रुवचरणा—संज्ञा पुं० [मं०] अक्षरों के चारों ओर से एक भेद।

ध्रुवता—संज्ञा स्त्री० [मं०] १. स्थिरता। अचलता। उ०—किस मकसद से मानव तेरी ध्रुवता का माने, ओ प्रार्थी, प्रत्याशी वे समको है शीश नवाने।—इत्यादि, पृष्ठ ७४। २. चरता। एककाल। ३. निरवय।

ध्रुवतारक—संज्ञा पुं० [मं०] २० 'अदतारा' (को०)।

ध्रुवतारा—संज्ञा पुं० [मं०] ध्रुव + तारक (हि० तारा) यह तारा जो सदा ध्रुव अर्थात् मेरु के ऊपर रहता है उसी ओर उधर नहीं होता है।

विशेष—यह तारा बहुत लम्बीला लम्बी है और यषि के गिरे पर के दो तारों की सीध में उत्तर की ओर कुछ दूर पर दिखाई पड़ता है। इसकी पहचान यह है कि यह अपना स्थान नहीं बदलता। गारा राशिचक्र इसके किनारे फिरता हुआ जान पड़ता है और यह अपने स्थान पर अचल रहता है। रात के प्रत्येक गहर में उठ उठकर इसके साथ नक्षत्रों को ही देखने से इसका अनुभव हो सकता है। इस प्रकार राशि में सात तारे हैं उसी प्रकार जम निशुमार नामक तारकगुंज के अंतर्गत ध्रुव है उसमें भी सात तारे हैं। इन सातों में ध्रुव

पहला और सबसे उज्ज्वल है। ध्रुव तारा सदा एक ही नहीं रहता। पृथ्वी के अक्ष या मेरु से जिस तारे का व्यवधान सबसे कम होता है अर्थात् पृथ्वी के अक्षबिंदु की सीध से जो तारा सबसे कम हटकर होता है वही ध्रुवतारा होता है। आजकल जो ध्रुवतारा है वह मेरु या अक्षबिंदु से १३ अंश पर है। अयनवृत्त के चारों ओर नाडीमंडल के मेरु की पीछे छोड़ता हुआ उसकी सीध से बहुत हट जायगा और तब अभिजित नामक नक्षत्र ध्रुवतारा होगा। आज से पाँच हजार वर्ष पहले ध्रुवन नामक तारा ध्रुवतारा था। वर्तमान ध्रुव का व्यवधानांतर आजकल मेरु से १३ अंश है पर सन् १७८५ ई० में २ अंश २ कला था और दो हजार वर्ष पहले १२ अंश था।

भारतवासियों को ध्रुव का परिचय अस्यत प्राचीन काल से है। विवाह के वैदिक मंत्र में ध्रुवतारा का नाम आता है। भारतीय ज्योतिर्विदों के मतानुसार दो ध्रुवतारे हैं—एक उत्तर ध्रुव की सीध में, दूसरा दक्षिण ध्रुव की सीध में।

ध्रुवत्व—संज्ञा पुं० [मं०] ध्रुवता (को०)।

ध्रुवदर्शक—संज्ञा पुं० [मं०] १. सप्तमंडल। २. कुतुबनुमा।

ध्रुवदर्शन—संज्ञा पुं० [मं०] विवाह के संस्कार के अंतर्गत एक कृत्य जिसमें वर वधू को मंत्र पढ़कर ध्रुवतारा दिखाया जाता है।

ध्रुवधार्य—वि० [मं०] ध्रुव + धार्य] निश्चित रूप से धारण करने योग्य। उ०—इस रसकलस में भी ध्रुवधार्य प्रार्थ काल के आदर्श उपस्थित कर ... सफल प्रयास किया है।—रमक०, पृ० ५।

ध्रुवधेनु—संज्ञा स्त्री० [मं०] वह गाय जो दुहते समय चुपचाप खड़ी रहे।

ध्रुवनंद—संज्ञा पुं० [मं०] ध्रुवनन्द] नंद के एक भाई का नाम।

ध्रुवना(पु)—क्रि० स० [हि० ध्रुवा] बरसना। उ०—पूछे पाहण कंस पनेरु ध्रुवे चला जलपारा।—रघु० क०, पृ० १३६।

ध्रुवपद—संज्ञा पुं० [मं०] ध्रुवक। ध्रुपद।

ध्रुवमत्स्य—संज्ञा पुं० [मं०] एक यंत्र जिसके द्वारा दिशाओं का ज्ञान होता है। कुतुबनुमा (नवीन)।

ध्रुवज्ञा—संज्ञा स्त्री० [मं०] एक मातृका जो कुमार या कानिकेय की अनुचरी है।

ध्रुवलोक—संज्ञा पुं० [मं०] पुराणानुसार एक लोक जो सत्यलोक के अंतर्गत है और जिसमें ध्रुव स्थित है।

ध्रुवमंथि—संज्ञा पुं० [मं०] ध्रुवमंथि] सूर्यवंशीय राजा सुमथि के पुत्र (रामायण)।

ध्रुवा—संज्ञा स्त्री० [मं०] १. यज्ञपात्र जो वैकंड की लकड़ी का बनता है। २. मूर्ति। मरोडफनी। ३. शालपर्णी। सरिबन। ४. ध्रुपदगीत। ५. साध्वी स्त्री। सती स्त्री। ६. दोहमकाल में स्थिर रहनेवाली गाय (को०)। ७. प्रत्यंचा। धनुष की डोरी (को०)। ८. संगीत का एक ताल जिसमें मात्रा का निश्चय करतल की ध्वनि से होता है (को०)। ९. ऊर्ध्व स्थिति (को०)।

ध्रुवाक्षर—संज्ञा पुं० [मं०] विष्णु (को०)।

ध्रुवाधिकरण—संज्ञा पुं० [सं० ध्रुव + अधिकरण] भूमिकर का अधिकारी ।—आ० भा०, पु० ४४५ ।

ध्रुववार्त—संज्ञा पुं० [सं०] १. घोड़ों की ओरी जो ललाट, केश, रंध्र, उपरंध्र, वक्ष इत्यादि में होती है । २. वह घोड़ा जिसके ऐसी ओरिया होती है ।

ध्रुवि—वि० [सं०] ध्रुव । अचल । अटल । निश्चित [को०] ।

ध्रुवीय—वि० [सं० ध्रुव] १. ध्रुव संबंधित । २. ध्रुव प्रदेश का [को०]

ध्रुव—संज्ञा पुं० [हि०] ध्रुव । उ०—फिर ध्रु प्रह्लाद विभीषण से मन धारि के नाथ यो भीर करी ।—नट०, पु० ३१ ।

ध्रुव(पु)—वि० [हि०] दे० 'ध्रुव' । उ०—दिप्ये सु नयन पुह करि प्रसिद्ध । कियो पाप इन ध्रुव करि ।—पू० रा०, १।५८२ ।

ध्रोह(पु)—स्त्री० पुं० [हि०] दे० 'ध्रोह' । उ०—जाल पसारया सगला ध्रोह ।—प्राण०, पु० ३ ।

ध्रौव्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. ध्रुवत्व । ध्रुवता २. निश्चयत्व । ३. स्थायित्व [को०] ।

ध्वंस—संज्ञा पुं० [सं०] १. विनाश । नाश । क्षय । हानि ।

विशेष—न्याय और वैशेषिक में 'ध्वंस' एक अभाव माना गया है । पर सत्कार्यवादी सांख्य और वेदांत ध्वंस का अभाव नहीं मानते केवल तिरोभाव मानते हैं । वे वस्तु का नाश नहीं मानते; उसका अवस्थांतर मानते हैं ।

२. भवन या इमारत का ढहना या गिरना [को०] ।

ध्वंसक—वि० [सं०] नाश करनेवाला ।

ध्वंसन—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० ध्वंसनीय, ध्वंसित, ध्वस्त] १. नाश करने की क्रिया । २. नाश होने का भाव । क्षय । विनाश । सबाही ।

ध्वंसावशेष—संज्ञा पुं० [सं० ध्वंस + अवशेष] ध्वंस से बचे हुए भाग । लंबहुर ।

ध्वंसित—वि० [सं०] १. विनाशित । नष्ट किया हुआ । २. ध्वस्त किया हुआ । हटाया हुआ [को०] ।

'ध्वंसी'—वि० [सं० ध्वंसिनी] १. नाश करनेवाला । विनाशक । २. नष्टकर । नष्ट हो जानेवाला [को०] ।

'ध्वंसी'—संज्ञा पुं० गढ़ाड़ी पोत का पेड़ ।

ध्वज—संज्ञा पुं० [सं०] १. चिह्न । निशान । २. वह लंबा या ऊँचा डंडा जिसे किसी बात का चिह्न प्रकट करने के लिये खड़ा करते हैं या जिसे समारोह के साथ लेकर चलते हैं । बसि, लोह, लकड़ी आदि की लंबी छड़ जिसे सेना की चढ़ाई या और किसी तैयारी के समय साथ लेकर चलते हैं और जिसके सिरे पर कोई चिह्न बना रहता है, या पताका बंधी रहती है । निशान । झंडा ।

विशेष—राजाओं की सेना का चिह्नस्वरूप जो लंबा दंड होता है वह ध्वज (निशान) कहलाता है । यह दो प्रकार का होता है—सपताक और निष्पताक । ध्वजदंड बकुल, पलाश, कदंब आदि कई लकड़ियों का होता है । ध्वजा परिमाणभेद से आठ प्रकार की होती है—अया, बिजया, जीमा, अपला,

वैजयंतिका, दीर्घा, विजाला और लोला । जया पाँच हाथ की होती है, विजया छह हाथ की, इसी प्रकार एक एक हाथ बढ़ता जाता है । ध्वज में जो चौकूटा या तिकोना कड़ा बंधा होता है उसे पताका कहते हैं । पताका कई वर्णों की होती है और उनमें चित्र आदि भी बने रहते हैं । जिस पताका में हाथी, सिंह आदि बने हों वह जयंती, जिसमें हनुमान, मोर आदि बने हों वह अष्टमंगला कहलाती है; इसी प्रकार और भी समांकर । (युक्तिकल्पतरु) ।

३. ध्वजा लेकर चलनेवाला आदमी । शीडिक ।

विशेष—मनु ने शीडिक को अतिशय नीच लिखा है ।

४. स्त्री की पट्ट । ५. लिंग । पुरुषद्वय ।

यौ०—ध्वजभंग ।

६. वर्ष । गर्व । चमंड । ७. वह घर जिसकी स्थिति पूर्व की ओर हो । ८. हृदयदी का निशान । ९. मदिरा का व्यवसायी । कलाल [को०] ।

ध्वजगृह—संज्ञा पुं० [सं०] वह कमरा जिसमें झंडा रखा जाय [को०] ।

ध्वजग्रोव—संज्ञा पुं० [सं०] एक राजस (रामायण) ।

ध्वजदंड—संज्ञा पुं० [सं० ध्वज + दंड] ध्वजा का डंड । उ०—ध्वजदंड बना यह तिनका, मून पण का एक सहारा ।—इत्यलभ, पु० १४७ ।

ध्वजद्रुम—संज्ञा पुं० [सं०] नाश । तड़का पेड़ ।

ध्वजनी(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० ध्वज + नी (प्रत्यय)] सेना । उ०—प्रतनी, ध्वजनी, बाहिनी, चमू, बरुयिन इन ।—नट० भा०, पु० ८८ ।

ध्वजपट—संज्ञा पुं० [सं०] झंडा [को०] ।

ध्वजपात—संज्ञा पुं० [सं०] कलबना । नपुंसकता [को०] ।

ध्वजप्रहरण—संज्ञा पुं० [सं०] गायु [को०] ।

ध्वजभंग—संज्ञा पुं० [सं० ध्वजभंग] एक रोग जिसमें पुरुष की स्त्रीसंयोग की शक्ति नहीं रह जाती । कलबना । नपुंसकता ।

विशेष—इस रोग में पुरुषोंद्वय को पंजियाँ और नङ्गियाँ शिथिल पड़ जाती हैं । चरक आदि आयुर्वेद के आचार्यों के मना-नुसार यह रोग अस्त्र, आर आदि के अधिक भोजन से, दुष्ट योगिन-गमन से, अत आदि लगन से, वीर्य के प्रारोध से तथा ऐसे ही और कारणों से होता है । भावप्रकाश में लिखा है कि संयोग के समय भय, शोक, क्रोध आदि का संवार होने से अतभिप्रेता या द्वेष रखनेवाली स्त्री के साथ गमन करने से मानस क्लेश उत्पन्न होता है । यह रोग अधिकतर अधिक शुक्रक्षय और हृदयचालन से उत्पन्न होता है ।

ध्वजमूल—संज्ञा पुं० [सं०] लुंगोघर की सीमा [को०] ।

ध्वजयष्टि—संज्ञा स्त्री० [सं०] ध्वजा का डंडा [को०] ।

ध्वजवान्—वि० [सं० ध्वजवत्] [वि० स्त्री० ध्वजवती] १. ध्वजवाला । जो ध्वजा या पताका लिए हो । २. चिह्नवाला । चिह्नयुक्त । ३. जो (ब्राह्मण) अन्य ब्राह्मण की हत्या करके प्राय-

पिचत के लिये उसकी कोपड़ी लेकर निशा मांगता हुआ तीर्थों में घूमे (स्मृति) । ४. शोडिक । कलवार ।

ध्वजांशुक—संज्ञा पुं० [सं०] ध्वजपट [को०] ।

ध्वजा—संज्ञा स्त्री० [सं० ध्वज] १. पताका । झंडा । निशान । उ०—
(क) ध्वजा फरकके शून्य में बाजे अनहुद तुर । तक्रिया है
मैदान में पंचेगे कोहलूर ।—कबीर (शब्द०) । (ख) करि कपि
पटक चले लंका को छिन में बाँधो सेत । उतरि गए पट्टे
लंका पे विजय ध्वजा संकेत ।—मूर (शब्द०) ।

विशेष—२० 'ध्वज' ।

मुहा०—ध्वजा फहराना=कीर्ति प्राप्त करना । यशस्वी बनना ।
उ०—शवासा सार तार जोरिपाना । धधर समान ध्वजा
फहराना ।—कबीर सा०, पृ० १५३८ ।

२. एक प्रकार की कसरत ।

विशेष—यह दो प्रकार की होती है एक मलयम पर की दूसरी
धीरगी । मलयम पर यह कसरत ताल के ही समान की
जानी है । केवल विशेष इतना ही करना पड़ता है कि हममें
मलयम की हाथ से लपेटकर उसकी एक बगल में सारा
शरीर भीषा दंडाकर नीलना पड़ता है । इसे संस्कृत में 'ध्वज'
कहते हैं । नीरंगी में हाथ पाँव घंटों से बांध लड़े रसे जाते हैं ।

३. छंदःशास्त्रानुसार ठगण का पहला भेद जिसमें पहले लघु फिर
गुरु आता है ।

ध्वजादि गणना—संज्ञा स्त्री० [सं०] फनित ज्योतिष के अनुसार
एक प्रकार की गणना जिससे प्रश्न के फल कहे जाते हैं ।

विशेष—हममें नी कोष्ठों का एक ध्वजाकार चक्र बनाया जाता
है । इनमें से पहले घर में प्रश्न रहता है, फिर आगे यथा-
क्रम ध्वज, धूम, सिंह, श्वान, वृष, खर, गज और ध्वांश
रहते हैं । प्रश्नकर्ता को किसी फल का नाम लेना पड़ता है,
फिर फल के आदि वर्ण के अनुसार उसका वर्ण निश्चय
करके ज्योतिषी राशि ग्रहादि द्वारा फल बतलाता है । 'ध्वज'
के कोष्ठ में स्वर, धूम में कवर्ग, सिंह में तवर्ग, श्वान में
टवर्ग, वृष में तवर्ग, खर में पवर्ग, गज में धंतरण, ध्वांश
में ण व स ह ममभना चाहिए ।

ध्वजारोपण—संज्ञा पुं० [सं०] ध्वजा स्थापित करना । झंडा
गाड़ना [को०] ।

ध्वजारोहण—संज्ञा पुं० [सं०] १. ध्वजा स्थापित करना । झंडा
गाड़ना [को०] । २. झंडा फहराना । ध्वजोत्थान ।

ध्वजाहृत—संज्ञा पुं० [सं०] १. रघुतियों के अनुसार पंद्रह प्रकार के
दासों में से एक । वह दास जो लड़ाई में जीतकर पकड़ा
गया हो । २. वह धन जो लड़ाई में शत्रु को जीतने
पर मिले ।

विशेष—यह धन अविभाज्य कहा गया है ।

ध्वजिक—वि० [सं०] धर्मध्वजी । पालंड़ी ।

ध्वजिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] पाँच प्रकार की सीमाओं में से एक ।
वह सीमा या हृद जिसपर निशान के लिये पैद आदि लगे

हैं । २. सेना का एक भेद जिसका परिमाण कुछ लोग
बाहिनी का दूना मानते हैं ।

ध्वजी—वि० [सं० ध्वजिन्] [वि० स्त्री० ध्वजिनी] १. ध्वजवाला ।
जो ध्वजा पताका लिए हो । २. धिक्कवाला । धिक्कपुक्त ।

ध्वजी—संज्ञा पुं० १. ब्राह्मण । २. पर्वत । ३. रण । संपात । ४.
साँप । घोड़ा । मयूर । मोर । ७. सीपी । ८. ध्वजा लेकर
चलनेवाला । शौडिक । कलवार ।

ध्वजोत्थान—संज्ञा पुं० [सं० ध्वज + उत्थान] झंडा फहराना ।
झंडोत्थान [को०] । ध्वजारोहण ।

ध्वजोत्थान—संज्ञा पुं० [सं०] इंद्र के संमान में उत्सव । इंद्रध्वज
महोत्सव [को०] ।

ध्वन—संज्ञा पुं० [सं०] १. ध्वनि । २. गुंजार । अनमनाहट ।

ध्वनमोदी—संज्ञा पुं० [सं० ध्वनमोदिन्] औरा [को०] ।

ध्वनन—संज्ञा पुं० [सं०] ध्वनि । ध्वनि करना । उ०—शब्द
विषदापी सत्ता है । जिसका व्यापार ध्वनन है ।—संपूर्णा०
अभि० ग्रं०, पृ० ११२ ।

ध्वनि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. श्रवणेंद्रिय में उत्पन्न संवेदन अथवा
वह विषय जिसका ग्रहण श्रवणेंद्रिय में हो । शब्द । नाद ।
आवाज । जैसे, मृदंग की ध्वनि, कंठ की ध्वनि ।

विशेष—भाषापरिच्छेद के अनुसार श्रवण के विषय मात्र को
ध्वनि कहते हैं, चाहे वह वर्णत्मक हो, चाहे अवर्णत्मक ।
३० 'शब्द' ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

मुहा०—ध्वनि उठना=शब्द उत्पन्न होना या फैलना ।

२. शब्द का स्फोट । शब्द का फूटना । आवाज की गूँज । नाद
का तार । लय । जैसे, मृदंग की ध्वनि, गीत की ध्वनि ।

विशेष—शरीरक भाष्य में ध्वनि उमी को कहा है जो दूर से ऐसा
सुना जाय कि वर्ण वर्ण अलग और साफ न मालूम हो ।
महाभाष्यकार ने भी शब्द के स्फोट को ही ध्वनि कहा है ।
पाणिनि दर्शन में वर्णों का वाचकत्व न मानकर स्फोट ही
के बल से अर्थ की प्रतिपत्ति मानी गई है । वर्णों द्वारा जो
स्फुटित या प्रकट हो उसको स्फोट कहते हैं, वह वर्णातिरिक्त
है । जैसे, 'कमल' कहने से अर्थ की जो प्रतीति होती है वह
'क' 'म' और 'ल' इन वर्णों के द्वारा नहीं, इनके उच्चारण
से उत्पन्न स्फोट द्वारा होती है । वह स्फोट नित्य है ।

३. वह काव्य या रचना जिसमें शब्द और उसके साक्षात् अर्थ
से व्यंग्य में विशेषता या चमत्कार हो । वह काव्य जिसमें
वाच्यार्थ की अपेक्षा व्यंग्यार्थ अधिक विशेषतावाला हो ।

विशेष—जिस काव्य में शब्दों के नियत अर्थों के योग से सूचित
होनेवाले अर्थ की अपेक्षा प्रसंग से निकलनेवाले अर्थ में
विशेषता होती है वह 'ध्वनि' कहलाता है । यह उत्तम
माना गया है । वाच्यार्थ या अभिधेयार्थ से अतिरिक्त जो अर्थ
सूचित होता है वह व्यंग्यना द्वारा । जैसे, छद्मी सब कुछ के
तट चंदन, नैन निरंजन दूर ललाई । रोम उठे तब बात

लखातऽह साफ भई अधरान लखाई। पीर हितून की जानति तू न, धरी ! वच बोलत भूठ सदाई। ग्हायवे बापी गई इतसों, तिहि पापी के पास गई न तहाँई।—(शब्द०)। अपनी दूती से नायिका कहती है कि तेरी पान की लसाई, चंदन, अंजन आदि छूटे हुए हैं, तू बावली में नहाने गई, उधर ही से जरा उस पापी के यहाँ नहीं गई, यहाँ यहाँ चंदन, अंजन आदि का छूटना नायक के साथ समागम प्रकट करता है। 'पापी' शब्द भी 'तू समागम करने गई थी' यह बात व्यंग्य से प्रकट करता है। इस पद्य में व्यंग्य ही प्रधान है—इसी में चमत्कार है।

४. आशय। गूढ़ अर्थ। मतलब। जैसे,—उनकी बातों से यह ध्वनि निकलती थी कि बिना गए रूपया नहीं मिल सकता।

ध्वनिक—वि० [सं० ध्वनि] ध्वनि से संबंधित [को०]।

ध्वनिकार—संज्ञा पुं० [सं०] ध्वनि सिद्धांत के प्रवर्तक आनंदवर्धनाचार्य। इनका ग्रंथ 'ध्वन्यालोक' है। उ०—फिर भी ध्वनिकार ने कहा है कि कवि को एकमात्र रस में सावधानी के साथ प्रयत्नशील होना वांछनीय है।—वी० श० महा०, पृ० ३।

ध्वनिकाव्य—संज्ञा पुं० [सं० ध्वनि + काव्य] वह काव्य जिसमें व्यंग्य की प्रधानता हो। व्यंग्यप्रधान काव्य [को०]।

ध्वनिकृत्—संज्ञा पुं० [सं०] 'ध्वन्यालोक' के रचयिता आनंदवर्धनाचार्य [को०]।

ध्वनिप्रह—संज्ञा पुं० [सं०] कान।

ध्वनित^१—वि० [सं०] १. शब्दित। २. व्यंजित। प्रकट किया हुआ। ३. बजाया हुआ। वादित।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

ध्वनित^२—संज्ञा पुं० बाजा। जैसे मृदंग आदि।

ध्वनिनाला—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. बीणा। २. वेणु।

ध्वनिवाद—संज्ञा पुं० [सं० ध्वनि + वाद] ध्वनि को काव्य का मुख्य गुण मानने का सिद्धांत।

ध्वनिसिद्धांत—संज्ञा पुं० [सं० ध्वनि + सिद्धान्त] दे० 'ध्वनि ३'।

ध्वन्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. व्यंग्यार्थ। २. एक प्राचीन राजा जो लक्ष्मण का पुत्र था। इसका नाम ऋग्वेद में आया है। ३. ध्वनित होने योग्य [को०]। ४. ध्वनित होनेवाला [को०]।

ध्वनिविकार—संज्ञा पुं० [सं०] १. भय या दुःखजन्य स्वरपरिवर्तन। २. काकु [को०]।

ध्वन्यमान—वि० [सं०] ध्वनित होनेवाला। साहित्य शास्त्रानुसार जिसकी ध्वनि निकले। उ०—आचार्यों ने कुछ दिन के बाद तीसरा भेद किया जिसे वे ध्वन्यमान अर्थ कहने लगे।—स० शास्त्र, पृ० ४।

ध्वन्यात्मक—वि० [सं०] १. ध्वनि स्वरूप या ध्वनिमय। २. (काव्य) जिसमें व्यंग्य प्रधान हो। उ०—प्रत्येक ऐसे शब्द को ध्वन्यात्मक कहते हैं क्योंकि वह ध्वनि पर ही अवलंबित है।—रस० क०, पृ० २।

ध्वन्यार्थ—संज्ञा पुं० [सं० ध्वन्यार्थ] वह अर्थ जिसका बोध वाच्यार्थ से न होकर केवल ध्वनि या व्यंजना से हो।

ध्वस्त—वि० [सं०] १. व्युत्। गलित। गिरा पड़ा। २. खडित। टूटा फूटा। भग्न। ३. नष्ट। भट्ट। ४. परास्त। पराजित। उ०—अप्य अव्यकार किया मुनियों ने, दस्युराज यो ध्वस्त हुआ।—साकेत, पृ० ३७६।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

ध्वस्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] नाश। विनाश।

ध्वांक्ष—संज्ञा पुं० [सं० ध्वाक्ष] १. काक। कोप्रा। २. मछली खानेवाली एक चिड़िया। ३. तलक। ४. भिक्षुक।

ध्वांत—संज्ञा पुं० [सं० ध्वान्त] १. भ्रंशकार। भ्रंशरा। उ०—वह पावन सारस्वत प्रदेश दुःस्वप्न देवता पड़ा कलांत। फैला था चारों ओर ध्वांत।—कामायनी, पृ० १६०। २. एक नरक का नाम। तमिस्र। ३. एक मरुत् का नाम।

ध्वांतचर—संज्ञा पुं० [सं० ध्वान्तचर] निशाचर। राक्षस। उ०—वैति मंगलागार संसार भारापहर वानराकार विग्रह पुरारी। राम रोपानल उवालमानाभिध्वांतचर सलम संहारकारी।—तुलसी (शब्द०)।

ध्वांतवित्त—संज्ञा पुं० [सं० ध्वान्तवित्त] लघोः। जुगुप्सु।

ध्वांतशत्रु—संज्ञा पुं० [सं० ध्वान्तशत्रु] १. सूर्य। २. अग्नि। ३. चंद्रमा। ४. श्वेत वर्ण। ५. श्मोनाक। छोटा।

ध्वांतशान्त्र—संज्ञा पुं० [सं० ध्वान्तशान्त्र] दे० 'ध्वान्तशत्रु' [को०]।

ध्वांताराति—संज्ञा पुं० [सं० ध्वान्ताराति] दे० 'ध्वान्तशत्रु' [को०]।

ध्वांतोन्मेष—संज्ञा पुं० [सं० ध्वान्तोन्मेष] जुगुप्सु। लघोः [को०]।

ध्वान—संज्ञा पुं० [सं०] १. शब्द। २. गुंजन। भनभन [को०]।

न

न—एक व्यंजन जो हिंदी या संस्कृत वर्णमाला का बीसवाँ और तबर्ष का पाँचवाँ वर्ण है। इसका उच्चारणस्थान दंत है। इसके उच्चारण में आभ्यंतर प्रयत्न और जीभ के अगले भाग का दाँतों की जड़ से स्पर्श होता है; और बाह्य प्रयत्न संवार, नाद, घोष और अल्पप्राण है। काव्य आदि में इस वर्ण का बिन्यास सुखद होता है।

नंखना^७—क्रि० [सं० लङ्घन, हि० नांघना] दे० 'नांघना'। उ०—पढ़त वेद बानीन सह सब विद्या धरगाहि। धने जने नंरुत गयो जहाँ तँवरपति आहि।—प० रासो, पृ० ४।

नंखना—क्रि० सं० [सं० नङ्ख, प्रा० ण्ख] फेंकना। उ०—पारस मनि तुष नंखियो, करि कंचन के ग्राम। अंतरिक्ष उड़ि के ययो, नरबाहुन के ग्राम।—प० रासो, पृ० ३४।

नंग^१—संज्ञा पुं० [सं० नग्न] १. नग्नता । नंगापन । नंगे होने का भाव । २. गुप्त अंग । जैसे,—(क) उसने अपना नंग दिखा दिया । (ख) मैंने उसका नंग देखा ।

नंग^२—वि० बदमाश और बेहया । लुच्चा । नंगा । जैसे,—उमसे कौन बोले, वह तो बड़ा नंग है ।

नंग^३—संज्ञा पुं० [फा०] १. सज्जा । शर्म । २. दोष [को०] ।

यौ०—नंगे इंसानियत=मानवता को कलंकित करनेवाला कार्य । नंगे खानदान = कुलांगार । नंगोनाम, नंगोनामूस = (१) सज्जा । गैरत । इस्मत । (२) मर्यादा । प्रतिष्ठा ।

नंगधड़ंग—वि० [हि० नंगा+धड़ंग (धनु०)] अथवा धड़+अंग (= ऊपरी शरीर और गुभाग) । बिलकुल नंगा । जिसके शरीर पर एक भी वस्त्र न हो । दिगम्बर । विवस्त्र । जैसे, आवाज सुनकर वह नंगधड़ंग बाहर निकल आया ।

नंगमुनंगा—वि० [हि०] दे० 'नंगधड़ंग' ।

नंगर—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'लंगर' ।

नंगरवारी—संज्ञा स्त्री० [हि० लंगर+वाला] समुद्र में चलनेवाली वह साधारण नाव जो तूफान के समय किसी रक्षित स्थान पर लंगर डालकर उहर जाती हो । (लश०) ।

नंगा^१—वि० [सं० नग्न] १. जिसके शरीर पर कोई वस्त्र न हो । जो कोई कपड़ा न पहने हो । दिगम्बर । विवस्त्र । वस्त्रहीन ।

यौ०—नंगा उघाड़ा=जिसके शरीर पर कोई वस्त्र न हो । विवस्त्र । अलिफ नंगा या नंगा मादरजाद = बिलकुल नंगा ।

२. निलज्ज । बेहया । बेशर्म । ३. लुच्चा । पाजी ।

यौ०—नंगालुच्चा = बदमाश और पाजी ।

४. जिसके ऊपर किसी प्रकार का आवरण न हो । जो किसी तरह ढँका न हो । खुला हुआ । जैसे, नंगासिर (जिस सिर पर पगड़ी या टोपी आदि न हो), नंगे पैर (जिन पैरों में जूता आदि न हो), नंगी तलवार (म्यान से बाहर निकली हुई तलवार), नंगी पीठ (जिस पीछे आदि की पीठ पर ओत आदि न हो) ।

नंगा^२—संज्ञा पुं० [हि०] १. शिव । महादेव । २. काश्मीर की सीमा पर एक बड़ा बड़ा पर्वत ।

नंगाभोली—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'नंगाभोली' ।

नंगाभोली—संज्ञा स्त्री० [हि० नंगा+भोरहा (= किसी चीज की गिराने के लिये हिलाना)] किसी के पहने हुए कपड़े आदि को उतरवाकर घबड़ाया हुआ प्रच्छी तरह देखना जिनमें उसकी छिपाई हुई चीज का पता लग जाय : कपड़ों की तलाशी । जासातलाशी । जैसे,—इस लड़के ने जकर पेंसिल छुराई है, इसकी नंगाभोली लो ।

विशेष—जब यह संदेह होता है कि किसी मनुष्य ने अपने कपड़ों में कोई चीज छिपाई है, तब उसकी नंगाभोली ली जाती है ।

क्रि० प्र०—लेना ।—देना ।

नंगालुंगा—वि० [हि० नंगा+बुगा (धनु०)] १. जिसके शरीर पर कोई वस्त्र न हो । २. जिसके ऊपर कोई आवरण न हो ।

नंगालुच्चा, नंगालुच्चा—वि० [हि० नंगा+बूचा (= बाली)] जिसके पास कुछ भी न हो । बहुत दरिद्र ।

नंगा मादरजाद—वि० [हि० नंगा+फा० मादरजाद] ऐसा नंगा जैसा माँ के पेट में निकलने के समय (बालक) होता है । जिसके शरीर पर एक सूत भी न हो । बिलकुल नंगा । अलिफ नंगा ।

नंगामुनंगा—संज्ञा पुं० [हि० नंगा+मुनगा (धनु०)] बिलकुल नंगा ।

नंगालुच्चा—वि० [हि० नंगा+लुच्चा] नीच और दुष्ट । बदमाश ।

नंचना—क्रि० प्र० [सं० नृत्त्य, प्रा० नच्च, नंच+हि० ना नाचना] नृत्य करना । नाचना । उ०—करि मन कोप जंग को नचे । —ह० रासो०, पृ० ७४ ।

नंदत^१—संज्ञा पुं० [सं० नन्दत] १. बेटा । २. राजा । ३. मित्र ।

नंदती—संज्ञा स्त्री० [सं० नन्दती] पुत्री । बेटो [को०] ।

नन्द—संज्ञा पुं० [सं० नन्द] १. प्रानंद । हर्ष । २. सच्चिदानंद परमेश्वर । ३. पुराणानुसार नौ निधियों में से एक । ४. स्वामी कान्तिक के एक अनुचर का नाम । ५. एक नाग का नाम । ६. धृतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम । ७. वसुदेव के एक पुत्र का नाम जो मदिरा के गर्भ से उत्पन्न हुआ था । ८. क्रौंच द्वीप के एक वर्ष पर्वत का नाम । ९. विष्णु । १०. मेढक । ११. भागवत के अनुसार यज्ञेश्वर (परमात्मा) के एक अनुचर का नाम । १२. एक प्रकार का मृदंग । १३. चार प्रकार की वेणुओं या बाँसुरियों में से एक ।

विशेष—वह ग्यारह भगुल की होती और उत्तम समझी जाती है । इसके देवता ६३ माने जाते हैं ।

१. एक राग का नाम ।

विशेष—इसे कोई कोई मानसोस राग का पुत्र मानते हैं ।

१५. दिग्न में दक्ष के दूसरे भेद का नाम ।

विशेष—इसमें एक गुण और एक लघु होता है—(ग) और जिसे ताल तथा गाल भी कहते हैं । जैसे, राम । लाल । तान ।

१६. लड़का । बेटा । पुत्र । १७. गोकुल के गोपों के मुखिया ।

विशेष—इनके यहाँ श्रीकृष्ण को उनके जन्म के समय, वसुदेव जाकर रख आए थे । श्रीकृष्ण की बात्पावस्था इन्हीं के यहाँ बीती थी । इनकी स्त्री का नाम यशोदा था । कंस के मय से ये पीछे श्रीकृष्ण को लेकर बृंदावन जा रहे थे । जब कृष्ण ने भद्रपुर में कंस को मारा था तब वे भी उनके साथ ही थे । इसके उपरान्त जब कृष्ण भद्रपुर से बृंदावन नहीं लौटे तब वे बहुत दुःखी हुए थे । इसके बहुत दिन बाद जब हंस और दिभक का दमन करने के लिये वे गोवर्धन गए थे तब इन्होंने उन्हें बहुत रोकना चाहा था, पर कृष्ण ने नहीं माना । भागवत में लिखा है कि एक बार ये एकादशी का व्रत करके रात के समय यमुना में स्नान करने गए थे । उस समय वरुण के दूत इन्हें पकड़कर वरुण की सभा में ले गए । उस समय कृष्ण वे वहाँ

जाकर इन्हें छुड़ाया। इसके अनिरिक्त उसमें यह भी लिखा है कि नंद पूर्व जन्म में दक्षप्रजापति थे और यशोदा उनकी स्त्री थी। जब यज्ञ में सती ने शिव जी की निंदा सुनकर अपने प्राण त्याग दिए तब दक्ष दुःखी होकर अपनी स्त्री सहित तपस्या करने के लिये चले गए। उनकी तपस्या से प्रसन्न होकर सती ने प्रकट होकर उनसे कहा था कि द्वार में फिर एक बार मैं तुम्हारे यहाँ जन्म लूँगी पर उस समय न मैं अधिक समय तक तुम्हारे पास रहूँगी और न तुम मुझे पहचान सकोगे। तदनुसार सती ने कन्यारूप में नंद के यहाँ यशोदा के गर्भ से जन्म लिया था। श्रीकृष्ण को नंद के यहाँ रखकर वसुदेव इसी कन्या को अपने साथ ले गए थे जिसे पीछे से कंस ने जमीन पर पटक दिया था और जो जमीन पर गिरते ही आकाश में चली गई थी।

१८. महात्मा बुद्ध के माई जो उनकी पिमाता के गर्भ में उत्पन्न हुए थे। बुद्ध ने बोधिज्ञान प्राप्त करने के उपरांत कपिलवस्तु में आकर इन्हें दीक्षित किया था।

विशेष—जब ये बुद्ध का साथ जा रहे थे तब कई बार अपनी छो भद्रा को देखने के लिये वे लौटना चाहते थे, पर बुद्ध ने इन्हें लौटने नहीं दिया था। बुद्ध ने इन्हें भिक्षु बनाकर सांसारिक बंधनों से छुड़ाकर स्वर्ग और नरक के दृश्य दिखाए थे।

१९. मगध देश के कई राजाओं का नाम जिनका राज्य विक्रम संवत् से २५० वर्ष पहले तक रहा और जिनके पीछे मौर्य वंश का राज्य हुआ। ३० 'नंदवंश'।

नंदक—संज्ञा पुं० [सं० नन्दक] १ श्रीकृष्ण का खंग। २. मेड़क। ३. स्कंद का एक अनुधर। ४. धृतराष्ट्र का एक पुत्र। ५. एक नाग का नाम। ६. राजा नंद जिनके यहाँ कृष्ण बाल्यावस्था में रहते थे। ७. प्रसन्नता।

नंदक—वि० १. आनंददायक। २. क्लृपालक। ३. संतोष देनेवाला।

नंदकि—संज्ञा स्त्री० [सं० नन्दकि] पीपल।

नंदकिशोर—संज्ञा पुं० [सं० नन्दकिशोर] नंद के पुत्र, श्रीकृष्ण।

नंदकी—संज्ञा पुं० [सं० नन्दकि] विष्णु।

नंदकुंवर—संज्ञा पुं० [सं० नन्द + हि० कुंवर] दे० 'नंदकुमार'।

नंदकुमार—संज्ञा पुं० [सं० नन्दकुमार] नंद के पुत्र, श्रीकृष्ण।

नंदगाँव—संज्ञा पुं० [सं० नन्दग्राम] वृंदावन का एक गाँव।

विशेष—यह मथुरा से तीसरी कोस पर है और यहाँ नंद का प्य रहते थे।

नंदगापिता—संज्ञा स्त्री० [सं० नन्दगापिता] शम्भा या राघवन नामक आर्याधि।

नंदग्राम—संज्ञा पुं० [सं० नन्दग्राम] १. नंदगाँव। २. नदिग्राम। अयोध्या के समीप का एक गाँव जहाँ ब्रह्मराम के वनवास काल में भरत ने तपस्या की थी। उ०—अयोध्या में पूरन धरम रहै। नदिग्राम में नंदी जी के ते हो प्ररथ कहै।—देवस्वामी (शब्द०)।

नंदद्व—संज्ञा पुं० [सं० नन्दद्व] आनंद देनेवाला, पुत्र। बेटा। लड़का।

नंददुलारो(पु)—संज्ञा पुं० [सं० नन्द + हि० दुलारो (= दुलारा)] कृष्ण। उ०—निकसो नंददुलारो आज बनि ठनि ब्रज खेलन फाग।—नद० प्र०, ३६५।

नंदनंद—संज्ञा पुं० [सं० नन्दनन्द] नंद के पुत्र, श्रीकृष्णचंद्र।

नंदनन्दन—संज्ञा पुं० [सं० नन्दनन्दन] नन्द के पुत्र, श्रीकृष्ण।

नंदनंदिनी—संज्ञा स्त्री० [सं० नन्दनंदिनी] नंद की कन्या, दुर्गा। योगमाया। वसुदेव कंस के भय में श्रीकृष्ण को नंद के घर रखकर इसी कन्या को साथ ले गए थे, और जब कंस ने इसे पटका था तब यह उड़कर आकाश में चली गई थी।

विशेष—दे० 'नंद' १७।

नंदनंदन(पु)—संज्ञा पुं० [सं० नन्दनन्दन] दे० 'नंदनंदन'। उ०—नंददास नंदन सुं होन लागे नयन पलक की मोट मानु री बीते जुग चार।—नद० प्र०, पृ० ३५५।

नंदन—संज्ञा पुं० [सं०] १. इंद्र के उपवन का नाम जो स्वर्ग में माना जाता है।

विशेष—पुराणानुसार यह सब स्थानों से सुंदर माना जाता है और जब मनुष्यों का भोगकाल पूरा हो जाता है तब वे इसी वन में सुखपूर्वक बिहार करने के लिये भेज दिए जाते हैं।

२. कामाख्या देश का एक पर्वत।

विशेष—पुराणानुसार जिसपर कामाख्या देवी की सेवा के लिये इंद्र सदा रहते हैं। इस पर्वत पर जाकर लोग इंद्र की पूजा करते हैं।

३. कार्तिकेय के एक अनुधर का नाम। ४. एक प्रकार का विष। ५. महादेव। शिव। ६. विष्णु। ७. मेड़क। ८. वास्तु शास्त्र के अनुसार वह वह मकान जो षटकोण हो, जिसका विस्तार बरीम हाथ हो और जिनमें मोलह शृंग हों। ९. केसर। १०. चदन। ११. लड़का। बेटा। जैसे, नंदनंदन। १२. एक प्रकार का अन्न। उ०—ये सब अन्न देव धारत नित जोन तूहें सिखनाऊँ। महा अन्न विद्याधर लीजै पुनि नंदन जहि नाऊँ—रघुराज (शब्द०)। १३. पेघ। बादल। १४. एक वर्षावृत्त जिसमें प्रत्येक चरण में क्रम से नगण, जगण, भगण, जगण और दो रगण (गा गा गा गा गा गा) होते हैं। यथा—मज्जत समे सो सुमति जीन मोह के जान को। १५. गाठ संवत्सरों में से त्रिंशत्सवा संवत्सर।

विशेष—कहते हैं 'क' इस संवत्सर में अन्न खूब होना है, गोएँ खूब हूँ देनी है और लोग नीरोग रहते हैं। १६. आनंद (की०)।

नंदन—वि० आनंद देनेवाला। प्रसन्न करनेवाला।

नंदनक—संज्ञा पुं० [सं० नन्दनक] बेटा। पुत्र।

नंदनकावन—संज्ञा पुं० [सं० नन्दनकावन] इंद्र का उपवन।

नंदनज—संज्ञा पुं० [सं० नन्दनज] १. हरिचंदन। २. श्रीकृष्ण।

नंदनदा(पु)—संज्ञा पुं० [सं० नन्दनन्दन] नंदनंदन। श्रीकृष्ण। उ०—उपमा कहै ना नटनागर वो नंदनदा, तापे ससि अंक बीच भोम सरमेश है।—नद०, पृ० ६३।

नंदनद्रुम—संज्ञा पुं० [सं० नन्दनद्रुम] नंदन वन का वृक्ष (की०)।

नन्दनप्रधान—संज्ञा पु० [सं० नन्दनप्रधान] नन्दनवन के स्वामी, इंद्र ।

नन्दनमाला—संज्ञा स्त्री० [सं० नन्दनमाला] पुराणानुसार एक प्रकार की माला जो श्रीकृष्ण को बहुत प्रिय थी ।

नन्दनवन—संज्ञा पु० [सं० नन्दनवन] १. इंद्र की वाटिका । २. कपाम ।

नन्दना^(१)—क्रि० प्र० [सं० नन्दन] झानदित होना । प्रसन्न होना ।

नन्दना^१—संज्ञा स्त्री० [सं० नन्दना] पुत्री । लड़की । बेटी ।

नन्दनी—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'नदिनी' ।

नन्दपाल—संज्ञा पु० [सं० नन्दपाल] वरुण ।

नन्दपुत्री—संज्ञा स्त्री० [सं० नन्दपुत्री] दे० 'नन्दनदिनी' ।

नन्दप्रयाग—संज्ञा पु० [सं० नन्दप्रयाग] बदरिकाश्रम के निकट का एक तीर्थ जो सात प्रयागों में से है ।

नन्दरानी—संज्ञा स्त्री० [सं० नन्द + हि० रानी] नंद की स्त्री यशोदा ।

नन्दरुख—संज्ञा पु० [हि० नन्द + रुख] अश्वत्थ की जाति का एक पेड़ जिसकी पत्तियाँ रेशम के कीड़ों को खाने के लिये बी जाती हैं ।

नन्दलाल—संज्ञा पु० [सं० नन्द + हि० लाल (= बेटी)] नंद के पुत्र, श्रीकृष्ण ।

नन्दवंश—संज्ञा पु० [सं० नन्दवंश] मगध का एक विख्यात राजवंश जिसका अंतिम राजा उस समय मिहासन पर था जिस समय सिकंदर ने ईसा से ३२७ वर्ष पूर्व पंजाब पर चढ़ाई की थी ।

विशेष—इस वंश का उल्लेख विष्णुपुराण, श्रीमद्भागवत, ब्रह्मांडपुराण आदि में मिलता है । विष्णुपुराण में लिखा है कि शूद्रा के गर्भ से महानदि का पुत्र महापद्मनंद होगा जो समस्त क्षत्रियों का विनाश करके पृथिवी का एकछत्र भोग करेगा । उसके गुमानि आदि पाठ पुत्र होंगे जो क्रमशः सौ वर्ष तक राज्य करेंगे । अंत में कीटिल्य के हाथ से नंदों का नाश होगा और मौर्य लोग राजा होंगे । इसी प्रकार का वंश भागवत में भी है । ब्रह्मांडपुराण में कुछ विशेष अंश है । तममें लिखा है कि राजा विधमार (कदाचित् बिबसार जो गौतमबुद्ध के समय तक था और जिसका पुत्र अजातशत्रु बुद्ध का शिष्य हुआ था) २८ वर्ष तक, उसका पुत्र अजातशत्रु ३५ वर्ष तक, फिर उदायो २३ वर्ष तक, नंदिवर्धन ४२ वर्ष तक और महानदि ४० वर्ष तक राज्य करेंगे । शूद्रा के गर्भ से उत्पन्न महानदि का पुत्र क्षत्रियों का नाश करनेवाला नंद होगा । वह और उसके आठ पुत्र मात्र हिमाचल से १०० वर्ष तक राज्य करेंगे । अंत में कीटिल्य के हाथ से सब मारे जायेंगे ।

कथामरिसागर में भी नंद का उल्लेख एक गोचक कहानी के रूप में इस प्रकार दिया गया है । इंद्रवत्, व्याधि और वरुचि अर्थोराजन के लिये नंद का सभा में पहुँचे । पर उनके पहुँचने के कुछ पहले नंद मर गए । इंद्रवत् ने योगबल से नंद के मृत शरीर में प्रवेश किया जिससे नंद जी उठे । व्याधि इंद्रवत् के

शरीर की रक्षा करने लगे । राजा के जी उठने पर मंत्रि शकटार को कुछ संदेह हुआ और उसने राजा से भी कि नगर में जितने मुर्दे हों सब तुरंत जला दिए जायें । इस प्रकार इंद्रवत् का पहला शरीर जला दिया गया और उनकी आत्मा नंद के शरीर में ही रह गई । नंद देहधारी इंद्रवत् योगानंद नाम से प्रसिद्ध हुए । योगानंद ने ब्रह्महत्या का अपराध लगाकर शकटार को सपरिवार कैद कर लिया और अनेक प्रकार के कष्ट देने लगा । शकटार के सब पुत्र तो यंत्रणा से मर गए, पर शकटार ने प्रतिकार की इच्छा से अपनी प्राणरक्षा की । वरुचि योगानंद के मंत्री हुए । उनके कहने से नंद ने शकटार को छोड़ दिया । धीरे धीरे नंद अनेक प्रकार के अपराध करने लगा । एक दिन उसने वरुचि पर क्रुद्ध होकर उन्हें मार डालने की आज्ञा दी । शकटार ने उन्हें छिपा रखा । एक दिन राजा फिर वरुचि के लिये व्याकुल हुए । इसपर शकटार ने उन्हें लाकर उपस्थित किया । पर वरुचि ने उदास हो वानप्रस्थ ग्रहण कर लिया ।

शकटार यद्यपि नंद के मंत्री रहे तथापि उसके विनाश का उपाय सोचते रहे । एक दिन उन्होंने देखा कि एक ब्राह्मण कुशों को उखाड़ उखाड़कर गड्ढा खोद रहा है । पूछने पर उसने कहा, 'ये कुश मेरे पैर में चुमे थे, इससे उन्हें बिना समूल नष्ट किए न रहूँगा ।' वह ब्राह्मण कीटिल्य चाणक्य था । शकटार ने चाणक्य को अपने कार्यसाधन के लिये उपयोगी समझकर उसे नंद के यहाँ जाने के लिये श्राद्ध का निमंत्रण दे दिया । चाणक्य नंद के प्रासाद में पहुँचे और प्रधान आसन पर बैठ गए । नंद को यह सब खबर नहीं थी; उसने वह आसन दूसरे के लिये रखा था । चाणक्य को उसपर बैठा देख उसने उठ जाने का इशारा किया । इसपर चाणक्य ने अत्यंत क्रुद्ध होकर कहा—'सात दिन में नंद की मृत्यु होगी' । शकटार ने चाणक्य को घर ले जाकर राजा के विरुद्ध और भी उत्तेजित किया । अंत में अभिचार किया करके चाणक्य ने सात दिन में नंद को मार डाला । इसके उपरांत योगानंद के पुत्र हिरण्यगुप्त को मारकर उसने नंद के पुत्र चंद्रगुप्त को राजसिंहासन पर बैठाया और आप मंत्री का पद ग्रहण किया ।

बौद्ध और जैन ग्रंथों में भी नंद का वृत्तान्त मिलता है पर भेद इतना है कि पुराणों में तो महापद्मनंद को महानदि का पुत्र माना है, चाहे शूद्रा के गर्भ से सही; पर जैन और बौद्ध ग्रंथों में उसे सर्वथा नीच कुल का और अकस्मात् आकर राजसिंहासन पर बैठनेवाला लिखा है । कथासरित्सागर में चंद्रगुप्त को जो नंद का पुत्र लिखा है उसे इतिहासज्ञ ठीक नहीं मानते । मौर्यवंश एक दूसरा राजवंश था । कोई कोई इतिहासज्ञ 'नवनंद' शब्द का अर्थ नए नंद करते हैं जो गूढ़ थे । उनके अनुसार नंदवंश शूद्र क्षत्रियवंश था और 'नवनंद' शूद्र थे ।

नंदा—संज्ञा स्त्री० [सं० नन्दा] १. दुर्गा । २. गोरी । ३. एक प्रकार की कामधेनु । ४. एक मनुका का बालग्रह ।

विशेष—इसके पिण्य में यह माना जाता है कि इसके कारण

बालक अपने जीवन के पहले दिन, पहले मास और पहले वर्ष में ज्वर से पीड़ित होकर बहुत रोता और अचेत हो जाता है।

५. शुभ । उत्तम । किसी पक्ष की प्रतिपदा, षष्ठी और एकादशी तिथि । उ०—परिवा, छट्ठि एकादशि नंश । दुर्जि, सप्तमी द्वादशि मंश ।—जायसी (शब्द०) । ६. सति । सपदा । ७. एक प्रकार की मंकाति । ८. हरे की स्त्री ।

विशेष—यहाँ 'प्रसन्नता' से तात्पर्य है ।

९. संगीत में एक मुच्छंता का नाम । १०. एक मन्तर का नाम । ११. विभीषण की कन्या का नाम । १२. नरमान अवमर्षिणी के दमर्षे अर्हत् की माता का नाम (जेन) । १३. पुराणानुसार कुवेर की पुरी के निकट बहनेवाली नदी का नाम । १४. मिट्टी का पड़ा या झरका आदि जिसमें पानी रखते हैं । १५. पुराणानुसार शारद्वी की एक मंडी का नाम । १६. पति की बहिन । ननद । १७. एक तीर्थ का नाम । विशेष ४० 'नंदातीर्थ' । १८. बरबे छंद का एक नाम । १९. आनंद देनेवाली ।

नंदातीर्थ—संज्ञा पुं० [सं० नंदातीर्थ] एक नदी और तीर्थ जो हिमालय पर्वत पर है ।

विशेष—महाभारत में लिखा है कि यहाँ सदा बहुत मेख हवा बहती रहती है, जोर में पानी बरसता रहता है, साधारण लोग पहुँच नहीं सकते, और भद्र वेदवर्णि मुनाई पहती है पर कोई वेद पढ़नेवाला दिव्याई नहीं देता । सबेरे और संध्या यहाँ अग्निदेव के दर्शन होते हैं । यहाँ वेठार यदि कोई तरपया करना चाहे तो उसे मन्त्रियाँ काटो नगनी है । युधिष्ठिर अपने भाइयों के साथ एक बार इस तीर्थ में गए थे ।

नंदात्मज—संज्ञा पुं० [सं० नंदात्मज] श्रीकृष्ण ।

नंदात्मजा—संज्ञा स्त्री० [सं० नंदात्मजा] योगमाया ।

नंदादेवी—संज्ञा स्त्री० [सं० नंदादेवी] दक्षिणी हिमालय की एक बौटी ।

विशेष—यह २५००० फुट से अधिक ऊँची है और यमुनोत्तरी के पूर्व है ।

नंदापुराण—संज्ञा पुं० [सं० नंदापुराण] एक उपपुराण जिसमें नंदासाहाय्य दिया गया है ।

विशेष—इसके बन्ना कार्तिक है । मत्स्य और शिवपुराण के मत में यह तीव्र उपपुराण है ।

नंदार्थ—संज्ञा पुं० [सं० नंदार्थ] शाकद्वीपी ब्राह्मणों का एक संप्रदाय ।

नंदाक्षय—संज्ञा पुं० [सं० नंदाक्षय] नंद का मृत्यु । उ०—सो प्रेमलता की आसक्ति बाललोना में बहोत है । ताते ये नंदाक्षय में अप्र प्रहर रहति है ।—दो सो बावन० भा० १, पृष्ठ १०८ ।

नंदाश्रम—संज्ञा पुं० [सं० नंदाश्रम] महाभारत के अनुसार एक तीर्थ का नाम ।

नंदि—संज्ञा पुं० [सं० नंदि] १. आनंद । २. वह जो आनंदमय हो । ३. सच्चिदानंद परमेश्वर । ४. शिव के द्वारपाल बैल का

५-३४

नाम । नंदिकेश्वर । ५. शिव । ६. विष्णु (को०) । ७. शूत कर्म (को०) । ८. वह जो नाटक में प्रस्तावना या भरतनाम्य का पाठ करता है (को०) । ९. समृद्धि । संपन्नता (को०) ।

नंदिक—संज्ञा पुं० [सं० नंदिक] १. नदीवृक्ष । तुन का पेड़ । २. धव का पेड़ । ३. आनंद । ४. जल का छोटा कलश (को०) । ५. शिव का एक गण । नंदी (को०) ।

नंदिकर—संज्ञा पुं० [सं० नंदिकर] शिव ।

नंदिका—संज्ञा स्त्री० [सं० नंदिका] १. मिट्टी की नाद जिसमें पानी रखते हैं । २. नंदन वन जहाँ इंद्र क्रोड़ा करते हैं । ३. किसी पक्ष की प्रतिपदा, षष्ठी और एकादशी तिथि । ४. हेममुख स्त्री ।

नंदिकावर्त—संज्ञा पुं० [सं० नंदिकावर्त] बृहत्संहिता के अनुसार एक प्रकार का भण्ड ।

नंदिकुंड—संज्ञा पुं० [सं० नंदिकुण्ड] महाभारत के अनुसार एक प्राचीन तीर्थ ।

नंदिकेश—संज्ञा पुं० [सं० नंदिकेश] १. शिव के द्वारपाल, नंदिकेश्वर । २. शिव (को०) ।

नंदिकेश्वर—संज्ञा पुं० [सं० नंदिकेश्वर] १. शिव के द्वारपाल बैल का नाम । २. एक उपपुराण जो नंदी का कहा हुआ और चौथा उपपुराण माना जाता है । इसे नंदीश्वर और नंदपुराण भी कहते हैं । ३. शिव (को०) ।

नंदिग्राम—संज्ञा पुं० [सं० नंदिग्राम] अयोध्या से चार कोस पर एक गाँव ।

विशेष—यहाँ भरत ने राम के वियोग में चौदह वर्ष तक तप किया था ।

नंदिघोष—संज्ञा पुं० [सं० नंदिघोष] १. अर्जुन के रथ का नाम जिसे उन्हें अग्निदेव ने प्रसन्न होकर दिया था । उ०—सप्तयुत्र गाडिव धनु लोन्हों । नदिघोष रथ हुतभुक्त दोन्हों ।—सबल (शब्द०) । २. बंदीजनों की घोषणा । ३. किसी प्रकार की शुभ या मंगल घोषणा ।

नंदित—वि० [सं० नंदित] आनंदित । सुखी । आनंदयुक्त । प्रसन्न । उ०—सूखी समीर नव गंधित, बह बली छंद से नंदित । उग आया सलिल कपल सित, कोमल मुग्ध नभ छाया ।—मोतगुंज, पृ० ४० ।

नंदित(पुं०)—वि० [हिं० नादना] बजता हुआ ।

क्रि० प्र०—करना । उ०—नाचि अचानक ही उठे बिनु पावस बन मोर । जानति हों, नंदित करी यह दिसि नंदिकेश्वर ।—बिहारी २०, दो० ४६९ ।—होना ।

नंदितरु—संज्ञा पुं० [सं० नंदितरु] धव का पेड़ ।

नंदितूर्य—संज्ञा पुं० [सं० नंदितूर्य] प्राचीनकाल का एक प्रकार का बाजा जो उत्सव या आनंद के क्षणों में बजाया जाता था ।

नंदिन—संज्ञा स्त्री० [दे०] एक प्रकार की मछली जो बंगाल और आसाम में पाई जाती है ।

विशेष—यह तीन फुट तक लंबी होती है और तेल में घाघ मन तक की होती है।

नंदिन^३(५)—संज्ञा स्त्री० [सं० नन्द (= बेटा)] लड़की, बेटा। पुत्री।

नंदिनी—संज्ञा स्त्री० [सं० नन्दिनी] १. कन्या। पुत्री। लड़की। बेटा। २. रेणुका नामक गंधद्रव्य। ३. जटामासी। बालछद्म। ४. उमा। ५. गंगा का एक नाम। ६. नन्द। पति की बहन। ७. दुर्गा का एक नाम। ८. तेरह भद्रों के एक वर्णवृत्त का नाम।

विशेष - इसमें एक सगर, एक जगग, फिर दो सगर और ग्रंथ में एक गृह होता है। इसे कलहस और सिहनाद भी कहते हैं। जैसे,—सजि मी भिगार कलहस गती मी। चलि घाह राम छवि मंडप दीसी। ९. वसिष्ठ की कामधेनु का नाम जो सुरभि की कन्या थी।

विशेष—राजा दिलीप ने इसी गी को वन में चराते समय सिंह से उमकी रक्षा की थी और इसी की धाराधना करके उन्होंने रघु नामक पुत्र प्राप्त किया था। महाभारत में लिखा है कि जो नामक वसु अपनी रानी के कहने से इसे वसिष्ठ के आश्रम में चुरा लाया था जिसके कारण वसिष्ठ के शाप से उसे भीष्म बनकर इस पृथिवी पर जन्म लेना पड़ा था। जब विश्वामित्र बहुत से लोगों को अपने साथ लेकर एक बार वसिष्ठ के यहाँ गए थे तब वसिष्ठ ने इसी गी से सब कुछ लेकर सब लोगों का मत्कार किया था। यह विशेषता देखकर विश्वामित्र ने वसिष्ठ से यह गी माँगी; पर जब उन्होंने इसे नहीं दिया तब विश्वामित्र उसे जबर्दस्ती ले चले। रास्ते में इसके चिल्लाने से इसके शरीर के भिन्न भिन्न अंगों से से स्लेच्छों और यवनों की बहुत सी पेनाएँ निकल पड़ीं जिन्होंने विश्वामित्र को परास्त किया और इसे उनके हाथ से छुड़ाया।

१०. पत्नी। स्त्री। जोरू। ११. कार्तिकेय की एक मातृका का नाम। १२. व्यास मुनि की माता का नाम।

यो०—नन्दिनीतनय, नन्दिनीभृत = व्यास मुनि।

नंदिपटह—संज्ञा पुं० [सं० नन्दिपटह] लूट (की०)।

नंदिपुराण—संज्ञा पुं० [सं० नन्दिपुराण] देवी पुराण का एक उपपुराण (की०)।

नंदिमुख^१—संज्ञा पुं० [सं० नन्दिमुख] १. एक प्रकार का पक्षी। २. सुश्रुत के अनुसार एक प्रकार का भावल। ३. शिव का एक नाम।

नंदिमुख^२—संज्ञा पुं० [सं० नान्दीमुख] दे० 'नन्दीमुख'। उ०—
किय खाइ नंदिमुख बेड वृद्धि। सा जातरुम किन्नी सु
सुद्ध—शमोर०, पृ० ३२।

नंदिमुखी—संज्ञा स्त्री० [सं० नन्दिमुखी] १. तंदा : २. पातप्रकाश के अनुसार वह पक्षी जिसकी चोंच का ऊपरी भाग बहुत कड़ा और गोल हो।

विशेष—ऐसे पक्षी का मांस पित्तनाशक, विकृता, मायो, मोटा, और वायु, कफ, बल तथा शुक्रवर्धक माना जाता है।

नंदिश्वर—संज्ञा पुं० [सं० नन्दिश्वर] शिव का एक नाम।

नंदिवर्धन^१—संज्ञा पुं० [सं० नन्दिवर्धन] १. शिव। २. पुत्र। बेटा। ३. मित्र। दोस्त। ४. प्राचीन काल का एक प्रकार का विमान। ५. वास्तु शास्त्र के अनुसार एक प्रकार का मंदिर।

विशेष—प्राचीन वास्तु शास्त्र के अनुसार वह मंदिर जिसका विस्तार चौबीस हाथ हो, जो सात भूमियों से युक्त हो और जिसमें २० शृंग हों।

६. मगध के राजा बिम्बसार के लड़के अजातशत्रु के परपोते का नाम। ७. शुक्ल पक्ष की द्वितीया या पूर्णिमा तिथि (की०)।

नंदिवर्धन^२—वि० आनंद बढ़ानेवाला। जो आनंद बढ़ावे।

नंदिवारलक—संज्ञा पुं० [सं० नन्दिवारलक] सुश्रुत के अनुसार एक प्रकार की मछली जो समुद्र में होती है।

नंदिपेण—संज्ञा पुं० [सं० नन्दिपेण] कुमार के एक अनुचर का नाम।

नंदी^१—संज्ञा पुं० [सं० नन्दिन्] १. धव का पेड़। २. गर्दभांड वृक्ष। पाखर का पेड़। ३. बट वृक्ष। बरगद का पेड़। ४. तुन का पेड़। ५. शिव के एक प्रकार के गण।

विशेष—ये तीन प्रकार के होते हैं—कनकनदी, गिरिनंदी, और शिवनदी।

६. शिव का द्वारपाल, बैल।

विशेष—कहते हैं कि पूर्वजन्म में यह शालंकायण मुनि का पुत्र था।

७. शिव के नाम पर दागकर उत्सर्ग किया हुआ कोई बैल। ८. वह बैल जिसके शरीर पर गठें हो।

विशेष—ऐसा बैल खेती के काम का नहीं होता। इसे फकीर लोग लेकर घुमाते और लोगों को उसके दर्शन कराके पैसे मांगते हैं।

८. विष्णु। १०. जैनों के एक श्रुतिपात्र। ११. उड़द (हि०)। १२. बंगाल की कायस्थ, तेली, नाई आदि कई जातियों की उपाधि।

नंदी^२—वि० आनंदयुक्त। जो प्रमत्त हो।

नंदोदण—संज्ञा पुं० [हि० नंदो + सं० गण] १. शिव के द्वारपाल, बैल। २. दागकर उत्सर्ग किया हुआ बैल। साड़।

नंदीघंटा—संज्ञा पुं० [हि० नंदी + घंटा] बैलों के गले में बाँधने का बिना ढाड़ो का घंटा।

नंदीपति—संज्ञा पुं० [सं० नन्दीपति] शिव। महादेव।

नंदीमुखापु^१—संज्ञा पुं० [सं० नान्दीमुखी] दे० 'नान्दीमुख'।

नंदीमुख^२—संज्ञा पुं० [सं० नन्दिमुख] दे० 'नन्दिमुख'।

नंदीवृक्ष—संज्ञा पुं० [सं० नन्दीवृक्ष] १. तुन का पेड़। २. महासिमी।

नंदीश—संज्ञा पुं० [सं० नन्दीश] १. शिव। २. नलों के सठ में से एक (संगीत)। ३. नदी।

नंदीश्वर—संज्ञा पुं० [सं० नन्दीश्वर] १. शिव। २. नंदीश ताल। ३. दुर्वावन का एक तीर्थ। ४. शिव का एक गण।

विशेष—यह पुराणानुसार तोटक का अवतार माना जाता है। कहते हैं कि यह बामन है, इसका रंग काला है और सिर मुँहाड़ा तथा मुँह बंदर का सा है।

नंदेऊ^७—संज्ञा पुं० [हि० नंदोई] दे० 'नंदोई' ।

नंदोई—संज्ञा पुं० [हि० ननद + ओई (प्रत्य०)] ननद का पति ।
पति की बहन का पति । पति का बहनोई ।

नंदोसो—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'नंदोई' ।

नंद्यावर्त्त—संज्ञा पुं० [सं० नन्द्यावर्त्त] १. एक प्रकार की इमारत ।
ऐसी इमारत के पश्चिम ओर द्वार नहीं रहना चाहिये । २.
तगर का पेड़ ।

नंबर—वि० [अ०] १. संख्या । घंटा । मदद । जैसे, --उसपर
अंगरेजी में कुछ नंबर लिखा हुआ था ।

क्रि० प्र०—देना ।—लगाना ।

२. गिनती । गणना । ३. किसी सामयिक पत्र या पुस्तक आदि
की कोई एक राखा या अंक । जैसे, --(क) उस मासिक पत्र
के अभी तीन ही नंबर निकले हैं । (ख) तुम्हारी पुस्तकमाला
का चौथा नंबर अभी तक नहीं आया । ४. कपड़े आदि नापने
का लोहे का वह गज जो ३ फुट या ३६ इंच लंबा होता है ।
५. स्त्रीप्रसंग । भोग । (बाजारू) ।

मुहा०—नंबर दागना या लगाना = स्त्री प्रसंग करना ।

नंबरदार—संज्ञा पुं० [अं० नंबर + फा० दार] गाँव का वह जमींदार
जो धरती पट्टी के ओर हिस्सेदारों से मालगुजारी आदि वसूल
करने में सहायता दे ।

नंबरवार—क्रि० वि० [अं० नंबर + फा० वार (प्रत्य०)] यथाक्रम ।
सिलसिलेवार । क्रमशः । एक एक करके । जैसे, --इन सब
किताबों को नंबरवार लगा दो ।

नंबरिंग मशीन—संज्ञा स्त्री० [अं०] एक प्रकार का यंत्र जिससे
रसीदी, टिकटों आदि पर क्रमसंख्या छापने हैं ।

नंबरी—वि० [अं० नंबर + ई (प्रत्य०)] १. नंबरवाला । जिस
पर नंबर लगा हो । २. प्रसिद्ध । मशहूर । कुख्यात जैसे,
नंबरी डाकू, नंबरी चोर ।

नंबरी गज—संज्ञा पुं० [हि० नंबरी + फा० गज] दे० 'नंबर' ।

नंबरी सेर—संज्ञा पुं० [हि० नंबरी + सेर] तोमरे का धेर जो
अंगरेजी रुपयों से न० भर का होता है । अंगरेजी सेर ।
बीसगंडी सेर ।

नबूदरी—संज्ञा पुं० [मल० नबूतिर] मालाबार प्रांत के जहाज़ों की
एक जाति ।

विशेष—भाष्य शंकराचार्य केरलीय जहाज़ों की इसी जाति में
पेदा हुए थे ।

नंधना^७—क्रि० स० [हि०] डालना । गिराना । छोड़ना । उ०—
थप्पी सुवसत अर्जुन उरग । सुरनि सीस नंधे मुपनः—
पृ० रा०, १।६७ ।

नंस^७—वि० [सं० नाश] जिसका नाश हुआ हो । नष्ट । स०—
कोतुक केलि करहि दुख नंसा । खूँदहि कुरलहि जनु सर
हंसा ।—जायसी ।

नंस—संज्ञा पुं० नाश । बरबादी ।

नंसना^७—क्रि० स० [सं० नाश] नाश करना । विनाश करना ।

नंगदा^७—वि० [हि० नंग + टा (प्रत्य०)] दे० 'नंगा' ।

नंगपैरा^७—वि० [हि० नंगा + पैर + धार (प्रत्य०)] जिसके
पाँव नंगे हों । जिसके पैरों में जूता न हो ।

नंगियाना^७—क्रि० स० [हि० नंगा से नामिक धातु] १. नंगा
करना । शरीर पर वस्त्र न रहने देना । २. सब कुछ छीन
लेना । कुछ भी पास न रहने देना ।

नंगियाना^७—क्रि० घ० १. नंगा होना । २. नंगेपन पर उतर
आना । बेशर्म होना ।

नंगियावना^७—क्रि० स० [हि० नंगा से नामिक धातु] नंगा करने
की क्रिया ।

नंग्याना^७—क्रि० स० [हि०] दे० 'नंगियाना' ।

नंग्यावना^७—क्रि० स० [हि०] नंगा करना । उ०—भीम कहा
बपुरो अरु अर्जुन तारि नंग्यावत ही बल रीती ।—केशव
पं० पृ० १४० ।

नंदरानी—संज्ञा स्त्री० [हि०] नंदरानी । यशोदा । उ०—नंददास
पद्म मुदिन नंदरानी ही हो रस सागर में भेलत ।—नंद०
पं०, पृ० ३८७ ।

नंदलाल^७—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'नंदलाल' । उ०—आए नहीं
नंदलाल पहिरे फूल माला ।—नंद० पं०, पृ० ३७५ ।

नंदमुवन^७—संज्ञा पुं० [हि०] कृष्ण । उ०—नंददास नंदमुवन
मुगलि गुर तगन होति बजबाल । नंद० पं०, पृ० ३७७ ।

नंदोली^७—संज्ञा पुं० [हि० नंद + ओली (प्रत्य०)] मिट्टी की
बड़ी अथवा छोटी नौद ।

न^७—संज्ञा पुं० [सं०] १. उपमा । २. रत्न । ३. मोता । ४. बुद्ध ।
५. वध । ६. मोती (की०) । ७. गणेश (की०) । ८. घन ।
संघति (की०) । ९. युद्ध (की०) । १०. उाहार (की०) ।

न^७—१०. १. पतला । २. रिक्त । शून्य । ३. अनुसूय । सद्गुण । बही ।
४. अथात । नथका हुआ । ५. प्रशमित । ६. अविभक्त ।
अविभाजित (की०) ।

न^७—अर्थ० १. निषेधवाचक शब्द । नहीं । मत । जैसे, --तुम न जाओ
तो कोई हर्ज है ? (ख) उसे कुछ न देना ही ठीक है ।

विशेष—विधि, अनुज्ञा, हेतुहेतुमद् भाव आदि कुछ विशेष स्थलों
पर भी 'नहीं' के स्थान में 'न' आता है ।

जैसे, --२. कि नहीं ? या नहीं ? (क) तुम बड़ी जाग्रो न ?
(ख) ३ दिनभर तो बह^७ रंगे न ?

विशेष—इस अर्थ में इसका प्रयोग प्रश्नात्मक वाक्य के अंत में
ही होता है ।

नइ^७—संज्ञा स्त्री० [हि० नई] दे० 'नई' । उ०—कोउ तिन^७ ते
अधिक आभस्तिर सु जुन गति नइ । सबको छेकि छबीली
अदभुत पान करत अइ ।—न० पं०, पृ० ३४ ।

नइ^७—प्रत्य० [हि० कर्मकारक का प्रत्यय ने । अण्य रूप तूँ, कूँ, कौँ,
की, कहुँ] को । उ०—(क) उत्तर दिशि उपराठियाँ, दक्षिण
सामहिदाई । कुरभी एक संवेसड़उ ठोलानइ कहियाई ।
ठोला०, दू० ६४ । (ख) भाई कहि बतसावसूँ नागरबेज
निरैत । हुउ हुउ करहा, कुँबर नइ, मत ले जाय बिदेस ।
—ठोला०, दू० ३२६ ।

नई^१—सं० [मं० अयत् ?] निश्चयमूचक अयय । दे० 'घोर' । उ०—
बाबहियउ नई बिरहणी, दुहुवाँ एक महाव । जब हो बरमइ
पणु पणउ तबही कहइ बियाव ।—ढोला०, दू० २७ ।

विशेष—इसके अन्य रूप हैं—'अनई', 'अने', 'ने' ।

नईण^(पु०)—सं० पु० [मं० नयन] दे० 'नयन' । उ०—ऊनमि आई
बहली, ढोलउ आयउ चित्त । यो बरमइ रितु आपणी, नईण
हमारे चित्त ।—ढोला०, दू० ४१ ।

नईया^(पु०)—सं० श्री० [मं० नीया] नाव । उ०—हो अपराधी बहुत
जुगन को नईया मोर उबाग ।—धरम०, पु० २५ ।

नईवेद^(पु०)—सं० पु० [हि०] दे० 'नैवेद' । उ०—उवाचनिय मान
वृष्य वृषति अति मुदेव नईवेद जुन ।—पु० रा०, २६।२७६ ।

नईहर^(पु०)—सं० पु० [मं० जातिगृह] [हि० नेहर] श्रियो की माता का
घर । पीहर । मायका ।

नई^(पु०)—वि० पु० [मं० नय + हि० ई (प्रत्य०)] नीलवान् । नीलज ।

नई^(पु०)—वि० श्री० [मं० नव] नया' का श्री० रूप ।

नई^(पु०)—सं० श्री० [मं० नदी] दे० 'नदी' ।

नई^(पु०)—सं० श्री० [हि०] नवमी तिथि । उ०—कान जागण भद्रा
नहीं पुष नक्षत्र नई कार्तिक मास ।—यो० रा०, पु० ४० ।

नउँजी^(पु०)—सं० श्री० [हि० नीजी] नीजी नामक फल । उ०—कोई
नारंग कोई आर बिरउंजी । कोई कटहर बड़हर कोई
नउँजी ।—जायसी (शब्द०) ।

नउ^(पु०)—वि० [मं० नव] १. दे० 'नव' । उ०—ताकहें गुल्फ करइ धम
माया । नउ अउतार देइ नउ काया ।—जायसी (शब्द०) ।

२. दे० 'नौ' । उ०—नउ पउरी बाँकी नउ खंडा । नउ ऊनो
बहइ जाइ सताया ।—जायसी (शब्द०) ।

नउआ^(पु०)—सं० पु० [हि० नाऊ] [श्री० नउनियाँ] दे० 'नाऊ' ।
उ०—रोहन देखि जननि भक्तानी जियो गुरत नउआ को
करकी ।—सूर (शब्द०) ।

नउका^(पु०)—सं० श्री० [मं० नीका] दे० 'नीका' ।

नउत^(पु०)—वि० [हि० नवना, नवत] नीचे की ओर झुका हुआ ।
उ०—विराछि गयो मन लागि ज्यों ललित त्रिभंगी संग । सूधो
होत न ओर तनि नउत रहै वह धम ।—रसनिधि (शब्द०) ।

नउतोया^(पु०)—सं० पु० [हि०] दे० 'नवतहरी' । उ०—राजमती कउ
रचउ बीबाह् ७पारी गंड जीव नउतोया, मित्या हो चउतामिया
अंत न पार ।—बी० रा०, पु० ३७ ।

नउनी^(पु०)—वि० [हि०] झुका हुआ । नम्र । नम ।

नउनियाँ^(पु०)—सं० श्री० [हि०] दे० 'नाइन' । उ०—अति बड भाग
नउनियाँ पुर नख हाथ नो हो ।—सुखसी ३०, पु० ५ ।

नउनिया^(पु०)—श्री० श्री० [हि०] दे० 'नउनिया' । उ०—नैन
विसाल नउनिया भी चमकावइ हो ।—गुलसी० ४०, पु० ४ ।

नउमि^(पु०)—वि० श्री० [मं० नवमी] नीची । नवी । उ०—नउमि
दशा दखि गेलाहे नड़ाए दसमि दशा उगपति अछि आए ।—
विद्यार्पित, पु० ५२८ ।

नउरंगी^(पु०)—सं० श्री० [हि० नारंगी] दे० 'नारंगी' ।

नउरी^(पु०)—सं० पु० [मं० नकुल] दे० 'नैयला' ।

नउरता^(पु०)—सं० पु० [हि०] नवरात्र । उ०—नव दिन पूंगा
नउरता बलि वाकुल पूजा रचो टाई ।—बी० रा०, पु० ५० ।

नउलि^(पु०)—वि० [मं० नवल] नया । नवीन । ताजा । उ०—सबइ
नउलि पिय संग न मोई । केवल पास जनु बिगसी कोई ।—
जायसी (शब्द०) ।

नऊड़ा^(पु०)—सं० श्री० [मं० नवोडा] दे० 'नवोडा' । उ०—प्रथमहि
मुग्ध नऊड़ा होय । पुनि विश्रब्द नऊड़ा सोय ।—नव० प्र०,
पृ० १४५ ।

नएपंज^(पु०)—सं० पु० [नए] पाँच वर्ष की अवस्था का घोड़ा । जवान
घोड़ा । (चाबुक सवार)

नओढ़^(पु०)—सं० श्री० [मं० नवोडा] दे० 'नवोडा' ।

नकंद^(पु०)—सं० पु० [नक] एक प्रकार का बढ़िया चावल जो कागड़े
में होता है ।

नककटा^(पु०)—वि० [हि० नाक + कटना] [वि० श्री० नककटो] १. जिसकी
नाक कटी हो । २. जिसकी बहुत दुर्दशा हुई हो । ३. जिसकी
अप्रातिष्ठा या बदनामी हुई हो । ४. जिसके कारण अप्रतिष्ठा
हो । ५. निरंजनी देहया । पेशमं ।

नककटापंथ^(पु०)—सं० पु० [हि० नककटा + पंथ] एक कल्पित
पथ का नाम ।

विशेष—एक कहानी है कि एक बार किसी प्रकार एक आदमी
की नाक कट गई । तब उसने और लोगों की भी अपने ही
समान बनाने के उद्देश से लोगों से यह कहना आरंभ कर
दिया कि नाक के कट जाने के कारण ही गुप्ते ईश्वर के
दर्शन होने लगे हैं । उसकी बात पर विश्वास करके बहुत से
लोगों ने नाक कटा डाली । ईश्वर के दर्शन तो किसी को
न होते थे, पर नककटे होने के अपवाद से बचने और दूसरों
को भी अपने समान बनने के लिये वे उम पहले नककट की
बात का पूरा समर्थन करते थे । इसी कहानी के आधार पर
लोगों ने इस 'नककट पंथ' की कल्पना कर ली ।

नककटी^(पु०)—सं० श्री० [हि० नाक + कटना] १. नाक कटने की
क्रिया । २. दुर्दशा, ३. निंदा या बदनामी आदि ।

नकचिसनी^(पु०)—सं० श्री० [हि० नाक + चिसनी] १. नाक को जमीन
पर रगड़ना । जमीन पर नाक रगड़ने की क्रिया । २. बहुत
अधिक दीनता । आजीजी ।

नकचिपटा^(पु०)—वि० [हि० नाक + चिपटा] [वि० श्री० नकचिपटी]
बेड़ी नाकवाला ।

नकचढ़ा^(पु०)—वि० [हि० नाक + चढ़ना] [वि० श्री० नकचढ़ी]
बिड़बिड़ा । बहमिजाज ।

नकछिकनो^(पु०)—सं० श्री० [मं० छिकनो] एक प्रकार की घास
जिसकी पत्तियाँ सहीन सहीन और कटावदार होती हैं ।

विशेष—इसके फूल घुँडी के आकार के और गुलाबी होते हैं जिन्हें
सूँबने से छींक आने लगती है । वैद्यक में इसे चरपरी, कच्ची,

गरम, हविकारक, अग्निदीपक, पित्तकारक और वात, कफ, कृष्ट, कृमि, रक्तविकार और दृष्टिदोष का नाशक माना है।

पर्याय—क्षयकृन् । तीक्ष्ण । छिन्निका । घ्राणदुःखदा । उग्र । संवेदनापटु । उग्रगंधा । क्षयक । छिन्निकी ।

नकटा^२—संज्ञा पुं० [हि० नाक + कटा] [वि० ल्यो० नकटी] १. वह जिसकी नाक कट गई हो । २. एक प्रकार का गीत ।

विशेष—इसे स्त्रियाँ विशेष अवसरों पर और विशेषतः विवाह के समय गाती हैं ।

३. वह अवसर या उत्सव जब उक्त गीत गाया जाता है ।

४. एक प्रकार की चिड़िया ।

नकटा^३—वि० १. जिसकी नाक कटी हो । २. निर्जन्त । बेतम । बेहया । ३. अप्रतिष्ठित । जिसकी बहुत अप्रतिष्ठा या दुर्दशा हुई हो ।

नकटेसर—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का पौधा जो फूलों के जिधे लगाया जाता है ।

नकड़ा—संज्ञा पुं० [हि० नाक] बेलों का एक रोग ।

विशेष—इसमें उनकी नाक पूर जाती है और इसके कारण उन्हें सोम लेने में बहुत कठिनाई होती है ।

नकत^१—संज्ञा पुं० [म० नक्त] नक्तन्त । रात्रिकाल में किया जानेवाला व्रत । उ०—कतहु नक्त वतहु रोजा ।—कीर्ति०, पृ० ४२ ।

नक्तोड़—संज्ञा पुं० [हि० नाक + तोड़ना] कुण्ठी का एक पेंच ।

नक्तोड़ा—संज्ञा पुं० [हि० नाक + तोड़ (= गति)] अभिमानपूर्वक नाक भी चढ़ाकर नखरा करना अथवा कोई बात कहना ।

मुहा०—नक्तोड़े उठाना—अनुचित अभिमान सहना । नखरा बरदाश्त करना । नक्तोड़े तोड़ना—बहुत अधिक और अनुचित नखरा करना ।

नक्तोरा—संज्ञा पुं० [हि० नक्तोड़ा] दे० 'नक्तोड़ा' । उ०—'आवर्ष' में नहीं तम जक की मुहबत का दिमाग । किसको बरदाश्त है हर वक्त के नक्तोरा की ।—कविता की०, भा० ४, पृ० ६ ।

नकद^१—संज्ञा पुं० [म० नकद] तैयार रुपया । रुपया पैसा ; धन जो सिक्कों के रूप में हो । जैसे,—उनके पास नकद बहुत है ।

नकद^२—वि० १. (रुपया) जो तैयार हो । (धन) जो तुरंत काम में लाया जा सके । प्रस्तुत (द्रव्य) । जैसे,—हम नकद रुपया लेंगे कोई चीज नहीं लेंगे । २. लाल ।

नकद^३—क्रि० वि० तुरंत दिए हुए रुपए के बदले में । तुरंत रुपया पैसा देकर या लेकर । 'उधार' का उलटा । जैसे,—हमने सब मास नकद लिया है या बचा है ।

नकद^४—संज्ञा पुं० [हि० नगद] दे० 'नगद' ।

नकदाबा—संज्ञा पुं० [देश०] चने या मटर की दाल के साथ पकाई हुई बरी या कुम्हड़ीरी ।

नकदी—संज्ञा स्त्री० [म० नकद + प्रा० ई (प्रत्य०)] १. रोकड़ ।

धन । रुपया पैसा । सिक्का । २. जमई । वह धूमि जिसका लगान नकद रुपयों में लिया जाय ।

नकना^१—क्रि० म० [सं० लङ्घन हि० नाकना] १. उल्लंघन करना । लाँचना । डाँकना । फाँदना । उ०—(क) औरहु विविष जाति के बाजी नकत पवन की तेजी ।—रघुराज (शब्द०) । (ख) घारी नकी गिरिन की ठाढ़ी । देखी तहाँ भीमरा बाढ़ी ।—लाल (शब्द०) । २. चलना । उ०—मारहू ते सुकुमार नंद के कुमार ताहि घ्राए री मनावन सयान सब नकि के ।—केशव (शब्द०) ३. त्यागना । छोड़ना । तजना ।

नकना^२—क्रि० ध० [हि० नकियाना] नाक में दम होना । हैरान होना ।

नकन^१—क्रि० म० नाक में दम करना ।

नकन्यानाइ—क्रि० ध० [हि०] नाकों दम होना । परेशान होना ।

नकपोड़ा—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'नाक' ।

नकफूल—संज्ञा पुं० [हि० नाक + फूल] नाक में पहनने की लौंग या कील । उ०—तन मुख सारी लाही अंगिया प्रतलस प्रंतरोटा छवि चारि चारि चुरी पट्टीचीन पट्टीची भ्रमछि बनी नकफूल जेब मुख बारि चौका कोथे सप्रम भूली ।—स्वामी हरिदास (शब्द०) ।

नकब—संज्ञा स्त्री० [म० नकब] चोरी करने के लिये दीवार में किया हुआ वह बड़ा छेद जिससे से होकर चोर किसी कमरे या कोठरी आदि में घुसता है । संध ।

क्रि० प्र०—देना ।—मारना ।—लगाना ।

नकबजन—संज्ञा पुं० [म० नकब + प्रा० जन] वह जो चोरी करने के लिये दीवार में छेद करे । संध लगानेवाला ।

नकबजनी—संज्ञा स्त्री० [म० नकब + प्रा० जनी] संध लगाने की क्रिया ।

नकबानी^१—संज्ञा स्त्री० [हि० नाक + बानी ?] नाक में दम । हैरानी । उ०—जिनके भाल लिखी लिपि मेरो मुख की नहीं निशानी । तिन रंकन को नाक सँवारत हों आयो नकबानी ।—तुलसी (शब्द०) ।

क्रि० प्र०—घाना ।—करना ।—होना ।

नकबेसर—संज्ञा स्त्री० [हि० नाक + बेसर] नाक में पहनने की छोटी नख । बेसर । उ०—नकबेसर कनफूल बन्धो है छवि कापे कटि आवै लू ।—भारतेंदु प्र०, भा० २, पृ० ४४६ ।

नकमोनी—संज्ञा पुं० [हि० नाक + मोती] नाक में पहनने का मोती जिसे लटकन भी कहते हैं ।

नकल—संज्ञा स्त्री० [म० नकन] ? वह जो सच्चा, लाल या असल न हो बल्कि असल को देखकर रूप, रंग, प्राकृति आदि में उसी के अनुसार बनाया गया हो । वह जो किसी दूसरे के ढंग पर या उसकी तरह तैयार किया गया हो । अनुकृति । कापी । जैसे,—(क) वह मकान उस सामनेवाले की नकल है । (ख) इस नकल ने तो असल को भी मात कर दिया । २. एक के अनुरूप दूसरी वस्तु बनाने का कार्य । अनुकरण

क्रि० प्र०—उतारना ।—करना । बनाना ।—होना ।

३. लेख आदि की प्रतिलिपि । कापी । जैसे,—(क) इस गिनालेख की एक नकल हमारे पास भी आई है । (ख) इस दस्तावेज की नकल करा जो तो बड़ा काम हो ।

क्रि० प्र० उतारना ।—करना ।—होना ।—होना ।

४. किसी के वेश, हाव भाव या बातचीत आदि का पूरा पूरा अनुकरण । स्वीम । जैसे,—(क) वह उनकी मूव नकल उतारता है ; (ख) कल महफिल में महिलाओं ने नवाब साहब की एक बहुत अच्छी नकल की थी ।

क्रि० प्र० उतारना । उतारना ।—करना ।—बनना ।—होना ।

५. अद्भुत और दृश्यजनक प्राकृति । जैसे,—घाज तो घाव बिलकुल नकल बनकर आया है । उ०—नकल है कोई शयन घरे सून उने शहर की घाया तमाशा देखने ।—दक्खिनी०, पृ० ३६१ । ६. दृश्य रच को कोई छोटी मोटी कहानी या बात चीत । नुटकुरा ।

नकलची—वि० [हि० नकल + ची (प्रत्य०)] नकल करनेवाला ।

नकलनवीस—संज्ञा पुं० [प्र० नकल + फा० नवीस] वह आदमी, विशेषतः अश्लील या अशर आदि का मुहुरिर जिसका काम केवल दूसरे के लेखों की नकल करना होता है ।

नकलनवीसी—संज्ञा स्त्री० [प्र० नकल + फा० नवीसी] १. नकल-नवीस का काम । २. नकलनवीस का पद ।

नकलनोर—संज्ञा पुं० [प्र०] एक प्रकार की बिड़िया जिसे मुनिया भी कहते हैं । विशेष—दे० 'मुनिया' ।

नकलपरवाना—संज्ञा पुं० [प्र० नकल + फा० परवाना] पत्नी का भाई । साना । (हाथ) ।

नकलबंदी—संज्ञा स्त्री० [हि० नकल + बंदी] दानियों या दूकानों की वह बंदी या कापी आदि जिसमें गंजी जानेवाली चिट्ठियों की नकल रहती है ।

नकली—वि० [प्र० नकल + फा० ई (प्रत्य०)] १. जो नकल करके बनाया गया हो । जो असली न हो । कृत्रिम । बनावटी । जैसे, नकली हीरा, नकली कसर, नकली बड़ी ।

विशेष—नकली पीज प्रजा: निकषो और निरुष्ट सश्रमो जानी है और लोगो ने इत्यादि आदर नहीं होता ।

२. जो असली न हो । गाला । जानी । झूठा । जैसे,—नकली दस्तावेज बनाने के कारण मे उसको डाँ बरम की सजा हो गई ।

नकलेल—संज्ञा स्त्री० [हि० नाक + ल (प्रत्य०)] १. नाक धींचने के लिये मोहरने में लगी हुई नह रस्मी जो घोर सब रस्सियों से घासे रहती है । २. दे० 'नकेल' ।

नकलोर्जा—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'नकलनोर' ।

नकलोर्जा—वि० [हि०] १. भद्दी या बेडोल नाकवाला । बेवकूफ ।

नकवानो(पुं०)—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'नकबानी' । उ०—भरि भरि सुँडनि डारत पानी डारत मोहि भरत नकबानी ।—नंद० पं०, पृ० १६७ ।

नकवाँ—संज्ञा पुं० [हि०] १. नया झंझुर । कलजा । २. सूई का वह छेद जिसमें तागा पिरोया जाता है । नाका । ३. तगाजू की डंडी का वह छेद जिसमें पलड़े की रस्सियाँ पिरोकर बांधी जाती है ।

नकबानी(पुं०)—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'नकबानी' ।

नकश—संज्ञा पुं० [प्र० नकश] १. दे० 'नक्शा' ।

विशेष—नकश क योगिक शब्दों के लिये दे० 'नक्श' के योगिक । २. एक प्रकार का लूपा जो दो या अधिक आदमी ताश के पत्तों से खेलते हैं ।

विशेष—इसमें सब खिलाड़ियों को पहले एक एक पत्ता बाँट दिया जाता है और तब एक एक खिलाड़ी को अलग अलग उसके भागने पर और पत्ते दिए जाते हैं । इसमें पत्तों की वृष्टियों को गिनकर हार जीत होती है ।

नकशमार—संज्ञा पुं० [प्र० नकश + हि० मारना] नकश नामक लूपा जो ताश के पत्ता से खेला जाता है । विशेष—दे० 'नकश' ।

नकशा—संज्ञा पुं० [प्र० नकश + फा०] दे० 'नक्शा' ।

नकशानवीस—संज्ञा पुं० [प्र० नकश + फा० नवीस] दे० 'नकशानवीस' ।

नकशी—वि० [प्र० नकश + फा० ई (प्रत्य०)] दे० 'नक्शी' ।

नकशीमेंना—संज्ञा स्त्री० [हि० नकशा + मैना] तेलिया नाम की एक प्रकार की मैना ।

नकशोनिगार(पुं०)—संज्ञा पुं० [प्र० नकश + फा० निगार] १. फूँवपत्ती । बेलबूटा । २. मूर्ति । प्रतिमा । प्राकृति । उ०—हरमानी मतन में न बडर नकशोनिगार ।—कबोर पं०, पृ० ३६० ।

नकसमार—संज्ञा पुं० [हि० नकशमार] दे० 'नकशमार' ।

नकसाँ—संज्ञा पुं० [हि० नकशा] दे० 'नक्शा' ।

नकसिका—संज्ञा पुं० [सं० नक्षत्रिक] दे० 'नक्षत्रिक' । उ०—हुनूर नकसिक में कितनी दुस्त है ।—फिसाना०, भा० ३, पृ० ५ ।

नकसीर—संज्ञा स्त्री० [हि० नाक + म० क्षीर (= जल)] घावसे घाव नाक से रक्त बहना जो प्रायः गरमी के दिनों में होता है ।

विशेष—वेद्यक में इसे रक्तपित्त रोग के अंतर्गत माना है । रक्तपित्त में मुँह नाक, धोख, कान, गुदा और योनि या निच से रक्त बहता है । यदि यह रक्त अधिक मात्रा में बहे तो मनुष्य थोड़ी ही देर में मर भी सकता है । अधिक घ्राण या घूप लगने, रास्ता चलने और शोक, व्यायाम या मैथुन करने से भिन्न भिन्न मार्गों से रक्त बहने लगता है । रक्तियों का रज रुक जाने से भी यह रोग हो जाता है । विशेष—दे० 'रक्तपित्त' ।

क्रि० प्र०—फूटना ।

मुहा०—नकसीर भी न फूटना = कुछ भी हानि न पहुँचना । जरा भी तकलीफ या नुकसान न होना ।

नकाना(पुं०)—क्रि० प्र० [हि० नकियाना] नाक में दम होना । बहुत परेशान होना । उ०—तर्ह पाडो इक मोषट आयो । इक करि चंपत राव नकायो—सास (बब्ब०) ।

नकाना^१—क्रि० स० [हि० नकियाना] नाक में दम करना । बहुत परेशान करना ।

नकाब—संज्ञा स्त्री० पुं० [अ० नकाब] १. महीन रंगीन कपड़े या जाली का वह टुकड़ा जो मुँह छिपाने के लिये सिर पर से गले तक डाल लिया जाता है ।

विशेष—इसका व्यवहार प्रायः अरब देश की स्त्रियों में और उनके संसर्ग से युरोप की स्त्रियों में भी होता है । मुसलमान स्त्रियाँ धरना चेहरा छिपाने के उद्देश्य से इसका व्यवहार करती हैं, पर युरोपियन स्त्रियाँ धूल और कीड़ी पतंगों आदि से बचने तथा शोभा बढ़ाने के लिये करती हैं । प्राचीन काल में कहीं कहीं आवश्यकता पड़ने पर पुरुष भी इसका व्यवहार करते थे ।

क्रि० प्र०—उठाना ।—डालना ।

मुहा०—नकाब उलटना = चेहरे पर से नकाब हटाना ।

यौ०—नकाबपोष जिसके चेहरे पर नकाब हो । जो चेहरे पर नकाब डाले हो ।

२. साड़ी या चादर का वह भाग जिससे स्त्रियों का मुँह ढँका रहता है । घूँघट ।

क्रि० प्र०—उठाना ।—डालना ।

मुहा०—नकाब उलटना = मुँह पर से घूँघट हटाना ।

नकार—संज्ञा पुं० [सं०] न या नहीं का बोधक शब्द या वाक्य । नहीं । २. इनकार । अस्वीकृति । ३. 'न' शब्द ।

नकारची—संज्ञा पुं० [हि० नकारची] ३० 'नकासी' ।

नकारना—क्रि० अ० [हि० नकार + ना (प्रत्य०)] इनकार करना । अस्वीकृत करना ।

नकारा^१—वि० [प्रा० नाकार] खराब । बुरा । निरम्मा । जो किसी काम का न हो ।

नकारा^२—संज्ञा पुं० [हि० नकारा] ३० 'नकारा' । उ०—मुसाफिर उठ दुभे चलना है मंजिल । बजे है कृष्ण का हृदय नकारा ।—कविता को०, भा० ४, पृ० ४१ ।

नकारात्मक—वि० [सं०] अस्वीकार्य । जो न मानने योग्य हो ।

नकारात्मकता—संज्ञा स्त्री० [सं०] नकार । अस्वीकार ।

नकाश—संज्ञा पुं० [हि० नक्काश] ३० 'नक्काश' ।

नकाशना^१—क्रि० स० [हि० नकाश से नाभिक घातु] किसी पदार्थ पर बेल बूटे आदि बनाना । घातु, पत्थर आदि पर मोदकर चित्र फूल पत्ती आदि बनाना ।

नकाशा—संज्ञा स्त्री० [हि० नक्काशी] ३० 'नक्काशी' ।

नकाशीदार—वि० [अ० नक्काशी + फा० दार] जिसपर नक्काशी हो । बेल बूटेदार ।

नकास^१—संज्ञा पुं० [हि० नक्काश] ३० 'नक्काश' ।

नकास^२—संज्ञा पुं० [हि० नक्कास] ३० 'नक्कास' ।

नकासना—क्रि० स० [हि० नक्कासना] ३० 'नक्कासना' ।

• नकासी—संज्ञा स्त्री० [हि० नक्कासी] ३० 'नक्कासी' । उ०—रचित

प्रभा सी भासी अबलि मकानन की जिनमें अकासी फनै रतन नकासी है ।—भारतेंदु ग्रं०, भा० १, पृ० २८१ ।

नकासीदार—वि० [हि० नकाशीदार] ३० 'नकाशीदार' ।

नकिंचन—वि० [सं० नकिञ्चन] जिसके पास कुछ न हो । अकिंचन । अत्यन्त दरिद्र [को०] ।

नकियाना^१—क्रि० अ० [हि० नाक + आना (प्रत्य०)] १. नाक से बोलना । शब्दों का अनुनासिकवत् उच्चारण करना । २. नाक में दम आना । बहुत दुःखों या हैरात होना । उ०—हाय बुढ़ापा तुम्हरे मारे हम तो अब नकियाय गयन । करत परत कछु बनतै नाहिन कही जान प्रह कैसे करन ।—प्रतापना-रायण (शब्द०) ।

नकियाना^२—क्रि० स० नाक में दम करना । बहुत परेशान या तंग करना ।

नकीब—संज्ञा पुं० [अ० नकीब] १. वह आदमी जो राजाओं आदि के आगे उनके तथा उनके पूर्वजों के यश का गान करता हुआ चलता है । चारण । बदीजन । भाट ।

विशेष—बादशाहों या नवाबों के यहाँ के नकीब केवल सयारी के आगे विददावली का बखान करते ही नहीं चलते, बल्कि किसी को उपाधि या पद आदि मिलने के समय अथवा किसी बड़े पदाधिकारी के दरबार में आने के पूर्व उनकी घोषणा भी करते हैं ।

२. कड़वा गानेवाला पुरुष । कड़वेत ।

नकुल—संज्ञा पुं० [सं०] मदार का पेड़ ।

नकुट—संज्ञा पुं० [सं०] नाक ।

नकुनियाँ^१—संज्ञा स्त्री० [हि०] तराजू की डंडी के दोनों सिरों । उ०—धाट बाट मोघ लेइ सम रहै नकुनियाँ । बिसरे ना मुरति बाहि फेरि होय तानियाँ ।—मनु०, पृ० २५ ।

नकुरा^१—संज्ञा पुं० [हि० नाक + उरा (प्रत्य०)] नाक । नासिका ।

नकुल^१—संज्ञा पुं० [सं०] १. नेवला नाम का प्रसिद्ध जंतु । विशेष दे० 'नेवला' । २. पांडु राजा के चौथे पुत्र का नाम जो अश्विनीकुमार द्वारा माद्री के गर्भ से उत्पन्न हुए थे ।

विशेष—महाभारत में लिखा है कि जिस समय पांडु बाप के कारण अपनी दोनों स्त्रियों की साथ लेकर वन में रहते थे उस समय जब कुंती को तीन लड़के हुए तब माद्री ने पांडु से पुत्र के लिये कहा था । उस समय कुंती ने माद्री से कहा कि तुम किसी देवता का स्मरण करो । इसपर माद्री ने अश्विनीकुमार का स्मरण किया जिससे दो बालक हुए । उनमें से बड़े का नाम नकुल और छोटे का सहदेव था । नकुल बहुत ही सुंदर थे और नीति, धर्मशास्त्र तथा युद्धविद्या में बड़े पारंगत थे । पशुओं की चिकित्सा की विद्या भी इन्हें ज्ञात थी । अज्ञातवास के समय जब पांडव विराट के यहाँ रहते थे तब नकुल का नाम तांत्राल था और ये गोएँ चराने का काम करते थे । युधिष्ठिर ने जब राजसूय यज्ञ किया था तब इन्होंने पश्चिम की ओर जाकर महेत्थ और पंचनद

प्रादि देशों को परास्त किया था, और तदुपरान्त द्वारका में दूत भेजकर वामदेव से भी युधिष्ठिर की अधीनता स्वीकृत कराई थी। इनका विवाह जेदिराज की कन्या करेणुमती से हुआ था जिसके गर्भ से निरगिन नामक एक पुत्र भी हुआ था।

३. बेटा। पुत्र। ४. शिव। महादेव। ५. प्राचीन काल का एक प्रकार का बाजा। ६. वह जो नीच कुल में उत्पन्न हुआ हो (को०)।

नकुल'—[१०] १. जिसका कोई कुल न हो। कुल-हित। २. नीच कुल में उत्पन्न (को०)।

नकुल'—संज्ञा पुं० [अ० नकुल (= चाट)] वह जो दोपहर के समय पुर प्रादि खलानेवालों को पीने के लिये दिया जाता है।

नकुलकंद—संज्ञा पुं० [सं० नकुलकंद] गंधनाकुली वा रास्ना नामक कंद।

नकुलक—संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन काल का एक प्रकार का गहना। २. उपया प्रादि रखने की एक प्रकार की थेली।

नकुलनेल—संज्ञा पुं० [सं०] देवक में एक प्रकार का तेल।

विशेष—यह नेवले के मांस में बहुत सी दूगरी ओषधियाँ मिलाकर बनाया जाता है। इसका व्यवहार पान, अग्र्यंग और वस्त्रिक्रिया में होता है। देवक के अनुसार इससे घामवात, शरीर के सब अंगों का कंप और कमर, पीठ, जाँघ प्रादि का वात का द्रव्य दूर होता है।

नकुलांधता—संज्ञा स्त्री० [सं० नकुलांधता] दे० 'नकुलांध रोग'।

नकुलांध रोग—संज्ञा पुं० [सं० नकुलांध रोग] शुभ्र के अनुसार घ्राय का एक रोग।

विशेष—इसमें घ्राय नेवले की घ्रायों की तरह चमकते लगती हैं और जो रंग बिरंगी दिखाई देने लगती हैं। इस रोग में पित्तवर्धक पदार्थों का सेवन करण मना है।

नकुला—संज्ञा स्त्री० [सं०] पावनी।

नकुला'—संज्ञा पुं० [सं० नकुल] दे० 'नेवला'।

नकुला'—संज्ञा पुं० [हि०] वह जिसका कुल से संबंध न हो। अज। अजगता। ज०—नमो निरालं नमो नकुला नमो नित्य नरायणम्। तमो अमर नमो अमर नमो जीव परावनम्।—राम० धर्म०, पृ० ११।

नकुलाह्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] गंधनाकुली। नकुलकंद।

नकुली—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. जगामागी। २. केसर। ३. तंजिनी। ४. नेवले की भाँसा।

नकुलीश—संज्ञा पुं० [सं०] तांत्रिकों के एक धेरन का नाम।

नकुलीश पाशुपतदर्शन—संज्ञा पुं० [सं०] एक दर्शन जिसका उत्प्रेक्ष सर्वदर्शनसंग्रह में है।

विशेष—इसका कोई ग्रंथ नहीं मिलता। इसमें शिव ही परमेश्वर और सब प्राणी उनके पशु माने गए हैं। जीवों के अधीन होने के कारण महादेव पशुपति कहलाते हैं। इस दर्शन में मुक्ति दो प्रकार की नहीं गई है—अर्थात् दुःखनिवृत्ति और परमेश्वरप्राप्ति। दृक्शक्ति और क्रियाशक्ति के भेद से परमेश्वर

प्राप्ति भी दो प्रकार की होती है। दृक्शक्ति वा ज्ञान द्वारा पदार्थ ज्ञानपथ में आते हैं और क्रियाशक्ति द्वारा वे संपन्न होते हैं।

नकुलेश—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'नकुलीश'।

नकुलेष्टा—संज्ञा स्त्री० [सं०] रास्ना। रायमन।

नकुलीष्टी—संज्ञा स्त्री० [सं०] प्राचीन काल का एक प्रकार का बाजा जो तारों में बजाया जाता था।

नकुवा'—संज्ञा पुं० [हि० नाक + उवा (प्रत्य०)] १. नाक। २. तराजू की डंडा का मुगल।

नकेल—संज्ञा स्त्री० [हि० नाक + ल (प्रत्य०)] १. ऊँट की नाक में बंधी हुई रस्मी जो लगाम का काम देती है और जिसके सहारे ऊँट चलाया जाता है। मुहार।

मुहा०—किसी की नकेल हाथ में होना—किसी पर सब प्रकार का अधिकार होना। किसी से बलपूर्वक मनमाना काम करा लेने की शक्ति होना। जैसे,—उनकी चिता मत कीजिए, उनकी नकेल तो हमारे हाथ में है।

२. भात की नाक में पड़नाई हुई रस्मी।

नक्का'—संज्ञा पुं० [हि० नाक] सूई का वह छेद जिसमें डोरा पहनाया जाता है। सूई में डोरा पिरोने का छेद। नाका।

नक्का'—संज्ञा पुं० १. नाश के पत्तों में का एक्का। २. दे० 'नक्की' और 'नक्कीमुठ'। ३. कीड़ी।

नक्का दूआ—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'नक्कीमुठ'।

नक्कारा—संज्ञा पुं० [सं०] अजगता। अजगता। अजगलता।

नक्कारस्थाना—संज्ञा पुं० [अ० नक्कार + स्थाना] वह स्थान जहाँ पर नक्कारा बजता है। नीबन बजने का स्थान। नीबतस्थान।

विशेष—ऐसा स्थान प्रायः बड़े बड़े मकानों में बाहर के दरवाजे के ठीक ऊपर बना रहता है।

मुहा०—नक्कारवाने में तूती की प्राबाज कीन सुनता है—(१) बहुत भोड़ भाड़ या शोर गुल में कहीं हुई बात नहीं सुनाई पड़ती। (२) बड़े बड़े लोगों के सामने छोटे आदमियों की बात कोई नहीं सुनता।

नक्कारची—संज्ञा पुं० [अ० नक्कार + ची (प्रत्य०)] नगाड़ा बजानेवाला। वह जो नक्कारा बजाता हो।

नक्कारा—संज्ञा पुं० [अ० नक्कार + ह] डगडुगी या बाएँ की तरफ का एक बहुत बड़ा बाजा जिसमें एक बहुत बड़े तूँड़े के ऊपर चमड़ा मड़ा रहता है। नगाड़ा। डका। नीबत। दुदुमी।

विशेष—इसके साथ में इसी प्रकार का पर इससे बहुत छोटा एक और बाजा होता है। इन दोनों को अभिने सामने रखकर लकड़ों के दो दंड़ों से, जिन्हें नीब कहते हैं, बजाते हैं।

मुहा०—नक्कारा बजाते फिरना—डगडुगी पीटते फिरना। चारों ओर प्रकट करते फिरना। नक्कारा बजा के—खुल्लमखुल्ला। डंके की चोट। नक्कारा हो जाना—खुलकर बहुत बढ़ना। बहुत फुलना।

नक्काल—संज्ञा पुं० [घ० नक्काल] १. अनुकरण करनेवाला । नकल करनेवाला । २. मॉड । ३. बहुकविता ।

नक्काली—संज्ञा स्त्री० [घ० नक्काली] नकल करने का काम । नकल करने की क्रिया या विद्या । २. मॉड का काम या विद्या । बहुकवि का काम या विद्या ।

नक्काश—संज्ञा पुं० [घ० नक्काश] नक्काशी का कारीगर । वह जो खोदकर बेल बूटे आदि बनाता हो ।

नक्काशी—संज्ञा स्त्री० [घ० नक्काशी] १. धातु या पत्थर आदि पर खोदकर बेल बूटे आदि बनाने का काम या विद्या । २. वे बेल बूटे आदि जो इस प्रकार खोदकर बनाए गए हों ।

नक्काशीदार—वि० [घ० नक्काशी + फा० दार (प्रत्य०)] जिसपर खोदकर बेल बूटे बनाए गए हों ।

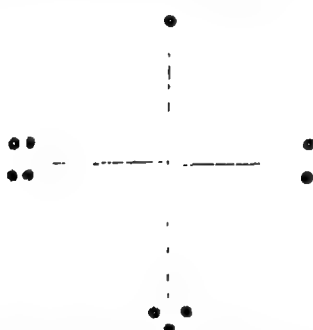
नक्की—संज्ञा स्त्री० [हि० एक] १. नक्कीमूठ खेल में 'एक' का दांव (दे० 'नक्कीमूठ') । ताश के पत्तों में का एक्का । (कब०) । ३. जूए के किसी खेल में वह दांव जिसके लिये 'एक' का चिह्न नियत हो अथवा जिसकी जीत किसी प्रकार के 'एक' चिह्न के पाने से हो ।

नक्की—वि० [हि० एक] १. ठीक । दुस्त । २. पक्का । ३. पुरा । ४. चुकाया हुआ । चुकता । सफा (हिसाब) ।

नक्कीपूर—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'नक्कीमूठ' ।

नक्कीमूठ—संज्ञा स्त्री० [हि० नक्की + मूठ (=मुट्टी)] जूए का एक खेल जो प्रायः स्त्रियाँ और बालक कोड़ियों से खेलते हैं । नक्कीपूर ।

विशेष—इस खेल में एक दूसरी को काटती हुई दो तीथी लकीरें खींचते हैं और उनके चारों तिरों में से एक तिर पर एक बिंदी, दूसरे पर दो, तीसरे पर तीन और चौथे पर चार बिंदियाँ बना दी जाती हैं । इनको क्रमशः नक्की, दूधा, तीया और पूर कहते हैं । इसमें दो से चार तक खिलाड़ी होते हैं जो एक एक दांव ले लेते हैं । एक खिलाड़ी अपनी मुट्टी में कुछ



कोड़ियाँ लेकर अपने दांव पर मुट्टी रख देता है । तब बाकी खिलाड़ी अपने अपने दांव पर कुछ कोड़ियाँ लगाते हैं । इसके उपरांत वह पहना खिलाड़ी अपनी मुट्टी की कोड़ियाँ गिनकर चार का भाग देता है । जब भाग देने पर १ कोड़ी बचे तो नक्कीवाले की, २ बचें तो दूधवाले की, ३ बचें तो तीयावाले की और कुछ भी न बचे तो पूरवाले की जीत होती है ।

जिसकी जीत होती है दूसरी बार वही मूठ खाता है । यदि मूठ खानेवाले का दांव खाता है तो वह दांव पर रखी हुई सबकी कोड़ियाँ जीत लेता है, नहीं तो जिसकी जीत होती है उसको उसे उसी ही कोड़ियाँ देनी पड़ती हैं जितनी उसने दांव पर लगाई हों ।

नक्कू—वि० [हि० नाक] १. बड़ी नाकवाला । जिसकी नाक बड़ी हो । अपने आपकी बहुत प्रतिष्ठित समझनेवाला । जैसे,—यह भी बड़े नक्कू बनते हैं । (बोलचाल) । २. जिसके आचरण आदि सब लोगों के आचरण के विपरीत हों । सबसे भलग और उसटा काम करनेवाला, जो प्रायः बुरा समझा जाता है । जैसे,—हमें क्या गरज पड़ी है जो हम नक्कू बनने जायें ।

नक्ख(पुं०)—संज्ञा स्त्री० [हि० नाक] दे० 'नाक' । उ०—नपुंसक बालक बुढ़ सु दीन । धरे मुख नक्ख सुबैन सहीन । —ह० रासो, पृ० ८ ।

नक्त'चर'—संज्ञा पुं० [सं० नक्तचर] [स्त्री० नक्त'चरी] १. गुग्गुलु । गुग्गुलु । २. राक्षस । ३. चोर । ४. बिल्ली । ५. उल्लू ।

नक्त'चर'—वि० रात के समय विचरण करनेवाला ।

नक्त'चरी—वि० [सं० नक्तचरी] राक्षसी ।

नक्त'चर्या—संज्ञा स्त्री० [सं० नक्तचर्या] रात का विचरण [स्त्री०] ।

नक्त'चारी—वि० पुं० [सं० नक्तचारिन्] [स्त्री० नक्तचारिणी] दे० 'नक्तचारी' ।

नक्त'जात—संज्ञा पुं० [सं० नक्तजात] बहुत प्राचीन काल की एक प्रकार की घोषधि जिसका उल्लेख वेदों में है ।

नक्त'दिन—अव्य० [सं० नक्तदिन] रात दिन ।

नक्त'दिव—अव्य० [सं० नक्तदिव] दे० 'नक्तदिन' ।

नक्त'—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह समय जब दिन केवल एक मुहूर्त ही रह गया हो । बिल्कुल संध्या का समय । २. रात । रात्रि । ३. एक प्रकार का व्रत जो अगहन महीने के शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा को किया जाता है ।

विशेष—इसमें दिन के समय बिल्कुल भोजन नहीं किया जाता; केवल रात को तारे देखकर भोजन किया जाता है । किसी किसी के मत से इस व्रत में ठीक संध्या के समय, जब दिन केवल मुहूर्त भर रह गया हो, भोजन करना चाहिए । यह व्रत प्रायः यति और विधवाएँ करती हैं । इस व्रत में रात के समय विष्णु की पूजा भी की जाती है ।

४. शिव । ५. राधा पुत्र के पुत्र का नाम ।

नक्त'—वि० लज्जित । जो शरमा गया हो ।

नक्तक—संज्ञा पुं० [सं०] १. मंला या गंडा कपड़ा । २. जीरुं कीरुं वस्त्र [स्त्री०] ।

नक्तचर—संज्ञा पुं० [सं०] १. रात को घूमनेवाला । २. महादेव । शिव । ३. राक्षस । ४. उल्लू ।

नक्तचारी—संज्ञा पुं० [सं० नक्तचारिन्] [स्त्री० नक्तचारिणी] १. बिल्ली । २. उल्लू ।

नक्शचारी—वि० [वि० स्त्री० नक्शचारिणी] रात के समय विचरण करनेवाला ।

नक्शभोजी—वि० [नक्शभोजिन्] १. रात को भोजन करनेवाला । २. नक्श नामक व्रत करनेवाला ।

नक्शमाल—संज्ञा पुं० [मं०] करंज वृक्ष । कंजे का पेड़ ।

नक्शमुखी—संज्ञा स्त्री० [मं०] रात ।

नक्शव्रत—संज्ञा पुं० [मं०] दे० 'नक्श' ।

नक्शाय—संज्ञा पुं० [मं० नक्शाय] वह जिसे रात को दिखाई न दे । वह जिसे रतीथी होती हो ।

नक्शाय—संज्ञा पुं० [मं० नक्शाय] आँख का वह रोग जिसमें रात के समय कुछ भी दिखाई नहीं देता । रतीथी ।

नक्शा—संज्ञा स्त्री० [मं०] १. कनिषारी नामक विषैला पीपल । २. हलदी । ३. रात ।

नक्शाह—संज्ञा पुं० [मं०] करंज वृक्ष । कंजा ।

नक्कि—संज्ञा स्त्री० [मं०] रात ।

नक्द—संज्ञा पुं० [मं० नक्द] दे० 'नक्द' । उ०—छोड़ते कब हैं नक्द दिन को मनम । अब य करते हैं प्यार की बानें ।—कविता को०, भा० ४, पृ० २४ ।

नक्क—संज्ञा पुं० [मं०] १. नाक नामक जलजंतु । २. शगर नामक जलजंतु । ३. घड़ियाल या तुंगीर नामक जलजंतु । ४. नाक । ५. पताब । भरेठ (को०) । ६. युद्धिक राशि (को०) । ७. चौबट की छायरी लकड़ी (को०) ।

नक्ककेतन—संज्ञा पुं० [मं०] दे० 'मक्ककेतन' (को०) ।

नक्कराज—संज्ञा पुं० [मं०] १. घड़ियाल । २. पत्थर । ३. नाक नामक जलजंतु ।

नक्कहारक—संज्ञा पुं० [मं०] बहुत बड़ा जलजंतु । नाक ।

नक्का—संज्ञा स्त्री० [मं०] १. नाक । नासिका । २. भोरों या भिड़ का मुँह (को०) ।

नक्कल—संज्ञा स्त्री० [मं० नक्कल] दे० 'नक्कल' ।

नक्कलनवीस—संज्ञा पुं० [मं० नक्कल + फ़ा० नवीस] दे० 'नक्कलनवीस' ।

नक्कलनवीसी—संज्ञा स्त्री० [मं० नक्कल + फ़ा० नवीसी] दे० 'नक्कलनवीसी' ।

नक्कलपरवाना—संज्ञा पुं० [मं० नक्कल + फ़ा० परवाना] दे० 'नक्कल परवाना' ।

नक्कलबही—संज्ञा स्त्री० [मं० नक्कल + हि० बही] दे० 'नक्कलबही' ।

नक्शा—वि० [मं० नक्शा] जो प्रकित या चित्रित किया गया हो । सीखा, बनाया या लिखा हुआ ।

मुहा०—मन में नक्शा करना या कराना—किसी के मन में कोई बात अच्छी तरह बैठना या बैठना । किसी बात का निश्चय करना या कराना । जैसे,—हमने यह बात उनके मन में नक्शा करा दी है । नक्शा होना—किसी बात का अच्छी तरह मन में जम जाना । पूर्ण निश्चय हो जाना ।

नक्शा—संज्ञा पुं० १. तसवीर । चित्र । २. छोटकर या कलम से बनाया हुआ रेखाचित्र या फूलपत्ती आदि का काम ।

थी०—नक्शनिगार ।

३. मोहर । छाप ।

मुहा०—नक्शा बैठाना—अच्छी तरह अधिकार जमाना । रंग जमाना । नक्शा बिगाड़ना—अधिकार या प्रभाव न रह जाना । रंग उखड़ना ।

४. मारणी या कोष्ठक के रूप में बना हुआ यंत्र । ताबीज ।

विशेष—यह अनेक प्रकार के रोगों आदि को दूर करने के लिये कागज भोजपत्र आदि पर लिखकर बहि या गले आदि में पहनाया जाता है ।

५. जादू । टोना । ६. एक प्रकार का गाना जो प्रायः कबाल गाय करते हैं । ७. एक प्रकार का ताश का जूमा । दे० 'नक्शा' । ८. सिक्का (को०) । ९. प्रभाव । असर (को०) । १०. चरणचिह्न (को०) ।

नक्शादार—वि० [मं० नक्शा + फ़ा० दार (प्रत्य०)] जिसपर नक्शा हो (को०) ।

नक्शनिगार—संज्ञा पुं० [फ़ा० नक्शा व निगार] बनाए हुए बेल बूटे आदि । नकाशी ।

नक्शबंद—संज्ञा पुं० [मं० नक्शा + फ़ा० बंद] नक्शा या चित्र बनानेवाला व्यक्ति (को०) ।

नक्शबंदी—संज्ञा स्त्री० [मं० नक्शा + फ़ा० बंद] नक्शा या चित्र बनाने का काम (को०) ।

नक्शमार—संज्ञा पुं० [मं० नक्शा + हि० मार] दे० 'नक्शमार' ।

नक्शा—संज्ञा पुं० [मं० नक्शा] १. चित्र । प्रतिमूर्ति । तसवीर । रेखाओं द्वारा आकार आदि का निर्देश ।

क्रि० प्र०—उतारना ।—सींचना ।—बनाना ।

मुहा०—(आँखों के सामने) नक्शा लिख जाना—किसी के सामने न रहने पर भी उसके रूप रंग आदि का ठोक ठोक ध्यान हो जाना ।

२. बनावट । आकृति । शक्ल । ढाँचा । गठन । जैसे,—उनका रंग चाहे जैसा हो, पर नक्शा अच्छा है । ३. किसी पदार्थ का स्वरूप । आकृति । जैसे,—तुमने खूब महीने में ही इस मकान का सारा नक्शा बिगाड़ दिया । ४. चाल ढाल । तरज । ढंग । ५. अवस्था । दशा । हाल । जैसे,—(क) आजकल उनका कुछ धीर हो नक्शा है । (ख) एक ही मुकदमे ने उनका सारा नक्शा बिगाड़ दिया । ६. ढाँचा । ठप्पा ।

मुहा०—नक्शा जमाना—बहुत अधिक प्रभाव होना । खूब चलती होना । जैसे,—आजकल शहर के रस्सों में उनका नक्शा भी खूब जमा हुआ है । नक्शा जमाना—खूब प्रभाव डालना । रंग बाँधना । नक्शा तेज होना—दे० 'नक्शा जमाना' ।

७. किसी घरातल पर बना हुआ वह चित्र जिसमें पृथिवी या खगोल का कोई भाग अपनी स्थिति के अनुसार अवस्था और किसी विचार से चित्रित हो ।

विशेष—साधारणतः पृथिवी या उसके किसी भाग का जो नक्शा

होता है उसमें यथास्थान देश, प्रदेश, पर्वत, समुद्र, नदिघाँ, झीलें और नगर आदि दिखलाए जाते हैं। कभी कभी इस बात का ज्ञान कराने के लिये कि अमुक देश में कितना पानी बरसता है, या कौन कौन से अन्न आदि उत्पन्न होते हैं अथवा इसी प्रकार की किसी और बात के लिये नक्षत्रों में भिन्न भिन्न स्थानों पर भिन्न भिन्न रंग भी भर दिए जाते हैं। कभी कभी ऐसे नक्षत्रों भी बनाए जाते हैं जिनमें केवल रेल लाइनें, नहरें अथवा इसी प्रकार की और चीजें दिखलाई जाती हैं। महा-द्वीपों आदि के प्रतिरिक्त छोटे छोटे प्रदेशों और यहाँ तक कि जिलों, तहसीलों और गाँवों तक के नक्षत्रों भी बनते हैं। शहरों या गाँवों आदि के भिन्न भिन्न भागों के ऐसे नक्षत्रों भी बनते हैं जिनमें यह दिखलाया जाता है कि किस गली या किस सड़क पर कौन कौन से मकान, खंडहर, अस्तबल या कुएँ आदि हैं। इसी प्रकार खेतों और जमीन आदि के भी नक्षत्र होते हैं जिनसे यह जाना जाता है कि कौन सा खेत कहाँ है और उसकी आकृति कैसी है। खगोल के चित्रों में इसी प्रकार यह दिखलाया जाता है कि कौन सा तारा किस स्थान पर है।

क्रि० प्र०—खीचना।—बनाना।

नक्षत्रानवोस - संज्ञा पु० [अ० नक्षत्र + फा० नवीसह] किसी प्रकार का नक्शा लिखने या बनानेवाला।

नक्षत्रानवोसी - संज्ञा स्त्री० [अ० नक्षत्र + फा० नवीसी] नक्शा बनाने का काम।

नक्षत्री - वि० [अ० नक्षत्र + फा० ई (प्रत्य०)] जिसपर बेल-जूटे बने हों।

नक्षत्रीनिगार - संज्ञा स्त्री० [अ० नक्षत्र + फा० व + निगार] दे० 'नक्षत्रनिगार'। उ०—मोर भाया बाद अनी आपुस सवार। जिसके हृद एक पर में कई नक्षत्रीनिगार।—दक्खिनी०, पृ० १७५।

नक्षत्र - संज्ञा पु० [सं०] १ चंद्रमा के पथ में पड़नेवाले तारों का वह समूह या गुच्छ जिसका पहचान के लिये आकार निर्दिष्ट करके कोई नाम रखा गया हो।

विशेष—इन तारों को ग्रहों से भिन्न समझना चाहिए जो सूर्य की परिक्रमा करते हैं और हमारे इस सौर जगत् के अंतर्गत हैं। ये तारे हमारे सौर जगत् के भीतर नहीं हैं। ये सूर्य से बहुत दूर हैं और सूर्य की परिक्रमा न करने के कारण स्थिर जान पड़ते हैं—अर्थात् एक तारा हमारे तारे से जिस ओर ओर जिसनी दूर आज देखा जायगा उसी ओर और उतनी ही दूर पर सदा देखा जायगा। इस प्रकार ऐसे दो बार पास पास रहनेवाले तारों की परस्पर स्थिति का ध्यान एक बार कर लेने से हम उन सबको दूसरी बार देखने से पहचान सकते हैं। पहचान के लिये यदि हम उन सब तारों के मिलने से जो आकार बने उसे निर्दिष्ट करके समूचे तारकपुंज का कोई नाम रख लें तो और भी सुभीता होगा। नक्षत्रों का विभाग इसीलिये और इसी प्रकार किया गया है।

चंद्रमा २७-२८ दिनों में पृथ्वी के चारों ओर घूम आता है। खगोल में यह भ्रमणपथ इन्हीं तारों के बीच से होकर गया हुआ जान पड़ता है। इसी पथ में पड़नेवाले तारों के प्रत्येक प्रत्येक दल बाँधकर एक एक तारकपुंज का नाम नक्षत्र रखा गया है। इस रीति से सारा पथ इन २७ नक्षत्रों में विभक्त होकर नक्षत्र चक्र कहलाता है। नीचे तारों की संख्या और आकृति सहित २७ नक्षत्रों के नाम दिए जाते हैं—

नक्षत्र	तारासंख्या	आकृति और पहचान
अश्विनी	३	घोड़ा
भरणी	३	त्रिकोण
कृत्तिका	६	अग्निशिखा
रोहिणी	५	गाड़ी
मृगशिरा	३	हरिणमस्तक वा विहालपद
आर्द्रा	१	उज्ज्वल
पुनर्वसु	५ या ६	धनुष या घर
पुष्य	१ वा ३	भालिक्य वर्ण
अश्लेषा	५	कुत्ते की पूँछ वा कुत्तालचक्र
मघा	५	हल
पूर्वाषाढा	२	खट्वाकार <
उत्तराषाढा	२	उत्तर दक्षिण शरपाकार <
हस्त	५	उत्तर दक्षिण हाथ का पञ्ज
चित्रा	१	मुक्तावत् उज्ज्वल
स्वाती	१	कृकुम्भ वर्ण
विशाखा	५ व ६	तोरण वा माना
अनुराधा	७	सूप या जलधारा
ज्येष्ठा	३	सर्प या कुडन
मूल	६ या ११	शंख या सिंह की पूँछ
पूर्वाषाढा	४	सूप या हाथी का दाँत
उत्तराषाढा	४	सूप
श्रवण	३	बाण या भिजून
धनिष्ठा	५	मर्दन बाजा
शतभिषा	१००	मंडलाकार
पूर्वभाद्रपद	२	भारवत् या घटाकार
उत्तरभाद्रपद	२	दो मस्तक
रेवती	३२	मछली या मृदंग

इन २७ नक्षत्रों के प्रतिरिक्त अभिजित् नाम का एक और नक्षत्र पहले माना जाता था पर वह पूर्वाषाढा के भीतर हो आ जाता है, इससे अब २७ ही नक्षत्र गिने जाते हैं। इन्हीं नक्षत्रों के नाम पर महीनों के नाम रने गए हैं। जिस महीने की पूर्णिमा को चंद्रमा जिस नक्षत्र पर रहेगा उस महीने का नाम उसी नक्षत्र के अनुसार होगा, जैसे कार्तिक की पूर्णिमा को चंद्रमा कृत्तिका वा रोहिणी नक्षत्र पर रहेगा, अग्रहायण

की पूर्णिमा को मृगशिरा वा आर्द्रा पर; इसी प्रकार और समझिए ।

जिस प्रकार चंद्रमा के पथ का विभाग किया गया है उसी प्रकार उस पथ का विभाग भी हुआ है जिसे सूर्य १२ महीनों में पूरा करता हुआ जान पड़ता है । इस पथ के १२ विभाग किए गए हैं जिन्हें राशि कहते हैं । जिस तारों के बीच से होकर चंद्रमा घूमता है उन्हीं पर से होकर सूर्य भी गमन करता हुआ जान पड़ता है; अर्थात् एक ही है, विभाग में भिन्न है । राशिचक्र के विभाग बड़े हैं जिनमें से किसी किसी के अंतर्गत तीन तीन नक्षत्र तक आ जाते हैं । कुछ विद्वानों का मत है कि यह राशि-विभाग पहले पहल मिथ्यावादा ने किया जिसे यवन लोगों (यूनानियों) ने लेकर और और स्थानों में फैलाया ।

पश्चिमी ज्योतिषियों ने जब देखा कि बारह राशियों से सारे ग्रहों के तारों और नक्षत्रों का निर्देश नहीं होता है तब उन्होंने और बहुत सी राशियों के नाम रखे । इस प्रकार राशियों की संख्या दिन पर दिन बढ़ती गई । पर भारतीय ज्योतिषियों ने स्वर्ग के उत्तर और दक्षिण गड में जो तारे हैं उन्हें नक्षत्रों में बाँधकर निर्दिष्ट नहीं किया । नक्षत्र या तारे सूर्य की तरह छोटे छोटे पिंड नहीं हैं, वे बड़े बड़े सूर्य हैं जो हमारे इस सूर्य से बहुत दूरी पर हैं । इनकी संख्या अपारमित है । वर्तमान काल के युरोपीय ज्योतिषियों ने नई नई दूरवालों आदि की सहायता से स्वर्ग का बहुत अनुमान किया है । उन्होंने तारों का वापिक लंबन (किसी नक्षत्र से एक रेखा सूर्य तक और दूसरी पृथ्वी तक खींचने से जो कोण बनता है उसे उस नक्षत्र का लंबन कहते हैं) निर्धारित कर, उनकी दूरी निर्धारित करने में बड़ा उपयोग किया है । यदि किसी नक्षत्र का यह कोण एक सेकंड है तो समझना चाहिए कि उसकी दूरी सूर्य की दूरी की अपेक्षा २०६०० गुनी अधिक है । कोई नक्षत्र कम दूरी पर है, कोई अधिक; जैसे स्वाती, धनिष्ठा और श्रवण नक्षत्र स्वर्गमार्ग से बहुत दूर हैं और रोहिणी, पुष्य और चित्रा उनकी अपेक्षा निकट हैं । जो तारे औरों की अपेक्षा निकट हैं उनके प्रकाश की पृथ्वी तक पहुँचने में तीन माह तीन वर्ष लग जाते हैं, दूरवालों का प्रकाश तीन तीन बार बार सी वर्ष में पहुँचता है । अक्ष की गति एक सेकंड में १८६००० मील उहरी गई है । इसी से इनकी दूरी का अंदाजा हो सकता है ।

२. तारा । तारक (को०) । ३. मोती (को०) । ४. वह हार जिसमें २७ मोती गूँथे गए हों (को०) ।

नक्षत्रकल्प — संका पु० [सं०] प्रगल्बेद का एक परिशिष्ट जिसमें चंद्रमा की स्थिति आदि का वर्णन है ।

नक्षत्रभ्रांतिविस्तार — संका पु० [सं०] नक्षत्रभ्रांतिविस्तार । सफेद उबार । उबार या यावतान का सफेद गुच्छा ।

नक्षत्रगण — संका पु० [सं०] कल्पित ज्योतिष में कुछ विशिष्ट नक्षत्रों का अलग अलग समूह या गण ।

विशेष — पुरा-संहिता में लिखा है कि रोहिणी, उत्तराषाढ़ा, उत्तरभाद्रपद और उत्तरफाल्गुनी इन चारों नक्षत्रों को

घ्रुवगण कहते हैं । घ्रुवगण में अमित्रक, शान्ति, वृक्ष, नगर धर्म, बीज और घ्रुव कार्य का आरंभ करना उचित है मूल, आर्द्रा, ज्येष्ठा और आश्लेषा के स्वामी तीक्ष्ण हैं इसलिये इनके समूह को तीक्ष्णगण कहते हैं । इनमें अमित्रा, मंत्रसाधन, वेताल, बंध, वध, और भेद संबंधी कार्य सिद्ध होते हैं । पूर्वाषाढ़ा, पूर्वफाल्गुनी, पूर्वभाद्रपद, भरणी और मघा ये पाँचो नक्षत्र उग्रगण कहलाते हैं, उजाड़न, नष्ट करने, शठता करने, बंधन, विष, दहन और लज्जाघात आदि की सिद्धि के लिये इस गण के नक्षत्र बहुत उपयुक्त हैं । हस्त, अश्विनी और पुष्य के समूह को लघुगण कहते हैं, इसमें पुण्य, रति, ज्ञान, भूषण, कला, शिल्प आदि के कार्य की सिद्धि होती है । अनुराधा, चित्रा, मृगशिरा और रेवती को मृदुगण कहते हैं और ये वस्त्र, भूषण, मंगल गीत और मित्र आदि के संबंध में हिनकारी और उपयुक्त हैं । विशाखा और कुत्तिका को मृदुतीक्ष्णगण कहते हैं, इनका फल मृदु और तीक्ष्ण गणों के फल का मिश्रण होता है । श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा, पुनर्वसु और स्वाति ये पाँचो 'चरगण' कहलाते हैं, और इनमें चरकर्म हितकारी होता है ।

नक्षत्रचक्र — संका पु० [सं०] १. तांत्रिकों के अनेक चक्रों में से एक ।

विशेष — इसके अनुसार दीक्षा के समय नक्षत्रों आदि के विचार से गुरु यह निश्चय करता है कि शिष्य को कौन सा मंत्र दिया जाय ।

२. राशिचक्र ।

नक्षत्रचिन्तामणि — संका पु० [सं०] नक्षत्रचिन्तामणि । एक प्रकार का कल्पित रत्न ।

विशेष — इसके विषय में यह प्रसिद्ध है कि उससे जो कुछ माँगा जाय वह मिलता है ।

नक्षत्रदर्श — संका पु० [सं०] १. वह जो नक्षत्र देखता हो । २. ज्योतिषी ।

नक्षत्रदान — संका पु० [सं०] पुराणानुसार भिन्न भिन्न नक्षत्रों में भिन्न भिन्न पदार्थों का दान ।

विशेष — जैसे, रोहिणी नक्षत्र में घी, वृष और रत्न, मृगशिरा नक्षत्र में बछड़े सहित गो, आर्द्रा में लिखड़ो, हस्त में हाथी और रथ, अनुराधा में उत्तरीय सहित वस्त्र, पूर्वाषाढ़ा में वरतन समेत दही और माना हुआ सलू, रेवती में कौसा, उत्तराभाद्रपद में मांस आदि । इस प्रकार के दान से बहुत अधिक पुण्य होता है और स्वर्ग मिलता है ।

नक्षत्रनाथ — संका पु० [सं०] चंद्रमा ।

विशेष — पुराणानुसार दक्ष की अश्विनी आदि सत्ताईस (नक्षत्रों) कन्याओं का विवाह चंद्रमा के साथ हुआ था, इसीलिये चंद्रमा को नक्षत्रनाथ कहते हैं ।

नक्षत्रनेमि^१ — संका पु० [सं०] १. विष्णु का एक नाम । २. चंद्रमा ।

३. घ्रुवतारा (को०) ।

नक्षत्रनेमि^२ — संका जी० [सं०] रेवती नामक नक्षत्र (को०) ।

नक्षत्रप — संका पु० [सं०] चंद्रमा ।

नक्षत्रपति—संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा ।

नक्षत्रपथ—संज्ञा पुं० [सं०] १. नक्षत्रों के चलने का मार्ग । २. तारों भरा आकाश (को०) ।

नक्षत्रपदयोग—संज्ञा पुं० [सं०] फलित ज्योतिष के अनुसार एक प्रकार का योग जो उस समय होता है जब सूर्य जन्म-राशि से छठे स्थान में अथवा मेष राशि में हो और चंद्रमा बुध राशि में हो ।

विशेष—कहते हैं, इस योग में यदि राजा युद्ध के लिये यात्रा करे तो वह अपने शत्रु को उसी प्रकार परास्त कर सकता है जिस प्रकार हवा बादलों को उड़ा देती है ।

नक्षत्रपाठक—संज्ञा पुं० [सं०] ज्योतिषी (को०) ।

नक्षत्रपुरुष—संज्ञा पुं० [सं०] एक कल्पित पुरुष जिसकी कल्पना भिन्न भिन्न नक्षत्रों को उसके भिन्न भिन्न अंग मानकर की जाती है ।

विशेष—बृहत्संहिता में लिखा है कि मूल नक्षत्र को नक्षत्रपुरुष के पाँच, रोहिणी और अश्विनी को जाँघ, पूर्वाषाढा और उत्तराषाढा को उर, उत्तराफाल्गुनी और पूर्वाफाल्गुनी को गुह्य, कृत्तिका को कमर, उत्तराभाद्रपदा और पूर्वाभाद्रपदा को पार्श्व, रेवती को कोख, अनुराधा को छाती, धनिष्ठा को पीठ, विशाखा को बाँह, हस्त को कर, पुनर्वसु को उंगलियाँ, अश्लेषा को नाखून, ज्येष्ठा को गरदन, श्रवण को कान, पुष्य को मुख, स्वाति को दाँत, शतभिषा को हाथ, मघा को नाक, मृगशिरा को आँख, चित्रा को सलाह, भरणी को सिर और आर्द्रा को बाल मानकर नक्षत्रपुरुष की कल्पना करनी चाहिए । वामन पुराण के अनुसार इसका व्रत सुंदरता प्राप्त करने के उद्देश्य से चैत्र के कृष्ण पक्ष की अष्टमी को, जब चंद्रमा मूल-नक्षत्रयुक्त हो, किया जाता है । व्रत के दिन विष्णु और नक्षत्रों की पूजा करके दिन भर उपवास करना चाहिए । नक्षत्रपुरुष के पैरोंवाले नक्षत्र से आरंभ करके प्रतिमास हर एक अंग के नक्षत्र के नाम से भी व्रत करने का विधान है ।

नक्षत्रभोग—संज्ञा पुं० [सं०] किसी नक्षत्र के रहने का समय । नक्षत्रकाल ।

नक्षत्रमाला—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. वह हार जिसमें सलाईत मोती हों । २. तारक समूह (को०) । ३. चंद्रमा के मार्ग के नक्षत्रों की स्थिति । ४. हार जो हाथियों को पहनाया जाता है (को०) ।

नक्षत्रमालिनी^१—वि० [सं० नक्षत्र + मालिनी] नक्षत्रों की माला-वाली । उ०—नक्षत्रमालिनी प्रकृति द्वारे नीलम से जड़ी पुतली के समान उसकी आँखों का खेल बन गई ।—आकाश०, पृ० १०१ ।

नक्षत्रमालिनी^२—संज्ञा स्त्री० [सं०] फूलोंवाली एक सजावट का नाम । जाती (को०) ।

नक्षत्रयाजक—संज्ञा पुं० [सं०] वह ब्राह्मण जो ग्रहों और नक्षत्रों आदि के दोषों की शांति कराता हो ।

विशेष—महाभारत के अनुसार ऐसा ब्राह्मण निकृष्ट और प्रायः चांडाल के समान होता है ।

नक्षत्रयोग—संज्ञा स्त्री० [सं०] नक्षत्रों के साथ ग्रहों का योग ।

नक्षत्रयोनि—संज्ञा पुं० [सं०] वह नक्षत्र जो विवाह के लिये निषिद्ध हो ।

नक्षत्रराज—संज्ञा पुं० [सं०] नक्षत्रों के स्वामी, चंद्रमा ।

नक्षत्रलोक—संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार वह लोक जिसमें नक्षत्र हैं । यह लोक चंद्रलोक से ऊपर माना जाता है ।

विशेष—काशीखंड में लिखा है कि जब दश कन्या ने महादेव के लिये कठिन तपस्या की थी तब उन्होंने प्रसन्न होकर उन्हें ज्योतिषचक्र में चंद्रलोक से ऊपर एक स्वतंत्र लोक में रहने का वर दिया था ।

नक्षत्रवर्त्म—संज्ञा पुं० [सं० नक्षत्रवर्त्मन्] आकाश (को०) ।

नक्षत्रविद्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] ज्योतिष विद्या (को०) ।

नक्षत्रवीथि—संज्ञा स्त्री० [सं०] नक्षत्रों में गति के अनुसार तीन तीन नक्षत्रों के बीच का कल्पित मार्ग ।

विशेष—बृहत्संहिता के अनुसार तीन तीन नक्षत्रों में एक वीथि होती है । स्वाति, भरणी और कृत्तिका में नागवीथि होती है; रोहिणी, मृगशिरा और आर्द्रा में गजवीथि; पुनर्वसु, पुष्य और अश्लेषा में ऐरावत; मघा, पूर्वाफाल्गुनी और उत्तराफाल्गुनी में वृषभ; अश्विनी, रेवती और पूर्वा एवं उत्तरा भाद्रपद में गोवीथि; श्रवण, धनिष्ठा और शतभिषा में जरद्वगवीथि, अनुराधा, ज्येष्ठा और मूल में मृगवीथि, ज्ञान, विशाखा और चित्रा में अजावीथि, तथा पूर्वाषाढा और उत्तराषाढा में दहनावीथि । इस प्रकार २७ नक्षत्रों में ६ वीथियाँ होने पर प्रत्येक वीथि तीन बार होती है अतः इनमें तीन तीन वीथियाँ सूर्यमार्ग के उत्तर, मध्य और दक्षिण होती हैं । फिर इनमें से भी प्रत्येक यथाक्रम उत्तर, मध्य और दक्षिण होती हैं—जैसे, तीन नागवीथियाँ हैं, उनमें से प्रथम उत्तरमार्गस्था, दूसरी मध्यस्था और तीसरी दक्षिणमार्गस्था हुई । इन वीथियों का विचार फलित में होता है—जैसे, शुक्र जिस समय उत्तर-वीथि में होकर उदित वा अस्त होता है उस समय सुभिक्ष और मंगल होता है, मध्यवीथि में होने से मध्यफल और दक्षिण वीथि में होने से मंदफल होता है ।

नक्षत्रवृष्टि—संज्ञा स्त्री० [सं०] तारा टूटना । उल्कापात होना ।

नक्षत्रव्यूह—संज्ञा पुं० [सं०] फलित ज्योतिष में वह चक्र जिसमें यह विश्लेषाया जाता है कि किन किन पदार्थों और जातियों आदि का स्वामी कौन नक्षत्र है ।

विशेष—बृहत्संहिता के १५वें अध्याय में लिखा है—सफेद फूल, अग्निहोत्री, मंत्र जाननेवाले, भूत की भाषा जाननेवाले, ज्ञान में काम करनेवाले, हज्जाम, द्विज, कुम्हार, पुरोहित और वर्षफल जाननेवाले कृत्तिका नक्षत्र के अधीन हैं । सुवत, पुण्य, राजा, धनी, योगी, शाकटिक, गौ, बैल, जलधर, किसान, और पर्वत रोहिणी के अधिकार में हैं । पद्म, कुसुम, फल, रत्न, वनधर, पक्षी, मृग, यज्ञ में सोमपान

करनेवाले, गंधर्व, कामी और पत्रवाहक मृगशिरा के अधिकार में हैं। बध, बंध, परदारहरण, लठ्ठा और भेद करनेवाले धार्ष्टी के अधिकार में हैं। इसी प्रकार और भी भिन्न भिन्न पदार्थों आदि के संबंध में यह बतलाया है कि वे किस नक्षत्र के अधिकार में हैं।

नक्षत्रघन—संज्ञा पुं० [५०] पुराणानुसार वह व्रत जो किसी विशिष्ट नक्षत्र के उद्देश्य से किया जाता है।

विशेष इस नक्षत्र के उद्देश्य से यत किया जाता है, व्रत क दिन उस नक्षत्र के स्वामी देवता का पूजन भी किया जाता है।

नक्षत्रशूल—संज्ञा पुं० [५०] फलित ज्योतिष में काल का वह वाम जो किसी विशिष्ट दिशा में कुछ विशिष्ट नक्षत्रों के होने के कारण माना जाता है।

विशेष यदि पूर्व दिशा में श्रवण या ज्येष्ठा, दक्षिण में अश्विनी या उत्तराभाद्रपद, पश्चिम में रोहिणी या पुष्य और उत्तर में उत्तर फाल्गुनी या हस्त नक्षत्र हों तो उस दिशा में यात्रा आदि के लिये नक्षत्रशूल माना जाता है।

नक्षत्रसंधि—संज्ञा स्त्री० [५०] नक्षत्रसंधि] चंद्रमा आदि ग्रहों का पूर्व नक्षत्र भाग में से उत्तर नक्षत्र में संक्रमण।

नक्षत्रसत्र—संज्ञा पुं० [५०] पुराणानुसार एक विशेष प्रकार का यज्ञ जो नक्षत्रों के निमित्त किया जाता है।

विशेष—यह यज्ञ नक्षत्रमास के अनुसार होता है।

नक्षत्रसाधक—संज्ञा पुं० [५०] शिव । महादेव।

नक्षत्रसाधन—संज्ञा पुं० [५०] नक्षत्र गणना जिसके अनुसार यह जाना जाता है कि किस नक्षत्र पर कौन सा ग्रह कितने समय तक रहता है।

नक्षत्रसूचक—संज्ञा पुं० [५०] वह ज्योतिषी जो स्वयं चारी गणना आदि न कर सकता हो, केवल दूसरों के मत के अनुसार ज्योतिष संबंधी साधारण काम करता हो।

नक्षत्रसूची—संज्ञा पुं० [५०] नक्षत्रसूचिन्] दे० 'नक्षत्रसूचक'।

नक्षत्रामृत—संज्ञा पुं० [५०] फलित ज्योतिष में यात्रा आदि कार्यों के लिये एक नृत्य हो उत्तम योग।

विशेष यह कि जो विशेष दिन में कुछ विशिष्ट नक्षत्रों के होने पर माना जाता है। जैसे, रविवार को हस्त, पुष्य, रोहिणी या मूल आदि नक्षत्रों का होना, सोमवार को श्रवण, पश्चिम में रोहिणी, मृगशिरा, अश्विनी या हस्त आदि का होना, गुरुवार को रेवती, पुष्य, मारुतेषा, कृत्तिका या स्वाती आदि का होना, आदि आदि। ऐसे योग में व्यतीपात आदि के दोषों का नाश हो जाता है।

नक्षत्रिन्द—संज्ञा पुं० [५०] एक वैदिक देवता जिनका नक्षत्रों में रहना माना जाता है।

नक्षत्रिय—वि० [५०] १. नक्षत्र से संबंध रखनेवाला। २. क्षत्रिय से भिन्न। ३. सराईस।

नक्षत्रो—संज्ञा पुं० [५०] नक्षत्रिन्] १. चंद्रमा। २. बिष्णु।

नक्षत्रो—वि० [५०] नक्षत्र + ई (प्रत्यय)] जिसका जन्म अथवा नक्षत्र में हुआ हो। भाग्यवान्। खुशकिस्मत।

नक्षत्रेश—संज्ञा पुं० [५०] १. चंद्रमा। २. कपूर।

नक्षत्रेश्वर—संज्ञा पुं० [५०] चंद्रमा।

नक्षत्रेष्टि—संज्ञा पुं० [५०] वह यज्ञ जो नक्षत्रों के उद्देश्य से किया जाय।

नक्सगीरी(गु) —संज्ञा स्त्री० [५०] नक्स गीरी] धातु या पत्थर पर चित्र या बेन बूटे बनाने का काम। उ०—जड़े पाथरे नक्सगीरी कराये।—घरनी०, पु० ६।

नख—संज्ञा पुं० [५०] १. हाथ या पैर का नाखून।

विशेष—दे० 'नागून'।

पर्या०—पुनर्भव। करकह। नखर। कामांकुश। करज। पाणिष कराग्रज। करकटक। स्मरांकुश। रतिपथ। करचंद्र। करानुश।

२. एक प्रसिद्ध गंधद्रव्य जो सीप या घोंघे आदि की जाति के एक प्रकार के जानवर के मुँह का ऊपरी आवरण या ढकना होता है।

विशेष—इसका आकार नागून के समान चंद्राकार या कभी कभी बिलकुल गोल भी होता है। यह छोटा, बड़ा, सफेद, नीला कई प्रकार और रंग का होता है; जिनमें से छोटा और सफेद रंग का अच्छा माना जाता है। छोटे को वैद्यक ग्रंथों में क्षुद्र-नखी और बड़े को शल्लनखी, व्याघ्रनखी, वृहन्नखी कहते हैं। किसी किसी का आकार घोड़े के मुँह या हाथी के कान के समान भी होता है। इसे जलाने से बदबू निकलती है, पर तेल में डालने से खुशबू निकलती है। इसका व्यवहार दवा के लिये होता है। वैद्यक के अनुसार यह हलका, गरम, स्वादिष्ट, शुक्ल-वर्धक और व्रण, विष, प्लेग्मा, वात, ज्वर, कुष्ठ और मुख की दुर्गंध दूर करनेवाला है।

३. खंड। टुकड़ा। ४. बीस की संख्या (को०)। ५. क्लीब। नपुंसक (को०)।

नख—संज्ञा स्त्री० [५०] नख] १. एक प्रकार का बड़ा हुआ महीन रेसमी तगा जिससे गुड़ो उड़ाते और कपड़ा मीते हैं। २. गुड़ो उड़ाने के लिये वह रतला तगा जिसपर मौका दिया जाता है। डोर।

नखकतनि—संज्ञा स्त्री० [५०] नाखून काटने का औजार। नहरनी।

नखकुट्ट—संज्ञा पुं० [५०] हज्जाम। नाई।

नखक्षत—संज्ञा पुं० [५०] १. वह दाग या चिह्न जो नाखून के गड़ने के कारण बना हो। २. स्त्री के शरीर पर का, विशेषतः स्तन आदि पर का, वह चिह्न जो पुरुष के मर्दन आदि के कारण उसके नाखूनों से बन जाता है।

नखखादी—संज्ञा पुं० [५०] नखखादिन्] वह जो दाँतों से अपने नाखून कुतरता हो।

विशेष—मनु के अनुसार ऐसे मनुष्य का बहुत जल्दी नाश हो जाता है।

नखगुच्छफला—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की सेम ।

नखचारी—संज्ञा पुं० [सं० नखचारिन्] पंजे के बल चलनेवाला जीव ।

नखच्छव(५)†—संज्ञा पुं० [सं० नखक्षत] दे० 'नखक्षत' ।

नखछोलिया(५)†—संज्ञा पुं० [सं० नख । हि० छोलना] दे० 'नखक्षत' ।

नखजाह—संज्ञा पुं० [सं०] नाखून का पिछला भाग । नखपुन ।

नखत(५)†—संज्ञा पुं० [सं० नखत्र] दे० 'नखत्र' ।

नखतपति(५)†—संज्ञा पुं० [सं० नखत्रपति] दे० 'नखत्रपति' । उ०—
जिमि फारि महातम निकर को निकरत नम में नखतपति ।—
पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० ४-४ ।

नखतर(५)†—संज्ञा पुं० [सं० नखत्र] दे० 'नखत्र' ।

नखतराज(५)†—संज्ञा पुं० [सं० नखतराज] चंद्रमा ।

नखतराय—संज्ञा पुं० [सं० नखत्रराज] दे० 'नखतराज' ।

नखता—संज्ञा पुं० [दे०] एक प्रकार की चिटिया जो भारत के सिवा
धोर कहीं नहीं होती ।

विशेष—यह बरसात के आरंभ में दिन भर उड़ा करती है और
भिन्न भिन्न ऋतुओं में भिन्न भिन्न स्थानों पर रहती है । यह
कीड़े मकोड़े और फल आदि लाती है और पाली भी जा
सकती है ।

नखताली(५)†—संज्ञा पुं० [सं० नखत्रावली] नखत्रपंक्ति । नखत्रमूह ।
उ०—सरसी गंभीर और हंसनि की जामु तीर तही उदय हूँ
रहीं विचित्र नखताली री ।—दीन० ग्रं०, पृ० ८ ।

नखदान—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'नखक्षत' । उ०—श्यामा का नखदान
मनोहर मुक्ताओं से श्रृंगित रहा ।—स्कंद०, पृ० ११ ।

नखदारण—संज्ञा पुं० [सं०] १. नहरनी । २. बाज । श्वेत
पक्षी (को०) ।

नखतेस(५)†—संज्ञा पुं० [सं० नखत्रेश] दे० 'नखत्रेश' ।

नखत्र(५)†—संज्ञा पुं० [सं० नखत्र] दे० 'नखत्र' ।

नखना^१—क्रि० प्र० [हि० नाखना] उल्लंघन होना । डीका जाना ।

नखना^२—क्रि० प्र० उल्लंघन करना । पार करना । उ०—मानहि
मान ते मानिन केशव मानस ते कुछ मान अरेगो । मान है री
सु जु माने नहीं परिमान नखे अभिमान अरेगो ।—केशव
(शब्द०) ।

नखना^३—क्रि० प्र० [सं० नष्ट] नष्ट करना । उ०—जो लौं यह
तन प्राण पठान न रक्खिहो । मऊ फरककाबाद खोदिके
नक्खिहो ।—सूदन (शब्द०) ।

नखनिष्ठाय—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की सेम ।

नखपद्—संज्ञा पुं० [सं०] नाखून घँसने से बना चिह्न । नखक्षत (को०) ।

नखपर्णी—संज्ञा स्त्री० [सं०] बिछुआ घास ।

नखपुंजफला—संज्ञा स्त्री० [सं० नखपुंजफला] सफेद सेम ।

नखपुष्पो—संज्ञा स्त्री० [सं०] पुष्पका या असवरग नाम का गंधद्रव्य ।

नखपूर्विका—संज्ञा स्त्री० [सं०] हरी सेम ।

नखफलिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] सेम (को०) ।

नखवान(५)†—संज्ञा पुं० [सं० नख] नख । नाखून । उ०—सेज
मिलत सामी कहँ लावे उर नखवान । जेहि गुन सबै सिध के
सो संखिनि, सुलतान ।—जायसी (शब्द०) ।

नखबिंदु—संज्ञा पुं० [सं० नखबिन्दु] दे० 'नखबिंदु' (को०) ।

नखमुच—संज्ञा पुं० [सं०] १. चिरोजी का पेड़ । २. धनुष (को०) ।

नखरंजनी—संज्ञा स्त्री० [सं० नखरंजनी] नहरनी ।

नखर—संज्ञा पुं० [सं०] १. नख । नाखून । २. प्राचीन काल का
एक ध्वज ।

नखरा—संज्ञा पुं० [फ्रा० नखर] १. वह चुलबुलापन, चेष्टा या
चंचलता आदि जो जबानी की उमग में श्रद्धा प्रिय को
रिक्ताने के लिये की जाती है । चोचला । नाज । हाव भाव ।
जैसे,—उसे बहुत नखरा आता है ।

यौ०—नखरातिल्ला । नखरेबाज ।

क्रि० प्र०—करना ।—दिलाना ।—निकालना ।

मुहा०—नखरा बघारना = नखरा करना ।

२. साधारण चंचलता या चुलबुलापन । बनावटी चेष्टा । ३.
बनावटी इनकार । जैसे,—(क) जब कहीं चलने का काम
होता है सब तुम एक न एक नखरा निकाल बैठते हो ।
(ख) ये सब इनके नखरे हैं, ये करीं वही जो तुम कहोगे ।

नखरातिल्ला—संज्ञा पुं० [फ्रा० नखरा + हि० तिल्ला (घनू०)]
नखरा । चोचला । नाज ।

नखरायुध—संज्ञा पुं० [सं०] १. शर । २. चीता । ३. कुत्ता । ४.
मुरगा (को०) ।

नखराङ्ग—संज्ञा पुं० [सं०] कनेर का पेड़ ।

नखरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] नख नाम का मयूरभय ।

नखरील्ला—वि० [फ्रा० नखरा + हि० ईला (प्रत्य०)] चोचलेबाज ।
नखरा करनेवाला ।

नखरेख(५)†—संज्ञा स्त्री० [सं० नख + रेखा] शरीर में लगा हुआ
नखों का चिह्न जो संयोग का चिह्न माना जाता है । नखरोट ।
उ०—मरकत आजन सलिलगत इंदुकला के बेख । भीन भगा
मैं भलमले स्यामगात नखरेख ।—विहारी (शब्द०) ।

नखरेखा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. नखक्षत । नाखून का दाग । २.
कश्यप ऋषि की एक पत्नी जो बादलों की माता थी । उ०—
दारा ते तृणभूष जोन लागत पर काजे । नखरेखा सुत मेघ
कोटि छप्पन उपरावे ।—विश्राम (शब्द०) ।

नखरेबाज—वि० [फ्रा० नखर + बाज] जो बहुत नखरा करता
हो । नखरा करनेवाला ।

नखरेबाजी—संज्ञा स्त्री० [फ्रा० नखर + बाजी (प्रत्य०)] नखरा
करने की क्रिया या भाव ।

नखरोट—संज्ञा स्त्री० [सं० नख + हि० खरोट] नाखून की खरोट ।
शरीर पर का वह निशान जो नाखून चुभाने से होता है ।

नखबिंदु—संज्ञा पुं० [सं० नखबिन्दु] वह गोम या चंद्राकार चिह्न
जो स्त्रियाँ नाखून के ऊपर मेहदी या महावर से बनाती हैं ।

नखविष

२२१६

नगण

उ०—बागल धनेक तमि जावक को विदु भी धनेक नखविदुन की कला सरमत है ।—चरण (शब्द०) ।

नखविष—संज्ञा पु० [म०] वह जिमके नाखूनों में विष हो । जैसे, मनुष्य, बिल्ली, कुत्ता, बंदर, मगर, मेंढक गोह, छिन्नकली आदि ।

नखविच्छिन्न—संज्ञा पु० [म०] वह जानवर जो अपने शिकार को नाखून से फाड़कर खाता हो । जैसे, शेर, बाज आदि ।

विशेष—धमनाशन के अनुसार ऐसे जानवरों का मांस नहीं खाना चाहिए ।

नखयुक्त—संज्ञा पु० [म०] नील का पेड़ ।

नखत्रण—संज्ञा पु० [म०] नाखून से बनी खरीच । नखधन ।

नखशंख—संज्ञा पु० [म० नखश, शंख] छोटा शंख ।

नखशस्त्र—संज्ञा पु० [म०] नहरनी ।

नखशिख—संज्ञा पु० [म०] १. नख से लेकर शिख तक के सब अंग ।

मुद्दा०—नखशिख गंधिर में पैर तक । ऊपर से नीचे तक । जैसे, वह नखशिख से दुरुस्त है ।

२. वह काव्य जिसमें किसी देवता या नायक नायिका के सभी अंगों का वर्णन हो ।

नखशिख—क्रि० ० धमनचून । पूर्ण । उ०—विश्व सभ्यता का हीनता या नखशिख नव रूपतर ।—ग्राम्या, पु० ५२ ।

नखशूल—संज्ञा पु० [म०] नाखून का वह रोग जिसमें उसके आस पास या जड़ में पीड़ा होती है ।

नखमिग्न(पु)—संज्ञा पु० [म० नखशिख] दे० 'नखशिख' । उ०—नखमिग्न से रत्न नेत्र नायिका, इष्ट बनाया को । उसी को लोब करो बापा ।—भारत, पु० ५७ ।

नखहरण—संज्ञा स्त्री० [म०] नहरनी ।

नखाक—संज्ञा पु० [म० नखाक] १. व्याघ्रनखी । व्याघ्रनख । विशेष—१० 'नख' । २. नाखून गड़ने का चिह्न ।

नखांग—संज्ञा पु० [म० नखाङ्ग] १. नख नामक गंधद्रव्य । २. नलिका या नली नामक गंधद्रव्य ।

नखाधात—संज्ञा स्त्री० [म०] नाखून का आघात । नखधन ।

नखानखि—संज्ञा स्त्री० [म०] ऐसी लड़ाई जिसमें दोनों दल परस्पर नाखून का प्रयोग करें ।

नखायुध—संज्ञा पु० [म०] १. शेर । २. चीता । ३. कुत्ता । ४. मुरगा (शेर) ।

नखारि—संज्ञा पु० [म०] शिव के एक अनुचर का नाम ।

नखालि—संज्ञा पु० [सं०] छोटा शंख ।

नखालु—संज्ञा पु० [म०] नील वृक्ष । नील का पेड़ ।

नखाशी^१—संज्ञा पु० [सं० नखाशिन] उल्लू ।

नखाशी^२—वि० जो नाखूनों की सहायता से खाता हो ।

नखास—संज्ञा पु० [म० नखास] १. वह बाजार जिसमें पशु, विशेषतः घोड़े विक्रिते हैं । २. साधारणतः कोई बाजार ।

मुद्दा०—नखास पर भेजना या बढ़ाना=वेचने के लिये बाजार भेजना । नखास की घोड़ी या नखासवाली=कसब कमाने-वाली स्त्री । खानगी । (बाजार) ।

नखियाना(पु)—क्रि० स० [सं० नख+इयाना (प्रत्य०)] नाखून गड़ाना या नाखून से खरीचना ।

नखी^१—संज्ञा पु० [सं० नखिन्] १. शेर । २. चीता । ३. वह जानवर जो नाखून से किसी पदार्थ को चीर या फाड़ सकता हो । ४. बड़े हुए नाखूनवाला । उ०—लाखों भीनी फिर लाखों बाघबरी । उर्ध्वमुखी भी नखी लाखों लोह लंगरी । लाखों जल में पड़े (लाखों) धूरि को छानतें । घरे ही पलटू जामें राजी राम भी कोउ नहि जानते ।—पलटू, भा० २, पु० १२ ।

नखी^२—संज्ञा स्त्री० [म०] नख नामक गंधद्रव्य ।

नखेदा(पु)—संज्ञा पु० [हि०] दे० 'निपेध' । उ०—ब्रह्मा हाथ चार छिय वेदा । तीन लोक महँ करत नखेदा ।—कबीर सा०, पु० २४८ ।

नखोटना(पु)—क्रि० स० [सं० नख+घोटना (प्रत्य०)] नाखून से खरीचना या नोचना । उ०—कान्ह बलि जाउँ ऐसी धारि न कीजै ।.....बरजत बरजत बिहकाने । करि क्रोध मनहि अकुलाने । धरत धरणि पर लोटे । माता को चीर नखोटे । अंग आधूषण सब तोरे । लवनी दधि आजन फोरे ।—सूर (शब्द०) ।

नखोरा—संज्ञा पु० [हि०] निमोना । हरी मटर आदि से बनाया गया सालन ।

नख्खास—संज्ञा पु० [म० नख्खास] दे० 'नखास' ।

नग^१—वि० [म०] १. न गमन करनेवाला । न चलने फिरने-वाला । अचल । स्थिर ।

नग^२—संज्ञा पु० १. पर्वत । पहाड़ । २. पेड़ । वृक्ष । ३. सात की संख्या । ४. सपं । सौप । ५. सूर्य । ६. कीर्ति वनस्पति (की०) ।

नग^३—संज्ञा पु० [फा० नगीना, सं० नग] १. शीशे या पत्थर आदि का रंगीन बढ़िया टुकड़ा जो प्रायः अंगूठियों आदि में बड़ा जाता है । नगीना ।

मुद्दा०—नग बैठाना=नग जड़ना ।

२. अदत । संख्या । जैसे, पाँच नग लोटा ।

नगचाना(पु)—क्रि० प्र० [हि० नगीच से नामिक चानु] दे० 'नगिचाना' ।

नगज^१—संज्ञा पु० [सं०] हाथी ।

नगज^२—वि० जो पहाड़ से उत्पन्न हो ।

नगजा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. पार्वती । २. पाषाणभेदा लता । पखानभेद ।

नगण—संज्ञा पु० [सं०] पिंगल शास्त्र में तीन लघु प्रसरों का एक गण (॥॥) । जैसे, कमल, मदन, चरण, धरण, समर नयन आदि ।

विशेष—इस गण से छंद का प्रारंभ करना शुभ माना जाता है।

नगण—संज्ञा स्त्री० [सं०] मालकंगनी।

नगण्य—वि० [सं०] जो गणना करने के योग्य न हो। बहुत ही साधारण या गंवा बीता। तुच्छ। जैसे—इस विषय पर केवल एक ही पुस्तक मिली; परंतु वह भी नगण्य ही है।

नगदंती—संज्ञा स्त्री० [सं० नगदन्ती] विभीषण की स्त्री का नाम।
उ०—नगदंती केहरि मुख जाई। सो बल्लभा विभीषण पाई।
—विश्राम (शब्द०)।

नगद—संज्ञा पुं० [अ० नकद] दे० 'नकद'।

नगद—वि० १. नैयार (रूपया)। २. खास। उ०—हरीचंद नगद दमाद प्रमिदानी के।—हरिश्चंद्र (अ० १०)।

नगद—संज्ञा पुं० [सं० नागदमनी] नागदमनी।

नगदनारायण—संज्ञा पुं० [अ० नद् + सं० नारायण] द्रव्य। रूपया पैसा।

नगदी—संज्ञा स्त्री० [अ० नद + फा० ई (प्रत्य०)] दे० 'नकदी'।

नगधर—संज्ञा पुं० [सं०] पर्वत के चारण करनेवाले, श्रोकृष्णचंद्र। गिरिधर। उ०—कहा कहों भंग भंग की सोभा नगधर दिख सौ तू अनुगामी।—छोत०, पृ० ७१।

नगधरन—संज्ञा पुं० [सं० नगधरण] दे० 'नगधर'।

नगनंदिनी—संज्ञा स्त्री० [सं० नगनन्दिनी] पार्वती जो हिमालय की कन्या मानी जाती है।

नगन—वि० [सं० नग्न] १. जिसके शरीर पर कोई वस्त्र न हो। नंगा। २. जिसके ऊपर किसी प्रकार का आवरण न हो।

नगनदी—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह नदी जो किसी पहाड़ से निकली हो।
नगना—संज्ञा स्त्री० [सं० नगना] दे० 'नगना'।

नगनिका—संज्ञा स्त्री० [?] १. संगीत के संगीत गाय का एक भेद। २. कोड़ा नामक वस्तु का एक नाम जिसके प्रत्येक चरण में एक चरण और एक गुठ होता है। उ०—उर्गे चारो : हरी तारो। करो कीड़ा। रवी थोड़ा (शब्द०)।

नगनी—संज्ञा स्त्री० [सं० नगनी] १. वह कन्या जो रजोपमं का प्राप्ति न हुई हो। वह कन्या जिसके स्तन न उठे हों और जो अपनी ऊपरी शरीर को धूम धूम फिर सकती हो। २. कन्या। पुत्री। बेटी। उ०—अग्नि तनया कह्यो मोहि विशाहि। अब यहो तू गुरु नगनी छाई।—सूर (शब्द०)। ३. नगी का।

नगन्निकाछंद—संज्ञा पुं० [हि० नगनिका + छंद] दे० 'नगनिका'।

नगपति—संज्ञा पुं० [सं०] १. हिमालय पर्वत। २. चंद्रमा (बुध, वनस्पति, शनि के स्वामी होने से)। ३. कैलाश के स्वामी, शिव। ४. सुमेरु। उ०—चतुरानन बल मंत्रारि मेघनाथ प्रायो। माना वन पावस में नगपति है छायो।—सूर (शब्द०)।

नगपेच—संज्ञा पुं० [हि०] सिर या कपाल का एक गहना। उ०—किय सेखर सचद जटित नगपेच बिब पर। स्वाम सचिकरन चिकुर आम सौ स्वाम भए धिरि।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ३३३।

नगफंगा—वि० [?] नटखट। शरीर। उ०—ही भले नगफंग परे गढ़ीवै अब ए गढ़न महिरि मुख जोए।—तुलसी (शब्द०)।

नगभिद्—संज्ञा पुं० [सं०] १. पक्षानभेद लता। २. प्राचीन काल का पत्थर तोड़ने का एक प्रकार का यंत्र। ३. हथ।

विशेष—पुराणानुसार इंद्र ने पहाड़ों के पर काटे थे, इसी से उनका यह नाम पड़ा।

नगभू—संज्ञा पुं० [सं०] १. छोटी पक्षानभेद लता। २. पहाड़ी जमीन।

नगभू—वि० जो पहाड़ से उत्पन्न हुआ हो।

नगमा—संज्ञा पुं० [अ० नग्मह] १. मधुर स्वर। २. गीत। गाना। ३. राग। उ०—कोकिलो, तुमको नई श्रुति के नए नगमे मुबारक।—मिलन०, पृ० १२८।

नगमासंज—वि० [अ० नग्मह + फा० सज] गाना गानेवाला (स्त्री०)।

नगमासंजो—संज्ञा स्त्री० [अ० नग्मह + फा० सज + ई (प्रत्य०)] गाना। गीत (स्त्री०)।

नगमूर्धा—संज्ञा पुं० [सं० नगमूर्धन्] पर्वत का शिखर। चोटी (स्त्री०)।

नगरंधकर—संज्ञा पुं० [सं० नगरंधकर] कान्तिकेय का एक नाम।

नगवाहन—संज्ञा पुं० [सं०] शिव (स्त्री०)।

नगर—संज्ञा पुं० [सं०] मनुष्यों की बहु बड़ी बस्ती जो गाँव या कस्बे आदि से बड़ी हो और जिसमें अनेक जातियों तथा पेशों के लोग रहते हों। शहर।

विशेष—हमारे यहाँ के प्राचीन ग्रंथों में लिखा है कि जिस स्थान पर बहुत सी जातियों के अनेक शरागरी और कारीगर रहते हों और प्रधान न्यायालय हो, उसे नगर कहते हैं। युक्तिकल्प-नरु नामक ग्रंथ में लिखा है कि राजा को शुभ मुहूर्त में लंबा, चौकोर, तिकोना या गोल नगर बनाना चाहिए। इसमें से तिकोना और गोल नगर बुरा समझा जाता है। लंबा नगर बहुत ही शुभ और स्थायी तथा चौकोर नगर चारों प्रकार के फल (धन, धर्म, काम, मोक्ष) का देनेवाला माना जाता है।

पर्या०—पुर। पुरी। नगरी। पत्तन। पट्टन। पटमेदन। निगम। कटक। स्थानीय। पट्ट।

यो०—राजनगर। नगरवसेरा। नगरनारि। नगरकीर्तन, आदि।

नगरकाक—संज्ञा पुं० [सं०] नीच या कृत्रिम व्यक्ति (स्त्री०)।

नगरकीर्तन—संज्ञा पुं० [सं०] वह गाना बजाना या कीर्तन, विशेषतः ईश्वर के नाम का भजन या कीर्तन, जिसे नगर की गलियों और सड़कों में घूम घूमकर कुछ लोग करें।

नगरघात—संज्ञा पुं० [सं०] हाथी।

नगरनीर्थ—संज्ञा पुं० [सं०] गुजरात प्रांत का एक प्राचीन तीर्थ जहाँ किसी समय शिव का निवास माना जाता था।

नगरनायिका—संज्ञा स्त्री० [सं० नगर + नायिका] वेश्या। रंडी।

नगरनारि—संज्ञा स्त्री० [सं० नगरनारी] वेश्या।

नगरनारी—संज्ञा स्त्री० [सं०] रंडी। वेश्या।

नगरपाल—संज्ञा पुं० [सं०] वह जिसका कार्य सब प्रकार के उपद्रवों आदि से नगर की रक्षा करना हो ।

नगरपालिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] नगर की व्यवस्था आदि करनेवाली संस्था । अ० म्युनिमैलिटी ।

नगरप्रदक्षिणा—संज्ञा स्त्री० [सं०] किसी मूर्ति के साथ नगर की परिक्रमा करना [को०] ।

नगरप्रांत—संज्ञा पुं० [सं० नगरप्रान्त] नगर के समीप का भाग या भूमि [को०] ।

नगरमंडना—संज्ञा पुं० [सं० नगरमण्डना] वेश्या । रंडी ।

नगरमर्द्दी—संज्ञा पुं० [सं० नगरमर्दिन्] मस्त हाथी ।

नगरमार्ग—संज्ञा पुं० [सं०] शहर में का बड़ा और चौड़ा रास्ता । राजमार्ग ।

नगरमस्ता—संज्ञा स्त्री० [सं०] नागरमोथा ।

नगररक्षी—संज्ञा पुं० [सं० नगररक्षिन्] शहर की रक्षा करनेवाला । शहर का पहरेदार ।

नगरवा—संज्ञा पुं० [देश०] ईश्वर की एक प्रकार की बोधार्थ जो मध्यप्रदेश के उन प्रांतों में होती है जहाँ की मिट्टी कासी या करीली होती है । पलवार ।

विशेष—इसमें खेतों के बीचों-बीच की आवश्यकता नहीं होती; बल्कि बरमान के बाद जब ईश्वर के धंकुर फूटते हैं तब जमीन पर हमलिये पत्तियाँ बिछा देते हैं जिसमें उसमें का पानी गिरा बनकर उड़ न जाय ।

नगरवासी—संज्ञा पुं० [सं० नगरवासिन्] नागरिक । शहर में रहनेवाला । पुरवासी ।

नगरविवाद—संज्ञा पुं० [सं० नगर + विवाद] दुनिया के भगड़े बसेड़े । उ०—धनमद जोवनमद राजमद भूदो नगर विवाद ।
—स्वामी हरिदास (शब्द०) ।

नगरसेठ—संज्ञा पुं० [सं० नगर + हि० सेठ] नगर का प्रमुख धनपति या प्रधान व्यापारी । उ०—रूप नगर में बसत है नगरसेठ तुव नैन ।—सं० समक, पृ० १८४ ।

नगरहा—संज्ञा पुं० [हि० नगर + हा (प्रत्य०)] शहर में रहनेवाला । नागरिक ।

नगरहार—संज्ञा पुं० [सं०] प्राचीन भारत का एक नगर जो किसी समय वर्तमान जलालाबाद के निकट बना था ।

विशेष—चीनी यात्री हुएनसांग ने अपनी यात्रा में इसका वर्णन किया है । उस समय यह नगर कपिला राज्य के अधीन था । किसी समय इस नाम का एक राज्य भी था जो उत्तर में काबुल नदी और दक्षिण में सफेद कोह तक था ।

नगरा—संज्ञा पुं० [हि०] देशी हुल का वह भाग जिसमें हरीस, मुरिया और फल लगा रहता है ।

नगरा—संज्ञा पुं० [सं० नगर + हि० घा (प्रत्य०)] छोटा गाँव ।

नगराई पुं०—संज्ञा स्त्री० [हि० नगर + आई (प्रत्य०)] १. नागरिकता । शहरातीपन । २. चतुराई । चालाकी । उ०—

मुरदाम स्वामी रति नागर नगरि देखि गई नगराई ।

—मूर (शब्द०) ।

नगरादि, सन्निवेश—संज्ञा पुं० [सं०] नगर का स्थापन और निर्माण । शहर बनाना या बसाना ।

विशेष—अग्निपुराण में लिखा है कि शहर बसाने के लिये राजा को पहले एक या आधा योजन लंबा मुंदर स्थान चुनना चाहिए और बाजार आदि बनाने चाहिए । नगर में अग्निकोण में सूतारों आदि के लिये दक्षिण में नाचने गानेवालों और वेश्याओं आदि के लिये, नैऋत्य में नटों और केतों आदि के लिये, पश्चिम में रथ और शस्त्र आदि बनानेवालों के लिये वायुकोण में शूकर चारों ओर दामों आदि के लिये, उत्तर में ब्राह्मणों, यति और सिद्धों आदि के लिये, ईशान कोण में फल फलहरी और अन्न आदि बेचनेवालों के लिये और पूर्व में योद्धाओं आदि के रहने के लिये स्थान बनवाना चाहिए । इसके अतिरिक्त पूर्व में सारियों के लिये, दक्षिण में वेश्यों के लिये और पश्चिम में शूद्रों के लिये स्थान बनाना चाहिए; और नगर के चारों ओर सेना रखनी चाहिए । दक्षिण में श्मशान, पश्चिम में गोघों आदि के रहने और चरने आदि के लिये परती जमीन और उत्तर में खेत होने चाहिए । नगर में स्थान स्थान पर देवमंदिर होने चाहिए ।

नगराधिकृत—संज्ञा पुं० [सं०] नगररक्षकों का प्रधान अधिकारी ।

नगराधिप—संज्ञा पुं० [सं०] ३० 'नगराध्यक्ष' ।

नगराध्यक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] नगर का स्वामी या रक्षक । वह जिसपर नगर की रक्षा आदि का पूरा पूरा भार हो ।

विशेष—महाभारत से पता चलता है कि प्राचीन काल में राजा की ओर से शासन और न्याय आदि के कार्यों के लिये जो अधिकारी नियुक्त किया जाता था वह नगराध्यक्ष कहलाता था ।

नगराभ्याश, नगराभ्यास—संज्ञा पुं० [सं०] नगर की निकटता या समीपता [को०] ।

नगरी^१—संज्ञा स्त्री० [सं०] नगर । शहर ।

नगरी^२—संज्ञा पुं० [सं० नगरिन्] शहर में रहनेवाला अनुषूय । नागरिक । शहरासी ।

नगरीकाक—संज्ञा पुं० [सं०] बगला ।

नगरीबक—संज्ञा पुं० [सं०] काक । कोया [को०] ।

नगरीय—वि० [सं०] नगर का । नगर से संबंधित । नागरिक ।

नगरोत्था—संज्ञा स्त्री० [सं०] नागरमोथा ।

नगरोपांत—संज्ञा पुं० [सं० नगरोपान्त] नगर का बाहरी भाग । उपनगर ।

नगरोका—संज्ञा पुं० [सं० नगरीकम्] शहर का निवासी । नागरिक ।

नगरीवधि—संज्ञा स्त्री० [सं०] केला ।

नगवास(पु)—संज्ञा पुं० [सं० नागपाश] शत्रु को बांधने या फँसाने के लिये एक प्रकार का फँदा । नागपाश ।

नगवासी^७—वि० [हि० नगवास + ई] नागवाण का । नागवाण संबंधी । उ०—जान पुढार जो भा बनवासी । रोंब रोंब परे फद नगवासी ।—जायसी (शब्द०) ।

नगवाहन—संज्ञा पु० [सं०] शिव का एक नाम ।

नगस्वरूपिणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का वर्णवृत्त ।

विशेष—इसके प्रत्येक चरण में एक जगण, एक रगण, एक सधु और एक गुं होता है । इसे प्रमाण्णी और प्रमाणिका भी कहते हैं । जैसे—जरा लगाव बिता ही । भजो जु नंद नद हो । प्रमाणिका हिये गहो । जु पार भी लगा चहो । (शब्द०) ।

नगा^८—वि० [हि० नागा] दे० 'नग' । उ०—नग माहि नगा । सेन सेन भग । सार धारं भग । कुह कुहं बग ।—पु० रा०, १ । ६४६ ।

नगाटन^९—संज्ञा पु० [सं०] बंदर । कपि ।

नगाटन^९—वि० पहाड़ पर निबरण करनेवाला ।

नगाड़ा—संज्ञा पु० [हि० नगारा] दे० 'नगारा' ।

नगाधिप—संज्ञा पु० [सं०] १. हिमालय पर्वत । २. सुमेरु पर्वत ।

नगाधिपति, नगाधिराज—संज्ञा पु० [सं०] दे० 'नगाधिप' (को०) ।

नगारा—संज्ञा पु० [सं० नक्कारह] तुमहुगी या बाएँ की तरह का एक प्रकार का बहुत बड़ा और शक्तिशाली बाजा । नगाड़ा । डंका । धौसा । उ०—गज ते घासन भधरहि घारा । चले राख तब बने नगारा ।—कबीर सा०, पु० ४८७ ।

विशेष—जिसमें एक बहुत बड़ी डूँडी के ऊपर चमड़ा मड़ा रहता है । कभी कभी इसके साथ इसी प्रकार का पं इससे बहुत छोटा एक और बाजा भी होता है । इन दोनों को घामने मागने रखकर लकड़ी के दो डंडों से, जिन्हें चोब कहते हैं, बजाते हैं । मुहावरों के लिये दे० 'नक्कारा' ।

नागारि—संज्ञा पु० [सं०] इंड, पुराणानुसार जिन्होंने पर्वतों के पर काटे थे ।

नगवास—संज्ञा पु० [सं०] मोर ।

नगाश्रय^१—संज्ञा पु० [सं०] हाथीकद ।

नगाश्रय^२—वि० [सं०] पर्वत पर रहनेवाला । पर्वतीय ।

नगिचाना^३—क्रि० घ० [हि० नगीच से नामिक धातु] नजदीक घाना । समीप घाना । उ०—गोता लीजै लाय नाम के सरवर मीठी । अनभि आइ नगिचान दौन फिर ऐसा नहीं ।—पंचद०, भा० १, पु० २४ ।

नगी^४—संज्ञा स्त्री० [फा० नगीनह से हि० नंग + ई (प्रत्य०)] रत्न । मणि । नगीना । नग । उ०—कंदन की भस्त्र रूप डबीन में खोल धरो मानो नील नगी है ।—मुंदरीमहंश (शब्द०) ।

नगी^५—संज्ञा स्त्री० [सं० नग (= पर्वत)] १ पर्वत की कन्या । पार्वती । उ०—नगी किषी पन्नग की आई । कमला किषी देह धरि आई ।—सबल (शब्द०) । २. पर्वत पर रहनेवाली स्त्री । पहाड़ी स्त्री । उ०—पन्नगी बगी कुमारि आसुरी

निहारि छारौ बारि किन्नरी नरी गमारि नारिका ।
—केसव (शब्द०) ।

नगीच^६—क्रि० वि० [फा० नजदीक] दे० 'नजदीक' । उ०—चंदन कीच चढ़ायहैं बीच परे नहि रीव । मोच नगीच न छा सके लहि बिरहानल घाँच ।—स० सप्तक, पु० २५७ ।

नगीना—संज्ञा पु० [फा० नगीनह, तुल० सं० नग] १. पत्थर आदि का वह रंगीन चमकीला टुकड़ा जो मोभा के लिये खूँटी आदि में जड़ा जाता है । रत्न । मणि ।

मुहा०—नगीना सा = बहुत छोटा और सुंदर । २. एक प्रकार का चारखानेदार देशी कपड़ा ।

नगीनागर—संज्ञा पु० [फा० नगीनह + गर (प्रत्य०)] दे० 'नगीनासाज' ।

नगीनासाज—संज्ञा पु० [फा० नगीनह + साज (प्रत्य०)] वह जो नगीना बनाता या जड़ता हो । नगीना बनाने या जड़ने का काम करनेवाला ।

नगेंद्र—संज्ञा पु० [सं० नगेन्द्र] पर्वतराज । हिमालय ।

नगेश—संज्ञा पु० [सं०] दे० 'नगेंद्र' ।

नगेसरि^७—संज्ञा पु० [सं० नागकेशर] नागकेशर ।

नगाच्छाया—संज्ञा पु० [सं०] पर्वत की ऊँचाई (को०) ।

नगीक—संज्ञा पु० [सं० नगीकस्] १. पत्नी । चिड़िया । २. सिंह । शेर । ३. कौआ ।

नगा^८—संज्ञा पु० [सं० नाग] दे० 'नाग' । उ०—सजे भग पंजी मद मोष नगं । तिन भग आतस्स ऊर उतगं ।—पु० रा०, १ । ६३७ ।

नगर^९—संज्ञा पु० [सं० नगर] दे० 'नगर' । उ०—ये ही बाजार है जिसे पहाड़ के लोग गवं से नगर कहत हैं ।—भस्मावृत्त०, पु० १३० ।

नग^१—वि० [सं०] १. जिसके शरीर पर कोई वस्त्र न हो । नग । २. जिसके ऊपर किसी प्रकार का आवरण न हो ।

नग^२—संज्ञा पु० [सं०] १. एक प्रकार के दिगंबर जैन जो कीर्तिन और कषाय वस्त्र पहनते हैं ।

विशेष—ये पाँच प्रकार के होते हैं—द्विकच्छ, कच्छगोप, मुक्तकच्छ, एकवासा और अवासा ।

२. पुराणानुसार वह जिसे शास्त्रों आदि का ज्ञान न हो और जिसके कुल में किसी ने वेद न पढ़ा हो ।

विशेष—ऐसे आदिभियों का अन्न ग्रहण करना वर्जित है ।

३. वह जो गृहस्थाश्रम के उपरांत बिना वानप्रस्थ ग्रहण किए ही संन्यासी हो गया हो ।

विशेष—पुराणानुसार ऐसा आदिमी पातकी समझा जाता है ।

नग्नक—संज्ञा पु० [सं०] दे० 'नग्न' ।

नग्नक्षयक—संज्ञा पु० [सं०] एक प्रकार का बौद्ध संन्यासी या भिक्षु ।

नग्नजित्—संज्ञा पु० [सं०] १. गांधार के एक बहुत पुराने राजा का नाम जिसका उल्लेख शतपथ ब्राह्मण में है । २. पुराणानुसार

कोशल के एक राजा का नाम जिसकी सत्या या नाम्नजिती नामक कन्या का विवाह श्रीकृष्ण के साथ हुआ था।

नग्नता—संज्ञा स्त्री० [न०] नंगे होने का भाव। नंगापन। वस्त्र-विहीनता।

नग्नपर्ण—संज्ञा पुं० [न०] प्राचीन काल के एक देश का नाम।

नग्नमुषित—वि० [सं०] जिसका सब कूट लुट गया हो, यही तक कि उसके पास शरीर का वस्त्र भी न रह गया हो।

नगनाट—संज्ञा पुं० [न०] १. वह जो सदा नंगा रहता हो, २. दिगंबर संप्रदायी जैन या बौद्ध भिक्षु [को०]।

नगनाटक—संज्ञा पुं० [न०] दे० 'नगनाट' [को०]।

नगमा—संज्ञा पुं० [न० नगम] दे० 'नगमा'।

नगो० नगमात्र = दे० 'नगमामत्र'। नगमासाज = दे० 'नगमासाज'।

नग्न(पुं०) संज्ञा पुं० [न० नग्न] दे० 'नग्न'। उ०—यमो नग्न रम्य रचो भूप बरो। किये चार चोकरंत ययंत हेरो। हम्मोर रा०, पु० १७६।

नग्नो(पुं०) संज्ञा स्त्री० [न० नग्नो] दे० 'नग्नो'। उ०—धार नग्नो प्रायो बोलत राव। जानो बावउ दीपो तिगि ठाव।—बी० रासो, पु० १६।

नग्नोष(पुं०) संज्ञा पुं० [न० नग्नोष] बटवृक्ष। बड़ का पेड़।

नघना—क्रि० म० [न० लघन] लघना। लघिना। डाँकना। पार करना। उ०—भीमसेन भर्जुन दोउ धाए। हेरत हेरत पुर नघि घाए।—रघुराज (शब्द०)।

नघाना—क्रि० म० [न० लघन] लघाना। उल्लंघन करना। डंका देना। उ०—बोले बचन पुकारिके विपिन जो देह नचाय। द्वि मे मुद्रा नाहि हम देहै तुरत गहाय।—रघुराज (शब्द०)।

नधु(पुं०) संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'नहुष'। उ०—दुजब दोष नधु कृत क्रिया प्रपनो सु हृषी।—पु० रा०, ५५। ५६।

नधुअ(पुं०) संज्ञा पुं० [न० नहुष] दे० 'नहुष'। उ०—नधुअ राजपू जग्य कर कर कुष्ट कूप जन।—पु० रा०, ५५। ५६।

नचन(पुं०) संज्ञा स्त्री० [न० नृत्य] दे० 'नाच'। उ०—हरि की सी बनि बन ते प्रावनि गावनि रस रंगी। हरि की सी गेदुं क रचम ननन पुनि होन त्रिशंगी।—नव० पं०, पु० २६।

नचना(पुं०) क्रि० म० [हि० नाचना] नाचना। नृत्य करना। उ०—(क) सजनी सज नीरद निरखि हृषि नचत इत मोर। केशव (शब्द०)। (ख) काली की फनाली पै नचत बनमाली है।—पद्याकर (शब्द०)।

नचना—वि० १. जो नाचना हो। नाचनेवाला। २. जो बराबर इधर उधर घूमता रहता हो, एक स्थान पर न रहता हो।

नचनि(पुं०) संज्ञा स्त्री० [हि० नाचना] नाच। नृत्य।

नाचनिया—संज्ञा पुं० [हि० नाचना + न्या (प्रत्य०)] नाचने-वाला। नृत्य करनेवाला।

नचनो—संज्ञा स्त्री० [हि० नाचना] करघे की वे दोनों लकीरियाँ जो बेसर के कुलबासे से लटकती होती हैं।

विशेष—इन्हीं के नीचे चकडोर से दोनों राखें बंधी रहती हैं। इन्हीं की सहायता से राखें ऊपर नीचे जाती और आती हैं। इन्हें चक या कलहरा भी कहते हैं।

नचनो—वि० स्त्री० [हि० नाचना] १. नाचनेवाली। जो नाचती हो। २. बराबर इधर उधर घूमती रहनेवाली स्त्री (स्त्री०)।

नचवाई—संज्ञा स्त्री० [हि० नाचना + वाई (प्रत्य०)] १. नृत्य। नाच। २. नाचने का ढंग या पद्धति। ३. नाचने का परिश्रमिक या ठहरोनी।

नचवाना—क्रि० म० [हि० नाचना का प्रे० रूप] दे० 'नचाना'।

नचवैया—संज्ञा पुं० [हि० नाचना + वैया (प्रत्य०)] नाचनेवाला। जो नाचना हो।

नचाना—क्रि० म० [हि० नाचना का प्रे० रूप] १. दूसरे को नाचने में प्रवृत्त करना। नाचने का काम दूसरे से कराना। नृत्य कराना। जैसे, रंडी नचाना, बहर नचाना। २. किसी को बार बार उठने बैठने या और कोई काम करने के लिये प्रवृत्त करके तंग करना। अनेक व्यापार कराना। हैरान करना। उ०—(क) जीव चराचर बस के राखे। सो माया प्रभु सा भय भाखे। भृष्टि बिलास नचावै ताहो। अत प्रभु छाड़ि भजिय कह काही।—तुलसी (शब्द०)। (ख) देखा जीव नचावै जहो। देखी भगति जो छोरह ताही।—तुलसी (शब्द०)।

मुहा०—नाच नवाना = धूमने फिरने या और कोई काम करने के लिये विवश करके तंग करना या हैरान करना। उ०—कबिरा बेरी सबल है, एक जीव रिपु पाँच। अपने अपने स्वाद को बहुत नचावै नाच।—कबीर (शब्द०)।

संयो० क्रि०—डालना।—मानना।

३. किसी चीज को बार बार इधर उधर घुमाना या हिनाना। भ्रमकर देना। भ्रमण कराना। जैसे, हाथ में छड़ी या ताली लेकर नचाना। लट्ट नचाना।

मुहा०—गालें (या ठोत) नचाना = बचलतापूर्वक प्रशंसा की पुनीतियों को इधर उधर घुमाना। उ०—(क) नैन नचाव कही मुमयय लजा फिर आइयो मेलन होरी।—पद्याकर (शब्द०)। (ख) कछु नैन नचाय नचायति भीह नचै कर बोक घोर आप नचै (शब्द०)।

४. इधर उधर दौड़ना। हैरान या परेशान करना।

नचिन(पुं०) संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'नचिकेत'। उ०—चित लिखी सुरताँण नूँ, हुवो नचित नबाब।—र० रू०, पु० ३३८।

नचिकेता—संज्ञा पुं० [न० नचिकेतम्] १. वाजश्रवा ऋषि का पुत्र जिसने मृत्यु से ब्रह्मज्ञान प्राप्त किया था।

विशेष—वाजश्रवा ने एक बार दक्षिणा में अपना सर्वस्व दे डाला था। उस समय नचिकेता ने अपने पिता से कई बार पूछा था कि मुझे किसको प्रदान करते हैं। पिता ने स्निहलाकर कह दिया कि मैं तुमको मृत्यु के अपित करता हूँ। इसपर वह मृत्यु

के पाम चला गया था और वहाँ तीन दिन तक निराहार रहकर उससे उसने ब्रह्मज्ञान प्राप्त किया था।

२. अग्नि।

नचिर—वि० [म०] थोड़ी देर रहनेवाला। अल्पकालवाला। क्षणस्थायी (को०)।

नचोत—वि० [हि०] दे० 'नचिचत'। उ०—भक्तवत्सल को विरद सुनि रज्जव दीन्हो रोय। जब सुनियो पवन पतित रह्यो नचोतो सोय।—राम० धर्म०, पृ० २६७।

नचोला—वि० [हि०] [श्री० नचोली] नारनेवाला। अस्थिर। अचल।

नचोहो—वि० [हि० नाचना + घोह (प्रत्य०)] जो सदा नाचता या उधर उधर भ्रमता रहे। अचल। अस्थिर उ०—देत रचोहो चित्त कहूँ नेह नचोहो नैन।—विहारी (शब्द०)।

नचचना—वि० अ० [हि०] दे० 'नचन'। उ०—तुरषी बुहराए अच्युत हराए अग्नि नचन सु नचिचय।—हामीर रा०, पृ० १२३।

नच्यत्र—संज्ञा पु० [सं० नचत्र] दे० 'नचत्र'। उ०—कि नील पर्वत की इक सिलर पर, पिरा है नच्यत्र टूट ऊपर।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० ८८६।

नच्यंत—वि० [हि०] दे० 'नचिचन'। उ०—काम सिरुगै यौ खड़ा जागि पियारे म्यंत। राम सनेहं बाहिरा, तूँ बूँ सोई नच्यंत।—कबीर ग्रं०, पृ० ७२।

नच्यतर—संज्ञा पु० [सं० नचत्र] दे० 'नचत्र'। उ०—अमं कृत सबदी छुटे रो हेली सोन नच्यतर भाल।—चरण० बानी०, पृ० १४५।

नच्यत्र—संज्ञा पु० [सं० नचत्र] दे० 'नचत्र'।

नच्यत्री—वि० [सं० नचत्र + ई (प्रत्य०)] भाग्यवान्। भाग्यशाली। जिसका चम अच्ये नचत्र में हुआ हो। उ०—परम नच्यत्री ह्यात जात छत्रीवर बलधर।—गोपाल (शब्द०)।

नच्यत्त—संज्ञा पु० [सं० नचत्र] दे० 'नचत्र'। उ०—सब सभा पूरि जैसे नच्यत्त। चहुधान बीच अनु चर रत।—पु० रा०, १। ३६८।

नजदीक—वि० [फ़ा० नजदीक] [संज्ञा नजदीकी] निकट। पास। करीब। समीप।

नजदीकी—संज्ञा श्री० [फ़ा० नजदीकी] पास या नजदीक होने का भाव। सामीप्य।

नजदीकी—वि० निकट का।

नजदीकी—संज्ञा पु० निकट का समीप।

नजम—संज्ञा श्री० [फ़ा० नजम] कविता। पद्य। छंद।

नजर—संज्ञा श्री० [अ० नजर] १. दृष्टि। निगाह। चितवन।

मुहा०—नजर अदाज करना = ध्यान न देना। नजर हटा लेना।

नजर घाना = दिखाई देना। दिखाई पड़ना। दृष्टिगोचर होना। उ०—नजर आता है कोई अपना न पराया मुझको।

—अमानत (शब्द०)। नजर करना = देखना। उ०—

जब मैंने उधर नजर की तब देखा कि आप खड़े हैं। नजर पर चढ़ना = पसंद आ जाना। भा जाना। भला मानूम होना। नजर पड़ना = दिखाई देना। देखने में आना। जैसे, कई दिन में तुम नजर नहीं पड़े। नजर फिसलना = चमक या अकाबोध के कारण किसी वस्तु पर दृष्टि का अच्छी तरह न जमना। नजर फेंकना = (१) दूर तक देखना। दृष्टि डालना। (२) सरसरी नजर से देखना। नजर में आना = दिखाई पड़ना। दिखाई देना। नजर में तोलना = देखकर किसी के गुण और दोष आदि की परीक्षा करना। नजर बाँधना = जादू या मंत्र आदि के जोर से किसी की दृष्टि में भ्रम उत्पन्न कर देना। कुछ का कुछ कर दिवाना।

विशेष—प्राचीन काल में लोगों का विश्वास था कि जादू के जोर से दृष्टि में भ्रम उत्पन्न किया जा सकता है। आजकल भी कुछ लोग इस बात को मानते हैं।

२. कृपादृष्टि। मेहरबानी से देखना। जैसे, आपकी नजर रहेगी तो सब कुछ हो जायगा।

मुहा०—नजर रखना = कृपादृष्टि रखना। मेहरबानी रखना।

३. निगरानी। देख रेख। जेमे, जरा आप भी इस काम पर नजर रखा करें।

क्रि० प्र०—रखना।

४. ध्यान। खयाल। ५. परख। पहचान। शिनाख्त। जैसे, इन्हें भी जवाहिरात की बहुत कुछ नजर है। ६. दृष्टि का वह कात्पत प्रभाव जो किसी सुंदर मनुष्य या अच्छे पदार्थ आदि पर पड़कर उसे खराब कर देनेवाला माना जाता है।

विशेष—प्राचीन काल में लोगों का विश्वास था और अब भी बहुत से लोगो का विश्वास है कि किसी किसी मनुष्य की दृष्टि में ऐसा प्रभाव होता है कि जिसपर उसकी दृष्टि पड़ती है उसमें कोई न कोई दोष या खराबी पैदा हो जाती है। यदि ऐसी दृष्टि किसी साधु पदार्थ पर पड़े तो वह खानेवाले को नहीं पचना और भविष्य में उस पदार्थ पर से खानेवाले की रुचि भी हट जाती है। यह भी माना जाता है कि यदि किसी सुंदर बालक पर ऐसी दृष्टि पड़े तो वह बीमार हो जाता है। अच्छे पदार्थ आदि के संबंध में माना जाता है कि यदि उनपर ऐसी दृष्टि पड़े तो उनमें कोई न कोई दोष या विकार उत्पन्न हो जाता है। किसी विनिष्ट अवसर पर केवल किसी विनिष्ट मनुष्य की दृष्टि में ही नहीं बल्कि प्रत्येक मनुष्य की दृष्टि में ऐसा प्रभाव माना जाता है।

मुहा०—नजर उतारना = बुरी दृष्टि के प्रभाव को किसी मंत्र वा युक्ति से हटा देना। नजर खाना या खा जाना = बुरी दृष्टि से प्रभावित हो जाना। नजर जलाना = दे० 'नजर झाड़ना'। नजर झाड़ना = बुरी दृष्टि का प्रभाव हटाना। नजर लगाना = बुरी दृष्टि का प्रभाव डालना। नजर होना या हो जाना = दे० 'नजर लगना'।

७. विचार। धीर (को०)।

नजर—संज्ञा स्त्री० [अ० नजर] १. भेंट। उपहार। जैसे, (क) सीदागर नजर कर बाहु को एक मो धड़े नजर किए। (ख) अगर यह किनारा अच्छा है तो लोजिए यह आपकी नजर है। (ग) भिर भिर किरिय सुघर कहारा। निमि भिर भिर टन उठ अगारा। शतानंद घर सचिव लिवाई। कोणलपासी नजर कराई। गधुराज (शब्द०)।

क्रि० प्र०—करना। देना।

२. अधीनता सूचि। करने की एक रस जिसमें राजा, भो, महाराजा और जमींदारों आदि के सामने प्रजावर्ग के या दूसरे अधीनस्थ भो, छोटे लोग दरबार या ज्योहार आदि के समय प्रथम किसी विजय पराजय पर नमद करवा या अशरफी आदि दूधो में नजर न ली जाती है।

विशेष—यह धन कभी तो प्रणय न लिया जाता है कभी केवल छूकर ही दिया जाता है।

क्रि० प्र०—करना। नजराना देना।

नजरअंदाज—क्रि० प्रि० [अ० नजर + फा० अंदाज] दृष्टि का का हटना। ध्यान न देना। जैसे, एहाराब कहों नजरअंदाज नही होनाया है। गोदान, पृ० २२।

नजरअंदाजी—संज्ञा स्त्री० [अ० नजर + फा० अंदाजी] जीव। अनजानता। प्रत्येक [हि०]।

नजरना(उ)—क्रि० प्र० [अ० नजर से नामिक धातु] १. देखना। उ० (क) कानीमल में करी बहने नजरी गढ़े तो कछुने न भलाहा। बनी प्रीति (शब्द०)। (ख) नजरेई सब रहत है पान जगिया धोर। नतेही में चोर ही चिन बित सुभ उमयी। रसनिब (शब्द०)। (ग) नजरे जो नजरे रह प्रीतिम नुम मुग चंद। रसनिब (शब्द०)। २. नजर लगाना। ३. नजर।

नजरबंद—क्रि० प्र० [अ० नजर + फा० बंद] जो किसी एक स्थान पर बनी भवनगती में रमा जाय जहाँ वह रहती आ जा न सके। जिसे नजरबंदी की सजा दी जाय। उ० जून लोमी नैन सो नान रस आर पाव। रस नारे देके इन्हे नजरबंद कर राख। रसनिब (शब्द०)।

क्रि० प्र०—रखना। रोकना।

नजरबंदी—संज्ञा स्त्री० [अ० नजर + फा० बंदी] वह समय जिसके विषय में जहाँ आ बंद करवाया रहता है कि वह लोमी की नजर बाहर न जाय जाता है। नया की दृष्टि में भ्रम उत्पन्न करके इस जानसला खल। जैसे, वह मदारी नजरबंद के बंदु में बंदी में नजर करता है।

नजरबंदी—संज्ञा स्त्री० [अ० नजर + फा० बंदी] १. राज्य को और से नजर बंदी जिसमें दंडित व्यक्ति किमो सुरक्षित या निजत स्थान पर रखा जाता है और उसपर नियंत्रण रहता है। जिसमें यह दंड भिन्नता है उसे कही जाने जाये या दंड में भिन्न जुन की प्राप्ति नहीं होती। २. नजरबंद होने की दशा। ३. लोगों को दृष्टि में भ्रम उत्पन्न करने की क्रिया। बादूगरी। बाजगरी।

नजरबाग—संज्ञा पुं० [अ० नजर + फा० बाग] वह बाग जो महुओं या बड़े बड़े मकानों आदि के सामने या चारों ओर उनके अंगुले के अंदर हो रहता है।

नजरबाज—क्रि० [अ० नजर + फा० बाज (प्रत्य०)] घाँस नहानेवाला। प्रेम की दृष्टि से देखनेवाला।

नजरबाजी—संज्ञा स्त्री० [अ० नजर + फा० बाजी] १. नजरबाज होने की क्रिया या भाव। २. मोक्ष लड़ाना।

नजरसानी—संज्ञा स्त्री० [अ०] किसी किए हुए कार्य या लिखे हुए लेख आदि को, उसमें सुधार या परिवर्तन करने के लिये फिर से देखना। पुनर्विचार या पुनरावृत्ति।

नजरहा—क्रि० [हि० नजर + हा (प्रत्य०)] १. 'नजरहाया'। उ०—नजरहा देखा र नजर लगाये चला जाय, नजर लगे बेहाम भई मैं विद्या मोरा प्रकुलाय।—भारतेदु पं०, पृ० १८०।

नजरहाया—क्रि० [अ० नजर + हाया (प्रत्य०)] [स्त्री० नजर-हाई] जो नजर लगावे। जिसकी नजर पड़ते ही कोई दोष उत्पन्न हो। नजर लगानेवाला।

नजरा(उ)—संज्ञा स्त्री० [हि०] २० 'नजर'। उ०—नानक नजरा निहाल पलक में निहाला।—तुरभी पं०, पृ० ३४६।

नजराना(उ)—क्रि० प्र० [हि० नजर से नामिक धातु] १. भेंट में देना। उपहार स्वरूप देना। २. नजर लगाना। ३. 'नजर'।

नजराना—क्रि० प्र० [हि० से नामिक धातु] नजर लग जाना। घुरी दृष्टि के प्रभाव में आना। जैसे, मानुम होता है कि यह लड़का कहीं नजर न लग है।

नजराना—क्रि० प्र० [अ० नजर + फा० नजाना]।

नजराना—संज्ञा पुं० [अ० नजर + हि०] १. भेंट। उपहार। २. जो वस्तु भेंट में दी जाय।

नजर(उ)—संज्ञा स्त्री० [अ० नजर] २० 'नजर'।

नजला—संज्ञा पुं० [अ० नजर + फा०] १. गुलाबी दिकमत के अनुसार एक प्रकार का रोग जिसमें गरमी के कारण सिर का पित्तयुक्त रंगी ढलकर भिन्न भिन्न रंगों की ओर प्रवृत्त होता और जिस रंग की ओर ढलता है उसे जराब कर देता है।

विशेष—कहते हैं, यदि नजले का पानी सिर में ही रह जाय तो बाल सफेद हो जाते हैं। आँखों पर उजर पावे तो दृष्टि कम हो जाती है, कान पर उजर तो आदमी बहुरा हो जाता है, नाभ पर उजर तो जुकाम होता है, गले में उतरे तो लोमी होती है और अङ्गुली में उजर तो उसकी वृद्धि हो जाती है।

क्रि० प्र०—उतरना।—गिरना।

२. जुकाम। नरदी।

नजलाबंद—संज्ञा पुं० [अ० नजर + फा० बंद (प्रत्य०)] अफीम और चूने आदि का वह फाँदा जो नजले की गिरने से रोकने के लिये दोनों कनपटियों पर बसाया जाता है।

नजाकत—संज्ञा स्त्री० [फा० नजाकत] १. नाजुब होने का भाव सुकुमारता । कोमलता । छुदलता । २. सूझना । बारीकी (को०) । ३. क्षीणता (को०) । ४. नाजुबमिजाजी (को०) ।

नजात—संज्ञा स्त्री० [प्र०] १. मुक्ति । मोक्ष । २. छुटकारा । रिहाई ।
क्रि० प्र०—देना ।—पाना ।—मिलना ।

नजामत—संज्ञा स्त्री० [प्र० नजामत] १. नाजिब का पद । २. नाजिब का मुहकमा या विभाग । ३. नाजिब का उपहार, जहाँ बैठकर नाजिब काम करता हो ।

नजारत—संज्ञा स्त्री० [प्र० नजारत] १. नाजिब का पद । २. नाजिब का मुहकमा । ३. नाजिब का उपहार, जहाँ बैठकर नाजिब काम करता हो ।

नजारा—संज्ञा पुं० [प्र० नजाराह] १. दृश्य । २. दृष्टि । नजर । ३. दर्शन । दृश्य । ४ स्त्री या पुरुष का दूसरे पुरुष या स्त्री को नालसा या प्रेम की दृष्टि से देखना (बाजाक) ।

क्रि० प्र०—लड़ना ।—लड़ना ।—भारना ।

५. सैर । दृश्य । नमाणा (को०) ।

नजारेबाजी—संज्ञा स्त्री [हि० नजारा + फा० बाजी] स्त्री या पुरुष का दूसरे पुरुष या स्त्री को प्रेम या नालसा की दृष्टि से देखना (बाजाक) ।

नजिकाना(१)—क्रि० रा० [हि० नजीक (= नजदीक) + आना (प्रत्यय)] निकट पहुँचना । नजदीक पहुँचना । पास पहुँचना ।
उ०—(क) जोर करि उठी ज्यों गृध्र बन नौरुकात त्यों त्यों मोतें महीपति को मन नजिकाना है ।—सुकुमारकर (शब्द०) । (ख) सनन सुगोम सहित सो मुद्रिका भई अवधि नजिकाना ।—रघुराज (शब्द०) । (ग) जब दूर पहन गरजन नजिकाने निधि नौर ।—हनुमान (शब्द०) । (घ) मरण अवस्था जब नजिक आई । ईश सभा के मन पहुँच आई ।—गूर (शब्द०) ।

नजिस—वि० [प्र०] मैला । गंदा । अपवित्र । प्रदूषित । उ०—मगर यहाँ तो लोग हमें मलिन कहते हैं, यहाँ तक कि हमें कुत्ते से भी नजिस समझते हैं ।—कायाकल्प, पृ० ५० ।

नजीक(१)—क्रि० रि० [फा० नजदीक] निकट । पास । समीप ।
उ०—(क) है नजीक वही जहाँ स्थिति से विमुक्ति है खरे ।—गुमान (शब्द०) । (ख) नील की सीख भरी मन में बलि के बलि काहे नजीक न जाति है ।—प्रताप (शब्द०) ।

नजीब—संज्ञा पुं० [प्र०] कुनोस व्यक्ति जिनका खानदान शुद्ध हो ।
उ०—नजीबों का प्रजब कदम हल है इस दोर में पागे । जहाँ पूछो वही कहते हैं हम बेकार बैठे हैं ।—शेर, पृ० २१० ।

नजीम(१)—संज्ञा पुं० [प्र० नाजिम] १. नाजिम । उ०—बंगाली कर्म को नजीम नौ बरायो । मेरी नाँव भूतनज्जा मोलरो बतायो ।—शिल, पृ० ६३ ।

नजीर—संज्ञा स्त्री० [प्र० नजीर] १. उदाहरण । दृष्टांत । मिमाल । २. किसी मुकदमे का वह फैसला जो उसी प्रकार के किसी दूसरे मुकदमे में वैसे ही फैसले के लिये उपस्थित किया जाय ।
क्रि० प्र०—दिखलाना ।—देना ।

नजूम—संज्ञा पुं० [प्र०] ज्योतिष विद्या ।

नजूमी—संज्ञा पुं० [प्र०] ज्योतिषी ।

नज्जारा—संज्ञा पुं० [प्र० नज्जाराह] १. दर्शन । दीदार । २. सैर । दृश्य । नमाणा (को०) ।

यौ० नज्जारागाह = नैरागाह । विशेष का स्थान । नज्जारा-परमंद = जिये नज्जाराव को परमंद हो । जो प्रत्येक प्रत्येक दृश्य देखने का प्रीति हो । नज्जाराहरेब = निगाह को लुप्तनेवाला । नज्जारागान = (१) नज्जारा देखने का शौकीन । (२) ता० शरीर कल्पना । नज्जाराबाजी = ताक भाँक । ताकाभाँकी । खेलें लड़ना या पैकना ।

नज्जल^१—संज्ञा पुं० [प्र० नज्जल] सरकार की जमानत । बहुत की यह जमीन जो सरकार के अधिकार में हो ।

नज्जल^२—संज्ञा पुं० [प्र० नज्जल] देश 'नज्जल' ।

नट—संज्ञा पुं० [सं०] १. दुःख काव्य का पात्र नट करनेवाला मनुष्य । वह जो नाट्य करता हो । नाट्यकला में प्रवीण पुरुष । २. प्राचीन काल की एक मंकर जाति ।

विशेष—इसकी उत्पत्ति जीवकी स्त्री और जहाँ उर पुरुष में पानी गर्द है और इसका काम गाँव बजाने सेना में गया है ।

३ मनु के अनुसार प्रियों की एक जाति जिसकी उत्पत्ति ब्राह्मण सन्त्रियों में मानी जाती है । ४ पुराणानुसार एक मंकर जाति जिसकी उत्पत्ति मातृका से और और शूद्रा जाति से मानी जाती है । ५. एक नीच जाति जो प्रायः गाँव बजाकर और तरह तरह के खेल नमाणे अर्थात् करके प्रताप निर्वाह करती है ।
उ०—दीठ बरत बाँधी अर्धन चट्टि धारन न करत । इत उत ते मन दुहुन के नट गों भावत नयन ।—विहारी (शब्द०) ।

विशेष—उत्तर प्रदेश में इस जाति के लोग पाए जाते हैं वे बाँसों पर तरह तरह की कमरियाँ करने और रस्सों पर अनेक प्रकार में लम्बे हैं । अतः ये इस जाति के लोग प्रायः गाने बजाने का काम करते हैं ।

६. एक नाग का नाम ।

विशेष—इसे मट नामक एक दूसरे नाग के नाम मयुरा के निकट रहपुंड नामक स्थान पर बुद्धदेव ने बोद्धधर्म में दीक्षा किया था । इनके नाग भट से उस स्थान पर दो विहार भी बनवाये थे ।

७. मंपूर्ण जाति का एक राग जिसमें एक शुद्ध स्वर चमो है ।

विशेष—कुछ आचार्यों इसे मालवेज राग का और कुछ आचार्यों इसे श्री राग का पृथक् माना है । कुछ लोगों का मत है कि यह रागोपराज, मन्मथ और परिण के सेन से बना हुआ है और जो लोग मन्मथ, परबी, केदारा और बिलावर के सेन से बना हुआ मंकर राग है । रागमाला में दो राग नीलवर्ण रागिनी माना है । एक और शास्त्रकार ने इसे दोरक राग की रागिनी बनवाया है । उनके मत में यह मंपूर्ण जाति की रागिनी है और इसके माने का समय तीसरा पड़र और सध्या है । भिन्न भिन्न रागों के साथ इसे मिलाने से अनेक

संकर राग भी बनते हैं। जैसे, केदारनट, छायानट, कामोदनट आदि।

८. घणोक वृक्ष। ९. श्योनाक वृक्ष। १०. नर्तक (को०)। ११. एक प्रकार का बेतम या बेत (को०)।

नटई—संज्ञा स्त्री० [हि०] १. गला। गरदन। २. गले की घंटा। घांटी।

नटक—संज्ञा पुं० [सं०] वह जो नाट्य करता हो। अभिनेता (को०)।

नटवट—वि० [हि० नट + वट] १. जो रात कुछ न कुछ उपद्रव करता रहे। ऊधमी। उपद्रवी। चंचल। शरीर। २. चालाक। चालबाज। धूर्त। मक्कार।

नटखट्टी—संज्ञा स्त्री० [हि० नटखट] बदमाशी। शरारत। पात्रोपन।

नटचर्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] अभिनय।

नटता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. नट का भाव। २. नट का काम।

नटन—संज्ञा पुं० [सं०] १. नृत्य करना। नाचना। २. अभिनय करना (को०)।

नटना—क्रि० प्र० [सं० नट] १. नाट्य करना। उ०—कहूँ नट नट कोटि, भटि वर गावत गुण गनि।—गुमान (शब्द०)। २. नाचना। नृत्य करना।

नटना—क्रि० प्र० [हि०] हनकार करना। कहकर बदल जाना। मुकरना। उ०—(क०) ओहन नामति मुख नटनि प्रान्तिन सो लपटाति।—बिहारी (शब्द०)। (ख) कहन नटन रीभत स्मिभत मिलत जितन लजि जात।—बिहारी (शब्द०)।

नटना—क्रि० प्र० [सं० नट] नट करना। उ०—नटि लोक बोज हठी एक ऐसे। शेषय (शब्द०)।

नटना—क्रि० प्र० नट होना।

नटना—संज्ञा पुं० [सं०] १. नाच की बनी छत्रपती जिमसे रस छाना जाता है। २. मछली पकड़ने का वह बड़ा टोकरा जिसका पेंदा कटा होता है। टांग।

नटनागर—संज्ञा पुं० [सं० नट + नागर] कृष्ण। उ०—जिन हठ करि री नटनागर सौं। नरी ही है देव काल।—तंद० प्र०, ३६७।

नटनायक—संज्ञा पुं० [सं०] नटों में प्रधान, श्रीकृष्ण। उ०—नटनायक नंदलाल को मन पकरि लचावे।—धनानंद पु० ४५५।

नटनारायण—संज्ञा पुं० [सं०] एक राग जो हनुमत के मत से मेघ राग का नीमरा पुत्र और भरत के मत से हीरक राग का पुत्र है। लेकिन सोमेश्वर और कल्लिनाथ के मत से यह छह रागों में से एक है और कामादी, कल्याणी, आभीरी, नाटिका, सारंगी और नट हंसीरा ये छह इसकी रागिनियाँ हैं।

विशेष—यह सपूर्ण जाति का एक राग है, इसमें सब शुद्ध स्वर लगते हैं और यह ऐमंत ऋतु में रात के समय २१ दंड से २६ दंड तक गाया जाता है। कुछ लोग इसे मधुमाध, बिलावल क मेल से बना हुआ संकर राग भी मानते हैं।

एक और शास्त्रकार के मत में यह वाङ्मय जति का राग है। इसमें निषाद वर्जित है और यह बरसात में तीसरे पहर गाया गया जाता है। उसके अनुसार बिलावल, कामोदी, सावेरी, सृङ्खी और सोंठ इसकी रागिनियाँ और शुद्धनट, मेघनट, हम्मीरनट, सारंगनट, छायानट, कामोदनट, केदारनट, मेघनट, गोड़नट, भूपाननट, जयजयनट, शंकरनट, हीरनट, श्यामनट, वराङ्गीनट, विभासनट, विहासनट, और शंकरा-भरणनट इसके पुत्र हैं। पर वास्तव में ये सब संकर राग हैं जो नट तथा निम्न निम्न रागों के मेल से बनते हैं।

नटनि—संज्ञा स्त्री० [सं० नटन] नृत्य। नाच।

नटनि—संज्ञा स्त्री० [हि० नटना] इनकार। धस्वीकृति। उ०—सख हिये खिनखिन नटनि अनख बढ़ावत लाल।—बिहारी (शब्द०)।

नटनी—संज्ञा स्त्री० [सं० नट + नी (प्रत्य०)] १. नट की स्त्री। २. नट जाति की स्त्री। उ०—नटनी डोमिन डाटिनि महनाथन परकार। निरखन नाब विनोद सौं विहंसत खेलत नार।—जायसी (शब्द०)।

नटपत्रिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] बैंगन। भट्टा।

नटवट्टा—संज्ञा पुं० [सं० नट + वट] नट का गेंद। उ०—घागे सबर किये मोहट्टा। बाटौ दूतय या नटवट्टा।—रा० क०, पु० ६१।

विशेष—नट या बाजीगर खेल दिखाने समय कई गेंद हाथ में लेकर एक साथ हवा में उछालते हैं। गेंदों का ऊपर जाना और गाना नकी तेजी से होता है और ऐसा लगता है मानो जो गेंद लपट जा रही थी वह बीच से ही वापस लौट पार् हो।

नटबाजी—संज्ञा स्त्री० [सं० नट + हि० बाजी] नट का कार्य। अभिनय। उ०—गह नटबाजी नट जेव नाचे किमि करि या गति बी-हा।—सं० दरिया, पु० १६३।

नटभूषण—संज्ञा पुं० [सं०] हरताल।

नटमंडन—संज्ञा पुं० [सं० नटमण्डन] हरताल। (हि०)

नटमंडल—संज्ञा पुं० [सं० नटमण्डल] हरताल।

नटमल—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का राग।

नटमल्लार—संज्ञा पुं० [सं०] सपूर्ण जाति का एक संकर राग।

विशेष—इसमें सब शुद्ध स्वर लगते हैं। यह नट और मल्लार के योग से बनता है।

नटरंग—संज्ञा पुं० [सं० नटरङ्ग] १. रंगमंच। २. वह वस्तु जो भ्रम हो (ला०) (को०)।

नटराज—संज्ञा पुं० [सं०] १. निपुण नट। नटों में प्रधान या श्रेष्ठ नट। उ०—लरत कहूँ पायक सुभट कहूँ नतंत नटराज।—केशव (शब्द०)। २. श्रीकृष्ण। ३. भगवान् शंकर। ४. शिव की एक प्रसिद्ध मूर्ति का नाम।

नटवना—क्रि० प्र० [सं० नट से नामिक धातु] नाट्य करना। अभिनय करना। स्वांग भरना। उ०—माधो लू मुनिये ब्रज

ज्योहारा एक खालि नटवति बहु खीला एक कर्म गुन गावति ।
—सुर (शब्द०) ।

नटवर^१—वि० [सं०] बहुत चतुर । चालाक ।

नटवर^२—संज्ञा पुं० १. प्रधान नट । नाट्यकला में बहुत प्रवीण मनुष्य । २. श्रीकृष्ण जो नाट्यकला और नाटक कला के धारक थे । ३. सूत्रधार (को०) ।

नटवा^१—संज्ञा पुं० [हि० नाटा] [बी० नटिया] छोटे कद का या कम उमर का बाल ।

नटवा^२—संज्ञा पुं० [सं० नट] नट । उ०—बिन पग नटवा निरत करत हैं, बिन कर बाजे ताक ।—घरम०, पृ० ११ ।

नटवासरसों—संज्ञा पुं० [हि० नाटा (= छोटा) + सरसों] साधारण सरसों ।

विशेष—१० 'सरसों' ।

नटसंज्ञक—संज्ञा पुं० [सं०] १. गोवती । हस्ताल । २. नट । अभिनेता ।

नटसार^१—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'नाट्यशाला' ।

नटसारा^२—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'नाट्यशाला' ।

नटसारी^३—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'नटसार' । उ०—जिन नटवे नटसारी साजी । जो खेले सो सीसे बाजी ।—कबीर ग्रं०, पृ० २०७ ।

नटसाल—संज्ञा स्त्री० [सं० नट (= तिरोहित) + साल्य] कटि का वह भाग जो निकाल लिए जाने पर भी टूटकर शरीर के भीतर रह जाता है । उ०—लगन जो हिण दुसार करि तऊ रहत नटसाल ।—बिहारी (शब्द०) । २. बाण की गाँसी जो शरीर के भीतर रह जाय । ३. फाँस जो बहुत छोटी होने के कारण नहीं निकाली जा सकती । उ०—सालति है नटसाल सी क्यों हैं निकसति नाहि ।—बिहारी । (शब्द०) । ४. कसम । पीडा । ऐसी मानसिक व्यथा जो सदा तो न रहे पर समय समय पर किसी बात या मनुष्य के स्मरण से होती हो । उ०—उठै सदा नटसाल सो सीनिन के उर मालि ।—बिहारी (शब्द०) ।

नटांतिका—संज्ञा स्त्री० [सं० नटान्तिका] लज्जा । शरम ।

विशेष—लज्जा होने से नाट्य नहीं हो सकता, इसलिये इसे 'नटांतिका' कहते हैं ।

नटाई—संज्ञा स्त्री० [देश०] ओलाहों का वह घोड़ा जिससे किनारे का ताना ताना जाता है ।

नटित^१—संज्ञा पुं० [सं०] अभिनय । हावभाव [को०] ।

नटित^२—वि० ऊँचा हुमा । गका हुमा [को०] ।

नटिन—संज्ञा स्त्री० [सं० या हि० नट] १. नट की स्त्री । २. नट जाति की स्त्री ।

नटो—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. नट जाति की स्त्री । २. नाचनेवाली स्त्री । नर्तकी । उ०—बाजत ताल धुंमंग धुनि, नाचति बटी

५-१७

नवीन ।—हम्मीर०, पृ० ३३ । ३. अभिनय करनेवाली स्त्री । अभिनेत्री । ४. अभिनय करनेवाले नट की स्त्री । ५. देखा । ६. नखी नामक वस्त्रद्रव्य । ७. मुख्य अभिनेत्री जो सूत्रधार की पत्नी होती थी (को०) ।

नटुआ^१—संज्ञा पुं० [हि० नट + आ (प्रत्य०)] दे० 'नट' ।

नटुआ^२—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'नटई' ।

नटुवा^१—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'नट' । उ०—ब्रजनिधि नेह निधान निपट नव नागर नटुवा । रह्यो रीति में भूमि भूमि धूमत ज्यों लटुवा ।—ब्रज० ग्रं०, पृ० १८ ।

नटुवा^२—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'नटई' ।

नटेश—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'नटेश्वर' । उ०—देखा मनु ने नतित नटेश, हत चेत पुकार उठे विशेष ।—कामायनी, पृ० २५४ ।

नटेश्वर—संज्ञा पुं० [सं०] महादेव । शिव ।

नट्ट—संज्ञा पुं० [सं० नट या हि० नट] [बी० नट्टिन] दे० 'नट' ।

नटया—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. संगीत में एक प्रकार की रागिनी जो प्रायः नट के समान होती है । २. नटों की मंडली ।

नठना^१—क्रि० स० [सं० नट] नट करना । उ०—नठै लोक दोऊ हठी एक ऐसे ।—केशव (शब्द०) ।

नठना^२—क्रि० प्र० [सं० नट] नट होना ।

नड^१—संज्ञा पुं० [सं० नड] १. नरसल । नरकट । २. एक भोज प्रवर्तक ऋषि का नाम । ३. एक जाति जितका पेना लोहे की छड़ियाँ बनाना है ।

नड^२—संज्ञा पुं० [सं० नड, हि० नाला] दे० 'नाला' । उ०—माछ देख उपनिर्मा, नड जिम निसरे पाई ।—डोला०, पृ० ८८३ ।

नडक—संज्ञा पुं० [सं० नडक] १. कंधों के मध्य की हड्डी । २. हड्डी के भीतर का छेद [को०] ।

नडनेरि—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का वृक्ष [को०] ।

नडप्राय—वि० [सं०] नरसल की अधिकता से पूर्ण [को०] ।

नडभक्त—संज्ञा पुं० [सं०] वह स्वान जहाँ नरसल की बहुतायत हो [को०] ।

नडमीन—संज्ञा पुं० [सं० नडमीन] भिगा मछली ।

नडवन—संज्ञा पुं० [सं०] नरसल का वन [को०] ।

नडश—वि० [सं०] नरसल से भरा हुआ या ढका हुआ [को०] ।

नडह—वि० [सं०] लडह । सुंदर । सुचर । सुबसूरत । सुरूप [को०] ।

नडिनी—संज्ञा स्त्री० [सं० नडिनी] १. वह नदी जिसमें सरपत अधिक हो । नरसल का डेर ।

नडिल, नडवान्—वि० [सं० नडिल, नडवत्] [वि० बी० नडवती] नरसल की बहुतायतवाला [को०] ।

नडो—संज्ञा स्त्री० [हि० नली ?] एक प्रकार की घातिशबाजी ।

नडवल—संज्ञा पुं० [सं०] १. सरपत की चटाई । २. वह प्रदेश जहाँ

पर मरपत या नरसल या घास बहुत अधिक हो । ३. एक वैदिक देवता का नाम ।

नट्यशला—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. पुराणानुसार वैराज मनु की स्त्री का नाम । २. नरसल की राशि या देरी (की०) ।

नट्याभू—संज्ञा स्त्री० [सं०] तल । फर्श । कुट्टिम (की०) ।

नट्याना—क्रि० सं० [सं० नट्य, प्रा० नटु से नामिक धातु] १. गुथना । पिरोना । २. बाँधना । कम्पना । उ०—छोटत जन बैकुंठ जात को लागे परिकर नटन ।—देव (शब्द०) ।

नतसंघ—संज्ञा पुं० [सं० नितम्ब] उ०—कुटिल केम बय स्याम गौर गुन वाम काम रति । चोर घनी उन्नित नतसं (जानि) रवि त्रिब बौय गति ।—पु० रा०, १२।२४८ ।

नत' वि० [सं०] १. मुड़ा हुआ । टेढ़ा । २. नम्र । विनीत । झुका हुआ । ३. प्रणत । नमन करता हुआ । ४. पराजित । परास्त (की०) ।

नत'—संज्ञा पुं० [सं०] १. तगर की जड़ । तगरमूल । २. मध्याह्न रेखा से खमध्य या किसी ग्रह की दूरी । ६. झुकने की स्थिति । ४. निसंब । जैते नततट (की०) ।

नतइस'—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'नतैत' ।

नतकाज—संज्ञा पुं० [सं०] याम्योत्तर या खमध्य से काल संबंधी दूरी (ज्यो०) ।

नतकुरा—संज्ञा पुं० [हि० नाती] बेटे का बेटा । बेटो की सतान नवासा । नानी ।

नतगुह्या—संज्ञा पुं० [देश०] चोपा ।

नतघटिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक घंटा या घड़ी का कोण (ज्यो०) ।

नतदुम—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का शास्त्रवृक्ष जिसे लताशाल कहते हैं ।

नतनासिका, नतनाखी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. खमध्य से किसी तारे की कालगन दूरी । २. मध्याह्न के बाद धीरे धीरे रात्रि के बीच जन्म की कोई घड़ी या जन्मकाल (की०) ।

नतनासिक—वि० [सं०] बिपटी नाकवाला (की०) ।

नतपाल—संज्ञा पुं० [सं० नत + पालक] प्रणाम करनेवाले का पालन करनेवाला । प्रणतपाल । शरणपाल । उ०—कान्हू कृपाल बड़े नतराल गए खल सेचर खीस सलाई ।—तुलसी (शब्द०) ।

नतभ्र—वि० स्त्री० [सं०] तिरछी भौंहवाली (की०) ।

नतम—वि० स्त्री० [सं० नत (= टेढ़ा)] बाँका (दि०) ।

नतमी—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार का वृक्ष जो आसाम प्रदेश में बहुत होता है ।

विशेष—इसकी लकड़ी चिकनी, मजबूत और माल रंग की होती है, और उससे मेज, कुरसियाँ और नाव आदि बनाई जाती हैं ।

नतर'—क्रि० वि० [हि०] दे० 'नतर' ।

नतर'—वि० [हि०] निरंतर । निरन्तर । हमेशा । उ०—फागुन

मास सुहावनों, ब्रजनिधि आए होत । नतर कुलाहल करत हैं, और और पिक गोत ।—ब्रज० सं०, पु० २२ ।

नतरक'—क्रि० वि० [हि० न + तो] नहीं तो । उ०—कहत सब कवि कमल से मो मत नैन पखान । नतरक बस इन विय लगत उपजत विरह कृपान ।—बिहारी (शब्द०) ।

नतरक'—क्रि० वि० [हि० न + तो] नहीं तो । अन्यथा । उ०—(क) नतर राजा पुरजन परिवार । हमहि सहित सब होत खुपार ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) नतर लखन तिय राम वियोग । हहरि मरत सब लोग कुरोग ।—तुलसी (शब्द०) ।

नतशिर—वि० [सं०] नम्र । विनीत । उ०—मेरे उस जीवन के मधु अभिषेक में नतशिर देख भुके ।—लहर, पु० ६६ ।

नतांग—वि० पुं० [सं० नताङ्ग] १. जिसका अंग या शरीर झुका हो । २. झुका हुआ । नत (की०) ।

नतांगी—संज्ञा स्त्री० [सं० नताङ्गी] १. स्त्री । औरत ।

नतांगी—वि० झुके हुए अंगवाली । विनीता ।

नतांश—संज्ञा पुं० [सं०] वह वृत्त जिसका केंद्र भूकेंद्र पर होता है और जो विपुल रेखा पर लंब होता है ।

विशेष—यह वृत्त ग्रहों आदि की स्थिति निश्चित करने में काम आता है ।

नतामूल—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का वृक्ष जो पश्चिमी घाट पर्वत पर बहुत होता है ।

विशेष—इसकी लकड़ी नरम होती है जिससे मेज कुरसी आदि बनती हैं । इसके रेशे मजबूत होते हैं जिनसे रस्से बनाते हैं । इसके पेड़ से एक प्रकार की जहरीली राल निकलती है जिसे तीरों में लगाकर उन्हें जहरीला बनाते हैं । इसे जयूद भी कहते हैं ।

नति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. झुकाव । उतार । २. नमस्कार । प्रणाम । ३. विनय । विनती । ४. नम्रता । साकमारी । ५. उद्योतिष में एक प्रकार की गणना । ६. वक्रता । टेढ़ाई (की०) ।

नतिनी—संज्ञा स्त्री० [हि० नाती का स्त्री रूप] लड़की की लड़की । नातिन ।

नतीजा—संज्ञा पुं० [अ० नतीजह्] १. परिणाम । फल । उ०—तुम्हें देखि पावे, मुख पावे बहु भीति, ताहि दीखे नेकु निरखि, नतीजा नेह नाथे को ।—कालिदास (शब्द०) ।

क्रि० प्र०—निकलना ।—निकलना ।—पाना ।—मिलना ।

२. परीक्षाफल (की०) । ३. अंत (की०) ।

नतु'—क्रि० वि० [हि० न + तो धातु सं० न + तु] नहीं तो । अन्यथा । उ०—कहि आपनो तू भेद । नतु चित्त उपजत भेद ।—केशव (शब्द०) ।

नतैता—संज्ञा पुं० [हि० नाता + ऐत (प्रत्यय)] संबंधी । रिश्तेदार । नातेदार । उ०—नाते हाते लिखि कै नतैतन ते आय गुह लोगन देखाय कै करम बेते डर के ।—रघुनाथ (शब्द०) ।

नट्या—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'नट' ।

नट्यी—संज्ञा स्त्री० [हि० नट (= आभूषण) या नाचना] १. कागज या कपड़े आदि के कई टुकड़ों को एक साथ मिलाकर और

धारदार छेद करके सबको छोरे या घालपीन आदि से एक ही में बाँधना वा फसाना । २. इस प्रकार एक ही में नाथे हुए कई कागज आदि जो प्रायः एक ही विषय से संबंध रखते हैं । मिस्ल ।

नत्थूह—संज्ञा पुं० [सं०] कठफोड़वा नामक पक्षी ।

नत्र—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का नृत्य (को०) ।

नथ—संज्ञा स्त्री० [हि० नाथना (= नाथ का अगला भाग)] एक प्रकार का गहना जिसे स्त्रियाँ नाक में पहनती हैं । उ०—(क) सहजै नथ नाक ते खोलि घरी करघी कौन धौं फंड या सेसरि को । —कमलापति (शब्द०) । (ख) इहि द्वै ही मोती सुगय नू नय गरव निसीक । बिहि पहिरे जग दग प्रसति हंसति लसन सी नाक ।—बिहारी (शब्द०) ।

विशेष—यह बिल्कुल वृत्ताकार बाली की तरह का होता है और सोने आदि का तार खींचकर बनाया जाता है । इसमें प्रायः गुँज के साथ चबक, बुलाक या मोतियों की जोड़ी पहनाई रहती है । छोटी नथ को बेसर कहते हैं । हिंदुओं में नथ सोमारय का चिह्न समझी जाती है ।

नथना^१—संज्ञा पुं० [सं० नस्त (= नाक)] १. नाक का अगला भाग । नाक का वह चमड़ा जो छेदों के परदे का काम देता है ।

मुहा०—नथना फुलना=क्रोध करना । गुस्सा दिखाना ।

नथना फूटना=क्रोध माना ।

२. नाक का छेद ।

नथना^२—क्रि० प्र० [हि० नाथना का क० रूप] १. किसी के साथ नथी होना । नाथा जाना । एक सूत्र में बाँधना । २. छिदना । छेदा जाना । जैसे,—मेरे पैर काँटों से नथ गए हैं ।

नथनी^१—संज्ञा स्त्री० [हि० नथ + नी (प्रत्य०)] १. नाक में पहनने की छोटी नथ । २. बुलाक । ३. तनवार की भूट पर लगा हुआ छलना । ४. नथ के आकार की कोई चीज ।

नथनी^२—संज्ञा स्त्री० [हि० नथना (= नाथा जाना)] बैज की नाक में नबी हुई रस्सी । नाथ ।

नथियाँ—संज्ञा स्त्री० [हि० नथ + इया (प्रत्य०)] दे० 'नथ' ।

नथुना^१—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'नथनी' ।

नथुनी^१—संज्ञा स्त्री० [हि० नथनी] नाक में पहनने की नथ । ल०—बैनन मैंन को बैन बजै यह नासिका रासथली नथुनी की ।—गुमान (शब्द०) ।

मुहा०—नथुनी उतारना=कुमारी का कीमार नष्ट करना । कुमारी के साथ प्रथम समागम करना । बीरा उतारना । सिर ढँकाई करना ।

विशेष—इस मुहावरे का प्रयोग केवल वेश्याओं की लड़कियों के संबंध में होता है ।

नथुना^२—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'नथुनी' । उ०—नथुना से जाइ केरि बहुत सुवाँवे फूल ।—सुंदर० प्र०, भा० २, पृ० ३६६ ।

नथुनी^२—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'नथुनी' । उ०—छोटी नथुनी बड़े मुतियान बड़ी अँखियान बड़ी लुधरे है ।—ठाकुर०, पृ० ५ ।

नथूली^१—संज्ञा स्त्री० [हि०] नासाछिद्र । नथना । उ०—तनक तनक सी नाक नथूली । राजत नील सुषीत भँगूनी ।—नंद० प्र०, पृ० २४५ ।

नथू^२—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'नथ' । उ०—बनी कि कीर नासिका, सु गन्ध नथू भासिका ।—ह० रासो, पृ० २४ ।

नइ—संज्ञा पुं० [सं०] १. बड़ी नदी अथवा ऐसी नदी जिसका नाम पुल्लिङ्गवाची हो; जैसे, सोन, दामोदर, गङ्गा, यमुना । उ०—मिल्यो महानद सोन सुहावन ।—तुलसी (शब्द०) । २. एक ऋषि का नाम । ३. समुद्र (को०) । ४. मेघ । बादल (को०) ।

नदथु—संज्ञा पुं० [सं०] १. नाद । गर्जन । २. बेल का ढकरना । ३. रुदन (को०) ।

नदन—संज्ञा पुं० [सं०] शब्द करना । आवाज करना ।

नदनदोपति—संज्ञा पुं० [सं०] सागर । समुद्र ।

नदना^१—क्रि० प्र० [सं० नदन (= शब्द करना)] १. पशुओं का शब्द करना । रँभाना । बँधाना । उ०—महिषी सुरभि पूर पय धारणि वृषभ नरत सानंदा ।—रघुराज (शब्द०) । २. बजना । शब्द करना । उ०—(क) एक घोर जलद के भाचे धहरारे मंजु एक घोर नाकन के नदत भगारे हैं ।—रघुराज (शब्द०) । (ख) नदन दुंदुभि डंका बदन मारु हका, चलत लागत धंका कहत भागे ।—सूदन (शब्द०) । नदनु—संज्ञा पुं० [सं०] १. मेघ । बादल । २. सिंह । शेर । ३. शब्द । आवाज । गर्जन । ४. स्तुति की ध्वनि (को०) । ५. युद्ध । संग्राम (को०) ।

नदपति—[सं०] समुद्र (को०) ।

नदम—संज्ञा स्त्री० [देश०] दक्षिण में पैदा होनेवाली एक प्रकार की कपास ।

नहर^१—संज्ञा स्त्री० [देश०] नद या नदी के यासयाम का प्रदेश ।

नहर^२—वि० जिसे किसी प्रकार का भय न हो । निहर ।

नहराज—संज्ञा पुं० [सं०] समुद्र ।

नदान^१—वि० [फ़ा० नादान] बे समझ । बुद्धिहीन । उ०—दान दे रे जिय को नदान निर्दई कान्हू, बसो मब रैन मोहि अब घर जान दे ।—देव (शब्द०) । २. छोटी उम्र का । बचपन छोटी उम्र का जो संसार का व्यवहार बिल्कुल न समझ सकता हो । उ०—(क) जो जमुमति तें जाय पुकारें । लखि नदान तहँ हम ही हारें ।—रघुनाथ (शब्द०) । (ख) भैया तोर निपट नदान छोटी ननदी ।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ३४० ।

नदामश—संज्ञा स्त्री० [प्र०] १. पश्चात्ताप । २. लज्जित होने का भाव । हया । उ०—खोजे खलक नहि प्राप में । नाहक नदामत को सहे ।—तुरसी० प्र०, पृ० २७ ।

नदारता—वि० [फ़ा० नदारद] दे० 'नदारद' ।

नदारद—वि० [फ़ा०] गायब । अप्रस्तुत । जो मौजूद न हो । लुप्त । जैसे,—जब बरस खोला तब उसमें खरया पैसा सब नदारद था ।

नदी—वि० [सं०] भाग्यशाली [को०] ।

नदि—संज्ञा स्त्री० [सं०] स्तुति ।

नदिआ(पु) —संज्ञा स्त्री० [सं० नदी] दे० 'नदी' । उ०—नदिआ जोर भउ अथाह । भीम मुषंगम पय चलसाह ।—विद्यापति, पृ० ३३३ ।

नदिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] छोटी नदी या नाला [को०] ।

नदिया—संज्ञा पुं० [सं० नवदीप] बंगाल प्रांत का एक प्रसिद्ध नगर जो न्यायशास्त्र का विद्यापीठ माना जाता है ।

नदिया(पु) —संज्ञा स्त्री० [सं० नदिका, अथवा हिं० नदी + इया (प्रत्यय)] दे० 'नदी' ।

नदी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. जल का वह प्राकृतिक और भारी प्रवाह जो किसी बड़े पर्वत या जलानय आदि से निकलकर किसी निश्चित मार्ग से होता हुआ प्रायः बारहों महीने बहता रहता हो । दरिया ।

विशेष (क) पहाड़ों पर बरफ के गलने या वर्षा होने के कारण जो पानी एकत्र होता है वह गुरुत्वाकर्षण के सिद्धांत के अनुसार नीचे की ओर ढलना और मैदानों में से होता हुआ प्रायः समुद्र तक पहुँचता है । कभी यह पानी अपनी स्वतंत्र धारा में समुद्र तक पहुँचता है और कभी समुद्र तक जानेवाली किसी दूसरी बड़ी धारा में मिल जाता है । जो धारा सीधी समुद्र तक पहुँचती है वह भौगोलिक परिभाषा में मुख्य नदी कहलाती है और जो दूसरी धारा में मिल जाती है वह सहायक नदी कहलाती है । ऐसा भी होता है कि नदी या तो जाकर किसी झील में मिल जाती है और या किसी रेतीले मैदान आदि में लुप्त हो जाती है जिस स्थान से नदी का प्रारंभ होता है उसे उसका उद्गम कहते हैं, जिस स्थान पर वह किसी दूसरी नदी से मिलती है उसे संगम कहते हैं और जिस स्थान पर वह समुद्र में मिलती है उसे मुहाना कहते हैं । नदी जिस मार्ग से बहती है वह मार्ग गति कहलाता है और उसके बहाव के कारण जमीन में जो गड्ढा बन जाता है वह गर्भ कहलाता है । साधारणतः नदियाँ बारहों महीने बहती रहती हैं, पर छोटी नदियाँ वर्षा के दिनों में बिलकुल सूख जाती हैं । वर्षा में प्रायः नयी नदियों का जल बहुत अधिक बढ़ जाता है क्योंकि उन दिनों घास पत्तों के प्रांत का वर्षा का जल भी आकर उनमें मिल जाता है । इससे उसका पानी बहुत अधिक मटमैला भी होता है ।

(ख) 'नदी' वाचक शब्द से ईश, नद्य, प, पति, वर इत्यादि पाने वाली शब्द या प्रत्यय लगाने से बहु 'समुद्र' वाची शब्द हो जाता है । जैसे, नदीश, नदिपति, नदिपति, नदिनीवर इत्यादि ।

पर्याय—सरि । सरिता । आपगा । तरमिली । जीविली । तटिनी । हृदिनी । पुनी । स्रोतस्वती । स्रवती । निम्नवा । निर्मलणी । सरस्वती । समुद्रगा । कुलवती । कुलकषा । कल्लोनिनी । स्रोतस्वती । अषिकुत्पा । स्रोतोवहा ।

यो०—नदीश = समुद्र ।

मुहा०—नदी नाव संयोग = ऐसा संयोग जो बार बार न हो, कभी एक बार इतिहास हो जाय ।

२. किसी तरल पदार्थ का बड़ा प्रवाह । जैसे,—रक्त की नदी बह निकली ।

नदीकदम्ब—संज्ञा पुं० [सं० नदीकदम्ब] १. बड़ी गोरखमुंडी । २. नदियों का समूह [को०] ।

नदीकान्त—संज्ञा पुं० [सं० नदीकान्त] १. समुद्र । २. समुद्रफल । ३. सिधुवार नामक वृक्ष । ४. वरुण [को०] ।

नदीकाता—संज्ञा पुं० [सं० नदीकान्ता] १. जामुन का पेड़ । २. काकजंबा ।

नदीकूल—संज्ञा पुं० [सं०] नदी का तट [को०] ।

नदीकूलप्रिय—संज्ञा पुं० [सं०] जलवेत ।

नदीकूकठ—संज्ञा पुं० [सं० नदीकूकठ] नैपाली बोझो का एक तायं । विशेष—कहते हैं कि एक विशिष्ट योग में यहाँ स्नान करने से एश्वर्य की वृद्धि और शत्रुओं का नाश होता है ।

नदीगर्भ—संज्ञा पुं० [सं०] नदी के दोनों किनारों के बीच का स्थान । वह गड्ढा जिसमें से होकर नदी का पानी बहता है ।

नदीगूलर—संज्ञा पुं० [हिं०] सिंघा ।

नदीज^१—संज्ञा पुं० [सं०] १. काला सुरमा । २. संधा नामक । ३. अजुन वृक्ष । ४. समुद्रफल । ५. महाभारत के अनुसार भीष्म जो गंगा के गर्भ से उत्पन्न हुए थे । ६. कमल [को०] ।

नदीज^२—वि० जो नदी से उत्पन्न हुआ हो ।

नदीजा—संज्ञा स्त्री० [सं०] अग्निमय वृक्ष । धरणी का पेड़ ।

नदीजामुन—संज्ञा स्त्री० [सं० नदी + हिं० जामुन] छोटा जामुन ।

नदीतर—संज्ञा पुं० [सं०] नदी पार करना [को०] ।

नदीतरस्थान—संज्ञा पुं० [सं०] वह स्थान जहाँ से नदी पार की जाय । बाट ।

नदीदत्त—संज्ञा पुं० [सं०] बुद्धदेव का एक नाम ।

नदीदुर्ग—संज्ञा पुं० [सं०] नदी के बीच में या द्वीप में बना हुआ दुर्ग । ऐसा दुर्ग से निकट माना गया है ।

नदीदोह—संज्ञा पुं० [सं०] वह कर जो नदी पार करने के बदले में दिया जाय । नदी पार होने का महसूल ।

नदीधर—संज्ञा पुं० [सं०] गंगा को मस्तक पर धारण करनेवाले, शिव । महादेव ।

नदीन—संज्ञा पुं० [सं०] १. समुद्र । २. वरुण देवता । ३. वरुण या बन्ना नामक जंगली पेड़ जो पलाश की तरह का होता है ।

नदीनिवास(पु)—संज्ञा पुं० [सं०] समुद्र । उ०—नदीनिवासउत्तरार, आणू एक अविष ।—ढोला, दू० २३० ।

नदीनिष्पाव—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का धान जिसका बावक कड़ा होता है । बोरो ।

विशेष—वैद्यक में यह कड़वा, कसेला, भारी, रुखा, बात और कफ उत्पन्न करनेवाला और विष-दोष-नाशक माना गया है ।

नदीपति—संज्ञा पुं० [सं०] १. समुद्र । २. वरुण ।

नदीपूर—संज्ञा पुं० [सं०] नदी जिसके किनारे बाढ़ माने से हुये हों [को०] ।

नदीभ्रूलातक—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का भिलावा जो जल के किनारे होता है ।

विशेष—इसके पत्ते गुमा के पत्तों के समान होते हैं, और फल लाल रंग का होता है । वैद्यक में यह कड़ुषा, कसेला, मधुर, ठंडा, ग्राही वातकारक और कफघ्न, रक्तपित्त तथा वणनाशक माना जाता है ।

नदीभव—संज्ञा पुं० [सं०] सेंधा नमक ।

नदीभव^२—वि० जो नदी में उत्पन्न हुआ हो ।

नदीभाषक—संज्ञा पुं० [सं०] मानकंद या मानकचू नामक कंद ।

नदीमातृक—संज्ञा पुं० [सं०] वह देश जहाँ की खेती बारी का सारा काम केवल नदी के जल से होता हो और जहाँ वर्षा के जल की कोई आवश्यकता न हो । जैसे, मिस्र देश ।

नदीमुख—संज्ञा पुं० [सं०] वह स्थान जहाँ समुद्र में नदी गिरती हो । नदी का मुहाना ।

नदीरथ—संज्ञा पुं० [सं०] नदी का प्रवाह या धारा [को०] ।

नदीवृक्ष—संज्ञा पुं० [सं० नदीवृक्ष] नदी का मोड़ [को०] ।

नदीवट—संज्ञा पुं० [सं०] बट या बड़ का पेड़ ।

नदीश—संज्ञा पुं० [सं०] समुद्र ।

नदीध्या—वि० [सं०] १. नदी में स्नान करनेवाला । २. नदी के संकटपूर्ण स्थलों, गहराई और धारा को जाननेवाला । ३. अनुभव । दक्ष । कुशल । पारंगत [को०] ।

नदीसर्ज—संज्ञा पुं० [सं०] अर्जुन वृक्ष ।

नदेया—संज्ञा पुं० [सं०] भूमि जल । छोटी जामुन ।

नदीला—संज्ञा पुं० [हिं० नदि + भोला (प्रत्य०)] मिट्टी की छोटी नदि ।

नद^(१)—संज्ञा पुं० [सं० नद] दे० 'नद' । उ०—हलकत धाव धाहत धीर । किलकत नद नारद कीर ।—पृ० २०, १६६० ।

नद^२—संज्ञा पुं० [सं० नद] दे० 'नद' ।

नदना^(१)—क्रि० घ० [हिं०] दे० 'नदना' ।

नदी^(१)—संज्ञा स्त्री० [सं० नदी] दे० 'नदी' ।

नद^३—वि० [सं०] १. बंधा हुआ । बद्ध । नका हुआ । नषा हुआ । २. छिपा हुआ । भीतरी तीर पर चुना हुआ या गुंथा हुआ [को०] । ३. संयुक्त । संबद्ध [को०] ।

नद^४—संज्ञा पुं० बंध । बंधन । बांध । गाँठ [को०] ।

नद्वि—संज्ञा स्त्री० [सं०] बांधने या गाँठ देने की क्रिया या स्थिति [को०] ।

नदी^२—संज्ञा स्त्री० [सं० नद्वि] दे० 'नाधा' ।

नद्धी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. चमड़े की डोरी । ताल । २. चमड़े की पट्टी [को०] ।

नद्य—वि० [सं०] १. नदी से उत्पन्न । २. नदी संबंधी [को०] ।

नद्याम्र—संज्ञा पुं० [सं०] समष्टिला । कोकुषा का पीधा ।

नद्यावर्तक—संज्ञा [सं०] फलित ज्योतिष में यात्रा के लिये एक शुभ योग ।

विशेष—यह योग उस समय होता है जब बुध अपनी राशि पर हो और बृहस्पति या शुक्र लग्न में हो प्रथवा मंगल उच्चस्थित हो और शनि कुंभ राशि में हो । कहते हैं, इस योग में यात्रा करने से सब प्रकार के शत्रुओं का बहुत संहार में नाश हो जाता है । इसे नद्यावर्तक भी कहते हैं ।

नद्यत्सृष्ट—संज्ञा पुं० [सं०] वह स्थान जो नदी के हट जाने से निकल आया हो । चर । गंगवरार ।

नधना—क्रि० घ० [सं० नध + हिं० ना (प्रत्य०)] १. रस्सी या तस्मे के द्वारा बैन, घोड़े आदि का उस वस्तु के साथ जुड़ना या बंधना जिसे उन्हें खींचकर ले जाना हो । जुनना । जैसे, बैल का गाड़ी या हल में नधना ।

मुहा०—काम में नधना = काम में लगना । जैसे, —तुम तो दिन रात काम में नधे रहते हो ।

२. जुड़ना । संबद्ध होना । ३. किसी कार्य का अनुष्ठान होना । काम का ठनना । जैसे, —जब यह काम नध गया है तब इसे पूरा ही कर डालना चाहिए ।

नधाना^(१)—क्रि० घ० [हिं० नधना का सक० रूप] दे० 'नधना' । उ०—तीरथ बरत के बेना हो, मन देहु नधाय ।—कबीर घं०, भा० ३, पृ० ३६ ।

नधाव—संज्ञा पुं० [हिं० नधना] मिचवाई के लिये पानी ऊपर चढ़ाने में ऊपर उलीचने के लिये जो कई गड्ढे बनाने पड़ते हैं उनमें सबसे नीचे का गड्ढा ।

ननद—संज्ञा स्त्री० [सं० ननद] दे० 'ननध' ।

ननदा—संज्ञा स्त्री० [सं० ननद] दे० 'ननद' [को०] ।

ननद—संज्ञा स्त्री० [सं० ननद] ननद । पति की बहन ।

नन^(१)—अव्य० [सं० ननु] दे० 'ननु' । उ०—नन चलै चित्त अर्थों ज्यों अचल, करत क्रिया त्यों त्यों प्रमित ।—हं० रासो, पृ० २५ ।

ननका^(१)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'नन्हा' ।

ननकारना^(१)—क्रि० घ० [हिं० न + करना] इनकार करना । अस्वीकार करना । मंजूर न करना ।

ननकारी^(१)—संज्ञा स्त्री० [हिं०] नकारने की क्रिया । नकार । अस्वीकार । उ०—कहि जोधराज यह अंस मैं ननकारी नाहिन करत ।—हम्मीर रा०, पृ० १६३ ।

ननकार^(१)—संज्ञा पुं० [हिं०] नकारने का भाव । अस्वीकार । उ०—जिह सिमरन नाही ननकार ।—कबीर घं०, पृ० २६० ।

ननकिलाटा^(१)—संज्ञा पुं० [सं० लांग क्लाय] एक प्रकार का सूती कपड़ा । उ०—ननकिलाट दम गज ।—मैला०, पृ० १०५ ।

ननकिलाठ^(१)—संज्ञा पुं० [हिं०] दे० 'ननकिलाट' ।

ननद—संज्ञा स्त्री० [सं० ननद] पति की बहन ।

ननदिया^(१)—संज्ञा स्त्री० [हिं० ननद + दया (प्रत्य०)] ननद । पति

की बहन । उ०—उठी मोरी लहुरी ननदिना तुम ठकुराइन हो ।—घरम०, पृ० ६३ ।

ननदी^१—संज्ञा स्त्री० [सं० ननन्दि] दे० 'ननद' ।

ननदीई—संज्ञा पुं० [सं० ननन्दिपति या ननन्दुपति, प्रा० खनन्दा + वह (= पति), हि० ननद + ओई (प्रत्य०)] ननद का पति । पति का बहनोई ।

ननसार—संज्ञा स्त्री० [हि० नाना + सास] ननिहाल । नाना का घर । उ०—रामचन्द्र लक्ष्मण सहित घर राखे बरारस्य । बिदा कियो ननसार की संग ज युध्न भरस्य ।—केसव (शब्द०) ।

नना—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. माता । २. कन्या । लड़का । ३. वाक्य ।

ननिअउर्रा^१—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'ननिहाल' ।

ननिअउर्रा^२—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'ननिहाल' ।

ननियासगुर—संज्ञा पुं० [हि० नानी + दया (प्रत्य०) + सगुर] स्त्री या पति का नाना ।

ननिया सास—संज्ञा स्त्री० [हि० नाना + या (प्रत्य०) + सास] स्त्री या पति की नानी ।

ननिहारी^१—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की ईंट ।

ननिहाल—संज्ञा पुं० [हि० नाना + हाल] नाना का घर । ननसार ।

ननु—अव्य० [सं०] एक अव्यय जिसका व्यवहार कुछ पूछने, संदेह प्रकट करने अथवा वाक्य के आरंभ में किया जाता है (क्व०) ।

ननुआ^१—वि० [सं० लाघव्य] सुन्दर । सलोना । उ०—मनुष्या नयन नलिनि जनु अनुपम अंक निहारइ बोरा ।—विद्यापति, पृ० ६२७ ।

ननुकारना^१—क्रि० प्र० [हि०] इनकार करना । अस्वीकार करना । उ०—जनु ननुकारति भानिनि तिया । भान युवति रत जान्यो पिया ।—नंद० प्र०, पृ० ११६ ।

ननुनच—क्रि० वि० [सं० ननु + नच] आनाकानी । आगापीछा । उ०—द्रोणाचार्य जैसे गुरुजनों के वच करने में भी उन्होंने ननुनच नहीं की ।—बी० ल० महा०, पृ० २३४ ।

ननोई—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का जंगली धान जो बिना जोते बोए वर्षा में जलान में में स्वयं पैदा होता है । एसही । तिन्नी ।

नन्ना^१—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'नाना' ।

नन्ना^२—वि० [हि०] दे० 'नन्हा' ।

नन्यौरा^१—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'ननिहाल' ।

नन्हा—वि० [सं० व्यञ्ज या न्यून] [वि० स्त्री० नन्हीं] छोटा ।

मुहा०—नन्हा सा = बहुत छोटा । जैसे, नन्हा सा बच्चा, नन्हा सा हाथ ।

नन्हाई^१—संज्ञा स्त्री० [हि० नन्हा + ई (प्रत्य०)] १. छोटापन । छोटाई । २. अप्रतिष्ठा । बदनामी । ठेठी । उ०—(क) बृद्ध वयस सुन भयो कन्हाई । नंदमहर की करे नन्हाई ।—सूर (शब्द०) । (ख) ब्रज परगन सरदार महर तू तिनकी करत नन्हाई ।—सूर (शब्द०) ।

नन्हिया^१—संज्ञा पुं० [हि० नन्हा] १. एक प्रकार का धान । २. इस धान का चावल ।

नन्हैया^१—वि० [हि० नन्हा + ऐया (प्रत्य०)] दे० 'नन्हा' । उ०—चुटकी देहि नचावे सुन जानि नन्हैया ।—सूर (शब्द०) ।

नपता^१—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'नपाई' ।

नपता—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का पक्षी जिसके डैनों पर काली या लाल चित्तियाँ होती हैं ।

नपना^१—संज्ञा पुं० [हि० नाप] दे० 'नपुमा' ।

नपना^२—क्रि० प्र० [हि०] नप जाना । नापने का काम होना ।

नपरका—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का पक्षी जिसकी गरदन और पेट लाल, और पैर तथा चोंच पीली होती है ।

नपराजित—संज्ञा पुं० [सं०] महादेव । शिव ।

नपाई—संज्ञा स्त्री० [हि० नाप + आई (प्रत्य०)] १. नापने की मजदूरी ।

नपाक^१—वि० [प्रा० नापाक] अशुद्ध । अशुद्ध ।

नपात—संज्ञा पुं० [सं०] देवयान पथ ।

नपुंस—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'नपुंसक' [को०] ।

नपुंसक—संज्ञा पुं० [सं०] १. वैद्यक के अनुसार वह पुरुष जिसमें कामेच्छा बिल्कुल न हो अथवा बहुत ही कम हो और किसी विशेष उपाय से जाग्रत हो ।

विशेष—नपुंसक पाँच प्रकार के माने गए हैं । आसेव्य, सुगंधी, कुंभोक, ईर्षक और पंड ।

२. वह जो न पुरुष हो न स्त्री । पंड । क्लोब । हिजड़ा । नामर्द ।

विशेष—मनुष्यों में कुछ ऐसे भी होते हैं जो न तो पूरे पुरुष कहे जा सकते हैं न स्त्री । उनमें मूत्र की कोई इंद्रिय स्पष्ट नहीं होती और न मूँछ दाढ़ी या पुष्पत्व ही होता है । वैद्यक के अनुसार जब पिता का बीध और माता का रज दोनों समान होते हैं तब सतान नपुंसक होती है ।

३. कायर । डरपोक । (क्व०) । ४. संस्कृत व्याकरण में एक लिंग (को०) ।

नपुंसकता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. नपुंसक होने का भाव । हिजड़ापन । २. एक प्रकार का रोग जिसमें मनुष्य का बीध बिल्कुल नष्ट हो जाता है और वह स्त्रीसंभोग के योग्य नहीं रह जाता । नामर्दी ।

नपुंसकत्व—संज्ञा पुं० [सं०] नामर्दी । नपुंसकता ।

नपुंसकमंत्र—संज्ञा पुं० [सं० नपुंसक मन्त्र] जैनियों के अनुसार वह मंत्र जिसके अंत में 'नमः' हो ।

नपुंसक वेद—संज्ञा पुं० [सं०] जैनियों के अनुसार एक प्रकार का मोहनीय कर्म जिसके उदय से स्त्री के साथ भी संभोग करने की इच्छा होती है और बालक या पुरुष के साथ भी ।

नपुष्पा^१—संज्ञा पुं० [हि० नाप + उष्पा (प्रत्य०)] नापने का पात्र । वह बरतन जिसमें रखकर कोई चीज नापी जाय । मान ।

नपुत्री^१—वि० [हि०] दे० 'निपुत्री' ।

नपूँसा^१—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'नपुंसक' । उ०—क्या किरपन

सुंकी की माया नाब न होय मपूँसे से ।—सुंदर० प्र०, भा० १, पु० २३ ।

नप्ता—संज्ञा स्त्री० [सं० नप्त्] [स्त्री० नप्त्री] लड़की या लड़के की संतान । नाती या पोता ।

नप्तुका—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का पक्षी ।

विशेष—इसका मांस हलका, ठंडा, मोठा, कसेला और दोषनाशक माना जाता है ।

नप्सु—संज्ञा पुं० [प्र० नप्स] काम । वासना । शहवत । उ०—(क) यह बदगी तब होयगी इस नप्स की गहि मार ।—सुंदर० प्र०, भा० १, पु० २८३ (ख) नप्स सैतान की आपुनी केद करि क्या दुनी में परधा खाइ गोता । है गुनहवार भी गुनह ही करत है खाइया मार तब फिरै रोता ।—सुंदर० प्र०, भा० २, पु० ३६५ ।

नफर—संज्ञा पुं० [प्र० नफर] १ दास । सेवक । जैसे,—नोकर के आगे जाकर, जाकर के आगे नफर । उ०—कबिरा झूलि बिगारिया करि करि मैला चित्त । साहब गस्सा चाहिए नफर बिगारो नित्त ।—कबीर (शब्द०) । २. व्यक्ति । जैसे, दस नफर मजदूर ।

विशेष—इस अर्थ में इस शब्द का व्यवहार केवल बहुत छोटा काम करनेवालों की संख्या आदि प्रकट करने के लिये होता है ।

नफरत—संज्ञा स्त्री० [प्र० नफरत] घिन । घृणा ।

नफरों—संज्ञा स्त्री० [प्रा० नफों] फटकार । जानत [को०] ।

नफरी—संज्ञा स्त्री० [प्रा० नफरी] १. एक मजदूर की एक दिन की मजदूरी । २. एक मजदूर का एक दिन का काम । ३. मजदूरी का दिन । जैसे,—दो नफरी में वह चौकी तैयार हो जायगी ।

नफस—संज्ञा पुं० [प्र० नफस] दम । स्वास । साँस । [को०] ।

नफसानफसी—संज्ञा स्त्री० [प्र० नफस] १. वह विवाद या झगड़ा जो केवल व्यक्तिगत स्वार्थ का ध्यान रखकर किया जाय । लीचतान । २. चलाचली । वैमनस्य । लड़ाई ।

नफा—संज्ञा पुं० [प्र० नफा] लाभ । फायदा । उ०—(क) अमा मोल ले नीचन देई । अमं नफा पर अघना लेई ।—रघुनाथ (शब्द०) । (ख) घनहित लखम कहिस अपारा । होय नफा नहीं घटा निहारा ।—रघुनाथ (शब्द०) ।

क्रि० प्र०—उठाना ।—करना ।

नफाखोर—वि० [प्र० नफा + प्रा० खोर] १. लाभ या नफा खाने वाला । २. अनुचित रीति से मुनाफा करने या बमानेवाला । उ०—क्या हिंदू क्या मुसलमान, है एक प्राण, है भूल बही । हिंदू मुसलिम नफाखोर की घन बीजत में भेद नहीं ।—हंस०, पृ० ३३ ।

नफासत—संज्ञा स्त्री० [प्र० नफासत] नफीस होने का भाव । उम्दापन ।

नफीरी—संज्ञा स्त्री० [प्रा० नफीरी] तुरही । शहमाई ।

नफीस—वि० [प्र० नफीस] १. उत्तम । उमदा । बढ़िया । २. साफ । स्वच्छ । ३. जिसकी बनावट बहुत अच्छी हो । सुंदर ।

नफेरी—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'नफीरी' । उ०—सितार कमायब बस मुहबंगा । ताल मृदंग नफेरी संग ।—कबीर सा०, पृ० २४६ ।

नफेरि—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'नफीरी' । उ०—नबं नह नफेरि भेरी सभालं । तरकंत तेमं मनो बिजु वालं ।—पृ० रा०, १२।८० ।

नफस—संज्ञा पुं० [प्र० नफस] १. अस्तित्व । २. सत्यता । ३. कामेच्छा । कामवासना । ४. खुलासा । ५. निग । शिष्य । ६. घाला [को०] ।

यौ०—नफसकुश = इन्द्रियनिग्रही । नफसकुशी = इन्द्रियनिग्रही । नफसपरस्त = कामी । विषयी । नफसपरस्ती = कामुकता । संपटता । नफसमजमून = खेल का अभिप्राय या खुलासा ।

नफसानफसी—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'नफसानफसी' ।

नफसानियत—संज्ञा स्त्री० [प्र० नफसानियत] १. कामशक्ति । २. अभिमान [को०] ।

नफसानी—वि० [प्र० नफसानी] वासनात्मक [को०] ।

नबात—संज्ञा स्त्री० [प्र०] वनस्पति । पेड़ पीधे । उ०—बो बहरे करम है व प्रावेहयात । हुए जिदा इन्सा व हैवा नबात ।—दक्खिनी पृ० २१३ ।

नबी—संज्ञा पुं० [प्र०] ईश्वर का दूत । पैगंबर । रसूल ।

नबीन—वि० [हि०] दे० 'नबीन' । उ०—बेग चलो, न बिलंब करो, सखि बाल नवेख को नेह नबीनी ।—मति० प्र०, पृ० ३१२ ।

नवेड़ना—क्रि० सं० [सं० निवारण, हि० निपटाना] १. निपटाना तै करना । (झगड़ा आदि) समाप्त करना । जैसे,—तुम्हें दूसरे की क्या पड़ी है, तुम अपनी नवेड़ो । २. अपने मतलब की चीज ले लेना और बाकी छोड़ देना । छुटना । (वन०) । दे० 'निवेरना' ।

नवेड़ा—संज्ञा पुं० [हि० नवेड़ना] फैमला । न्याय । निपटारा ।

नवेरना—क्रि० सं० [हि०] दे० 'नवेड़ना' ।

नवेरा—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'नवेड़ा' ।

नवेली—वि० स्त्री० [हि० नवेली] १. नई । नवीन । २. नई उम्र की । उ०—दिए देह दीपति गयो दीप बयारि बुझाई । अचल छोट किए तऊ चली नवेली जाई ।—मति० प्र०, पृ० ४५२ ।

नब्बीगर—संज्ञा पुं० [प्रा० नमद-गर] चारजामा बनानेवाला आदमी ।

नब्ज—संज्ञा स्त्री० [प्र० नब्ज] हाथ की वह रक्तवहा नाली जिसकी चाल से रोग की पहचान की जाती है । नाड़ी ।

क्रि० प्र०—देखना ।—बिखाना ।

मुहा०—नब्ज चलाना = नाड़ी में गति होना । नब्ज न रहना = नाड़ी की गति का अन्त हो जाना । नाड़ी में गति न रह जाना । प्राण न रहना । नब्ज छूटना = दे० 'नब्ज न रहना' ।

नब्बे—वि० [सं० नवति] जो गिनती में पचास और बालीस हो । तीस से दस कम ।

नब्बे^१—संज्ञा पुं० [मं० नवति] चालिस और पचास की संख्या या शंक जो इस प्रकार लिखा जाता है—६० ।

नभःकेतन—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य ।

नभःक्रांत—संज्ञा पुं० [सं० नभःक्रान्त] सिंह [को०] ।

नभःक्रांती—संज्ञा पुं० [सं० नभःक्रान्तिन्] सिंह ।

नभःपांथ—संज्ञा पुं० [मं० नभःपांथ] सूर्य ।

नभःप्रभेद—संज्ञा पुं० [मं०] एक वैदिक ऋषि का नाम ।

विशेष—ये विरूप के वंशज थे । ऋग्वेद में इनके कई मंत्र मिलते हैं ।

नभःप्राण—संज्ञा पुं० [सं०] वायु । हवा ।

नभःश्वास—संज्ञा पुं० [मं०] वायु । हवा [को०] ।

नभःसद्—संज्ञा पुं० [मं०] १. देवता । २. आकाश में विचरनेवाले पक्षी आदि ।

नभःसरित्—संज्ञा स्त्री० [मं०] आकाशगंगा ।

नभःसुत—संज्ञा पुं० [मं०] पवन । हवा ।

नभःस्थल—संज्ञा पुं० [सं०] १. शिव । २. आकाश [को०] ।

नभःस्थित^१—वि० [मं०] जो आकाश में स्थित हो । आकाशस्थ [को०] ।

नभःस्थित^२—संज्ञा पुं० एक नरक का नाम [को०] ।

नभःस्पृक्—वि० [मं० नभःस्पृक्] गगनचुंबी । आकाश को छूनेवाला [को०] ।

नभः^३—संज्ञा पुं० [मं० नभस्] १. पंच तत्त्व में से एक । आकाश । आसमान ।

पर्याय—आकाश । गगन । व्योम ।

२. शून्य स्थान । आकाश । ३. शून्य । सुप्ता । सिफर । ४. श्रावण मास । माघन का महीना । ५. भादों का महीना । उ०—नभगित हरिश्चरं करो नरेणा ।—रघुनाथ (शब्द०) । ६. आश्रय । आधार । ७. पास । निकट । नजदीक । उ०—नभ आश्रय नभ भाद्रपद नभ श्रावण को मास । नभ आकाश नभ निकट ही घट घट रमा निवास ।—नददास (शब्द०) । ८. राजा नल के एक पुत्र का नाम । ९. हरिवंश के अनुसार रामचंद्र के वंश के एक राजा का नाम । १०. हरिवंश के अनुसार चाक्षुस मृनि के एक पुत्र का नाम । ११. चाक्षुस मन्वन्तर के सप्तविधियों में से एक का नाम । १२. शिव । महादेव । १३. अश्वक । १४. जल । १५. जन्मकुंडली में लग्न स्थान से दसवाँ स्थान । १६. मेघ । बादल । १७. वर्षा । १८. तुण्डल सूत्र । कमल की जड़ के सूत्र या सुतला । १९. विष-तंतु । २०. वाष्प । कुहरा [को०] । २१. जीवन की अवधि । आयु [को०] । २२. घ्राण [को०] ।

नभः^३—वि० [सं०] हिंसक ।

नभग^१—संज्ञा पुं० [सं०] १. पक्षी । २. हवा । ३. बादल । ४. मागवन के अनुसार वैवस्वत मनु के एक पुत्र का नाम ।

नभग^२—वि० [सं०] १. आकाशगामी । आकाश में विचरनेवाला । २. आग्यहीन । अभागा ।

नभगनाथ—संज्ञा पुं० [सं०] गरुड़ । उ०—बोलेउ कागमुसुंदि बहोरी । नभगनाथ पर प्रीति न थोरी ।—मानस, ७।७० ।

नभगामी—संज्ञा पुं० [सं० नभोगामिन्] १. चंद्रमा । (हि०) । २. पक्षी । ३. देवता । ४. सूर्य । ५. तारा ।

नभगेश—संज्ञा पुं० [सं०] गरुड़ ।

नभचर—संज्ञा पुं० [हि० नभ + सं० चर] दे० 'नभश्चर' ।

नभधुज^(१)—संज्ञा पुं० [सं० नभध्वज] मेघ । बादल ।

नभध्वज—संज्ञा पुं० [हि० नभ + सं० ध्वज] दे० 'नभोध्वज' ।

नभनदी—संज्ञा स्त्री० [सं० नभोनदी] आकाशगंगा । उ०—कहै 'मतिराम' नभनदी के कुसुम सम, उड़े उड़गन सुंई अनिल उड़ाये तै ।—मति० शं०, पृ० ३८६ ।

नभनीरप—संज्ञा पुं० [सं० नभनीरप] चातक । पपीहा ।

नभश्चक्षु—संज्ञा पुं० [सं० नभश्चक्षुस] सूर्य ।

नभश्चमस—संज्ञा पुं० [सं०] १. चंद्रमा । २. इंद्रबाल ।

नभश्चर^१—संज्ञा पुं० [सं०] १. पक्षी । २. बादल । ३. हवा । ४. देवता, गंधर्व और ग्रह आदि ।

नभश्चर^२—वि० आकाश में चलनेवाला ।

नभसंगम—संज्ञा पुं० [सं० नभसङ्गम] चिड़िया । पक्षी ।

नभस^१—संज्ञा पुं० [सं०] १. हरिवंश के अनुसार इससे मन्वन्तर के सप्तविधियों में से एक का नाम । २. आकाश [को०] । ३. पावस [को०] । ४. समुद्र [को०] ।

नभस^२—वि० वाष्पमय । कुहरेवाला [को०] ।

नभस्तल—संज्ञा पुं० [सं०] १. आकाश का निचला भाग । २. वायुमंडल [को०] ।

नभस्थल—संज्ञा पुं० [सं०] १. आकाश । २. शिव ।

नभस्थली—संज्ञा स्त्री० [सं०] आकाश । उ०—उसके ऊपर है नभस्थली ।—साकेत, पृ० ३२१ ।

नभस्थित^१—संज्ञा पुं० [सं०] एक नरक का नाम ।

नभस्थित^२—वि० जो आकाश में हो । आकाश में ठहरा हुआ ।

नभस्मय—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य ।

नभस्य^१—संज्ञा पुं० [सं०] १. भादों का महीना । २. हरिवंश के अनुसार स्वरोधिष मनु के एक पुत्र का नाम ।

नभस्य^२—वि० कुहरेवाला । वाष्पमय [को०] ।

नभस्वान्—संज्ञा पुं० [मं० नभस्वत्] वायु । हवा ।

नभाक—संज्ञा पुं० [सं०] १. अंधेरा । अंधकार । २. राह । ३. एक ऋषि का नाम । ४. मेघ । बादल [को०] । ५. आकाश [को०] ।

नभि—संज्ञा स्त्री० [सं०] पहिया । चक्र ।

नभोग—संज्ञा पुं० [सं०] १. आकाश में चलनेवाले पक्षी, देवता, ग्रह आदि । २. जन्मकुंडली में लग्नस्थान से दसवाँ स्थान । ३. इससे मन्वन्तर के सप्तविधियों में से एक का नाम ।

नभोगति—संज्ञा पुं० [सं०] वह जो आकाश में चलता हो । जैसे, पक्षी, देवता, ग्रह आदि ।

नमोद—संज्ञा पु० [सं०] हरिवंश के अनुसार एक विश्वदेव का नाम ।

नमोदुह—संज्ञा पु० [सं०] मेघ । बादल ।

नमोदेश—संज्ञा पु० [सं०] आकाश । उ०—नमोदेश में विमल चंद्रमंडल सा संस्थित विध्यपृष्ठ पर है मनोज बांधव अति विस्तृत ।—प्रेमोजलि, पृ० ४२ ।

नमोद्वीप—संज्ञा पु० [सं०] बादल ।

नमोध्वज—संज्ञा पु० [सं०] बादल ।

नमोनदी—संज्ञा स्त्री० [सं०] आकाशगंगा ।

नमोमणि—संज्ञा पु० [सं०] सूर्य ।

नमोयोनि—संज्ञा पु० [सं०] महादेव । शिव ।

नमोरूप—वि० [सं०] नीले रंग का । जिसका रंग नीला हो ।

नमोरेणु—संज्ञा पु० [सं०] कुहरा । कुहासा ।

नमोन्नय^१—संज्ञा पु० [सं०] धूपी ।

नमोन्नय^२—वि० [सं०] जो आकाश में लीन हो जाय ।

नमोषट—संज्ञा पु० [सं०] आकाशमंडल ।

नभ्य^१—संज्ञा पु० [सं०] १. पहिए के बीच का भाग । २. धुरी । अक्ष । ३. वह तेल या चिकनाई जो पहिए में दी जाय ।

नभ्य^२—वि० १. मेघमय । २. वाष्पयुक्त । कुहरेवाला [को०] ।

नभ्यसी—संज्ञा पु० [सं० नभ्य] आद्रपद । आदों का महीना ।
उ०—किरे दास भारी बुलै राग बैन । मनो नभ्यसी मास केबिज गैन ।—पृ० रा०, १४।११३ ।

नभ्राज—संज्ञा पु० [सं०] बादल । मेघ ।

नमः^१—क्रि० वि० [सं० नमस्] प्रणाम या स्वागत आदि का अंगक शब्द [को०] ।

नमः^२—संज्ञा पु० दे० 'नमः' [को०] ।

नमः^३—वि० [फ्रा०] [संज्ञा नमी] गोला । तर । भीगा हुआ । आद्र ।

नमः^४—संज्ञा पु० [सं० नमस्] १. नमस्कार । २. त्याग । ३. अन्न । ४. वस्त्र । ५. यज्ञ । ६. स्तोत्र ।

नमक—संज्ञा पु० [फ्रा० या सं० लवण] १. एक प्रसिद्ध खार पदार्थ जिसका व्यवहार भोज्य पदार्थों में एक प्रकार का स्वाद उत्पन्न करने के लिये थोड़े मान में होता है । लवण । नोन ।

विशेष—नमक संसार के प्रायः सभी भागों में दो रूपों में पाया जाता है—एक तो जमीन में, चट्टानों या स्तरों के रूप में और दूसरा समुद्रों, झीलों और तालाबों आदि के खारे जल में । भारत में पंजाब, कोहाट, तथा कांगड़े की मंडी नामक रियासत में नमक की खानें हैं जिनमें से बहुत प्राचीन काल से नमक निकाला जाता है । मिथ भी नमक के लिये प्रसिद्ध था । इसी से वहाँ के नमक की सेंध (सेंधा) कहते थे । पंजाब की खान का नमक भी सेंधा कहलाता है । यह प्रायः साफ और सफेद रंग का होता है और इसमें किसी प्रकार की गंध नहीं रहती । इसके अतिरिक्त समुद्र या झीलों के खारे

पानी आदि को सुखाकर भी कई प्रकार के नमक निकाले जाते हैं । इस प्रकार का नमक करकच कहलाता है । कहीं कहीं रेह या मिट्टी में से भी एक प्रकार का नमक निकाला जाता है जो खारी कहलाता है । एक और प्रकार का नमक होता है जो काला नमक कहलाता है । यह साधारण नमक को दड़, बटेड़े और मज्जों के माथ गलाकर बनाया जाता है । इसके अतिरिक्त घोषांधी और रमायन आदि के काम के लिये और भी अनेक वनस्पतियों और दूधरे पशुओं को जलाकर खार या नमक तैयार करते हैं । वैशक में सेंधव (सेंधा), शार्कभरी (माँबर), समृद्धलवण (करकच), विडलवण मोवचंछ (काला नमक, सोंबर), काचलवण (नोनी मिट्टी से बनाया हुआ कचिया नमक), ओदभिद, घोवर, रोमक और द्रोणी आदि कई प्रकार के लवण मिलते हैं जिनमें से सेंधा नमक सबसे अच्छा माना गया है ।

मुहा०—नमक अदा करना । अपने पालक या स्वामी के उपकार का बदला चुकाना । मालिक के प्रति अपने कर्तव्य का पालन करना । (किसी का) नमक खाना = (किसी के द्वारा) पालित होना । (किसी का) दिया खाना । जैसे,—आपने पाँच बरस तक उनका नमक खाया है, आप अगर उन्होंने आपको दो बरसों तक ही तो क्या हो गया ? नमक मिर्च मिनाना या लगाना = किसी काम को अधिक रोचक या प्रभावशाली बनाने के लिये समेकित ध्यान से भी कुछ बढ़ा देना । किसी काम को बढ़ाकर कहना । जैसे,—उन्होंने यहाँ का गारा हान तो कह डी दिया, पाय हूँ अपनी तरफ से भी नमक मिर्च लगा दिया । नमक फूटकर निकलना = नमकहरामों की मजा मिनना । कुतूहल का दंड मिनना । नमक से या नमक पानी में अदा होना = दे० 'नमक अदा करना' । कटे पर नमक छिड़कना = किसी दुःखी को और भी दुःख देना । पीड़ित को और भी पीड़ित करना । नमक का सहारा = थोड़ा सहारा । थोड़ा सहायता ।

यौ०—नमकखार । नमकहराम । नमकहरामो । नमकहलाल । नमकहलाली ।

२. कुछ विशेष प्रकार का सौंदर्य जो अधिक मनोहर या प्रिय हो । भावार्थ : सलनापन ।

नमकखार—वि० [फ्रा० नमकखार] नमक खानेवाला । पालित होनेवाला । जिसका किसी दूसरे के द्वारा पालनपोषण या जीविकानिर्वाह हो ।

नमकदान—संज्ञा पु० [फ्रा० नमकदान (प्रत्यय)] [आ० अन्तरा० नमक दानो] बिसा हुआ नमक रखने का पात्र ।

नमकसार—संज्ञा पु० [फ्रा०] वह स्थान जहाँ नमक निकलता या बनता हो ।

नमकहराम—संज्ञा पु० [फ्रा० नमक + अ० हराम] वह जो किसी का दिया हुआ अन्न खाकर उसी का दोह करे । अपने भद्रदाता को ही हानि पहुँचानेवाला मनुष्य । कुतूहल ।

नमस्कृतामी—संज्ञा स्त्री० [फ्रा० नमस्क + प्र० हृगम + ई (प्रत्य०)]
नमस्कृतमामन । कृतघ्नता ।

नमस्कृताल—संज्ञा पुं० [फ्रा० नमस्क + प्र० हृलाल] वह जो अपने स्वामी या प्रभुदाता का कार्य धर्मपूर्वक करे । सदा अपने मानिक भी भलाई करनेवाला मनुष्य । स्वामिनिष्ठ । स्वामिमत्त ।

नमस्कृताली—संज्ञा स्त्री० [फ्रा० नमस्क + प्र० हृलाल । फ्रा० ई (प्रत्य०)] नमस्कृताल होने का भाव । स्वामिनिष्ठा । स्वामिभक्ति ।

नमकीन^१—वि० [फ्रा०] १. जिसमें नमस्क का भाव स्वाद्य हो । जैसे,—
पने का भाग नमकीन होता है । २. जिसमें नमस्क पड़ा हो ।
जैसे, नमकीन बुंदिया, नमकीन सुरमा । ३. जिसके चेहरे पर नमस्क हो । सुंदर । सुबसुरत । सखोना ।

नमकीन^२—संज्ञा पुं० वह एकवार याद्वि जिसमें नमस्क पड़ा हो ।
जैसे, मसोसा, सेव, पापड, दालमोट याद्वि ।

नमगीरा—संज्ञा पुं० [फ्रा० नमगीरह] वह कपड़ा जिसे घोस याद्वि में रक्षित रहने के लिये पलंग के ऊपरी भाग में तान देते हैं । २. पाल या निरपाल याद्वि जिसे धूप और वर्षा से रक्षित रखने के लिये किसी स्थान के ऊपर तानते हैं ।

नमत^१—संज्ञा पुं० [सं०] १. प्रभु । स्वामी । २. नट । अभिनेता ।
३. धूर्त्ता । ४. मेघ (को०) ।

नमत^२—वि० १. नम्र । जो झुके । २. वक्र । टेढ़ा (को०) ।

नमदा—संज्ञा पुं० [फ्रा० नमदह] जमाया हुआ ऊनी कंबल या कपड़ा ।

मुहा०—दुम में नमदा बांधना = दे० 'दुम' के मुहा० ।

नमन^१—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० नमनीय, नमित] १. प्रणाम ।
नमस्कार । २. भुक्ताव । ३. नमस्कार करना (को०) । ४.
भुक्ते की क्रिया (को०) ।

नमन^२—वि० १. भुक्तेवाला । भुक्ता हुआ । २. पराजित होनेवाला ।
पराभूत । ३. भुक्तेवाला । नष्ट करवाला (को०) ।

नमना(पुं०)—क्रि० प्र० [सं० नमन] १. भुक्ता । २. प्रणाम करना ।
नमस्कार करना ।

नमनि(पुं०)—संज्ञा स्त्री० [सं० नमन] दे० 'नमन' ।

नमनीय—वि० [सं०] १. नमस्कार करने योग्य । आदरणीय ।
पूजनीय । माननीय । जिसे नमस्कार किया जाय । उ०—
किन्नरी नटी सुनारि पन्नगी नगी भ्रुमारि धासुरी सुरीन हू
निहारि नमनीय है । —केशव (गणद०) । २. जो भुक्त सके
या भुकाया जा सके ।

नमनीयता—संज्ञा स्त्री० [सं०] नमक । लोच । मंजिमा । उ०—
नववत्सु
नी पुनक भरी घुटुघुटु लज्जा उसके मुख पर प्रभासित
होकर उसे ऐसी कमनीय नमनीयता प्रदान कर रही थी जो
मेरे प्रातः स्तकण को एक अनिर्वचनीय हर्ष की अनुभूति से
तरंगित करती थी । —जिप्सी, पृ० १७३ ।

नमस्—संज्ञा पुं० [सं०] १. भुक्ता । नमन । २. प्रणाम । नमस्कार ।

३. त्याग । छोड़ देना । ४. यज्ञ । ५. धन । ६. वज्र ।
७. स्तोत्र ।

नमस—वि० [सं०] प्रसन्न (को०) ।

नमसकारना(पुं०)—क्रि० सं० [सं० नमस्कार से नामिक धातु]
नमस्कार करना ।

नमसित—वि० [सं०] जिसे नमस्कार किया गया हो । पूजित ।

नमस्करण—संज्ञा पुं० [सं०] आदरपूर्वक या श्रद्धापूर्वक नमस्कार
करने की क्रिया या स्थिति (को०) ।

नमस्कार—संज्ञा पुं० [सं०] १. झुककर अभिवादन करना ।
प्रणाम । २. एक प्रकार का विष ।

नमस्कारो—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. लज्जावती । लज्जानू । २.
वराहकांता । ३. खदिरा या खदिरिका नामक वृक्ष ।

नमस्कार्य—वि० [सं०] १. जो नमस्कार करने योग्य हो । पूज्य ।
बंदनीय । २. जिसे नमस्कार किया जाय ।

नमस्कृत—वि० [सं०] जिसे आदर सहित नमस्कार किया
गया हो (को०) ।

नमस्कृति—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'नमस्करण' (को०) ।

नमस्कृत्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'नमस्कार' ।

नमस्ते—[सं०] एक वाक्य जिसका अर्थ है—आपको नमस्कार है ।

नमस्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. नमस्कार करने के योग्य । पूज्य ।
आदरणीय । २. नम्र । विनयशील (को०) ।

नमस्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. पूजा । श्रद्धा । २. आदर ।
समान (को०) ।

नमारिण्यत—वि० [सं०] दे० 'नमसित' ।

नमस्यु—वि० [सं०] १. पूजा या श्रद्धा करनेवाला । २. आदर
मान करनेवाला (को०) ।

नमाज—संज्ञा स्त्री० [फ्रा० नमाज, मि० सं० नमस्] मुसलमानों की
ईश्वर प्रार्थना जो निश्चय पाँच बार होती है ।

विशेष—दैनिक पाँच बार की नमाज के अतिरिक्त सुबह या
चंद्रग्रहण के समय, ईद के दिन, किसी के मरने पर तथा
इसी प्रकार के और अवसरों पर भी नमाज पढ़ी जाती है ।

क्रि० प्र०—पढ़ा करना ।—गुजारना ।—पढ़ना ।

मुहा०—नमाज कजा होना = नियत समय पर नमाज न पढ़ा
जा सकना ।

नमाजगाह—संज्ञा स्त्री० [फ्रा० नमाजगाह] मसजिद में वह जगह
जहाँ नमाज पढ़ी जाती है ।

नमाजबंद—संज्ञा पुं० [फ्रा० नमाजबंद] कुरसी का एक प्रकार
का पेच ।

नमाजी—संज्ञा पुं० [फ्रा० नमाजी] १. नमाज पढ़नेवाला । २.
वह वस्त्र जिसपर लट्टे होकर नमाज पढ़ी जाती है ।

नमाना(पुं०)—क्रि० सं० [सं० नमन] १. भुक्ता । २. दबाकर
अपने अधीन करना । पस्त करना । काबू में करना ।

नमित—वि० [सं०] १. भुक्ता हुआ । २. टेढ़ा । वक्र (को०) ।

नमिस—संज्ञा स्त्री० [क्रा० नमिश्क] एक विशेष प्रकार से तैयार किया हुआ दूध का फेन जो जाड़े में खाया जाता है।

विशेष—पहले दूध को उबाल लेते हैं तब उसमें चीनी या मिसरी, इलायची, केसर आदि मिलाकर रात भर उसे मगानी से मथते हैं जिससे फेन निकलता है।

नमी—संज्ञा स्त्री० [फा०] गीलापन। आर्द्रता। तरी। जैसे,—इस जमीन में बहुत नमी है।

नमुचि—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक ऋषि का नाम। २. एक दानव का नाम जो विप्रवृत्ति नामक दानव का पुत्र था।

विशेष—यह पहले इंद्र का सखा था। इंद्र ने इससे प्रतिज्ञा की थी कि मैं न तो तुम्हें दिन में मारूँगा और न रात में, न सूखे अस्त्र से मारूँगा न गीले अस्त्र से, पर पीछे इसने उनका बल हरण कर लिया था। इंद्र ने सरस्वती और अश्विनी-कुमारों से समुद्र के भाग के समान एक बज्रास्त्र लेकर उससे इसे मारा था। *

यौ०—नमुचिद्विष्, नमुचिहृन्—इंद्र।

१. पुराणानुसार एक बैराग्य का नाम जो शुभ और निशुभ का छोटा भाई था। ४. कामदेव।

नमुचिसूदन—संज्ञा पुं० [सं०] नमुचि को मारनेवाला इंद्र।

नमुद्—संज्ञा स्त्री० [क्रा० नमुद] १. आविर्भाव। २. धूमधाम। तड़क बढ़क। ३. उगना। ४. अस्तित्व। हस्ती। ५. क्याति। मोहरत। उ०—माता, मुझे नाम नमुद की बहुत आह नहीं है।—मान०, पु० २७७।

नमुद्दार—वि० [क्रा०] जो उदित हुआ हो। प्रकट। उगोचर।

नमूना—संज्ञा पुं० [क्रा० नमूनह] १. किसी बड़े या अधिक पदार्थ में से निकाला हुआ वह छोटा या थोड़ा अंश जिसका उपयोग उस मूल पदार्थ के गुण और स्वरूप आदि का ज्ञान कराने के लिये होता है। बानगी। जैसे, कपड़े का नमूना, चायल का नमूना। २. वह जिससे उसके संग दूसरी वस्तुओं के स्वरूप और गुण आदि का ज्ञान हो जाय। जैसे, नमूने का थान, नमूने की टोपी। ३. वह जिसके अनुकरण पर वेसा ही और वस्तुएँ बनाई जायें। ४. ठाँचा। डाट। साका।

नमेरु—संज्ञा पुं० [सं०] १. इन्द्राक्ष का पेड़। २. एक प्रकार का पुष्पाग।

नमेरु—संज्ञा पुं० [सं०] ३० 'नमरु'।

नमोगुरु—संज्ञा पुं० [सं०] १. ब्राह्मण। २. बीक्षा देनेवाला गुरु [को०]।

नम्य—वि० [सं०] १. दे० 'नमस्य'। २. झुकने या टेढ़ा होनेवाला [को०]।

नम्यता—संज्ञा स्त्री० [सं० नम्य + ता] झुकने या टेढ़ा होने की क्रिया या गुण [को०]।

नम्र—वि० [सं०] १. विनीत। जिसमें नम्रता हो। २. झुका हुआ। ३. बक्र। टेढ़ा [को०]। ४. पूजा करवाला [को०]। ५. अट्टालु [को०]।

नम्रक—संज्ञा पुं० [सं०] बेत।

नम्रक^३—वि० नत। झुका हुआ। टेढ़ा [को०]।

नम्रता—संज्ञा स्त्री० [सं०] नम्र होने का भाव।

नम्रत्व—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'नम्रता'।

नम्रांग—वि० [सं० नम्राङ्ग] टेढ़ा। झुका हुआ [को०]।

नम्रित—वि० [सं०] झुका हुआ [को०]।

नय^१—संज्ञा पुं० [सं०] १. नीति। २. नम्रता। ३. एक प्रकार का जुषा। ४. विष्णु। ५. जैन दर्शन में प्रमाणाँ द्वारा निश्चित अर्थ को ग्रहण करने की वृत्ति।

विशेष—यह सात प्रकार की होती है—नैगम, गंधह, ऋग्वह, ऋजुमूत्र, शब्द, सममिच्छु और एवंभूत।

१. ले जाने की क्रिया या स्थिति [को०]। ७. नेतृत्व या नायकत्व करने की क्रिया या स्थिति [को०]। ८. राजनीति [को०]। ९. व्यवहार। चलावा [को०]। १०. सिद्धांत। मत [को०]। ११. दूरदर्शिता [को०]। १२. पद्धति। ढंग। विधि [को०]। १३. योजना [को०]। नैतिकता [को०]।

नय^२—संज्ञा स्त्री० [सं० नय] नदी। उ०—इक मंजे चहुने गड़े बूड़े बहे इजार। केते मोगुन जग करत नव वय चढ़नी बार।—बिहारी (शब्द०)।

नय^३—वि० [हि०] नया। नवीन। उ०—नय मुनिग कुमुदिय अचित प्रमुदिय, सत्ता पत्ता सुभासय।—पु० रा०, २४। ११६।

नयच्छति^३—संज्ञा पुं० [सं० नैच्छत] दे० 'नैच्छत'।

नयक—संज्ञा पुं० [सं०] १. अच्छी व्यवस्था करनेवाला व्यक्ति। २. कुशल या निपुण राजनीतिज्ञ [को०]।

नयकारी^३—संज्ञा पुं० [सं० नयकारी] २. नतर्का के दल का नायक। नाचनेवाला का मुखिया। उ०—कितनी बार हुआ मैं तेरा नृत्य तेन दल नयकारी।—श्रीधर पाठक (शब्द०)। २. नाचनेवाला। नचनिया। उ०—निज शिपुगण को मोद चक्र मे साथ नचावे नयकारी।—श्रीधर पाठक (शब्द०)।

नयकोविद्—वि० [सं०] १. नीतिनिपुण। २. राजनीति में कुशल [को०]।

नयग—वि० [सं०] नीति के अनुसार चलनेवाला या व्यवहार करनेवाला [को०]।

नयचतुस्—वि० [सं०] राजनीति में दक्ष। दूरदर्शी [को०]।

नयज्ञ—वि० [सं०] राजनीति में प्रवीण [को०]।

नयन^१—संज्ञा पुं० [सं०] १. चक्षु। नेत्र। घाल।

यौ०—नयनगोचर।

विशेष—'नयन' के मुहावरों के लिये देखो 'घाल' के मुहावरों। २. ले जाना। ३. नेतृत्व करना [को०]। ४. शासन करना [को०]। ५. बिताना। यापन [को०]।

नयन^२—वि० १. ले जानेवाला। २. मार्गदर्शन करनेवाला। नायकत्व करनेवाला। ३. व्यवस्था करनेवाला [को०]।

नयन^३—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की मछली।

नयनगोचर—वि० [सं०] दिखाई पड़नेवाला । जो आँखों के सामने हो । समक्ष ।

नयनपट—संज्ञा पुं० [सं०] आँख की पलक । उ०—छबि समुद्र हरि रूप बिजो की । एरटक री नयनपट रोकी ।—तुलसी (शब्द०) ।

नयनांचल—संज्ञा पुं० [सं० नयनाचल] १. आँख का कोना । २. निरुद्धा चिन्तन (की०) ।

नयनांत—संज्ञा पुं० [सं० नयनांत] १. 'नयनांचल' (की०) ।

नयना—संज्ञा स्त्री० [सं०] रत्नातिभा । आँख की पुतली (की०) ।

नयना(पुनः) क्रि० प्र० [सं० नयन] १. नम्र होना । २. झुकना । लटकना । उ०—नए जु प.प. फूलन के भार । लगि लगि रहो धरनि द्रुम टार ।—नंद० ग्रं०, पृ० २७६ । ३. नमस्कार करना ।

नयनाः संज्ञा पुं० [सं० नयन] आँख । नेत्र । बभ्रु ।

नयनागर—वि० [सं०] नीच । नीचनिपुण ।

नयनाभिघात—पुं० [सं०] आँख में एक रोग (की०) ।

नयनाभिराम—वि० [सं०] नयना की सुंदर नयनेवाला । प्रिय-वशान (की०) ।

नयनामोपी—वि० [सं० नयनामोपन] आँखा की दृष्टिगुण्य करनेवाला (की०) ।

नयनिमा—संज्ञा स्त्री० [सं० नयन] नीचनत्व । नेत्रों का धर्म । उ०—निखर नटी नीलिमा, नयनिमा सी अनंत की ।—रजत०, पृ० १४१ ।

नयनो—संज्ञा स्त्री० [सं०] आँख की पुतली ।

नयनी—वि० स्त्री० आँखवाली ।

विशेष इस शब्द का प्रयोग योगिक शब्द के अंत से होता है । जैसे, मृगयनी, ममनयनी ।

नयनू—संज्ञा पुं० [सं० नयनीत] १. मन्त्रन । २. एक प्रकार की मलमल । तमपर सरोद पुन की दृष्टियाँ बनी जाती हैं ।

नयनेता—वि०, संज्ञा पुं० [सं० नयनेतृ] राजनीति का ज्ञाता (की०) ।

नयनोपध—संज्ञा पुं० [सं०] पुनः रोग । पीला कसीस ।

नयनोत्सव—संज्ञा पुं० [सं०] १. दीपक । २. आँखों का आनंद । ३. सुदर्शन पाप या मृत्यु (की०) ।

नयनोपांत—संज्ञा पुं० [सं० नयनोपांत] आँख का कोर । अंगन (की०) ।

नयनपु—संज्ञा पुं० [सं० नयन] १. नयन । उ०—धर तृणदत । जय धरन । नयन नयन रूप भो । उ० नयन ।—ह० रामो, पृ० २४ ।

नयनंठी—संज्ञा स्त्री० [सं०] शत्रुत्व की विसात (की०) ।

नयप्रयोग—संज्ञा पुं० [सं०] राजनीति में कुशलता । (की०) ।

नयवादी—वि० संज्ञा पुं० [सं० नयवादिन्] राजनीतिज्ञ (की०) ।

नयविद्, नयविशारद—वि० संज्ञा पुं० [सं०] राजनीतिज्ञ (की०) ।

नयर(पुं०)—संज्ञा पुं० [सं० नगर, प्रा० नगर, नयर] शहर । पुर ।

नगर । उ०—जोयो छे तोड़ठ जेसलमेर । जउयो छह नयर अयोध्या को देख ।—बी० रासो, पृ० ७ ।

नयशास्त्र—संज्ञा पुं० [सं०] १. राजनीति शास्त्र । राजनीति विषयक कोई ग्रंथ । २. नीतिविषयक ग्रंथ (की०) ।

नयशाली—वि० [सं० नयशालिन्] सदाचारवाला । विनयशील (की०)

नयशील—वि० [सं०] १. नीतिज्ञ । २. विनीत ।

नयशील(पुं०)—वि० [सं० नयनशील] १. नीतिज्ञ । २. विनीत । उ०—तुम कपीस अंगद नल नीला । जामवंत माछति नयमीला ।—तुलसी (शब्द०) ।

नया—वि० [सं० नव, मि० प्रा० नो] १. जिसका संगठन, सृजन, आविष्कार या आविर्भाव बहुत हाल में हुआ हो । जो थोड़े समय से बना, चला या निकला हो । नवीन । नूतन । ताजा । हाल का । पुराना का उलटा । जैसे, नया कपड़ा, नया पान, नए विचार, नई (हाल की बूती या छरी हुई) किताब ।

मुहा०—नया करना = (१) कोई नया फल या अनाज मौसम में पहले पहल खाना । मौसम की नई चीज पहले पहल खाना (२) कपड़ा आदि फाड़ या जला देना । जैसे,—इसे कपड़ा पहनाओ वही नया करके रख देता है ।

विशेष इस मुहावरे का प्रयोग स्त्रियाँ प्रायः प्रथम बात मुँह से निकालने से बचने के लिये करती हैं ।

नया पुराना करना = (१) पुराना हिसाब साफ करके नया हिसाब चलाना (महाजनी) । (२) पुराने को हटाकर उसके स्थान पर नया करना या रखना ।

यौ०—नया नवेला = नवयुवक । नौजवान ।

२. जिसका अस्तित्व तो पहले से हो परंतु परिचय हाल में मिला हो । जो थोड़े समय से मालूम हुआ हो या सामने आया हो । जैसे,—(क) कोलंजस ने एक नए महाद्वीप का पता लगाया था । (ख) अमोक का एक नया शिलालेख मिला है । (ग) नए आदमी को देखकर यह खड़का घबरा जाता है । ३. पहलेवाले से भिन्न । जो पहले था उसके स्थान पर आने-वाला दूसरा । जैसे,—(क) मैंने कल एक नया घोड़ा खरीदा है । (ख) बंगाल में नए लाट आए हैं । ४. जो पहले किसी के व्यवहार में न आया हो । जिससे पहले किसी ने काम न लिया हो । जैसे,—पहली किताब इसने खो दी थी, यह तो इसे नई लेकर दी गई है । ५. जिसका आरंभ पहले पहल अथवा फिर से, परंतु बहुत हाल में हुआ हो । जैसे, नई ज़िंदगी पाना, नए सिरे से कोई काम करना, नया शोध देखना । ६. जिसका नामकरण किसी पुराने नाम पर हुआ हो । जिसका नाम किसी पुराने (स्थान आदि) के नाम पर रखा गया हो । जैसे, नया बोधाम, नई बस्ती, नया बाजार आदि ।

नयापन—संज्ञा पुं० [सं० नव, हि० नया + पन (प्रत्यय०)] नया होने का भाव । नवीनता । नूतनत्व ।

नयाबत—संज्ञा स्त्री० [सं० नियाबत] नायब का पद और कार्यविषय ।

उ०—दिल्लीशाही जमाने में नयाबत का सदर मुकाम बरियागढ़ रक्खा गया था।—शुक्ल अमि० बं०, पृ० ७१।

नयाम—संज्ञा पुं० [फा०] तलवार का म्यान। तलवार की खोख।

नय्या^७—संज्ञा स्त्री० [हि०] देखो 'नैया'। उ०—निंद्य हलकोरों से डगमग बहती मेरी नय्या।—हिस्लोव, पृ० १०२।

नरंग—संज्ञा पुं० [सं० नारङ्ग] १. नारंगी का पेड़। २. पुरुषेन्द्रिय (की०)। ३. मुहासा।

नरंद^७—संज्ञा पुं० [सं० नरेन्द्र] राजा। उ०—प्रीत नरंदा देह पण रीत समंदा बंध।—रा० ६०, पृ० ४३।

नरंधि—संज्ञा पुं० [सं० नरन्धि] सांसारिक जीवन [की०]।

नरंधिष—संज्ञा पुं० [सं० नरन्धिष] विष्णु [की०]।

नरंभ^७—वि० [फा० नर्म] नरम। मुलायम। चिकना। कोमल।
उ०—रेसमी डोरि पट्टी नरंभ। गृहे सोत छहि दुषित गरंभ।
—पृ० रा०, ७।५८।

नर^१—संज्ञा पुं० [सं०] १. विष्णु। २. शिव। महादेव। ३. अर्जुन। ४. धर्मराज और दशप्रजापति की एक कन्या से उत्पन्न एक पौराणिक ऋषि।

विशेष—पौराणिक गायानुसार यह ईश्वर के अंशावतार माने जाते थे। ये और नारायण दोनों माई थे। विशेष—दे० 'नरनारायण'।

५. एक देव योनि। ६. पुरुष। मरं। आदमी। ७. एक प्रकार का नृप।

विशेष—१. से रायकपुर, रोहिस, संधिया और गंधेल भी कहते हैं। विशेष—दे० 'गंधेल'।

८. वह खूंटो जो छाया आदि जानने के लिये लड़े बल गाड़ी जाती है। शंकु। लंब। ९. सेवक। १०. गय राक्षस के पुत्र का नाम। ११. सुधृति के पुत्र का नाम। १२. भवःमन्य के पुत्र का नाम। १३. दोहे का एक भेद जिसमें १५ गुरु और १८ लघु होते हैं। जैसे,—विश्वंभर नामे नहीं, मही विश्व में नाहि। दुइ मँह भूठी कोन है, यह संशय जिय माहि।—(शब्द०)। १४. छप्पय का एक भेग जिसमें १० गुरु और १३ लघु होते हैं। १५. अनुष्य। आदमी (की०)। १६. छतरंज का मोहरा (की०)। १७. परम पुरुष। पुराण पुरुष (की०)। १८. आदमी की लंबाई का परिमाण। पुरुष। १९. थोड़ा (की०)। २०. जीवात्मा (की०)।

नर^२—वि० जो (प्राणी) पुरुष जाति का हो। मादा का उलटा।

नर^३—संज्ञा पुं० [हि० नल] नल जिसमें से होकर पानी जाता है।
उ०—नर की अथ नर नीर की एक गति कर जोइ। जेतो नीचे ह्वै चले तेतो ऊंचे होइ।—बिहारी (शब्द०)।

नर^४—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'नरकट'।

नर^५—संज्ञा पुं० [सं० नीर] जल। पानी। उ०—पुत्री वनिक सराप दिय भर पुहकर नर लोइ। असुर होइ बीसल नृपति वरपल-चारी सोइ।—पृ० रा०, १।४६१।

नरई—संज्ञा स्त्री० [देश०] १. गेहूं की बास या डंठल। २. किसी बास का डंठल जो अंदर से पोखा हो। ३. एक प्रकार की

बास जो प्रायः अलाश्यों के पास होती है। उ०—धौधन के आल, जामें नरई सेवाल ब्याल, ऐसे पापी ताल को मराल से कहा करे।—इतिहास, पृ० २७३।

नरकंत^७—संज्ञा पुं० [सं० नरकान्त] राजा। नृप।

नरक—संज्ञा पुं० [सं०] १. पुराणों और धर्मशास्त्रों आदि के अनुसार वह स्थान जहाँ पापी मनुष्यों की आत्मा पाप का फल भोगने के लिये भेजी जाती है। वह स्थान जहाँ दुष्कर्म करनेवालों की आत्मा दंड देने के लिये रखी जाती है। दोख। जहन्नुम।

विशेष—अनेक पुराणों और धर्मशास्त्रों में नरक के संबंध में अनेक बातें मिलती हैं। परंतु इनसे अधिक प्राचीन ग्रंथों में नरक का उल्लेख नहीं है। जान पड़ता है कि वैदिक काल में लोगों में इस प्रकार की नरक की भावना नहीं थी। मनुस्मृति में नरकों की संख्या २१ बतलाई गई है जिनके नाम ये हैं—तामिस, अंधतामिस, रौरव, महारौरव, नरक, महानरक, कालसूत्र, संजीवन, महाजीवि, तपन, प्रतापन, संहत, काकोल, कुम्भल, प्रतिमूर्तिक, लोहशंकु, ऋजीष, शात्मली, वैतरणी, मसिपत्रवन और लोहदारक। इसी प्रकार भागवत में भी २१ नरकों का वर्णन है जिनके नाम इस प्रकार हैं—तामिस, अंधतामिस, रौरव, महारौरव, कुंभीपाक, कालसूत्र, मसिपत्रवन, शूकरमुख, अंध-रूप, कुमिभोजन, संदेश, तप्तशूर्पि, वज्रकंटक-शात्मली, वैतरणी, यूयोद, पाणरोध, त्रिभुवन, तालाभक्ष, सारमेयादन, असीची और अयःवान। इसके प्रतिरिक्त क्षार-मर्दन, रसोगणभोजन, शूलप्रोत, रौदशूक, अवटनिरोधन, पर्यावर्तन और सूचीमुख ये सात नरक और भी माने गए हैं। इसके प्रतिरिक्त कुछ पुराणों में और भी अनेक नरककुंड माने गए हैं जैसे,—वसाकुंड, तप्तकुंड, सूर्यकुंड, चक्रकुंड। कहते हैं, भिन्न भिन्न पाप करने के कारण मनुष्य की आत्मा को भिन्न भिन्न नरकों में सहस्रों वर्ष तक रहना पड़ता है जहाँ उन्हें बहुत अधिक पीड़ा दी जाती है। मुसलमानों और ईसाइयों में भी नरक की कल्पना है, परंतु उनमें नरक के इस प्रकार के भेद नहीं हैं। उनके विश्वास के अनुसार नरक में सदा भीषण आग जलती रहती है। वे स्वर्ग को ऊपर और नरक को नीचे (पाताल में) मानते हैं।

मुहा०—नरक होना = नरक में भेजा जाना। नरक भोगने का दंड होना।

क्रि० प्र०—भोगना।

२. बहुत ही गंदा स्थान। ३. वह स्थान जहाँ बहुत ही पीड़ा या कष्ट हो। ४. पुराणानुसार कलि के पुत्र का नाम जो कलि के पुत्र मय और कलि की पुत्री मृत्यु के गर्भ से उत्पन्न हुआ था और जिसने अपनी बहन यातना के साथ विवाह किया था। ५. विप्रचित्ति दानव के एक पुत्र का नाम। ६. निकुत के गर्भ से उत्पन्न अमृत के एक पुत्र का नाम। ७. दे० 'नरकासुर'।

नरककुंड—संज्ञा पुं० [सं० नरककुण्ड] नरक का वह कुंड जिसमें पापी जीव को बंधा देने के लिये डाला जाता है [की०]।

नरकगति—संज्ञा स्त्री० [सं०] जैन शास्त्र के अनुसार वह कर्म जिसके करने से मनुष्य को नरक में जाना पड़े।

नरकगामी—वि० [सं० नरकगामिन्] नरक में जानेवाला।

नरकधनुर्दशो—संज्ञा स्त्री० [सं०] कानिक कृष्णा चतुर्दशी जिस दिन घर का सारा झूठा वस्तुवार निकालकर फेंका जाता है।

नरकचूर—संज्ञा पुं० [सं० नर + हि० कचूर] दे० 'कचूर'।

नरकजित्—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'नरकान्तक' [को०]।

नरकट—संज्ञा पुं० [सं० नल] बेंत की तरह का एक प्रसिद्ध पीछा जिसकी पत्तियाँ बाँस की पत्तियों की तरह पतली और लंबी होती हैं।

विशेष—इसके डठल लंबे, मजबूत और बीच से बोले होते हैं और कलम तथा चटाईयाँ आदि बनाने के काम में आते हैं। इसके प्रतिरिक्त इसके डठलो का उपयोग हुक्के की निर्गालियाँ, दोरियाँ और डठल के लिये मोढ़े आदि बनाने और छतें पाटने में भी होता है। कहीं कहीं इसके रेशों से रस्से भी बनाए जाते हैं।

नरकदेवता—संज्ञा पुं० [सं० नरक + देव + ता] निम्न [को०]।

नरकपाल—संज्ञा पुं० [सं०] आदमी की खोपड़ी [को०]।

नरकभूमि—संज्ञा स्त्री० [सं०] यमपुरी। यमलोक की भूमि [को०]।

नरकभूमिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] नरक लोक (जैन)।

नरकल—संज्ञा पुं० [सं० नल] दे० 'नरकट'।

नरकस—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'नरकट'।

नरकस्था—संज्ञा स्त्री० [सं०] वैतरणी नदी।

नरकान्तक—संज्ञा पुं० [सं० नरकान्तक] विष्णु।

नरकामय—संज्ञा पुं० [सं०] १. नरक रूपी रोग। २. प्रेत [को०]।

नरकारि—संज्ञा पुं० [सं०] कृष्ण [को०]।

नरकावास—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह जो नरक में हो। २. नरक में वास [को०]।

नरकासुर—संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार एक प्रसिद्ध असुर।

विशेष—कहते हैं, जिस समय भगवान् ने बाराह का अवतार लिया था उस समय उन्होंने पृथ्वी के साथ गमन किया था जिससे उसे गर्भ रह गया था। जब देवताओं को मालूम हुआ कि इस गर्भ में एक बड़ा और बली असुर है तब उन्होंने पृथ्वी का प्रभव रोक दिया। इसपर पृथ्वी ने भगवान् से प्रार्थना की। भगवान् ने वर दिया कि नेता में जब रामचंद्र के हाथ से रावण का वध होगा तब तुम्हारे गर्भ से एक पुत्र उत्पन्न होगा। और इस बीच में तुम्हें कोई कष्ट न होगा। जिस समय रावण मारा गया उस समय पृथ्वी के गर्भ से उसी स्थान पर इस असुर का जन्म हुआ जिस स्थान पर सीता का जन्म हुआ था। पृथ्वी के इस बालक को राजा जनक ने १६ वर्ष की आयु तक अपने यहाँ रखकर पाना पोसा और पढ़ाया सिखाया था। जब नरक १६ वर्ष का हो गया तब पृथ्वी उसे जनक के यहाँ से ले आई। उस समय पृथ्वी ने

अपने पुत्र को उसके जन्म के संबंध की सारी कथा सुनाई और विष्णु का स्मरण किया। विष्णु नरक को लेकर प्राग्ज्योतिषपुर गए और उन्होंने उसे वहाँ का राजा बना दिया। उसी समय विदर्भ की राजकुमारी माया के साथ नरक का विवाह भी हो गया। उस समय विष्णु ने उसे समझा दिया था कि तुम ब्राह्मणों और देवताओं आदि के साथ कभी विरोध न करना, उन्होंने उसे एक दुर्भेद्य रथ दिया था। नरक कुछ दिनों तक तो बहुत अच्छी तरह राज्य करता रहा पर जब बाणासुर धूमता फिरता प्राग्ज्योतिषपुर पहुँचा तब नरक भी उसके संसर्ग के कारण दुष्ट हो गया और देवताओं आदि को कष्ट देने लगा। उसी अवसर पर एक बार वशिष्ठ कामाक्षा देवी का दर्शन करने के लिये वहाँ गए थे लेकिन नरक ने उन्हें नगर में घुसने तक नहीं दिया। इसपर वशिष्ठ ने बहुत नाराज होकर जाप दिया था कि शीघ्र ही तुम्हारे पिता के हाथ से तुम्हारी मृत्यु होगी। इसपर बाणासुर की सम्मति से नरक तपस्या करने लगा जिससे प्रसन्न होकर ब्रह्मा ने उसे वर दिया कि तुम्हें देवता, असुर, राजस आदि में से कोई न मार सकेगा और तुम्हारा राज्य सदा बना रहेगा। इसके बाद उसे भगदत्त, महाशीर्ष, महाबान और सुमाली नामक चार पुत्र हुए। तब उसने हयग्रीव, गुह, और उपसुंद आदि असुरों की सहायता से इंद्र को जीता और बहुत ही अत्याचार करना आरंभ किया। अंत में श्रीकृष्ण ने अवतार लेकर प्राग्ज्योतिषपुर पर चढ़ाई की और विष्णु ने अपने सुदर्शन चक्र से नरक का सिर काट डाला। कहते हैं कि इसके आँकार में जितना धन आदि था उतना कुबेर के आँकार में भी नहीं था। वह सब धन रत्न आदि श्रीकृष्ण अपने साथ द्वाका ले गए थे।

नरकी—वि० [सं० नारकी] दे० 'नारकी'।

नरकुल—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'नरकट'।

नरकेशरी—संज्ञा पुं० [सं० नरकेशरिन्] तुसिह जो विष्णु के अवतार माने जाते हैं।

नरकेशरी—संज्ञा पुं० [सं० नरकेशरिन्] दे० 'नरकेशरी'। उ०—
राम नाम नरकेशरी कनककसिगु कलिकाल्। जोषक जन प्रह्लाद जिम पालिहि दक्षि मुरसालु।—मानस १।२७।

नरकेशरी—संज्ञा पुं० [सं० नरकेशरिन्] दे० 'नरकेशरी'।

नरकौतुक—संज्ञा पुं० [सं०] मदारी का खेल।

नरखड़ा—संज्ञा पुं० [देश०] गला।

नरगण—संज्ञा पुं० [सं०] फलित ज्योतिष में नक्षत्रों का एक गण जिसमें उत्तरा फाल्गुनी, उत्तराषाढ़ा, पूर्वभाद्रपद, रोहिणी, अरुणी और आर्द्रा नक्षत्र सम्मिलित हैं।

विशेष—इस गण में जन्म लेनेवाला सुभील और बुद्धिमान होता है। राक्षसगण के साथ इस गण का विरोध माना जाता है। इसे मनुष्य गण भी कहते हैं।

नरगण—वि० [हि० नर + गण] दे० 'गण'-७।

नरगिस—संज्ञा पु० [फ्रा०] १. एक पौधा जो ठोक प्याज के पैड़ सा होता है ।

विशेष—इसकी जड़ भी प्याज की गठि सी होती है । इसमें कटोरी के आकार का सफेद रंग का फूल लगता है जिसमें गोल काला घंघा होता है । नरगिस की सुगंध भी बड़ी मनोहर होती है । फारसी और उर्दू के कवि इस फूल के साथ आँख को उपमा देते हैं । इसके फूल का रङ्ग बहुत अच्छा बनता है ।

२. इस पौधे का फूल । उ०—कुशतए हसरतदार हैं या रब किस्के, नकल ताफत में जो फूल लगे नरगिस के ।—श्री निवास ग्रं०, पृ० ८५ ।

नरगिसी—संज्ञा पु० [फ्रा०] १. एक प्रकार का कपड़ा जिसपर नरगिस की तरह के फूल बने होते हैं । २. एक प्रकार का तला हुआ घंटा ।

नरगिसी—वि० नरगिस की तरह या रंग आदि का । नरगिस संबंधी । उ०—मपनी नरगिसी निमानी आँखों का बीमार किया ।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ५६२ ।

नरगिस—संज्ञा स्त्री० [फ्रा० नरगिस] दे० 'नरगिस' । उ०—आचीन नरगिस भी असोक ।—ह० रासो, पृ० ६३ ।

नरचा—संज्ञा पु० [देश०] एक प्रकार का पाट या पटुआ ।

नरजी—वि० [हि०] तोल करनेवाला । उ०—नैन किये नरजी दिन रैन रतीबल कंचन-रूपहि तोल ।—घनानंद, पृ० ५६२ ।

नरतना—संज्ञा पु० [फ्रा० नरतन] नाचना । उ०—जहँ चंचल तुरग नरतन मन मुग्ध बनावत ।—प्रेमचन०, भा० १, पृ० ११ ।

नरतात—संज्ञा पु० [सं०] राजा । नृपति । उ०—इमि अनेक उत्पात, भए प्रथमपुर जात तँह । तिद्धि न गिन्धी नरतात समर घुर बिक्यात भुव ।—गोपाल (शब्द०) ।

नरत्राण—संज्ञा पु० [सं०] १. नरपाल । राजा । २. श्रीकृष्ण ।

नरव—संज्ञा स्त्री० [सं०] नर होने का भाव । नरता ।

नरद—संज्ञा स्त्री० [फ्रा० नर्द] १. चौसर खेलने की गोटी । उ०—तुरत डारिये मार नरद कचवी कवि दीत्र ।—गिरधर (शब्द०) । २. एक पौधा जिसके फूलों का घरक लोंचा जाता है और जिसकी पत्तियाँ मसाले के काम में आती हैं ।

नरद—संज्ञा स्त्री० [सं० नर्द] शब्द । उक्ति । नाद ।

नरदन—संज्ञा स्त्री० [सं० नर्दन (= नाद)] नाद करना । गरजना । उ०—वनपति सभ नरदन अभित बल निनि मानमासा गरे ।—गोपाल (शब्द०) ।

नरद्वी—संज्ञा पु० [फ्रा० नावदान] नल । पनाला ।

नरद्वी—संज्ञा पु० [फ्रा० नावदान] झैला पानी बहने की नाली ।

नरद्वारा—संज्ञा पु० [सं० नर + सं० द्वारा] १. जनाना । जनजा । हिजड़ा । नपुंसक । २. जो पुरुष होकर भी स्त्रियों का काम करे । डरपोक । कायर । उ०—वेव भयानक लखि बिकरारा । चहुँ दिशि भागि चले नरद्वारा ।—सबल (शब्द०) ।

नरदेव—संज्ञा पु० [सं०] १. राजा । नृपति । २. ब्राह्मण ।

नरदेवकुमार—संज्ञा पु० [सं०] एक ऋषि जिनकी कथा श्रीमद्-भागवत में है ।

नरद्विष्—संज्ञा पु० [सं०] राक्षस [को०] ।

नरनाइक—संज्ञा पु० [सं०] संसार । जगत् । विश्व [को०] ।

नरधि—संज्ञा पु० [सं० नरनायक] दे० 'नरनायक' । उ०—सिगरे नरनाइक अमुर बिनाइक गकमपनि हिय हारि गए ।—केशव ग्रं०, पृ० १७१ ।

नरनाथ—संज्ञा पु० [सं०] राजा । नृपति । नृपाल ।

नरनायक—संज्ञा पु० [सं०] नृप । राजा । भूपति ।

नरनारायण—संज्ञा पु० [सं०] नर और नारायण नाम के दो ऋषि जो विष्णु के अवतार माने जाते हैं ।

विशेष—कहते हैं, ये दोनों आई ये और नारायण इनमें से बड़े थे । महाभारत में लिखा है कि एक बार नर और नारायण गंधमादन पर्वत पर तपस्या कर रहे थे । उस समय वसु का यज्ञ हो रहा था । इस यज्ञ में दक्ष ने रुद्र के भाग की कल्पना नहीं की थी जिससे क्रुद्ध होकर दक्ष का यज्ञ नष्ट करने के लिये रुद्र ने एक गूल फेंका था । वह गूल यज्ञ नष्ट करने के उपरांत जाकर बड़े जोर से नारायण के वक्षस्थल पर गिरा और उसी समय नारायण के हृकार से पराजित और आहत होकर फिर शकर के हाथ में आ पहुँचा । इसपर रुद्र क्रोध करके नर-नारायण पर चढ़ दीड़े । नारायण ने तो रुद्र का गला पकड़ लिया और नर ने उन्हें मारने के लिये एक शीक उड़ाई जो बड़ा भारी पशु बन गई । नारायण और रुद्र में भीषण युद्ध होने लगा । उसमें पृथ्वी तथा आकाश में अनेक प्रकार के उपद्रव होने लगे । जब ब्रह्मा ने आकर रुद्र को समझाया कि ये स्वयं नारायण के अवतार हैं और किसी समय तुम्हारी भी सृष्टि इन्हीं के क्रोध से हुई थी तब रुद्र ने प्रार्थना करके नारायण को प्रसन्न किया । इसके उपरांत रुद्र के साथ नर-नारायण की घनिष्ठ मित्रता हो गई । महाभारत के नारायणो-पाख्यान में यह भी लिखा है कि परब्रह्मा के अवतार नर और नारायण नामक दो ऋषियों ने नारायणी धर्मात् भागवत् धर्म का प्रचार किया था और उनके कहने से जब नारद ऋषि श्वेतद्वीप गए थे तब स्वयं भगवान् ने उनको इस धर्म का उपदेक किया था । देवीभागवत में लिखा है कि ब्रह्मा के पुत्र धर्म ने वसु की दस कन्याओं से विवाह किया था जिनके गर्भ से हरि, कृष्ण, नर और नारायण नामक चार पुत्र उत्पन्न हुए थे । इनमें से हरि और कृष्ण तो योगाभ्यास करते थे और नरनारायण द्विमात्र पर कठिन तपस्या करते थे । उस समय इंद्र ने डरकर इनकी तपस्या भंग करने के लिये काम, क्रोध और लोभ की सृष्टि की और उन तीनों को नर नारायण के सामने भेजा, परंतु नरनारायण की तपस्या भंग नहीं हुई । तब इंद्र ने कामदेव की शरण ली । कामदेव अपने साथ वसंत और रंभा, तिलोत्तमा आदि अमराओं को लेकर नरनारायण के पास पहुँचे । उस समय अमराओं के गाने आदि से नर-नारायण की आँखें खुलीं । उन्होंने सब बातें समझ लीं और इंद्र को लज्जित करने के लिये तुरंत अपनी जाँघ से एक बहुत सुंदर

नरयान—संज्ञा पुं० [सं०] ऐसी सवारी (पालकी या डोली) जिसे घावभी खींचे या ढोए ।

नरयथ—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'नरयान' [को०] ।

नरलोक—संज्ञा पुं० [सं०] मनुष्यलोक । मृत्युलोक । संसार ।

नरवई^(५)—संज्ञा पुं० [सं० नरपति, प्रा० एरवई] नरपति । राजा ।
उ०—भयउ न होईहि, है न, जनक सम नरवई । —तुलसी
छं०, पृ० ४५ ।

नरवध—संज्ञा पुं० [सं०] मनुष्यों का वध या हत्या [को०] ।

नरवर—संज्ञा पुं० [सं०] उत्कृष्ट मनुष्य । नर श्रेष्ठ ।

नरवरी—संज्ञा स्त्री० [देश०] क्षत्रियों की एक जाति ।

नरवा^१—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की बिड़िया ।

नरवा^{(५) १}—संज्ञा पुं० [हि० नाला] दे० 'नाला' । उ०—गवि
ते गवि बड़ी पुर ते पुर लाधि नदी नरवा घर को तन ।—
श्यामा०, पृ० १७० ।

नरवाई—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'नरई' । उ०—बालि खींचि के सूर
हमारे सब नरवाई को लुनै ।—सूर (शब्द०) ।

नरवाह—संज्ञा पुं० [सं०] वह सवारी जिसे मनुष्य खींच या ढोकर
ले चले । जैसे, पालकी, ताम्रजान इत्यादि ।

नरवाहन^१—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह सवारी जिसे मनुष्य खींच या
ढोकर ले चले । २. कुबेर । ३. किन्नर । ४. बत्सन्तरेण
उदयन का पुत्र ।

नरवाहन^२—वि० मनुष्यों द्वारा खींची या ढोई जानेवाली सवारी पर
चलनेवाला ।

नरचितवण—संज्ञा पुं० [सं०] राक्षस [को०] ।

नरवीर—संज्ञा पुं० (सं०) वीर मनुष्य । बहादुर घाटमी । योद्धा [को०] ।

नरव्याघ्र—संज्ञा पुं० [सं०] १. मनुष्यों में श्रेष्ठ । २. जल में
रहनेवाला एक प्रकार का जानवर ।

विशेष—इसके शरीर के नीचे का भाग मनुष्य के घाकार का
और ऊपर का भाग बाघ के घाकार का होता है ।

नरशक्र—संज्ञा पुं० [सं०] नरेंद्र । राजा । नृप ।

नरशार्दूल—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'नरव्याघ्र' [को०] ।

नरशृंग—संज्ञा पुं० [सं० नरशृङ्ग] अमंभव बात । खपुष्प [को०] ।

नरसंसर्ग—संज्ञा पुं० [सं०] मनुष्यसमाज [को०] ।

नरसख—संज्ञा पुं० [सं०] नारायण जो नर के सखा हैं [को०] ।

नरसल—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'नरकट' ।

नरसार—संज्ञा पुं० [सं०] नौसादर ।

नरसिंग—संज्ञा पुं० [हि०] एक प्रकार का विलायती फूल ।

नरसिंगा—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'नरसिंघा' ।

नरसिंघ—संज्ञा पुं० [सं० नरसिंह] दे० 'नृसिंह' ।

नरसिंघा—संज्ञा पुं० [हि० नर (= बड़ा) + सिंघा (= सींग का बना एक
प्रकार का बाजा)] तुरही की तरह का एक प्रकार का नल के
घाकार का तबि का बड़ा बाजा जो फूँककर बजाया जाता है ।

विशेष—यह जिस स्थान में फूँककर बजाया जाता है उस स्थान
पर बहुत पतला होता है और उसके धागे का भाग बराबर
चोड़ा होता जाता है । बीच में से इसके दो भाग भी कर



लिए जाते हैं और बजाने के बाद पतला भाग धलंग करके मोटे
भाग के धंदर रख लिया जाता है । प्राचीन काल में इसका
व्यवहार रणक्षेत्र में होता था और आजकल यह देहात में
विवाह आदि के अवसर पर बजाया जाता है ।

नरसिंह—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'नृसिंह' ।

नरसिंहज्वर—संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक के अनुसार एक प्रकार का
ज्वर जो चौथिया या चातुर्थिक का उलटा है ।

विशेष—यह ज्वर तीन दिन तक चढ़ा रहता है और चौथे दिन
उतर जाता है, और फिर वही क्रम चलता है ।

नरसिंहपुराण—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'नृसिंहपुराण' ।

नरसी^(५)—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'नरसल' । उ०—नरसी जल में
घर करे मनमा जई पाव ।—रामानंद०, पृ० १२ ।

नरसेज—संज्ञा पुं० [देश०] तिथारा नामक शहर जिसमें पत्ते नहीं
होते । विशेष—दे० 'अतिथारा' ।

नरसों^१—क्रि० वि० [हि०] दे० 'अंतरसों' ।

नरसों—संज्ञा पुं० १. बीते हुए परसों के पहले का दिन । २. जानेवाले
परसों के बाद का दिन ।

नरस्कंध—संज्ञा पुं० [सं० नरस्कन्ध] जनसमुदाय [को०] ।

नरहड्डी—संज्ञा पुं० [सं० नलक + हि० हड्डी] घुटने और पाँव के
बीच की लंबी हड्डी ।

नरहत्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] मनुष्यवध । नरवध [को०] ।

नरहय—संज्ञा पुं० [सं०] छोड़े और मनुष्य में होनेवाला युद्ध [को०] ।

नरहर^१—संज्ञा स्त्री० [देश०] अथवा सं० नलक + हि० हड्डी या हर]
पैर की वह हड्डी जो पिंडली के ऊपर होती है ।

नरहर^{(५) २}—संज्ञा पुं० [सं० नरहरि] दे० 'नरहरि' । उ०—नरहर
समरतां नह बोते नाणों, लवमूँ तिको न लेवे ।—रघु० छं०,
पृ० २७ ।

नरहरि—संज्ञा पुं० [सं०] नृसिंह भगवान जो दस अवतारों में चौथे
अवतार हैं । उ०—तब ले खड्ग खंभ में मारयो शब्द भयो
अति भारी । पगट भए नरहरि वपु धरि कटकट करि
उच्चारि ।—सूर (शब्द०) ।

नरहरी^१—संज्ञा पुं० [हि०] एक छंद का नाम जिसके प्रत्येक पद में
१४ और २ के विराम से १६ मात्राएँ और अंत में १ गण
१ गुरु होता है । जैसे,—हरि सुनत भक्त की बानी, दुख भरी ।
अट प्रगटे खंभा फारी, तिहि घरी । रिपु हन्यो दीन सुख भारी,
दुख हरी । मन सदा भजो चित लाई, नरहरी (शब्द०) ।

नरहरी(पु)²—संज्ञा पुं० [सं० नरहरि] दे० 'नरहरि' । उ०—परधन परदार पहरि । ताके निकट बसहि नरहरी ।—कबीर सा०, पृ० ३१ ।

नरहा¹—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का जंगली वृक्ष ।

नरहा²—वि० दे० 'चित्नी' ।

नरहा³ वि० [हि० नाला] नालेवाला या नाले से संबंधित ।

नरहीरा—संज्ञा पुं० [हि० नर (= बड़ा) + हि० हीरा] वह बाठ पहल या छद्म पहल का बड़ा हीरा जिसके किनारे खूब तेज हों ।

विशेष—कहते हैं, ऐसा हीरा जिसके पास होता है वह राजा हो जाता है और उसका वैभव बहुत बढ़ जाता है ।

नरांग—संज्ञा पुं० [सं० नराङ्ग] १. पुरुष की इंद्रिय । २. मुँहासा (को०) ।

नरांतक—संज्ञा पुं० [सं० नरान्तक] रावण के एक पुत्र का नाम जो राम-रावण-युद्ध में अंगव के हाथ से मारा गया था ।

नरा—संज्ञा पुं० [हि० नल या नरकट] नरकट की एक छोटी नली जिसके ऊपर सूत लपेटा रहता है (जोलाहे) ।

नराच—संज्ञा पुं० [सं० नाराच] १. तीर । बाण । चार । २. पंच चामर या नागराज नामक वृत्त जिसके प्रत्येक चरण में जगण, रगण, अगण, और अंत में एक गुरु होता है । जैसे,—
जु रोज रोज गोप तीय कृष्ण संग घावतीं । सुगीत नाच पाँव सों लगाय चित्त गावतीं ।

नराचिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] वितान वृत्त का एक भेद जिसके प्रत्येक चरण में तगण, रगण, लघु और गुरु होता है । जैसे, तोरी लगे नराचिका । मोरी कटे भववाचिका ।

नराजा¹—वि० [फ्रा० नाराज] दे० 'नाराज' ।

नराजना(पु)¹—क्रि० सं० [फ्रा० नाराज] अप्रसन्न करना । नाराज करना । उ०—उठो हिलोर जो चान्ह नराजी । लहरि अकास लागि भुईं बाजी ।—नायसी (शब्द०) ।

नराजना²—क्रि० प्र० अप्रसन्न होना । नाराज होना ।

नराट(पु)¹—संज्ञा पुं० [सं० नराट] नरेंद्र । राजा । नृपाल । उ०—अभिवादन तब करत नराट । मिले पार्षसुत दुपद विराट ।—सबल (शब्द०) ।

नराधिप—संज्ञा पुं० [सं०] राजा । नरपति । नृपाल ।

नरायन—संज्ञा पुं० [सं० नारायण] दे० 'नारायण' ।

नराश—संज्ञा पुं० [सं०] मानवमयी राक्षस (को०) ।

नराशन—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'नराक्ष' ।

नरिंद(पु)¹—संज्ञा पुं० [सं० नरेन्द्र] राजा । नराधिप । नरपति ।

नरिन्दर—संज्ञा पुं० [सं० नारिकेर या नारिकेल] दे० 'नारियल' ।

नरिन्दरी—संज्ञा स्त्री० [हि० नारियल] नारियल की खोपड़ी का आधा भाग ।

नरिवाहना(पु)¹—क्रि० प्र० [सं० निर्वाह] निर्वाह करना । उ०—ज्युं बोलह ते नरिवाहज्यो, बचन तुमारइ जागी छह नार ।—बी० रासो, पृ० ७८ ।

नरियर—संज्ञा पुं० [सं० नारिकेर या नारिकेल] दे० 'नारियल' ।

नरियरी—संज्ञा स्त्री० [हि० नरियर + ई (प्रत्य०)] दे० 'नरियरी' ।
नरिया¹—संज्ञा पुं० [हि० नाली] एक प्रकार का मिट्टी का खपड़ा जो मकान की छाजन पर रखने के काम में आता है ।

विशेष—यह अर्धवृत्ताकार और लंबा होता है और इसे 'बपुआ' खपड़े की संघियों पर घोषाकार रख देते हैं जिससे उन संघियों में से पानी न बचे नहीं टपकने पाता ।

नरियाना—क्रि० प्र० [सं० नरदन तुलनीय प्र० नमरह] चिल्लाना । शोर मचाना । हल्ला करना ।

नरी¹—संज्ञा स्त्री० [फ्रा०] १. बकरी या बकरे का रंगा हुआ चमड़ा । २. लाल रंग का चमड़ा । ३. सिंभाया हुआ चमड़ा । मुनायम चमड़ा । ४. नार । ठरकी के भीतर की नली जिसपर तार लपेटा रहता है (जुलाहा) । ५. एक प्रकार की बास जो ताल या नदी के किनारे होती है ।

नरी²—संज्ञा स्त्री० [सं० नलिका] १. नली । बाली । छुच्छी । पुपली । २. वह बाँस की नली जिससे सुनार लोग धातु सुलगाते हैं । फुंकनी ।

नरी³—संज्ञा स्त्री० [सं० नर] स्त्री । नारी ।

नरी⁴—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का बगुला ।

नरु(पु)¹—संज्ञा पुं० [सं० नर] दे० 'नर' ।

नरुई¹—संज्ञा स्त्री० [हि० नली] छुच्छी । पुपली । छोटी नली ।

नरुवा¹—संज्ञा पुं० [हि० नल] घनाज के पीधों की बंदी जो अंदर पोली होती है ।

नरेंद्र—संज्ञा पुं० [सं० नरेन्द्र] १. राजा । नृप । नरेश । २. वह जो सौंप, बिच्छू आदि के काटने का इलाज करे । बिपवेष्ट । ३. श्योनाक वृक्ष । ४. एक छद्म जिसके प्रत्येक चरण में २८ मात्राएँ होती हैं, जिसमें सोलह मात्राओं पर विराम और अंत में दो गुरु होते हैं । जैसे,—मीत चोतनो धरे सीख पै, पीतांबर मन मानो । पीत यज्ञ उपवीत विराजत, मनो बसंती बानो ।

विशेष—इसे सार और ललितपद भी कहते हैं ।

नरेश्वर—संज्ञा पुं० [सं०] पशु । जानवर (को०) ।

नरेशी—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का पेड़ ।

विशेष—इस पेड़ की छाल से एक प्रकार का लाली रंग का रोंद निकलता है जो शीघ्र सूख जाता है और चमकीला होता है । यह प्रायः शिवसागर और सिलहट (आसाम) में पाया जाता है ।

नरेशी²—संज्ञा स्त्री० [हि०] १. नारियल का हुक्का । २. छोटा नारियल ।

नरेश—संज्ञा पुं० [सं०] अनुष्यों का स्वामी । राजा । नृप ।

नरेश्वर—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'नरेश' (को०) ।

नरेश(पु)¹—संज्ञा पुं० [सं० नरेश] दे० 'नरेश' ।

नरेश्वर(पु)¹—संज्ञा पुं० [सं० नरेश्वर] दे० 'नरेश' । उ०—सेतराम सकबंध नरेश्वर । इल(ण) लग राजस पूरब अंबर ।—रा० ६०, पृ० ११ ।

नरेह^७—वि० [हि०] १. निरीह । २. निष्कपट । उ०—दोही
सिरै दिवार नरेह निहारती ।—रघु० क०, पु० १५ ।

नरो^३—संज्ञा स्त्री० [हि० नरसो] परसों से पहले या बाद का एक
दिन । अंतरसों ।

नरोत्तम—संज्ञा पुं० [सं०] १. ईश्वर । भगवान् । विष्णु । २. श्रेष्ठ
नर या मनुष्य (को०) ।

नरोह—संज्ञा स्त्री० [देश०] १. पिडली की हड्डी । नली । २. कोलू
की वह नली जिसमें से रस गिरता है ।

नर्क^१—संज्ञा पुं० [सं०] नर्क । नाक (को०) ।

नर्क^७—संज्ञा पुं० [सं० नरक] दे० 'नरक' ।

नर्कट—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'नरकट' ।

नर्कुटक—संज्ञा पुं० [सं०] नासिका । नाक । घ्राणेंद्रिय ।

नर्गिस—संज्ञा पुं० [फ़ा० नरगिस] दे० 'नरगिस' ।

नर्गिसी—संज्ञा पुं०, वि० [फ़ा० नरगिसी] दे० 'नरगिसी' ।

नर्जीब—वि० [सं० निर्जीब] दे० 'निर्जीब' । उ०—नर्जीब शब्द
धारा ।—पु० रा०, १४।१५ ।

नर्त्त^१—संज्ञा पुं० [सं०] नाचनेवाला । जो नाचता हो ।

नर्त्त^२—संज्ञा पुं० नृत्य । नाच (को०) ।

नर्त्तक—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० नर्त्तकी] १. नट । नाचनेवाला ।
नृत्य करनेवाला । २. एक प्रकार का नरकट । ३. चारण ।
बंदीजन । ४. केलक । खड्ग की धार पर नाचनेवाला । ५.
हाथी । ६. महादेव का एक नाम । ७. मद्रुषा । ८. नरकट ।
९. मद्रुषा । १०. एक प्रकार की संकर जाति जिसकी उत्पत्ति
घोबी पिता और बेश्या माता से मानी जाती है । ११. राजा ।
१२. मयूर । मोर । (को०) । १३. अभिनेता (को०) ।

नर्त्तकी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. नाचनेवाली, रंगी । बेश्या । नटी ।
२. नलिका नामक सुगंध द्रव्य । नली । ३. अभिनेत्री (को०) ।
४. हृदिनी (को०) । ५. मोरिनी (को०) ।

नर्त्तन—संज्ञा पुं० [सं०] १. नृत्य । नाच । २. वह जो नृत्य
करे (को०) ।

नर्त्तनगृह—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'नर्त्तनशाला' (को०) ।

नर्त्तप्रिय^१—संज्ञा पुं० [सं०] १. निव का एक नाम । २. मयूर ।
मोर (को०) ।

नर्त्तनप्रिय—वि० नृत्य का शौकीन । नाच का प्रेमी (को०) ।

नर्त्तनशाला—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह स्थान जहाँ पर नाच होता
हो । नाचघर ।

नर्त्तनशील—वि० [सं०] नाचने के गुणवाला । नाचनेवाला ।

नर्त्तनशाला^७—संज्ञा स्त्री० [सं० नर्त्तनशाला] दे० 'नर्त्तनशाला' । उ०—
नर्त्तनशाला जाब किन, इत पीस परकास ।—आरतेंदु ग्रं०,
भा० १, पु० १०६ ।

नर्त्तना^७—क्रि० प्र० [सं० नर्त्तन] नृत्य करना । नाचना । उ०—
सरस कहूँ नायक सुमट कहूँ नर्त्तन नटराज ।—केशव (शब्द०) ।

नर्त्तित^१—वि० [सं०] १. नाचता हुआ । नृत्यशील (को०) ।

नर्त्तित^२—संज्ञा पुं० नृत्य । नाच (को०) ।

नर्त्तिता—वि० [सं०] नाचती हुई । उ०—नर्त्तिता अपवर्ग की अप्सरा
सी वह सिखा मेरा मान छूती है ।—इत्थलम्, पु० १०८ ।

नर्त्तु—वि० [सं०] तलवार की धार पर नाचनेवाला (को०) ।

नर्त्तु, नर्त्तु—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. नर्तकी । २. अभिनेत्री (को०) ।

नर्द^१—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] चौसर की गोटी ।

नर्द^२—वि० [सं०] डकरने या गरजनेवाला (को०) ।

नर्दकी—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की कपास जिसे कटोल,
निभरी और नगई भी कहते हैं ।

नर्दटक—संज्ञा पुं० [सं०] ७० अक्षरों का एक वृत्त या छंद (को०) ।

नर्दन—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. नाद । गरज । भीषण ध्वनि । २. उच्च
स्वर में गुणकीर्तन ।

नर्दवान—संज्ञा [देश०] १. काठ की सीढ़ी । २. मार्ग ।
रास्ता (लक्ष०) ।

नर्दी^१—संज्ञा पुं० [देश०] मैना बहने की नाली ।

नर्दित^१—वि० [सं०] गरजा हुआ (को०) ।

नर्दित^२—संज्ञा पुं० एक प्रकार का पासा या पासे का हाथ (को०) ।

नर्दी—वि० [सं० नर्दिन्] गरजनेवाला (को०) ।

नर्मदा—संज्ञा स्त्री० [सं० नर्मदा] दे० 'नर्मदा' ।

नर्म^१—संज्ञा पुं० [सं० नर्मन्] १. परिहास । हँसी ठट्ठा । हिलगो ।
२. सखियों का एक भेद । हँसी ठट्ठा करनेवाला सखा । उ०—
नर्म सखन लै अपने संग । भावे करन फागु रस रंग ।
—रघुराज (शब्द०) ।

नर्म^२—वि० [फ़ा०] जो कड़ा न हो । मुलायम । कोमल । २.
सहल । सरल । ३. धीमा । सुस्त । ४. विनीत । नम्र ।

शौ०—नर्म नर्म = भला बुरा या सस्ता महंगा । नर्मदिल = मुनायम
हृदयवाला ।

नर्मकील—संज्ञा पुं० [सं०] पति (को०) ।

नर्मगर्भ^१—वि० [सं०] परिहासपूर्ण । विनोदपूर्ण (को०) ।

नर्मगर्भ^२—संज्ञा पुं० १. गुप्त प्रेमी । २. नायक द्वारा वह कार्य जो
गुप्त रहे (को०) ।

नर्मट—संज्ञा पुं० [सं०] १. सूर्य । २. मिट्टी का पात्र । लप्पार (को०) ।

नर्मठ—संज्ञा पुं० [सं०] १. दिलगीबाज । वह जो परिहास आदि में
क्रुद्ध हो । २. उपपति । स्त्री का यार । ३. ठोड़ी । ४.
स्तन का अग्रभाग । ५. खंभोग । मैथुन (को०) ।

नर्मद^१—संज्ञा पुं० [सं०] दिलगीबाज । मसखरा । मीड़ । हँसोड़ ।
विह्वलक ।

नर्मद^२—वि० आनंद देनेवाला । मनोरंजन करनेवाला ।

नर्मदा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. पुष्पा या अपवर्ग नामक गंधद्रव्य । २.
एक गंधर्व स्त्री जो सुंदरी, केतुमती और बमुदा की माता
थी । ३. मध्यप्रदेश की एक नदी जो अमरकंटक से निकलकर
मड़ौच के पास खंभात की खाड़ी में गिरती है ।

नर्मदेश्वर—संज्ञा पु० [सं०] एक प्रकार के जिवनिग जो नर्मदा नदी से निकलते हैं।

विशेष—ये प्रायः स्फटिक के या लाल अथवा काले रंग के पत्थर के और बिलकुल घंटाकार होते हैं। पहाड़ों पर से पत्थर के जो टुकड़े नदी में गिरते हैं वे ही जलपात के स्थान पर भँवर में पड़कर घंटाकृति हो जाते हैं। पुराणानुसार इस प्रकार के लिंगों के पूजन का बहुत महत्त्व है।

नर्मद्युति—संज्ञा स्त्री० [मं०] १. नाट्य शास्त्र के अनुसार प्रतिमुख संबंध के तेरह वर्गों में से एक। वह परिहाम जो किसी पहले परिहास से उत्पन्न आनंद अथवा दोष द्वापाने के लिये किया जाय। जैसे,—रत्नावली में सुमंगला के यह कहने पर कि 'प्यारी सखी, तू बड़ी निरुर है। महाराज तेरी इतनी खातिर करते हैं, तो भी तू प्रसन्न नहीं होती।' सागरिका भीड़ बढ़ाकर कहती है—'अब भी तू चुप नहीं रहती, सुमंगला'। २. परिहासप्रियता। परिहास का आनंद (श्रो०)।

नर्मद्युति—वि० आनंद से उल्लसित। उल्लसित (श्रो०)।

नर्मसाचिव—संज्ञा पु० [सं०] वह मनुष्य जो राजा के साथ उसे हँसाने के लिये रहता है। निद्रूपक।

नर्मसुहृद्—संज्ञा पु० [सं०] दे० 'नर्मसाचिव'।

नर्मसाचिव्य—संज्ञा पु० [मं०] १. मनोरंजन। प्रियवादिता। २. किसी राजा, राजकुमार या सरदार के मनोविनोद संबंधी साचिव का पद (श्रो०)।

नर्मस्फूर्ज—संज्ञा पु० [सं०] साहित्यदर्पण के अनुसार कैशिकी वृत्ति के चार भेदों में से एक।

नर्मस्फोट—संज्ञा पु० [सं०] साहित्यदर्पण के अनुसार काशिकी वृत्ति के चार भेदों में से एक।

विशेष—कैशिकी वृत्ति के चार भेद ये हैं, नर्म, नर्मस्फूर्ज, नर्मस्फोट और नर्मगर्भ।

नर्मी—संज्ञा स्त्री० [क्रा०] दे० 'नरमी'।

नर्री—संज्ञा स्त्री० [श्लो०] १. एक प्रकार की बारहमासी घास जो ऊसर जमीन में भी होती है। २. एक प्रकार का पहाड़ी बाँस जो हिमालय में होता है।

नर्स—संज्ञा स्त्री० [घं०] १. वह जो रोगियों, धायलों या बुढ़ों आदि की देखभाल या परिचर्या करे। २. रोगी परिचर्या में विधिवत् प्रशिक्षित व्याक्ति। वह आँखों की दूरियों के बच्चों आदि का पालन करे। ३. धात्र। धात्री।

नख—संज्ञा पु० [मं०] १. नरकट। २. पक्ष। कमल। ३. निषध देश के चंद्रवंशी राजा वीरसेन के पुत्र का नाम।

विशेष—यह बहुत ही सुंदर और बड़े गुणवान् थ और विशेषतः घोड़ों आदि की परीक्षा और संवाहन में बड़े दक्ष थे। ये विदर्भ देश के तत्कालीन राजा भीम की कन्या दमयंती के रूप और गुणों की प्रशंसा सुनकर ही उसपर आसक्त हो गए थे। एक दिन जब वे बाग में दमयंती की चिता में बैठे हुए थे तब कहीं से कुछ हंस उड़ते हुए आकर इनके सामने बैठ गए। नख

ने उनमें से एक हंस को पकड़ लिया। उस हंस ने कहा—महाराज, आप मुझे छोड़ दें, मैं विदर्भ देश में जाकर दमयंती के सामने आपके रूप और गुण की प्रशंसा करूँगा। इनके छोड़ देने पर हंस विदर्भ देश में गया और वहाँ दमयंती के बाग में जाकर इसने उसके सामने नल के रूप और गुण की खूब प्रशंसा की, जिसे सुनकर नल के प्रति उसका पहला प्रनुराग और भी बढ़ गया और उसने हंस से कह दिया कि मैं नख के साथ ही विवाह करूँगी, तुम यह बात जाकर उनसे कह देना। हंस ने वैसा ही किया। जब राजा भीम ने दमयंती का स्वयंवर रखा तब उसमें बहुत से राजाओं के प्रतिरिक्त भनेक देवता भी आए थे। जब इंद्र, यम, अग्नि और वरुण स्वयंवर में जा रहे थे तब उन्हें मार्ग में नल भी जाने हुए मिले। इन चारों देवताओं ने नल को आज्ञा दी कि तुम जाकर दमयंती से कहो कि हमलोग भी जा रहे हैं, हममें से ही किसी को तुम वरण करना। नल ने जब दमयंती से जाकर यह बात कही तब उसने कहा कि मैं तो तुम्हें ही पति बनाने की प्रतिज्ञा कर चुकी हूँ, यही बात देवताओं से तुम कह देना। नल ने उसे देवताओं की ओर से बहुत समझाया पर दमयंती ने नहीं माना और कहा कि देवता धर्म के रक्षक होते हैं उन्हें मेरे धर्म की रक्षा करनी चाहिए। नल ने ये सब बातें देवताओं से कह दीं। इसपर वे चारों देवता नल का रूप भरकर स्वयंवर में पहुँचे और नल के समीप ही बैठे। दमयंती पहले ही नल के समान पाँच मनुष्यों को देखकर घबराई, पर पीछे से उसने असली नल को पहचानकर उन्हीं के गले में अयमाल पहनाई। इस पर चारों देवताओं ने प्रसन्न होकर नल को आठ वर दिए। दमयंती के साथ नल का विवाह तो हो गया पर कलियुग और द्वापर ने असंतुष्ट होकर नल को कष्ट पहुँचाना चाहा। कलियुग सदा नल के शरीर में प्रवेश करने का अवसर ढूँढ़ता था। पर बारह वर्ष तक उसे अवसर ही न मिला। इस बीच में नल को इंद्रसेन नामक एक पुत्र और इंद्रसेना नामक एक कन्या भी हुई। एक दिन अवसर पाकर काल ने स्वयं तो नल के शरीर में प्रवेश किया और उधर उनके भाई पुष्कर को उनके साथ खूपा खेलकर निषध जीत लेने के लिये उभाड़ा। तदनुसार छूए में नल अपना सर्वस्व हार गए। पुष्कर ने आज्ञा दे दी कि नल या उनके परिवार के लोगों को कोई आश्रय या भोजन आदि न दे। दमयंती ने अपने पुत्र और कन्या को पिता के घर भेज दिया। जब तीन दिन तक नल दमयंती को अन्न भी न मिला तब वे दोनों जंगल में निकल गए। वहाँ वर्षा की बड़े बड़े कष्ट मिले। एक दिन नल ने सोने के रंग के कुछ पक्षी देखे और उन्हें पकड़ने के लिये उनपर अपना कपड़ा डाला। पर ये पक्षी उनका कपड़ा लेकर ही उड़ गए। बहुत दुःखी होकर नख ने दमयंती से विदर्भ जाने के लिये कहा, पर उसने नहीं माना। उस समय उन दोनों के पास एक ही बत्त बच गया था। उसी को पहनकर दोनों चलने लगे। एक स्थान पर दमयंती थककर जब सो गई तब नख उसका आधा बत्त फाड़कर और उसे उसी बत्त में

छोड़कर चले गए। जब दमयंती सोकर उठी तब बहुत विलाप करती हुई अपने पिता के घर पहुँची। उधर नल भी अनेक कष्ट भोगते हुए अयोध्या पहुँचे और राजा ऋतुपर्ण के यहाँ सारथि हुए। बहुत पता लगाने पर दमयंती को सूत्र लगा कि ऋतुपर्ण के यहाँ बाहुक नामक जो सारथि है वह कदाचित् नल हो। भीम ने ऋतुपर्ण के यहाँ कहलाया कि कल हमारी कन्या का फिर से स्वयंवर होगा। उनके सारथि बाहुक (या नल) ने एक ही दिन में उन्हें विदर्भ पहुँचा दिया। वहाँ दमयंती ने नल को पहचाना और तीन वर्ष तक घोर कष्ट भोगने के उपरान्त वंपात फिर मिले। उस समय तक कालि न भी उनका पीछा छोड़ दिया था। इसके उपरान्त ऋतुपर्ण ने नल से क्षमा माँगी। एक मास तक विदर्भ में रहने के उपरान्त नल ने फिर पुष्कर के पास जाकर उससे जूझा खेला और फिर अपना राज्य जीत लिया। तब से दोनों फिर सुखपूर्वक रहने लगे। दमयंती का पातिव्रत आदर्श माना जाता है और घोर कष्ट भोगने के लिये नल दमयंती प्रसिद्ध हैं।

४. राम की सेना का एक बंदर जो विश्वकर्मा का पुत्र माना जाता है।

विशेष—कहते हैं, इसी ने पत्थरों को पानी पर तैराकर रामचंद्र की सेना के लिये लंकाविजय के समय समुद्र पर पुल बाँधा था। पुराणानुसार यह ऋतुध्वज ऋषि के शाप के कारण घृताची के गर्भ से बंदर के रूप में उत्पन्न हुआ था।

१. एक वानव का नाम जो विप्रचित्ति का चौथा पुत्र था और मिहिका के गर्भ से उत्पन्न हुआ था। ६. यदु के एक पुत्र का नाम। ७. एक नद का नाम। ८. प्राचीन काल में एक प्रकार का चमड़े का मड़ा हुआ जाना जो छोड़े की पीठ पर रखकर युद्ध के समय बजाया जाता था।

नल^१—संज्ञा पुं० [सं० नाल] १. ढंके के रूप में कुछ दूर तक गई हुई वस्तु जिसके भीतर का स्थान खाली हो। पोली लंबी बीज। २. धातु, काठ या मिट्टी आदि का बना हुआ पोला गोल खंड।

विशेष—यह कुछ लंबा होता है और एक स्थान में दूसरे स्थान तक पानी, हवा, धुआँ, गैस आदि के ले जान के काम में आता है।

३. इसी प्रकार का इंट पत्थर आदि का बना हुआ वह भाग जो दूर तक चला गया हो और जिसमें से होकर गंदगी और मैला आदि बहता हो। पनाला। ४. पेड़ के छंदर की वह नली जिसमें से होकर पेशाब नीचे उतरता है। नली।

मुहा०—नल टलना=किसी प्रकार के आघात आदि के कारण पेशाब की उक्त नली में किसी प्रकार का व्यतिक्रम होना जिससे बहुत पीड़ा होती है।

नल^२—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'नर'। उ०—जो चीन्हें तेहि निमंस प्रंगा। मनचीन्हें नल भए पतंगा।—कबीर बी०, पृ० २५।

नलक—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह गोलाकार हड्डी जिसके छंदर मज्जा

हो। नली के आकार की हड्डी। २. कालदेवल के भतीजे का नाम जिसे बुद्ध ने उपदेश दिया था।

नलका^१—संज्ञा स्त्री० [सं० नलिका] नली। नाल।

नलकिनी—संज्ञा पुं० [सं०] जंघा। जाँघ।

नलकी—संज्ञा स्त्री० [हि०] छोटी नली। नलिका। उ०—सुद्ध नलकी में समाता है कही बयाह।—हरी घास०, पृ० १४।

नलकील—संज्ञा पुं० [सं०] जानु। पुटना।

नलकूप—संज्ञा पुं० [हि०] पानी निकालने के लिये जमीन के नीचे गहराई तक छेदकर बैठाया गया एक विशेष प्रकार का नल जो मशीन द्वारा संचालित होता है। ट्यूबवेल।

नलकूबर—संज्ञा पुं० [सं०] १. कुंवर के एक पुत्र का नाम।

विशेष—इसका उल्लेख महाभारत में है। महाभारत में लिखा है कि एक बार यह अपने भाई मणिप्रोव के साथ खूब शराब पीकर कैलाश पर्वत पर गया कि कितना एक उपवन में स्त्रियों के साथ क्रीड़ा कर रहा था। उन दानों को इस दुष्टता में देखकर नारदन शाप दिया था कि तुम भुजुन वृक्ष हो जाओ। कहते हैं, इसी शाप के अनुसार ये दानों बुढ़ावन में यमलाजुन हुए। यही आकृष्य ने उन्हें स्पर्श करके शाप-मुक्त किया। रामायण में लिखा है कि एक बार जब रावण दिग्भ्रम करके लौट रहा था तब रास्ते में उसे नलकूबर के यहाँ जाती हुई रमा नामक अप्सरा मिली। रावण उसे जबरदस्ती पकड़कर अपने साथ ले गया। उसी समय रमा ने उसे शाप दिया था कि यदि तू न किमी आ के साथ बलात्कार करोगे तो तुरंत मर जाओगे। कहते हैं, इसी भय से रावण ने सीता के साथ बलात्कार नहीं किया था।

२. संगीत ताल के सात मुख्य भेदों में से एक जिसमें चार गुह और चार लघु मात्राएँ होती हैं।

नलकोल—संज्ञा पुं० [व्य०] एक प्रकार का बेल।

नलदंयु—संज्ञा पुं० [सं० नलदंयु] नोम का पेड़।

नलद—संज्ञा पुं० [सं०] १. पुष्परम। मकरंद। २. उशीर। लस। ३. जटामासी। बालछड़। ४. लामज्जक नामक घास।

नलदा—संज्ञा स्त्री० [सं०] जटामासी। बालछड़।

नलनी—संज्ञा स्त्री० [सं० नलिनी] दे० 'नलिनी'। उ०—कहैं कबीर नलनी के सुगना तोहि कवन पकरो।—कबीर श०, भा० २, पृ० १४०।

नलनीरुह—संज्ञा पुं० [सं० नलिनीरुह] मृणाल। कमल की नाल।

नलपुर—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन नगर का नाम जिसका उल्लेख बौद्ध ग्रंथों में है।

नलबाँस^१—संज्ञा पुं० [हि० नल+बाँस] हिमालय की तराई में होनेवाला एक प्रकार का बाँस जिसे विधुनी और देवबाँस भी कहते हैं।

नलबाँस^२—वि० दे० 'देवबाँस'।

नलमीन—संज्ञा पुं० [सं०] भीमा मछली।

नलवा—संज्ञा पु० [हि०] बाँस की टोटी जिससे बेल को धी पिलाया जाता है। चोगा।

नलसेतु—संज्ञा पु० [सं०] रामेश्वर के निकट का समुद्र पर बंधा हुआ वह पुल जो रामचंद्र ने नल नील आदिसे बनवाया था।

नला—संज्ञा पु० [हि० नल] १. पेड़ के छंदर की वह नाभी जिसमें से होकर पेशाब नीचे उतरता है।

मुद्गा—मला टलना = किसी प्रकार के आघात आदि के कारण पेशाब की उक्त नाली में किसी प्रकार का व्यतिक्रम होना जिससे बहुत पीड़ा होती है।

२. हाथ या पैर की नली के आकार की लंबी हड्डी।

नलाना—क्रि० सं० [हि० निराना] जिस खेत में फसल बोई गई हो उसमें की निरर्थक घास आदि दूर करना।

नलाई—संज्ञा स्त्री० [हि० नलाना] १. नलाने या निराने का भाव। २. नलाने की क्रिया। ३. नलाने की मजदूरी।

नलिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. नल के आकार की कोई वस्तु। चोंगा। नली। २. मूँगे के आकार का एक प्रकार का मध्वद्रव्य।

विशेष—वेद्यक में यह तीता, कड़ुवा, तीक्ष्ण, मधुर और कुमि, वात, घ्नं और शूल रोग का नाशक और मलशोधक माना गया है।

पर्या०—विद्रुमलतिका। कपोलचरण। नलिनी। रक्तदला। नलंकी। नटी। प्रवाली।।

३. प्राचीन काल का एक मूल।

विशेष—इसके विषय में कुछ लोगों का अनुमान है कि यह आजकल की बंदूक के समान होता था और इसके द्वारा लोहे की बहुत छोटी छोटी गोलियाँ या तीर छोड़े जाते थे। इसका उल्लेख रामायण और महाभारत के अतिरिक्त वेदों तक में पाया जाता है। युक्तीति में इसका अच्छा वर्णन है। इसे नालक और नाल भी कहते थे।

४. तरकश जिसमें तीर रखते हैं। ५. करेसू का साग। ६. पुदीना। ७. वेद्यक में एक प्रकार का प्राचीन यंत्र जिसकी सहायता से जलोदर के रोगी के पेट से पानी निकाला जाता था।

नलित—संज्ञा पु० [सं०] एक प्रकार का साग जो नाइिका साग भी कहलाता है।

विशेष—वेद्यक में यह तिक्त, पित्तनाशक और शुक्लवर्धक माना गया है।

नलिन—संज्ञा पु० [सं०] [स्त्री० मल्पा० नलिनी] १. पद्म। कमल। २. नीलिका। नील। ३. जल। पानी। ४. नीम। ५. सारस पक्षी। ६. करौंदा।

नलिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. कमलिनी। कमल। २. वह देश जहाँ कमल अधिकता से होते हैं। ३. पुराणानुसार गंगा की एक धारा का नाम। देवगंगा। ४. नारिबल की सराब। ५. नलिनी नामक मध्वद्रव्य। ६. नाक का बायाँ नलवा।

७. नदी। ८. एक वृत्त का नाम जिसके प्रत्येक चरण में पाँच सगण होते हैं।

विशेष—इसे मनहरण और अमरावली भी कहते हैं।

९. कमलों का समूह (को०)। १०. कमलनाल (को०)। ११. हंदपुरी (को०)।

नलिनीनंदन—संज्ञा पु० [सं० नलिनीनन्दन] कुबेर के उपरान का नाम।

नलिनीरुह—संज्ञा पु० [सं०] १. मृणाल। कमल की नाल। २. ब्रह्मा।

नलिनेशय—संज्ञा पु० [सं०] विष्णु का एक नाम।

नलियाँ—संज्ञा पु० [हि०] बहेनिया।

नली—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. मेनसिल। २. नलिका नाम का मध्वद्रव्य।

नली—संज्ञा स्त्री० [हि० नल का स्त्री० मल्पा०] १. छोटा या पतला नल। छोटा चोंगा। २. नल के आकार की भीतर में पोलो हड्डी जिसमें मज्जा भी होती है। ३. घुटने से नीचे का माग। पैर की पिडली। ४. बंदूक की नली जिसमें होकर गोली पहने गुजरती है। ५. जुलाहीं की नाल। विशेष—१० 'नाल'। ६. दे० 'नल'।

नलीमोज—संज्ञा पु० [फा०] वह कबूतर जिसके पंजे तक पर होते हैं।

नलुआ—संज्ञा पु० [हि० नल (= गला)] १. पशुओं का एक रोग जिसमें सूजन हो जाती है। २. छोटा नल या चोंगा। ३. बाँस की पोर। बाँस की दो गाँठों के बीच का टुकड़ा।

नलुवा—संज्ञा पु० [हि०] दे० 'नलुआ-२'। उ०—वा यान की बाँस के एक नलुवा में धरि के लाठी करि वह बाहिर निकस्यो।—दो सो बावन, भा० १, पृ० १६६।

नलोत्तम—संज्ञा पु० [सं०] देवनल। बड़ा नरसल।

नल्ली—संज्ञा स्त्री० [सं० नली] १. दे० 'नली'। २. एक प्रकार की घास जिसे पलवान भी कहते हैं। विशेष—दे० 'पलवान'।

नल्य—संज्ञा पु० [सं०] प्राचीन काल की जमीन की एक प्रकार की नाप या परिमाण।

विशेष—यह किसी के मत से सो हाथ का और किसी के मत से चार सो हाथ का होता है।

नल्यय—संज्ञा पु० [सं०] प्राचीन काल का एक प्रकार का मान।

विशेष—यह किसी के मत से सोलह सेर का और किसी के मत से बत्तीस सेर का होता है।

नल्यबस्मोगा—संज्ञा स्त्री० [सं०] काकजंघा।

नवंबर—संज्ञा पु० [सं०] अंगरेजी मास का ग्यारहवाँ महीना जो ३० दिनों का तथा अक्टूबर के बाद और दिसंबर से पहले होता है।

नव—संज्ञा पु० [सं०] १. स्तव। स्तोत्र। २. साल रंग की गहलूरना। विशेष—दे० 'पुनर्नवा'। ३. हरिवंश के अनुसार उद्योतर नामक राजा के लड़के का नाम। ४. काक। कोभा (को०)।

नव^२—वि० [सं०] नया । नवीन । नूतन ।

नव^३—वि० [सं० नवन्] नौ । आठ और एक । दस से एक कम ।

विशेष—'नव' शब्द से कहीं कहीं ग्रह और रत्न आदि उन पदार्थों का भी अभिप्राय लिया जाता है जो गिनती में नौ होते हैं । जैसे—स्तर किरौट प्रति लसत जटित नव नव कनगुरे ।—गिरधर (शब्द०) ।

नवक^१—वि० [सं०] दे० 'नौ' ।

नवक^२—संज्ञा पुं० [सं०] एक ही तरह की नौ चीजों का समूह । जैसे, (नौ) धातुओं का नवक, (नौ) ग्रहों का नवक ।

नवका(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० नोका, प्रा० हि० नवका] दे० 'नाव' । उ०—उडुप, पोत, नवका, पलन, तरि, वहिन जलजान । नाम नाव बड़े भव उदधि, केते तरे अजान ।—नंद० प्र०, पृ० ६१ ।

नवकार—संज्ञा पुं० [सं०] जैनियों का एक मंत्र ।

नवकारिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] स्त्री । नवोठा स्त्री ।

नवकार्षि गूगल—संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रक में एक प्रकार का पूर्ण जिसमें गूगल, निकला और पिप्पली सब चीजें बराबर होती हैं ।

विशेष—इसका व्यवहार शोष, गुल्म, भगंदर और बवासीर आदि को दूर करने में होता है ।

नवकालिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. युवा स्त्री । नवयौवना । नौजवान औरत । २. वह युवती जो हाल में पहले पहल रजस्वला हुई हो ।

नवकुमारी—संज्ञा स्त्री० [सं०] नौ रात्र में पूजनीय नौ कुमारिकाएँ जिनमें निम्नलिखित नौ देवियों की कल्पना की जाती है कुमारिका, त्रिमूर्ति, कल्याणी, शोद्धणी, काली, चंडिका, श्यामबी, दुर्गा और सुमद्रा ।

विशेष—दे० 'नवरात्र' ।

नवखंड—संज्ञा पुं० [सं० नवखण्ड] भूमि के नौ विभाग, यथा—भरत, इलावर्त, किपुरुष, भद्र, केतुभान, हार, हिरण्य, रम्य और कुज ।

नवग्रह—संज्ञा पुं० [सं०] फलित ज्योतिष में सूर्य, चंद्र, मंगल, बुध, शुक्र, शनि, राहु और केतु ये नौ ग्रह । विशेष—दे० 'ग्रह' ।

नवच्छिद्र—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'नवद्वार' ।

नवछावरि(पु)—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'न्योछावर' । उ०—मेति बलाय करति नवछावरि बलि भुजदंड कनक छति आसी । नरनारी के नैन निरखि करि आतक तृषित चकरी प्यासी ।—सूर (शब्द०) ।

नवजात—वि० [सं०] सद्यः उत्पन्न । सुरंत का पैदा हुआ (स्त्री०) ।

नवज्वर—संज्ञा पुं० [सं०] प्रारंभिक ज्वर । चढ़ता बुखार । वह बुखार जिसका अभी प्रारंभ हुआ हो । विशेष—दे० 'ज्वर' ।

नवका—संज्ञा पुं० [देश०] मरसा ।

नवका(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० नवोठा] दे० 'नवोठा' । उ०—निर्या-निर्य विचार सहित सब साधन साध । कै इह नवका नारि बारि उर में आशय ।—ब्रज० प्र०, पृ० ६१ ।

नवतन—संज्ञा पुं० [सं० नवतनु] महाभारत के अनुसार विश्वामित्र के एक लड़के का नाम ।

नवता(पु)—वि० [सं० नवीन] नवीन । नया । ताजा ।

नवता^१—संज्ञा पुं० [सं० नमन] डालुर्पा जमीन । उतार (कटार) ।

नवता^२—संज्ञा स्त्री० [सं०] नवीनता । नयापन

नवति^१—वि० [सं०] अस्सी और दस । सो से दस कम । नब्बे ।

नवति^२—संज्ञा स्त्री० [सं०] नब्बे की संख्या जो इस प्रकार लिखी जाती है—६० ।

नवदंड—संज्ञा पुं० [सं० नवदण्ड] राजाओं के तीन प्रकार के छत्रों में से एक प्रकार के छत्र का नाम ।

नवदंडक—संज्ञा पुं० [सं० नवदण्डक] दे० 'नवदंड' (स्त्री०) ।

नवदल—संज्ञा पुं० [सं०] १. कमल का वह पत्ता जो उसके केसर के पास होता है । २. नया पत्ता (स्त्री०) ।

नवदोधिति—संज्ञा पुं० [सं०] मंगल ग्रह ।

नवदुर्गा—संज्ञा स्त्री० [सं०] पुराणानुसार नौ दुर्गाएँ जिनकी नवरात्र में नौ दिनों तक क्रमशः पूजा होती है । यथा—शैलपुत्री, ब्रह्मचारिणी, चंद्रघटा, कुम्भांडा, स्कंदमाता, कात्यायनी, कालरात्रि, महागौरी और सिद्धिदा । विशेष—दे० 'दुर्गा' ।

नवद्वार—संज्ञा पुं० [सं०] शरीर में के नौ द्वार, यथा—दो आँखें, दो कान, दो नाक, एक मुँह, एक गुदा और एक लिंग या मग ।

विशेष—प्राचीनों का विश्वास था और अब भी कुछ लोगों का विश्वास है कि जब मनुष्य मरने लगता है तब उसका प्राण इन्हीं नौ द्वारों में से एक द्वार से निकलता है ।

नवद्वीप—संज्ञा पुं० [सं०] बंगाल का एक प्रसिद्ध नगर और विद्यापीठ जो राजा लक्ष्मणसेव की राजधानी थी ।

विशेष—यह नगर गंगा नदी के बीच में एक चर पर बसा हुआ है । कहते हैं, वहाँ छोटे छोटे नौ गाँव हैं जिनके समूह को पहले नवद्वीप कहते थे । आधुनिक 'नदिया' शब्द इसी का अपभ्रंश है । यह स्थान विशेषतः न्यायशास्त्र के लिये बहुत प्रसिद्ध है ।

नवधा अंग—संज्ञा पुं० [सं० नवधा अङ्ग] शरीर के नौ अंग—यथा—दो आँखें, दो कान, दो हाथ, दो पैर और एक नाक ।

नवधातु—संज्ञा स्त्री० [सं०] नव धातुएँ ।

विशेष—हेमतारारनागाश्व ताम्ररगे च तीक्ष्णकम् । कांस्यक कांतलोहं च धातवो नव कीर्तिता ।

नवधा भक्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] नौ प्रकार की भक्ति । यथा—श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पादसेवन, अर्चन, बंदन, सख्य, दास्य और आत्मनिवेदन । विशेष—दे० 'भक्ति' ।

नवन(५) — संज्ञा पुं० [सं० नमन] दे० 'नमन' ।

नवना(५) — क्रि० प्र० [सं० नमन] १. झुकना । २. नम्र होना ।

नवनि(५) — संज्ञा स्त्री० [हिं० नवना] १. झुकने की क्रिया या भाव । २. नम्रता । दीनता । उ० — नवनि नीच की प्रति दुखदाई । —तुलसी (शब्द०) ।

नवनिधि — संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'निधि' ।

नवनी — संज्ञा स्त्री० [सं०] नवनीन । मक्खन ।

नवनीत — संज्ञा पुं० [सं०] १. मक्खन । २. श्रीकृष्ण ।

ननीतक — संज्ञा पुं० [सं०] १. पृत । घी । २. मक्खन ।

नवनीत गणप — संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार एक गणेश या गणपति का नाम ।

नवनीत धेनु — संज्ञा स्त्री० [सं०] पुराणानुसार दान के लिये एक प्रकार की कल्पित गो जिसकी कल्पना मक्खन के ढेर में की जाती है ।

विशेष — कहते हैं, इस गो के दान से शिवसायुज्य प्राप्त होता है और विष्णुलोक में वास होता है । बराह पुराण में इसका विस्तृत विवरण दिया हुआ है ।

नवपत्रिका — संज्ञा स्त्री० [सं०] केले, अनार, धान, हल्दी, मानकचू, कचू, बेल, मशोक और जयती इन नौ वृक्षों के पत्ते ।

विशेष — इनका व्यवहार नवदुर्गा के पूजन में होता है ।

नवपद् — संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की मूर्ति जिसकी उपासना बौद्ध लोग करते हैं ।

नवपदी — संज्ञा स्त्री० [सं०] चौपई या अनकरी छंद का एक नाम । विशेष — दे० 'चौपई' ।

नवप्राशन — संज्ञा पुं० [सं०] नया घृत या फल आदि खाना ।

नवफलिका — संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'नवकालिका' ।

नवभक्ति — संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'नवधा भक्ति' ।

नवम — वि० [सं०] जो गिनती में नौ के स्थान पर हो । नवा ।

नवमल्लिका — संज्ञा स्त्री० [सं०] १. चमेली । २. नेवारी ।

नवमांश — संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'नवांश' ।

नवमालिका — संज्ञा स्त्री० [सं०] १. एक वर्णवृत्त का नाम जिसके प्रत्येक अक्षर में नगण, जगण, भगण और यगण (na na ga ga) होता है । इसे 'नवमानिनी' भी कहते हैं । २. नेवारी का फूल ।

नवमालिनी — संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'नवमल्लिका' ।

नवमी — संज्ञा स्त्री० [सं०] चांद मास के किमी पक्ष की नवी तिथि ।

विशेष — श्राविक अश्विों के लिये अष्टमीविद्वा नवमी ग्रहण होती है । कुछ विविष्ट भागों के विविष्ट पक्ष की नवमी के अलग अलग नाम हैं । जैसे, माघ के शुक्ल पक्ष की नवमी का नाम महानंदा, चैत्र शुक्ल नवमी का नाम रामनवमी ।

नवयज्ञ — संज्ञा पुं० [सं०] वह यज्ञ जो नए अन्न के निमित्त किया जाय ।

नवयुवक — संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० नवयुवती] नौजवान । तरुण ।

नवयुवा — संज्ञा पुं० [सं०] जवान । तरुण ।

नवयोनिन्यास — संज्ञा पुं० [सं०] तंत्र के अनुसार एक प्रकार का न्यास ।

नवयौवना — संज्ञा स्त्री० [सं०] वह स्त्री जिसके जीवन का प्रारंभ हो । नौजवान औरत ।

नवरंग — वि० [सं० नव + हिं० रंग] १. सुंदर । रूपवान । नई छटावाला । उ० — सूरदास युगभरि बीतत छिनु । हरि नवरंग कुरंग पीव बिनु । —सूर (शब्द०) । २. नए ढंग का । नवेली । नई शोभायुक्त । उ० — बाज बनी नवरंग किसोरी । —सूर (शब्द०) ।

नवरंगी — वि० [हिं० नवरंग + ई (प्रत्य०)] १. नित्य नए आनंद करनेवाला । उ० — ऐसे हैं निरंगी नवरंगी सुखदाई री । सूर स्याम बिन न रहौं ऐसी बनि आई री । —सूर (शब्द०) । २. रंगीली । हंसमुख । खुशमिजाज । उ० — नाउति बोलहु महावर वेग । लाख टका प्रभ भूमक सारी देहु दाई को नेग । —सूर (शब्द०) ।

नवरंगी — संज्ञा स्त्री० दे० 'नारंगी' ।

नवरत्न — संज्ञा पुं० [सं०] १. मोती, पन्ना, मानिक, गोमेद, हीरा, मूंगा, सहस्रनिया, पद्मराग और नीलम ये नौ रत्न या आवाहिर ।

विशेष — पुराणानुसार ये नौ रत्न अलग अलग एक एक ग्रह के दोषों की शांति के लिये उपकारी हैं । जैसे, सूर्य के लिये सहस्रनिया, चंद्रमा के लिये नीलम, मंगल के लिये मानिक, बुध के लिये पुष्कराज, बृहस्पति के लिये मोती, शुक के लिये हीरा, शनि के लिये नीलम, राहु के लिये गोमेद और केतु के लिये पन्ना ।

२. राजा विक्रमादित्य की एक कल्पित सभा के नौ पंडित जिनके नाम ये हैं — धन्वंतरि, क्षपणक, क्षमरसिंह, जंकु, केनालभट्ट, घटखर्पर, कालिदास, बराहमिहिर और बरकचि ।

विशेष — ये सब पंडित एक ही समय में नहीं हुए हैं बल्कि भिन्न भिन्न समयों में हुए हैं । लोगों ने इन सबको एकत्र करके कल्पना कर ली है कि ये सब राजा विक्रमादित्य की सभा के नौ रत्न थे ।

३. गले में पहनने का एक प्रकार का हार जिसमें नौ प्रकार के रत्न या जवाहरात होते हैं ।

नवरस — संज्ञा पुं० [सं०] काश्य के नौ रस, यथा शृंगार, हास्य, करुण, रोद, वीर, भयानक, वीभत्स, अद्भुत और शान्त । विशेष — दे० 'रस' ।

नवरा — संज्ञा पुं० [सं० नकुल] दे० 'नेवला' ।

नवरा(५) — वि० [सं० नवल] नया । उ० — हाटे बाटे मिले बटोही सया बरद है नवरा । —सं० दरिया, पृ० १४१ ।

नवरात(५) — संज्ञा पुं० [सं० नवरात्र] दे० 'नवरात्र' । उ० — जल अगम नवरात को सबको मन हुलसात । सखन रामसीला ललित सजि सजि सबही जात । —भारतेंदु प्र०, भा० २, पृ० ६६० ।

नवराता—संज्ञा पुं० [हि०] ३० 'नवरात्र' ।

नवरात्र—संज्ञा पुं० [सं०] १. प्राचीन काल का नौ दिनों तक होने-वाला एक प्रकार का यज्ञ । २. चैत्र शुक्ला प्रतिपदा से नवमी तक और आश्विन शुक्ला प्रतिपदा से नवमी तक के नौ नौ दिन जिनमें लोग नवदुर्गा का व्रत, घटस्थापन तथा पूजन आदि करते हैं ।

विशेष—हिंदुओं में यह नियम है कि वे नवरात्र के पहले दिन घटस्थापन करते हैं और देवी का आवाहन तथा पूजन करते हैं । यह पूजन बराबर नौ दिनों तक होता रहता है । नवें दिन भगवती का विसर्जन होता है । कुछ लोग नवरात्र में व्रत भी करते हैं । घटस्थापन करनेवाले लोग अष्टमी या नवमी के दिन कुमारीभोजन भी कराते हैं । कुमारी-भोजन में प्रायः नौ कुमारियाँ होती हैं जिनकी अवस्था दो और दस वर्ष के बीच की होती है । इन नौ कुमारियों के के कल्पित नाम भी हैं । जैसे—कुमारिका, त्रिमूर्ति, कल्याणी, रोहिणी, काली, चंडिका, शंभवी, दुर्गा और सुभद्रा । नवरात्र में नवदुर्गा में से निम्न ऋषयः एक एक दुर्गा के दर्शन करने का भी विधान है ।

नवराष्ट्र—संज्ञा पुं० [सं०] महाभारत के अनुसार एक प्राचीन देश जिसे सहदेव ने दक्षिण की ओर दिग्विजय करते समय जीता था ।

नवरिया(५)—संज्ञा स्त्री० [हि०] नाव । उ० । उ०—गंग जमुन दोउ बहुद्वय तीक्ष्ण धार । सुमति नवरिया बैसल उतरब पार । -सुंदर ग्रं०, भा० १, पृ० ३७६ ।

नवली^१—वि० [सं०] १. नवीन । नूतन । नव्य । नया । २. सुंदर । ३. जवान । युवा । नवयुवक । ४. उज्ज्वल । शुद्ध । साफ । स्वच्छ ।

नवली^२—संज्ञा पुं० [सं० नेवल (जहाजी) ?] जाल का किराया जो जहाजवालों को दिया जाता है (नवली) ।

नवली अनंगा—संज्ञा स्त्री० [सं० नवल अनङ्गा] केशव के अनुसार मुग्धा नायिका के चार भेदों में से एक ।

नवलीकिशोर—संज्ञा पुं० [सं०] श्रीकृष्णभंड ।

नवलीवधू—संज्ञा स्त्री० [सं०] केशव के अनुसार मुग्धा नायिका के चार भेदों में से एक ।

नवली^३—संज्ञा स्त्री० [सं०] नवीन स्त्री । तरुणी ।

नवली^४—वि० स्त्री० नई । नवीन । चटुनी वगैरी । उ०—का धूँषट मुख मूँदहु नवली नारि । चाँद सरण पर मोहउ यहि अनुहारि । -तुलसी ग्रं०, पृ० २० ।

नवलेखा—संज्ञा पुं० [सं० नव + सं० लेख, हि० लेखा (= कीचड़ का लेप)] वह कीचड़ जो बड़ी हुई नदी के उतरने से किनारे पर रह जाती है । नदी के किनारे की दमदल ।

नववर्ष—संज्ञा पुं० [सं०] ३० 'वर्ष' (पृथ्वी के विभाग का देश) ।

नववत्सभ—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का शहर जिसे दस शहर कहते हैं, और जिसकी गिनती पंचद्वयों में होती है ।

नववासुदेव—संज्ञा पुं० [सं०] रत्नसारानुसार जैन लोगों के नव वासुदेव जिनके नाम ये हैं—त्रिपुष्ठ, द्विपुष्ठ, स्वयंभू, पुरुषोत्तम, सिंहपुष्प, पुंडरीक, वत्स, लक्ष्मण और श्रीकृष्ण ।

विशेष—कहते हैं कि ये सब ग्यारहवें, बारहवें, चौदहवें, पंद्रहवें, अठारहवें, बीसवें और बीसवें तीर्थंकरों के समय में नरक गए थे ।

नववास्तु—संज्ञा पुं० [सं०] एक वैदिक राजर्षि का नाम ।

नवविंश—वि० [सं०] उनतीसवाँ । जो क्रम में अष्टाईस के बाद हो ।

नवविंशति^१—वि० [सं०] बीस और नौ । तीस से एक कम ।

नवविंशति^२—संज्ञा स्त्री० बीस और नौ की संख्या जो इस प्रकार लिखी जाती है—२९ ।

नवविष—संज्ञा पुं० [सं०] वत्पनाभ, हार्द्रिक, मक्तुक, प्रदीपन, सौराष्ट्रिक, अंगक, कालकूट, हलाहल और ब्रह्मपुत्र ये नौ विष ।

नवव्यूह—संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु का एक नाम ।

नवशक्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] पुराणानुसार प्रभा, माया, जया, सूक्ष्मा, विशुद्धा, नंदिनी, सुप्रभा, विजया और सर्वमिद्विदा ये नौ शक्तियाँ ।

नवशायक—संज्ञा पुं० [सं०] पराशर संहिता के अनुसार ग्वाला, माखी, तेली, जोबाहा, हलवाई, बरई, कुम्हार, मोहार और हज्जाम ये नौ जातियाँ ।

विशेष—उक्त संहिता के अनुसार ये नौ जातियाँ संकर हैं और शुद्ध शुद्र जाति के अंतर्गत हैं । बंगाल में नवशायकों के हाथ का जल ब्राह्मण लोग पीते और उनका दान ग्रहण करते हैं ।

नवशिक्षित—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह जिसने अभी हाल में कुछ पढ़ा या सीखा हो । नौसिख्ता । २. वह जिसे आधुनिक ढंग की शिक्षा मिली हो ।

नवशोभ—संज्ञा पुं० [सं०] नई शोभावाला । तरुण । जवान । युवक ।

नवश्राद्ध—संज्ञा पुं० [सं०] एक श्राद्ध जो प्रेत के लिये किया जाता है ।

विशेष—यह मरनेवाले दिन से आरंभ किया जाता है तथा एक एक दिन के अंतर पर अर्थात् तीसरे, पाँचवें, सातवें, नवें और ग्यारहवें दिन किया जाता है ।

नवसंगम—संज्ञा पुं० [सं० नवसङ्गम] प्रथम समागम । नया मिलाप । पति से पत्नी की पहली भेंट ।

नवसत(५)^१—संज्ञा पुं० [सं० नव + हि० सत (=सप्त)] नव और सात, सोलह शृंगार । उ०—नवसत साजि भई सब ठाढ़ी को छवि मकै बखानी ।—सूर (शब्द०) ।

नवसत^२—वि० सोलह । सोडस ।

क्रि० प्र०—सजना, साजना—सोलहों शृंगार करना । उ०—नवसत साजि सिंगार युवति सब दधि मटुकी लिए आवत ।—सूर (शब्द०) ।

नवसप्त—संज्ञा पुं० [सं०] नौ और सात, सोलह शृंगार ।

क्रि० प्र०—सजना, साजना—सोलहों शृंगार करना । उ०—(क) बलि ल्याइ सीतहि सखी नाहर सजि सुमंगल भामिनी ।

नवम सजे गुंदरी सब मल कुंवर गामिनी ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) जहाँ तहाँ लूख लूख मिलि भामिनि । सजि नवम सकल दुति दामिनि ।—तुलसी (शब्द०) ।

नवसर—संज्ञा पुं० [सं० नव + हि० नी] नी लड़का हार । उ०—कंठसिरी दुनरी तिलरी को धीर हार एक नवसर ।—भूर (शब्द०) ।

नवसर—वि० [सं० नव + वत्सर] नववयस्क । जिसकी नई उमर हो । उ०—सूरस्यास स्यामा नवसर मिलि रीझे नंदकुमार ।—सूर (शब्द०) ।

नवससि(पु) संज्ञा [सं० नवससि] द्वितीया का चंद्रमा । बृज का चाँद । नया चाँद ।

नवसात(पु) संज्ञा पुं० [सं० नव + सात] दे० 'नवसत' ।

क्रि० प्र० करना = सोनहो श्रृंगार करना । उ०—पाठरे गात किये नवसात निकाई सों नाक बड़ाई बोलै ।—घनानंद, पृ० २०६ ।

नवसिखा—संज्ञा पुं० [सं० नव + हि० सीखना] दे० 'नोसिखुषा' ।

नवहड़(पु) संज्ञा पुं० [सं० नव + हि० हड़ (= हाड़ी)] मिट्टी का नया बरतन । नई हाड़ी । नोहड़ । उ०—कोउ मीधा, नवहड़ ह्यावत मोदीखाने मन ।—प्रेमघन०, भा० १, पृ० २६ ।

नवांग—संज्ञा पुं० [सं० नवाङ्ग] सोंठ, पीपल, मिर्च, हड़, बहेड़ा, धारिजा, चाव, चीता और बायबिडंग ये नौ पदार्थ ।

नवांगा—संज्ञा स्त्री० [सं० नवाङ्गा] काकड़ासिगी ।

नवांश—संज्ञा पुं० [सं०] एक राशि का नवाँ भाग जिसका व्यवहार फलित ज्योतिष में किसी नवजात बालक के चरित्र, आकार और चित्त आदि का विचार करने में होता है ।

नवाँ—वि० [सं० नवम] जो गिनती में नौ के स्थान पर हो । आठवें के बाद और दसवें के पहले का । नौवाँ ।

नवाँ—वि० [हि०] दे० 'नया' ।

नवाई—संज्ञा स्त्री० [हि० नवना] विनीत होने का भाव । उ०—सूर नवाई नवखंड बहे । सात बीप दुनी सब नए ।—जायसी (शब्द०) ।

नवाई(पु) संज्ञा पुं० [सं०] नया । नवीन । उ०—यह मनि घाय कहीं धो पाई । आजु सुनी यह बात नवाई ।—सूर (शब्द०) ।

नवागत—वि० [सं०] [वि० स्त्री० नवागता] नया आया हुआ । जो अभी आया हो ।

नवागतसैन्य—संज्ञा पुं० [सं०] नई भरती की हुई फौज । रंगस्टों की सेना ।

विशेष—नीटिल्य ने लिखा है कि नवागत तथा दूरयात (दूर से आने के कारण थके) सैन्य में से नवागत सैन्य दूसरे देश से आकर पुरानों के साथ मिलकर युद्ध कर सकती है । दूरयात सैन्य के संबंध में यह बात नहीं है; क्योंकि यह घनावट के कारण लड़ाई के अयोग्य होती है ।

नवाज—वि० [फ़ा० नवाज] कृपा करनेवाला । दया दिखानेवाला ।

विशेष—इस अर्थ में इस शब्द का प्रयोग केवल योगिक शब्दों

के अंत में होता है । जैसे, बंशानवाज । गरीबनवाज = दीन-दयालु । उ०—मुझको पूछा तो कुछ गजब न हुआ । मैं गरीब और तू गरीबनवाज ।—गालिब०, पृ० १५७ ।

नवाजना(पु) क्रि० सं० [फ़ा० नवाज] कृपा करना । दया दिखलाना ।

नवाजिश—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० नवाजिश] मेहरबानी । कृपा । दया । उ०—नवाजिश हाए बेजा देखता हूँ । शिकायत हाए रंगी का मिला क्या ।—गालिब, पृ० ५५ ।

नवाड़ा—संज्ञा पुं० [दे०] एक प्रकार की नाव । नवारा । उ०—घावों से लोहू की नदी बह निकली, जिसमें भुजाएँ मगरमच्छों सी जनाती थीं, कटे हुए हाथियों के मस्तक चड़ियाँ से डूबते उछलते जाते थे । बीच बीच रथ बड़े नवाड़े से बहे जाते थे ।—लल्लू (शब्द०) ।

नवाना—संज्ञा पुं० [सं० नवान्न] दे० 'नवान्न' ।

मुहा०—नवान करना = फसल का नया आया हुआ अन्न भून या पकाकर पहले पहल खाना । उ०—जौ की कच्ची बालों को भूनकर गुड़ मिलाकर लोग नवान कर रहे हैं ।—तितली, पृ० १३३ ।

नवाना—क्रि० म० [सं० नवन या नमन] झुकाना । विनीत करना । जैसे, मिर नवाना ।—उ०—गज तबहि कछु दुष पावा । अंगुण के धीर नवावा ।—सुंदर० प्र०, भा० १, पृ० १२२ ।

नवान्न—संज्ञा पुं० [सं०] १. फसल का नया आया हुआ अनाज । २. एक प्रकार का आद्य जो प्राचीन काल में नया अन्न तैयार होने पर पितरों के उद्देश्य से होता था । ३. ताजा पकाया हुआ अन्न । रीखा हुआ अन्न ।

नवाब—संज्ञा पुं० [सं० नवाब] १. बादशाह का प्रतिनिधि जो किसी बड़े प्रदेश के शासन के लिये नियुक्त हो ।

विशेष—भारत में इसका प्रयोग पहले पहल मुगल सम्राटों के समय उनके प्रतिनिधियों के लिये हुआ था । जैसे, लखनऊ के नवाब, गुरत के नवाब ।

२. एक उपाधि जो आजकल छोटे मोटे मुसलमानी राज्यों के मालिक अपने नाम के साथ लगाने हैं । जैसे, रामपुर के नवाब । ३. एक उपाधि जो भारतीय मुसलमान अमीरों को अंगरेजी सरकार की ओर से मिलती थी और जो प्रायः राजा की उपाधि के समान होती थी ।

नवाब—वि० बहुत धन शक्ति और अमीरी अंग से रहने तथा खुब खर्च करनेवाला । जैसे,—(क) जब से उनके बाप मर गए हैं तब से वे नवाब बन गए हैं । (ख) ऐसे नवाब मत बनो नहीं तो साल दो साल में भी खर्च माँगने लगोगे ।

नवाबजादा—संज्ञा पुं० [फ़ा० नवाबजादह] १. नवाब का पुत्र । नवाब का बेटा । २. वह जो बहुत बड़ा शोकीन हो—(व्यंग्य) ।

नवाबपसंद—संज्ञा पुं० [फ़ा०] एक प्रकार का धान जो आदों के अंत या क्वार के आरंभ में तैयार होता है ।

नवाबी—संज्ञा स्त्री० [हि० नवाब + ई (प्रत्यय)] १. नवाब का पद । २. नवाब का काम । ३. नवाब होने की दशा ।

४. नवारों का राजत्वकाल । जैसे,—नवाबी में अवध की हालत कुछ और ही थी । ५. नवारों की सी हुकूमत । जैसे,—बुपचाप बैठो, यहाँ तुम्हारी नवाबी नहीं चलेगी । ६. बहुत अधिक अभीरी या अभीरों का सा अपव्यय । जैसे,—अभी कहीं से सो दो सो रुपए उन्हें मिल जायें, फिर देखिए उनकी नवाबी । ७. एक प्रकार का कपड़ा जिसे पहले अभीर लोग पहना करते थे ।

नवारना—क्रि० प्र० [हि०] १. चलना । टहलना । २. यात्रा करना । सफर करना ।

नवारा—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की बड़ी नाव ।

नवारो—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'नेवारी' ।

नवासंज—संज्ञा पुं० [फ़ा०] गायक । उ०—किसी को दे के दिख कोई नवासंजे फुगै क्यों हो । न हो जब दिल ही सीने में तो मुँह में फिर जहाँ क्यों हो ।—गालिब०, पृ० २५३ ।

नवासा—संज्ञा पुं० [फ़ा० नवामह] [स्त्री० नवासी] बेटी का बेटा । बौद्ध ।

नवासाज—संज्ञा पुं० [फ़ा० नवामाज] गायक [स्त्री०] ।

नवासी^१—वि० [सं० नवासीति] नौ और प्रसी । एक कम नव्हे ।

नवासी^२—संज्ञा पुं० नौ और प्रसी की संख्या जो इस प्रकार लिखी जाती है—८६ ।

नवासी^३—वि० स्त्री० [हि० नाना (= डालना)] संभोग की तीव्र इच्छा या सालसावाली । (वाज० ५०) ।

नवाह—संज्ञा पुं० [सं०] १. रामायण का वह पाठ जो नौ दिन में समाप्त किया जाता है । २. किसी सप्ताह, पक्ष, मास या वर्ष आदि का नया दिन ।

नवि(पु)—प्र० [प्रा० एवि] न । नहीं तो । अव्यय । उ०—पशवस धायउ साधुबा, बोलर लाग मोर । कंठा तूँ धरि धाव नवि, जोवन कीधउ जोर ।—दोला०, दू० ३८ ।

नवी^१—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह स्त्री जिससे गाय के पैर में बछड़े का गला बाँधकर दूध दुहने हैं । नोई ।

नवी^२—वि० [सं० नव, तुलनीय फ़ा० नवी (= नया, प्राकृतिक)] दे० 'नई' । उ०—नवी बाली कू नर्ला (?) कदम में भेज, भीत प्याले भरकर पियाला बसंत ।—दक्षिणी०, पृ० ७४ ।

नवीन^१—वि० [सं०] १. जो अभी का या थोड़े समय का नौ । प्राचीन का उलटा । हान का । ताजा । नया । नूतन । २. विचित्र । अपूर्व ।

नवीन^२—संज्ञा पुं० [स्त्री० नवीना] नवयुवक । तरुण । जवान ।

नवीनता—संज्ञा स्त्री० [सं० नवीनत्व] नूतनत्व । नूतनता । नवीन या नया होने का भाव ।

नवीस—संज्ञा पुं० [फ़ा०] लिखाई । लिखने की क्रिया या भाव ।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग शब्दों के अंत में होता है । जैसे, भरजीनवीस ।

नवीसी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] लिखाई । लिखने की क्रिया या भाव ।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग शब्दों के अंत में होता है । जैसे, भरजीनवीसी ।

नवेद—संज्ञा स्त्री० [सं० निवेदन अथवा फ़ा०] १. निमंत्रण । न्योता । २. वह चिट्ठी जिसमें न्योता लिखकर भेजा जाय । निमंत्रण-पत्र । ३. शुभ सूचना । खुशखबरी (की०) ।

नवेला—वि० [सं० नवल] [स्त्री० नवेली] १. नवीन । नया । २. तरुण । जवान ।

नवेली^१—वि० स्त्री० [सं० नवल] नई उमर की । तरुणी ।

नवेली^२—संज्ञा स्त्री० नई स्त्री । युवती । तरुणी ।

नवैग्रह(पु)—संज्ञा पुं० [सं० नवग्रह] दे० 'नवग्रह' । उ०—प्रसन नवग्रह सित प्रसन, हरि आग्या सुर राय ।—रा० क०, पृ० ३६९ ।

नवैयत—संज्ञा स्त्री० [प्र०] प्रकार । भेद । किस्म ।

नवोढ़ा—संज्ञा स्त्री० [सं० नवोडा] १. धिवाहिता स्त्री । बधू । २. नवयौवना । युवती स्त्री । ३. साहित्य में मुग्धा के अंगन ज्ञातयौवना नायिका का एक भेद । वह नायिका जो नज्जा और भय के कारण नायक के पास न जाना चाहती हो ।

नवोद्भूत—संज्ञा पुं० [सं०] मन्त्रम ।

नठ्य^१—वि० [सं०] १. नया । नवीन । नूतन । ताजा । २. स्तुति करने के योग्य ।

नठ्य^२—संज्ञा पुं० गवहूनुर्वा । रक्त पुनर्नवा ।

नव्वाय—संज्ञा पुं० [प्र०] १. बादशाह का प्रतिनिधि या नायब जो उसकी ओर से किसी क्षेत्र का शासन करता हो । २. किसी रियासत का मुसलमान शासक ।

नव्वाबी—संज्ञा स्त्री० [प्र०] १. नव्वाय का पद । २. राज्य । शासन । हुकूमत । ३. समृद्धि । संपन्नता । ४. अव्यय । फिजूलखर्ची ।

नशा, नशान—संज्ञा पुं० [सं०] १. नाश, विनाश । २. हानि । क्षति । ३. विनोप । लोप [की०] ।

नशाना(पु)—क्रि० प्र० [सं० नाश] नष्ट होना । बरबाद होना । बिगड़ जाना ।

नशा—संज्ञा पुं० [प्र० नशह] १. वह अवस्था जो शराब भोग, अफीम या गाँजा आदि मादक द्रव्य खाने या पीने से होती है । मादक द्रव्य के व्यवहार से उत्पन्न होनेवाली दशा ।

विशेष—शराब, भोग, गाँजा, अफीम आदि एक प्रकार के विष हैं । इनके व्यवहार से शरीर में एक प्रकार की गरमी उत्पन्न होती है जिससे मनुष्य का मस्तिष्क सुख और उत्तेजित हो उठता है, तथा स्मृति (याद) या धारणा कम हो जाती है । इसी दशा को नशा कहते हैं । साधारणतः भोग मानसिक चिन्ताओं से घूटने या शारीरिक शिथिलता दूर करने के अविश्राम से मादक द्रव्यों का व्यवहार करते हैं । बहुत से लोग इन द्रव्यों के इतने अभ्यस्त हो जाते हैं कि वे निरर्थक प्रति इनका व्यवहार करते हैं । साधारण नशे की अवस्था में

चित्त में अनेक प्रकार की उधमों उठती हैं, बहुत सी नई नई और विलक्षण बातें सूझती हैं और चित्त कुछ प्रसन्न रहता है। लेकिन जब नशा बहुत हो जाता है तब मनुष्य के करने लग जाता है प्रयत्न बेहोश हो जाता है।

मुहा०—नशा उतरना = नशे का न रहना। मादक द्रव्य के प्रभाव का नष्ट हो जाना। नशा किरकिरा हो जाना = किसी प्रिय बात के होने के कारण नशे का मजा बीच में बिगड़ जाना। नशे का बीच में ही उतर जाना। नशा चढ़ना = नशा होना। मादक द्रव्य का प्रभाव होना। (धातु में) नशा छाना = नशा चढ़ना। मस्ती चढ़ना। नशा जमना = अच्छी तरह नशा होना। नशा टूटना = नशा उतरना। नशा हिरन होना = किसी असंभावित घटना आदि के कारण नशे का बिल्कुल उतर जाना।

२. वह बीज जिससे नशा हो। मादक द्रव्य। नशा चढ़ानेवाली चीज। नशीली वस्तु।

यौ०—नशापाती = मादक द्रव्य और उसकी सामग्री। नशे का सामान।

३. धन, विद्या, पदव्य या रूप आदि का घमंड। अभिमान। मड। गर्व।

मुहा०—नशा उतरना = गर्व या घमंड घूर होना। नशा उतारना = घमंड दूर करना।

नशाक—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का कीड़ा [की०]।

नशाखोर—संज्ञा पुं० [फ़ा० नशाखोर] वह जो किसी प्रकार के नशे का सेवन करता हो। नशेबाज।

नशाना(उ)०—क्रि० सं० [सं० नशान] नष्ट करना। बरबाद करना। बिगाड़ डालना।

नशाना(१)०—क्रि० प्र० खो जाना।

नशाबना(उ)०—वि० [सं० नाश] नाश करना।

विशेष—समास में 'नष्ट करनेवाला' अर्थ भी होता है।

नशीन वि० [फ़ा०] बैठनेवाला।

विशेष इस अर्थ में इस शब्द का प्रयोग योगिक शब्दों के अंत में होता है। जैसे, गद्दीनशीन, तख्तनशीन।

नशीनी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] बैठने की क्रिया या भाव।

विशेष—इस अर्थ में इस शब्द का प्रयोग योगिक शब्दों के अंत में होता है। जैसे, तख्तनशीनी। गद्दीनशीनी।

नशीला—वि० [फ़ा० नशा + हि० ईला (प्रत्य०)] [वि० स्त्री० नशीली] १. नशा उत्पन्न करनेवाला। नशा भानेवाला। मादक। २. जिसपर नशे का प्रभाव हो।

मुहा०—नशीली धालें—वे धालें जिनमें मस्ती छाई हो। मदमरा धालें।

नशीली—वि० [हि०] नशेबाज।

नशेबाज—संज्ञा पुं० [फ़ा० नशेबाज] वह जो बराबर किसी प्रकार के नशे का सेवन करता हो। वह जिसे कोई नशा करने की आस हो।

नशेमन—संज्ञा पुं० [फ़ा०] घोंसला। नीड़। आवास। आश्रय स्थल। उ०—कबाबी सीख समझें बुलबुलें साखे नशेमन की।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० ४०७।

नशोहरा—वि० [सं० नशा + मोहर] नाश करनेवाला। उ०—सुमति सृष्टि कर निपुन विधाता। विघन नशोहर विमल विधाता।—रघुराज (शब्द०)।

नशतर—संज्ञा पुं० [फ़ा०] एक प्रकार का बहुत तेज छोटा चाकू जिसका भगला भाग नुकीला और टेढ़ा होता है और प्रायः जिसके दोनों ओर धार रहती है। इसका व्यवहार फोड़े आदि चीरने और फसद खोदने में होता है।

मुहा०—नशतर देना या लगाया = नशतर से फोड़ा चीरना। नशतर लगना = फोड़े का चीरा जाना।

नश्यत्प्रसूतिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] जिसका बच्चा मर गया हो। घृतपुत्रिका।

नश्वर—वि० [सं०] नष्ट होनेवाला। जो नष्ट हो जाय या जो नष्ट हो जाने के योग्य हो। जो ज्यों का त्यों न रहे। जैसे,—शरीर नश्वर होता है।

नश्वरता—संज्ञा स्त्री० [सं०] नश्वर होने का भाव।

नष(उ)०—संज्ञा पुं० [सं० नल] दे० 'नल'।

नषत(उ)०—संज्ञा पुं० [सं० नक्षत्र, हि० नलत] दे० 'नक्षत्र'।

नपसिष(उ)०—संज्ञा पुं० [सं० नलसिष] दे० 'नल सिष'।

नषाना(उ)०—क्रि० सं० [?] नषाना। चलाना। घुमाना। उ०—आके घर ताजी तुरकीन की सबेला बँधो ताँके घागे फेरि फेरि टटुका नषादप।—सुंदर० प्र०, भा० २, पृ० ४६६।

नष्ट—वि० [सं०] १. जो प्रदूष हो। जो दिखाई न दे। २. जिसका नाश हो गया हो। जो बरबाद हो गया हो। जो बहुत दुर्दशा को पहुँच गया हो। जैसे,—आग लगने के कारण सारा महल्ला नष्ट हो गया। ३. अधम। नीच। बहुत बड़ा बुरा-चारी या पापी। ४. निष्फल। व्यर्थ। ५. धनहीन दरिद्र। ६. पलायित (की०)।

विशेष—योगिक में यह शब्द पहले लगता है। जैसे, नष्टकीर्त्य, नष्टबुद्धि।

नष्टक्रिय—वि० [सं०] कृतघ्न (की०)।

नष्टचंद्र—संज्ञा पुं० [सं० नष्टचंद्र] भाषों के महीने की दोनों पक्षों की चतुर्थी को दिखाई पड़नेवाला चंद्रमा जिसका दर्शन पुराणा-नुसार निषिद्ध है।

विशेष—कहते हैं, उस दिन चंद्रमा को देखने से कोई न कोई कलंक या अपवाद लगता है। कुछ लोग केवल शुक्ल चतुर्थी के चंद्रमा को ही नष्ट चंद्रमा मानते हैं।

नष्टचित्त—वि० [सं०] ऊमत्ता।

नष्टचेतन—संज्ञा पुं० [सं०] अचेत। बेहोश। बेखबर।

नष्टचेष्ट—वि० [सं०] जिसकी चेष्टा वा वृत्ति नष्ट हो गई हो।

नष्टचेष्टता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. मूर्च्छा। बेहोशी। २. प्रलय। ३. एक प्रकार का सात्त्विक भाव।

नष्टजन्मा—संज्ञा पु० [सं० नष्टजन्मन्] जारज । वल्लभंकर ।
दोगला ।

नष्टजातक—संज्ञा [सं०] फलित ज्योतिष में एक प्रकार की
क्रिया या उपाय जिसके अनुसार ऐसे मनुष्य की जन्मकुंडली
प्राप्ति बनाई जाती है जिसके जन्म के समय घोर तिथि
आदि का कुछ भी पता नहीं रहता ।

नष्टता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. नष्ट होने का भाव । २. वाङ्मयउपन ।
दुराचारिता ।

नष्टदृष्टि—वि० [सं०] जिसकी दृष्टि नष्ट हो गई हो । अंधा ।
दृष्टिहीन ।

नष्टधन—वि० [सं०] जिसका धन नष्ट हो गया हो [को०] ।

नष्टप्रभ—वि० [सं०] तेजहीन । कांतिरहित ।

नष्टबुद्धि—वि० [सं०] मूर्ख । मूढ़ । बेवकूफ । बुद्धिहीन ।

नष्टभ्रष्ट—वि० [सं०] जो बिलकुल टूटफूट या नष्ट हो गया हो ।

नष्टराज्य—संज्ञा पु० [सं०] प्राचीन काल के एक देश का नाम ।

नष्टरूपा—संज्ञा स्त्री० [सं०] अनुष्टुप छंद के एक भेद का नाम ।

नष्टविष—वि० [सं०] (वह जहरीला जानवर) जिसका विष
नष्ट हो गया हो ।

नष्टबीज—वि० [सं०] फसल या अन्न जो बोने पर न उगा हो ।

नष्टशक्य—संज्ञा पु० [सं०] बाण का वह अगला टुकड़ा जो
टूटकर शरीर के भीतर ही रह गया हो [को०] ।

नष्टशुक्र—वि० [सं०] जिसका बीर्य नष्ट हो गया हो ।

नष्टसंज्ञ—वि० [सं०] बेहोश [को०] ।

नष्टस्मृति—वि० [सं०] जिसकी याददाश्त कमजोर या नष्ट हो
गई हो [को०] ।

नष्टा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. वेश्या । रंडी । २. अविचारिणी ।
कुलटा ।

नष्टाग्नि—संज्ञा पु० [सं०] वह साग्निक ब्राह्मण या द्विज जिनके
यहाँ की अग्नि प्रसार या आस्थि के कारण लुप्त हो
गई हो ।

नष्टात्मा—वि० [सं० नष्टात्मन्] दुष्ट । खल ।

नष्टाप्तिसूत्र—संज्ञा पु० [सं०] कोई हुई बीजों का कुछ अंश
मिलना जिससे बाकी बीजों का भी सूत्र मिले ।

नष्टार्थ—वि० [सं०] जिसका धन नष्ट हो गया हो । दरिद्र ।

नष्टाशंक—वि० [सं० नष्टाशङ्क] शंकारहित । निर्भय ।
अयशून्य [को०] ।

नष्टाश्वध्वजयन्त्राय—संज्ञा पु० [सं०] संस्कृत शास्त्रों में प्रसिद्ध एक
न्याय जिसका तात्पर्य है दो आश्वधियों का इस प्रकार मिलकर
काम करना जिसमें दोनों एक दूसरे की बीजों का उपयोग
करके अपना उद्देश्य सिद्ध करें ।

विशेष—यह न्याय निम्नलिखित घटना या कहानी के आधार
पर है । दो आदमी अलग अलग रथ पर सवार होकर
किसी वन में गए । वहाँ संयोगवश आग लगने के कारण

एक आदमी का रथ जल गया और दूसरे का घोड़ा जल
गया । कुछ समय के उपरांत जब दोनों मिले तब एक के
पास केवल घोड़ा और दूसरे के पास केवल रथ था ।
तब समय दोनों ने मिलकर एक दूसरे की चीज का
उपयोग किया । घोड़ा रथ में जोता गया और वे दोनों
निदिष्ट स्थान तक पहुँच गए ।

नष्टि—संज्ञा स्त्री० [सं०] नाश । विनाश । बरबादी ।

नष्टेन्दुकला—संज्ञा स्त्री० [सं० नष्टेन्दुकला] १. प्रतिपदा । परिवार ।
२. अभावस्था । कुट [को०] ।

नष्टेन्द्रिय—वि० [सं० नष्टेन्द्रिय] संज्ञारहित । संज्ञाशून्य [को०] ।

नसंक(पुं०) —वि० [सं० निशङ्क] निर्भय । निबर । बेझोफ ।

नस—संज्ञा स्त्री० [सं०] नाक । नासिका [को०] ।

नस—नसश्चद्र — छोटी नासिका ।

नस^१—संज्ञा स्त्री० [सं० स्नायु तुलनीय घ० नसा (= वह रंग जो कमर
के नीचे से टखने तक है)] १. शरीर के भीतर तंतुओं का
वह बंध या लच्छा जो पेशियों के छोर पर उन्हें दूसरी
पेशियों या अस्थि आदि बड़े स्थानों से जोड़ने के लिये होता है
(जैसे, घोड़ा नस) । साधारण बोलचाल में कोई शरीर-
तंतु या रक्तवाहिनी नसी ।

विशेष—नसों के तंतु टूट और चमक होते हैं, लचीले नहीं
होते । वे खींचने से बड़ते नहीं । नसें शरीर की सबसे दृढ़
और मजबूत सामग्री हैं । कभी कभी वे ऐसे आघात से भी नहीं
टूटती जिनसे हड्डियाँ टूट जाती और पेशियाँ कट जाती हैं ।

मुहा०—नस चढ़ना या नस पर नस चढ़ना=लिसाव, बसाव
या झटके आदि के कारण शरीर में किसी स्थान की,
विशेषतः पैर की पिडली या बांह की किसी नस का अपने
स्थान से हलक उभर हो जाना या बल खा जाना जिसके
कारण उस स्थान पर तनाव और पीड़ा होती है और कभी
कभी सूजन भी हो जाती है । नसें ठीकी होना=बकाबत
माना । शाखिलना होना । पस्त होना । नस नस में=सारे
शरीर में । सर्वांग में । जैसे, --उनकी नस नस में शरारत घरी
पड़ी है । नस नस फड़क उठना=बहुत अधिक प्रसन्नता
होना । अति आनंद होना । उमंग होना । जैसे,—
आपके चुटकुले सुनकर तो नस नस फड़क उठती है । नस
भड़कना=(१) २० नस चढ़ना । (२) विक्षिप्त होना ।
पागल होना ।

नस^२—घोड़ानस=पैर की वह बड़ी नस जो पीछे की घोर
पिडली के नीचे होती है । इसके कट जाने से बहुत अधिक
खून बहता है जिससे लोग कहते हैं, आदमी मर जाता है ।

२. लिंग । पुरुष की मूत्रेन्द्रिय । (वच०) ।

मुहा०—नस या नसें ठीली पड़ जाना= लियेन्द्रिय का क्षिप्त
हो जाना । पुंसत्व की कमी हो जाना ।

३. पतले रेशे वा तंतु जो पत्तों में बीच बीच में होते हैं ।

नस^३—संज्ञा स्त्री० [सं० निष] २० 'निषा' । ४०—सागे साव

मुहमण्ड, नस भर कुंभद्विर्वाह । जल पोश्णिए छाद्यउ,
कहउत पूगल जाइ ।-डोना०, दू० २४५ ।

नसकटा—संज्ञा पुं० [हि० नस = निग + कटना] नपुंसक । हिजड़ा ।

नसतरंग—संज्ञा पुं० [हि० नस + तरंग] गहनाई के आकार का पीतल का एक प्रकार का बाजा ।

विशेष—इसके पतले सिरे पर एक छोटा सा छेद होता है । इस छेद पर मकड़ी के घंटों के ऊपर सकेव छता रखते हैं, फिर उस सिरे को गले की घंटों के पास की नसों पर रखकर गले से स्वर भरते हैं जिससे उस बाजे में शब्द उत्पन्न होता है । ऐसे दो बाजे गले की घंटों के दोनों ओर रखकर एक ही साथ बजाए जाते हैं ।

नसवालीक—संज्ञा पुं० [प्र० नस्तालीक] १. फारसी या अरबी लिपि लिखने का वह ढंग जिसमें अक्षर खूब साफ और सुंदर होते हैं । 'घनीट' या 'शिकस्त' का उलटा । २. वह जिसका रंग ढंग बहुत अच्छा और सुंदर हो । सभ्य या शिष्ट शक्ति ।

नसना^०—क्रि० प्र० [प्र० नसन] १. नष्ट होना । बरबाद होना । २. बिगड़ जाना । खराब हो जाना ।

नसना^१—क्रि० प्र० [प्र० तुन + हि० नटना] भागना । दीड़ना ।

नसफाड़—संज्ञा पुं० [हि० नस + फाड़ना] हाथियों का एक रोग जिसमें उनके पैर सूज जाते हैं ।

नसर—संज्ञा स्त्री० [प्र० नस] गद्य । पद्य या नग्न का उलटा ।

यौ०—नसरनिगार = गद्यलेखक । नसरनिगारी = गद्यरचना ।

नसरी—संज्ञा स्त्री० [दे०] १. एक प्रकार की मधुमक्खी । २. इस मक्खी के छत्ते का मांस । विशेष—दे० 'कुंतली' ।

नसल—संज्ञा स्त्री० [प्र० नसल] वंश । खानदान ।

नसवार—संज्ञा स्त्री० [हि० नाम + वार (प्रत्य०)] घुंवने के लिये तमाकू के पीसे हुए पत्ते । सुघनी । नास ।

नसहा—संज्ञा पुं० [प्र० नस + हा (प्रत्य०)] जिसमें नस हों ।

नसा—संज्ञा स्त्री० [प्र०] नासिका । नासा । नाक ।

नसा^२—संज्ञा पुं० [हि० नसा] दे० 'नसा' ।

नसाना^०—क्रि० प्र० [प्र० नास] १. नास को प्राप्त होना । नष्ट हो जाना । २. बिगड़ जाना । खराब हो जाना ।

नसाना^१—क्रि० प्र० १. नष्ट करना । २. नास करना । ३. बिगाड़ना । खराब करना ।

नसाबना—क्रि० प्र० [हि०] दे० 'नसाना' ।

नसी—संज्ञा स्त्री० [दे०] कुसी की नोक । हल के फार की नोक ।

नसीठा—संज्ञा पुं० [दे०] बुरा लकून । असगुन ।

नसीव—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'नसीहत' ।

नसीनी—संज्ञा स्त्री० [प्र० निःश्रेणी] सीढ़ी । जीना । नसेनी ।

नसीपूजा—संज्ञा पुं० [हि० नसी (= कुसी का नोक) + पूजा] हल की पूजा जो बोलने के मौसम के पीछे की जाती है । हल पूजा ।

नसीब—संज्ञा पुं० [प्र०] भाग्य । प्रारब्ध । किस्मत । तकदीर ।

मुहा०—किसी को नसीब होना = किसी को प्राप्त होना । जैसे,—
ऐसा मकान तुम्हें नसीब कहाँ है ? ('नसीब' के वाकी मुहावरों के लिये देखिए 'किस्मत' के मुहा० ।)

नसीबजला—वि० [प्र० नसीब + हि० जलना] जिसका भाग्य खराब हो । अभाग्य ।

नसीबवर—वि० [प्र०] भाग्यवान् । सौभाग्यशाली । जिसका नसीब अच्छा हो ।

नसीबा—संज्ञा पुं० [प्र० नसीबह] दे० 'नसीब' ।

नसीम—संज्ञा पुं० [प्र०] ठंडी, धीमी और बढ़िया हवा ।

यौ०—नसीम आमा = जिसकी बाल नसीम की तरह धीमी और मृदु हो ।

नसीला—वि० [हि० नस + ईला (प्रत्य०)] जिसमें नसे हों । नसदार ।

नसीला^२—वि० [हि० नसीला] दे० 'नसीला' ।

नसीहत—संज्ञा स्त्री० [प्र०] १. उपदेश । शिक्षा । सीख । २. अच्छी संमति ।

क्रि० प्र०—करना ।—देना ।—पाना ।—मिलना ।—होना ।

यौ०—नसीहतगर, नसीहतगुजार, नसीहतगी = उपदेशक । सीख देनेवाला ।

नसीहा—संज्ञा पुं० [दे०] मुलायम मिट्टी के जोतने के लिये हलका हल ।

नसूझिया—वि० [हि० नासूर + झ्या (प्रत्य०)] जिसके देखने, छूने अथवा किसी प्रकार के संबंध से कोई दोष या हाजि हो । मनहूस । जैसे,—तुम हर एक चीज में बिना धनना नसूझिया हाथ लगाए नहीं मानते ।

नसूर—संज्ञा पुं० [हि० नासूर] दे० 'नासूर' ।

नसेनी^०—संज्ञा स्त्री० [प्र० निःश्रेणी] सीढ़ी । जीना ।

नस्त—संज्ञा पुं० [प्र०] १. नाक । २. सुघनी [को०] ।

नस्तक—संज्ञा पुं० [प्र०] जानवरों की नाक में नाथ पहनाने के लिये किया हुआ छेद [को०] ।

नस्तकरण—संज्ञा पुं० [प्र०] एक प्रकार का यंत्र जिसका व्यवहार भिक्षु लोग नाक में दवा डालने के लिये करते थे ।

नस्तरन—संज्ञा पुं० [फ्रा०] सफेद गुनाब । सेबती । २. एक प्रकार का कपड़ा ।

नस्ता—संज्ञा स्त्री० [प्र०] पशुओं की नाक का छेद जिसमें रस्सी डाली जाती है ।

नस्तित—संज्ञा पुं० [प्र०] वह पशु जिसकी नाक में छेद करके रस्सी डाली जाय । जैसे, बैल, ऊँट आदि ।

नस्तोत—संज्ञा पुं० [प्र०] दे० 'नस्तित' ।

नस्य—संज्ञा पुं० [प्र०] १. नास । सुघनी । २. बैलों की नाक की रस्सी । नाथ । ३. घी आदि में बनी हुई वह दवा या चूर्ण आदि जिसे नाक के रास्ते दिमाग में बढ़ाते हैं । यह दो प्रकार का होता है । दे० 'शिरोविरेचन' और 'स्नेह' । ४. नाक के बास [को०] ।

नस्य^१—वि० १. नासिका से संबंध रखनेवाला। नाक का। २. नाक से बहने या निकलनेवाला [को०]।

नस्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. नाक। २. नाक का छेद। ३. नाथ।

नस्याधार—संज्ञा पुं० [सं०] वह पान जिसमें सुंघनी रखी जाती है। नासवानी।

नस्योत्—संज्ञा पुं० [सं०] वह पशु जिसकी नाक में रस्सी बाँध कर बालने के लिये छेद किया गया हो।

नस्यरु^१—वि० [सं० नस्यर] दे० 'नस्यर'।

नह^१—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का बढ़िया चावल जो उत्तर प्रदेश में होता है।

नह^२—संज्ञा पुं० [सं० नह] दे० 'नाखून'।

नहखू—संज्ञा पुं० [सं० नसखोर] १. विवाह की एक रस्म जिसमें बर की हजामत बनती है, नाखून काटे जाते हैं और उसे मेंहदी आदि लगाई जाती है। २. विवाह के पूर्व की एक रस्म जिसमें कन्या के नाखून काटे जाते हैं और उसे स्नान कराया जाता है।

नहट्टा—संज्ञा पुं० [हि० नहट्ट] (= नाखून) नाखून से की हुई सरोब। नखसत।

नहन—संज्ञा पुं० [देश०] पुरबट खींचने की मोटी रस्सी। नार।

नहना^१—क्रि० स० [हि० नाघना]। लगाना। जोतना। काम में तत्पर करना। उ०—पशु जो पशुपाल इस बात धोरत नहत।—तुलसी (शब्द०)।

नहनि^२—संज्ञा स्त्री० [हि० नहना] दे० 'नहना'। उ०—बननि कहनि बिहंसनि रहनि गहनि सहनि सब ठाँप। चहनि नेह की नहनि सौं कियो जगत बस राम।—रघुराज (शब्द०)।

नहनी^३—संज्ञा स्त्री० [हि० नहरनी] दे० 'नहरनी'।

नहर—संज्ञा स्त्री० [सं० नह] १. वह कृत्रिम नदी या जलमार्ग जो खेतों की सिंचाई या यात्रा आदि के लिये तैयार किया जाता है। २. जल बहाने के लिये बनाया हुआ रास्ता। उ०—(क) राम घर यादवन सुभट ताके हने रधिर के नहर सरिता बहाई।—सूर (शब्द०)। (ख) बाग तड़ाग मुहावन लागे। जल की नहर सकल मद्दि मागे।—रघुराज (शब्द०)।

मुहा०—नहर काटना या खोदना = नहर तैयार करना।

विशेष—साधारणतः एक स्थान से दूसरे स्थान तक पानी ले जाने, खेत सींचने आदि के लिये नदियों में जोड़कर जलमार्ग तैयार किया जाता है। बड़ी बड़ी नहरें प्रायः साधारण नदियों के समान हुषा करती हैं और उनमें बड़ी बड़ी नावें चलती हैं। कहीं कहीं दो भीलों या बड़े जलाशयों का पानी मिलाने के लिये भी नहरें बनाई जाती हैं।

नहरनी—संज्ञा स्त्री० [सं० नलहरणी] १. हज्जामों का एक औजार जिससे नाखून काटे जाते हैं।

विशेष—यह लोहे का एक लंबा गोला टुकड़ा होता है और जिसका एक सिरा चपटा और धारदार होता है।

२. इसी प्रकार का पोस्ते की डोंड़ी धोरने का एक औजार।

नहरम—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की मछली जो भारतवर्ष की सब नदियों में पाई जाती है।

विशेष—पहाड़ी ऋतों में यह अधिकता से होती है।

नहरिया—संज्ञा स्त्री० [हि०] छोटी नहर। उ०—घाघे की नहर से एक नहरिया निकाली है।—किन्नर०, पृ० १२।

नहरी^१—संज्ञा स्त्री० [हि० नहर + ई (प्रत्य०)] वह जमीन जो नहर के पानी से सींचो जाय।

नहरी^२—वि० नहर से संबंध रखनेवाला।

नहरी^३—संज्ञा स्त्री० नहर।

नहरुआ—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का रोग जो प्रायः कमर के निचले भाग में होता है। उ०—ग्रहंकार प्रति दुख्य डमरुआ। दम कपट मद मान नहरुआ।—मानस, ७। १२१।

विशेष—पानी के साथ एक विशेष प्रकार के कीड़े शरीर में प्रविष्ट हो जाने के कारण यह रोग होता है। इसमें पहले किसी स्थान पर सूजन होती है। फिर छोटा सा घाव होता है और तब उस घाव में से बोरी की तरह का कीड़ा धीरे धीरे निकलने लगता है जो प्रायः गजों लंबा होता है। इस रोग से कभी कभी पैर आदि घंग बेकाम हो जाते हैं।

विशेष—दे० 'नारु'।

नहरुआ^१—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'नहरुआ'।

नहरुआ^२—संज्ञा पुं० [हि० नारु] दे० 'नहरुआ'।

नहल^१—संज्ञा स्त्री० [हि०] नहर। उ०—घसि चंदन चंद्रक चहल महुलनि नहल फिराइ। विषम गरम घोषम ठक नैकु न गरम ललाई।—स० मत्तक, पृ० ३६२।

नहला^२—संज्ञा पुं० [हि० नी] ताक के खेल में वह पत्ता जिसपर नौ चिह्न या दृष्टियाँ हों।

मुहा०—नहले पर दहला = ईंट का जवाब पत्थर। बढ़कर होना। उ०—सही भाँस तुम्हीं दिखे पहले। नहले पर तुम्हीं रहे दहले।—अर्चना, पृ० ५८।

नहला^३—संज्ञा पुं० [देश०] करनी की तरह का एक औजार जो नक्काशी बनाने के काम में आता है।

नहलाई—संज्ञा स्त्री० [हि० नहलाना + ई (प्रत्य०)] १. नहलाने की क्रिया या भाव। २. वह धन जो नहलाने के बदले में दिया जाय।

नहलाना—क्रि० स० [हि० नहाना का प्रे० रूप] दूसरे को स्नान में प्रवृत्त करना। स्नान कराना। नहलाना।

नहलाना—क्रि० स० [हि० नहाना का प्रे० रूप] दे० 'नहलाना'।

नहस—वि० [सं० नहस] अशुभ। अमांगलिक। मनहूस [को०]।

बौ०—नहसकवम = जिसका घाना अशुभ हो। नहसरु = अशुभ दशन। जिसका दर्शन शुभ न हो।

नहसुत^१—क्रि० स० [सं० नलसुन] नल की रेखा। नाखून का निशान। उ०—नहसुत कील कपाट सुलच्छन दै रगहार अगोट।—सूर (शब्द०)।

नहसुव^१—संज्ञा पुं० [सं० नह (= एक पेड़)] पलाश की तरह का एक पेड़ जिसे फरहद भी कहते हैं। दे० 'फरहद'।

नहौं^१—संज्ञा पुं० [दे०] १. पहिए के ठीक बीच का मुरास जिसमें घुरी पहनाई जाती है। २. † घर के आगे का आगिन।

नहौं^१—संज्ञा पुं० [हि० नहें] दे० 'नागून'।

नहान—संज्ञा पुं० [सं० स्नान] १. नहाने की क्रिया। जैसे, कुंभ का नहान, छट्ठी का नहान। २. स्नान का पर्व।

क्रि० प्र०—सगना।—होना।

नहाना^१—क्रि० प्र० [सं० स्नान, प्रा० हारण, वृ० दे० नहाना] १. पानी के स्रोत में, बहती हुई धारा के नीचे या मिर पर से पानी डालकर शरीर को स्वच्छ करने या उसकी शिथिलता दूर करने के लिये उसे धोना। स्नान करना।

संयो० क्रि०—डालना।

मुहा०—दूधों नहाना पूतों फालना = धन और परिवार से पूर्ण होना। (भाषीबाँव)।

विशेष—शरीर में जितने रोमरूप हैं, नहाने से उन सबका मुँह खुल और साफ हो जाता है और शरीर की यक़ाबट दूर हो जाती है। भारत मरीखे गरम देशों में लोग नित्य सबेरे उठकर शोध आदि से निवृत्त होकर नहाते हैं और कभी सबेरे और संध्या दोनों समय नहाते हैं। पर ठंडे देशों के लोग प्रायः नित्य नहीं नहाते, सप्ताह में एक या दो बार नहाते हैं।

२. रजोधर्म से निवृत्त होने पर स्त्री का स्नान करना। ३. किसी तरल पदार्थ से सारे शरीर का धोना हो जाना। शराबोर हो जाना। बिलकुल तर हो जाना। जैसे, पानी से नहाना। खून से नहाना।

विशेष—इस अर्थ में 'नहाना' शब्द के साथ गायः 'उठना' या 'जाना' संयोज्य क्रिया लगाई जाती है।

नहाना(उ)^१—क्रि० सं० [हि०] नहाना। उ०—भूत निश्चय के बिल नहायन, जोत सेत निर्धानी। दुबिधा दूब छोलकर बाहर, बोया नाम की धानी।—कबीर ज०, भा०, पृ० ५१।

नहानी^१—संज्ञा स्त्री० [हि० नहाना] १. रजस्वला स्त्री। २. स्त्री का रजस्वला होना।

नहार—वि० [फ्रा० नाहार (= जो सबेरे से भूखा हो) का लघु रूप, मि० सं० निराहार] जिसने सबेरे से कुछ खाया न हो। जिसने जलपान आदि कुछ न किया हो। बाली मुँह।

मुहा०—नहार तोड़ना = जलपान करना। सबेरे के समय हलका भोजन करना। नहार मुँह = बिना जलपान आदि किए हुए। नहार रहना = भूखे रहना। बिना भोजन के रहना। उपवास करना।

नहारो—संज्ञा स्त्री० [फ्रा० नहार] १. वह हलका भोजन जो सबेरे किया जाता है। जलपान। यज्ञेय। नाश्ता। २. वह गुड़ या गुड़ मिला घाटा जो घोड़े को सबेरे, घबरा घाधा रास्ता धार कर लेने पर खिलाया जाता है (एक्केजान)। ३. मुसलमानों के यहाँ बननेवाला एक प्रकार का शोरबेदार

सालन जो रात भर पकता है और जिसके साथ लमीरी रोटी खाई जाती है।

नहावन(उ)^१—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'नहान'।

क्रि० प्र०—सगना।—होना।

नहिं(उ)—अव्य० [सं० नहि] दे० 'नहीं'।

नहिंन(उ)—अव्य० [हि०] दे० 'नहीं'। उ०—आनहि रंग पुहुप में देखे। अपनी बारी नहिंन सुपेखे।—नंद० प्र०, पृ० १२७।

नहिअनी—संज्ञा पुं० [हि० नह (= नख)] बिछिया की तरह का एक गहना जो पैर की छोटी उँगली में पहना जाता है।

नहि—अव्य० [सं०] नहीं। बिलकुल नहीं। निश्चित रूप से नहीं [को०]

नहियाँ^१—संज्ञा स्त्री० [हि० नह = नख] बिछिया की तरह का एक गहना जिसे नहिअन भी कहते हैं।

नहियाँ^१(उ)—अव्य० दे० 'नहीं'। उ०—नैनन में बाह करे, नैनन में नहियाँ।—मति० प्र०, पृ० ३४८।

नहिरनी—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'नहरनी'।

नहीं^१—अव्य० [सं० नहिं] एक अव्यय जिसका व्यवहार निषेध या प्रस्वीकृति प्रकट करने के लिये होता है। जैसे—(क) उन्होंने हमारी बात नहीं मानी। (ख) प्रश्न—आप वहाँ जायेंगे? उत्तर—नहीं।

मुहा०—नहीं तो = उस दशा में जब कि वह बात न हो। इसके न होने की दशा में। जैसे,—आप सबेरे ही मेरे पास पहुँच जाइएगा, नहीं तो मैं भी न जाऊँगा। नहीं सही = यदि यह बात न हो तो कोई चिंता नहीं। यदि ऐसा न हो तो कोई परवा या हानि नहीं। जैसे,—(क) अगर वे नहीं आते हैं तो नहीं सही। (ख) यदि आप न पढ़ें तो नहीं सही।

नहीं(उ)^१—संज्ञा स्त्री० [हि० नह] नख। नागून। उ०—तुम रँवनीने सुनत हो गई मेरे पाय की नहीं। सुनिही कुँवर और काहि लगाऊँ आधि रेनि गई, वहाँ हम तुम ही।—नंद० प्र०, पृ० ३५३।

नहुर(उ)—संज्ञा स्त्री० [प्रा० नहुर नाखून] नाखून। नख। उ०—किमुक कलिन देखि भम पाई। नाहुर की सी नहुरे माई।—नंद० प्र०, पृ० १३१।

नहुष—संज्ञा पुं० [सं०] १. अयोध्या के एक प्राचीन इक्ष्वाकुवंशी राजा का नाम जो चंद्रवंशी का पुत्र और ययाति का पिता था। महाभारत में इसे चंद्रवंशी आयु राजा का पुत्र माना जाता है।

विशेष—पुराणानुसार यह बड़ा प्रतापी राजा था। जब इंद्र ने क्षत्रागुर को मारा था उस समय इंद्र की ब्रह्महत्या लगी थी। उसके भय से इंद्र १००० वर्ष तक कमलनाल में छिपकर रहा था। उस समय इंद्रासन शून्य देख गुरु बृहस्पति ने इसको योग्य जान कुछ दिनों के लिये इंद्र पद दिया था। उस अवसर पर इंद्राणी पर मोहित होकर इसने उसे अपने पास बुलाना चाहा। तब बृहस्पति की सम्मति से इंद्राणी ने कहला दिया कि 'पालकी पर बैठकर सप्तर्षियों के कंधे पर हमारे यहाँ आओ तब हम तुम्हारे साथ चलें'। यह सुन राजा ने

उदनुसार ही किया और चबराहट में घाकर सप्तविधों से कहा—सर्प सर्प (जल्दी चलो), इसपर अगस्त्य मुनि ने शाप दे दिया कि 'जा, सर्प हो जा'। तब वह वहाँ से पतित होकर बहुत दिनों तक सर्प योनि में रहा। महाभारत में लिखा है कि पीडित लोग जब द्वैतवन में रहते थे तब एक बार भीम गिहार खेलने गए थे। उस समय उन्हें एक बहुत बड़े साँप ने पकड़ लिया। जब उनके लोटने से देर हुई तब युधिष्ठिर उन्हें ढूँढ़ने निकले। एक स्थान पर उन्होंने देखा कि एक बड़ा साँप भीम को पकड़े हुए है। उनके पूछने पर साँप ने कहा कि मैं महाप्रतापी राजा नहुष हूँ; ब्रह्मर्षि, देवता, राक्षस और पन्नग आदि मुझे कर देने थे। ब्रह्मर्षि लोग मेरी पालकी उठाकर चला करते थे। एक बार अगस्त्य मुनि मेरी पालकी उठाए हुए थे, उस समय मेरा पैर उन्हें लग गया जिससे उन्होंने मुझे शाप दिया कि जाओ, तुम साँप हो जाओ। मेरे बहुत प्रार्थना करने पर उन्होंने कहा कि इस योनि में राजा युधिष्ठिर तुम्हें मुक्त करेगा। इसके बाद उसने युधिष्ठिर से अनेक प्रश्न भी किए थे जिनका उन्होंने यथेष्ट उत्तर दिया था। इसके उपरान्त साँप ने भीम को छोड़ दिया और विषय शरीर धारण करके स्वर्ग की प्रशान्त किया।

२. एक नाग का नाम। ३. एक ऋषि का नाम जो मनु के पुत्र और ऋग्वेद के कुछ मंत्रों के द्रष्टा माने जाते हैं। ४. पुराणा-नुसार कुशिकवंशी एक ब्राह्मण राजा का नाम। ५. एक राजर्षि का नाम जिसका उल्लेख ऋग्वेद में है। ६. हरिवंश के अनुसार एक मरु का नाम। ७. विष्णु का एक नाम। ८. मनुष्य। आदमी।

नहुषाख्य—संज्ञा पुं० [सं०] तगर पुष्प।

नहुषात्मज—संज्ञा पुं० [सं०] राजा अर्थात् (को०)।

नहुष्य—वि० [सं०] मानव संबंधी (को०)।

नहुष्य—संज्ञा पुं० मनुष्य। आदमी (को०)।

नहूर—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की भेड़।

विशेष—यज्ञ तिब्बत में होता है और कभी कभी नेपाल में भी आ जाती है। बहुत वर्ष पहले पर इसके भूँड परंत को चींटों से उतरकर सिंधु नदी के किनारे तक भी आ जाने हैं।

नहूसत—संज्ञा पुं० [सं०] १. मनहस होने का भाव। उदासीनता।

सिद्धता। मनहसी। जैसे,—आपके चेहरे से नहूसत बरमती है।

क्रि० प्र०—टपकना।—बरसना।

* २. अशुभ लक्षण।

नांत—वि० [सं० न + अन्त] अन्त। अंतहीन (को०)।

नांतरीयक—वि० [सं० नांतरीयक] जो पृथक् करने योग्य न हो। अनिष्ट रूप से संबद्ध या संबंधित (को०)।

नांत्र—संज्ञा पुं० [सं० नांत्र] स्तुति। प्रशंसा (को०)।

नांदन—वि० [सं० नांदन] तोषकारक। हर्षकारक (को०)।

नांदन—संज्ञा पुं० १. आनंदप्रद उपवन। २. स्वर्ग का उपवन (को०)।

नांदिकर—संज्ञा पुं० [सं० नांदिकर] वह जो नांदी पाठ करे (को०)।

नांदी—संज्ञा स्त्री० [सं० नांदी] १. अभ्युदय। समृद्धि। २. वह आशीर्वादात्मक श्लोक या पद्य जिसका पाठ सुनधार नाटक प्रारंभ करने के पहले करना है। मंगलाचरण।

विशेष—संस्कृत नाटकों में विघ्नशान्ति के लिये इस प्रकार के मंगलपाठ की आदत है। साहित्य दर्पण के अनुसार नांदी आठ या बारह पदों की भी लिखी है। नांदीपाठ मध्यम स्वर में होना चाहिए।

नांदी—संज्ञा पुं० [सं० नांदी] १. नाटक के प्रारंभ में नांदीपाठ करनेवाला व्यक्ति। २. नाटक के प्रारंभ में मंगलवाच बजाने-वाला व्यक्ति।

नांदीक—संज्ञा पुं० [सं० नांदीक] १. तोरण का स्तंभ। २. नांदीपुष्प आदि।

नांदीकर—संज्ञा पुं० [सं० नांदीकर] नांदीपाठक। नांदीपाठ करने-वाला व्यक्ति (को०)।

नांदीघोष—संज्ञा पुं० [सं० नांदीघोष] मंगल बाधों की धावाज या ध्वनि (को०)।

नांदीनाद—संज्ञा पुं० [सं० नांदीनाद] असन्तता या हर्ष की अधिकता में बोलना (को०)।

नांदीनाद—संज्ञा पुं० [सं० नांदीनाद] दे० 'नांदीनाद' (को०)।

नांदीपट—संज्ञा पुं० [सं० नांदीपट] कुएँ का ढकना।

नांदीमुख—संज्ञा पुं० [सं० नांदीमुख] १. कुएँ का ढकना। २. एक आभ्युदयिक आद जो पुनर्जन्म, विवाह आदि मंगल अवसरों पर किया जाता है। बुद्धिआद।

विशेष—निर्गुणमिथु में लिखा है कि पुनर्जन्म, विवाह, उपनयन, गर्भाधान, व्रत, पुंसवन, तडागादि प्रतिष्ठा, राज्याभिषेक, अन्तर्गणन इत्यादि में नांदीमुख आद करना ही चाहिए। बुद्धि हुई तो तब तो यह आद करना ही चाहिए, जिस समय तो अभ्युदय या बुद्धि की संभावना हो उसमें भी इसे करना चाहिए। पहले माता का आद करना चाहिए, फिर पिता का, उसके पीछे पितामह, मातामह आदि का। और आद तो मध्यम में किए जाते हैं पर यह पूर्वार्त्त में होता है। पुनर्जन्म के समय का नियम नहीं है।

नांदीमुखी—संज्ञा स्त्री० [सं० नांदीमुखी] एक वर्णवृत्त जिसके प्रत्येक चरण में दो नगण, दो दगण और दो गुरु होते हैं। जैसे, अंत यहि दुई पाँदै गुरु केर जाई। दशरथ सून चारी लहे माद पाई। हिय मंह धार के ध्यान शृंगी ऋषि को। मुदिन मन कियो थाद नारीमुखी को।

नाँँ—संज्ञा पुं० [सं० नामन] दे० 'नाम'।

यौ०—नाँँ गौँँ।

नाँँक(पुं)—संज्ञा पुं० [सं० नाँँक] १. 'नाक'। उ०—सुपा सो नाँँक कठोर पेंवारी। बड़ कोवलि तिल पुड़ुप सेंवारी।—जायसी शं० (गुप्त), पृ० १८३।

नाँँकी(पुं)—संज्ञा स्त्री० [हि० नाँँकी] १. भीतर घुसने का मार्ग। प्रवेशद्वार। २. मोड़। वह स्थान जहाँ से रास्ता दूसरी ओर

मद जाग । ३. कोई प्रमुख स्थान । उ०—दमक दुमार गुगुन गक नौकी । धमक नद्वार बाट गुठि बाँकी ।—जायसी प्र०, पृ० २६५ ।

नौखना(पु०) - क्रि० प्र० [हि०] १. टालना । २. परे करना । धलन रखना । उ०—मैं बड़यो मो मल्य मानो, सगुन डारो नौखि ।—पोद्दार अभि० प्र०, पृ० ३१८ ।

नौगट(पु०) - क्रि० प्र० [सं० नगनाट] दे० 'नगनाट' । उ०—एक तजो नौगट धपके उमन ।—विद्यावति, पृ० ६०५ ।

नौगा - क्रि० प्र० [हि० नगा] दे० 'नंगा' ।

नौगा - संज्ञा पु० [हि० नगा] एक प्रकार के माधु जो नंगा हो रहते हैं ।

नौगी - क्रि० प्र० [हि०] नौगी । उ०—तुम यह बात असंभव मान ली भावदू नारी ।—मूर (शब्द०) ।

नौघना(पु०) - क्रि० प्र० [सं० नौघन] नौघना । इन पार से उम पार उद्धार कर लेना । उ०—जो नौघड सन जोवन सागर । करे ली गम ही ।—अति सागर । तुलसी (शब्द०) ।

नौठना(पु०) - क्रि० प्र० [सं० नठ] नष्ट होना । बिगड़ जाना । उ०—मूलि धन पैतृक मोह मर्न नौठी । मणि गिरि गई छूट जनु गौठी ।—तुलसी (शब्द०) । नि० दे० 'नाठना' ।

नौद—संज्ञा स्त्री० [सं० नौदक] समुद्र का एक बड़ा घोर चौड़ा बरतन जिसमें पशुओं की चारा सानो आदि दिया जाता है । लोदी ।

विशेष—एक नौदमें पौनव पशुआदि आतुओं का भी रक्ता है जिसमें गन्नाय लोग पानी खनते हैं ।

नौदना(पु०)—क्रि० प्र० [सं० नाद] १. शब्द करना । शोर करना । २. छीकना ।

नौदिना - क्रि० प्र० [सं० नदिन] १. घानंरित होना । खुश होना । उ०—नकु न जानो पति ये पयो विरह तन छाम । उरति दिगा लो नौदिनार लिए नुहारी नाम ।—बिहारी (शब्द०) । २. दोषन का बुझने के पहले कुछ समय कर लेना ।

नौयौ - संज्ञा पु० [हि०] दे० 'नाय' ।

नौयौ - शब्द० [हि०] दे० 'नह्ये' ।

नौयौ - संज्ञा पु० [हि०] दे० 'नाय' ।

नौचरा(पु०)—संज्ञा पु० [हि० नौचर] (प्रत्य०) । दे० 'नाय' ।

नौसी - संज्ञा स्त्री० [सं० नास] नाश करने या मारने की स्थिति या प्रकृति । उ०—जो मुख हारी ली धनमानद कैसे सुहावि बसो लही नौसी । जयाय द्विरे दुनिग न हित हंसि बोलनि को रित पीजा हौसी ।—धनानंद, पृ० १३ ।

नौह(पु०) - संज्ञा पु० [सं० नाय] स्वामी । पति ।

नौ - शब्द० [सं०] एक शब्द जिसका प्रयोग अस्वीकृति या निराश व्यक्त करने के लिए होता है । नहीं । न ।

ना(पु०) - संज्ञा पु० [सं० नर नयन] अनुष्य । (हि०) ।

ना(पु०) - संज्ञा पु० [सं० नाभि] नाभि । (हि०) ।

नाआगाह—वि० [फा०] न जाननेवाला । अनजान (को०) ।

नाआजमूदा—वि० [फा० नाआजमूदह] जिसे अनुभव या ज्ञान न हो (को०) ।

यौ०—नाआजमूदाकार=जो अनुभवी न हो । नाआजमूदाकारी=अनुभवहीनता ।

नाआरना—वि० [फा०] १. अपरिचित । २. अनभिज्ञ । अनाही (को०) ।

नाइंसाफ—वि० [फा० ना + धा० इंसाफ] अन्धारी । न्याय न करनेवाला (को०) ।

नाइंसाफी—संज्ञा स्त्री० [फा० ना + इंसाफ + फा० ई (प्रत्य०)] अनीति । अन्याय । बेईमानी (को०) ।

नाइक(पु०)—संज्ञा पु० [हि०] दे० 'नायक' ।

नाइत्तिफाकी—संज्ञा स्त्री० [फा० ना + धा० इत्तिफाक + फा० ई (प्रत्य०)] मेल का अभाव । फूट । मतभेद । विरोध । बिगाड़ । रजिण ।

नाइन—संज्ञा स्त्री० [हि० नाई] १. नाई जाति की स्त्री । २. नाई की स्त्री ।

नाइब(पु०)—संज्ञा पु० [सं०] दे० 'नायब' ।

नाई - संज्ञा स्त्री० [सं० न्याय] समान दशा । एक ही गति ।

नाई - वि० स्त्री० समान । तुल्य । उ०—समरथ को नहि दोष गुनाई । रवि पावक मुरसिर की नाई ।—तुलसी (शब्द०) ।

नाई - संज्ञा पु० [सं० नावित] नाऊ । हज्जाम । नावित ।

नाई - संज्ञा स्त्री० [देश०] नाकुलो कंद ।

नाउं(पु०) - संज्ञा पु० [हि० नाम] दे० 'नाम' । उ०—अति लालसा बमहि मन माहीं । नाउं गाउं धुक्त सकुचाहीं ।—मानस, २। ११०

नाउं(पु०)—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'नाव' ।

नाउत - संज्ञा पु० [देश०] मंत्र यंत्र से भूत प्रेत काढ़नेवाला । मयाला । भाड़ फूँक करनेवाला । धोका ।

नाउना - संज्ञा स्त्री० [हि० नाऊ] दे० 'नाहन' ।

नाउम्मेद - वि० [फा० नाउम्मीद] निराश । हताश । हतोत्साह । हतसाहस । पस्तहीसला ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

नाउम्मेदी - संज्ञा स्त्री० [फा० नाउम्मीदी] १. निराशा । मायूसी । २. उत्साहहीनता । पस्तहिम्मती (को०) ।

नाऊं(पु०) - संज्ञा पु० [हि० नाउं] नाम । उ०—घृष सगलानि जयेउ हरि नाऊं । थापेउ अचल अनूपम ठाऊं ।—मानस, १। २६ ।

नाऊं - संज्ञा पु० [हि०] दे० 'नाई' ।

नाकंद - वि० [फा० ना + कंदह] बिना निकाला हुआ (थोड़ा आदि) अल्हड़ । अशिक्षित । बिना सिखाया हुआ । उ०—(क) नाकंद बछेरे कूद चुके पब और दुलसी मत छाँटो ।—नबीर (शब्द०) । (ख) सुरंग बछेरे नैन तुव यद्यपि हैं नाकंद । मन सोदायर ने कहाँ ये हैं बहुत पसंद ।—रसनिधि (शब्द०) ।

नाक—संज्ञा स्त्री० [सं० नक, पा० नक्क,] १. मुलमंडल की मांस-पेशियों और ग्रन्थियों के समार से बना हुआ नल के रूप का वह अवयव जिसके दोनों छेद मुखविवर और फुस्फुस से मिले रहते हैं और जिससे घ्राण का अनुभव और स्वास प्रश्वास का व्यापार होता है। सूँघने और साँस लेने की इन्द्रिय। नासा। नासिका।

विशेष—नाक का भीतरी घस्तर छिद्रमय मांस की भिल्ली का होता है जो बराबर कपालघट और नेत्र के गोलकों तक गई रहती है, इसी भिल्ली तक मस्तिष्क के वे संवेदनमूल घ्राण रहते हैं जिनसे घ्राण का व्यापार अर्थात् गंध का अनुभव होता है। इसी से होकर वायु भीतर जाती है जिसमें गंधवाले घ्राण रहते हैं। इस भिल्ली का ऊपरवाला भाग ही गंधवाहक होता है, नीचे का नहीं। नीचे तक संवेदनमूल नहीं रहते। नासारंध्र का मुखविवर, नेत्रगोलक, कपालघट आदि से संबंध होने के कारण नाक से स्वर और स्वाद का भी बहुत कुछ साधन होता है तथा कपाल के भीतर कोशों में इकट्ठा होनेवाला मल और मूत्र का मसु भी निकलता है। जीवविज्ञानियों का कहना है कि उठी हुई नाक मनुष्य की उन्नत जातियों का चिह्न है, हबशी आदि प्रसभ्य जातियों की नाक बहुत चिपटी होती है।

यौ०—नाक का बाँसा = दोनों नथुनों के बीच का परदा। नाक बिसनी = बिनती और गिड़गिड़हट। नाककटी या नाक-कटाई = अप्रतिष्ठा। बेइज्जती। नाकबंद = घोड़े की पूंजी।

मुहा०—नाक कटना = प्रतिष्ठा नष्ट होना। इज्जत जाना। नाक कटाना = प्रतिष्ठा नष्ट करना। इज्जत बिगड़वाना। नाक काटना = प्रतिष्ठा नष्ट करना। इज्जत बिगाड़ना। नाक काटकर खूतड़ों तले रख लेना = लोक तज्जा छोड़ देना। निलंज हो जाना। अपनी प्रतिष्ठा का ध्यान छोड़ लज्जाजनक कार्य करना। बेहयाई करना। नाक काग काटना = कड़ा दंड देना। नाक का धाँसा फिर जाना = नाक का बाँसा उड़ हो जाना जो मरने का लक्षण समझा जाता है। (किमी की) नाक का बाँह = वह जिसका किसी पर बहुत अधिक प्रभाव हो। सदा साथ रहनेवाला घनिष्ठ मित्र या मंत्री। वह जिसकी सलाह से सब काम हो। नाक की सीध में = ठीक सामने। बिना इधर उधर भुंके। नाक बिसना = दे० 'नाक रगड़ना'। नाक चढ़ना = क्रोध घाना। त्योगी बढ़ना। नाक चढ़ाना = (१) क्रोध से नथुने फुलाना। क्रोध की आकुल प्रकट करना। क्रोध करना। (२) धिन खाना। घृणा प्रकट करना। अवधि दिखाना। नापसंद करना। तुज्ज समझना। नाकें चने खबवाना = खूब तंग करना। हैरान करना। नाक चोटी काट कर हाथ देना = (१) कठिन दंड देना। (२) दुर्दशा करना। अपमान करना। नाक चोटी काटना = कड़ा दंड देना। नाक तक खाना = बहुत ठूसकर खाना। बहुत अधिक खाना। नाक तक भरना = (१) मुँह तक भरना (बरतन आदि की)। (२) खूब ठूसकर खाना। बहुत अधिक खाना। नाक न ही जाना = बहुत दुर्गंध

घाना। बहुत बदबू मालुम होना। नाक पर उँगनी रखकर बात करना = धीरतों का तरह बात करना। नाक पकड़ने दम निकलना = इतना दुर्बल रहना कि नू जान से भी मरने का डर हो। बहुत अशक्त होना। नाक पर गुस्मा होना = बात बात पर क्रोध घाना। चिड़चिड़ा स्वभाव होना। (कोई बात) नाक पर रख देना = तुरंत सामने रख देना। चट दे देना। (जब कोई अपने खरए या धीर। किसी पशु का कुछ बिगड़कर माँगता है तब उसके उत्तर में नाक के साथ लोग ऐसा कहते हैं)। नाक पर दीया न चढ़ घाना = मफनना प्राप्त करके घाना। गुन उजाल करने घाना। (श्री०)। बाँहें इधर से नाक पकड़ो वहाँ उधर से नाकें लग रह कहो या करो बात एक ही है। नाक पर गिड़गिड़हट न ना = नाक चिपटी होना। नाक इधर कि नाक उधर = हर तरह से एक ही मतलब। नाक पर चक्की न बैठना देना = (१) बहुत ही खरी प्रकृति होना। थोड़ा सा भी धीर या नुठि न सह सकता। (२) बहुत नाक रूत। जरा सा दाग न लगने देना। (३) किसी का थोड़ा निहोरा भी न लेना। जरा सा गहना भी न उठाना। (किमी की) नाक पर सुतारा लोड़ना = खूब तंग करना। नाक फटने लगना = अत्यंत दुर्गंध होना। नाक बैठना = नाक का चिपटा हो जाना। नाक बढ़ना = नाक में मांस और कोशों का मल निकलना। नाक बगना = नथनी आदि पहनाने के लिये नाक के छेद पर दाग लगा भी खड़ा या नाक भी बिलोड़ना = (१) नाक और प्रभाव का इष्ट करना। (२) धिनना और बढ़ना। नाक दि करना। नाक से दम करना या नाक में दम मलना = दम दाना। बहुत हैरान करना। बहुत बरसना। नाक मारना = घृणा प्रकट करना। धिन करना। नाक पर दम करना। नाक में नाक करना या नाक में तीर चढ़ना = धिनना करना। बहुत सनाता या हैरान करना। नाक में तीर होना = बहुत हैरान होना। बहुत बरसना जाना। नाक रगड़ना = बहुत गिड़गिड़हट और बिनती करना। मिनल करना = नाक के छेद का बच्चा = वह बच्चा जो शिशुओं की नथुन में से निकलता है। नाकों घाना = हैरान हो जाना। बहुत ना होना। नाक = नाक बनकर घाया हो पड़ना। नाकें धिनना = बहुत निहारी।—तुमो (शब्द०)। नाक में घोरना = नाक से स्वर निकलना। नाकें खाना। नाकें पोकना = बहुत प्रतिष्ठा पाना। घनदर देना। बड़ा इज्जतल बनना। नाकें सिकोड़ना = मजबूत नाकें प्रकट करना। धिनना। उ०—मुनि अथ तपस्वु नाकें विहारी।—तुलसी (शब्द०)।

२. कपाल के कोशा आदि का मज जो नाक में निकलता है। रेंट। नेटा।

क्रि० प्र०—घाना।—बहुता।

यौ०—नाक बिनकना = जोर से हसना। नाक का मल बाहर फेंकना।

३. चरणों में लगी हुई एक चिपटी लकड़ी जो घुटने के आगे निकलने हुए बेधन के मरे पर लगी रहती है और जिसे पकड़कर चरखा घुमाने हैं। ४. लकड़ी का वह अंश जिसपर चढ़ाकर बरतन खरादे जाते हैं। ५. प्रतिष्ठा की वस्तु। श्रेष्ठ वा प्रधान वस्तु। शोभा की वस्तु। जैसे—वे ही तो इन शहर की नाक है। ६. प्रतिष्ठा। इज्जत। मान। उ०—नाक पिनाकाहि मग सिधाई।—तुलसी (शब्द०)।

यो०—नाकवाला = इज्जतवाला।

मुहा० नाक रख लेना = प्रतिष्ठा की रक्षा कर देना।

नाक^१—संज्ञा स्त्री० [सं० नक्] मगर की जानि या एक जनजन्तु।

विशेष—मगर से हममें यह अंतर होता है कि यह उतनी लंबी नहीं होती, पर जोड़ी अधिक होती है। पूँछ भी इसका अधिक चिपटा होता है और उसपर घड़ा या लुगन नहीं होता। पूँछ में काँट स्पष्ट नहीं होते। यह जमान पर मगर से अधिक दूर तक जाकर जानवरों को खींच ला सकती है। मरुज तथा उसमें मिलनवाली और छटी छटी नारियाँ में यह बहुत पाई जाती है।

नाक^२—संज्ञा पुं० [सं०] १. स्वर्ग।

यो०—नाकनटी। नाकपती।

२. अंतरिक्ष। आकाश। ३. अस्थि की एक आघात। ४. सूर्य (यो०)।

नाक^३—वि० [सं० नन भकगु (नहुः)] कटहीन। प्रसन्न। मुखी (यो०)।

नाकचर—संज्ञा पुं० [सं०] देवता। मुर (यो०)।

नाकट^१—वि० [देश] १. नाक कटानवाला। साबक उतारनेवाला। उ०—पेटकट, नाकट, बलकट, नाकट, मुगलफोलेट नातीनुष।—बर्ण०, पु० १।

नाकड़ा—संज्ञा पुं० [हि० नाक + ड्रा (पत्य०)] नाक का एक रोग जिसमें नाक के नाँस के भीतर जलन और सूजन होती है और नाक पक जाती है।

नाकदर—वि० [फा० ना + दर + कट] १. जिसकी कोई नदर न हो। जिसकी कोई प्रतिष्ठा न हो। २. जो किसी को कदर करना न जानता हो। जिसमें गुणग्राह्यता न हो।

नाकदरो—संज्ञा स्त्री० [फा० ना + दर + कट (फय०)] नाकदर होने की निगा या भाव।

नाकवृक्ष—वि० [फा० ना + वृक्ष] कालोद्गम नामधर (यो०)।

नाकनटी—संज्ञा स्त्री० [सं०] स्वर्ग की नटी या मंदादिनी (यो०)। मुमन बराम मुर हर्नाहि निमना। नाकनटी नाचहि करि गाना। मानव. १। ३०६।

नाकनदी—संज्ञा स्त्री० [सं०] स्वर्ग की गंगा या मंदादिनी (यो०)।

नाकना^१—क्रि० सं० [सं० लङ्गा, हि० नाचना] १. लाँचना। चलाँचना करना। पार करना। डाँकना। उ०—प्रति तनु धनु रेखा, नेक दावी न जाकी।—केशव (शब्द०)। २. अतिक्रमण करना। पार करना। बढ़ जाना। मात कर

देना। उ०—चैत्ररथ कामवन नंदन की नाकी छवि, कहैं रघुराज राम काम को समारा है।—रघुराज (शब्द०)।

३. चारों ओर से घेरना।

नाकनाथ—संज्ञा [सं०] स्वर्गपति। इंद्र (यो०)।

नाकनायक—संज्ञा पुं० [सं०] ३० 'नाकनाथ' (यो०)।

नाकनारी—संज्ञा स्त्री० [सं०] घत्सरा (यो०)।

नाकपति—संज्ञा पुं० [सं०] ३० 'नाकनाथ' उ०—सपने होई भिखारि नार, रंक नाकपति होइ।—तुलसी श्रं०, पु० १०३।

नाकपृष्ठ—संज्ञा पुं० [सं०] स्वर्ग।

नाकबुद्धि—वि० [हि० नाक + बुद्धि] जिनका विवेक नाक ही तक हो। जो नाक से सूँघकर रंघ द्वारा ही भक्ष्यभक्ष्य, भेद बुद्धि आदि का विचार कर सके, बुद्धि द्वारा नहीं। तुच्छबुद्धि। धूर्ध्व बुद्धिवाला। मोछी समझ का। उ०—घपने पेट दियो तें उनकों नाकबुद्धि तिय सबै कहै रो।—मूर (शब्द०)।

विशेष—स्त्रियों की निंदा में प्रायः लोग कहते हैं कि उनकी बुद्धि नाक ही तक होती है, अर्थात् यदि उन्हें नाक न हो तो वे भक्ष्यभक्ष्य सब खा जायें।

नाकवेसरि^(पु)—संज्ञा स्त्री० [हि० नाक + वेसर] ३० 'नाकवेसर'। उ०—कासी जाय बरान बनक नाकवेसरि की।—तंद० श्रं०, पु० ४२०।

नाकर्दा—वि० [फा० नाक + र्दा] न किया हुआ।

यो०—नाकदर्कार—कोई विशेष काम करनेवाला। मननुभव। नाकदर्गुनाह^१—(१) न किया हुआ गुनाह। उ०—नाकदर्गुनाहों की भी हसरत की मिले दाद। या रब अगर इन कर्दा गुनाहों की सत्रा है।—गलिब०, पु० ४१६। (२) जिसके कमूर न किया हो। नाकदर्गुमं=३० 'नाकदर्गुनाह'।

नाकलोक—संज्ञा पुं० [सं०] नाक। स्वर्ग (यो०)।

नाकवनिता—संज्ञा स्त्री० [सं०] ३० 'नाकनटी'।

नाकवास—संज्ञा पुं० [सं०] स्वर्ग का वास (यो०)।

नाकपेधक—संज्ञा पुं० [सं०] इंद्र।

नाकसदू—संज्ञा पुं० [सं०] १. देव। देवता। २. गंधर्व (यो०)।

नाका^१—संज्ञा पुं० [हि० नाकना] १. किसी रास्ते आदि का वह छोर जिससे होकर लोग किसी ओर जाते मुड़ते, निकलते या कहीं घुसते हैं। प्रवेशद्वार। मुहाना। उ०—(क) हरीचंद धूम बिनु को रोके ऐसे टग को नाका।—भारतेंदु श्रं०, भा० २, पु० ६५०। २. वह प्रधान स्थान जहाँ से किसी नगर, बस्ती आदि में जाने के मार्ग का आरंभ होता है। गली या रास्ते का आरंभस्थान। जैसे,—नाके नाके पर सिपाही तैनाथ थे कि कोई जाने न पावे। उ०—अबकी होरी धूम मधेगी, गलिन गलिन घर नाके नाके।—घनानंद, पु० ५८०।

यो०—नाकाबंदी। नाकेदार।

३. नगर, दुर्ग आदि का प्रवेशद्वार। फाटक। निकलने पीठने का रास्ता। जैसे, शहर का नाका।

मुहा०—नाका खेंकना या बाँधना—जाने जाने का मार्ग रोकना।

४. वह प्रधान स्थान या चौकी जहाँ निगराही रखने, या किसी

प्रकार का महसूल आदि बसूल करने के लिये तैनात हो ।
५. सूई का छेद । ६. आठ गिरह लंबा जुलाहों का एक औजार जिसमें ताने के तागे बांधे जाते हैं ।

नाका^२—संज्ञा पुं० [सं० नक्र] मगर की जाति का एक जलजंतु ।
नक्र । दे० 'नाक' ।

नाकापगा—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'नाकनदी' [को०] ।

नाकाबंदी^१—संज्ञा स्त्री० [हिं० नाका + फा० बंदी] १. प्रवेश-
द्वार का अवरोध । किसी रास्ते से कहीं जाने या घुसने की
रुकावट । २. फाटक आदि का छेका जाना ।

नाकाबंदी^२—संज्ञा पुं० १. वह सिपाही जो फाटक या नाके पर
पहरे के लिये खड़ा किया गया हो । १. सिपाही । कास्टेबिल ।
चौकीदार । पहरदार ।

नाकाबिल—वि० [फा० ना + अ० काबिल] अयोग्य ।

नाकाम^१—वि० [फा०] १. जिसका अभीष्ट सिद्ध न हुआ हो ।
विफलमनोरथ । असफल । २. निराश । मादूस (को०) ।

नाकाम^२—वि० [हिं० ना + काम] [संज्ञा स्त्री० नाकामी] निरर्थक ।
बेकार । व्यर्थ । उ०—उनके साहस को नाकाम बना दिया
था ।—प्रेम० मोर मोर्की, पृ० २ ।

नाकामयाब—वि० [फा०] [संज्ञा स्त्री० नाकामयाबी] १. विफल-
मनोरथ । ३. अनुत्तीर्ण । असफल (को०) ।

नाकारा—वि० [फा० नाकारह्] १. निकम्मा । खराब । बुरा ।
निष्प्रयोजनी । २. व्यर्थ । बेकार (को०) ।

नाकिस—वि० [अ० नाकिस] बुरा । खराब । निकम्मा ।
क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

नाकिह—संज्ञा पुं० [अ०] विवाह करनेवाला । निकाह करनेवाला
(को०) ।

नाकी—संज्ञा पुं० [सं० नाकिन] (नाक या स्वर्ग में रहनेवाला)
देवता । उ०—जान काशिद बिबेक नाकी बने ।—तुरसी० श०,
पृ० २१ ।

नाकीब—संज्ञा पुं० [अ० नाकीब] राजा, महाराजाधों या श्रेष्ठ
पुरुषों की सवारी के आगे विरुद का उद्घोष करनेवाला ।
चौबदार । छड़ीदार । दरबार में मुलाकातियों को पुकारकर
उपस्थित करनेवाला । उ०—छरी दरबार चौपदार आसा
लिए निकल नाकीब सब हाँक पारी ।—सं० दरिया, पृ० ७८ ।

नाकु—संज्ञा पुं० [सं०] १. दीमक की मिट्टी का ढूँह । बेमोट ।
वरमीक । २. मोटा । टीला । ३. पर्वत । पहाड़ । ४. एक
भुनि का नाम ।

नाकुल^१—वि० [सं०] नेबले के ऐसा । नेबला संबंधी ।

नाकुल^२—संज्ञा पुं० १. नकुल की संतति । २. रास्ता । ३. सेमर
का भूमला । ४. नव्य । ५. यवतित्ता ।

नाकुलक—वि० [सं०] नकुल का पूजक (को०) ।

नाकुलि—संज्ञा पुं० [सं०] नकुल का वंशज । (को०) ।

नाकुली^१—वि० [सं० नकुल] १. नेबला संबंधी । २. नकुल नामक
पठित का बनाया हुआ । जैसे, नाकुली बालिहोज ।

नाकुली^२—संज्ञा स्त्री० [सं० नकुल] १. एक प्रकार का कंद जो सब
प्रकार के विषों, विषेपकर सर्प के विष को दूर करता है ।

विशेष—नकुली दो प्रकार का होता है । एक नाकुली दूसरा
गंधनाकुली । गण दोनों का एक गा है । गंधनाकुली कुछ
मच्छी होती है ।

पर्या०—नागसुगंधा । नकुलेष्टा । भुजंगाक्षी । सर्पांगी । विष-
नाशिनी । रक्तपत्रिका । ईश्वरी । मुरगा ।

२. यवतित्ता लता । ३. रास्ता । ४. नव्य । चविका । ५. श्वेत
कंदकारी । सफेद भटकेया ।

नाकु—संज्ञा पुं० [सं० नक्र] घड़ियाल या मगर नामक जलजंतु ।

नाकूस—संज्ञा पुं० [अ० नाकूस] शख । बंबू । उ०—तेरा दम
भरते हैं हिंदू अगर नाकूस बजता है । तुम्हें ही शख ने प्यारे
अर्जों देकर पुकारा है ।—आग्नेदु प्र०, भा० २, पृ० ८५१ ।

नाकेदार^१—संज्ञा पुं० [हिं० नाका + फा० दार (प्रत्य०)] १. नाके
या फाटक पर रहनेवाला सिपाही । २. वह प्रफसर या
कर्मचारी जो घाने आने के प्रधान प्रधान स्थानों पर किसी
प्रकार का कर महसूल आदि बसूल करने के लिये तैनात हो ।

नाकेदार^२—वि० जिसमें नाका या छेद हो । जैसे, नाकेदार सूई ।

नाकेबंदी^१—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'नाकाबंदी' ।

नाकेबंदी^२—संज्ञा पुं० दे० 'नाकाबंदी' ।

नाकेश—संज्ञा पुं० [सं०] (स्वर्ग के अधिपति) इंद्र ।

नाकेश्वर—संज्ञा पुं० [सं०] इन्द्र (को०) ।

नाक्षत्र—वि० [सं०] नक्षत्र संबंधी । जैसे, नाक्षत्र दिन । नाक्षत्र
मास, नाक्षत्र वर्ष ।

विशेष—जितने काल में चंद्रमा २७ नक्षत्रों पर एक बार घूम
जाता है उसे नाक्षत्र मास कहते हैं । मास का प्रथम दिन वह
समय माना जाता है जिसमें चंद्रमा अश्विनी नक्षत्र पर रहता
है । अश्विनी नक्षत्र पर चंद्रमा ६० दंड, भरणी पर ६३
दंड, इसी प्रकार सब नक्षत्रों पर कुछ काल तक रहता है ।
फालित ज्योतिष में आयुगणना आदि के लिये नाक्षत्र दिन
मास आदि निकाले जाते हैं ।

नाक्षत्रिक—संज्ञा पुं० [सं०] नाक्षत्र मास ।

नाक्षत्रिकी—वि० स्त्री० [सं०] नक्षत्र संबंधी । जैसे, नाक्षत्रिकी
दशा । दे० 'दशा' ।

नाख—संज्ञा स्त्री० [फा० नाशपाती] नाशपाती नाम का फल ।

नाखना(पुं०)—क्रि० सं० [सं० नष्ट] १. नाश करना । नष्ट कर
देना । बिगाड़ देना । उ०—(क) जे नखचंद्र भजन खल
नाखत रमा हृदय जेहि परसत ।—सूर (शब्द०) । (ख)
जो हरिचरित ध्यान उर राख । आनंद सदा दुरित दुख नाखे ।
—सूर (शब्द०) । २. फेंकना । गिराना । डालना । उ०—
जो उर भारल ही भरपी शृंगु मालती माल बहे मग नाखे ।—
(शब्द०) ।

नाखना^२—क्रि० सं० [हिं० नाकना] । उत्खनन करना । उ०—
(क) नील नल धंगद सहित आमवंत हनुमंत से अनंत जिन

नीरनिधि नाहयोई।—केनव (शब्द०) । (ख) पाछे ले सीय हरी विधि मर्याद राखी । जो पै दमकध बनी रेखा क्यों न नाखी । मूर (शब्द०) ।

नाखलफ—वि० [फा० ना + प्र० खलफ] जो लड़का बाप के सदाचार पर न चले । कपून । उ०—बज्रधर हुजूर नाखलफ है, धीर क्या कहा, मुदा सानवें दुश्मन को भी ऐसी घोषाव न दे ।—काया०, पृ० २१३ ।

नाखुन—संज्ञा पु० [फा० नाखुन] नग [को०] ।

यो—नाखुनतराश - नहयो ।

नाखुना—संज्ञा पु० [फा० नाखुना] १. ग्रन्थ का एक रोग जिसमें एक लाल भिल्ली सी ग्रन्थ की सफेदी में पैदा होती है और बढ़कर पुतली को भी ढक लेती है । २. मोटे लाल डोरे जो घोड़ों की ग्रन्थ में पैदा हो जाते हैं । ३. चोरा बाघने का नोकदार अंगुष्ठनाम ।

नाखुर—संज्ञा पु० [हि०] दे० नखुर ।

नाखुश वि० [फा० नाश] अप्रसन्न । नाराज ।

यो—नाखुशगवार अर्थात्कर । नाखुशगवारी = (१) अप्रसन्नता । (२) अरुचि ।

नाखुशो—संज्ञा श्री० [फा० नाखुशो] १. अरुचि । नाराजी । २. क्रोध । गुस्मा (को०) । ३. बीमारी (को०) ।

नाखून—संज्ञा पु० [फा० नाखून] १. उंगलियों के छोर पर चिपटे किनारे वा नोक को तब तक निकली हुई कड़ी वस्तु । नख । नैह ।

विशेष नाखून वास्तव में टोप और कड़ा ब्रामा हुआ उपरी त्वक् है । पणुओं के सींग, गुर आदि भी इसी प्रकार ऊपरी त्वक् की जमावट से बनते हैं ।

मुहा०—नाखून लेना - नाखून काटकर धलज करना । नाखून नीले होना - मरने के लक्षण दिखाई पड़ना । मृत्यु के चिह्न प्रकट होना । ऐसे ऐसे नाखून में पड़े हैं - ऐसे ऐसे बहुत देखे गये हैं । ऐसी की गयीं नहीं ।

२. चौपायों के टाप या खुर का ब्रामा हुआ किनारा ।

मुहा० नाखून लेना = (१) नागना काटन । (२) धोड़े का ठोकर लेना ।

नाखूना—संज्ञा पु० [फा० नाखूना] १. दे० 'नाखून' । २. गबरून की तरह का एक कपड़ा जिसका ताना सफेद होता है और बाने में अनेक रंग की धारियाँ होती हैं । यह आंगरे में बहुत बनता है । ३. बड़ियों की बहुत पतली छलानी जिससे बारीक काम किया जाता है ।

नाखुवाँदा—वि० [फा० नाखुवाँदा] १. निरक्षर । अनपढ़ । अशिक्षित । उ०—साहम मेरा यह दावा जरूर है कि मेरे छद तोसे ढोले नहीं होते । फिर भी तो नाखुवाँदा ही ।—कुंकुम (सू०), पृ० १६ । २. अनिमंत्रित । अनाहूत ।

नाग - संज्ञा पु० [सं०] [श्री० नागिन] १. सर्प । साँप ।

मुहा०—नाग खेलना = ऐसा कार्य करना जिसमें प्राण का भय हो । खतरे का काम करना ।

२. कद्रू से उत्पन्न कश्यप की मंत्रान जिनका स्थान पाताल लिखा गया है ।

विशेष—वराहपुराण में नागों की उत्पत्ति के संबंध में यह कथा लिखी है । गृष्टि के आरंभ में कश्यप उत्पन्न हुए । उनकी पत्नी कद्रू से उन्हें ये पुत्र उत्पन्न हुए—अनंत, वासुकि, कंबल, कर्कोटक, पद्म, महापद्म, शंख, कुलिक और अपराजित । कश्यप के ये सब पुत्र नाग कहलाए । इनके पुत्र, पीत्र बहुत ही क्रूर और विषधर हुए । इनसे प्रजा क्रमशः क्षीण होने लगी । प्रजा ने जाकर ब्रह्मा के यहाँ पुकार की, ब्रह्मा ने नागों को बुलाकर कहा, जिस प्रकार तुम हमारी गृष्टि का नाश कर रहे हो उसी प्रकार माता के बाप से तुम्हारा भी नाश होगा । नागों ने डरने डरते कहा—महाराज, आप ही ने हमें कृष्टि और विषधर बनाया, हमारा क्या अपराध है ? अब हम लोगों के रहने के लिये कोई अलग स्थान बतलाइए जहाँ हम लोग सुख से पड़े रहें । ब्रह्मा ने उनके रहने के लिये पाताल, वितल और सुतल ये तीन स्थान या लोक बतला दिए ।

एक बार कद्रू और विनता में विवाद हुआ कि सूर्य के धोड़े की पूँछ काली है या सफेद । विनता सफेद कहती थी और कद्रू काली । अंत में यह ठहरी कि जिसकी बात ठीक न निकले वह दूसरी की दामो होकर रहे । जब कद्रू ने अपने पुत्रों से यह बात कही तब उन्होंने कहा कि पूँछ तो सफेद है, अब क्या होगा ? अंत में जब सूर्य निकला तब उसके सब नाग उच्चैःश्रवा की पूँछ से लिपट गए जिससे वह काली दिखाई पड़ी । जिन नागों ने पूँछ को काला कहना अस्वीकार किया उन्हें कद्रू ने नष्ट होने का शाप दिया जिसके अनुसार वे जनमेजय के सर्पयज्ञ में नष्ट हुए ।

पुराणों में बहुत से नागों के नाम दिए हुए हैं । पर उनमें मुख्य पाँच हैं—अनंत, वासुकि, पद्म, महापद्म, तक्षक, कुलीर, कर्कोटक और शंख । ये अष्टनाग और इनका कुल अष्टकुल कहलाता है ।

३. एक देश का नाम । ४. उस देश में बसनेवाली जाति ।

विशेष—ऐतिहासिकों के अनुसार 'नाग' जाति की एक शाखा थी जो हिमालय के उप पार रहती थी । तिब्बतवाले अपने को नागवंशी और अपनी भाषा को नाग भाषा कहते हैं । जनमेजय की कथा से पूर्ववंशियों और नागवंशियों के वैर का आभास मिलता है । यह वैर बहुत दिनों तक चलता रहा । जब सिकंदर भारत में आया तब पहले पहले उससे तक्षशिला का नागवंशी राजा मिला जो पंजाब के पौरव राजा से द्रोह रखता था । सिकंदर के साथियों ने तक्षशिला के राजा के यहाँ बड़े बड़े साँप पले देखे थे जिनकी पूजा होती थी । विशेष—दे० 'नागवंश' ।

५. एक पर्वत ।—(महाभारत) । ६. हाथी । हस्ति । ७. राँगा । सीसा (धातु) ।

विशेष—आवप्रकाश में लिखा है कि वासुकि एक नागकन्या की देव मोहित हुए । उनके स्खलित वीर्य से इस धातु की उत्पत्ति हुई ।

मुहा०—नाग फूँटना = घातु फूँटना ।

१. एक प्रकार की घास । १०. नागकेसर । ११. पुन्नाग । १२. मोथा । नागरमोथा । १३. पान । तांबूल । १४. नागबायु । १५. ज्योतिष के करणों में से तीसरे करण का नाम । १६. बादल । १७. घाट की संख्या । १८. दुष्ट या क्रूर मनुष्य । १९. अश्वेत्या नक्षत्र ।

नागकंद—संज्ञा पुं० [सं० नागकन्द] हस्तिकंद ।

नागकन्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'नागकन्या' [स्त्री०] ।

नागकन्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] नाग जाति की कन्या ।

विशेष—पुराणों में नागकन्याएँ बहुत सुंदर बतलाई गई हैं ।

नागकर्ण—संज्ञा पुं० [सं०] १. हाथी का कान । २. एरंड । घंडी का पेड़ ।

नागकिंजल्क—संज्ञा पुं० [सं० नागकिञ्जल्क] नागकेसर ।

नागकुमारिका—संज्ञा स्त्री० [स्त्री०] १. गुल्म । गिलोय । २. मजीठ । मंजिष्ठा ।

नागकेसर—संज्ञा स्त्री० [सं० नागकेसर या नागकेसर] एक सोघा सबाबहार पेड़ जो देखने में बहुत सुंदर होता है ।

विशेष—यह द्विदल अंकुर से उत्पन्न होता है । पत्तियाँ इसकी बहुत पतली और घनी होती हैं, जिसमें इसके नीचे बहुत अच्छी छाया रहती है । इसमें चार दलों के बड़े और सफेद फूल गरमियों में लगते हैं जिनमें बहुत अच्छी मधक होती है । लकड़ी इसकी इतनी कड़ी और मजबूत होती है कि काटनेवाले की फुल्हादियों की चारों मुड़ मृत्तवानी है; इसी से इसे वज्रकाठ भी कहते हैं । फलों में दो या तीन बीज निकलते हैं । हिमालय के पूरबी भाग, पूरबी बंगाल, आसाम, बरमा, दक्षिण भारत, सिंहल आदि में इसके पेड़ बहुतायत से मिलते हैं । नागकेसर के सूखे फूल औषध, मसाले और रंग बनाने के काम में आते हैं । इनके रंग से प्रायः रेशम रंगा जाता है । सिंहल में बीजों से गाढ़ा, पीला तेल निकालते हैं, जो दीया जलाने और दवा के काम में आता है । मदराम में इस तेल को वातरोग में भी मलते हैं । इसकी लकड़ी से अनेक प्रकार के सामान बनते हैं । लकड़ी ऐसी अच्छी होती है कि केवल हाथ से रंगने से ही उसमें यारनिश की सी चमक आ जाती है । वैद्यक में नागकेसर कपेली, गरम, रुखी, हलकी तथा ज्वर, खुजली, दुर्गंध, कोढ़, विष, प्यास, मनली और पसीने को दूर करनेवाली मानी जाती है । खूनी बवामोर में भी वैद्य लोग इसे देते हैं । इसे नागचंपा भी कहते हैं ।

नागकेसर—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का मुड़ लोहा या फीलाद [स्त्री०] ।

नागखंड—संज्ञा पुं० [सं० नागखण्ड] पुराणानुसार जंबूद्वीप के प्रंतर्गत भारतवर्ष के नौ खंडों या भागों में से एक ।

नागगंधा—संज्ञा स्त्री० [सं० नागगन्धा] नकुलकंद ।

नागगति—संज्ञा स्त्री० [सं०] किसी ग्रह की वह गति जो उस समय होती है जब वह अश्विनी, भरणी और कृत्तिका नक्षत्र में रहता है (ज्योतिष) ।

नागगर्भ—संज्ञा पुं० [सं०] सिंदूर ।

नागचंपा—संज्ञा पुं० [सं० नागचम्पक] नागकेसर का पेड़ ।

नागचूड़—संज्ञा पुं० [सं० नागचूड] शिव । महादेव ।

यौ०—नागचूड़ज = (१) सिंदूर । (२) रांगा ।

नागच्छत्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] नागदंती ।

नागज—संज्ञा पुं० [सं०] १. सिंदूर । २. बंग ।

नागजिह्वा—संज्ञा स्त्री [सं०] १. अर्जुनमूल । २. शारिवा ।

नागजिह्विका—संज्ञा स्त्री० [सं०] मनःशिला । मैनसिल ।

नागजीवन—संज्ञा पुं० [सं०] बंग । फूँका दुधारा रांगा ।

नागम्भागु—संज्ञा पुं० [हि० नाग + भाग] अहिर्बुधिन । अफीम ।

नागदंत—संज्ञा पुं० [सं० नागदन्त] १. हाथीदंत । २. दीवार में गड़ी हुई खूंटो ।

नागदंतक—संज्ञा पुं० [सं० नागदन्तक] दे० 'नागदंत' ।

नागदंतिका—संज्ञा स्त्री० [सं० नागदन्तिका] बुधिकाली का पोधा ।

नागदंती—संज्ञा स्त्री० [सं० नागदन्ती] लखी नामक गंधव्य ।

नागदमन—संज्ञा पुं० [सं०] नागबोने का पोधा ।

नागदमनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] नागबोने का पोधा ।

नागदला—संज्ञा पुं० [सं० नाग + दल] एक पेड़ जो बंगाल, आसाम, बरमा, मालाबार और सिंहल में होता है । बंगाल में इसे 'पोधुर' कहते हैं ।

विशेष—सुंदर वन से इसकी लकड़ी आती है जो बहुत कड़ी और मजबूत होती है । यह पानों में साग में भी अधिक दिनों तक रह सकती है । इससे गाड़ी के पहिए, नाव और अनेक प्रकार के सामान बनते हैं । इसके बीजों का गाढ़ा तेल जलाने के काम में आता है ।

नागदलोपम—संज्ञा पुं० [सं०] पर्य फल । फालगु ।

नागदवनि(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० नागदमनी] दे० 'नागदौना' व०—नागदवनि जरजरी राम सुभिरन बगी भवत रेदास चेत-नियेता । —२० बानी, पृ० २० ।

नागदुमा—वि० [सं० नाग + द्रुम] (हाथी) जिसकी पूँछ का सिरा सर्प के फन की तरह का हो ।

विशेष—ऐसा हाथी ऐसी समझा जाता है ।

नागदौना—संज्ञा पुं० [सं० नागदमन] १. छोटे आकार का एक पहाड़ी पेड़ जो सिंधु और हजारे में बहुत मिलता है ।

विशेष—इसकी लकड़ी भीतर में सफेद और मुलायम होती है और विशेषतः छड़ियाँ बनाने के काम में आती है । लोगों का विश्वास है कि इस लकड़ी का पाम नाश नहीं आते ।

२. दे० 'नागदौना' ।

नागदौना—संज्ञा पुं० [सं० नागदमन] १. एक पोधा जिसमें शलियाँ और टहनियाँ नहीं होती ।

विशेष—इसके जड़ के ऊपर से ग्वारपाटे की सी पत्तियाँ चारों ओर निकलती हैं । ये पत्तियाँ हाथ हाथ भर संबी और दो हाई अंगुल चौड़ी होती हैं । ग्वारपाटे की पत्तियों की तरह इन

पत्तियों के भीतर गुदा नहीं होता। इसमें इनका दन्त बहुत मोटा नहीं होता। पत्तियों का रंग गहरा हरा होता है पर बीच बीच में हल्की पत्तियाँ भी होती हैं। नागदीने की जड़ कंद के रूप में नीचे की ओर जाती है। वैद्यक में नागदीना चरपरा, कडुमा, हम्का, त्रिदोषनाशक, कोष्ठ को शुद्ध करने-वाला, विपनाशक तथा सूदन, प्रमेह और ज्वर को दूर करनेवाला माना जाता है।

पर्या०—नागदमनी। बला। मोटा। विपापदा। नागपत्रा। महा-योगेश्वरी। जादवनी। वृक्का। जादवी। मलधनी। दुर्धर्षा। दुःसहा। विफला। ननकुमारी। श्रीकदा। कंदशालिनी।

२. एक प्रकार का बूझा और बंटीना दीना जिसके पेड़ लंबे लंबे होते हैं।

विशेष—इसकी मूली पत्तियों लोग कागजों और कपड़ों की तहों के बीच उन्हे कीड़ों से बचाने के लिये रखते हैं।

नागहु - संज्ञा पु० [सं०] दे० 'नागद्रुम' [को०]।

नागद्रुम - संज्ञा पु० [सं०] १. सेंदूर। २. नागफनी।

नागद्वीप—संज्ञा पु० [सं०] विष्णुपुराण के अनुसार भारतवर्ष के नौ भागों में से एक।

नागधर - संज्ञा पु० [सं०] महादेव। शिव।

नागध्वनि - संज्ञा स्त्री० [सं०] एक संकर रागिनी जो मल्लार और केदार वा मूढ़ा अथवा काण्ठदे और पारण के योग से बनी है।

विशेष—इसका मरगम इस प्रकार है नि सा ऋ ग म प।

नाग नक्षत्र - संज्ञा पु० [सं०] अश्लेषा नक्षत्र।

नागनग(पु)—संज्ञा पु० [सं०] गजमुक्ता। उ०—निज गुण घटत न नागनग परस्मि न पहिरत कोन। गुनमी पशु भूषण किए गुंजा बड़े न मोल।—गुनमी (अ० ८०)।

नागनामक—संज्ञा पु० [सं०] रीगा। टीन [को०]।

नागनामा—संज्ञा स्त्री० [सं०] नागनामम्। तुलसी [को०]।

नागनायक—संज्ञा पु० [सं०] १. आश्लेषा नक्षत्र। २. नागों में अग्रत आदि आठ प्रमुख भर्ष [को०]।

नागनासा—संज्ञा स्त्री० [सं०] हाथी का शृङ्ग [को०]।

नाननिर्यूह—संज्ञा पु० [सं०] दीवार की बड़ी गुंटी [को०]।

नागपंचमी—संज्ञा स्त्री० [सं०] नागपंचमी। गावत मुदी पंचमी।

विशेष—इस तिथि को नागदेवता की पूजा होती है। पुराण में लिखा है कि इस पंचमी तिथि को हो नागों की प्रज्ञा ने शाप और वर दिया था। इसमें गन्त उन्हें अत्यंत प्रिय है। इस तिथि को नर की पूजा भारत में प्रिय प्रायः सर्वत्र करती है।

नागपति—संज्ञा पु० [सं०] १. सर्पों का राजा वासुकि। २. हाथियों का राजा ऐरावत।

नागपत्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] नागदमनी।

नागपत्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] पदार्थ नाम का कंद।

नागपद्—संज्ञा पु० [सं०] संभोग का एक आसन [को०]।

नागपर्णी—संज्ञा स्त्री० [सं०] पान।

नागपाश—संज्ञा पु० [सं०] १. वरुण के एक अस्त्र का नाम जिससे शत्रुओं को बांध लेते थे। २. शत्रु को बांधने के लिये एक प्रकार का बंधन या फंदा।

विशेष—वाल्मीकि रामायण में मेघनाद का हृद से इस अस्त्र को प्राप्त करना लिखा है। पुराणों में भी इसका उल्लेख है। तंत्र में लिखा है कि ढाई फेरे के बंधन को नागपाश कहते हैं।

३. नागों का पाश या बंधन (को०)।

नागपाशक—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक रतिबंध [को०]।

नागपुर—संज्ञा पु० [सं०] १. भोगवती नाम की नगरी जो पाताल में मानी गई है। २. हस्तिनापुर। ३. अग्निपुराण के अनुसार एक स्थान। ४. मध्य प्रदेश का एक नगर।

विशेष—अग्निपुराण में लिखा है कि जब गंगा महादेव जी की जटा से निकल हेमकूट, हिमालय आदि को लाँघकर आई तब स्वर्गल नाभक एक दानव पर्वत के रूप में मार्ग रोकने के लिये खड़ा हो गया। भगीरथ ने कौशिक को प्रसन्न करके उसमें एक नागवाहन प्राप्त किया जिसने उस पर्वतरूपी दैत्य को विदीर्ण किया। जिस स्थान पर यह दैत्य विदीर्ण किया गया, उसका नाम नागपुर रखा गया।

नागपुष्प—संज्ञा पु० [सं०] १. नागकेसर। २. पुन्नाग का पेड़। ३. चंपा।

नागपुष्पफला—संज्ञा स्त्री० [सं०] पेठा।

नागपुष्पिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. पीली जूही। २. नागदीना।

नागपुष्पी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. नागदमनी। २. मेडासिंगी।

नागपूत—संज्ञा पु० [सं०] नागपुत्र। कचनार की जाति की एक लता जो सिक्किम, बंगाल और बरमा में बहुत होती है।

नागफनी—संज्ञा स्त्री० [हि नाग + फनी] १. शूहर की जाति का एक पौधा जिसमें दहनियाँ नहीं होती।

विशेष—इस पौधे में सर्प के फन के आकार के गूदेदार मोटे दन्त एक दूसरे के ऊपर निकलते चले जाते हैं। ये दन्त कुछ नीलावल लिए हरे और कटिदार होते हैं। कटि बड़े विचले होते हैं। उनके चुभने पर बड़ी पीड़ा होती है। दन्तों के मरे पर पीले रंग के बड़े बड़े फूल लगते हैं। फूल का निचला भाग छोटी गुल्ली के रूप का होता है जिसमें लाल रंग का रम मरा रहता है। पही गुल्ली फूलों के झड़ जाने पर बड़कर गोल फल के रूप में हो जाती है। ये फल खाने में खटमोठे होते हैं और दवा के काम आते हैं। अचार और तरकारी भी इन फलों की बनती है। नागफनी के पौधे किसी स्थान को घेरने के लिये बाड़ों में लगाए जाते हैं। काँटों के कारण इन्हें पार करना कठिन होता है।

२. सिधे के आकार का एक बाजा जिसका प्रचार नेपाल में है।

३. कान में पढ़ने का एक गहना। उ०—बिकट भृकुटि सुखमानिधि ध्यान कल कपोल काननि नगफनियौ।—तुलसी (अ० ८०)। ४. नागे साधुओं का कीपीव।

नागफल—संज्ञा पुं० [सं०] परबल ।

नागफाँस—संज्ञा पुं० [सं० नागपाश] दे० 'नागपाश' । उ०—नाग-
फाँस लीने घट भीतर, मूसनि सब जग भारी ।—घट०, पृ०
३६२ ।

नागफेन—संज्ञा पुं० [सं०] अफीम । अहिफेन ।

नागबंध—संज्ञा पुं० [सं० नागबन्ध] १. नाग या सर्प का बंधन ।
२. एक वृत्त का नाम [को०] ।

नागबंधक—संज्ञा पुं० [सं० नागबन्धक] हाथी फँसानेवाला [को०] ।

नागबंधु—संज्ञा पुं० [सं० नागबन्धु] पोपल का पेड़ ।

नागबल—संज्ञा पुं० [सं०] भीम का एक नाम ।

विशेष—भीम को दस हजार हाथियों का बल था, इससे यह
नाम पड़ा । यह बल उन्हें उस समय प्राप्त हुआ था जब
दुर्योधन ने उन्हें बिच देकर जल में फेंक दिया था और वे
नागलोक में जा पहुँचे थे । नागलोक में गिरने पर नागों ने
उन्हें खूब डमा निमसे स्थावर विष का प्रभाव उतर गया और
वे स्वस्थ होकर उठ बैठे, वहाँ पर कुंती के पिता के मामा ने
भीम को पहचाना । अंत में वामुकि को कृपा से उन्हें उस कुंड
का रसपान करने की भिना जिनके पीने से हजारों हाथियों
का बल हो जाता है ।

नागबल्ला—संज्ञा स्त्री० [सं०] गंगेरन । गुनगुगु ।

नागबेल—संज्ञा स्त्री० [सं० नागबेली] १. पान की बेल । पान । २.
कोई सर्पाकार पेल जो किसी वस्तु पर बनाई जाय । ३.
बाड़े की बाड़ी तिरछी बान ।

नागभगिनो—संज्ञा स्त्री० [सं०] वामुकि की बहन अरुकाश ।

नागभिद्—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का भारी सर्प ।

नागभूषण—संज्ञा पुं० [सं०] शिव । रुद्र [को०] ।

नागमंडलिक—संज्ञा पुं० [सं० नागमण्डलिक] १. साँप खेलेनेवाला ।
सँपेरा । मसारी । २. साँप पकड़नेवाला [को०] ।

नागमती—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक लता का नाम ।

नागमरोह—संज्ञा पुं० [हिं० नाग + मरोहना] कुशी का एक पंच
जिसमें जोड़ को अपनी गर्दन के ऊपर ले या कमर पर से एक
हाथ से पसीटते हुए गिराते हैं ।

विशेष—यह पंच धोबी पछाड़ ही जैसा होता है, अंतर इतना
होता है कि धोबी पछाड़ में दोनों हाथों से जोड़ को पीठ पर
से पसीटते हुए फेंकते हैं ।

नागमल्ल—संज्ञा पुं० [सं०] ऐरावत ।

नागमाता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. नागों की माता, कद्रू ।
२. सुरसा ।

विशेष—रामायण में लिखा है कि जिस समय हनुमान समुद्र
खींच रहे थे, देवताओं ने उनके बल की परीक्षा के लिये नागों
की माता सुरसा को भेजा था ।

२. मनःशिला । मैनसिल । ३. मनसा देवी । (ब्रह्मवैवर्त पु०) ।

४-४२

नागमार—संज्ञा पुं० [सं०] केशराज । काला भंगरा । कुरुर भंगरा ।

नागमुख—संज्ञा पुं० [सं०] गणेश ।

नागयष्टि—संज्ञा स्त्री० [सं०] लकड़ी या पत्थर का वह खंभा जो
पुष्करिणी या तालाब के बीचोबीच जल में खड़ा किया
जाता है । लाट । लट्टा ।

विशेष—हयग्रीव और वृहस्पति के अनुसार यह लाट बेल,
पुष्पाग, नागकेशर, चंपा या बरने की लकड़ी की होनी चाहिए ।
लकड़ी सीधी और गुडोल हो । जन्मशयोल्लसर्गत्व में लिखा
है कि पहले आठों नागों के नाम अलग अलग पत्रों पर
लिखकर जल से भरे कुंडों में डाल देने चाहिए । फिर जल
को खूब हिलाकर एक पत्र हाथ में उठा लेना चाहिए । जिस
नाग का नाम उस पत्र पर हो वही बनयाए हुए जन्मशय का
अधिपति होगा । उस नाग की पायस नेत्र में पूजा करके
तब नागयष्टि की स्थापना करनी चाहिए ।

नागरंग—संज्ञा पुं० [सं० नागरङ्ग] नारंगी ।

नागर^१—वि० [सं०] [स्त्री० नागरी] १. नगर संबंधी । २. नगर
में रहनेवाला या बोला जानेवाला । ३. नगर में उत्पन्न या
घोषित [को०] । ४. नगर में बोली जानेवाली या बोला
जानेवाला [को०] । ५. सभ्य । शिष्ट । नस [को०] । ६. चतुर ।
सयाना [को०] । ७. दुष्ट । भूत । बुरा । जिसमें नगर संबंधी
बोध हों [को०] । ८. नामहीन [को०] ।

नागर^२—संज्ञा पुं० १. नगर में रहनेवाला भवृष्य । २. चतुर आदमी ।
सभ्य, शिष्ट और निपुण व्यक्ति । ३. देवर । ४. शौन । ५.
नागरमोषा । नारंगी । ७. गुजरात में रहनेवाले ब्राह्मणों की
एक जाति । ८. व्याख्याता [को०] । ९. क्लान्ति । श्रम ।
कठिनाई [को०] । १०. मोक्ष की इच्छा [को०] । ११. एक
रतिबंध [को०] । १२. नागरी लिपि प्रथवा अक्षर [को०] ।
१३. राजकुमार जो युद्धरत हो [को०] । १४. किसी नक्षत्र का
दूसरे नक्षत्र से विरोध (ज्योतिष) [को०] । १५. ज्ञान या
आनकारी का अस्वीकार [को०] । १६. वामुक्ला की तीन
पद्धतियों में से एक जो चतुरस्र या चतुष्कोण होती है [को०] ।

नागर^३—संज्ञा पुं० [सं० नाग (=साँप)] दीवार का उद्घावन जो
अमीन की तंगी के कारण होता है ।

नागरक^१—संज्ञा [सं०] १. शिल्पी । कारीगर । २. चोर ।
३. नगर का शासनकर्ता । नागरिक प्रणिति [को०] । ४.
नागरिक । नगरवासी [को०] । ५. नक्ष या अनुकूल
नायक [को०] । ६. नगर के दोनों से युक्त व्यक्ति [को०] । ७.
नगरव्यवस्था करनेवाले राजपुरुषों या पुलिस का प्रधान
[को०] । ८. एक रतिबंध [को०] । ९. एक दूसरे के विरोधी
नक्षत्र [को०] ।

नागरक^२—वि० १. नगर में उत्पन्न या घोषित । २. नक्ष । अनुकूल ।
३. विदग्ध । चतुर [को०] ।

नागरक्त—संज्ञा पुं० [सं०] १. सर्प या हाथी का रक्त । २. सिद्धर ।

नागरधन—संज्ञा पुं० [सं०] नागरमोषा ।

नागरता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. नागरिकता । शहरातीपन । २. नगर का शीत व्यवहार । मरपता । उ०—सब हँसत करतान दे नागरता के नाब । गयो गरब गुन को सबे बसे गँवाये गीब ।—हिदागी (शब्द०) । ३. चतुराई ।

नागरबेल—संज्ञा स्त्री० [सं० नागरवल्ली] पान की बेल । पान । तानिल ।

नागरमुस्ता—संज्ञा स्त्री० [सं०] नागरमोषा ।

नागरमोषा—संज्ञा पुं० [सं० नागरमुस्ता] एक प्रकार का मृग या घास ।

विशेष इसमें श्मश्रु उधर कैली या निकली हुई टहनियाँ नही होती, बड़ के पास चारों ओर सीधी लंबी पत्तियाँ निकलती हैं जो शर या मूत्र की गति को सी मोड़दार और बहुत कम चौड़ाई की होती हैं । पत्तियों के बीचोबीच एक गीधी सीक निकलती है । त्रिक के सिरे पर हूँ की टोम मँबरी होती है । यह हाथ भर तक ऊँचा होता है और तालों के किनारे प्रायः मिलता है । इसकी जड़ सूत में फँसी हुई गाँठों के रूप की ओर सुगंधित होती है । नागरमोषे की जड़ मसाले और औषध के काम में आती है । वैद्यक में नागरमोषा तरपरा, कसैला, ठंडा तथा पित्त, उदर, अतिमार, अरुचि, तृषा और दाह को दूर करनेवाला माना जाता है । जिनने प्रकार के मोषे होते हैं उनमें नागरमोषा उत्तम माना जाता है ।

पर्या०—नागरमुस्ता । नादेयी । उपमांशो । कश्मरुहा । चुडाला । पिडमुस्ता । नागरोत्था । कलापिनी । चक्रांश । शिशिरा । उच्छटा ।

नागराज—संज्ञा पुं० [सं०] १. सर्पों में बड़ा सर्प । २. गणनाग । ३. हाथियों में बड़ा हाथी । ४. ऐरावत । ५. 'पनामर' या 'नाराच' ऋषि का दूसरा नाम ।

नागराज्ञ—संज्ञा पुं० [सं०] भोट ।

नागरि(१)—संज्ञा स्त्री० [सं०] नागी । उ०—प्रेम बिहम डोलत नर नागरि हित गति की अधिकारी ।—धनानंद, पृ० ५६० ।

नागरिक—वि० [सं०] १. जिसे लोकतंत्र, जनतंत्र, प्रजातंत्रात्मक आदि पद्धति द्वारा शासित राष्ट्रों के सामान्य निवासीनों में मतदान का अधिकार प्राप्त हो । २. नगर संबंधी । ३. नगर का । ४. नगर में रहनेवाला । शहराती । ५. अनुर । मध्य । दे० 'नागरक' ।

नागरिक—संज्ञा पुं० १. लोकतंत्रात्मक आदि पद्धति द्वारा शासित राष्ट्र का वह निवासी जिसे सामान्य निवासीन आदि में मताधिकार प्राप्त हो । २. नगरनिवासी । शहर का रहनेवाला आदमी । दे० 'नागरक' ।

नागरिकता—संज्ञा स्त्री० [सं०] नागरिक होने का भाव । नागरिक के स्थान और अधिकारों से युक्त होने की अवस्था । नागरिक जीवन ।

नागरिपन(१)—संज्ञा पुं० [सं० नागरि + पन (पत्य०)] चातुरी । चतुरता । उ०—नागरिपन किछु बड़वा चार । कहलहु बुढ़ा, सयानी ।—विश्वपति, पृ० ८२ ।

नागरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. नगर की रहनेवाली स्त्री । शहर की औरत । २. चतुर स्त्री । प्रवीण स्त्री । ३. स्नुही । शूहर ।

४. भारतवर्ष की वह प्रधान लिपि जिसमें संस्कृत, हिंदी, मराठी, पाली प्राकृत आदि आजकल प्रायः लिखी और मुद्रित की जाती है । विशेष—दे० 'देवनागरी' । ५. पत्थर की मोटाई की एक बड़ी माप । ६. पत्थर की बहुत मोटी पट्टियाँ । बड़ा भोट ।

नागरी—संज्ञा स्त्री० [हि० नागरबेल] पान । नागरवल्ली । उ०—बाड़ी में है नागरी पान देशांतर जाय । जो वहाँ सूखे बेलड़ी तो रग्न वही विनसाय ।—दरिया० बानी, पृ० २ ।

नागरीट—संज्ञा पुं० [सं०] १. लपट । व्यभिचारी । २. जार । ३. वह जो विशाह कराए । घटक (को०) ।

नागरुक—संज्ञा पुं० [सं०] नारगी ।

नागरेगु—संज्ञा पुं० [सं०] सिद्धर ।

नागरोत्था—संज्ञा स्त्री० [सं०] नागरमोषा ।

नागर्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. नागरिकता । शहरातीपन । २. चतुराई । बुद्धिमानी ।

नागल—संज्ञा पुं० [सं०] १. हल । २. छूप की रस्सी जिससे बैल जोड़े जाते हैं ।

नागलता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. पान की लता । पान । २. शिख । लिग (को०) ।

नागलोक—संज्ञा पुं० [सं०] पाताल ।

नागवंश—संज्ञा पुं० [सं०] १. नागों की कुलपरंपरा । २. एक जाति की शाखा ।

विशेष प्राचीन काल में नागवंशियों का राज्य भारतवर्ष के कई स्थानों में तथा सिन्धु में भी था । पुराणों में स्पष्ट लिखा है कि सात नागवंशी राजा मथुरा भोग करेंगे, उसके पीछे गुप्त राजाओं का राज्य होगा । ती नाग राजाओं के जो पुराने सिक्के मिले हैं उनपर तुहस्पति नाग, देव नाग, गणपति नाग इत्यादि नाम मिलते हैं; ये नागगण क्रि.म. सन् १५० और २५० के बीच राज्य करते थे । इन नव नागों की राजधानी कहाँ थी इसका ठीक पता नहीं है पर अधिष्ठान विद्वानों का मत यही है कि उनकी राजधानी नरवर थी । मथुरा और भरतपुर से लेकर स्वाधियर और उज्जैन तक का भूभाग नागवंशियों के अधिकार में था । इतिहासों में यह बात प्रसिद्ध है कि महाप्रतापी गुप्तवंशी राजाओं ने एक या नागवंशियों को परास्त किया था । प्रयाग के किले के भीतर जो स्तंभ है उसमें स्पष्ट लिखा है कि महाराज समुद्रगुप्त ने गणपति नाग को पराजित किया था । इस गणपति नाग के सिक्के बहुत मिलते हैं ।

महाभारत में भी कई स्थानों पर नागों का उल्लेख है । पांडवों ने नागों के हाथ से मगध राज्य छीना था । खांडव वन जलाने समय भी बहुत से नाग नष्ट हुए थे । जनमेजय के ससंग्रह का भी यही अधिप्राय माना जाता है कि पुत्रवंशी धार्य राजाओं से नागवंशी राजाओं का विरोध था । इस बात का समर्थन सिकंदर के समय के प्राप्त वृत्त से होता है । जिस समय सिकंदर भारतवर्ष में आया उससे पहले पहले तक्षशिला का नागवंशी राजा ही मिला । उस राजा ने सिकंदर का कई दिनों तक तक्षशिला में आतिथ्य किया और

अपने शत्रु पीरव राजा के विरुद्ध चढ़ाई करने में सहायता पहुँचाई। सिकंदर के साथियों ने तक्षशिला में राजा के यहाँ भारी भारी सपें पले देखे थे जिनकी निरूप पूजा होती थी। यह शक या नाग जाति हिमालय के उस पार की थी। अब तक तिब्बती अपनी भाषा को नागभाषा कहते हैं।

नागवंशी—वि० [सं० नागवंशिन] नागों के वंश या कुल का।

नागवल्ली—संज्ञा स्त्री० [सं०] पान।

नागवल्ली—संज्ञा स्त्री० [सं०] पान की बेन। पान। ताबूत।

नागवार—वि० [फा०] १. असह्य। २. जो अच्छा न लगे। अप्रिय।

क्रि० प्र०—होना।—गुजरना।

नागवारिक—संज्ञा पुं० [सं०] १. राजा का हाथी। राजकुंजर। २. महावत। फीलवान। ३. मयूर। मोर। ४. गरुड़। ५. गजराज। हाथियों के झुंड का नायक। ६. किसी सभा या राजसभा का प्रधान व्यक्ति [जि०]।

नागवोधी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. शुक्र ग्रह की चार्ज में वह भाग जो स्वाती, भरणी और कुत्तिका नक्षत्रों में हो (वृहस्पति)।

विशेष—तीन तीन नक्षत्रों में एक एक वीधी मानी गई है।

२. कश्यप की एक पुत्री का नाम। (बृहत्संहिता)।

नागवृक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] नागकेशर।

नागशत—संज्ञा पुं० [सं०] महाभारत के अनुसार एक पर्यंत का नाम।

नागशुब्दी—संज्ञा स्त्री० [सं० नागशुब्दी] डंगरी फल। एक प्रकार की लकड़ी।

नागशुद्धि—संज्ञा स्त्री० [सं०] नया घर बनवाने में नागों की स्थिति का विचार।

विशेष—फलित ज्योतिष के ग्रंथों में लिखा है कि भादों, कुम्भार और कार्तिक इन तीन मन्दीनों में नागों का सिर प्ररब की ओर; अश्विन, पूष और माघ में दक्षिण की ओर, फागुन चैत और वैशाख में पश्चिम की ओर तथा जेठ, अमावस और सावन में उत्तर की ओर रहता है। पहले पहले नया डालते समय यदि नागों के मस्तक पर आघात पड़ा तो घर बनवानेवाले की मृत्यु, पीठ पर पड़ा तो स्त्री पुत्र की मृत्यु होती है। पेट पर आघात पड़ने से शुभ होता है।

नागसंभव—संज्ञा पुं० [सं० नागसंभव] १. सिंहर। २. एक प्रकार का मोती (जिसके विषय में प्रसिद्ध है कि यह वासुकि, तक्षक आदि नागों के सिर में होता है)।

नागसंभूत—संज्ञा पुं० [सं० नागसंभूत] दे० 'नागसंभव'।

नागसाहचर्य—संज्ञा पुं० [सं०] हस्तिनापुर।

नागसुगंधा—संज्ञा स्त्री० [सं० नागसुगंधा] सर्पसुगंधा। एक प्रकार की रास्ना। रायसन।

नागस्फोटक—संज्ञा पुं० [सं०] वस्त्रनाभ विष। अमृत विष।

नागस्फोता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. नागवंती। २. दंतो।

नागहन्त्री—संज्ञा स्त्री० [सं० नागहन्त्री] बंध्या कफोटकी। बाँक कफोटका। बाँक खडसा।

नागहनु—संज्ञा पुं० [सं०] नख नामक गंधद्रव्य।

नागहर्ष—क्रि० वि० [फा०] एहाएक। धबानक। अकस्मात्।

नागहानी—वि० स्त्री० [फा०] अकस्मात् घाय हुई। जो एक-एक टुकट पड़ी हो। जैसे, नागहानी घाफन।

नागांग—संज्ञा पुं० [सं० नागाङ्ग] हस्तिनापुर [स्त्री०]।

नागांगना—संज्ञा स्त्री० [सं० नागाङ्गना] १. करिणी। हथिनी (स्त्री०)।

२. पुराणानुसार नागलोक या पाताल लोक निवासियों की स्त्री। ३. ऐतिहासिक दृष्टि से प्राचीन भारत की 'नाग' जाति की अंगना। ४. हाथी का शृङ्ख। सूँड़ (स्त्री०)।

नागांचला—संज्ञा स्त्री० [नागाञ्चला] नागयष्टि।

नागाञ्जना—संज्ञा स्त्री० [सं० नागाञ्जना] नागयष्टि।

नागांतक—संज्ञा पुं० [सं० नागान्तक] १. गरुड़। २. मयूर। ३. सिंह।

नागा^१—संज्ञा पुं० [सं० नग्न, हि० नंगा] उस संप्रदाय का शैव साधु जिसमें लोग नंगे रहते हैं। उ०—जंगम सिंहरा जरे जरे नागा वैरागी। तसई दूना जरे बचै नही कोऊ भागी।—पल्लव, भा० १, पृ० १०४।

विशेष—नाग पहले किसी प्रकार का वस्त्र धारण नहीं करते थे, एक दण्ड नंगे रहते थे। अब अंग्रेजी राज्य में एक कीपीन लगाकर निकलते हैं जिसे नागफनी कहते हैं। ये सिर की जटाओं को रस्सी की तरह बट कर पगड़ी के आकार में लपेटे रहते हैं और शरीर में भस्म पोतते हैं। ये अपने पास भस्म का एक गोला रखते हैं जिसकी निरूप पूजा करते हैं। इनका उद्देश्य और बीरता प्रसिद्ध है। अंग्रेजों राज्य के पहले ये बड़ा उपद्रव भी करते थे। वेणुव वैरागियों से इनकी लड़ाई प्रायः हुआ करती थी जिसमें बहुत से वैरागी मारे जाते थे। नागों के भी कई अखाड़े होते हैं जिनमें निरंजनी और निवाणी दो मुख्य हैं।

२. नंगा। नग्न। आच्छादनरहित। उ०—भूका योमणहार यूँ यूँ जग कमणाहत। नागा ढाकणहार हम, जिम तरवरां बसत।—बाँकी० प्र०, भा० १, पृ० ५६।

नागा^२—संज्ञा पुं० [सं० नागा] १. आसाम के पूर्व की पहाड़ियों में बसनेवाली एक जंगली जाति। जिनका प्रदेश 'नागा लैंड' कहा जाता है। २. आसाम में वह पहाड़ या स्थान जिसके आसपास नागा जाति की बस्ती है।

नागा^३—संज्ञा पुं० [तु० नागह] किसी निरूप या निरंतर होनेवाली घटना नियत समय पर बराबर होनेवाली बात का किसी दिन या किसी नियत अवसर पर न होना। चलती हुई कार्य-परंपरा का अंग। अंतर। बीच। जैसे,—(क) रोज काम पर जाना, किसी दिन नागा न करना। (ख) दुम्हारे कई नागे हो चुके, तनख्वाह कटेगी।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

मुहा०—नागा देना = बीच डालना। अंतर डालना।—जैसे, रोज न आओ, एक दिन नागा देकर आया करो।

नागाख्य—संज्ञा पुं० [सं०] नागकेशर।

नागानन—संज्ञा पुं० [सं०] गजानन। गणेश।

नागाभिमू—संज्ञा पुं० [सं०] बुद्धदेव का एक नाम ।

नागाजिन—संज्ञा पुं० [सं०] हाथी का चमड़ा (को०) ।

नागाराति—संज्ञा पुं० [सं०] १. वंद्या कर्कोटकी । २. बौद्ध ककोड़ा । ३. गरुड़ (को०) । ४. मयूर (को०) । ५. गिह (को०) ।

नागारि—संज्ञा पुं० [सं०] ३० 'नागाराति' ।

नागार्जुन—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्राचीन बौद्ध महात्मा या बोधिसत्व जो माध्यमिक शाखा के प्रवर्तक थे ।

विशेष—ऐसा लिखा है कि ये निर्द्वन्द्व देश के ब्राह्मण थे । किसी किसी के मत में ये ईसा में भी वर्ष पूर्व और किसी किसी के मत में ईसा में १५०-२०० वर्ष पीछे हुए थे । पर निश्चय में नामा के पुनर्जात में एक प्राचीन ग्रंथ भिन्न है जिसके अनुसार पहला मत ही ठीक सिद्ध होता है । बो : धर्म की दार्शनिक रूप पहले पहल नागार्जुन ही ने दिया, अतः इनके द्वारा ग्रंथ और पठित समाज में बौद्ध धर्म का जितना प्रचार हुआ उतना किसी के द्वारा नहीं । इनके दर्शन ग्रंथ का नाम माध्यमिक सूत्र है । इसके प्रतिरिक्त बौद्ध धर्म सांगी इन्होंने और कई ग्रंथ लिखे । इन्होंने सात वर्ष तक सारे भारतवर्ष में उपदेश और शास्त्रार्थ करके बहुत से लोगों को बो : धर्म में बोधित किया । अंत में ये भोजभद्र नामक प्रधान राजा को दस हजार ब्राह्मणों के सहित बौद्ध धर्म में लाए । इनका दर्शन दो भागों में विभक्त है—एक सत्त्व सत्य दूसरा परमार्थ सत्य । सत्त्व सत्य में इन्होंने माया का मूल तथ्य निरूपित किया है और परमार्थ सत्य में यह प्रतिपादित किया है कि चित्त और समाधि के द्वारा महात्मा की किस प्रकार जान सकते हैं । महात्मा की जान लेने पर माया दूर हो जाती है । माध्यमिक दर्शन का सिद्धान्त यही है कि साधारण जीवितों के चालन से ही प्राणी पुनर्जन्म से रहित नहीं हो सकता । निर्विश्रामि के लिये दानशील, शान्ति, वीर्य, समाधि और प्रज्ञा इन गुणों के द्वारा आत्मा की पूर्णत्व की परीक्षा की जाय । ये कहते हैं कि शिव, शिव, काली, तारा, इत्यादि देवी देवताओं की उपासना सामाजिक उत्थान के लिये करनी चाहिये । नागार्जुन ने बो : धर्म को जो रूप दिया वह 'महायान' कहलाया और उसका प्रचार बहुत ही प्रबल हुआ । नेपाल, तिब्बत, चीन, तातार, जापान इत्यादि देशों में इसी शाखा में अनुयायी हैं । तांत्रिक बो : धर्म का प्रवर्तक कुछ लोग नागार्जुन ही को मानते हैं । काश्मीर में बौद्धों का जो बोधिसत्व हुआ था वह इन्होंने दिया था ।

ये चिकित्सक भी अच्छे थे । चक्रपाणि पंडित (विक्रम संवत् १००० कलंगनग) ने अपने चिकित्सासंग्रह में नागार्जुन कृत नागार्जुनचक्र और नागार्जुनयोग नामक औषधों का उल्लेख किया है । चक्रपाणि ने लिखा है कि पाटलिपुत्र नगर में उत्पन्न दोनो नुसखे पत्थर पर खुदे मिले थे । ऐसा प्रतीत है कि ये पत्थरों पर इस प्रकार के नुसखे खुदवाकर उत्तम स्थान स्थान पर गड़वा देते थे । कक्षपुट, कौतुहल-चिन्तामणि, योगरत्नमाला, योगरत्नावली और नागार्जुनीय

(चिकित्सा) ये और ग्रंथ इनके नाम से प्रसिद्ध हैं । रस चिकित्सा पद्धति को इन्होंने प्रचारित किया ।

नागार्जुनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दुर्गा । दुषिया वास ।

नागालायु—संज्ञा पुं० [सं०] गोल बोया । गोल कद्दा । गोल लोकी ।

नागाशन—संज्ञा पुं० [सं०] १. गरुड़ । २. मयूर । ३. सिंह ।

नागाश्रय—संज्ञा पुं० [सं०] हस्तिकंद ।

नागाह्व—संज्ञा पुं० [सं०] नागकेसर ।

नागाह्व—संज्ञा स्त्री० [सं०] लक्ष्मणा कंद ।

नागिन—संज्ञा स्त्री० [हि० नाग] १. नाग की स्त्री । सपि की माता ।

विशेष—ऐसा प्रसिद्ध है कि नागिन में बहुत विष होता है, इसमें कुछ छिद्र और कुछ छिद्रों के लिये इस शब्द का प्रयोग प्रायः करते हैं ।

२. रीछों की लंबी भोरी जो पीठ या गरदन पर होती है ।

विशेष—रीछों में ऐसी भोरी का होना कुलक्षण समझा जाता है ।

३. बैल, घोड़े आदि चौपायों की पीठ पर रीछों की एक विशेष प्रकार की भोरी जो अशुभ मानी जाती है ।

नागिनी—संज्ञा स्त्री० [हि० नाग] ३० 'नागिन' ।

नागी—संज्ञा पुं० [सं० नागिन्] (नागवाले) शिव । महादेव ।

नागीगायत्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] २४ वर्णों का एक वैदिक छंद जिसके प्रथम दो चरणों में नौ नौ वर्ण होते हैं और तीसरे चरण में केवल छह वर्ण ।

नागुला—संज्ञा पुं० [सं० नागुल] १. नेवला । २. नाकुली नामक जड़ी ।

नागेंद्र—संज्ञा पुं० [सं० नागेन्द्र] १. बड़ा सर्प । २. शेष, वासुकि आदि नाग । ३. बड़ा हाथी । ४. ऐरावत ।

नागेश—संज्ञा [सं०] १. शेषनाग । २. प्रसिद्ध संस्कृत वैयाकरण नागेश भट्ट । ३. पतंजलि (को०) ।

नागेश्वर—संज्ञा पुं० [सं०] १. शेषनाग । २. ऐरावत । ३. नागकेसर ।

नागेश्वर रस—संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक में एक प्रसिद्ध रसोषध ।

विशेष पाय, गंधक, सीसा, रौंदा, मैनासिल, नीसावर, जवाबरा, सज्जी, सोहागा, लोहा, ताम्र और अभ्रक इन सबको बराबर बराबर लेकर थूहर के दूध में मले । फिर पीते, घड़से और दंती के बवाय में मलकर उरग की दाब के बराबर गोली बना डाले ।

नागेश्वर(पु)—संज्ञा पुं० [हि०] ३० 'नागकेसर' ।

नागेश्वरी—संज्ञा [हि० नागेश्वर] नागकेसर के रंग का पीला ।

नागोद—संज्ञा पुं० [सं०] १. लोहे का वह तवा या बकतर जिसे अस्त्रों के आघात से बचाने के लिये छाती पर पहनते थे । सोनाबर । २. एक प्रकार का गर्भरोय । गर्भोपद्रव विशेष (को०) ।

नागोदर—संज्ञा पुं० [सं०] ३० 'नागोद' ।

नागोदरिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] युद्ध में हाथ की रक्षा के लिये पहना जानेवाला दस्ताना । (को०) ।

नागौर^१—संज्ञा पुं० [हि० नव + नगर] मारवाड़ के अंतर्गत एक नगर जो गावों और बैलों के लिये भारतवर्ष भर में प्रसिद्ध है।

विशेष—ऐसी जनश्रुति है कि दिल्ली के अंतिम हिंदू सम्राट् महाराज पृथ्वीराज ने कोई ऐसा स्थान ढूँढ़ने की आज्ञा दी जो गोपबोध के लिये सबसे अनुकूल हो। लोग चारों ओर छूटे। उनमें से एक ने जंगल में देखा कि तुरंत की ब्याई हुई गाय अपने बछड़े की रक्षा एक बाघ से कर रही है। बाघ बहुत जोर से मारता है पर गाय उसे मीलों से मार मारकर हटा देती है। महाराज के यहाँ जब यह समाचार पहुँचा तब उन्होंने उसी जंगल को पसंद किया और वहाँ नागौर या नवनगर नाम का नगर और गढ़ बनवाया।

नागौर^२—वि० [हि० नागौर] [वि० स्त्री० नागौरी] नागौर का, अच्छी जाति का (बैल, गाय, बछड़ा आदि)।

नागौरा—वि० [हि० नागौर] [स्त्री० नागौरी] नागौर का, अच्छी जाति का (बैल, गाय, बछड़ा इत्यादि)।

नागौरी^१ वि० [हि० नागौर] नागौर का। अच्छी जाति का (बैल, बछड़ा आदि)।

नागौरी^२—वि० स्त्री० नागौर की। अच्छी जाति की (गाय)।

नाचना—क्रि० सं० [सं० लट्ठन] पा० करना। डँकना। उलथाना। उ०—देहली नाच कर, दहलोज के उधर, धनीची पर उधर, घड़े रखे धरन।—आराधना, पृ० ७८।

नाच—संज्ञा पुं० [सं० नृत्य, प्रा० गुण्य, नच्च] १. वह उछल कूद जो चित्त की उमंग से हो। मंगों की वह गति जो हृदयोत्प्लास के कारण मनमाने अथवा मंगीत के मेल में ताल स्वर के अनुसार और हावभाव युक्त हो। उ०—करि सिंगार मनमोहनि पातुर नाचहि पाँच। बादशाह गढ़ छँका, राजा भूला नाच।—जायसी (शब्द०)।

विशेष—नाच की प्रथा सभ्य सभ्य सब जानियाँ में प्रादि से ही चली आ रही है। क्योंकि यह एक स्वाभाविक वृत्ति है। संगीतकामोदर में नृत्य का यह लक्षण है—देश की रुचि के अनुसार ताल मान और रस का आश्रित जो अंगविशेष हो उसे नृत्य कहते हैं। नृत्य दो प्रकार का होता है—तांडव और लास्य। पुरुष के नाच को तांडव और स्त्रियों के नाच को लास्य कहते हैं। तांडव के दो भेद हैं—पेलवि और बहुरूप। अभिनयशून्य अंगविशेष जो पेलवि और अनेक प्रकार के हावभाव, वेशभूषा से युक्त अंग-गति को बहुरूप कहते हैं। लास्य के भी दो भेद हैं—छुरित और योवत। नायक नायिका परस्पर आनिगन, चुवन आदि पूर्वक जो नृत्य करते हैं उसे छुरित कहते हैं। एक स्त्री लीला और हावभाव के साथ जो नाच नाचती है उसे योवत कहते हैं। इनके अतिरिक्त अंग प्रत्यंग की चेष्टा के अनुसार अंगों में अनेक भेद किए गए हैं। पर प्राचीन काल में नृत्य विद्या राजकुमार भी सीखते थे। अर्जुन इस विद्या में निपुण थे। भारतवर्ष में नाचने का पेशा करनेवाले पुरुषों को नट

कहते थे। स्मृतियों में नट निरुष्ट जातियों में रखे गए हैं। नाचना अनेक प्रकार के स्वंगों के साथ भी होता है, जैसे, नाटक, रासलीला आदि में। विशेष देख 'नाटक'।

क्रि० प्र०—करना, नाचना, होना।

यौ०—नाच हूँ। नाच तमाशा। नाच रंग।

मुहा०—नाच नाचना—नाचने के लिये तैयार होना। उ०—मैं अपना मन हरि में जोख्यो। नाच कश्यो घूँसट छोरयो तब लोकलाज सब फटकि पछोर्यो।—सूर (शब्द०)। नाच दिखाना—(१) किसी के सामने नाचना। (२) उछलना कूदना। हाथ पैर हिलाना। (३) निरक्षण आचरण करना। जैसे, रास्ते में उभन बड़े बड़े नाच दिवाए। नाच नचाना—(१) जैना चाहना ऐसा काम करना। उ०—(क) कबिरा बैरी सबल है एक जीन रिग पाँच। अपने अपने स्वाद को बहुत नचावे नाच।—बोर (शब्द०)। (ख) जो कछु कुबजा के मन भावे मोटे नाच नचावे। सूर (शब्द०)। (२) दिक करना। हैरान करना। तंग करना। उ०—जहँ कटु फिरन निभावर पावहि। धनि सकल बहु नाच नचावहि। तुलसी (शब्द०)।

२. नाट्य। खेल। क्रीडा। उ०—टूटे नौ मन मोती फूटे दस मन काँच। लिय समेटि सब अमरन होइगा दुख कर नाच।—जायसी (शब्द०)। ३. नृत्य। घषा। कर्म। प्रयत्न। उ०—सौच कहौ नाच कीय मा जो न मोहि लोभ लघु निवज नचायो।—तुलसी (शब्द०)।

नाचकूद—संज्ञा स्त्री० [हि० नाच + कूद] १. नाच। तमाशा। उ०—कनक कथा कहै कछु कोइ। कनक नाच कूद भल होई।—जायसी (शब्द०)। २. आनंदन। प्रयत्न। ३. गुण, योग्यता बड़ाई आदि प्रकट करने का उद्योग। डींग। ४. क्रोध से उछलना, पटकना।

नाचनगर—संज्ञा पुं० [हि० नाच + नगर] वह स्थान जहाँ नाचना गाना आदि हो। नृत्यस्थान।

नाचना—क्रि० अ० [हि० नाच] १. चित्त की उमंग से उछलना, कूदना तथा इसी प्रकार की और चेष्टा करना। हृदय के उत्प्लास से अंगों की गति देना। हृय के बारे स्थिर न रहना। जैसे—इतना सुनी हो वह आनंद से नाच उठा। उ०—(क) आजु सूर रिज अथवा आजु रेनि मसि बूझ। आजु नाचि बिउ दीजे आजु आगि हमें बूझ।—जायसी (शब्द०)। (ख) मुनि अस ब्याह सगुन सब नाचे। अब कीन्हें बिरंचि हम सचि।—तुलसी (शब्द०)। (ग) लछिमन देखहु मोर गन नाचत वारिद पेलि।—तुलसी (शब्द०)।

संयो० क्रि०—उठना।—पड़ना।

२. संगीत के मेल से ताल स्वर के अनुसार हावभाव पूर्वक उछलना, कूदना, फिरना तथा इसी प्रकार की और चेष्टाएँ करना। थिरकना। नृत्य करना। उ०—(क) करि सिंगार मन मोहनि पातुर नाचहि पाँच। बादशाह गढ़ छँका राजा भूला नाच।—जायसी (शब्द०)। (ख) कहूँ करवाच

बजाइ के नाच मानु नवै मोद मरे।—तुलसी (शब्द०) ।
१. भ्रमण करना । चक्कर मारना । घूमना । जैसे, लट्ठ
का नाचना ।

मुहा०—मिर पर नाचना (१) धरना । प्रमना । आक्रान्त
करना । प्रभाव डालना । जैसे, मिर पर पाप, घटष्ट, दुर्भाग्य
आदि नाचना । (२) पास घाना । जैसे, मिर पर काल
या मृत्यु का नाचना । उ०—जेटि घर नाल मजारी नाचा ।
पंखिहि नाचै जीव नहि नीचा ।—जायसी (शब्द०) । सीम पर
नाचना - ३० मिर पर नाचना । उ०—लखी नरेम बात सब
साची । निय मिस मोखु सीम पर नाची ।—तुलसी (शब्द०) ।
विशेष इस मुहावरि का प्रयोग गान, मृ. यु. घटष्ट, दुर्भाग्य
पाप, ऐसे कुछ न दो के साथ हो होता है ।

प्राज्ञ के सामने नाचा । अन करण मे प्रत्यक्ष के समान प्रतीत
होना । ध्यान मे ज्यों वा त्या होना । जैसे,—(क) उसमें ऐसा
सुंदर परांग है कि प्रत्यक्ष प्राज्ञ के सामने नाचने लगता है ।
(ख) उसकी मूल प्राप्ति व सामन नाच रही है ।

४. इधर से उधर करना । दोटना घूमना । उद्योग या प्रयत्न में
मगना । स्थिर न रहना । जैसे, एक जगह बैठने क्यों नहीं,
इधर उधर नाने क्या हो ? उ०—जय माला छापा तिलक
सरे न ऐसी राम । मन बचि, नाचे वृथा सनि राम राम ।—
बिहारी (शब्द०) । ५. पराना । काटना । उ०—बाबा बान
जाघि जम नाचा । बिज गा रंग परा भुँह माँचा ।—जायसी
(शब्द०) । ६. क्रोध में घातक चलना । कूटना । क्रोध से
उद्विग्न घोर चक्कर होना । बिगड़ना । जैसे,—तुम सबको कहते
हो, पर तुम्हें जरा भी कोई कुद्द कहता है तो नाच उठते हो ।

संयो० क्रि० उठना ।

नाचमहल—संज्ञा पु० [हि० नाच + महल] उ० नाचमहल में बैठो
भीमा । दीप बुझाय शीघ्र हरि जी भा ।—सूरदास (शब्द०) ।

नाचरंग—संज्ञा पु० [हि० नाच + रंग] प्रामोद प्रमोद । जलमा ।

क्रि० प्र०—करना । मचना । होना ।

नाचाक—वि० [फा० नाच + अ० चाक] जो स्वरण न हो । अस्वरण ।
बीमार (को०) ।

नाचाकी—संज्ञा स्त्री० [नाचाक + फा० नाच + तु० चाक + फा० ई
(प्रत्यय)] १. बिदाय । अन्वय । पड़ाई । वेमनस्य । मन-
मुटाव । २. बीमारी । रोग (को०) ।

नाचाक^१—वि० [फा०] १. विषण्ण । नाचार । असहाय । २. तुच्छ ।
व्यर्थ । उ०—उच्छासुत बरग को करे जो विस विचार ।
सदाचार को बेद मत यह विचार नाचार ।—केनव (शब्द०) ।

नाचाक^२—क्रि० वि० विषण्ण होकर । हारकर । मजबूरन । उ०—
सुलतान रुकुनूद्दीन फीरोजशाह इतनी शराब पीता था कि
प्राक्सिर नाचार उसके प्रभियों ने उसे कैद कर लिया ।—
शिवप्रसाद (शब्द०) ।

नाचाही—संज्ञा स्त्री० [फा०] ३० 'नाचारी' ।

नाचिकेत—संज्ञा पु० [सं०] १. प्रभिन । २. नाचिकेता नामक ऋषि ।

नाचीज—वि० [फा० नाचीज] १. तुच्छ । पोच । उ०—सब उनको

नाचीज फौजी गोरे अपने बूट से कुचलने लगे ।—सरस्वती
(शब्द०) । २. निकम्मा ।

नाचीन—संज्ञा पु० [म०] १. एक देश जो दक्षिण में है । २. इस देश
का राजा (महाभारत) ।

नाजा^१—संज्ञा पु० [हि० घनाज] १. घनाज । अक्ष ३० उ०—खलन
को योष जहाँ नाज ही में देखियत माफ करवें हो माँह होत
करनायु है ।—गुमान (शब्द०) । २. खाद्य द्रव्य । भोजन
सामग्री । खाना । उ०—तुलसी निहारि कवि मानु किष्कत
सलकत लखि ज्यों कंगाल पातरी मुनाज की ।—तुलसी
(शब्द०) । विशेष—३० 'घनाज' ।

नाज^२—संज्ञा पु० [फा० नाज] १. उनक । नखरा । चोचला । हाव
भाव । उ०—प्रदा में, नाज में चंचल अजब आनम बिखाती
है । व मुमिरस मोतियों को उँगलियों में जब फिराती
है ।—तजोर (शब्द०) ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

याँ०—नाज प्रदा, नाज नखरा = (१) हावभाव । (२)
चटर मटर । बनाव सिंगार ।

मुहा०—नाज उठाना—चोचला सहना । नाज से पालना—बड़े
लाड प्यार से पालना ।

२. घमंड । अभिमान । गर्व ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

नाजनी—संज्ञा स्त्री० [फा० नाजनी] १. सुंदरी स्त्री । २.
नाजुक बदनवाली औरत । कामलागी (को०) ।

नाजबरदार—वि० [फा० नाजबरदार] नाज बरदाश्त करनेवाला ।
प्राज्ञिक ।

नाजबरदारी—संज्ञा स्त्री० [फा० नाजबरदारी] नाज बरदाश्त
करना । प्राज्ञिकी ।

नाजबू—संज्ञा स्त्री० [फा० नाजबू] मखे का पौधा ।

नाजौ—वि० [फा० नाजौ] घमंड करनेवाला । गर्वित ।

क्रि० प्र०—हाना ।

नाजायज—वि० [फा० ना + अ० जायज] जो जायज न हो ।
जो नियमविरुद्ध हो । अनुचित ।

नाजिम^१—वि० [अ० नाजिम] प्रबंधकर्ता ।

नाजिम^२—संज्ञा पु० [अ०] मुगलमानी राज्यकाल में वह प्रधान
कर्मचारी जिसके ऊपर किसी देश या राज्य के समस्त
प्रबंध का भार रहता था । उ०—हुमायूँ तख्त पर बैठा ।
उसका भाई कामरौ पहले से कानून का नाजिम था ।—
शिवप्रसाद (शब्द०) ।

विशेष—यह राजपुरुष उस देश का कर्ता धर्ता होता था और
उसकी निगुक्ति सम्राट की ओर से होती थी ।

नाजिर^१—वि० [अ० नाजिर] १. देखनेवाला । दायक ।

नाजिर^२—संज्ञा पु० १. निरीक्षक । देखभाल करनेवाला । २.
लेखकों का प्रफसर । प्रधान लेखक । ३. राजा । महलमरा ।

४. वह बखाल जो वेश्याओं को गाने बजाने के लिये ठीक
करता और खाता हो ।

नाजिरात—संज्ञा स्त्री० [हि० नाजिर + प्रात (प्रत्य०)] वह दलाली जो नाजिर को नाचने गानेवाली वेश्या आदि से मिलती है।

नाजी—संज्ञा पुं० [जर्मन नात्सी] प्रथम तथा द्वितीय विश्वयुद्ध के बीच का एक प्रबल जर्मन राजनीतिक दल। नात्सी।

विशेष—जर्मनी के अधिनायक हिटलर के नेतृत्व में यह दल जर्मनी का प्रमुख दल हो गया था।

नाजी दर्शन—संज्ञा पुं० [जर्म० नाजी + हि० दर्शन] नाजी जर्मनी का एक राजनीतिक सिद्धांत। वि० दे० 'नाजीवाद'। उ०—मानव मन की दुर्बलता से लाभ उठानेवाले नाजी दर्शन ने जनता पर बरभो डोरे डाले।—हंम०, पृ० ३६।

नाजीवाद—संज्ञा पुं० [जर्म० नाजी + वाद] जर्मनी के नाजियों का राजनीतिक सिद्धांत।

विशेष—नाजीवाद फासिज्म के समान जनतंत्र, व्यक्ति-स्वतंत्रता, अंतरराष्ट्रीय शांति आदि का विरोधी तथा अधिनायकतंत्र का प्रबल पोषक था। हिटलर के काल में यह अपनी चरम सीमा पर पहुँचा।

नाजुक—वि० [फा० नाजुक] १. कोमल। सुकुमार। उ०—गड़े नुकीले लाल के नैत रहे दिन रेनि। तब नाजुक ठोड़ीन में गाड़ परें मृदु वेन।—स० सत० (शब्द०)।

यौ०—नाजुक बदन। नाजुक दिमाग।

२. पतला। महीन। बारीक। ३. सूक्ष्म। गूढ़। जैसे, नाजुक कथाल। ४. थोड़े ही आघात से नष्ट हो जानेवाला। जरा से झटके या धक्के से टूट फूट जानेवाला। थोड़ी घसावपानी से भी जिसके टूटने का डर हो। जैसे,—गीते की बीजे नाजुक होती हैं; संभालकर लाना।

यौ०—नाजुक मिजाज—जो थोड़ा सा कष्ट भी न सह सके।

५. जिसमें नानि या अनिष्ट की आशंका हो। जोखी का। जैसे, नाजुक वस्त्र, नाजुक हालत, नाजुक मामला।

नाजुकखयाल—वि० [फा० नाजुक + खयाल] कोमल भावनाओं-वाला। भ्रमशय। उच्च विचारोंवाला।

नाजुकखयाली—संज्ञा स्त्री० [फा० नाजुकखयाली] काव्य में गूढ़ता या सूक्ष्मता का भाव। उ०—कला पर एक प्रकार की रीतिकालीन छाव और उर्दू कविता को नाजुकखयाली का प्रभाव है।—स० साप्ता, पृ० १०६।

नाजुकदिमाग—वि० [फा० नाजुक + दिमाग] १. जो रुचि के प्रतिकूल (जैसे दुर्गंध, कर्कश स्वर आदि) थोड़ी सी बात भी न सहन कर सके। जो जरा जरा सी बात नाक भी सिकोड़े। २. तुनक मिजाज। चिड़चिड़ा।

नाजुकबदन—वि० [फा० नाजुकबदन] १. कोमल और सुकुमार शरीर का। २. डोरिए की तरह का एक महीन कपड़ा। ३. एक प्रकार गुललाला।

नाजुकमिजाज—वि० [फा० नाजुक मिजाज] दे० 'नाजुकदिमाग'।

नाजो—संज्ञा स्त्री० [फा० नाज] १. नाज करनेवाली। घटक घटक-वाली स्त्री। ठसकवाली स्त्री। २. लाइली प्यारी स्त्री।

नाट—संज्ञा पुं० [सं० नाट] १. नृत्य। नाच। २. नकल। स्वीग। उ०—पंथी दंतनी कहियो बात। तुम बिनु यहाँ कुँवर वर मेरे होत जिते उत्पात। गोपी गाइ मकल लघु दीरघ पीत बरम कुम गात। परम घनाथ देखियत तुम बिनु केहि प्रवलंबिए प्रात। कान्ह कान्ह के देखत तब धौ अक्ष कैसे जिय मानत। यह व्योहार आजु लो है सब काट नाट छल ठानत।—सूर (शब्द०)। ३. एक देश का नाम।

विशेष—यह देश बनारस के पास था।

४. नाट देशवासी पुरुष। ५. एक राग का नाम।

विशेष—इसे कोई मेघ राग का और कोई शीत राग का पुन मानते हैं। इस राग में धीर राग गाया जाता है।

नाट—संज्ञा पुं० [हि०] बाण की गामी। नाटमाल। उ०—तिय तन वितन जु पंच सर, नगे पंच ही बाट। चुंबक साँवरे पी बिनु, क्यों निकसहि ते नाट।—नद० ग्रं०, पृ० १३५।

नाटक—संज्ञा पुं० [सं०] १. नाटन या अभिनय करनेवाला। नट। २. रंगशाला में नटों की आकृति, हाव भाव, वेष्ट और वस्त्र आदि द्वारा घटनाओं का प्रदर्शन। यह दृश्य जिसमें स्वीग के द्वारा चरित्र दिखाए जाते। अभिनय। ३. वह ग्रंथ या काव्य जिसमें स्वीग के द्वारा दिखाया जानेवाला चरित्र हो। दृश्यकाव्य, अभिनयग्रंथ।

विशेष—नाटक की गिनती काव्यों में है। काव्य दो प्रकार के माने गए हैं—श्रव्य और दृश्य। इसी दृश्य काव्य का एक भेद नाटक माना गया है। पर मुख्य रूप से इनका प्रदृश्य होने के कारण दृश्य काव्य मान को नाटक कहने लगे हैं। भरतमुनि का नाट्यशास्त्र इस विषय का सबसे प्राचीन ग्रंथ मिलता है। अग्निपुराण में भी नाटक के लक्षण आदि का निरूपण है। उसमें एक प्रकार के काव्य का नाम प्रकीर्ण कहा गया है। इस प्रकीर्ण के दो भेद हैं—काव्य और अभिनय। अग्निपुराण में दृश्य काव्य या रूपक के २७ भेद कहे गए हैं—नाटक, प्रकरण, डिम, ईहापुन, समवकार, प्रहसन, व्यायोग, भाण, बीधी, शंक, त्रोटक, नाटिका, मट्टक, शिखरक, विलासिका, दुर्मल्लिका, प्रस्थान, भागिका, भागी, गोष्ठी, हल्लीशक, काव्य, श्रीनिगदित, नाट्यरामक, रासक, उल्लासक और प्रेक्षण। साहित्यदर्पण में नाटक के लक्षण, भेद आदि अधिक स्पष्ट रूप से दिए हैं। ऊपर लिखा जा चुका है कि दृश्य काव्य के एक भेद का नाम नाटक है। दृश्य काव्य के मुख्य दो विभाग हैं—रूपक और उपरूपक। रूपक के दस भेद हैं—रूपक, नाटक, प्रकरण, भाण, व्यायोग, समवकार, डिम, ईहापुन, शंकीधी और प्रहसन। उपरूपक के छठारह भेद हैं—नाटिका, त्रोटक, गोष्ठी, मट्टक, नाट्यरामक, प्रस्थान, उल्लासक, काव्य, प्रेक्षण, रासक, संलापक, श्रीनिगदित, शिपक, विलासिका, दुर्मल्लिका, प्रकरणिका, हल्लीशा और भणिका। उपर्युक्त भेदों के अनुसार नाटक शब्द दृश्य काव्य मान के अर्थ में बोलते हैं। साहित्यदर्पण के अनुसार नाटक किसी कथावस्तु (प्रसिद्ध आख्यान, कल्पित नहीं) को लेकर लिखना चाहिए। वह बहुत प्रकार के विवास, सुख, दुःख,

तथा अनेक रसों से युक्त होना चाहिए। उसमें पाँच से लेकर दस तक अंक होने चाहिए। नाटक का नायक धीरोदात्त तथा प्रख्यात वंश का कोई प्रतापी पुरुष या राजपि होना चाहिए। नाटक के प्रधान या अग्री रस शृंगार और वीर हैं। शेष रस गौण रूप से आते हैं। भाति, करुणा आदि जिस रूप में प्रधान हो वह नाटक नहीं बट्ना जाता। सविशेषण से कोई विरमयजनक व्यापार होना चाहिए। उपमहार में मंगल ही दिखाया जाना चाहिए। वियोगान नाटक संस्कृत अलंकार शास्त्र के विकट है। अभिनय आरंभ होने के पहले जो क्रिया (मंगलाचरण आदी) होती है, उसे पूर्वरंग कहते हैं। पूर्वरंग के उपरांत प्रधान नट या सूत्रधार, जिसे स्थापक भी कहते हैं, आकर सभा को प्रणाम करता है फिर नट, नटी सूत्रधार इत्यादि परस्पर वार्तनाय करने हैं जिसमें सेने जानेवाले नाटक का प्रस्ताव, नवि-वर्णन-वर्णन आदि विषय आ जाते हैं। नाटक के इस अंश को प्रस्तावना कहते हैं। जिस इतिवृत्त को लेकर नाटक रचा जाता है उसे वस्तु कहते हैं। 'वस्तु' दो प्रकार की होती है आध्यात्मिक वस्तु और प्रासंगिक वस्तु। जो गणत इतिवृत्त का प्रधान नायक होता है उसे 'अधिकारी' कहते हैं। इस अधिकारी के संबंध में जो कुछ वर्णन किया जाता है उसे 'आध्यात्मिक वस्तु' कहते हैं; जैसे, रामलीला में राम का चरित्र। इस अधिकारी के उपकार के लिये या रसयुक्त के लिये प्रसंगवश जिसका वर्णन आ जाता है उसे प्रासंगिक वस्तु कहते हैं; जैसे सुग्रीव, आदि का चरित्र।

'सामने लाने' अर्थात् रस सभा उपस्थित करने को अभिनय कहते हैं। अतः अवस्थानुसार अनुक्रमण या स्थापना का नाम ही अभिनय है। अभिनय चार प्रकार का होता है—आगतिक, वाचिक, आह्वान और सात्विक। आगे की चारों में जो अभिनय किया जाता है उसे आगतिक, वचनो से जो किया जाता है उसे वाचिक, अम आकार जो किया जाता है उसे आह्वान तथा भावों के उद्देश्य से रूप स्वर आदि द्वारा जो होता है उसे सात्विक कहते हैं।

नाटक में बीज, बिन्दु, पताका, प्रकरी और कायं इन पाँचों के द्वारा प्रयोजन सिद्ध होता है। जो बात मुँह से कहने की चारों ओर फैल जाय और पलामिद्ध का प्रथम कारण हो उसे बीज कहते हैं। जैसे वेणुसंहार नाटक में भीम के क्रोध पर युधिष्ठिर का उत्साहवाच्य शीरी के केशमोवन का कारण होने के कारण बीज है। कोई एक बात पूरी होने पर दूसरे वाक्य में उसका मध्य न कहने पर भी उसमें ऐसे वाक्य लाना जिसकी दूसरे वाक्य के नाश प्रसंगित हो 'बिन्दु' है। बीच में किमा व्यापक प्रसंग के वर्णन को पताका कहते हैं। जैसे उत्तरनील में सुग्रीव का और अभिमान-शाकुन्तल में विदूषक का चरित्रवर्णन। एक देश व्यापी चरित्रवर्णन को प्रकरी कहते हैं। आरंभ की हुई क्रिया को कलसिद्ध के लिये जो कुछ किया जाय उसे कायं कहते हैं; जैसे, रामलीला में रावण वध। किसी एक विषयकी

वर्षा हो रही हो, इसी बीच में कोई दूसरा विषय उपस्थित होकर पहले विषय के मेल में मालूम हो वही पताकास्थान होता है, जैसे, रामचरित में राम सीता से कह रहे हैं—'हे प्रिये! तुम्हारी कोई बात मुझे असह्य नहीं, यदि असह्य है तो केवल तुम्हारा विरह, इसी बीच में प्रतिहारी आकर कहता है : देव! दुर्मुख उपस्थित। यही 'उपस्थित' शब्द से 'विरह उपस्थित' ऐसी प्रतीत होता है, और एक प्रकार का चमत्कार मालूम होता है। संस्कृत साहित्य में नाटक संबंधी ऐसे ही अनेक कौशल्यों की उद्भावना की गई है और अनेक प्रकार के विभेद दिखाए गए हैं।

आजकल देशभाषाओं में जो नए नाटक लिखे जाते हैं उनमें संस्कृत नाटकों के सब नियमों का पालन या विषयों का समावेश अनावश्यक समझा जाता है। भारतेंदु हरिश्चंद्र लिखते हैं—'संस्कृत नाटक की भाँति हिंदी नाटक में उनका अनुसंधान करना या किसी नाटकांग में इनको यत्नपूर्वक रखकर नाटक लिखना अर्थ है; क्योंकि प्राचीन लक्षण रखकर आधुनिक नाटकादि की शोभा संपादन करने से उलटा फल होता है और यत्न व्यर्थ हो जाता है।

भारतवर्ष में नाटकों का प्रचार बहुत प्राचीन काल से है। भरत मुनि का नाट्यशास्त्र बहुत पुराना है। रामायण, महाभारत, हरिवंश इत्यादि में नट और नाटक का उल्लेख है। पाणिनि ने 'शिलाली' और 'कुशाव' नामक दो नटसूत्रकारों के नाम लिए हैं। शिलाली का नाम शुक्ल यजुर्वेदीय शतपथ ब्राह्मण और सामवेदीय अनुपव सूत्र में मिलता है। विद्वानों ने अपोलिप की गणना के अनुसार शतपथ ब्राह्मण को ४००० वर्ष से ऊपर का बतलाया है। अतः कुछ पाश्चात्य विद्वानों की यह राय कि ग्रीस या यूनान में ही सबसे पहले नाटक का प्रादुर्भाव हुआ, ठीक नहीं है। हरिवंश में लिखा है कि जब प्रद्युम्न, साँब आदि यादव राजकुमार वज्रनाभ के पुर में गए थे तब वही उन्होंने रामजन्म और रमाभिसार नाटक खेले थे। पहले उन्होंने नेपथ्य बाँधा था जिसके भीतर से स्त्रियों ने मधुर स्वर से गान किया था। शूर नामक यादव रावण बना था, मनोवती नाम की स्त्री रंभा बनी थी, प्रद्युम्न नलकूबर और साँब विदूषक बने थे। विल्मन आदि पाश्चात्य विद्वानों ने स्पष्ट स्वीकार किया है कि हिंदुओं ने अपने यहाँ नाटक का प्रादुर्भाव अपने आप किया था। प्राचीन हिंदु राजा बड़ो बड़ी रंगशालाएँ बनवाते थे। मध्यदेश में मरगुवा एक पहाड़ी स्थान है, वही एक गुफा के भीतर इस प्रकार की एक रंगशाला के चित्र पाए गए हैं।

यह ठीक है कि यूनानियों के आने के पूर्व के संस्कृत नाटक आजकल नहीं मिलते हैं, पर इस बात से इनका प्रभाव, इतने प्रमाणों के रहते, नहीं माना जा सकता। संभव है, कलासंपन्न यूनानी जाति से जब हिंदु जाति का मिलन हुआ हो तब जिस प्रकार कुछ और और बातें एक ने दूसरे की ग्रहण कीं इसी प्रकार नाटक के संबंध में कुछ बातें हिंदुओं ने भी

अपने यहाँ ली हों। बाहुपटी का 'जवनिका' (कभी कभी 'यवनिका') नाम देल कुछ लोग यवन संमर्ग सूचित करते हैं। अंकों में जो 'दृश्य' संस्कृत नाटकों में आए हैं उनसे अनुमान होता है कि इन पटों पर चित्र बने रहते थे। अस्तु अधिक से अधिक इस विषय में यही कहा जा सकता है कि अत्यंत प्राचीन काल में जो अभिनय हुआ करते थे। उनमें चित्रपट काम में नहीं लाए जाते थे। सिकंदर के आने के पीछे उनका प्रचार हुआ। अब भी रामलीला, रासलीला बिना परदों के होती ही हैं।

नाटकशास्त्र—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह घर या स्थान जहाँ नाटक होता है।

नाटका देवदारु—संज्ञा पुं० [हि० नाटक + देवदारु] एक छोटा पेड़ या भाड़ जो भारत के दक्षिण और लंका में मिलता है।

विशेष—इसकी लकड़ी से एक प्रकार का तेल निकलता है जो नावों में लगाया जाता है। इस पेड़ के फल और पत्तियों में पाचन, स्वेदन और भेदन शक्तियाँ होती हैं। भारतवर्ष में इसकी पत्तियाँ और फल दुर्भिक्ष में खाए जाते हैं। नमक और मिर्च के साथ लोग पत्तियों का शाक बनाकर भी खाते हैं।

नाटकावनार—संज्ञा पुं० [सं०] किसी नाटक के अभिनय के बीच दूसरे नाटक का अभिनय। जैसा 'उत्तरगमनरित' में एक दूसरे नाटक का अभिनय दिखाया गया है।

विशेष—शेक्सपियर के 'हेमलेट' में भी इसी प्रकार अभिनय होता दिखाया गया है।

नाटकिया—संज्ञा पुं० [सं० नाटक + हि० ईया (प्रत्य०)] १. नाटक में अभिनय करनेवाला। स्वांग करनेवाला। बहुवचन।

नाटकी—संज्ञा पुं० [हि० नाटक] नाटक करनेवाला। नाटक करके जीविका करनेवाला। उ०—कहें नृत्यकारी नचि गावैं। कहें नाटकी स्वांग दिखावैं।—सबल (शब्द०)।

नाटकीय—वि० [सं०] १. नाटक संबंधी। नाटक के ढंग का। २. अभिनयपूर्ण। अभिनयात्मक (की०)।

नाटना^१—क्रि० प्र० [सं० नाट्य (=वहना)] किसी ऐसी बात को अस्वीकार कर जाना जिसके लिये वचन दिया हो। प्रतिभा प्रादि पर स्थिर न रहना। इनकार करना। निकल जाना।

नाटना^२—क्रि० प्र० [हि० नटना] अस्वीकार करना। इनकार करना। उ०—जो कोउ भरी धरोहरि नाटे। भय पच्छिन के पर जो काटै।—विश्राम (शब्द०)।

नाट्यसंन—संज्ञा पुं० [सं०] एक राग।

नाटा^१—वि० [सं० नत (=नीचा)] [वि० स्त्री० नाटी] जिसका शील ऊँचा न हो। छोटे शील का। छोटे कद का। (प्राणियों के लिये) जैसे, नाटा आदमी, नाटा बैल। उ०—नेपाल प्रादि उत्तराखंड के देशों में लोग नाटे होते हैं।—निबन्धप्रसाद (शब्द०)।

नाटा—संज्ञा पुं० [स्त्री० नाटी] छोटे शील का बैल या गाय। उ०—उ०—सिगरोह दूध पियो मेरे मोहन बनिहि देहु नहि बाटी। सूरदास नंद लेहु दोहनी दुहो खास की नाटी।—सूर (शब्द०)।

नाटा करंज—संज्ञा पुं० [हि० नाटा + करंज] एक प्रकार का करंज।

नाटार—संज्ञा पुं० [सं०] अभिनेत्री का पुत्र (की०)।

नाटाम्र—संज्ञा पुं० [सं०] तरतून।

नाटिक^(१)—संज्ञा पुं० [सं० नाट] नाटक। नाचनेवाला। उ०—कहै कबीर नट नाटिक थाके, मँदना कोन बनावै। गए पयनियाँ उरुरी बाजी को काहु के पावै।—कबीर ग्रं० पु० ११७।

नाटिका^१—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. एक प्रकार का दृश्य काव्य।

विशेष—यह एक प्रकार का नाटक ही है जिसमें चार भक्त होते हैं। पर इसकी कथा कल्पित होती है। नायिका राजकुलोद्भवा और नवानुरागिणी और नायक धीर लज्जित होता है। इसमें स्त्री पात्र अधिक होते हैं।

२. एक रागिनी।

विशेष—यह नटनारायण, हम्मीर और गद्दीरी राग के योग से बनती है और मंगुर्ग जाति की मानो जाती है। नारद के मत से यह कर्णाटकी और हनुमत के मत से दीपक की पत्नी है। इसका स्वरगाम यह है—सा, रे, ग, म, प, ध, नि, सा।

नाटिका^२—संज्ञा स्त्री० [सं० नाट्टी] दे० 'नाट्टी'। उ०—नाहीं पाँव नत्तु तुम साधा। नाहीं नवो नाटिका राधा।—सं० दरिया, पु० ४६।

नाटित^१—वि० [सं०] जिसका अभिनय किया गया हो। अभिनीत।

नाटित^२—संज्ञा पुं० अभिनय।

नाटितक—संज्ञा पुं० [सं०] १. अनुकृति। २. स्वांग। अभिनय (की०)।

नाटिन—संज्ञा स्त्री० [सं० नाटिनी] दे० 'नाटिनी'। उ०—नई नागरी नारि नाटिन नचावै।—धरनी०, पु० ६।

नाट्येय—संज्ञा पुं० [सं०] अभिनेत्री या नर्तकी का पुत्र। (की०)।

नाटेर—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'नाट्येय' (की०)।

नाटेश्वर—संज्ञा पुं० [हि० नाट + ईश्वर] नटराज। जिस। नाट्याचार्य। उ०—जैसे कोऊ अधनारी नाटेश्वर रूप धरे, एक बीज ही न दोह दालि नाभ पाए है।—मुंदर ग्रं०, भा० २, पु० ६५१।

नाट्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. नटों का काम। नृत्य गीत और वाद्य।

पर्या०—तीर्थत्रिक।

२. स्वांग के द्वारा चरित्रप्रदर्शन। अभिनय।

यौ०—नाट्यमंदिर। नाट्यभार। नाट्यशाला। नाट्यरासक। नाट्यशास्त्र।

३. नकल। स्वांग। चेष्टा के द्वारा प्रदर्शन।

क्रि० प्र०—करना।

४. वह नक्षत्र जिनमें नाट्य का आरंभ किया जाता है।

विशेष—धनुराषा, धनिष्ठा, पुष्य, हस्त चित्रा, स्वाती, ज्येष्ठा,

शतभिषा और रेवती इन नक्षत्रों में नाटक प्रारंभ करना चाहिए ।

५. अभिनेता का परिधान या वेशभूषा (को०) । ६. अभिनेता (को०) ।

नाट्यकार- मन्त्र पु० [म०] नाटक करनेवाला । नट ।

नाट्यधर- वि० [म०] अभिनेता का वेश धारण करनेवाला (को०) ।

नाट्यधर्मिका- मन्त्रा को० [सं०] अभिनय के नियम या विधान (को०) ।

नाट्यधर्मा- मन्त्रा को० [म०] दे० 'नाट्यधर्मिका' (को०) ।

नाट्यप्रिय- मन्त्रा पु० [म०] महादेव (जिन्हें नाचना प्रिय है) ।

नाट्यमंदिर- मन्त्रा पु० [म० नाट्यमन्दिर] नाट्यशाला ।

नाट्यरासक- संज्ञा पु० [म०] एक प्रकार का उपरूपक । दृश्य काव्य ।

विशेष- इसमें केवल एक ही भ्रंश होता है । नायक उदात्त, नायिका वाग्विभक्त, उपनायक पीठमंद होते हैं । इसमें भ्रंशक प्रकार के गान और नृत्य होते हैं ।

नाट्यवेद- मन्त्रा पु० [म०] अभिनयसंबंधी शास्त्र । नाट्यशास्त्र । (को०) ।

नाट्यवेदा- मन्त्रा को० [म०] १. रंगमंच । २. दृश्य (को०) ।

नाट्यशाला- मन्त्रा को० [म०] वह स्थान जहाँपर अभिनय किया जाय । नाटकघर ।

नाट्यशास्त्र- मन्त्रा पु० [म०] १. नृत्य, गीत और अभिनय की विद्या । २. एक प्राचीन ग्रंथ जिसकी रचना भरत मुनि ने की थी ।

विशेष- इसका उपदेश आदि में शिव जी ने ब्रह्मा जी को किया था । ब्रह्मा जी ने इन्द्र की प्रार्थना पर अनिरुद्धावतार ग्रहण करके नाट्यवेद नामक उपवेद की रचना की । इसी को गंधर्व-वेद भी कहते हैं । इसमें नृत्य-वाद्य-गीतादि की शिक्षा थी । ब्रह्मा जी से भरत मुनि ने यह उपवेद पाकर संसार में इसका प्रचार किया ।

नाट्यगंग- संज्ञा पु० [म० नाट्यगङ्गा] नाट्य के दस भ्रंश जिसके अंतर्गत गेयपद, स्थितपाठ्य, आसीन, पुष्पगंडिका, प्रच्छेदक, त्रिगुदक, भेषक, द्विगुदक, उन्मोक्तमरु, उक्तप्रमुक्त का समावेश है (को०) ।

नाट्यगंगा- संज्ञा पु० [म०] दे० 'नाट्यगङ्गा' (को०) ।

नाट्यगार्ह- मन्त्रा पु० [म०] नाट्यकला निवारण । अभिनय का निर्देशक । अभिनय की शिक्षा देनेवाला ।

नाट्यालंकार- मन्त्रा पु० [म० नाट्यालंकार] वह विशेष अलंकार जिसके आने से नाटक का सौंदर्य अधिक बढ़ जाता है ।

विशेष- साहित्यदर्पण में ऐसे अलंकारों की संख्या तीस मानी गई है—आज्ञोपदि, आत्रंश, कपट, असमा, गर्व, उद्यम, आश्रय, उत्प्रेक्षण, स्पृहा, क्षाम, परवात्ताप, उपपत्ति, मार्गसा, अध्यवसाय, विसर्प, मत्तत्व, उत्तेजन, परीवाद, नीति, अर्थविशेषण, पोस्तान्न, साहाय्य, अभिमान, अनुवर्तन, उत्कीर्तन, याचा, पारहार, निवेदन, प्रवर्तन, आख्यान, युक्ति, प्रहर्ष और शिक्षा (उपदेशन) ।

नाट्यालय- मन्त्रा पु० [सं०] दे० 'नाट्यशाला' । उ०—राजकुमा-

रियों के महलों के नाट्यालयों में—।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० २८ ।

नाट्यालायु- संज्ञा पु० [सं०] एक जाति की लोकी (को०) ।

नाट्योक्ति- संज्ञा को० [सं०] १. वे विशेष विशेष संबोधन शब्द जो विशेष विशेष व्यक्तियों के लिये नाटकों में आते हैं । जैसे,— ब्राह्मण के लिये भार्य, क्षत्रिय के लिये महाराज, पति के लिये आर्यपुत्र, राजा के सारे के लिये राष्ट्रीय, राजा के लिये देव, वेश्या के लिये अज्जका, कुमार के लिये युवराज, विद्वान् के लिये भाव । २. नाट्यसंबंधी उक्ति । जैसे,—स्वगत, प्रकाश, अद्वैत, जनांतिक (को०) ।

नाठ(१)—संज्ञा पु० [म० नष्ट, प्रा० नट्ट] १. नाश । ध्वंस । २. अभाव । अस्तित्व । ३. वह जायदाद जिसका कोई वारिस न हो ।

मुहा०—नाठ पर बैठना = किसी लावारिस माल का अधिकारी होना ।

नाठना(१)—क्रि० सं० [सं० नष्ट, प्रा० नट्ट] नष्ट करना । ध्वस्त करना । उ०—मुनि प्रति विकल मोह मति नाठी । मनि निरि गई छूटि जनु गठी ।—तुलसी (शब्द०) ।

नाठना(२)—क्रि० प्र० नष्ट होना । ध्वस्त होना ।

नाठना(३)—क्रि० प्र० [हि० नाटना] भागना । हटना । उ०—(क) को'ट पापी इक पासंग मेरे अजामिल कोन बेचारी । नाठयी धर्म नाम सुनि मेरो नरक दियो हठि तारो ।—सूर (शब्द०) । (ख) राम से साम किए नित है हित, कोमल काज न कोजिए टांठि । आपान सूझि वही पिय बूझिए छूझिबे जोग न ठाहुर नांठे ।—तुलसी (शब्द०) ।

नाठा- संज्ञा पु० [म० नष्ट] वह जिसके आगे पीछे कोई वारिस न हो ।

नाङ्क(१)—संज्ञा को० [सं० नाल, नाड] घीवा । गर्दन । दे० 'नार' ।

नाङ्क(२)—संज्ञा को० [सं० नाड] मोटी डोरी या रस्सी । पणहा । उ०—लाता मारियो पिच्छाङ्क । गल में घाल धीस्यो नाङ्क ।—राम० धर्म०, पृ० १६७ ।

नाङ्का—संज्ञा पु० [म० नाड] १. सूत की वह मोटी डोरी जिससे स्त्रियाँ बाँधरा या धोती बाँधती हैं । डजारबंद । नीबी ।

मुहा०—(किसी का) नाङ्का खोलना = संभोग करने के लिये नीबी खोलना । संभोग करना (मारवाड़ स्थि०) । नाङ्का छूट करना = पेशाब करना (मारवाड़ स्थि०) ।

२. नाल या पोला रंगा हुआ गडदार सूत जो देवताओं को चढ़ाया जाता है । कलाया । कलाबा ।

नाट्यधर्म(१)—वि० [सं० नाट्यधर्म] १. नली को फूँकनेवाला । २. नाट्यों को हिलानेवाला । ३. श्वास को जल्दी जल्दी चलानेवाला । हँफानेवाला । ४. जिसे देखते ही नाड़ी हिल जाय । दहलानेवाला । अयंकर ।

नाट्यधर्म(२)—संज्ञा पु० सोनार ।

नाट्यधर्म(३)—वि० [सं० नाट्यधर्म] नलिका द्वारा पीने या चूसनेवाला (को०) ।

नाड़ी—संज्ञा स्त्री० [सं० नाडि] १. नाड़ी । २. नली (को०) ।

नाड़िक—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. एक प्रकार का साग जिसे पटुभा भी कहते हैं । २. नाड़ी । ३. घटिका । दंड ।

नाड़िका—संज्ञा स्त्री० [सं० नाडिका] १. घड़ी का काल । घड़ी । २. नली (को०) । ३. किसी वनस्पति का तने या विस्तार का वह भाग जो भीतर पोला होता है । पोला अंठल (को०) । ४. नासूर (को०) । ५. सूर्यकिरण (को०) । ६. घड़ियाल जिसे बजाकर घड़ी बीतने की सूचना दी जाती है (को०) । ७. भाषे दंड का कालमान (को०) ।

नाड़िकेल—संज्ञा पुं० [सं० नाडिकेल] दे० 'नारियल' ।

नाड़िपत्र—संज्ञा पुं० [सं० नाडिपत्र] एक माक (को०) ।

नाड़िया—संज्ञा पुं० [सं० नाडी] (नाड़ी पकड़नेवाला) वैद्य । चिकित्सक ।

नाड़ी—संज्ञा स्त्री० [सं० नाडी] १. नली । २. साधारणतः शरीर के भीतर की वे नलियाँ जिनमें होकर रक्त बहता है, विशेषतः वे जिनमें हृदय से शुद्ध रक्त क्षण क्षण पर जाता रहता है । धमनी ।

विशेष—वे नलियाँ, जिनसे शरीर भर में रक्त का प्रवाह होता है, दो प्रकार की होती हैं—एक वे जो शुद्ध रक्त को हृदय से लेकर और सब अंगों को पहुँचाती हैं, दूसरी वे जो सब अंगों से अशुद्ध रक्त को इकट्ठा करके उसको हृदय में प्राणवायु के द्वारा शुद्ध होने के लिये छोटाकर ले जाती हैं । पहले प्रकार की नलियाँ ही विशेषतः नाड़ियाँ कहाँ जाती हैं । क्योंकि स्पंदन अधिकतर उन्हीं में होता है । अशुद्ध रक्त को हृदय में पहुँचानेवाली नलियों या शिराओं में प्रायः स्पंदन नहीं होता । अशुद्ध रक्तवाहिनी शिराओं के द्वारा अशुद्ध रक्त हृदय के दाहिने कोठे में पहुँचता है, वहाँ से फिर वह फुफ्फुस में जाता है, फुफ्फुस में वह शुद्ध होता है । शुद्ध होने पर वह फिर हृदय के बाएँ कोठे में पहुँचता है । हृदय का क्षण क्षण पर आकुंचन और प्रसारण होता रहता है—वह बराबर सिकुड़ता और फैलता रहता है । हृदय जिस क्षण सिकुड़ता है उसमें भरा हुआ रक्त बृहत्प्राणी के खुरे मुँह में क्षिप्त होता है और फिर बड़ी नाड़ी से उसकी शाखा प्रणालियों में पहुँचता है । सबसे पतली नाड़ियाँ इतनी सूक्ष्म होती हैं कि सूक्ष्मदर्शक यंत्र के बिना नहीं देखी जा सकती । नाड़ियाँ अधिकतर मांस और पोले तंतुओं की बनी हुई होती हैं । अतः इनमें लचीलापन होता है—ये खींचने से बढ़ जाती हैं । अधिक भर जाने पर अर्थात् भीतर से जोर पड़ने पर ये फैलकर चौड़ी हो जाती हैं और जोर हटने पर फिर उ्यों की ग्यौं हो जाती हैं । हृदय का बायाँ कोठा सिकुड़कर बड़े वेग के साथ १२ छंटाक रक्त बड़ी नाड़ी में ढकेलता है । नाड़ियों में तो हर समय रक्त भरा रहता है, अतः जब बड़ी नाड़ी में यह बड़े छंटाक रक्त पहुँचता है तब हृदय के समीप का भाग बढ़कर फैल जाता है । फिर जब रक्त का दूसरा ओंका हृदय से जाता है तब उसके आगे का भाग फैलता है । इसी

आकुंचन प्रसारण के कारण नाड़ियों में स्पंदन या गति होती है । यह स्पंदन बड़ी नाड़ियों में ही मालूम होता है, छोटी छोटी नलियों में नहीं; क्योंकि अत्यंत सूक्ष्म नाड़ियों में पहुँचते पहुँचते लहरों का वेग बहुत कम हो जाता है—और फिर जब शिराओं में यही रक्त अशुद्ध होकर पलटता है तब लहर रह ही नहीं जाती । जब कोई नाड़ी कट जाती है तब उसमें से रक्त उछल उछलकर निकलता है; जब कोई अशुद्ध रक्तवाहिनी शिरा कटती है तब उसमें से रक्त धीरे धीरे निकलता है । नाड़ियों के भीतर का रक्त लान होता है पर अशुद्ध रक्तवाहिनी शिराओं के भीतर का रक्त कालापन लिए होता है ।

नाड़ियों का स्पंदन या फड़क इन स्थानों में उँगली दबाने से मालूम हो सकती है—कनपटी में, मोवा में के टेंड्रु क दहने और बाएँ, उम्रंघि के बीच, पैर के अंगूठे की ओर के मट्टे के नीचे, शिरन के ऊपर की तरफ, कलाई में और बाहु में (बगल की ओरवाल किनारे में) ।

नाड़ी एक मिनट में उतनी ही बार फड़कती है जितनी बार हृदय धड़कता है । नाड़ीपरीक्षा से हृदय और रक्तभ्रमण की दशा का ज्ञान होता है, उसमें नाड़ियों और हृदय के तथा और भी कई अंगों के रोगों का पता लग जाता है ।

आयुर्वेद के ग्रंथों में रक्तवाहिनी नलियों के स्पष्ट और ठीक विभाग नहीं किए गए हैं । सुश्रुत ने ७०० शिराएँ लिखी हैं जिनमें ४० मुख्य हैं—१० रक्तवाहिनी, १० कफवाहिनी, १० पित्तवाहिनी और १० वायुवाहिनी । इसके अतिरिक्त शुद्ध और अशुद्ध रक्त के विचार से कोई विभाग नहीं किया गया है । २४ धमनियों के जो ऊर्ध्वगामिनी, अधोगामिनी और तिर्यग्गामिनी ये तीन विभाग किए गए हैं, उनमें भी उपयुक्त विभाग नहीं हैं । सुश्रुत ने शिराओं और धमनियों का मूल स्थान नाभि बतलाया है । आयुर्वेदिक प्रत्यक्ष शारीरिक की दृष्टि से कुछ लोगों ने शुद्ध रक्तवाहिनी नाड़ियों का 'धमनी' नाम रखा दिया है । यह नाम सुश्रुत आदि के अनुकूल न होने पर भी उपयुक्त है क्योंकि धात्वय के यदि विचार किया जाय तो 'धम' कहते हैं 'धोकने' या 'फूँकने' का । जिस प्रकार धोकने फूँकती और पचकती है उसी प्रकार शुद्ध रक्तवाहिनी नाड़ियाँ भी । दे० 'शिरा', 'धमनी' ।

नाड़ीपरीक्षा का विषय भी सुश्रुत में नहीं मिलता है, इधर के ही ग्रंथों में मिलता है । प्रायः ग्रंथों में न होने पर भी पीछे आयुर्वेद में नाड़ीपरीक्षा को बड़ी प्रधानता दी गई, यहाँ तक कि 'नाड़ीप्रकाश' नाम का स्वतंत्र ग्रंथ हो इस विषय पर लिखा गया ।

मुहा०—नाड़ी चलना = कलाई की नाड़ी में स्पंदन या गति होना ।

विशेष—नाड़ी का उछलना प्राण रहने का चिह्न समझा जाता है और उसके अनुसार रोगी की दशा का भी पता लगाया जाता है ।

नाड़ी छूट जाना = (१) नाड़ी का न चलना । दबाकर छूने

से नाड़ी में गति न मान्य होना । (२) प्राण न रह जाना । मृत्यु हो जाना । (३) संज्ञा न रहना । मूर्च्छा आना । बेहोशी आना । नाड़ी देखना = कलाई की नाड़ी दबाकर रोगी की अवस्था का पता लगाना । नाड़ीपरीक्षा करके रोगी का निदान करना । नाड़ी धरना या पकड़ना = दे० 'नाड़ी देखना' । नाड़ी दिखाना या धराना = रोग के निदान के लिये वैद्य में नाड़ीपरीक्षा कराना । नख दिखाना । नाड़ी न बोलना = (१) नाड़ी न चलना । नाड़ी में गति न मान्य होना । (२) प्राण न रहना । (३) मूर्च्छा आना । बेहोशी आना ।

३ हठयोग के अनुसार जानवाहिनी, शक्तिवाहिनी और श्वास-प्रश्वास-वाहिनी नालियाँ ।

विशेष—योगियों का कहना है कि मेरुदण्ड या रीढ़ के एक हम तरफ और एक उग तरफ ऐसी दो नालियाँ हैं । इनमें जो बाईं ओर है उग हला या दड़ा ओर जो दाहिनी ओर है उसे पिगला कहते हैं । इन दोनों के बीच में गुग्गुना नाम की नाड़ी है । स्वरोदय तथा तत्र के अनुसार बाएँ नयुने से जो साँस आती जाती है वह दड़ा नाड़ी से होकर और दाहिने नयुने से जो निरनली है वह पिगला से होकर । यदि श्वास कुछ क्षण बाएँ ओर कुछ क्षण दाहिने नयुने से निकले तो समझना चाहिए कि वह गुग्गुना नाड़ी से आ रहा है । श्वास की गति के अनुसार स्वरोदय में शुभाशुभ फल भी कहे गए हैं । इत्यादि नाड़ी में चंद्र की अवस्थिति रहती है और पिगला में सूर्य की । अतः इत्यादि का गुण भीतर पिगला का उगण है । गुग्गुना नाड़ी त्रिगुणमयी और चद्रसूर्याग्नि स्वरूपा है । यह नाड़ी ब्रह्मस्वरूपा है, इसी में जगत् प्रतिष्ठित है । बिना इन नाड़ियों के ज्ञान के योगाभ्यास में निम्निलिप्ती प्राप्त हो सकती । जो योगाभ्यास करना चाहते हैं वे पहले दड़ा, फिर पिगला और फिर गुग्गुना को लेकर चलते हैं । गुग्गुना के सबसे नीचे के भाग की योगी कुंडलिनी मानते हैं जिसे जगान का गम वे करते हैं । सब पूर्ण हो तो तर्फी को जगाने के लिये ही योग का अभ्यास किया जाता है । जाग्रत होनेपर कुंडलिनी अंचल होकर गुग्गुना नाड़ी के भीतर भीतर सिर की ओर चढ़ने लगती है और बारह वर्ष की पार करती हुई ब्रह्मरंध्र तक चली जाती है । जैसे जैसे वह ऊपर की ओर चढ़ती जाती है, योगी के मन्त्रात्मिक ध्यान से पड़ते जाते हैं और यत्नोक्त शक्तियों उसे प्राप्त होती जाती हैं, यह तक के मन और शरीर से उसका संबंध नष्ट जाता है और वह परमानंद में मग्न होकर परमात्मा का स्वरूप देखने लगता है ।

निश्चर—त्रय म इस नाड़ियों लिली हैं जिनमें ऊपर लिखी तीन मुख्य हैं । धरंदासः ग आदि योग के श्रमों को देखने से पता लगता है कि धरंदास भी नाड़ियों के संतर्गत मानी गई है । प्रज्ञाजन क्रिया में शक्तिवाहिनी नाड़ी को निकालकर उसके भीतर के मूल की घोने का विधान है ।

थी०—नाड़ीचरण ।

४. ब्रह्मरंध्र । नासुर का छेद ।

५. बंदूक की नली । ६. काल का एक मान जो छह क्षण का होता है । ७. गंडदूर्वा । ८. वंशपत्री । ९. किसी तृण का पोला डंठल । १०. छप्प । कपट । मक्कारी । ११. वर वधू की गणना बैठाने में कल्पित चक्रों में स्थित नक्षत्रसमूह । दे० 'नाडीनक्षत्र' । १२. मृणाल । पद्मदंड (को०) । १३. घड़ी (को०) । १४. फूँककर बजाया जानेवाला (वंशी आदि) वाद्य (को०) । १५. चमड़े की नली (को०) । १६. बुनकरों का एक औजार (को०) ।

नाड़ीक—संज्ञा पुं० [सं० नाडीक] एक प्रकार का साग । पटुषा साग ।

नाड़ीकलापक—संज्ञा पुं० [सं० नाडीकलापक] सर्पाक्षी । भिड़नी नाम की घास ।

नाड़ीकूट—संज्ञा पुं० [सं० नाडीकूट] नाडीनक्षत्र ।

नाड़ीकेल—संज्ञा पुं० [सं० नाडीकेल] नारियल ।

नाड़ीच—संज्ञा पुं० [सं० नाडीच] पटुषा साग ।

नाड़ीचक्र—संज्ञा पुं० [सं० नाडीचक्र] १. हठयोग के अनुसार नाभिदेश में कल्पित एक घंटाकार गाँठ जिससे निकलकर सब नाड़ियाँ फैली हैं । २. कलित ज्योतिष में नक्षत्रों के उन भेदों को सूचित करनेवाला कोष्ठ या चक्र जिन्हें नाड़ी कहते हैं । दे० 'नाडीनक्षत्र' ।

नाड़ीचरण—संज्ञा पुं० [सं० नाडीचरण] पक्षी ।

नाड़ीचीर—संज्ञा पुं० [सं० नाडीचीर] १. एक प्रकार का छोटा नरसज । २. बुनकरों का वह पोला औजार जिसमें कपड़े का बुना हुआ भाग लिपटता जाता है (को०) ।

नाड़ीजंघ—संज्ञा पुं० [सं० नाडीजंघ] १. काक । कोषा । २. एक मुनि का नाम । ३. महाभारत के अनुसार एक बगला जो कश्यप का पुत्र, ब्रह्मा का अत्यंत प्रिय पात्र और दीर्घजीवी था ।

नाड़ीतरंग—संज्ञा पुं० [सं० नाडीतरङ्ग] १. काकोल । २. हिडक । ३. लपट । व्यभिचारी (को०) । ४. ज्योतिषी (को०) ।

नाड़ीतित्त—संज्ञा पुं० [सं० नाडीतित्त] नेपाली नीम । नेपाल-निब ।

नाड़ीदेह^१—संज्ञा पुं० [सं० नाडीदेह] अत्यंत दुबला पतला ।

नाड़ीदेह^२—संज्ञा पुं० शिव के एक द्वारपाल का नाम ।

नाडीनक्षत्र—संज्ञा पुं० [सं० नाडीनक्षत्र] वरवधू की गणना बैठाने के लिये कल्पित चक्रों में स्थित नक्षत्र । (कलित ज्योतिष) ।

विशेष—जिस नक्षत्र में मनुष्य का जन्म होता है । उसे तथा उससे सबसे, सोलहवें, अठारहवें, तेईसवें और पच्चीसवें नक्षत्र को नाडीनक्षत्र या नाड़ी कहते हैं । जन्म नाड़ी को प्राण, वसवों को कर्म, सोलहवें को सांघातिक, अठारहवें को समुद्रय, तेईसवें को विनाश और पच्चीसवें को मानस कहते हैं ।

नाड़ीपरीक्षा—संज्ञा स्त्री० [सं० नाडीपरीक्षा] रोग का निदान करने में वैद्य द्वारा नाड़ी देखने का कार्य (को०) ।

नाडीपात्र—संज्ञा पु० [सं० नाडीपात्र] एक प्रकार की जलघड़ी [को०] ।
नाडीमंडल—संज्ञा पु० [सं० नाडीमण्डल] विपुल रेखा । आकाशीय
क्रांतिवृत्त ।

नाडीयंत्र—संज्ञा पु० [सं० नाडीयंत्र] सूक्ष्म के अनुसार अस्त्र-
चिकित्सा या चौरफाड़ का एक औजार को शरीर की नाड़ियों
या श्रोतों में घुसा हुई चीज को बाहर निकालने के काम में
आता था ।

नाडीवल्लय—संज्ञा पु० [सं० नाडीवल्लय] काल या समय निश्चित
करने का एक यंत्र । एक प्रकार की घड़ी । (सिद्धांतशिरो-
मणि) ।

नाडीविग्रह—संज्ञा पु० [सं० नाडीविग्रह] शिव का एक भृंगी जो
अत्यंत क्रूरकाय था । नाडीदेह [को०] ।

नाडीवृत्त—संज्ञा पु० [सं० नाडीवृत्त] १. क्रांतिवृत्त । २. एक प्राचीन
समयसूचक यंत्र [को०] ।

नाडीव्रण—संज्ञा पु० [सं० नाडीव्रण] वह घाव जिसमें भीतर ही
भीतर नली की तरह छेद हो जाय और उसमें से बराबर
मवाद निकला करे । नापूर ।

नाडीशाक—संज्ञा पु० [सं० नाडीशाक] पट्टा शाक ।

नाडीसंस्थान—संज्ञा पु० [सं० नाडीसंस्थान] नाडीमाल [को०] ।

नाडीस्नेह—संज्ञा पु० [सं० नाडीस्नेह] दे० 'नाडीदेह' [को०] ।

नाडीस्वेद—संज्ञा पु० [सं० नाडीस्वेद] नलिका द्वारा संचालित वाष्प-
स्नान [को०] ।

नाडीहिंगु—संज्ञा पु० [सं० नाडीहिङ्गु] १. एक वृक्ष जिसमें से एक
प्रकार की हींग या गोंद निकलता है ।

विशेष—यह गोंद औषध के काम में आता है । इस वृक्ष के पत्ते
बदमोगरा के पत्ते जैसे होते हैं, फूल मफेद और कल पोस्ते
के ढेड़ के समान होते हैं ।

२. उस वृक्ष से निकली हींग या गोंद ।

विशेष—वैद्यक में यह हींग चरपरी, तीक्ष्ण, उष्ण, अग्निनीपक,
तथा कफ, वात और मोह को दूर करनेवाली मानी गई है ।

पर्या०—पलाशारुच । अंतुका । गमडी । वंशपत्ती । पिडाह्वा ।
सुवीर्या । वेणुपत्री । पिडा । हिगु । शिवाटिका । डिगुनाटिका ।

नादूदाना—संज्ञा पु० [देश०] जैलों की एक जाति जो मैसूर में
होती है ।

विशेष—इस जाति के बेल बहुत बड़े नहीं होते पर मेहनती
और मजबूत अधिक होते हैं ।

नाडूक—संज्ञा पु० [सं० नाडूक] १. घातु । २. निष्क । २. अंकित
मुद्रा । सिक्का ।

नाणक—संज्ञा पु० [सं०] सिक्का । प्राचीन भारत का सिक्का [को०] ।

यौ०—नाणकपरीक्षा = सिक्के के छोटे छरे होने की जाँच ।

नाणकपरीक्षी = सिक्के की परख करनेवाला व्यक्ति ।

नाणा—संज्ञा पु० [सं० नाणक] १. रुपया पैसा । धन दोलत ।

उ०—नरहर समरतां जह बीते नाणों, सबसूँ तिको न
लेवे ।—रघु० क०, पु० २७ । २. खरीज । खुदरा । छोटे
सिक्के जिनसे बड़े सिक्कों को भुनाया जाता है ।

नाता—संज्ञा पु० [सं० ज्ञानि, प्रा० एणाति] १. नातेदार । संबंधी ।

उ०—जब राजा भाय तेहि पाहीं । बिना बुलाए नात न
जाहीं ।—रघुराज (शब्द०) २. नाता । संबंध । उ०—
यह विचार नहिं करहुँ हठ भूठ सनेह बढ़ाई । मानि मातु कर
नात बलि सुरनि बिसरि जानि जाई ।—तुलसी (शब्द०) ।

नातर—संज्ञा पु० [हि० नातर] ३० 'नातर' । उ०—आतु
विष्णु कहा मुन मोरा । नातर चक्षु हीन होय तोरा ।—
कबीर सा०, पु० ६७ ।

नातरा—संज्ञा पु० [हि० नात + रा (प्रत्य०)] १. दे० 'नाता' ।
२. विवाह संबंध । ३. विधवा के साथ विवाह । उ०—रीणो
राजाजू कहइ, ओ महीं नातरउ कीध ।—ढोला०, दू० ३ ।

नातरु—अव्य० [हि० न + तो + प्ररु] और नहीं तो । अन्यथा ।
उ०—(क) भली भई जो मुह मिले नातर होती हानि ।
दीपक ज्योति पतंग ज्यों पड़ता आप निदान ।—कबीर
(शब्द०) । (ख) कोऊ खवाये तो कष्ट जाहीं । नातर
बैठे ही रहि जाही ।—सूर (शब्द०) । (ग) नातर
हों करिहो बनवाग । तैही योग छाँडि सब आस ।—
लम्हू (शब्द०) ।

नातर्वा—वि० [फा०] दुर्बल । हीन । निर्बल । अशक्त ।

नातवान—वि० [फा० नातवा] ३० 'नातवा' । उ०—(क)
नातवान तन पे सुनो एती नाकत है न । भत भूकाव भों
सामुहै गज भतवारै नैन ।—रसनिधि (शब्द०) । (ख)
मे नातवान हुआ इस कदर कि मुह से । न लब से नाखा
सीने से आह निकले है ।—कविता को०, भा० ४, पु० ४५ ।

नाता—संज्ञा पु० [सं० ज्ञाति, प्रा० एणाति, हि० नात] १. वो
या कई मनुष्यों के बीच यह लगाव जो एक ही कुल में उत्पन्न
होन या विवाह आदि के कारण होता है । कुटुंब की
घनिष्ठता । जाति संबंध । रिश्ता ।

क्रि० प्र०—जोड़ना ।—दूटना ।—तोड़ना ।—लगावा ।

२. संबंध । लगाव । उ०—(क) कह रघुनाथ सुनु भामिनि
जाता । मानउ एक अगति कर नाता ।—तुलसी (शब्द०) ।
सुरदास सिय राम लखन बन कहा अन्ध सों नाता ।
—सूर (शब्द०) ।

यौ०—नाता गोत = स्वजन । संबंधी । उ०—अभी तो इनके
नाते गोते के लोग फेरे के लिये आ जा रहे हैं ।—भासी०,
पु० १५७ ।

नाताकत—वि० [फा० ना + क + ताकत] जिसे ताकत या बल
न हो । निर्बल । अशक्त ।

नाताकती—संज्ञा स्त्री [फा० ना + क + ताकत + फा० ई (प्रत्य०)]
नाताकत होने का भाव । दुर्बलता । कमजोरी ।

नातिदूर—वि० [सं०] जो बहुत दूर न हो । कुछ ही दूर का ।

उ०—उमसे नानिदूर मोहार का जवमा भी कुछ इसी तरह का है।—किन्नर०, पृ० ४७।

नातिन—संज्ञा स्त्री० [हि० नानी] लड़की की लड़की। बेटी की बेटी।

नाती—संज्ञा पुं० [सं० नपु० प्रा० नति] [स्त्री० नतिनी, नातिन] लड़की या लड़के का लड़का। नमा। बेटी या बेटे का बेटा।

उ०—(क) नाती पून कोटि दम ग्रहा। रोवनहार न एकी रहा।—जायसी (शब्द०)। (ख) उत्तम कुल पुलस्त्य कर नाती।—तुलसी (शब्द०)।

नाते—क्रि० वि० [हि० नाता] १. संबंध से। उ०—सखि हमरे पारति पति ताते। कबहुँक ए भावहि एहि नाते।—तुलसी (शब्द०)। २. हेतु। वास्ते। लिये। उ०—दूध दही के नाते बनवत बातें बहुत गोपाल। गढ़ि गढ़ि छोलत कहा रावरे लूटत हो ब्रजबाल।—सूर (शब्द०)।

नातेदार—वि० [हि० नाता + फा० दार (प्रत्य०)] [संज्ञा नातेदारी] संबंधी। रिश्तेदार। सगा। उ०—हे सुन है नहि दुःख को सामा। नातेदार मोरि नब भामा। गोपाल (शब्द०)।

नात्र—संज्ञा पुं० [सं०] शिव।

नात्राती—संज्ञा पुं० [राज० नाता + रा (प्रत्य०)] राजपूतों की एक जाति। उ०—उनमें नाता (नात्रा = विषदा विवाह) होता है, जिससे वे नात्रान (नात्रायत) राजपूत कहलाते हैं।—राज०, पृ० ५०४।

नाथ—संज्ञा पुं० [सं०] १. प्रभु। स्वामी। अधिपति। मालिक। २. पति। ३. वह रस्सी जिसे वेन भेंसे घाटि की नाक छेदकर उसमें इसलिये डाल देते हैं जिसमें वे वन में रहें। उ०—रंगनाथ हो जाकर हाथ मोही के नाथ। गहे नाथ सो खींचे फेरत फिरे न माथ।—जायसी (शब्द०)। ४. मत्स्येन्द्रनाथ के अनुयायी योगियों की एक उपाधि। गोरक्षपंथी साधुओं की एक पदवी जो उनके नामों के साथ ही मिली रहती है। ५. नाथ सिद्धों का परम तत्व। उ०—पिंड प्राण की रक्षा श्री नाथ निरंजन करे।—रामानंद०, पृ० ३। ६. एक प्रकार के मदारी जो साथ पालते और नचाते हैं।

मुहा०—नाथ पड़ना = जिम्मेदारी भाना।

नाथ^२—संज्ञा स्त्री० [हि० नाथना] १. नाथने की क्रिया या भाव। उ०—रंगनाथ हो जाकर हाथ मोही के नाथ। गहे नाथ सो खींचे फेरत फिरे न माथ।—जायसी (शब्द०)।

नाथ^३—संज्ञा स्त्री० [हि० नाथ] दे० 'नाथ'। उ०—परी नाथ कोइ धुवे न पारा। मारण मानुस सोन उछारा।—जायसी (शब्द०)।

नाथता—संज्ञा स्त्री० [सं०] प्रभुता। स्वामित्व।

नाथत्व—संज्ञा पुं० [सं०] प्रभुत्व। स्वामित्व।

नाथद्वारा—संज्ञा पुं० [सं० नाथद्वार] उदयपुर राज्य के भंतर्गत बृत्तनाथ संप्रदाय के वैष्णवों का एक प्रसिद्ध स्थान जहाँ श्रीनाथजी की मूर्ति स्थापित है।

विशेष—श्रीरंगदेव ने जब मथुरा की सब कृष्णमूर्तियों को तोड़ने

का विचार किया तब सन् १९७१ में उदयपुर के महाराणा राजसिंह श्रीनाथ जी की मूर्ति को मथुरा से उदयपुर की ओर लेकर भूमधाम के साथ चले। इस स्थान पर जब रथ पहुँचा तब पहिया कीचड़ में धँस गया। लोगों ने कहा कि श्रीनाथजी की उच्छ्वा इसी स्थान पर रहने की है। महाराणा ने भारी मंदिर बनवाकर मूर्ति वहीं स्थापित कर दी।

नाथना—क्रि० सं० [हि० नाथ] १. वेन, भेंसे आदि की नाक छेदकर उसमें इसलिये रस्सी डालना जिसमें वे वन में रहें। नकेल डालना। नाक छेदना। उ०—(क) बाजु ससे राखन दस मथा। बाजु कान्हु कारे फन नाथा।—जायसी (शब्द०)। (ख) काली नाग नाथि हरि लाए सुरभी गवाल जिवाए।—सूर (शब्द०)। (ग) सास वैज नाथन के कारण प्राप भयोध्या आए।—सूर (शब्द०)।

संयो० क्रि०—देना।

मुहा०—नाक पकड़कर नाथना = बलपूर्वक वश में करना।

२. किसी वस्तु को छेदकर उसमें रस्सी या तागा डालना। ३. किसी वस्तु या कई वस्तुओं के कई भागों को छेदकर रस्सी या तागे के द्वारा एक में जोड़ना। नथी करना। जैसे—इन सब कागजों को एक में नाथकर रख दो। ४. लड़ी के रूप में जोड़ना।

नाथवत्—वि० [सं०] १. स्वामी या रक्षक से युक्त। २. पराधीन [को०]।

नाथवान्—वि० [सं० नाथवत्] दे० 'नाथवत्'।

नाथ संप्रदाय—संज्ञा पुं० [सं० नाथ + सम्प्रदाय] गोरक्षनाथ का चलाया हुआ एक पंथ। उ०—नाथ संप्रदाय के आदि प्रवर्तक 'आदिनाथ' शिव ही कहे जाते हैं।—पृ० म० भा०, पृ० ३३४।

नाथहरि—संज्ञा पुं० [सं०] पशु।

नाथित—संज्ञा पुं० [सं०] प्रार्थना। मनुरोध। याचना [को०]।

नाद—संज्ञा पुं० [सं०] १. शब्द। स्वन। आवाज। २. बणों का अत्यन्त मूल रूप।

विशेष—संगीत के आचार्यों के अनुसार आकाशमय अग्नि और मरुत् के संयोग से नाद की उत्पत्ति हुई है। जहाँ प्राण (वायु) की स्थिति रहती है उसे ब्रह्मर्षि कहते हैं। संगीतदर्पण में लिखा है कि आत्मा के द्वारा प्रेरित होकर चित्त देहत्र अग्नि पर आधान करता है और अग्नि ब्रह्मर्षिगत प्राण को प्रेरित करती है। अग्नि द्वारा प्रेरित प्राण फिर ऊपर चढ़ने लगता है। नाभि में पहुँचकर वह अति सूक्ष्म, हृदय में सूक्ष्म, गलदेश में पुष्ट, शीर्ष में प्रपुष्ट और मुख में कृत्रिम नाद उत्पन्न करता है। संगीत शास्त्रों में नाद तीन प्रकार का माना गया है—प्राणिमय, अप्राणिमय और उभयसंभव। जो मुख आदि अंगों से उत्पन्न किया जाता है वह प्राणिमय, जो बीणा आदि से निकलता है वह अप्राणिमय और जो बाँसुरी से निकाला जाता है वह उभयसंभव है। नाद के बिना गीत, स्वर, राग आदि कुछ भी

संभव नहीं। ज्ञान भी उसके बिना नहीं हो सकता। अतः नाद परज्योति वा ब्रह्मरूप है और सारा जगत् नादात्मक है। इस दृष्टि से नाद दो प्रकार का है - अनाहत और अनाहत। अनाहत नाद को केवल योगी ही सुन सकते हैं।

हठयोग दीपिका में लिखा है कि जिन मुठों को तत्त्वबोध न हो सके वे नादोपासना करें। अंतस्थ नाद सुनने के लिये चाहिए कि एकाग्रचित्त होकर शांतिपूर्वक आसन जमाकर बैठें। आँख, कान, नाक, मुँह सबका व्यापार बंद कर दे। अभ्यास की अवस्था में पहले तो मेघगर्जन, भेंगी आदि की सी गंभीर ध्वनि सुनाई पड़ेगी, फिर अभ्यास बढ़ जाने पर क्रमशः वह सूक्ष्म होती जायगी। इन नाना प्रकार की ध्वनियों में से जिसमें चित्त सबसे अधिक रमे उसी में रमावे। इस प्रकार करते करते नादरूपी ब्रह्म में चित्त लीन हो जायगा।

१. वरुण के उच्चारण में एक प्रयत्न जिसमें कंठ न तो बहुत फैलाकर न संकुचित करके वायु निकालनी पड़ती है। ४. अनुस्वार के समान उच्चारित होनेवाला वरुण। सानुनासिक स्वर। अर्धचंद्र।

पर्याय—अर्धचंद्र। अर्धमात्रा। कलाराशि। सदाशिव। अनुस्वर्या। तुरीया। परा। विश्वमानुकला।

५. संगीत।

यौ०—नादविद्या=संगीत शास्त्र।

नादना^१—वि० सं० [सं० नदन या हि० नाद] नवाना। उ०—(क) काट बीन गद्गा कर काट नाद सुदंभ। सब दिन अनेक बधावा रहस कूद हक संग।—जायसी (शब्द०)। (ख) इन ही के आए ते बधाए अत्र नित नए नादत बढ़त सब सब सुख जियो है।—तुलसी (शब्द०)।

नादना^२—क्रि० प्र० १. बजना। शब्द करना। उ०—शून्य ज्ञान सुपुप्ती होय। अकुलाहट सना ही तोय।—कबीर (शब्द०)। २. चिल्लाना। गरबना। ल०—मनु करि दन लखि दूद हरि नादि उठयो कंदर निकर। गोपाल (शब्द०)।

नादना^३—क्रि० प्र० [सं० नन्दन] लहकना। लड़काना। प्रफुल्लित होना। उ०—नैकु न जानी परति यों परयो बिहू तन माय। लठति दिया लो नादि हरि निह तिहारी नाम।—बिहारी (शब्द०)।

नादमुद्रा—संज्ञा पुं० [सं०] तंत्र की एक मुद्रा।

विशेष—इसमें दाहिने हाथ की मुट्ठी बाँधकर अँगूठे को ऊपर की ओर उठाए रहना पड़ता है।

नादवान्—वि० [सं० नादवत्] स्वरमय। ध्वनिमय। ध्वनित (की०)।

नादली—संज्ञा स्त्री० [प्र० नाद + ली] संग अथवा नामक पत्थर की चौकोर टिकिया जिसपर कुरान की एक विशेष आयत खुदी रहती है और जिसे गोगवाधा दूर करने के लिये यंत्र की तरह पहनते हैं। होलबिली।

विशेष—आयत का आरंभ 'नाद अलियन' इस वाक्य से होता है। इसी से यंत्र को नादली कहते हैं। हकीमों का कथन है कि

उक्त पत्थर में कसेजे की घड़क आदि दूर करने का विशेष गुण है। छाती पर समका संसर्ग रहने से होलबिल तथा दिस घड़कने की बीमारी अच्छी हो जाती है। कुछ लोगों का विश्वास है कि बिजली का प्रसर भी जहाँ यह पत्थर रहता है वहाँ नहीं होता।

नादाँ—वि० [फ़ा०] ३० 'नादान'। उ०—(क) दिले नाँदा तुझे हुषा क्या है। आखिर इस मर्ज की दवा क्या है—गालिब०, पृ० ३०४। (ख) फायदा क्या सोच आखिर तू भी है खाना असब। बोस्ती नादाँ की है जो का जियाँ हो जायगा।—गालिब०, पृ० ६९।

नादान—वि० [फ़ा०] [संज्ञा नादानो] नासमझ। अनजान। मुल्ल। उ०—कबीर मारी अरलाह को ताको कहत हुराम। हलास कहै अपनी मारी यह नादान कलाम।—कबीर (शब्द०)।

नादानो—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] अज्ञान। नासमझी।

नादार—वि० [फ़ा०] १. जो अपने पास कुछ न रखता हो। जिसके पास कुछ न हो। अकिंचन। निर्धन। कंगाल। उ०—बाद अज जिके कस्बी लेवे दिल में मलफी बूझ। जिन ताकू नादार अंकारे तो मजिल मलकूत तूज।—दक्किलनी, पृ० ५९। २. गंजीके के खेल में बिना रंग या मीर की बाजी।

नादारी—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] गरीबी। निर्धनता। उ०—झी को नादारी में जीविए।—लरतु (शब्द०)।

नादि—वि० [सं०] १. शब्द करनेवाला। २. गर्जन करनेवाला (की०)।

नादित—वि० [सं०] शब्द करता हुआ। बजाया हुआ।

नादिम—वि० [प्र०] लज्जित।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

नादिया—संज्ञा पुं० [सं० नन्दी] १. नदी। २. वह बेल जिसे जोनी लेकर भीख मांगते हैं।

विशेष—ऐसे बेलों को कोई न कोई भंग अधिक (जैसे टाँग) रहता है जिससे लोभो को कुतूहल होता है।

नादिर—वि० [फ़ा०] अद्भुत। अनोखा। उ०—मोरंगजेब बादशाह के फोका फिदाई लो का बाग बहुत नादिर बना है।—सिक्खप्रसाद (शब्द०)।

यौ०—नादिर कलाम—उत्तम वाणी। अच्छी वाणी। उ०—मेकाहल जिब्रैल नादिर कलाम। फरिश्ता कूँ ले सात कीते सलाम।—दक्किलनी०, पृ० ३४४।

नादिरशाह—संज्ञा पुं० [फ़ा०] फारस का एक क्रूर और प्रतापी बादशाह।

विशेष—इसने सन् १७३८ में दिल्ली के बादशाह मुहम्मदशाह पर चढ़ाई की और १७३९ में दिल्ली नगरवासियों की हत्या कराई। प्रातःकाल से सूर्यास्त तक यह हत्याकाण्ड जारी रहा जिसमें लाखों मनुष्य मारे गए।

नादिरशाही—संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] ऐसा धंधेरा बैसा नादिरशाह ने दिल्ली में मचाया था। मारी धंधेरा या धत्याचार।

नादिरशाही^२—वि० नादिरशाही के ऐसा । बहुत ही कठोर और उग्र । जैसे, नादिरशाही हुषम ।

नादिरि—संज्ञा स्त्री० [फा०] १. एक प्रकार की सदरी या बंदी जो मुगल बादशाहों के समय में पहनी जाती थी । इसके किनारे पर कुछ काम होता था । इसे कभी कभी खिलमत में दिया करते थे । २. गंभीर का वह पक्ष जो खेल के समय निकालकर अलग रख दिया जाता है ।

मुहा०—नादिरि बढ़ाना = अंतरह मात करना ।

नादिहंद—वि० [फा०] न देनेवाला । जिससे रकम वसूल न हो ।

नादिहंदी—संज्ञा स्त्री० [फा०] किसी को कुछ न देने की प्रवृत्ति । अशक्तव्यता ।

नादी—वि० [सं० नादिन्] [वि० स्त्री० नादिनी] १. शब्द करनेवाला । २. बजनेवाला । ३. गर्जन करनेवाला ।

नादेअली—संज्ञा स्त्री [अ०] कुरान की एक आयत जो नाद अलियन से शुरू होती है और संग यशव के छोटे चौकोर टुकड़े पर खुदी रहती है जिसे रोगबाधा से बचने के लिये गले में पहनते हैं । दे० 'नादली' [को०] ।

नादेय^१—वि० [सं०] [वि० स्त्री० नादेयी] १. नदी संबंधी । नदी का । २. नदी में होनेवाला ।

नादेय^२—संज्ञा पुं० १. सेंगा नमक । २. गुरमा । ३. कांस नाम की धास । ४. जलवेत । अंबुवेतम । ५. नद्यो (गंगा) के पुत्र । गांगेय । भीष्म ।

नादेयी^१—वि० स्त्री० [सं०] १. नदी संबंधी । नदी की । २. नदी में होनेवाली ।

नादेयी^२—संज्ञा स्त्री० १. अंबुवेतस । जलवेत । २. भूमिजंबुक । भुईजामुन । ३. वैजयंतिका । वैजयंती । ४. नारंगी । ५. जवा । अम्बुदल । ६. अग्निमय धूस । अग्नेधू ।

नादेहंद—वि० [फा० नादिहंद] दे० 'नादिहंद' ।

नाद्य^१—वि० [सं०] १. नदी संबंधी । २. नदी में उत्पन्न [को०] ।

नाद्य^२—संज्ञा पुं० कभल [को०] ।

नाधन—संज्ञा स्त्री० [हि० नाधना] चाले के तकड़े में तागे की रोक के लिये लगी हुई एक गोल टिकिया । दिग्गन्धा ।

विशेष—यह टिकिया पगो हुई तेली में रुई धारि डालकर बनाते हैं और लपटे हुए तागे के घाग छेदकर पहना देते हैं ।

नाधना—क्रि० सं० [सं० नद्ध] [संज्ञा या जुड़ा हुआ] १. रस्सी या तस्मे के द्वारा रैल, छोड़े घाँ को उस वस्तु के साथ जोड़ना या बाँधना जिसे उन्हे खींचकर ले जाना होता है । जोतना । जैसे, रैल को गाड़ी या हल में नाधना । उ०—
(क) लसम बिनु लकी के तेल भयो । तेउ नाहि साधु की संगति नाधे जनम भयो । कबोर (शब्द०) । (ख) बहुत हुषम बहसन मेंह नाधे ।—रघुगज (शब्द०) ।

संयो० क्रि० देना ।

मुहा० काम में नाधना = काम में लगाना ।

२. जोड़ना । संबद्ध करना । उ०—तुम्हें देखि पावै, मुझ बहु क्षिति ताहि दीजे शिकु निरखि नतीजा नेह नाधे को ।—

कालिदास (शब्द०) । ३. गूँथना । गुहना । उ०—देव जगामग जोतिन को, सर मोतिन को सरकीन सौं नाधी ।—देव (शब्द०) । ४. (किसी काम को) ठानना । अनुष्ठित करना । आरंभ करना । जैसे, काम नाधना । उपद्रव नाधना । उ०—(क) मेरी कही न मानत राने । ये अपनी मति समुझत नाहीं कुमति कहा पन नाधे ।—सुर (शब्द०) । (ख) याही को कहायो ब्रजराज दिन चार ही में करिहै उजियारी ब्रज ऐसी रीति नाधी है ।—मतिराम (शब्द०) ।

नाधा^१—संज्ञा पुं० [हि० नाधना] वह रस्सी या चमड़े की पट्टी जिससे हल या कोल्हू की हड्डि जुए में बांधी जाती है । नारी ।

नाधा^२—संज्ञा पुं० [हि० नाद] वह स्थान जहाँ पर पानी, कूप, जलाशय आदि से निकालकर फेंका जाता है और जहाँ से नाथियों में होता हुआ वह सिंचाई के लिये खेतों में जाता है ।

नान—संज्ञा स्त्री० [फा०] १. रौटी । चपाती । २. एक प्रकार की मोटी खमीरो रौटी जो तदूर में पकाई जाती है ।

यौ०—नानखताई । नानबाई । नानपाव ।

नानक—संज्ञा पुं० पंजाब के एक प्रसिद्ध महात्मा जो सिख संप्रदाय के आदि गुरु थे ।

विशेष—इनका जन्म रावी नदी के किनारे तिलोंडा नामक गाँव में (आधुनिक रायपुर) संवत् १५२६ में कार्तिकी पूर्णिमा को एक खत्रीकुल में हुआ था । इनके पिता का नाम कानू था । लड़कपन ही से ये सांसारिक विषयों से उदासीन रहा करते थे । ऐसा प्रसिद्ध है कि पिता ने एक बार इन्हें ४०) नमक खरीदने के लिये दिए । ये नमक खरीदने चले पर बीच में कुछ भूखे साधु मिले और इन्होंने सब रुपयों का घन्न लेकर उठे खिसा दिया । इन्हें काम काज के योग्य न देख पिता ने इन्हें इनकी बहिन के पास सुखतानपुर (कपूरथले में) नामक स्थान में भेज दिया । वहाँ का नवाब उस समय दिल्ली के बादशाह इब्राहीम जोदी का संबंधी दीलत खाँ नामक पठान था । उसके यहाँ ये मोदीखाने में नौकर हुए । वहाँ भी इन्होंने साधुओं को खिलाना आरंभ किया जिससे इनपर रुपया खाने का आरोप लगाया गया । पर जब हिसाब लिया गया तब सब ठीक उतरा । इनका विवाह सोलह वर्ष की अवस्था में गुरुदामपुर जिले के अंतर्गत लाखौकी नामक स्थान के रहनेवाले भुला को कन्या सुलक्ष्मी से हुआ था । जिस समय ये दीलत खाँ के यहाँ थे उसी समय ३२ वर्ष की अवस्था में इनके प्रथम पुत्र हरीचंद्र का जन्म हुआ । चार वर्ष पीछे दूसरे पुत्र लखमीदास का जन्म हुआ । दोनों लड़कों के जन्म के उपरांत नानक ने घरबार छोड़ दिया और मरदाना, लहना, बाला और रामदास इन चार साधियों को लेकर वे भ्रमण के लिये निकल पड़े । ये चारों और भूमकर उपदेश करने लगे । इनके उपदेश का सार यही होता था कि ईश्वर एक है उसकी उपासना हिंदू मुसलमान दोनों के

लिये है। मूर्तिपूजा, बहुदेवोपासना की ये अनावश्यक कहते थे। हिंदू और मुसलमान दोनों पर इनके मत का प्रभाव पड़ता था। लोगों ने तत्कालीन इब्राहीम लोदी से इनकी शिकायत की और ये बहुत दिनों तक कैद रहे। अंत में पानीपत की लड़ाई में जब इब्राहीम हाग और बाबर के हाथ में राज्य गया तब इनका छुटकारा हुआ। पिछले दिनों में इनकी ख्याति बहुत बढ़ गई और इनके विचारों में श्री परिवर्तन हुआ। स्वयं विरक्त होकर ये अपने परिवारवर्ग के साथ रहने लगे और दान पुण्य, मंठारा आदि करने लगे। जलंधर जिले में इन्होंने कर्तारपुर नामक एक नगर बसाया और एक बड़ी धर्मशाला उसमें बनवाई। इसी स्थान पर आश्विन कृष्ण १०, संवत् १५६७ को इनका परलोकवास हुआ। यह सिलों का एक पवित्र स्थान है।

नानकपंथ—संज्ञा पुं० [हि० नानक + पंथ] गुरु नानक द्वारा प्रवर्तित मत। सिख धर्म।

नानकपंथी—संज्ञा पुं० [हि० नानक + पंथ + ई (प्रत्य०)] गुरु नानक का अनुयायी। सिख। नानकशाही।

नानकशाही—वि० [हि० नानकशाह + ई (प्रत्य०)] गुरु नानक से संबंध रखनेवाला। जैन, नानकशाही मत। २. नानकशाह का शिष्य या अनुयायी। जैसे, नानकशाही साधु।

नानकार—संज्ञा पुं० [फा०] एक प्रकार की माफी जिसके अनुसार जमींदार को कुछ जमीन की मालगुजारी नहीं देनी पड़ती।

विशेष—इस प्रकार की माफी अवध के नवाबों के समय से बनी आ रही है। नानकार दो तरह का होता है—नानकार देही और नानकार इस्मी। यदि किसी गाँव में कुछ जमीन की या किसी तपस्विके में कुछ गाँवों की मालगुजारी माफ है और वह माफी उस गाँव या तपस्विके के साथ लगी हुई है तो वह नानकार देही कहलाती है। इस प्रकार की माफी में गाँव के हर एक हिस्सेदार का हक होता है। यदि माफी किसी खास धार्मिक के नाम से होगी है तो उसे 'गानकार इस्मी' कहते हैं। इसमें हिस्सेदारों का हक नहीं होता पर व्यवहार में यह बहुत कम माना जाता है।

नानकीन—संज्ञा पुं० [चीनी नानकिङ्] एक प्रकार का सूती कपड़ा जो चीन देश से बाहर को जाता था।

विशेष—यह कपड़ा मटमिले रंग का होता था। पहले पहल इसका बुनना चीन के नानकिङ् नामक नगर में प्रारंभ हुआ था। आजकल इस प्रकार का कपड़ा यूरोप आदि अनेक देशों में बनता है और इसी नाम से जाना जाता है।

नानकोआपरेशन—संज्ञा पुं० [अ०] २० 'असहयोग-२'।

नानखलाई—संज्ञा स्त्री० [फा० नानखलाई] टिकिया के आकार की एक सौंघी खस्ता मिठाई।

विशेष—धी और चीनी के साथ घुले हुए चावल के घाटे की टिकिया (बताशे की आकार की) सोहे की एक चदर पर ५-४४

रखते हैं फिर चदर को दहकते अंगारों से भरे हुए दो थालों के बीच इस प्रकार रखते हैं कि आँच ऊपर और नीचे दोनों ओर से लगे। जब टिकिया पक जाती है और उनमें से सौंघाहट आने लगती है तब चदर निकाल दी जाती है।

नानखवाह—संज्ञा पुं० [फा० नानखवाह] अजवाइन [को०]।

नानपज—संज्ञा पुं० [फा० नानपज] नानवाई [को०]।

नानपजी—संज्ञा स्त्री० [फा० नानपजी] नानवाई का धंधा [को०]।

नानपाव—संज्ञा पुं० [फा०] खमीरी घाटे की बनी एक प्रकार की रोटी। पावरोटी [को०]।

नानपेरिल—संज्ञा पुं० [अंग० नॉनपेरिल] एक प्रकार का छोटा टाइप। ६ पाईट का टाइप।

नानवाई—संज्ञा पुं० [फा० नानवा, नानब'क] रोटियाँ पकाकर बेचनेवाला।

नानस—संज्ञा स्त्री० [हि० 'ननिया सास' का संक्षिप्त रूप] ननिया समुर। पति या स्त्री का नाना (स्त्रि०)।

नानसरा—संज्ञा पुं० [हि० 'ननिया समुर' का संक्षिप्त रूप] ननिया समुर। पति या स्त्री का नाना (स्त्रि०)।

नाना—वि० [सं०] १. अनेक प्रकार के। बहुत तरह के। विविध। २. अनेक। बहुत।

नाना—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० नानी] माता का पिता। माँ का बाप। मातामह। उ० गो लका तब नाना केरी। बने आप मम पितहि खदेरी।—विप्राभ (शब्द०)।

नाना—क्रि० सं० [सं० नमन] १. झुकाना। नम्र करना। उ०—(क) बुद्धि जो गई प्राव बोराई; गरब गए नहीं मिर नाई।—आयमी (शब्द०)। (ख) ईद डरे नित नावहि माया।—सुर (शब्द०)। २. नीचा करना। ३. डालना। फेंकना। ४. घुसाना। प्रविष्ट करना।

संयो० क्रि०—देना।—लेना।

नाना—संज्ञा पुं० [अ०] पुदीना।

यौ०—अर्कनाना = सिरके के साथ अनेक में उतारा हुआ पुदीने का अर्क।

नानाकंद—संज्ञा पुं० [सं०] पिप्पल।

नानाजातीय—वि० [सं०] जिसकी बहुत सी किस्में हों। अनेक प्रकार का [को०]।

नानात्मवाद—वि० [सं० नानात्मवाद] मोक्ष दर्शन को माननेवाला। प्रत्येक व्यक्ति में आत्मा की पुष्क सत्ता स्वीकार करनेवाला [को०]।

नानात्यय—वि० [सं०] विभिन्न प्रकार का। अनेक विधि [को०]।

नानात्व—संज्ञा पुं० [सं०] वैविध्य। अनेकता [को०]।

नानाध्वनि—संज्ञा स्त्री० [सं०] अनेक प्रकार की ध्वनि उत्पन्न करनेवाला वाद्ययंत्र। जैसे, शीशा, सितार आदि [को०]।

नानारस—वि० [सं०] जिसमें अनेक स्वाद हों। अनेक स्वाद-युक्त [को०]।

नानारूप - वि० [सं०] १. अनेक रूपोंवाला । बहुरूपी । २. नानाविध । बहुविध [को०]

नानार्थ - वि० [सं०] १. अनेक उद्देश्योंवाला । बहुद्देशीय । २. अनेक अर्थोंवाला । बहुअर्थी [को०] ।

नानावर्ण - विभिन्न रंग का । बहुवर्णा । अनेक रंगोंवाला [को०] ।

नानाविध - वि० [सं०] अनेक प्रकार का । विभिन्न [को०] ।

नानाश्रय - वि० [सं०] अनेक आश्रयवाला । जिसके रहने के अनेक स्थान या ठौर ठिकाने हों ।

नानिहाल - संज्ञा पुं० [हि० नानी + घाल सं० (< घालय)] नानी या घर । नाना नानी के रहने का स्थान ।

नानो - संज्ञा स्त्री० [देश०] माँ की माँ । माता की माता । मातामही । विशेष - हम शब्द के आगे 'इया' प्रत्यय लगाकर संबंधसूचक विशेषण भी बनाते हैं । जैसे, ननिया साम ।

मुहा०-- नानी मर जाना = होश ठिकाने हो जाना । प्राण मूल जाना । आपत्ति से आ जाना । संकट या दुःख सा पः जाना । उ०--हरमोहन की नानी तो बानेवालों को देखा ही मर गई थी । --अयोध्या (शब्द०) । नानी याद-घाना - दे० 'नानी मर जाना' ।

ना नकर - संज्ञा पुं० [हि० न + करना] नाहीं । इनकार ।

हि० प्र०-- करना ।

नान्ह - वि० [सं० न्यञ्च (= नाटा, छोटा या न्यून)] १. छोटा । ननु । नन्हा । २. नीच । क्षुद्र । उ०--कहूँ कबीर सुनो हो अन्हा । नान्ह जाति लतिपाए आन्हा । --कबीर (शब्द०) । ३. पतला । बारीक । महीन ।

मुहा०--नान्ह मानना = (१) बहुत बारीक काम करना । (२) कठिन या दुष्कर कार्य करना । उ०--अपजस जोग कि जानकी मनि चोरी कय कान्ह ? तुलसी लोग रिझावो करहि कानिचो नान्ह । --तुलसी (शब्द०) ।

नान्हक - संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'नानक' ।

नान्हुरिया(पुं०) - वि० [हि० नान्ह + र, इया (प्रत्य०)] छोटा नन्हा । उ०--मेरो नान्हुरिया गोपान बेगि बडो किन होहि । यहि मुख मधुरे बचन हेमि कहहुँ जननि कहोगे मोहि । --सूर (शब्द०) ।

नान्हारा(पुं०) - वि० [सं० न्यञ्च (= नाटा, छोटा) या सं० न्यून] [वि० स्त्री० नान्हरी] १. छोटा । लघु । नन्हा । उ०--मर्वस मैं पहने ही दीनो नान्हरी नान्हरी दँतुलो दू पर । --सूर (शब्द०) । २. पतला । बारीक । महीन । उ०--मन मतमा की मारि के नान्हारा करि के पीस । तब सुख पावै सुंदरी पदम भनवके सीस । --कबीर (शब्द०) । ३. नीच । क्षुद्र । उ०--खेलत जात रहे ब्रज भीतर । नान्हे लोग तनक घन ईतर । --सूर (शब्द०) ।

नान्हारा - संज्ञा पुं० छोटा बच्चा । लड़का ।

यौ०--नान्हारा बारा = छोटा बालक । उ०--काली जी की छोहरी सेई नान्हरी बारि । --नेरवामी (शब्द०) ।

नाप - संज्ञा स्त्री० [सं० मापन, हि० माप] १. किसी वस्तु का

विस्तार जिसका निर्धारण इस प्रकार किया जाय कि वह एक निश्चित विस्तार का कितना गुना है । किसी वस्तु की लंबाई, चौड़ाई, ऊँचाई या गहराई जिसकी छोटाई बड़ाई (या न्यूनता अधिकता) का निश्चय किसी निश्चित लंबाई के साथ मिलाने से किया जाय । परिमाण । माप । जैसे,--यह छोटी नाप में पाँच गज है । २. विस्तार का निर्धारण । किसी वस्तु की लंबाई चौड़ाई आदि कितनी है इसको ठीक ठीक स्थिर करने के लिये की जानेवाली क्रिया । नापने का काम । जैसे,--जमीन की नाप हो रही है ।

यौ०--नाप जोख । नाप तोल ।

३. वह निश्चित लंबाई जिसे एक मानकर किसी वस्तु का विस्तार कितना है, यह स्थिर किया जाता है । मान । जैसे,--यहाँ की नाप कुछ छोटी है इसी से कपड़ा घटा । ४. निश्चित लंबाई की वह वस्तु जिसका व्यवहार करके स्थिर किया जाय कि कोई वस्तु कितनी लंबी, चौड़ी आदि है । नापने की वस्तु । मानबंद । नपना । पैमाना ।

नापजोख - संज्ञा स्त्री० [हि० नाप + जोख] दे० 'नापतोल' ।

नापतोल - संज्ञा स्त्री० [हि० नाप + तोल] १. नापने और तोलने की क्रिया । २. परिमाण या मात्रा जो नाप या तोलकर स्थिर की जाय ।

क्रि० प्र०--करना । --होना ।

नापदान - संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'नाबदान' ।

नापना - क्रि० सं० [सं० मापन] १. किसी वस्तु का विस्तार इस प्रकार निर्धारित करना कि वह एक नियत विस्तार का कितना गुना है । किसी वस्तु की लंबाई, चौड़ाई, उँचाई या गहराई कितनी है, यह निश्चित करना । लंबाई, चौड़ाई आदि की परीक्षा करना । मापना । आमत पर परिमाण निश्चित करना ।

संयो० क्रि०--डालना । --देना । --लेना ।

मुहा०--सिर नापना = सिर काटना ।

२. घंटाज करना । कोई वस्तु कितनी है इसका पता लगाना । जैसे, दूध नापना, गराब मापना ।

नापसंद - वि० [फ़ा०] १. जो पसंद न हो । जो अच्छा न लगे । अनसुहाता । जैसे, --बीज नापसंद हो तो दाम वापस । २. अप्रिय । अरुचिकर । जो न जँजे ।

क्रि० प्र०--करना । --होना ।

नापाक - वि० [फ़ा०] १. अशुद्ध । अशुद्धि । अपवित्र । भ्रष्ट ।

२. मैला कुचैला ।

क्रि० प्र०--करना । --होना ।

नापाकी - संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] अपवित्रता । अशुद्धता ।

नापायद्वार - वि० [फ़ा०] १. जो अधिक ठहरने या चलनेवाला न हो । जो टिकाऊ न हो । अणुभंगुर । २. जो छद्म या मजबूत न हो ।

नापायद्वारी - संज्ञा स्त्री० [फ़ा०] १. अस्थायित्व । अणुभंगुरता । २. अस्थिरता ।

नापास—वि० [हि० ना + पस] जो पास या मंजूर न हो। जो स्वीकृत न हो। नामजूर। अस्वीकृत। (क्व०)। जैसे,—कौंसिल में उनका बिल नापास हुआ।

नापित—संज्ञा पु० [सं०] वह जो सिर के बाल मुड़ने (या काटने), और नाखून आदि काटने का काम करता हो। नाई। बाऊ। हज्जाम।

विशेष—धर्मशास्त्र में नापित की गणना अच्छे शूद्रों में है। स्मृतियों में नापित सकर जाति के अंतर्गत माने गए हैं। पराशर स्मृति में लिखा है कि शूद्रा के गर्भ से ब्राह्मण द्वारा उत्पन्न सतान का यदि ब्राह्मण द्वारा संस्कार न हुआ हो तो वह नापित कहलाता है। पर परशुराम के अनुसार कुबेरी पुरुष और पट्टिकारी स्त्री के संयोग से नापितों की उत्पत्ति हुई। मनु ने नापितों को गिनती भोज्यान्न शूद्रों में की है।

पर्या०—सूरी। मुंडी। दिवाकीर्ति। अंत्यावसायो। सूनी। नलकुट्ट। ग्रामणी। बंडिल। भांडपुट।

नापितायनि—संज्ञा पु० [सं०] नाई का पुत्र [को०]।

नापित्य—संज्ञा पु० [सं०] १. नाई का घंघा। २. नाई का बेटा [को०]।

नापैद—वि० [फ्रा० ना + पैदा] १. जो पैदा न होता हो। २. न मिलनेवाला। अप्राप्य।

नाफ—संज्ञा स्त्री० [फ्रा० नाफ] १. नाभि। २. केंद्र। मध्य [को०]।

नाफरमा—संज्ञा पु० [फ्रा० नाफरमा] गुलेलावा का एक भेद जो कुछ नीलापन लिए होता है।

नाफा—संज्ञा पु० [फ्रा० नाफ] घुगमद कोश। कस्तूरी की थैली और कस्तूरीमृगों की नाभि में होती है।

नाबदान—संज्ञा पु० [फ्रा० नाब (=नाली)] वह नात्री जिससे होकर घर का गलीज, मैला पानी आदि बाहर बहकर जाता है। पनाखा। नरदा।

मुहा०—नाबदान में मुँह मारना—वृणित कर्म करना। बुरा और बिनोना काम करना।

नाबालिग—वि० [फ्रा० नाबालिग] जिसका सङ्कलन अभी दूर न हुआ हो। जो अपनी पूरी अवस्था को न पहुँचा हो। जो पूरा जवान न हुआ हो। अश्वत्थवयस्क।

विशेष—कानून में कुछ बातों के लिये २१ वर्ष और कुछ के लिये १८ वर्ष से कम अवस्था का अनुष्य नाबालिग समझा जाता है।

नाबालिगी—संज्ञा स्त्री० [फ्रा० नाबालिगी] नाबालिग रहने की अवस्था।

नाबू—वि० [फ्रा०] जिसका अस्तित्व न रहा हो। नष्ट। अस्त।
छिन्न प्र०—करना।—होना।

नाभ—संज्ञा स्त्री० [सं० 'नाभि' का समासात् रूप] १. नाभि। ठोंढो। घुनी। २. शिव का एक नाम। ३. भागवत में वर्णित एक सूर्यवंशी राजा जो यथोरय के पुत्र थे। ४. अस्त्रों का एक संहार।

नाभक—संज्ञा पु० [सं०] हरीतकी। हड़।

नाभस—वि० [सं०] नभस् संबंधी। आकाश संबंधी। आकाशीय [को०]।

नाभा—संज्ञा पु० [सं०] एक प्रसिद्ध भक्त जिनका नाम नारायणदास था।

विशेष—कहते हैं, ये जाति के डोम थे और दक्षिण देश में उत्पन्न हुए थे। भक्तमाल के कुछ टीकाकारों ने लिखा है कि इनका जन्म हनुमान वंश में हुआ था। मायाजी भाग में डोम शब्द का अर्थ हनुमान है। शायद इसीलिय इन टीकाकारों ने इन्हें हनुमानवंशीय लिखा है। पर गज भक्तमाल में लिखा है कि वैलंग देश में गोदावरी के समीप उत्तर राममद्राचल पर्वत पर रामदास नामक एक ब्राह्मण हनुमान जी के अंशावतार रहते थे। इन्हीं के पुत्र नाभा थे। पर कई कारणों से इनका नीच कुल में उत्पन्न होना हो ठीक प्रतीत होता है। ये जन्मांध कहे जाते हैं। बचपन में ही इनके देह में घोर अकाल पड़ा। माता इन्हें पाल न पायी, वन में छोड़कर चली गई। काल्ह जी अपने शिष्य भक्तमाल के साथ उस वन से होकर जा रहे थे। उन्होंने बच्चे को उठा लिया और जयपुर के पास गजता नामक स्थान में ले गए। वहाँ महात्माओं की कृपा से और साधुओं का प्रयत्न करने लगे इनकी आँखें ओ अच्छी हो गई और बुद्धि भी विभू हो गई। अपने गुरु भक्तदास की आज्ञा से इन्होंने 'भक्तमाल' लिखा जिसमें अनेक नए पुराने भक्तों के चरित्र वर्णित हैं। अनुमान से भक्तमाल एष संवत् १६४२ और संवत् १६८० के बीच में बनाया गया क्योंकि भक्तमाल में गोमाई गिरधर जी के विषय में लिखा है कि 'बिटुलेश नंदन सुपग जग कोऊ नहि ता समान। श्री वल्लभ जी के वंश में सुरतक गंधर आजमान।' यह बात निश्चित है कि संवत् १६४२ में श्री बिटुलनाथ गोसाई का परलोक हुआ और उनके पुत्र भट्टे पर बैठे। इस पद से गोस्वामी तुलसीदास जी का भी अनुमान बनने के समय वर्तमान रहना पाया जाता है—रामचरन राम मत रहत अहंनिस बतधारी। संवत् १६८० गोस्वामी जी का मृत्युकाल प्रसिद्ध ही है।

नाभा—पंजाब की एक (राज्य) रियासत जो भारतवर्ष की स्वतंत्रता के पूर्व प्रसिद्ध थी।

नाभाग—संज्ञा पु० [सं०] १. बाल्मीकि के अनुसार इक्ष्वाकुवंशीय एक राजा जो ययाति के पुत्र थे।

विशेष—नाभाग के पुत्र अज और अज के पुत्र दशरथ हुए। रामायण की वंशावली के अनुसार राजा अंबरीष नाभाग के प्रपितामह थे, पर भागवत में अंबरीष को नाभाग का पुत्र लिखा है।

२. मार्कंडेय पुराण के अनुसार काश्यप वंश के एक राजा जो दिष्ट के पुत्र थे।

विशेष—इनकी कथा उक्त पुराण में इस प्रकार है—जब ये युवावस्था को प्राप्त हुए तब एक वेश्य की कन्या को देखकर मोहित हो गए और उस कन्या के पिता द्वारा अपने पिता से विवाह की आज्ञा मानी। श्रुतियों की सम्मति से पता

ने राजा ही कि 'पहले एक शत्रिय कन्या से विवाह करके तब श्रेष्ठ कन्या से विवाह करे तो कोई दोष नहीं। नाभाग ने पिता को बात न मानी। पिता पुत्र में युद्ध छिड़ गया। पद्मिना मुनि ने यह युद्ध शांत किया। नाभाग श्रेष्ठ कन्या का पाणिग्रहण करके श्रेष्ठत्व को प्राप्त हुए। प्रमति मुनि ने नाल की व्यवस्था दी थी कि यदि कोई शत्रिय उनकी कन्या का बलपूर्वक विवाह लेगा तो उनका श्रेष्ठत्व नष्ट जायगा। अतः नाभाग भी इसी रीति में फिर शत्रिय हो गए।

नाभागारिष्ट—संज्ञा पुं० [सं०] द्वाविंश के अनुगार श्रेष्ठत्व मनु के एक पुत्र।

नाभाहन—संज्ञा स्त्री० [सं० नाभावनत्] वह भीरी जो घोंड़े की नाभि सीधे हो। यह दूधित मानी जाती है।

नाभि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. चक्रमध्य। रहिए का मध्य भाग। नाड। २. जरायुज अणुओं के पेट के बीचोबीच वह चिह्न या गड्ढा जहाँ गर्भावरणा में जरायुनाल जुड़ा रहता है। डोंडी। धुन्नी। तुन्नी। तुंदी। तुंरिया। तुंदूपी। ३. कस्तूरी।

नाभि—संज्ञा पुं० १. प्रधान राजा। २. प्रधान व्यक्ति या वस्तु। ३. गीत। ४. शत्रिय। महादेव। ५. प्रियव्रत राजा के पौत्र (प्रताप पुराण)। ७. भागवत के अनुसार धार्मांध राजा के पुत्र जिनकी पत्नी मेरुदेवी के गर्भ से ऋषभदेव की उत्पत्ति हुई थी।

विशेष—इनकी कथा इस प्रकार है। नाभि ने पत्नी के सहित पुत्र की कामना से बहुत भारी यज्ञ किया। उस यज्ञ में प्रसन्न होकर विष्णु भगवान् साक्षात् प्रकट हुए। नाभि ने वर माँगा कि मेरे तुम्हारे ही ऐसा पुत्र हो। भगवान् ने कहा मेरे ऐसा पुत्र कौन है? अतः मैं ही पुत्र होकर जन्म लूँगा। कुछ काल के पीछे मेरुदेवो के गर्भ से ऋषभदेव उत्पन्न हुए जो विष्णु के २४ अवतारों में माने जाते हैं। जैसा कि धार्मिक जीर्णकर भी ऋषभदेव माने जाते हैं।

नाभिकंटक—संज्ञा पुं० [सं० नाभिकण्टक] निकली हुई तूँदी या डोंडी।

नाभिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] तूँदी वृत्त।

नाभिगूडक—संज्ञा पुं० [सं०] नाभि का यावत। तुंदी का उभरा अंग।

नाभिगुप्त—संज्ञा पुं० [सं०] प्रियव्रत राजा के पुत्र जिनके नाम पर गुप्त द्वीप का प्रान्त एक वर्ष हुआ।

नाभिगोलक—संज्ञा पुं० [सं०] नाभि का यावत। तुंदी का उभरा अंग।

नाभिछेदन—संज्ञा पुं० [सं०] तुरत के जन्मे हुए बच्चे के नाल काटने की क्रिया।

नाभिज—संज्ञा पुं० [सं०] (विष्णु की नाभि से उत्पन्न) ब्रह्मा।

नाभिजन्मा—संज्ञा पुं० [सं० नाभिजन्मन्] दे० 'नाभिज'।

नाभिनाडी—संज्ञा स्त्री० [सं०] नाभि की नाड़ी जो गर्भकाल में माँग की रसवहा नाड़ी से जुड़ी रहती है।

नाभिनाल—संज्ञा स्त्री० [सं०] नाभि की नाली (कौ०)।

नाभिपाक—संज्ञा पुं० [सं०] बालकों का एक रोग जिसमें नाभि में घाव हो जाता और वह पक जाती है।

नाभिभू—संज्ञा पुं० [सं०] ब्रह्मा (कौ०)।

नाभिभूल—संज्ञा पुं० [सं०] नाभि का मध्यभाग (कौ०)।

नाभिल—वि० [सं०] उभरी हुई नाभिवाला। निकली हुई तुंदीवाला।

नाभिवर्धन—संज्ञा पुं० [सं०] नाभिछेदन। नाल काटने की क्रिया।

नाभिवर्ष—संज्ञा पुं० [सं०] जंबूद्वीप के नौ वर्षों में से एक। भारतवर्ष।

विशेष—धार्मांध राजा ने अपने नौ पुत्रों को जंबू द्वीप के नौ गड दिए। नाभि को जो खंड मिला उसका नाम नाभिवर्ष हुआ। पीछे नाभि के पौत्र भरत के नाम पर वह भारतवर्ष कहा जाने लगा।

नाभिसंबंध—संज्ञा पुं० [सं०] गोत्रसंबंध।

नाभी—संज्ञा स्त्री० [सं० नाभि] दे० 'नाभि'।

नाभोल—संज्ञा पुं० [सं०] १. शिरों के कटि के नीचे का भाग। उरसंधि। २. नाभि की गहराई। नाभि का गड्ढा। ३. कच्छ। कण्ठ। ४. नाभि जो उभरी हुई हो (कौ०)।

नाभ्य—वि० [सं०] नाभि संबंधी।

नाभ्य—संज्ञा पुं० शिव। महादेव।

नामंजूर—वि० [सं० ना + मं० मंजूर] जो मंजूर न हो। जो माना न गया हो। जो कबूल न किया गया हो। अस्वीकृत। जैसे, सरजी नामंजूर होना।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

नाम—संज्ञा पुं० [सं० नामन्, तुल० क्रा० नाम] [वि० नामो] १. वह शब्द जिससे किसी वस्तु, व्यक्ति या समूह का बोध हो। किसी वस्तु या व्यक्ति का निर्देश करनेवाला शब्द। मंजा। आख्या। अभिरूपा। धातु। जैसे,—इस आदमी का नाम रामप्रसाद है, इस पेड़ का नाम अशोक है।

मुहा०—नाम उछलना = बदनामी होना। अपकीर्ति फैलना। निंदा होना। नाम उछालना = अपकीर्ति फैलाना। चारों ओर निंदा कराना। जैसे,—क्यों ऐसा काम करके अपने काप दावों का नाम उछाल रहे हो! नाम उठ जाना = नाम न रह जाना। चिह्न मिट जाना या चर्चा बंद हो जाना। लोक में स्मरण भी न रह जाना। जैसे,—उसका तो नाम ही संसार से उठ जायगा। नाम करना = नाम रखना। पुकारने के लिये नाम निश्चित करना। किसी दूसरे का नाम करना = दूसरे का नाम लगाना। दूसरे पर दोष लगाना। दूसरे के सिर दोष मढ़ना। जैसे,—आप पुराकर दूसरे का नाम करता है। (किसी बात का) नाम करना = कोई बात पूरी तरह से न करना, कहने भर के लिये थोड़ा सा करना। दिखाने या उलाहना छुड़ाने भर के लिये थोड़ा सा करना। जैसे,—पढ़ते क्या हैं नाम करते हैं। नाम का = (१) नामधारी। जैसे,—इस नाम का कोई आदमी नहीं।

(२) कहने सुनने भर को। उपयोग के लिये नहीं। काम के लिये नहीं। जैसे,—वे नाम के मंत्री हैं, काम तो और ही करते हैं। (किसी के) नाम का कुत्ता न पालना = किसी से इतना बुरा मानना या घृणा करना कि उसका नाम लेना या सुनना भी नापसंद करना। नाम से चिढ़ना। नाम के लिये = (१) कहने सुनने भर के लिये। थोड़ा सा। धणु मात्र। (२) उपयोग के लिये नहीं। काम के लिये नहीं। नाम को = (१) कहने सुनने भर को। ऐसा नहीं जिससे काम चल सके। (२) केवल इतना जितने से रहा जा सके कि एकदम प्रभाव नहीं है। बहुत थोड़ा। अत्यंत छल। नाम को नहीं = जरा सा भी नहीं। धणु मात्र भी नहीं। कहने सुनने को भी नहीं। एक भी नहीं। जैसे,—(क) उस मैदान में नाम को भी पेड़ नहीं है। (ख) घर में नाम को भी नमक नहीं है। (ग) उससे नाम को भी जीवजंतु न छोड़ा। नाम चढ़ना = किसी नामावली में नाम लिखा जाना। नाम दर्ज होना। नाम चढ़ाना = किसी नामावली में नाम लिखाना। नाम दर्ज कराना। नाम चमकना = चारों ओर प्रच्छा नाम होना। कीर्ति फैलना। यश फैलना। प्रसिद्ध होना। नाम चलना = लोगो में नाम का स्मरण बना रहना। यादगार बनी रहना। जैसे,—संतान से नाम चलता है। नामचार को = (१) नामोच्चार भर के लिये। नाम को। कहने सुनने भर को। पूरे तौर से या मन से नहीं। जैसे,—नामचार को वह यहाँ प्राठा है, कुछ काम तो करता नहीं। (२) बहुत थोड़ा। किंचिन्मात्र। नाम जगाना = नाम की याद कराते रहना। स्मारक बनाए रखना। ऐसा काम करना कि लोगो में स्मरण बना रहे। नाम जपना = (१) बार बार नाम लेना। बार बार नाम का उच्चारण करना। नाम रटना। (२) भक्ति या प्रेम से ईश्वर या देवता का नाम (माला फेरते हुए या यों ही) बार बार लेना। नाम स्मरण करना। ईश्वर या देवता का स्मरण करना। नाम देना = (१) नाम रखना। नामकरण करना। (२) किसी देवता के नाम का मंत्र देना। सांप्रदायिक मंत्र का उपदेश देना। नामधरता = नाम रखनेवाला। नामकरण करनेवाला पिता। बाप। (किसी का) नाम धरना = (१) नाम स्थिर करना। नाम रखना। नामकरण करना। (२) बदनामी करना। बुरा कहना। दोष लगाना। जैसे,—ऐसा काम क्यों करो जिससे हम आदमी नाम धरे। (३) अपनी वस्तु का भोग माँगना। अपनी चीज का हाम कहना। जैसे,—पहले तुम अपनी चीज का नाम धरो, जो जेबिंगा मैं भी कहूँगा। (किसी को) नाम धरना = (१) बदनाम करना। बुरा कहना। दोष लगाना। (२) दोष निकालना। ऐब बताना। जैसे,—हमारी पसंद की हुई चीज का तुम नाम नहीं धर सकते। नाम धरवाना = ३० 'नाम धराना'। नाम (नाब) धराना = (१) नामकरण करना। (२) बदनामी करना। निंदा कराना। उ०—(क) फिरत धरावत मेरो नामा। मातु न बेति होयसी धाया। (ख) शरि दियो गुह लोगम को डर, नाब चवाब में नाब धरायो।

—मतिराम (शब्द०) नाम न लेना = धर्चि, घृणा, भय आदि के कारण चर्चा तक न करना। दूर रहना। बचना। संकल्प या विचार तक न करना। जैसे,—(क) उसने मुझे बहुत दिक किया, अब उसका कभी नाम न लूँगा। (ख) उसका स्वाद इतना बुरा है कि एक बार क्षामोम तो फिर कभी नाम न लोगे। (ग) अब वह यहाँ घाने का नाम तक नहीं लेता। तो मेरा नाम नहीं = तो मैं कुछ भी नहीं। तो मुझे तुच्छ समझना। जैसे,—याद सरेरे म उसे न लाऊँ तो मेरा नाम नहीं। नाम निकल जाना = किसी (बली या बुरी) बात के लिये नाम प्रसिद्ध हो जाना। किसी विषय में स्थापि हो जाना। किसी बात के लिये मजहूर या बदनाम हो जाना। जैसे,—जिसका नाम निकल जाता है वह अगर कुछ न करे तो भी लोग उसी को कहते हैं। नाम निकलना = (१) किसी बात के लिये नाम प्रसिद्ध होना। (२) तंत्र आदि की युक्ति से किसी वस्तु को चुराने वाले का नाम प्रकट होना। (३) नाम का कहीं प्रकट या प्रकाशित होना। जैसे, गजट में नाम निकलना। नाम निकलवाना = (१) बदनामी कराना। नाम में कलंक लगवाना। (२) मंत्र, तंत्र आदि द्वारा चोर का नाम प्रकट कराना। (३) किसी नामावली में से नाम कटवाना। किसी विषय से किसी को अलग करना। नाम निकालना = (१) (बली या बुरी) बात के लिये नाम प्रसिद्ध करना। यश फैलाना या बदनामी करना। (२) मंत्र, तंत्र आदि द्वारा चोर का नाम प्रकट करना। (३) किसी नामावली से नाम काटना। किसी विषय से अलग करना। नाम पड़ना = नाम रखा जाना। नाम करण होना। नाम निश्चित होना। किसी के नाम = (१) किसी के लिये। किसी के पक्ष में। किसी के व्यवहार या उपयोग के लिये। किसी के अधिकार में। किसी का कानून द्वारा प्राप्त। जैसे,—(क) उसकी सब जायदाद छी क नाम है। (ख) उसने अपनी संपत्ति भतीजे के नाम कर दी। (२) किसी को लक्ष्य करके। किसी के संबंध में। जैसे,—उसके नाम वारंट निकला है। (३) किसी के त्रि। किसी का संबोधन करके। किसी के हाथ में पड़ने के लिये। किसी को दिए जाने के लिये। जैसे,—किसी के नाम चिट्ठी घाना, संभन आरो होना इत्यादि। किसी के नाम पर = किसी को अर्पित करके। किसी के निमित्त। किसी के स्मारक या तुष्टि के लिये। किसी का नाम चलाने या किसी के प्रति आदर, भक्ति प्रकट करने के लिये। जैसे,—(क) ईश्वर के नाम पर कुछ दो। (ख) उसने अपने बाप के नाम पर यह धर्मशाला बनवाई है। किसी के नाम पड़ना = किसी के नाम के प्रागे लिखा जाना। जिम्मेदार रखा जाना। किसी के नाम डालना = किसी के नाम के प्रागे लिखना। किसी के जिम्मे रखना। जैसे,—अगर उनसे रुपया वसूल न हो तो मेरे नाम डाल देना। (किसी के) नाम पर मरना या मिटना = किसी के प्रेम में लीन होना। किसी के प्रेम में सपना। प्रेम के आवेक में अपने हानि लाभ या कष्ट की ओर कुछ भी ध्यान न देना।

(किसी के) नाम पर लूना न लगाना = किसी को अन्यायत
 बुद्धि ममभला (किसी के) नाम पर बैठना = (१)
 किसी के भरोसे संतोष करके स्थिर रहना । किसी के ऊपर
 यह विश्वास करके अपने धारण करना या उद्योग छोड़ देना
 कि जो कुछ हम करना होगा, करेगा । जैसे,—अब तो
 ईश्वर के नाम पर बैठ रहते हैं, जो कुछ होना होगा सो
 होगा । (२) किसी के धामरे में या किसी के ध्यान से कोई
 ऐसा काम न करना जिसका करना स्वाभाविक या आवश्यक
 हो । जैसे,—(क) यह स्त्री कब तक अपने पति के नाम पर
 बेठी रटी धीर दूध का विशास न करेगी ? (ख) कब तक
 अपने मित्र के नाम पर बैठ रहोगे, उठो तैयारी करो ।
 नाम दुरारना = ध्यान प्राकषित करने या बुनाने के लिये
 किसी का नाम लेकर चिल्लाना । (किसी का) नाम
 बद करना = बदनामी करना । कलंक लगाना । दोष
 लगाना । नाम बदनाम करना = कलंक लगाना । ऐब
 लगाना । बदनामी करना । (किसी का) नाम बद होना =
 किसी दुर्गुण के लिये किसी का नाम प्रसिद्ध हो जाना ।
 नाम निकल जाना । नाम बाकी रहना = (१) मरने या
 कहीं जाने जाने पर भी कीर्ति का बना रहना । लोगों में
 स्मरण बना रहना । (२) कबल नाम ही नाम रह जाना
 और फल न रहना । पुराने बातों के कारण प्रसिद्धि मात्र
 रह जाना पर अब सच नहीं रहना । जैसे,—सिर्फ नाम
 बाकी रह गया है कुछ जायदाद अब उनके पास नहीं है ।
 नाम बिना नामान प्रसिद्ध हो जाने के कारण किसी की
 वस्तु का आदर होना । नाम गम्भीर होने से कदर होना ।
 नाम बिगाड़ना (१) कोई बुरा काम करके बदनामी
 करना । (२) बदनामी करना । कलंक लगाना ।
 नाम मिटना = (१) नाम जाता रहना । नाम न रहना ।
 स्मारक या कीर्ति का टूट होना । (२) नाम तक शेष
 न रहना । मोड़ बिगड़ न हो जाना । एक दम अभाव हो
 जाना । नाम भान = नाम लेने भर को । बहुत थोड़ा ।
 अत्यंत प्रवा (काई) नाम रखना (१) नाम निश्चित
 करना । नाम धरना करना । (किसी का) नाम रखना =
 (१) नाम निश्चित करना । नाम धरना करना । (२)
 कीर्ति सुरक्षा नाम । धरना या बड़ा काम करके यश को
 स्थिर रखना । नाम दुरुन देना । जैसे,—यह लड़का अपने
 बाप का नाम रखेगा । (३) बदनामी करना । निंदा
 धरना । बुरा कहना । दोष नाम धरना । (किसी को)
 नाम रखना (१) बदनाम करना । बुरा कहना । दोष
 लगाना । (२) दोष निवारना । गुण निकालना । ऐब
 बताना । दोष नाम धरना । नाम लगना = किसी दोष या अप-
 राध के संबंध में नाम दिया जाना । दोष लगना । कलंक मढ़ा
 जाना । जैसे,—क्यों किसी ने और नाम लगा हमारा ।
 नाम लगाना = किसी दोष या अपराध के संबंध में नाम
 देना । दोष मढ़ना । अपराध लगाना । कलंक लगाना ।
 जैसे,—छुद तुम्हीं ने उठ काम किया और अब दूसरे का
 नाम लगाते हो । (किसी का) नाम सिखना = किसी

कार्य या विषय में सम्मिलित करने के लिये रजिस्टर, बही
 आदि में नाम लिखना । किसी मंडली, संस्था, कार्यालय
 आदि में सम्मिलित करना । जैसे,—इस लड़के का नाम अभी
 स्कूल में नहीं लिखा है । (किसी के) नाम लिखना = किसी के
 नाम के आगे लिखना । किसी के जिम्मे लिखना या टीकना ।
 जैसे,—इसका दाम हमारे नाम लिख लो । नाम लिखाना =
 किसी विषय या कार्य में सम्मिलित होने के लिये रजिस्टर
 बही आदि में नाम लिखाना । किसी मंडली, संस्था या
 कार्यालय आदि में सम्मिलित होना । जैसे,—इसका नाम
 स्कूल में जल्दी लिखाओ । (किसी का) नाम लेकर = (१)
 किसी प्रसिद्ध या बड़े आदमी के नाम से लोगों का ध्यान
 प्राकषित करके । नाम के प्रभाव से । जैसे,—यह अपने बाप
 का नाम लेकर भीख माँगा और क्या करेगा ? (२)
 (किसी देवता या पूज्य पुरुष का) स्मरण करके । जैसे,—
 अब तो भगवान का नाम लेकर इस काम को कर चलते हैं ।
 नाम लेना = (१) नाम का उच्चारण करना । नाम
 कहना । (२) फलप्राप्ति के लिये या भक्तिवश ईश्वर या
 देवता का नाम बार बार उच्चारण करना । नाव जपना ।
 नाम स्मरण करना । जैसे,—इस उपकार के लिये वे सदा
 आपका नाम लेते रहेंगे । (४) चर्चा करना । जिक्र करना ।
 जैसे,—फिर वहाँ जाने का नाम लेते हो । (५) नाम
 बदनाम करना । दोष लगाना । जैसे,—क्यों व्यर्थ किसी का
 नाम लेते हो, न जाने किसने यह काम किया है । नाम व
 निशान = ऐसा चिह्न या लक्षण जिससे किसी वस्तु के होने
 का पमाण मिले । पता । खोज । जैसे,—यहाँ बस्ती का तो
 कहीं नाम व निशान नहीं है । नाम व निशान मिट जाना =
 पता न रह जाना । एकदम नाश हो जाना । नाम व निशान
 न होना = एकदम अभाव होना । बिल्कुल न होना । एक
 भी या लेशमात्र न होना । (किसी) नाम से = शब्द द्वारा
 निर्दिष्ट होकर या करके । जैसे, किसी नाम से पुकारना ।
 (किसी) के नाम से = (१) चर्चा से । जिक्र से । जैसे,—
 मुझे तो उसके नाम से चिढ़ है । (२) (किसी का)
 संबंध बताकर । नाम लेकर । यह प्रकट करके कि कोई
 बात किसी की ओर से है । (किसी की) जिम्मेदारी
 बताकर । जैसे,—जितना खयाल चाहना मेरे नाम से ले लेना ।
 (३) (किसी को) हकदार या मालिक बनाकर ।
 (किसी के) उपयोग या भोग के लिये । जैसे,—वह लड़के
 के नाम से जायदाद खरीद रहा है (४) नाम के प्रभाव
 से । नाम लेकर । ध्यान प्राकषित करके । जैसे,—अपने बड़ों
 के नाम से भीख माँग लाओगे । (५) नाम लेते ही ।
 नाम का उच्चारण होते ही । जैसे,—उसके नाम से वह
 काँपता है । नाम से काँपना = नाम सुनते ही डर
 जाना । बहुत भय मानना । घाम होना = (१) नाम
 लगना । दोष मढ़ा जाना । कलंक लगना । जैसे,—बुराई
 कोई करे, नाम ही हमारा । (२) नाम प्रसिद्ध होना ।
 जैसे,—काम तो दूसरे करते हैं, नाम उसका होता है ।

२. अच्छा नाम । सुनाम । प्रसिद्धि । स्थाति । यश । कीर्ति ।
जैसे,—इधर उनका बड़ा नाम है ।

क्रि० प्र०—होना ।

मुहा०—नाम कमाना = प्रसिद्धि प्राप्त करना । कीर्तिलाभ करना । मशहूर होना । नाम करना = कीर्ति लाभ करना । प्रख्यात होना । जैसे,—उसने लड़ाई में बड़ा नाम किया । नाम को धब्बा लगाना = १० 'नाम पर धब्बा लगाना' । नाम को भरना — सुयश के लिये प्रयत्न करना । अच्छा नाम पाने के लिये उद्योग करना । कीर्ति के लिये जो तोड़ परिश्रम करना । नाम चलना = यश स्थिर रहना । कीर्ति का बहुत दिनों तक बना रहना । नाम जगना = नाम चमकना । कीर्ति फैलना । स्थाति होना । नाम जगाना = नाम चमकाना । उज्ज्वल कीर्ति फैलाना । नाम डुबाना = नाम को कलंकित करना । यश और कीर्ति का नाश करना । मान और प्रतिष्ठा खोना । नाम डूबना = (१) नाम कलंकित होना । यश और कीर्ति का नाश होना । (२) नाम न चलना । किर्ति का लुप्त होना । स्मारक न रहना । नाम पर धब्बा लगाना = नाम को कलंकित करना । यश पर बाध लगाना । बदनामी करना । जैसे,—क्यों ऐसा काम करके बड़ों के नाम पर धब्बा लगाते हो ? नाम पाना = प्रसिद्धि प्राप्त करना । मशहूर होना । नाम रह जाना = लोगों में स्मरण बना रहना । कीर्ति की चर्चा रहना । यश बना रहना । जैसे,—मरने के पीछे नाम ही रह जाता है । नाम से पुजना = नाम प्रसिद्ध होने के कारण आदर पाना । नाम से बिकना = नाम प्रसिद्ध हो जाने से आदर पाना । नाम ही नाम रह जाना = पुरानी बातों के कारण लोगों में प्रसिद्ध मात्र रह जाना, पर उन बातों का न रहना । जैसे,—नाम ही नाम रह गया है, उनके पास अब कुछ है नहीं ।

नाम^१—संज्ञा पुं० [फा०] १. प्रसिद्धि । उज्ज्वल । धाक । दबदबा । २. कुल । वंशपरंपरा । नस्ल । ३. यादगार । स्मारक । ४. कलंक । लांछन [को०] ।

नामक—वि० [सं०] नाम से प्रसिद्ध । नाम धारण करनेवाला ।
जैसे,—बिहार में पटना नामक एक नगर है ।

नामकरण—संज्ञा पुं० [सं०] १. नाम रखने का काम । पहचान के लिये नाम निश्चित करने की क्रिया । २. हिंदुओं के सोलह संस्कारों में से एक जिसमें बच्चे का नाम रखा जाता है ।

विशेष—यह पौचर्षी संस्कार है । जन्म से ग्यारहवें या बारहवें दिन बच्चे का नामकरण संस्कार होना चाहिए । ग्यारहवाँ दिन इसके लिये बहुत अच्छा है, यदि ग्यारहवें दिन न हो सके तो बारहवें दिन होना चाहिए । गोमिल गृह्यसूत्र में ऐसी ही व्यवस्था है । स्मृतियों में वर्षों के अनुसार व्यवस्था मिलती है, जैसे, क्षत्रिय के लिये तेरहवें दिन, वैश्य के लिये सोलहवें दिन और शूद्र के लिये बाईसवें दिन । गोमिल गृह्यसूत्र में

नामकरण का विधान इस प्रकार है : बच्चे को अच्छे कपड़े पहनाकर माता वाम भाग में बैठे हुए पिता की गोद में दे । फिर उसकी पीठ की ओर से परिक्रमा करती हुई उसके सामने आकर खड़ी हो । इसके अनंतर पति वेदमंत्र का पाठ करके बच्चे को फिर अपनी पत्नी की गोद में दे दे । फिर होम आदि करके नाम रखा जाय ।

नामकरण पद्धति में गृह विधान इस रूप में हो गया है : नामकरण के दिन पिता गोरी, गोडशमात्रिका आदि का पूजन और वृद्धिआद करके अपनी पत्नी को वाम भाग में बैठावे, फिर पत्थर की पट्टरी पर दो रेखाएँ खींचे फिर दीपक जलाकर यदि लड़का हो तो उसके दाहिने कान के पास 'अमुक देव शर्मा' इत्यादि और लड़की हो तो 'अमुक देवी' इत्यादि कहकर नामकरण करे । नाम के अन्त में यदि ब्राह्मण हो तो शर्मा और देव, क्षत्रिय हो तो र्मा या शर्मा, वैश्य हो तो भुनि या गुप्त, और शूद्र हो तो दास होना चाहिए । पारस्कर गृह्यसूत्र के अनुसार पुष्प का नाम लड़कियों में होना चाहिए, पर स्त्री का नाम यदि लड़कियों में हो तो उतना दोष नहीं, जैसे, माधारी, कैकयी ।

नामकर्म—संज्ञा पुं० [सं० नामकर्मन्] १. नामकरण संस्कार । २. जैन शास्त्रानुसार कर्म का वह पद जिससे शब्द गति और जाति आदि पर्यायों का अनुभव करना है ।

विशेष - नामकर्म ३४ प्रकार के माने गए हैं—जैसे नरक गति, निर्यक गति, द्रीद्रिय जाति, चतुरिद्रिय जाति, अस्थिर, शुभ, अशुभ, स्थावर, मूढम इत्यादि ।

नामकीर्तन—संज्ञा पुं० [सं०] ईश्वर के नाम का जप या उच्चारण । भगवान् का भजन ।

नामकृत—संज्ञा पुं० [सं०] कोटिल्य के अनुसार अमनो चीज का नाम छिपाना और उसका दूसरा नाम बनाना । कल्पित नाम बतलाना ।

नामग्रह, नामग्रहण—संज्ञा पुं० [सं०] नाम के साथ उल्लेख । नाम लेकर कहना या पुकारना [को०] ।

नामग्राम—संज्ञा पुं० [सं०] नाम और पता ।

नामजद—वि० [फा० नामजद] १. जिसका नाम किसी बात के लिये निश्चित कर लिया गया हो या चुन लिया गया हो । जैसे,—वे इस माल नहसीलदारी के लिये नामजद हो गए हैं । २. प्रसिद्ध । मशहूर ।

नामजदगी—संज्ञा स्त्री० [फा० नामजदगी] किसी बात या काम के लिये नाम निश्चित करना [को०] ।

नामजाद(पु)—वि० [फा० नामजद] ३० 'नामजद २' । उ०—बाइ सोन स्याम की हुराम पोर केने होइ नामजाद रगत में जोत्पी पन तोनो है ।—सुंदर० पं०, भा० १, पृ० ४८५ ।

नामतः—अव्य० [सं० नामतः] नाम के द्वारा । नाम से [को०] ।

नामदार—वि० [फा०] जिसका बड़ा नाम हो । नामी । प्रसिद्ध ।

नामदेव—संज्ञा पुं० [सं०] १. कृष्ण के उपासक एक प्रसिद्ध भक्त ।

विशेष—नामा जो कृत भक्तमाल में इनकी कथा इस प्रकार लिखी है। नामदेव वामदेव जी के नाती (दौहित्र) थे। वामदेव कृष्ण के उपामक थे इससे नामदेव में जी वास्यावस्था से ही कृष्ण की गहरी भक्ति थी। वामदेव कुछ दिनों के लिये बाहर गए और अपने दौहित्र नामदेव से कृष्ण की प्रतिमा की प्रति दिन दूध चढ़ाने के लिये कहते गए। नामदेव ने मूर्ति के आगे दूध रखा और पीने की प्रार्थना की। जब मूर्ति ने दूध न पिया तब नामदेव आत्महत्या करने पर उद्यत हुए। इस पर कृष्ण भगवान् ने प्रकट होकर दूध पिया। नामदेव जब चीटकर आए तब उन्हें यह व्यापार देख बड़ा आश्चर्य हुआ। धीरे धीरे यह बात बादशाह के कानों तक पहुँची। उसने नामदेव को बुलाकर करामात दिखाने के लिये कहा। नामदेव ने स्वीकार नहीं किया। एक दिन संयोगवश एक गाय का बछड़ा मर गया और वह उसके शोक में बहुत व्याकुल हुई। नामदेव ने बछड़े को जिला दिया।

२. महाराष्ट्र देश के एक प्रसिद्ध कवि जो सन् १३०० के लगभग वर्तमान थे।

नामदाश्री—संज्ञा स्त्री० [मं०] एक व्रत जिसमें अगहन सुदी तीज को गोरी, काली, उमा, भद्रा, दुर्गा, कान्ति, सरस्वती, मंगला, वेणुवी, लक्ष्मी, शिवा और नारायणी इन बारह देवियों की पूजा होती है (देवीपुराण)।

नामधन—संज्ञा पुं० [मं०] एक संकर राग जो मल्लार, शंकराभरण, बिलावल, सूहे और केसरी के योग से बना माना जाता है।

नामधराई—संज्ञा स्त्री० [हिं० नाम + धरना] बदनामी। निंदा। धारीति।

क्रि० प्र०—करना।—कराना।—होना।

नामधातु—संज्ञा स्त्री० [मं०] व्याकरण में नाम अर्थात् संज्ञा पदों से निमित्त धातु [को०]।

नामधाम—संज्ञा पुं० [हिं० नाम + धाम] नाम और पता। नाम धाम। पता ठिकाना।

नामधारक—वि० [मं०] केवल किसी नाम को धारण करनेवाला, उक्त नाम के अनुसार कर्म न करनेवाला। नाम धारक।

विशेष—जो ब्राह्मण वेदवाङ्मय आदि कर्म न करते हो उन्हें पराणर स्मृति में 'नामधारक' कहा गया है।

नामधारी—वि० [मं०] नाम धारण करनेवाला। नामवाला। नामक।

नामधेय—संज्ञा पुं० [मं०] १. नाम। अधिधान। आख्या। निदर्शक शब्द। २. नामकरण।

नामधेय—वि० नामवाला। नाम का।

नामनामिका—क्रि० स० [मं० नाम + क] झुकाना। नवाना। प्रणमन करना। उ०—नागे भोज अनेक नरेश्वर, रेत सुखी अणुरैह।—रघु० ५०, पृ० ६२।

नामनामिक—संज्ञा पुं० [मं०] विष्णु का एक नाम [को०]।

नामनिक्षेप—संज्ञा पुं० [मं०] नामस्मरण (बैन)।

नामनिर्देश—संज्ञा पुं० [मं०] नाम का कथन या उल्लेख [को०]।

नामनिशान—संज्ञा पुं० [फा०] चिह्न। पता। ठिकाना। वैसे,—उस मैदान में बस्ती का नाम निशान भी नहीं है।

नामबोझा—संज्ञा पुं० [हिं० नाम + बोलना] नाम लेनेवाला। नाम जपनेवाला। विनय और भक्तिपूर्वक नामस्मरण करनेवाला।

नाममात्र—वि० [मं०] १. नाम लेने भर का। अत्यंत अल्प। कहने भर को [को०]।

नाममाला—संज्ञा स्त्री० [मं०] नाम अर्थात् संज्ञा शब्दों का क्रमबद्ध संग्रह या अधिधान। पर्यायवाची या अनेकार्थक शब्दों का कोश। जैसे, अनेकार्थ नाममाला।

नाममुद्रा—संज्ञा स्त्री० [मं०] वह मुहर जिस पर नाम खुदा हो। वह छेँगी जिस पर नाम हो [को०]।

नामयज्ञ—संज्ञा पुं० [मं०] १. जो यज्ञ केवल नाम या भूमिधाम के लिये किया जाय। २. अगवधनामसंकीर्तन का अनुष्ठान या आयोजन।

नामरासी—वि० [मं० नाम + राशि] एक ही नामवाला। समान नाम का।

नामरूप—संज्ञा पुं० [मं०] सबके आधार स्वरूप अगोचर वस्तु तत्त्व के परिवर्तनशील नाना रूप या आकार जो इंद्रियों को जान पड़ते हैं तथा उनके भिन्न भिन्न नाम जो भेदज्ञान के अनुसार रखे जाते हैं।

विशेष—वेदांत के अनुसार एक ही अगोचर नित्य तत्त्व है। जो अनेक भेद दिखाई पड़ते हैं वे वास्तविक नहीं हैं। वे केवल रूपों या आकारों के कारण हैं जो इंद्रियों या मन के संस्कार मात्र हैं। समुद्र और तरंग मयबा सोना और गहना दो भिन्न भिन्न नाम हैं। एकीकरण द्वारा आत्मा सोने और गहने में मयबा समुद्र और तरंग में सामान्य गुणवाला एक ही पदार्थ देखती है। सोना एक पदार्थ है पर भिन्न भिन्न अवसरों पर बदलनेवाले आकारों के जो संस्कार इंद्रियों द्वारा मन पर होते हैं उनके कारण सोने को ही कभी कड़ा, कभी कंगन, कभी छेँगी इत्यादि कहते हैं। इसी प्रकार जगत् में वास्तव्य हैं सब केवल नामरूपात्मक हैं। उनके भीतर वस्तुसत्ता छिपी हुई है। वेदांत में सदा बदलते रहनेवाले नामरूपात्मक रूप दृश्य जगत् को 'मिथ्या' और 'नाशवान्' और नित्य वस्तुतत्त्व को सत्य वा अमृत कहते हैं।

नामर्द—वि० [फा०] १. जिसमें पुरुष की शक्ति विशेष न हो। नपुंसक। बलीव। २. बीह। डरपोक। कायर।

नामर्दी—वि० [फा० नामर्दहू] दे० 'नामर्द'।

नामर्दी—संज्ञा स्त्री० [फा०] १. नपुंसकता। बलीवता। २. कायरता। बीहता। साहस का अभाव।

नामलेखा—संज्ञा पुं० [हिं० नाम + लेना] १. नाम लेनेवाला। नाम स्मरण करनेवाला। २. उत्तराधिकारी। संतति। वारिस। जैसे,—नामलेखा रहा न पानी-देवा।

नामवर—वि० [फा०] जिसका बड़ा नाम हो। नामी। प्रसिद्ध। अलहूर।

नामवरी—संज्ञा स्त्री० [फा०] कीर्ति । प्रसिद्धि । श्रुत ।

नामवर्जित—वि० [सं०] १. नाम से रहित । नामहीन । २. मूर्ख । बेवकूफ [को०] ।

नामवाचक—वि० [सं०] नाम व्यक्त करनेवाला ।

नामवाचक—संज्ञा पुं० १. नाम । २. व्यक्तिवाचक संज्ञा ।

नामशेष—वि० [सं०] १. जिसका केवल नाम बाकी रह गया हो । जो न रह गया हो । नष्ट । छवस्त । २. मृत । गत । मरा हुआ । उ०—नामशेष रह जायें वाम बैरी बस अब से ।—साकेत. पु० ४२० ।

नामशः—संज्ञा पुं० मृत्यु । मोत [को०] ।

नामसत्य—संज्ञा पुं० [म०] किसी व्यक्ति या वस्तु का ठीक ठीक नामकथन नाते वह नाम उसकी अवस्था या गुण के अनुकूल न हो । जैसे,—लक्ष्मीपति यदि दरिद्र है तो भी उसे लोग लक्ष्मीपति ही कहेंगे । (जैन) ।

नामांक—वि० [सं० नामाङ्क] ३० 'नामांकित' [को०] ।

नामांकित—वि० [म० नामाङ्कित] जिसपर नाम लिखा हुआ हो या जुड़ा हो ।

नामांतर—संज्ञा पुं० [सं० नामान्तर] द्वितीय नाम । उपनाम ।

नामा—वि० [सं० नामन्] नामवाला । नामधारी ।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग बहुव्रीहि समास के उत्तर पद में होता है ।

नामा—संज्ञा पुं० नामदेव भक्त ।

नामाकूल—वि० [फा० ना + अ० माकूल] १. अयोग्य । २. अनुचित । अनुचित ।

नामानुशासन—संज्ञा पुं० [म०] अभिधान । कोश [को०] ।

नामापराध—संज्ञा पुं० [सं०] किसी प्रतिष्ठित का नाम लेकर अपमान प्रयोग [को०] ।

नामाभिधान—संज्ञा पुं० [म०] ३० 'नामानुशासन' [को०] ।

नामावर—संज्ञा पुं० [फा० नामवर] पत्रवाहक । उ०—य कातिल के यहाँ लन ले गया है । खुदा गैर कीजो नामावर की ।—कविता की०, भा० ४, पृ० २६ ।

नामालूम—वि० [फा० ना + अ० मालूम] जो मालूम न हो । अज्ञात ।

नामावली—संज्ञा स्त्री० [म०] १. नामों की पंक्ति । नामों की सूची । २. वह कपड़ा जिसपर चारों ओर भगवान का नाम छपा होता है और जिसे मक्त लोग ओढ़ते हैं । रामनामा ।

नामि—संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु [को०] ।

नामिक—संज्ञा पुं० [सं०] १. नाम संबंधी । संज्ञा संबंधी ।

नामित—वि० [म०] भुकाया हुआ ।

नामिनेटेड—वि० [अंग०] जो किसी पद के लिये चुना गया हो । जो किसी स्थान के लिये पसंद किया गया हो । मनोनीत । नामजद । जैसे, नामिनेटेड मेंबर ।

नामिनेशन—संज्ञा पुं० [अंग०] किसी पद के लिये किसी का मनोनीत किया जाना । नामजदगी ।

नामी—संज्ञा पुं० [हि० नाम + ई (प्रत्य०) अथवा सं० नामिन्] १. नामधारी । नामवाला । जैसे,—रामप्रसाद नामी एक मनुष्य । २. जिसका बड़ा नाम हो । प्रसिद्ध । विख्यात । मशहूर । जैसे, नामी घादमी ।

नामी—नामी गिरामी ।

नामी गिरामी—वि० [फा०; मि० म० नामग्राम] जिसका बड़ा नाम हो । प्रसिद्ध । विख्यात ।

नामुनासिब—वि० [फा०] अनुचित । अयोग्य । गैरवाजिब ।

नामुमकिन—वि० [फा० ना + अ० मुमकिन] जो कभी न हो सके । असंभव ।

नामुराद—वि० [फा०] जिसका अभीष्ट मित्र न हुआ हो । विफलमनोरथ ।

विशेष—पश्चिम में इस शब्द का प्रयोग प्रायः गाली के रूप में होता है ।

नामुवाफिक—वि० [फा० ना + अ० मुवाफिक] जो मुवाफिक या अनुकूल न हो । प्रतिरूप । विरुद्ध ।

नामूसी—संज्ञा स्त्री० [अ० नामूस (= इज्जत)] बेइज्जती । अप्रतिष्ठा । बदनामी । मिटा ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

नामेहरबान—वि० [फा०] जो मेहरबान न हो । अकृपालु ।

नाम्ना—वि० [वि० स्त्री० नामनी] नामवाला । नामधारी ।

नाम्य—वि० [सं०] भुक्ताने योग्य ।

नाय^१—संज्ञा पुं० [सं० नाम] ३० 'नाम' ।

नाय^२—अव्य० [हि०] ३० 'नही', 'नाही' ।

नाय^३—संज्ञा पुं० [म०] १. नय । नीति । २. उदाय । युक्ति । ३. नेता । अनुधा । ४. नेतृत्व । अनुधाई ।

नाय^४—संज्ञा स्त्री० [हि० नाव] नाव । नौका । किशोरी ।

नायक—संज्ञा पुं० [म०] [स्त्री० नायिका] १. जनता को किसी ओर प्रवृत्त करने का अधिकार या प्रभाव रखनेवाला पुरुष । लोगो को अपने कहे पर चलानेवाला आदमी । नेता । अनुधा । सरदार । जैसे, सेना का नायक । २. अधिपति । स्वामी । मासिक । जैसे, गणनायक । ३. श्रेष्ठ पुरुष । जननायक । उ०—सब नायक होई जाय बेल फिर कौन लदावे ।—पलटू, भा० १, पृ० १ । ४. माहित्य में शृंगार का आलंकरण या साधक कर-यौवन-संपन्न अथवा वह पुरुष जिसका चरित्र किसी काव्य या नाटक आदि का मुख्य विषय हो ।

विशेष—साहित्यदर्पण में लिखा है कि दानशील, कृती, सुभो, रूपवान, युवक, कार्यकुशल, लोकसेवक, तेजस्वी, पंडित और सुशील ऐसे पुरुष को नायक कहते हैं । नायक चार प्रकार के होते हैं—धोरोदात्त, धोरोद्धत, धोरललित और धोरप्रधान । जो आत्मश्लाघारहित, क्षमाशील, गंभीर, महाबलशाली,

धिर और विनयसंपन्न हो उसे धीरोदात्त कहते हैं। जैसे, राम, युधिष्ठिर। मायावी, प्रबंध, अहंकार और आत्मश्लाघा-युक्त नायक को धीरोदत्त कहते हैं। जैसे, भीमसेन। निश्चिंत, मृदु और नृत्यगीतादिप्रिय नायक को धीरोदात्त कहते हैं। त्यागी और कुटी नायक धीरोदात्त कहलाते हैं। इन चारों प्रकार के नायकों के फिर अनुकूल, दक्षिण, धृष्ट और णठ ये चार भेद किए गए हैं। शृंगार रस में पहले नायक के तीन भेद किए गए हैं—पति, उपपति और पणिक (वैश्यानुरक्त)। पति चार प्रकार के कहे गए हैं—अनुकूल, दक्षिण, धृष्ट और णठ। एक ही विवाहिता स्त्री पर अनुरक्त पति को अनुकूल, अनेक स्त्रियों पर समान प्रीति रखनेवाले को दक्षिण, स्त्री के प्रति अपराधी होकर बार-बार अपमानित होने पर भी निलज्जतापूर्वक विनय करनेवाले को धृष्ट और छलपूर्वक अपराध छिपाने में अनुर पति को णठ कहते हैं। उपपति दो प्रकार के कहे गए हैं—वचनचतुर और क्रियाचतुर।

५. द्वार के मध्य की मणि। माला के बीच का नग। ६. संगीत कला में निपुण पुरुष। कलावंत। ७. एक बर्णवृत्त का नाम। ८. एक राग जो दीपक राग का पुत्र माना जाता है। ९. इस सेनापतियों के ऊपर का अधिकारी। १०. कोटिस्थ के अनुसार बीस हाथियों तथा घोड़ों का अंश। ११. भाव्य गुण का नाम (को०)।

नायका—संज्ञा स्त्री [सं० नायिका] १. ३० 'नायिका'। २. वैश्या की माँ। ३. कुटीनी। कुटी।

नायकाधिप—संज्ञा पुं [सं०] राजा। नरेज (को०)।

नायकी—संज्ञा पुं [सं०] एक राग का नाम।

नायकी कान्हड़ा—संज्ञा पुं [सं० नायकी + हि० कान्हड़ा] एक राग, जिसमें सब कोमल स्वर लगते हैं।

नायकी मल्लार—संज्ञा पुं [सं० नायक + मल्लार] संपूर्ण जाति का एक राग जिसमें सब ध्रुव स्वर लगते हैं।

नायणी—संज्ञा स्त्री [हि० नायन] ३० 'नायन'। उ०—सहज ललाई साँपरत प्रीतम प्यारी पाय। निरखे अरु न नायणी जावक वे मिलि जाय।—बाली० ग्रं०, भा० ३, पृ० ३८।

नायन—संज्ञा पुं [हि०] देव।

नायन, नायनि—संज्ञा स्त्री [हि० नाई] [स्त्री० नाइन] नाई की स्त्री। नासि का काम करनेवाली स्त्री। उ०—ओरन के पाइन दियो, नायनि जावक लाल। प्रान पियारी रावरी परलत तुम्हें रसाल।—मति० ग्रं०, पृ० २६३।

नायब—संज्ञा पुं [अ०] १. किसी की ओर से काम करनेवाला। किसी के काम की देखरेख रखनेवाला। मुनीम। मुख्तार। २. काम में मदद देनेवाला छोटा अफसर। सहायक। सहकारी। जैसे, नायब दीवान, नायब तहसीलदार।

नायबी—संज्ञा स्त्री [अ० नायब + ई (प्रत्यय)] १. नायब का कान। २. नायब का पद।

नायब—वि० [फ्रा०] १. जो न मिलता हो। अप्राप्य। २. उत्कृष्ट।

नायिका—संज्ञा स्त्री [सं०] १. रूप-गुण-संपन्न स्त्री। वह स्त्री जो शृंगार रस का आलंबन हो अथवा किसी काव्य, नाटक आदि में जिसके चरित्र का वर्णन हो।

विशेष—शृंगार में प्रकृति के अनुसार नायिकाओं के तीन भेद बतलाए गए हैं—उत्तमा, मध्यमा, और अधमा। प्रिय के अहितकारी होने पर भी हितकारिणी स्त्री को उत्तमा। प्रिय के हित या अहित करने पर हित या अहित करनेवाली स्त्री को मध्यमा और प्रिय के हितकारी होने पर भी अहितकारिणी स्त्री को अधमा कहते हैं। धर्मानुसार इनके तीन भेद हैं—स्वकीया, परकीया और सामान्या। अपने ही पति में अनुराग रखनेवाली स्त्री को स्वकीया या स्वकीया, परपुरुष में प्रेम रखनेवाली स्त्री को परकीया या अन्या और घन के लिये प्रेम करनेवाली स्त्री को सामान्या, साधारण या गणिका कहते हैं। तयःक्रमानुसार स्वकीया तीन प्रकार की मानी गई है—मुग्धा, मध्या और प्रीडा। कामचेष्टारहित अंकुरितयौवना को मुग्धा कहते हैं जो दो प्रकार की कही गई है—प्रजातयौवना और ज्ञातयौवना। ज्ञातयौवना के भी दो भेद किए गए हैं—नवोद्धा जो लज्जा और शय से पतिसमागम की इच्छा न करे और विश्रब्धनवोद्धा जिसे कुछ अनुराग और निश्वास पति पर हो। अवरणा के कारण जिस नायिका में लज्जा और कामवासना समान हो उसे मध्या कहते हैं। कामकला में पूर्ण रूप से कुशल स्त्री को प्रीडा कहते हैं। इनमें से मध्या और मुग्धा ये दो भेद केवल स्वकीया में ही माने गए हैं, फिर मध्या और प्रीडा के धीरा, अधीरा और धीराधीरा ये तीन भेद किए गए हैं। प्रिय में परस्त्रीसमागम के बिना देह धैर्यसहित सादर कोप प्रकट करनेवाली स्त्री को धीरा, प्रत्यक्ष कोप करनेवाली स्त्री को अधीरा तथा कुछ गुत और कुछ प्रकट कोप करनेवाली स्त्री को धीराधीरा कहते हैं।

परकीया के प्रथम दो भेद किए गए हैं—ऊढ़ा और अमूढ़ा। विवाहिता स्त्री यदि परपुरुष में अनुरक्त हो तो उसे ऊढ़ा या परोढ़ा और अविवाहित स्त्री यदि अनुरक्त हो तो उसे अमूढ़ा या कन्यका कहते हैं। इसके प्रतिरिक्त व्यापारभेद से भी कई भेद किए गए हैं—जैसे, गुप्ता, विदग्धा, लक्षिता इत्यादि। नायिकाओं के अट्टाईस अलंकार कहे गए हैं। इनमें हास भाव और हेला ये तीन अंगज कहलाते हैं। गोभा, कांति शीति, माधुर्य, प्रगल्भता, ओदार्य और धैर्य ये सात अयलसिद्ध कहे जाते हैं। लीला, विलास, विच्छिन्ति, विध्वोक, किल-किंचित, मोट्टायित, कुट्टमित, विभ्रम, ललित, मद, विभ्रत, तपन, मोग्ध, विक्षेप, कुतूहल, हसित, अकित और केनि ये अठारह स्वभावज कहलाते हैं।

२ पुराणानुसार दुर्गा की शक्ति। ३० 'अष्टनायिका' (को०)।

३. स्त्री। पत्नी (को०)। ४. एक प्रकार की कस्तूरी (को०)।

नारंग—संज्ञा पुं [सं० नारङ्ग] १. नारंगी। २. गाजर। ३. पिप्पलीरस। ४. यमज प्राणी। ५. विट (को०)। ६. पंजाबी ब्राह्मणों की एक उपाधि।

नारंगी—संज्ञा स्त्री [हि० नारङ्ग, अ० नारंज] १. नीबू की जाति

का एक मझोला पेड़ जिसमें मोठे सुगंधित और रसीले फल लगते हैं।

विशेष—पेड़ इसका नीबू ही का सा होता है। नारंगी का छिलका मुलायम और पीलापन लिए हुए लाल रंग का होता है और गूदे से अधिक लगा न रहने के कारण बहुत सहज में छलग हो जाता है। भीतर पतली भिन्नी से बड़ी हुई फाँके होती हैं जिनमें रस से भरे हुए गूदे के रवे होते हैं। एक एक फाँक के भीतर दो या तीन बीज होते हैं। नारंगी गरम देशों में होती है। एशिया के अतिरिक्त युरोप के दक्षिण भाग, अफ्रिका के उत्तर भाग और अमेरिका के कई भागों में इसके पेड़ बगीचों में लगाए जाते हैं और फल चारों ओर भेजे जाते हैं। भारत में जो मोठी नारंगियाँ हाती हैं वे और कई फलों के समान अधिकतर आसाम होकर चीन से आई हैं, ऐसा लोगों का मत है। भारतवर्ष में नारंगियों के लिये प्रसिद्ध स्थान हैं सिलहट, नागपुर, सिकिम, नेपाल, गढ़वाल, कुमायूँ, दिल्ली, पूना और कुर्ग। नारंगी के प्रधान चार भेद कहे जाते हैं—संतरा, कंबला, माल्टा और चीनी। इनमें संतरा सबसे उत्तम जाति है। संतरे भी देशभेद से कई प्रकार के होते हैं।

चीन और भारतवर्ष के प्राचीन ग्रंथों में नारंगी का उल्लेख मिलता है। संस्कृत में इसे नागरंग कहते हैं। 'नाग' का अर्थ है सिंघुर। छिलके के लाल रंग के कारण यह नाम दिया गया। सुश्रुत में नागरंग का नाम आया है। इसमें कोई संदेह नहीं कि युरोप में यह फल अरबवालों के द्वारा गया।

२. नारंगी के छिलके का सा रंग। पीलापन लिए हुए लाल रंग।

नारंगी^३—वि० पीलापन लिए हुए लाल रंग का।

नार^१—संज्ञा स्त्री० [सं० नाल, नाड] १. गला। गरदन। घोड़ा।

मुहा०—नार नवाना = (१) गरदन झुकाना। सिर नीचे की ओर करना। (२) सज्जा, बिता, संकोच, मान आदि के कारण सामने न साकना। टट्टि नीची करना। लज्जित होने, बिता करने या कठने का भाव प्रकट करना। उ०—समुक्ति निज अपराध करनी नार नावति नीच। बहुत दिन तें बरति है कै भाँखि दोबै सीवि।—सूर (शब्द०)। नार नीची करना—दे० 'नार नवाना'। उ०—मान मनायो राधा प्यारी। कत हँ रही नार नीची करि देखत लोचन झूने। सूर (शब्द०)।

२. जुलाहों की ठरकी। नाल। ३. (५) कमल की डंडी। धृष्ट्या की नाव। उ०—बरनी गीब कूँब के रीसी। कंज नार अनु लागेठ सीसी।—जायसी शं०, (गुप्त), पृ० १६२।

नार^२—संज्ञा पुं० १. सख नाव। भाँवल नाव। वह गर्भस्थ पुत्र जिससे जन्म के पूर्व गर्भस्थ शिशु बंधा रहता है। वि० दे० नाव^२।

यी०—नार बेवार।

२. नावा। ३. बहुत मोटा रस्सा। ४. सूत की डोरी जिससे स्त्रियाँ घाँघरा कसती हैं अथवा कहीं कहीं बोटों की चूनन बाँधती हैं। नारा। नासा। ५. जुबा जोड़ने की रस्सी या तस्मा। ६. चरने के लिये जायेवाले चौपायों का झुंड।

नार^३—संज्ञा स्त्री० [सं० नारी] दे० 'नारी'।

नार^४—संज्ञा पुं० [सं०] १. नरसमूह। मनुष्यों की भीड़। २. तुरत का जनमा हुआ गाय का बछड़ा। ३. जल। पानी। उ०—हम घट बिरह दून के दहा। लोचन नार समुंद होइ बहा।—चित्रा०, पृ० १७१। ४. सोंठ। जुंठो।

नार^५—वि० १. नरसंबंधी। मनुष्यसंबंधी। २. परमात्मासंबंधी।

नार^६—संज्ञा पुं० [फा०] अनार [की०]।

नार^७—संज्ञा स्त्री० [अ०] १. आग। अग्नि। उ०—मसम होवे एक दिन में घर दुख की नार।—दक्षिणी०, पृ० १४०। २. नरक [की०]।

नारक^१—संज्ञा पुं० [सं०] १. नरक। २. नरकस्थ प्राणी। नरक में रहनेवाला व्यक्ति।

नारक^२—वि० नरक संबंधी। नरक का [की०]।

नारकिक—वि० [सं०] नारकी [की०]।

नारकी—वि० [सं० नारकिन्] नरक भोगनेवाला या नरक में जाने योग्य कर्म करनेवाला। पापी।

नारकीट—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक प्रकार का कीड़ा। प्रथमकीट। २. किसी को आशा देकर निराश करनेवाला प्रथम मनुष्य।

नारकीय—वि० [सं०] नरक संबंधी। नरक का। उ०—कानी नारकीय छाया निज छोड़ गया वह मेरे भीतर। पैशाचिक सा कुछ दुःखों से मनुज गया शायद उसम मर।—पाप्मा, पृ० ३०।

नारजीवन—संज्ञा पुं० [सं०] स्वर्ण। सोना [की०]।

नारद^१—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक ऋषि का नाम जो ब्रह्मा के पुत्र कहे जाते हैं। ये देवर्षि माने गए हैं।

विशेष—वेदों में ऋग्वेद मंडल ८ और ९ के कुछ मंत्रों के कर्ता एक नारद का नाम मिलता है जो कहीं कएव और कहीं वष्यावंशी लिखे गए हैं। इतिहास और पुराणों में नारद देवर्षि कहे गए हैं जो नाना लोकों में बिचरते रहते हैं और इस लोक का संवाद उस लोक में दिया करते हैं। हरिवंश में लिखा है कि नारद ब्रह्मा के मानसपुत्र हैं। ब्रह्मा ने प्रजापृष्टि की अभिलाषा करके पहले मरीचि, अत्रि आदि को उत्तराक्ष किया, फिर सनक, सनंदन, सनातन, सतकुमार, स्कंद, नारद और स्रग्देव उत्पन्न हुए (हरिवंश प्र० १)। विष्णु पुराण में लिखा है कि ब्रह्मा ने अपने सब पुत्रों को प्रजापृष्टि करने में लगाया पर नारद ने कुछ बाधा की, इसपर ब्रह्मा ने उन्हें क्षाप दिया कि 'तुम मया सब लोकों में घूमा करोगे; एक स्थान पर स्थिर होकर न रहोगे।' महाभारत में इनका ब्रह्मा से संगीत की शिक्षा लाभ करना लिखा है। भागवत, ब्रह्मवैवर्त आदि पीछे के पुराणों में नारद के संबंध में लंबी चोड़ी कथाएँ मिलती हैं। जैसे, ब्रह्मवैवर्त में इन्हें ब्रह्मा के कठ से उत्पन्न बताया है और लिखा है कि जब इन्होंने प्रजा की सृष्टि करना अस्वीकार किया तब ब्रह्मा ने इन्हें क्षाप दिया और गंधमादन पर्वत पर उपवर्णन नामक गंधर्व हुए। एक

दिन इंद्र की मभा में रंभा का नाच देखते देखते ये काममोहित हो गए। हमपर ब्रह्मा ने फिर शाप दिया कि 'तुम मनुष्य हो'। दुर्मल नामक गोप की स्त्री कलावती पति की आज्ञा से ब्रह्मनीयों की प्राप्ति के लिये निकली और उसने काश्यप नारद से प्रार्थना की। अंत में काश्यप नारद के वीर्यभक्षण से उसे गर्भ रहा। उसी गर्भ से गंधर्व देह त्याग नारद उत्पन्न हुए। पुराणों में नारद बड़े भारी हरिभक्त प्रसिद्ध हैं। ये सदा भगवान् का यज्ञ योग्य बनाकर गाया करते हैं। इनका स्वभाव कलहप्रिय भी कहा गया है इसी से इधर की उधर लगानेवाले को लोग 'नारद' कह दिया करते हैं।

२. विश्वामित्र के एक पुत्र का नाम (महाभारत)। ३. एक प्रजापति का नाम। ४. काश्यप मुनि की स्त्री से उत्पन्न एक गंधर्व। ५. नीलोम नदी में से एक। ६. शाकदीप का एक पर्वत (मत्स्यग्र पु०)। ७. वह व्यक्ति जो लोगों में परस्पर भगडा लगाता हो। नडाई करनेवाला। ८. जलद।

नारदपुराण—संज्ञा पु० [सं०] १. अथारह महापुराणों में से एक। इसमें सनकादिक ने नारद की संबोधन करके कथा कही है और उपदेश दिया है। इसमें कथाओं के अतिरिक्त तीर्थों और अरुण की महत्त्व बहुत अधिक दिए हैं। २. बृहस्पति नामक एक उपपुराण।

नारदान्तःपु०—संज्ञा पु० [हि०] अंत निकलने की नाली। दे० 'नाथान'। उ०—न्यारे न्यारे नारदान मूँदीगी भरोसा नाल, पाइते न पानी, पीन धावन न पावैगी।—केशव ग्रं०, भा० १, पृ० १५६।

नारदी—संज्ञा पु० [सं० नारदीन्] विश्वामित्र के एक पुत्र का नाम। नारदीय—वि० [सं०] नारद का। नारद संबंधी। जैसे, नारदीय पुराण।

नारना—वि० सं० [सं० जान, प्रा० ग्राण + हि० ना] बाह लगाना। पता लगाना। भविष्य। तज्ञाना। उ०—राधा मन में यह विचारति। मोहते ये चतुर कहावति ये मन ही मन मोहो नारना। ऐसे बचन कही इन पै चतुराई इनकी में भारति।—सूर०, १०/१७११।

नारफिक—संज्ञा पु० [सं०] दिलायती घोड़ों की एक जाति जो नारफाक प्रदेश में पाई जाती है। इस जाति के घोड़े दीवदोल में बड़े, मुँदर और मजबूत होते हैं।

नार बेवार—संज्ञा पु० [हि० नार + सं० बेवार (= फेलाव)] धावन नाल। नाल और गरी आदि। नारापोगी। उ०—नार बेवार समत उठाय। ले बमुदेव धन तन छावा।—विश्वाम (शब्द०)।

नारभन—संज्ञा पु० [सं०] १. फ्रांस के नारमंडी प्रदेश का निवासी। २. अहाज का रसा बंधन का सूटा।

नारबोर—संज्ञा पु० [सं० नारबोर] नारियल। उ०—कट्टे केर केल कों नारबोर।—प० रासा, पु० ५३।

नारसिंह—संज्ञा पु० [सं०] १. नरसिंह रूपधारी विष्णु।

विशेष—त्रैलोक्य आरम्यक में नारसिंह की गाथी मिलती है।

२. एक तंत्र का नाम। ३. एक उपपुराण जिसमें नरसिंह अवतार की कथा है। ४. १६वें कल्प का नाम (को०)।

नारसिंह—वि० दे० 'नारसिंह'।

नारसिंह—वि० [सं० नारसिंह + ई (प्रत्य०)] नारसिंह संबंधी।

बी०—नारसिंह टोना = बड़ा गहरा टोना।

नारांतक—संज्ञा पु० [सं० नारांतक] एक राक्षस जो रावण के पुत्रों में कहा गया है।

नारा—संज्ञा पु० [सं०] जल (मनु०)।

नारा—संज्ञा पु० [सं० नाल, हि० नार] १. सूत की डोरी जिससे स्त्रियाँ घाघरा कसती हैं अथवा कहीं कहीं धोती की चुनन बांधती हैं। इजारबंद। नीबी। दे० 'नाड़ा'। उ०—नाराबंधन भूषण जयन।—सूर (शब्द०)। २. नाल रंगा हुआ कच्चा सूत जो पूजन में देवताओं को चढ़ाया जाता है। मोनी। कुमुभ सूत। ३. हल के जुड़े में बंधी हुई रस्सी। ४. बरसाती पानी के बहने का प्राकृतिक मार्ग। छोटी नदी। नाला। उ०—(क) चट्ट दिशि फिरेउ धनुष जिमि नारा।—मानस, २। १३३। (ख) बिच बिच सोह नदी धो नारा।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० २१२। ५. दे० 'नार'।

नारा—संज्ञा पु० [फ्रा० नालह] १. धावाज। शोर। २. सामूहिक धावाज। किसी माँग की ओर ध्यान दिलाने या प्रसन्नता और उत्साह व्यक्त करने के लिये बार बार बुलंद की जानेवाली सामूहिक धावाज।

नाराइन—संज्ञा पु० [सं० नारायण] दे० 'नारायण'।

नाराच—संज्ञा पु० [सं०] १. लोहे का बाण। वह तीर जो सारा लोहे का हो।

विशेष—शर में चार पंख लगे रहते हैं और नाराच में पाँच। इसका चलाना बहुत कठिन है।

२. बाण। तीर। ३. दुर्दिन। ऐसा दिन जिसमें बादल घिरा हो, घंघड़ चले और इसी प्रकार के और उपद्रव हों। ४. एक वर्षावृत्त का नाम जिसके प्रत्येक चरण में दो नगण और चार रगण होते हैं। इसे 'महामालिनी' और 'तारका' भी कहते हैं। ५. २४ मात्राओं का एक छंद। जैसे,—तय सरीन काल जीत बाल तीर जाय के। ६. जलहृस्ती (को०)। ७. एक प्रकार का घृत (वैद्यक)।

नाराचघृत—संज्ञा पु० [सं०] वैद्यक में एक घृत जो घी में चीने की जड़, त्रिफला, अटकैया, बायबिडंग, आदि पकाकर बनाया जाता है और उदररोग में दिया जाता है।

नाराचिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'नाराची' (को०)।

नाराची—संज्ञा स्त्री० [सं०] छोटा तराजू जिसमें बहुत छोटी छोटी चीजें तोली जाती हैं। सुनारों का काँटा।

नाराज—वि० [फ्रा० नाराज] अप्रसन्न। रुष्ट। नाखुश। बका। क्रि० प्र०—करना।—होना।

नाराजगी—संज्ञा स्त्री० [फ्रा० नाराजगी] अप्रसन्नता।

नाराजी—संज्ञा स्त्री० [फ्रा० नाराजी] अप्रसन्नता। अक्रुपा। कोप।

नारायण—संज्ञा पु० [सं०] १. विष्णु। भगवान्। ईश्वर।

विशेष—इस शब्द की व्युत्पत्ति ग्रंथों में कई प्रकार से बताई गई है। मनुस्मृति में लिखा है कि 'नर' परमात्मा का नाम है। परमात्मा के सबसे पहले उत्पन्न होने के कारण जब

को 'नारा' कहते हैं। जल जिसका प्रथम भवन या अधिष्ठान है उस परमात्मा का नाम हुआ 'नारायण'। महाभारत के एक श्लोक के भाष्य में कहा गया है कि नर नाम है आत्मा या परमात्मा का। आकाश आदि सबसे पहले परमात्मा से उत्पन्न हुए इससे उन्हें नारा कहते हैं। यह 'नारा' कारणस्वरूप होकर सर्वत्र व्याप्त है इससे परमात्मा का नाम नारायण हुआ। कई जगह ऐसा भी लिखा है कि किसी मन्वन्तर में विष्णु 'नर' नामक ऋषि के पुत्र हुए थे जिससे उनका नाम नारायण पड़ा। ब्रह्मवैवर्त आदि पुराणों में और भी कई प्रकार की व्युत्पत्तियाँ बतलाई गई हैं। तैत्तिरीय ब्राह्मण में नारायण की गायत्री है जो इस प्रकार है—'नारायणाय विष्णवे वासुदेवाय धीमहि तन्नो विष्णुः प्रचोदयात्'। यजुर्वेद के पुरुषसूक्त और उत्तर नारायण सूक्त तथा ऋग्वेद ब्राह्मण (१३।६।२।१) और शांखायन श्रौत सूत्र (१६।१३।१) में नारायण शब्द विष्णु या प्रथम पुरुष के अर्थ में आया है। जैन लोग नरनारायण को ६ वासुदेवों में से आठवाँ वासुदेव कहते हैं।

२. पूम का महीना। ३. 'ध' अक्षर का नाम। ४. कृष्ण यजुर्वेद के मन्त्रगत एक उपनिषद्। ५. नर ऋषि के सखा। उ०—नर नारायण की तुम दोऊ।—मानस, ४।५। ६. अजामिल का एक पुत्र (को०)। ७. नारायणी सेना (महाभारत)। ८. एक प्रकार का चूर्ण जो दवा के काम में आता है (को०)। ९. धर्मपुत्र नामक एक ऋषि। १०. एक अस्त्र का नाम।

नारायणक्षेत्र—संज्ञा पुं० [सं०] गंगा के प्रवाह से चार हाथ तक की भूमि (बृहदश्वमे पुराण)।

नारायणतेल—संज्ञा पुं० [सं०] आयुर्वेद में एक प्रसिद्ध तैल।

विशेष—तेल के तेल में असमंघ, भटकट्टिया, बेल की जड़ की छाल, देवदार, जटामासी इत्यादि बहुत सी दवाएँ पकाकर इस तेल को तैयार करते हैं।

नारायणप्रिय—संज्ञा पुं० [सं०] १. शिव। २. सहदेव। ३. पीतबन्धन।

नारायणबलि—संज्ञा पुं० [सं०] आत्मघात द्वारा बुरी तरह से मरनेवाले पतित भूतक के प्रायश्चित्त के लिये एक बलिकर्म जो नारायण आदि पाँच देवताओं के उद्देश्य से किया जाता है।

विशेष—आत्महत्या करनेवाले की और्ध्वदेहिक क्रिया नियमानुसार समय पर नहीं की जाती। मृत्यु के एक वर्ष पर नारायणबलि और पण्डुर दाह (फूस के पुतले का दाह) करके तब आध्यात्मिक किए जाते हैं। आत्मघाती का जो दाह आदि करता है उसे भी प्रायश्चित्त करना चाहिए।

नारायणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. दुर्गा। २. लक्ष्मी। ३. गंगा। ४. सतावर। ५. मुद्गल मुनि की स्त्री का नाम। ६. श्रीकृष्ण की सेना का नाम जिसे उन्होंने कुरुक्षेत्र के युद्ध में दुर्योधन की सहायता के लिये दिया था। ७. सबानीरा नदी जिसमें नारायणशिला मिलती है।

नारायणी—विश्वामित्र के एक पुत्र का नाम।

नारायणीय—वि० [सं०] नारायणसंबंधी।

नारायणीय—संज्ञा पुं० महाभारत का एक उपाख्यान जिसमें नारद और नारायण ऋषि की कथा है। यह माति पर्व में है।

नाराशंस—वि० [सं०] प्रशंसासंबंधी। जिसमें मनुष्यों की प्रशंसा हो। स्तुतिसंबंधी।

नाराशंस—संज्ञा पुं० १. वेदों के वे मंत्र जिनमें कुछ विशेष मनुष्यों, जैसे, राजाओं आदि का प्रशंसा होती है। प्रशस्ति। दानस्तुति आदि। २. वह चमचा जिसमें पितृ को सोमपान दिया जाता है। ३. पितरों के लिये चमचे में रखा हुआ सोम। ४. पितर।

नाराशंसो—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. मनुष्यों की प्रशंसा। २. वेद में मंत्रों का वह भाग जिनमें राजाओं के दान आदि की प्रशंसा है।

नारिग(५)—संज्ञा पुं० [सं० नारिङ्ग] नारंगी। उ०—कच मण्य भूमि चिहुकोद गस्ति। नारिग सुमन शरिम विगस्ति।—पु० रा०, १४।६६।

नारि(५)—संज्ञा स्त्री० [सं० नारी] १. दे० 'नारी'। उ०—ऐहं पीव विचारि यों नारि फेर फिरि जाय।—मति० प्र०, पु० ३०६। २. घोड़ा। गर्दन। उ०—तुम सुनिषो सासु हमारी, मेरी नारि की हंसुला भारी। तुम सुनिषा जेठानी हमारी मेरे बाँह बाजूबद भारी।—पोटार आभ० प्र०, पु० ६१४।

नारिक—वि० [सं०] १. जलीय। जल का। जलसंबंधी। २. आत्मासंबंधी। आध्यात्मिक।

नारिकेर—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'नारिकेल'।

नारिकेल—संज्ञा पुं० [सं०] नारियल।

नारिकेलझीरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] नारियल की गिरी की बनी हुई एक प्रकार की झीर या मिठाई।

विशेष—गिरी के महीन महीन टुकड़ों को घी और चीनी के साथ गाय क दूध में पकाते हैं, गाढ़ा होन पर उतार लेते हैं।

नारिकेलखंड—संज्ञा पुं० [सं० नारिकेल खण्ड] एक औषध जो नारियल की गिरी से बनती है।

विशेष—नारियल की गिरी को पोसकर घी में मिलावे और फिर चीनी मिले हुए नारियल के पानी में उसे ढालकर पका डाले। पक जाने पर उसमें धनिया, पीपल, बंशलोचन, इलायची, नागकेसर, जीरे और तेजपत्ते का चूर्ण ढालकर मिला दे। इसके सेवन से प्लेविट, मरुचि, क्षयरोग, रक्तपित्त और मूल दूर होना है तथा पुरुषत्व की वृद्धि होती है।

नारिकेली—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. नारियल की बनी मिठाई। २. नारियल (को०)।

नारिगोरि(५)—संज्ञा स्त्री० [हि० नाल + गौली] बाकूद। बंदूक की गोली। उ०—नारिगोरि सा वस्ति राज मंडी आबहिंसि।—पु० रा०, २९।७५।

नारियल—संज्ञा पु० [सं० नारिकेल] १. खजूर की जाति का एक पेड़ जिसके फल की गिरी खाई जाती है।

विशेष—खम के रूप में इसका पेड़ पचास साठ हाथ तक ऊपर की ओर जाता है। इसके पत्ते खजूर ही के से होते हैं। नारियल गरम देशों में ही समुद्र का किनारा लिए हुए होता है। भारत के घाम पाम के टापुओं में यह बहुत होता है। भारतवर्ष में समुद्रतट से अधिक से अधिक सी कोस तक नारियल अच्छी तरह होता है, उसके घागे यदि लगाया भी जाता है तो किसी काम का फल नहीं लगता। फूल इसके सफेद होते हैं जो पतली पतली सीकों में मंजरी के रूप में लगते हैं। फल गुच्छों में लगते हैं जो बाग़हू चौदह अंगुल तक लंबे और छह मात अंगुल तक चौड़े होते हैं। फल देखने में लबोमरे और निपहूले दिखाई पड़ते हैं। उनके ऊपर एक बहुत कड़ा रेशदार छिलका होता है जिसके नीचे कड़ी गुठली और सफेद गिरी होती है जो खाने में मीठी होती है। नारियल के पेड़ लगाने की रीति यह है कि पके हुए फलों को लेकर एक या डेढ़ महीने घर में रख छोड़े। फिर बरसात में हाथ डेढ़ हाथ गड्ढे खोदकर उनमें उन्हें गाड़ दे और राख और क्षार ऊपर से डाल दे। थोड़े ही दिनों में कल्ले फूटेंगे और पीछे निकल आने लगे। फिर छह महीने या एक वर्ष में इन पीछों को खोदकर अहाँ लगाना हो लगा दे। भारतवर्ष में नारियल बंगाल, मदरास और बंबई प्रांत में लगाए जाते हैं। नारियल कई प्रकार के होते हैं। विशेष भेद फलों के रंग और आकार में होता है। कोई बिल्कुल स्याह होते हैं, कोई हरे होते हैं और कोई मिले जुले रंग के होते हैं। फलों के भीतर पानी या रस भरा रहता है जो पीने में मीठा होता है। नारियल बहुत से कार्यों में आता है। इसके पत्तों की चटाई बनती है जो घरों में लगनी है। पत्तों की सीकों के झाड़ू बनते हैं। फलों के ऊपर जो मीठा छिलका होता है उससे बहुत मजबूत रस्ते तैयार होते हैं। खोपड़े या गिरी के ऊपर के कड़े कोश को चिकना और चमकीला करके ग्याले और हुक्के बनाते हैं। गिरी मेंनों में गिनी जाती है। गिरी से एक मीठा गाढ़ा जमनेवाला तेल निकलता है जिसे लोग खाते भी हैं और लगाते भी। पूरी लकड़ा के घर की छाजन में इसका बरेशा लगता है। बंबई प्रांत में नारियल से एक प्रकार का मद्य या ताड़ी बनाते हैं।

वेद्यक में नारियल का फल, शीतल, दुर्जर, कृष्ण तथा पित्त और वातनाशक माना जाता है। ताजे फल का पानी शीतल, हृदय को हितकारी, दीपक और वीर्यवर्धक माना जाता है।

एशिया में कम और मद्यगाहकर द्वीप से लेकर पूर्व की ओर अमेरिका के तट तक नारियल के जो नाम प्रचलित हैं वे प्रायः सं० नारिकेल शब्द ही के विकृत रूप हैं। यह बात प्रायः सर्वसम्मत है कि नारियल का आबिस्तान भारत और बर्मा के दक्षिण के द्वीप (मालदीप, लकड्वीप, सिंहल, शंखमान, सुमाना, जावा इत्यादि) ही हैं। नारिकेल का उल्लेख वैदिक ग्रंथों में तो नहीं मिलता पर महाभारत,

सुश्रुत आदि प्राचीन ग्रंथों में मिलता है। कथासरित्सागर में 'नारिकेल द्वीप' का उल्लेख है।

पर्या०—नारिकेल। लांगली। सदापुष्प। शिरःफल। रसफल। सुगुण। कृष्णचर्कर। दृढ़नील। नालतरु। मंगल्प। नृणराज। स्कंधतरु। दाक्षिणात्य। त्र्यंबकफल। दृढ़फल। तुंग। सदाफल। कोशिकफल। फलमुंड। विषवामित्रप्रिय।

यौ०—नारियल का खोपड़ा = नारियल की कड़ी गुठली जिसके भीतर गिरी की तह रहती है।

मुहा०—नारियल तोड़ना = मुसलमानों की एक रीति जो गर्भ रहने पर की जाती है। नारियल तोड़कर उससे लड़का या लड़की पैदा होने का शकुन निकालते हैं।

२. नारियल का हुक्का।

नारियलपूर्णिमा—संज्ञा स्त्री० [देश०] दक्षिण देश (बंबई प्रांत) का एक त्योहार जिसमें लोग नारियल ले लेकर समुद्र में फेंकते हैं। यह आषाढ़ सावन में होती है।

नारियली—संज्ञा स्त्री० [हि० नारियल] १. नारियल का खोपड़ा। २. नारियल का हुक्का। ३. नारियल की ताड़ी।

नारी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. स्त्री। औरत। २. तीन गुह वर्यों की एक वृत्ति। जैसे—माधो ने। दो तारी। गोपों की। है नारी।

नारी^२—संज्ञा स्त्री० [सं० नाडि] पानो के किनारे रहनेवाली एक चिड़िया जिसके पेर लखाई लिए भूरे होते हैं। पीठ और पूँछ भी भूरी होती है।

नारी^३—संज्ञा स्त्री० [हि० नार] १. वह रस्सी जिससे जुए में हल बांधते हैं। नार। २. रथ और अश्व को युक्त करने वाली रज्जु या चमड़े का तस्मा। उ०—मुँदर रथ न चले बिन नारी।—सुंदर०, भा० १. पृ० ३५३।

नारी(पुं०)—संज्ञा स्त्री० [सं० नाडी] ३० 'नाड़ी'।

नारी(पुं०)—संज्ञा स्त्री० [हि०] ३० 'नाली'।

नारीकवच—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्यवंशीय मूलक राजा।

विशेष—यह अश्वमेध का पुत्र और सोदास का पुत्र था। जब परशुराम क्षत्रियों का नाश कर रहे थे तब इन्हें स्त्रियों ने पेरकर बचा लिया था इसी से यह नाम पड़ा। इन्हीं स्त्रियों का फिर बंधविस्तार हुआ, इससे इन्हें मुनक कहते हैं।

नारीकेल—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० नारीकेली] नारियल।

नारीच—संज्ञा पुं० [सं०] नाशिता शाक।

नारीतरंगक—संज्ञा पुं० [सं० नारीतरङ्गक] स्त्रियों के चित्त को चंचल करनेवाला पुष्प। जार। व्यभिचारी।

नारीतीर्थ—संज्ञा पुं० [सं०] महाभारत में वर्णित एक तीर्थ जहाँ पाँच अप्सराएँ ब्राह्मण के शाप से जलजतु हो गई थीं। भर्जुन ने इनका शाप से उद्धार किया था।

नारीदूषण—संज्ञा पुं० [सं०] मनु द्वारा कथित नारियों के दस दोष [को०]।

नारीमुख—संज्ञा पुं० [सं०] बृहत्संहिता के अनुसार कूर्म विभाग से नैऋत की ओर एक देश।

नारीष्ठा—संज्ञा स्त्री० [सं०] मल्लिका। चमेनी।

नारुतुद—वि० [सं० नारुतुद] १. जिसके शरीर पर किसी प्रकार का घाघात न लग सके। अनाहत। २. जो अरुतुद (मर्मरीडक) न हो।

नारु^१—संज्ञा पुं० [सं० नाल] उल्लव नाल। घावल नाल। दे० 'नाल'। उ०—घावी, घावी, दाईं री मेरी घावी, नेक हंसि के नाक कटावी।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० ९१३।

नारु^२—संज्ञा पुं० [देश०] १. जूँ। डील। २. एक रोग।

विशेष—इस रोग में शरीर पर विशेषतः कटि के नीचे जंघा, टाँग आदि में फुंसियाँ सी हो जाती हैं और उन फुंसियों में से सूत सा निकलता है। यह सूत वास्तव में कीड़ा होता है जो बढ़ते बढ़ते कई हाथ की लंबाई का हो जाता है। ये कीड़े जब त्वचा के तंतुजाल में होते हैं तब नाक या नहरवा होता है, जब रक्त की नलियों में होते हैं तब श्लोषद या फीलपाज रोग होता है। नाक का रोग प्रायः गरम देशों में ही होता है।

ये कीड़े कई प्रकार के होते हैं। अधिकतर तो जीवधारियों के शरीर के भीतर रहते हैं पर कुछ तालों और समुद्र के जल में भी पाए जाते हैं। सिरके का कीड़ा इसी जाति का होता है। ये कीट यद्यपि पेट के केचुए से सुक्ष्म होते हैं तथापि इनकी शरीररचना केबुछों की अपेक्षा अधिक पूर्ण रहती है। इन्हें मुँह होता है, भ्रमण अंतर्ही होती है; इनमें भ्रम होता है।

नारु^३—संज्ञा पुं० [हिं० नाली, पुर्णहं नारी] वह बोझाई ओ ब्यारियों में होती है।

नारेख^१—संज्ञा पुं० [सं० नारिखेल] नारियल। उ० खिरनी सकेलि नारेल वृक्ष।—ह० रासो, पृ० ३५६।

नार्थ—संज्ञा पुं० [सं०] उत्तर दिशा।

नार्पत्य—वि० [सं०] तृपसंबंधी। राजा से संबंध रखनेवाला।

नार्मद^१—वि० [सं०] नर्मदासंबंधी। नर्मदा नदी का।

नार्मद^२—संज्ञा पुं० शिवलिंग जो नर्मदा में पाया जाता है।

नार्मर—संज्ञा पुं० [सं०] ऋग्वेद में वर्णित एक अमुर जिसे इंद्र ने मारा था।

नार्थग—संज्ञा पुं० [सं० नार्थङ्ग] नारंगी।

नार्थवित्त—संज्ञा पुं० [सं०] चिरायता।

नाल^१—संज्ञा पुं० [देश०] बौद्धों का एक प्राचीन क्षेत्र और विद्यापीठ जो मगध में पटने से तीस कोस दक्षिण और बङ्गाल से गंगा नदी कोस पश्चिम था। किसी किसी का मत है कि यह स्थान वहाँ था जहाँ आजकल तेलाड़ा है।

विशेष—बौद्ध यात्रियों के विवरण से जाना जाता है कि पहले पहल महाराज अशोक ने नालंदा में एक मठ स्थापित किया। चीनी यात्री ह्वेनसांग (ह्वेन सांग) ने लिखा है कि पीछे शंकर और मुद्गलसोमी नामक दो ब्राह्मणों ने इस मठ को

फिर से बड़े विशाल आकार में बनवाया। इसकी दीवारें जो इधर उधर लड़ी मिलती हैं उनमें से कई तीस बत्तीस हाथ ऊँची हैं। कहते हैं, इस विद्यापीठ में रहकर नागार्जुन ने कुछ दिनों तक उक्त शंकर नामक ब्राह्मण से शास्त्र पढ़ा था। सन् ६३७ ईसवी में प्रसिद्ध चीनी यात्री ह्वेनसांग ने इस विद्यापीठ में जाकर प्रज्ञाभद्र नामक एक आचार्य से विद्याध्ययन किया था। उस समय इतना बड़ा मठ और इतना बड़ा विद्यापीठ भारत में और कहीं नहीं था। यहाँ मेकड़ों आचार्यों और इस हजार से ऊपर ऊपर याज्ञक और शिष्य निवास करते थे। जिस समय काशी में बुद्धपक्ष नामक राजा राज्य करते थे उस समय इस मठ में प्राग लगी और बहुत सी पुस्तकें जल गईं।

नाल^२—संज्ञा स्त्री० [सं० नालम्बी] शिव की वीणा [को०]।

नाल^३—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. कमल, कुमुद आदि फूलों की पौली लंबी डंडी। डंडी। २. पीछे का डंठल। कांड। ३. गेहूँ, जौ आदि की पतली लंबी डंडी जिसमें बाल लगती है। ४. नली। नल। ५. बंदूक की नली। बंदूक के आगे निकला हुआ पोला डंडा। ६. सुनारों की कुँकनी। ७. जुलाहों की नली जिसमें वे सूत लपेटकर रखते हैं। सूँछा। कंडा। छुज्जा। ८. वह रेशा जो कलम बनाते समय छिलने पर निकलता है।

विशेष—डंठल या डंडी के अर्थ में पुरब में इसे पुं० बोलते हैं। पुरानी कविताओं में भी प्रायः पुं० मिलता है।

नाल^४—संज्ञा पुं० १. रक्त की नालियों तथा एक प्रकार के मञ्जातंतु से बनी हुई रस्सी के आकार की वस्तु जो एक ओर तो गर्भस्थ बच्चे की नाभि से और दूसरी ओर गोल घाली के आकार में फैलकर गर्भाशय की दीवार से मिली होती है। घावल नाल। उल्लवनाल। नारा। नार।

विशेष—इसी नाल के द्वारा गर्भस्थ शिशु माता के गर्भ से जुड़ा रहता है। गर्भाशय की दीवार से लगा हुआ जो उभरा हुआ घाली की तरह का गोल छत्ता होता है उसमें बहुत सी रक्तवाहिनी नसे होती हैं जो चारों ओर से अनेक शाखा प्रशाखाओं में आकर छत्ते के केंद्र पर मिलती हैं जहाँ से नाल शिशु की नाभि की ओर गया रहता है। इस छत्ते और नाल के द्वारा माता के रक्त के योजक द्रव्य शिशु के शरीर में आते जाते रहते हैं, जिससे शिशु के शरीर में रक्तसंचार, खास प्रशवास और पोषण की क्रिया का साधन होता है। यह नाल पिंडज जीवों ही में होता है इसी से वे जरायुज कहलाते हैं। मनुष्यों में बच्चा उत्पन्न होने पर यह काटकर अलग कर दिया जाता है।

क्रि० प्र०—काटना।

मुहा०—क्या किसी का नाल काटा है? = क्या किसी की दाई है। क्या किसी को जननेवासी है। क्या किसी की बड़ी बूढ़ी है। जैसे,—क्या तूने ही नाल काटा है? (स्त्रि०)। कहीं पर नास गड़ना = (१) कोई स्थान जन्मस्थान के समान प्रिय होना। किसी स्थान से बहुत प्रेम होना, अल्दी न हटना।

नावक के तीर । देखन में छोटे लगे देघें सकल शरीर । — (शब्द०) ।

२. मधुपक्षी का ईक ।

नावक'—संज्ञा पु० [सं० नाविक] केवट । माझी । मस्लाह । उ०—पुनि गीतमचरनी जानत है नावक शबरी जान ।—पूर (शब्द०) ।

नावघाट—संज्ञा पु० [हि०] नावों के ठहरने का घाट । नदी, झील आदि के किनारे का बहु स्थान जहाँ नावें ठहरती हैं ।

नावडियाँ—संज्ञा पु० [हि० नाव + डिया (प्रत्य०)] मस्लाह । नाववाला । उ०—नाव तिरि नहं नीर में निबली नावडि-याह ।—बीकी० प्र०, भा० २, पृ० १५ ।

नावना—क्रि० सं० [सं० नामन] १. झुकाना । नवाना । उ०—मधुपक्षी सिरमौर कहावह । झुकुस गव नावह । उ०—जायसी (शब्द०) ।

२. डालना । फेंकना । गिराना । उ०—मासन तनक आपने कर लें तनक बदन में नावत ।—पूर (शब्द०) । ३. प्रविष्ट करना । घुसाना ।

नावनीत'—वि० [सं०] मुलायम । कोमल । मुदुब (को०) ।

नावनीत'—संज्ञा पु० मयसन का ची । मयसन से बना ची ।

नावर(पाँ) संज्ञा स्त्री० [हि० नाव] १. नाव । नौका । उ०—को करि सके सहाय बहै करिया बिनु नावर ।—गिरधर (शब्द०) । २. नाव की एक क्रीड़ा जिसमें छठे बीच में ले जाकर चक्कर देते हैं । उ०—बहु भट बहहि चढ़े जग जाहीं । जनु नावरि खेलहि जल माहीं ।—तुलसी (शब्द०) ।

नावरा—संज्ञा पु० [देश०] दक्षिण में होनेवाला एक पेड़ जिसकी लकड़ी बहुत साफ, चिकनी और मजबूत होती है । मेज, कुरसी आदि सजावट के सामान इसके बहुत अच्छे बनते हैं ।

नावरि(पाँ)—संज्ञा स्त्री० [हि०] नाव की क्रीड़ा । दे० 'नावर' ।

नावर्राँ—संज्ञा पु० [सं० नामन्] वह रकम जो किसी के नाम लिखी हो ।

नावक्रिक—वि० [प्रा० ना + प्र० वाक्रिक] अनजान । अनभिज्ञ ।

नावज—संज्ञा पु० [सं०] मस्लाह ।

नावजिब—वि० [प्रा० ना + प्र० वाजिब] जो वाजिब या ठीक न हो । अनुचित ।

नाविक—संज्ञा पु० [सं०] १. मस्लाह । माझी । केवट । २. नाव पर यात्रा करनेवाला व्यक्ति । नौकारोही (को०) ।

नावी'—संज्ञा पु० [सं० नाविन्] दे० 'नाविक' (को०) ।

नावी(पाँ)²—संज्ञा पु० [सं० नापित] नाई । हुज्जाम । उ०—नावी फोरइ उवाबना, स्वाती बक्षन घाठमी परलोत ।—बी० रासी, पृ० २० ।

नावेल—संज्ञा पु० [प्र०] उपन्यास ।

नावेलिस्ट—संज्ञा पु० [प्र०] उपन्यासकार ।

नाव्य'—संज्ञा पु० [सं० नाव] १. सूतवत्ता । नवीनता । नयापन । २. गहरा जल या नदी आदि जो नौका से पार करने योग्य हो (को०) ।

नाव्य²—वि० [सं०] १. नाव से पार करने योग्य । २. प्रशंसा योग्य । प्रशंसनीय (को०) ।

नाव्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] नदी जो नाव से पार की जाय (को०) ।

नाश—संज्ञा पु० [सं०] १. न रह जाना । लोप । ध्वंस । बरबादी । क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

विशेष—सांख्यवाले कारण में लय होने को ही नाश कहते हैं क्योंकि जो वस्तु है उसका अभाव नहीं हो सकता । कारण में लय हो जाने से सूक्ष्मता के कारण वस्तु का बोध नहीं होता । जब कोई कार्य कारण में इस प्रकार लीन हो जाता है कि वह फिर कार्यरूप में नहीं आ सकता तब आत्यंतिक नाश होता है । नैयायिक नाश को ध्वंसाभाव मानते हैं ।

२. गायब होना । प्रदर्शन । ३. पलायन । ४. संकट (को०) । ५. निधन (को०) । ६. अनुपपन्न (को०) ।

नाशक—वि० [सं०] १. नाश करनेवाला । ध्वंस करनेवाला । बरबाद करनेवाला । २. मारनेवाला । यध करनेवाला । ३. दूर करनेवाला । न रहने देनेवाला । जेम, रोगनाशक ।

नाशकारी—वि० [सं० नाशकारिन्] [वि० स्त्री० नाशकारिणी] नाश करनेवाला ।

नाशन'—वि० [सं०] नाश करनेवाला । विध्वंस करनेवाला । नाशक । उ०—जानत है किधों जानत नाहिन तू अपने मद्य नाशन को ।—केशव (शब्द०) ।

नाशन—पञ्च पु० १. मृत्यु । मरण । २. विस्मरण । भूलना । ३. नष्ट करना । नाश करना । ४. हटाना । दूर करना (को०) ।

नाशना(पु)—क्रि० सं० [सं० नाशन] २० 'नासना' ।

नाशपाती—संज्ञा स्त्री० [तु०] मझोले डोल डोल का एक पेड़ जिसके फल मेवों में गिने जाते हैं ।

विशेष—इसकी पत्तियाँ अमरुत की पत्तियों के इतनी बड़ी पर चिकनी और चमकीली होती हैं । फूल सफेद होते हैं पर फूलों के केसर हलके बैंगनी होते हैं । फल गोम और उनके गूदे की बनावट कुछ दानेदार होती है । बीज गूदे के भीतर बोखो बीच चार छोटे कोशों में रहते हैं । फल का विशेष अंग सफेद कड़ा गूदा ही होता है, इससे इसके टुकड़े कटे हुए कड़े मिर्ची के टुकड़ों के समान जान पड़ते हैं । काश्मीर में नाशपाती के पेड़ जंगली मिलते हैं । काश्मीर के प्रतिष्ठित हिमालय के किनारे सर्वत्र, दक्षिण में नीलगिरि, बंगलौर आदि में तथा भारतवर्ष में छोड़े बहुत सब स्थानों में इसके पेड़ लगाए जाते हैं । कलम और पैबंद से भी इसके पेड़ लगते हैं जो डोल डोल में छोटे होते हैं । काश्मीर की नाशपाती अच्छी होती है और नाश या नाक के नाम से प्रसिद्ध है । नाशपाती युरोप और अमेरिका के प्रायः उन सब रथानों में होती है जहाँ सरसि अधिक नहीं पड़ती । युरोप में नाशपाती की लकड़ी पर नक्काशी होती है और उसके हलके सामान बनते हैं । प्रायुर्वेद में नाशपाती का नाम अमृतफल (इससे इसे कहीं कहीं अमरुद भी कहते हैं) भी है जो घातुबर्धक, मधुर, भारी, रेषक तथा अम्ल-वात-नाशक माना गया है । सेब और नाशपाती एक ही जाति के पेड़ हैं ।

नाशवान्—वि० [सं० नाशवत्] नाश को प्राप्त होनेवाला । नश्वर । अनित्य ।

नाशाइस्ता—वि० [फा० नाशाइस्तह] अनुचित । नामुनासिव ।
उ०—ऐसे नाशाइस्ता कल्मे भूलकर भी जवान पर न लाना ।—प्रेमघन०, भा० २, पृ० १५७ ।

नाशित—वि० [सं०] जिसका नाश किया गया हो ।

नाशी—वि० [सं० नाशिन्] [वि० स्त्री० नाशिनी] १. नाश करनेवाला । नाशक । २. नष्ट होनेवाला । नश्वर ।

नाशुक—वि० [सं०] नष्ट होनेवाला । नश्वर ।

नाशुकी—संज्ञा स्त्री० [फा०] प्रकृतजता । एहसान फरामोशी ।
उ०—जहाँ खुदा ने नेमतों की वर्षा की हो, वहाँ उन नेमतों का भोग न करना नाशुकी है ।—मानसरोवर, भा० १, पृ० १३८ ।

नाशता—संज्ञा पुं० [फा० नाशतह] कलेवा । जलपान । प्रातःकाल का अल्पाहार । पनपियाव ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

नाश्य—वि० [सं०] नाश के योग्य । ध्वंसनीय ।

नाष्टिक—वि० [सं०] जिसकी वस्तु नष्ट हुई हो । (स्मृति) ।

नाष्टिकधन—संज्ञा पुं० [सं०] लोया हुआ धन । (स्मृति) ।

नास^१—संज्ञा स्त्री० [सं० नासा] १. वह द्रव्य जो नाक में डाला जाय । वह औषध जो नाक से सुरकी या सूँधी जाय ।

क्रि० प्र०—घेना ।

२. सुँघनी । ३. नासिका । नाक (बोलचाल) ।

नास^२—संज्ञा पुं० [सं० नाश] नाश । उ०—बढ्यो कोप धामावती भूप ऐसे । कढ्यो दैत्य के नास जंभारि बैसे ।—सुधान०, पृ० २६ ।

नासक^३—वि० [सं० नाशक] ३० 'नाशक' । उ०—भ्रम तम नासक प्रेम प्रकासक मुखससि सारद नमो नमो ।—चनानव, पृ० ४६२ ।

नासदान—संज्ञा पुं० [हि० नास + दान (< सं० दाधान)] सुँघनी की ठिबिया ।

नासत्य—संज्ञा पुं० [सं०] भविष्यीकुमार ।

नासत्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] भविष्यी नक्षत्र ।

नासना^४—क्रि० सं० [सं० नाशन] १. नष्ट करना । बरबाद करना । २. मार डालना । बध करना ।

नासपाल—संज्ञा पुं० [फा०] १. कच्चे अनार का छिलका जो रंग निकालने के काम में आता है । २. कच्चा अनार । ३. एक प्रकार की आतिथवाजी ।

नासपाली—वि० [फा०] नासपाल के रंग का । कच्चे अनार के छिलके के रंग का ।

नासबूर^५—वि० [हि० ना + फा० सब्र] बेसब्र । धैर्यहीन ।
उ०—तू साहेब सीधे खड़ा बंदा नासबूर ।—मनुक०, पृ० २४ ।

नासमक—वि० [हि० ना + समक] जिसे समक न हो । जो समझदार न हो । जिसे बुद्धि न हो । निबुद्धि । बेवकूफ ।

नासमकी—संज्ञा स्त्री० [हि० नासमक] मूर्खता । बेवकूफी ।

नासा—संज्ञा स्त्री० [सं०] [वि० नास्य] १. नासिका । नाक । २. नासारंघ । नाक का छेद । नथना । ३. द्वार के ऊपर लगी हुई लकड़ी । अरेटा । ४. हाथी की सूँड । हस्तिशुंड (की०) । ५. झरूसा ।

नासाग्र—संज्ञा पुं० [सं०] नाक का अग्रला भाग । नाक की नोक ।

नासाछिद्र—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'नासा' ।

नासाज्वर—संज्ञा पुं० [सं०] वह ज्वर जो नाक के भीतर प्याज की गंठ की तरह का कोड़ा होने से होता है । इस ज्वर में सिर और रीढ़ में बड़ा दर्द होता है ।

नासादारु—संज्ञा पुं० [सं०] अरेटा (की०) ।

नासानाह—संज्ञा पुं० [सं०] नाक का एक रोग जिसमें वायु के साथ कफ मिलकर नाक के छेद को बंद कर देता है । प्रतिनाह । प्रतीनाह ।

नासापरिस्त्राव—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'नासास्त्राव' ।

नासापरिशोष—संज्ञा पुं० [सं०] नासाशोष रोग ।

नासापाक—संज्ञा पुं० [सं०] नाक का एक रोग जिसमें नाक में बहुत सी छुंसियाँ निकलने के कारण नाक पक जाती है ।

नासापुट—संज्ञा पुं० [सं०] नाक का वह चमड़ा जो छेदों के किनारे परदे का काम देता है । नथना ।

नासावेध—संज्ञा पुं० [सं०] नाक का वह छेद जिसमें नथ आदि पहनी जाती है ।

नासायोनि—संज्ञा पुं० [सं०] वह नपुंसक जिसे घ्राण करने पर उद्दीपन हो । सौगंधिक नपुंसक ।

नासारंघ—संज्ञा पुं० [सं० नासारंघ] नाक का छिद्र । नथना ।

नासारोग—संज्ञा पुं० [सं०] नाक में होनेवाले रोग जिनकी संख्या सुश्रुत के अनुसार ३१ और आचप्रकाश के मत से ३४ है ।

विशेष—सुश्रुत के अनुसार इनके नाम इस प्रकार हैं—घषीनस्य (पीनस), पूतिवस्य, नासापाक, रक्तपित्त, पूयशोणित, सवधु, अंक्त्यु, क्षीति, प्रतिनाह, परिस्त्राव, नासाशोष, ४ प्रकार के घर्षा, ४ प्रकार के शोष, ७ प्रकार के अर्बुद और ५ प्रकार के प्रति-ह्वय । आचप्रकाश में इससे इतनी विशेषता की है कि एक रक्तपित्त के स्थान पर चार प्रकार के रक्तपित्त लिख दिए हैं ।

नासालु—संज्ञा पुं० [सं०] कायफल ।

नासावंश—संज्ञा पुं० [सं०] नाक के ऊपर बीचोबीच गई हुई पतली हड्डी । नाक का बाँस ।

नासाचिवर—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'नासारंघ' ।

नासाशोष—संज्ञा पुं० [सं०] नाक में कफ सूख जाने का रोग ।

नासासंवेदन—संज्ञा पुं० [सं०] कांडवेल । बिटबिट । बिचड़ी ।

नासास्त्राव—संज्ञा पुं० [सं०] नाक का एक रोग जिसमें नाक से सफेद और पीला मवाद निकला करता है ।

नासिकंधम—वि०, संज्ञा पु० [सं० नासिकंधम] नासिका से फूंकने
प्रथवा स्वर निकालनेवाला [को०] ।

नासिकंधय—वि० [सं० नासिकंधय] नासिका से पान करनेवाला
[को०] ।

नासिक^१—संज्ञा पु० [सं० नासिकय] महाराष्ट्र देश में एक तीर्थ जो
उस स्थान के निकट है जहाँ से गोदावरी निकलती है। इसी
के पास पंचवटी वन है जहाँ वनवास के समय रामचंद्र ने कुछ
काल निवास किया था और लक्ष्मण ने शूर्पणखा के नाक
कान काटे थे ।

नासिक^(२)—संज्ञा स्त्री० [सं० नासिका] नाक । नासिका । उ०—
नासिक देखि लजानेउ सूषा ।—आयसी ग्रं० (गुप्त), पृ० १२६ ।

नासिक^३—वि० [फ्रा० नासिस] १० 'नासिस' । उ०—बड़ी नासिक
जात है महतो किसी की नहीं होती ।—गोदान, पृ० ३४ ।

नासिका^१—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. नाक । नामा । २. हाथी की सूँड़
(को०) । ३. नाक के आकार की वस्तु (को०) । ४. भरेटा
(को०) । ५. अश्विनी नक्षत्र (को०) ।

यौ०—नासिकामल ।

नासिका^२—वि० श्रेष्ठ । प्रधान ।

नासिक्य^१—वि० [सं०] नासिका से उत्पन्न ।

नासिक्य^२—संज्ञा पु० १. नासिका । २. आश्विनीकुमार । ३.
बृहत्संहिता के अनुसार दक्षिण का एक देश । नासिक । ४.
अनुनासिक स्वर ।

नासिक्यक—संज्ञा पु० [सं०] नाक । नासिका [को०] ।

नासिर—संज्ञा पु० [सं०] १. गणसेवक । गणकार । २. मददगार ।
सहायक । ३. विजयी । विजेता [को०] ।

नासी^(१)—वि० [सं० नासी] १० 'नासी' ।

नासीर^१—संज्ञा पु० [सं०] सेनानायक के आगे चलनेवाला दल जो
जयनाद उच्चारण करता चलता था । सेनाग्र । हरावल ।

नासीर^२—वि० १. आगे बढ़कर धुंड़ करनेवाला । २. अग्रसर ।
अग्रगण्य [को०] ।

नासूत—संज्ञा पु० [सं०] संसार । उ०—फँसिया मुकाम शेतानी कहना
मंजिल नामूत केरी । शरीरधन की जब बात लगे ना क्यों कर
उतरे पेरी ।—दक्खिनी०, पृ० ४४ ।

नासूर—संज्ञा पु० [सं०] घाव, फोड़े आदि के भीतर दूर तक गया
हुआ नली का सा छेद जिससे बराबर मवाद निकला करता
है और जिसके कारण घाव जहदी अच्छा नहीं होता ।
नाडीवण ।

क्रि० प्र०—पड़ना ।

मुहा०—नासूर चालना = नासूर पैदा करना । घाव करना ।
जाती में नासूर चालना = बहुत कुड़ाना । बहुत तंग करना ।
नासूर भरना = नासूर का घाव अच्छा हो जाना ।

नास्ता—संज्ञा पु० [फ्रा० नास्तह] जलपान । सुक्ष्म आहार । कसेबा ।
उ०—करत नास्ता एक रोटी की पुनि उठि के भट ।—प्रेम-
चम०, भा० १, पृ० २० ।

नास्ति—अर्थ० [सं०] नहीं है । अविद्यमानता । अस्तित्व । उ०—
जेहि ते वद होय सो इच्छा कहावै, जेहि ते नास्ति होय ऐसी
अनइच्छा कहावै ।—कबीर सा०, पृ० १२२ ।

नास्तिक—संज्ञा पु० [सं०] वह जो ईश्वर, परलोक आदि को न माने ।
ईश्वर का अस्तित्व अस्वीकार करनेवाला ।

विशेष—जो हेतुशास्त्र अर्थात् तर्क का आश्रय लेकर वेद को
अस्वीकार करे, उसका प्रमाण न माने, हिंदू शास्त्र में उसको
भी नास्तिक कहा है । हिंदू शास्त्रकारों के अनुसार चार्वाक, बौद्ध
और जैन ये तीनों नास्तिक मत हैं । इन मतों में सृष्टि को
उत्पन्न करने और चलानेवाला कोई निरर्थक और स्थिर चेतन
नहीं माना गया है । नास्तिकों को बाहुस्पत्य, चार्वाक और
लोकायतिक भी कहते हैं ।

नास्तिकता—संज्ञा स्त्री० [सं०] नास्तिक होने का भाव । ईश्वर,
परलोक आदि को न मानने की बुद्धि ।

नास्तिकत्व—संज्ञा पु० [सं०] १० 'नास्तिकता' । उ०—नास्तिकत्व
का प्रवेश करा पीछे से पछताना व्यर्थ है ।—प्रेमचम०,
भा० २, पृ० २०८ ।

नास्तिक दर्शन—संज्ञा पु० [सं०] नास्तिकों का दर्शन । वि० ४०
'दर्शन' ।

नास्तिक्य—संज्ञा पु० [सं०] नास्तिकता । ईश्वर, परलोक आदि में
अविश्वास ।

नास्तिक्य—संज्ञा पु० [सं०] ग्राम का पेड़ ।

नास्तिक—संज्ञा पु० [सं०] ग्राम का पेड़ ।

नास्तिक्य—संज्ञा पु० [सं०] नास्तिकों का तर्क ।

नास्य^१—वि० [सं०] १. नासिका संबंधी । नाक का । २. नासिका से
उत्पन्न ।

नास्य^२—संज्ञा पु० रैल की नाक में लगी हुई रस्सी । नाथ ।

नाह^(१)—संज्ञा पु० [सं० नाथ, प्रा० नाह] १. नाथ । स्वामी ।
मालिक । २. स्वा का पति ।

नाह^२—संज्ञा पु० [सं० नाथ] पहिए का छेद । नाभि ।

नाह^३—संज्ञा पु० [सं०] १. बंधन । २. हिरन फँसाने का फंदा । ३.
कोष्ठबद्धता । कम्बिधत (को०) ।

नाहक—क्रि० वि० [फ्रा० वा + अ० हक] धुसा । ध्वस्त । बेकायदा ।
बेमतलब । निष्प्रयोजन ।

नाहटी—वि० [देश०] बुरा । नटबट ।

नाहनूह^(१)—संज्ञा स्त्री० [हि० नाहीं] 'नहीं, नहीं' शब्द । इनकार ।

नाहमवार—वि० [फ्रा०] १. जो हमवार या समतल न हो । ऊबड़
खाबड़ । ऊँचा नीचा । २. असभ्य । उजड़ (को०) ।

नाहर^१—संज्ञा पु० [सं० नरहरि] [स्त्री० नाहरी] १. सिंह । बेर ।
२. बाघ ।

नाहर^२—संज्ञा पु० [देश०] देव का फूल ।

नाहरसाँस—संज्ञा पु० [हि० नाहर + साँस] घोड़ों की एक बीमारी
जिसमें उनका दम फूलता है ।

नाहरी—संज्ञा स्त्री० [हि० नाहर] सिद्दिनी । शेरनी । उ०—नारि कहीं की नाहरी, नख सिख से यह साय । जल बूझा तो ऊबरे भग बूझा तो जाय ।—संतवाणी०, पृ० ५८ ।

नाहरू—संज्ञा पुं० [देश०] नारू नाम का रोग । नहरवा ।

नाहरू—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'नाहर' ।

नाहिन—अव्य० [हि० नाहि + न (प्रत्य०)] नहीं । उ०—नाहिन रहो मन में ठौर ।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० १७८ ।

नाहिनै—अव्य० [हि० नाहीं] नहीं है ।

नाहिनै—अव्य० [हि०] नाहिन । नहीं । उ०—बजपति हूँ के मन भय भयो । नामकरन जु नाहिनै भयो ।—नंद० ग्रं०, पृ० २४३ ।

नाही—अव्य० [हि०] दे० 'नहीं' ।

नाहुष, नाहुषि—संज्ञा पुं० [सं०] नहुष के पुत्र गयाति ।

निहिका—संज्ञा स्त्री० [सं० निहिका] मटर ।

नित—क्रि० वि० [सं० नित्य] दे० 'नित्य' । उ०—जेठ नारि हंसि पूछे अभिय बचन बिमि नित ।—जायसी ग्रं० (गुप्त), पृ० ३७२ ।

निता—संज्ञा स्त्री० [सं० निमित्त] कारण । निमित्त । उ०—मानुष चित्त ध्यान कछु निता । करै गुसाई न मन मंह चिता ।—जायसी ग्रं०, पृ० ३१५ ।

निद—वि० [सं० निद्र] दे० 'निद्र' ।

निदक—संज्ञा पुं० [सं० निन्दक] निंदा करनेवाला । दूसरों के दोष या बुराई कहनेवाला । उ०—प्राण देव निदक अभिमानो ।—मानस, ७:१७ ।

निन्दन—संज्ञा पुं० [सं० निन्दन] [वि० निन्दनीय, निन्दित, निद्र] निंदा करने का काम ।

निन्दनीय—क्रि० प्र० [सं० निन्दनीय] निंदा करना । बदनाम करना । बुरा कहना । उ०—(क) पिता मंदमति निन्दत तेही । वक्ष मुक्त संभव यह देही ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) हरि सब के मन यह उपजाई । सुरपति निन्दत गिरिहि बड़ाई ।—सूर (शब्द०) ।

निन्दनीय—वि० [सं० निन्दनीय] १. निंदा करने योग्य । बुरा कहने योग्य । २. बुरा । गल्ल ।

निंदा—संज्ञा स्त्री० [सं० निन्दा] १. (किसी ब्याक्त या वस्तु का) दोषकथन । बुराई का बयान । ऐसी बात का कहना जिससे किसी का दुर्गुण, दोष, लुच्छता इत्यादि प्रगट हो । अपवाद । जुगुप्सा । कुत्सा । बदगोई । २. अपकीर्ति । बदनामी । कुख्याति । जैसे,—ऐसी बात से लोक में निंदा होती है ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

विशेष—यद्यपि निंदा दोष के कथन मात्र को कह सकते हैं चाहे कथन यथार्थ हो चाहे अयथार्थ पर मनुस्मृति में ऐसे दोष के कथन को 'निंदा' कहा है जो यथार्थ न हो । जो दोष वास्तव में हो उसके कथन को 'परीवाद' कहा है । कुल्लुक ने अपनी व्याख्या में कहा है कि विद्यमान दोष के अभिधान को 'परीवाद' और अविद्यमान दोष के अभिधान को 'निंदा' कहते हैं ।

निंदास्तुति—संज्ञा स्त्री० [सं० निन्दास्तुति] १. निंदा के बहाने स्तुति । व्यावस्तुति । २. दोषकथन और प्रशंसा ।

निन्दित—वि० [सं० निन्दित] जो बुरा कहा गया हो । जिसे दोष बुरा कहते हों । दूषित । बुरा ।

निन्दु—संज्ञा स्त्री० [सं० निन्दु] मरे बच्चे को जन्म देनेवाली माता । मृतवत्सा माँ [को०] ।

निद्र—वि० [सं० निद्र] १. निद्रा करने योग्य । निद्रनीय । २. दूषित । बुरा ।

निंदा—संज्ञा स्त्री० [सं० निन्दा] दे० 'निंदा' । उ०—असतुति निंदा आसा छाड़ि, तबै मान अभिमाना । लोहा कंचन समि करि देखे, ते मूरति भगवाना ।—कबीर ग्रं०, पृ० १५० ।

निंब—संज्ञा स्त्री० [सं० निम्ब] १. नीम का पेड़ ।

यौ०—पंचनिंब । महानिंब ।

२. एक वृक्ष । पारिभद्र (को०) ।

निंबतरु—संज्ञा पुं० [सं० निम्बतरु] १. नीब का पेड़ । २. मंदार वृक्ष । ३. महानिंब । बकायम [को०] ।

निंबपंचक—संज्ञा पुं० [सं० निम्बपंचक] नीब के पाँच अंग—पत्ती, फूल, फल, छाल और जड़ [को०] ।

निंबबीज—संज्ञा पुं० [सं० निम्बबीज] राबावनी वृक्ष । चिरीबी का पेड़ [को०] ।

निंबर—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'परिज' ।

निंबादती—क्रि० प्र० [सं० निम्बादित्य] निंबार्क संप्रदाय का अनुयायी । उ०—निंबादती होइ तो तू कामना कटुक त्यागि, अमृत की पान करि अधिक अषाढ़ए ।—सुंदर० ग्रं०, भा० २, पृ० ९१२ ।

निंबादित्य—संज्ञा पुं० [सं० निम्बादित्य] निंबार्क संप्रदाय के आदि आचार्य । इनका दूसरा नाम 'अरुण' भी था । ये श्री राधिका जी के कंकण के अमृतार माने जाते हैं ।

विशेष—बृंदावन के पास ध्रुव नामक पहाड़ी पर ये रहते थे । वही पर इनके शिष्यों ने इनकी गद्दी स्थापित की । कहते हैं, इनके पिता का नाम जगन्नाथ था । बाल्यावस्था में इनका नाम आस्कराचार्य था । बहुत से लोग इन्हें सूर्य के अंक से उत्पन्न कहते थे । ये कृष्ण के बड़े मारी भक्त थे । इनके नाम के कारण इनके संबंध में एक विलक्षण कथा भक्तमाल में लिखी है । एक संन्यासी बा जैन यति इनसे दिन भर शास्त्रार्थ करता रहा । सूर्यास्त हो रहा था । इन्होंने उसके भोजन के लिये कहा । सूर्यास्त के उपरांत भोजन करने का नियम उसका नहीं था । इसपर निंबार्क ने सूर्य को रोक रखा । जबतक संन्यासी ने भोजन नहीं कर लिया तबतक सूर्य देवता एक नीम के पेड़ पर बैठे रहे ।

निंबार्क—संज्ञा पुं० [सं० निम्बार्क] १. निंबादित्य । २. निंबादित्य का चलाया हुआ वैष्णव संप्रदाय ।

विशेष—निंबार्क मत वैष्णव धर्म के चार प्रमुख संप्रदायों (रामानुज, माध्व, विष्णुस्वामी तथा निंबार्क) में से एक है । ईसाईत अष्टात्य दसक को आचार मान कर इसमें राधा और कृष्ण के युगलस्वरूप समभाव से उपासना स्वीकृत है ।

निष्ठा—संज्ञा स्त्री० [सं० निष्ठा] नीव ।

निष्क—संज्ञा पुं० [सं० निष्क] दे० 'निष्' ।

निन्दरना—क्रि० सं० [सं० निन्दा] निंदा करना । बचनाम करना । बुरा कहना ।

निन्दरिया(५)†—संज्ञा स्त्री० [सं० निन्दा] नीव । निन्दा । उ०—मेरे लाल को धाव निन्दरिया काट न धाव सुधावे ।—सूर (शब्द०) ।

निर्दाई—संज्ञा स्त्री० [हि० निराई] १. खेत के पीछों के पास की बास, वृक्ष आदि को उखाड़कर या काटकर अलग करने का काम । २. निराने की मजदूरी ।

निदाना—क्रि० सं० [सं०] दे० 'निराना' ।

निदासा—वि० [हि० नीद + दासा (प्रत्य०)] १. जिसे नींद आ रही हो । उनीदा । २. आलस्ययुक्त । अलसाया ।

निदिया†—संज्ञा स्त्री० [हि० नीद + द्या (स्वा० प्रत्य०)] नीव । ऊँच । जैसे, —धाव री निदिया धाव (बच्चों के सुलाने का वाक्य) । उ०—सोमो सुख निदिया प्यारे ललन ।—हरिश्चंद्र (शब्द०) ।

निबकीरी—संज्ञा स्त्री० [सं० निम्ब + हि० कौरी] नीम का फल । निबीरी ।

निबरिया†—संज्ञा स्त्री० [हि० नीम + बारी] वह बारी या कुंज जिसमें सब पेड़ नीम के ही हों ।

निः—अव्य० [सं० निस्] एक उपसर्ग । दे० 'निस्' ।

निःप्रच्छुरी—संज्ञा पुं० [सं० निः + प्रच्छुर] ब्रह्मा । ईश्वर । वह जिसका वर्णन प्रच्छुरों के द्वारा न हो सके । उ०—निःप्रच्छुर धाव मिला प्रच्छुर को ले क्या करना ।—पलटू, भा० १, पृ० १७३ ।

निःकंप—वि० [सं० निष्कम्प] कंठरहित । पचन ।

निःकषट—वि० [सं० निष्कषट] दे० 'निष्कषट' ।

निःकाज—(५) वि० [निः + हि० काज] बिना कार्य के । निष्प्रयोजन । उ०—निःकाज राज विहाय नृप ह्य स्वप्न कारागृह परयो ।—तुलसी ग्रं०, पृ० ५२४ ।

निःकाम—वि० [सं० निष्काम] दे० 'निष्काम' ।

निःकारण—वि० [सं० निष्कारण] दे० 'निष्कारण' ।

निःकासन—संज्ञा पुं० [सं० निष्कासन] दे० 'निष्कासन' ।

निःकासित—वि० [सं० निष्कासित] निष्कासित । निकाला हुआ [को०] ।

निःकामित—वि० [सं० निष्कामित] निकाला या भगाया हुआ ।

निःक्षत्र—वि० [सं०] क्षत्रियरहित । क्षत्रियभूष्य (देश आदि) ।

निःक्षेप—संज्ञा पुं० [सं०] १. निक्षेप । फेंकना । प्रक्षेपण । २. जमा । गिरवी । धाड़ । ३. बिना किसी प्रतिबंध के जमा किया हुआ । सामान्य जमा । ४. प्रेषित करना । ५. परित्याग । ६. पौछना । सुलाना । ७. गढ़ा धन । भूगर्भस्थ धन [को०] ।

निःक्षोभ—वि० [सं०] क्षोभहीन । जिसको क्षोभ न हो ।

निःक्षल—वि० [सं० निष्क्षल] दे० 'निष्क्षल' ।

निःपक्ष—वि० [सं० निष्पक्ष] दे० 'निष्पक्ष' ।

निःपाप—वि० [सं० निष्पाप] दे० 'निष्पाप' ।

निःप्रभ—वि० [सं०] निष्प्रभ । प्रभाहीन । नष्टप्रभ [को०] ।

निःप्रयोजन—वि० [सं० निष्प्रयोजन] दे० 'निष्प्रयोजन' ।

निःफल—वि० [सं० निष्फल] दे० 'निष्फल' ।

निःशंक—वि० [सं० निःशङ्क] भयहीन । निडर । निर्भय । जिसे डर न हो । २. जिसे किसी प्रकार का सतका या द्वेष न हो ।

निःशत्रु—वि० [सं०] शत्रुरहित । जिसका कोई शत्रु न हो [को०] ।

निःशब्द—वि० [सं०] शब्द से रहित । जहाँ शब्द न हो या जो शब्द न करे ।

निःशम—वि० [सं०] १. क्रोध । २. बेचैनी । प्रसृति [को०] ।

निःशरण—वि० [सं०] शरणहीन । अरक्षित [को०] ।

निःशलाक—वि० [सं०] निर्जन । एकांत । सुनसान । निराला ।

विशेष—मनु ने लिखा है कि मंत्रणा निःशलाक स्थान में करनी चाहिए ।

निःशल्य—वि० [सं०] दे० 'निःशल्य' ।

निःशल्य—वि० [सं०] १. शल्यरहित । २. छटकवेवाली चीज से युक्त । प्रतिबंधरहित । निष्कंटक ।

निःशल्य—संज्ञा स्त्री० दती वृक्ष [को०] ।

निःशास्त्र—वि० [सं०] शास्त्ररहित [को०] ।

निःशील—वि० [सं०] शीलरहित [को०] ।

निःशुक्र—वि० [सं०] १. शक्तिरहित । अशक्त । २. उत्साहहीन [को०] ।

निःशूक—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का वान ।

निःशून्य—वि० [सं०] रिक्त । खाली [को०] ।

निःशेष—वि० [सं०] १. जिसमें कुछ शेष न हो । जिसका कोई धंस न रह गया हो । समुखा । सब । २. समाप्त । पूरा । अन्तम ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

निःशोक—वि० [सं०] शोकरहित । चिन्तामुक्त [को०] ।

निःशोध्य—वि० [सं०] जिसका साफ करना अनावश्यक हो । स्वच्छ । साफ [को०] ।

निःश्रीक—वि० [सं०] श्रीहीन । कांतिहीन । तेजरहित [को०] ।

निःश्रयणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'निःश्रेणी' ।

निःश्रयणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'निःश्रेणी' ।

निःश्रेणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. एक प्रकार की बास । २. निःश्रेणी [को०] ।

निःश्रेणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. काठ या बाँस आदि की सीढ़ी । २. कबूतर का वृक्ष [को०] ।

निःश्रेणी—संज्ञा पुं० एक प्रकार का उत्तम धातु [को०] ।

निःश्रेयस—वि० [सं०] १. मोक्ष । मुक्ति । २. मंगल । कल्याण । ३. भक्ति । ४. विज्ञान । ५. शिव । शंकर [को०] ।

निःश्वसन—संज्ञा पुं० [सं०] श्वास का बाहर निकालना ।

निःश्वास—संज्ञा पुं० [सं०] १. श्वासवायु का बाहर से निकलना ।

या नाक से निकाली हुई वायु। साँस। २. लंबी साँस। दीर्घ श्वास।

निःसंकल्प—वि० [सं० निःसङ्कल्प] इच्छारहित।

निःसंकोच—क्रि० वि० [सं० निःसङ्कोच] बिना संकोच के। बेधड़क। जैसे—घाए निःसंकोच चले आइए।

निःसंख्य—वि० [सं० निःसङ्ख्य] संख्यारहित। अगणित। बेधुमार।

निःसंग—वि० [सं० निःसङ्ग] १. बिना मेल या लगाव का। जो मेल या लगाव न रखता हो। २. निराल। ३. जिसमें अपने मतलब का कुछ लगाव न हो।

निःसंचार—वि० [सं० निःसञ्चार] जिसमें गति न हो। जो संचरण न करे [को०]।

निःसंज्ञ—वि० [सं०] संज्ञाशून्य। मूर्छित [को०]।

निःसंतान—वि० [सं० निःसन्तान] जिसके संतान न हो। निपूता या निपूती। लाबल्ब।

निःसंदेह—वि० [सं० निःसन्देह] संदेहरहित। जिसे या जिसमें कुछ संदेह न हो। जैसे—किसी आदमी का निःसंदेह होना, किसी बात का निःसंदेह होना।

निःसंदेह—अव्य० १. बिना किसी संदेह के। २. इसमें कोई संदेह नहीं। ठीक है। बेसक।

निःसंधि—वि० [सं० निःसन्धि] १. संधिशून्य। जिसमें कही से दरार या छेद न हो। २. टढ़। मजबूत। ३. कसा हुआ। गठा हुआ।

निःसंपात—वि० [सं० निःसम्पात] १. गमनागमनशून्य। जहाँ या जिसमें आना जाना न हो। जहाँ या जिसमें आवागमन न हो। जहाँ या जिसमें आगमनरूप न हो। जैसे, निःसंपात मार्ग। २. रात। रात्रि।

निःसंबाध—वि० [सं० निःसम्बाध] १. विस्तीर्ण। फैला हुआ। आबाध [को०]।

निःसंशय—वि० [सं०] संदेहरहित। संकाररहित।

निःसत्त्व—वि० [सं० निःसत्त्व] १. जिसकी कुछ सत्ता न हो। जिसमें कुछ असलियत न हो। २. जिसमें कुछ तत्व या सार न हो। बिना मत का।

निःसपत्न—वि० [सं०] १. शत्रुरहित। जिसका कोई शत्रु न हो। २. निष्कण्टक। ३. प्रतिरोधीरहित। अद्वितीय [को०]।

निःसरण—संज्ञा पुं० [सं०] १. निकलना। २. निकलने का रास्ता। निकास। ३. कठिनाई से निकलने का रास्ता। ४. निर्वाण। ५. मरण।

निःसार—वि० [सं०] १. जिसमें कुछ सार न हो। जिसमें कुछ तत्व न हो। २. जिसमें कुछ असलियत न हो। ३. जिसमें प्रयोजन या महत्व की कोई बात न हो।

निःसार—संज्ञा पुं० १. साबोट वृक्ष। सहारे का पेड़। २. शोनाक वृक्ष। सोनापाठा।

निःसारण—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० निःसरित] १. निकालना। २. निकास। निकलने का द्वार या मार्ग।

निःसारा—संज्ञा बी० [सं०] केले का वृक्ष। कदली [को०]।

निःसरित—वि० [सं०] निकाला हुआ। निष्कासित। बर्खास्त किया हुआ।

निःसारु—संज्ञा पुं० [सं०] ताल के साठ भेदों में से एक।

निःसीम—वि० [सं०] १. जिसकी सीमा न हो। बेहद। २. बहुत बड़ा या बहुत अधिक।

निःसुकि—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का गेहूँ जिसके दाने छोटे होते हैं और जिसकी बाल में टूँड या सीपूर नहीं होते।—(भावप्रकाश)।

निःसृत—वि० [सं०] निकला हुआ।

निःस्नेहा—संज्ञा बी० [सं०] तीसी। अलसी।

निःस्पंद—वि० [सं० निःस्पन्द] जिसमें स्पंद न होता हो। जो हिलता झोलना न हो। निश्चल। स्थिर।

निःस्पृह—वि० [सं०] १. इच्छारहित। जिसे किसी बात की आकांक्षा न हो। २. जिसे प्राप्ति की इच्छा न हो। निर्लोभ।

निःस्त्रव—संज्ञा पुं० [सं०] १. निकास। २. अवशेष। बचत। निकामी (वास्तविक्य०)।

निःस्त्राव—संज्ञा पुं० [सं०] १. व्यय। खर्च करने का भाव। २. माँड़। [को०]।

निःस्व—संज्ञा पुं० [सं०] जिसका अपना कुछ न हो। जिसके पास कुछ न हो। धनहीन। दरिद्र।

निःस्वादु—वि० [सं०] स्वादरहित [को०]।

निःस्वार्थ—वि० [सं०] १. जो अपना अर्थसाधन करनेवाला न हो। जो अपना मतलब निकालनेवाला न हो। जो अपने लाभ, सुख या सुभीते का ध्यान न रखता हो। २. (कोई बात) जो अपने अर्थसाधन के निमित्त न हो। जो अपना मतलब निकालने के लिये न हो। ३. निःस्वार्थ सेवा।

नि^१—अव्य० [सं०] एक उपसर्ग जिसके लगने से शब्दों में इन अर्थों की विशेषता होती है—१. सद्य या समुह। जैसे, निकर। २. आधोभाव। जैसे, निरतित। ३. भ्रूण, अत्यंत। जैसे, निगूहीत। ४. आदेन। जैसे, निदेन। ५. नित्य। जैसे, निविशिष्ट। ६. कांशल। जैसे, निपुण। ७. बंधन जैसे, निबंध। ८. अंतर्भाव। जैसे, निपित। ९. समीप। जैसे, निकट। १०. दर्शन। जैसे, निदर्शन। ११. उपरम। जैसे, निवृत्त। १२. आश्रय। जैसे, निश्रय। मेदनी कोश में ये अर्थ और बतलाए गए हैं—१३. संशय। १४. ज्ञेय। १५. दान। १६. मोक्ष। १७. विन्यास और १८. निषेध।

नि^२—संज्ञा पुं० निषाद स्वर का संकेत।

निष्पर(पुं०)†—अव्य० [सं० निकट, प्रा० निघड] निकट। पास। समीप।

निष्पर^२—वि० समान। तुल्य।

निष्पराना(पुं०)†—क्रि० सं० [हि० निष्पर] निकट जाना। समीप पहुँचना। उ०—आइ नगर निष्परानि धरात बजावत।—तुलसी (शब्द०)

निष्काराना^२—क्रि० प्र० निकट घाना । पास होना । दूर न रह-
जाना । उ०—घागे बसे बहुरि रघुराया । ऋष्यमूक पर्वत
निष्काराया—तुलसी (शब्द०) ।

निष्काउ^१—संज्ञा पु० [सं० न्याय] दे० 'न्याय' । उ०—नौक
सगुन बिवरिहि भगर होइहि घरम निष्काउ ।—तुलसी प्र०,
पृ० २३ ।

निष्कायी^१—संज्ञा स्त्री० [सं० निःप्रयं प्रयवा निघनं] घनहीनता ।
हरिद्रता । उ०—साथी घायि निष्कायि जो सके साथ निर-
बाहि । जो जिउ जोरे पिउ मिले भेटु रे जिउ जरि जाहि ।
—जायसी (शब्द०) ।

निष्कान^१—संज्ञा पु० [सं० निदान] अंत । परिणाम । उ०—जो
निष्कान तन होइहि छारा । माटिहि थोखि मरे को मारा ।—
जायसी प्र०, पृ० ५४ ।

निष्कान^२—प्रत्यय अंत में । आखिर ।

निष्काना^१—क्रि० वि० [हि० न्यारा] न्यारा । छलम । उ०—अनु
राजा सो जरे निष्काना । बादसाह के सेव न माना ।—जायसी
(शब्द०) ।

निष्कामस—संज्ञा स्त्री० [प्र०] अन्ध्रा और बहुमुख्य पदार्थ ।
अलभ्य पदार्थ ।

निष्कारा—वि० [हि०] दे० 'न्यारा' ।

निश्चयि—संज्ञा स्त्री० [सं०] नैश्चय या दक्षिणपश्चिम कोण की
प्रतिष्ठातृ देवी । २. अलक्ष्मी । लक्ष्मी की बड़ी बहन दरिद्रा ।
३. धृष्टु । नाश । ४. पृथ्वी का तत्व । ५. विपत्ति [को०] ।

निश्चयि^१—संज्ञा पु० १. नैश्चय कोण के प्रतिपत्ति दिक्पाल । २.
राजस । ३. मरण । ४. पाठ वसु में से एक वसु । ५. एक
रत्न । रत्न का एक रूप । ६. मूल नामक नक्षत्र [को०] ।

निश्चयि^२—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'निश्चयि' ।

निकटक^१—वि० [सं० निकटक] दे० 'निकटक' ।

निकंदन—संज्ञा पु० [सं० नि + कंदन (= नाश, बध)] नाश ।
बिनाश ।

निकंदना^१—क्रि० प्र० [सं० निकंदन] नाश करना । संहार
करना उ०—आगति निकंदन मिलावे नंदनंदन मु ।—धनानंद,
पृ० १४१ ।

निकंदरोग—संज्ञा पु० [सं०] एक योनिरोग । ३० 'योनिकंद' ।

निक^१—वि० [हि० नीक] नीका । अच्छा । भला । उ०—
कपिन पुरस के केधो नहि निक कह ।—बिद्यापति, पृ० ३८० ।

निकट^१—वि० [सं०] १. पास का । समीप का । जो दूर न हो । २.
संबंध में जिससे विशेष अंतर न हो । जैसे, निकट संबंधी ।

निकट^२—क्रि० वि० पास । समीप । नजदीक ।

मुद्दा—किसी के निकट = (१) किसी के प्रति । किसी से ।
जैसे,—किसी के निकट कुछ माँगना । (२) किसी के
केसे में । किसी की समझ में । जैसे,—तुम्हारे निकट तो
यह काम कुछ भी नहीं है ।

निकटता—संज्ञा स्त्री० [सं०] समीपता । सामीप्य ।

निकटपना—संज्ञा पु० [सं० निकट + पना (प्रत्यय०)] निकटता ।
सामीप्य ।

निकटवर्ती—वि० [सं० निकटवर्तिन्] [वि० स्त्री० निकटवर्तिनी]
पासवाला । समीपस्थ । नजदीक का ।

निकटस्थ—वि० [सं०] १. जो निकट हो । पास का । २. संबंध
में जिससे बहुत अंतर न हो । जैसे, निकटस्थ संबंधी ।

निकटदू^१—वि० [हि०] दे० 'निष्कटदू' । उ०—बहुत दिनों
में निकटदू आए । पैसा एक न पूँजी आए ।—बिखानी०
पृ० ३१० ।

निकसी—संज्ञा स्त्री० [सं० निष्क + मिति] छोटा तराबू । काँटा ।

निकम्मा—नि० [सं० निकर्म, प्रा० निकम्म] [वि० स्त्री०
निकम्मी] १. जो कोई काम धंधा न करे । जिससे कुछ
करते धरते न बने । जैसे, निकम्मा आदमी । २. जो किसी
काम का न हो । जो किसी काम में न आ सके । बेमसरफ ।
बुरा । जैसे, निकम्मी बीज ।

निकर^१—संज्ञा पु० [प्र०] निकर वाकजं] एक प्रकार का जुटने
तक का खुला पायजामा ।

निकर^२—संज्ञा पु० [सं०] १. समूह । झुंड । उ०—बिचरहि यामें
रसिकवर, मधुकर निकर अपार ।—रसखान०, पृ० १२ ।
२. राशि । डेर । ३. न्यायदेय धन । ४. सार (को०) । ५.
निधि । खजाना ।

निकरना^१—क्रि० प्र० [हि०] दे० 'निकलना' ।

निकर्त—संज्ञा पु० [सं०] १. काटना । २. विदारण करना ।
काटना [को०] ।

निकर्मा—वि० [सं० निकर्मा] जो काम न करे । आलसी । जो
कुछ उद्योग धंधा न करे ।

निकर्षण—संज्ञा पु० [सं०] १. नगर या नगर के समीप खेल का
मैदान । क्रीडाभूमि । २. घर के आगे खुला चबूतरा या प्रवेश-
द्वार के पास का प्रांगण । ३. पड़ोस । ४. परती । बिना जोती
भूमि [को०] ।

निकलंक—वि० [सं० निकलङ्क] दोषरहित । निर्दोष । बेदाग ।
उ०—बुरी बुराई जो तजै तो मन खरो सकात । ज्यों निकलंक
मगंक लखि गनै लोक उतपात ।—बिहारी (शब्द०) ।

निकलंकी^१—संज्ञा पु० [सं० निकलङ्क] विष्णु का दसवाँ अवतार
जो कलि के अंत में होगा । कल्कि अवतार । उ०—द्वारका के
युग लक्षण पायो । निकलंकी अवतार बतायो ।—
रघुनाथ (शब्द०) ।

निकलंकी^२—वि० दे० 'निकलंक' ।

निकल—संज्ञा स्त्री० [प्र०] एक धातु जो सुरमे, कोयले, गंधक,
संक्षिया आदि के साथ मिली हुई खानों में मिलती है ।

विशेष—साफ होने पर यह चांदी की तरह चमकती है । यह
बहुत कड़ी होती है और जल्दी गलती नहीं तथा लोहे की
तरह चुंबक शक्ति को ग्रहण करती है । सन् १७५१ में एक
जर्मन ने इसका पता लगाया । इसका साफ करना बहुत
कठिन काम है । तब के साथ मिलाने से यह बिलायसी

चाँदी के रूप में हो जाती है। धलुमीनम के साथ इसे मिला देने से इसमें अधिक कड़ापन आ जाता है। यह धातु कंधार, राजपूताना तथा सिंहल द्वीप में बोड़ी बहुत मिलती है। कम मिलने के कारण इसका मूल्य कुछ अधिक होता है, इससे छोटे सिक्के बनाने के काम में यह लाई जाने लगी है।

निकलना—क्रि० घ० [हि० निकालना] १. बाहर होना। भीतर से बाहर आना। निर्गत होना। जैसे, घर से निकलना, संदूक से निकलना, अंकुर निकलना, ग्राम निकलना।

संयो० क्रि०—आना। —चलना। —जाना। —पड़ना। —भागना।

मुहा०—निकल जाना = (१) चला जाना। आगे बढ़ जाना। जैसे,—अब तो वे बहुत दूर निकल गए होंगे। (२) न रह जाना। लो जाना। नष्ट हो जाना। ले लिया जाना। जैसे,—हाथ से चीज काम या अवसर निकल जाना। (३) घट जाना। कम हो जाना। जैसे,—पाँच में से तीन निकल गए, दो बचे। (४) न पकड़ा जाना। भाग जाना। जैसे,—घोर निकल गया। (स्त्री का) निकल जाना = किसी पुरुष के साथ अनुचित संबंध करके घर छोड़कर चला जाना।

२. व्याप्त या प्रोतप्रोत वस्तु का अलग होना। मिली हुई, लगी हुई या पैवस्त चीज का अलग होना। जैसे,—बीज से तेल निकलना, पत्ती से रस निकलना, फल का छिन्न निकलना।

संयो० क्रि०—आना। —जाना।

३. पार होना। एक ओर से दूसरी ओर चला जाना। प्रतिक्रमण करना। जैसे,—इस ज़ेद में से गेंब नहीं निकलेगा।

संयो० क्रि०—आना। —जाना।

मुहा०—निकल चलना = वित्त से बाहर काम करना। इतराना। प्रति करना।

४. किसी श्रेणी आदि के पार होना। उत्तीर्ण होना। जैसे,—इस बार परीक्षा में तुम निकल आओगे।

संयो० क्रि०—जाना।

५. गमन करना। जाना। गुजरना। जैसे,—(क) वह रोज हमी रास्ते से निकलता है। (ख) बरात बड़ी धूम से निकली।

संयो० क्रि०—जाना।

६. उदय होना। जैसे, चंद्रमा निकलना, सूर्य निकलना।

संयो० क्रि०—आना।

७. प्रादुर्भूत होना। उत्पन्न होना। पैदा होना। जैसे,—इतने बिजुटे कहीं से निकल पड़े। ८. उपस्थित होना। दिखाई पड़ना। ९. किसी ओर को बढ़ा हुआ होना। जैसे,—(क) घर का एक कोना पश्चिम ओर निकला हुआ है। (ख) कील की नोक नहीं निकली है।

संयो० क्रि०—आना। —जाना।

१. निश्चित होना। ठहराया जाना। उद्घाटित होना। जैसे, ५-४७

रास्ता निकलना, दोष निकलना, परिणाम निकलना, उपाय निकलना।

संयो० क्रि०—आना। —पड़ना।

११. खुलना। स्पष्ट होना। प्रकट होना। जैसे,—वाक्य का अर्थ निकलना, घोने पर कपड़े का रंग निकलना।

संयो० क्रि०—आना।

१२. मेल में से अलग होना। पृथक् होना। जैसे,—गेहूँ में से बहुत कंकड़ी निकली है।

संयो० क्रि०—आना। —जाना।

१३. छिड़ना। धारंभ होना। जैसे, बात निकलना, खर्चा निकलना। १४. प्राप्त होना। सिद्ध होना। सरना। जैसे, काम निकलना, मतलब निकलना।

संयो० क्रि०—आना। —जाना।

१५. हल होना। किसी प्रश्न या समस्या का ठीक उत्तर प्राप्त होना। जैसे,—इतना सीधा सवाल तुमसे नहीं निकलता।

१६. लगातार दूर तक जानेवाली किसी वस्तु का धारंभ होना। जैसे,—यह नदी कहीं से निकली है। १७. लकीर के रूप में दूर तक जानेवाली वस्तु का विधान होना। फैलाव होना। जारी होना। जैसे, नहर निकलना, सड़क निकलना। १८. प्रचलित होना। जारी होना। जैसे, कानून निकलना, कायदा निकलना, रीति निकलना, चाल निकलना।

संयो० क्रि०—जाना।

१९. फँसा, बँधा या जुड़ा न रहना। छूटना। मुक्त होना। जैसे,—गले से फँदा निकलना, बंधन से निकलना, बटन निकलना।

संयो० क्रि०—आना। —जाना।

२०. नई बात का प्रगट होना। आविष्कृत होना। ईबाद होना। जैसे,—कोई नई युक्ति निकलना, कल निकलना। २१. खरीर के ऊपर उत्पन्न होना। जैसे,—फोड़े फुंसी निकलना, भेचक निकलना।

संयो० क्रि०—आना।

२२. प्रमाणित होना। सिद्ध होना। साबित होना। जैसे,—(क) वह नौकर तो चोर निकला। (ख) उनकी कही हुई बात ठीक निकली। २३. लगाव न रहना। किनारे हो जाना। अलग हो जाना। जैसे,—दूसरों को इस काम में फँसाकर तुम तो निकल आओगे।

संयो० क्रि०—आना। —भागना।

२४. अपने को बचा जाना। बच जाना। जैसे,—कोई बापी बात कहकर निकल तो जाय।

संयो० क्रि०—जाना। —भागना।

२५. अपनी कही हुई बात से अपना संबंध न बताना। कहकर नहीं करना। मुकरना। नटना। जैसे,—बात कहकर सब निकले जाते हो।

संयो० क्रि०—जाना ।

२६ खपना । बिकना । जैसे,—जितनी पुस्तकें छपाई थीं सब निकल गई ।

संयो० क्रि०—जाना ।

२७ प्रस्तुत होकर सर्वसाधारण के सामने जाना । प्रकाशित होना । जैसे,—उस प्रेस से अच्छी पुस्तकें निकली हैं ।

संयो० क्रि०—जाना ।

२८ हिमाच किताब होने पर कोई रकम बिम्बे ठहरना । चाहना होना । जैसे,—तुम्हारा जो कुछ निकलता हो हममें लो । २९ फटकर बलग होना । उबड़ना । जैसे,—क़रमा मोढ़े पर से निकल गया ।

संयो० क्रि०—जाना ।

३० ग्राम होना । पाया जाना । मिलना । जैसे,—(क) हमारा क्या किसी प्रकार निकल जाता तो बड़ी बात होती । (ख) हमके पाम चोरी का माल निकला है ।

संयो० क्रि०—जाना ।

३१ जाना रहना । दूर होना । हट जाना । मिट जाना । न रह जाना । जैसे,—(क) दवा लगाते ही सब पीड़ा निकल गई । (ख) एक चाँटा दौंगे तुम्हारी सब बदमाशी निकल जायगी ।

संयो० क्रि०—जाना ।

३२ व्यतीत होना । बीतना । गुजरना । जैसे,—इसी झंझट में मारा दिन निकल गया ।

संयो० क्रि०—जाना ।

३३ घोड़े बैल, आदि का सवारी लेकर चलना आदि सोलना । शिखित होना । जैसे,—यह बोड़ा अभी निकला नहीं है ।

निकलवाना—क्रि० सं० [हि० निकालना का प्रे० रूप] निकालने का काम दूसरे से कराना ।

निकलवाना—क्रि० सं० [हि० निकालना] दे० 'निकलवाना' ।

निकष—संज्ञा पुं० [सं०] १. कसौटी । २. कसौटी पर चढ़ाने का काम । ३. हथियारों पर सान चढ़ाने का पत्थर । ४. कसौटी पर कसने से बनी रेखा (को०) । ५. कोई वस्तु या कार्य जिससे किसी की परीक्षा हो । (साक्ष०) ।

निकषण—संज्ञा पुं० [सं०] १. कसौटी । २. कसौटी पर चढ़ाने का काम । ३. सान पर चढ़ाने का काम । ३. चिसने वा रगड़ने का काम ।

निकषा—संज्ञा स्त्री० [सं०] सुमति की कम्पा और विश्वास की पत्नी एक राक्षसी जिसके बर्न से रावण, कुम्भकर्ण, मूर्धणसा और विभीषण उत्पन्न हुए थे ।

निकषात्मज—संज्ञा पुं० [सं०] निषाचर । राक्षस । राक्षस (को०) ।

निकषोपल—संज्ञा पुं० [सं०] वह काला पत्थर जिसपर सोबा कसकर परखा जाता है । कसौटी (को०) ।

निकस—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'निकष' ।

निकसना—क्रि० प्र० [हि०] दे० 'निकलना' । उ०—पुतल तें निकसति कहैं बिजुछटा की लोह ।—सुकुंतला, पृ० २१ ।

निकसनी—वि० [हि० निकसना] निकलनेवाली । बाहर निकलने की । उ०—तियन की नहिंन निकसनी बेर । देग बाहु चर होति अवेर ।—नंद ग्रं०, पृ० ३१६ ।

निकाई(पु)—संज्ञा पुं० [सं० निकाय] दे० 'निकाय' ।

निकाई^२—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० नेक, हि० नीक] १. भलाई । अच्छापन उम्दगी । २. खूबसूरती । सौंदर्य । सुंदरता । उ०—गण मनि माल बीच आबत, कहि जाति न पदक निकाई ।—सुलसी (चब्द०) ।

निकाज—वि० [हि० नि+काज] बेकाम । निकम्मा । उ०—जोवन चंचल ठोठ है करै निकाजहि काज ।—जायसी ग्रं०, पृ० २३८ ।

निकाना—क्रि० सं० [देश०] दे० 'निराना' ।

निकाब—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० नकाब] नकाब । पर्दा । उ०—झाँझों में लाल छोरे सराब के बदले । हैं जुल्फ़ छुटी रस पर निकाब के बदले ।—भारतेन्दु ग्रं०, भा० २, पृ० २०१ ।

निकाम^१—वि० [हि० नि+काम] १. निकम्मा । २. बुरा । सराब ।

निकाम^२—क्रि० वि० व्यर्थ । निःप्रयोजन । फ़ज़ूल ।

निकाम^३—वि० [सं०] १. इष्ट । अभिलषित । २. मजेष्ट । पर्याप्त । काफी । ३. इच्छुक । ४. बहुत । अतिशय ।

निकाम^४—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'निकामन' (को०) ।

निकामन—संज्ञा पुं० [सं०] आकांक्षा । इच्छा । अभिलाषा (को०) ।

निकाय—संज्ञा पुं० [सं०] १. समूह । भुंड । उ०—देखि सिधु हरलाय निकाय चकोर निहारें ।—दीन० ग्रं०, पृ० १६४ । २. एक ही मेल की वस्तुओं का ढेर । राशि । ३. निकय । वासस्थान । घर । ४. परमात्मा । ५. शरीर । देह (को०) । ६. लक्ष्य (को०) । ७. बायु । पवन (को०) ।

निकाय—संज्ञा पुं० [सं०] आवास । निवास । घर (को०) ।

निकार^१—संज्ञा पुं० [सं०] १. परामर्श । हार । २. अपकार । ३. अपमान । अपमानना । मानहानि । ४. तिरस्कार । ५. घनाज घोसाना (को०) । ६. बध करना । मारण । हिसन (को०) । ७. दुष्टता । बदमाशी (को०) । ८. विरोध । द्वेष (को०) । ९. उत्पादन । उठाना (को०) ।

निकार^२—संज्ञा पुं० [हि० निकारना] १. निकालने का काम । निष्कासन । २. निकलने का द्वार । निकास । ३. ईँक का रस पकाने का कड़ाहा ।

निकारण—संज्ञा पुं० [सं०] मारण । बध ।

निकारना(पु)—क्रि० सं० [हि० निकालना] दे० 'निकालना' ।

निकाल—संज्ञा पुं० [हि० निकालना] १. निकास । २. पेश का काट । वह युक्ति जिसमें कुश्ती में प्रतिपक्षी की बात से बचा जाय । तोड़ । ३. कुश्ती का एक पेश ।

विशेष—इसमें अपना बाहिना हाथ जोड़ की बाईं ओर से उसकी गरदन पर पट्टीबाकर अपने बाएँ हाथ से उसके बाहिने हाथ को ऊपर उठाते हैं और फिर फुरती के साथ उसके रहने का

पर मुककर अपनी छाती उसकी दहनी पसलियों से भिड़ाते तथा अपना बायाँ हाथ उसकी दहनी बाँध में बाहर की ओर से डालकर उसे चित कर देते हैं ।

निकालना—क्रि० सं० [सं० निष्कासन, हि० निकालना] १. बाहर करना । भीतर से बाहर लाना । निर्गत करना । जैसे, घर से निकालना, बरतन में से निकालना, जुआ हुआ काँटा निकालना ।

संयो० क्रि०—डालना । —देना । —लेना । —ले जाना ।

मुहा०—(स्त्री को) निकाल लाना या ले जाना=स्त्री से अनुचित संबंध करके उसे उसके घर से अपने यहाँ लाना या लेकर कहीं चला जाना ।

२. व्याप्त या प्रोतप्रोत वस्तु को पुष्क करना । मित्ती हुई, लगी हुई या पैवस्त चीज को अलग करना । जैसे, बीज से तेल निकालना, पत्ती से रस निकालना, फल से छिनका निकालना ।

संयो० क्रि०—डालना । —देना । —लेना ।

३. पार करना । एक ओर से दूसरी ओर ले जाना या बढ़ाना । अतिक्रमण कराना । जैसे, --दीवार के छेद में से इसे उस पार निकाल दो ।

संयो० क्रि०—देना । —ले चलना । —ले जाना ।

४. नमन कराना । ले जाना । गुजर कराना । जैसे,—(क) ने बारात इसी सड़क से निकालेंगे । (ख) हम उसे इसी ओर से निकाल ले आयेंगे ।

संयो० क्रि०—ले चलना । —ले जाना ।

५. किसी ओर को बढ़ा हुआ करना । जैसे,—चबूतरे का एक कोना उधर निकाल दो ।

संयो० क्रि०—देना ।

६. निश्चित करना । ठहराना । उद्भावित करना । जैसे, उपाय निकालना, रास्ता निकालना, दोष निकालना, परिणाम निकालना ।

संयो० क्रि०—देना । —लेना ।

७. प्राकृत्युत करना । उपस्थित करना । मौजूद करना । ८. खोजना । व्यक्त करना । स्पष्ट करना । प्रकट करना । जैसे,—वाक्य का अर्थ निकालना । ९. छेड़ना । धारण करना । चलाना । जैसे,—बात निकालना, चर्चा निकालना । १०. सबके सामने लाना । देख में करना । जैसे,—अभी मत निकालो, लड़के देखेंगे तो रोने लगेंगे । ११. मेल या मिलेजुले समूह में से अलग करना । पुष्क करना । जैसे,—(क) इनमें से जो ग्राम सड़ें हों उन्हें निकाल दो । (ख) इनमें से जो तुम्हारे काम की चीजें हों उन्हें निकाल लो ।

संयो० क्रि०—डालना । —देना । —लेना ।

१२. बटना । कम करना । जैसे,—पाँच में से तीन निकाल दो ।

संयो० क्रि०—देना । —डालना ।

१३. फँसा, बँधा, जुड़ा या जमा न रहने देना । अलग करना ।

छुड़ाना । मुक्त करना । जैसे,—गले से फँसा निकालना, कोट से बटन निकालना ।

संयो० क्रि०—डालना । —देना । —लेना ।

१४. काम से अलग करना । नीकरी से छुड़ाना । बरस न करना । जैसे,—इस नीकर को निकाल दो ।

संयो० क्रि०—देना ।

१५. पास न रखना । दूर करना । हटाना । जैसे,—इस थोड़े को अब हम निकाल देंगे ।

संयो० क्रि०—देना ।

१६. बँचना । खपाना । जैसे, माल निकालना ।

संयो० क्रि०—देना ।

१७. सिद्ध करना । कनीभूत करना । प्राप्त करना । जैसे,—अपना काम निकालने में वह बड़ा पक्का है ।

संयो० क्रि०—लेना ।

१८. निर्वह करना । चलाना । जैसे,—किसी प्रकार काम निकालने के लिये यह अच्छा है ।

संयो० क्रि०—लेना ।

१९. किसी प्रश्न या समस्या का ठीक उत्तर निश्चित करना । हल करना । जैसे,—यह सवाल तुम नहीं निरान सकते । २०. लकीर की तरह दूर तक जानेवाली वस्तु का विमान करना । जारी करना । फँलाना । जैसे, नहर निकालना, सड़क निकालना ।

संयो० क्रि०—देना ।

२१. प्रचलित करना, जारी करना । जैसे, कानून निकालना, कायदा निकालना, रीति निकालना । २२. नई बात प्रकट करना । आविष्कृत करना । ईजाद करना । जैसे, नई तरकीब निकालना, कल निकालना । २३. मंष्ट, कठिनाई आदि से छुटकारा करना । बचाव करना । निवारण करना । हटार करना । जैसे,—इस संकट से हमें निराना । २४. प्रस्तुत करके सर्वसाधारण के सामने लाना । प्रचारित करना । प्रकाशित करना । जैसे,—(क) उस प्रकाशक ने अच्छी पुस्तकें निकाली हैं । (ख) अखबार निकालना । २५. रकम जिम्मे ठहराना । ऊपर ऋण या देना निश्चित करना । जैसे,—उसने सी रुपए हमारे जिम्मे निकाले हैं । २६. प्राप्त करना । ढूँढ़कर पाना । बरामद करना । जैसे,—पुराने ने उसके यहाँ चोरी का धाल निकाला है । २७. हमारे के वस्तु से अपनी वस्तु ले लेना । जैसे, बँक से रुपया निकालना ।

संयो० क्रि०—देना ।

२८. थोड़े, बेल आदि को सवारी लेकर चलना या गाड़ी आदि खींचना । सिखाना । सिखा देना । जैसे,—(क) यह सवार थोड़ा निकालता है । (ख) यह थोड़ा अभी गाड़ी में नहीं निकाला गया है । २९. प्रवाहित करना । बहाना । ३०. सुई से बेल बूटे बनाना ।

निकालना—संज्ञा पु० [हि० निकालना] १. निकालने का काम ।

२. किसी स्थान से निकाले जाने का दंड। बहिष्कार।
निकामन।

क्रि० प्र०—मिलना।—होना।

यौ०—देशनिकाला। नगरनिकाला।

निकाश—संज्ञा पु० [सं०] १. जहाँ तक दृष्टि जाती हो वह स्थान। दृष्टिक्षेत्र। क्षितिज। २. प्रकाश। उद्योति। ३. एकान्त। ४. सामीप्य। समीपता। ५. मादश्य [क्रि०]।

निकाप—संज्ञा पु० [सं०] गुरचना। रगड़ना। घसना। मलना [क्रि०]।

निकास—संज्ञा पु० [हि० निकसना, निकामना] १. निकलने की क्रिया या भाव। २. निकालने की क्रिया या भाव। ३. वह स्थान जिससे होकर कुछ निकले। निकलने के लिये खुला स्थान या छेद। जैसे, बरसाती पानी का निकास। ४. द्वार। दरवाजा। जैसे,—घर का निकास दक्खिन ओर मत रखो। ५. बाहर का खुला स्थान। मैदान। उ०—(क) खेलत बने घोष निकास।—सूर (शब्द०)। (ख) खेलन चले कुँवर कन्हौई। कहत घोष निकास जइए तहाँ खेलें धाड़।—सूर (शब्द०)। ६. दूर तक जाने या फैलनेवाली चीज का प्रारंभ स्थान। सद्गम। मूलस्थान। जैसे, नदी का निकास। ७. वंश का मूल। ८. संकट या कठिनाई से निकलने की युक्ति। बचाव का रास्ता। रक्षा का उपाय। छुटकारे की तदबीर। जैसे, जब तो इस मामले में फँस गए हो, कोई निकास सोचो।

क्रि० प्र०—निकालना।

९. निर्वाह का ढंग। ठर्रा। बधीला। सिलसिला। जैसे,—इस समय तो तुम्हारे लिये कोई काम नहीं है, खेर कोई निकास निकालेंगे। १०. लाभ या आय का गूत्र। प्राप्ति का ढंग। आयदनी का रस्ता। ११. आय। आयदनी। निकासी।

निकासना—क्रि० सं० [हि० निकाम] १०. 'निकामना'।

निकासपत्र—संज्ञा पु० [हि० निकाम + पत्र] वह कागज जिसमें जमाखर्च और बचत का हिसाब समझाया गया हो।

निकासी—संज्ञा स्त्री० [हि० निकास + ई (प्रत्य०)] १. निकलने की क्रिया या भाव। २. किसी स्थान से बाहर जाने का काम। प्रस्थान। रवानगी। जैसे, बरतन की निकासी। ३. वह पत्र जो सरकारी मालगुजारी आदि देकर जमींदार को बचे। मुनाफा। प्राप्ति। ४. आय। आयदनी। लाभ। जैसे,—जहाँ चार पैसे की निकासी होती है वही सब जाना चाहते हैं। ५. बिक्री के लिये माल की रवानगी। लदाई। मरती। ६. बिक्री। खपत। ७. बुगी। ८. रबन्ना।

निकाह—संज्ञा पु० [सं०] मुसलमानों पद्धति के अनुसार किया हुआ विवाह।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

सुहा०—निकाह पठाना = विवाह करवा।

यौ०—निकाहनामा = विवाह की शर्तें या निष्ठापदी। निकाह-सानी = विधवा का पुनर्विवाह।

निकियाई—संज्ञा स्त्री० [हि० निकियाना] निकियाने की मजदूरी। जैसे,—बमझी की मुरगी, नौ टका निकियाई।

निकियाना—क्रि० सं० [स्था०] १. नोचकर धउजी धउजी धलन करना। २. चमड़े पर से पंख या बाख नोचकर धलन करना।

निकिष्टपुं०—वि० [सं० निकुष्ट] १०. 'निकुष्ट'।

निकुंच—संज्ञा पु० [सं० निकुञ्च] चाभी। कुंजी। ताली।

निकुंचक—संज्ञा पु० [सं० निकुञ्चक] १. एक परिमाण या तोल जो आधे अजली के बराबर और किसी किसी के मत से आठ तोल के बराबर होता है। कुडव का चतुर्थांश। २. जलधत। अंबुवेतस।

निकुंचन—संज्ञा पु० [सं० निकुञ्चन] १. १०. 'निकुंचक'। २. संकुचन। सकोचन।

निकुंचित—वि० [सं० निकुञ्चित] संकुचित।

निकुंज—संज्ञा पु० [सं० निकुञ्ज] १. लतागृह। ऐसा स्थान जो घने वृक्षों और घनी लताओं से घिरा हो। २. लताओं से आच्छादित मंडप।

निकुंजिकाम्ना—संज्ञा पु० [सं० निकुञ्जिकाम्ना] १०. 'निकुञ्जिकाम्ना'।

निकुंजिकाम्ना—संज्ञा स्त्री० [सं० निकुञ्जिकाम्ना] कुंज के वृक्ष का एक भेद। कुंचिका। कुंजिका।

निकुंभ—संज्ञा पु० [सं० निकुम्भ] १. कुम्भकर्ण का एक पुत्र जिसे हनुमान ने मारा था। यह रावण का मंत्री था। २. प्रह्लाद के एक पुत्र का नाम। ३. क्षतपुर का एक असुर राजा जो कृष्ण के हाथों मारा गया। इसने कृष्ण के मित्र ब्रह्मदत्त की कन्याओं का हरण किया था। ४. हर्यश्व राजा का पुत्र (हरिश्चंद्र)। ५. एक विश्वदेव। ६. कौरव सेनापतियों में से एक राजा। ७. कुमार का एक गण। ८. महादेव का एक गण। ९. दंती वृक्ष। १०. जमालगोटा।

निकुंभाख्यबीज—संज्ञा पु० [सं० निकुम्भाख्यबीज] जमालगोटा।

निकुंभिला—संज्ञा स्त्री० [सं० निकुम्भिला] १. लंका के पश्चिम एक गुफा। २. उस गुफा की देवी जिसके सामने यज्ञ और पूजन करके मेघनाद युद्ध की यात्रा करता था। ३. अर्चन, पूजन का स्थान (को०)।

निकुंभो—संज्ञा स्त्री० [सं० निकुम्भो] १. दंती वृक्ष। २. कुम्भकर्ण की कन्या।

निकुतीपुं०—संज्ञा स्त्री० [हि० निकुती] मोतीघर। बुंदिया। उ०—दादी बाँटे सोरनी लाइ निकुती निश। प्रथम कमाई पुच की सती अऊत निमित्त।—अध०, पु० १४।

निकुरंब—संज्ञा पु० [सं० निकुरम्ब] समूह। डेर। उ०—निकर, प्रकर, निकुरंब, बज, पुर, पूग, चय, व्यूह। कंदल, जाल, कलाव, कुल, निबह, निचय, संदूह।—नंद० प्र०, पु० १००।

निकुरंब—संज्ञा पु० [सं० निकुरम्ब] १०. 'निकुरंब'।

निकुलीनिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. बंधानुक्रमगत कला। बंध-परंपरा से चली आ रही कला। २. वह कला जो आदि-विशेष में ही प्राप्त हो (को०)।

निकुट्टी—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक चिड़िया ।

निकूल—संज्ञा पुं० [सं०] वह देवता जिसके उद्देश्य में नरमेघ यज्ञ और अश्वमेध यज्ञ में बैठे यूप में पशुहवन होता था —(शुक्ल यजुर्वेद) ।

निकुन्तनी—संज्ञा पुं० [सं० निकुन्तन] १. छेदन । खंडन । २. काटने का योजार । छेदन करने का यन्त्र (को०) । ३. एक नरक (को०) ।

निकुन्तनी—वि० [स्त्री० निकुन्तनी] काटने या छेदन करने वाला (को०) ।

निकुत्त—वि० [सं०] १. निकासी हुआ । बहिष्कृत । वदनाम । लोहित । २. तिरस्कृत । ४. नीच । शठ । ५. वचन । जो ठगा गया हो । ६. पराभवप्राप्त । पराभूत (को०) ।

निकुत्तप्रज्ञ—वि० [सं०] बदमाश । दुष्ट । बुरा सोचनेवाला (को०) ।

निकुत्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. तिरस्कार । अत्सेना । २. अपकार । ३. दैन्य । ४. शठता । नीचता । ५. पराभव । ६. गजय । ७. पुण्यिणी । ८. वचना । प्रतारण । ९. संख्या से उत्पन्न धर्मपुत्र । १०. एक वसु । आठवें वसु का नाम ।

निकुत्ती—वि० [सं० निकुत्तिन्] नीच । शठ । दुष्ट ।

निकुत्त—वि० [सं०] १. मूल से छिन्न । जड़ से कटा हुआ । खंडित । २. विदारित । विदीर्ण (को०) ।

निकुट्ट—वि० [सं०] १. बुरा । प्रथम । नीच । तुच्छ । २. अशिष्ट । असभ्य । ग्राम्य (को०) । ३. समीप । नजदीक (को०) ।

निकुट्ट—संज्ञा पुं० समीप्य । समीपता (को०) ।

निकुट्टता—संज्ञा स्त्री० [सं०] बुराई । अधमता । नीचता । भदता ।

निकुट्टत्व—संज्ञा पुं० [सं०] बुराई । नीचता । भदता ।

निकेवाच—संज्ञा पुं० [सं०] बार बार संवित करना या एकाग्र करना (को०) ।

निकेत—संज्ञा पुं० [सं०] १. घर । मकान । स्थान । जगह । २. चिह्न । निशान । प्रतीक (को०) ।

निकेतक—संज्ञा पुं० [सं०] १. 'निकेत' ।

निकेतन—संज्ञा पुं० [सं०] १. वास्तव्य । घर । मकान । २. पलाय । व्याज ।

निकोचक—संज्ञा पुं० [सं०] अंकोल वृक्ष । डेरा ।

निकोचन—संज्ञा पुं० [सं०] संकुचन ।

निकोठक—संज्ञा पुं० [सं०] डेरा । अंकोल ।

निकोना—क्रि० सं० [देश०] उलाड़ देना । निकियाना । नोच फेंकना । उ०—बहुतक जीव ठिकानो पैहै आवागवन न होई । जम के बंड दहन पावक की तेनहुँ मूल निकोई । —सहजो, पृ० ५५ ।

निकोश्य—संज्ञा पुं० [सं०] यज्ञपशु के पेट की एक नाड़ी ।

निकोसना—क्रि० सं० [सं० निस् + कोष] १. दाँत निकालना । २. दाँत पीसना । कटकटना । किचकिचाना ।

निकौनी—संज्ञा स्त्री० [हि० निकाना] १. निराई । निराने का काम । २. निराने की मजदूरी ।

निक्का—वि० [सं० न्यक्त (= नत, नोचा)] [वि० स्त्री० निक्की] छोटा । नन्हा । (पंजाबी) ।

निकीक—संज्ञा पुं० [सं०] १. कीतुक । कीड़ा । तमाशा । २. सामभेद ।

निकवण—संज्ञा पुं० [सं०] १. बीणाध्वनि । बीन की भनकार । २. कितरों का शब्द ।

निकवाण—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'निकवण' (को०) ।

निक्कण—संज्ञा पुं० [सं०] कुंवन ।

निक्ता—संज्ञा स्त्री० [सं०] जूँ का घड़ा । नीख ।

निकृष्ट—वि० [सं०] १. फँका हुआ । घाला हुआ । २. डाला हुआ । लाड़ा हुआ । त्यक्त । ३. किसी से यहाँ उसके विश्वास पर छोड़ा हुआ (द्रव्य, संपत्ति आदि) । धरोहर रखा हुआ । अमानत रखा हुआ । ४. रखा हुआ । रक्षित (को०) । प्रेषित । भेजा हुआ (को०) ।

निकुभा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. बाह्यणी । २. सूर्य की एक पत्नी का नाम । —(अविष्य पुराण) ।

निक्षेप—संज्ञा पुं० [सं०] १. फेंकने या डालने की क्रिया या भाव । २. चलाने की क्रिया या भाव । ३. छोड़ने या रखने की क्रिया या भाव । त्याग । ४. पाख़ाने की क्रिया या भाव । ५. धरोहर । अमानत । घाला । किसी के विश्वास पर उसके यहाँ कोई वस्तु छोड़ने या रखने का कार्य अथवा इस प्रकार छोड़ी या रखी हुई वस्तु । ६. अर्पण करना । अर्पण करने की क्रिया या भाव (को०) । ७. मजदूर को सफाई या मरम्मत के लिये कोई वस्तु देना (को०) ।

निक्षेपक—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह जो निक्षेप करता हो । २. पाती या धरोहर रखनेवाला । ३. धरोहर में रखा हुआ पदार्थ या वस्तु (कोटि०) ।

निक्षेपण—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० निक्षिप्य, निक्षेप्य] १. फेंकना । डालना । २. छोड़ना । चलाना । ३. त्यागना । ४. पाती रखना (को०) । ५. देना । अर्पण । अर्पण करना (को०) ।

निक्षेपित—वि० [सं०] १. जिसका निक्षेप कराया गया हो । २. अमानत रखवाया हुआ ।

निक्षेपी—वि० [सं० निक्षेपिन्] १. फेंकनेवाला । छोड़नेवाला । २. धरोहर रखनेवाला ।

निक्षेप्ता—संज्ञा पुं० [सं०] १. निक्षेपक । फेंकनेवाला । छोड़नेवाला । २. धरोहर रखनेवाला ।

निक्षेप्य—वि० [सं०] निक्षेप के योग्य । फेंकने योग्य । छोड़ने योग्य ।

निखंग—संज्ञा पुं० [निपङ्ग] दे० 'निपङ्ग' । उ०—दाह बिन सिंग बानरहित निखंग भयो । —हमिरो, पृ० ५४ ।

निखंगी—वि० [सं० निषङ्गिन्] दे० 'निपङ्गी' ।

निखंड—वि० [सं० निस् + खण्ड] मध्य । न थोड़ा इधर न उधर । सटोक । ठीक । जैसे, निखंड आधो रात, निखंड बेला ।

निखट्टरी—वि० [हि० नि + कट्टर (= कड़ा)] १. कड़े दिल का । कठोर चित्त का । २. निष्ठुर । निर्दय ।

निखट्ट—वि० [हि० उप० नि (= वहीं) + खटना (=

टिकना, ठहरना; न टिकनेवाला, न ठहरनेवाला)] १. अपनी कुचास के कारण कहीं न टिकनेवाला। जिसका कहीं ठिकाना न लगे। इधर उधर मारा मारा फिरनेवाला। २. जमकर कोई काम धंधा न करनेवाला। जिससे कोई काम काज न हो सके। निवृत्ता। घालनी।

निखनन—संज्ञा पुं० [सं०] १. खनना। खोदना। २. मृत्तिका। मिट्टी। ३. नाइना।

निखरक(पुं०)—क्रि० वि० [हि० नि + खटकना] खटक में रहित। बेखटके। उ०—निधरक जान मनबेने नितरक धोर, दुखिया कहै या कहा तहाँ की उचित हो न। —घनानंद, पृ० १०६।

निखरना—क्रि० प्र० [सं० निखरण (= खँटना)] १. मेष खँटकर साफ होना। निर्मल धोर स्वच्छ होना। पुनकर भ्रू होना। २. रंगत का खुलना होना। उ०—मंगल कुंकुम की श्री जिसमें, निखरी हो ऊषा की लानी। भोला सुहाग इठलाता हो, ऐसी हो जिसमें हरियाली। —कामायनी, पृ० १००।

संयो० क्रि०—घाना। —जाना।

निखरवाना—क्रि० स० [हि० निखारना] साफ करना। धुलवाना।

निखरहर—वि० [देश०] निखरीना रहित। विरतर रहित। निना विस्तर का (खाट, पलंग आदि)।

निखरी—संज्ञा स्त्री० [हि० निखरना] पक्की। घों की पत्ती हुई रमोई। घृतपक्व। सखरी का उलटा।

विशेष—खानपान के आचार में घों दूध आदि के साथ पकाया हुआ मस (जैसे क्षीर, पूरी) उच्च वर्ण के लोग बहुत से लोगों के हाथ का खा सकते हैं, पर केवल पानी के संयोग से प्रायः पर पकाई चीजें (जैसे, रोटी, दाल आदि) बहुत कम लोगों के हाथ की खा सकते हैं।

निखरवा—वि० [सं०] दस हजार करोड़। दस महस कोटि।

निखरव—संज्ञा पुं० दस हजार करोड़ की संख्या।

निखरव—वि० [सं०] बहुत मोटे डील का। बामन। बोना। नाटा।

निखरख(पुं०)—वि० [सं० न्यख (= भाग, मव)] बिलहून। सब। धोर कुछ नहीं। उ०—तेहि भयं लगायो पोति बहायो निखरख रामै राम लख्यो। —विश्राम (शब्द०)।

निखात—वि० [सं०] १. खोदा हुआ। २. गढ़ा हुआ। ३. खोदकर जमाया हुआ। जेम, खूटा (गे०)।

निखाद—संज्ञा पुं० [सं० निषाद] दे० 'निषाद'।

निखार—संज्ञा पुं० [हि० निखरना] १. निर्मलपन। स्वच्छता। सफाई। २. सजाव। मृगार।

क्रि० प्र०—करना। —होना।

निखारना—क्रि० स० [हि० निखरना] १. स्वच्छ करना। साफ करना। मंजना। २. पवित्र करना। पापरहित करना।

निखारा—संज्ञा पुं० [हि० निखारना] लकड़ बनाने का कड़ाह जिसमें डालकर रस उबाला जाता है।

निखासिस—वि० [हि० नि + प्र० खालिस] विषुद्ध। जिसमें धोर किसी चीज का मेल न हो।

निखिल—वि० [सं०] संपूर्ण। सब। सारा।

निखूटना(पुं०)—क्रि० प्र० [सं० नि + √खुट्] १. घटना। समाप्त होना। २. टुटित होना। छिल होना। खोटा पड़ना। उ०—दूटे तागे निखुटी पानि, द्वार ऊपर भलिकावहि कान। —कबीर ग्रं०, पृ० २६६।

निखूटना—क्रि० प्र० [हि०] दे० 'निखुटना'।

निखेद(पुं०)—संज्ञा पुं० [सं० निषेध] दे० 'निषेध'। उ०—इहि विधि सब रचना करी, काहु न जाने भेद। जैसे है तैसे सब हुती, धब को करे निखेद। —कबीर सा०, पृ० ६१६।

निखेध(पुं०)—संज्ञा पुं० [सं० निषेध] दे० 'निषेध'।

निखेधना(पुं०)—क्रि० स० [सं० निषेध] निषेध करना। मना करना। वारण करना।

निखोट^१—वि० [हि० उप० नि + खोट] १. जिसमें कोई खोटाई या दोष न हो। निर्दोष। उ०—नाम भोट सेत ही निखोट होत खोटे खल, भोट बिनु मोट वाइ भयो ना निहाम को? —नूलमी (शब्द०)। २. साफ। जिसमें कुछ लगाव फँसाव न हो। स्पष्ट। खुला हुआ। जैसे, निखोट बात।

निखोट^२—क्रि० वि० बिना संकोच के। बेझुझ। खुलस खुलस। खुलकर। उ०—(क) कियो सूर प्रणाम निखोट प्रसी बख बंचल बंचल सों डेपि के। —कमलापति (शब्द०)। (ख) चढ़ी घटारी वाम बह कियो प्रणाम निखोट। तरनि फिरन ते एगन की करसरोज करि मोट। —मतिराम (शब्द०)।

निखोड़ना—क्रि० प्र० [हि०] दे० 'निखोरना'।

निखोड़ा—वि० [देश०] [स्त्री० निखोड़ी] कठोर चित्त का। निर्दय।

निखोरना—क्रि० स० [हि० उप० नि + खोड़ना या सं० नि + धारण] नाभून से मोचना। उखाड़ना।

निगंठ—संज्ञा पुं० [सं० निर्गन्ध (= बंधन रहित)] जैन धर्मावलंबी साधु। उ०—निगंठ जैनों की संज्ञा थी जो केवल कीर्तन धारण करते थे। —हिंदु० सभ्यता, पृ० २१५।

निगंड़—संज्ञा पुं० [सं० निर्गन्ध?] जड़ी बूटी जो दवा के काम में आती है और रक्तलोधक समझी जाती है।

विशेष—इस संबंध में यह प्रवाद है कि साँप जब केचली से चर जाने के कारण व्याकुल हो जाता है तब इसे चाट सेता है जिससे केचली उतर जाती है।

निगंदना—क्रि० स० [फ्रा० निर्गंदह (= बखिया, सीबन)] रजाई, दुलाई आदि रुई भरे कपड़ों में तागा डालना।

निगंध(पुं०)—वि० [सं० निर्गन्ध] गंधहीन। निर्गन्ध। जिसमें कोई गंध न हो।

निगड़—संज्ञा स्त्री० [सं० निगड] १. हाथी के पैर बाँधने की जंजीर। घाँट। उ०—साज की निगड़ गड़दार झुंझार चहूँ चौकि चितवनि चरखीन चमकोरे हैं। —लोचन पंचव ये

मतंग मतवारे हैं।—देव (शब्द०) । २. बेड़ी । उ०—जिन
तृण सम कृष्ण लाज निगड़ सब तोरधो हरि रस माहीं।—
भारतेंदु प्र०, भा० १, पृ० ४१८ ।

निगडन—संज्ञा पु० [सं०] १. जंजीर से बांधना । २. बेड़ी
डालना [को०] ।

निगडित—वि० [सं०] १. जंजीर से बांधा हुआ । २. बेड़ी
डाला हुआ [को०] ।

निगड्य—संज्ञा पु० [सं०] हवन आदि से उत्पन्न धुआँ [को०] ।

निगद—संज्ञा पु० [सं०] १. माधुर्य । कथन । २. ऊँचे स्वर से
किया हुआ जप । ३. मंत्र जो ऊँचे स्वर से जपा जाय [को०] ।
४. बिना अर्थ जाने रटना [को०] ।

निगद्वन—संज्ञा पु० [सं०] १. माधुर्य । कथन । २. याद की हुई
या रटी हुई चीज का ऊँचे स्वर से पाठ करना [को०] ।

निगद्वित—वि० [सं०] कथित । कहा हुआ ।

निगम—संज्ञा पु० [सं०] १. मार्ग । पथ । २. वेद । ३. बणिक्-
पथ । बनियों की फेरी का स्थान । हाट । बाजार । ४. मेला ।
५. माल का आना जाना । व्यापार । ६. निश्चय । ७.
कायस्थों का एक मेल । ८. बड़े नगरों की प्रबंधक सभा ।
नगर निगम । म्युनिसिपल कारपोरेशन । ९. नगर । १०. दे०
'निगमन' । ११. न्याय शाल [को०] । १२. वैचार्यबोधक या
वेदसम्मत ग्रंथ [को०] ।

निगमन—संज्ञा पु० [सं०] न्याय में अनुमान के पाँच अवसरों में से
एक । हेतु, वदाहरण और उपनय के उपरांत प्रतिज्ञा को
सिद्ध सुचित करने के लिये उसका फिर से कथन । साबित की
जानेवाली बात साबित हो गई, यह बताने के लिये दलील
बगैरह के पीछे उस बात को फिर कहना । नतीजा । जैसे,
'यहाँ पर आग है' (प्रतिज्ञा) । 'क्योंकि यहाँ पर धूँआँ है
(हेतु) । 'यहाँ धूँआँ रहता है वहाँ आग रहती है' (उपनय) ।
इसलिये यहाँ पर आग है' (निगमन) ।

विशेष—प्रचलितपाद के भाष्य में 'निगमन' को प्रात्याम्नाय
भी कहा है ।

२. जाना । भीतर जाना [को०] । ३. वेद का उद्धरण [को०] ।

निगमनिवासो—संज्ञा पु० [सं० निगमनिवासिन्] विष्णु । नारायण ।

निगमबोध—संज्ञा पु० [सं०] पुष्पीराज रामो के अनुसार दिल्ली
के पास जमुना नदी के किनारे एक पवित्र स्थान ।

विशेष—रामो में लिखा है कि दानवराज धुंषु (दुंषु या दुंढा)
साथ झुड़ाने के लिये विमान पर चढ़कर काशी जा रहे थे ।
रास्ते में उन्हें प्यास लगी और वे योगिनीपुर (दिप्ती) जल
पीने के लिये उससे वहाँ उन्हें एक ऋषि (हारिक) मिले ।
ऋषि ने उन्हें जमुना के किनारे निगमबोध नाम की गुफा में
नारायण की तपस्या करने के लिये कहा । दानवराज तपस्या
करने लगे । एक दिन पार्श्वलोच्य (?) राजा अनंगपाल की कन्या
सखियों सहित स्नान करने के लिये जमुना के किनारे आई और
पानी बरसने के कारण उस गुफा में उसने आश्रय लिया । तपस्वी
को देख उसने उसे स्तुति से प्रसन्न किया और यह वर माँगा

कि हमलोग बीरपत्नी हों और सदा एक साथ रहें । दानवराज
ने अनंगपाल की कन्या को वर दिया कि तुम्हारा एक पुत्र
बड़ा प्रतापी होगा और दूसरा पुत्र बड़ा भारी वक्ता होगा ।
इसके उपरांत दानवराज ने काशी आकर अपना शरीर १०८
खंडों में काटकर गंगा में डाल दिया । उसके जिह्वा से एक
प्रसिद्ध भोट और २० खंडों से २० क्षत्रिय वीर अजमेर में
उत्पन्न हुए । इन बीस क्षत्रियों में सोमेश्वर प्रधान थे जिनके
पुत्र पुष्पीराज हुए ।

निगमागम—संज्ञा पु० [सं०] वेद शाल ।

निगमो—वि० [सं० निगमिन्] वेद का ज्ञाता [को०] ।

निगर—संज्ञा पु० [सं०] १. भोजन । २. एक घरण की ठील
में ५५ मोती चढ़ें तो उन मोतियों के समूह का नाम निगर
है । ३. हवन का धुआँ [को०] । ४. गला [को०] । ५. पूरा
पूरा ग्रहण करना या आत्मसात् करना [को०] ।

निगर—वि० [सं० निकर] सब । सारे । उ०—निगर नगारे
नगर के बाजे एकहि बार ।—केशव (शब्द०) ।

निगर—संज्ञा पु० दे० 'निकर' ।

निगर्य—संज्ञा पु० [सं०] १. मक्षण । निगलना । २. गला । ३.
यज्ञाग्नि का धूम । होमधूम ।

निगर्यो—संज्ञा पु० [सं०] १. निगरानी रखनेवाला । २. निरीक्षक ।
३. रक्षक ।

निगरा—वि० [हि० उप० नि (= नहीं) + सं० गरण (= गीला
या पनोला करना)] (ईश्वर रस) जो जल मिलाकर
पतला न किया गया हो । खालिस । जैसे, निगरा रस ।

निगरा—संज्ञा स्त्री० [सं०] ५५ मोतियों की लड़ी जो तोल में
३२ रसी हो ।

निगरा—वि० [हि० निगुरा] दे० 'निगुरा' । वेदहारा उ०—अरे
हूँ ते पलटू निगरा मिगरा आदि कहो कोई रोगी भोगी ।—
पलटू, पृ० ७६ ।

निगराना—वि० सं० [सं० नव + करण] १. निर्युय करना ।
निबटाना । २. छटिकर अलग अलग करना । पुष्क करना ।
३. स्पष्ट करना । उ०—अग्नि पवन रज पानि के, भाँति
भाँति ओहार । प्रःपु रहा सब माँहि मिलि, को निगरावे
पार ।—विभावलो. पृ० १ ।

निगराना—वि० सं० १. अलग होना । २. स्पष्ट होना ।

निगरानो—संज्ञा स्त्री० [सं०] देखरेख । निरीक्षण ।

क्रि० प्र०—करना ।—रखना ।—में रहना ।

निगरु—वि० [सं० नि + गुह] हलका । जो भारी या बजनी
न हो । उ०—निगरु देखो भए गिरिगण जलधि में उयीं
पात ।—केशव (शब्द०) ।

निगल, निगलन—संज्ञा पु० [सं०] दे० 'निगरण' [को०] ।

निगलना—क्रि० सं० [सं० निगरण, निगडन] १. लोल जाना ।
बसे के नीचे उतार देना । चोट जाना । गटक जाना । २. खा

जाना । ३. रूपया या धन पचा जाना । हमारे का धन या कोई वस्तु मार बैठना ।

संयो० क्रि०—जाना ।

निगाह—संज्ञा स्त्री० [का०] निगाह । दृष्टि । नजर ।

यो०—निगहवाँ = निगहवान । उ०—बख्त राफचारी निगहवाँ किया । मकी मुक्ति के चार दर बाँ किया । कसोर में, पृ० १३७ ।

निगहवान—संज्ञा पुं० [का०] रक्षक । उ०—हमारे निगहवान हैं यदि सूरज, मगर हम न समझ कि क्यों ज्योति द्याया ।—हंम, पृ० ४६ ।

निगहवानी—संज्ञा स्त्री० [का०] रक्षा । देखरेख । रखवानी । चौकसी ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

निगाह—वि० [सं० निगाह] कथन । भाषण ।

निगादी—वि० [सं० निगादिन्] यक्ता ।

निगार^१—संज्ञा पुं० [सं०] भक्षण ।

निगार^२—संज्ञा पुं० [का०] १. चित्र । वनपूजा । नरकाशी ।

यो०—नक्षत्र निगार ।

२. एक फारसी राय (मुकाम) ।

निगारक—वि० [सं०] भक्षण । निगारनेवाला [क्रि०] ।

निगाल—संज्ञा पुं० [हि०] १. एक प्रकार का पहाड़ी बौम जो हिमालय में पैदा होता है । इसे रियाज भी कहते हैं । २. थोड़े की गरदन । ३. जंजीर । माकल (को०) ।

निगालक—वि० [सं०] निगारनेवाला । भक्षण करनेवाला [क्रि०] ।

निगालवान्—संज्ञा पुं० [सं० निगालवत्] धारक । बोझा (को०) ।

निगालिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] आठ घरों की एक वर्णवृत्ति जिसके प्रत्येक घर में जगण रगण और लघु गुरु होते हैं । इसे 'पमाणिता' और 'नागवल्गिणी' भी कहते हैं । जैसे, — प्रभात भो, सुहात भो । हुली छलो, जंग बली । तिही घरी उठे हरी । न देर, कलू करी ।

निगाली—संज्ञा स्त्री० [हि० निगाल] १. निगाल । बौम की बनी हुई बनी । २. हुम्के की नली जिसे मुँह में रखकर धुपौ खींचते हैं ।

निगाह—संज्ञा स्त्री० [का०] । दृष्टि । नजर ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

२. देखने की क्रिया या दृग । चितवन । लफाई ।

मुहा०—१० 'दृष्टि', 'नजर' और 'धनि' ।

३. कुपादृष्टि । मेहरबानी ।

क्रि० प्र०—करना ।—रखना ।

४. ध्यान । विचार । समझ । ५. निरीक्षण । देखरेख । ६. परख । पहचान ।

क्रि० प्र०—होना ।

निगिभ(उ)—वि० [सं० निगुभ] अत्यंत गोपनीय । जिसका बहुत लोभ हो । बहुत धारी । उ०—निगिभ वस्तु जो होय तिहारी । सोइ सबति मम होय सुधारी ।—रघुराज (शब्द०) ।

निगोर्ण—वि० [सं०] १. निगला हुआ । २. अंतर्भुक्त । समा-विष्ट (को०) ।

निगुंफ—संज्ञा पुं० [सं० निगुम्फ] १. समूह । गुच्छा । २. अत्यंत गुंफन या गुंथाई । घनी गुंथाई (को०) ।

निगु^१—वि० [सं०] प्रसन्न करनेवाला । मनोहारी (को०) ।

निगु^२—संज्ञा पुं० [सं०] १. मन । २. मल । ३. मूल । जड़ । ४. चित्र । चित्रण (को०) ।

निगुण(पु)—वि० [सं० निगुण] ३० 'निगुण' ।

निगुणा(पु)—वि० [सं० निगुण] १. कृतघ्न । नीच । सहसान करा-मोक्ष । उ०—(क) निगुणा गुण माने नहीं, कोटि करे जो कोई । दादू मब कुछ सोपिए, सो फिर बैरी होइ ।—संतवाणी०, पृ० ८८ । (ल) सगुण गुण केते करे, निगुणा न माने नीच । दादू माधु सब कहैं, निगुणा के सिर मीच ।—दादू०, पृ० ४४२ ।

निगुन, निगुना(पु)—वि० [सं० निगुण, हि० निगुणा] ३० 'निगुण' 'निगुणा' ।

निगुनी(पु)—वि० [हि० उप० नि + गुनी] जो गुणी न हो । गुण रहित । उ०—गुनी गुनी सब कोई कहत निगुनी गुनी न होत । मुन्यो कहैं तब अर्थ ते भक्त समान उद्योत ।—बिहारी (शब्द०) ।

निगुरा—वि० [हि० उप० नि + गुरु] जिसने गुरु न किया हो । जिसने गुरु से मंत्र न लिया हो । अदीक्षित । उ०—गुरुमुख होवे सो भरि पीवे, निगुरा नहीं जल पावता है ।—पलटू०, पृ० ३६ ।

निगूढ़^१—वि० [सं० निगूढ] अत्यंत गुप्त । उ०—माया विबध भय मुनि भूझा । समुक्त नहीं हरि विरा निगूढ़ा ।—तुलसी (शब्द०) ।

निगूढ़^२—संज्ञा पुं० वनमुग्ध । मोठ ।

निगूढ़ार्थ—वि० [सं०] जिसका अर्थ छिपा हो ।

विशेष—न्यायसभा में उपस्थित दोनों पक्षवालों के जो उत्तर उत्तराभास (जो उत्तर ठीक न हो) कहे गए हैं उनमें निगूढ़ार्थ भी है । जैसे, यदि प्रतिपक्षी से पूछा जाय कि क्या सो करने तुम्हारे ऊपर आते हैं और वह उत्तर दे कि 'क्या मेरे ऊपर उसके रुपये आते हैं' । इस उत्तर से यह ज्ञान निकलती है कि दूसरे किसी के ऊपर आते हैं ।

निगूना(पु)—वि० [सं० निगुण] ३० 'निगुण' । उ०—मेरे सोई जो होइ निगुना । पोर न जाने धिरह बिहूना ।—बायसा (शब्द०) ।

निगूहन—संज्ञा पुं० [सं०] गोपन । छिपाव ।

निगूहीत—वि० [सं०] १. घरा हुआ । पकड़ा हुआ । घेरा हुआ । २. आक्रामित । आक्रांत । जिसपर आक्रमण किया गया हो । ३. पीड़ित । ४. दंडित । ५. वशीभूत (को०) । ६. पराजित वाद में परास्त (को०) ।

निगूहीति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. बाधा । रोक । २. पराभव । वश में करना (को०) ।

निगोष्ठि—संज्ञा पु० [भं०] १. वह प्लेट या फिल्म जिसपर फोटो लिया जाता है और जिसपर प्रकाश और छाया की छाप उलटी पड़ती है, अर्थात् जहाँ खुलता और सफेद होना चाहिए काळा और गहरा होता है और जहाँ गहरा और काळा होना चाहिए वहाँ खुलता और सफेद होता है। कागज पर (पाजिटिब) सीधा छाप लेने से फिर पदार्थों का चित्र यथातथ्य उतर आता है।

निगोड़ा—वि० [हि० निगुरा, देश०] [जी० निगोड़ी] १. जिसके ऊपर कोई बड़ा न हो। २. जिसके आगे पीछे कोई न हो। जिसके प्राणों न हों। अभागा। ३. अभागा या अपल वा दुष्ट के लिये कभी कभी स्नेह या दुलार के साथ प्रयुक्त पद।

यौ०—निगोड़ा नाठा = जिसके आगे पीछे कोई न हो। बिना प्राणों का। लाचारिस।

३. दुष्ट। बुरा। नीच। कमीना। (गाली स्त्रि०)। उ०—जानवर क्या निगोड़ा मिट्टी का गूहा है। —फिसाना०, भा० ३, पृ० ४।

निगोड़िन—वि० जी० [हि० निगुरा] दे० 'निगोड़ा'। उ०—हमारी ननद निगोड़िन आगे। —कबीर ज०, भा० १, पृ० ६७।

निगोराड़—वि० [हि०] दे० 'निगोड़ा'।

निग्रह—संज्ञा पु० [सं०] १. रोक। अवरोध। २. दमन। ३. बिकरसा। रोकने का उपाय। ४. दंड। ५. पीड़न। सत्ता। ६. बंधन। ७. भस्मन। ८. डाँट। फटकार। ९. सीमा। हृद। १०. विष्णु। ११. शिव। १२. चित्तवृत्ति का निरोध (कौ०)। १३. अतिलंबन (कौ०)। १४. दे० 'निग्रहस्थान' (कौ०)।

निग्रहण—संज्ञा पु० [सं०] १. रोकने का कार्य। धामने का कार्य। २. दंड देने का कार्य। ३. बंधन। बाधना (कौ०)। ४. पराजय पराभव। हार (कौ०)।

निग्रहना(५)—क्रि० सं० [सं० निग्रहण] १. पकड़ना। धामना। उ०—कंस केण निग्रहों भूमि को भार उतारों। —सूर (शब्द०)। २. रोकना। ३. दंड देना।

निग्रहस्थान—संज्ञा पु० [सं०] वादविवाद या शास्त्रार्थ में वह अवसर जहाँ दो शास्त्रार्थ करनेवालों में से कोई उलटी पलटी या नासमझी की बात कहने लगे और उसे चुप करके शास्त्रार्थ बंद कर देना पड़े। यह पराजय का स्थान है।

विशेष—न्याय में जहाँ विप्रतिपत्ति (उलटा पुलटा ज्ञान) या अप्रतिपत्ति (अज्ञान) किसी ओर से हो वहाँ निग्रहस्थान होता है। जैसे, वादी कहे—आग गरम नहीं होती। प्रतिवादी कहे कि 'स्पर्श द्वारा गरम होना प्रमाणित होता है'। इसपर वादी यदि बगल झुकन लगे और कहे कि मैं यह नहीं कहता कि आग गरम नहीं होती, इत्यादि तो उसे चुप कर देना चाहिए या मुँस कहकर निकाल देना चाहिए। निग्रहस्थान २२ कहे गए हैं—प्रतिज्ञाहानि, प्रतिज्ञांतर, प्रतिज्ञा-विरोध, प्रतिज्ञासंन्यास, हेतुंतर, अर्थांतर, निरर्थक, अविज्ञा-तार्थ, अपार्थक, अप्राप्तकाल, न्यून, अधिक, पुनरुक्त, अननु-भाषण, अज्ञान, अप्रतिभा, विक्षेप, यतानुज्ञा, पर्यनुयोज्यो-पेक्षण, निरनुयोज्यानुयोग, अपसिद्धांत और हेत्वानाश।

(१) प्रतिज्ञाहानि वही होती है जहाँ कोई प्रतिद्वंद्वी के धर्म को अपने दृष्टांत में मानकर अपनी प्रतिज्ञा को छोड़ता है। जैसे, एक कहता है—शब्द अनित्य है। क्योंकि वह इंद्रियविषय है। जो कुछ इंद्रियविषय हो वह धर की तरह अनित्य है। शब्द इंद्रियविषय है। अतः शब्द अनित्य है।

दूसरा कहता है—जाति (जैसे घटत्व) इंद्रियविषय होने पर भी नित्य है इसी प्रकार शब्द हो क्यों नहीं।

इसपर पहला कहता है—जो कुछ इंद्रियविषय हो वह घट की तरह नित्य है। उसके दृग् कथन से प्रतिज्ञा की हानि हुई।

(२) प्रतिज्ञांतर वही होता है जहाँ प्रतिज्ञा का विरोध होने पर कोई अपने दृष्टांत और प्रतिद्वंद्वी में विकल से एक और नए धर्म का आरोप करता है। जैसे, एक प्रादमी कहता है—शब्द अनित्य है, क्योंकि वह घट के समान इंद्रियों का विषय है।

दूसरा कहता है—शब्द नित्य है, क्योंकि वह जाति के समान इंद्रियविषय है।

इसपर पहला कहता है कि पात्र और जाति दोनों इंद्रियविषय हैं। पर जाति सर्वगत है और घट सर्वगत नहीं। अतः शब्द सर्वगत न होने से घट के समान अनित्य है। यहाँ शब्द अनित्य है, यह पहली प्रतिज्ञा थी; शब्द सर्वगत नहीं, यह दूसरी प्रतिज्ञा हुई। एक प्रतिज्ञा की साधक दूसरी प्रतिज्ञा नहीं हो सकती, प्रतिज्ञा के साधक हेतु और दृष्टांत होते हैं।

(३) जहाँ प्रतिज्ञा और हेतु का विरोध हो वहाँ प्रतिज्ञाविरोध होता है; जैसे, किसी ने कहा—द्रव्य गुण से भिन्न है (प्रतिज्ञा), क्योंकि उसकी उपलब्धि क्वादिक से भिन्न नहीं होती। यही प्रतिज्ञा और हेतु में विरोध है क्योंकि यदि द्रव्य गुण से भिन्न है तो वह रूप से भी भिन्न हुआ।

(४) जहाँ पक्ष का निषेध होनेपर माना हुआ अर्थ छोड़ दिया जाय वहाँ प्रतिज्ञा संन्यास होता है। जैसे, किसी ने कहा—'इंद्रियविषय होने से शब्द अनित्य है'। दूसरा कहता है जाति इंद्रियविषय है, पर अनित्य नहीं। इसी प्रकार शब्द भी समझिए। इस प्रकार पक्ष का निषेध होने पर यदि पहला कहने लगे कि कौन कहता है कि 'शब्द अनित्य है' तो उसका यह कथन प्रतिज्ञासंन्यास नामक निग्रहस्थान के अंतर्गत हुआ।

(५) जहाँ प्रविशेष रूप से कहे हुए हेतु का निषेध होने पर उसमें विशेषत्व दिखाने की चेष्टा की जाती है वहाँ हेतुंतर नाम का निग्रहस्थान होता है। जैसे, किसी ने कहा—'शब्द अनित्य है' क्योंकि वह इंद्रियविषय है। दूसरा कहता है कि इंद्रियविषय होने से ही शब्द अनित्य नहीं कहा जा सकता क्योंकि जाति (जैसे घटत्व) भी तो इंद्रियविषय है पर वह अनित्य नहीं। इसपर पहला कहता है कि इंद्रियविषय होना जो हेतु मैंने दिया है, उसे इस प्रकार का

निग्रहस्थान

इन्द्रियविषय समझना चाहिए जो जाति के अंतर्गत लाया जा सकता हो। जैसे, 'शब्द' जाति के अंतर्गत लाया जा सकता है (जैसे, शब्दत्व) पर जाति (जैसे घटत्व) फिर जाति के अंतर्गत नहीं लाई जा सकती। हेतु का यह टाखना हेतुवन्तर कहलाता है।

- (६) जहाँ प्रकृत विषय या अर्थ से संबंध रखनेवाला विषय उपस्थित किया जाता है वहाँ अर्थांतर होता है; जैसे, कोई कहे कि शब्द अनित्य है, क्योंकि वह अस्पृश्य है। विरोध होनेपर यदि वह इधर उधर की फूल बातें बकने लगे, जैसे हेतु शब्द 'हि' धातु से बना है, इत्यादि, तो उसे अर्थांतर नामक निग्रहस्थान में आया हुआ समझना चाहिए।
- (७) जहाँ वणों की बिना अर्थ की योजना की जाय वहाँ निरर्थक होता है। जैसे कोई कहे क ज व नित्य है ज व ग ड से।
- (८) जब पक्ष का विरोध होने पर अपने बचाव के लिये कोई ऐसे शब्दों का प्रयोग करने लगे जो अर्थप्रसिद्ध न होने के कारण अन्वय समझ में न आए अथवा बहुत जल्दी और अस्पष्ट स्वर में बोलने लगे तब अविज्ञातार्थ नामक निग्रहस्थान होता है।
- (९) जहाँ अनेक पक्षों या वाक्यों का पूर्वापर क्रम से अन्वय न हो, पक्ष और वाक्य असंबद्ध हों, वहाँ अपार्थक्य होता है।
- (१०) प्रतिज्ञाहेतु आदि अवयव क्रम से न कहे जायें, पागे पीछे उलट पुलटकर कहे जायें वहाँ अप्राप्तकाल होता है।
- (११) प्रतिज्ञा आदि पाँच अवयवों में से जहाँ कथन में कोई अवयव कम हो वहाँ न्यून नामक निग्रहस्थान होता है।
- (१२) हेतु और उदाहरण जहाँ आवश्यकता से अधिक हो जायें वहाँ अधिक नामक निग्रहस्थान होता है क्योंकि जब एक हेतु और उदाहरण से अर्थ सिद्ध हो गया तब दूसरा हेतु और उदाहरण व्यर्थ है। पर यह बात पहले नियम के मान लेने पर है।
- (१३) जहाँ व्यर्थ पुनः कथन हो वहाँ पुनरुक्त होता है।
- (१४) झुप रह जाने की अनुमानावली कहते हैं। जहाँ वादी अपना अर्थ साफ साफ सीधे बार कहे और प्रतिवादी सुन कर समझकर भी कोई उत्तर न दे वहाँ अनुमानावली नामक निग्रहस्थान होता है।
- (१५) जिस बात को समझाव समझ गए हों उसी को तीन बार समझाने पर भी यदि प्रतिवादी न समझे तो अज्ञान नामक निग्रहस्थान होता है।
- (१६) जहाँपर पक्ष का संबन्ध अर्थात् उत्तर न देने वहाँ अप्रतिज्ञा नामक निग्रहस्थान होता है।
- (१७) जहाँ प्रतिवादी इस प्रकार टाल टूल कर दे कि 'मुझे इस समय काम है, फिर कहूँगा' वहाँ विलोप होता है।
- (१८) जहाँ प्रतिवादी के लिए हुए शेष को अपने पक्ष में अंगीकार करके वादी बिना उस दोष का उद्धार किए

प्रतिवादी से कहे कि 'तुम्हारे कथन में भी तो यह दोष है' वहाँ मतानुज्ञा नामक निग्रहस्थान होता है।

(१९) जहाँ निग्रहस्थान में प्राप्त हो जानेवाले का निग्रह न किया जाय वहाँ पर्यनुयोज्योपेक्षण होता है।

(२०) जो निग्रहस्थान में न प्राप्त होनेवाले को निग्रहस्थान में प्राप्त कहे उसे निरनुयोज्यानुयोष नामक निग्रहस्थान में गया समझना चाहिए।

(२१) जहाँ कोई एक सिद्धांत को मानकर विवाद के समय उसके विरुद्ध कहता है वहाँ अपसिद्धांत नामक निग्रहस्थान होता है।

(२२) दे० 'हेत्वाभास'।

निग्रही—वि० [सं० निग्रहिन्] १. रोकनेवाला। रोकनेवाला। २. दमन करनेवाला। दंड देनेवाला।

निग्राह—संज्ञा पु० [सं०] १. आक्रोश। शाप। २. दंड (को०)।

निग्राहक—संज्ञा पु० [सं०] वह मनुष्य जो अपराधियों को अनुचित तथा अन्याययुक्त दंड दे।

निग्रोध—संज्ञा पु० [सं०] १. राजा अशोक के एक भतीजे का नाम। २. दे० 'न्यग्रोध'। उ०—जटी, कपर्दी, रक्त फल, बहुपद, ध्रुव, निग्रोध। यह वंशीवट देखि बनि, सब सुख निरवधि रोष।—नंद० ग्रं०, पृ० १०६।

निघंटिका—संज्ञा स्त्री [सं० निघण्टिका] एक प्रकार का कवच। गुल्ब।

निघंटु—संज्ञा पु० [सं० निघण्टु] १. वैदिक शब्दों का संग्रह। वैदिक कोश।

विशेष—यास्क ने निघंटु की जो व्याख्या लिखी है वह निरुक्त के नाम से प्रसिद्ध है। यह निघंटु अत्यंत प्राचीन है क्योंकि यास्क के पहले भी शाकपूणि और स्थौलघोषी नामक इसके दो व्याख्याकार या निरुक्तकार हो चुके थे। महाभारत में कश्यप को निघंटु का कर्ता लिखा है।

२. शब्दसंग्रह मात्र। जैसे, वेदक का निघंटु।

निघं- वि० [सं०] जिसकी ओढ़ाई और ऊँचाई बराबर हो (को०)।

यो०—निघानिघ = विभिन्न रूपों तथा आकारों का।

निघं—संज्ञा पु० १. कंदुक। गेंद। २. पाप (को०)।

निघटना^१—क्रि० अ० [हि०] दे० 'घटना'। उ०—संवेदन क्यों निघटत दिन राति।—सूर (शब्द०)।

निघटना^२—क्रि० स० [हि० नि + घटना] मिटाना। नष्ट करना।

निघटना^३—क्रि० स० [हि० निघटना] दे० 'निघटना'। उ०—बलत पंच पंचनि धरम श्रुति करमनिघटना।—नटिराम (शब्द०)।

निघरघट—वि० [हि० नि (= नहीं) + घरघाट] १. जिसका कहीं घर घाट न हो। जिसे कहीं ठिकाना न हो। जो घूम फिरकर फिर वहीं आए जहाँ से दुतकारा या हटाया जाय। उ०—सोबत है यों ही घायु की भए निघट ही निघरघट।—इण० ग्रं०, पृ० १२५। २. निर्लज्ज। ठोठ। बेहशा। उ०—अचट घटाई भरघो निघट निघरघट, मो घट क्यों रावरी बढ़ाई नों निघरि है।—चनानंद, पृ० ५१।

मुहा०—निघरघट देना = सज्जित किए जाने पर झूठी बातें बनावी कि मैं यही था, मैं वही था। बेहयाई से झूठी सफाई देना। उ०—दूरे न निघरघटी दिए ये राबरी कुचाल। बिघ सी लागति है बुरी हँसी खिसी की लाल।—बिहारी (शब्द०)।

निघरघटपन—संज्ञा पुं० [हि०] निलंजिता। बेहयाई। उ०—काम में ला जुला निघरघटपन। नाम मरदानगी मिटाना है।—बोले०, पृ० २६।

निघरा—वि० [हि० नि + घर] जिसके घर बार न हो। निघोड़ा (गाली)। उ०—मेरी भई यह आनि दखा निघरे विधि सोहि घरे यह पीर न।—गुमान (शब्द०)।

निघर्य—संज्ञा पुं० [सं०] ३० 'निघर्यण' [को०]।

निघर्यण—संज्ञा पुं० [सं०] वर्षण। घिसना। रगड़ना।

निघस—संज्ञा पुं० [सं०] भोजन। खाद्य। आहार। [को०]।

निघा^५—संज्ञा स्त्री० [प्रा० निगाह] ३० 'निगाह'। उ०—सो पासाह की वनपर बोहोत निघा रहती।—दो सो बावन०, भा० १, पृ० १०६।

निघात—संज्ञा पुं० [सं०] १. आहतन। प्रहार। २. अनुशक्त स्वर।

निघाति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. लोहबंद। २. वह लोहे का खंड जिसपर हथोड़े प्रादि का आघात पड़े। निहाई।

निघाती—वि० [सं० निघातिन्] [वि० स्त्री० निघातिनी] १. मारनेवाला। प्रहार करनेवाला। २. बध करनेवाला।

निघुष्ट—संज्ञा पुं० [सं०] १. ध्वनि। शब्द। २. हस्ता गुरुता। खोरगुल [को०]।

निघुष्ट—वि० [सं०] १. घबित। रगड़ा हुआ। घर्षणयुक्त। २. मदित। परासूत [को०]।

निघुष्ट^१—संज्ञा पुं० [सं०] १. खुर। २. खुर का निधान। ३. वायु। हवा। ४. लच्छर या गदहा। ५. सूधर। ६. मार्ग। सड़क [को०]।

निघुष्ट^२—वि० १. निम्न। छोटा। तुच्छ। २. घबित। रगड़ा हुआ [को०]।

निघ्न^१—वि० [सं०] १. अधीन। आग्रस। बलीभूत। २. निभर। प्रबलंघित। ३. गुणित। गुणा किया हुआ।

निघ्न^२—संज्ञा पुं० १. सूर्यवंशीय राजा अनुरथ का पुत्र (हरिवंश)।

निघ्नत^५—वि० [सं० निघ्नन्त; प्रा० निघ्नित] ३० 'निघ्नित'। उ०—मोनण पंथी जाणि कह नव छंडिया निघ्नत।—ढोला०, पृ० १२९।

निघ्नत्र—संज्ञा पुं० [सं० निघ्नत्र] एक दानव का नाम।

निघ्नक—संज्ञा पुं० [सं०] हस्तिनापुर के एक राजा जो असीमकुण्ड के पुत्र थे। हस्तिनापुर को जब यंग बहा से गई तब इन्होंने कीर्वाही में राजधानी बसाई।

निघ्नमन—संज्ञा पुं० [सं०] थोड़ा थोड़ा पीना।

निचय—संज्ञा पुं० [सं०] १. समूह। २. निश्चय। ३. संघ।

निचल^५—वि० [सं० निचल] ३० 'निचल'।

निचला^१—वि० [हि० नीचे + ला (प्रत्य०)] [वि० स्त्री० निचली] नीचे का नीचेवाला। जैसे, निचला भाग।

निचला^२—वि० [सं० निचल] १. प्रचल। जो हिलता डोलता न हो। २. स्थिर। शांत। जो चंचल न हो। अचंचल।

क्रि० प्र०—रहना।—होना।

मुहा०—निचला बैठना = (१) स्थिर होकर बैठना। शांत भाव से बैठना। चंचलता न करना। (२) लिट्टनापूर्वक बैठना।

निचाई—संज्ञा स्त्री० [हि० नीचा + घाई (प्रत्य०)] १. नीचा होने का भाव। नीचापन। जैसे, ऊँचाई निचाई। २. नीचे की ओर दूरी या विस्तार। ३. नीच होने का भाव। नीचना। मोछापन। कमीनापन। उ०—(क) अले भलाई पै लहुहि लहुहि निचाई नीच।—गुलसी (शब्द०)। (ख) नीच निचाई नहि तजे जो पावैं सतसंग।—(शब्द०)।

निचान—संज्ञा स्त्री० [हि० नीचा + आन, यान (प्रत्य०)] १. नीचापन। २. डाल। डालुवापन। डलान।

निचित—वि० [सं० निश्चित] चितारहित। बेफिक्र। सुचित।

निचि—संज्ञा पुं० [सं०] कानों के सहित गाय का सिर।

निचिकी—संज्ञा स्त्री० [सं०] घच्छी बाय।

निचित—वि० [सं०] १. संचित। इकट्ठा। २. पूरित। व्याप्त। ३. तैयार। निमित्त। ४. संकीर्ण। ५. ठका हुआ (को०)। ६. पुंजीभूत। ढेर लगाया हुआ (को०)।

निधिता—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक नदी का नाम (महाभारत)।

निधिता^५—क्रि० वि० [सं० निश्चित] ३० 'निचित'। उ०—चेटक-चितहि लगाय निधोते हो अले। जुबती जन मय गंजन घातन ही पते।—चनानंद, पृ० १२२।

निचुड़ना—क्रि० प्र० [सं० उर० नि + च्चदन (= चुना)] १. रस से भरी या गीली चीज का इस प्रकार दबना कि रस या पानी टपककर निकल जाय। सबकर पानी या रस छोड़ना। गरना। जैसे, धोती निचुड़ना, नीबू निचुड़ना।

संयो० क्रि०—जाना।

२. भरे या समाए हुए जल आदि का दाब पाकर प्रलग होना या टपकना। छूटकर चुना। गरना। जैसे, गीली धोती का पानी निचुड़ना, नीबू का रस निचुड़ना। उ०—कहे देत रंग रात को रंग निचुरत से नैन।—बिहारी (शब्द०)।

संयो० क्रि०—जाना।

३. रस या सारहीन होना। ४. खरीर का रस या सार निकल जाने से दुबला होना। तेष और शक्ति से रहित होना।

संयो० क्रि०—उठना।—जाना।

निचुल—संज्ञा पुं० [सं०] १. बेंत। २. हिज्जल वृक्ष। ईंड़ का पेड़। ३. ३० 'निचोल' (को०)।

निचुलक—संज्ञा पुं० [सं०] १. ३० 'निचोल' २. बिरह वस्तर। कबच। उरलाण [को०]।

निचे^७—संज्ञा पुं० [सं० निचय] दे० 'निचय' ।

निचोड़—संज्ञा पुं० [हि० निचोड़ना] १. वह वस्तु जो निचोड़ने से निकले । निचोड़ने से निकला हुआ जल, रस आदि । २. सार वस्तु । सार । सत । ३. कथन का सारांश । मुख्य तात्पर्य । खुनामा । जैसे, सब बातों का निचोड़ ।

निचोड़ना—क्रि० सं० [हि० निचोड़ना] १. गोली या रसभरी वस्तु को दबाकर या ँठकर उसका पानी या रस निकालना । गारना । जैसे, गोली धोती निचोड़ना, नीबू निचोड़ना, धोती का पानी निचोड़ना, नीबू का रस निचोड़ना ।

संयो० क्रि०—डालना ।—देना ।—लेना ।

२. किसी वस्तु का सार भाग निकाल लेना । ३. सब कुछ ले लेना । सर्वस्व हारण कर लेना । निघन कर देना । जैसे,—उनके पास अब कुछ नहीं रह गया, लोगों ने उन्हें निचोड़ लिया ।

संयो० क्रि०—लेना ।

निचोना^७—क्रि० सं० [सं० नि + चयन] निचोड़ना । उ०—
(क) तृपावत गुरभरि बिहाय सठ फिरि फिरि बिकल
प्रकान निचोयो ।—तुलसी (शब्द०) । (स) मुसुकानि
भरी बलि बोलनि नैं श्रुति मोहि पिपुष निधोती रही ।
—द्विजदेव (शब्द०) ।

निचोर^७—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'निचोड़' ।

निचोर^७—संज्ञा पुं० [सं० निचोल] दे० 'निचोल' । उ०—ध्वजा
पताका कलस घर तोरन । मंगल रूप सुरुप निचोल ।—
ह० रासो, पृ० १६ ।

निचोरना^७—क्रि० सं० [हि०] दे० 'निचोड़ना' । उ०—शशि
घोर भानु निचोर, शोभा राली शीघ्र पर ।—कबीर सा०,
पृ० १०४ ।

निचोरनि^७—संज्ञा स्त्री [हि० निचोड़ना] निचोड़ने का कार्य । उ०—
रबिच निचोरनि वृषत नीर साँझ भे मबीर तनु । तब बिछुरन
की पीर चीर भँसुप्रन रोवन जनु ।—न० सं०, पृ० ३६ ।

निचोल—संज्ञा पुं० [सं०] १. धाच्छादन वस्त्र । ऊपर से शरीर
ढकने का कपड़ा । २. आहार । आच्छादन । ३. स्त्रियों की
घोड़नी । घूँघट का कपड़ा । ४. उत्तरीय वस्त्र । ५. धावरा ।
लहंगा । ६. वस्त्र । कपड़ा ।

निचोलक—संज्ञा पुं० [सं०] १. चोल । कपड़क । मंगा । २.
सप्राह । नक्त ।

निचोवना^७—क्रि० सं० [हि०] दे० 'निचोना' ।

निचोही—वि० [हि० नीचा + भीही (प्रत्यय) (< सं० घायाह)]
[वि० स्त्री० निचोही] नीचे की ओर किया हुआ या झुका
हुआ । नमित । उ० सखिन मध्य करि दीठि निचोही
राधा सकुप मरी ।—सूर (शब्द०)

निचोही—क्रि० वि० [हि० नीचोही] नीचे की ओर । उ०—बिछुरे
जिये मकोच यह मुख ते कहत नैन । दोऊ दौरि सगे हिए
किये निचोही नैन ।—बिहारी (शब्द०) ।

निच्छवि—संज्ञा स्त्री [सं०] तीरभुक्ति देश । तिरहुत ।

निच्छिवि—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का व्रात्य क्षत्रिय । सवर्णा
स्त्री से उत्पन्न व्रात्य क्षत्रिय को संतान (मनु०) ।

निच्छक्का^१—संज्ञा पुं० [सं० निस् + चक्र (= मंडली)] वह समय
या स्थान जिसमें कोई दूसरा न हो । निराला ।
एकांत । निर्जन ।

मुहा०—निच्छक्के में = एकांत में ।

निच्छक्का^१—वि० सिर्फ । निरा । मात्र ।

निच्छत्र^१—वि० [सं० निश्छत्र] १. जिसके सिर पर छत्र न हो ।
छत्रहीन । बिना छत्र का । २. बिना राजचिह्न का । ३.
बिना राज्य का ।

निच्छत्र^१—वि० [सं० निःछत्र] क्षत्रियों से हीन । बिना क्षत्रिय
का । क्षत्रियों से रहित । उ०—मारघो मुनि बिनही
अपराधहि कामधेनु ले आऊ । इकदस बार निछत्र तब कीन्ही
तहाँ न देखे हाऊ ।—सूर (शब्द०) ।

निच्छर्मा^१—संज्ञा पुं० [सं०] एकांत स्थान । निर्जन स्थान ।

निछनियौ^१—क्रि० वि० [हि० निछान] दे० 'निछान' । उ०—
यशुमति दौरि लये हरि कनियो । प्राजु गयो मेरो गाय
अरावन हों बलि गई निछनियौ ।—सूर (शब्द०) ।

निछरावल^७—संज्ञा स्त्री [हि० निछावर] दे० 'निछावर' ।
उ०—तन मन धन निछरावल करसौ अठसिधि नवनिधि
सारी ए ।—राम० वर्मा०, पृ० २५१ ।

निछल^७—वि० [सं० निश्छल] कपटरहित । छलहीन ।

निछला^१—वि० [?] बिना मिलावट का । बिलकुल । एकमात्र ।

निछाना^१—वि० [हि० उप० नि (= नहीं) + छान (= जो छानने
से निकले, अच्छी तरह छान कर निकाला हुआ)] १.
खालिस । बिगुल । जिसमें मेल न हो । बिना मिलावट का ।
२. बिलकुल । निछना । निखल । एक मात्र । केवल ।

निछान^१—क्रि० वि० एकदम । बिलकुल ।

निछावर—संज्ञा स्त्री [सं० न्यास + प्रावर्त्त = न्यासावर्त्त; मि० प्र०
निसार] १. एक उपचार या टोटका जिसमें किसी की रक्षा
के लिये कुछ द्रव्य या कोई वस्तु उसके सारे अंगों के ऊपर
से घुमाकर दान कर देते या डाल देते हैं । उत्सर्ग । वाराफेरा ।
उतारा । बखेर ।

विशेष—इसका अभिप्राय यह होता है कि जो देवता शरीर को
कष्ट देनेवाले हों वे शरीर और अंगों के बदले में द्रव्य
पाकर संतुष्ट हो जाय ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

मुहा०—निछावर करना = उत्सर्ग करना । छोड़ देना । त्यागना ।
दे डालना । निछावर होना = दे दिया जाना । त्याग दिया
जाना । (किसी का) किसी पर निछावर होना = किसी
के लिये मर जाना । किसी के लिये प्राण त्यागना ।

२. वह द्रव्य या वस्तु जो ऊपर घुमाकर दान की जाय या
छोड़ दी जाय । ३. दान । नेम ।

निष्ठावरि—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'निष्ठावर' । उ०—(क) करहि निष्ठावरि धारति महा मुदित मन सासुरि ।—मानस, १ । ३३५ । (ख) सभा समेत राउ अनुरागे । दूतन्ह देन निष्ठावरि लागे ।—मानस, १ । २६३ ।

निष्ठोह—वि० [हि० नि + छोह] १. जिसे छोह या प्रेम न हो । २. निर्दय । निष्ठुर ।

निष्ठोही—वि० [हि० नि + छोह] १. जिसे प्रेम या छोह न हो । २. निर्दय । निष्ठुर । उ०—कहु ते ऐसे निष्ठोही बोगी । जीउ लेह कीन्हैस हो रोगी ।—चित्रा०, पृ० १३१ ।

निज—वि० [सं०] १. अपना । स्वीय । स्वकीय । पराया नहीं । विशेष—प्राञ्जल इस शब्द का प्रयोग प्रायः 'का' विभक्ति के साथ होता है, जैसे, निज का काम । कर्म की विभक्ति भी इसके साथ लगती है; जैसे, निज को, निजहि । कविता में और विभक्तियाँ भी दिखाई देती हैं पर कम ।

मुहा०—निज का = सास अपना । अपने शरीर, जन या कुटुंब से संबंध रखनेवाला ।

२. सास । मुख्य । प्रधान । उ०—(क) परम चतुर निज दास श्याम के सतत निकट रहत हो । जल बूझत भस्मन फेन को फिरि फिरि कहा गहत हो ।—सूर (शब्द०) (ख) कह माखसुत सुनहु प्रभु ससि तुम्हार निज दास ।—तुलसी (शब्द०) । १. ठीक । सही । वास्तविक । सच्चा । यथार्थ । उ०—(क) अब बिनती मम सुनहु निज जो मोपर निज नेह ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) मन मेरो मानै सिख मेरी । जो निज भक्ति जहै हरि केरी ।—तुलसी (शब्द०) ।

निज—अव्य० १. निश्चय । ठीक ठीक । सही सही । सटीक ।

मुहा०—निज करके = बीस बिस्वे । निश्चय । यथार्थ । जरूर । २. सासकर । विशेष करके । मुख्यतः उ०—देखु विचारि सार का साँची, कहा निगम निज गायो ।—तुलसी (शब्द०) ।

निजकाना—क्रि० प्र० [फ्रा० नजदीक] निकट पहुँचना । समीप आना । उ०—थाने थाने हनुमान बंगद साने रहो, जाने निजकाने दिन रावण मरण के ।—हनुमान (शब्द०) ।

निजकारी—संज्ञा स्त्री० [हि० निज + कर] १. बंटाई की फसल । वह जमीन जिसके लगान में उससे उत्पन्न वस्तु हो ली जाय ।

निजघास—संज्ञा पुं० [सं०] पावती के क्रोध से उत्पन्न गर्शों में से एक ।

निजन(पु)—वि० [सं० निर्जन, प्रा० शिज्जन; हि० नि + जन] एकांत । सन्नाटा । सुनसाव । निर्जन ।

निजा—संज्ञा पुं० [प्र० निजाय] भगड़ा । विवाद ।

निजाई—वि० [प्र० निजाय] विवादग्रस्त । झगड़ातलब ।

निजात—संज्ञा स्त्री० [प्र० नजात] १. बंधनमुक्ति । छुटकारा । मार-मुक्ति । उ०—बंधियारा पूरी तरह निगल लेगा तुमको, तब सारे बंधन से निजात मिल जायगी ।—ठंडा०, पृ० १५ । २. ई० 'नजात'-१ ।

निजाम—संज्ञा पुं० [प्र० निजाम] १. बशबस्त । इंतजाम । २. क्रम । सिलसिला । तरतीब (को०) । ३. शैली । तर्ज । पद्धति । ४. हैदराबाद के नव्वाबों का पदवीसूचक नाम ।

निजामत—संज्ञा पुं० [प्र०] १. नाजिम का पद या कार्य । २. वह कार्यालय जिसमें नाजिम और उसके सहायक कर्मचारी रहते हैं ।

निजारी—वि० [फ्रा० नजार] क्षीण । दुर्बल । कमजोर । उ०—गया था सूँ ज्यों खाल उजार । फियाँ रक्ष हो सब आफरानी निजार ।—दक्खिनी०, पृ० १४४ ।

निजि—वि० [सं०] शुद्ध । जो शुद्धि के सहित हो ।

निजो—वि० [सं० निज] दे० 'निज' ।

निजु—वि० [सं० निज] दे० 'निज' । उ०—(क) निति पुछी सब जोगी जंगम । कोइ निजु बात न कहे बिहगम ।—जायसी शं० (गुप्त) ।—पृ० ३६४ । (ख) निजु ये अधिकारी सब सुलकारी सबही विधि संतोषी ।—राम चं०, पृ० ४२ ।

निजू—वि० [हि० निज] निज का । सास अपना ।

निजोर(पु)—वि० [हि० उप० नि + फ्रा० जोर] निर्बल ।

निम्नक(पु)—वि० [हि० नि + ऊनक] ध्वनिरहित । नीरव । निर्जन ।

निम्हरना—क्रि० प्र० [हि० उप० नि + ऋना] १. अच्छी तरह झड़ जाना । लगा या धँटका न रहना । जैसे, पेड़ से फलों का निम्हरना ।

संयो० क्रि०—जाना ।

२. लगी हुई वस्तु के झड़ जाने से खाली हो जाना । जैसे, पेड़ से निम्हरना । ३. सार वस्तु से रहित हो जाना । खुल हो जाना । ४. हाथ झाड़कर निकल जाना । बौध से मुक्त बनना । अपने को निर्दोष प्रमाणित करना । सफाई देना । उ०—सबा चतुरई फबती नाहीं अतिही निम्हरि रही हो । सूर 'श्याम धी कहा रहत है' यह कहि कहि जो तही हो ।—सूर (शब्द०) ।

निम्हातना—क्रि० प्र० [हि०] दे० 'निम्होतना' ।

निम्हाना—क्रि० प्र० [देश०] १. ताक झींक करना । झींक झूँक करना । झाड़ में छिपकर देखना । २. समाप्त या रिक्त हो जाना । ऋकर खत्म होना । ३. जलती हुई घग्नि का बुझना या बुझ सा जाना ।

निम्हाना—क्रि० स० घाग बुझाना ।

निम्होतना—क्रि० स० [हि० उप० नि + ऋपटना] झींककर खीनना । ऋपटना ।

निम्होल—संज्ञा पुं० [हि० उप० नि + ऋल] हाथी का एक नाम ।

निटरी—वि० [देश०] जिसमें कुछ दम न हो । जिसका जोर मर गया हो । मरा हुआ । जो उपजाऊ न रह गया हो । (खेत या जमीन के लिये) ।

निटक, निटिल—संज्ञा पुं० [सं०] कपाल । मस्तक ।

निटलाह, निटिलाह—संज्ञा पुं० [सं०] शिव । महादेव । शंभु (को०) ।

निटलेचण, निटिलेचण—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'निटलाह' ।

निटोल—संज्ञा पुं० [हि० उप० नि + टोला] टोला । मुहल्हा ।

पुरा। बस्ती। उ०—प्रब न कीनी चूक करिई यह हमारे
बोम। किकरिनि की लाज खरि नव सुवष करो निटोल।
—मूर (शब्द०)।

निधि०—क्रि० वि० [२२०] ३० 'नीडि'।

निठरना—वि० [हि० उप० नि (= नहीं) + ठाला] १. जिसके
पास कोई काम धंधा न हो। खाली। २. बेरोजगार। बेकार।
३. जो कोई काम धंधा न करे। निकम्मा। निठलू। ठलुमा।

निठलू—वि० [हि०] ३० 'निठरना-३'।

निठासा—संज्ञा पु० [हि० उप० नि + टहल (= काम)] १.
ऐसा समय जब कोई काम धंधा न हो। खाली वक्त। २. वह
समय जिसमें हाथ में कोई काम धंधा या रोजगार न हो। वह
वक्त या हालत जिसमें कुछ धामधनी न हो। जीविका का
अभाव। जैसे,—ऐसे निठाले में तुम भी माँगने आए।

निठुर—वि० [सं० निठुर] कठोरहृदय। जिसे दूसरे की बीड़ा का
अनुभव न हो। जो पराया कष्ट न समझे। निर्दय। क्रूर।
उ०—महिहि निठुर कठोर उर मोरा।—मानस, ६। १०।

निठुरई०—स्त्री० [हि० निठुर + ई (प्रत्य०)] ३० 'निठुराई'।

निठुरता०—संज्ञा स्त्री० [सं० निठुरता] निर्दयता। क्रूरता।
हृदय की कठोरता।

निठुराई—संज्ञा स्त्री० [हि० निठुर + आई (प्रत्य०)] निर्दयता। हृदय
की कठोरता। क्रूरता। उ०—सब प्रसंगु रघुपतिहि तुनाई।
बैठि मनहु तनु बारि निठुराई।—मानस, २। ४१।

निठुराई—संज्ञा पु० [हि० निठुर + आइ (प्रत्य०)] निठुराई।
निर्दयता।

निठौर—संज्ञा पु० [हि० नि + ठौर] १. बुरी जगह। कुठार। २. बुरा
बाँव। बुरी वधा। ३. बिना स्थान का व्यक्ति। बेसहारा।

मुहा०—निठौर पड़ना = कुबान में पड़ना। बुरी वधा में पड़ना।
बेसहारा होना। उ०—बहुरि बन बोलन लागे मोर। जिनको
पिय परदेस सिधारो सो तिय परो निठौर।—मूर (शब्द०)।

निठर—वि० [हि० उप० नि + ठर] १. जिसे ठर न हो। जो न
करे। निशंक। निर्भय। २. साहसो। हिम्मतवाला। ३.
ढोठ। घृष्ट।

निठरपन—संज्ञा पु० [हि० निठर + पन प्रत्य०] निठर होने का
भाव। निर्भीकता। निर्भयता।

निठरपना—संज्ञा पु० [हि०] ३० 'निठरपन'।

निडा०—अव्य० [सं० निकट, प्रा० निदङ्, हि० नियर] निकट।
नजदीक। पास। उ०—कान निडा पन दुर रहा, मुहड़ा बाजों
बीजो हाथ।—बी० रासो, पृ० ५१।

निडोन—संज्ञा पु० [सं०] पत्नी या यात्र का धीरे धीरे ऊपर से नीचे
जाना [को०]।

निङ्गे, निङ्गे—अव्य० [सं० निकट] ३० 'निडा'।

निडाल—वि० [हि० उप० नि + डाल (= गिरा हुआ)] १. गिरा
हुआ। पस्त। क्षिप्त। थका मीटा। अशक्त। सुस्त।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

मुहा०—जो निडाल होना = जी डूबना। मूर्च्छा आना। बेहोशी
जाना।

२. सुस्त। मरा हुआ। उस्ताहूहीन।

निडालपन—संज्ञा पु० [हि०] सुस्ती। आलस्य। उ०—परंतु यहाँ
अनुभव होता है एक निडालपन, सुबह शाम दिसंबर का सा
जाड़ा खगता है।—बो दुनिया, पृ० ११।

निडिख०—वि० [हि० नि + डोला] १. जो डोला न हो। कसा
या तना हुआ। २. कड़ा। उ०—गाढ़े गाढ़े कुछ निडिख
पिय हिय को ठहराय। उकसीहे ही तो हिये सबे दई उसकाय।
—बिहारी (शब्द०)।

नितंत—क्रि० वि० [सं० नितान्त] ३० 'नितान्त'।

नितंब—संज्ञा पु० [सं० नितम्ब] १. कटि का पश्चादभाग। कमर का
पिछला उभरा हुआ भाग। चूतड़। (विशेषतः स्त्रियों का)।
२. स्कंध। कंधा। ३. तीर। सट। ४. पर्वत का ढालुप्रां
किनारा। ५. कटि। कमर (को०)।

नितंबिनी^१—वि० स्त्री० [सं० नितम्बिनी] सुंदर नितंबवाली।

नितंबिनी^२—संज्ञा स्त्री० सुंदर नितंबवाली स्त्री। सुंदरी।

नित—अव्य० [सं०] १. प्रतिदिन। रोज। जैसे,—बहु यहाँ नित
जाता है।

बी०—नित नित = प्रतिदिन। रोज रोज। नित नया = सब
दिन नया रहनेवाला। कभी पुराना न पड़नेवाला। सदा ताजा
रहनेवाला।

२. सदा। सर्वथा। हमेशा।

नितराम्—अव्य० [सं०] १. सदा। हमेशा। सर्वथा। २. अत्यंत।
अधिक। बहुत अधिक (को०)। ३. पूर्णतः। पूरी तरह (को०)।
४. एकदम। नितान्त (को०)।

नितल—संज्ञा पु० [सं०] सात पातालों में से एक।

नितान्त—वि० [सं० नितान्त] १. अतिशय। बहुत अधिक। २.
बिल्कुल। सर्वथा। एकदम। निरा। निपट।

निसि०—अव्य० [सं० नित्य] ३० 'नित'। उ०—नीति चंदन लागे
जेहि देहा। सो तन देखु भरव सब देहा।—जायसी श्रं०
(बुन), पृ० १२६।

नित्ता०—वि० [सं० नित्य] ३० 'नित्य'। उ०—नित रास रस
मत्त नित गोपीजन बल्लभ। नित नियम यों कहत नित
जब तन अति दुर्लभ।—नंद० श्रं०, पृ० ३७।

नित्ति, नित्तु०—अव्य० [सं० नित्य] हमेशा। उ०—(क)
जिहि जाहु जाहु बस बुझि हूँ कहो निरि वरान सुमुख।—
ह० रासो, पृ० ६४। (ख) जेहि घर कंठा रिनु जली,
पाउ बसंता नित्तु।—जायसी श्रं०, पृ० १४८।

नित्य^१—वि० [सं०] १. जो सब दिन रहे। जिसका कभी नाश
न हो। शाश्वत। अविनाशी। बिकालव्यापी। उत्पत्ति प्रीर
बिनाकारहित। जैसे,—ईश्वर नित्य है।

विशेष—ध्याय मत से परमाणु नित्य है। सांख्य मत से पुरुष

धीर प्रकृति दोनों नित्य हैं। वेदांत इन सबका खंडन करके केवल ब्रह्म को नित्य कहता है।

२. प्रतिदिन का। रोज का। जैसे, नित्यकर्म।

नित्य^२—अव्य० १. प्रतिदिन। रोज रोज। जैसे,—वह नित्य यहाँ आता है। २. सदा। सर्वदा। अनवरत। हमेशा।

नित्य^३—संज्ञा पुं० [सं०] सागर। समुद्र (को०)।

नित्यकर्म—संज्ञा पुं० [सं० नित्यकर्मन्] १. प्रतिदिन का काम। रोज का काम। २. वह धर्म संबंधी कर्म जिसका प्रतिदिन करना आवश्यक ठहराया गया हो। नित्य की क्रिया। जैसे, संध्या, अग्निहोत्र आदि।

विशेष—मीमांसा में प्रधान या अर्थ कर्म तीन प्रकार के कहे गए हैं—नित्य, नैमित्तिक और काम्य। नित्यकर्म वह है जिसका प्रतिदिन करना कर्तव्य हो और जिसे न करने से पाप होता हो। ३० 'कर्म'।

नित्यकृत्य—संज्ञा पुं० [सं०] ३० 'नित्यकर्म'।

नित्यक्रिया—संज्ञा स्त्री० [सं०] नित्यकर्म। जैसे, खोज, स्नान, संध्या आदि।

नित्यगति—संज्ञा पुं० [सं०] वायु। हवा।

नित्यजात—वि० [सं०] नित्य पैदा होनेवाला।

नित्यता—संज्ञा स्त्री० [सं०] नित्य होने का भाव। अनवरता।

नित्यत्व—संज्ञा पुं० [सं०] नित्यता।

नित्यदा—अव्य० [सं०] सर्वदा। हमेशा।

नित्यदान—संज्ञा पुं० [सं०] प्रतिदिन दान करना। नित्य दान देने की क्रिया (को०)।

नित्यनर्त—संज्ञा पुं० [सं०] महादेव।

नित्यनियम—संज्ञा पुं० [सं०] प्रतिदिन का बंधा हुआ व्यापार। रोज का कायदा।

नित्यनैमित्तिककर्म—संज्ञा पुं० [सं०] पर्वश्राद्ध, प्रायश्चित्त आदि कर्म।

विशेष—पर्वश्राद्ध, प्रायश्चित्त आदि अवश्य कर्तव्य हैं और किसी नैमित्तिक (जैसे पापक्षय) से भी किए जाते हैं। इससे नित्य और नैमित्तिक दोनों हुए।

नित्यप्रति—अव्य० [सं०] प्रतिदिन। हर रोज।

नित्यप्रमुदित—वि० [सं०] हमेशा आनंदित रहनेवाला (को०)।

नित्यप्रलय—संज्ञा पुं० [सं०] नित्य होनेवाला प्रलय।

विशेष—वेदांत परिभाषा में चार प्रकार के प्रलय कहे गए हैं—नित्य, प्राकृत, नैमित्तिक और आत्यंतिक। इनमें से सुषुप्ति को नित्यप्रलय कहते हैं। जिस प्रकार प्रलयकाल में किसी कार्य का बोध नहीं होता उसी प्रकार इस सुषुप्ति की अवस्था में भी नहीं होता। यह अवस्था प्रतिदिन होती है।

नित्यबुद्धि—संज्ञा स्त्री० [सं०] किसी पदार्थ को आवश्यक या नित्य समझना (को०)।

नित्यभाव—संज्ञा पुं० [सं०] शाश्वतता। नित्यता (को०)।

नित्यमित्र—संज्ञा पुं० [सं०] वह मित्र जो निःस्वार्थ भाव से प्रीति या बड़े हुए पुराने संबंधों की रक्षा करे।

नित्यमुक्त^१—संज्ञा पुं० [सं०] परमात्मा। ईश्वर (को०)।

नित्यमुक्त^२—वि० जो हमेशा के लिये स्वतंत्र या मुक्त हो (को०)।

नित्ययज्ञ—संज्ञा पुं० [सं०] प्रतिदिन का कर्तव्य यज्ञ। जैसे, अग्निहोत्र।

नित्ययुक्त—वि० [सं०] हमेशा तैयार या तत्पर रहनेवाला (को०)।

नित्ययोजना^१—वि० स्त्री० [सं०] जिसका योजन बराबर या बहुत काल तक स्थिर रहे।

नित्ययोजना^२—संज्ञा स्त्री० द्रोपदी।

नित्यतु^१—वि० [सं०] दूरेक ऋतु में समयानुसार होनेवाला (को०)।

नित्यशः—अव्य० [सं०] १. प्रतिदिन। रोज। २. सदा। सर्वदा।

नित्यश्रो—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह कांति या प्रफुल्लता जो बराबर बनी रहे (को०)।

नित्यसत्त्वस्थ—वि० [सं०] १. सर्वदा सत्त्व गुण से युक्त। २. धर्म का त्याग न करनेवाला (को०)।

नित्यसम—संज्ञा पुं० [सं०] स्याम में जो २४ जाति अर्थात् केवल सावर्ध और वैषम्य से अयुक्त खंडन कहे गए हैं उनमें से एक। वह अयुक्त खंडन जो इस प्रकार किया जाय कि अनित्य वस्तुओं में भी अनित्यता नित्य है अतः धर्म के नित्य होने से धर्मों की नित्य हुषा। जैसे, किसी ने कहा शब्द अनित्य है क्योंकि वह घट के समान उत्पत्ति धर्मवाला है। इसका यदि कोई इस प्रकार खंडन करे कि यदि शब्द का अनित्यत्व नित्य है तो शब्द भी नित्य हुषा और यदि अनित्यत्व अनित्य है तो भी अनित्यत्व के अभाव से शब्द नित्य हुषा। इस प्रकार का दूषित खंडन नित्यसम कहलाता है।

नित्यसमास—संज्ञा पुं० [सं०] अनिवार्य समास। वह समास जिसे तोड़ देने पर उसके अंशों से अभीष्ट अर्थ की निष्पत्ति न हो, जैसे, जयश्रवण, पावक (को०)।

नित्यसिद्ध—संज्ञा पुं० [सं०] आत्मा (को०)।

नित्यसेवक—वि० [सं०] हमेशा दूसरों की सेवा करनेवाला (को०)।

नित्यस्नायी—वि० [सं० नित्यस्नायिन्] प्रतिदिन स्नान करनेवाला (को०)।

नित्यस्वाध्यायी—वि० [सं० नित्यस्वाध्यायिन्] प्रतिदिन वेदादि का अनुशीलन करनेवाला (को०)।

नित्यहोता—वि० [सं० नित्यहोतृ] प्रतिदिन हुवन करनेवाला (को०)।

नित्यहोम—संज्ञा पुं० [सं०] रोज किया जानेवाला होम (को०)।

नित्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. पार्वती। २. मनसा देवी। ३. एक जाति का नाम।

नित्यानंद—संज्ञा पुं० [सं० नित्यानन्द] १. नह आनंदानुभूति जो सदा बनी रहे। २. वह जो सर्वदा आनंद से रहे (को०)।

नित्यानध्याय—संज्ञा पुं० [सं०] ऐसा अवसर, जाहे वह जिस बार या जिस तिथि को पढ़ जाय, जिसमें वेद के अध्ययन अध्यापन का निषेध हो।

विशेष—मनुस्मृति के अनुसार जब पानी बरसता, बादल गरजता

घोर बिजली बमकती हो या पाँघो के कारण धूल आकाश में छाई हो या उल्कापात होता हो सब अनध्याय रखना चाहिए ।

नित्यानित्य—वि० [सं०] नश्वर और अनश्वर । शाश्वत और क्षणिक [को०] ।

नित्यानित्यवस्तुविवेक—संज्ञा पुं० [सं०] ब्रह्म के सत्य और जगत् मिथ्यात्व का निश्चय [को०] ।

नित्यानुगृहीत—वि० [सं०] (अग्नि) जिसका निरंतर रखण किया जाय ।

नित्याभियुक्त—वि० [सं०] (योगी) जो केवल इतना ही भोजन करके रहे जितने से देहवृद्धि होती रहे और सब त्याग करके योगसाधन करे ।

नित्यामित्राभूमि—संज्ञा स्त्री० [सं०] कीटित्य के अनुसार ऐसा स्थान जहाँ घोर विरोधो या शत्रु निवास करें । वह भूमि जहाँ के लोग सदा दुश्मनी करते हों या जिसमें शत्रु की प्रबलता हो ।

नित्यारु—अव्य० [सं० नित्य + हि० आर (प्रत्य०)] नित्य । निरंतर । सर्वदा । उ०—लीला ललित मुरार की सुक मुनि कही अपार । ते बड़भागी देव नर अपत रहत नित्यार । —पृ० २१०, २ । ५६१ ।

नित्यारित्र—वि० [सं०] (जलयान) जो अपने आप चले [को०] ।

नित्योदक—वि० [सं०] (स्थान) जो सदा जल से युक्त या पूरित हो [को०] ।

नित्योदकी—वि० [सं० नित्योदकिन्] दे० 'नित्योदक' [को०]

नित्योदित—वि० [सं०] १. सदा उत्पन्न होनेवाला । २. अपने आप उत्पन्न होनेवाला । जैसे, ज्ञान [को०] ।

नित्योद्युक्त—संज्ञा पुं० [सं०] एक बोधिसत्व का नाम [को०] ।

निर्धम्भ—संज्ञा पुं० [सं० उप० नि + स्तम्भ] खंभा । स्तम्भ । उ०—रथी बिरंवि बास सी निर्धम्भ राजिका मसी ।—केशव (शब्द०) ।

निथरना—क्रि० प्र० [सं० निस्तरण; अथवा हि० उप० नि + थिर + ना (प्रत्य०)] १. पानी या घोर किसी पतली चीज का स्थिर होना जिससे उसमें घुली हुई मेल खादि नीचे बैठ जाय । थिरकर साफ होना । २. घुनी हुई चीज के नीचे बैठ जाने से जल का बलग हो जाना । पानी छन जाना ।

निथार—संज्ञा पुं० [सं० निस्तर अथवा हि० निथरना] १. घुनी हुई चीज के बैठ जाने से बलग हुआ साफ पानी । २. पानी के स्थिर होने से उसके तल में बैठे हुए चीज । ३. निथरने की क्रिया ।

निथारना—क्रि० प्र० [हि० निथरना] १. पानी और किसी पतली चीज को स्थिर करना जिससे उसमें घुली हुई मेल खादि नीचे बैठ जाय । थिराकर साफ करना । २. घुनी चीज को नीचे बैठकर खाली पानी बलग करना । पानी छानना । पानी छानकर बलक करना ।

निधासना—क्रि० प्र० [हि०] दे० 'निधारना' ।

निर्द—संज्ञा पुं० [सं०] अहुर । विष [को०] ।

निर्द—वि० निर्दक [को०] ।

निर्दई—वि० [सं० निर्दयी] दे० 'निर्दयी' ।

निर्दह—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह जिसे दाद का रोग न हो । २. मनुष्य । मानव [को०] ।

निर्दरन—वि० [सं० उप० निर् = √द (= नष्ट करना)] निर्दलन करनेवाला । नष्ट करनेवाला । उ०—आवहु बलि बैसाक, दुख निदरन सुख करन पिय ।—नंद० प्रं०, पृ० १६५ ।

निर्दरना—क्रि० प्र० [सं० निरादर] १. निरादर करना । अपमान करना । अप्रतिष्ठा करना । बेइज्जती करना । उ०—मोर प्रभाव विदित नहीं तोरे । बोलसि निदरि विप्र के भोरे ।—तुलसी (शब्द०) । २. तिरस्कार करना । त्याग करना । ३. मात करना । बड़ जाना । बड़कर निकलना । तुच्छ ठहरना । उ०—(क) नाना जाति न जाहि बखाने । निदरि पवनु जनु बहुत उड़ाने ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) एक एक जोतिहि संसार । उनहि निदरि पावत को पारा ।—सबल (शब्द०) ।

निर्दरसना—संज्ञा स्त्री० [सं० निदर्शना] दे० 'निदर्शना' । उ०—जहँ बरनन पद अर्थ को बरनत है कविराज । निदरसना यह दूसरी, बरनत बिबुध समाज ।—मति० प्रं०, पृ० ३६३ ।

निद्रा—संज्ञा स्त्री० [सं० निद्रा] दे० 'निद्रा' । उ०—दिन नहि चैन रात नहि निद्रा, सूखूँ लड़ी लड़ी ।—संतवाणी०, पृ० ७७ ।

निर्दर्शक—वि० [सं०] निदर्शन करनेवाला । बतानेवाला । दिखानेवाला [को०] ।

निर्दर्शन—संज्ञा पुं० [सं०] १. दिखाने का कार्य । प्रदर्शित करने का कार्य । प्रकट करने का कार्य । २. उदाहरण । उदाहरण ।

निर्दर्शना—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक अर्थालंकार जिसमें एक बात किसी दूसरी बात को ठीक ठीक कर दिखाती हुई कही जाती है । यह ६ प्रकार की होती है । उ०—(क) सरिसंगम हित चले ठेकते नाले पथर । दिखलाते पथरोध प्रेमियों का प्रति दुष्कर । (ख) जात चंद्रिका चंद्र सह बिद्युत् घन सह जाय । पिय सहगमन जो नियन को जड़ हूँ देत दिखाय । (ग) कहाँ सूर्य को बंश घर कहाँ मोरि मति धुइ । मैं हूँ सों मोहबल चाहत तरयो समुद्र । (घ) जंगजीत जे बहुत हैं तो सों देर बढ़ाय । जीवे की इच्छा करत कालकूट ते लाय । (ङ) उदय होत दिननाथ इत अथवत उत निखिराज । इय चंटापुल द्विद की छवि धारत गिरि घाज । (छ) लघु उन्नत पद प्राप्त है तुरतहि सहित निपात । गिरि तैं काँकर बात बस गिरत कहत यह बात ।

विशेष—इस अर्थालंकार के भिन्न भिन्न लक्षण आचार्यों ने लिखे हैं । जहाँ होता हुआ वस्तुसंबंध और न होता हुआ वस्तुसंबंध दोनों बिबानुबिब आब से दिखाए जाते हैं वही निदर्शना होती है ।

उ०—संपदयुत चिर पिर रहत नहि कोउ जनहि सपाय ।
चरमाचल बलि भानु यह सब कहं रहे जनाय । (साहित्य-
दर्पण) । न होता हुआ वस्तुसंबंध जहाँ उपमा की कल्पना
करे (प्रथम निदर्शना) ; अथवा जहाँ क्रिया से ही अपने और
अपने हेतु के संबंध की उक्ति हो वहाँ निदर्शना प्रलंकार होता
है (दूसरी निदर्शना) । उ०—सधु उन्नत पद प्राप्त हूँ
गुरतहि सहत निपात । गिरि ते काँकर बात बह धरित कहत
यह बात । (काव्यप्रकाश कारिका) । दंडो का यह लक्षण है—
अर्थांतर में प्रवृत्त कर्ता द्वारा अर्थांतर के सदृश जो सत् या
असत् फल दिखाया जाता है वह निदर्शना है । चंद्रालोककार का
लक्षण—सदृश वाक्यार्थों की एकता का आरोप निदर्शना है ।

हिंदी के कवि प्रायः चंद्रालोककार का ही लक्षण ग्रहण करके
चले हैं । जैसे,—सरिस बाक्य युग के अरथ करिण एक
अरोप । भूषण ताहि निदर्शना कहत बुद्धि दें ओप ।—
भूषण (शब्द०) । प्रथम निदर्शना—जो सो, जे ते, पदन करि
असम वाक्य सम कोन । उ०—सुनु खोज हरि अक्ति बिहारी ।
जे सुख चाहहि भान उपाई । ते सठ महासिधु बिनु तरनी ।
पेर पार चाहत जड़ करनी ।—तुलसी (शब्द०) । दूसरी
निदर्शना—याग्य गुण उपमान के उपमेयहि के अंग । उ०—
जब कर गहत कमान सर देत अरिन की मोति । माउंसिह
में पाइए सब अरजुन की रीति ।—मतिराम (शब्द०) । तीसरी
निदर्शना—याग्य गुण उपमेय की उपमानहि के अंग । उ०—
तुव बचनन की मधुरता रही सुधा महँ छाया । पाव बमक बल
नैन की मोनन लई छिनाय । (शब्द०) ।

निदलन^५—संज्ञा पु० [सं० निदलन] १० 'निदलन' ।

निदहन^५—क्रि० स० [सं० निदहन] जलाना ।

निदाघ—संज्ञा पु० [सं०] १. गरमी । ताप । २. धूप । धाम । ३.
ग्रीष्मकाल । गरमी । ४. प्रस्वेद । पसीना (को०) । ५. पुनस्त्य
ऋषि का एक पुत्र (विष्णुपुराण) ।

निदाघकर—संज्ञा पु० [सं०] १. सूर्य । २. मदार । धाक ।

निदाघकाल—संज्ञा पु० [सं०] गरमी की ऋतु [ति०] ।

निदाघवार्षिक—वि० [सं०] ग्रीष्म और वर्षा ऋतु संबंधी महीने ।

निदाघसिधु—संज्ञा स्त्री [सं०] ग्रीष्मऋतु की नदी जो शुष्कप्राय
रहती है (को०) ।

निदान^१—संज्ञा पु० [सं०] १. आदि कारण । २. कारण । ३.
रोगनिर्णय । रोगलक्षण । रोग की पहचान ।

विशेष—सुषुप्त के पृथक् पर घन्वन्तरि जी ने कहा है कि वायु
ही प्राणियों की उत्पत्ति, स्थिति और विनाश का मूल है ।
यह शरीर के दोनों का स्वामी और रोगों का राजा है ।
वायु पवि है—प्राण, उदान, समान, व्यान और अपान । ये
ही पाँचो वायु शरीर की रक्षा करती हैं । जिस वायु का मुख
में संबरण होता है उसे प्राणवायु कहते हैं । इससे शरीर की
रक्षा, प्राणधारण और साया हुआ अन्न जठर में जाता है ।
इसके दूषित होने से हिचकी, दमा, आदि रोग होते हैं । जो

वायु ऊपर की ओर चलती है उसे उदान वायु कहते हैं । इसके
दूषित होने से कंधे के ऊपर के रोग होते हैं । समान वायु
धामाक्षय और पक्वाक्षय में काम करती है । इसके बिगड़ने
से गुल्म, मंदाग्नि, अतीसार आदि रोग होते हैं । व्यान वायु
सारे शरीर में घूमती है और रसों को सर्वत्र पहुँचाती है । इसी
से पसीना और रक्त आदि निकलता है । इसके बिगड़ने से
शरीर भर में होनेवाले रोग हो सकते हैं । अपान वायु का
स्थान पक्वाक्षय है । इसके द्वारा मूत्र, शुक्र, आतंज, गर्भ,
समय पर खिचकर बाहर होता है । इस वायु के कुंठित होने से
वस्ति और गुप्त स्थानों के रोग होते हैं । व्यान और अपान दोनों
के कुंठित होने से प्रमेह आदि शुक्ररोग होते हैं (सुश्रुत) ।

४. अंत । अवसान । ५. तन के फन की चाह । ६. शुद्धि । ७.
बछड़े का बंधन ।

निदान^२—अव्य० अंत में । आश्रित । उ०—जहाँ गुमति तहँ संपति
नाना । जहाँ कुमति तहँ विपति निबाना ।—तुलसी (शब्द०) ।

निदान^३—वि० अंतिम या निम्न श्रेणी का । निष्कृष्ट । बहुत ही गया
बीता । हृद दरजे का । उ०—उत्तम खेती मध्यम बान ।
निराधिन सेवा शीघ्र निदान । (कदावन) ।

निदाकरण—वि० [सं०] १. कठिन । धोर । अपानक । २. दुःसह ।
निंद्य । कठोर ।

निदाह^५—संज्ञा पु० [सं० निदाघ] १० 'निदाघ' ।

निदिग्ध—वि० [सं०] १. छाया हुआ लेप दिया हुआ । २. बढ़ाया
हुआ । प्रवर्धित (को०) ।

निदिग्धा—संज्ञा स्त्री [सं०] इलायची ।

निदिग्धिका—संज्ञा स्त्री [सं०] १० 'निदिग्धा' ।

निदिध्यास—संज्ञा पु० [सं०] २० 'निदिध्यासन' । उ०—कीयी अवन
मनन पुनि कीयी ता पीछे कीयी निदिध्यास ।—सुंदर० प्र०,
भा० १, पु० १५५ ।

निदिध्यासन—संज्ञा पु० [सं०] फिर फिर स्मरण । बार बार ध्यान
में लाना ।

विशेष—श्रुतियों और योगदर्शन में भी दर्शन, अवण, मनन और
निदिध्यासन आत्मज्ञान के लिये आवश्यक कृतलाया गया है ।

निदिष्ट—वि० [सं०] १. बनाया हुआ । निर्दिष्ट । इंगित । २.
आदिष्ट । आज्ञा (को०) ।

निदेश—संज्ञा पु० [सं०] १. आसन । २. आज्ञा । हुक्म । ३. कथन ।
४. पास । सामीप्य । ५. पात्र । बरतन (को०) ।

निदेशक—वि० [सं०] निदेश करनेवाला । निर्देशक । (अंग्रेजी के
'डाइरेक्टर' पद के लिये प्रयुक्त हिंदी पारिभाषिक शब्द) ।

निदेशिनी^१—वि० स्त्री [सं०] निदेश करनेवाली । हुक्म या आज्ञा
देनेवाली (को०) ।

निदेशिनी^२—संज्ञा स्त्री दिवा (को०) ।

निदेशी—वि० [सं० निदेशिन्] [वि० स्त्री० निदेशिनी] आज्ञा
करनेवाला ।

निद्रा—वि० [सं० निद्रेष्ट] निद्रेष्टक । बताने या छात्रा देनेवाला [को०] ।

निद्रा(पु)—संज्ञा पु० [सं० निद्रा] १० 'निद्रा' । उ०—मातु पिता गुरु स्वामि निद्रेसू । सकल धरम धरनीधर सेसु ।—मानस, २ । ३०५ ।

निद्रोष(पु)—वि० [सं० निद्रोष] १० 'निद्रोष' ।

निद्रि - संज्ञा स्त्री० [सं० निद्रि] १० 'निद्रि' ।

निद्रा—संज्ञा पु० [सं०] एक उपसंहारक ग्रन्थ । उ०—जोतिष पावक निद्रा दीत्यमंथन रति लेख्यो ।—पद्माकर (शब्द०) ।

निद्रा—संज्ञा स्त्री० [सं०] सचेष्ट अवस्था के बीच बीच में होनेवाली प्राणियों की वह निश्चेष्ट अवस्था जिसमें उनकी चेतन वृत्तियाँ (और कुछ अचेतन वृत्तियाँ भी) रुकी रहती हैं । नींद । स्वप्न । सुप्ति ।

विशेष—गहरी निद्रा की अवस्था में मनुष्य की पेशियाँ ढीली हो जाती हैं, नाड़ी की गति कुछ मंद हो जाती है, सँस कुछ गहरी हो जाती है और कुछ अधिक अंतर देकर आती जाती है, साधारण संवेक से ज्ञानेन्द्रियों में संवेदन और कर्मेन्द्रियों में प्रतिक्रिया नहीं होती; तथा अंतों के जिस प्रबाहवत् चलनेवाले आकुंचन से उनके भीतर का द्रव्य आगे बिसकता है उसकी चाल भी धीमी हो जाती है । निद्रा के समय मस्तिष्क या अनाकरण विश्राम करता है जिससे प्राणी निःसंज्ञ या अचेतन अवस्था में रहता है ।

निद्रा के संबंध में सबसे अधिक माना जानेवाला वैज्ञानिक मत यह है कि निद्रा मस्तिष्क में कम रक्त पहुँचने के कारण आती है । निद्रा के समय मस्तिष्क में रक्त की कमी हो जाती है, यह बात तो देखी गई है । बहुत छोटे बच्चों के सिर के बीच जो पुलपुला भाग होता है वह उनके सो जाने पर कुछ अधिक घँसा यादूम होता है । यदि वह नाड़ी जो हृदय से मस्तिष्क में रुधिर पहुँचाती है, रुकाई जाय तो निद्रा या बेहोशी आवेगी । निद्रा की अवस्था में मस्तिष्क में रक्त की कमी का होना तो ठीक है, पर यह नहीं कहा जा सकता कि इस कमी के कारण निद्रा आती है या निद्रा (मस्तिष्क की निष्क्रियता) के कारण यह कमी होती है । हाल के दो वैज्ञानिकों ने यह सिद्ध किया है कि निद्रा संवेदनसूत्रों या ज्ञानतंतुओं के घटकों (सेलम) के संयोग तोड़ने से आती है । संवेदनसूत्र अनेक सूक्ष्म घटकों के योग से बने होते हैं और मस्तिष्ककक्षी केंद्र में जाकर मिलते हैं । जाग्रत या सचेष्ट अवस्था में ये सब घटक अत्यंत सूक्ष्म सूत्र की सी रेंगलियाँ निकालकर एक दूसरे से जुड़े हुए मस्तिष्कघटकों के साथ संबंध जोड़े रहते हैं । जब घटक अलग हो जाते हैं तब रेंगलियाँ भीतर सिमट जाती हैं और मस्तिष्क का संबंध संवेदनसूत्रों से टूट जाता है जिससे निद्रा या निद्रा आती है । एक और दूसरे वैज्ञानिक का यह कहना है कि मस्तिष्क के घटक दिन के समय जितना अधिक और जितनी जल्दी जल्दी प्राणव वायु (आक्सीजन) खर्च करते हैं उतनी उन्हें फेफड़ों से मिल नहीं सकती । अतः जब

प्राणव वायु का अभाव एक विशेष मात्रा तक पहुँच जाता है तब मस्तिष्कघटक क्षिब्ध होकर निष्क्रिय हो जाते हैं । सोने की दशा में आसानी की अपेक्षा प्राणववायु का खर्च बहुत कम हो जाता है जिससे उसकी कमी पूरी हो जाती है अर्थात् चेतना के लिये जितनी प्राणववायु की जरूरत होती है उतनी या उससे अधिक फिर हो जाती है और मनुष्य जाग पड़ता है । इतना तो सर्वसम्मत है कि निद्रा की अवस्था में शरीर पोषण करनेवाली क्रियाएँ बंद करनेवाली क्रियाओं की अपेक्षा अधिक होती हैं ।

निद्रा के संबंध में यह ठीक ठीक नहीं ज्ञात होता कि विकास की किस श्रेणी के जीवों से नियमपूर्वक सोने की आदत शुरू होती है । स्तनपायी उष्णरक्त जीवों तथा पक्षियों से नीचे की कोटि के जीवों के यथायं रीति से सोने का कोई पक्का प्रमाण नहीं मिलता । मछली, साँप, कछुए आदि ठंडे रक्त के जीवों की आँखों पर हिलनेवाली पलकें तो होती नहीं कि उनके आँख मूँदने से उनके सोने का अनुमान कर सकें । मछलियाँ घंटों निश्चेष्ट अवस्था में पड़ी पाई गई हैं पर उनकी यह अवस्था नियमित रूप से हुआ करती है, यह नहीं कहा जा सकता ।

पातञ्जल योगदर्शन के अनुसार निद्रा भी एक मनोवृत्ति है, जिसका आसंबन्ध अभावप्रत्यय अर्थात् तमोगुण है । अभाव से तात्पर्य भेष वृत्तियों का अभाव है, जिसका प्रत्यय या कारण हुआ तमोगुण । सारांश यह है कि तमोगुण की अधिकता से सब विषयों को छोड़कर जो वृत्ति रहती है वह निद्रा है । निद्रा मन की एक क्रिया या वृत्ति है, इसके प्रमाण में भोज-वृत्ति में यह लिखा है कि 'मैं खूब सुख में सोया' । ऐसी स्मृति लोगों को जागने पर होती है और स्मृति उसी बात की होगी जिसका अनुभव हुआ होगा ।

यौ०—निद्रादरिद्र = जिसे नींद न आती हो । निद्राभंग = जागरण । निद्रावृण = अंधेरा । अंधकार ।

निद्रागिण—वि० [सं०] १. सोता हुआ । निद्रित उ०—हृदय गिरी कंदरा निद्रागिण पितृवैरि केशरी जागु । —कीर्ति०, पृ० १८ । २. बंद । अविकष । मोलित । मुँदा हुआ ।

निद्राभिभूत—वि० [सं०] नींद से ग्रस्त । निद्रित [को०] ।

निद्रायमान—वि० [सं० निद्रायमाण] जो नींद में हो । सोता हुआ ।

निद्रासप्त—वि० [सं० निद्रा + सप्त] १. निद्रायुक्त । सोया हुआ । २. उनींदा । तंद्रालु । उ०—बूक जमा माँगी नहीं, निद्रा-सप्त बंकिम विशाल नेत्र मूँदे रह्यो । —अपरा, पृ० ५ ।

निद्रालु^१—वि० [सं०] १. निद्राशील । सोनेवाला । २. उनींदा [को०] ।

निद्रालु^२—संज्ञा स्त्री० १. बँगन । अंटा । २. बहरी । अमरी । अन-तुलसी । ३. नली नामक गंधद्रव्य ।

निद्रालु^३—संज्ञा पु० विष्णु का एक नाम (भागवत) ।

निद्रासंजनन—संज्ञा पु० [सं० निद्रासंजनन] श्लेष्मा । कफ ।

विशेष—कफ की वृद्धि से निद्रा आती है । अतः श्लेष्मा को निद्रासंजनन कहते हैं ।

निद्रित—वि० [सं०] सुप्त । सोया हुआ ।

निधङ्क—क्रि० वि० [हि० नि (= नहीं) + ङङ्क] १. बेरोक । बिना किसी रकावट के । २. बिना संकोच के । बिना हिचक के । बिना आगा पीछा किए । ३. निःशंक । बेखटके । बिना किसी भय या चिंता के ।

निधन—संज्ञा पु० [सं०] १. नाश । २. मरण । ३. फलित ज्योतिष में लग्न से घाटवाँ स्थान ।

विशेष—इस स्थान से अत्यंत सकट, आयु, शस्त्र आदि का बिचार किया जाता है । यदि लग्न से चौथे स्थान पर सूर्य हो और ग्रह पर शनि की दृष्टि हो तो जिस दिन निधन स्थान पर शुभग्रहों की दृष्टि होगी उसी दिन मृत्यु होगी ।

४. जन्म नक्षत्र से सातवाँ, सोलहवाँ और तेईसवाँ नक्षत्र । ५. कुल । खानदान । ६. कुल का अधिपति । ७. विष्णु । ८. पाँच प्रवचन या सात प्रवचनयुक्त साम का अंतिम प्रवचन ।

यौ०—निधनकारी = नष्टकारक । नाशक । निधनकिया = अंत्येष्टि । निधनपति ।

निधन^२—वि० धनहीन । निर्धन । खरिद ।

निधनता—संज्ञा स्त्री० [सं०] धनहीनता । गरीबी (को०) ।

निधनपति—संज्ञा वि० [सं०] प्रलयकर्ता । शिव ।

निधनी—वि० [हि० नि + धनी] निर्धन । धनहीन । खरिद । उ०—बैसे निधनी बनहि पाए हरल दिन भर राति । —सूर (शब्द०) ।

निधरका—क्रि० वि० [हि०] २० 'निधङ्क' । उ०—निधरक बैठि कहै कटु बानी । सुवन कठिनता अति प्रकुथानी । —मानस, २।४१ ।

निधरकता—संज्ञा स्त्री० [हि० निधरक + ता (प्रत्य०)] निधङ्कपन । बेधङ्की । बेखटकी । उ०—ताही प्रकार अपनी टहल निधरकताओं कन्यो कन्यो ।—दो सो बावन०, भा० १, पृ० २१७ ।

निधातव्य—वि० [सं०] स्थापनीय ।

निधान—संज्ञा पु० [सं०] १. आश्रय । आश्रय । २. निधि । खजाना । ३. लयस्थान । वह स्थान जहाँ आकर कोई वस्तु लीन हो जाय । ४. स्थापन । रखना । ५. धन । सम्पत्ति (को०) । ६. विराम स्थान । आराम की जगह (को०) ।

निधि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. गड़ा हुआ खजाना । खजाना ।

विशेष—पृथ्वी में गड़ा हुआ धन यदि राजा को मिले तो उसे आधा ब्राह्मणों को देकर आधा ले लेना चाहिए । विद्वान् ब्राह्मण यदि पावे तो उसे सब ले लेना चाहिए । यदि अश्वि ब्राह्मण या सत्रिय आदि पावें तो राजा को उन्हें छठा भाग देकर शेष ले लेना चाहिए । यदि कोई निधि पाकर राजा को संवाह न दे तो राजा को उसे बंध देना चाहिए और सारा खजाना ले लेना चाहिए (निदाकरा) ।

२. कुबेर के नौ प्रकार के रत्न । ये नौ रत्न ये हैं—वद्म, महावद्म, बंख, मकर, कच्छप, मुकुंद, कुंद, नील और वज्र ।

विशेष—ये सब निधियाँ सबकी को अर्पित हैं । जिन्हें ये प्राप्त होती हैं उन्हें भिन्न भिन्न रूपों में बनाकर आदि होता है ।

बैसे, पद्मनिधि के प्रभाव से मनुष्य सोने, चाँदी, ताम्र आदि का खूब उपयोग और कयविक्रय करता है, महावद्मनिधि की प्राप्ति से रत्न, मोती, मूँगे आदि की अधिकता रहती है, इत्यादि । मार्कंडेय पुराण इनमें अंतिम निधि को छोड़कर आठ निधि का उल्लेख करता है । अंतिम निधि वज्र को कहीं कहीं खर्व नाम कहा गया है ।

१. समुद्र । ४. आश्रय । घर । बैसे, जलनिधि, गुणनिधि । ५. विष्णु । ६. शिव । ७. नौ की संख्या । ८. जीवक नाम की ओषधि । ९. नलिका नामक द्रव्य । १०. व्यक्ति जो विविध गुणयुक्त हो (को०) । ११. वह स्थान जहाँ संरक्षित, द्रव्य आदि रखा जाय ।

निधिगोप—संज्ञा पु० [सं०] वह जो वेदवेदांग से पारंगत होकर गुरुकुल से आया हो । अनुष्ठान ।

निधिनाथ—संज्ञा पु० [सं०] निधियों के स्वामी, कुबेर ।

निधिप—संज्ञा पु० [सं०] कुबेर ।

निधिपति—संज्ञा पु० [सं०] कुबेर ।

निधिपाल—संज्ञा पु० [सं०] कुबेर ।

निधीश—संज्ञा पु० [सं०] १. कुबेर । २. भैरव का एक नाम (को०) ।

निधीश्वर—संज्ञा पु० [सं०] कुबेर ।

निधुवन—संज्ञा पु० [सं०] १. मैथुन । २. नर्म । केलि । ३. हँसी ठट्ठा । ४. कप ।

निधूम(पु)—वि० [सं० निधूम] धूमरहित । बिना धूम का । उ०—अग्नि के जनु निधूम हैं ऊक । किधों विभाकर के बिबि टूक । —नंद० वं०, पृ० २५४ ।

निधेय—वि० [सं०] स्थापनीय । स्थापन करने योग्य ।

निध्यान—वि० [सं०] जिसका मनन या ध्यान किया गया हो । विचारित (को०) ।

निध्यान—संज्ञा पु० [सं०] १. दर्शन । देखना । २. निदर्शन ।

निध्यानि(पु)—वि० [सं० निध्यान] निध्यान करनेवाला । उ०—निःकामी निध्यानि सोइ अविमति यहि विधि जान ।—कवीर सा०, पृ० ५६२ ।

निधुव—संज्ञा पु० [सं०] एक गोत्रप्रबतंक ऋषि ।

निधुबि—वि० [सं०] दुःख । विषमसनीय (को०) ।

निध्यान—संज्ञा पु० [सं०] शब्द ।

निनंजु—वि० [सं० निनङ्गु] १. मरने की इच्छा रखनेवाला । २. जो भागना या छिपना चाहता हो (को०) ।

निनह—संज्ञा पु० [सं०] शब्द । आवाज । घरघराहट । उ०—लाज यही बीरज बरो ए पिय चतुर सुजान । लखन सुखद सूर निनह ननह न सुनिहै कान ।—स० सप्तक, पृ० ३७२ ।

निनदित—वि० [सं०] २० 'निनादित' (को०) ।

निनही—वि० [सं० निनरिन्] २० 'निनादी' ।

निनह(पु)—संज्ञा पु० [सं० निनह] निनाह । जोर की ध्वनि । उ०—

इंका निनह छाये बहद । रनसिह तूर बेहद सह ।—सुजान०,
पृ० १८ ।

निनय—संज्ञा स्त्री० [सं०] नयता । नीताई । आज्ञा ।

निनयन—संज्ञा पुं० [सं०] १. निषादन । २. प्रणीता के जल को कुश से यज्ञ की वेदी पर छिड़कने का कार्य ।

निनरा(पु) वि० [सं० नि + निकट, प्रा० निनिबद्ध] न्यारा । झलक । जुदा । दूर । उ०—मानहु विबर गए चलि कारे तजि केंचुरी भए निनरे री ।—मूर (शब्द०) ।

निनाद—संज्ञा पुं० [सं०] शब्द । आवाज ।

निनादित^१—वि० [सं०] शब्दित । ध्वनित ।

निनादित^२—संज्ञा पुं० शब्द । ध्वनि । आवाज [को०] ।

निनादो—वि० [सं० निनादिन्] [वि० स्त्री० निनादिनी] शब्द करनेवाला । ध्वनि करनेवाला ।

निनान(पु)^१—संज्ञा पुं० [सं० निदान] १. घंत । २. लक्षण ।

निनान(पु)^२—क्रि० वि० घंत में । आखिर ।

निनान(पु)^३—वि० १. परले सिरे का । बिल्कुल । एकदम । चोर । २. बुरा । निकृष्ट । उ०—नमन नमन बहु घंतरा कबिरा नमन निनान । ये तीनों बहुते नये चीता, चोर, कमान ।—कबीर (शब्द०)

निनाया^१—संज्ञा पुं० [देश०] लटमल ।

निनार—वि० [हि०] दे० 'निनारा' । उ०—छायेहि लोग कुटुंब सब कोऊ । भए निनार दुख सुख तजि दोऊ ।—जायसी पं० ५६ ।

निनारा—वि० [सं० निः + निकट, प्रा० निनिबद्ध, हि० निनर अथवा हि०] १. झलक । जुदा । भिन्न । न्यारा । उ०—विप्र असास विनति अधारा । मुघा जीउ नहि करी निनारा ।—जायसी पं०, पृ० ३२ । २. दूर । हटा हुआ ।

निनावाँ—संज्ञा पुं० [हि० नन्हा ?] जोम, मसूके तथा मुँह आदि के भीतर के छोर भागों में निकलनेवाले जहीन साल बाने जिनमें छरछराहट घोर पीड़ा होती है ।

निनावो^१—संज्ञा स्त्री० [हि० नि (= बुरा) + नाम, नाव] १. बिना नाम की वस्तु । वह वस्तु जिसका नाम लेना अशुभ या बुरा समझा जाता हो । २. धुँस । भुतनी ।

निनिथाना^१—क्रि० प्र० [अनु०] गिड़गिड़ाना । निन्धियाना ।

निनीना^१—क्रि० म० [हि० नवना (= झुकना)] नीचे करना । झुकाना । नवना । उ०—नैन निने बहु नेकहुँ कमलनैन नव नाथ । बालनि के मन मोहि ले बेचे मवमय हाथ ।—कैसव (शब्द०) ।

निनीरा—संज्ञा पुं० [हि० नानी + घोर (प्रत्य०)] नाना या नानो का घर । वह स्थान जहाँ नाना नानी रहते हों ।

निन्नानवे^१—वि० [सं० नवनवति, प्रा० नवनवह] नब्बे घोर नौ । जो संख्या में एक कम सी हो ।

निन्नानवे^२—संज्ञा पुं० नब्बे घोर नौ की संख्या जो इस प्रकार लिखी जाती है—६६ ।

मुहा०—निन्नानवे के फेर में आना या पड़ना=रुपया बढ़ाने की धुन में होना । धन बढ़ाने की चिन्ता में पड़ना ।

विशेष—इस मुहावरे के संबंध में एक कहानी है । कोई मनुष्य बड़ा प्रपञ्चयी था । एक दिन उसके मित्र ने उसे १६०० रुपए दिए । उसी दिन से वह १०० पूरे करने के फेर में पड़ गया । जब १०० पूरे हो गए १०१ करने की चिन्ता में हुआ । इस प्रकार वह दिन रात रुपए के फेर में रहने लगा भारी कंजूस हो गया ।

निन्नानवे—वि०, संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'निन्नानवे' ।

निन्नारा(पु)—वि० [हि०] दे० 'निनारा' ।

निन्धियाना^१—क्रि० प्र० [अनु० नी नी] गिड़गिड़ाना । दीनता प्रकट करना । आज्ञा दीखाना ।

निपग(पु)—वि० [सं० नि + पङ्ग] जिसके हाथ पैर टूटे हों या काम न दे सकें । अपाहिज । निकम्मा । उ०—बाकी धन चरती हरी ताहि न लीजे संग । जो चाहि लेतो बने तो करि डार निपग ।—गिरधर (शब्द०) ।

निप—संज्ञा पुं० [सं०] १. जनपात्र । कलश । २. कदंब । कदम का फूल या पेड़ [को०] ।

निपज^१—संज्ञा स्त्री० [हि० निपजना] उपज ।

निपजना(पु)^१—क्रि० प्र० [सं० निष्यज, (+ ते) प्रा० निपज्जह] १. उपजना । उत्पन्न होना । उगना । जमना । उ०—(क) राम नाम कर सुमिरन हंसि कर भावै लीज । उलटा सुलटा नीपजै ज्यों सेतन में लीज ।—कबीर (शब्द०) । (ख) अमिरिष बरसे होरा निपजै घटा परे टकसार । तहाँ कबीरा पारकी अनुभव उतरे पार ।—कबीर (शब्द०) । २. बढ़ना । पुष्ट होना । पकना । उ०—मसी बुद्धि तेरे जिय उपजी । ज्यों ज्यों दिनी मई त्यों निपजी ।—मूर (शब्द०) ३. बनना । तैयार होना । उ०—सिख लीका गुह मसकला चढ़े शब्द खरसान । शब्द सहे सम्मुख रहै निपजै शिष्य सुजान ।—कबीर (शब्द०) ।

निपजी(पु)—संज्ञा स्त्री० [हि० निपजना] १. लाभ । मुनाफा । २. उपज । उ०—निषय, निधी, मिनाय तत, सतगुरु साहस घोर । निपजी में साझी घना बाँटनहार कबीर ।—कबीर (शब्द०) ।

निपट—अव्य० [हि० नि + पट] १. निरा । विमृद्ध । लाठी । घोर कुत्त नहीं । केवल । एकमात्र । उ०—निपटहि द्विज करि जानेसि मोहीं । मैं जब विप्र सुनावउँ तोहीं ।—पुलसी (शब्द०) । २. सरासर । एकदम । बिल्कुल । निस्त । बहुत अधिक । उ०—(क) आसे पासे जो फिर निपट पिसावे सोय । कीला सों लागे रहै ताको विघ्न न होय ।—कबीर (शब्द०) । (ख) आनुवंस राकेस कलंक । निपट निरंकुश प्रकुप असंकु ।—पुलसी (शब्द०) । (ग) बाम्हन हुत इक निपट बिहारी । सो पुनि चला चलत व्यापारी ।—जायसी (शब्द०) । (घ) मैं तेहि बारहि बार मनायो । सिर सों खेल निपट बिह लियो ।—जायसी (शब्द०) ।

निषटना—क्रि० प्र० [हि०] दे० 'निबटना' ।

निषटान—संज्ञा स्त्री० [हि०] निबटने की क्रिया या भाव । निबटान ।

निषटाना—क्रि० प्र० [हि०] दे० 'निबटाना' ।

निषटारा—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'निबटारा' ।

निषटाबा—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'निबटाबा' ।

निषटेरा—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'निबटेरा' ।

निषठ, निषठन—संज्ञा पुं० [सं०] अध्ययन । पठन [को०] ।

निषतन—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० निपतित] अधःपतन । गिरना । गिराव । पतन ।

निपतित—वि० [सं०] गिरा हुआ । पतित । अधःपतित ।

निपत्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. युद्ध की भूमि । २. गीली चिकनी जमीन । ऐसी भूमि जिसपर पैर फिसले ।

निपत्र—वि० [सं० निष्पत्र] पत्रहीन । टूटा । उ०—बिन गंठ बूझ निपत्र क्यों ठाढ़ ठाढ़ पे सुख ।—जायसी (शब्द०) ।

निपनिया^५—वि० [हि० नि + पानी] १. पानी रहित । सूखा । उ०—पानी पियो तो यही पियो भाई आगे देस निपनिया ।—कबीर श०, भा० १, पृ० २२ । २. निर्लज्ज । हुषा हीन ।

निपरिग्रह—संज्ञा पुं० [सं० निष्परिग्रह] दे० 'अपरिग्रह' । उ०—अथ निग्रह संग्रह धर्म कथा, निपरिग्रह साधन को गुन है ।—केसव० प्रमी०, पृ० ११ ।

निपलाश—संज्ञा पुं० [सं०] ऐसा पेड़ जिसके पत्ते झड़ गए हों [को०] ।

निर्पागुर—वि० [हि० नि + पंगुल] १. लंगड़ा । २. अपाहिज । जिसके हाथ पैर न चलते हों ।

निपाक—संज्ञा पुं० [सं०] बहुत ज्यादा एक जाना [को०] ।

निपास^५—वि० [सं० निष्पक्ष] १. पक्ष से रहित । बिना पक्ष का । २. पक्ष या सहायक बिहीन । निष्पक्ष । उ०—गुननि पकरि ले निपास करि छोड़ि देहु ।—रसखान०, पृ० ५५ ।

निपाठ—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'निपठ' [को०] ।

निपात^१—संज्ञा पुं० [सं०] १. पतन । गिराव । पात । २. अधःपतन । ३. बिनाश । उ०—घोर न कुछ देखे तन श्यामहि ताको करो निपात । तू जो करे बात सोई सौंभी कहा करों सोहि मातु ।—सूर (शब्द०) । ४. धृष्ट्यु । क्षय । नाश । उ०—बनमाला पहिरावत श्यामहि बार बार भँकवारि मरी बरि । कंस निपात करहुगे तुमही हम जानी यह बात सही परि ।—सूर (शब्द०) ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

५. शाब्दिकों के मत से बहु शब्द जिसके बनने के नियम का पता न चले अर्थात् जो व्याकरण में दिए गए सामान्य नियमों के अनुसार निष्पन्न न होकर अव्युत्पन्न बना हो । ६. दूसरा सिरा । दूसरा भाग [को०] ।

निपात^५—वि० [हि० नि + पात (= पता)] १. बिना पत्तों का । जिसमें पत्ते न हों । उ०—साँठिहि रहैं, साँधि तन, निरँठहि भागरि सुख । बिनु गज बिरिख निपात जिन ठाढ़ ठाढ़ पे सुख ।—जायसी (शब्द०) । २. पंख रहित । बिना पंख का । उ०—जेहि पंखी के निघर होइ कहै बिरह के बात । सोई पंखी जाइ बरि, साँधिर होइ निपात ।—जायसी (शब्द०) ।

निपात^३—संज्ञा पुं० [सं०] कौटिल्य के अनुसार महाने का स्थान ।

निपातक—संज्ञा पुं० [सं०] पाप । कुकर्म [को०] ।

निपातन—संज्ञा पुं० [सं०] १. गिराने का कार्य । २. नाश । क्षय या ध्वंस करने का कार्य । ३. मारने का काम । बध करने का कार्य । ४. नीचे गिरना या उड़ते हुए नीचे की ओर घाना [को०] । ५. व्याकरण में शब्द का निपात होना । अव्युत्पन्न रूप से शब्द का निष्पन्न होना [को०] ।

निपातना^५—क्रि० प्र० [हि० निपातन] १. गिराना । नीचे गिराना । उ०—(क) पिपर पात दुख भरे निपाते । सुख पसहा अपने दुख राते ।—जायसी (शब्द०) । (ख) व्याकुल राउ बिबिल सब माता । करिनि कषपतव मनहुं निपाता ।—तुलसी (शब्द०) । २. नष्ट करना । काटकर गिराना । उ०—कहु संकेस कहत किन बाता । केहि सब नासा कान निपाता ।—तुलसी (शब्द०) । ३. मारना । मार गिराना । बध करना । उ०—(क) बंधन बास निपातहु तुम कारण बन काटिया । जीवत जिय जनि मारहु मुए ते सबै निपातिया ।—कबीर (शब्द०) । (ख) तैसाहि मरतहि सेन समेता । सानुज निदरि निपातउं सेता ।—तुलसी (शब्द०) । (ग) लोखत रह्यो तोहि सुतघाती । छात्रु निपाति जुझावहुं छाती ।—तुलसी (शब्द०) ।

निपाती^१—वि० [सं० निपातिन्] १. गिरानेवाला । केंकनेवाला । बलानेवाला । उ०—सायक निपाती बतुरंग के संघाती ऐसे सोहत मदाती अरिघाती उपसेन के ।—गोपाल (शब्द०) । २. मारनेवाला । घातक ।

निपाती^२—संज्ञा पुं० शिव । महादेव ।

निपाती^५—वि० [हि० नि + पाती] बिना पत्ते का । पत्रहीन । टूटा उ०—तेहि दुख गए पलास निपाती । लोहू बूझ उठी होइ राती ।—जायसी (शब्द०) ।

निपान—संज्ञा पुं० [सं०] १. तालाब । गड्ढा । जत्ता । २. कुएँ के पास बीवार घेरकर बनाया हुआ कुछ या लोहा हुआ गड्ढा जिसमें पशु पक्षियों आदि के पीने के लिये पानी इकट्ठा रहता है । ३. दुध दुहने का बरतन । ४. रूप । कुष्मा [को०] । ५. पी जाना । सब पी जाना [को०] । ६. आश्रयस्थान । आश्रय-स्थल [को०] ।

निपाना^५—क्रि० प्र० [सं० निष्पद्यते; प्रा० निपज्जह, हि० निपद्ये] उत्पन्न करना । बनाना । उ०—मारवखी भगताबिया माक राम निपाह ।—डोला०, दू० १०६ ।

निपाना^५—क्रि० प्र० [हि० लिपयामा] लेप कराना । गोबर पानी आदि से लेपकर भूमि को सुख कराना । उ०—सुरे गावरो गोबर मँवाऊं घर साँगखियो निपाऊं । कंचन कलस बधाय गुराने मोतियाँ चोक पुराऊं ।—राम० धर्म० पृ० १ ।

निपीडक—वि० [सं० निपीडक] १. पीड़ा देनेवाला । दुःखदायक । २. मलने दलनेवाला । ३. निषेधनेवाला । ४. घेरनेवाला ।

निपीडन—संज्ञा पुं० [सं० निपीडन अथवा निपीडन] १. कष्ट पहुँचाने का प्रयत्न करने का कार्य । पीड़ित करना । तकलीफ देना ।

२. मलना दलना । ३. पसाना । पसेव निकालना । ४. पेरना ।
पेरकर निकालना (जैसे तेज निकाला जाता है) ।

निपोडना^१—संज्ञा स्त्री० [सं० निपोडना] ३० 'निपोडन' (को०) ।

निपोडना^२—क्रि० सं० [सं० निपोडन] १. दबाना । मलना दलना ।
उ०—भुजन भुजा भरि उरोजन उरहि मोड़ि कंठ कंठ
सौ निपोड़े रोप्यो हिय हियो है ।—देव (शब्द०) । २. कष्ट
पहुँचाना । पीड़ित करना । ३. पेरना निचोडना । गारना ।

निपीडित—वि० [सं० निपीडित] १. दबाया हुआ । २. आक्रांत ।
३. जिसे पीड़ा पहुँचाई गई हो । ४. पेशा हुआ । निचोड़ा
हुआ । ५. आलिंगित (को०) ।

निपीत—वि० [सं०] १. अच्छी तरह पान किया हुआ । २. मग्न ।
हूबा हुआ । ३. पूर्यंत; भूला हुआ । शोषित (को०) ।

निपीति—संज्ञा स्त्री० [सं०] पीने की क्रिया (को०) ।

निपुडना—क्रि० प्र० [सं० निपुट, प्रा० निपुड] (दाँत) खोचना ।
उधारना ।

निपुण—वि० [सं०] १. दक्ष । कुशल । प्रबोध । चतुर । कार्य करने
में पटु । २. पूर्यंत । पूरा (को०) । ३. ठीक (को०) ।

निपुणता—संज्ञा स्त्री० [सं०] दक्षता । कुशलता ।

निपुणार्ह^(१)—संज्ञा स्त्री० [हि० निपुण + आर्ह (प्रत्य०)] निपुणता ।
दक्षता । कुशलता । चतुराई ।

निपुत्री—वि० [हि० नि + पुत्री] निपूता । निःसंतान । उ०—
(क) जो निपुत्री को घर में क्या सुख कि जिस बिना वह सदा
अंधकार रहता है ।—सदम मिश्र (शब्द०) । (ख) जो नर
ब्राह्मण हस्या कीन्हा । जन्म निपुत्री तेहि जन कीन्हा ।—
विश्राम (शब्द०) ।

निपुन^(१)—वि० [सं० निपुण] ३० 'निपुण' ।

निपुनई^(१)—संज्ञा स्त्री० [सं० निपुण + ई (प्रत्य०)] निपुणता ।

निपुनता^(१)—संज्ञा स्त्री० [हि०] ३० 'निपुणता' । उ०—लघु लाग विधि
की निपुनता अवलोकि पुर सोमा सही ।—मानस, १ । ६४ ।

निपुनार्ह^(१)—संज्ञा स्त्री० [हि०] ३० 'निपुणार्ह' उ०—पुर सोमा
अवलोकि सुहाई । लागइ लघु विरंचि निपुनार्ह ।—तुलसी
(शब्द०) ।

निपूत^(१)—वि० [हि० नि + पूत] [वि० स्त्री० निपूती] अपुत्र ।
पुत्रहीन । उ०—कीनो जिन रावण निपूतो यमहू ते यम कूते
खेत मूँड़ आजहू ते न सिरात है ।—हनुमान (शब्द०) ।

निपूता—वि० [सं० निपुत्र, प्रा० निपूत] [वि० स्त्री० निपूती]
जिसे पुत्र न हो । अपुत्र ।

निपेटो^(१)—वि० स्त्री० [हि०] मुक्कड़ । भुंकी । धातुर । उ०—
ओखी बड़ी इतराति लगी मुँह नेकी प्रयाति न आति
निपेटो ।—जनार्दन, पृ० १३ ।

निपैद^(१)—संज्ञा पुं० [प्रा० नापैद] विलय । नाश । उ०—पैदा करत
निपैद करत ही ।—जग० बानी, पृ० १५ ।

निपोटा^(१)—वि० [हि० नि + पोटा (= कुवत)] क्षतिहीन ।
असंबंध । उ०—हे करतार हों तोसों कहों कबहुँ नहि बीजिए

काहु के टोटो । और सिखो जनि काहु के भाग में मित्र के
काज महीष निपोटो ।—राम० धर्म०, पृ० २६८ ।

निपोडना^१—क्रि० सं० [सं० निपुट, या निपोडन, प्रा० निपुड +
हि० निपोरना] खोलना । उधारना । (दाँत के लिये) ।

मुहा०—दाँत निपोडना = व्यर्थ हुँसना ।

निफन^(१)—वि० [सं० निफन, प्रा० निफल] पूर्यंत । पूरा । संपूर्यंत ।

निफन^२—क्रि० वि० पूर्यंत रूप से । अच्छी तरह । उ०—जोते बिनु
बोए बिनु निफन निराए बिनु सुकत सुखेत सुख सासि फूसि
फरिगे । मुविहुँ मनोरथ को अगम अलभ्य लाभ सुगम सो राम
सधु लोगनि कौ करिगे ।—तुलसी (शब्द०) ।

निफरना^(१)—क्रि० प्र० [हि० निफारना] धुमकर या धंसकर
इस पार से उस पार होना । छिड़कर पारपार होना । उ०—
चायल सौ धूमि रह्यो खड़गी धमंड मरो नेजा नोक लागी कीश
केकयी के नंद की । निफरि बेंसी सो भूमि गोंडा गिरयो धूमि
धूमि कासी रघुराज बाणी कही रघुनंद की ।—रघुराज
(शब्द०) ।

निफरना^(२)—क्रि० प्र० [सं० नि + स्फुट या/ निफान] खुलना ।
उद्घाटित होना । स्पष्ट होना । साफ होना । प्रकट होना ।

निफल^(१)—वि० [सं० निफल, प्रा० निफल] निरर्थक । निफल ।
व्यर्थ । उ०—(क) नावै पंडुक मोर परेवा । निफन न जाय
काहि की सेवा ।—बायसी (शब्द०) । (ख) निफल होहि
रावणसर कैसे । जल के सकल मनोरथ जैसे ।—तुलसी
(शब्द०) । (ग) उषों तिय सुरत समय सितकारा । निफन
आहि बौ बधिर भतारा ।—नंद० प्र०, पृ० ११२ ।

निफला—संज्ञा स्त्री० [सं०] उद्योतिष्मती लता ।

निफाक—संज्ञा पुं० [प्र० निफाक] १. विरोध । विद्रोह । वेर । २.
फूट । भेद । बिगाड़ । अनबन ।

क्रि० प्र०—करना ।—पड़ना ।—होना ।

निफारना^१—क्रि० प्र० [हि० नि + फारना] १. इस पार से उस
पार तक छेद करना । पार पार करना । केचना । २. इस
पार से उस पार निकालना ।

निफारना^(२)—क्रि० प्र० [सं० नि + स्फुट] खोलना । उद्घाटित
करना । प्रकट करना । स्पष्ट करना । साफ करना ।

निफालन—संज्ञा पुं० [सं०] दष्टि । अवलोकन ।

निफांट—वि० [सं० नि + स्फुट] स्पष्ट । साफ साफ । उ०—
सुन ले निफोट ओट बज की न वचै कोऊ लागे भेद ओट
सावधान को अचानक ।—हनुमान (शब्द०) ।

निफोटक^(१)—वि० [हि० निफोट] स्पष्ट । साफ । कै मित्रि कर मेरो
कह्यो कै कर मेरो बात । पाछे बचन संभारियो कहों
निफोटक बात ।—हनुमान (शब्द०) ।

निबंध—संज्ञा पुं० [सं० निबन्ध] १. बंधन । २. वह व्याख्या जिसमें
अनेक मतों का संग्रह हो । ३. लिखित प्रबंध । लेख ।
रचनात्मक गद्य साहित्य की एक विधा । ४. गीत । ५.
नीम का पेड़ । ६. आनाहू रोग । पेशाब बंद होने की
बीमारी । करक । ७. वह वस्तु जिसे किसी को देने का
बादा कर दिया गया हो । ८. कीटव्य के अनुसार सरकारी

भाषा । १. प्रतिबंध । रोक (को०) । १०. संलग्न होना । संलग्नता (को०) । ११. बंधन या जोड़ने का कार्य (को०) । १२. कारण (को०) । १३. आधार । नींव (को०) ।

निबंधन—संज्ञा पुं० [सं० निबन्धन] [वि० निबद्ध] १. बंधन । उ०—तनु कंबु कंठ त्रिरेख राजति रज्जु सी उनमानिए । पविनीत इंद्रिय निग्रही तिनके निबंधन जानिए ।—केशव (शब्द०) । २. व्यवस्था । नियम । बंधन । ३. कर्तव्य । बंधन । ४. हेतु । कारण । ५. गाँठ । ६. बीणा या सितार की खूँटी । उपनाह । कान । ७. आधार । आधार (को०) ।

यो०—निबंधन पुस्तक = रजिस्टर ।

निबंधनी—संज्ञा स्त्री० [सं० निबन्धनी] १. बंधन । २. बेड़ी ।

निबंधा—संज्ञा पुं० [सं० निबन्धु] १. सेसक । २. बांधनेवाला (को०) ।

निबंधी—वि० [सं० निबन्धिन] १. निबंध करनेवाला । बांधनेवाला । २. संलग्न । संबद्ध । ३. कारण रूप । आधार-स्वरूप (को०) ।

निब—संज्ञा स्त्री० [सं०] लोहे की चद्दर की बनी हुई चौंच जो घोंगरेजी कलमों की नोक का काम देती है । जीमी । (यह ऊपर से खोंसी जाती है) ।

निबकौरी—संज्ञा स्त्री० [हि० नीब, नीम + कौड़ी] १. नीम का फल । निबौली । निबौरी । २. नीम का बीज ।

निबटना—क्रि० प्र० [सं० निवर्तन, प्रा० निवट्ना] [संज्ञा निबटेरा, निबटान] १. निवृत्त होना । छुट्टी पाना । फुरसत पाना । फारिग होना । खाली होना । जैसे, सब कामों से निबटना । २. समाप्त होना । पूरा होना । किए जाने को बाकी न रहना । भुगतना । जैसे, काम निबटना । ३. निर्णीत होना । तै होना । अनिश्चित वस्तु में न रह जाना । जैसे, ऋण निबटना । ४. चुकना । क्षतम होना । न रह जाना । उ०—हे मुँहगी तेरो सुकृत मेरो ही सो हीन । फल सौ जाग्यो जात है मैं निरनै कर लीन । अधिक मनोहर असन नल उन भंगुरिन की पाय । गिरी फेर नू आय जब पुन गयो निबटाय ।—अक्षयसिंह (शब्द०) । ५. लोच आदि से निवृत्त होना ।

निबटान—संज्ञा स्त्री० [हि०] निबटने की क्रिया या भाव ।

निबटाना—क्रि० प्र० [हि० निबटना] १. पूरा करना । समाप्त करना । क्षतम करना । करने को बाकी न छोड़ना जैसे, काम निबटाना । २. भुगताना । चुकाना । बेबाक करना । जैसे, कर्जा निबटाना । ३. तै करना । निर्णीत करना । अंशुत न रखना । जैसे, ऋण निबटाना ।

संयो० क्रि०—डालना ।—देना—सेना ।

निबटारा, निबटाव—संज्ञा स्त्री० [हि० निबटना] १. निबटने की भावना या क्रिया । निबटेरा । २. ऋण का फैसला । निर्णय ।

निबटेरा—संज्ञा पुं० [हि० निबटना] १. निबटने का भाव या क्रिया । छुट्टी । २. समाप्ति । ३. ऋण का फैसला । निबधय । क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

निबड़(पु)—वि० [सं० निबड] घना ।

निबड़ना(पु)—क्रि० प्र० [हि०] दे० 'निबटना' ।

निबड़ा—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार का बड़ा बड़ा ।

निबड़^१—वि० [सं०] १. बंधा हुआ । २. निबद्ध । बका हुआ । ३. यथित । गुंथा हुआ । ४. बैठाया हुआ । जडा हुआ । निवेशित । ५. निष्ठा हुआ । प्रणीत । रचित (को०) । ६. आवृत (को०) ।

निबड़^२—संज्ञा पुं० वह गीत जिसे गाते समय धर, ताल, मान, गमक, रस आदि के नियमों का विशेष ध्यान रखा जाय ।

निबर—वि० [हि०] दे० 'निबल' ।

निबरक(पु)—वि० [हि० निबर + क (प्रत्य०)] निबल । निरीह ।

उ०—निबरक सुत ल्यो कोरा । राम मोहि मारि कलि विष बोरा ।—कबीर ग्रं०, पृ० २१३ ।

निबरना—क्रि० प्र० [सं० निवृत्त, प्रा० निवड्] १. बंधो, फँसी या लगी वस्तु का छलग होना । छूटना । २. मुक्त होना । उदार पाना । बच निकलना । पार पाना । उ०—(क) पाप के उराहुनो, उराहुनो न दोष मोहि कालिकाला कासीनाथ कहे निबरत हौं ।—सुलसी (शब्द०) । (ख) कब लौं, कही पूजि निबरगे वधिहैं बैर हमारे ?—सूर (शब्द०) । (ग) कैसे निबरें निबल जन करि सबलन सौं बैर ।—समाविलास (शब्द०) । ३. छुट्टी पाना । छबकाश पाना । फुरसत पाना । खाली होना । निवृत्त होना । उ०—हरि खि जल जब ते परे तब तैं छिन निबरे न । भरत उरत, बूझत, तरत रहत बरी लौं नैन ।—बिहारी (शब्द०) । ४. (काम) पूरा होना । समाप्त होना । भुगतना । सपरना । निबटना । चुकना । उ०—(क) सुरदास बिनती कहा बिनवै दोषनि देह भरी । भापन बिगड़ सँभारोगे तो यामें सब निबरी ।—सूर (शब्द०) । (ख) बितवत जितवत हिन हिए किए तिरीछे नैन । भीजे तन दोऊ कपे क्यों हूँ जप निबरे न ।—बिहारी (शब्द०) । ५. निर्णय होना । तै होना । फैसला होना । ६. एक में मिली जुली वस्तुओं का छलग होना । बिलग होना । उ०—नैना भए पराए चेरे । नंदलाल के रंग गए रंगि अब नाहीं बस मेरे । जद्यपि जतन किए जुगवति हौं श्यामल शोभा मेरे । तउ मिलि गए दूष पानी ज्यों निबरत नाहि निबरे ।—सूर (शब्द०) । ७. उलझन दूर होना । सुलभना । फँसाव या अड़चन दूर होना ।

संयो० क्रि०—जाना ।

न. जाता रहना । दूर होना । न रह जाना । क्षतम होना । उ०—अब नौके के समुझि परी । जिन लागि हती बहुत उर भासा सोऊ बात निबरी ।—सूर (शब्द०) । १. क्षतम होना । भिट जाना । खेत रहना । समाप्त होना । उ०—बरी एक आरत जा, भा असवारन मेल । लूझि कुबर सब निबरे गोरा रहा अकेल ।—जायसी ग्रं०, पृ० २११ ।

निबर्हण^१—संज्ञा पुं० [सं०] मारण । नष्ट करने की क्रिया या भाव ।

निबर्हण^२—वि० विनाशक । नष्टकारक ।

निबल ५) —वि० [सं० निर्वल] निर्वल । दुर्बल । उ०—कैसे निबल
निबल जन करि सबजन सों बैर ।—समाविनास (शब्द०) ।

निबलई, निबलई—संज्ञा स्त्री० [हि० निबल] निर्वलता ।

निबल ६) —संज्ञा पु० [सं० निबल] समूह । भुंड । दे० 'निबल' ।
उ०—मनहु उदगल निबल आए मिलत तम तजि देणु ।—
तुलसी (शब्द०) ।

निबलना—क्रि० प्र० [हि० निबलना] १. पार पाना । निकलना ।
बचना । छुट्टी पाना । छुटकारा पाना । उ०—(क) येरे हठ
क्यों निबलन पैहो ? अब तो रोकि सबनि को राख्यो कैसे के
तुम पैहो ?—सुर (शब्द०) । (ग) कैसे निबलै निबल जन
करि सबजन सों बैर ।—समाविनास (शब्द०) । २. निर्वाह
होना । बराबर चला चलना । किसी स्थिति, संबंध आदि का
लगातार बना रहना । पालन या रक्षा होना । जैसे, साथ
निबलना, मित्रता निबलना, प्रीति निबलना । उ०—(क)
महमद बारिज मीत मिलि भए जो एकहि चित्त । यहि जन साथ
जो निबलना मोहि जन बिछुरहि कित्त ।—जायसी (शब्द०) ।
(ख) काल बिलोकि कहै तुलसी मन में प्रभु की परतीति
अपारी । जन्म जहाँ तहाँ रावरे सों निबलै भरि देह सनेह
सगार ।—तुलसी (शब्द०) । ३. बराबर होता चलना ।
पूरा होना । सपरना । जैसे,—यहाँ का काम तुमसे नहीं
निबलैगा । ४. किसी बात के अनुसार निरंतर व्यवहार होना ।
पालन होना । पूरा होना । चरितार्थ होना । जैसे,—बचन
निबलना, प्रतिज्ञा निबलना ।

संयो० क्रि०—जाना ।

निबलहुरा—संज्ञा पु० [हि० नि + बहुरना] वह स्थान जहाँ से जाकर
कोई न लौटे । यमद्वार ।

निबलहुरा—वि० [हि० नि + बहुरना] जो चला जाय और न लौटे ।
सदा के लिये चला जानाशाला । (गामी) ।

निबाज ७) —संज्ञा स्त्री० [फा० नमाज] दे० 'नमाज' । उ०—बाग
निबाज न होय जेह, अनन कया हरि बेस ।—ह० रासो,
पृ० ५६ ।

निबाह—संज्ञा पु० [सं० निर्वाह] १. निबाहने की क्रिया या भाव ।
रहना । रहायस । गुजारा । कालसेर । किसी स्थिति के बीच
जीवन व्यतीत करने का कार्य । जैसे,—बढ़ी तुम्हारा निबाह
नहीं हो सकना । उ०—(क) उषाहि प्रेन न होय निबाह ।—
तुलसी (शब्द०) । (ख) लोक लाट परलोक निबाह ।—
तुलसी (शब्द०) । २. लगातार साधन । (किसी बात को)
चलाए चलन या जारी रखने का कार्य । किसी बात के
अनुसार निरंतर व्यवहार । संबंध या परंपरा की रक्षा ।
जैसे,—(क) प्रीति का निबाह, दोस्ती का निबाह । (ख)
काम तो मैंने अपने ऊपर ले लिया पर निबाह तुम्हारे हाथ
है । ३. चरितार्थ करने का कार्य । पूरा करने का कार्य ।
पालन । साधन और पूति । जैसे, प्रतिज्ञा का निबाह । ४.
छुटकारे का ढंग । बचाव का रास्ता । जैसे,—बड़ी धक्कन में
फंसे है, निबाह नहीं दिखाई देता ।

निबाहक—वि० [सं० निर्वाहक] निबाह करनेवाला ।

निबाहना—क्रि० प्र० [सं० निर्वाह] १. निर्वाह करना । (किसी
बात को) बराबर चलाए चलना । जारी रखना । बनाए
रखना । संबंध या परंपरा की रक्षा करना । जैसे, नाचा
निबाहना, प्रीति निबाहना, मित्रता निबाहना, धर्म निबाहना ।
उ०—(क) पहिले सुख नेहहि जब जोरा । पुनि होय कठिन
निबाहत जोरा ।—जायसी (शब्द०) । (ख) निबाहो बाह
गहे की लाव ।—सुर (शब्द०) । २. पूरा करना । पालन
करना । चरितार्थ करना । किसी बात के अनुसार निरंतर
व्यवहार करना । जैसे, वचन निबाहना । उ०—यह परतिज्ञा
जो न निबाहो । ती तनु अपनो पावक दाहो ।—सुर
(शब्द०) । ३. निरंतर साधन करना । बराबर करते जाना ।
सपराना । जैसे,—प्रभी काम न छोड़ो थोड़े दिन और
निबाह दो ।

संयो० क्रि०—देना ।

निबिड़—वि० [सं० निबिड] दे० 'निबिड़' ।

निबुआ ८) —संज्ञा पु० [हि०] दे० 'नीबू' ।

निबुकना ९) —क्रि० प्र० [सं० निर्भुक्त, प्रा० निम्बुता, या सं०
निर्भुक्त] १. छुटकारा पाना । छूटना । बंधन से निकलना ।
उ०—(क) निबुकि चढ़ेउ कपि कनक घटारी । गई सभीत
निसाधर नारी ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) सुधीबहु के मुरझा
बीती । निबुकि गयउ तेहि मृतक प्रतीती ।—तुलसी (शब्द०) ।
(ग) बीठि निसेनी चढ़ि चली ललचि सुचित मुझ गौर ।
चिबुक गडारे खेत मैं निबुकि गिरयो चित जोर ।—शुं० संत०
(शब्द०) । २. बंधन आदि का खिसकना । ३. समाप्त होना ।
खत्म होना । संपन्न होना ।

संयो० क्रि०—जाना ।

निबेड़ना १०) —क्रि० प्र० [सं० निवृत्त, प्रा० निबिडु ?] १. (बंधन
आदि) छुड़ाना । उन्मुक्त करना । बंधो, फंसी, या लगी वस्तु
को अलग करना । २. परस्पर मिली हुई वस्तुओं की अलग
अलग करना । बिलगाना । छोटाना । चुनना ३. उलझन दूर
करना । सुलझाना । लगाव फेंसाव दूर करना । ४. निबटाना ।
निर्णय करना । तै करना । फैसला करना । ५. छोड़ना ।
हटाना । दूर करना । अलग करना । ६. पूरा करना ।
निबटाना । सपराना । भुगताना ।

निबेड़ा ११) —संज्ञा पु० [हि० निबेड़ना] १. छुटकारा । मुक्ति । २.
बचाव । उद्धार । ३. एक में मिली जुली वस्तुओं के अलग
होने की क्रिया या भाव । बिलगाव । छोट । चुनान । ४.
सुलझाने की क्रिया या भाव । उलझन या फेंसाव दूर होना ।
५. त्याग । ६. निबटेरा । भुगतान । समाप्ति । चुकती । ७.
निर्णय । फैसला ।

निबेरना १२) —क्रि० प्र० [सं० निवृत्त, प्रा० निबिडु अथवा हि०]
१. (बंधन आदि) छुड़ाना । उन्मुक्त करना । बंधो, फंसी या
लगी वस्तु को अलग करना । उ०—धीरेन की तोहि का परी
अपनी भाव निबेर ।—कबीर (शब्द०) । २. एक में मिली
हुई वस्तुओं को अलग अलग करना । बिलगाना । छोटाना ।

चुनना । उ०—(क) नैना अए पराए चेरे । नंदबाल के रंग गए रंगि सब नाही बस मेरे । यद्यपि जतन किए जुगवति हों, श्यामल शोभा घेरे । तउ मिलि गए दूध पानी ज्यों निबरत नाहि निबेरे ।—सूर (शब्द०) । (ख) आगे अए हनुमान पाखे नील जांबवान लंका के निसंक सूर मारे हैं निबेरि के ।—हनुमान (शब्द०) । ३. उलझन दूर करना । सुलझाना । फँसाव या झड़वन दूर करना । ४. निर्णय करना । तै करना । फैसला करना । उ०—(क) जेहि कोतुक बक स्वान को प्रभु म्याव निबेरो । तेहि कोतुक कहिए कृपालु तुलसी है मेरो ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) प्रण करि के झूठी करि डारत सकल धरम तेहि केरो । जात रसातल जनु ते सुरतहि वेद पुरान निबेरो ।—रघुराज (शब्द०) । ५. छोड़ना । त्यागना । तजना । उ०—मारी मरे कुसंग की ज्यों केरे ठिग बेर । बहु हालै बहु जोरइ साकट संग निबेर ।—कबीर (शब्द०) । ६. दूर करना । हटाना । मिटाना । उ०—पिटै न बिषति भजे बिनु रघुपति श्रुति संदेह निबेरो ।—तुलसी (शब्द०) । ७. (काम) पूरा करना । निबटाना । सपराना । भुगताना । उ०—प्रमुदित मुनिहि भावरी फेरी । नेग सहित सब रीति निबेरी ।—तुलसी (शब्द०) ।

निबेरा—संज्ञा पु० [हि० निबेरना] १. छुटकारा । मुक्ति । उद्धार । बचाव । उ०—व्याकुल प्रति भवजाल बीच परि प्रभु के हाथ निबेरो ।—सूर (शब्द०) । २. मिली जुली वस्तुओं के घनग घलग होने कि क्रिया या भाव । बिलगाव । छिट । चुनाव । ३. सुलझने की क्रिया या भाव । उलझन या फँसाव का दूर होना । ४. निर्णय । फैसला । निबटेरा । उ०—(क) जैसे बरत भवन तजि भजिए तैसहि गए फेरि नहीं हेरयो । सूर श्याम रस रसे रसीले पाकी करे निबेरो ।—सूर (शब्द०) । (ख) ब्राह्मण नृपति युधिष्ठिर केरो । जानै सब गुन जान निबेरो ।—सबल (शब्द०) । ५. (काम का) निबटेरा । भुगतान । समाप्ति । पूर्ति ।

निबेसित(पु)—वि० [सं० निबेसित] दे० 'निबेसित' ।

निबेहना(पु)—क्रि० सं० [हि०] दे० 'निबेरना' ।

निबोध—संज्ञा पु० [सं०] १. समझना । सीखना । जानना । २. बतलाना । समझाना [को०] ।

निबोधन—संज्ञा पु० [सं०] समझने या बतलाने की क्रिया । निबोध [को०] ।

निबोली(पु)—संज्ञा स्त्री० [हि० नीम] दे० 'निबोली' । उ०—पाप गुलीचा धरम निबोली देखि देखि फल बीज रे ।—रे० बानी, पृ० ४० ।

निबोरी(पु)—संज्ञा स्त्री० [हि० निमोरी] दे० 'निबोली' । उ०—(क) बाक छाड़ि कै तजि कटुक निबोरी को अपने मुख लेई । गुणनिधान तजि सूर सावरे को गुणहीन निबेई ।—सूर (शब्द०) । (ख) तो रस राच्यो धान बस कह्यो कुटिल मति कर । जीम निबोरी क्यो मने बोरी बाल कजूर ।—बिहारी (शब्द०) ।

निबोली—संज्ञा स्त्री० [सं० निम्ब + फल या वृत्तुल] निबकीरी । नीम का फल ।

निभ^१—संज्ञा पु० [सं०] १. प्रकाश । प्रभा । चमक दमक । २. छल कपट (को०) । ३. व्याज । बहाना (को०) । ४. प्राकट्य । धर्मव्यक्ति (को०) ।

निभ^२—वि० तुल्य । समान । उ०—छतत्र नयन उर बाहु बिसाला । हिमगिरि निभ तनु कछु एक बाला ।—तुलसी (शब्द०) ।

निभना—क्रि० घ० [हि० निबहना] १. पार पाना । निकलना । बचना । छुटो पाना । छुटकारा पाना । २. निर्बाह होना । बराबर चला चलना । आरो रहना । लगातार बना रहना । संवंध, परंपरा आदि की रखा होना । जैसे, (क) साथ निभना, प्रीति निभना, मित्रता निभना, नाता निभना । (ख) इनकी उनकी मित्रता कैसे निभेगी ? ३. किसी स्थिति के अनुकूल जीवन व्यतीत होना । गुजारा होना । रद्दायस होना । जैसे,—(क) नुम वहाँ निभ नहीं सकते । (ख) जैसे इतने दिन निभा जैसे ही थोड़े दिन जोर सही । ४. बराबर होता चलना । पूरा होना । सपरना । भुगतना । जैसे,—यहाँ का काम नुमसे नहीं निभेगा । ५. किसी बात के अनुसार निरंतर व्यवहार होना । पालन होना । पूरा होना । चरितार्थ होना । जैसे, वचन निभना, प्रतिज्ञा निभना । दे० 'निबहना' । ६. समाप्त होना । बुझना । उ०—चलत पथ, चरण बितल, दीप निभा, हवा लगी ।—वेला, पृ० ५० ।

संयो० क्रि०—जाना ।

निभरम(पु)^१—वि० [सं० निभ्रम] भ्रमरहित । जिस या जिसमें किसी प्रकार की शंका न हो । जिसे या जिसमें कोई खटका न हो ।

निभरम(पु)^२—क्रि० वि० निःशक । बेखटक । बेधड़क ।

निभरमा(पु)—वि० [सं० निभ्रम] जिसका परदा ढका न हो । जिसकी कलाई खुल गई हो । जिसकी चाप या मयोदा न रह गई हो । जिसका विश्वास उठ गया हो ।

निभरमी(पु)—वि० [हि० निभरम + ई] दे० 'निभरम' । उ०—हुँडवाई गाड़ी क हूँ जोर । नगदी माल निभरमी ठोर ।—मवं०, पृ० २४ ।

निभरोसा—वि० [हि० नि+मरोसा] [संज्ञा निभरोसा] जिसे भरोसा न हो । निराश । हताश ।

निभरोसी(पु)^१—वि० [हि० नि (=नही)+मरोसा] १. जिसे कोई भरोसा न रह गया हो । निराश । हताश । २. जिसे किसी का आसरा भरोसा न हो । निराश्रय । निराधार । बिना सहारे का । हीन । उ०—कीन्हैसि कोई निभरोसी कीन्हैसि कोई बरियार । छारहि ते सब कीन्हैसि पुनि कीन्हैसि सब छार ।—जायसी (शब्द०) ।

निभाउ(पु)—संज्ञा पु० [हि०] दे० 'निबाह' ।

निभागा(पु)—वि० [हि० नि+भाग, सं० भाग्य] अभागा । बदकिस्मत ।

निभाना—क्रि० प्र० [हि० निबाहना] १. निर्बाह करना। (किसी बात को) बराबर चलाए चलना। बनाए धीरे जारी रखना। संबंध या परंपरा रखित रखना। जैसे, नाता निभाना, प्रीति निभाना, धर्म निभाना। २. किसी बात के अनुसार निरंतर व्यवहार करना। चरितार्थ करना। पूरा करना। पालन करना। जैसे, प्रतिज्ञा निभाना, वचन निभाना। उ०—सारंग वचन कन्नो करि हरि को सारंग वचन निभावति।—सूर (शब्द०)। ३. निरंतर साधन करना। बराबर करते जाना। मपरगना। चलाता। भुगताना। जैसे,—सभी काम न छोड़ो, थोड़े दिन धीरे निभा दो।

संयो० क्रि०—देना।

निभार(५) —संज्ञा पु० [सं० निभाजन] देखना। बर्णन। उ०—जमुन तट भए बिष पसार। राधे मेनदे खेलन देखि निभार।—विद्यापति, पृ० १२६।

निभाजन संज्ञा पु० [सं०] दर्शन। प्रत्यक्षीकरण [को०]।

निभाव(५) संज्ञा पु० [सं० निर्बाह] १० 'निबाह'। उ०—भूतक छोड़ निभाव उर धारो।—कबीर सा०, पृ० ६।

निबाह(५) संज्ञा पु० [सं० निर्बाह] १० 'निबाह'। उ०—मेघा राहु निबाह कज, बिलो धीरेग साह। ग्युं सामंज्र अजाद सूं यू रहियो सम दाह।—रा० क०, पृ० १७।

निभूत—वि० [सं०] भूत। व्यतीत। बीता हुआ।

निभूत^१—वि० [सं०] १. बरा हुआ। रखा हुआ। धृत। २. निरचल। धटन। ३. गुप्त। छिपा हुआ। ४. बंद किया हुआ। ५. निश्चित। स्थिर। ६. नम्र। विनीत। ७. शांत। अनुदिन। धीरे। ८. निर्जन। एकांत। सूना। उ०—दो काठों की संधि बीच उस निभूत युका में बने। अग्निशिला बुक गई, जागने पर जैसे सुक सपने।—कामायनी, पृ० १३६। ९. भरा हुआ। पूर्ण। युक्त। (समाप्त में प्रयुक्त)। १०. प्रसन्न होने के निकट (सूर्य या चंद्रमा) ११. धीरे। धैर्यशाली (को०)। १२. घाघन। आच्छादित (को०)। १३. बीमा। मंद। (को०)।

यो०—निभूतात्मा—अविचल। धीरे।

निभूत^२—संज्ञा पु० नम्रता। विनीतता (को०)।

निभै(५)—वि० [सं० निर्भय] १० 'निर्भय'। उ०—करनहरा दुरनेस कीवचन, तेजस देवे आब निभै तन।—रा० क०, पृ० ३१२।

निभ्रांत(५)—वि० [सं० निभ्रांति] १० 'निभ्रांत'।

निमंत्रण—संज्ञा पु० [सं० निमन्त्रण] [वि० निर्मंत्रित] १. किसी कार्य के लिये नियत समय पर आने के लिये ऐसा अनुरोध जिसका भक्षण पालन न करने से दोष का भागी होना पड़ता है। बुलावा। साह्वान।

क्रि० प्र०—करना।—देना।

२. भोजन आदि के लिये नियत समय पर आने का अनुरोध। आने का बुलावा। न्योता।

क्रि० प्र०—करना। देना।

विशेष—'आमंत्रण' और 'निमंत्रण' में यह भेद है कि निमंत्रण का पालन न करने पर दोष का भागी होना पड़ता है।

निमंत्रणपत्र—संज्ञा पु० [सं० निमन्त्रणपत्र] वह पत्र जिसके द्वारा किसी पुरुष से भोज, उत्सव आदि में सम्मिलित होने के लिये अनुरोध किया गया हो।

निमंत्रणा(५)—क्रि० प्र० [सं० निमन्त्रण] न्योता देना। उ०—पुनि पुनि नृपहि निर्मनेठ मुनिवर। माम्यो नृप तब सासन मुनि कर।—रघुराज (शब्द०)।

निमंत्रित—वि० [सं० निर्मंत्रित] जो निमन्त्रित किया गया हो। जिसे न्योता दिया गया हो। आहूत।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

निम—संज्ञा पु० [सं०] जलाका। शंकु। कील।

निमक—संज्ञा पु० [हि०] १० 'नमक'।

यो०—निमकहराम(५) = १० 'नमकहराम'। निमकहरामी(५) = (१) १० 'नमकहरामी'। (२) १० 'नमकहराम'। उ०—चाकर रहै हज़र होइ ना निमकहरामी।—पलटू, पृ० ४५।

निमकी—संज्ञा की० [फ़ा० नमक] १. नीबू का अचार। २. ची में तबी हुई मैदे की मोहनहार नमकीन टिकिया।

निमकौड़ी—संज्ञा की० [हि० नीम] १० 'निबकौरी', 'निबीनी'।

निमग्न—वि० [सं०] [वि० की० निमग्ना] १. डूबा हुआ। मग्न। २. तन्मय।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

निमज्जना—संज्ञा पु० [हि० नि + जञ्ज] ऐसा समय जिसमें कोई काम न हो। अवकाश। फुरसत। छुट्टी।

निमज्जक—संज्ञा पु० [सं०] समुद्र आदि जलाशयों में डूबी बगाने-वाला। गोते मारकर समुद्र आदि के नीचे की चीजों को निकालकर जीविका करनेवाला।

निमज्जथु—संज्ञा पु० [सं०] १. गोता लगाना। डूबने की क्रिया। २. सोना। लयन करना (को०)।

निमज्जन—संज्ञा पु० [सं०] डूबकर किया जानेवाला स्नान। भव-गाहन। उ०—कतहुं निमज्जन कतहुं प्रनामा। कतहुं बिलोकत मन अभिरामा।—मानस, २। ३११।

निमज्जना(५)—क्रि० प्र० [सं० निमज्जन] डूबना। गोता लगाना। भवगाहन करना। उ०—(क) लोक समुद्र निमज्जत काढ़ि कपीस कियो जग जानत जैसे।—तुलसी (शब्द०)। (ख) देखि मिटै अपराध अगाध निमज्जत साधु समाज भलो रे।—तुलसी (शब्द०)।

निमज्जित—वि० [सं०] १. डूबा हुआ। मग्न। निमग्न। २. स्नात। नहाया हुआ।

निमटना(५)—क्रि० प्र० [हि०] १० 'निबटना'।

निमटाना(५)—क्रि० प्र० [हि०] १० 'निबटाना'।

निमटेरा(५)—संज्ञा पु० [हि०] १० 'निबटेरा'।

निमटना(५)—क्रि० प्र० [सं० निभूत] चुकना। समाप्त होना। उ०—घोषादार बोल्यो आँखि देखो तो निमटि गो।—बिहारी, पृ० ४८।

निमता—वि० [हि० नि + माता] जो माता न हो । जो उन्मत्त न उ०—माते निमते गरजहि बाधे । निसि दिन रहैं महुवत कथे ।—जायसी (शब्द०) ।

निमद्—संज्ञा पु० [सं०] मंद स्वर में किया गया उच्चारण जो स्पष्ट हो (को०) ।

निमन—वि० [हि०] समान । उ०—जमीन है जो गाजर की जड़ के निमन । व पानी में ज्यों के कंवल के निमन ।—दक्खिनी०, पु० ३३७ ।

निमय—संज्ञा पु० [सं०] वस्तुविनिमय । पदार्थों का बदल बदल ।

विशेष—गौतम धर्मसूत्र में लिखा है कि ब्राह्मण गो, तिल, दूध, दही, फल, मूल, फूल, ओषधि, मधु, मांस, वस्त्र, सन, देशम आदि पदार्थों का मुद्रा लेकर विक्रय न करे । यदि उनको ऐसा करने की जरूरत हो पड़े तो वे विनिमय कर लें । अन्नादि का अन्नादि से और पशुओं का पशुओं से ही बदला किया जाय । नमक तथा पक्वान्न के लिये वह नियम नहीं है । कच्चा पदार्थ लेकर पक्वान्न लिया जाय । तिलों के क्रय विक्रय में चाय के मटल ही नियम हैं ।

निमरी—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की कपास जो मध्यभारत में होती है । बरही । बेंगई ।

निमष—संज्ञा पु० [सं० निमिष] दे० 'निमिष' । उ०—निमष एक स्यारा नहीं, तन मन मंथि समाह ।—दादू०, पु० ३६ ।

निमस्कार—संज्ञा पु० [सं० नमस्कार] दे० 'नमस्कार' । उ०—ग्रंथकरता गुण कू भी इष्ट देवता सु अभेद करिके, ग्रंथ की विचनता दूरि करिके के हेत बहुरि निमस्कार करत है ।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पु० ४८३ ।

निमाज—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० नमाज] मुसलमानों के मत के अनुसार ईश्वर की प्रार्थना जो दिनरात में पाँच बार की जाती है । इसलाम मत के अनुसार ईश्वरप्रार्थना ।

क्रि० प्र०—गुजारना ।—पढ़ना ।

निमाजगह—संज्ञा पु० [फ़ा० नमाजगह] नमाज पढ़ने की जगह । नमाजगाह । उ०—दारिगह, बारिगह निमाजगह जोधारगह जोरम ।—कीर्ति०, पु० ४० ।

निमाजबंद—संज्ञा पु० [फ़ा० नमाजबंद] कुस्ती का एक पेंच जिसमें जोड़ के दाहिनी ओर बैठकर उसकी दाहिनी कलाई को अपने दाहिने हाथ से बाँधा जाता है और फिर अपना बायाँ पैर उसकी पीठ की ओर से लाकर उसकी दाहिनी मुड़ा की इस प्रकार बाँध लिया जाता है कि वह वृत्त के बीचोबीच आ जाती है । इसके बाद उसके दाहिने घँगूठे को अपने दाहिने हाथ से बाँधते हुए बाँए हाथ से उसकी बाँधिया पकड़कर उसे उलटकर चित कर देते हैं ।

विशेष—इस पेंच के विषय में प्रसिद्ध है कि इसके आधिकारता इसलामी मस्जिदों के आचार्य अमी साहब हैं । एक बार किसी जंगल में एक पैल से उन्हें मस्जिद करना पड़ा । उसे जीके सो वे से आए, पर चित करने के लिये समय न था,

क्योंकि नमाज का समय बीत रहा था । इसलिये उन्होंने उसे इस प्रकार बाँधा कि उसे उसी स्थिति में रखते हुए नमाज पढ़ सकें । जब वे जाँचे होते तब उसे भी खड़ा होना पौर जब बैठते या झुकते तब बैठना या झुकना पड़ता । यही इसका निमाजबंद नाम पढ़ने का कारण है ।

निमाजी—वि० [फ़ा० नमाज] १. जो नियमपूर्वक नमाज पढ़ता हो । २. दीनदार । धार्मिक (मुसलमान) ।

निमाणी—वि० [हि० निमानी] मान से रहित । सरल चित्त-वाला । विनीत । दे० 'निमाना' । उ०—सहजे रहे निमाणी सुता । नानक कहै सोई अवधूता ।—प्राण०, पु० १०१ ।

निमान—संज्ञा पु० [सं० निम्न = गड्ढा (वेद)] या निपान १. नीचा स्थान । गड्ढा । २. जलाशय । उ०—जो जहूँ दंडक जनस्थाना । सेल विस्तर सर सरित निमाना ।—(शब्द०) ।

निमान—संज्ञा पु० [सं०] १. माप । २. कीमत । मुख्य (को०) ।

निमाना—वि० [सं० निम्न] [दि० नी० निमानी] १. नीचा । ढालुघाँ । नीचे की ओर गया हुआ । उ०—फिरत न पाछे नीर ज्यों भूमि निमानी जाय । सो गति मो मन की मई कीजे कोन उपाय ।—लक्ष्मण सिंह (शब्द०) । २. नम्र । विनीत । सरल स्वभाव का । सीधा साधा । मोलाभावा । ३. दम्ब ।

निमि—संज्ञा पु० [सं०] १. महाभारत के अनुसार एक ऋषि जो दत्तात्रेय के पुत्र थे । २. राजा इक्ष्वाकु के एक पुत्र का नाम । इन्हीं से मिथिला का विदेह वंश चला । उ०—भए विनोचन चाव अचंचल । मनहु सकुचि निमि सजे लगंचल ।—तुलसी (शब्द०) ।

विशेष—पुराणों में लिखा है कि एक बार महाराज निमि ने सहस्रवार्षिक यज्ञ कराने के लिये वशिष्ठ जी को बुलाया । वशिष्ठ जी ने कहा मुझे देवराज इंद्र पहले से ही पंचशत वार्षिक यज्ञ में बरण कर चुके हैं । उनका यज्ञ कराके मैं आपका यज्ञ करा सकूँगा । वशिष्ठ के चले जाने पर निमि ने गौतमादि ऋषियों को बुलाकर यज्ञ करना प्रारंभ किया । इंद्र का यज्ञ हो जाने पर जब वशिष्ठ जी देवलोक से आए तब उन्हें मालूम हुआ कि निमि गौतम को बुलाकर यज्ञ कर रहे हैं । वशिष्ठ जी ने निमि के यज्ञमंडप में पहुँचकर राजा निमि को आप दिया कि तुम्हारा यह शरीर न रहेगा । वशिष्ठ के आप देने पर राजा ने भी वशिष्ठ को आप दिया कि आपका भी शरीर न रहेगा । दोनों का शरीर छूट गया । वशिष्ठ जी तो अपना शरीर छोड़कर मित्रावरण के बीच से उत्पन्न हुए । यज्ञ की समाप्ति पर देवताओं ने निमि को फिर उसी शरीर में रखकर अमर कर देना चाहा पर राजा निमि ने अपने छोड़े हुए शरीर में जाना नहीं चाहा और देवताओं से कहा कि शरीर के त्यागने में मुझे बड़ा दुःख हुआ है, मैं फिर शरीर नहीं चाहता । देवताओं ने उनकी प्रार्थना स्वीकार की और उनको मनुष्यों की आँखों की पलक पर जगह दी । उसी समय के निमि विदेह कहलाए और उनके बंशवाले भी इसी नाम से प्रसिद्ध हुए ।

३. जाँचों का मिचला । निमेष ।

निमित्त—संज्ञा पुं० [सं० निमित्त] दे० 'निमित्त' ।

निमित्त संज्ञा पुं० [सं०] १. हेतु । कारण । २. चिह्न । लक्षण । ३. शकुन । मगुन । ४. व्याज । बहाना (को०) । ५. उद्देश्य । फल की ओर लक्ष्य । जैसे, पुत्र के निमित्त यज्ञ करना ।

यौ०—निमित्तविद = शकुनशास्त्र का ज्ञाता । ज्योतिषी ।

निमित्तशास्त्र = शकुन ध्वजशकुन आदि को बतानेवाला शास्त्र ।

निमित्तक—वि० [सं०] किसी हेतु से होनेवाला । जनित । उत्पन्न । उ०—उदर निमित्तक बहुकृत वेपा ।—तुलसी (शब्द०) ।

निमित्तक—संज्ञा पुं० पुंवन का एक भेद । (कामसूत्र) ।

निमित्तकारण—संज्ञा पुं० [सं०] वह जिसकी सहायता और कर्तृत्व से कोई वस्तु बने । जैसे, बड़े के बनने के निमित्त कारण कुम्हार चाक, दंड, सूत्र इत्यादि । (न्याय शास्त्र) । विशेष—दे० 'कारण' ।

निमित्तकृत्—संज्ञा पुं० [सं०] काक । कोष्ठा (को०) ।

निमिराज(पु)—संज्ञा पुं० [सं०] १. निमिबंशी राजा जनक । उ०—दोउ समाज निमिराज रघुराज नहाने प्रात । बैठे सब बट बिटव तर मन मलीन कृष्णगत ।—तुलसी (शब्द०) । २. दे० 'निमि' ।

निमित्तवध—संज्ञा पुं० [सं०] बांधने आदि निमित्त से होनेवाला मरण । जैसे, गाय आदि का (को०) ।

निमित्त—संज्ञा पुं० [सं०] १. आँखों का टूटना । पलकों का गिरना । आँख मिचना । निमेष । २. उतना काल जितना पलक गिरने में लगता है । पलक मारने भर का समय । ३. सुश्रुत के अनुसार एक रोग जो पलक पर होता है । ४. विष्णु का एक नाम (को०) । ५. फूल का संपुटित होना या बंद होना (को०) ।

निमित्तक्षेत्र—संज्ञा पुं० [सं०] नेमवारण्य ।

निमित्तान्तर—संज्ञा पुं० [सं० निमित्त + अन्तर] पलक मारने भर का व्यवधान या अन्तर (को०) ।

निमित्तित—वि० [सं०] निमीलित । मिचा हुआ ।

निमीलन—संज्ञा पुं० [सं०] १. पलक मारना । निमेष । उ०—नेत्र निमीलन करनी मानो प्रकृति प्रबुद्ध लगी होने ।—कामायनी, पृ० २३ । २. मरण । ३. पलक मारने भर का समय । पल । क्षण । ४. ज्योतिष के अनुसार पूर्ण या अग्रस ग्रहण (को०) ।

निमीला, निमीलिका—संज्ञा स्त्री [सं०] १. आँख की भ्रूषक । निमीलन । २. व्याज । छल । ३. देखकर अनदेखा करना (को०) ।

निमीलित—वि० [सं०] १. बंद । ढका हुआ । २. मृत । मरा हुआ । ३. सुन्न । जड़ीमूत (को०) । ४. सुप्त । गायब । ५. अंधकारा-च्छन्न । अंधकार में निमग्न (को०) ।

निमुञ्चिया—वि० [हि० नि + मुञ्च + ह्या (प्रत्य०)] बिना मुँछ-वाना । उ०—यद्यपि उसकी वह उन्न बीत चुकी थी जिस उस के निमुञ्चिये मुँछे से दूल्हे हमारे समाज में बड़े उत्साह से देखे जाते हैं ।—हराबी, पृ० २६ ।

निमुह—वि० [हि० नि (= नहीं) + मुह] [वि० स्त्री० निमुही]

१. जिसे बोलने का मुँह या साहस न हो । २. न बोलनेवाला । कम बोलनेवाला । चुपका ।

निमुँद(पु)—वि० [हि० मुँदना] मुँदा हुआ । मुद्रित । बंद । उ०—कोड़ा भाँसु बूँद, कसि साँकर बहनी सजल । कीने बदन निमुँद, दग मखिब डारे रहल ।—बिहारी २०, श्लो० २३० ।

निमुँद(पु)—वि० [हि० नि (= नहीं) + मुँदना] जो मुँदा न हो । खुला ।

निमूल—वि० [सं०] १. मूलरहित । २. प्रकाशन ।

निमेष—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'निमेष' ।

निमेट(पु)—वि० [हि० नि + मिटना] न मिटनेवाला । बना रहनेवाला । उ०—काह कहीं हों ओहि सों जेह दुख कीन्ह निमेट । तेहि दिन आगि करे वह जेहि दिन होइ सो भेंट ।—जायसी (शब्द०) ।

निमेय—संज्ञा पुं० [सं०] विनिमय । (वस्तुओं की) बदला बचली (को०) ।

निमेरा(पु)—संज्ञा पुं० [हि० निबटेरा] दे० 'निबटेरा' । उ०—नीर छोर का मरम ना जानहि केहि बिधि होइ निमेरा ।—सं० दरिया, पृ० १०६ ।

निमेष—संज्ञा पुं० [सं०] १. पलक का गिरना । आँख का भ्रूषकना । उ०—(क) कहा करी नीके करि हरि को कप रेख वहि पावति । संगहि संग फिरति निसि वासर नैन निमेष न नावति ।—सूर (शब्द०) । (ख) मो डर ते डरपे सुरराजहु खोवत नैन लगाय निमेष ।—हनुमान (शब्द०) ।

किं प्र०—लगाना ।

२. पलक मारने भर का समय । पलक के स्वभावतः उठने और गिरने के बीच का काल । उतना बक्त जितना पलकों के उठकर फिर गिरने में लगता है । पल । क्षण । ३. आँख का एक रोग जिसमें आँखें फड़कती हैं । ४. एक वक्ता का नाम (महाभारत) ।

यौ०—निमेषद्युत्, निमेषवृत् = जुगनू ।

निमेषक—संज्ञा पुं० [सं०] १. पलक । २. लघोत् । जुगनू ।

निमेषकृत्—संज्ञा स्त्री [सं०] विद्युत् । बिजली ।

निमेषण—संज्ञा पुं० [सं०] पलक गिरना । आँख मुँदना ।

निमोन्धी—संज्ञा स्त्री [सं०] राक्षस विशेष ।

निमोना—संज्ञा पुं० [सं० नवान्न] चने या मटर के पिसे हुए हरे दानों को हलदी मसाले के साथ ची में मूँदकर बनाया हुआ रसेदार व्यंजन । उ०—ककरी, ककरी भी कचवारपो । सरस निमोननि स्वाद सँवारयो ।—सूर (शब्द०) । (ख) बहुत मिरिच दे कियो निमोना । देसन के बस बीसक बोना ।—सूर (शब्द०) ।

निमोनी—संज्ञा स्त्री [सं० नवान्न] वह दिन जब ईश पहले पहल काटी जाती है ।

निम्न—वि० [सं०] १. नीचा । २. बहुरा । गंभीर ।

यौ०—निम्नवर्ग = समाज का निचला या पिछड़ा हुआ वर्ग ।

निम्नग—संज्ञा पुं० [सं०] नीचे जानेवाला ।

निम्नगत—संज्ञा पुं० [सं०] नीचा स्थान [को०] ।

निम्नगा—संज्ञा पुं० [सं०] नदी ।

निम्ननाभि—वि० [सं०] दुबला पतला । कुण्ड [को०] ।

निम्नयोधी—वि० [सं० निम्नयोधिन्] किले के नीचे से या नीची जमीन पर से लड़नेवाला । वि० दे० 'स्थलयोधी' ।

निम्नलिखित—वि० [सं०] ३० 'निम्नांकित' ।

निम्नांकित—वि० [सं० निम्न+अङ्कित] नीचे लिखा हुआ । निम्न-लिखित ।

निम्नारण्य—संज्ञा पुं० [सं०] पहाड़ों की घाटी [को०] ।

निम्नोन्नत—वि० [सं०] ऊबड़ खाबड़ । जो समतल न हो । विषम [को०] ।

निम्नर्त—वि० [हि०] दे० 'नीमन' ।

निम्नल(पु)—वि० [सं० निर्मल, प्रा० निम्नल] स्वच्छ । निर्मल । साफ । उ०—सरिता सर निम्नल नीर बहै ।—हु० रासो, पृ० २१ ।

निम्नलुकि—संज्ञा स्त्री० [सं०] सूर्यास्त [को०] ।

निम्नोच्च—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य का अस्त होना ।

निम्नोच्चनी—संज्ञा पुं० [सं०] वरुण की नगरी का नाम जो मानसोत्तर पर्वत के पश्चिम है ।

निम्नोच्चा—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक अक्षरा का नाम ।

नियंतव्य—वि० [सं० नियन्तव्य] नियमित होने योग्य । प्रतिबद्ध होने योग्य । शासन योग्य ।

नियंता—वि०, संज्ञा पुं० [सं० नियन्तृ] [स्त्री० नियन्त्री] १. नियम बाँधनेवाला । व्यवस्था करनेवाला । कायदा बाँधनेवाला । २. कार्य को चलावेवाला । विधायक । ३. शिक्षक । नियम पर चलानेवाला । शासक । ४. सारथी (को०) । ५. जोड़ा फेरनेवाला । जोड़ा निकालनेवाला । ६. विष्णु ।

नियंत्रक—वि० [सं० नियन्त्रक] नियंत्रण करनेवाला । नियम की व्यवस्था करनेवाला । कार्य को चलानेवाला ।

नियंत्रण—संज्ञा पुं० [सं० नियन्त्रण] १. नियमन । रोक । २. शासन । प्रतिबंधन । ३. सरकार द्वारा किसी वस्तु के मूल्य, समान वितरण आदि पर लगाया जानेवाला प्रतिबंध । कंट्रोल ।

नियन्त्रित—वि० [सं० नियन्त्रित] नियम से बँधा हुआ । कायदे का बाबंद । जिसकी क्रिया सर्वथा स्वच्छंद न हो । जिसपर किसी प्रकार का प्रतिबंध हो । प्रतिबद्ध ।

यौ०—नियन्त्रित भाव = सरकार द्वारा निर्धारित दर । कंट्रोल रेट ।

निय(पु)—वि० [सं० निज, प्रा० णिय] निज । उ०—निय तिय तो पिय पहुँ रमैं भावन चाहत आज । सावि भारती पाँउड़े अब प्रसि तज बहु काज ।—स० सप्तक, पृ० ३१४ ।

नियत^१—वि० [सं०] १. नियम द्वारा स्थिर । बँधा हुआ । परिमित । संयत । बद्ध । पाबंद । २. ठहराया हुआ । स्थिर । ठीक किया हुआ । निश्चित । मुकर्रर । तैनात । जैसे,—किसी काम के लिये

कोई दिन नियत करना, वेतन नियत करना । ३. नियोजित । स्थापित । प्रतिष्ठित । मुकर्रर । जैसे, किसी पद पर या काम पर नियत करना । ४. बाँधा हुआ । जैसे, नियतांजलि । ५. संयुक्त । सासक्त (को०) ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

यौ०—नियतकाल = जिसका समय निश्चित हो । नियतत्रत = पवित्र । धार्मिक ।

नियत^२—संज्ञा पुं० महादेव । शिव ।

नियत^३—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'नियत' ।

नियत व्यावहारिक काल—संज्ञा पुं० [सं०] ज्योतिष में पुण्य, दान, व्रत, आद्य, यात्रा, विवाह इत्यादि के लिये नियत समय ।

विशेष—ज्योतिष में कालमान नौ प्रकार के माने गए हैं—सौर, सावन, चांद्र, नाक्षत्र, पित्र्य, दिव्य, प्राजापत्य (मन्वन्तर), ब्राह्म (कल्प), और बाह्वस्पर्य । इनमें से ऊपर लिखी बातों के लिये तीन प्रकार के कालमान लिए जाते हैं—सौर, चांद्र और सावन । संक्रांति, उत्तरायण, दक्षिणायन आदि पुण्यकाल सौर काल के अनुसार नियत किए जाते हैं । तिथि, करण, विवाह, सौर, व्रत, उपवास और यात्रा इत्यादि में चांद्र काल लिया जाता है । जन्म, मरण (सूतक), चांद्रायण आदि प्रायश्चित्त, यज्ञदिनाभिपति, वर्षाभिपति और ग्रहों की मध्य-गति आदि का निरुपेय सावन काल द्वारा होता है ।

नियतात्मा—वि० [सं० नियतात्मन्] अपने ऊपर प्रतिबद्ध रखनेवाला । संयमी । चित्तैर्द्रिय ।

नियतासि—संज्ञा स्त्री० [सं०] रूपक की वाँध व्यवस्थाओं में से एक । नाटक में अग्न्य उपायों को छोड़ एक ही उपाय से फलप्राप्ति का निश्चय । जैसे, किसी का यह कहना कि अब तो ईश्वर को छोड़ और कोई उपाय नहीं है, वे अवश्य फल देंगे (साहित्यदर्पण) ।

निश्चि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. नियत होने का भाव । बंधेज । बद्ध होने का भाव । २. ठहराव । स्थिरता । मुकर्ररी । ३. भाग्य । देव । अट्ट । ४. बँधी हुई बात । अवश्य होनेवाली बात । ५. पूर्वकृत कर्म का परिणाम जिसका होना निश्चित होता है । ६. आत्मसंयम (को०) । ७. षड् । प्रकृति (जैन) ।

यौ०—निश्चिन्त ।

नियतिवाद—संज्ञा पुं० [सं० नियति + वाद] नियति या भाग्य को प्रमुख माननेवाला सिद्धांत । भाग्य पर निर्भर रहनेवाला मत [को०] ।

नियतिवादी—वि० [सं० नियतिवादिन्] नियति या भाग्यवाद का सिद्धांत माननेवाला [को०] ।

नियती—संज्ञा स्त्री० [सं०] दुर्गा । भगवती ।

नियतेन्द्रिय—वि० [सं० नियतेन्द्रिय] इंद्रियों को बश में करनेवाला । चित्तैर्द्रिय ।

नियम—संज्ञा पुं० [सं०] १. विधि या निश्चय के अनुकूल प्रतिबंध । परिमिति । रोक । पाबंदी । नियंत्रण । जैसे,—तुम कोई काम विषम से नहीं करते ।

क्रि० प्र०—करना ।—बाँधना ।

विशेष—जैनग्रंथों में चीदह वस्तुओं के परिमाण बाँधने को नियम कहा है— जैसे, द्रव्यनियम, विनयनियम, उपानहनियम, तांबूल-नियम, आहारनियम, वस्त्रनियम, पुष्पनियम, वाहननियम, शयाननियम इत्यादि ।

२. वधाव । शासन । ३. बंधा हुआ क्रम । चला जाता हुआ विधान । परंपरा । दस्तूर । जैसे,—(कौ०) यहाँ तक आने का उनका नियम का नियम है । (ल) सवेरे उठने का नियम ।
क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

४. ठहराई हुई रीति । विधि । व्यवस्था । पद्धति । कायदा । कानून । आभ्यास । जैसे, ब्रह्मचर्य के नियम, व्यवहार के नियम, प्रकृति के नियम ।

क्रि० प्र०—करना ।—बाँधना । —होना ।

मुद्रा०—नियम का पालन = नियम के अनुकूल व्यवहार । कायदे की पाबंदी । नियम का भंग = नियम के प्रतिकूल आचरण ।

५. ऐसी बात का निर्धारण जिसके होने पर दूसरी बात का होना निर्भर किया गया हो । जतं । जैसे,—दानपत्र के नियम बहुत कड़े हैं ।

क्रि० प्र०—करना ।—रखना ।

६. किसी बात को बराबर करते रहने का संकल्प । प्रतिज्ञा । व्रत । जैसे,—आज से यह नियम कर लो कि झूठ न बोलेंगे ।

विशेष—योग के आठ अंगों में एक नियम भी है । शौच, संतोष, तपस्या, स्वाध्याय और ईश्वरप्रणिधान, इन सब क्रियाओं का पालन नियम कहलाता है । शौच दो प्रकार का होता है—बाह्य और आन्तरिक । जल, मिट्टी आदि से शरीर को साफ रखना बाह्य शौच है । कठुणा, मैत्री, भक्ति आदि सात्विक वृत्तियों को धारण करना आन्तरिक शौच है । आवश्यक से अधिक की इच्छा न करना ही संतोष है । तप से अभिप्राय है गरमी सरदी सहना, धर्मशास्त्रों में लिखे हुए 'कृच्छ्र बाधायण' आदि व्रतों का करना । सब कामों को ईश्वर के नाम पर (ईश्वरार्पण) करना ईश्वरप्रणिधान है । याज्ञवल्क्य स्मृति में इस नियम गिनाए गए हैं—स्नान, मोन, उपवास, यज्ञ-वेधपाठ, इन्द्रियनिग्रह, गुरुसेवा, शौच, अक्रोध और अग्रमाव ।

जैनशास्त्र में गृहस्थधर्म के अंतर्गत १२ प्रकार के नियम कहे गए हैं—आणान्तपात विरमण, सुवाचा विरमण, अदत्तदान विरमण, मैथुन विरमण, परिग्रह विरमण, दिग्गत, भोगोप-योग निवम, वनार्थ दंडनिषेध, सामयिक शिक्षाव्रत, देवाव-काशिक शिक्षाव्रत, शौच और प्रतिपि संविभाय ।

७. एक अर्थात्कार जिसमें किसी बात का एक ही स्थान पर नियम कर दिया जाय अर्थात् उसका होना एक ही स्थान पर बतलाया जाय । जैसे,—हो तुम ही कलिकाश में गुनबाहक नरराय । ८. विष्णु । ९. महादेव । १०. अघात अंग की पूरक विधि (कौ०) । ११ कवियों की एक बर्णनपद्धति (कौ०) । १२. लक्षण ।

नियमसूत्र—वि० [सं० नियमसूत्र] नियमों से बंधा हुआ । नियमों के अधीन ।

नियमन—संज्ञा पु० [सं०] [वि० नियमित, नियम्य] १. नियमबद्ध करने का काय । कायदा बाँधना । २. शासन । ३. दमन । निग्रह (कौ०) । ४. किसी के बिचे वह विधान जिससे उसके सिवा अन्य का वारण हो सके (कौ०) ।

नियमनिष्ठा—संज्ञा स्त्री० [सं०] नियमों का तत्परतापूर्वक पालन (कौ०) ।

नियमपत्र—संज्ञा पु० [सं०] प्रतिज्ञापत्र । जतनामा ।

नियमपर—वि० [सं०] नियमानुवर्ती । नियमाधीन ।

नियमबद्ध—वि० [सं०] नियमों से बंधा हुआ । नियमों के अनुकूल । कायदे का पाबंद ।

नियमबन्धी—संज्ञा पु० [सं०] वह स्त्री जिसे मासिक धर्म नियमित रूप से होता हो (कौ०) ।

नियमसेवा—संज्ञा स्त्री० [सं०] बवार सुदी एकादशी से लेकर कार्तिक के अंत तक की जानेवाली विष्णु की उपासना (कौ०) ।

विशेष—इसी प्रकार आषाढ़ शुक्ल एकादशी से कार्तिक पर्यंत चातुर्मास्य नियमसेवा का विधान है ।

नियमस्थिति—संज्ञा स्त्री० [सं०] तपस्या ।

नियमावली—संज्ञा स्त्री० [सं० नियम + अवली] किसी वृत्त्या के संबंध में नियमों का संग्रह ।

नियमित—वि० [सं०] १. बंधा हुआ । क्रमबद्ध । २. नियमों के अंतर्गत लाया हुआ । नियमबद्ध । आकायदा । कायदे कानून के मुताबिक ।

नियमी—संज्ञा पु० [सं० नियमिन्] नियमपालन करनेवाला ।

नियम्य—वि० [सं०] १. नियमित करने योग्य । नियमों से बाँधने योग्य । प्रतिबद्ध होने योग्य । २. साक्षित होने योग्य । रोके या दबाए जाने योग्य ।

नियरी—अव्य० [सं० निकट, प्रा० निपट; तुल० अं० नियर] समीप । पास । नजदीक ।

नियराई—संज्ञा स्त्री० [हि० नियराना] निकटता । सामीप्य ।

नियराना—क्रि० अ० [हि० नियर से नामिक चातु] निकट पहुँचना । पास होना । नजदीक आना या जाना । उ०—आगे चले बहुरि रघुराई । ऋष्यभूक पर्यंत नियराई ।—तुलसी (शब्द०) ।

नियरी—अव्य० [सं० निकटे से हि०] २० 'नियर' ।

नियराई—वि० [सं० न्यायिन्] ३० 'न्यायी' । उ०—साधो मन कुँजड़ी नोक नियराई ।—कबीर ज०, भा० १, पृ० ४४ ।

नियोज—संज्ञा पु० [प्रा० नियाज] १. इच्छा । कांक्षा । २. प्रयोजन । जरूरत । ३. मुलाकात । साक्षात् । भेंट । ४. प्रार्थना । निवेदन । ५. प्रसाद । चढ़ावा । उ०—बिबाजे बिबे पाये साहुव नियाज ।

मुद्रा०—नियोज हासिल करना = (अदास्पद का) वर्जन होना ।

यो०—नियोजमंद = जरूरतमंद । कुछ चाहनेवाला ।

नियामन—संज्ञा पु० [सं०] २० 'निपातन' (कौ०) ।

नियान^१—संज्ञा पुं० [सं० निदान] घंट । परिणाम ।

नियान^२—अर्थ० घंट में । आखिर । उ०—(क) अविनि
उठे अरि बुझे नियाना । घुमा उठा उठि बीच बिसाना ।—
जायसी (शब्द०) । (ख) कोउ काहू का नाहि नियाना ।
मया मोह बाँधा उरभाना ।—जायसी (शब्द०) ।

नियान^३—संज्ञा पुं० [सं०] गोष्ठ [को०] ।

नियाम—संज्ञा पुं० [सं०] नियम ।

नियामक—वि० संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० नियामिका] १. नियम करने-
वाला । नियम या कायदा बाँधनेवाला । २. व्यवस्था करने-
वाला । विधान करनेवाला । प्रबंध करनेवाला । ३. मारने-
वाला । ४. पोतवाह । माफ़ी । मल्साह । ५. सारथि । रथ
हाँकने वाला (को०) ।

नियामकगण—संज्ञा पुं० [सं०] रसायन में धारे को मारनेवाली
प्रोवधियों का समूह ।

विशेष—सर्पाक्षी, बनककड़ी, सतावर, शंखाहुली, सरफोंका,
पुननंवा (मधुपुर्ना), मूसाकानी, मत्स्याक्षी, ब्रह्मदंडी,
शिल्लिकिनी (घुंघुची), अनंता, काकजंवा, काकमाची, पोतिक
(बोई का साग), बिष्णुकांठा, पीली कटसरेया, सहदेव्या,
महाबला, बला, नागबला, मूर्वा, चकबेड़, करंज (कंवा),
पाठा, नील, गोजिह्वा इत्यादि ।

नियामत—संज्ञा स्त्री० [अ० नेघमत] १. अलभ्य पदार्थ । दुर्लभ
पदार्थ । २. स्वादिष्ट भोजन । उत्तम भोजन । मजेदार खाना ।
३. धन । बोलत । माल ।

नियामिका—वि० स्त्री० [सं०] नियम करनेवाली । दे० 'नियामक' ।

नियार—संज्ञा पुं० [हिं० न्यारा ?] जोहरी या सुनारों की दुकान
का कड़ा कतवार ।

नियारना—क्रि० स० [सं० निवारण] दे० 'निवारना' ।

नियारा^१—वि० [सं० निमिकट, प्रा० निनिमड] [वि० स्त्री०
नियारी] अलग । जुदा । दूर । उ०—प्राज तेहू सो होइ
नियारा । प्राज प्रेम संग बला पियारा ।—जायसी (शब्द०) ।

नियारा^२—संज्ञा पुं० सुनारों या जोहरियों के यहाँ का कड़ा करकट ।

नियारिया—संज्ञा पुं० [हिं० न्यारा, न्यारा] १. मिली हुई वस्तुओं
को अलग अलग करनेवाला । २. सुनारों या जोहरियों की
राक, कड़ा करकट आदि में से माल निकालनेवाला । ३. चतुर
मनुष्य । आलाक आदमी ।

नियारे^१—अर्थ० [हिं०] दे० 'न्यारे' ।

नियाव^१—संज्ञा पुं० [सं० न्यव] दे० 'न्याव', 'न्याय' ।

नियासा^१—संज्ञा स्त्री० [सं० निरासा, प्रा० निरासा, नियासा]
दे० 'निरासा' । उ०—धृक जीवन जेहि कंत नियासा । मरे
बियोनिन दरस के आसा ।—हिंदी प्रेम०, पृ० २३८ ।

नियुक्त—वि० [सं०] १. नियोजित । लगाया हुआ । २. (किसी काम
में) लगाया हुआ । जोटा हुआ । तैनात । मुकरंद । ३. उत्पन्न
किया हुआ । प्रेरित । ४. स्थिर किया हुआ । ठहराया हुआ ।

४. नियोग करनेवाला । जिससे नियोग कराया जाय (को०) ।

५. किसी पद या कार्य के लिये तैनात ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

नियुक्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] मुकरंदी । तैनाती ।

नियुत्—संज्ञा पुं० [सं०] वायु का अणु । (वैदिक) ।

नियुत^१—वि० [सं०] १. एक लाख । लख । २. दस लाख ।

नियुत^२—संज्ञा पुं० १. एक लाख की संख्या । २. दस लाख की संख्या ।

नियुत्वत्—संज्ञा पुं० [सं०] वायु ।

नियुद्ध—संज्ञा पुं० [सं०] बाह्ययुद्ध । हाथाबाही । कुश्ती ।

नियोक्तव्य—वि० [सं०] नियोजित करने योग्य ।

नियोक्ता—संज्ञा पुं० [सं० नियोक्ता] १. नियोजित करनेवाला ।
लगानेवाला । २. नियोग करनेवाला ।

नियोग—संज्ञा पुं० [सं०] १. नियोजित करने का कार्य । किसी काम
में लगाना । तैनाती । मुकरंदी । २. प्रेरणा । ३. व्यवधारण ।
४. मनु के अनुसार प्राचीन आर्यों की एक प्रथा जिसके अनुसार
यदि किसी स्त्री का पति न हो तो या उसे अपने पति से संतान
न होती हो तो वह अपने देवर या पति के छोरे किसी गौत्रज से
संतान उत्पन्न करा लेती थी । पर काल में यह रीति बर्जित
है । ५. आज्ञा । ६. निश्चय । ७. वह आपत्ति जिसमें यह
निश्चय हो कि इसी एक उपाय से यह आपत्ति दूर होगी,
दूसरे से नहीं । (कोटि०) ।

नियोगी^१—वि० [सं०] १. जो नियोजित किया गया हो । जो लगाया
या मुकरंद किया गया हो । २. जो किसी स्त्री के साथ
नियोग करे ।

नियोगी^२—संज्ञा पुं० १. अधिकारी । २. वंगालियों की जातिगत एक
उपाधि या अस्ल ।

नियोग्य—संज्ञा पुं० [सं०] प्रभु । स्वामी (को०) ।

नियोजक—संज्ञा पुं० [सं०] नियोजित करनेवाला । काम में लगाने-
वाला । मुकरंद करनेवाला ।

नियोजन—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० नियोजित, नियोग्य, नियुक्त] १.
किसी काम में लगाना । तैनात या मुकरंद करना । प्रेरणा ।
२. स्थिर करना । एक सीमा में, जो अधिक या अत्यंत कम
न हो, ठहराना । सीमित करना । जैसे, परिवार नियोजन ।

नियोजित—वि० [सं०] नियुक्त किया हुआ । लगाया हुआ । मुकरंद ।
तैनात ।

नियोक्तव्य—संज्ञा पुं० [सं०] वह जिसका नियोजन किया जाय ।
कर्मचारी (को०) ।

नियोद्धा—संज्ञा पुं० [सं०] अस्त्र योद्धा । कुश्ती लड़नेवाला पहलवान ।

निरु—अर्थ० [सं०] दे० 'निर' ।

निरंकार^१—संज्ञा पुं० [सं० निराकार] दे० 'निराकार' ।

निरंकुरा—वि० [सं० निरंकुरा] जिसके लिये कोई प्रंकुष या प्रति-
बंध न हो । जिसपर कोई बंधन न हो । जिसके लिये कोई रोक
या बंधन हो । बिना डर बाध का । बेकहा । स्वेच्छाचारी ।
अ०—निपट निरंकुष अमुष असंकु ।—तुलसी (शब्द०) ।

निरंकुशता—संज्ञा स्त्री० [सं० निरंकुश + ता (प्रत्यय)] अनियंत्रण ।
पराजकता । बदईतजामी । स्वेच्छाचारिता ।

निरंग^१—वि० [सं० निरङ्ग] अंगरहित । २. केवल । खाली ।
जिसमें कुछ न हो । जैसे,—यह दूध निरंग पानी है । ३.
रूपक अलंकार का एक भेद ।

विशेष—रूपक दो प्रकार का होता है—एक अभेद दूसरा
तादृश्य । अभेद रूपक भी तीन प्रकार का होता है—सम,
अधिक और न्यून । इनमें से 'सम अभेद रूपक' के तीन भेद
हैं—संग या सावयव, निरंग या निरवयव और परंपरित ।
जहाँ उपमेय में उपमान का इस प्रकार आरोप होता है कि
उपमान के और सब घंग नहीं पाते वहाँ निरवयव या निरंग
रूपक होता है—जैसे, 'रैन न नींद न चैन दिए छिनहुँ घर में
कधु और न आवै । सोचन को सब प्रेमलता यहि के हिय काम
प्रवेश लखावै' । यहाँ प्रेम में केवल लता का आरोप है उसके
और घंगों या सामग्रियों का कथन नहीं है । निरंग या
निरवयव रूपक भी दो प्रकार का होता है—शुद्ध और माला-
कार । ऊपर जो उदाहरण है यह शुद्ध निरवयव का है
क्योंकि उसमें एक उपमेय में एक ही उपमान का (प्रेम में
लता का) आरोप हुआ है । मालाकार निरवयव वह है
जिसमें एक उपमेय में बहुत से उपमानों का आरोप हो—जैसे,
'अंबर सँदेह की भछेह आपरत, यह गेहूँ त्यों अनम्रता की
देह दुति हारी है । दोष की निधान, कोटि कपट प्रधान जामें,
मान न विश्वास दुम जान की कुठारी है । कहे तोष हरि
स्वर्गद्वार की विषम धार, नरक अपार की विचार अविचारी
है । भारी भयकारी यह पाप की पिठारी नारी क्यों करि
विचारी याहि भावें मूल प्यारी है ।

यहाँ एक स्त्री उपमेय में बँदेह का अंबर, प्रविषय का घर, इत्यादि
बहुत से आरोप किए गए हैं ।

निरंग^२—वि० [हि० उप० नि (= नहीं) + रंग] १. बेरंग । बद-
रंग । विवर्ण । २. फोका । उबास । बेरीनक । उ०—सो घनि
वान नून भई खोली । रंग रंगील, निरंग भई डोली ।—
जायसी (शब्द०) ।

निरंजन^१—वि० [सं० निरञ्जन] १. अंजन रहित । बिना काजल
का । जैसे, निरंजन नैव । २. कल्मषशून्य । दोषरहित । ३.
माया से निलिप्त (ईश्वर का एक विशेषण) । ४. साधा ।
बिना अंजन आदि का ।

निरंजन^२—संज्ञा पुं० १. परमात्मा । २. महादेव ।

निरंजना—संज्ञा स्त्री० [सं० निरञ्जना] १. पूर्णिमा । २. दुर्गा का
एक नाम ।

निरंजनी—संज्ञा स्त्री० [सं० निरञ्जनी] १. साधुओं का एक
संप्रदाय ।

विशेष—कहते हैं, इस संप्रदाय के प्रवर्तक कोई निरानंद
स्वामी थे । उन्होंने निरंजन, निराकार ईश्वर की उपासना
बसाई थी, इससे उनके संप्रदाय को निरंजनी संप्रदाय कहने
लगे । किंतु आजकल निरंजनी साधु रामानंद के मतानुसार

साकार उपासना ग्रहण करके उदासी वैष्णवों में हो गए हैं ।
ये कौशील पहनते तथा तिलक और कंठी धारण करते हैं ।
भारवाड़ में इनके भक्ताड़े बहुत हैं ।

निरंतर^१—वि० [सं० निरन्तर] १. अंतररहित । जिसमें या जिसके
बीच अंतर या फासला न हो । जो बराबर चला गया हो ।
अविच्छिन्न (देश के संबंध में) । २. निबिड़ । घना ।
गम्भिर । ३. जिसकी परंपरा खंडित न हो । अविच्छिन्न ।
लगातार होनेवाला । बराबर होनेवाला । जैसे, निरंतर
प्रवाह (काल के संबंध में) । ४. सदा रहनेवाला । बराबर
बना रहनेवाला । स्थायी । जैसे, निरंतर नियम, निरंतर प्रेम ।
५. जिसमें भेद या अंतर न हो । जो समान या एक ही हो ।
६. जो अंतर्धान न हो । जो दृष्टि से अशुभल न हो ।

निरंतर^२—क्रि० वि० लगातार । बराबर । सदा । हमेशा । जैसे,—
उन्नति निरंतर होती आ रही है ।

निरंतरता—संज्ञा स्त्री० [सं० निरन्तर + ता] क्रम, गति या प्रवाह
का लगातार चलने रहने का भाव । सातत्य ।

निरंतराभ्यास—संज्ञा पुं० [सं० निरन्तराभ्यास] अनवरत चलने-
वाला किसी कार्य, पाठ या अध्ययन आदि का क्रम । स्वाध्याय
(को०) ।

निरंतराल—वि० [सं० निरन्तराल] १. अंतरालरहित । व्यवधान-
विहीन । घना । २. तंग । संकीर्ण (को०) ।

निरंत्र(पुं०)—वि० [सं० निरन्तर] ३० 'निरंतर' । उ०—देहि पसीस
सखी हित प्यासी । रमा निरंत्र रहै तोहि दासी ।—इंद्रा०,
पृ० १६६ ।

निरंध^१—वि० [सं० निरन्ध (= जिससे बढ़कर अंधा न हो)] १.
भारी अंधा । २. महामूर्ख । ज्ञानशून्य । उ०—आका गुरु है
अंधरा चेला सरा निरंध । अंधे को अंधा मिखा परा काल के
फंद ।—कबीर (शब्द०) । ३. बहुत अंधेरा । उ०—अंध उषों
अंधनि साध निरंध कुआँ परिहँ न हिए पछितानो ।—केशव
(शब्द०) ।

निरंध^२—वि० [सं० निरन्धस्] बिना अन्न का । निरध्न ।

निरंब(पुं०)—संज्ञा पुं० [सं० निरम्बु] ३० 'निरंबु' ।

निरंबकारी(पुं०)—वि० [सं० निर्विकार] ३० 'निर्विकार' । उ०—
अति निरंब अति निरंबकारी, महा निराश महा निराचारी ।
प्राण०, पृ० ७४ ।

निरंबर—वि० [सं०] वस्त्ररहित । धियंबर । नंगा (को०) ।

निरंबु—वि० [सं० निरम्बु] १. निर्जल । बिना पानी का । २. जो
जल न पिए । जो बिना पानी के रहे । ३. जिसमें बिना जल
के रहना पड़े । जैसे, निरंबु व्रत । उ०—व्रत निरंबु तेहि दिन
प्रभु कीन्हा । मुनिहु कहेँ जल काहु न लीन्हा ।—मानस,
२ । २४६ ।

निरंभ—वि० [सं० निरम्भस्] १. निर्जल । २. जो पानी न पिए ।
बिना पानी पिए रह जायेवाला । उ०—प्रात अरंभ की खंभ
सगी निरंभ निरंभ सँभारे न सासुनि ।—देव (शब्द०) ।

निरंश—वि० [सं०] १. जिसे उसका भाग न मिला हो।

विशेष—स्पृष्टियों में लिखा है कि पतित, बन्दी आदि निरंश हैं; इन्हें संपत्ति का भाग न मिलना चाहिए।

२. बिना अक्षांश का।

निरंश^२—संज्ञा पुं० राशि के भोगकाल का प्रथम और शेष दिन। संक्रांति।

निरंस^३—वि० [सं० निरंश] १. अक्षररहित। विभागरहित। २. अक्षांश रहित। ३. जिसे अपना प्राप्य भाग न मिला हो। उ०—शेष सहस्र फन नाभि ज्यों सुरपति करे निरंस। अग्नि-पात्र कियो सौं नरे कहा बापुरो कंस।—सूर (शब्द०)।

निरंज^४—संज्ञा पुं० [सं० निरञ्जन] दे० 'निरञ्जन'। उ०—हुनिया बाल न बुझ क ना तरणाऊ तन्न। निरालंब सुन में रमै निराकार निरंजन।—राम० धर्म०, पृ० ११।

निरञ्क^५—वि० [हि० निर+सं० अङ्क] बिना रूप रेश वाला। अरूप। बिना चिह्नवाला। उ०—निरंकार निरञ्क निरञ्जन निरिंकार निरलेख।—केशव० धर्म०, पृ० ४।

निरञ्कुस^६—वि० [सं० निरङ्कुश] दे० 'निरंकुश'। उ०—निरञ्कुस मति निडर, रसिक जस झरना गायी।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० ४१८।

निरकल्प^७—वि० [सं० निः+कल्प] कल्पनारहित। उ०—करम उपाह बोहोत करि देखे, मति निरकल्प नृपति नहिं धाई।—पोद्दार अभि० ग्रं०, पृ० ३८२।

निरकेवला^८—वि० [सं० निस्+केवल] १. जाली। जालिस। बिना खेल का। २. स्वच्छ। साफ।

निरक्षदेश^९—संज्ञा पुं० [सं०] सूक्ष्म रेखा के आसपास के देश जिनमें रात और दिन बराबर होते हैं।

विशेष—पूर्व में महाप्रवर्ष और यमकोटि, दक्षिण में भारतवर्ष और संका, पश्चिम में केतुमालवर्ष, रोमक, उत्तर कुश और सिद्धपुरी निरक्ष देश कहे गए हैं। (सूर्यसिद्धांत)।

निरक्षन^{१०}—संज्ञा पुं० [सं० निरीक्षण] दे० 'निरीक्षण'। उ०—होत बिलक्षण वन विदेह की जात निरक्षन अपने अक्षन।—रघुराज (शब्द०)।

निरक्षर^{११}—वि० [सं०] १. अक्षरशून्य। २. जिमने एक अक्षर भी न पढ़ा हो। अनपढ़। मूर्ख।

यौ०—निरक्षर भट्टाचार्य = पंडित बना हुआ मूर्ख।

निरक्षरता^{१२}—संज्ञा स्त्री० [सं० निरक्षर] अक्षरज्ञान का अभाव।

निरक्षरेखा^{१३}—संज्ञा स्त्री० [सं०] नाडीमंडल। निरक्षवृत्त। अक्षिर्वृत्त।

निरक्षना^{१४}—क्रि० सं० [सं० निरीक्षण] देखना। ताकना। अवलोकन करना। उ०—बहुतक नदी घटारिन्ह निरक्षहि जगन बिमान।—तुलसी (शब्द०)।

निरग^{१५}—संज्ञा पुं० [सं० नृग] दे० 'नृग'। (राजा)।

निरगुन^{१६}—वि०, संज्ञा पुं० [सं० निर्गुण] दे० 'निर्गुण'। उ०—मिलल नीच निरधन निरगुन कहै जग दूसरो न ठाकुर ठाठ।—तुलसी ग्रं०, पृ० ५१६।

निरगुनिया^{१७}—वि० [हि० निरगुन+इया (प्रत्य०)] दे० 'निरगुनी'।

निरगुनी^{१८}—वि० [सं०] निर्गुण या हि० (प्रत्य०) निर+गुणी] जिसमें गुण न हो या जो गुणी न हो। अनादी। उ०—रंक निरगुनी नीच जितने निवारने हैं।—तुलसी ग्रं०, पृ० ५४६।

२. निर्गुण ब्रह्म की उपासना करनेवाला।

निरगि^{१९}—वि० [सं०] अग्निहोत्र न करनेवाला। जो श्रौत और स्मार्त विधि के अनुसार अग्निकर्म न करता हो।

निरघ^{२०}—वि० [सं०] निष्पाप। दोषरहित।

निरघिन^{२१}—वि० [सं० निर्घृण] १. क्रूर। कृपाहीन। २. घति धृष्ट। उ०—इहवां राजकुंवर सुख भोगी। हौं परदेसी निरघिन जोगी।—चित्रा०, पृ० १७६।

निरघृन^{२२}—वि० [सं० निर्घृण] दे० 'निरघिन'। उ०—जदपि बास तब मैं ग्रहै जीवहिं दोसी नाथ। पै निरघृन कोतुक लखत तुम क्यों बाके साथ।—आरतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ५१७।

निरघोष^{२३}—संज्ञा पुं० [सं० निर्घोष] दे० 'निर्घोष'।

निरचू^{२४}—वि० [सं० निश्चित] निश्चित। जाली। जिसे कुरसत मिल गई हो। जिसने छुट्टी पाई हो। उ०—इस काम से तो मैं निरचू हुई अब चलकर उस राजबि का वृत्तांत देखूँ।—सधमणसिंह (शब्द०)।

निरच्छ^{२५}—वि० [सं० निरक्षि] बिना अक्षि का। अंधा।

निरच्छर^{२६}—वि० [सं० निरक्षर] दे० 'निरक्षर'। उ०—बिप्र निरच्छर लोलुप कामी।—मानस, ७। १००।

निरछेह^{२७}—वि० [हि० निर+छोह] बिना माया मोह का। बे-लगाव। जिसे समता या स्नेह न हो। उ०—दुई अक्षर का सकल पसारा यामें कीन सनेहा। एके लागि सकल जगमोहया एक रहा निरछेहा।—राम० धर्म०, पृ० १३५।

निरज^{२८}—संज्ञा पुं० [सं०] रजोहीन। रजोगुण से रहित। निर्मल। उ०—मोहन दरस द्वियो अभिलासै। रज कों परस दगनि रज गले।—घनानंद, पृ० २६१।

निरजन^{२९}—वि० [सं० निर्जन] दे० 'निर्जन'। उ०—निरजन जंगलों और पर्वतों के.....हैं।—प्रेमधन०, भा० २, पृ० ५।

निरजर^{३०}—वि० [सं० निर्जर] दे० 'निर्जर'। उ०—पसुपति प्रियहि प्रबोध करन निरजर गिननायक।—दीन० ग्रं०, पृ० ६१।

निरजर^{३१}—संज्ञा पुं० देवता। निर्जर।

निरजल^{३२}—वि० [सं० निर्जन] [वि० स्त्री० निरजला]। दे० 'निर्जल'।

निरजास^{३३}—संज्ञा पुं० [सं० निर्वास] निचोड़। निर्वास। उ०—लक्ष्मी परम रस की निरजास। श्री ब्रज वृंदाविनि विलास।—घनानंद, पृ० २३७।

निरजासु^{३४}—वि० [सं० नि+रजस्क] रजोहीन। शुद्ध। निर्मल।

निरजिउ^{३५}—वि० [सं० निर्जीव] दे० 'निर्जीव'। उ०—मीन गंगाए गएउ बिमोही। या निरजिउ जिस दीन्हैसि मोही।—पद्मावत, पृ० २७७।

निरजिब^{३६}—वि० [सं० निर्जीव] दे० 'निर्जीव'। उ०—को चितवे को बोले कासों, निरजिब रूप कहै का री।—कबीर ग्रं०, भा० २, पृ० १०४।

निरजो—संज्ञा स्त्री० [देश०] संगतराशों की महीन टीकी जिससे संगमर्मर पर काम बनाया जाता है।

निरजुरी—संज्ञा पुं० [सं० निजंर] दे० 'निजंर'। उ०—एक प्रनु-
राग कर पुरष निरजुर छही।—रघु० क० पु० ५७।

निरजोस—संज्ञा पुं० [सं० निर्यास] १. निचोड़। २. निर्णय।

निरजोसी—वि० [हि० निरजोस] १. निचोड़ निकालनेवाला।
२. निर्णय करनेवाला।

निरजोसु(पु)—संज्ञा पुं० [हि० निरजोस] दे० 'निरजोस'। उ०—राम
तुम्हहि प्रिय तुम प्रिय रामहि। येह निरजोसु दोसु बिधि
बामहि।—मानस, २।२००।

निरझर(पु)—संज्ञा पुं० [सं० निर्झर] दे० 'निर्झर'।

निरझरनी(पु)—संज्ञा स्त्री० [सं० निर्झरिणी] दे० 'निर्झरिणी'।

निरझरी—संज्ञा स्त्री० [सं० निर्झरी] दे० 'निर्झरी'।

निरत—वि० [सं०] १. किसी काम में लगा हुआ। तत्पर। लीन।
मग्न। २. प्रसन्न (को०)। ३. विश्रान्त (को०)।

निरत(पु)†—संज्ञा पुं० [सं० नृत्य] दे० 'नृत्य'। उ०—बिन पग नटरा
निरत करत हैं, बिन कर बाजे ताल।—चरम०, पु० ५६।

निरत(पु)†—अव्यय [हि०] लगातार। प्रवर्तत।

निरत(पु)†—संज्ञा स्त्री० [सं० निरति] दे० 'निरति'। उ०—अथ ऊरध
बिष सुरति समानी। निरत्ता सख्य निरत अलगानी।—घट०,
पृ० १०८।

निरतना(पु)—क्रि० सं० [सं० नर्तन] नाचना। नृत्य करना।

निरताना†—क्रि० सं० [सं० निर्यात से नामिक धातु] निर्यात करना।
निश्चित करना। स्थिर करना। उ०—उत्तपति कारण हम सब
पाबा। बंश बंश हुनो निरताबा।—कबीर सा०, पु० ६०१।

निरति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. अत्यंत रति। अधिक प्रीति। २. लिप्त
होने का भाव। लीन होने का भाव।

निरतिशय—वि० [सं०] जिससे भीर अतिशय न हो सके। हृद
दरजे का।

निरतिशय—संज्ञा पुं० परमेश्वर।

निरस्थ(पु)—वि० [सं० निरस्थ] दे० 'निरस्थ'।

निरस्थय—वि० [सं०] १. बिना बाधा के। २. जिसमें कोई दोष न
हो। शुद्धिहित। हृद प्रकार से सफ़्त (को०)।

निरस्थय—संज्ञा पुं० रोक या बाधा का अभाव (को०)।

निरथाना(पु)—क्रि० प्र० [हि० निर+अथाना] निश्चय करना।
स्थिर करना या होना। निर्धारण करना। उ०—गमन मंदिर
बलि धिर ह्वै रहिए, तकि छवि छकि निरबाई।—जग० ल०,
पृ० ७६।

निरथु(पु)†—वि० [सं० निरथं] बेकार। निष्प्रयोजन। निरर्थक।
उ०—देह विलोईषे निकले तथु। जल मथीषे जल देलु
निरथु।—ब्राह्म०, पु० २६४।

निरदई—वि० [सं० निरदयी, निरदई] दे० 'निरदय'। उ०—यो
दलमलियतु निरदई दई कुसुम सी नातु। कर धरि देखी, धर-
धरा उर की धजो न जातु।—बिहारी र०, दो० ६५१।

निरदय(पु)—वि० [सं० निरदय] दे० 'निरदय'।

निरदाइ(पु)—वि० [हि० निरदई] दे० 'निरदय'। उ०—ये निरदाइ
न दाय्य करहीं। जीना सबै सपन करि देहीं।—हिंदी प्रेम०,
पृ० २३६।

निरदाग(पु)—वि० [हि० निर+अ० दाग] बेदाग। बिना धब्बे
का। प्रसूता। उ०—जग से रहें उदासी बासी मोह माया
निरदाग।—संत सुरसी०, पु० २१४।

निरदाव(पु)—वि० [हि० निर+दाव] बिना दाव के। बिना
धनसर के। उ०—जहाँ गोरख जहाँ जान गरीबो दुंद बाव
नहीं कोई। निसप्रेही निरदावे वेने गोरख कहीये सोई।—
गोरख०, पु० ६५।

निरदुंद—वि० [सं० निदुंद] दे० 'निदुंद'। उ०—निरदुंद रहो
गहो सोई मारग जो जेही बाट उतार।—संत सुरसी०,
पृ० २१६।

निरदुंदो—वि० [सं० निर+दुदुम्] दे० 'निदुंद'। उ०—निर-
दुंदी को मुक्ति है, निरलोभी निबान।—कबीर सा०, पं०,
पृ० ३७।

निरदोखी(पु)—वि० [सं० निर्वोष] दे० 'निर्वोष'। उ०—का मैं
कीन्ह जो काया पोखी। दूखन मोहि आपु निरदोखी।—
जायसी ग्रं०, पु० २५८।

निरदोषी(पु)—वि० [सं० निर्वोष] दे० 'निर्वोष'। उ०—भृगुनंदन
मुनिये मन भंहु गुनिये रघुनंदन निरदोषी।—केसव (शब्द०)।

निरधन(पु)—वि० [सं० निर्वन] दे० 'निर्वन'। उ०—छिन ही मैं
धन होत होत छिनहीं मैं निरधन।—ब्रज० पं०, पृ० १२७।

निरधातु—वि० [सं० निर्धातु] वीर्यहीन। शक्तिहीन। अशक्त। उ०—
धातु कमाय सिखे तू जोगी। अब कस अस निरधातु बियोषी।
—जायसी (शब्द०)।

निरधार(पु)†—संज्ञा [सं० निर्धारण] निश्चय करने या ठहराने
का कार्य।

निरधार(पु)†—वि० अवश्यमेव। निश्चयपूर्वक।

निरधार—वि० [सं० निराधार] आधारबिहीन। आधाररहित।

निरधारना—क्रि० सं० [सं० निर्धारण] १. निश्चय करना।
ठहराना। स्थिर करना। २. मन में धारण करना। सम-
झना। उ०—एक एक जग देखि अनेकन अनुमान बाधिय।
बसत मनहु सिसुमार चक्र तन इमि निरधारिय।—गोपाल
(शब्द०)।

निरधिष्ठान—वि० [सं०] १. निराधार। बिना सहारा। २. स्वतंत्र
(को०)।

निरनय(पु)—संज्ञा पुं० [सं० निर्याय] दे० 'निर्याय'। उ०—होत
पंचमी के दिन निरनय इन कलान की।—प्रेमधन०, पृ० २४।

निरना—वि० [हि०] दे० 'निरन्ना'।

निरनुकोश^१—वि० [सं०] दयाहीन। क्रूर हृदयवाला (को०)।

निरनुकोश^२—संज्ञा पुं० दयाहीनता। निरुदरता। क्रूरता (को०)।

निरनुग—वि० [सं०] जिसका कोई अनुग्रह करनेवाला न हो (को०)।

निरनुमह—वि० [सं०] अनुहार । निष्ठुर [को०] ।

निरनुनासिक—वि० [सं०] जिसका उच्चारण नाक के संबंध से न हो । जैसे, निरनुनासिक वण ।

विशेष—वर्णमाळा के प्रत्येक वर्ण के प्रतिष्ठ वण और अनुस्वार को छोड़कर शेष सभी वर्ण निरनुनासिक हैं ।

निरनुबंध^१—संज्ञा पुं० [सं० निरनुबन्ध] अर्थ का एक रोद । वह सिद्धि या सफलता जिससे अपना लाभ आवश्यक न हो । दंड या अनुग्रह द्वारा किसी उदासीन का अर्थ सिद्ध करना (कोटि०) ।

निरनुबंध^२—वि० बिना अनुबंध का बिना करार या सतनामा का ।

निरनुयोष्य—वि० [सं०] निर्दोष । त्रुटिरहित [को०] ।

निरनुरोध—वि० [सं०] १. अप्रैतीपूर्ण । अस्निग्ध । विप्रिय [को०] ।

निरनुयोज्यानुयोग—संज्ञा पुं० [सं०] न्याय में एक निग्रहस्थान । दे० 'निग्रहस्थान' ।

निरनै^१—संज्ञा पुं० [सं० निरुण्य] दे० 'निरुण्य' । उ०—आतपन को चित्त जोड़ ब्रह्मलोक सो जान । येहि विधि श्रुति निरनै करत चरन चित्त परमान ।—भारतेंदु प्र०, भा० २, पृ० १८ ।

निरन्न—वि० [सं०] १. अन्नरहित । बिना अन्न का । २. निराहार । जो अन्न न खाए हो । जैसे,—उस दिन वह निरन्न रह गया ।

निरन्ना—वि० [सं० निरन्न] जो अन्न न खाए हो । निराहार ।

मुहा०—निरन्ने मुंह=बिना मुंह में अन्न डाले । बिना कुछ खाए । बाली मुंह । जैसे,—यह दवा निरन्ने मुंह पानी चाहिए ।

निरन्वय—वि० [सं०] १. संतानहीन । २. अयुक्त । असंबद्ध । ३. संबन्धविच्छेद । अप्रासंगिक । जैसे,—वाक्य में कोई शब्द । ४. सक्रियविच्छेद । अयुक्तियुक्त । ५. दृष्टि से परे । नजर से दूर । ६. असंग । बिना संगी साथी का । ७. महसा । अनपेक्षित । ८. निश्चित । संपूर्ण लोप [को०] ।

निरपख^१—वि० [सं० निष्पक्ष हि०, निर+पक्ष] दे० 'निष्पक्ष' । उ०—सोई निरपक्ष होइगा, जाके नाँव निरंजन होइ ।—दादू, पृ० ११६ ।

निरपच्छो^१—वि० [सं० निष्पक्ष] दे० 'निष्पक्ष' । उ०—निरपच्छी को भक्ति है निरमोही को ज्ञान ।—कबीर सा० सं०, पृ० १७ ।

निरपत्रप—वि० [सं०] १. निरंज । बेसम । २. घृष्ट । डीठ [को०] ।

निरपना—वि० [सं० उप० निस्, निर+हि० अपना] १. जो अपना न हो । जो आत्मीय न हो । २. बिरागा । गैर । देवाना । उ०—जानकी जीवन ! मेरे राखे बदन फेरे ठाउँ न समझे कहीं सकल निरपने ।—तुलसी (शब्द०) ।

निरपराध^१—वि० [सं०] अपराधरहित । बेकसूर । निर्दोष ।

निरपराध^२—कि० वि० बिना अपराध के । बिना कोई कसूर किए । जैसे,—तुमने उसे निरपराध मारा ।

निरपराधी^१—वि० [हि०] दे० 'निरपराध' ।

निरपवर्त^१—संज्ञा पुं० [सं०] जिसमें भाजक के द्वारा भाग लगे । (गणित) ।

निरपवर्त^२—वि० [सं०] जिसका अवर्तन न हो सके । जिसका लोटना न हो सके [को०] ।

निरपवर्तन—वि० [सं०] दे० 'निरपवर्त' ।

निरपवाद—वि० [सं०] १. अपवादशून्य । जिसकी कोई बुराई न की जाय । २. निर्दोष । ३. जिसका कभी अन्यथा न हो । जैसे निरपवाद नियम ।

निरपाय—वि० [सं०] जिसका विनाश न हो । जिसका विशेष न हो ।

निरपेक्ष^१—वि० [सं०] १. जिसे किसी बात की अपेक्षा या चाह न हो । बेपरवा । २. जो किसी पर अवलंबित न हो । जो किसी पर निर्भर न हो । ३. जिसे कुछ लगाव न हो । अलग । तटस्थ ।

निरपेक्ष^२—संज्ञा पुं० [सं०] १. अनादर । २. अवहेलना ।

निरपेक्षा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. अपेक्षा या चाह का अभाव । २. लगाव का न होना । ३. अवज्ञा । परवा न होना । ४. निराशा ।

निरपेक्षित—वि० [सं०] १. जिसकी अपेक्षा या चाह न की गई हो । २. जिसके साथ लगाव न रखा गया हो ।

निरपेक्षिता—संज्ञा स्त्री० [सं० निरपेक्षा] दे० 'निरपेक्षा' ।

निरपेक्षो—वि० [सं० निरपेक्ष] १. निरपेक्षा या चाह न रखने-वाला । २. लगाव न रखनेवाला ।

निरपेक्ष^१—वि० [हि०] १. बिना पैर का । बिना उलकाव का । साफ साफ । सुस्पष्ट उ०—कहे दरिया निरपेक्ष निरबाध संबंध गढ़ ज्ञान सनमुख ठाढ़े ।—सं० दरिया, पृ० ७३ ।

निरपेक्ष^२—वि० [सं० निरपेक्ष] दे० 'निरपेक्ष' । उ०—सुंदर बचन सबै करहु नारायण निरपेक्ष ।—सुंदर० प्र०, भा० २, पृ० ६७६ ।

निरबंध^१—संज्ञा पुं० [सं० निर+बन्ध] ईश्वर या परमात्मा (जो बंधनहीन है) । उ०—बंधे को बंधा मिले, छूटे कोन उपाय । कर सेवा निरबंध की, पक्ष में खेत छुड़ाय ।—कबीर सा० सं०, पृ० १४ ।

निरबंध^२—वि० उन्मुक्त । स्वतंत्र । बंधनहीन । उ०—आतमा कहत गुण गुह निरबंध नित्य, सत्य करि माने सु तो शब्द है प्रमाण है ।—सुंदर० प्र०, भा० २, पृ० ६२५ ।

निरबंधन^१—वि० [निर+बन्ध] बंधनरहित । उ०—निरबंधन बंधा रहै, बंधा निरबंध होय । करम करे करता नहीं, दास कहावै सोय ।—कबीर सा० सं०, पृ० २१ ।

निरबंधी—वि० [सं० निबंध] जिसे बंध या संतान न हो ।

निरबंधी^१—संज्ञा पुं० [सं० निबंध] बिरागी । त्यागी ।

निरबंध^२—वि० [सं० निबंध] दे० 'निबंध' ।

निरबहना^१—कि० अ० [सं० निबंधना] निभना । चला चलना ।

निर्वाह करना । उ०—साते न तरनि ते, न सोरे सुधाकर है
ते सहज समाधि निरवहो है ।—तुलसी (शब्द०) ।

निरवात^५—वि० [सं० निर्वात] दे० 'निर्वात' । उ०—चंद्रमुखी न
हूँ न चले निरवात निवास में दीपसिखा सी ।—मति० प्र०,
पृ० ३४३ ।

निरवान^५—संज्ञा पु० [सं० निर्वाण] दे० 'निर्वाण' ।

निरवार^५—संज्ञा पु० [हि० निरवार] दे० 'निरवार' । उ०—
तुम्हरे चरन मोर निरवारा । पकरि हाथ करिहो निरवारा ।
—चर०, पृ० २५१ ।

निरवाहना^५—क्रि० स० [सं० निर्वाह] निर्वाह करना । निमाना ।
बलाए चलना । उ०—देह लख्यो दिग गेहपति तऊ नेह निर-
वाहि । नीची संलियनु हो इतै गई कनखियनु वाहि ।
—बिहारी (शब्द०) ।

निरविषी—संज्ञा स्त्री० [सं० निर्विषी] दे० 'निर्विषी' ।

निरवेरा^५—संज्ञा पु० [हि०] दे० 'निवेरा' ।

निरबोध^५—वि० [सं० निबोध] बिना बोध का । मूर्ख । उ०—
स्वारथपन आग्रह मलीनता लोभ काम धर क्रोध । कामादिक
सब निरव धरम हैं तन मन के निरबोध ।—भारतेंदु प्र०,
भा० २, पृ० १५० ।

निरभय^५—वि० [सं० निर्भय] दे० 'निर्भय' ।

निरभर^५—वि० [सं० निर्भर] दे० 'निर्भर' ।

निरभाग^५—वि० [हि०] बिना भाग्य का । बदकिस्मत । भाग्य-
हीन । अभाग्य । उ०—निरभाग पुरुष जित जात तित वैर
विपति अगनित लहत ।—ब्रज० प्र०, पृ० ७६ ।

निरभिभव—वि० [सं०] १. जिसका अभिभव या अपमान न हो
सके । २. जिसका अतिक्रमण न हो सके । अद्वितीय [को०] ।

• निरभिमान—वि० [सं०] अहंकारशून्य । अभिमानरहित । २.
चेतनारहित । संज्ञाशून्य (को०) ।

निरभिलाष—वि० [सं०] अभिलाषारहित । इच्छाशून्य ।

निरभिसंधान—संज्ञा पु० [सं० निरभिसन्धान] अभिसंधान का
अभाव [को०] ।

निरभ्र—वि० [सं०] बिना बादल का । मेघशून्य जैसे, निरभ्र आकाश ।

निरमत्सर^५—वि० [सं० निर्मत्सर] बिना मत्सर का । उ०—
निरमत्सर के संत तिनकि बूझामणि गोपी ।—नंद० प्र०,
पृ० १७ ।

निरमना^५—क्रि० स० [सं० निर्माण] निर्माण करना । बनाना ।
उ०—रूपरासि मनु बिधि निरमई ।—जायसी (शब्द०) ।

निरमर^५—वि० [सं० निर्मल] दे० 'निर्मल' । उ०—(क) पद-
मिनि चाहि चाटि दुइ करा । और सब गुन ओहि निरमरा ।—
जायसी (शब्द०) । (ख) तिमिर गए जग निरमर देखा ।—
जायसी प्र० (गुप्त), पृ० २८८ ।

निरमर्ष—वि० [सं०] १. अमर्ष से रहित । क्रोधहीन । शीतराग ।
निःस्पृह । उदासीन [को०] ।

निरमल^५—वि० [सं० निर्मल] [वि० स्त्री० निरमली] दे० 'निर्मल' ।

निरमली^५—संज्ञा स्त्री० [सं० निर्मली] 'निर्मली' ।

निरमसोर—संज्ञा पु० [देश०] एक जोषधि या जड़ी जिससे अफीम
के विष का प्रभाव दूर हो जाता है । यह पंजाब में होती है ।

निरमान^५—संज्ञा पु० [सं० निर्माण] दे० 'निर्माण' ।

निरमाना^५—क्रि० स० [सं० निर्माण] बनाना । तैयार करना ।
रचना ।

निरमायल^५—संज्ञा पु० [सं० निर्मात्य] दे० 'निर्मात्य' ।

निरमित्र^५—वि० [सं०] जिसका कोई मित्र न हो ।

निरमित्र^२—संज्ञा पु० १. त्रिगंतराज के एक पुत्र का नाम जो कुरुक्षेत्र
की लड़ाई में मारा गया था । २. चौथे पांडव नकुल के पुत्र
का नाम ।

निरमूल^५—वि० [सं० निर्मूल] दे० 'निर्मूल' ।

निरमूलना^५—क्रि० स० [सं० निर्मूलन] १. निर्मूल करना ।
उखाड़ना । २. नष्ट करना ।

निरमोल—वि० [सं० उप० निष्ठ, निर+हि० मोल] । जिसका
मोल न हो । अनमोल । अमूल्य । २. बहुत बढ़िया ।

निरमोलक^५—वि० [हि० निरमोल+क (प्रत्य०)] दे० 'निर-
मोल' । उ०—नाम तुम्हारा निरमला, निरमोलक हीरा ।
तू साहिब समरत्न हम भल मुन के कीरा ।—बाबू०,
पृ० १०२ ।

निरमोलिका^५ निरमोलिका^५—वि० [हि० निरमोल+क
(प्रत्य०)] अनमोल । बेजकीमत । उ०—(क) निकटहि
निरमोलिक नम बैसैं । नैन हीन तिहि पावै कैसैं ।—नंद०
प्र०, पृ० १४४ । (ख) जीव अछित जीवन गया कसू किया ना
नीका । यह हीरा निरमोलिका, कीड़ी पर बीका ।—कबीर
प्र०, पृ० १४८ ।

निरमोली^५—वि० [हि० निरमोल] दे० 'निरमोल' । उ०—
पहरावति अकफोरि, देखि निरमोली है ।—नंद० प्र०,
पृ० १८६ ।

निरमोह^५—वि० [सं० निर्मोह] दे० 'निर्मोह' । उ०—अजर अबावन
सो निःस्वादी । निःकामी निरमोह अनादी ।—कबीर सा०,
पृ० ३६३ ।

निरमोहका^५—वि० [हि० निरमोह+का (प्रत्य०)] दे०
'निर्मोही' । उ०—आबो हरि निरमोहका रे, बानी चारी
प्रीति ।—संतबाणी०, पृ० ७४ ।

निरमोही^५—वि० [सं० निर्मोही] दे० 'निर्मोही' ।

निरय—संज्ञा पु० [सं०] नरक । होअल ।

निरयण—संज्ञा पु० [सं०] अमररहित गणना । ज्योतिष में गणना की
एक रीति ।

विशेष—सूर्य राक्षिकक में निरंतर घूमता रहता है । उसके एक
चक्कर पूरे होने को वर्ष कहते हैं । ज्योतिष की गणना के
लिये यह आवश्यक है कि सूर्य के भ्रमण का आरंभ किसी
स्थान से माना जाय । सूर्य के मार्ग में दो स्थान ऐसे पड़ते हैं
जिनपर उसके जाने पर रात और दिन बराबर होते हैं ।

इन दो स्थानों में से किसी स्थान से भ्रमण का आरंभ माना जा सकता है। पर विषुवरेखा (सूर्य के मार्ग) के जिस स्थान पर सूर्य के जाने से दिनमान की वृद्धि होने लगती है उसे वास्तविक विषुवपथ कहते हैं। इस स्थान से आरंभ करके सूर्यमार्ग को ३६० अंशों में विभक्त करते हैं। प्रथम ३० अंशों को मेष, द्वितीय को वृष इत्यादि मानकर राशिविभाग द्वारा जो लग्नस्फुट और ग्रहस्फुट गणना करते हैं उसे 'सायन' गणना कहते हैं।

पर गणना की एक दूसरी रीति भी है जो अधिक प्रचलित है। ज्योतिषगणना के आरंभकाल में मेषराशिस्थित अश्विनी नक्षत्र में आरंभ में दिन और रात्रिमान बराबर स्थिर हुआ था। पर नक्षत्रगणना असंभव जाता है। अतः प्रतिवर्ष अश्विनी नक्षत्र विषुवरेखा से जहाँ खसका रहेगा वही से राशिवर्ग का आरंभ और वर्ष का प्रथम दिन मानकर जो लग्नस्फुट गणना की जाती है उसे 'निरयण गणना' कहते हैं। भारतवर्ष में अधिकतर पंचांग निरयण गणना के अनुसार बनाए जाते हैं। ज्योतिषियों में 'सायन' और 'निरयण' ये दो पक्ष बहुत दिनों से चले आ रहे हैं। बहुत से विद्वानों की राय है कि सायन मत ही ठीक है।

निरर्थ^१—वि० [सं०] १. अर्थहीन । २. व्यर्थ । निष्फल ।

निरर्थ^२—संज्ञा पु० १. हाथि । २. नासमर्थी [को०] ।

निरर्थक—वि० [सं०] १. अर्थशून्य । बेमानी ।

विशेष—निरर्थक वाक्य काव्य का एक दोष माना गया है (पंद्रहलोक) ।

२. म्याय में एक निग्रह स्थान । दे० 'निग्रहस्थान' । ३. निष्प्रयोजन । व्यर्थ । बिना मतलब का । ४. निष्फल । जिससे कोई कार्य सिद्ध न हो । बेफायदा ।

निरुद्ध—संज्ञा पु० [सं०] एक नरक का नाम ।

निरलंकार—वि० [सं० निर + अलंकार] अलंकारशून्य । सादा । उ०—अलकमंडल में यथा मुसचंद्र निरलंकार ।—गीतिका, पृ० २४ ।

निरलंकृति—संज्ञा जी० [सं० निर + अलंकृति] काव्य में अलंकार या अलंकरण का न होना ।

निरालस—वि० [सं०] जिसे आलस्य न हो । बिना आलस्य का [को०] ।

निरवक^१—वि० [सं० निर्मल, हि० निरमर] शुद्ध । निरा । कैवल्य । आलस्य । उ०—समुद्र परी गई रामकहानी । निरवक दूध कि सरवक पानी ।—कबीर जी०, पृ० १७१ ।

निरवकाश—वि० [सं०] १. अवकाशरहित । जिसमें स्थान न हो । २. जिसे अवकाश न हो [को०] ।

निरवग्रह—वि० [सं०] १. प्रतिबंधरहित । स्वतंत्र । स्वच्छंद । २. जो दूसरे की दृष्टि पर न हो । ३. बिना विघ्न या बाधा का ।

निरवच्छिन्न—क्रि० वि० [सं०] १. अनवच्छिन्न । जिसका विच्छेद न हो । २. निरंतर । लगातार । ३. विमुक्त । निर्मल ।

निरवद्य—वि० [सं०] [वि० जी० निरवद्या] १. जिसे कोई बुरा न कहे । अनिष्ट । निर्दोष । जिसमें कोई ऐश या बुराई न हो । २. ईश्वर का एक विशेषण [को०] ।

निरवद्य^१—वि० [सं० निरवद्यि] दे० 'निरवद्यि' । उ०—निरवद्य वेद, अवद्यि अति प्रगटो मुरति सब सुखदाई ।—नंद० अं०, पृ० ३४४ ।

निरवद्यि—वि० [सं०] १. अपार । असीम । बेहद । २. निरंतर । लगातार । बराबर । ३. सदा । सतत । हमेशा ।

निरवद्यव—वि० [सं०] १. अंगों से रहित । निराकार । २. अवाज्य । जो बाँटा न जा सके [को०] ।

निरवलंब—वि० [सं० निरवलम्ब] १. अवलंबहीन । आधाररहित । बिना सहारे का । २. निराश्रय । जिसे कहीं ठिकाना न हो । जिसका कोई सहायक न हो ।

निरवशेष—वि० [सं०] पूरा । समग्र । संपूर्ण [को०] ।

निरवसाद—वि० [सं०] अवसाद से रहित । प्रसन्न [को०] ।

निरवसित—वि० [सं०] जो ऊँची जातियों से अलग हो । (चांडाल आदि) जिसके भोजन या स्पर्श से पाप आदि प्रसूत हो जायें ।

निरवस्कृत—वि० [सं०] परिष्कृत । साफ किया हुआ ।

निरवहालिका—संज्ञा जी० [सं०] दे० 'निरवहालिका' ।

निरवहालिका—संज्ञा जी० [सं०] प्राचीर ।

निरवाना—क्रि० सं० [हि० निराना का प्रे० क्य] निराने का काम कराना ।

निरवार^१—संज्ञा पु० [हि० निरवारना] १. निस्तार । छुटकारा । बचाव । उ०—यही सोच सब पगि रहै कहूँ नहीं निरवार । अज भीतर नंदमन में घर घर यहै विचार ।—सुर (शब्द०) । २. छुड़ाने या सुझाने का काम । ३. निबटारा । फैसला ।

निरवार^२—वि० निश्चित । निश्चित । मुक्त । उ०—पलटू सतगुरु पाप के दास भया निरवार ।—पलटू, पृ० ३ ।

निरवारना^१—क्रि० सं० [सं० निवारण] १. ठामना । रोकनेवाली वस्तु को हटाना । छेकने या बाधा डालनेवाली वस्तु को दूर करना । उ०—आगे आगे खाल लता निरवारत, पाछे पाछे आवत नवस साइली ।—नंददास (अव्य०) । २. बंधन आदि कोटना । मुक्त करना । छुड़ाना । उ०—ये सुकुमार बहुत दुख पाव सुख कुबेर के तारों । सुरदास प्रभु कहत मनहि मन कर बंधन निरवारो ।—सुर (शब्द०) । ३. छोड़ना । त्यागना । किनारे करना । उ०—राना देसपति छाबै, बापकुल रती जाति, मानि लीबै बात बेगि सँग निरवारिए ।—प्रियादास (अव्य०) । ४. गौं आदि छुड़ाना । सुझाना । उ०—कहूँ कान्हू आपने कर लौं कैसपास निरवारत ।—सुर (शब्द०) । ५. निबटाना । निरुपय करना । तै करना ।

निरवाह^१—संज्ञा पु० [सं० निवाहि] दे० 'निवाहि' ।

निरविष^१—वि० [सं० निविष] दे० 'निविष' । उ०—बाहु मय

भुव्यं यह विष मरणा, निरविष क्यों ही न होइ । दाह मित्या
गुह गारो, निरविष कीया सोइ ।—दाह० पु० १५ ।

निरवेद(५)—संज्ञा पु० [सं० निर्वेद] २० 'निर्वेद' । उ०—यह
विचारि चट्टमान के, मन उपज्यो निरवेद ।—हम्मीर०,
पु० ६४ ।

निरव्यय—वि० [सं०] शाश्वत । जिसका नाश न हो । अनश्वर
[को०] ।

निरशन—संज्ञा पु० [सं०] भोजन का न करना । न खाने का भाव ।
संघन । उपवास ।

निरशन—वि० १. भोजनरहित । जिसने खाया न हो या जो न
खाय । २. जिसके अनुष्ठान में भोजन न किया जाय । जो
बिना कुछ खाए किया जाय । जैसे, निरशन व्रत ।

निरश्रि—वि० [सं०] जो बराबर हो । सम (कोटि०) ।

निरष्ट—वि० [सं०] निर्बोय । बेधम [को०] ।

निरष्ट—संज्ञा पु० चौबीस साल का घोड़ा [को०] ।

निरसंकु—वि० [हि० निर + संक] २० 'निरसंक' ।

निरसंघ(५)—वि० [हि० निर + संघ] संघिरहित । एक समान ।
समरस । उ०—व्यापक मल्ल एक रस निरसंघ जु ।—
सुंदर० सं०, भा० १, पु० ५८८ ।

निरस—वि० [सं०] १. जिसमें रस न हो । रसविहीन । २. बिना
स्वाद का । बदजायका । फोका । ३. बसार । निस्तब्ध । ४.
रागहीन । ५. रुखा सुखा । ६. जो आनंद न दे । जिससे
आनंद न मिले । ७. विरक्त । उ०—रे मन जग सों निरस
हैं सरस राम सों होहि । असो सिलावन हेतु है निसि दिन
सुखसी तोहि ।—तुलसी (शब्द०) ।

निरसन—संज्ञा पु० [सं०] [वि० निरसनीय, निरस्य] १. फेंकना ।
दूर करना । हटाना । २. वारिज करना । रद्द करना । ३.
निराकरण । परिहार । उ०—सांगतार्थ तहँ करत अ कुँवर
वारि गोलच्छ । प्रतिग्रह फल निरसन हिते सीने द्विजन
प्रतच्छ ।—रघुराज (शब्द०) । ४. निकालना । ५. धुक्का ।
६. नाश । ७. बध ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

निरसना(५)—क्रि० प्र० [सं० निरस] रसशून्य होना । नीरस
उ०—परसे ये निरसे नहि ऐसैं । कष्टनि पाइ कृष्णजन जैसे ।
—नंद० प्र०, पु० २८६ ।

निरसहाय(५)—वि० [सं० निःसहाय] अलहाय । उ०—इक
राह चाह लागी असुर निरसहाय आकार नव ।—रा० क०,
पु० २० ।

निरसा—संज्ञा स्त्री [सं०] निःश्रेष्ठिका नाम की घास जो कोंकण
देश में होती है ।

निरस्त—वि० [सं०] १. फेंका हुआ । छोड़ा हुआ (जैसे, कर) ।
२. त्याग किया हुआ । अलग किया हुआ । निकासी हुआ ।
दूर किया हुआ । ३. वारिज किया हुआ । रद्द किया हुआ ।
विधायक हुआ । निराकृत । ४. वजित । रहित । ५. धुक्का

हुआ । उगला हुआ । ४. मुँह से स्पष्ट रूप से जल्दी जल्दी
बोला हुआ । शीघ्र उच्चारित (वाक्य आदि) ।

निरस्त—संज्ञा पु० १. फेंकना । फेंकने की क्रिया । २. फेंका हुआ
कर । ३. परित्याग । त्याग । ४. अस्वीकरण । ५. शीघ्र
कथन या उच्चारण [को०] ।

निरस्ति(५)—संज्ञा स्त्री [हि० निर(=नही) + सं० अस्ति] अस्तित्व
का अभाव । नास्ति । उ०—भापु भापु चेते नहीं, कहें तो
रुमुआ होय । कहहि कबोर जो स्वप्ने, निरस्ति अस्ति न
होय ।—कबीर बी० (शिशु०), पु० २६६ ।

निरस्त्र—वि० [सं०] अस्त्रहीन । बिना हथियार का ।

निस्थि—वि० [सं०] जिसमें हड्डी न हो । बिना हड्डी का । [को०] ।

निरस्य—वि० [सं०] निरसन के योग्य ।

निरहंकार—वि० [सं० निरहंकार] अभिमान से रहित ।

निरहंकृत—वि० [सं० निरहंकृत] २० 'निरहंकार' ।

निरहंकृति—वि० [सं० निरहंकृति] २० 'निरहंकार' ।

निरहम्—वि० [सं०] अहंभावशून्य । अहंकाररहित ।

निरहेतु—वि० [सं० निहेतु] २० 'निहेतु' ।

निरहेता—वि० [सं० हेतु] अनादृत । तुच्छ । जिसकी कोई कदर
न हो ।

निरांत्र—वि० [सं० निरांत्र] १. अंतर्बोधिहीन । जिसके ध्यान न
हो । २. जिसकी अंतर्दिया बाहर भूल रही हों [को०] ।

निरा—वि० [सं० निरालय, पू० हि० निराय] [वि० स्त्री० निरी]
१. विमुक्त । बिना मेल का । खालिस । २. जिसके माथ धीर
कुछ न हो । केवल । एकमात्र । जैसे,—निरी बकवाद से काम
नहीं चलेगा । ३. निपट । नितात । सर्वतोभाव । एकवचन ।
बिसकुल । जैसे,—बहु निरा बेवकूफ है ।

निराई—संज्ञा स्त्री [हि० निराना] १. निराने का काम । फसल के
पीधों के पास पास उगनेवाले तृण, घास आदि को दूर करने
का काम । २. निराने की मजदूरी ।

निराकरण—संज्ञा पु० [सं०] [वि० निराकरणीय, निराकृत] १.
छाटना । अलग करना । २. हटाना । दूर करना । ३.
मिटाना । रद्द करना । ४. किसी बुराई को दूर करने का
काम । धमन । निवारण । परिहार । ५. खंडन । युक्ति
या दलील को काटने का काम । जैसे, किसी सिद्धांत का
निराकरण ।

निराकांक्ष—वि० [सं० निराकांक्ष] जिसे अपेक्षा, इच्छा या
आकांक्षा न हो ।

निराकांक्षी—वि० [सं० निराकांक्षी] [वि० स्त्री० निराकांक्षिणी]
निःस्पृह । जिसे कुछ इच्छा न हो ।

निराकार—वि० [सं०] १. जिसका कोई आकार न हो । जिसके
आकार की आवना न हो । २. विरूप । भद्दा । बदसूरत
(को०) । ३. छिपा हुआ । छद्मयुक्त (को०) । ४. सीधा सादा ।
सरल (को०) ।

निराकार—संज्ञा पु० १. ब्रह्म । ईश्वर । २. आकाश । ३. शिव
(को०) । ४. विष्णु (को०) ।

निराकाश—वि० [सं०] जिसमें अवकाश न हो । जिसमें छापी जगह न हो [को०] ।

निराकुल—वि० [सं०] १. जो आकुल न हो । जो सुख या डीवाडोल न हो । २. जो चबराया न हो । अनुद्विग्न । ३. बहुत व्याकुल । बहुत चबराया हुआ । उ०—व्याकुल बाहु निराकुल बुद्धि धन्यो बलिविक्रम संकपती को ।—केशव (शब्द०) । ४. व्याप्त । भरा हुआ । परिपूर्ण (को०) ।

निराकृत—वि० [सं०] १. मिटाई हुई । रद्द की हुई । २. दूर की हुई । हटाई हुई । ३. खंडन की हुई ।

निराकृति—संज्ञा स्त्री० [सं०] निराकरण । परिहार ।

निराकृति—वि० १. आकृतिरहित । निराकार । २. स्वाध्यायरहित । वेदपाठरहित । ३. कुरूप । बदशक्ल (को०) । ४. पंचमहायज्ञ के अनुष्ठान से रहित (मनु०) ।

निराकृति—संज्ञा पुं० रोहित मनु के पुत्र (हरिवंश) ।

निराकृती—वि० [सं० निराकृतिम्] निराकरण करनेवाला [को०] ।

निराकृद्—वि० [सं० निराकृद्] जहाँ कोई पुकार सुननेवाला न हो । जहाँ कोई रक्षा या सहायता करनेवाला न हो । २. जो पुकार न सुने । जो रक्षा या सहायता न करे । ३. जिसकी पुकार न सुनी जाय । जिसकी कोई सहायता न करे ।

निराकृद्—संज्ञा पुं० वह स्थान जहाँ कोई शब्द न सुनाई पड़ सके ।

निराक्रोश—वि० [सं०] जिसपर कोई आरोप न हो । निर्दोष [को०] ।

निराक्षर(पुं०)—वि० [सं० निराक्षर] १. जिसमें अक्षर न हों । बिना अक्षर का । २. बिना अक्षर या शब्द का । भोम । ३. जिसे अक्षर का बोध न हो । अपठ ।

निराग—वि० [सं०] रागरहित । रागविहीन । विरक्त [को०] ।

निरागस्—वि० [सं०] पापरहित । निष्पाप ।

निराचार—वि० [सं०] आचारहीन । नियमहीन । अनैतिक । असभ्य । उ०—निराचार जो श्रुतिपथ त्यागी । कवियुग सोई जान वैरागी ।—मानस, ७।६८ ।

निराजी—संज्ञा स्त्री० [सं०] जुलाहों के करघे की बद्द लकड़ी जो हथे और तरीछी को मिलाने के लिये दोनों के सिरों पर लगी रहती है ।

निराजुकार(पुं०)—वि० [सं० निराकार] ३० 'निराकार' । उ०—निराजुकार नाम के अक्षर में अलुम्हिए ।—नाम० धर्म०, पु० ३२७ ।

निराट—वि० [हि० निराट] जिसके साथ और कुछ न हो । अकेला । एकमात्र । निरा । बिलकुल । निपट । उ०—(क) प्रथम एक जो है किया भया सो बारह बाट । कसत कसीटी ना टिका पीतर भया निराट ।—कबीर (शब्द०) । (ख) साधत देह पनेह निराट कहै मति कोई कहे अटकी सी ।—देव (शब्द०) ।

निराटंबर—वि० [सं० निराटंबर] १. बिना डोल का । जिसके पास डोल न हो । २. जिसमें दिखावा न हो । सादा । आटंबरहीन [को०] ।

निरातंक—वि० [सं० निरातंक] १. अव्यरहित । निर्भय । २. रोगशून्य । निरोग । ३. आतंकरहित । अनियंत्रित (को०) ।

निरातंक—संज्ञा पुं० शिव [को०] ।

निरातप—वि० [सं०] धूप या गरमी से रक्षित या बचा हुआ । छायादार [को०] ।

निरातपा—संज्ञा स्त्री० [सं०] रात्रि । रात ।

निरादर—संज्ञा पुं० [सं०] आदर का अभाव । अपमान । बेइज्जती । क्रि० प्र०—करना ।

निरादर—वि० अपमानवाला । आदररहित ।

निरादान—संज्ञा पुं० [सं०] १. आदान वा लेने का अभाव । २. कुछ का एक नाम ।

निरादान—वि० कुछ न लेनेवाला ।

निरादिष्ट—वि० [सं०] (कर्ज) जो पूरा पूरा चुका दिया गया हो [को०] ।

निरादेश—संज्ञा पुं० [सं०] भुगताना । अदा करने या चुकाने का काम ।

निराधार—वि० [सं०] १. अवलंब या आश्रयरहित । जिसे सहारा न हो या जो सहारे पर न हो । जैसे,—वह निराधार ठहरा रहा । २. जो प्रमाणों से पुष्ट न हो । बे जड़ बुनियाद का । अशुक्त । मिथ्या । झूठ । जैसे, निराधार कल्पना । ३. जिसे या जिसमें जीविका आदि का सहारा न हो । ४. जो बिना अन्न जल आदि के हो । जैसे,—उसने दूध तक न पिया, निराधार रह गया ।

निराधि—वि० [सं०] १. रोगशून्य । नीरोग । २. बितारहित ।

निरानन्द—वि० [सं० निरानन्द] आनंदरहित । जिसे आनंद न हो । शिथ ।

निरानन्द—संज्ञा पुं० १. आनंद का अभाव । २. दुःख ।

निराना—क्रि० प्र० [हि० निराना] निराना । नजदीक होना । उ०—हित न लकाय बहो घाय हाय कहा करी, जहाँ बिजबाल पै न काल कैसे हूँ निराय ।—चनानंद०, पु० १५ ।

निराना—क्रि० प्र० [सं० निराकरण] फसल के पौधों के पासपास उगी हुई घास को खोदकर दूर करना जिसमें पौधों की बाढ़ न सके । मींदना । निकाना । उ०—कृषी निरावहिं चतुर किमाना ।—तुलसी (शब्द०) ।

निरानी(पुं०)—वि० [हि० निराला] पृथक् । अलग । उ०—सुरति सत सान्नी अथम समानी । जाइ निरानी राहु लए ।—घट०, पु० २६४ ।

निरापद—वि० [सं०] १. जिसे कोई आपदा न हो । जिसे कोई आफत या डर न हो । सुरक्षित । २. जिससे किसी प्रकार बिपत्ति की संभावना न हो । जिससे हानि या अनर्थ की आशंका न हो । जैसे, निरापद उपाय, निरापद घोषण । ३. जहाँ अनर्थ या बिपत्ति की आशंका न हो । जहाँ किसी बात का डर या खतरा न हो । जैसे, निरापद स्थान ।

निरापन्न(पुं०)—वि० [सं० उप० निर् + हि० आपन्न, अपन्ना] जो अपना न हो । पराया । बेगाना । उ०—(क) ज्यों मुख मुकुर बिलोकिए बित न रहे अनुहारि । त्यों सेवतहुं निरापने ये मातु पिता सुत नारि ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) सब दुःख आपने निरापने सकल सुख जो सौं जन भयो न बजाय

राधा राम को ।—तुलसी (शब्द०) । (य) ऐसन देह निरापन बीरे मुए छुवै बहि कोई हो ।—कबीर (शब्द०) ।

निरापुन^७—वि० [हि०] ३० 'निरापन' । उ०—जठ सहि बिठ आपुन सब कोई । बिनु जिय सबह निरापुन होई ।—बायसी (शब्द०) ।

निराबाध—वि० [सं०] १. बाधा से मुक्त या रहित । २. अबाध । ३. बिना उपद्रव का (को०) ।

निरामय^१—वि० [सं०] जिसे रोग न हो । नीरोग । अला चंगा । तंदुस्त ।

निरामय^२—संज्ञा पुं० १. जंगली बकरा । २. सुघर । ३. कुबल ।

निरामयता—संज्ञा स्त्री० [सं० निरामय + ता (प्रत्य०)] नीरोग होने की स्थिति । भारोग्य । तंदुस्ती । उ०—जहाँ निरामय हैं जीवन के लक्षण, कहाँ निरामयता, संवेतन ? अपने रोग मोम से रहकर, निर्यातन के कर मजने दो ।—गीत०, पृ० ४६ ।

निरामालु—संज्ञा पुं० [सं०] कैव का पेड़ । कपिल ।

निरामिष—वि० [सं०] १. मांसरहित । जिसमें मांस न मिला हो । जैसे, निरामिष भोजन । २. जो मांस न खाए । उ०—बायस पामिष अति अनुरागा । होई निरामिष कबहुँ कि कागा ।—तुलसी (शब्द०) । ३. जो कामुक या लोलुप न हो (को०) । ४. जिसे पारिवर्त्मिक न मिलता हो (को०) ।

यौ०—निरामिषोजी, निरामिषाली = मांस न खानेवाला । जो मांस न खाए । शाकाहारी ।

निराय—वि० [सं०] १. लाभरहित । जिसमें मुनाफा न हो । २. जिसे कुछ आय न हो (को०) ।

निरायत—वि० [सं०] १. पुरा केला हुआ । विस्तृत । २. संकुचित । सिकुड़ा हुआ (को०) ।

निरायति—वि० [सं०] जिसका घंत निकट हो । जिसका कोई अविषय न हो (को०) ।

निरायत्त—संज्ञा पुं० [सं०] संकोच । ह्रस्वता । छोटाई (को०) ।

निरायास—वि० [सं०] बिना श्रम का । आसान । जिसमें मेहनत न हो । सरल (को०) ।

निरायुध—वि० [सं०] निरस्त्र । जिसके पास मस्त्राल्य न हो । निहत्था (को०) ।

निरारंभ—वि० [सं० निरारम्भ] जो हर तरह के काम से दूर हो । २. आरंभरहित । अनारंभ (को०) ।

निरारा^१—वि० [हि० निराल या निराग, न्याग] अलग । पृथक् । जुदा ।

निरारा^७—वि० [हि० निरार] ३० 'निरार' । उ०—(क) नीर खीर छाने दरबारा । दूर पानि सब करे निरारा ।—बायसी (शब्द०) । (क) बातहि जानहु बिषम पहारा । हिरवै मिला न होइ निरारा ।—बायसी (शब्द०) ।

निरालंब^१—वि० [सं० निरालम्ब] [वि० स्त्री० निरालंबा] १. बिना आशंक या सहारे का । विराधार । २. निरामय । बिना ठिकाने का । ३. जो अपनी मदद आप करता हो (को०) ।

निरालंब^२—संज्ञा पुं० बह्य (को०) ।

निरालंबा—संज्ञा स्त्री० [सं० निरालम्बा] छोटी जटामासी ।

निराल^७—वि० [हि० निराला] १. निराला । अद्वितीय । उ०—साहब आपे आप निराल । आतम राम को नाम गुनाह ।—जीका ४०, पृ० २० । २. अलग । पृथक् । अलित । उ०—अवसागर में यों रही ज्यों जल कँवल निराल ।—संतबाणी०, पृ०, ३७ ।

निरालक—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की समुद्री मछली ।

निरालम^७—वि० [सं० निरालम्ब] १. निराधार । बिना आशंक का । अपने आप । उ०—अठवट घाटि निरालम जोति । दीपक बिन उजियारा होति ।—प्राण०, पृ० १३४ ।

निरालस—वि० [हि०] ३० 'निरालस्य' ।

निरालसी—संज्ञा पुं० [हि० निरालस] जो आलसी न हो ।

निरालस्य^१—वि० [सं०] जिसमें आलस्य न हो । तत्पर । फुरतीला । चुस्त ।

निरालस्य^२—संज्ञा पुं० [सं०] आलस्य का अभाव ।

निराला^१—संज्ञा पुं० [सं० निरालय या देरा०] [वि० स्त्री० निराली] एकांत स्थान । ऐसा स्थान जहाँ कोई मनुष्य या बस्ती न हो । जैसे—(क) वहाँ निराला पड़ता है, खोर डाकू होंगे । (ख) यहाँ, निराले में बात करें ।

निराला^२—वि० १. जहाँ कोई मनुष्य या बस्ती न हो । एकांत । निर्जन । २. जिसके ऐसा दूसरा न हो । विलक्षण । सबसे भिन्न । अद्भुत । अजीब । जैसे, निराला जंग, निराली जाल । ३. जिसके जोड़ का दूसरा न हो । अनोखा । अनुपम । अनूठा । अपूर्व । बहुत बढ़िया ।

निरालाप—वि० [सं०] जो बात ब करता हो । आलापरहित । मौन (को०) ।

निरालेप^७—वि० [सं० निर्लेप] ३० 'निरलेप' । उ०—निरालेप निरगुन नाम । निज बैठे अमरा घाम ।—स० दरिया, पृ० ८ ।

निरालोक^१—वि० [सं०] १. आलोकरहित । अंधेरा । २. जो दिखाई न दे । अदृश्य । ३. अंधा । दृष्टिहीन (को०) ।

निरालोक^२—संज्ञा पुं० शिव (को०) ।

निरावधि—वि० [सं० निरवधि] ३० 'निरवधि' । उ०—निरवधि निरावधि, मैं मतबारी, बिर तरली जावली, अवधित मन ।—रेणुका, पृ० ८१ ।

निरावना^१—वि० [सं०] ३० 'निराना' ।

निरावरण—वि० [सं०] अनाच्छादित । खुला हुआ ।

निरावलंब—वि० [सं० निरावलम्ब] बिना सहारे का । निराधार ।

निरावृत—वि० [सं०] अनाच्छादित । खुला हुआ (को०) ।

निराशक—वि० [सं० निराशक] निर्भय । जिसे आशंका न हो ।

निराश—वि० [सं०] आशाहीन । जिसे आशा न हो । नाउम्मीद । कि० प्र०—करना । होना ।

निराशक—वि० [सं०] बिना आशा का (को०) ।

निराशा—संज्ञा स्त्री० [सं०] नाउम्मेदी । आशा का अभाव ।

निराशावाद—संज्ञा पुं० [सं० निराशा + वाद] १. निराशा का सिद्धांत । २. आधुनिक साहित्य के अपने स्थापित मूल्यों से झुट हो जाने पर घोर यथार्थ की वास्तविक स्थिति से उसका साक्षात्कार होने पर उन स्थितियों में व्यक्त निराशा का सिद्धांत । ३. मनोज्ञान के अनुसार एक मानसिक रोग । मेल्कोलिया ।

विशेष—इसमें रोगी में आत्मविश्वास की कमी हो जाती है । वह अपने वर्तमान जीवन से असंतुष्ट होकर अविष्य के प्रति भी आस्थाहीन बन जाता है ।

निराशावादी—वि० [सं० निराशावादिन्] निराशावाद का सिद्धांत माननेवाला । उ०—पश्चिमी साहित्य के निराशावादियों से हमें सावधान करते हुए शुक्ल जी कहते हैं ।—आचार्य०, पृ० १५ ।

निराशिय—वि० [सं०] १. आशीर्वादशून्य । २. तृष्णारहित ।

निराशी—वि० [सं० निराशिन] १. हताश । नाउम्मीद । २. आशा-तृष्णा - रहित । उदासीन । विरक्त । उ०—तुम्हें कौन पति-प्राप्ता प्रब, जब तुम हुए निराशी से ?—अपलक, पृ० ७० ।

निराश्रम—वि० [सं०] जो चार आश्रमों में से किसी में भी न हो [को०] ।

यौ०—निराश्रमपद = वह जंगल जिसमें एक भी आश्रम न हो ।

निराश्रमो—वि० [सं० निराश्रमिन्] दे० 'निराश्रम' [को०] ।

निराश्रय—वि० [सं०] १. आश्रयरहित । आधारहीन । बिना सहारे का । २. जिसे कहीं ठिकाना न हो । असहाय । अशरण । ३. जिसे शरीर आदि पर ममता न हो । निराल ।

निराश्रित—वि० [सं० निराश्रय] दे० 'निराश्रय' । उ०—किंतु विश्व की भ्रातृभावना यहाँ निराश्रित ही होती —साकेत, पृ० ३७१ ।

निरासंग—वि० [सं० निरासङ्ग] १. कीटिल्य के अनुसार अप्रतिष्ठित (सेना) २. आसंग अर्थात् आसक्ति से रहित ।

निरास^१—संज्ञा पुं० [सं०] १. दूर करना । निराकरण । २. खंडन । ३. विरोध [को०] । ४. बमन [को०] ।

निरास^२—वि० [सं० निरास] दे० 'निरास' ।

निरासन^१—संज्ञा पुं० [सं०] १. दूर करना । निराकरण । २. खंडन । निरसन ।

निरासन^२—आसनरहित ।

निरासा^३—स्त्री० संज्ञा [सं० निरासा] दे० 'निरासा' ।

निरासी^४—वि० [सं० निरासी] १. दे० 'निरासी' । २. उदासीन । विरक्त । उ०—तनक कहीं तिय को कुछ जानत संसृति विषय निरासी ।—रघुराज (शब्द०) । ३. उदास । बेरोनक । जहाँ या जिसमें चित्त प्रसन्न न हो । उ०—सूर स्वामिनि यह बन सुनो कलि बिनु रैन बिरारी ।—सूर (शब्द०) ।

निरास्वाद—वि० [सं०] बेस्वाद । बदजायका । बेमजा [को०] ।

निरास्वाद्य—वि० [सं०] जो कुछ भी पानंर न के । जो आस्वाद्य के अयोग्य हो [को०] ।

निराहार^१—वि० [सं०] १. आहाररहित । जो बिना भोजन के हो । जिसने कुछ खाया न हो या जो कुछ न खाए । २. जिसके अनुष्ठान में भोजन न किया जाता हो । जैसे, निराहार व्रत ।

निराहार^२—संज्ञा पुं० आहाररहित रहना । उपवास । अनशन [को०] ।

निराह्लाद—वि० [सं० निर् + आह्लाद] अप्रसन्न । दुःखी । उ०—जन जीवन बना न विषद, रहा वह निराह्लाद । विकसित नर वर अपवाद नहीं, जन गुण विवाद ।—ग्राम्या, पृ० ५६ ।

निरिङ्ग—वि० [सं० निरिङ्ग] निश्चल । प्रचल ।

निरिङ्गिणी—संज्ञा स्त्री० [सं० निरिङ्गिणी] चिक । क्लिप्तमित्री । परवा ।

निरिन्द्रिय—वि० [सं० निरिन्द्रिय] १. इन्द्रियशून्य । जिसे कोई इन्द्रिय न हो । २. जिसके हाथ, पैर, घाँव, कान आदि न हों या काम के न हों ।

विशेष—मनु ने जन्मांध, बलीव, पतित, जन्मबधिर, उन्मत्त, जड़, मूक इत्यादि को निरिन्द्रिय कहा है और इन्हें पितृघन का अनधिकारी ठहराया है ।

३. प्रमाण या साधनहीन [को०] । ५. अनुवंर [को०] । ६. नपुंसक [को०] ।

निरिन्धन—वि० [सं० निरिन्धन] बिना ईंधन का [को०] ।

निरिच्छ—वि० [सं०] इच्छारहित । जिसे कोई इच्छा न हो ।

निरिच्छना^७—क्रि० प्र० [सं० निरीक्षण] देखना । उ०—सुनि के प्रसन्न बोल अच्छ बध रच्छसनि, बैठो जो समच्छ अच्छ अच्छनि सों लक्ष्यो है । पच्छवान गील सों बिपच्छ पर पच्छन पै, कील को निरिच्छो क्षमा छोहरी जो रक्ष्यो है ।—रघुराज (शब्द०) ।

निरो—वि० स्त्री० [हि०] दे० 'निरा' ।

निरीक्षक—संज्ञा पुं० [सं०] १. देखनेवाला । २. देखरेख करनेवाला ।

निरीक्ष्य—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० निरीक्षित, निरीक्ष्य, निरीक्ष्यमाण] १. देखना । दर्शन । २. देखरेख । निगरानी ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

३. देखने की मुद्रा या ढंग । चितवन । ४. नेत्र । घाल ।

निरीक्षा—संज्ञा स्त्री० [सं०] देखना । दर्शन ।

निरीक्षित—वि० [सं०] १. देखा हुआ । २. देखाभासा हुआ । जाँच किया हुआ ।

निरीक्ष्य—वि० [सं०] १. देखने योग्य । २. जाँच के लायक । निगरानी के लायक ।

निरीक्ष्यमाण—वि० [सं०] जिसको देखते हों । जो देखा जाता हो ।

निरीक्षण^८—संज्ञा पुं० [सं० निरीक्षण] दे० 'निरीक्षण' । उ०—बरने दीनदयाल तेज सब करे निरीक्षण ।—दीन० सं०, पृ० ११७ ।

निरीक्षण^९—संज्ञा पुं० [सं० निरीक्षण] दे० 'निरीक्षण' । उ०—

गौर सेरे तीछन द्वे ईछन निरीछन तें पापी सुरलोक जाय
पाय के बिमान को ।—वीन० ग्रं०, पु० १३१ ।

निरीति—वि० [सं०] इतिरहित । अतिवृष्टि आदि से रहित ।

निरीश^१—वि० [सं०] १. जिसे ईश या स्वामी न हो । बिना
मालिक का । २. जिसकी समझ में ईश्वर न हो । अनीश्वर-
वादी । नास्तिक ।

निरीश^२—संज्ञा पु० हल का फाल ।

निरीश्वरवाद—संज्ञा पु० [सं०] यह सिद्धांत कि कोई ईश्वर नहीं है ।
भारतीय दर्शन के उन दर्शनों का सिद्धांत जिनमें ईश्वर का
अस्तित्व अस्वीकृत है ।

निरीश्वरवादी—संज्ञा पु० [सं० निरीश्वरवादिन्] जो ईश्वर का
अस्तित्व न माने ।

निरीष—संज्ञा पु० [सं०] हल का फाल ।

निरीह—वि० [सं०] १. चेष्टारहित । जो किसी बात के लिये प्रयत्न
न करे । २. जिसे किसी बात की चाह न हो । ३. उदासीन ।
विरक्त । जो सब बातों से किनारे रहे । ४. जो किसी बखेड़े
में न पड़े । नटस्थ । ५. शांतिप्रिय ।

निरीहता—संज्ञा स्त्री० [सं०] ३० 'निरीहा' । उ०—छाया पथ में
तारक द्युति सी, झिलमिल करने की मधुलीला । अमिनय करती
क्यों इस मन में कोमल निरीहता अमशीला ।—कामायनी,
पु० १०४ ।

निरीहत्व—संज्ञा पु० [सं०] ३० 'निरीहा' [स्त्री०] ।

निरीहा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. चेष्टा का अभाव । २. चाह का न
होना । विरक्ति ।

निरुभारा^१—संज्ञा पु० [हि०] ३० 'निरवार' ।

निरुभारना—क्रि० स० [हि०] ३० 'निरवारना' ।

निरुक्त^१—वि० [सं०] १. निश्चय रूप से कहा हुआ । व्याख्या किया
हुआ । २. नियुक्त । ठहराया हुआ ।

निरुक्त^२—संज्ञा पु० छह वेदांगों में से एक । वेद का चौथा अंग ।

विशेष—वैदिक शब्दों के निघंटु की जो व्याख्या यास्क मुनि ने
की है उसे निरुक्त कहते हैं । इसमें वैदिक शब्दों के अर्थों का
निर्णय किया गया है । वेद के शब्दों का अर्थ प्रकट करनेवाला
प्राचीन भाष्य ग्रंथ यही है । यद्यपि यास्क ने ऋक्सूक्तों और
श्वेदलृष्टीवी आदि अपने में पहले के निरुक्तकारों का उल्लेख
किया है, तथापि उनके ग्रंथ अब प्राप्त नहीं हैं । सायणाचार्य
के अनुसार जिसमें एक शब्द के कई अर्थ या पर्याय कहे गए हों
वह निरुक्त है । कालिका वृत्ति के अनुसार निरुक्त पाँच प्रकार
का होता है—वर्णमग्न (अक्षर बढ़ाना), वर्णविपर्यय
(अक्षरों को आगे पीछे करना), वर्णविकार (अक्षरों को
बदलना), नाश (अक्षरों को छोड़ना) और घातु के किसी
एक अर्थ को सिद्ध करना ।

निरुक्त के बारह अध्याय हैं । प्रथम में व्याकरण और शब्दशास्त्र
पर सूक्ष्म विचार है । इतने प्राचीन काल में शब्दशास्त्र पर
ऐसा गूढ़ विचार और कहीं नहीं देखा जाता । शब्दशास्त्र पर

दो मत प्रचलित थे इसका पता यास्क के निरुक्त से लगता है ।
कुछ लोगों का मत था कि सब शब्द घातुमुक्त हैं और घातु
क्रियापद मात्र हैं जिनमें प्रत्ययादि लगाकर भिन्न शब्द बनते
हैं । यास्क ने इसी मत का खंडन किया है । इस मत के
विरोधियों का कहना था कि कुछ शब्द घातुरूप क्रियापदों से
बनते हैं पर सब नहीं, क्योंकि यदि 'अंस' से अश्व माना जाय
तो प्रत्येक चलने या आगे बढ़नेवाला पदार्थ अश्व कहलाएगा ।
यास्क मुनि ने इसके उत्तर में कहा है कि जब एक क्रिया से
एक पदार्थ का नाम पड़ जाता है तब वही क्रिया करनेवाले
और पदार्थ को वह नाम नहीं दिया जाता । दूसरे पक्ष का
एक और विरोध यह था कि यदि नाम इसी प्रकार दिए गए
हैं तो किसी पदार्थ में जितने गुण हों उतने ही उसके नाम भी
होने चाहिए । यास्क इसपर कहते हैं कि एक पदार्थ किसी
एक गुण या कर्म से एक नाम को धारण करता है । इसी
प्रकार और भी समझिए ।

दूसरे और तीसरे अध्याय में तीन निघंटुओं के शब्दों के अर्थ प्रायः
व्याख्या सहित हैं, चौथे से छठे अध्याय तक चौथे निघंटु की
व्याख्या है । सातवें से बारहवें तक पाँचवें निघंटु के वैदिक
देवताओं की व्याख्या है ।

निरुक्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. निरुक्त की रीति से निर्वचन । किसी
पद या वाक्य की ऐसी व्याख्या जिसमें व्युत्पत्ति आदि का
पूरा कथन हो । व्युत्पत्ति । किस शब्द का व्याकरण संबंध
और ऐतिहासिक विकास क्रम । २. एक काव्यात्मकार जिसमें
किसी शब्द का मनमाना अर्थ किया जाय परंतु वह अर्थ समु-
क्तिक हो । जैसे,—रूप आदि गुण तो बरी तजि के बज
वनितान । उद्भव कुब्जा बस भए, निगुंण बहू निदान । तात्पर्य
यह कि गुणवती ब्रजवनिताओं को छोड़कर 'गुणरहित' कुब्जा
के वन होने से कृष्ण सचमुच 'निगुंण' हो गए हैं ।

निरुच्छवास—वि० [सं०] १ (स्थान) जहाँ बहुत से लोग न
मिट सकें । संकरा । संकीर्ण । २. जहाँ ठगठस लोग अरे हों ।
जहाँ लड़े होने तक की जगह न हो । ३. मृत । मरा
हुआ (स्त्री०) ।

निरुज्ज(पु)—वि० [सं० नीरुज] ३० 'नीरुज' ।

निरुक्तंठ—वि० [सं० निरुक्तंठ] जिसे कोई कामना या इच्छा
न हो (स्त्री०) ।

निरुत्तर—वि० [सं०] १. जिसका कुछ उत्तर न हो । लाजवाब ।
२. जो उत्तर न दे सके । जो काबल हो जाय । उ०—बंशु-
बधूरत कहि कियो वचन निरुत्तर बालि ।—तुलसी (सम्ब०) ।
३. जिससे कोई उत्तर या बड़ा न हो (स्त्री०) ।

निरुत्थ—वि० [सं०] जिसका उद्धार न हो सके (स्त्री०) ।

निरुत्पात—[सं०] उत्पातरहित । अमिट से परे । (स्त्री०) ।

निरुत्सव—वि० [सं०] बिना उत्सव का । घूमघाम रहित (स्त्री०) ।

निरुत्साह^१—वि० [सं०] उत्साहहीन । जिसे उत्साह न हो ।

निरुत्साह^२—संज्ञा पु० शक्ति या उत्साह का अभाव (स्त्री०) ।

निरुसुक—वि० [सं०] १. चापरवाह। उदासीन। २. शांत।
अनुरसुक (को०)।

निरुदक—वि० [सं०] जलहीन (को०)।

निरुदर—वि० [सं०] १. बिना पेट का। २. कृश। पतला (को०)।

निरुद्देश्य—वि० [सं०] बिना किसी लक्ष्य या उद्देश्य का। उद्देश्य-हीन (को०)।

निरुद्ध^१—वि० [सं०] १. रुका हुआ। बंधा हुआ। प्रतिबद्ध। २. जो रोका गया हो (को०)।

निरुद्ध^२—संज्ञा पुं० योग में पाँच प्रकार की मनोवृत्तियों में से एक। चित्त की वह अवस्था जिसमें वह अपनी कारणीभूत प्रकृति को प्राप्त कर निश्चेष्ट हो जाता है।

विशेष—मन की वृत्तियाँ योग में पाँच मानी गई हैं—क्षिप्त, भुक्, विक्षिप्त, एकाग्र और निरुद्ध। चित्त के बाँबाडोल रहने को क्षिप्तावस्था, कर्तव्याकर्तव्य ज्ञानशून्य होने को भुक्तावस्था, चंचलता के बीच-बीच में चित्त की स्थिरता को विक्षिप्तावस्था, और एक वस्तु पर निश्चल रूप से स्थिर होने को एकाग्रावस्था कहते हैं। एकाग्र के उपरांत फिर निरुद्ध अवस्था की प्राप्ति होती है जिसमें स्थिर होने के लिये किसी वस्तु के आलंबन की आवश्यकता नहीं होती, चित्त अपनी प्रकृति में ही स्थिर हो जाता है।

निरुद्धकंठ—वि० [सं० निरुद्धकण्ठ] रुंधे गलेवाला। जिसका कंठ रुंध गया हो।

निरुद्धगुद—संज्ञा पुं० [सं०] एक रोग जिसमें मलद्वार बंध सा हो जाता है और मल बहुत थोड़ा थोड़ा और कष्ट से निकलता है।

निरुद्धप्रकाश—संज्ञा पुं० [सं०] एक रोग जिसमें मूत्रद्वार बंध सा हो जाता है और पेशाब बहुत रुक रुककर और थोड़ा थोड़ा होता है।

निरुद्धमान—वि० [सं०] रोका हुआ। जिसे रोक दिया गया हो (को०)।

निरुद्धवीर्य—वि० [सं०] जिसकी शक्ति रोक दी गई हो। जिसकी शक्ति को स्तंभित कर दिया गया हो।

निरुद्यम—वि० [सं०] जिसके पास कोई उद्यम न हो। उद्योगरहित। बेकाम।

निरुद्यमता—संज्ञा स्त्री० [सं०] निरुद्यम होने की क्रिया या भाव। बेकारी।

निरुद्यमी—संज्ञा पुं० [सं० निरुद्यमिन्] जो कोई उद्यम न करता हो। बेकार। निकम्मा।

निरुद्योग—वि० [सं०] जिसके पास कोई उद्योग न हो। उद्योग-रहित। बेकार। निकम्मा।

निरुद्योगी—संज्ञा पुं० [सं० निरुद्योगिन्] जो कुछ उद्योग न करे। निकम्मा। बेकार।

निरुद्धेग—वि० [सं०] उद्वेग से रहित। निश्चित।

निरुद्धमाद्—वि० [सं०] १. उन्मादरहित। २. जो बर्मांडो न हो। दण्डीन (को०)।

निरुपकारभाषि—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह बासी या बरोहर जो किसी धानदानीवाले काम में न लगी हो।

निरुपकारी—वि० [सं० निरुपकारिन्] उपकार न करनेवाला (को०)।

निरुपक्रम—वि० [सं०] जो ठीक न हो सके। असाध्य (को०)।

निरुपचार—वि० [सं० निर् + उपचार] जो उपचार के परे हो। उपचाररहित। असाध्य। उ०—यदि आत्मा को दे हुआ प्राण वासना उबार। जीवन निरोह, संवर्ष विरत हों, निरुपचार।—युगपथ, पु० १३६।

निरुपजीव्य—वि० [सं०] निर्वाह के अयोग्य। जिससे गुजारा न हो (को०)।

निरुपजीव्या भूमि—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह भूमि जिसपर किसी को गुजर न हो सकती हो (को०)।

निरुपद्रव—वि० [सं०] १. जिसमें या जहाँ कोई उपद्रव न हो। विघ्नरहित। शांतिमय। २. जो उत्पात या उपद्रव न करता हो। १. शुभ। कल्याणमय (को०)।

निरुपद्रवता—संज्ञा स्त्री० [सं०] निरुपद्रव होने की क्रिया या भाव।

निरुपद्रवो—संज्ञा पुं० [सं० निरुपद्रविन्] जो उपद्रव न करे। शांत।

निरुपधि—वि० [सं०] १. जिसमें किसी प्रकार की उपाधि न हो। वैशिष्ट्य रहित। विशेषण से अनवाञ्छित। २. जो उपद्रव न करता हो।

निरुपपत्ति—वि० [सं०] जिसकी कोई उपपत्ति न हो। अयोग्य।

निरुपपद्—वि० [सं०] १. जिसमें उपपद न हो। उपपदरहित। २. बिना उपाधि या पदवी का (को०)।

निरुपप्लव—वि० [सं०] जो क्षतिग्रस्त न हो। उत्पातरहित। निरुपद्रव (को०)।

निरुपभोग—वि० [सं०] जिसका कोई उपभोग न हो।

निरुपम^१—वि० [सं०] जिसकी उपमा न हो। उपमारहित। बेजोड़।

निरुपम^२—संज्ञा पुं० राष्ट्रकूट बंध के एक राजा का नाम।

निरुपमा—संज्ञा स्त्री० [सं०] गायत्री का एक नाम।

निरुपमिता—वि० [सं० निर् + उपमिता] बेजोड़। अद्वितीय। उ०—छवि बेला की नभ की साराई निरुपमिता।—अपरा, पु० १७।

निरुपयोग—वि० [सं०] जो किसी काम का न हो। व्यर्थ (को०)।

निरुपयोगी—वि० [सं०] जो उपभोग में न आ सके। व्यर्थ। निरर्थक।

निरुपल—वि० [सं०] बिना पत्थर को (को०)।

निरुपलेप—वि० [सं०] १. उपलेपरहित। अवरोध या बाधारहित। २. बिना लेपकाला। लेपरहित (को०)।

निरुपसर्ग—वि० [सं०] १. उपसर्गरहित। उपद्रवरहित। २. जो (धातु या शब्द) उपसर्गयुक्त न हो (को०)।

निरुपस्कृत—वि० [सं०] शुद्ध। पवित्र। पूत। जो उपस्कृत न हो (को०)।

निरुपहत—वि० [सं०] १. जिसे कोई क्षति न पहुँची हो। २. आग्यवान् (को०)।

निरुपहित—वि० [सं०] (दशम में) बिना उपाधिवाला (को०)।

निरुपाख्य^१—वि० [सं०] १. जिसकी व्याख्या न हो सके। २. जो बिल्कुल मिथ्या हो और जिसके होने की कोई संभावना न हो।

निरुपाख्य^२—संज्ञा पुं० [सं०] ब्रह्म ।

निरुपादान—वि० [सं०] इच्छा या कामना से मुक्त [को०] ।

निरुपाधि^१—वि० [सं०] १. उपाधिरहित । बाधरहित । २. मायारहित ।

निरुपाधि^२—संज्ञा पुं० [सं०] ब्रह्म ।

विशेष—उपाधि के नष्ट हो जाने पर जीव को ब्रह्म का रूप प्राप्त हो जाता है ।

निरुपाधिक—वि० [सं०] ३० 'निरुपाधि' [को०] ।

निरुपाय—वि० [सं०] १. जो कुछ उपाय न कर सके । २. जिसका कोई उपाय न हो ।

निरुपेक्ष—वि० [सं०] १. जिसमें उपेक्षा न हो । उपेक्षारहित । २. छत्र या धूर्तता से रहित [को०] ।

निरुवरणा^१—क्रि० प्र० [सं० निवारण] कठिनाता आदि का दूर होना । सुलभता । उ०—प्रस संयोग ईश जब करई । तबहुं कदाचित सो निरुवरई ।—तुलसी (शब्द०) ।

निरुवारा^१—संज्ञा पुं० [सं० निवारण] १. छुड़ाने का काम । मोचन । २. छुटकारा । बचाव । ३. सुलभाने का काम । उलभन मिटाने का काम । ४. तै करने का काम । निबटाने का काम । ५. निरुण्य । फैसला । उ०—कही जाय करे युद्ध विचार । साथ झूठ होयहै निरुवार ।—सूर (शब्द०) ।

निरुवारा^२—क्रि० प्र० [हि० निरुवार] १. छुड़ाना । मुक्त करना । बंधन आदि खोलना । २. सुलभाना । फँसी या गुथी हुई वस्तुओं को अलग अलग करना । उलभन मिटाना । उ०—तब सोइ बुद्धि पाय उजियारा । उर गृह बैठि प्र'पि निरुवारा ।—तुलसी (शब्द०) । ३. तै करना । निबटाना । निरुण्य करना । फैसला करना । वि० ३० 'निरुवारा' ।

निरुष्णता—संज्ञा स्त्री० [सं०] गरमी या ताप का प्रभाव [को०] ।

निरुष्णीव—वि० [सं०] बिना पगड़ी का । बिना टोपीवाला [को०] ।

निरुष्मा—वि० [सं० निरुष्मन्] जो गरम न हो । ठंडा [को०] ।

निरुद्ध^१—वि० [सं० निरुद्ध] १. उत्पन्न । २. प्रसिद्ध । विख्यात । माफ या बुझ किया हुआ [को०] । ४. अभिवाहित । कुंभारा ।

निरुद्ध^२—संज्ञा पुं० एक प्रकार का पशुयाग ।

निरुद्धसंज्ञा—संज्ञा स्त्री० [सं० निरुद्ध संज्ञा] वह संज्ञा जिसमें प्रयोगपरंपरा के कारण शब्द का पुराना लक्ष्यार्थ रूढ़ हो गया हो अर्थात् वह केवल मुख्यार्थबाध या प्रयोजन के कारण ही न ग्रहण किया गया हो । रुढ़ि या प्रसिद्ध को प्राप्त अभिधेयार्थ तुल्य लक्ष्यार्थ बोधक संज्ञा । जैसे, कर्मकुशल । 'कुशल' शब्द का मुख्य अर्थ है कुछ उखाड़ने में प्रवीण । पर यही संज्ञा द्वारा वह साधारणतः दस या प्रवीण के अर्थ में ग्रहण किया जाता है ।

निरुद्धवस्ति—संज्ञा स्त्री० [सं० निरुद्धवस्ति] वैद्यक में एक प्रकार की वस्ति या पिचकारी जिसमें रोमी की गुदा में एक विशेष प्रकार की नली के द्वारा कुछ ओषधियाँ पहुँचाई जाती हैं । यह क्रिया डाक्टर की एनिमा की क्रिया के समान ही होती है ।

निरुद्धा^१—संज्ञा स्त्री० [सं० निरुद्धा] ३० 'निरुद्धसंज्ञा' ।

निरुद्धा^२—वि० स्त्री० [सं०] अभिवाहिता । कुंभारी ।

निरुद्धि—संज्ञा स्त्री० [सं० निरुद्धि] १. निरुद्धसंज्ञा । २. प्रसिद्धि । ३. पटुता । दक्षता [को०] । ४. सत्यवचन । प्रमाणीकरण । पुष्टिकरण [को०] ।

निरुद्धा^३—वि० [सं० नि + रुत] बिना छद्मवाला । पुष्ट । मोन । उ०—बटि बटि गोरख फिर निरुद्धा को बट जाये को बट सुता ।—गोरख०, पृ० १५ ।

निरूप^१—वि० [हि० नि + रूप] १. रूपरहित । निराकार । उ०—मोहन मीनो अपनो रूप । यहि ब्रज बसत धँवे तुम बैठो ता बिन वही निरूप ।—सूर (शब्द०) । २. कुरूप । बद-सकल । उ०—मदन निरूपम निरूपन निरूप भयो चंद बहुरूप अनुरूप के बिचारिए ।—केशव (शब्द०) ।

निरूप^२—संज्ञा पुं० [सं०] १. वायु । २. देवता । ३. आकाश ।

निरूपक—वि० [सं०] [वि० स्त्री० निरूपिका] किसी विषय का निरूपण करनेवाला ।

निरूपण—संज्ञा पुं० [सं०] १. प्रकाश । २. किसी विषय का विवेचना-पूर्वक निरुण्य न या निर्धारण । विचार । प्रमेय, पदार्थ आदि का भेदोपभेदकत्व पूर्वक विस्तृत विवेचन । ३. प्रत्येक्षण । ठूँकना [को०] । ४. आकार । आकृति । रूप [को०] । ५. निवर्तन ।

निरूपणा—संज्ञा स्त्री० [सं०] ३० 'निरूपण' [को०] ।

निरूपना^१—क्रि० प्र० [सं० निरूपण] निरुण्य करना । ठहरना । निश्चित करना । उ०—(क) नेति नेति जेहि वेद निरुपा । तुलसी (शब्द०) । (ख) मगति निरूपहि भगत कवि निर्दिह वेद पुरान ।—तुलसी (शब्द०) ।

निरूपम—वि० [सं०] ३० 'निरूपम' ।

निरूपित—वि० [सं०] निरूपण किया हुआ । जिसकी विस्तृत विवेचना हो चुकी हो । जिसका निरुण्य हो चुका हो ।

निरूपिति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. व्याख्या । २. अनुसंधान । परीक्षण । श्रान्धीन [को०] ।

निरूप्य—वि० [सं०] जो निरूपण करने योग्य हो ।

निरूप्यमाण—वि० [सं०] जिसका निरूपण किया जा रहा हो । जिसपर विचार चल रहा हो । जो विवेचन का विषय हो ।

निरुद्ध—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक प्रकार की वस्ति या एनिमा । २. तर्क । ३. निश्चय । ४. पूर्ण वाक्य [को०] ।

निरुद्धा—संज्ञा पुं० [सं०] १. वस्ति चढ़ाना । एनिमा देना । २. निश्चय करना । ३. तर्क करना [को०] ।

निरुद्धवस्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] ३० 'निरुद्धवस्ति' ।

निरुद्धना^१—क्रि० प्र० [सं० निरुद्धना] देखना । निरुद्धना । निरुद्धना करना । उ०—(क) हनुमान भए दय धीरई से गज सौ गति मंद निरुद्धयो री ।—हनुमान (शब्द०) । (ख) न ठरे मन मोहनो चाहि रहै सब सोतैं सकानी निरुद्धयो री ।—हनुमान (शब्द०) ।

निरुद्ध—वि० [सं०] बिना शब्द का । बिना आवाज का [को०] ।

निरुद्ध^२—संज्ञा पुं० [सं० निरुद्ध] बरक ।

निरैठी^७—वि० [हि० निरी + ऐंठी] गुमान भरी । मस्त । उ०—
रूप गुन ऐंठी सु भमैठी उर पैठी बैठो, लाइनि निरैठी मति
बोलनि हरे हरी ।—घनानन्द, पृ० ५७ ।

निरोग^१—वि० [सं० नीरोग] रोगरहित । जिसे कोई रोग न
हो । स्वस्थ ।

निरोगी^१—संज्ञा पु० [सं० नीरोग] वह व्यक्ति जिसे कोई रोग
न हो । स्वस्थ । तंदुरुस्त ।

निरौठा^१—वि० [देश०] बदसूरत । बदचकल । कुरूप ।

निरोद्ध^१—वि० [सं०] निरोध करने के योग्य [को०] ।

निरोध—संज्ञा पु० [सं०] १. रोक । अवरोध । रुकावट । बंधन ।
२. घेरा । घेर लेना । उ०—तब रावण मुनि लंका निरोध ।
उपज्यो तन मन अति परम क्रोध ।—केशव (चम्पू) ।
३. नाश । ४. योग में चित्त की समस्त वृत्तियों को रोकना
जिसमें अम्यास और वैराग्य की आवश्यकता होती है । चित्त-
वृत्तियों के निरोध के उपरांत अनुष्ठान को निर्वाज समाधि प्राप्त
होती है । ५. दंड देना । चोट पहुँचाना [को०] । ६. बलीभूत
करना । निग्रह [को०] । ७. अरुचि । नापसंदगी [को०] । ८.
नैराश्य [को०] ।

निरोधक—वि० [सं०] [वि० की० निरोधिका] रोकनेवाला ।
जो रोकता हो । निरोध करनेवाला ।

निरोधन—संज्ञा पु० [सं०] १. रोक । रुकावट । २. पारे का छठा
संस्कार (वैश्वक) । ३. दे० 'निरोध' ।

निरोधपरिणाम—संज्ञा पु० [सं०] योग काल के अनुसार चित्तवृत्ति
की वह अवस्था जो व्युत्थान और निरोध के मध्य में
होती है ।

विशेष—योगकाल में क्षिप्त, मूढ़, विक्षिप्त इन तीन राजसिक
परिणामों को व्युत्थान कहते हैं और विमुक्त सत्त्वगुण की
प्रधानता होने पर जो अवस्था प्राप्त होती है उसे निरोध
कहते हैं । जब व्युत्थान से उत्पन्न संस्कारों का प्रत हो जाता
है और निरोध का आरंभ होने को होता है तब चित्त का
बोझा बोझा संबंध दोनों ओर रहता है । उस अवस्था को
निरोधपरिणाम कहते हैं ।

निरोधी—वि० [सं० निरोधिन्] निरोध करनेवाला । प्रतिबंध या
रुकावट करनेवाला ।

निरोधी^१—संज्ञा की० [हि० निराना + धीनी (प्रत्य०)] १. जैन
निराने के समय बाया जानेवाला एक प्रकार का ब्राम्हणीत ।
उ०—वह निरोधी आदि कई प्रकार की ब्राम्हणीतों से भी
मिलती है ।—ब्रह्मचर्य, भा० २, पृ० ३५२ । २. निराने की
क्रिया । उ०—होत निरोधी जब ध्यान के खेतन माही ।—
ब्रह्मचर्य, भा० १, पृ० ४८ । ३. निराने की मजबूरी ।

निरोध^१—वि० [सं० निर् + अधोध] १. बिना अधोध का । २.
जिसका कोई उपचार न हो । उ०—गरीबदास जी ने देख
लिया कि यह रोग निरोध है ।—कबीर मं०, पृ० १०७ ।

निर्ध्व^१—वि० [सं०] १. क्षरित । नष्ट । २. क्षीय । दुर्बल ।
कमजोर [को०] ।

निर्ध्व^१—संज्ञा की० [सं०] १. नैर्ध्वत कोण की स्वामिनी । २.
राजसी । ३. मृत्यु । ४. दरिद्रता । ५. विपत्ति । ६. पुण्यो
का निम्न तल [को०] । ७. मूल नक्षत्र का एक नाम । ८.
'निर्ध्वति' ।

निर्ध्व^१—संज्ञा पु० [सं०] १. ग्रष्ट वसुधों का नाम । २. एक
रुद्र [को०] ।

निर्ध्व^१—वि० [हि० निर् + केवल] १. निःशालिस । बिना
मिलावट का । २. शुद्ध । उ०—निर्ध्व निर्भय नाम सहाई ।
—दरिया, पृ० ३१ ।

निर्ध्व^१—संज्ञा पु० [फ़ा०] भाव । दर ।

यौ०—निर्ध्व दारोगा । निर्ध्वनामा । निर्ध्वबंदी ।

क्रि० प्र०—मुकरंर करना ।—बाँधना ।

निर्ध्वदारोगा—संज्ञा पु० [फ़ा०] मुसलमानों के राजत्वकाल में
बाजार का वह दारोगा जो बीजों के भाव या दर आदि की
निराणी करता था ।

निर्ध्वनामा—संज्ञा पु० [फ़ा०] मुसलमानों के राजत्वकाल की वह
सूची जिसमें बाजार की प्रत्येक वस्तु का भाव लिखा
रहता था ।

निर्ध्वबंदी—संज्ञा की० [फ़ा०] किसी चीज का भाव या दर निश्चित
करने की क्रिया ।

निर्ध्व^१—वि० [सं० निर्ध्व] जिसमें किसी प्रकार का गंध न हो ।
गंधहीन ।

यौ०—निर्ध्वपुष्पी ।

निर्ध्वता—संज्ञा की० [सं० निर्ध्वता] निर्ध्व होने की क्रिया
या भाव ।

निर्ध्वन—संज्ञा पु० [सं० निर्ध्वन] बध । घातन । हत्या
करना [को०] ।

निर्ध्वपुष्पी—संज्ञा पु० [सं० निर्ध्वपुष्पी] सेमर का पेड़ ।

निर्ध्व^१—संज्ञा पु० [सं०] देव ।

निर्ध्व^१—वि० [सं०] [वि० की० निर्ध्वता] निकला हुआ । बाहर
आया हुआ ।

निर्ध्व^१—संज्ञा पु० दे० 'निर्यात' । जैसे—निर्ध्व कर ।

निर्ध्व^१—वि० [सं० निर्ध्व] दे० 'निर्ध्व' उ०—सुबर बीर
संग्राम गुन अति गुन निर्ध्व बंधि ।—पृ० रा०, २५ । ६४७ ।

निर्ध्व^१—संज्ञा पु० [सं०] १. निकास । निकलने का मार्ग । २. बमन ।
पयान [को०] । ३. द्वार । दरवाजा । ४. वह स्थान जहाँ से
वस्तुओं का निर्यात होता है [को०] ।

निर्ध्व^१—संज्ञा पु० [सं०] १. निकलने का काम । निकलना । २.
द्वार जिसमें से होकर निकलते हैं । ३. द्वारपास [को०] ।

यौ०—निर्ध्वन मार्ग = निकलने, बाहर जाने का रास्ता ।

निर्ध्वना^१—क्रि० प्र० [सं० निर्ध्वन] निकलना । उ०—इस
प्रविर्धहि इक निर्ध्वनि और मूप दरबार ।—पुलही (चम्पू) ।

निर्ध्व^१—वि० [सं०] जिसे किसी प्रकार का वर्ष या अभिभाव न हो ।

निर्गलित—वि० [सं०] १. बहा हुआ। २. निकल गया हुआ। ३. घुला हुआ। मिला हुआ। पला हुआ [को०]।

निर्गलित—वि० [सं०] बिना झरोखे का। जिसमें वातायन या झिड़की न हो [को०]।

निर्गुंडी—संज्ञा स्त्री० [सं० निर्गुण्डो] दे० 'निगुंडो'।

निर्गुंडो—संज्ञा स्त्री० [सं० निर्गुण्डो] एक प्रकार का क्षुप। संभाल। सम्हान। सिदुवार।

विशेष—इसके प्रत्येक सीके में घरघर की पत्तियों के समान पाँच पाँच पत्तियाँ होती हैं जिनका ऊपरी भाग नीला और नीचे का भाग सफेद होता है। इसकी अनेक जातियाँ हैं। किसी में काले और किसी में सफेद फूल लगते हैं। फूल घाम के बौर के समान मंजरी के रूप में लगते हैं और केसरिया रंग के होते हैं। वैद्यक में इसे स्मरणशक्ति बंधक, गरम, कसी, कसेली, चरपरी, हलकी, नेत्रों के लिये हितकारी तथा शूल, सूजन, आमवात, कृमि, प्रदर, कोढ़, अरुचि, कफ और ज्वर को दूर करनेवाली माना है। औषधियों में इसकी जड़ का व्यवहार होता है।

पर्या०—नीलिका। नीलनिगुंडो। सिदुक। नीलसिदुक। पीतसहा। भूनकेशी। इन्दाग्री। कविका। शेफालिका। शीतभीक। नीलमंजरी। वनजा। मरुपुत्री। कतरीपत्रा। इन्दायिका। सिदुवार।

निर्गुंडोकल्प—संज्ञा पुं० [सं० निर्गुण्डोकल्प] वैद्यक के अनुसार निर्गुंडी और सहद को मिलाकर एक विशेष प्रकार से तैयार की हुई औषध।

विशेष—यह आँखों की ज्योति बढ़ानेवाली, और कोढ़, गुल्म, शूल, प्लीहा, उदर आदि रोगों को दूर करनेवाली तथा बहुत ही पोष्टिक समझी जाती है।

निर्गुंडीतेल—संज्ञा पुं० [सं० निर्गुण्डीतेल] वैद्यक में एक विशेष प्रकार से तैयार किया हुआ निर्गुंडो का तेल।

विशेष—यह सब प्रकार के फोड़े, कुँसियों, अपचो तथा कंठमाला आदि को अच्छा करनेवाला माना जाता है।

निर्गुण^१—संज्ञा पुं० [सं०] सत्व, रज और तम इन तीन गुणों से परे। परमेश्वर।

निर्गुण^२—वि० १. जो सत्व, रज और तम तीन गुणों से परे हो। २. जिसमें कोई अचक्षु गुण न हो। बुरा। बुराब। ३. प्रत्यक्षरहित। (धनुष) जिसमें रौंदा न हो [को०]। ४. विशेषता या गुणों से रहित [को०]।

निर्गुणता—संज्ञा स्त्री० [सं०] निर्गुण होने की क्रिया या भाव।

निर्गुणभूमि—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह भूमि जिसपर कुछ भी पैदा न होता हो। ऊसर जमीन (कोटि०)।

निर्गुणिया—वि० [सं० निर्गुण + हि० ह्या (प्रत्य०)] वह जो निर्गुण ब्रह्म की उपासना करता हो।

निर्गुणी—वि० [सं० निर्गुण] जिसमें कोई गुण न हो। गुणों से रहित। मूर्ख।

निर्गुन—वि० [सं० निर्गुण] दे० 'निर्गुण'।

निर्गुल्म—वि० [सं०] [वि० स्त्री० निर्गुल्मा] क्षुप या झाड़ी से रहित [को०]।

निर्गुण्ड^१—संज्ञा पुं० [सं० निर्गुण्ड] वृक्ष का कोटर।

निर्गुण्ड^२—वि० जो बहुत गूढ़ हो।

निर्गुह—वि० [सं०] गृहहीन। बिना घर का [को०]।

निर्गुहो—वि० [सं० निर्गुह] दे० 'निर्गुह' [को०]।

निर्गौरव—वि० [सं०] [वि० स्त्री० निर्गौरवा] १. गौरव रहित। सम्मान रहित। २. जिसमें बड़प्पन न हो [को०]।

निर्गन्ध^१—संज्ञा पुं० [सं० निर्गन्ध] १. बौद्ध क्षणिक। २. दिग्बर। ३. एक प्राचीन मुनि का नाम। ४. जुगाड़ी [को०]। ५. मूर्ख व्यक्ति [को०]। ६. सारण। वध [को०]।

निर्गन्ध^२—वि० १. निर्घन। गरीब। २. मूर्ख। बेवकूफ। ३. जिसे कोई सहायता देनेवाला न हो। निःसहाय। ४. वस्त्रहीन। ५. नग्न [को०]। ६. बध करनेवाला [को०]। ७. जिसे किसी प्रकार का बंधन न हो [को०]। ८. फलरहित। निष्फल [को०]।

निर्गन्धक^१—वि० [सं० निर्गन्धक] १. एकाकी। अलग। २. फलहीन। निष्फल। ३. चतुर। कुशल। ५. त्याग या छोड़ा हुआ। त्यक्त।

निर्गन्धक^२—संज्ञा पुं० १. बौद्ध क्षणिक। २. दिग्बर जैन। ३. जुगाड़ी [को०]।

निर्गन्धन—संज्ञा पुं० [सं० निर्गन्धन] वध [को०]।

निर्गन्धिक^१—वि० [सं० निर्गन्धिक] १. चतुर। २. जिसमें गति न हो [को०]।

निर्गन्धिक^२—संज्ञा पुं० दे० 'निर्गन्धक' [को०]।

निर्गन्धिका—संज्ञा स्त्री० [सं० निर्गन्धिका] बौद्ध भिक्षुणी [को०]।

निर्गोहा—वि० [सं०] १. प्रत्यक्ष या साक्षात् करने योग्य। २. अनुभव के योग्य। ३. लेने या अपनाने लायक [को०]।

निर्घट—संज्ञा पुं० [सं० निर्घट] १. शब्द या ग्रन्थसूची। फहरिस्त। २. दे० 'निघंटु' [को०]।

निघंट—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह हाट या बाजार जहाँ किसी प्रकार का राजकर न लगता हो। २. सरा हुआ या जोड़ भाड़ से युक्त हाट [को०]।

निर्घात—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह शब्द जो हवा के बहुत तेज चलने से होता है।

विशेष—फलित ज्योतिष के अनुसार दिन के भिन्न भिन्न भागों में इस प्रकार के शब्द होने के भिन्न भिन्न शुभ अशुभ परिणाम होते हैं। जिस समय निर्घात होता हो उस समय किसी प्रकार का मंगल कार्य करना निषिद्ध है।

२. बिजली की कड़क। ३. प्राचीन काल का एक प्रकार का मत्स्य। ४. बरबादी। विनाश [को०]। ५. तूफान। आघात। बवंडर [को०]। ६. भूकंप। भूचाल [को०]। ७. आघात। वक्का [को०]।

निर्घातन—संज्ञा पुं० [सं०] १. सुश्रुत के अनुसार अस्त्रविक्रिया की एक क्रिया का नाम । २. बाहर करना । निकालना (को०) ।

निर्घृष्ट—वि० [सं०] घोषित (को०) ।

निघ्नित(पु)—वि० [सं० निर्घृण] ३० 'निघृण' । उ०—निघ्नित थे हम क्योंकि राग से या संघर्ष हमारा —सम०, पृ० २२ । (ख) श्री स्वर्वासी अमर मनुज सा निघ्नित होता तू भी । —साम०, पृ० २२ ।

निघृण—वि० [सं०] १. जिसे घृणा न हो । जिसे गंदी और बुरी वस्तुओं से घिन न लगे । २. जिसे बुरे कामों से घृणा या लज्जा न हो । ३. बिना घृणावाले मनुष्यों का । अति नीच । अयोग्य । निकम्मा । निधित । उ०—ज्यों स्थो करके अपने निघृण जीवन को बिताने का मनसूबा मैंने ठान लिया ।—मरस्वती (शब्द०) । ४. निर्दय । बेरहम । दयाहीन । उ०—रावण क्यों न लज्यो तब ही इन । सीय हरी जबहीं वह निघृण ।—देवव (शब्द०) ।

निघृणा—संज्ञा पुं० [सं०] निर्दयता । क्रूरता । घृष्टता । अविनीतता (को०) ।

निर्घोष^१—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० निर्घोषित] शब्द । आवाज ।

निर्घोष^२—वि० [सं०] शब्दरहित ।

निर्घा—संज्ञा पुं० [हि०] बंधु नामक साग । विशेषः— ३० 'बंधु' ।

निर्झल(पु)—वि० [सं० निष्पल] जिसे किसी प्रकार का छल या कपट न आता हो । निष्कपट ।

निर्जंतु—वि० [सं० निर्जंतु] जंतुओं या कीटाणुओं से मुक्त (को०) ।

निर्जन^१—वि० [सं०] १. जहाँ कोई मनुष्य न हो । सुनसान । २. सेवकरहित (को०) ।

निर्जन^२—संज्ञा पुं० उजाड़ जगह । मरुस्थल । सुनसान स्थान (को०) ।

निर्जन्य—संज्ञा स्त्री० [सं०] पूर्ण विजय (को०) ।

निर्जर^१—वि० [सं०] जिसे कभी बुढ़ापा न आवे । कभी बुढ़ा न होनेवाला ।

निर्जर^२—संज्ञा पुं० १. देवता ।

विशेष—देवता लोग जरा अर्थात् बुढ़ापे से सदा रक्षित माने जाते हैं, इसीलिये वे 'निर्जर' कहलाते हैं । उनको चिरकिशोर या चिर तरुण भी इसी कारण कह दिया जाता है ।

२. सुधा । अमृत ।

निर्जरा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. गृह्य । गिरीय । २. तालपत्तों । ३. संचित कर्म का तप द्वारा निर्जरण या क्षय करना । (जैन) ।

निर्जरायु—वि० [सं०] (साप) जिसने कंबुल छोड़ दिया हो । बिना चमड़े का (को०) ।

निर्जल^१—वि० [सं०] [वि० भी निर्जला] बिना जल का । जल के संसर्ग में रहित । २. जिसमें जल पीने का विधान न हो । जैसे, निर्जल व्रत ।

निर्जल^२—संज्ञा पुं० [सं०] वह स्थान जहाँ जल बिल्कुल न हो ।

निर्जलद—वि० [सं०] मेघ से रहित । बिना बादल का (को०) ।

निर्जल व्रत—संज्ञा पुं० [सं०] वह व्रत या उपवास जिसमें व्रती जल तक न पीए ।

निर्जला एकादशी—संज्ञा स्त्री० [सं०] जेठ सुदी एकादशी तिथि, जिस दिन लोग निर्जल व्रत रखते हैं ।

निर्जाल्य—वि० [सं०] १. जड़ता या मुर्खता से रहित । २. पाला या तुषार से रहित । ३. शीत से मुक्त । ठंडक से रहित (को०) ।

निर्जिज्ञास—वि० वि० [सं०] जानने या समझने की इच्छा न रखनेवाला (को०) ।

निर्जित—संज्ञा पुं० [सं०] १. जीता हुआ । जिसे जीत लिया गया हो । २. जो वक्त में कर लिया गया हो ।

निर्जिति—संज्ञा स्त्री० [सं०] ३० 'निर्जय' (को०) ।

निर्जितेन्द्रियप्राप्त—संज्ञा पुं० [सं० निर्जितेन्द्रियप्राप्त] वह व्यक्ति जिसने इन्द्रियों को जीत लिया हो । यति (को०) ।

निर्जिह—संज्ञा पुं० [सं०] मंडक । मेढक (को०) ।

निर्जीव—वि० [सं०] १. जीवरहित । बेजान । मृतक । प्राणहीन । २. प्रकृत या उरमाह्वीन ।

निर्जीवन वि० [सं० निर् + जीवन] ३० 'निर्जीव' । उ०—पृथ्वी को बहती धू, निर्जीवन जड़ चेतन ।—अपरा, पृ० ६० ।

निर्जीवित—वि० [सं० निर्जीव] ३० 'निर्जीव' । उ०—प्रोयस कविते ! हे निरुपमिते ! अथराभूत से इन निर्जीवित जगहों में जीवन लाओ ।—बीणा, पृ० १ ।

निर्जीति—वि० [सं०] जिसके बंधुबाधव या संबंधी न हों (को०) ।

निर्जीन—वि० [सं०] [वि० भी निर्जीना] मूल । असंभ्य (को०) ।

निर्ज्वर—वि० [सं०] उबरविहीन (को०) ।

निर्ज्वर—संज्ञा पुं० [सं०] १. किसी ऊँचे स्थान या पर्वत से निकला हुआ पानी का झरना । सोता । चश्मा । झरना । २. सूर्य के एक चोड़े का नाम (को०) । ३. हाथी (को०) । ४. तुषाग्नि । भूरी की धाग (को०) ।

निर्मरिणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] पहाड़ी नदी । झरने के रूप से निकलकर बहनेवासी नदी (को०) ।

निर्मरी—संज्ञा स्त्री० [सं०] ३० 'निर्मरिणी' (को०) ।

निर्मरी—संज्ञा पुं० [सं० निर्मरिन्] पर्वत । पहाड़ (को०) ।

निर्णय—संज्ञा पुं० [सं०] १. प्रोचित्य और अनोचित्य आदि का विचार करके किसी विषय के दो पक्षों में से एक पक्ष को ठीक ठहराना । किसी विषय में कोई सिद्धांत स्थिर करना । निश्चय । २. बादी और प्रतिवादी की बातों को सुनकर उनके सत्य अथवा असत्य होने के संबंध में कोई विचार स्थिर करना । फैसला । निश्चय । (स्मृतिधर्मों में यह चतुष्पाद व्यवहार का अंतिम पाद है) । ३. मौलाना में किसी स्थिर सिद्धांत से कोई परिच्छाद निकालना । ४. हटाना । दूर करना (को०) ।

यौ०—निर्णयपाद = ३० 'निर्णय-२' ।

निर्णयन—संज्ञा पुं० [सं०] निर्णय करना । निबटाना (को०) ।

निर्णयोपमा—संज्ञा पुं० [सं०] एक अर्थालंकार जिसमें उपमेय और उपमान के गुणों और दोषों की विवेचना की जाती है ।

निर्णय—संज्ञा पुं० [सं०] सूर्य के एक छोड़े का नाम [को०] ।

निर्णायक—वि० [सं०] निर्णय करनेवाला [को०] ।

निर्णायन—संज्ञा पुं० [सं०] १. निश्चय करना । स्थिर करना । २. यंत्रस्थल । हाथी के कान का बाहरी किनारा [को०] ।

निर्णिक—वि० [सं०] १. धोत । धुला हुआ । साफ । शुद्ध किया हुआ । २. जिसके लिये प्रायश्चित्त किया गया हो [को०] ।

निर्णिकमना—वि० [सं० निर्णिकमनस्] शुद्ध या पवित्र हृदय-वाला [को०] ।

निर्णिकि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. धोना । साफ करना । २. प्रायश्चित्त [को०] ।

निर्णित—वि० [सं०] निर्णय किया हुआ । जिसका निर्णय हो चुका हो ।

निर्णयक—संज्ञा पुं० [सं०] ३० 'निर्णयन' [को०] ।

निर्णयजक—संज्ञा पुं० [सं०] धोबी [को०] ।

निर्णयजन—संज्ञा पुं० [सं०] १. धोने या नहाने का जल । २. प्रायश्चित्त । ३. शुद्ध करना या धोना [को०] ।

निर्णयता—वि० [सं० निर्णयतृ] [वि० स्त्री० निर्णयत्री] निर्णय करनेवाला [को०] ।

निर्णयता—संज्ञा पुं० १. विचारवृत्ति । जज । २. मार्गदर्शक । ३. प्रमाणपत्र । लेखसाक्ष्य [को०] ।

निर्णयद—संज्ञा पुं० [सं०] नहिष्कार । निष्कासन [को०] ।

निर्णय—संज्ञा पुं० [सं० नृत्य] नृत्य । नाच ।

निर्णयक—संज्ञा पुं० [सं० नर्तक] १. नाचनेवाला । नट । २. भाइ ।

निर्णयना—संज्ञा पुं० [सं० नृत्य] नाचना । नृत्य करना ।

निर्णय—वि० [सं० निर्णय] जिसे सब प्रकार के दंड दिए जा सकें ।

निर्णय—संज्ञा पुं० [सं०] गूढ़ जिसे सब प्रकार के दंड दिए जा सकते हैं ।

निर्णय—वि० [सं० निर्णय] जिसे दंड या अभिमान न हो । दंडहीन ।

निर्णय—वि० [हि० निर्णय] ३० 'निर्णय' ।

निर्णय—वि० [सं०] १. जला हुआ । दग्ध । २. जो न जला हो । अक्षय [को०] ।

निर्णय, निर्णय—वि० [सं०] २. दुर्घण । उग्र । २. निष्ठुर । दयाणूय । ३. पागल । ४. अनावश्यक । बेकाम का । ५. ईर्ष्यालु [को०] ।

निर्णय—वि० [सं०] जिसे कुछ भी क्या न हो । निष्ठुर । बेरहम ।

निर्णयता—संज्ञा स्त्री० [सं०] निर्णय होने की क्रिया या भाव । बेरहमी । निष्ठुरता ।

निर्णय—वि० [हि०] ३० 'निर्णय' ।

निर्णय—संज्ञा पुं० [सं०] १. झरना । २. कंदरा । गुफा । ३. तट । सार [को०] ।

निर्णय—वि० १. निर्णय । २. कठोर । कठिन । ३. बेधर्म । निर-अय [को०] ।

निर्णय—वि० [सं०] १. जिसमें पता न हो । २. गुटबंदी से दूर ।

निर्णयन—संज्ञा पुं० [सं०] ध्वंस । बध । विनाश [को०] ।

निर्णयन—वि० [सं०] बिना दात का [को०] ।

निर्णयन—संज्ञा पुं० [सं०] १. भिलावे का पेड़ । २. जलाना [को०] ।

निर्णयन—वि० १. दाहरहित । अग्निरहित । २. जलानेवाला । ज्वलनशील [को०] ।

निर्णयना—संज्ञा पुं० [सं०] ३० 'निर्णयन' जला देना । उ०—को न क्रोध निर्दहो काम बस केहि नहि कीन्हा ।—तुलसी (सम्ब०) ।

निर्णयनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] पूर्वा लता । चूरनहार । मुरा । मरोड़फली ।

निर्णयता—संज्ञा पुं० [सं० निर्णयतृ] १. देनेवाला । दाता । २. खेत मिराने या काटनेवाला [को०] ।

निर्णयित—वि० [सं०] १. सुपोषित । मोटा ताजा । २. निर्मल । बिना लगाव का [को०] ।

निर्णयित—वि० [सं०] १. जिसका निर्णय हो चुका हो । २. बतलाया या नियत किया हुआ । जिसके संबंध में पहले ही कुछ बतलाया या निश्चय कर दिया गया हो । ठहराया हुआ । जैसे,—(क) सब लोग निर्णयित स्थान पर पहुँच गए । (ख) प्राय निर्णयित समय पर आ जाइएगा ।

निर्णयित—वि० [सं०] ३० 'निर्णय' ।

निर्णय—संज्ञा पुं० [सं०] १. किसी पदार्थ को बतलाना या दिखाना । संकेत करना । २. ठहराना या निश्चित करना । ३. बाला । हुकुम । ४. कथन । ५. उल्लेख । जिक्र । ६. वर्णन । ७. नाम । संज्ञा । ८. सपात । सामीप्य [को०] ।

निर्णयक—वि० [सं०] १. निर्णय करनेवाला । दिखानेवाला । २. पंचप्रदर्शक [को०] ।

निर्णयक—वि० [सं०] १. निर्णय करने योग्य । २. बतलाने या दिखाने योग्य । ३. प्रायश्चित्त करने योग्य [को०] ।

निर्णय—वि० [सं० निर्णय] [वि० स्त्री० निर्णयत्री] १. बताने का दिखानेवाला । २. मार्ग दिखानेवाला [को०] ।

निर्णय—वि० [सं०] दीनतारहित । जो दीन न हो [को०] ।

निर्णय—वि० [सं०] १. जिसमें कोई दोष न हो । बेऐब । बे दान । २. जिसने कोई अपराध न किया हो । बेकसूर ।

निर्णयता—संज्ञा स्त्री० [सं० निर्णय + ता (प्रत्य०)] निर्णय होने की क्रिया या भाव । अकलंकता । शुद्धता । शोधविहीनता ।

निर्णय—वि० [हि०] ३० 'निर्णय'—२ ।

निर्णय—वि० [सं०] १. जो भौतिक न हो । २. इन्द्रियरहित । मनहीन । गरीब [को०] ।

निर्णय—वि० [सं०] दूषणहीन [को०] ।

निर्णय—वि० [सं०] द्वेष या अस्तर से रहित [को०] ।

निर्णय—वि० [सं० निर्णय] ३० 'निर्णय' ।

निर्णय—वि० [सं० निर्णय] १. जिसका कोई विरोध करनेवाला न हो । जिसका कोई दुंदी न हो । २. जो राग, द्वेष, मान, अपमान आदि द्वंद्वों से रहित या परे हो । ३. स्वच्छ । बिना बाधा का ।

निर्धन^१—वि० [सं०] जिसके पास धन न हो। धनहीन। गरीब। दरिद्र। कंगाल।
 निर्धन^२—संज्ञा पुं० [सं०] वृषभ। बैल [को०]।
 निर्धनता—संज्ञा स्त्री० [सं०] निर्धन होने की क्रिया या भाव। गरीबी। कंगाली। दरिद्रता।
 निर्धर्म—संज्ञा पुं० [सं०] जो धर्म से रहित हो।
 निर्धातु—वि० [सं०] हीनवीर्य। अशक्त [को०]।
 निर्धार, निर्धारण—संज्ञा पुं० [सं०] १. ठहराना या निश्चित करना। २. निश्चय। निर्णय। ३. न्याय के अनुसार किसी एक जाति के पदार्थों में से गुण या कर्म आदि के विचार से कुछ को अलग करना। जैसे,—काली गोएँ बहुत दूध देनेवाली होती हैं। यही गो जाति में से अधिक दूध देनेवाली होने के कारण काली गोएँ पुष्प की गई हैं।
 निर्धारना—क्रि० सं० [सं० निर्धारण] निश्चित करना। निर्धारित करना। ठहराना।
 निर्धारित—वि० [सं०] जिसका निर्धारण हो चुका हो। निश्चित किया हुआ। ठहराया हुआ।
 निर्धार्य—वि० [सं०] १. निर्धारण के योग्य। जिसका निर्धारण किया जा सके। २. उद्योगी। उद्यमी। उत्साह से काम करनेवाला। ३. निर्भय। निर्भीक [को०]।
 निर्धूत^१—वि० [सं०] धोया हुआ। बहाया हुआ। दूर किया हुआ। उ०—साधु पद सलिल निर्धूत कल्मष सरल स्वपत्र जवनाद कैवल्यभागी।—तुलसी (शब्द०)।
 निर्धूत^२—वि० [सं०] १. खंडित। टूटा हुआ। २. जिनका त्याग कर दिया गया हो। ३. फेंका हुआ। प्रसिप्त [को०]। ४. हिलाया या झुकभोरा हुआ। (को०)।
 निर्धूत^३—संज्ञा पुं० वह व्यक्ति जिसे उसके संबंधियों ने त्याग दिया हो [को०]।
 निर्धूम—वि० [सं०] बिना धुएँ वाला [को०]।
 निर्धौल—वि० [सं०] धुला हुआ। साफ। २. चमकदार। चमकीला।
 निर्नर—वि० [सं०] जिसे मनुष्यों ने त्याग दिया हो [को०]।
 निर्नाथ—वि० [सं०] अनाथ। बिना अभिभावक का [को०]।
 निर्नाथता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. रंझापा। वैधव्य। २. मुरझा का अभाव। ३. अनाथ की दशा [को०]।
 निर्नायक—वि० [सं०] नायकरहित। बिना राजा का। शासक-हीन [को०]।
 निर्निद्र—वि० [सं०] निद्रारहित। बिना नोंद का। जागरूक [को०]।
 निर्निमित्त, निर्निमित्तक—वि० [सं०] अकारण। बिना बहाने।
 निर्निमेष^१—क्रि० वि० [सं०] बिना पलक झपकाए। एकटक।
 निर्निमेष^२—वि० १. जो पलक न गिरावे। २. जिसमें पलक न गिरे। जैसे, निर्निमेष दृष्टि।
 निर्वण^१—वि० [हि० निर + पण] ३० 'निष्पक्ष'।

निर्फल—वि० [हि० निर + फल] ३० 'निष्फल'।
 निर्वन्ध^१—संज्ञा पुं० [सं० निर्वन्ध] १. रुकावट। अड़चन। २. बिद। हट। ३. आग्रह।
 निर्वन्ध—वि० बंधनहीन। अबाध। स्वतंत्र।
 निर्वन्धी—वि० [सं० निर्वन्ध] बिना किसी बंधन के। बिना किसी बाधा या रुकावट के। उ०—पवना खेलै तहाँ निर्वन्धी।—प्राण०, पृ० ११।
 निर्वर्द्धण—संज्ञा पुं० [सं०] मारण [को०]।
 निर्वल—वि० [सं०] बलहीन। कमजोर।
 निर्वलता—संज्ञा स्त्री० [सं०] कमजोरी।
 निर्वहना^१—क्रि० प्र० [सं० निर्वहन] १. पार होना। अलग होना। दूर होना। उ०—जे नाथ करि करुणा बिलोके त्रिविध दुख ते निर्वहे।—तुलसी (शब्द०)। २. क्रम का चलना। निभना। पालन होना। उ०—जामों बात राम की कहौ। प्रीति न काहू सो निर्वही।—कबीर (शब्द०)।
 निर्वाचन—संज्ञा पुं० [सं० निर्वाचन] ३० 'निर्वाचन'।
 निर्वाण—संज्ञा पुं० [सं० निर्वाण] ३० 'निर्वाण'।
 निर्वाध—वि० [सं०] बेरोक। अबाध। २. निजंन। एकांत। ३. बिना उपद्रव का। निरुपद्रव [को०]।
 निर्वाधित—वि० [सं० निर्वाध] बाधाहीन।
 निर्वास^१—वि० [सं० निर + वास] जिसके कोई आस रहने की जगह न हो। अनिकेत। उ०—निर्दुखी निर्वन्ता सहजो अरु निर्वास। संतोषी निर्मल दसा तकै न पर की धास।—सहजो, पृ० १६।
 निर्वाज—वि० [सं०] जिसमें बीज न हो। ३० 'निर्वाज' [को०]।
 निर्बुद्धि—वि० [सं०] जिसे बुद्धि न हो। मूर्ख। बेवकूफ।
 निर्वैरता^१—संज्ञा स्त्री० [सं० निर्वैर + ता (प्रत्य०)] वैर या द्वेष-राहित्य। वैरविहीनता। उ०—निर्दुखी निर्वैरता सहजो अरु निर्वास। संतोषी निर्मल दसा तकै न पर की धास।—सहजो, पृ० १६।
 निर्वाध—वि० [सं०] जिसे कुछ भी बोध न हो। जिसे अच्छे बुरे का कुछ भी ज्ञान न हो। अज्ञान। अनजान।
 निर्भग्न—वि० [सं०] १. टूटा फूटा। २. झुका हुआ। टेढ़ा। ३. हीन। निकृष्ट [को०]।
 निर्भट—वि० [सं०] कठोर। उठ [को०]।
 निर्भय^१—वि० [सं०] १. जिसे कोई डर न हो। निडर। बेझोफ।
 निर्भय^२—संज्ञा पुं० [सं०] १. पुराणानुसार रोच्य मनु के एक पुत्र का नाम। २. बढ़िया घोड़ा।
 निर्भयता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. निडरपन। निडर होने का भाव। २. निडर होने की अवस्था।
 निर्भर^१—वि० [सं०] १. पूर्ण। भरा हुआ। उ०—सबके उर निर्भर हरष पूरित पुलक सरीर। कबहि देखिबे नवन अरि

राम सवन दोड़ धीर।—तुलसी (शब्द०) । २. युक्त । मिला हुआ । ३. व्यवसित । आश्रित । मुनहसर । ४. गाढ़ । जैसे, निर्मर परिरेम (को०) । ५. प्रतिशय तीव्र । गहरा । अत्यधिक । जैसे, निर्मर निद्रा (को०) ।

निर्मर^२—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह सेवक जिसे वेतन न दिया जाता हो । बेगार । २. आचिन्त्य । अतिशयता (को०) ।

निर्मरना^(३)—क्रि० सं० [हि०] आश्रित होना । अत्यंत भार जाना । उ०—अमृत निर्मर (२) साई । उलट दरियाव निर्मरिया ।—रामानंद०, पृ० १० ।

निर्मरत्न—संज्ञा पुं० [सं०] १. अत्संन । डाँट डपट । तिरस्कार । २. निदा । ३. अलसा ।

निर्मरत्न—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. डाँट डपट । बुरा अला कहना । २. निदा । बदनामी ।

निर्भाग्य—वि० [सं०] भाग्यहीन (को०) ।

निर्भास—संज्ञा पुं० [सं०] प्रकाशित होना । उद्भासित होना (को०) ।

निर्भिन्न—वि० [सं०] १. प्रकट । उद्घाटित । २. छिद्रित । ३. विदीर्ण । फटा हुआ (को०) ।

निर्भीक—वि० [सं०] बेडर । निडर । जिसे डर न हो ।

निर्भीकता—संज्ञा स्त्री० [सं०] निर्भीक होने की क्रिया या भाव ।

निर्भीत—वि० [सं०] जिसे भय न हो । निडर ।

निर्भूति—संज्ञा स्त्री० [सं०] अंतर्धान होना । गायब होना ।

निर्भृति—वि० [सं०] बिना तनकाह का (केवक) । (मजुरा) जो बिना उजरत के काम करे (को०) ।

निर्भेद—संज्ञा पुं० [सं०] १. फाड़ना । २. छेद करना । वेधन । ३. डोसना । पर्दाफाश करना । ४. पता लगाना । ५. नदी का पेटा । ६. भेदरहित कथन । स्पष्ट कथन (को०) ।

निर्भ्रम^१—वि० [सं०] भ्रमरहित । शंकरहित । जिसमें कोई संदेह न हो ।

निर्भ्रम^२—क्रि० (वि०) निश्चयक । देखटके । बिना संकोच के । स्वच्छंदता से । बेडर । उ०—श्यामा श्याम सुमग्न समुना जल निर्भ्रम करत विहार ।—सूर (शब्द०) ।

निर्भ्रात—वि० [सं० निर्भ्रात] १. भ्रमरहित । निश्चित । जिसमें कोई संदेह न हो । २. जिसको कोई भ्रम न हो ।

निर्मथ, निर्मथन, निर्मथ्य—संज्ञा पुं० [सं० निर्मथ, निर्मथन, निर्मथ्य] १० 'निर्मथ' (को०) ।

निर्मथिक—वि० [सं०] जहाँ कोई (अर्थात् मक्खी तक) न हो । एकांत । सुनसान (को०) ।

निर्मथज—वि० [सं०] मज्जा या चरबी से रहित । दुबला पतला (को०) ।

निर्मथ—संज्ञा पुं० [सं०] अरणि जिसे रगड़कर यज्ञों के लिये धाग निकालते हैं ।

निर्मथन—संज्ञा पुं० [सं०] १० 'निर्मथ' ।

निर्मथ्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] नाशिका या नखी नाम का गंधद्रव्य ।

निर्मद—वि० [सं०] १. जिसे घमंड न हो । २. अग्रमत्ता । ३. क्षिन्न (को०) ।

निर्मना^(३)—क्रि० सं० [सं० निर्माण] १० 'निर्माणा' ।

निर्मनुज, निर्मनुष्य—वि० [सं०] १. जहाँ आबसी न हों । गैर आबाद । २. आदर्शियों द्वारा त्यक्त (को०) ।

निर्मम—वि० [सं०] जिसे ममता न हो । जिसको कोई वासना न हो ।

निर्मर्याद—वि० [सं०] १. मर्यादाहीन । जिसने मर्यादा छोड़ दी हो । २. उदत । अशिष्ट (को०) ।

निर्मल^१—वि० [सं०] १. मलरहित । साफ । स्वच्छ । २. पापरहित । शुद्ध । पवित्र । ३. दोषरहित । निर्दोष । नशंकहीन ।

निर्मल^२—संज्ञा पुं० १. अन्नक । २. निर्मली ।

निर्मलता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. सफाई । स्वच्छता । २. निष्कलंकता । ३. शुद्धता । पवित्रता ।

निर्मला—संज्ञा पुं० [सं० निर्मल] १. एक नानकपंथी संप्रदाय ।

विशेष—इसके प्रवर्तक रामदास नामक एक महात्मा थे । इस संप्रदाय के लोग गेरू वस्त्र पहनते और साधु संन्यासियों की भाँति रहते हैं ।

२. इस संप्रदाय का कोई व्यक्ति ।

निर्मली—संज्ञा पुं० [सं० निर्मल] १. एक प्रकार का मन्मोहा सदाबहार वृक्ष जो बंगाल, मध्यभारत, दक्षिण भारत और बर्मा में पाया जाता है । फलक । पाय पसारी । चाकसू ।

विशेष—इसकी लकड़ी बहुत चिकनी, कड़ी और मजबूत होती है, और इमारत, खेती के औजार और गाड़ियाँ आदि बनाने के काम में आती है । चीरने के समय इसकी लकड़ी का रंग अंदर से सफेद निकलता है परंतु हवा लगते ही कुछ भूरा या काला हो जाता है । इस वृक्ष के फल का गूदा लाया जाता है और इसके पके हुए बीजों का, जो कुचले की तरह के परंतु उससे बहुत छोटे होते हैं, आँखों, पेट तथा मूत्रयंत्र के अनेक रोगों में व्यवहार होता है । गंदले पानी को साफ करने के लिये भी ये बीज उसमें बिसकर डाल दिए जाते हैं जिससे पानी में मिली हुई मिट्टी जल्दी बैठ जाती है ।

२. रोठे का वृक्ष या फल ।

निर्मलोपल—संज्ञा पुं० [सं०] स्फटिक ।

निर्मल्य—संज्ञा स्त्री० [सं०] स्पृष्टका । असवरण ।

निर्मास—संज्ञा पुं० [सं०] वह मनुष्य जो भोजन के अभाव के कारण बहुत दुबला हो गया हो । जैसे, तपस्वी या वरिष्ठ निश्चयवा आदि ।

निर्माण—संज्ञा पुं० [सं०] १. रचना । बनावट । २. बनाने का काम ।

निर्माणविद्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] इमारत, नहर, पुल इत्यादि बनाने की विद्या । वास्तुविद्या । इंजीनियरी ।

निर्माता—संज्ञा पुं० [सं० निर्मातृ] निर्माण करनेवाला । बनानेवाला । जगृ । जो बनावे ।

निर्मात्रिक—वि० [सं०] बिना मात्रा का । जिसमें मात्रा न हो ।

निर्मान^७—वि० [सं० निर् + मान] जिसका मान न हो । बेहद । अपार । उ०—निर्य निर्मय निर्ययुक्त निर्मान हरि ज्ञान चन सच्चिदानंद मूल ।—तुलसी (शब्द०) ।

निर्माना^७—क्रि० सं० [सं० निर्माण] बनाना । रचना । उत्पन्न करना । उ०—ब्रह्मा ऋषि मरीचि निर्माणो । ऋषि मरीचि कश्यप उपजायो ।—सूर (शब्द०) ।

निर्मायल^७—संज्ञा पुं० [सं० निर्मायल] दे० 'निर्मायल' ।

निर्मायल^७—वि० [सं० निर्मल] दे० 'निर्मल' । उ० गुर दयाउ सरोवर सत पूरा । प्रति निर्मायल भगवत भरपूरा ।—प्राण, पु० १८४ ।

निर्मायल्य—संज्ञा पुं० [सं०] बहु पदार्थ जो किसी देवता पर चढ़ चुका हो । देवता पर चढ़ चुकी हुई चीज । देवापित वस्तु ।

विशेष—(क) जो पुष्प, फल और मिष्ठान्न आदि किसी देवता पर चढ़ाए जाते हैं वे विसर्जन से पहले 'नैवेद्य' और विसर्जन के उपरांत 'निर्मायल्य' कहलाते हैं । (ख) शिव के प्रतिरक्त और सब देवताओं के निर्मायल्य पुष्प और मिष्ठान्न आदि ग्रहण किए जाते हैं ।

निर्मायल्य—संज्ञा स्त्री० [सं०] स्तुतिका । प्रसन्नकर ।

निर्मित—वि० [सं०] बनाया हुआ । रचित ।

निर्मिति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. निर्माण । बनाने की क्रिया । रचना । २. बनाने का भाव ।

निमुक्त^१—वि० [सं०] १. जो मुक्त हो गया हो । जो छुट गया हो । २. जिसके लिये किसी प्रकार का बंधन न हो ।

निमुक्त^२—संज्ञा पुं० [सं०] वह साँप जिसने अभी हाल में केंचुली छोड़ी हो ।

निमुक्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. मुक्ति । छुटकारा । २. मोक्ष ।

निर्मूल—वि० [सं०] १. जिसमें जड़ न हो । बिना जड़ का । २. जिसकी जड़ न रह गई हो । जड़ से उखाड़ा हुआ । जैसे, निर्मूल करना । ३. जिसका कोई आधार, बुनियाद या प्रसन्नियत न हो । बेजड़ । जैसे, निर्मूल बात । ४. जिसका मूल ही न रह गया हो । जो सर्वथा नष्ट हो गया हो । जैसे, रोग को निर्मूल करना ।

निर्मूलक—वि० [सं० निर्मूल + क (प्रत्य०)] दे० 'निर्मूल' ।

निर्मूलन—संज्ञा पुं० [सं०] निर्मूल होना या करना । विनाश ।

निर्मृष्ट—वि० [सं०] जो अच्छी तरह धुला, पोछा या साफ किया हो । मिटाया हुआ (को०) ।

निर्मेष—वि० [सं०] मेघरहित । धनत्र । बादल से रहित । उ०—कुत्र जो वा निर्मेष गगन, सुभय मेरी संगी जीवन ।—माया, पु० ४१ ।

निर्मेष—वि० [सं०] जिसे मेघा न हो । मूस । बेंकूफ (को०) ।

निर्मोक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] १. साँप की केंचुली । २. शरीर के ऊपर की छाल । ३. पुराणानुसार सावर्णि मनु के एक पुत्र का नाम । ४. तेरहवें मनु के सप्तपत्नी में से एक का नाम ।

५. पाकाश । ६. कवच । सन्नाह । जिरहवस्तर (को०) । ७. मुक्त करना । छोड़ना । त्यागना (को०) ।

निर्मोक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] १. पूर्ण मोक्ष जिसमें कुछ भी संस्कार बाकी न रह जाय । २. त्याग ।

निर्मोक्ष^१—वि० [सं० निर्मोक्ष; सं० निः + हि० मोक्ष] जिसके मूल्य का अनुभाव न हो सके । अमूल्य । उ०—नैना लोभहि लोभ भरे । ... जोह देखे सोह सोह निर्मोक्ष कर ले तही भरे ।—सूर (शब्द०) ।

निर्मोक्ष^२—वि० [सं०] १. जिसके मन में मोह या अज्ञान हो । २. दया, ममता से रहित । विष्टुर ।

निर्मोक्ष^३—संज्ञा पुं० [सं०] १. रेवत मनु के एक पुत्र का नाम । २. सावर्णि मनु के एक पुत्र का नाम । ३. शिव (को०) ।

निर्मोहिनी—वि० स्त्री० [हि० निर्मोही + इनी (प्रत्य०)] निर्दय । जिसके चित्त में ममता या दया न हो । कठोरहृदय । उ०—वा निर्मोहिनी कप की राखि जो ऊपर के उर धानति हैं हैं । ... बाबत हैं नित मेरे लिये इतनी ते विशेष हू जावति हैं हैं ।—ठाकुर (शब्द०) ।

निर्मोहिया—वि० [हि० निर्मोही + इया (प्रत्य०)] १. 'निर्मोही' ।

निर्मोही—वि० [सं० निर्मोह] जिसके हृदय में मोह या ममता न हो । निर्दय । कठोरहृदय ।

निर्यत्रण—वि० [निर्यत्रण] १. जो निर्यत्रण न माने । बिना रुकावट का । २. निरंकुश । स्वेच्छाचारी (को०) ।

निर्यत्न—वि० [सं०] अक्रिय । सुस्त । आलसी । बोदा (को०) ।

निर्याण—संज्ञा पुं० [सं०] १. बाहर निकलना । २. यात्रा । रवानगी । प्रस्थान । विशेषतः सेना का युद्धक्षेत्र की ओर प्रस्थान । ३. वह सड़क जो किसी नगर से बाहर की ओर जाती हो । ४. प्रदक्ष्य होना । गायब होना । ५. शरीर से आत्मा का निकलना । मृत्यु । ६. मोक्ष । मुक्ति । ७. हाथों की धाँस का बाहरी कोना । ८. पशुओं के पैरों में बाँधने की रस्ती । बंधन । ९. मोह । सोहा (को०) ।

निर्यात^१—संज्ञा पुं० [सं०] वह वस्तु या माल जो बेचने के लिये विदेश भेजा गया हो । आयात का उल्टा । रपतनी । निर्यात । जैसे,—निर्यात कर । निर्यात व्यापार ।

यौ०—निर्यात कर = विक्रयार्थ बाहर भेजी जानेवाली वस्तुओं पर लगनेवाला कर ।

निर्यात^२—वि० बाहर गया हुआ । प्रस्थित ।

निर्यातन—संज्ञा पुं० [सं०] १. बचना चुकाना । २. प्रतीकार । ३. मार डालना । ४. ऋण चुकाना । ५. (न्यस्त या धरोहर की वस्तु को) लौटाना । वापस करना (को०) । ६. उपहार । गेंट (को०) ।

निर्याति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. मुक्ति । निर्याण । २. यात्रा । वन । प्रवाण । ३. मृत्यु (को०) ।

निर्याति—वि० [सं०] वापस किया हुआ । लौटाया हुआ (को०) ।

निर्यापित—वि० [सं०] १. जाने के लिये बाध्य किया हुआ ।
२. अपवारित । समाप्त किया हुआ ।

निर्याम—संज्ञा पु० [सं०] मत्लाह ।

निर्यामक—संज्ञा पु० [सं०] सहायक । वह जो किसी काम में मदद करे [को०] ।

निर्यामकत्व—संज्ञा पु० [सं० निर्याम] सहायकत्व । मदद (संतरण में) मत्लाहो । उ०—सुप्पारक के कुलस निर्यामकत्व में सात सो यात्रियों की नौयात्रा का उल्लेख है ।—हिंदु० सभ्यता, पृ० २१७ ।

निर्यामणा—संज्ञा स्त्री० [सं०] साहाय्य । सहायकत्व । सहायक होने का भाव [को०] ।

निर्यास—संज्ञा पु० [सं०] १. धूलों या पौधों में से भापसे भाप, धूपवा उसका तना आदि चीरने से निकलनेवाला रस । २. गोद । ३. बहना या झरना । क्षरण । ४. बचाव । काड़ा ।

निर्युक्ति—वि० [सं०] १. विच्छिन्न किया हुआ । छलग किया हुआ । २. निरर्थक । जिसमें कोई तर्क न हो । ३. अयोग्य । जो उचित न हो [को०] ।

निर्यूथ—वि० [सं०] झुंड से भटका हुआ । दल से बिछुड़ा हुआ । जैसे, हाथी [को०] ।

निर्यूष—संज्ञा पु० [सं०] ३० 'निर्यास' ।

निर्यूह—संज्ञा पु० [सं०] १. बचाव । काड़ा । २. द्वार । दरवाजा । ३. सिर पर पहनी जामेवाली कोई चीज । जैसे, मुकुट आदि । ४. बीवार में लगाई हुई वह लकड़ी आदि जिसके ऊपर कोई चीज रखी या बनाई जाय । खुंटी ।

निर्लज्ज—वि० [सं०] लज्जाहीन । बेशर्म । बेहया ।

निर्लज्जता—संज्ञा स्त्री० [सं०] बशमी । बेहयाई । निरलज्ज होने का भाव ।

निर्लिंग—वि० [सं० निरलिङ्ग] लिंग अर्थात् लक्षणरहित । जिसमें पहचानने का कोई बिंदु न हो [को०] ।

निर्लिप्त^१—वि० [सं०] १. राग द्वेष आदि से मुक्त । जो किसी विषय में धामस्त न हो । २. जो लिप्त न हो । जो कोई संबंध न रखता हो । बेलास ।

निर्लिप्त^२—संज्ञा पु० १. कुल्ल का एक नाम । २. संत [को०] ।

निर्लुचन—संज्ञा स्त्री० [सं० निर्लुचन] धूलना । नोचना [को०] ।

निर्लुठन—संज्ञा स्त्री० [सं० निर्लुठन] १. लुटना । पददलित करना । २. छेदना । पाटना । बिद्ध करना [को०] ।

निर्लेखन—संज्ञा पु० [सं०] १. किसी चीज पर जमी हुई मैल आदि खुरचना । २. वह चीज जिससे मैल खुरची जाय (सुशुत) ।

निर्लेप—वि० [सं०] १. विषयों आदि में छलब रहनेवाला । निरलिप्त । २. सेपरहित । कलईरहित । [को०] ।

निरलोभ—वि० [सं०] जिसे लोभ न हो । लालच न करनेवाला ।

निरलोभो—वि० [सं० निरलोभ + ई (प्रत्यय)] ३० 'निरलोभ' ।

निरलोम—वि० [सं०] बिना रोए का [को०] ।

निरलोमा—वि० [सं० निरलोमन्] [वि० स्त्री० निरलोम्बी] बिना रोए का [को०] ।

निर्वंश—वि० [सं०] जिसके आगे वंश चलानेवाला कोई न हो ।

निर्वंशता—संज्ञा स्त्री० [सं०] निर्वंश होने का भाव ।

निर्वचन^१—वि० [सं०] १. मोन । २. निर्दोष । निष्कसंक [को०] ।

निर्वचन^२—क्रि० वि० चुपचाप [को०] ।

निर्वचन^३—संज्ञा पु० [वि० निर्वचनीय] १. उच्चारण । २. कहावत । लोकोक्तियाँ । ३. शब्दसूची । ४. निरुक्ति । ५. प्रशंसा [को०] ।

निर्वचनीय—वि० [सं०] कहने योग्य । व्याख्या करने योग्य । निर्वचन के योग्य [को०] ।

निर्वण—वि० [सं०] १. जंगल से बाहर । २. नग्न । खुला हुआ । ३. जंगल से रहित [को०] ।

निर्वत्सल—वि० [सं०] जो बच्चों को प्यार न करे । जिसमें वत्सलता न हो [को०] ।

निर्वन—वि० [सं०] ३० 'निर्वण' [को०] ।

निर्वपण^१—वि० [सं०] [वि० स्त्री० निर्वपणी] १. तर्पण संबंधी । २. देनेवाला [को०] ।

निर्वपण^२—संज्ञा पु० १. तर्पण । २. देना । दान । प्रवाह । ३. वितरण [को०] ।

निर्वयनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] सपं की केचुल । निर्मोक [को०] ।

निर्वर—वि० [सं०] १. निरलज्ज । बेशर्म । २. निर्भय । निडर ।

निर्वर्णन—संज्ञा पु० [सं०] १. देखना । लक्ष्य करना । २. सावधानी से देखना [को०] ।

निर्वर्तित—वि० [सं०] जिसकी निष्पत्ति हो चुकी हो । निष्पन्न [को०] ।

निर्वसन—वि० [सं०] वस्त्रहीन । नग्न [को०] ।

निर्वसु—वि० [सं०] धनहीन । गरीब [को०] ।

निर्वहण—संज्ञा पु० [सं०] १. निवाह । गुजर । निवाह । २. समाप्ति । ३. नाटक में कथा की समाप्ति उपसंहृति [को०] ।

यौ०—निर्वहण सधि = नाटक की पाँच संधियों में से अंतिम इन पाँच संधियों के नाम हैं—मुख, प्रतिमुख, गर्भ, मधमगं और निर्वहण । अंतिम की उपसंहृति भी कहा गया है ।

निर्वहणा—क्रि० स्त्री० [सं० निर्वहन] गुजर करना या होना । निभना । चला चलना । परंपरा का चलन होना ।

निर्वाक्—वि० [सं० निर्वाक्] जिसके मुँह से बात न निकले । जो चुप हो ।

निर्वाक्य—वि० [सं०] जो बोल न सकता हो । गूँगा ।

निर्वाचक—संज्ञा पु० [सं०] वह जिसे किसी प्रतिनिधिक संस्था के सदस्य या प्रतिनिधि के निर्वाचन में वोट या मत देने का अधिकार प्राप्त हो । वह जिसे किसी कार्यकर्ता या प्रतिनिधि को वोट या मत देने का अधिकार प्राप्त हो । मताधिकारप्राप्त मनुष्य । निर्वाचन करनेवाला ।

निर्वाचकसंघ, निर्वाचकसमूह—संज्ञा पु० [सं०] उन लोगों का समूह या समाज जिन्हें मताधिकार अर्थात् वोट देने का अधिकार प्राप्त हो । एलेक्टरेट ।

निर्वाचन—संज्ञा पु० [सं०] १. बहनों में से एक या अधिक की चुनने

या पसंद करने का काम। चुनाव। जैसे,—कविताओं का निर्वाचन सुंदर हुआ है। २. किसी को किसी पद या स्थान के लिये, उसके पक्ष में 'वोट' देकर, हाथ उठाकर या बिट्टी डालकर चुनने या पसंद करने का काम। जैसे,—व्यवस्थापिका सभा के इस बार के निर्वाचन में अच्छे छादमी निर्वाचित हुए हैं।

यौ०—निर्वाचनक्षेत्र = चुनाव का क्षेत्र।

निर्वाचनी संस्था—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'निर्वाचक संघ'।

निर्वाचित—वि० [सं०] १. निर्वाचन किया हुआ। चुना हुआ। जैसे,—इस पुस्तक में उनके निर्वाचित लेखों का संग्रह है। २. जिसका (किसी स्थान या पद के लिये लोगों द्वारा) निर्वाचन हुआ हो। जो (किसी पद या स्थान के लिये लोगों द्वारा) चुना गया हो। जैसे,—वे बनारस द्विवीजन से व्यवस्थापिका परिषद् के सदस्य निर्वाचित हुए हैं।

निर्वाच्य—वि० [सं०] १. न कहने योग्य। २. जिसपर भावना न की जा सके। निर्दोष [को०]।

निर्वाण^१—वि० [सं०] १. बुझा हुआ (दीपक, अग्नि आदि)। २. अस्त। हूबा हुआ। ३. शांत। धीमा पड़ा हुआ। ४. सूत। मरा हुआ। ५. निश्चल। ६. शून्यता को प्राप्त। ७. बिना बाण का।

निर्वाण^२—संज्ञा पुं० १. बुझना। ठंडा होना। २. समाप्ति। न रह जाना। ३. अस्त। गमन। हूबना। ४. हाथी को चोना या नहाना (को०)। ५. संगम। संयोग। मिलन (को०)। ६. समाप्ति। पूर्णता (को०)। ७. शांति। ८. मुक्ति। मोक्ष।

विशेष—यद्यपि मुक्ति के अर्थ में निर्वाण शब्द का प्रयोग गीता, भागवत, रघुवंश, शारीरक भाष्य इत्यादि नए पुराने ग्रंथों में मिलता है, तथापि यह शब्द बौद्धों का पारिभाषिक है। सांख्य, न्याय, वैशेषिक, वाग, मीमांसा (पुर्व) और वेदांत में क्रमशः मोक्ष, अपवर्ग, निःश्रेयस, मुक्ति या स्वर्गप्राप्ति तथा कैवल्य शब्दों का व्यवहार हुआ है पर बौद्ध दर्शन में बराबर निर्वाण शब्द ही आया है और उसकी विशेष रूप से व्याख्या की गई है। बौद्ध धर्म की दो प्रधान शाखाएँ हैं—हीनयान (या उत्तरीय) और महायान (या दक्षिणी)। इनमें से हीनयान शाखा के सब ग्रंथ पाली भाषा में हैं और बौद्ध धर्म के मूल रूप का प्रतिपादन करते हैं। महायान शाखा कुछ पीछे की है और उसके सब ग्रंथ संस्कृत में लिखे गए हैं। महायान शाखा में ही अनेक आचार्यों द्वारा बौद्ध सिद्धांतों का निरूपण गूढ़ तर्कश्राली द्वारा बार्शनिक दृष्टि से हुआ है। प्राचीन काल में वैदिक आचार्यों का जिन बौद्ध आचार्यों से साक्षात् होता था वे प्रायः महायान शाखा के थे। अतः निर्वाण शब्द से क्या अभिप्राय है इसका निर्णय उन्हीं के बचनों द्वारा हो सकता है। बोधिसत्व नागार्जुन ने माध्यमिक सूत्र में लिखा है कि 'यवसंतति का उच्छेद ही निर्वाण है, अर्थात् अपने संस्कारों द्वारा हुए बार बार जन्म के बंधन में पड़ते हैं इससे उनके उच्छेद द्वारा यवबंधन का नाश हो सकता है। रत्नकूटसूत्र में बुद्ध का यह वचन है : 'राग, द्वेष और मोह के क्षय से निर्वाण होता है।

वज्रच्छेदिका में बुद्ध ने कहा है कि निर्वाण अनुपम है, उसमें कोई संस्कार नहीं रह जाता। माध्यमिक सूत्रकार चंद्रकीर्ति ने निर्वाण के संबंध में कहा है कि सर्वप्रपञ्चनिवर्तक शून्यता को ही निर्वाण कहते हैं। यह शून्यता या निर्वाण क्या है। न इसे भाव कह सकते हैं, न अभाव। क्योंकि भाव और अभाव दोनों के ज्ञान के क्षय का ही नाम तो निर्वाण है, जो अस्ति और नास्ति दोनों भावों के परे और अनिर्वचनीय है। भाववाचार्थ ने भी अपने सर्वदर्शनसंग्रह में शून्यता का यही अभिप्राय बतलाया है—'अस्ति, नास्ति, उभय और अनुभय इस चतुष्कोटि से विनिर्मुक्ति ही शून्यत्व है'। माध्यमिक सूत्र में नागार्जुन ने कहा है कि अस्तित्व (है) और नास्तित्व (नहीं है) का अनुभव अल्पबुद्धि ही करते हैं। बुद्धिमान लोग इन दोनों का उदयमरूप कल्याण प्राप्त करते हैं। उपर्युक्त वाक्यों से स्पष्ट है कि निर्वाण शब्द जिस शून्यता का बोधक है उससे चित्त का साहस्राहकसंबंध ही नहीं है। मैं भी मिथ्या, संसार भी मिथ्या। एक बात ध्यान देने की है कि बौद्ध बार्शनिक जीव या आत्मा को भी प्रकृत सत्ता नहीं मानते। वे एक महामूर्ख के अतिरिक्त और कुछ नहीं मानते।

यौ०—निर्वाणसूयिष्ठ = जुग। निर्वाणमस्तक = मोक्ष। निर्वाण-रधि = मोक्ष की प्राप्ति में लगा हुआ।

निर्वाणप्रिया—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक गंधर्वी का नाम।

निर्वाणो—संज्ञा पुं० [सं०] शैनों के एक शासन देवता।

निर्वात—वि० [सं०] १. जहाँ हुआ न हो। जहाँ हुआ का झोंका न लग सके। २. जो चंचल न हो। स्थिर। शांत।

निर्वाद्—संज्ञा पुं० [सं०] १. अपवाद। निदा। २. अवज्ञा। लापरवाही।

निर्वाप—संज्ञा पुं० [सं०] १. दान। २. वह दान जो पितरों के उद्देश्य से किया जाय। ३. (बीज आदि) बोना। बपन (को०)। ४. बुझाना। शांत करना (प्राग, बोया आदि)। ५. 'निर्वपण'।

निर्वापक—वि० [सं०] बुझानेवाला (को०)।

निर्वापण—संज्ञा पुं० [सं०] १. ठंडा करने की क्रिया। २. तरोताजा करना। ३. बुझाना (प्यास)। ४. आनंदित करना। ५. बध करना। ६. (प्राग आदि) बुझाना। शांत करना। ७. बीज आदि का बोना। बपन (को०)।

निर्वापित—वि० [सं०] शांत। बुझा हुआ। उ०—उनके सहारे की अंतिम किरण भी निर्वापित हो जायगी।—प्रतिभा, पु० ११४।

निर्वाय—वि० [सं०] १. जिसका निवारण न किया जा सके। २. जो निर्भय काम करे (को०)।

निर्वास—संज्ञा पुं० [सं०] १. निर्वासन। निकाल देना। २. प्रवास। विदेशयात्रा। ३. हिसन। बध। मारण (को०)।

निर्वासक—वि० [सं०] निर्वासन करनेवाला।

निर्वासन—संज्ञा पुं० [सं०] १. मार डालना। बध। २. पाँव, बहुर या देह आदि से बंधस्वरूप बाहुर निकाल देना। देह-विकास। ३. निकालना। ४. विसर्जन।

निर्वासित—वि० [सं०] निकाला हुआ। बहुवचन [को०]।

निर्वास्थ—वि० [सं०] निर्वासन के योग्य [को०]।

निर्वाह—संज्ञा पु० [सं०] १. किसी कम या परंपरा का चला चलना। किसी बात का जारी रहना। निबाह। जैसे, प्रीति का निर्वाह, कार्य का निर्वाह। २. किसी बात के अनुसार बराबर आचरण। पालन। जैसे, प्रतिभा का निर्वाह, वचन का निर्वाह। ३. समाप्ति। पूरा होना। ४. गुजारा।

निर्वाहक—संज्ञा पु० [सं०] वह जो किसी काम का निर्वाह करे।

निर्वाहण—संज्ञा पु० [सं०] १. कीटिल्य के अनुसार ऐसे पदार्थों का नगर में ले जाना जिनके ले जाने का निषेध हो। २. नाटक की पाँच सधियों में एक। निर्वाहण सधि (को०)। ३. निभाना। निबाहना। पूरा करना (को०)।

निर्वाहना^७—क्रि० प्र० [सं० निर्वाह + हि० ना (प्रत्य०)] निर्वाह करना। उ०—दोष न कछु है तुम्हें नेह निर्वाहि को।—पद्माकर (शब्द०)।

निर्विध्या—संज्ञा स्त्री० [सं० निर्विध्या] विध्याचल से निकसी हुई एक छोटी नदी जिसका उल्लेख मेघदूत में है।

निर्विकल्प^१—वि० [सं०] १. जो विकल्प, परिवर्तन या प्रमेदों आदि से रहित हो। २. स्थिर। निश्चित।

निर्विकल्प^२—संज्ञा स्त्री० दे० 'निर्विकल्प समाधि'।

निर्विकल्प^३—संज्ञा पु० दे० 'निर्विकल्पक'।

निर्विकल्पक—संज्ञा पु० [सं०] १. वेदांत के अनुसार वह अवस्था जिसमें ज्ञाता और ज्ञेय में भेद नहीं रह जाता, दोनों एक हो जाते हैं। २. न्याय के अनुसार वह अलौकिक आलोचनात्मक ज्ञान जो इंद्रियजन्य ज्ञान से बिलकुल भिन्न होता है। बौद्ध शास्त्रों के अनुसार केवल ऐसा ही ज्ञान प्रमाण माना जाता है।

निर्विकल्प समाधि—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार की समाधि जिसमें ज्ञेय, ज्ञान और ज्ञाता आदि का कोई भेद नहीं रह जाता और ज्ञानात्मक सच्चिदानंद ब्रह्म के प्रतिरिक्त और कुछ दिखाई नहीं देता।

विशेष—इस समाधि की तुलना योग की सुषुप्ति अवस्था के साथ की जा सकती है।

निर्विकार^१—वि० [सं०] विकाररहित। जिसमें किसी प्रकार का विकार या परिवर्तन न हो।

निर्विकार^२—संज्ञा पु० परब्रह्म।

निर्विकास—वि० [सं०] जो खिला न हो। अनखिला [को०]।

निर्विघ्न^१—वि० [सं०] विघ्नबाधा रहित। जिसमें कोई विघ्न न हो।

निर्विघ्न^२—क्रि० वि० बिना किसी प्रकार के विघ्न या बाधा के। जैसे,—सब कार्य निर्विघ्न समाप्त हो गया।

निर्विचार^१—वि० [सं०] विचाररहित। जिसमें कोई विचार न हो।

निर्विचार^२—संज्ञा पु० [सं०] योगदर्शन के अनुसार एक प्रकार की सवीज-समाधि।

विशेष—यह किसी सूक्ष्म आलंबन में तन्मय होने से प्राप्त होती है और इस समाधि में उस आलंबन के नाम और संकेत आदि का कोई ज्ञान नहीं रह जाता, केवल इसके आकार आदि का ही ज्ञान होता है। ऐसी समाधि सबसे उदात्त समझी जाती है और उससे चित्त निर्मल होता है और बुद्धि सर्वप्रकाशक हो जाती है।

निर्विचिकित्स—वि० [सं०] १. संदेह से रहित। संशयहीन। २. चिंतन से रहित [को०]।

निर्विचेष्ट—वि० [सं०] जिसमें कोई चेष्टा या हलकत न हो। संज्ञा-हीन [को०]।

निर्विषण—वि० [सं०] १. खिन्न। २. वेद या दुःख से पराभूत। ३. विरागयुक्त। ४. नम्र। ५. ज्ञात। निश्चित [को०]।

निर्वितर्क—वि० [सं०] वितर्करहित। जिसपर तर्क वितर्क न हो सके [को०]।

निर्वितर्क समाधि—संज्ञा स्त्री० [सं०] योगदर्शन के अनुसार एक प्रकार की सवीज समाधि जो किसी स्थूल आलंबन में तन्मय होने से प्राप्त होती है और जिसमें उस आलंबन के नाम और संकेत आदि का कोई ज्ञान नहीं रह जाता, केवल उसके आकार आदि का ही ज्ञान होता है।

निर्विद्ध—वि० [सं०] १. धायल। घाहत। २. विमुक्त। एकाकी [को०]।

निर्विद्य—वि० [सं०] विद्याहीन। जो पढ़ा लिखा न हो।

निर्विरोध—वि० [सं०] विरोधरहित। खंडनरहित। जिसका विरोध न हो [को०]।

निर्वित^७—वि० [सं० निवृत्त] दे० 'निवृत्त'। उ०—माया से निर्वित भजन को करे बढ़ाई।—पद्म०, भा० १, पृ० १३।

निर्विवाद—वि० [सं०] जिसमें कोई विवाद न हो। बिना झगड़े का।

निर्विवेक—वि० [सं०] जो किसी बात की विवेचना न कर सकता हो। विवेकहीन।

निर्विवेकता—संज्ञा स्त्री० [सं०] निर्विवेक होने का भाव।

निर्विशेष^१—संज्ञा पु० [सं०] १. परब्रह्म। परमात्मा। २. भेद या अंतर का अभाव [को०]।

निर्विशेष—वि० जिसमें कोई अंतर न हो। समान। बिना भेद का [को०]।

निर्विशेषण—वि० [सं०] विशेषणरहित। विशेषताविहीन। जिसमें कोई गुण न हो [को०]।

निर्विष—वि० [सं०] विषहीन। जिसमें विष न हो।

निर्विषय—वि० [सं०] १. जो अपने स्थान से दूर कर दिया गया हो। २. जिसे कार्य करने को कोई क्षेत्र न हो। ३. वास्तवा से रहित। जैसे, मन [को०]।

निर्विषा—संज्ञा संज्ञा [सं०] दे० 'निर्विषी'।

निर्विषो—संज्ञा स्त्री० [सं०] असवर्ण की जाति की एक जाति। जवहार।

विशेष—यह पश्चिमोत्तर हिमालय, काश्मीर और मलयागिरि में

अधिकता से होती है। इसकी जड़ धतीस के समान होती है जिसका व्यवहार सौं पित्तु पादि के विषों के प्रतिरक्त शरीर के धीरे भी अनेक प्रकार के विषों का नाश करने के लिये होता है। वैद्यक के अनुसार यह जड़ कटु, शीतल, दण को भरनेवाली धीरे कफ, वान, रुधिरविकार, विष को नष्ट करनेवाली मानी जाती है।

पर्या०—निविषा। अवविषा। विविषा। विषहा। विषहन्त्री। विषामावा। अविषा। विषवैरिणी।

निर्विष्ट—वि० [सं०] १. जो भोग कर चुका हो। २. जो विवाह कर चुका हो। ३. जो अग्निहोत्र कर चुका हो। ४. जो मृत हो गया हो। ५. जो पा चुका हो। जैसे, वेतन (को०)। ६. बैठा हुआ (को०)।

निर्विहार—वि० [सं०] ध्यानहीन। निरानंद (को०)।

निर्वीज—वि० [सं०] १. बीजरहित। जिसमें बीज न हो। २. पुंस्त्वहीन। पुरुषत्व रहित (को०)। ३. जो कारण से रहित हो।

निर्वीज समाधि—संज्ञा स्त्री० [सं०] पातंजल के अनुसार समाधि की वह अवस्था जिसमें चित का निरोध करते करते उसका अवलंबन या बीज भी विलीन हो जाता है। इस अवस्था में मनुष्य को सुख दुःख आदि का कुछ भी अनुभव नहीं होता और उसका मोक्ष हो जाता है।

निर्वीजा—संज्ञा स्त्री० [सं०] किष्किना नाम का मेवा।

निर्वीर—वि० [सं०] बीरों से रहित। बीरहीन (को०)।

निर्वीरा—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह स्त्री जिसका पति धीरे पुत्र न हो।

निर्वीर्य—वि० [सं०] बीर्यहीन। बल या तेज से रहित। कमजोर। निस्तेज। नपुंसक।

निर्वृष्ट—वि० [सं०] वृक्षहीन (को०)।

निर्वृत्—वि० [सं०] १. संतुष्ट। प्रसन्न। २. वेदशास्त्र चिन्ताहीन। ३. समाप्त। पूर्ण (को०)।

निर्वृत्—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. वीर। आवाम (को०)।

निर्वृत्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. संतोष। आनंद। २. विश्रान्ति। शान्ति। ३. मोक्ष। ४. पुण्यता। ५. स्वतंत्रता। मुक्ति। ६. मरण। नाश (को०)।

निर्वृत्त—वि० [सं०] जो पूरा हो गया हो। जिसकी निवृत्ति हो गई हो।

निर्वृत्तारमा—संज्ञा स्त्री० [सं०] निर्वृत्तारमन् [विष्णु]।

निर्वृत्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] निवृत्ति।

निर्वैद्य—संज्ञा स्त्री० [सं०] मृति।

निर्वैद्य—वि० [सं०] जिसमें वैद्य या गति न हो। स्थिर।

निर्वैद्यन—वि० [सं०] अवैद्यनिक। बिना वेतन का (को०)।

निर्वैद्य—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. अपना अपमान। २. वैराग्य। ३. खेद। दुःख। ४. अनुताप। ५. साहित्य में शान्त रस का स्थायी भाव।

निर्वैद्य—संज्ञा स्त्री० [सं०] पुमना। भेदन की क्रिया (को०)।

निर्वैद्यिन्—संज्ञा [सं०] सुभूत के अनुसार कान खेदने का एक जोषार।

निर्वेश—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. भोग। २. वेतन। तनसाह। ३. विवाह। व्याह। शादी। ४. मूर्छा। बेहोशी।

निर्वेष्टन—संज्ञा स्त्री० [सं०] डरकी, जुलाहे जिसपर बाने का सूत लपेटते हैं (को०)।

निर्वैयक्तिकता—संज्ञा स्त्री० [सं०] निर + वैयक्तिक + ता (प्रत्य०)। वैयक्तिक या निर का न होने का भाव।

निर्वैर—वि० [सं०] जिसमें वैर न हो। द्वेष से रहित।

निर्वैर—^२—संज्ञा स्त्री० वैर का अभाव (को०)।

निर्वैरता—संज्ञा स्त्री० [सं०] निर्वैर + ता (प्रत्य०)। वैर का अभाव। निर्वैर। उ०—घापा मेरे हरि भवै तन मन तबै विकार।—सब ही सँ निर्वैरता दादू यो मत मार।—राम० धर्म०, पृ० २८३।

निर्वैर्यथ—वि० [सं०] १० 'निर्वैर्यथ' (को०)।

निर्वैर्यथ—वि० [सं०] १. पीड़ा से मुक्त। २. स्थिर। शांत (को०)।

निर्वैर्यथ—संज्ञा स्त्री० १. छिद्र। विवर। गुफा। २. अत्यंत पीड़ा (को०)।

निर्वैर्यथीक—वि० [सं०] निष्कपट। छलरहित। उ०—शंकर हृद पुंडरीक निवसत हरि चंचरीक निर्वैर्यथीक मानस गृह संतत रहे स्याई।—तुलसी (लब्ध०)। २. तत्परता के साथ काम करनेवाला। प्रसन्न। (को०)।

निर्वैर्यथान—वि० [सं०] व्यवधानरहित। बाधरहित। मुला हुआ। उन्मुक्त (को०)।

निर्वैर्यथ—वि० [सं०] कमरहित। कभी यह, कभी यह करनेवाला (को०)।

निर्वैर्यसन—वि० [सं०] जिसमें बुरी लत न हो। दुर्वसन से मुक्त (को०)।

निर्वैर्यथ—वि० [सं०] १. निष्कपट। छलरहित। उ०—पूजा यहै उर आनु। निर्वैर्यथ धरिए ध्यानु।—केशव (लब्ध०)। २. बाधरहित। ३. नैसर्गिक (को०)। ४. मृदु। सच्चा (को०)।

निर्वैर्यथि—वि० [सं०] व्याधि या रोग से मुक्त।

निर्वैर्यथार—वि० [सं०] १. बेकार। २. निष्क्रिय। गतिहीन (को०)।

निर्वैर्यथ—वि० [सं०] निर्वैर्यथ १. समाप्त या पूरा किया हुआ। २. परिवर्धित। बढ़ा हुआ। ३. प्रमाणित या प्रतियोग किया हुआ। सिद्ध किया हुआ। ४. परित्यक्त (को०)।

निर्वैर्यथि—संज्ञा स्त्री० [सं०] निर्वैर्यथि १. समाप्ति। २. द्वार। दरवाजा। ३. खूंटो। ४. लोचबंदी। ५. कबाय। काड़ा। ६. कलगी (को०)।

निर्वैर्यथ—वि० [सं०] अक्षत। बिना बाध या बाध का (को०)।

निर्वैर्यथ—संज्ञा स्त्री० [सं०] [वि० निर्हारी] १. सब को जमाने के लिये से जाना। २. निकालना। बाहर करना (को०)। ३. जलाना। ४. नाश करना।

निर्वैर्यथ—संज्ञा स्त्री० [सं०] मलत्याग। पुरोचोत्सर्ग (को०)।

निर्हार—संज्ञा पुं० [सं०] १. बाहर निकालना । २. काटना । चींच निकालना । ३. निर्मूलन । उपारना (जड़ प्रादि) । ४. मलमूत्र का त्याग । ५. व्यक्तिगत निधि । ६. बटाना [को०] ।

निर्हारक—संज्ञा पुं० [सं०] वह जो सब को गृह से बाहर करे या स्मरान तक ले जाय [को०] ।

निर्हारी—संज्ञा पुं० [सं० निर्हारिन्] १. निकालनेवाला । २. हूर तक फैलनेवाला । ३. महुकनेवाला [को०] ।

निर्हेतु, निर्हेतुक—वि० [सं०] जिसमें कोई हेतु या कारण न हो ।

निर्हार्द्द—संज्ञा पुं० [सं०] ध्वनि । आवाज [को०] ।

निर्हार्स—संज्ञा पुं० [सं०] संक्षिप्ति । छोटा करना [को०] ।

निर्हार्क—वि० [सं०] जिसे साज न हो । निलज्ज । बेहया [को०] ।

निलम्बन—संज्ञा पुं० [सं० निलम्बन] १. झटकते या झुकते रहने का भाव । २. इधर न उधर । बीच की स्थिति । ३. किसी कर्मचारी पर कोई आरोप लगाकर उसे कार्य न करने देना । मुप्रसली ।

निलज—संज्ञा पुं० [सं०] एक राक्षस का नाम जो मासी नामक राक्षस की बसुवा नाम की स्त्री से उत्पन्न हुआ था और जो विभीषण का मंत्री था ।

निल^२(पु)—वि० [सं० नील] नीले वर्ण का । नीला । उ०—बाब-हिया मिल पलिया बाइत दी बै लूण ।—डोला०, दू० ३३ ।

निलज्ज—वि० [सं० निलज्ज, प्रा० निलज्ज] १० 'निलज्ज' । उ०—रन से निलज्ज आबि गृह आवा । इही आइ वक ध्यान लगावा । मानस, ६।८४ ।

निलज्जई^५—संज्ञा स्त्री० [हि० निलज्ज + ई (प्रत्य०)] निलज्जता । बेसर्मी । बेहयाई । उ०—कीर्तिबै सायक करतब कोटि कोटि कटु रीतिबै सायक तुलसी की निलज्जई—तुलसी (शब्द०) ।

निलज्जता^५—संज्ञा स्त्री० [सं० निलज्जता] निलज्जता । बेसर्मी । बेहयाई । उ०—निलज्जता पर रीति रघुबर बेह तुलसिहि छोरि ।—तुलसी (शब्द०) ।

निलज्जी^५—वि० स्त्री० [सं० निलज्ज, हि० निलज्ज] निलज्जा या लाजहीन (स्त्री) । बेसर्मी । बेहया ।

निलज्ज—वि० [सं० निलज्ज] १० 'निलज्ज' । उ०—अथम निलज्ज लाज नहि तोही ।—मानस, ५।१ ।

निलस्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. मकान । घर । २. स्थान । जगह । ३. पशुओं के रहने का स्थान [को०] । ४. घोसला । नीड [को०] । ५. लोप । छवर्णन [को०] । ६. पूर्ण तरह सुप्त या गायब होना [को०] । ७. लुकना । छिपना [को०] ।

निलसन—संज्ञा पुं० [सं०] १. डेरा डालना । २. घर । वासस्थान । ३. उतरना । ४. बाहर जाना [को०] ।

निलहा—वि० [सं० नील + हा (प्रत्य०)] नील से संबंधित । नीलवाला ।

दौ०—निलहा गोरा । निलहा साहब ।

निलाम—संज्ञा सं० [हि०] १० 'नीलाम' ।

निलिप—संज्ञा पुं० [सं० निलिप्प] १. देवता । २. मद्बल [को०] ।

दौ०—निलिपनिर्गरी=देवों की नदी । गंगा । निलिपाधिप=इंद्र । देवराज ।

निलिपा, निलिपिका—संज्ञा स्त्री० [सं० निलिप्पा, निलिम्पिका] १. गाय । २. दुध दूहने की बालटी [को०] ।

निलीन—वि० [सं०] १. बहुत अधिक लीन । २. छिपा हुआ । लुका हुआ [को०] ; ३. परिवर्तित । बदला हुआ [को०] । ४. नष्ट । समाप्त [को०] । ५. पूर्ण । पूरा [को०] । ६. तरलित । बिघना हुआ [को०] ।

निबद्ध—संज्ञा पुं० [सं० निबद्धस्] वह जो व या पशु जो यज्ञ आदि में उत्सर्ग किया जाय ।

निबचन—संज्ञा पुं० [सं०] १. व्याकरण में वचन का प्रभाव । २. बोलते जाना । कहते रहना ।

निबद्धावर—संज्ञा स्त्री [हि०] १० 'निबद्धावर' ।

निबद्धिया—संज्ञा स्त्री [हि० नावर] एक प्रकार की नाव । १० 'निबद्धा' ।

निबना^५—क्रि० प्र० [सं० नमन] झुकना ।

निबपन—संज्ञा पुं० [सं०] १. पितरों आदि के उद्देश्य से कुछ दान करना । २. वह जो कुछ पितरों आदि के उद्देश्य से दान किया जाय ।

निबर^१—वि० [सं०] निवारण करनेवाला । निवारक ।

निबर^२—संज्ञा पुं० १. वह जो निवारण करे या रोके । निवारक । २. आवरण । रक्षण । बचाव [को०] ।

निबरा—वि० स्त्री० [सं०] जिसके वर न हो । अविवाहिता । कुमारी ।

निवर्तक—वि० [सं०] १. लौटनेवाला । २. लौटानेवाला । फेर लाने वाला । ३. बस जानेवाला । ४. अपवारित करनेवाला [को०] ।

निवर्तन—संज्ञा पुं० [सं०] १. प्राचीन काल में भूमि की एक नाप जो २१० हाथ लंबाई और २१० हाथ चौड़ाई की होती थी । २. निवारण । ३. हटना । लौटना । वापस होना । ४. पीछे हटाना या लौटाना ।

निवर्तित—वि० [सं०] जिसका निवर्तन किया गया हो ।

निवर्ती—संज्ञा पुं० [सं० निवर्तिन्] १. वह जो पीछे की ओर हट जाया हो । २. वह जो युद्ध में से भाग आया हो । ३. निर्निस्त ।

निवर्हण—संज्ञा पुं० [सं०] १० 'निवर्हण' [को०] ।

निवसति—संज्ञा स्त्री० [सं०] निवास । वासस्थान । गृह [को०] ।

निवसथ—संज्ञा पुं० [सं०] १. गाँव । २. सीमा । हद्द [हि०] ।

निवसन—संज्ञा पुं० [सं० निवस + वसन] १. गाँव । २. घर । ३. बस्न । ४. अंतराटा । स्त्री का सामान्य अशोचस्व [हि०] ।

निवसना—क्रि० प्र० [सं० निवसन या निवास] रहना । निवास करना । उ०—(क) यहि मिसि चित्रकूट की महिमा मुनिवर बहुत बखानि । सुनत राम हरसित तहँ निवसे बावन गिरि पहिबाणि ।—देवस्वामी (शब्द०) । (ख) बल बासक नंदराज समेत । मम गृह निवसहु कृपानिकेत ।—गोपाल (शब्द०) ।

निबद्ध—संज्ञा पुं० [सं०] १. समूह । गूथ । उ०—किमुक वरन सुभंसुक

सुखमा सुखन समेत । अनु बिधु निवह रहे करि बामिन निकर
निकेत ।—तुलसी (शब्द०) । २. सात वायुधों में से
एक वायु ।

विशेष—फलित ज्योतिष में सात वायुएँ मानी गई हैं जिनमें से
प्रत्येक वायु एक वर्ष तक बहुती है । निवह वायु भी उन्हीं में
से एक है । यह न तो बहुत तेज होती है और न बहुत धीमी ।
जिस वर्ष यह वायु चलती है, कहते हैं कि उस वर्ष कोई सुखी
नहीं रहता ।

१. अग्नि की सात जिह्वाओं में से एक (को०) । ४. वर्ष (को०) ।
५. अनिल । वायु (को०) ।

निवाई—वि० [सं० नव] १. नयीन । नया । २. अनोखा । विल-
क्षण । उ०—पुनि नयनी यों विनय सुनार्द । डरी देखि यह
रूप निवाई ।—सूर (शब्द०) ।

निवाकु—वि० [सं०] चुर । जो आराज न करता हो । मोन (को०) ।

निवाज^१—वि० [फ्रा०] कृपा करनेवाला । अनुग्रह करनेवाला ।

विशेष—इसका प्रयोग फारसी और अरबी आदि जर्बों के संत
में योगिक में होता है । जैसे गरीबनिवाज

निवाज^२—संज्ञा स्त्री० [फ्रा० नमाज] दे० 'नमाज' ।

निवाजना(उ०)—क्रि० म० [फ्रा० निवाज] अनुग्रह करना । कृपा
करना । कृपापात्र बनाना । उ०—(क) नाम गरीब अनेक
निवाजे । लोक वेद पर विरह विराजे ।—तुलसी (शब्द०) ।
(ख) कायर दूर कपूतन की हृद तेज गरीबनिवाज निवाने ।
—तुलसी (शब्द०) ।

निवाजिश—संज्ञा स्त्री० [फ्रा० नवाजिश] १. कृपा । मेहरबानी ।
२. दया । अनुकंपा ।

निवाड़—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'निवार' ।

निवाड़ा—संज्ञा पुं० [देश०] १. छोटी नाव । २. नाव की एक क्रीड़ा
जिसमें उसे बीच में ले जाकर चक्कर देते हैं । नावर ।

क्रि० प्र०—खेचना ।

निवाड़ी—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'निवासी' ।

निवात^१—संज्ञा पुं० [सं०] १. रहने का स्थान । घर । २. वह वर्म जो
शस्त्र के द्वारा छेदा न जा सके । ३. वह स्थान जहाँ हवा न
हो (को०) । ४. सुरक्षित स्थान (को०) । ५. दोषक को हवा से
बचाने के लिये बनाया गया एक उपकरण । उ०—बागीदार
बादी के बड़े बड़े निवात, जिनके भीतर अन्नक लगे हुए थे,
अपने पंचदीप को जैसे अपने भीतर ही भीतर जला रहे थे,
ठीक उसी तरह अग्निमित्र जल रहा था ।—इरावती,
पृ० १०५ ।

यौ०—निवातकवच = (१) एक प्राचीन जाति (जो दैत्य माने
गए हैं) । (२) हिरण्यकशिपु का एक पीत्र ।

निवात^२—वि० १. जहाँ वायु न हो । २. अजत । बिना चोट का ।
३. सुरक्षित । ४. (कवच आदि) खूब अच्छे ढंग से पहने
हुए । ५. घनी या गन्धिल बुनावट का (को०) ।

४-५४

निवान—संज्ञा पुं० [सं० निम्न] १. नीची जमीन जहाँ सीढ़, कीचड़
या पानी बरा रहता हो । २. जलाशय । झील । बड़ा
तालाब ।

निवाना^१—क्रि० म० [सं० नम्र] नीचे की तरफ करना । झुकाना ।

निवान्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह बिना बछड़े की गाय जो किसी अन्य
गाय के बछड़े से पेन्हाकर दुही जाय (को०) ।

निवाप—संज्ञा पुं० [सं०] १. बीज । अनाज । २. पितृतर्पण । तर्पण
(श्राद्ध में) । ३. दान । उपहार (को०) ।

निवार^१—संज्ञा स्त्री० [सं० नेमि + वार] पहिए के आकार का
लकड़ी का वह गोल चक्कर जो कुएँ की नीच में दिया जाता
है और जिसके ऊपर कोठी की जोड़ी होती है । बासन ।
जमराट ।

निवार^२—संज्ञा स्त्री० [फ्रा० नवार] बहुत मोटे सूत की बुनी हुई
प्रायः तीन चार अंगुल चौड़ी पट्टी जिससे पलंग आदि बुने
जाते हैं । निवाड़ । नेवार ।

यौ०—निवारबाफ ।

निवार^३—संज्ञा पुं० [सं० नीवार] तिल्ली का धान । मुख्यतः पसही ।
उ०—कहीं मूल फल दल भिनि कूटत । कहुँ कहुँ पके निवारनि
कूटत ।—गुमान (शब्द०) ।

निवार^४—संज्ञा पुं० [देश०] एक प्रकार की मूली जो बहुत मोटी और
म्बाव में कुछ मोठी होती है, कटुई नहीं होती ।

निवार^५—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'निवारण' (को०) ।

निवारक—वि० [सं०] १. रोकनेवाला । रोधक । २. दूर करनेवाला ।
मिटानेवाला ।

निवारण—संज्ञा पुं० [सं०] १. रोकने की क्रिया । २. हटाने या दूर
करने की क्रिया । ३. निवृत्ति । छुटकारा ।

निवारन—संज्ञा पुं० [सं० निवारण] दे० 'निवारण' । उ०—ताते
कीन्ह निवारन मुनि मैं यह जिय जानि ।—मानस, ३।३८ ।

निवारना(उ०)—क्रि० सं० [सं० निवारण] १. रोकना । दूर करना ।
हटाना । उ०—(क) पौछि हमालन सौं धमसीकर मौर की
भीर निवारन ही रहे ।—हरिश्चंद्र(शब्द०) । (ख) पलका पै
पोहि अम राति को निवारिए ।—मतिराम (शब्द०) । २.
बचाना । रक्षा के माध्यम काटना या बिताना । उ०—(क) यह
सुख उम को आराम को निहारो नेक, मेरे कहे धरिक निवारि
लीजै धाम को ।—(शब्द०) । (ख) धाम धरोक निवारिए
फनित ललित घालपुंज । अमुना तीर तमाल तक मिलति
मावती कुंज ।—बिहारी (शब्द०) । ३. निषेध करना ।
मना करना । उ०—नैनहि लखनहि राम निवारे ।—तुलसी
(शब्द०) । (उ०) ४. चुकना करना ।

निवार बाफ—संज्ञा पुं० [फ्रा० नवार + बाफ] निवार बुननेवाला ।

निवारो—संज्ञा स्त्री० [सं० नेपाली या नेमाली] १. जूही की जाति
का एक फैलनेवाला झाड़ या पौधा जो जूही के पौधों से बड़ा
होता है ।

विशेष—इनके पत्ते कुछ गोलाई लिए जंबोतरे होते हैं और बरसात में हममें जूही की तरह के छोटे सफेद फूल लगते हैं। ये फूल घाम के बौर की तरह गुच्छों में होते हैं और इनमें से भीनी मनोहर सुगंध निकलती है। वैद्यक में इसे चरपरी, कड़वी, शीतल, हलकी और त्रिदोष, नेत्ररोग, मुखरोग और कर्णरोग आदि को दूर करनेवाली माना है।

२. इस पौधे का फूल। ३. नेपाल में बोझी जानेवाली एक भाषा।

निवासा—संज्ञा पुं० [क्रा० निवासह्] उतना भोजन जितना एक बार मुंह में बाल जाय। कोर। घास। लुकमा।

निवास—संज्ञा पुं० [न०] १. रहने की क्रिया या भाव। २. रहने का स्थान। ३. घर। मकान। ४. वस्त्र। कपड़ा।

निवासन—संज्ञा पुं० [सं०] १. घर। आवास। २. कालक्षेप करना। समय काटना। ३. अल्पकालिक निवास [को०]।

निवासस्थान—संज्ञा पुं० [सं०] १. रहने का स्थान। वह स्थान जहाँ कोई रहता हो। २. घर। मकान।

निवासी—वि०, संज्ञा पुं० [न० निवासिन्] [की० निवासिनी] १. रहनेवाला। बसनेवाला। बासी। २. पोशाक पहननेवाला [को०]।

निवास्थ—वि० [सं०] रहने योग्य।

निविड—वि० [सं० निविड] १. घना। घन। घोर। २. गहरा बंधा या कसा हुआ। जैसे, निविड मुष्टि। ३. भट्टा [को०]। ४. स्थूल। मोटा [को०]। ५. बृहदाकार [को०]। ६. जिसकी नाक चिपटी या दबी हुई हो।

निविडता—संज्ञा स्त्री० [न० निविडता] बंसी या इसी प्रकार के किसी और बाजे के स्वर का गंभीर होना जो उसके पाँच गुणों में से एक गुण माना जाता है।

निविडीश, निविडीस—वि० [सं०] ३० 'निविरीश' [को०]।

निविद्वान—संज्ञा पुं० [सं०] वह यज्ञ आदि जो एक ही दिन में समाप्त हो जाय।

निविरीश निविरीस—वि० [सं०] १. घना। गभिर। २. कठोर। स्थूल [को०]।

निविल^(५)—वि० [सं० निविड] ३० 'निविड'। उ०—निविल मांसल अंधकार देष्टु।—वर्य०, पु० १६।

निविशमान—संज्ञा सं० [सं०] वे लोग जिनसे उपनिवेश बनाए जायें। विशेष—चंद्रगुप्त के समय में राज्य ऐसे लोगों को प्राप्त, पशु तथा संपत्ति से सहायता पहुँचाता था।

निविशेष^१—वि० [सं०] जिसमें भेद न हो। एकरूप [को०]।

निविशेष^२—संज्ञा पुं० अंतर या भेद का अभाव। समानता। एकरूपता [को०]।

निविषा—वि० [सं० निविष] ३० 'निविष'।

निविष्ट—वि० [सं०] जिसका वित्त एकाग्र हो। २. एकाग्र। ३. लपेटा हुआ। ४. घुसा या घुसाया हुआ। ५. बाँधा हुआ। ६. स्थित। ठहरा हुआ।

निविष्टपण्य—संज्ञा पुं० [सं०] बोरों में भरा हुआ मांस [को०]।

निवीत—संज्ञा पुं० [सं०] छोड़ने का कपड़ा। चादर। २. यज्ञोपवीत [को०]। ३. यज्ञोपवीत को गले में माला की तरह धारण करना [को०]।

निवीती—वि० [सं० निवीतिन्] यज्ञोपवीत को गले में माला की तरह धारण करनेवाला।

विशेष—साधारणतः यज्ञोपवीत वाम कंधे पर धारण किया जाता है। परंतु ऋषिपूजन के अवसर पर उसे गले में माला की तरह धारण करने का विधान है। साधारण ढंग से पहननेवाले को उपवीती और इस विशेष ढंग से पहननेवाले को निवीती कहते हैं।

निवीर्य—वि० [सं०] वीर्यहीन। जिसमें वीर्य या पुरुषत्व न हो।

निवृत्—वि० [सं०] १. बंद। विरा हुआ। २. रोका हुआ। रकड़ा हुआ। प्रस्त [को०]।

निवृत्^२—संज्ञा पुं० छोड़ने या लपेटने का कपड़ा [को०]।

निवृत्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] आवरण। घेरा। मंडल [को०]।

निवृत्ता—वि० [सं०] १. छूटा हुआ। २. जो अलग हो गया हो। विरक्त। ३. जो छुट्टी पा गया हो। खाली। ४. लौटा हुआ [को०]। ५. दूर गया या भागा हुआ [को०]। ६. प्रसंगत [को०]।

यो०—निवृत्तकारण = (१) जिसका कोई कारण या प्रेरणा न हो। (२) अनासक्त या निःस्पृह व्यक्ति। निवृत्तमांस = जिसने मांस खाना छोड़ दिया हो। निवृत्तायौवन = जिसका यौवन लौट आया हो। निवृत्तराग = रागहीन। विरक्त। निवृत्तकील्व = जो इच्छुक न हो। अनाकांक्षा। निवृत्तवृत्ति = अपनी वृत्ति या पेशा त्याग करनेवाला।

निवृत्तवृद्धिक आधि—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह धन जो बिना व्याज पर किसी के यहाँ जमा हो।

निवृत्तसंनापनीय—संज्ञा पुं० [सं०] सृष्ट के अनुसार एक रसायन जिसमें अठारह भोजधियाँ हैं।

विशेष—कहते हैं, इस रसायन के सेवन से मनुष्य का शरीर युवा के समान और बल सिंह के समान हो जाता है और वह मनुष्य अश्रुतिधर हो जाता है। ये सब भोजधियाँ सोमरस के समान वीर्ययुक्त मानी जाती हैं। इनके नाम ये हैं—अजगरी, श्वेतकपोती, कृष्णकपोती, गोनसी, वाराही, कन्या, क्षमा, करेणु, प्रजा, चक्रका, आदित्यवर्णिनी, ब्रह्मसुवर्चला, भावणी, महाप्रावणी, गोलोमी, अजलोमी और महावेगवती।

निवृत्तात्मा^१—वि० [निवृत्तात्मन्] विषयों से अलग रहनेवाला [को०]।

निवृत्तात्मा^२—संज्ञा पुं० विष्णु [को०]।

निवृत्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. मुक्ति। छुटकारा। २. प्रवृत्ति का अभाव या उलटा। ३. बौद्धों के अनुसार मुक्ति या मोक्ष। ४. एक प्राचीन तीर्थ का नाम। ५. बापस होना। बापसी [को०]। समाप्ति [को०]।

निवेद^(५)—संज्ञा पुं० [न० निवेद्य] ३० 'निवेद्य'।

निवेदक—वि०, संज्ञा पु० [सं०] निवेदन करनेवाला । प्रार्थी ।

निवेदन—संज्ञा पु० [सं०] १. विनय । विनती । २. प्रार्थना । ३. समर्पण । ४. शिव का एक नाम (को०) ।

निवेदना—क्रि० स० [हि० निवेदन] १. विनती करना । प्रार्थना करना । २. नजर करना । कुछ भोग्य पदार्थ प्रागे रखना । नैवेद्य चढ़ाना । अर्पित कर देना । उ०—सदा प्रापु को मोहि निवेदं । प्रेम शल्य ते ग्रंथिहि छेदै ।—रघुनाथ (शब्द०) ।

निवेदित—वि० [सं०] १. चढ़ाया हुआ । अर्पित किया हुआ । २. कहा हुआ । सुनाया हुआ । निवेदन किया हुआ ।

निवेद्य—संज्ञा पु० [सं०] नैवेद्य (को०) ।

निवेरना—क्रि० स० [हि० निवेड़ना] १. निबटाना । फैसल करना । २. क्षतम कर देना । उ०—प्रति बहु केलि गोपिकन केरी । संक्षेपे में कछुक निवेरी ।—रघुनाथ (शब्द०) । ३. छाटना । चुन लेना । ४. छुड़ाना । दूर करना । हटाना । उ०—कुलवंत निकारहि नारि सती । गृह भानहि चेरि निवेरि गती ।—हुलसी (शब्द०) ।

निवेरी—वि० [हि० निवेड़ना या निवेरना] १. चुना हुआ । छाटा हुआ । उ०—प्राजु भई कंसी गति तेरी ब्रज मे चतुर निवेरी ।—सूर (शब्द०) । २. नवीन । अनोखा । नया । (क) में यह प्राजु निवेरी आई ? बहुत आदर करति सबे मिलि पहुने की कीर्षी पहुनाई ।—सूर (शब्द०) ।

निवेली—वि० [हि० नवेली] नए उम्र की । नरवी ।

निवेश—संज्ञा पु० [सं०] १. शिवाह । २. शिविर । डेरा । खेमा । ३. प्रवेश । ४. घर । मकान । ५. फैलाव । विस्तार । परिधि । बेरा (स्तनों का) (को०) । ६. प्रतिलिपि । नकल (को०) । ७. सज्जा (को०) । ८. सेना के पड़ाव डालने की व्यवस्था (को०) । ९. स्थापन । निवेशन (को०) ।

निवेशन—संज्ञा पु० [सं०] [श्री० निवेशनी] १. प्रौंसला । मोड़ । २. नगर (को०) । ३. दे० 'निवेश' (को०) ।

निवेशनी—संज्ञा श्री० [सं०] पृथ्वी (को०) ।

निवेष्ट—संज्ञा पु० [सं०] १. वह कपड़ा जिससे कोई चीज ढाँकी जाय । २. सामवेद का मंत्रभेद ।

निवेष्टन—संज्ञा पु० [सं०] तोपना । ढकना (को०) ।

निवेद्य—संज्ञा पु० [सं०] १. व्याप्ति । २. बरफ का पानी । ३. जल-स्तंभ । ४. बबल तुषार । हिमसीकर (को०) । ५. आवर्त । मँबर (को०) । ६. वातचक्र । बवंडर (को०) ।

निवेसना—क्रि० स० [सं० नि०/वि०] बैठाना । उ०—भीतम जब कर पंकज बरै । बल करि सेज निवेसित करै ।—नंद० ग्रं०, पु० १४५ ।

निव्याधी—संज्ञा पु० [सं० निव्याधिन्] एक रत्न का नाम ।

निव्यूढ—संज्ञा पु० [सं० निव्यूढ] दे० 'निव्यूढ' (को०) ।

निश—संज्ञा श्री० [सं०] १. रात । २. हुस्वी ।

निशंक^१—वि० [सं० निःशङ्क] जिसे किसी बात की शंका या भय न हो । निर्भय । निडर । बेझोफ ।

निशंक^२—संज्ञा पु० एक प्रकार का नृत्य विशेष ।

निशंग—संज्ञा पु० [सं० निषङ्ग] दे० 'निषङ्ग' ।

निशा—संज्ञा श्री० [सं० निश] रात्रि । रजनी ।

निशाचर—संज्ञा पु० [सं० निशाचर] दे० 'निशाचर' ।

निशाठ^१—संज्ञा पु० [सं०] पुराणानुसार बलदेव के एक पुत्र का नाम ।

निशाठ^२—वि० ईमानदार (को०) ।

निशातर—संज्ञा पु० [क्रा० नशतर] दे० 'नशतर' ।

निशब्द—वि० [सं०] चुप । न बोलता हुआ । मौन (को०) ।

निशमन—संज्ञा पु० [सं०] १. बर्षान । देलना । २. श्रवण । सुनना । ३. जानना । परिचय पाना (को०) ।

निशरण—संज्ञा पु० [सं०] शरण । आश्रय । बच करना (को०) ।

निशल्या—संज्ञा श्री० [सं०] दंती वृक्ष ।

निशांत^१—संज्ञा पु० [सं० निशान्त] १. रात्रि का अंत । पिछली रात । रात का चौथा पहलू । २. प्रभात । तड़का । ३. घर । गृह ।

निशांत^२—वि० जो बहुत ही शांत हो ।

निशांतनारी—संज्ञा श्री० [निशान्तनारी] गृहिणी ।

निशांध^१—वि० [सं० निशान्ध] शून्य । रात का अंधा । जिसे रात को न मुँह । जिसे रतौंधी होती हो ।

निशांध^२—संज्ञा पु० फलित ज्योतिष में एक प्रकार का योग जो उस समय पड़ता है जब सिद्धराशि में सूर्य हों ।

विशेष—कहते हैं, इस योग के पड़ने से मनुष्य को रतौंधी होती है ।

निशांधा—संज्ञा श्री० [सं० निशान्धा] १. जतुका या पहाड़ी नामक लता जिसकी पत्तियाँ ओषधि के काम में आती हैं । २. राजकन्या । राजकुमारी ।

निशा—संज्ञा श्री० [सं०] १. रात्रि । रजनी । रात । २. हरिद्रा । हलदी । ३. बाहुरिद्रा । ४. फलित ज्योतिष में मेष, वृष, मिथुन प्रादि छह राशियाँ । दे० 'राशि' । ५. स्वप्न । सपना (को०) ।

निशाकर—संज्ञा पु० [सं०] १. चंद्रमा । शनि । चाँद । २. कुबकुट । मुरगा । ३. महादेव । ४. एक महर्षि का नाम । ५. कपूर । ६. एक की संख्या (को०) ।

श्री०—निशाकरकलामौलि = शिव ।

निशाकान्त—संज्ञा पु० [सं० निशाकान्त] चंद्रमा (को०) ।

निशाकेतु—संज्ञा पु० [सं०] चंद्रमा (को०) ।

निशाक्षय—संज्ञा पु० [सं०] रात्रि का अवनयन । रात की समाप्ति (को०) ।

निशाखातिर—संज्ञा श्री० [अ० आतिर + क्रा० निशा (आतिर-निशा)] तसल्ली । दिव्यभरम । प्रबोध ।

निशाख्या—संज्ञा श्री० [सं०] हुस्वी ।

निशागृह—संज्ञा पु० [सं०] शयनागार [को०] ।

निशाचर—संज्ञा पु० [सं०] १. राक्षस । २. शृगाल । गीदड़ । ३. उल्लू । ४. सर्प । ५. चक्रवाक । ६. भूत । ७. चोर । ८. घंभि-
पणु का एक भेद । ९. महादेव । १०. चोर नामक मधुद्रव्य ।
११. बिल्ली । १२. वह जो रात को चले । जैसे, कुलटा,
पिशाच आदि ।

निशाचरपति—संज्ञा पु० [सं०] १. शिव । महादेव । २. रावण ।

निशाचरी—संज्ञा स्त्री [सं०] १. राक्षसी । २. कुलटा । ३. कैशिकी
नामक मधुद्रव्य । ४. अभिसारिका नायिका ।

निशाचर्म—संज्ञा पु० [सं० निशाचर्मन्] मधुकार । २. घंघेरा ।

निशाचारो—संज्ञा पु० [सं० निशाचारिन्] १. शिव । २. निशाचर ।

निशाजल—संज्ञा पु० [सं०] १. हिम । पाला । २. घोल ।

निशाट—संज्ञा पु० [सं०] १. उल्लू । २. निशाचर ।

निशाटक—संज्ञा [सं०] गूगल ।

निशाटन^१—संज्ञा पु० [सं०] उल्लू ।

निशाटन^२—वि० जो रात को बिचरण करे । निशाचर ।

निशास—वि० [सं०] १. सान घरा हुआ । तेज किया हुआ । २.
चमकाया हुआ [को०] ।

निशातिक्रम—संज्ञा पु० [सं०] रात का वीतना [को०] ।

निशातैल—संज्ञा पु० [सं०] वैद्यक में एक प्रकार का तेल ।

विशेष—यह खेर भर कड़वे तेल, घतूरे के पत्तों का चार खेर रस,
घाठ तोले पीसी हुई हलदी और चार तोले मक्खन के मेल से
बनता है । यह तेल कान के रोगों के लिये विशेष उपकारी
माना जाता है ।

निशाद—संज्ञा पु० [सं०] १. वह व्यक्ति जो रात को खाता हो । २.
दे० 'निषाद' [को०] ।

निशादि—संज्ञा पु० [सं०] गति का आरंभ । सायंकाल [को०] ।

निशाधतैल—संज्ञा पु० [सं०] वैद्यक में एक प्रकार का तेल जो
मगंधर के लिये उपकारी माना जाता है ।

विशेष—यह तैल कड़वा तैल, पीसी हुई हलदी, सेंधा नमक,
चितामूल और गुग्गुलु आदि के मेल से बनाया जाता है ।

निशाधीश—संज्ञा पु० [सं०] दे० 'निशापति' ।

निशान^१—संज्ञा पु० [सं०] लेख करना । सान पर चढ़ाना ।

यौ०—निशानपट्ट—सान भरने का पत्तर ।

निशान^२—संज्ञा पु० [सं०] १. लक्षण जिससे कोई चीज पहचानी
जाय । चिह्न । जैसे,—(क) उम मकान का कोई निशान
बना हो तो जल्दी पता भग जायगा । (ख) जहाँ तक
पुस्तक पढ़ो उमक आगे कोई निशान रख दो । २. किसी
पदार्थ से प्रकृत किया हुआ अथवा और किसी प्रकार बना
हुआ चिह्न । जैसे, पैर का निशान, अंगूठे का निशान, धरियो
को पहचान के लिये बनाए हुए निशान (अक्षर), किताब पर
बनाए हुए निशान आदि ।

क्रि० प्र०—करना ।—डालना ।—बनाना ।—बनाना ।

३. शरीर अथवा और किसी पदार्थ पर बचा हुआ स्वाभाविक
या और किसी प्रकार का चिह्न, दाग या चम्का ।
जैसे, किसी पशु पर बना हुआ गुल का निशान, चेहरे पर
बना हुआ गुप्पर का निशान । ४. किसी पदार्थ का परिचय
करने के लिये उसके स्थान पर बनाया हुआ कोई चिह्न । जैसे,
ज्योतिष में ग्रहों आदि के बनाए हुए निशान, वनस्पति शास्त्र
में वृक्ष, झाड़ी और नर या मादा पेड़ या फूल के लिये बनाए
हुए निशान । ५. वह चिह्न जो अपढ़ आदमी अपने हस्ताक्षर
के बदले में किसी कागज आदि पर बनाता है । ६. वह लक्षण
या चिह्न जिससे किसी प्राचीन या पहले की घटना अथवा
पदार्थ का परिचय मिले । जैसे, किसी पुराने नगर आदि का
संकेत ।

यौ०—नाम निशान = (१) किसी प्रकार का चिह्न या लक्षण ।
(२) अस्तित्व का लेख । बचा हुआ थोड़ा अंश । जैसे,—वही
अब किसी घर का नाम निशान नहीं है ।

७. पता । ठिकाना ।

मुहा०—निशान देना = (१) पता बताना । (२) आसामी को
सम्मान आदि तामील करने के लिये पहचनवाना ।

यौ०—निशानदेही ।

८. वह चिह्न या संकेत जो किसी विशेष कार्य या पहचान के
लिये नियत किया जाय । ९. समुद्र में या पहाड़ों आदि पर
बना हुआ वह स्थान जहाँ लोगों को मार्ग आदि बिलाने के
लिये कोई प्रयोग किया जाता है । जैसे मार्गदर्शक प्रकाशालय
आदि (लक्षण) । १०. दे० 'लक्षण' । ११. दे० 'निशाना' ।
१२. दे० 'निशानी' । १३. खज्जा । पताका । झंडा ।

मुहा०—किसी बात का निशान उठाना या लड़ा करना = (१)
किसी काम में अनुभा या नेता बनकर लोगों को अपना अनु-
यायी बनाना । जैसे, बनावत का निशान खड़ा करना । (२)
आशोधन करना ।

निशानकोना—संज्ञा पु० [सं० ईशान+हि० कोना] उत्तर और
पूर्व का कोण (लक्षण) ।

निशानची—संज्ञा पु० [सं० निशान+ची (प्रत्यय)] वह जो
किसी राजा, सेना या दल आदि के आगे झंडा लेकर चलता
हो । निशानबरदार ।

निशानदेही—संज्ञा स्त्री [सं०] दे० 'निशानदेही' ।

निशानदेही—संज्ञा स्त्री [सं० निशान+हि० देना या क्र० देह
(= देना)] आसामी को सम्मान आदि की तामील के
लिये पहचनवाने की क्रिया । आसामी का पता बतलाने
का काम ।

निशानपट्टी—संज्ञा स्त्री [सं० निशान+हि० पट्टी] चेहरे की बनावट
आदि अथवा उसका वर्णन । हुलिया ।

निशानबदार—संज्ञा पु० [सं०] वह जो किसी राजा, सेना या दल
आदि के आगे आगे झंडा लेकर चलता हो । निशाचरी ।

निशापति—संज्ञा पु० [सं०] १. चंद्रमा । विवाकर । २. कपूर । कपूर ।

निशाना—संज्ञा पुं० [फ्रा० निशानह्] १. वह जिसपर ताक कर किसी अस्त्र या शस्त्र आदि का वार किया जाय । लक्ष्य ।

मुहा०—निशाणा करना या बनाना = अस्त्र आदि के वार करने के लिये किसी को लक्ष्य बनाना । निशाना होना = निशाना बनना । लक्ष्य होना ।

२. किसी पदार्थ को लक्ष्य बनाकर उसकी ओर किसी प्रकार का वार करना ।

मुहा०—निशाना बाँधना = वार करने के लिये अस्त्र आदि को इस प्रकार साधना जिसमें ठीक लक्ष्य पर वार हो । निशाना मारना या लगाना = ताककर अस्त्र शस्त्र आदि का वार करना । निशान साधना = (१) निशाना बाँधना । (२) निशाना लगाने का अभ्यास करना ।

३. मिट्टी आदि का वह ढेर या धीर कोई पदार्थ जिसपर निशाना साधा जाय । ४. वह जिसपर लक्ष्य करके कोई व्यंग्य या बात कही जाय ।

निशानाथ—संज्ञा पुं० [सं०] १. चंद्रमा । २. कपूर ।

निशानी—संज्ञा स्त्री० [फ्रा०] १. स्मृति के उद्देश्य से दिया अथवा रखा हुआ पदार्थ । वह जिससे किसी का स्मरण हो । यादगार । स्मृतिचिह्न । जैसे,—(क) हमारे पास यही घड़ी उनकी निशानी है । (ख) चलते समय हमें अपनी कुछ निशानी तो दे जाओ । (ग) बस यही लड़का हमारे स्वर्गीय मित्र की निशानी है ।

क्रि० प्र०—देना ।—रखना ।

२. वह चिह्न जिससे कोई चीज पहचानी जाय । निशान । पहचान ।

निशापति—संज्ञा पुं० [सं०] १. चंद्रमा । २. कपूर [को०] ।

निशापुत्र—संज्ञा पुं० [सं०] १. नक्षत्र आदि आकाशीय पिंड । २. दानव । निशाचर [को०] ।

निशापुष्प—संज्ञा पुं० [सं०] कुमुदिनी । कोई ।

निशाबल—संज्ञा पुं० [सं०] कलित ज्योतिष में मेघ, वृष, मिथुन, कर्क, धन और मकर ये छह राशियाँ जो रात के समय अधिक बसवती मानी जाती हैं ।

विशेष—कलित ज्योतिष में दो प्रकार की राशियाँ मानी जाती हैं—निशाबल और दिनबल । उक्त छह राशियाँ निशाबल और शेष दिनबल मानी जाती हैं । कहा जाता है, जो काम दिन के समय करना हो वह दिनबल राशियों में और जो काम रात के समय करना हो वह रात्रिबल राशियों में करना चाहिए ।

निशार्भगा—संज्ञा स्त्री० [सं० निशाभङ्गा] दुःखपुच्छी नामक पौधा ।

निशामखि—संज्ञा पुं० [सं०] १. चंद्रमा । २. कपूर ।

निशामन—संज्ञा पुं० [सं०] १. दर्शन । देखना । २. आलोचन । ३. श्रवण । सुनना ।

निशामय—संज्ञा पुं० [सं०] शिव ।

निशाङ्ग—संज्ञा पुं० [सं०] संव्याकाश । गोधूलि का समय ।

निशाङ्ग—संज्ञा पुं० [सं०] पीपड़ ।

निशारण—संज्ञा पुं० [सं०] १. रात्रियुद्ध । २. मारण । बध । निशरण [को०] ।

निशारत्न—संज्ञा पुं० [सं०] १. चंद्रमा । २. कपूर ।

निशारुक^१—संज्ञा पुं० [सं०] सात प्रकार के रूपक तालों में से एक प्रकार का ताल जिसमें दो सधु और दो गुरु मात्राएँ होती हैं । इसका व्यवहार प्रायः ह्रास्य रस के गीतों के साथ होता है ।

निशारुक—वि० [सं०] बहुत अधिक हिसा करनेवाला ।

निशासन—संज्ञा पुं० [सं०] सन का पौधा ।

निशावसान—संज्ञा पुं० [सं०] रात का अंतिम भाग । प्रभात । तड़का ।

निशाविहार—संज्ञा पुं० [सं०] राक्षस ।

निशावेदी—संज्ञा पुं० [सं० निशावेदिन्] कुक्कुट । मुर्गा [को०] ।

निशास्ता^१—संज्ञा पुं० [फ्रा०] १. गेहूँ को भिगोकर उसका निकास धीरे जमाया हुआ सत या गूदा । २. मंड़ी । कलफ ।

निशास्ता^२—वि० जमाया हुआ । बैठाया हुआ । स्थापित [को०] ।

निशाहस—संज्ञा पुं० [सं०] कुमोदनी ।

निशाहसा—संज्ञा स्त्री० [सं०] शेफालिका । सिंदुवार । निगुंडी ।

निशाह्वा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. हलदी । २. जलुका नाम की लता ।

निशि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. रात । रात्रि । रजनी । २. हलदी ।

निशिकर—संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा । शशि ।

निशिचर—संज्ञा पुं० [सं० निशाचर] ३० 'निशाचर' ।

निशिचरराज^१—संज्ञा पुं० [हि०] राक्षसों का राजा विभीषण ।

निशित^१—संज्ञा पुं० [सं०] सोहा ।

निशित^२—वि० १. चोखा । तेज । तीखा । जो सान पर चढ़ा हुआ हो । २. उत्तेजित [को०] ।

निशिता—संज्ञा स्त्री० [सं०] रात [को०] ।

निशिदिन—क्रि० वि० [सं०] रातदिन । सदा । सबदा ।

निशिनार्थ—संज्ञा पुं० [सं०] ३० 'निशानार्थ' ।

निशिनार्थक—संज्ञा पुं० [सं०] ३० 'निशानार्थ' ।

निशिपति—संज्ञा पुं० [सं०] ३० 'निशापति' ।

निशिपाल—संज्ञा पुं० [सं०] १. चंद्रमा । २. एक छंद जिसके प्रत्येक चरण में अगण, जगण, सगण, नगण और रगण होता है । जैसे,—भाजे सुनि राखव कवींद्र कुस की नई । काव्य रखवा विपुल वित्त तिहि देई । वार निशिपाल हम से बुध कबी जाने । हो दा चिरायु अखिलेख कवि यों अने ।—अखिलेख (सत्य०) ।

निशिपालिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] ३० 'निशिपाल' ।

निशिपुष्पा—संज्ञा स्त्री० [सं०] निगुंडी नामक फूल का पेड़ । सिंदुवार ।

निशिपुष्पिका, निशिपुष्पो—संज्ञा स्त्री० [सं०] निगुंडी । शेफालिका । सिंदुवार ।

निशिवासर(५)—संज्ञा पु० [सं०] रातदिन । सदा । सर्वदा । हमेशा ।
निशोथ—संज्ञा पु० [सं०] १. सोने का समय । रात । २. बाकी रात । ३. भागवत के अनुसार रात्रि के एक कल्पित पुत्र का नाम ।

निशोथिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] रात्रि । रात ।

थी०—निशोथिनीपति = चंद्रमा ।

निशोथिनीश—संज्ञा पु० [सं०] १. कपूर । २. शक्ति । चंद्रमा (को०) ।

निशोथ्या—संज्ञा स्त्री० [सं०] रात (को०) ।

निशुभ—संज्ञा पु० [सं० निशुम्भ] १. बध । २. हिंसा । ३. खंडन । तोड़ना (को०) । ४. पुराणानुसार एक असुर का नाम जिसका जन्म कश्यप ऋषि की स्त्री दनु से गर्भ से हुआ था और जो शुभ तथा निमुचि (नमुचि) का भाई था ।

विशेष—निमुचि तो इंद्र के हाथ से मारा गया था पर शुभ और निशुभ ने देवताओं पर आक्रमण करके उन्हें जीत लिया था और स्वर्ग पर राज्य करना प्रारंभ कर दिया था । जब दोनों ने रक्तबीज से सुना कि दुर्गा ने महिषासुर को मार डाला तब निशुभ ने प्रतिज्ञा की कि मैं दुर्गा को मार डालूंगा । उस समय नर्मदा नदी से निकलकर चंद्र और मुंड नामक दो और राक्षस भी इन लोगों में मिल गए । पहले शुभ और निशुभ ने दुर्गा से कहाया कि तुम हममें से किसी के साथ विवाह करो पर दुर्गा ने कहा दिया कि रण में मुझे जो जीतेगा उसी से मैं विवाह करूंगी । रण में दुर्गा ने पहले धुन्नलोचन, चंद्र, मुंड, रक्तबीज आदि असुरों तथा उनके साथियों को मारा । फिर शुभ और निशुभ ने युद्ध प्रारंभ किया । देवी ने पहले निशुभ को सब शुभ को मारा जिससे असुरों का उत्पात शांत हुआ और इंद्र को फिर स्वर्ग का राज्य मिला ।

थी०—निशुभमथनी = दुर्गा । निशुभमहिनी ।

निशुभन—संज्ञा पु० [निशुम्भन] बध । मार डालना ।

निशुभमहिनी—संज्ञा स्त्री० [सं० निशुम्भमहिनी] दुर्गा ।

निशुभी—संज्ञा पु० [सं० निशुम्भन] एक बुद्ध का नाम ।

निशेश—संज्ञा पु० [सं०] चंद्रमा ।

निशैव—संज्ञा पु० [सं०] बक । बगुना ।

निशोत्सर्ग—संज्ञा पु० [सं०] प्रयात । तड़का ।

निश्कुला—वि० [सं०] अपने कुल से निकाली हुई (स्त्री) ।

निश्चंद्र—वि० [सं० निश्चन्द्र] १. चंद्रमारहित । २. जिसमें चमक न हो ।

निश्चंद्र अभ्रक—संज्ञा पु० [सं० निश्चन्द्र अभ्रक] वैद्यक में वह अभ्रक जो दूध, ग्यारपाठा, पादमी के मूत्र, बकरी के दूध आदि कई पदार्थों में मिलाकर और सी बार उनका पुष्ट देकर तैयार किया जाता है ।

विशेष—कहते हैं, यह पथराव के समान हो जाता है । यह कीर्यवर्धक, रसायन और ज्वरनाशक माना जाता है ।

निश्चक्र—वि० [सं०] ३० 'निशेच' (को०) ।

निश्चक्रिक—वि० [सं०] १. चक्रविहीन । चक्ररहित । २. छलविहीन ।

निश्चलु—वि० [सं० निश्चलुस्] अंधा । बिना आँखवाला (को०) ।

निश्चय—संज्ञा पु० [सं०] १. ऐसी धारणा जिसमें कोई संदेह न हो । निःसंशय ज्ञान । २. विश्वास । यकीन । ३. निर्णय । जैसे,—इसका निश्चय हो जाना चाहिए कि यह वस्तु क्या है ।

विशेष—निश्चय बुद्धि की वृत्ति है ।

४. पक्का बिचार । दृढ़ संकल्प । पुरा इरादा । जैसे,—मैंने नहीं जाने का निश्चय कर लिया है । ५. जीव । अन्वेषण (को०) ।

६. एक अर्थालंकार जिसमें अन्य विषय का निषेध होकर प्रकृत या यथार्थ विषय का स्थापन होता है । जैसे,—नहि सरोज यह बदन है नहि इंदीवर नैन । मधुकर ! अनि धावै कुषा, मानि हमारे नैन । यहाँ सरोज और इंदीवर का निषेध करके यथार्थ वस्तु मुख और नैन की स्थापना हुई है ।

निश्चयात्मक—वि० [सं०] [वि० स्त्री० निश्चयात्मिका] जो बिलकुल निश्चित हो । ठीक ठीक । असंदिग्ध ।

निश्चयात्मकता—संज्ञा स्त्री० [सं०] निश्चयात्मक होने का भाव । यथार्थता । असंदिग्धता ।

निश्चयार्थक—वि० [सं० निश्चयार्थक] निश्चित अर्थवाला । जिसके अर्थ में हेरफेर न किया जा सके ।—उ०—यथार्थ के तत्त्वों द्वारा, निश्चयार्थक शब्दों में, ज्ञान की किसी स्वचालित व्यवस्था का निर्माण करना विज्ञान का सार है ।—पा० सा० सि०, पु० ७ ।

निश्चर—संज्ञा पु० [सं०] एकादश मन्वन्तर के सप्तविंशों में से एक ।

निश्चल—वि० [सं०] १. जो अपने स्थान से न हटे । अचल । अटल । २. जो जरा भी न हिले झुले । स्थिर ।

निश्चलता—संज्ञा स्त्री० [सं०] निश्चल होने का भाव । स्थिरता । दृढ़ता ।

निश्चलांग^१—संज्ञा पु० [सं० निश्चलाङ्ग] १. बगुला । २. पर्वत आदि जो सदा निश्चल रहते हैं ।

निश्चलांग^२—वि० जिसके अंग झिलते डोलते न हों ।

निश्चला—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. जालपर्णी । २. पुष्पी । ३. मत्स्य-पुराण के अनुसार एक नदी का नाम ।

निश्चायक—संज्ञा पु० [सं०] वह जो किसी बात का निश्चय या निर्णय करता हो । निश्चयकर्ता । निर्णायक ।

निश्चारक—संज्ञा पु० [सं०] १. प्रवाहिका नाम का रोग जो अतिसार का एक भेद है । यह बच्चों को प्रायः होता है और इसमें बहुत दस्त आते हैं । २. वायु । हवा । ३. दुराग्रह । स्वच्छंदता । हठप्रकृति । जिद्दी स्वभाव (को०) । ४. पुरीषण्य । मलस्थान (को०) ।

निश्चित—वि० [सं० निश्चिन्त] जिसे कोई चिंता या फिक्र न हो या जो चिंता से मुक्त हो गया हो । चिंतारहित । बेफिक्र । जैसे,—
(क) प्राय निश्चित रहें, मैं ठीक समय पर पहुँच जाऊँगा ।
(ख) अब कहीं जाकर हम इस काम में निश्चित हुए हैं ।

निश्चितई—संज्ञा स्त्री० [हि० निश्चित + ई (प्रत्य०)] निश्चित होने का भाव । बेफिक्री ।

निश्चित—वि० [सं०] १. जिसके संबंध में निश्चय हो चुका हो । तै किया हुआ । निर्णीत । जैसे,—(क) हमारे वहाँ जाने की सब बातें निश्चित हो चुकी हैं । (ख) इस काम के लिये कोई दिन निश्चित कर लो । २. जिसमें कोई परिवर्तन या फेर बदल न हो सके । दृढ़ । पक्का । जैसे,—तुम कोई निश्चित बात तो कहते ही नहीं, नित्य नए बहाने निकालते हो ।

निश्चितार्थ—वि० [सं०] १. जिसने किसी बात का निश्चय कर लिया हो । निश्चित धारणावाला । २. उचित या ठीक निर्णय करनेवाला । ३. निश्चित अर्थवाला (को०) ।

निश्चिति—संज्ञा स्त्री० [सं०] निश्चय करना ।

निश्चिन्ता—संज्ञा पुं० [सं०] योग में एक प्रकार की समाधि ।

निश्चिरा—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक नदी का नाम जिसका उल्लेख महाभारत में है ।

निश्चुक्कण—संज्ञा पुं० [सं०] १. मिस्सी । २. मंजन ।

निश्चेतन—वि० [सं०] १. बेसुच । बेहोश । बहहवास । २. जड़ ।

निश्चेष्ट—वि० [सं०] १. बेहोश । अचेत । २. चेष्टारहित । ३. निश्चल । स्थिर ।

निश्चेष्टता—संज्ञा स्त्री० [सं० निश्चेष्ट + ता (प्रत्य०)] १. बेहोशी । संज्ञाशून्यता । २. चेष्टा का प्रभाव । निश्चेष्ट होने की स्थिति । प्रकर्मण्यता । उ०—निश्चेष्टता तथा निर्वसता का न करोगे क्या अब शेष । —कुटुम्ब, पृ० ४ ।

निश्चेष्टाकरण—संज्ञा स्त्री [सं०] १. वैद्यक में एक प्रकार की शोध जो मैनसिल से बनाई जाती है । २. कामदेव के एक प्रकार के बाण का नाम ।

निश्चै—संज्ञा पुं० [सं० निश्चय] ३० 'निश्चय' ।

निश्चयबन—संज्ञा स्त्री [सं०] १. पुराणानुसार वैवस्वत मन्वन्तर के सप्तविंशों में से एक ऋषि का नाम । २. महाभारत के अनुसार एक प्रकार की अग्नि ।

निश्छन्द—वि० [निश्छन्दस] जिसने वेद न पढ़ा हो ।

निश्छन्द—वि० [सं० निम् + छन्द] बिना आवाज़ का । सुना हुआ । साफ़ । उ०—मेरे शरीर ने बाड़े ओ रुच धारण किया हो, किंतु हृदय निश्छन्द है ।—प्र० ४०, पृ० ५७ ।

निश्छल—वि० [सं०] छलरहित । सीधा । सरलचित्त । निष्कपट ।

निश्छाय—वि० [सं०] छायाविहीन । बिना छाया का (को०) ।

निश्छेद—संज्ञा पुं० [सं०] गणित में वह राशि जिसका किसी गुणक के द्वारा भाग न दिया जा सके । अविभाज्य ।

निश्चम—संज्ञा पुं० [सं०] किसी कार्य से न चकना अथवा न चबराना । अच्यवसाय ।

निश्चयणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] सीढ़ी ।

निश्चोक—संज्ञा पुं० [सं०] सीढ़ी ।

निश्चैयि—संज्ञा स्त्री० [सं०] सीढ़ी (को०) ।

निश्चैयिका तृण—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार की घास जो रसहीन और गरम होती है और पशुओं को निर्बल कर देती है ।

निश्चैयि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. सीढ़ी । जीना । २. मुक्ति । ३. कज़ूर का पेड़ ।

निश्चैयस—संज्ञा पुं० [सं० निश्चैयस्] १. मोक्ष । २. दुःख का अत्यंत अभाव । ३. कल्याण ।

निश्वास—संज्ञा पुं० [सं०] १. नाक या मुँह से बाहर निकलनेवाला श्वास । प्राणवायु के नाक के बाहर निकलने का व्यापार । २. दीर्घ श्वास । लंबी सांस ।

निश्शंक—वि० [सं० निश्शङ्क] १. निडर । निर्भय । बेझोफ । २. संदेहरहित । जिसमें शका न हो ।

निश्शंस—वि० [सं० निश्शङ्क] ३० 'निश्शंक' । उ०—ऋषि मुनि मनोहंस, रविवंश अवतंस कमरत निश्शंस, पूरो मनस्काम ।—भाराधना, पृ० ४८ ।

निश्शक्त—वि० [सं०] निर्बल । नाताकत । जिसमें शक्ति न हो ।

निश्शरण—वि० [सं० निः + शरण] शरणहीन । आश्रयहीन । उ०—सुषमता में असम संबन्ध, शरण में निश्शरण गया ।—अर्चना, पृ० ८३ ।

निश्शील—वि० [सं०] शीलरहित । बेमुरीबत । बदमिजाज । बुरे स्वभाववाला ।

निश्शीलता—संज्ञा स्त्री० [सं०] दुष्ट स्वभाव । बदमिजाजी ।

निश्शेष—वि० [सं०] जिसमें से कुछ भी बाकी न बचा हो । जिसका कुछ भी अवशिष्ट न हो ।

निषंग—संज्ञा पुं० [सं० निषङ्ग] १. तूण । तूणौर । तरकश । २. खड्ग । ३. प्राचीन काल का एक बाजा जो मुँह से फूँककर बजाया जाता था । ४. लगाव (को०) । ५. मिलाप । संमिलन (को०) ।

निषंगधि—संज्ञा पुं० [सं० निषङ्गधि] १. आलिंगन । २. रथ । ३. कंधा । ४. तूण । ५. सारथी । ६. धनुष धारण करनेवाला । धनुर्धर ।

निषंगी—वि० [सं० निषङ्गिन्] १. तीर चलानेवाला । धनुर्धारी । जिसके पास तूणौर हो । २. खड्ग धारण करनेवाला । ३. अत्यंत आसक्त । अत्यंत लगाववाला (को०) ।

निषंगी^२—संज्ञा पुं० महाभारत के अनुसार धृतराष्ट्र के एक पुत्र का नाम ।

निषकपुत्र—संज्ञा पुं० [सं०] राजस । निष्काचर । असुर ।

निषकश—संज्ञा पुं० [सं०] स्वरसाधन की एक प्रणाली जिसमें प्रत्येक स्वर को दो दो बार धलापना पड़ता है । जैसे,—सा सा, रे रे, ग ग, म म, य य, व व, नि नि, सा सा । सा सा, नि नि, व व, य य, म म, ग ग, रे रे, सा सा ।

निषक्त—वि० [सं०] अत्यंत आसक्त (को०) ।

निषक्त—संज्ञा पुं० [सं०] बाप । पिता । जनक ।

निषरण—वि० [सं०] १. बैठा हुआ । ओठेंगा हुआ । स्थित । २. जिसे सहारा मिला हो । ३. गत । गया हुआ । ४. म्लान । क्षिप्त । विवरण (को०) ।

निषेधक—संज्ञा पुं० १. घासन । २. एक तरह का शाक या तृण (को०) ।

निषि—संज्ञा ली० [सं०] सुस्ती । घालस्य । अकर्मण्यता (को०) ।

निषत्र—संज्ञा पुं० [सं० नक्षत्र] दे० 'नक्षत्र' । उ०—सुम निषत्र गुन कर्यो जु धारण । कथ्यो भीक्ष जन जान जाति द्विज कुल प्राचारण ।—सुंदर० प्र०, भा० १, पृ० ८२ ।

निषद्—संज्ञा ली० [सं०] यज्ञ की दोषा ।

निषद—संज्ञा पुं० [सं०] १. (संगीत में) निषाद स्वर । २. एक राजा का नाम ।

निषदन—संज्ञा पुं० [सं०] १. उपवेशन । बैठना । २. बैठने का घासन । ३. रहने का स्थान । घालस्य । घर । मकान (को०) ।

निषद्या—संज्ञा ली० [सं०] १. वह स्थान जहाँ कोई चीज बिकती हो । हाट । २. छोटी छाट ।

निषद्यापरीक्षत—संज्ञा पुं० [सं०] ऐसे स्थान में जहाँ स्त्री, पंड आदि का आगम हो न रहना और यदि इष्टानिष्ठ का उपसर्ग हो तो भी अपने चित्त को चलायमान न करना (जैन) ।

निषद्वर—संज्ञा पुं० [सं०] १. कीचड़ । चहला । २. कामदेव (को०) ।

निषद्वरा, निषद्वरी—संज्ञा ली० [सं०] रात । रजनी ।

निषद्वी—संज्ञा पुं० [सं०] १. पुराणानुसार एक पर्वत का नाम । कहते हैं, यह पर्वत हलायुत के दक्षिण हरिवर्ष की सीमा पर है । २. हरिवर्ष के अनुसार रामचंद्र के प्रपौत्र और कुश के पौत्र का नाम । ३. महाराज जनमेजय के पुत्र का नाम । ४. पुराणानुसार एक देश का प्राचीन नाम जो विष्णुचल पर्वत पर था ।

विशेष—किसी किसी से मत से यह वर्तमान कुमाऊँ का एक भाग है और दमयंती के पति नल यहीं के राजा थे ।

५. कुश के एक लड़के का नाम । ६. संगीत के सात स्वरों में से अंतिम या सान्ध्या स्वर । निषाद ।

निषध—वि० कठिन ।

निषधा—संज्ञा ली० [सं०] राजा नल की राजधानी का नाम (को०) ।

निषधावती—संज्ञा ली० [सं०] माकंडेय पुराण के अनुसार एक नदी का नाम जो विष्णु पर्वत से निकलती है ।

निषधामास—संज्ञा पुं० [सं०] कुश के एक लड़के का नाम ।

निषधार्थ—संज्ञा पुं० [सं०] आक्षेप । अलंकार के पाँच अर्थों में से एक ।

निषसई—संज्ञा ली० [हि०] दे० 'निलसई' ।

निषाद्—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक बहुत पुरानी धनायं जाति जो भारत में धार्य जाति के जाने से पहले निवास करती थी । इस जाति के लोग शिकार खेलते, मछलियाँ मारते और डाका खालते थे ।

विशेष—पुराणों में जिस प्रकार और अनेक धनायं जातियों की उत्पत्ति के संबंध में अनेक प्रकार की कथाएँ लिखी हुई हैं उसी प्रकार इस जाति की उत्पत्ति के संबंध में भी एक कथा है । अग्निपुराण में लिखा है कि जिस समय राजा वैष्णु की जीव

मयी गई थी उस समय उसमें से काले रंग का एक छोटा सा आदमी निकला था । वही आदमी इस वंश का आदि पुंस्य था । लेकिन मनु के मत से इस जाति की सृष्टि ब्राह्मण पिता और शूद्रा माता से हुई है । मिताक्षरा में यह जाति मूर और पापी कही गई है ।

२. एक देश का प्राचीन नाम जिसका उल्लेख महाभारत, रामायण तथा कई पुराणों में है ।

विशेष—महाभारत के अनुसार यह एक छोटा राष्ट्र था जो विनयान के दक्षिणपश्चिम में था । संभवतः रामायणकाला शृगवेरपुर इस राज्य का राज्यनगर था ।

३. संगीत के सात स्वरों में अंतिम और सबसे ऊँचा स्वर जिसका संक्षिप्त रूप 'नि' है ।

विशेष—इसकी दो श्रुतिधाँ हैं—उग्रता और शोभिनी । नारद के अनुसार यह स्वर हाथी के स्वर के समान है और इसका उच्चारणस्थान ललाट है । व्याकरण के अनुसार यह दंत्य है । संगीतदर्पण के अनुसार इस स्वर की उत्पत्ति असुर वंश में हुई है । इसकी जाति वैश्य, वरुण विभिन्न, जन्म पुष्कर द्वीप में, ऋषि तुंबक, देवता सूर्य और छंद जयती है । यह संपूर्ण जाति का स्वर है । और कदण इसके लिये विशेष उपयोगी है । इसकी फूट तान ५०४० है । इसका बार अनिबार और समय रात्रि के अंत की २ घड़ी ३४ पल है । इसका स्वरूप गणेश जी के समान माना जाता है ।

निषादकर्वे—संज्ञा पुं० [सं०] एक देश का प्राचीन नाम ।

निषादी—संज्ञा पुं० [सं० निषादिन] हाथीवान । महावत ।

निषिक्त—संज्ञा पुं० [सं०] बीध से उत्पन्न गर्भ ।

निषिक्त—वि० १. सिंचित । सिक्त । २. शमित । भीतर डाला हुआ (को०) ।

निषिद्ध—वि० [सं०] १. जिसका निषेध किया गया हो । जिसके लिये मनाही हो । जो न करने योग्य हो । २. क्षराव । क्षुरा । दूषित । तुच्छ ।

निषिद्धि—संज्ञा ली० [सं०] निषेध । मनाही ।

निषिधु—संज्ञा पुं० [सं० निषिद्ध] क्षुरा कार्य । अकर्म । उ०—निषिध पुडावण कारनै मय उपजायो बाह । मय मांस पर-त्रिय गवन इनते नरकहि जाइ ।—सुंदर० प्र०, भा० १, पृ० १६८ ।

निषूटना—क्रि० प्र० [देश०] समाप्त होना । चुक जाना । निवृटना । उ०—बहु दिसि फूटा, नीर निषूटा, लेखा डेवण सास बे । बाहु दास कहै बणिजारा तू रत्ता तरली नाल बे ।—दादू०, पृ० ४८३ ।

निषूदन—वि० [सं०] नाश करनेवाला । मारनेवाला । बध करनेवाला । जैसे, अरिनिषूदन, केशिनिषूदन ।

निषेक—संज्ञा पुं० [सं०] १. गर्भाधान । २. रेत । बीज । ३. क्षरण । घुना । टपकना । ४. अच्छी तरह सींचना । सिंचन (को०) । ५. गर्भाधान के अवसर पर होनेवाला संस्कार (को०) । ६. घुसाई के काम आनेवाला जल (को०) । ७. बंदा पानी । ८,

भयके द्वारा अर्क उतारना (को०) । ६. वीर्य संबंधी अशुद्धता (को०) ।

निषेधन—कि० सं० [सं०] सीधना । तर करना । मियोना । आर्द्र करना ।

निषेध^७—संज्ञा पु० [सं० निषेध] दे० 'निषेध' । उ०—सत्तगुरु सम्म अहाज हैं, कोइ कोइ पात्रे भेद । समुंद बुंद एकै अवा, किसका कळं निषेद ।—कबीर सा० सं०, पृ० ११ ।

निषेध—संज्ञा पु० [सं०] १. वर्जन । मनाही । न करने का आदेश । २. बाधा । रुकावट । ३. इनकार । अस्वीकार (को०) । ४. विधि का उलट । विधि का विलोम (को०) ।

निषेधक—संज्ञा पु० [सं०] मना करनेवाला । रोकनेवाला ।

निषेधन—संज्ञा पु० [सं०] [वि० निषेधित, निषिद्ध] निषेध करने का काम । निवारण । मना करना ।

निषेधपत्र—संज्ञा पु० [सं०] वह पत्र जिसके द्वारा किसी प्रकार का निषेध किया जाय ।

निषेधविधि—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह बात या आज्ञा जिसके द्वारा किसी बात का निषेध किया जाय ।

निषेधात्मक—वि० [सं० निषेध + आत्मक] निषेध रूप । निषेध-वाला । उ०—गुरु विषयों का प्रतिपादन कभी कभी निषेधात्मक रीति से किया जाता है ।—पा० सा० सं०, पृ० १ ।

निषेधित—संज्ञा पु० [सं०] जिसके लिये निषेध किया गया हो । मना किया हुआ । वर्जित ।

निषेधी—वि० [सं० निषेधित] १. पीछे हट जानेवाला या बचाव करनेवाला । २. पीछे छाड़ जानेवाला । भागे निकल जाने-वाला (को०) ।

निषेधन—संज्ञा पु० [सं०] [वि० निषेधनीय, निषेधित, निषेध्य] १. सेवा । २. सेवन । व्यवहार । ३. पूजा । अर्चन । अनुष्ठान (को०) । ४. लगाव । लगन । संपर्क (को०) । ५. रहना । बसना (को०) ।

निषेधा—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'निषेधन' । उ०—अजन, मंजन, चंदन द्विज पति देव निषेधा ।—नंद० प्र०, पृ० ४० ।

निषेधित—वि० [सं०] १. पूजित । सेवित । प्रापित । समादृत । २. अनुष्ठित (को०) ।

निषेधी—संज्ञा पु० [सं० निषेधित] सेवा करनेवाला ।

निषेध्य—वि० [सं०] सेवनीय । सेवा के योग्य ।

निष्कंचन^७—वि० [सं० निश् + कंचन] अकिंचन । हीन । दरिद्र । उ०—अब लरिकिमी प्राप्ती होइ तो काहू निष्कंचन गरीब बाह्यन को बिबाह करि देख्यो ।—दो लो बावन०, भा० २, पृ० ६६ ।

निष्कंडक—वि० [सं० निष्कण्टक] १. जिसमें किसी प्रकार की बाधा, आपत्ति या अंशुट आदि न हो । अनुरहित । बिना कटका । निर्विघ्न । जैसे,—उन्होंने पचीस वर्ष तक निष्कंडक राज्य किया । २. काटों से रहित । जिसमें काटा न हो ।

निष्कंड—संज्ञा पु० [सं० निष्कण्ट] वरुण या वरुणा नाम का पेड़ ।

निष्कंप—वि० [सं० निष्कम्प] जिसमें किसी प्रकार का कंपन हो । अचल । स्थिर ।

निष्कंभ—संज्ञा पु० [सं० निष्कम्भ] गरुड़ के एक पुत्र का नाम ।

निष्कंभु—संज्ञा पु० [सं० निष्कम्भु] पुराणानुसार देवताओं के एक सेनापति का नाम ।

निष्क—संज्ञा पु० [सं०] १. वैदिक काल का एक प्रकार का सोने का सिक्का या मोहर जिसका मान भिन्न भिन्न समयों में भिन्न भिन्न था ।

विरोध—प्राचीन काल में यज्ञों में राजा लोग ऋषियों और ब्राह्मणों को दक्षिणा में देने के लिये सोने के बराबर तोल के टुकड़े कटवा लिया करते थे जो 'निष्क' कहलाते थे । सोने के इस प्रकार टुकड़े कटाने का मुख्य हेतु यह होता था कि दक्षिणा में सब लोगों को बराबर मोना मिले, किसी के पास कम या ज्यादा न चला जाय । पीछे से सोने के इन टुकड़ों पर यज्ञस्तूप आदि के चिह्न और नाम आदि बनाए या लोदे जाने लगे । इन्हीं टुकड़ों ने प्रागे चलकर सिक्कों का रूप धारण कर लिया । उस समय कुछ लोग इन टुकड़ों को गूँथकर और उनकी माला बनाकर गले में भी पहनते थे । भिन्न भिन्न समयों में निष्क का मान नीचे लिखे अनुसार था ।

एक निष्क = एक कर्ष (१६ माण)

" " = " सुवर्ण "

" " = " बीनार "

" " = " पल (४ या ५ सुवर्ण)

" " = चार माण

" " = १०८ अथवा १५० सुवर्ण ।

२. प्राचीन काल में चाँदी की एक प्रकार की तोल जो चार सुवर्ण के बराबर होती थी । ३. दैद्यक में चार माण की तोल । टंक । ४. सुवर्ण । सोना । ५. सोने का बरतन । ६. हीरा । ७. निर्गम । बाहर जाना । प्रस्थान (को०) । ८. चाडाल (को०) । ९. सोने की एक तोल जो १०८ या १५० सुवर्ण की होती थी (को०) । १०. गले में पहनने का एक स्वर्ण-भूषण (को०) ।

यौ०—निष्कंड, निष्कंधीव = जिसने गले में सोने का गहना पहन रखा हो ।

निष्कपट—वि० [सं०] जो किसी प्रकार का छल या कपट न जानता हो । निश्छल । छलरहित । सीधा । सरल ।

निष्कपटता—संज्ञा स्त्री० [सं०] निष्कपट होने का भाव । निश्छलता । सरलता । सीधापन ।

निष्कपटी—वि० [सं० निष्कपट] दे० 'निष्कपट' ।

निष्कर—संज्ञा पु० [सं०] वह भूमि जिसका कर न देना पड़ता हो ।

निष्करुण—वि० [सं०] जिसमें कष्ट या दया न हो । कष्टारहित । निष्ठुर । निर्दय । बेरहम ।

निष्कर्तन—संज्ञा पुं० [सं०] काटना । फाड़ना । तार तार करना [को०] ।

निष्कर्म्म—वि० [सं० निष्कर्म्मन्] अकर्म्म । जो कर्मों में लिप्त न हो ।

उ०—विष्णु नारायण कृष्ण जो बासुदेव ही ब्रह्म । परमेश्वर परमात्मा विष्वम्भर निष्कर्म्म ।—विश्राम (शब्द०) ।

निष्कर्म्मण्य—वि० [सं०] अकर्म्मण्य । अयोग्य । निष्कर्म्म । जो कुछ काम न कर सके ।

निष्कर्म्मा—वि० [सं० निष्कर्म्मन्] १. जो कर्मों में लिप्त न हो । अकर्म्मा । २. निष्कर्म्म ।

निष्कर्ष—संज्ञा पुं० [सं०] १. निश्चय । बुझासा । तथ्य । २. निष्कर्ष । सार । सारांश । ३. राजा का अपने साथ या कर आदि के लिये प्रजा को दुःख देना । ४. माप । मापन (को०) । ५. निकालने की क्रिया ।

निष्कर्षण्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. निकालना । खींचकर निकालना । २. घटाना [को०] ।

निष्कर्षी—संज्ञा पुं० [सं० निष्कर्षिन्] एक प्रकार का मत्स्य ।

निष्कलंक—वि० [सं० निष्कलङ्क] जिसमें किसी प्रकार का कलंक न हो । निर्वोध । बेऐब ।

निष्कलंकवीर्य—संज्ञा पुं० [सं० निष्कलङ्कवीर्य] पुराणानुसार एक तीर्थ का नाम जिसमें स्नान करने से समस्त पाप नष्ट हो जाते हैं ।

निष्कलंकित—वि० [सं० निष्कलङ्क] ३० 'निष्कलंक' ।

निष्कलंकी—वि० [सं० निष्कलङ्क] ३० 'निष्कलंक' ।

निष्कल^१—वि० [सं०] १. जिसमें कलंक न हो । कलारहित । २. जिसका कोई अंग या भाग नष्ट हो गया हो । ३. जिसका बीर्य नष्ट हो गया हो । बुद्ध । ४. नपुंसक । ५. पूरा । सम्पूरा ।

निष्कल^२—संज्ञा पुं० [सं०] ब्रह्मा । २. आचार । आस्वद । आश्रय (को०) । ३. शिव (को०) । ४. स्त्री का गुह्यांग । उपस्थ । भग (को०) ।

निष्कलत्वं—संज्ञा पुं० [सं०] अविभाज्य होने की अवस्था । किसी पदार्थ की वह अवस्था जिसमें उसके और अधिक विभाग न हो सकें ।

निष्कला—संज्ञा स्त्री० [सं०] बूढ़ा स्त्री । बुढ़िया ।

निष्कली—संज्ञा स्त्री० [सं०] अधिक अवस्थावाली वह स्त्री जिसका मासिक चर्म होना बंद हो गया हो ।

निष्कल्मष—वि० [सं०] बेबाग । बेऐब । शुद्ध (को०) ।

निष्कलाय—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह जिसके चित्त में किसी प्रकार का दोष न हो । वह जिसका चित्त स्वच्छ और पवित्र हो । २. मुमुक्षु । ३. एक जिन का नाम (बैत) ।

निष्कान्त—वि० [सं० निष्कान्त] जो सुंदर न हो । बड़ा । बद-सूरत (को०) ।

निष्काम—वि० [सं०] १. (वह अनुप्य) जिसमें किसी प्रकार की कामना, आसक्ति या इच्छा न हो । २. (वह काम) जो बिना किसी प्रकार की कामना या इच्छा के किया जाय ।

विशेष—सांख्य और गीता आदि के मत से ऐसा काम करने से चित्त-शुद्ध होता और मुक्ति मिलती है ।

यौ०—निष्कामचारी = बिना किसी इच्छा या आकांक्षा के काम करनेवाला । निष्कामकर्म = वह कार्य जिसके फल की इच्छा न की जाय ।

निष्कामता—संज्ञा स्त्री० [सं०] निष्काम होने की अवस्था या भाव ।

निष्कामी—वि० [सं० निष्कामिन्] (वह अनुप्य) जिसमें किसी प्रकार की कामना या आसक्ति न हो ।

निष्कामुक—वि० [सं०] संसारी इच्छाओं से मुक्त (को०) ।

निष्कारण^१—वि० [सं०] १. बिना कारण । बेसबब । २. व्यर्थ । बूबा ।

निष्कारण^२—संज्ञा पुं० १. मारना । बध करना । २. हटाना । अलग करना । दूर करना (को०) ।

निष्कार्य—वि० [सं०] निष्प्रयोजन । बे मतलब (को०) ।

निष्कालक—संज्ञा पुं० [सं०] मूँड़े हुए बाल या रोएँ आदि ।

निष्कालन—संज्ञा पुं० [सं०] १. चलाने की क्रिया । २. मार डालने की क्रिया । मारण । ३. पशु आदि को निकाल भजाना (को०) ।

निष्कालिक—वि० [सं०] १. जिसके जीने के दिन थोड़े रह गए हों । २. जिसे जीता न जा सके । अजेय (को०) ।

निष्काश—संज्ञा पुं० [सं०] १. प्रासाद आदि का बाहर निकला हुआ भाग । जैसे, बरामदा । २. तड़का । मोर (को०) । ३. लोप (को०) । ४. निष्काशन (को०) ।

निष्काशन—संज्ञा पुं० [सं०] निकालना । बाहर करना ।

निष्काशित—वि० [सं०] १. बहुभूत । निकाला हुआ । २. निहित । जिसकी निंदा की गई हो ।

निष्कास—संज्ञा पुं० [सं०] १. निकालने की क्रिया या भाव । २. जारी किया हुआ । ३. रखा या जमा किया हुआ । ४. नियुक्त । ५. खुला हुआ । विकसित । ६. जिसे कुरा जमा कहा गया हो (को०) ।

निष्कासिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह सेविका या दासी जिसपर उसके मालिक का कोई बंधन हो (को०) ।

निष्किञ्चन—वि० [सं० निष्किञ्चन] अकिञ्चन । धनहीन । दरिद्र । जिसके पास कुछ न हो ।

निष्किञ्चिन्—वि० [सं०] जो पापी न हो । बेबाग (को०) ।

निष्कुम्भ—संज्ञा पुं० [सं० निष्कुम्भ] बंती बूझ ।

निष्कुट—संज्ञा पुं० [सं०] १. घर के पास का बाग । गहर बाग । पार्श्व बाग । २. क्षेत्र । क्षेत्र । ३. कपाट । किबाड़ा । ४. जमाना महल । स्त्रियों के रहने का घर । ५. एक पर्वत का नाम । ६. पेड़ का खोंढ़रा । वृक्षकोटर (को०) ।

निष्कुटि, निष्कुटी—संज्ञा स्त्री० [सं०] इनायची ।

निष्कुटिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] पुराणानुसार कुमार की अनुचरी एक मात्रिका का नाम ।

निष्कुल—वि० [सं०] [वि० स्त्री० निष्कुला] बिना कुल का । जिसका कोई संबंधी न रह गया हो ।

निष्कूलोकरण—संज्ञा पु० [सं०] १. भूसी या छिलका घलग करना ।

२. किसी का कुल या खानदान समाप्त करना [को०] ।

निष्कूलोन—वि० [सं०] निम्न कुल का [को०] ।

निष्कूलित—वि० [सं०] १. काटा या खाया हुआ । मुक्त । २. बाहर किया हुआ । बहिष्कृत । ३. जिसकी खाल उभेड़ी हुई हो [को०] ।

निष्कूल—संज्ञा पु० [सं०] पेड़ का खोंड़रा । कोटर ।

निष्कूल—वि० [सं०] कूलनरहित । जहाँ किसी प्रकार का शोरगुल न होता हो । शांत [को०] ।

निष्कूल—वि० [सं०] बिना छल का । जिसमें धोखा न हो [को०] ।

निष्कूल—वि० [सं०] १. युक्त । छूटा हुआ । स्वतंत्र । २. हटाया या दूर किया हुआ । निकाला हुआ । ३. निश्चय किया हुआ । निश्चित ।

निष्कूलि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. निस्तार । छुटकारा । २. प्रायश्चित्त । ३. उपेक्षा । ४. धिक्कार [को०] । ४. दुराचरण । बुरा व्यवहार [को०] ।

निष्कूल—वि० [सं०] १. तेज । तीक्ष्ण । धारदार । खोला । २. कृपाविहीन । कृपारहित [को०] ।

निष्कूल—वि० [सं०] १. निचोड़कर निकाला हुआ । २. खींचकर बाहर किया हुआ [को०] ।

निष्कूल—वि० [सं०] विषुद । पूर्ण शुद्ध । खानिस [को०] ।

निष्कूल—वि० [सं०] खलखल से रहित । ईमानदार [को०] ।

निष्कूल—वि० [सं०] १. मोलहीन । २. पूर्ण । समग्र [को०] ।

निष्कूल, निष्कूलण—संज्ञा पु० [सं०] १. भूसी या छिलका घलग करना । २. फाड़ना । बिदारण करना । ३. खींचकर बाहर करना ।

निष्कूलणक—संज्ञा पु० [सं०] दाँत खोदने का छरिका [को०] ।

निष्कूल—वि० [सं०] बिना कम या सिलसिले का । बेतरतीब ।

निष्कूल—संज्ञा पु० १. बाहर निकलना । २. निष्क्रमण की रीति । ३. पतित होना । ४. मन की वृत्ति ।

निष्क्रमण—संज्ञा पु० [सं०] [वि० निष्क्रांत] १. बाहर निकलना । २. हिंदुओं में छोटे बच्चों का एक संस्कार जिसमें जब बालक चार महीने का होता है तब उसे घर से बाहर निकालकर सूर्य का दर्शन कराया जाता है ।

निष्क्रमणिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] चार महीने के बालक को पहले पहल घर से निकालकर सूर्य के दर्शन कराना ।

निष्क्रम—संज्ञा पु० [सं०] १. वेतन । तनखाह । मजदूरी । भाड़ा । २. वह धन जो किसी पदार्थ के बदले में दिया जाय । ३. विनिमय । बदला । ४. बिन्नी । बेचने की क्रिया । ५. सामर्थ्य । शक्ति । ६. पुरस्कार । इनाम । ७. कौटिल्य के अनुसार वह धन जो छुटकारे के लिये दिया जाय ।

निष्क्रमण—संज्ञा पु० [सं०] १. छुटकारे के लिये प्रदत्त धन । २. किसी वस्तु के बदले में प्रदत्त धन [को०] ।

निष्क्रांत—वि० [सं० निष्क्रान्त] जो जा चुका हो । बहिर्गत [को०] ।

निष्क्रामित—वि० [सं०] निकाला हुआ । बहिष्कृत [को०] ।

निष्क्राम्य—संज्ञा पु० [सं०] १. भाव का बाहर भेजा जाना । बाहर भेजी जानेवाली चलाव । २. रपतनी मास । (कौटि०) ।

निष्क्रम्य शुल्क—संज्ञा पु० [सं०] बाहर भेजे जानेवाले माल पर का महसूल ।

निष्क्रिय—वि० [सं०] जिसमें कोई क्रिया या व्यापार न हो । सब प्रकार की क्रियाओं से रहित । निश्चेष्ट ।

यौ०—निष्क्रिय प्रतिरोध = किसी कार्य या भाषा का वह विरोध जिसमें विरोध करनेवाला अपनी समझ से सत्य और उचित काम करता रहता है और इस बात की परवा नहीं करता कि इसके लिये मुझे संघ सहना पड़ेगा ।

२. विहित कर्म को न करनेवाला (को०) । ३. काम धाम न करनेवाला । निकम्मा (को०) ।

निष्क्रिय—संज्ञा पु० कर्मशून्य ब्रह्म ।

निष्क्रियता—संज्ञा स्त्री० [सं०] निष्क्रिय होने का भाव या अवस्था ।

निष्कलेश—वि० [सं०] १. क्लेशरहित । सब प्रकार के कष्टों से मुक्त । २. बीड़ों के अनुसार वसों प्रकार के क्लेशों से मुक्त ।

निष्कलाथ—संज्ञा पु० [सं०] मांस आदि का रस । शोरवा ।

निष्कपन—संज्ञा पु० [सं०] झुनना । जलाना । सेंकना । पकाना [को०] ।

निष्कप्त—वि० [सं०] १. अच्छी तरह शुष्क या पका हुआ । २. जला हुआ [को०] ।

निष्कानप—संज्ञा पु० [सं०] १. रव । आवाज । ध्वनि । २. दीर्घ वाद । गर्जन [को०] ।

निष्ठाप—संज्ञा पु० [सं०] हलकी गरमी । थोड़ा ताप [को०] ।

निष्ठि—संज्ञा स्त्री० [सं०] दस की कन्या और कश्यप की स्त्री दिति का एक नाम ।

निष्ठिमी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दिति का एक नाम ।

निष्ठय—संज्ञा पु० [सं०] १. आवाज । २. स्नेहों की एक जाति का नाम जिसका उल्लेख वेदों में है ।

निष्ठया—संज्ञा स्त्री० [सं०] स्वाती नक्षत्र [को०] ।

निष्ठ—वि० [सं०] १. स्थित । ठहरा हुआ । २. तत्पर । लगा हुआ । जैसे, कर्तव्यनिष्ठ । ३. जिसमें किसी के प्रति भद्रा या भक्ति हो । जैसे, स्वामिनिष्ठ ।

निष्ठांत—वि० [सं० निष्ठान्त] जिसका नाश अवश्य हो । जो अविनाशी न हो । नष्ट होनेवाला ।

निष्ठा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. स्थिति । अवस्था । ठहराव । २. निर्वाह । ३. मन की एकांत स्थिति । चित्त का जमना । ४. विश्वास । निश्चय । ५. धर्मगुह या बड़े भादि के प्रति भद्रा भक्ति । पुण्य बुद्धि । ६. विष्णु जिनमें प्रलय के समय समस्त भूतों की स्थिति होती । ७. इति । समाप्ति । ८. नाश । ९. सिद्धावस्था की अंतिम स्थिति । ज्ञान की वह चरमावस्था जिसमें आत्मा और ब्रह्म की एकता हो जाती है । १०. याचना [को०] ।

११. वन । उपवास (को०) । १२. कीलन । चातुर्य । दक्षता (को०) । १३. व्याकरण में 'त्त' और 'त्तु' प्रत्यय ।

निष्ठान, निष्ठानक - पु० [सं०] चटनी आदि ।

निष्ठापित—वि० [सं०] पूरा किया हुआ । समाप्त किया हुआ (को०) ।

निष्ठावान्—वि० [सं०] निष्ठवत्] जिसमें निष्ठा या श्रद्धा हो ।

निष्ठित—वि० [सं०] १. स्थित । ठढ़ । ठहरा या जमा हुआ । २. जिसमें निष्ठा हो । निष्ठायुक्त । ३. दक्ष । कुशल । चतुर (को०) ।

निष्ठोव, निष्ठोवन—संज्ञा पु० [सं०] १. थूक । २. थूक आदि बाहर निकालना (को०) । ३. वैद्यक के अनुसार एक औषध जिसका व्यवहार गले या कंफड़े में काम निकालने में किया जाता है । इसके सेवन से रोगी कफ थूकने लगता है ।

निष्ठुर—वि० [सं०] [वि० स्त्री० निष्ठुरा] १. कठिन । कड़ा । सख्त । २. जिसमें दया न हो । कठोर हृदयवाला । क्रूर । बेरहम ।

निष्ठुर—संज्ञा पु० परुष वचन । कठोर बात ।

निष्ठुरता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. निष्ठुर होने का भाव । कड़ाई । सख्ती । कठोरता । २. निर्दयता । क्रूरता । बेरहमी ।

निष्ठुरिक—संज्ञा पु० [सं०] एक नाग का नाम जिसका उल्लेख महाभारत में है ।

निष्ठेव, निष्ठेवन—संज्ञा पु० [सं०] थूक ।

निष्ठ्युत्—वि० [सं०] १. उक्त । कथित । २. थूका हुआ । उद्गीर्ण । ३. बहिष्कृत (को०) ।

निष्ठ्युति—संज्ञा स्त्री० [सं०] थूकने की क्रिया (को०) ।

निष्ठ्यु—वि० [सं०] कुशल । होशियार । निष्णात ।

निष्ठ्यात—वि० [सं०] १. किसी विषय का बहुत अच्छा ज्ञाता या जानकार । किसी बात का पूरा पंडित । २. विज्ञ । निपुण । ३. पूर्ण किया हुआ । पूरा किया हुआ ।

निष्पंक—वि० [सं०] निष्पद्] जिसमें कीचड़ आदि न लगा हो । स्वच्छ । निर्मल । साफ । सुथरा ।

निष्पंद—वि० [सं०] निष्पन्व] जिसमें किसी प्रकार का कंप न हो । स्पंदनरहित ।

निष्पक्व—वि० [सं०] १. सुपक्व । २. दृढ़ । जला हुआ (को०) ।

निष्पक्ष—वि० [सं०] जो किसी के पक्ष में न हो । पक्षपातरहित ।

निष्पक्षता—संज्ञा स्त्री० [सं०] निष्पक्ष होने का भाव । पक्षपात न करने का भाव ।

निष्पक्षन—संज्ञा पु० [सं०] तेथी से भ्रष्टना या बाहर निकलना (को०) ।

निष्पताक—वि० [सं०] बिना पताका का । जिसमें फरहुरा या ध्वजा न हो (को०) ।

निष्पताकध्वज—संज्ञा पु० [सं०] प्राचीन काल का एक प्रकार का ध्वज जिसे राजा लोग अपने पास रखते थे ।

विशेष—यह दंड ठीक पताका के दंड के समान होता था, अंतर केवल इतना ही होता था कि इसमें पताका नहीं होती थी ।

निष्पत्ति—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. समाप्ति । अंत । २. सिद्धि । परिपाक । ३. ठूठ योग के अनुसार नाद की चार प्रकार की अवस्थाओं में से अंतिम अवस्था । ४. निर्वाह । ५. भीमांसा । ६. निश्चय । निर्धारण । ७. उत्पादन । उत्पत्ति (को०) । ८. चर्चणा । अभिव्यंजना । अभिव्यक्ति (को०) ।

निष्पत्र—वि० [सं०] १. जिसमें पत्ते न हों । जैसे, पेड़ । २. जिसके पर न हो (को०) ।

निष्पत्रिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] करील का पेड़ ।

निष्पद्—संज्ञा पु० [सं०] वह सवारी जिसमें पहिए आदि न हों । जैसे, नाव आदि ।

निष्पद्—वि० जिसे पद या पैर न हो (को०) ।

निष्पन्न—वि० [सं०] जिसकी निष्पत्ति हो चुकी हो । जो समाप्त वा पूरा हो चुका हो ।

निष्पयोद्—वि० [सं०] अनभ्र । बिना बादल का । मेघरहित (को०) ।

निष्पराक्रम—वि० [सं०] पराक्रमरहित । बेकूवत । जिसमें पराक्रम न हो (को०) ।

निष्परिकर—वि० [सं०] बिना तैयारी का । जिसने कोई तैयारी न की हो (को०) ।

निष्परिग्रह—वि० [सं०] १. जो दान आदि न ले । २. जिसके स्त्री न हो । रंडुषा । ३. प्रविवाहित । कुंवारा । ४. (साधु) जो परिग्रह अर्थात् पादुका, कंथा आदि से रहित हो (को०) ।

निष्परिहार्य—वि० [सं०] जिसे किसी भी कीमत पर न छोड़ा जाय । अनिवार्य (को०) ।

निष्परुष—वि० [सं०] जो सुनने में कर्कश न हो । कोमल ।

निष्पर्यंत—वि० [सं०] निष्पर्यन्त] सीमाहीन (को०) ।

निष्पलक—वि० [सं०] निस् + हि० पलक] अपमक । निनिमेष । उ०—देखते हुए निष्पलक, याद आया उपवन ।—अपरा, पु० ४० ।

निष्पक्षन—संज्ञा पु० [सं०] धान आदि की भूसी निकालना । कूटना छाटना । अनाज को सोसाना या सुप आदि से पछोरना ।

निष्पाद्—संज्ञा पु० [सं०] १. अनाज की भूसी निकालने का काम । दाना । २. बोड़ा नाम की तरकारी या फली । मोबिया । ३. मटर । ४. सेम ।

निष्पादक—वि० [सं०] निष्पत्ति करनेवाला ।

निष्पादन—संज्ञा पु० [सं०] निष्पत्ति करना ।

निष्पादी—संज्ञा स्त्री० [सं०] बोड़ा नाम की तरकारी या फली । मोबिया ।

निष्पाप—वि० [सं०] जो पापी न हो । पापरहित । निर्दोष (को०) ।

निष्पाव—संज्ञा पु० [सं०] १. भूसी निकालना । कूट छांट । २. सुप की हवा । ३. वायु । हवा (को०) । ४. सेम । मोबिया ।

निष्पावक—संज्ञा पु० [सं०] सफेद सेम ।

निष्पावी—संज्ञा पु० [सं०] २० 'निष्पादी' ।

निष्पष्ट—वि० [सं०] १. चूँ किया हुआ । पिना हुआ । अच्छी तरह पीसा हुआ । २. पीटा हुआ । पीड़ित [को०] ।

निष्पोड़न—संज्ञा पुं० [सं० निष्पोड़न] निचोड़ना । गोले कपड़े को दबाकर उसमें से पानी निकालना ।

निष्पुत्र—संज्ञा पुं० [सं०] पुत्रहीन । जिसके भागे पुत्र न हो ।

निष्पुरुष—वि० [सं०] नपुंसक । नामर्द ।

निष्पुलाक—संज्ञा पुं० [सं०] आगामी उत्सर्गिणी के अनुसार १४ वें अर्हत का नाम (जैन) ।

निष्पेय, निष्पेयण—संज्ञा पुं० [सं०] १. चूर चूर करना । पीस डालना । मसल देना । २. घषण । रगड़ना । ३. परस्पर घषण की ध्वनि [को०] ।

निष्पौरुष—वि० [सं०] पौरुषविहीन [को०] ।

निष्प्रकम्प—संज्ञा पुं० [सं० निष्प्रकम्प] पुराणानुसार तेरहवें मन्वंतर के सप्तविधों में से एक का नाम ।

निष्प्रकम्प—वि० अकम्प । कंपनविहीन । जो काँपता न हो [को०] ।

निष्प्रकारक—वि० [सं०] १. बिना प्रकार या विशेषता का । २. दे० 'निर्विकल्पक' [को०] ।

निष्प्रकाश—वि० [सं०] जो साफ न हो । धुँधला [को०] ।

निष्प्रचार—वि० [सं०] १. जो एक स्थान से दूसरे स्थान पर न जा सके । जिसमें गति न हो । न चल सकने योग्य । २. केंद्रित किया हुआ । एक स्थान पर स्थिर किया हुआ । जैसे, मन [को०] ।

निष्प्रतिकार, निष्प्रतिकार—वि० [सं०] १. जिसका कोई उपाय न हो सके । लाइलाज । २. जिसे रोक न जा सके । प्रतिबंधहीन [को०] ।

निष्प्रविग्रह—वि० [सं०] दान या उपहार आदि न लेनेवाला [को०] ।

निष्प्रतिध—वि० [सं०] निर्वध । अबाध [को०] ।

निष्प्रतिभ—वि० [सं०] जिसमें प्रतिभा न हो । मंदबुद्धि । २. सहायुध न रखनेवाला । ३. जिसमें तड़क अड़क न हो । क्षीमशून्य [को०] ।

निष्प्रलोप—वि० [सं०] १. नाक की सीध में देखनेवाला । जो इधर लपक न देखे । २. उदासीन । जैसे, दृष्टि [को०] ।

निष्प्रपंच—वि० [सं० निष्प्रपंच] १. छिन्नरहित । ईमानदार । २. बिस्तारहीन [को०] ।

निष्प्रभ—वि० [सं०] जिसमें किसी प्रकार की प्रभा या चमक न हो । प्रभाशून्य । तेजरहित ।

निष्प्रयत्न—वि० [सं०] अकर्मण्य । काहिल । सुस्त [को०] ।

निष्प्रयोजन—वि० [सं०] १. प्रयोजन रहित । जिसमें कोई मतलब न हो । स्वार्थशून्य । जैसे, निष्प्रयोजन प्रीति । २. जिससे कुछ अर्थ सिद्ध न हो । ३. व्यर्थ । निरर्थक ।

निष्प्रयोजन—क्रि० वि० १. बिना अर्थ या मतलब के । २. व्यर्थ । फट्ट ।

निष्प्रवाण, निष्प्रवाण, निष्प्रवाण—वि० [सं०] कोरा कपड़ा । एकदम नया कपड़ा [को०] ।

निष्प्राण—वि० [सं०] प्राणरहित । मुरदा । मरा हुआ ।

निष्प्रेही(पु)—वि० [सं० निष्प्रेही] जिसकी किसी वस्तु की चाह न हो । किसी बात की इच्छा न रखनेवाला । उ०—चतुराई हरि ना मिले ये बातों की बात । निष्प्रेही निरधार की ग्राहक दीनानाथ ।—कबीर (शब्द०) ।

निष्फल—वि० [सं०] १. जिसका कोई फल न हो । व्यर्थ । निरर्थक । बेफायदा । २. अंडकोशरहित । जिसके अंडकोश न हो । उ०—हे दुर्मति तूने मेरा रूप लेकर इस अकार्य कर्म को किया इसलिये तू निष्फल अर्थात् अंडकोशरहित हो जायगा ।—गोपाल भट्ट (वाल्मीकि रामायण) (शब्द०) । ३. फलरहित । बिना फल का । ४. जो किसी कार्य का ब हो । बेकार ।

निष्फल—संज्ञा पुं० धान का पयाल । पूला ।

निष्फला—संज्ञा स्त्री [सं०] वह स्त्री जिसका रजोधर्म होना बंद हो गया हो । बूढ़ा स्त्री ।

विशेष—जटाधर के मत से ५० वर्ष की अवस्था के उपरांत और सुश्रुत के मत से ५५ वर्ष की अवस्था के उपरांत स्त्रियाँ निष्फला हो जाती हैं ।

निष्फल—संज्ञा पुं० [सं०] अस्त्रों के निष्फल करने का अस्त्र ।

विशेष—वाल्मीकि के अनुसार जिस समय विश्वामित्र अपने साथ रामचंद्र को बन में ले गए थे उस समय उन्होंने रामचंद्र को और और अस्त्रों के साथ यह अस्त्र भी दिया था ।

निष्फेन—वि० [सं०] भाग या केसररहित । जिसमें अंग न हो [को०] ।

निष्फेन—संज्ञा पुं० अफीम [को०] ।

निसंक—वि० [हि०] १० 'निश्शंक' । उ०—बावरी जो पै कसंक लग्यो तो निसंक हूँ क्यों नहि अंक लगावति ।—कविता को०, भा० १, पृ० १७६ ।

निसंग(पु)—वि० [सं० निस्सङ्ग] अकेला । एकाकी ।

निसंबर, निसंबल(पु)—वि० [सं० निस्संबल] संबलविहीन । आश्रय वा आश्रयहीन । निराश्रय । उ०—(क) सुमिर सनेह सों तू नाम रामराय की । संबर निसंबर को सखा असहाय की ।—तुलसी ६०, पृ० ४७५ । (ख) गए राम सरन सबकी मली ।... पंगु अंध निरगुनी निसंबल जो न लहे आँखे जली ।—तुलसी ६०, पृ० ३८६ ।

निसंस(पु)—वि० [सं० नृशंस] क्रूर । बेरहम । निर्दय ।

निसँस(पु)—वि० [हि० नि + संस (= पूँजी)] जिसके पास धन या पूँजी न हो । निर्धन । बरीब । उ०—साँठि होइ जेहि तेहि सब बोला । निसँस जो पुरुष पात जिमि बोला ।—जायसी (शब्द०) ।

निसँस(पु)—वि० [हि० नि + संस] जिसे संस न पाती हो । सुतप्राय । मुरदा सा ।

निर्सेसना(५) —क्रि० प्र० [सं० निःशसन] हाँफना । निःश्वास लेना ।
उ०—जनहि निसाँन बूढ़ि बिउ जाई । जनहि उठइ निर्सेसइ
बठराई ।—पदुमा०, पृ० ५३ ।

निस(५) —संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'निशा' ।

निसक —वि० [सं० निःशक्त] शक्त । कमजोर । दुबल । उ०—
कहँ यहै श्रुति सपुन सो यहै सयाने लोग । तीन दबावत निसक
हो राजा पातक रोग ।—बिहारी (शब्द०) ।

निसकर(५) —संज्ञा पु० [सं० निशाकर] चंद्रमा । चाँद ।

निसचय(५) —संज्ञा पु० [सं० निश्चय] दे० 'निश्चय' ।

निसचै(५) —संज्ञा पु० [सं० निश्चय] दे० 'निश्चय' ।

निसव(५) —वि० [सं० निःसव्य] असव्य । मिथ्या । उ०—जो जाने
सत प्राप्ति जाये । निसव हिएँ सत करै न पारे ।—जायसी
श्र० (गुप्त), पृ० २२३ ।

निसतरना(५) —क्रि० प्र० [सं० निस्तार] निस्तार पाना ।
छुटकारा पाना । छुट्टी पाना ।

निसतार —संज्ञा पु० [सं० निस्तार] दे० 'निस्तार' ।

निसतारना(५) —क्रि० प्र० [सं० निस्तारना (प्रत्य०)] निस्तार
करना । छुटकारा देना ।

निसघोस(५) —क्रि० वि० [सं० निशा + दिवस] रात दिन ।
नित्य । सदा ।

निसनेहा(५) —संज्ञा स्त्री० [सं० निःस्नेहा] दे० 'निःस्नेहा' ।

निसबत^१ —संज्ञा स्त्री० [सं० निस्बत] १. संबंध । लगाव । ताल्लुक ।
बैसे,—इन दोनों में कोई निसबत नहीं है । २. मंगनी ।
बिवाह संबंध की बात ।

क्रि० प्र०—पाना ।—ठहरना ।

३. तुलना । अपेक्षा । मुकाबला । जैसे,—(क) इसकी धीर उसकी
क्या निसबत ? (ख) यह बीज उसकी निसबत अच्छी है ।

विशेष —उदाहरण 'ब' की कोटि के वाक्यों में 'निसबत' शब्द के
पहले प्रायः फारसी का 'ब' उपसर्ग लगा देते हैं । जैसे,—इसकी
निसबत बहुत कुछ बड़ा है ।

मुहा०—निसबत देना = तुलना करना । मुकाबला करना ।

निसबत^२ —क्रि० वि० संबंध में । शःवत ।

निसबती —वि० [सं० निस्बत + ई (प्रत्य०)] संबंधवाला । संबंधी ।
रिश्ते का ।

यो०—निसबती भाई = बहनोई ।

निसयाना(५) —वि० [हि० नि + सयाना ?] जिसकी सुष बुध को
गई हो । जिसके होश हवास ठिकाने न हों ।

निसरना(५) —क्रि० प्र० [सं० निःसरण] निकलना । बाहर होना ।
उ०—नव दसन निसरत बदन भंड जो दसन कली समान
हैं ।—सीताराम (शब्द०) ।

निसरमा(५) —वि० [हि०] दे० 'बेखरम' । उ०—कीषा कीब कीया

तैं करमा । सिरजनहार न भयो निसरमा ।—रामानंद०,
पृ० ६ ।

निसरवाना, निसराना —क्रि० प्र० [सं० निःसारण] बाहर
निकलवाना । बाहर निकालना । उ०—दगनि चुभी सूठी चुभी
निसराए निसरै न । बल बल बितवनि बित चुभी बिसराए
बिसरै न ।—स० सप्तक, पृ० ३४८ ।

निसर्ग —संज्ञा पु० [सं०] १. स्वभाव । प्रकृति । २. रूप । आकृति ।
३. दान । ४. सृष्टि । ५. परित्याग । त्याग (की०) । ६. विनि-
मय (की०) ।

यो०—निसर्गज, निसर्गसिद्ध = स्वाभाविक । निसर्गनिपुण =
जनम का चतुर । निसर्गभिन्न = जो स्वभाव से ही भिन्न लगे ।
निसर्गविनोत = जो स्वभाव से ही नष्ट हो ।

निसर्गायु —संज्ञा स्त्री० [सं० निसर्गायुस] कलित ज्योतिष में एक
प्रकार की गणना जिससे किसी व्यक्ति की आयु का पता
लगाया जाता है ।

निसवादला(५) —वि० [सं० निःस्वाद] [वि० स्त्री० निस्वादनी]
स्वादरहित । जिसमें कोई स्वाद न हो ।

निसवादली(५) —वि० स्त्री० [हि० निस्वादला] बिना स्वाद की ।
जिसमें कोई स्वाद न हो । उ०—जनक झूठ निसवादली कौन
बात परि जाइ । तियसुख रति धारंम की नहि झूठयहि
मिटाइ ।—बिहारी (शब्द०) ।

निसवादिल(५) —वि० [हि० निस्वाद + इल (प्रत्य०)] स्वादहीन ।
बेस्वाद । उ०—हैं निसवादिल जात रसो मन मेरे बुनाव
मिठासहि पाये ।—चनानंद, पृ० २१ ।

निसबासर(५) —संज्ञा पु० [सं० निस्बासर] रात और दिन ।

निसबासर^२ —क्रि० वि० नित्य । सदा । हमेशा ।

निसस(५) —वि० [सं० निःश्वस] श्वसररहित । श्वेत । बेहोश ।
उ०—निसस ऊन मर लीन्हें सासा । यह अंधार जीवन की
धासा ।—जायसी (शब्द०) ।

निसहाय —वि० [सं० निस्सहाय] दे० 'निस्सहाय' ।

निसांत(५) —संज्ञा पु० [सं० निशान्त] गृह । घर । निशान्त । अंतःपुर ।
उ०—निश्रुति, निसांतऽह उद्विग्न, सरण, परम, आवास ।—
नंद श्र०, पृ० १०८ ।

निसाँक^१ —वि० [सं० निःशंक] १. बेकटके । निर्भय । बेझोकर ।
२. बेफिक्र । निश्चित ।

निसाँस(५) —संज्ञा पु० [सं० निश्वास] ठंडो साँस । जंभी साँस ।

निसाँस^२ —वि० बेदम । घृतकप्राय । उ०—जनहि निसाँस बूढ़ि बिउ
जाई । जनहि उठै निसरै बीराई ।—पदुमा०, पृ० ५३ ।

निसाँसा^३ —वि० [हि० नि + साँस] [वि० स्त्री० निसाँसी] जिसका
श्वास न चलता हो । श्वास-प्रश्वास-रहित । उ०—धब हौं
मरीं निसाँसी हिये न आवै साँस । रोगिया की को पाले बैदहि
बही उपास ।—जायसी (शब्द०) ।

निसा(५) —संज्ञा स्त्री० [निशाचातिर ?] संतोष । तृप्ति । उ०—

हैं है तब निसा मेरे लोचन चकोरनि की जब वह धमेल
मानन इंदु देखिहों।—मतिराम (शब्द०)।

मुहा०—निसा भर=जी भर के। खूब अच्छी तरह। उ०—
घाज निसा भरि प्यारे निसा भरि कीजिए कान्हूर केलि मुसी
में।—ठाकुर (शब्द०)।

निसा^१—संज्ञा स्त्री० [सं० निशा] दे० 'निशा'।

निसा^१^३—संज्ञा पुं० [सं० नशाह] दे० 'नशा'।

निसा^२—संज्ञा स्त्री० [सं०] धीरत। महिला। स्त्री (को०)।

निसाकर^१—संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा। निशाकर।

निसाखातिर—संज्ञा स्त्री० [हिं०] दे० 'निसाखातिर'।

निसाचर^१—संज्ञा पुं० [सं० निशाचर] दे० 'निशाचर'।

निसाटी—संज्ञा पुं० [सं० निशाट] निशाचर। दे० 'निशाट'। उ०—
पड़ फाट जगे द्रष्ट बाट पगे। जुषकाट निसाट निराट जगे।—
रा० क०, पृ० १२८।

निसाद^१—संज्ञा पुं० [सं० निषाद] १. बंगी। मेहतर। २. दे०
'निषाद'।

निसान^१—संज्ञा पुं० [फ़ा० निशान] दे० 'निशान'।

निसान^२—संज्ञा पुं० [सं० निःसान] नगाड़ा। धौसा। उ०—बोस
सहस्र धुंमरहि निसाना। गुलकंचन केरहि असमाना।—जायसी
(शब्द०)।

निसानना^१—संज्ञा पुं० [सं० निशानन] संघा का समय। प्रवेश
कास।

निसाना^१—संज्ञा पुं० [फ़ा० निशाना] दे० 'निशाना'।

निसानाथ^१—संज्ञा पुं० [सं० निशानाथ] दे० 'निशानाथ'।

निसानी^१—संज्ञा स्त्री० [फ़ा० निशानी] दे० 'निशानी'।

निसापति^१—संज्ञा पुं० [सं० निशापति] दे० 'निशापति'।

निसाफ^१—संज्ञा पुं० [सं० इन्साफ] न्याय। इनसाफ।

निसार^१—संज्ञा पुं० [सं०] १. निशानर। सवका। उत्तरा। २.
मुगलों के राज्य काल का एक सिक्का जो चौलाई रुपए या
चार आने मूल्य का होता था।

निसार^२—संज्ञा पुं० [सं०] १. समूह। २. सहोरा या सोनापाठा नाम
का वृक्ष।

निसार^३—वि० [सं० निस्सार] दे० 'निस्सार'।

निसारा^१—संज्ञा पुं० [सं० निःस्तरण, हिं० निसरना] निकलने या
बाहर जाने का रास्ता।

यो०—निसार पैसार=निर्गम धीर प्रवेशपथ।

निसारक—संज्ञा पुं० [सं०] ज्ञानक राम का एक भेष।

निसारत^१—संज्ञा पुं० [सं० निशा+रत] रात में होनेवाली रति।
रात्रिकालीन रति। उ०—बैठी गुर जन साथ में लखी
अचानक लाल। नैन इसारन सों कही सैन निसारत बाल।—
स० सप्तक, पृ० ३७३।

निसारना^१—क्रि० सं० [सं० निःसरण] निकालना। बाहर करना।

निसारा—संज्ञा स्त्री० [सं० निःसारा] केले का पेड़।

निसावरा—संज्ञा पुं० [देग०] एक प्रकार का कबूतर।

निसास^१—संज्ञा पुं० [सं० निःश्वास] गहरी या ठंडी सांस।

निसास^२—वि० [हिं० नि (प्रत्य०) + सास] बिगड़तयास।
बेदम। उ०—गगन धरति जल बूझि गह बूझत होइ निसास।
पिय पिय जातक जोहि री मरै सेवाति पियःस।—जायसी
(शब्द०)।

निसासो^१—वि० [सं० निःश्वास] जिसका सांस न चलता हो।
बेदम।

निसिंधु—संज्ञा पुं० [सं० निसिंधु] सम्राट् नाम का पेड़।

निसि^१—संज्ञा स्त्री० [सं० निशि] १. दे० 'निशि'। २. एक वृत्त
का नाम। इसके प्रत्येक चरण में एक अंगुली और एक अंगुली
(311) होता है।

निसिकर^१—संज्ञा पुं० [सं० निशिकर] दे० 'निशिकर' या
'निशाकर'।

निसिचर^१—संज्ञा पुं० [सं० निशिचर] दे० 'निशाचर'। उ०—
निसिचर निकर फिरहि बन माही।—मानस, ३। २४।

निसिचारो^१—संज्ञा पुं० [सं० निशिचारी] निशाचर। राक्षस।

निसिदिन^१—क्रि० वि० [सं० निशिदिन] १. रातदिन। छाटो
पहर। २. सदा। सर्वदा। निर्य। हमेशा।

निसिनाथ^१—संज्ञा पुं० [सं० निशिनार्थ] दे० 'निशिनार्थ' या
'निशानार्थ'।

निसिनाह^१—संज्ञा पुं० [सं० निशिनार्थ] चंद्रमा।

निसि निसि—संज्ञा स्त्री० [सं० निशि निशि] अचरानि। निशीथ।
आधी रात। उ०—निसि निसि निशिथ निशाह निशि होन
लगी अघरात। कोन चले सलि सोय रहु बैहों उठि
परमात।—नंददास (शब्द०)।

निसिपति^१—संज्ञा पुं० [सं० निशिपति] चंद्रमा।

निसिपाल^१—संज्ञा पुं० [निशिपाल] चंद्रमा।

निसिमनि^१—संज्ञा पुं० [सं० निशामणि] चंद्रमा।

निसिमुख^१—संज्ञा पुं० [सं० निशामुख] दे० 'निशामुख'।

निसियर^१—संज्ञा पुं० [सं० निशिकर] चंद्रमा। उ०—अनु धनि
रु निमियर निसि माही। हों दिनघर जेहि के तू छीहो।—
जायसी (शब्द०)।

निसियाना^१—वि० [हिं० नि + मयाना ?] जिसकी सुषुप्त को
गई हो। जिसके होश हवास ठिकाने न हों। उ०—जनहु
मानि निसियानी बसी। अनि देखभार कृति अनु मरसी।—
जायसी (शब्द०)।

निसिवासर^१—क्रि० वि० [सं० निशि+वासर] रातदिन। सदा।
सर्वदा। निर्य।

निसीठी—वि० [सं० नि. + हिं० सीठी] जिसमें कुछ तत्त्व न हो।
निःसार। नीरस। थोथा। उ०—तुम बाते निसीठी कही रिस
में मिसरी ते मिठी हमें लागती है।—पदाकर (शब्द०)।

निसीथ^१—संज्ञा पुं० [सं० निशीथ] दे० 'निशीथ'।

निसील^७—वि० [सं० निःशील] शीलरहित । उ०—नीच निसील निरीस निरकी ।—मानस, २ । २१८ ।

निसुंघु—संज्ञा पु० [सं० निःपुंघु] प्रह्लाद के भाई ह्लाद के पुत्र का नाम ।

निसुंभ—संज्ञा पु० [सं० निःपुंभ] दे० 'निःपुंभ' ।

निसु^७—संज्ञा स्त्री० [हि० निस] दे० 'निमा' ।

निसुका^७—वि० [सं० निःस्वक अथवा निःशुक्र] १. निर्धन । दरिद्र । गरीब । २. कमजोर । क्षमर्य । निरुम्मा । ३. निस्तेज । उ०—रहै निगोड़े नैन डगि गहै न नैन धरेन । हौं कसु कै रिस केकरों ये निसुके हँसि देन ।—बिहारी (शब्द०) ।

विशेष—इस शब्द का प्रयोग श्रियाँ प्रायः 'निगोड़ा' शब्द की भाँति करती हैं ।

निसूषक—वि० [सं०] हिंसा करनेवाला । हिंसक ।

निसूदन^१—संज्ञा पु० [सं०] १. हिंसा करना । २. वध करना ।

निसूदन^२—वि० मारने या वध करनेवाला [को०] ।

निसूत—वि० [सं० निःसूत] दे० 'निःसूत' ।

निसृता—संज्ञा स्त्री० [सं०] निसोष ।

निसृष्ट^१—वि० [सं०] १. छोड़ा हुआ । जो छोड़ दिया गया हो । २. मध्यस्थ । जो बीच में पड़कर कोई बात करे । ३. भेजा हुआ । प्रेरित । ४. दिया हुआ । दत्त । ५. पवित्र किया हुआ ।

निसृष्ट^२—संज्ञा पु० [सं०] दैनिक भृति । गोजाना दो जानेवाली मजदूरी (कीटि०) ।

निसृष्टार्थ—संज्ञा पु० [सं०] १. तीन प्रकार के दूतों में से एक दूत । वह दूत जो दोनों पक्षों का अभिप्राय अच्छी तरह समझकर सब प्रश्नों का उत्तर दे देता और कार्य सिद्ध कर लेता है । २. वह मनुष्य जो धन के आयाज्य और कृषि तथा वाणिज्य की देखरेख के लिये नियुक्त किया जाय । ३. वह मनुष्य जो और और शूर हो, अप्रमत्त भग्निक का काम तत्परता से करता रहे और अपना पौरुष प्रकट करे ।

यौ०—निसृष्टार्थदूतिका, निसृष्टार्थदूती = वह दूती जो नायक और नायिका की बातों को सुन समझकर अपनी बुद्धि से कार्य-साधन करे ।

निसेध^७—संज्ञा पु० [सं० निःसेध] दे० 'निःसेध' । उ०—का करतव्य निसेध — 'गिरिपारन' कील नही पहुचाने ।—पोद्दार अभिज्ञान, पु० ४६२ ।

निसेनिका^७—संज्ञा स्त्री० [निःसेनिका] सीढ़ी । गोपान । उ०—भाभी सर त्रिवली निसेनिका रोमगजि मेवल छबि पावति ।—तुलसी शं०, पु० ४१५ ।

निसेनी—संज्ञा स्त्री० [सं० निःसेनी] सीढ़ी । भीना । सोपान । उ०—नरक स्वर्ग अपवर्ग निसेनी । ज्ञान विराग भगति सुख रेनी ।—मानस, ७ । १२१ ।

निसेष^७—वि० [सं० निःशेष] दे० 'निःशेष' । उ०—काम क्रोध अहंता मोह मद राग द्वेष निसेष करि पोरहुन ।—तुलसी शं०, पु० ५६२ ।

निसेस^७—संज्ञा पु० [सं० निःसेस] चंद्रमा ।

निसैनी—संज्ञा स्त्री० [सं० निःशैली] दे० 'निसैनी' ।

निसोग^७—वि० [सं० निःशोक] जिसे कोई शोक या चिंता न हो ।

निसोच^७—वि० [सं० निःशोच] चितारहित । निश्चित । वेकिक । उ०—सब बिधि सानुकूल लखि सीता । भे निसोच डर अपडर बीता ।—मानस, २ । २४१ ।

निसोचु^७—वि० [सं० निःशोच] दे० 'निसोच' । उ०—तुलसी की साहसी सराहिए कृपाल नाम के भरोसे परिनाम को निसोचु है ।—तुलसी शं०, पु० २१७ ।

निसोत^१—वि० [सं० निःसंयुक्त] जिसमें और किसी चीज का मेल न हो । शुद्ध । निरा । उ०—(क) तो कत विविध सूल निस वासर सहते विपति निसोती ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) रीझत राम सनेह निसोते । को जग मंद मलिन मति मोते ।—तुलसी (शब्द०) ।

निसोत^२—संज्ञा स्त्री० [हि० निसोष] दे० 'निसोष' ।

निसोत्तर—संज्ञा पु० [हि०] दे० 'निसोत' ।

निसोथ—संज्ञा स्त्री० [सं० निःसूता] एक प्रकार की लता जो प्रायः सारे भारत के जंगलों में और पहाड़ों पर ३००० फुट की ऊँचाई तक पाई जाती है ।

विशेष—इसके पत्ते गोल और नुकीले होते हैं और इसमें गोल फल लगते हैं । यह तीन प्रकार की होती है—सफेद, काली और लाल । सफेद निसोथ में सफेद रंग के, काली में कालावन लिए बैंगनी रंग के और लाल के फल कुछ साल रंग के होते होते हैं । सफेद निसोथ के पत्ते और फल अपेक्षाकृत कुछ बड़े होते हैं और देखकर में वही अधिक गुणकारी भी मानी जाती है । भारत में बहुत प्राचीन काल से वैद्य लोग इसका व्यवहार करते आए हैं और इसका जुलाब सबसे अच्छा समझते हैं । भोपल के काम के लिये बाजार में इसकी लकड़ तथा छंठलों के कटे हुए टुकड़े मिलते हैं । वैद्यक में इसे गरम, चरपरी, रूखी, रेचक और कफ, सूजन तथा उदर रोगों को दूर करनेवाली माना है ।

पर्या०—निवृत् । सुवहा । त्रिपुटा । त्रिभंडी । रेचनी । सरा । सहा । सरसा । रोचनी । मालविका । श्यामा । मसूरी । प्रधंचंद्रा । विदला । सुपेणी । कालिका । कालमेणी । काली । त्रिवेला । त्रिपुत्तिका । सारा । निसृता ।

निसोघु^७—संज्ञा स्त्री० [हि० सोघ या सुघ] १. सुघ । लहर । २. संदेसा । कहलाया हुआ समाचार ।

निस—उप० [सं०] एक उपसर्ग । संस्कृत व्याकरण के नियमानुसार इस उपसर्ग का 'स' 'र', 'विसर्ग', 'ल' और 'व' में परिवर्तित हो जाता है । जैसे, निर्विक्रिक, निःसंभ, निःशक्त, निःकाम । हिंदी में इसका रूप 'निह' 'निहि' भी मिलता है । जैसे, निहकाम, निहंचित, निहिष्य आदि ।

निरकी—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार का रेशम का कीड़ा जिसे निस्तरी भी कहते हैं ।

निस्केवल—वि० [सं० निस्केवल] बेमेल । शुद्ध । निर्मल । खालिस ।
(बोलचाल) । उ०—उमा जोग जप दान तप नाना ब्रत मक्ष
नेम । राम कृपा नहिं करहिं तसि बसि निस्केवल प्रेम ।—
तुलसी (शब्द०) ।

निस्तंतु—वि० [सं० निस्तंतु] १. जिसके कोई संतान न हो । संतति-
रहित । २. तंतुहीन ।

निस्तंद्र, निस्तंद्रि—वि० [सं० निस्तन्द्र, निस्तन्द्रि] १. जिसमें आलस्य
न हो । निरालस्य । २. बलवान् । मजबूत ।

निस्तत्त्व—वि० [सं० निस्तत्त्व] जिसमें कोई तत्त्व न हो । निस्तार ।

निस्तनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] दवा की गोली । बटिका (की०) ।

निस्तब्ध—वि० [सं०] १. जो गड़ या जम सा गया हो । जो हिलता
डोलता न हो । जिसमें गति या व्यापार न हो । २. जड़वत् ।
निश्चेष्ट ।

निस्तब्धता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. स्तब्ध होने का भाव । सामोही ।
२. जरा भी शब्द न होने का भाव । सन्नाटा ।

निस्तमस्क—वि० [सं०] अंधकारहीन (की०) ।

निस्तर—संज्ञा पुं० [सं० निस्तार] छुटकारा । निस्तार । उ०—
जरै देहु दुख जरौ अपारा । निस्तर पाइ जाउँ एक बारा ।—
जायसी (शब्द०) ।

निस्तरण—संज्ञा पुं० [सं०] १. निस्तार । छुटकारा । उद्धार । २.
पार जाने की क्रिया या भाव ।

निस्तरना—क्रि० प्र० [सं० निस्तार] निस्तार पाना । पार
होना । मुक्त होना । छूट जाना । उ०—नाथ जीव तब माया
मोहा । सो निस्तरइ तुम्हारेहि छोहा ।—तुलसी (शब्द०) ।

निस्तरी—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार का रेशम का कीड़ा जिसका
रेशम बंगाल के 'देशी' कीड़ों के रेशम की अपेक्षा कुछ कम
मुलायम और चमकीला होता है ।

विशेष—इसके तीन भेद होते हैं—मदरासी, सोनामुखी और कुमि ।

निस्तर्क्य—वि० [सं०] जिसका तर्क करना संभव न हो ।
अतर्क्य (की०) ।

निस्तर्हण—संज्ञा पुं० [सं०] बघ । हत्या (की०) ।

निस्तल—वि० [सं०] १. गोल आकार का । २. बिना पेंदी का ।
३. चंचल । ३. घतल । गहरा । तलहीन । उ०—जीतल
सुख मेरे तट की निस्तल निरुहरी, खूबि विभावरी ।
अनामिका, पृ० १४४ ।

निस्तला—संज्ञा पुं० [सं०] बटिका । गोली (की०) ।

निस्तार—संज्ञा पुं० [सं०] १. पार होने का भाव । २. छुटकारा ।
मोक्ष । ३. बचत । बचाव । उद्धार । ४. अभीष्ट की प्राप्ति ।
५. माघन । उपाय (की०) ।

निस्तारक—संज्ञा पुं० [सं०] [स्त्री० निस्तारिका] निस्तार करनेवाला ।
बचानेवाला । छुड़ानेवाला ।

निस्तारण—संज्ञा पुं० [सं०] १. निस्तार करना । बचाना । छुड़ाना ।
२. पार करना । ३. जीतना । पराजित करना ।

निस्तारन—क्रि० प्र० [सं० निस्तारण] ३० 'निस्तारण' ।

निस्तारना—क्रि० प्र० [सं० निस्तार + ना (प्रत्य०)] छुड़ाना ।
मुक्त करना । उद्धार करना ।

निस्तार बीज—संज्ञा पुं० [सं०] पुराणानुसार वह उपाय या काम
जिससे मनुष्य की इस संसार तथा जन्म, मरण आदि से
मुक्ति हो जाय । जैसे, भगवान् के नाम का स्मरण, कीर्तन,
अर्चन, पादसेवन, बंदन, चरणोपक पान, विष्णु के मंत्र का
जप आदि ।

विशेष—पुराणों में लिखा है कि कलियुग में जब लोग तपोहीन
हो जायेंगे तब इन्हीं सब कामों से उनकी मुक्ति होगी ।

निस्तारा—संज्ञा पुं० [हि०] ३० 'निस्तार' ।

निस्तिमिर—वि० [सं०] अंधकार से रहित या शून्य ।

निस्तोर्ण—वि० [सं०] १. पार गया हुआ । जो तै या पार कर चुका
हो । २. जिसका निस्तार हो चुका हो । छुटा हुआ । मुक्त ।

निस्तुष—वि० [सं०] १. बिना भूखी का । जिसमें भूखी न हो ।
२. निर्मल ।

निस्तुष चीर—संज्ञा पुं० [सं०] नेत्र ।

निस्तुष रत्न—संज्ञा पुं० [सं०] स्फटिक मणि ।

निस्तुषित—वि० [सं०] १. जिसका छिलका उतार लिया गया हो ।
२. भलग किया हुआ । ३. छोटा या पतला किया हुआ (की०) ।

निस्तेज—वि० [सं० निस्तेजस्] तेजरहित । जिसमें तेज न हो ।
अप्रभ । मलिन ।

निस्तेल—वि० [सं०] तैलरहित । बिना तेल का । जिसमें तेल न हो ।

निस्तोद, निस्तोदन—संज्ञा पुं० [सं०] चुभन । काटने, खुरचने, नोचने
या डंक मारने वैसे कीड़ा (की०) ।

निस्त्रप—वि० [सं०] निलज्ज । बेहया । बेकर्म ।

निस्त्रिंश—संज्ञा पुं० [सं०] १. सङ्घ । २. तंत्र के अनुसार एक
प्रकार का मंत्र ।

यौ०—निस्त्रिंशभृत = सङ्घचारी ।

निस्त्रिंश—वि० [सं०] १. निर्दय । जिसमें दया न हो । २. तीस
से अधिक (की०) ।

निस्त्रिंशपत्रिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] ग्रंथ ।

निस्त्रुटी—संज्ञा स्त्री० [सं०] बड़ी इलायची ।

निस्त्रैगुण्य—वि० [सं०] जो सत, रज और तम इन तीनों गुणों से
रहित या अलग हो ।

निस्त्रैगुण्यक—संज्ञा पुं० [सं०] चतूरे का देश ।

निस्त्रास—वि० [सं० निस्त्रास] ३० 'निस्त्रास' । उ०—कृती कुशल
कोविद निपुन इन प्रवीन निस्त्रास ।—धनेकार्य, पृ० ३२ ।

निस्नेह—वि० [सं० निस्नेह] १. जिसमें प्रेम न हो । २. जिसमें
तेल न हो ।

निस्नेह—संज्ञा पुं० [सं०] तंत्र के अनुसार एक प्रकार का मंत्र ।

निस्नेहफला—संज्ञा स्त्री० [सं०] भटकटीया । कटेरी ।

निस्पंद^१—वि० [सं० निस्पन्द] जिसमें स्पंदन न हो। कंवरहित। स्थिर।

निस्पंद^२—संज्ञा पु० कं०। स्पंदन [को०]।

निस्पृह—वि० [सं०] जिसे किसी प्रकार का लोभ न हो। आसक्त या कामना आदि से रहित।

निस्पृहता—संज्ञा स्त्री० [सं०] निस्पृह होने का भाव। लोभ या मालसा न होने का भाव।

निस्पृहा—संज्ञा स्त्री० [सं०] यमिनशिखा या कलिहारी नामक पेड़।

निस्पृही—वि० [सं० निस्पृह] दे० 'निस्पृह'।

निष्फ—वि० [सं० निष्फ] अर्थ। भाषा। दो बराबर भागों में से एक भाग।

निष्फल—वि० [सं० निष्फल] दे० 'निष्फल'। उ०—कबीर करनी मापनी सबहुं न निष्फल जाय।—कबीर सा०, पु० ८८।

निष्फोबैंटाई—संज्ञा स्त्री० [सं० निष्फ + ई (प्रत्य०) + हि० बेंटाई] वह बेंटाई जिसमें बाधो उपज जमींदार और बाधो आसामी लेता है। अधिया।

निष्कत—संज्ञा स्त्री० [सं० निस्कत] दे० 'निस्कत'।

निस्पंद—संज्ञा पु० [सं० निस्पन्द] १. घूना। बहना। रिसना। भरना। २. नतीजा। परिणाम। ३. व्यक्त करना। जाहिर करना [को०]।

निस्पंदी—वि० [सं० निस्पन्दिन्] घूने या बहनेवाला। रिसनेवाला। भरनेवाला [को०]।

निस्त्रव—संज्ञा पु० [सं०] १. भात का माड़। २. वह जो बह या झड़कर निकले। पसेव। ३. बहना। घूना।

निस्त्रव—वि० [सं०] दरिद्र। गरीब। निःस्त्रव।

निस्त्रवन—संज्ञा पु० [सं०] शब्द। आवाज।

निस्त्रवान—संज्ञा पु० [सं०] १. दे० 'निस्त्रवन'। २. तीर की सन्नाहट। तीर चलने से उत्पन्न ध्वनि [को०]।

निस्त्रास—संज्ञा पु० [सं० निःत्रास] दे० 'निःत्रास'।

निःसंक—वि० [सं० निःसङ्क] दे० 'निःसङ्क'। उ०—सगकुल बैठत अंक पियत निःसंक नयन जल। धनि धनि है वे बीर धरधो जिन यह समाधि बल।—ब्रज० ग्रं०, पु० १२५।

निःसंकोच—वि० [सं० निःसङ्कोच] संकोच रहित। जिसमें संकोच या लज्जा न हो। बेधड़क।

निःसर्ग—वि० [सं० निःसङ्ग] १. अकेला। एकाकी। जिसका कोई भाथी न हो। २. जिसका किसी से लगाव न हो। निर्विघ्न [को०]।

निःसन्तान—वि० [सं० निःसन्तान] जिसे कोई संतान न हो। सन्ततिरहित।

निःसंदेह—क्रि० वि० [सं० निःसन्देह] अवश्य। जरूर। बेसक। सचमुच।

निःसंदेह^२—वि० जिसमें संदेह न हो।

निःसत्त्व—वि० [सं०] दे० 'निःसत्त्व'।

निःसरण—संज्ञा पु० [सं०] १. निकलने का मार्ग या स्थान। २. निकलने का भाव या क्रिया। निकास।

निःसान^१—संज्ञा पु० [हि०] दे० 'निःसान'। उ०—धुरत निःसान तहँ गैब की झालरा, गैब के घंट का नाद पावे।—कबीर सा०, भा०, पु० ८८।

निःसार—वि० [सं०] १. माररहित। जिसमें कुछ भी सार या गुण न हो। २. जिसमें कोई काम की वस्तु न हो। निःसत्त्व।

निःसारित—वि० [सं०] निकाला हुआ। बाहर किया हुआ।

निःसीम—वि० [सं०] १. जिसकी कोई सीमा न हो। असीम। अपार। २. बहुत अधिक।

निःसृत—संज्ञा पु० [सं०] तलवार के ३२ हाथों में से एक। उ०—दोड़ करत खंग प्रहार बारहि बार बहुत प्रकार के। तिनको कहत मैं नाम जो है हाथ मुख्य हथार के। उद्भात भ्रान्त प्रवृद्ध आकर विकर भिन्न धमानुष। आविद्ध निर्मयाद कुल चितवहु निःसृत रिपुरन दुष।—रघुराज (शब्द०)।

निःस्नेह—वि० [सं०] दे० 'निःस्नेह'।

यौ०—निःस्नेहफला = श्वेत कंटकारी।

निःस्पंद—वि० [सं० निःस्पन्द] दे० 'निःस्पंद'।

निःस्पृह—वि० [सं०] दे० 'निःस्पृह'।

निःस्त्रव, निःस्त्रवक—वि० [सं०] दे० 'निःस्त्रव'।

निःस्त्रादु—वि० [सं०] १. जिसमें कोई स्त्राई स्त्राद न हो। २. जिसका स्त्राद बुरा हो।

निःस्त्रार्थ—वि० [सं०] स्वार्थ से रहित। जिसमें स्वयं अपने लाभ या हित का कोई विचार न हो।

निहंग—वि० [सं० निःमङ्ग] १. एकाकी। अकेला। विवाह आदि न करनेवाला वा स्त्री से संबंध न रखनेवाला (साधु)। ३. नंगा। ४. बेहया। बेशरम।

निहंग^२—संज्ञा पु० १. एक प्रकार के वैष्णव साधु। २. अकेले रहनेवाला साधु।

निहंगम—वि० [हि० निहंग] दे० 'निहंग'।

निहंग झाडला—वि० [हि० निहंग + लाडला] जो माता पिता के दुखार के कारण बहुत ही उदास और लापरवा हो गया हो।

निहंता—वि० [सं० निहन्तृ] [वि० स्त्री० निहन्त्री] १. विनाशक। नाश करनेवाला। २. मारनेवाला। प्राण लेनेवाला।

निहङ्गछर^१—वि० जिसका कभी किसी भी वृत्ति में विनाश न हो। अविनश्यर। उ०—इस निहङ्गछर पुण्य को जो जनि सो मुक्ति मार्ग पावे।—कबीर मं०, पु० ३७८।

निहङ्गमी—वि० [सं० निहङ्गमन्] दे० 'निहङ्गमी'।

निहङ्गमी^२—वि० [हि० निहङ्गमी] दे० 'निहङ्गमी'।

निहङ्गलंक^१—वि० [सं० निहङ्गलङ्क] दे० 'निहङ्गलंक'।

निहङ्गाम^१—वि० [सं० निहङ्गाम] दे० 'निहङ्गाम'। उ०—नर नारी 'सब नर कहैं जब लग देह सकाम। कहैं कबीर सो राम को जो सुमिरे निहङ्गाम।—कबीर (शब्द०)।

निहङ्गामी—वि० [हि०] दे० 'निहङ्गामी'। उ०—सहङ्गामी सुमिरन करे पावे उत्तम धाम। निहङ्गामी सुमिरन करे पावैं अविचल राम।—कबीर (शब्द०)।

निहगर्ब^७—संज्ञा पुं० [हि०] निरभिमान । अहंकाररहित । गर्वहीन । उ०—मुक्त भए संसार में बिचरत है निहगर्ब ।—सुंदर ग्रं०, भा० २, पृ० ६६६ ।

निहचक्र^८—संज्ञा पुं० [सं० निम्ब + चक्र] पहिए के आकार का काठ का गोल चक्कर जो कुएं की नीचे में दिया जाता है । निवार । जमबट । आखिज ।

निहचय^९—संज्ञा पुं० [सं० निश्चय] ३० 'निश्चय' ।

निहचल^{१०}—वि० [सं० निश्चल] ३० 'निश्चल' ।

निहचिंत^{११}—वि० [सं० निश्चिंत] ३० 'निश्चित' । उ०—काग ऐसी निहचिंत कहत नहि सोवे ।—जग० मं०, पृ० ५६ ।

निहचै^{१२}—संज्ञा पुं० [सं० निश्चय] ३० 'निश्चय' । उ०—निहचै मारत को धब नास ।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ४८४ ।

निहछल^{१३}—वि० [सं० निश्छल] ३० 'निश्छल' । उ०—गोपालहि कथत सहस्र ग्योहार । निहछल विनु प्रपंच निरकृत्रिम सब विधि बिना बिकार । ।—भारतेंदु ग्रं०, भा० २, पृ० ५४८ ।

निहठा^{१४}—संज्ञा स्त्री० [सं० निष्ठा] लकड़ी का वह टुकड़ा जिसपर रखकर बढ़ई गढ़ने की चीजों को बसुले से गढ़ते हैं । ठीहा ।

निहडर^{१५}—वि० [हि०] ३० 'निडर' । उ०—कोठ एक धंवर को गिरिवर कर घर बोलत तब । निहडर इहि तर रही गोप गोपी गाहन सब ।—नंद० ग्रं०, पृ० २६ ।

निहट^{१६}—वि० [सं०] १. फका हुआ । २. नष्ट । ३. मारा हुआ । जो मार डाला गया हो । ३. प्रविष्ट । संबद्ध । संलग्न (को०) ।

निहत्तु^{१७}—वि० [सं० निस्तत्त्व] ३० 'निस्तत्त्व' । उ०—तहीं वेद कितेब कि गम नहीं निहत्तु शब्द मरुप देखा ।—सं० दरिया, पृ० ७० ।

निहतार्थ^{१८}—संज्ञा पुं० [सं०] काव्यगत एक दोष । ३० 'निहतार्थता' ।

निहतार्थता, निहतार्थत्व—संज्ञा पुं० [सं०] एक काव्यदोष ।

विशेष—जब किसी अनेकार्थक शब्द के अप्रचलित अर्थ का प्रयोग किया जाता है तब यह दोष माना जाता है ।

निहत्था^{१९}—वि० [हि० नि + हाथ] १. जिसके हाथ में कोई शस्त्र न हो । शस्त्रहीन । उ०—हमारे साथ कई मनुष्य पैदल और निहत्थे थे ।—शिवप्रसाद (सं०) । २. जिसके हाथ में कुछ न हो । खाली हाथ । निर्धन । गरीब ।

निहनन^{२०}—संज्ञा पुं० [सं०] हत्या । हनन । वध (को०) ।

निहनना^{२१}—क्रि० सं० [सं० निहनन] मारना । मार डालना । उ०—तहींहि कबंध दुहुन पर पायो । ताहि निहनि सुर लोक पठायो ।—पद्माकर (सं०) ।

निहपाप^{२२}—वि० [सं० निष्पाप] ३० 'निष्पाप' ।

निहफल^{२३}—वि० [सं० निष्फल] ३० 'निष्फल' ।

निहृप^{२४}—वि० [हि० निह (= नहीं) + सं० रूप] निराकार । धरूप । उ०—वस्तु स्वरूप नष्ट है अब कहियत रस रूप । वेह कर्म तबमाना तू नहियत निहृप ।—चरणदास, पृ० २७६ ।

निहला^{२५}—संज्ञा पुं० [देश०] वह जमीन जो नदी के सीछे हट जाने से निकल आई हो । गंवबरार । कछार ।

निहलिस्ट^{२६}—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह पुरुष जिसका यह सिद्धांत हो कि वस्तुओं का वास्तविक ज्ञान होना असंभव है क्योंकि वस्तुओं की सत्ता ही नहीं है ।

विशेष—ऐसे लोग वस्तुओं की वास्तविक सत्ता और उन वस्तुओं के सत्तात्मक ज्ञान का निषेध करते हैं ।

२. कस बेस का एक दस ।

विशेष—यह पहले एक सामाजिक दल था जो प्रचलित वैवाहिक प्रथा तथा रीति रवाज और पैतृक शासन का विरोधी था पर पीछे एक राजनैतिक दल हो गया और सामाजिक और राजनैतिक नियंत्रित नियमों का व्यवसक और नाशक बन गया ।

३. इस दल का कोई आह्वान ।

निहली^{२७}—वि० [देश० निहल] किनारे की । कोनेवाली । उ०—निहली चितवनि ऐंसा तानी ।—कबीर सा० पृ० १५६८ ।

निहब^{२८}—संज्ञा पुं० [सं०] पुकार करना । बुलाना । आह्वान (को०) ।

निहशब्द^{२९}—वि० [सं० निःशब्द] ३० 'निःशब्द' । उ०—है निहशब्द शब्द सो कहेऊ । जानी सोई जो वह पद लहेऊ ।—कबीर सा०, पृ० १००२ ।

निहसंसा^{३०}—वि० [सं० निःसंशय] संदेहरहित । जिसे शंका न हो । उ०—नामहि यह तेहि निहसंसा । नाम बिना बूढ़े सब हंसा ।—कबीर सा०, पृ० १००८ ।

निहाँ^{३१}—वि० [क्रा०] गुप्त । छिपा हुआ (को०) ।

निहाई^{३२}—संज्ञा स्त्री० [सं० निघाति; मि० क्रा० निहाली] सोनारों और लोहारों का एक औजार जिसपर वे चातु को रखकर हुचीके से कूटते या पीटते हैं ।

विशेष—यह लोहे का बना हुआ चौकोर होता है और नीचे की धपेला ऊपर की ओर कुछ अधिक चौड़ा होता है । नीचे की ओर निहाई को एक काठ के टुकड़े में जोड़ देते हैं जिससे यह कूटते या पीटते समय झवर झवर हिलती डोलती नहीं । यह छोटी बड़ी कई आकार और प्रकार की होती है ।

यौ०—निहाई की बाली = वह बाली जो निहाई पर रखकर नकाशी गई हो ।

निहाउ^{३३}—संज्ञा पुं० [सं० निघाति] लोह का घन । उ०—सुरभी कीन्ह साँग पर बाऊ । परा जारग जनु परा निहाऊ ।—जायसी (सं०) ।

निहाका^{३४}—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. गोह नामक जंतु । गोहटा । २. चढ़ियास । ३. कंभावात । तूफान (को०) ।

निहानी^{३५}—वि० [क्रा०] धंवरनी । भीतर का । छिपा हुआ । गुप्त । उ०—न पाया भेद इसरारे निहानी ।—कबीर मं०, पृ० ४४४ ।

निहानी^{३६}—संज्ञा स्त्री० [सं० निघातिनी] १. एक प्रकार की हलानी जिसकी नोक धबधबाकार होती है और जिससे बारीक कुदाई का काम होता है । कलम । २. एक नोकदार औजार

जिससे ठप्पे की लकीरों के बीच में मरा हुआ रंग खुरचकर साफ किया जाता है।

निहायत—वि० [सं०] अत्यंत। बहुत अधिक। जैसे, निहायत उम्मा चीज, निहायत बारीक काम।

निहायतु—संज्ञा पुं० [सं० निधाति] १. निहाई। २. चोट। प्रहार।

निहार संज्ञा पुं० [सं०] १. क्रूरता। पाला। उ०—दंड एक रथ देखि न परा। अनु निहार महं दिनमनि दुरा।—तुलसी (शब्द०)। २. घोर। ३. हिम। बरफ।

निहारु—संज्ञा पुं० [सं० निहार] दे० 'निहार'। उ०—चार चंदन मनहु मरकत शिखर ससत निहारु। कबिर उर उपवीत राजत पदिक गजमनि हारु।—तुलसी (शब्द०)।

निहारना—क्रि० सं० [सं० निभासन (=देखना)] ध्यानपूर्वक देखना। टक लगाकर देखना। देखना। ताकना। उ०—(क) भयो कबीर सो पंच निहारै। समुंद सीप जस नैन पवारे।—जायसी (शब्द०)। (ख) घालिदियां आई परी पंच निहारि निहारि। जोमरियां छावा पयो, नाम पुकारि पुकारि।—कबीर (शब्द०)। (ग) प्रभु सन्मुख कछु कहन न पारहि। पुनि पुनि चरन खोज निहारहि।—तुलसी (शब्द०)। २. जान होना। जानना। समझना। उ०—प्रथम पूतना कंस पठाई अति सुंदर बपु धारयो। बंसि के गरल लगाय उरोजन कपट न कोठ निहारयो।—सूर (शब्द०)।

संयो० क्रि०—देना।—लेना।

निहारिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक प्रकार का आकाशस्थ पदार्थ जो देखने में धुंधले रंग के बूँदों की तरह होता है।

विशेष—दे० 'निहारिका'।

निहारणा—संज्ञा पुं० [शे०] दे० 'नहरणा'।

निहाल—वि० [फ्रा०] जो सब प्रकार से संतुष्ट और प्रसन्न हो गया हो। पूर्णकाम। उ०—(क) दाम दुखी तो हरि दुखी आदि अंत तिहुं काल। पलक एक में परगटे पल में करे निहाल।—कबीर (शब्द०)। (ख) गए जो सरन आरत के लीन्हें। निरखि निहाल निमिष मँह कीन्हें।—तुलसी (शब्द०)। २. समृद्ध। संपत्तिवाली। आलामाल (को०)।

निहालबा—संज्ञा पुं० [फ्रा० निहालबह] छोटी तोलक या गद्दी जो प्रायः बच्चों के नीचे बिछाई जाती है।

निहाललोचन—संज्ञा पुं० [फ्रा० निहाल (=मुल, प्रसन्न या समृद्ध) ? + सं० लोचन ?] वह घोड़ा जिसकी आंख (केसर) दो भागों में बटी हो, आधी दहिनी और आधी बाईं ओर।

निहाली—संज्ञा स्त्री० [फ्रा०] १. गद्दा। तोलक। उ०—रेखम की नरम निहाली में सोना जो अदा से हँस हँसकर।—नबीर (शब्द०)। २. निहाई।

निहाव—संज्ञा पुं० [सं० निधाति] मोहे का घन।

निहिसन—संज्ञा पुं० [सं०] हत्या। बध (को०)।

निहिचय—संज्ञा पुं० [सं० निवचय] दे० 'निवचय'।

निहिचित—वि० [सं० निवचित, हि० निहचित] दे० 'निवचित'।

निहित—वि० [सं०] १. स्थापित। रखा हुआ। २. जोर से कहा हुआ। गंभीर आवाज में कथित (को०)। ३. समर्पित। सौंपा हुआ (को०)।

निहीन—वि० [सं०] नीच। पामर।

निहुंकना—क्रि० प्र० [हि० नि + झुकना] झुकना।

निहुङना—क्रि० प्र० [हि०] दे० 'निहुरना'।

निहुङाना—क्रि० सं० [हि०] दे० 'निहुराना'।

निहुरना—क्रि० प्र० [हि० नि + होड़ना] झुकना। नचना। उ०—(क) एक से पूजा थीन बिचारा। एक से निहुरि निमाज गुजारा।—कबीर (शब्द०)। (ख) कुछ अग्र नलकछत नाहु दियो सिर नाय निहारति यों सजनी। ससिसेखर के सिर ते सु मनो निहुरे ससि लेत कला अपनी।—ब्रह्म (शब्द०)।

यौ०—निहुरे निहुरे = झुककर।

मुहा०—निहुरे निहुरे कंठ की खोरी = (१) असंभव कार्य। (२) ऐसी बालाकी जिसे सब जान जाएँ।

निहुराई—संज्ञा स्त्री० [हि० निहुराई] दे० 'निहुराई'।

निहुराना—क्रि० सं० [हि० निहुरना का प्रे० रूप] झुकाना। नचना। उ०—भर ओली सिर निहुराए क्या बैठी हो।—इंसाफ़ला (शब्द०)।

निहोरी—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'निहोरा'।

निहोरना—क्रि० सं० [सं० मनोहार, हि० मनुहार] १. प्रार्थना करना। विनय करना। उ०—(क) सुमिरि महेलहि कहइ निहोरी। विनती सुनहु सवा शिव मोरी।—तुलसी (शब्द०)। (ख) पुरखन परिखन सकल निहोरी। तात सुनाएहु विनती मोरी।—तुलसी (शब्द०)। (ग) तापस बेध गात कंस जबत निरंतर मोहि। देखउ बेगि सो जतन कह सखा निहोरउ तोहि। २. मनाना। मनोती करना। उ०—(क) देवता निहोरि महामारि ते कर जोरे, भोरानाथ मोरे अपनी भी कहि ठई है।—तुलसी (शब्द०)। (ख) बालिन चली बमुन बहोरि। बाहि सब मिलि कहत आहु कछु कहति निहोरि।—सूर (शब्द०)। (ग) जोरहु हुकर मोरे मे जाय निहोरत प्यारे पिया बड़भागी।—(शब्द०)। (घ) है तो भली घर ही जो रहो तुम यों कहि के ननदी हूँ निहोरेउ।—(शब्द०)। ३. कृतज्ञ होना। एहसान लेना। उ०—तोड़ कृपाल केबटहि निहोरे। जेहि जग किय तिहु पग ते बोरे।—तुलसी (शब्द०)।

निहोरा—संज्ञा पुं० [सं० मनोहार, हि० मनुहार] १. अनुग्रह। एहसान। कृतज्ञता। उपकार। उ०—(क) क्या काशी क्या ऊसर मयहूर हृदय राम बस मोरा। जो काशी तन तबै कबीरा रामहि कीन निहोरा?—कबीर (शब्द०)। (ख) सो कछु बेध न मोहि निहोरा। निब पन राखेहु जन मन मोरा।—तुलसी (शब्द०)। (ग) कहा दाता जो द्रवै न बीबाहि देखि

दुःखित कलिकाक्ष । सूर स्याम को कहा निहोरो बसत बेब की बाधा ।—सूर (शब्द०) ।

२. बिलती । प्रार्थना । उ०—(क) मैं आपनि दिसि कोन निहोरा । तिन्ह निज धोर न साउब भोरा ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) बितै रघुनाथ बदन की धोर । रघुपति सो धब नेम हमारो निधि सों करति निहोर ।—सूर (शब्द०) ।

क्रि० प्र०—करना ।

१. भरोसा । आसरा । आश्रय । आधार । उ०—रात दिवस निरमय जिय मोरे । लग्यो निहोर कंत जो तोरे ।—जायसी (शब्द०) । (ख) नाक सँवारत आधो हँ गाकहि नाहीं पिनाकहि नेकु निहोरो ।—तुलसी (शब्द०) ।

क्रि० प्र०—सगना ।

निहोरा?—क्रि० वि० १. निहोरे से । कारण से । बहीनत । द्वारा । उ०—(क) तुम सारखे संत प्रिय मोरे । बरजें देह नहि धान निहोरे ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) तजजें प्राण रघुनाथ निहोरे । दुहै हाथ मुब मोबक मेरे ।—तुलसी (शब्द०) । २. के लिये । बास्ते । निमित्त । उ०—तुम बमोठ राजा की धोरा । साल होहु यहि भीख निहोरा ।—जायसी (शब्द०) ।

निहव—संज्ञा पुं० [सं०] १. गोपन । छिपाव । दुराव । २. एक प्रकार का साम । ३. अविश्वास । ४. शूद्रि । पवित्रता । प्रायश्चित्त । ५. बबसाही । दुष्टता (को०) । ६. अपलाप । बहाना (को०) । ७. इनकार । प्रस्वीकार (को०) ।

यौ०—निहववादी = बहु नवाह जो संदंष्ट उत्तर दे ।

निहवन—संज्ञा पुं० [सं०] १. प्रस्वीकरण । इनकार । २. अपलाप । बहाना । गोपन । दुराव । छिपाव (को०) ।

निहनुत—वि० [सं०] छिपाया हुआ ।

निहनुति—संज्ञा स्त्री० [सं०] छिपाव । दुराव । गोपन ।

निह्वाद्—संज्ञा पुं० [सं०] शब्द । ध्वनि । निह्वादि ।

नीद—संज्ञा स्त्री० [सं० निद्रा + प्रा० निद्रा] जीवन की एक नित्यप्रति होनेवाली अवस्था जिसमें चेतन क्रियाएँ रुकी रहती हैं और शरीर और अंतःकरण दोनों विश्राम करते हैं । निद्रा । स्वप्न । सोने की अवस्था । वि० दे० 'निद्रा' । उ०—(क) कीन्हेसि भूँस नीद बिसरामा ।—जायसी (शब्द०) । (ख) जो करि कष्ट जाइ पुनि कोई । जातहि नीद जुड़ाई होई ।—तुलसी (शब्द०) ।

क्रि० प्र०—घाना ।—छूटना ।—जाना ।—लगना ।

मुहा०—नीद उषटना = नीद का दूर होना । नीद उषाटना = नीद दूर करना । सोने में बाधा डालना । नीद का दुखिया = बहुत सोनेवाला । सदा सोने का इच्छुक रहनेवाला । नीद का माता = नीद के व्याकुल । नीद से गिर गिर पड़नेवाला । नीद उषाट होना = नीद का खुलने पर फिर न जाना । सोने में बाधा पड़ना । नीद टूटना = नीद का छूट जाना । जब पड़ना । नीद खराब करना = सोने का हर्ज करना । निद्रा की दशा न रहना । नीद पड़ना = नीद घाना । निद्रा

की अवस्था होना । नीद परना(उ) = नीद घाना । उ०—नीद न परै रैन जो घाई ।—जायसी (शब्द०) । नीद भरना = नीद पूरी करना । सोना । नीद भर सोना = बितनी इच्छा हो उतना सोना । इच्छा भर सोना । उ०—बासत ही सब बीति निसा गई कबहुँ न नाथ नीद भरि सोयो ।—तुलसी (शब्द०) । नीद मारना = सोना । नीद सेना = सोना । उ०—(क) नीद न लोम्ह रैन सब जागा । होत बिहान धाय गढ़ लाग ।—जायसी (शब्द०) । (ख) जब ते प्रीत स्याम सों कीन्हा । ता दिन ते नैननि नेकहु नीद न लोम्हा ।—सूर (शब्द०) । नीद संवरना = नीद घाना । उ०—झाषनि में जो पारण करहीं । प्रीर शयन जो नीद संवरहीं ।—सबलसिंह (शब्द०) । नीद हुराम करना = सोना छुड़ा देना । सोने न देना । नीद हुराम होना = सोना छूट जाना । सोने की नीबत न घाना ।

नीदड़िया(उ)¹—संज्ञा स्त्री० [हि० नीदड़ी + इया (प्रत्य०)] नीद । निद्रा ।

नीदड़ी—संज्ञा स्त्री० [हि० नीद + डी (प्रत्य०)] दे० 'नीद' । उ०—नैन न आवइ नीदड़ी निस दिन तलफत जाय । दादू घातुर बिरहिनी, क्योंकरि रहन बिहाय ।—दादू (शब्द०) ।

नीदना—क्रि० य० [सं० निकम्भ] निराना । दे० 'नीदना' ।

नीदर, नीदरी—संज्ञा स्त्री० [सं० निद्रा] दे० 'नीद' । उ०—हो जैसात प्रलसात सात तेरी आनि जाति भै गई । गाइ गाइ हलराइ बोलिहो मुख नीदरी सुहाई ।—तुलसी (शब्द०) ।

नीचा—संज्ञा स्त्री० [सं० निम्ब] दे० 'नीम' ।

नीअर(उ)¹—अव्य० [सं० निकट, प्रा० नियड] १. निकट । पास । २. समान । तुल्य ।

नी—वि० [सं०] नेता । प्रधान । अनुष्ठा । ममासांत में प्रयुक्त । जैसे, ग्रामणी, सेनानी, अग्रणी (को०) ।

नीक(उ)¹—वि० [सं० निक (= स्वच्छ, साफ), फा० नेक] [स्त्री० नीकि] अच्छा । सुंदर । जला । अनुकूल । उ०—(क) धब तुम कहो नीक यह सोभा । पै फन सोई संवर वैदि सोभा ।—जायसी (शब्द०) । (ख) गुन धबगुन जानत सब कोई । जो जेहि भाव नीक तेहि सोई ।—तुलसी (शब्द०) ।

मुहा०—नीक लगना = (१) रचना । माना । खिच के अनुकूल जान पड़ना । (२) सजना । सुगोमित होना । नीक लागना (उ) = दे० 'नीक लगना' उ०—धब तोहि नीक लाग कह सोई ।—मानस, २।३६ ।

नीक(उ)²—संज्ञा पुं० अच्छाई । उत्तमता । अच्छापन । उ०—जोई फल देखी सोई फीका । ठाकर काह सराहे नीका ।—जायसी (शब्द०) ।

नीका¹—संज्ञा स्त्री० [सं०] सिचाई के लिये बनी जलप्रणाली (को०) ।

नीका²—वि० [सं० निक (= साफ, स्वच्छ), फा० नेक] [स्त्री० नीकी] अच्छा । उत्तम । बढ़िया । भला । उ०—(क) निज कवित केहि साग न नीका । सरस होउ प्रथवा धति फीका ।

—मानस, १।८। (ख) प्रभु पद प्रीति न साधुकि नोकी ।
तिन्हहि कथा मुनि लागहि फीकी ।—तुलसी (शब्द०) । (ग)
प्राज्ञा करो नाथ चतुरानन करो मृष्टि विस्तार । होरी खेलन
की विधि नोकी रचना रचे अपार ।—सूर (शब्द०) ।

मुहा०—नीका लगना = (१) रचना । भाना । सुहाना । अच्छा
मालूम होना । (२) सुगोभित होना । सजना । सोहना ।

नीकार—संज्ञा पु० [न०] ३० 'निकार' [को०] ।

नीकाश—वि० [म०] तुल्य । समान ।

नीके—क्रि० वि० [हि० नीक] अच्छी तरह । भली भाँति । उ०—
(क) नीके निरखि नयन भरि मोभा ।—तुलसी (शब्द०) ।
(ख) मातहि पितहि उरिण भए नीके । गुह ऋण रहा सोच
बड़ जो के ।—तुलसी (शब्द०) । (ग) मुनि कटु बचन
गयो माता पे तब इन ज्ञान द्वायो । हरि की भक्ति करो
सुत नीके जो चाहो सुख पायो ।—सूर (शब्द०) ।

नीको—वि० [हि० नीक] ३० 'नीका' ।

नीगने—वि० [सं० नगण्य] अनगिनत । संख्याहीन ।

नीग्रो—संज्ञा पु० [म०] हवशी । निग्रो ।

नीच^१—वि० [म०] १. जाति, गुण, कर्म या किसी और बात में
घटकर वा न्यून । थुढ़ । तुच्छ । अधम । हेठा । जैसे, नीच
प्रादमी, नीच गुल ।

यो०—नीच ऊँच = छोटा बड़ा । बड़े घराने या छोटे घराने
का । उ०—नीच ऊँच भन सपति हेरा ।—जायसी (शब्द०) ।
२. जो उत्तम और मध्यम कोटि से घटकर हो । अधम । बुरा
निकुष्ट ।

यो०—नीच ऊँच = (१) अच्छा बुरा । (२) बुराई भलाई ।
गुण अवगुण । (३) अच्छा और बुरा परिणाम । हानि लाभ ।
जैसे,—नीच ऊँच समझकर काम करो । (४) संपद विपद ।
सुख दुःख । सफलता असफलता ।

नीच^२—संज्ञा पु० १. नीच मनुष्य । थुढ़ मनुष्य । मोछा आदमी ।
उ०—नीच निचाई नहि तजै जो पावै सतसग । २. और
नामक गंध द्रव्य । ३. पलित ज्योतिष में वह स्थान जो
किसी ग्रह के उच्च स्थान से सातवाँ हो । ४. अमरु काल
में किसी ग्रह के प्रमगदुरा का वह स्थान जो पृथ्वी से
अधिक दूर हो । ५. दशार्ण देश के एक पर्वत का नाम ।

नीचक—वि० [सं०] १. छोटा । लघु । बौटा । २. मद्धिम । जैसे,
प्रावाज । ३. तुच्छ । निकुष्ट । मोछा [को०] ।

नीचकदंब—संज्ञा पु० [सं० नीचकदम्ब] मूंडी ।

नीचकमाई—संज्ञा स्त्री० [हि० नीच + कमाई] १. निम्न व्यवसाय । २.
तुच्छ काम । छोटा काम । ३. बुरे कामों में पैदा किया धन ।

नीचका—संज्ञा स्त्री० [सं०] प्रशस्त गी । अच्छी गाय ।

नीचकी^१—संज्ञा पु० [सं० नीचकिन्] [स्त्री० नीचकिनी] १. उच्च ।
श्रेष्ठ । २. ऊँचा । जिसके पास अच्छी गाएँ हों ।

नीचकी^२—संज्ञा पु० १. ऊपरी भाग । २. किसी वस्तु का शीर्ष भाग
(को०) । ३. बैल का सिर (को०) ।

नीचग^१—वि० [म०] [वि० स्त्री० नीचगा] १. नीचे जानेवाला । २.
पामर । मोछा ।

नीचग^२—संज्ञा पु० १. पानी । २. पलित ज्योतिष के अनुसार वह
ग्रह जो अपने उच्च स्थान से सातवाँ पड़ा हो ।

नीचगा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. नदी । २. नीचवर्णगामिनी स्त्री । नीच
के साथ गमन करवाली स्त्री ।

नीचगामो^१—वि० [सं० नीचगामिन्] [वि० स्त्री० नीचगामिनी] १.
नीचे जानेवाला । २. मोछा ।

नीचगामो^२—संज्ञा पु० जल ।

नीचगृह—संज्ञा पु० [सं०] १. वह स्थान जो किसी ग्रह के उच्च
स्थान वा राशि से गिनती में सातवाँ पड़े । २. नीच या
निम्न कोटि के व्यक्ति का घर । उ०—जो संपदा नीच गृह
सोहा ।—मानस ।

नीचटा—वि० [सं० निश्चय] दृढ़ । पक्का ।

नीचता—स्त्री० स्त्री० [सं०] १. नीच होने का भाव । २. अधमता ।
छोटाई । तुच्छता । झुढ़ता । कमीनापन ।

नीचत्व—संज्ञा पु० [सं०] नीचता ।

नीचभोज्य—संज्ञा पु० [सं०] पलांडु । प्याज [को०] ।

नीचयोनि—वि० [सं०] निम्न कुल का [को०] ।

नीचवज्र—संज्ञा पु० [म०] वैक्रांत मणि ।

नीचस्थान—संज्ञा पु० [सं०] ३० 'नीचगृह' ।

नीचा—वि० [सं० नीच] [वि० स्त्री० नीची] १. जिसके तल से
उसके घाम पास का तल ऊँचा हो । जो कुछ उतार या
गहराई पर हो । गहरा । ऊँचा का उलटा । निम्न । जैसे,
नीची जमीन, नीचा रास्ता ।

यो०—नीचा ऊँचा = कहीं गहरा और कहीं उठा हुआ । जो
समतल न हो । नाबराबर । ऊबड़ खाबड़ । उतार चढ़ाव ।

२. ऊँचाई में सामान्य की अपेक्षा कम । जो ऊपर की ओर दूर
तक न गया हो । जैसे, नीचा पेड़, नीचा मकान । नीची टोपी ।

विशेष—ऊँचाई निचाई का भाव सापेक्ष होता है ।

३. जो ऊपर से जमीन की ओर दूर तक आया हो । अधिक
लटका हुआ । जैसे, नीचा घंटा, नीची घोटी, नीची डाल ।
४. जो ऊपर की ओर पूरा उठा न हो । झुका हुआ । नत ।
जैसे, सिर नीचा करना, झुका नीचा करना, दृष्टि नीची
करना, घाँस नीची करना । उ०—(क) जाचक बेहि
प्रसीस सीस नीची करि करि के ।—गोपाल (शब्द०) ।
(ख) रघुनाथ चिते हँसि ठाढ़ी रही पल घूँघट में दग नीची
करे ।—रघुनाथ (शब्द०) । (ग) देवदत्त ने देखा इन
बातों के कहते साज से उसकी घाँस नीची हो गई ।—
अयोध्यासिंह (शब्द०) । ५. जो चढ़ा हुआ न हो । जो
तीव्र न हो । धीमा । मध्यम । जो जोर का न हो । जैसे,
नीचा सुर, नीची घावाज । ६. जो जाति, पद, गुण इत्यादि
में न्यून या घटकर हो । जो उत्तम और मध्यम कोटि का
न हो । छोटा या मोछा । झुढ़ । बुरा ।

मुहा०—नीचा ऊँचा = (१) भल बुरा। (२) मलाई बुराई। गुण अवगुण। अच्छा और बुरा परिणाम। हानि लाभ। (३) संपद विपद। सुख दुःख। बढ़ती घटती। सफलता असफलता। नीचा ऊँचा दिखाना या सुनाना = दे० 'ऊँचा नीचा दिखाना'। नीचा ऊँचा सुनाना = दे० 'ऊँचा नीचा सुनाना'। नीचा खाना = (१) तुच्छ बनना। अवमानित होना। हेठा बनना। (२) हारना। परास्त होना। (३) लज्जित होना। क्षिपना। उ०—चालाकी में अच्छे खासे पट्टे, दस पंद्रह वर्ष मुंसिफ और सदराला रह कहीं कुछ थोड़ा बहुत नीचा झाँकर भी छाटो गाँठ कुम्भेत हो चुके थे।—हिंदी प्रदीप (शब्द०)। नीचा दिखाना = (१) तुच्छ बनाना। हेठा करना। अवमानित करना। (२) मान भंग करना। दर्प धूलें करना। शेखी झाड़ना। (३) परास्त करना। हारना। (४) क्षिपना। लज्जित करना। नीचा देखना = दे० 'नीचा खाना'। उ०—कहीं किसी ने देख सुन लिया तो भी वही बात हुई। जग में नीचा धलंग देखना पड़ता है।—अयोध्यासिंह (शब्द०)। नीची दृष्टि करना = सिर झुकाना। सामने न ताकना। (लज्जा संकोच आदि से)। नीची दृष्टि से देखना = तुच्छ या छोटा समझना। मान या प्रतिष्ठा न करना। कदर न करना।

नीचाशय—वि० [सं०] तुच्छ विचार का। धुद्र। ओछा।

नीचूँ^१—वि० [हि० नि + चूना] जो चूए न। जो टपकता न हो। जिममें पानी ऊपर से या बाहर से रतकर आता वा टपकता न हो।

नीचूँ^२—वि० [हि० नीचा] दे० 'नीचा'।

नीचे—क्रि० वि० [हि० नीचा] नीचे की ओर। अधोभाग में। ऊपर का उलटा। उ०—पानख को लिलै पानि नवे तिमि सोल नवाय के नीचेहि जावे।—मतिराम (शब्द०)।

विशेष—'ऊपर', 'यहाँ', 'वहाँ' आदि शब्दों के समान इस क्रि० वि० शब्द के साथ पंचमी और षष्ठी की 'से', 'तक', 'का' विभक्तियाँ लगती हैं। जैसे, नीचे से, नीचे का।

मुहा०—नीचे ऊपर = (१) एक के ऊपर दूसरा इस क्रम से। एक पर एक। तले ऊपर। जैसे,—इन सब पुस्तकों को नीचे ऊपर रख दो। (२) ऊपर का नीचे, नीचे का ऊपर। उलट पलट। उलट पथल। अस्त व्यस्त। अव्यवस्थित। जैसे,—इनने दिनों में पुस्तकें लगाकर रखी थीं तुमने उन्हे नीचे ऊपर कर दिया। नीचे गिरना = (१) प्रतिष्ठा खोना। मान मर्यादा गँवाना। (२) पतित होना। (३) कुशती में पटक जाना। पछाड़ खाना। नीचे गिराना = (१) पतित करना। मान मर्यादा बुर करना। (२) कुशती में पटकना। पछाड़ना। नीचे डालना = (१) फेंकना। गिराना। (२) किसी बात में घटकर करना। पराजित करना। नीतना। नीचे लाना = गिराना। कुशती में पछाड़ना। ऊपर से नीचे तक = (१) सब भागों में। सर्वत्र। (२) सर्वांग में। सिर से पैर तक। जैसे,—उसने मेरी ओर ऊपर से नीचे तक देखा।

२. घटकर। कम। न्यून। जैसे,—दरजे में वह सबसे नीचे है। ३. अधीनता में। मातहत्य में। जैसे,—उनके नीचे दस मुहरिर काम करते हैं।

नीजी—संज्ञा पु० [सं० रज्जु ?] रस्सी।

नीजन(पु)^१—[सं० निजंन, प्रा० निज्जन, एोज्जन] निजंन। जनशून्य। खनसान। उ०—दोरघी दल साभि महाराज अतुराज जानि नीजन मवास, मानिनी जन गरीब से।—देव (शब्द०)।

नीजन(पु)^२—संज्ञा पु० निजंन स्थान। वह स्थान जहाँ कोई न हो। निराला। एकांत। उ०—भोहि मकोब सखी जन को ननु नीजन हूँ उन्हीं बीजन ठोरों।—देव (शब्द०)।

नीजू—संज्ञा स्त्री० [सं० रज्जु] रस्सी। पानी भरने की डोरी।

नीकर(पु)^१—संज्ञा पु० [सं० निकर, प्रा० निभकर, एभिकर] निभर। भरना। सोता। उ०—(क) तिस मरवर के तीर, सो हंसा मोती चुनइ। पीवइ नीकर नीर, सोहै हंसा सो मुनइ।—बादू (शब्द०)। (ख) सो हंसा सरनागत आय। मुँदरि तहूँ पखोरे पाय। पीवइ अमिरित नीकर नीर। बैठइ तहूँ जगत गुरु पीर।—बादू (शब्द०)।

नीठ(पु)^१—क्रि० वि० [हि०] दे० 'नीठि'। उ०—नीठ बिसासत अप्य मर गहयो कन्ह चहुआन। गए गेह लै सकल मिलि प्रथोराख अकुलान।—पु० रा०, ५। ५५।

नीठि^१—संज्ञा स्त्री० [सं० अनिटि, प्रा० अनिट्टि] अवचि। अनिच्छा। मुहा०—नीठि नीठि करके = (१) ज्यों त्यों करके। बहुत इधर उधर करके। किसी न किसी प्रकार। उ०—नीठि नीठि करि बिन मंदिर लौ छाई बाल बहूँ ओर बाहि कछु चेति के मलै लगी।—देवी (शब्द०)। (२) कठिनता से। मुश्किल से। उ०—जूटी लट लटकति कटि तट ली बितवति नीठि नीठि करि टाढ़ी।—केशव (शब्द०)।

नीठि^२—क्रि० वि० १. ज्यों त्यों करके। किसी न किसी प्रकार। उ०—छाई संग आनिन के ननद पठाई नीठि सोहत सुहाई सूही ईहरी सुपट की। कहै पवमाकर गभीर जमुना के तीर लागी घट भरन नवेली नेह धटकी।—पद्माकर(शब्द०)। २. मुश्किल से। कठिनता से। उ०—(क) बट्टे ओर चितै संवास। अवलोकियो आकाम। तहँ जाख बैठो नीठि। तब पर्यो बानर दोठि।—केशव (शब्द०)। (ख) ऐसी मोच सीठी सीठी चीठी अलि दोठी, सुने मोठी मोठी बातन जो नीके हूँ मैं नीठि है।—केशव (शब्द०)। (ग) करके मीड़े कृमुन लौ गई बिरह कुम्हनाय। सदा समीपिन सखिन हैं नीठि पिछानी जाय।—बिहारी (शब्द०)। (घ) चको जकी सी तूँ रहो बूके बोलति नीठि। कटँ दोठि लागी लगी, कै काहू की दोठि।—बिहारी (शब्द०)।

यौ०—नीठि नीठि = ज्यों त्यों करके। किसी न किसी प्रकार। जैसे तैसे। मुश्किल से। कठिनता से। उ०—(क) नीठि नीठि उठि बैठि हूँ पिय प्यारी परमात। दोऊ नौद भरे भरे गये लागि गिरि जात।—बिहारी (शब्द०)। (ख) भौह उँचे

घाँवर उलटि मोरि मोरि मुँह मोरि । नीठि नीठि भीतर गई
नीठि नीठि सों जोरि ।—बिहारी (शब्द०) ।

नीठो—वि० [सं० अनिट्, प्रा० अनिट्] अनिट् । अप्रिय । न सुहाने-
वाला । न मानेवाला । उ०—छेक उक्ति जहँ दुमिल सम जक
का समुझावनि नीठो ! मिसरी, मूर, न भावति घर की, खोरी
को गुड़ मोटो ।—सूर (शब्द०) ।

नीड़—संज्ञा पुं० [सं० नीड] १. बैठने वा ठहरने का स्थान । २.
चिड़ियों के रहने का घोंसला । ३. रथ के भीतर का वह
स्थान जिसमें रथी बैठता है । रथ में बैठने का मुख्य स्थान ।
४. बिछोना । पलंग । खाट (को०) । ५. माँद (को०) ।

नीड़क—संज्ञा पुं० [सं० नीडक] १. पक्षी । चिड़िया । २.
घोंसला (को०) ।

नीड़ज—संज्ञा पुं० [सं० नीडज] पक्षी ।

नीड़ोद्भव—संज्ञा पुं० [सं० नीडोद्भव] पक्षी (को०) ।

नीव^१—वि० [सं०] [वि० बी० नीता] १. लाया हुआ । पहुँचाया
हुआ । २. स्थापित । ३. प्राप्त । ४. ध्यतित किया हुआ ।
बिताया हुआ (को०) । ५. गृहीत । ग्रहण किया हुआ । उ०—
किधौं मंद गरजनि जलधर, को पग सूपुर रब नीत ।—सूर
(शब्द०) ।

नीव^२—संज्ञा पुं० १. धन दीलत । २. अनाज (को०) ।

नीति—संज्ञा बी० [सं०] १. ले जाने या ले चलने की क्रिया, भाव
या ढंग । २. व्यवहार की रीति । आचारपद्धति । जैसे, सुनीति,
दुर्नीति । ३. व्यवहार की वह नीति जिससे अपना कल्याण
हो और समाज को भी कोई बाधा न पहुँचे । वह बाल जिसे
चलने से अपनी भलाई, प्रतिष्ठा आदि हो और दूसरे की कोई
बुराई न हो । जैसे,—आकी धन भरती हरी ताहि न मीबै
सग । साईं तहाँ न बैठै जहँ कोउ देय उठाय ।—गिरिधर
(शब्द०) । ४. लोक या समाज के कल्याण के लिये उचित
ठहराया हुआ आचार व्यवहार । लोकमर्यादा के अनुसार
व्यवहार । सदाचार । अच्छी आल । नय । उ०—सुनि मुनीस
कहू बचन सप्रोती । कम न राम राखहु तुम नीती ।—तुलसी
(शब्द०) । ५. राजा और प्रजा की रक्षा के लिये निर्धारित
व्यवस्था । राज्य की रक्षा के लिये ठहराई हुई विधि । राजा
का कर्तव्य । राजविद्या ।

विशेष—महाभारत में भीष्म ने युधिष्ठिर को नीतिशास्त्र की
शिक्षा दी है जिसमें प्रजा के लिये कृषि, वाणिज्य आदि की
व्यवस्था, अपराधियों को दंड, अमात्य, चर, गुप्तचर, सेना,
सेनापति इत्यादि की नियुक्ति, दुष्टों का दमन, राष्ट्र, दुर्ग और
कोश की रक्षा, घमिकों की देखरेख, दरिद्रों का भरण पोषण,
युद्ध, शत्रुओं को बल में करने के साधन, दंड, भेद ये चार
उपाय, साधुओं की पूजा, विद्वानों का आदर, समाज और
उत्सव, सभा, व्यवहार तथा इसी प्रकार की और बहुत सी
बातें आई हैं । नीति विषय पर कई प्राचीन पुस्तकें हैं । जैसे,
उत्तम की शुक्रनीति, कौटिल्य का अर्थशास्त्र, कामंडकीय
नीतिसार इत्यादि ।

६. राज्य की रक्षा के लिये काम में लाई जानेवाली युक्ति ।
राजाओं की बाल जो वे राज्य की प्राप्ति वा रक्षा के लिये
बखते हैं । पालिसी । जैसे, मुद्राराक्षस नाटक में बाणबल्य और
राक्षस की नीति । ७. किसी कार्य की सिद्धि के लिये बची
जानेवाली बाल । युक्ति । उपाय । हिकमत । ८. संबंध (को०) ।
९. दान । प्रदान (को०) ।

नीति—नीतिकुशल = नीतिज्ञ । नीतिदोष = बृहस्पति के रथ का
नाम । नीतिदोष = आचारदोष । नीतिनिपुण, नीतिनिष्ठ =
नीतिज्ञ । नीतिबोध = कूट संकल्प का मूल । नीतिविज्ञान = दे०
'नीतिशास्त्र' । नीतिविद् = राजनीतिज्ञ । बुद्धिमान् । नीति
विद्या = राजनीति शास्त्र । नीतिशास्त्र । नीतिविषय = आचरण
का विषय या क्षेत्र । नीतिशतक = भर्तृहरि द्वारा रचित नीति
विषयक १०० श्लोक ।

नीतिज्ञ—वि० [सं०] १. नीति जाननेवाला । नीतिकुशल । २.
बुद्धिमान् (को०) ।

नीतिमान्—वि० [सं० नीतिमत्] [वि० बी० नीतिमती] नीति
परायण । सदाचारी ।

नीतिशास्त्र—संज्ञा पुं० [सं०] १. वह शास्त्र जिसमें देश, काल और पात्र
के अनुसार चलने के नियम हों । २. वह शास्त्र जिसमें
मनुष्य समाज के हित के लिये देश, काल और पात्रानुसार
आचार व्यवहार तथा प्रबंध और शासन का विधान हो ।

नीदना^१—क्रि० सं० [सं० निन्दन] निंदा करना । उ०—सोबत
सपने स्वप्न घन हिममिलि हुरत वियोग । तब ही टरि कितहूँ
गई नीदो नींदन योग ।—बिहारी (शब्द०) ।

नीधन, नीधना^१—वि० [सं० निधन] धनहीन । दरिद्र । उ०—
दादू सब जग नीधना धनवंता नहि कोइ । सो धनवंता जानिए
आके राम पदारथ होइ ।—दादू (शब्द०) ।

नीधन—संज्ञा पुं० [सं०] १. बलीक । छाजन की ओलती । २. धन ।
३. नेमि । पहिए का चक्र या चक्कर । ४. चंद्रमा । ५.
देवता नक्षत्र ।

नीप^१—संज्ञा पुं० [सं०] १. कदंब । २. भूकदंब । ३. बंजूर । दुपहरिया ।
४. नीलाशोक । अशोक । ५. पहाड़ का निचला भाग । ६.
बृहत्संहिता में वर्णित एक देश का नाम । ७. एक राजा
का नाम ।

नीप^२—वि० नीचे की ओर स्थित (को०) ।

नीप^३—संज्ञा पुं० [सं० निप] दो चोंचों को बाँधने या गाँठ देने के
लिये रस्सी का फेरा या फंदा ।

मुहा०—नीप लेना = रस्सी में बाँधने के लिये फंदा लगाना ।

नीपजना^१—क्रि० घ० [सं० निष्पद्य, प्रा० स्त्रीपञ्ज] उत्पन्न होना ।
पैदा होना । निपजना ।

नीपना^१—क्रि० सं० [सं० लेपन, हि० लीपना] दे० 'लीपना' ।

नीपर—संज्ञा पुं० [सं० निपर] १. संगर में बंधो हुई रस्सियों में से
एक । २. उक्त रस्सी के बंधन को कसने के लिये लगा हुआ
डंडा (लगा०) ।

नीपातिथि—संज्ञा पुं० [सं०] एक वैदिक ऋषि ।

नीब—संज्ञा पुं० [सं० निम्ब, हि० नीम] दे० 'नीम' ।

नीबरा—वि० [सं० निबल, प्रा० लिम्बर] दुबल । कमजोर ।

नीबी(७)—संज्ञा स्त्री० [सं० नीबी] दे० 'नीबी' ।

नीबू—संज्ञा पुं० [सं० निम्बूक, प्रा० नीमू] मध्यम आकार का एक पेड़ या झाड़ जिसका फल भी नीबू कहा जाता और खाया जाता है और जो पृथ्वी के गरम प्रदेशों में होता है ।

विशेष—इसकी पत्तियाँ मोटे दल की और दोनों छोरों पर नुकीली होती हैं, तथा उनके ऊपर का रंग बहुत गहरा हरा और नीचे का हलका होता है । पत्तियों की लंबाई तीन अंगुल से अधिक नहीं होती । फूल छोटे छोटे और सफेद होते हैं जिनमें बहुत से परागकेसर होते हैं । फल बोध या लंबोतरे तथा सुगंधयुक्त होते हैं । साधारण नीबू स्वाद में खट्टे होते हैं और खटाई के लिये ही खाए जाते हैं । मोठे नीबू भी कई प्रकार के होते हैं । उनमें से जिनका छिलका नरम होता है और बहुत जल्दी उतर जाता है तथा जिनके रसकोष की फाँकें अलग हो जाती हैं वे नारंगी के अंतर्गत गिने जाते हैं । साधारणतः नीबू शब्द से खट्टे नीबू का ही बोध होता है । उत्तरीय भारत में नीबू दो बार फलता है । बरसात के अंत में, और जाड़े (अगहन, पूष) में । अचार के लिये जाड़े का ही नीबू अच्छा समझा जाता है क्योंकि यह बहुत दिनों तक रह सकता है । खट्टे नीबू के मुख्य भेद ये हैं—कागजी (पतले चिकने छिलके का गोल और लंबोतरा), जंबीरी (कड़े मोटे खुरदरे छिलके का), बिजोरा (बड़े मोटे और डोले छिलके का), चकोतरा (बहुत बड़ा खरबूजे सा, मोटे और कड़े छिलके का) । पैदल द्वारा इनमें से कई के मोठे भेद भी उत्पन्न किए जाते हैं; जैसे, कबले या संतरे का पैदल खट्टे चकोतरे पर लवाने से मोठा चकोतरा होता है ।

आजकल नीबू की अनेक जातियाँ चीन, भारत, फारस, अरब तथा योरोप और अमेरिका के दक्षिणी भागों में लगाई जाती हैं । खट्टा नीबू हिंदुस्तान में कई जगह (फुमाऊँ, चटगाँव आदि) जगली भी होता है जिससे सिद्ध होता है कि यह भारतवर्ष से पहले पहल और देशों में फैला । मोठे नीबू या नारंगी का उत्पत्तिस्थान चीन बताया जाता है । चीन और भारत के प्राचीन ग्रंथों में नीबू का उल्लेख बराबर मिलता है । फारस और अरब के व्यापारियों द्वारा यह यूनान, इटली आदि पश्चिम के देशों में गया । प्राचीन रोमन लोगों को यह फल बहुत दिनों तक बाहरी व्यापारियों से मिलता रहा और वे इसका व्यवहार सुगंध के लिये तथा कपड़ों को कीड़ों से बचाने के लिये करते थे । मोठे नीबू या नारंगियों का प्रचार तो योरोप में और भी पीछे हुआ । पहले पहल ईसा की तेरहवीं शताब्दी में रोम नगर में नारंगी के लगाए जाने का उल्लेख मिलता है । पीछे पुर्तगाल आदि देशों में नारंगी की बहुत उन्नति हुई ।

सुश्रुत में जंबीर, नारंग, ऐरावत और दंतशठ ये चार प्रकार के नीबू आए हैं । ऐरावत और दंतशठ दोनों अम्ल कहे गए हैं । जंबीर तो खट्टा है ही । राजनिघट्ट में ऐरावत नारंग का पर्याय लिखा गया है जो सुश्रुत के अनुसार ठीक नहीं जान पड़ता । सायब नागरंग शब्द के कारण ऐसा हुआ है । 'नाग' का अर्थ सिद्धूर न लेकर हाथी लिया और ऐरावत को नागरंग का पर्याय मान लिया । तीन भाषा में चकोतरे को गजनिबू कहते हैं अतः ऐरावत वही हो सकता है । भावप्रकाश में बीजपुर (बिजोरा) मधुकर्कटी (चकोतरा), जंबीर (खट्टा नीबू) और निबूक (कागजी नीबू) ये चार प्रकार के नीबू कहे गए हैं । सुश्रुत में जंबीर और दंतशठ अम्ल है पर भावप्रकाश में वे एक दूसरे के पर्याय हैं । राजवल्लभ में लिपाक और मधुकुक्कुटिका ये दो भेद जंबीरी के कहे गए हैं । उसी ग्रंथ में करण वा कन्ना नीबू का भी उल्लेख है । नीचे वैद्यक में आए हुए नीबूओं के नाम दिए जाते हैं—

(१) निबूक (कागजी नीबू) । (२) जंबीर (जंबीरी नीबू, खट्टा नीबू या गलगल)—(क) बृहज्जंबीर, (ख) लिपाक, (ग) मधुकुक्कुटिका (मोठा जंबीरी या खरबूती नीबू) । (३) बीजपुर (बिजोरा) । पर्याय—मातुलुंग, बचक, फलपूरक, अम्लकेशर, बीजपूरुण, सुकेशर, बीजक, बीजफलक, जतुज्ज, दंतुरच्छद, पूरक, रोचनफल । (क) मधुर मातुलुंग या मोठा बिजोरा । इसे संस्कृत में मधुकर्कटिका और हिंदी में चकोतरा कहते हैं । (४) करण या कन्ना नीबू—इसे पहाड़ी नीबू भी कहते हैं—इसे अरबी में कलंबक कहते हैं । निबू या निबूक शब्द सुश्रुत आदि प्राचीन ग्रंथों में नहीं आया है, इससे विद्वानों का अनुमान है कि यह अरबी लोमू शब्द का अपभ्रंश है । 'संतरा' शब्द के विषय में डा० हटर का अनुमान है कि यह 'सिट्रा' शब्द से बना है जो पुर्तगाल में एक स्थान का नाम है । पर बाबर ने अपनी पुस्तक में 'संगतरा' का उल्लेख किया है, इससे इस विषय में कुछ ठीक नहीं कहा जा सकता ।

मुद्गा०—नीबू बिचोड़ = बोड़ा सा कुछ देकर बहुत सो पीजों में साँझ करनेवाला । बोड़ा सा संबंध जोड़कर बहुत कुछ लाभ उठानेवाला । नीबू चटाना या नीबू नमक चटाना = निरास करना । ठंडा दिखाना ।

विशेष—कहते हैं कि किसी सराय में एक मियाँ साहब रहते थे जो हर समय अपने पास नीबू और चाकू रखते थे । जब सराय में उतरा हुआ कोई बला आशमी खाना खाने बैठता तब आप चट जाकर उसकी दाल में नीबू निचोड़ देते थे जिससे वह अलमनसाहट के विचार से आपको खाने में शरीक कर लेता था ।

नीम'—संज्ञा पुं० [सं० निम्ब] पत्ती झाड़नेवाला एक प्रसिद्ध पेड़ जिसके सब अंग कड़े होते हैं । निब ।

विशेष—इसकी उत्पत्ति हिंदुस्तान से होती है और इसकी

पत्तियाँ डेढ़ दो बितो की पतली सीकों के दोनों ओर लगती हैं। ये पत्तियाँ चार पाँच अंगुल लंबी और अंगुल भर चौड़ी होती हैं। किनारे इनके भारी की तरह होते हैं। छोटे छोटे सफेद फूल गुच्छों में लगते हैं। फलियाँ भी गुच्छों में लगती हैं और निबोधी कहलाती हैं। ये फलियाँ खिरनी की तरह लंबोत्तरी होती हैं और एकने पर चिपचिपे गूदे से भर जाती हैं। एक फली में एक बीज होता है। बीजों से तेल निकलता है जो कड़वापन के कारण केवल घोषघ के या जलाने के काम का होता है। नीम की तिताई या कड़वापन प्रसिद्ध है। इसका प्रत्येक भाग कड़वा होता है—बया छाल, बया पत्ती, बया फूल, बया फल। पुराने पेड़ों से कभी कभी एक प्रकार का पतला पानी रस रसकर निकलता है और महीनों बहा करता है। यह पानी कड़वा होता है। और 'नीम का मद' कहलाता है। नीम की लकड़ी ललाई लिए और मजबूत होती है तथा किवाड़, गाड़ी, नाव आदि बनाने के काम में से जाती है। पतली टहनियाँ, दातून के लिये बहुत तोड़ी जाती हैं। वैद्यक में नीम कड़ई, क्षीतल तथा कफ, व्रण, कुमि, वमन, सुजन, पिराक्षेप और हृदय के दाह को दूर करनेवाली मानी जाती है। दूषित रक्त को शुद्ध करने का गुण भी इसका प्रसिद्ध है।

पर्या०—निब। नियमन। नेता। पिधुमंश। अरिष्ट। प्रमदक। पारिमदक। शुकप्रिय। शीर्षपणं। यवनेष्ट। वात्सव। छर्दन। हिगु। जिर्धसि। पीतमार। रविप्रिय। मालक। यूपारि। पुकमालक। कीकट। बिबंश। कैटप्यं। छविष्म। काकफल। कीरेष्ट। सुमना। विमर्गिपणं। शीत। राजमदक।

मुहा०—नीम की टहनी हिलाना = गरमी की बीमारी लेकर बैठना। उपदंश या फिरंग रोगग्रस्त होना। (जिसमें लोग नीम की टहनी लेकर धाव पर से माँझियाँ उड़ाया करते हैं)।

नीम^२—वि० [फ्रा० मि० सं० नेम] भाषा। अर्थ। जैसे, नीमटर, नीमहकीम।

यौ०—नीमपुस्त, नीमपुस्ता = अधपका। नीमजब = आधीरात। नीमहकीम = अधकचरा जान रखनेवाला हुकीम।

नीमगिर्दा—संज्ञा पु० [फ्रा०] बड़ई का एक आकार जो रकानो या पेचकण की तरह का होता है। इसकी नोक सीधी न होकर अधबंदाकार होती है। इससे बड़ई सरादने के समय सुराही आदि की गर्दन छीलते हैं।

नीमच—संज्ञा पु० [हि० नदी + मच्छ] एक मछली जो बंगाल, उड़ीसा, पंजाब और सिंध की नदियों में होती है।

विशेष—इसका मांस खाने में अच्छा होता है।

नीमचा—संज्ञा पु० [फ्रा० नीमचह] झाड़ा।

नीमजौ—वि० [फ्रा०] अधमरा।

नीमटर—वि० [फ्रा० नीम + हि० टरटर] अधकचरा। जिसे पूरी विद्या या जानकारी न हो। जो किसी विषय को केवल थोड़ा बहुत जानता हो।

नीमना—वि० [सं० निर्मल ?] १. अच्छा। भला। नीरोग। चंगा। उ०—जानि लेहु हारि इतने ही में कहा करे नीमन को वैद्य। —सूर (शब्द०)। २. दुस्त। जो बिगाड़ा हुआ न हो। जो जीर्ण न हुआ हो। ३. बढ़िया। अच्छा। सुंदर।

नीमबर—संज्ञा पु० [फ्रा०] कुश्ती का एक पेच।

विशेष—यह पेच उस समय काम देता है जब जोड़ पीछे की ओर से कमर पकड़कर बाईं ओर झड़ा होता है। इसमें अपना बायाँ घुटना जोड़ की दाहिनी जाँघ के नीचे से जाते हैं, फिर बाएँ हाथ को उसकी जाँघों में से निकालकर उसका बायाँ घुटना पकड़ते और दाहिने हाथ से उसकी मुट्ठी पकड़कर भीतर की ओर खींचते हैं जिससे वह चिरा गिर पड़ता है।

नीमरा—वि० [सं० निर्बल, हि० नीबर] दुबल। बलहीन। शक्तिहीन।

नीमरजा—वि० [फ्रा०] १. थोड़ी बहुत रजामरी। २. कुछ तोष या प्रसन्नता। उ०—परि पा करि विनती बनी नीमरजा ही कीन।—शृ० सत० (शब्द०)।

नीमपारण्य, नीमपारन^३—संज्ञा पु० [सं० नैमिषारण्य] ३० 'नैमिषारण्य'।

नीमस्तीन—संज्ञा स्त्री० [फ्रा० नीम + आस्तीन] ३० 'नीमास्तीन'।

नीमा—संज्ञा पु० [फ्रा० नीमह] एक पहरावा जो आंग्रे के नीचे पहना जाता है। उ०—केशरि को नीमा जामा जरी को फेंटा टुपटा जरी को तेजपुंज समहतु है।—रघुनाथ (शब्द०)।

विशेष—यह आंग्रे के आकार का होता है पर न तो यह आंग्रे के इतना नीचा होता है और न इसके बंद बगल में होते हैं। यह घुटने के ऊपर तक नीचा होता है और इसके बंद सामने रहते हैं। आस्तीन इसकी पूरी नहीं होती, आधी होती है। इसके दोनों बगल सुराहियाँ होती हैं।

नीमावत—संज्ञा पु० [हि० निव + आवत] वैष्णवों का संवसाय। निवाकाचार्य का अनुयायी वैष्णव।

नीमास्तीन—संज्ञा स्त्री० [फ्रा० नीम + आस्तीन] एक प्रकार की फुटूई या कुरती जिसकी आस्तीन आधी होती है।

नीयत—संज्ञा स्त्री० [अ०] भावना। भाव। आंतरिक लक्षण। उद्देश्य। आशय। संकल्प। इच्छा। मंशा। जैसे,—(क) हम किसी बुरी नीयत से नहीं कहते हैं। (ख) तुम्हारी नीयत आंग्रे की नहीं मालूम होती।

कि० प्र०—करना।—होना।

यौ०—बदनीयत।

मुहा०—नीयत दिगना, नीयत डोलना = अच्छा या उचित संकल्प टढ़ न रहना। मन में विकार उत्पन्न होना। बुरा संकल्प होना। नीयत बढ़ होना = बुरा विचार होना। बुरी इच्छा या संकल्प होना। अनुचित या बुरी बात की ओर प्रवृत्ति होना। बेईमानी सूझना। नीयत बल जाना = (१) संकल्प या विचार और का ओर होना। इरादा दूसरा हो जाना। (२) बुरा विचार होना। अनुचित या बुरी बात की ओर प्रवृत्ति होना। नीयत बाँचना = संकल्प करना।

मन में ठानना । इरादा करना । नीयत बिगड़ना = ३० 'नीयत बर होना' । नीयत भरना = जी भरना । मन तुल होना । इच्छा पूरी होना । नीयत में फर्क धाना = बुरा संकल्प या विचार होना । अनुचित या बुरी बात की ओर प्रवृत्ति होना । बेईमानी या बुराई सुझना । नीयत लगी रहना = ध्यान बना रहना । इच्छा बनी रहना । जी ललचाया करना ।

नीरंघ—वि० [सं नीरन्ध्र] १. जिसमें छिद्र न हो । छिद्ररहित । २. ठोस । घना (की०) ।

नीर—संज्ञा पु० [प०] १. पानी । जल ।

मुहा०—नीर डलना = मरते समय आँख से आँसू बहना । किसी का नीर डल जाना = किसी की मर्जा जाती रहना । निर्लज्ज या बेहूया हो जाना ।

२. कोई व्रज पदार्थ या रस । १. कफोले आदि के भीतर का चेष या रस । जैसे, नीतला का नीर । ४. सुगंधवाला ।

नीरज^१—संज्ञा पु० [सं०] १. जल में उत्पन्न वस्तु । २. कमल । ३. मोती । मुक्ता । उ०—यज्ञ पूरन के रमापति शान देत प्रशेष । हरी नीरज नीर माणिक बनि वर्षा वेध ।—केशव (सम्ब०) । ४. कूट । कूट । ५. एक प्रकार का नृण । उशीर । ६. ऊदबिजाव । जलमाजारी (की०) । ७. शिव । महादेव (की०) ।

नीरज^२—वि० १. जलीय । जल से होनेवाला या उद्भूत (की०) । २. ३० 'नीरजा' ।

नीरजा—वि० [सं नीरजस्] १. बिना धूल का । स्वच्छ । २. जिसे रजोदण्डन न हुआ हो । धरजस्क (स्त्री) (की०) ।

नीरस—वि० [सं०] जो रस न हो । विरस (की०) ।

नीरव^१—संज्ञा पु० [सं० नीर] १. जल देनेवाला । २. बादल । ३. मोषा । मुस्तक (की०) ।

नीरव^२—वि० [सं० निः + रव] वे बात का । ध्वंस ।

नीरवर—संज्ञा पु० [सं०] बादल । मेघ ।

नीरधि—संज्ञा पु० [सं०] समुद्र ।

नीरन्ता—क्रि० स० [धृ०] छिटकाना । छितराना । बिखेरना ।

नीरनिधि—संज्ञा पु० [सं०] समुद्र ।

नीरपति—संज्ञा पु० [सं०] वरुण । देवता ।

नीरप्रिय—संज्ञा पु० [सं०] एक तरह का वेस । पंडुवेतस् (की०) ।

नीरम—संज्ञा पु० [?] वह बोक जो जहाज पर केवल उसकी स्थिति ठीक रखने के लिये रहता है (सम्ब०) ।

नीरुह—संज्ञा पु० [प०] कमल (की०) ।

नीरव—वि० [सं०] अनिरहित । बिना शब्द का (की०) ।

नीरस—वि० [सं०] १. रसहीन । जिसमें रस या शीलापन न हो । २. सूखा । शुष्क । ३. जिसमें कोई स्वाद या मखा न हो । फीका । जिसमें कोई आनंद न हो । जैसे, नीरस काम्य ।

नीरांजन—संज्ञा पु० [सं० नीराजन्] [की० नीराजना] १. शीतदान । शरदी । देवता को दीपक दिखाने की विधि ।

क्रि० प्र०—उतारना ।—वारना ।

२. हथियारों को चमकाने या साफ करने का काम । ३. एक त्योहार जिसमें राजा लोग हथियारों की सफाई कराते थे । यह कुम्भार कार्तिक में होता था जब यात्रा की तैयारी होती थी ।

नीरांजना—क्रि० प्र० [सं० नीराजना] १. शरदी करना । दीपक दिखाना । २. हथियारों को मँजना ।

नीरिंदु—संज्ञा पु० [सं० नीरिन्दु] सिंहर का पेड़ ।

नीरुक्, नीरुज्—संज्ञा पु० [सं०] रोगाश्रय । रोगराहित्य (की०) ।

नीरुज्—संज्ञा पु० [सं०] १. कुष्ठोषधि । २. भ्यानिरहित । वह जो रोगरहित हो (की०) ।

नीरो—क्रि० वि० [हि०] ३० 'नियरे' ।

नीरेणुक—वि० [सं०] धूलिरहित । रजशून्य (की०) ।

नीरोग—वि० [प०] जिसे रोग न हो । स्वस्थ । चंगा । तंदुल्लस ।

नीलंगु—संज्ञा पु० [सं० नीलङ्गु] १. एक प्रकार का कीड़ा । एक छुद्र कीट । २. मोदड़ । ३. भँवरा । ४. फूल ।

नील^१—वि० [सं०] [वि० नी० नीला, नीली] नीले रंग का । गहरे आसमानी रंग का ।

नील^२—संज्ञा पु० [सं०] १. नीला रंग । गहरा आसमानी रंग । २. एक पीधा जिससे नीला रंग निकाला जाता है ।

विशेष—यह दो तीन हाथ ऊँचा होता है । पतियाँ चमेली की तरह टहती के दोनों ओर पत्तियों से लगती हैं पर छोटी छोटी होती हैं । फूल मंजरियाँ से लगते हैं । लंबी लंबी बटूल की तरह फलियाँ लगती हैं । नील के पीध की ३०० के लगभग जातियाँ होती हैं । पर जिनसे यहाँ रंग निकाला जाता है वे पीछे भारतवर्ष के ही ओर धरब भिन्न तथा अमेरिका में भी बोए जाते हैं । भारतवर्ष हो नील का आदि-स्थान है ओर यही सबसे पहले रंग निकाला जाता था । ८० ईसवी में सिंध के किनारे के एक नगर से नील का बाहर भेजा जाना एक प्राचीन यूनानी लेखक ने लिखा है । पीछे क बहुत से विदेशियों ने यहाँ नील के बाए जान का उत्खनन किया है । ईसा की पंद्रहवीं शताब्दी में जब यहाँ से नील योरोप के देशों में जाने लगा तब से वहाँ के निवासियों का ध्यान नील की ओर गया । सबसे पहले हालैंडवाली न नील का काम शुरू किया और कुछ दिनों तक वे नील की रंगाई के लिये यारप भर में निपुण समझे जाते थे । नील के कारण जब वहाँ कई वस्तुओं के बाखुज्य को बचका पहुचने लगा तब फ्रांस, जर्मनी आदि कानून द्वारा नील का आमाद बंद करने पर विवश हुए । कुछ दिनों तक (सन् १६९० तक) इंग्लैंड में भी लाघ नील को बिच कहते रहे जिससे इसका वहाँ जाना बंद रहा । पीछे बेल्जियम से नील का रंग बनानेवाला नुलाए गए जिन्होंने नील का काम सिखाया ।

पहले बहुत गुजरात और उसके आस पास के देशों में से नील योरोप जाता था; बिहार, बंगाल आदि से नहीं । ईस्ट इंडिया कंपनी ने जब नील के काम की ओर ध्यान दिया तब बंगाल,

बिहार में नील की बहुत सी कोठियाँ खुल गईं और नील की खेती में बहुत उन्नति हुई।

भिन्न भिन्न स्थानों में नील की खेती भिन्न भिन्न ऋतुओं में और भिन्न भिन्न रीति से होती है। कहीं तो फसल तीन ही महीने तक खेत में रहती है और कहीं घटारह महीने तक। जहाँ पौधे बहुत दिनों तक खेत में रहते हैं वहाँ उनसे कई बार काटकर पत्तियाँ आदि ली जाती हैं। पर अब फसल को बहुत दिनों तक खेत में रखने की चाल उठती जाती है। बिहार में नील फागुन खेत के महीने में बोया जाता है। गरमी में तो फसल की बाढ़ रुकी रहती है पर पानी पड़ते ही जोर के साथ टहनियाँ और पत्तियाँ निकलती और बढ़ती है। अतः आषाढ़ में पहला कलम हो जाता है और टहनियाँ आदि कारखाने भेज दी जाती हैं। खेत में केवल खूंटियाँ ही रह जाती हैं। कलम के पीछे फिर खेत जोत दिया जाता है जिससे बहु बरसात का पानी अच्छी तरह सोखता है और खूंटियाँ फिर बढ़कर पौधों के रूप में हो जाती हैं। दूसरी कटाई फिर कुवार में होती है।

नील से रंग दो प्रकार से निकाला जाता है—हरे पीछे से और सूखे पीछे से। कटे हुए हरे पीछों को गड़ी हुई नाई में दबाकर रस देते हैं और ऊपर से पानी भर देते हैं। बारह चौदह घंटे पानी में पड़े रहने से उसका रस पानी में उतर जाता है और पानी का रंग धानी हो जाता है। इसके पीछे पानी दूसरी नाई में जाता है जहाँ डेढ़ दो घंटे तक सकड़ी से छिलाया और मथा जाता है। मथने का यह काम मशीन के बचकर से भी होता है। मथने के पीछे पानी चिराने के लिये छोड़ दिया जाता है जिससे कुछ देर में माल नीचे बैठ जाता है। फिर नीचे बैठा हुआ यह नील साफ पानी में मिलाकर उबाला जाता है। उबल जाने पर यह नील को फट्टियों के सहारे तानकर फैलाए हुए मोठे कपड़े (या कनवस) की चाँदनी पर ढाल दिया जाता है। यह चाँदनी छनने का काम करती है। पानी तो निबर कर बह जाता है और साफ नील लेई के रूप में लगा रह जाता है। यह गीला नील छोटे छोटे छिद्रों से युक्त एक संयुक्त में, जिसमें गीला कपड़ा मड़ा रहता है, रसकर खूब दबाया जाता है जिससे उसकी सात आठ ग्रंथुल मोटी तह बनकर हो जाती है। इसके कतरे काटकर धीरे धीरे सूखने के लिये रस दिए जाते हैं। सूखने पर इन कतरों पर एक पत्रड़ी सी जम जाती है जिसे साफ कर देते हैं। ये ही कतरे नील के नाम से बिकते हैं। मित्राक्षरा, विधानपरिजात आदि धर्मशास्त्र के कई ग्रंथों में ब्राह्मण के लिये नील में रंगा हुआ वस्त्र पहनने का नियम है।

मुहा०—नील का टीका लगाना = कलंक लेना। बदनामी उठाना। उ०—नल में तो वन को बिलास कहाँ वृक्षत द्वी; नील से सरे ते टीको नील को न करिहैं।—हनुमान (शब्द०)। नील का खेत = कलंक का स्थान। नील की सलाई फिरवा देना = धाँधि फोड़वा डालना। धँसा कर देना। (कहते हैं, पहले अपराधियों की छाँच में नील की गरम

सवाई डाल दी जाती थी जिससे वे ग्रंथ हो जाते थे) । नील चोटना = झगड़ा बड़ेड़ा मचाना । किसी बात को लेकर देर तक उसझना । नील चलाना = पानी बरसने के लिये नील खनाने का टोटका करना । नील बिगड़ना = (१) बाल खलन बिगड़ना । आचरण भ्रष्ट होना । (२) प्राकृति बिगड़ना । चेहरे का रंग उड़ना । (३) किसी के सिर पैर की बात का प्रसिद्ध होना । झूठी और असंगत बात फैलना । (४) ससझ पर पत्थर पड़ना । बुद्धि ठिकाने न रहना । (५) कुदिन आना । सामत आना । दुर्घटा होनेवाली होना । (६) भारी हानि या घाटा होना । दिवाला होना ।

३. थोटा सा नीला या काले रंग का दाग जो, शरीर पर पड़ जाता है। जैसे,—जहाँ जहाँ खड़ी बैठो है नील पड़ गया है।

क्रि० प्र०—पढ़ना ।

मुहा०—नील डालना = हतनी मार मारना कि शरीर पर नीले दाग पड़ जायें । गहरी मार मारना ।

४. लङ्घन । कलंक । ५. राम की सेना का एक बंदर । ६. मागधत के अनुसार इलाबुल खंड का एक पर्वत जो रम्यक वर्ष की सीमा पर है । ७. नव निधियों में से एक । ८. मंगल घोष ।

मंगल का शब्द । १. वटवृक्ष । बरगद । १०. इंद्रनील मणि । नीलम । ११. काश लवण । १२. तालीसपत्र । १३. बिष । १४. एक नाग का नाम । १५. बिष्णुपुराण में वर्णित नीलनी से उत्पन्न अजमीड़ राजा का एक पुत्र । १६. माहिषमती का एक राजा ।

विशेष—इसकी कथा महाभारत में इस प्रकार आई है। नील राजा की एक अत्यंत सुंदरी कन्या थी जिसपर मोहित होकर अग्नि देवता ब्राह्मण के वेश में राजा से कन्या मांगने आए। कन्या पाकर अग्नि देवता ने राजा को बर दिया कि जो जन्तु तुमपर चढ़ाई करेगा वह भस्म हो जायगा। पांडवों के राजसूय यज्ञ के अवसर पर सहदेव ने माहिष्मती नमरी को बेरा। अपनी सेना को भस्म होते देख सहदेव ने अग्नि देवता की स्तुति की। अग्निदेव ने प्रगट होकर कहा कि नील के वंश में जबतक कोई रहेगा मैं बराबर इसी प्रकार रक्षा करूँगा। अंत में अग्नि की आज्ञा से नील ने सहदेव की पूजा की और सहदेव उससे इस प्रकार अवीनता स्वीकार कराकर चले गए :

१७. नृत्य के १०८ करणों में से एक । १८. एक यम का नाम ।
 १९. एक बर्णवृत्त जिसके प्रत्येक चरण में सोलह बर्ण होने
 हैं । यथा,—ऊँकनि देत अतंकनि संकनि दूरि घरे । गोमुल
 दूरनि पुर चहूँ दिसि खीति भरै । २०. एक प्रकार का विजय
 सास । २१. मंजुश्री का एक नाम । २२. गहरे नीले रंग का
 वृषभ (बौ०) । २३. एक संख्या जो दस हजार घरब की होती
 है । सो घरब की संख्या को इस प्रकार लिखी जाती है—
 १००००००००००० ।

नीलकण्ठ—वि० [सं० नीलकण्ठ] [वि० जी० नीलकण्ठी] जिसका कंठ नीला हो ।

नीलकंठ^२—संज्ञा पुं० १. घोर। मयूर। २. एक चिड़िया। बाब पक्षी।

विशेष—यह एक बिलो के लगभग लंबी होता है। इसका कंठ घोर होने नीले होते हैं। शेष शरीर का रंग कुछ ललाई लिए बादामी होता है। चोंच कुछ मोटी होती है। यह कीड़े, मकोड़े पकड़कर खाता है, इससे वर्षा और शरद ऋतु में उड़ता हुआ अधिक दिखाई पड़ता है। विजयादशमी के दिन इसका दर्शन बहुत शुभ माना जाता है। स्वर इसका कुछ कर्कश होता है।

१. महादेव का एक नाम।

विशेष—कालकूट विष पान करके कंठ में धारण करने के कारण शिव का कंठ कुछ काला पड़ गया इससे यह नाम पड़ा। महाभारत में यह लिखा है कि अमृत निकलने पर भी जब देवताओं ने समुद्र का मथना बंद नहीं किया तब सधूम ध्वनि के समान कालकूट विष निकला जिसकी गंध से ही तीनों लोक व्याकुल हो गए। अंत में ब्रह्मा ने शिव से प्रार्थना की और उन्होंने यह कालकूट पान करके कंठ में धारण कर लिया। पुराणों में भी इसी प्रकार की कथा कुछ विस्तार के साथ है।

४. गौरा पक्षी। चटक। (नर के कंठ पर काला बाग होता है)। ५. मुली। ६. पियासाल। ७. एक मधुमक्खी (की०)।

नीलकंठ रस—संज्ञा पुं० [सं० नीलकण्ठ रस] एक रसोष्ण।

विशेष—इसके बनाने की विधि इस प्रकार है—पारा, गंधक, लोहा, शिव, पीता, पचकाठ दारचीनी, रेणुका, बायबिडंग, विपरामुल, इलायची, नागकेसर, छोंठ, पीपल, मिर्च, हड, अंबला, बहैरा और ताँबा सम भाग लेकर सबके दुग्ने पुराने गुड़ में मिलाकर चने के बराबर गोली बनावे। इसके सेवन से कास, खास, प्रमेह, हिचकी, विषम ज्वर, ग्रहणी, शोथ, पांडु, मूत्रकुष्ठ इत्यादि रोग दूर होते हैं।

नीलकंठाक्ष—संज्ञा पुं० [सं० नीलकण्ठाक्ष] उग्राल।

नीलकंठाक्षी—वि० [सं० नीलकण्ठाक्षी] संजन जैसे नयनोंवाली (की०)।

नीलकंठी—संज्ञा स्त्री० [सं० नीलकण्ठी] १. एक छोटी चिड़िया। यह हिमालय पर पाई जाती है। इसका बोलना बहुत ही मधुर और सुरीला होता है। २. एक प्रकार का छटोी बोबा जो जोमा के लिये बगीचों में लगाया जाता है। इसकी पत्तियाँ बहुत कटु होती हैं और पुराने ज्वर में दी जाती हैं।

नीलकण्ठ—संज्ञा पुं० [सं० नीलकण्ठ] भैंसा कंद। महिष्कंद। मुन्नालु।

नीलक—संज्ञा पुं० [सं०] १. काच सवण। २. बर्तनोह। बीदरी लोहा। ३. मटर। ४. गौरा। ५. पियासाल। ६. बीजगणित में अक्षय्य राशि का एक भेद। ७. गहरे नीले या काले रंग का धब्बा (की०)।

नीलकण्ठ—संज्ञा पुं० [सं०] १. नीलम का टुकड़ा। २. ठोड़ी पर मोड़े हुए मोदने का बिंदु।

नीलकण्ठा—संज्ञा स्त्री० [सं०] स्याह बीरा। काला बीरा।

नीलकमल—संज्ञा पुं० [सं०] नील रंग का कमल। नीलाब्ज। नीलांबुज (की०)।

नीलकांत—संज्ञा पुं० [सं० नीलकान्त] १. एक पहाड़ी चिड़िया जो हिमालय के प्रबंध में होती है।

विशेष—मसूरी में इसे नीलकांत घोर नैनीताल में इसे दिगबल कहते हैं। इसका माया, कंठ के नीचे का भाग घोर छाती काली होती है, सिर पर कुछ सफेदी भी होती है। पूँख नीली होती है। कंठ में भी कुछ नीलेपन की झलक रहती है।

२. विष्णु। ३. एक ग्रन्थ। नीलम।

नीलकुंतला—संज्ञा स्त्री० [सं० नीलकुन्तला] बृहद्भद्रपुराण के अनुसार गौरी की एक सखी का नाम (की०)।

नीलकुरंटक—संज्ञा पुं० [सं० नीलकुरण्टक] नीली कठसरैया। नील मिट्टी (की०)।

नीलकेशी—संज्ञा स्त्री० [सं०] नील का पीछा।

नीलकांता—संज्ञा स्त्री० [सं० नीलकांता] विष्णुकांता लता जिसमें बड़े नीले फूल लगते हैं।

नीलकौंच—संज्ञा पुं० [सं० नीलकौञ्च] काला बगला। वह बगला जिसका पर कुछ कालापन लिए होता है।

नीलगाय—संज्ञा स्त्री० [हि० नील + गाय] नीलापन लिए घुरे रंग का एक बड़ा हिरन जो गाय के बराबर होता है।

विशेष—इसके कान गाय के से घोर सींग टेढ़े घोर छोटे होते हैं। छोटे छोटे बालों का केसर (घयाल) भी होता है। गले के नीचे बड़े बालों का एक छोटा गुच्छा मा होता है। देखने में यह जंतु गाय और हिरन दोनों से मिलता जान पड़ता है और प्रायः जंगलों में ही भुंड बाँधकर रहता है। नीलगाय ऊँट की तरह चारों पैर मोड़कर विभ्राम करती है, गाय की तरह पार्श्व भाग भूमि पर रखकर नहीं। पालने से यह पानी खा सकती है। शिकारी जमड़े आदि के लिये इसका शिकार भी करते हैं। जमड़ा इसका बहुत मजबूत होता है। गले के जमड़े की ठालें बनती हैं। वैद्यक के अनुसार नीलगाय का मांस मधुर, बलकारक, उष्णवीर्य स्निग्ध तथा कफ और पित्तघर्षक होता है।

पर्या०—गवय। नीलांतक। रोम।

नीलगिरि—संज्ञा पुं० [सं०] बल्लिण देश का एक पर्वत।

नीलग्रीव—संज्ञा पुं० [सं०] महादेव। शिव।

नीलचक्र—संज्ञा पुं० [सं०] १. जगन्नाथ जी के मंदिर के शिखर पर माना जानेवाला चक्र। २. एक दंडक वृत्त जो ३० अक्षरों का होता है और अक्षोक्त पुष्प मंत्रों का एक भेद है। इसमें 'गुरु लघु' १५ बार क्रम से पाते हैं। यथा,—जानि के समे भुवाक्ष राम राज साज साजि ता समे अकाज काज कंकई जु कीन।

नीलचर्मा^१—वि० [पुं० नीलचर्म] नीले जमड़े का।

नीलचर्मा^२—संज्ञा पुं० १. फालसा। २. नीले रंग का चर्म (की०)।

नीलच्छद्—वि० [सं०] नीले पंख या छावरण का।

नीलच्छद्^२—संज्ञा पुं० १. मरुड़। २. खचुर।

नीलज—संज्ञा पुं० [सं०] बर्तनोह। बीदरी लोहा।

नीलजा—संज्ञा स्त्री० [सं० नील पर्वत से उत्पन्न बितस्ता (जेलम) नदी ।

नीलकिंटी—संज्ञा स्त्री० [सं० नीलकिंटी] नीली कठसरैया ।

नीलतरा—स्त्री० स्त्री० [सं० नीलतीरा या नीलतटा] बौद्ध कथाओं के अनुसार गांधार देश की एक नदी जो उरुवेलारण्य से होकर बहती थी जहाँ जाकर बुद्धदेव ने उरुवेल काश्यप, गया काश्यप और नदी काश्यप नामक तीन माइयों का अभिमान दूर किया था ।

नीलतरु—संज्ञा पुं० [सं०] नारियल ।

नीलसा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. नीलापन । २. कालापन । स्याही ।

नीलसाल—संज्ञा पुं० [सं०] स्याम तमाल । हिताल ।

नीलवूर्वा—संज्ञा स्त्री० [सं०] हरी दूब ।

नीलधुम—संज्ञा पुं० [सं०] पीतसाल वा प्रसन नामक वृक्ष ।

नीलध्वज—संज्ञा पुं० [सं०] १. तमाल । २. महाभारत के प्रथमोपपर्व में उल्लिखित माहिष्मती का एक राजा । इसकी पत्नी का नाम उवाला और कन्या स्वाहा नाम की लक्ष्मी के साथ से उत्पन्न थी ।

नीलनिगुंडी—संज्ञा स्त्री० [सं० नीलनिगुंडी] नील सिंगुआर [को०] ।

नीलनिर्यासक—संज्ञा पुं० [सं०] पियासाल का पेड़ ।

नीलनिलय—संज्ञा पुं० [सं०] आकाश । व्योम ।

नीलपंक—संज्ञा पुं० [सं० नीलपङ्क] १. काला कीचड़ । २. घंघार ।

नीलपटल—संज्ञा पुं० [सं०] १. घना काला आवरण । २. प्रिये व्यक्ति के घ्रांस की काली झिल्ली या आवरण [को०] ।

नीलपत्र—संज्ञा पुं० [सं०] १. नीलमल । २. गुंडतृण । गोलरा घास जिसकी जड़ कसेरु है । ३. प्रशमंत वृक्ष । ४. विजय-साल । ५. अनार । शडिभ ।

नीलपत्रिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] नील ।

नीलपत्री—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'नीलपत्रिका' ।

नीलपद्म—संज्ञा पुं० [सं०] नील कमल [को०] ।

नीलपर्ण—संज्ञा पुं० [सं०] वृक्षार वृक्ष ।

नीलपिंगला—संज्ञा स्त्री० [सं० नीलपिङ्गला] बृहद्धर्म पुराण के अनुसार एक विशेष प्रकार की गाय [को०] ।

नीलपिच्छ—संज्ञा पुं० [सं०] बाज पक्षी ।

नीलपुनर्नवा—संज्ञा स्त्री० [सं०] नीले रंग की पुनर्नवा या गदह-पुर्ना [को०] ।

नीलपुष्प—संज्ञा पुं० [सं०] १. नीला फूल । २. नीची भंगरैया । ३. नीलास्लान । काला कोराठा । ४. ध्विपल्ल । गठित्रन ।

नीलपुष्पा—संज्ञा स्त्री० [सं०] विष्णुकांता लता । अपराजिता ।

नीलपुष्पिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. प्रलसी । २. नील का पीछा ।

नीलपुष्पी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. काला बीना । नीली कोयल । २. प्रलसी । तीसी ।

नीलपृष्ठ—संज्ञा पुं० [सं०] अग्नि ।

नीलफला—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. जामुन । २. बैंगन ।

नीलवरी—संज्ञा स्त्री० [सं० नील + वरी] कच्चे नील की पट्टी ।

नीलविरई—संज्ञा स्त्री० [हिं० नील + विरई] सनाय का पीछा । सना ।

नीलबीज—संज्ञा पुं० [सं०] पियासाल । नीलबीज ।

नीलभ—संज्ञा पुं० [सं०] १. बादल । मेघ । २. चंद्रमा । ३. भौरा । भ्रमर [को०] ।

नीलभृंगराज—संज्ञा पुं० [सं० नीलभृङ्गराज] नीला भंगरा ।

नीलम—संज्ञा पुं० [का० । सं० नीलमणि] नील मणि । नीले रंग का रत्न । इद्रनील ।

विशेष—नीलम वास्तव में एक प्रकार का कुरंड है जिसका तंबर कड़ाई में हीरे से दूसरा है । जो बहुत मोला होता है उसका मोल भी हीरे से कम नहीं होता । नीलम हलके नीले से लेकर गहरे नीले रंग तक के होते हैं । प्रब भारतवर्ष में नीलम की खानें नहीं रह गई हैं । काश्मीर (बसकर) की खानें भी अब खाली हो चली हैं । बरमा में मानिक के साथ नीलम भी निकलता है । सिंहल द्वीप और श्याम से भी बहुत अच्छा नीलम आता है ।

रत्नपरीक्षा संबंधी पुस्तकों में मानिक के समान नीलम भी तीन प्रकार के कहे गए हैं । उत्तम, महानील और साधारण । महानील के संबंध में लिखा है कि यदि वह सोपुने दूध में डाल दिया जाय तो सारा दूध नीला दिखाई पड़ेगा । सबसे श्रेष्ठ इद्रनील वह है जिसमें से इंद्रधनुष की सी आभा निकले । पर ऐसा नीलम जल्दी मिलता नहीं । नीलम में पाँच बातें देखी जाती हैं—गुरुत्व, स्निग्धत्व, वर्णविशेष, पार्श्ववर्तित्व और रंजकत्व । जिसमें स्निग्धत्व होता है उसमें से बिकनाई छूटती है । जिसमें वर्णविशेष होना है उसे प्रातःकाल सूर्य के सामने करने से उसमें नीली शिखा भी फूटती दिखाई पड़ती है । पार्श्ववर्तित्व गुण उस नीलम में माना जाता है जिसमें कहीं कहीं पर सोना, चाँदी, स्फटिक आदि दिखाई पड़े । जिसे जलपात्र आदि में रखने से सारा पात्र नीला दिखाई पड़ने लगे उसे रंजक समझना चाहिए । रत्न-संबंधी पुरानी पोथियों में भिन्न भिन्न रत्नों के धारण करने के भिन्न भिन्न फल लिखे हुए हैं ।

नीलमणि—संज्ञा पुं० [सं०] १. नीलम । २. कृष्ण [को०] ।

नीलमधव—संज्ञा पुं० [सं०] विष्णु । जगन्नाथ [को०] ।

नीलमाष—संज्ञा पुं० [सं०] काला उरुष । राजमाष ।

नीलमीलिक—संज्ञा पुं० [सं०] लघोत । जुगमू ।

नीलमृत्तिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] पुष्पकसीस । काली मिट्टी ।

नीलमोर—संज्ञा पुं० [हिं० नील + सं० मयूर > हिं० मोर] कुररी नामक पक्षी जो हिमालय पर पाया जाता है ।

नीलरत्न—संज्ञा पुं० [सं०] १. नीलम । २. कृष्ण । नीलमाधव [को०] ।

नीललोह—संज्ञा पुं० [सं०] वसंलोह । बीवरी लोहा ।

नीललोहित^१—वि० [सं०] नीलापन लिए लाल । बैंगनी ।

नीललोहित^२—संज्ञा पुं० १. शिव का एक नाम जिनका कंठ नीला और मस्तक लोहित बरुं है । २. एक कल्प का नाम [को०] ।

नीललोहिता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. भूमि जंबू। एक प्रकार की छोटी जायुन। २. पार्वती।

नीलवर्ण—संज्ञा पुं० [सं०] १. नीला रंग। २. मूली [को०]।

नीलवर्षाभू^१—संज्ञा स्त्री० [सं०] नीली पुनर्नवा।

नीलवर्षाभू^२—संज्ञा पुं० भेक। मेढक [को०]।

नीलवल्ली—संज्ञा स्त्री० [सं०] बंदाक। बाँदा। परगाछा।

नीलवसन^१—पुं० [सं०] नीला कपड़ा।

नीलवसन^२—वि० नीला व काला वस्त्र धारण करनेवाला।

नीलवसन^३—संज्ञा पुं० १. शनि ग्रह। २. बलराम।

नीलबीज—संज्ञा पुं० [सं०] पियासाल।

नीलवृद्धा—संज्ञा स्त्री० [सं०] नीलवृष्णा। नीला बोनो नाम का पेड़।

नीलवृंत—संज्ञा पुं० [सं० नीलवृत्त] तूल। रई।

नीलवृष—संज्ञा पुं० [सं०] एक विशेष प्रकार का साँड़ या बखरा।

विशेष—आन्ध्र में नीलवृष एक पारिभाषिक शब्द है। जिस वृष का रंग लाल (लोहित), पीछ, खुर और सिर शंख वर्ण हों उसे नीलवृष कहते हैं। ऐसे वृष के उत्सर्ग का बड़ा फल है।

नीलवृषा—संज्ञा स्त्री० [सं०] वैगल।

नीलशिम्भु—संज्ञा पुं० [सं०] सहजान का पेड़। शोभाजन।

नीलसंख्या—संज्ञा स्त्री० [सं० नीलसंख्या] कृष्णापराजिता।

नीलसार—संज्ञा पुं० [सं०] तेंदू का पेड़।

विशेष—इसका हीर काला या बगुल होता है।

नीलसिंदुवार—संज्ञा पुं० [सं० नीलसिन्दुवार] नील निगुंडी [को०]।

नीलसिर—संज्ञा पुं० [हि० नील+सिर] एक प्रकार की बत्तक जिसका सिर नीला होता है।

विशेष—यह हाथ भर लंबी होती है और बिम्ब, पंजाब, काश्मीर आदि में पाई जाती है। इसे यह गर्मी में देती है।

नीलस्नेह—संज्ञा पुं० [सं०] नील रंग के समान गहुरा प्रेम। छद् स्नेह। स्थिर प्रेम [को०]।

नीलस्वरूप—संज्ञा पुं० [सं०] एक वर्णद्वारा, जिसके प्रत्येक चरण में तीन भगण और दो गुण भक्षर होते हैं। जैसे,—राटर के सम हैं नह बाली। जोतति है दुर्तिवत जहाँ ली। जो गिरि दुर्गनि भाहुं वसे लू। जा भुज चंदन डार वसे लू।—गुमान (शब्द०)।

नीलस्वरूपक—संज्ञा पुं० [सं०] १० 'नीलस्वरूप'।

नीलांग^१—वि० [सं० नीलाङ्ग] नीले अंग का।

नीलांग^२—संज्ञा पुं० सारस पक्षी।

नीलांगु—संज्ञा पुं० [सं० नीलाङ्ग] १० 'नीलगु' [को०]।

नीलांजन—संज्ञा पुं० [सं० नीलाञ्जन] १. नीला सुरमा। २. तूतिया। नीला थोथा।

नीलांजना—संज्ञा स्त्री० [सं० नीलाञ्जना] १. बिजली। २. नीलांजनी। ३. काला कपास।

नीलांजनी—संज्ञा स्त्री० [सं० नीलाञ्जनी] एक क्षुप। कालांजनी [को०]।

नीलांजसा—संज्ञा स्त्री० [सं० नीलाञ्जसा] १. बिजली। २. एक भस्मरा। ३. एक नदी।

नीलांबर^१—संज्ञा पुं० [सं० नीलाम्बर] १. नीला वस्त्र। नीले रंग का कपड़ा (विशेषतः रेशमी)। २. तालीचयन। ३. बनदेव। ४. लनेरवर। ५. राजस।

नीलांबर^२—वि० नीले कपड़ेवाला। नील वस्त्र धारण करनेवाला।

नीलांबरी—संज्ञा स्त्री० [सं० नीलाम्बरी] एक रागिनी।

नीलांबुज—संज्ञा पुं० [सं० नीलाम्बुज] नील कमल।

नीला^१—वि० [सं० नील] आकाश के रंग का। नील के रंग का।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

मुहा०—नीला करना=मारते मारते जरीर पर नीले दाग डालना। बहुत मार मारना। नीला पड़ना=नीला हो जाना। नीला पीला होना=क्रोध दिखाना। क्रुद्ध होना। बिगड़ना। नीले हाथ पवि हों=ठंडा हो जाय। घर जाय। (स्त्रि० जाय)। चेहरा नीला पड़ जाना=(१) चेहरे का रंग फीका पड़ जाना। प्राकृति से अथ उद्भिन्नता, लज्जा आदि प्रगट होना। (२) प्राकृति बिगड़ जाना। सजीवता के लक्षण नष्ट होना।

नीला^२—संज्ञा पुं० १. एक प्रकार का कवूतर। २. नीलम।

नीला^३—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. नीली मक्खी। २. नील पुनर्नवा। ३. नील का बीधा। ४. एक लता। ५. एक नदी (महामारत)। ६. महलार राग की एक आर्या।

नीलाक्ष^१—वि० [सं०] नीली घाल का।

नीलाक्ष^२—संज्ञा पुं० राजहंस।

नीलाक्षल—संज्ञा पुं० [सं०] १. नीलगिरि पर्वत। २. जगन्नाथ जी के निकट की एक छोटी पहाड़ी।

नीलाथोथा—संज्ञा पुं० [सं० नीलतुष] तबिये की उपधातु। तबिये का नीला छार या लवण। तूतिया।

विशेष—वैद्यक में लिखा है कि जिस वातु की जो उपधातु होती है उसमें उसी का सा गुण होता है पर बहुत हीन। तबिये का यह नीला लवण खानों में भी मिलता है पर अधिकतर कारखानों में निकाला जाता है। तबिये के तूर को यदि खुली हवा में रखकर तपावें या गलावें और उसमें थोड़ा सा गंधक का तेजाब डाल दें तो तेजाब का अम्ल गुण नष्ट हो जायगा और उसके योग से तूतिया बन जायगा। नीलाथोथा रंगाई और दवा के काम में आता है। वैद्यक में यह सारसंयुक्त, कटु, कसेला, बमनकारक, सधु, लेखन-गुण-युक्त, भेदक, क्षीतवीर्य, नेत्रों को हितकर तथा कफ, पित्त, विष पथरी, कुष्ठ और स्नायु को दूर करनेवाला माना गया है। तूतिया जोषकर मत्प मात्रा में दिया जाता है। इसे कई प्रकार से शोधते हैं। बिस्ली की बिछा में तूतिए को गूँधकर दशमीश सोहागा मिलाकर घीमी आंच में पकावे। इसके पीछे मधु और सेंधे नमक का पुट दे। दूसरी विधि यह है कि तूतिए में आधा गंधक मिलाकर उसे चार बंड तक पकावे। शुद्ध होने से उसमें बमन आदि का दोष कम हो जाता है।

नीलाब्ज—संज्ञा पुं० [सं०] नील कमल ।

नीलापन—संज्ञा पुं० [हि० नीला + पन (प्रत्य०)] नीलिमा । नीलाहट ।

नीलाम—संज्ञा पुं० [पुर्त० नीलाम] बिक्री का एक ढंग जिसमें माम उस घादमी को दिया जाता है जो सबसे अधिक दाम बोलता है । बोली बोलकर बेचना ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

यौ०—नीलामघर ।

मुहा०—नीलाम पर चढ़ना=बोली बोलकर बेचा जाना । (माल) नीलाम पर चढ़ाना=बोली बोलकर बेचना ।

नीलामघर—संज्ञा पुं० [हि० नीलाम + घर] वह घर या स्थान जहाँ चीजें नीलाम की जाती हैं ।

नीलामी^१—संज्ञा स्त्री० [हि० नीलाम + ई (प्रत्य०)] नीलाम होने का भाव या क्रिया ।

नीलामी^२—वि० [हि० नीलाम] नीलाम में मोल लिया हुआ ।

नीलाम्ना—संज्ञा स्त्री० [सं०] नीली कटसरैया । नील झिठी [को०] ।

नीलाम्लान—संज्ञा पुं० [सं०] एक पीषा जिसमें सुंदर फूल लगते हैं । काला कीराठा (मराठी) ।

नीलाम्लो—संज्ञा पुं० [सं०] राजनिषंदु में वर्णित एक क्षुप । नल्लकु-इगुड । यह मधुर, रुख घोर कफ तथा वातहारक कहा गया है ।

नीलारुख—संज्ञा पुं० [सं०] उपःकाल । प्रखण्डय । प्रखूष [को०] ।

नीलालु—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का कद । राजनिषंदु में इसका गुण मधुर, शीतकारक, पित्त, दाह घोर श्रमनाशक कहा गया है [को०] ।

नीलावती—संज्ञा स्त्री० [सं० नीलवती] एक प्रकार का चावल । उ०—नीलावती चावल इति दुर्लभ । भात परोस्यो माता दुर्लभ ।—सूर (शब्द०) ।

नीलारो—संज्ञा स्त्री० [सं०] नील निगुंडी [को०] ।

नीलाश्मा—संज्ञा पुं० [सं० नीलाश्मन्] नील मणि [को०] ।

नीलाश्म—संज्ञा पुं० [सं०] एक देश का नाम ।

नीलासन—संज्ञा पुं० [सं०] १. विद्यामाल का पेड़ । २. एक रतिबंध ।

नीलाहट—संज्ञा स्त्री० [हि० नील + आहट (प्रत्य०)] नीलापन ।

नीलि—संज्ञा पुं० [सं०] एक जलजंतु का नाम ।

नीलिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. नीलवरी । २. नीली निगुंडी ।

नीलाशी । नील सन्हासु वृक्ष । ३. आँख का एक रोग ।

तिमिर रोग के अंतर्गत सिगनास का एक भेद । आँख निलमिलाने का रोग ।

विशेष—सुश्रुत के अनुसार जिस तिमिर रोग में कभी कभी एकबारगी कुछ न दिखाई पड़े उसे लिगनास कहते हैं और जिसमें आकाश में सूर्य, नक्षत्र, बिजली आदि की सी चमक दिखाई पड़े उसे नीलिका कहते हैं ।

४. मुल पर का एक रोग जिसमें सरसों के बराबर छोटे छोटे कड़े काले दागे निकलते हैं । इस्ला ।

नीलिनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. नील का पेड़ । २. नीला बोना ।

नीलिमा—संज्ञा स्त्री० [सं० निलिमन्] १. नीलापन । २. श्यामता । स्वाही ।

विशेष—संस्कृत में यद्यपि यह पुं० है पर हिंदी में स्त्री० है ।

नीली^१—वि० स्त्री० [हि० नीला] काले रंग की । नील के रंग की । काली । घासमानी ।

नीली^२—संज्ञा स्त्री० १. नील का पीषा । २. नीलिका रोग । ३. नीले रंग की एक प्रकार की मक्खी (को०) ।

नीली घोड़ी—संज्ञा स्त्री० [हि० नीली + घोड़ी] १. काले अथवा सव्य रंग की घोड़ी । २. आगे के साथ सिली हुई कामच की घोड़ी जिसे पहन लेने से जान पड़ता है कि घादमी घोड़े पर सवार है । डफाली इसे पहनकर गाजी मियाँ के गीत गाते हुए भोज माँगने निकलते हैं ।

नीली चकरो—संज्ञा स्त्री० [हि० नीली + चकरी] एक प्रकार का पीषा ।

नीली चाय—संज्ञा स्त्री० [हि० नीली + चाय] अगिया चास या यज्ञकुल ।

नीली राग—संज्ञा पुं० [सं०] प्रगाढ़ या दृढ़ प्रेम [को०] ।

नीली संधान—संज्ञा पुं० [सं० नीलीसंधान] नील का संधान या लमीर [को०] ।

यौ०—नीलीसंधानभांड=नील का बर्तन या नाँद ।

नीलू—संज्ञा स्त्री० [हि० नील] एक प्रकार की घास । पलवान ।

नीलोत्पल—संज्ञा पुं० [सं०] नील कमल ।

नीलोत्पली—संज्ञा पुं० [सं० नीलोत्पलिन्] १. शिव के एक अंश । २. बौद्ध महात्मा मंजुश्री का एक नाम ।

नीलोपल—संज्ञा पुं० [सं०] १. नीलम । २. नीला पत्थर [को०] ।

नीलोपर—संज्ञा पुं० [क्रा० नीलोपर मि० सं० नीलोत्पल] १. नील कमल । २. कुई । कुमुद ।

विशेष—हकीमी नुसखों में कुमुद या कुई का ही व्यवहार गृही होता है ।

नीब—संज्ञा स्त्री० [सं० नेभि, प्रा० नेई] १. घर बनाने में गहरी नाली के रूप में खुदा हुआ गड्ढा जिसके भीतर से दीवार की जोड़ाई आरंभ होती है । दीवार उठाने के लिये गहरा किया हुआ स्थान ।

क्रि० प्र०—खोदना ।

मुहा०—नीब देना=(१) गड्ढा खोदकर दीवार खड़ी करने के लिये स्थान बनाना । दीवार की जड़ जमाने के लिये भूमि खोदना । (२) घर उठाने का आरंभ करना । (किसी बात की) नीब देना=कारण या आधार खड़ा करना । जड़ खड़ी करना । आरंभ करना । उपक्रम करना । सामान करना । जैसे, ऊगड़े की नीब देना । उ०—बाकी जी तो उठि छता रई दुँव की नीब ।—लाल (शब्द०) । नीब भरना=दीवार के लिये लुने हुए गड्ढे में कंकड़, पत्थर आदि पाटवा ।

२. दीवार के लिये गहरे किए हुए स्थान में ईंट, पत्थर, मिट्टी आदि की जोड़ाई या जमावट जिसके ऊपर दीवार उठाते हैं। दीवार की जड़ या आधार। मूलभित्ति।

क्रि० प्र०—घरना।—रखना।

मुहा०—नीव का पत्थर = वह पत्थर जो मकान बनाने के आरंभ में पहले पहल नीव में रखा जाता है। नीव जमाना या डालना या देना = दीवार उठाने के लिये नीव के गड्ढे में ईंट, पत्थर आदि जमाकर आधार खड़ा करना। दीवार की जड़ जमाना। (किसी बात की) नीवें जमाना = (१) आधार दृढ़ करना। स्थिर करना। स्थापित करना। (२) गभं स्थित करना। पेट रखना। (किसी वस्तु या बात की) नीव डालना या देना = आधार खड़ा करना। जड़ जमाना। सूत्रपात करना। बुनियाद डालना। आरंभ करना। जैसे,— कलाइव ने अंगरेजी राज्य की नीवें डाली। नीवें पड़ना = (१) घर की दीवार का आधार खड़ा होना। घर बनने का लगना लगाना। उ०—शोक की नीव परी हरि लोक बिलोकत गंग तरंग तिहारे।—(शब्द०)। (२) आरंभ होना। सूत्रपात होना। जड़ खड़ी होना या जमना। जैसे, भगड़े की नीवें पड़ना, राज्य की नीव पड़ना।

३. जड़। मूल। स्थिति। आधार।

नीव—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'नीव'।

नीवर—संज्ञा पुं० [सं०] १. मित्र। परियाजक। १. बाणिज्य। ३. कोषड़। ४. जल। ५. व्यापारी। बाणिज्य करनेवाला (को०)। ६. गृह-निर्माण-योग्य-भूमि (को०)।

नीवाक—संज्ञा पुं० [सं०] १. प्रकाल के समय भ्रम की बढ़ी हुई आवश्यकता या भाव। २. प्रकाल। दुर्मिष (को०)।

नीवानास^३—संज्ञा पुं० [हि० नीव+नास] जड़ मूल से नाश। मत्तानाश। बरबादी। ध्वंस।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

नीवानास^३—वि० चोपट। नष्ट। बरबाद।

क्रि० प्र०—करना।—जाना।—होना।

नीवार—संज्ञा पुं० [सं०] पसही या निजो का आवरण। मुन्धन।

नीवारक—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'नीवार' (को०)।

नीवि—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. कमर में लपेटे हुए धोती की वह गाँठ जिसे स्त्रियाँ पेट के नीचे सूत की डोरी से या यों ही बाँधती हैं। कटिवस्त्रबंध। फुफुंड़ी। नारा। ३. लहंगे में पड़ी हुई वह डोरी जिससे सहंसा कमर में बाँधा जाता है। हजारबंद। ४. साड़ी। धोती। ५. कौटिल्य के अनुसार वह धन जिसके व्याज आदि की आय किसी काम में खर्च की जाय और जो सदा रक्षित रहे। स्थायी कोष। ६. खर्च करने के बाद बची हुई पूँजी। (कौटि०)।

नीवी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. निधि। स्थायी कोष। दे० 'नीवि'। उ०—इस संबंध में हिंदी में उत्तमोत्तम ग्रंथों के प्रकाशन के लिये एक अत्यंत नीवी की व्यवस्था का भी सूत्रपात हो जाय।—कल्या (परिचय)।

३-५८

नीवीप्राहक—संज्ञा पुं० [सं०] कौटिल्य के अनुसार वह व्यक्ति जिसके पास चंदा या किसी दूसरे व्यक्ति का धन जमा हो और जो उस धन का प्रबंध करता हो। खजानची।

नीवृत्—संज्ञा पुं० [सं०] १. जनपद। २. ग्रामसमूह। देश (को०)।

नीत्र—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'नीत्र' (को०)।

नीशार—संज्ञा पुं० [सं०] १. सरदो, हवा आदि से बचाव के लिये परदा। कनात। २. मसहरी।

नीसी—संज्ञा पुं० [दे०] सफेद धनूरा।

नीसक(पु)—वि० [हि० नि + सक (= शक्ति)] मायध्यहीन। शक्तिहीन।

नीसान(पु)—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'निषान'।

नीसानी—संज्ञा स्त्री० [?] तेईस मात्राओं का एक छंद जिसमें १३वीं और १०वीं मात्रा पर विराम होता है। यह उपमान के नाम से अधिक प्रसिद्ध है। यथा,—भाई सूरज मरुल से कहना यह भाई। हम तुम बदे साहि के बुझै न लराई।—सूदन (मन्द०)।

नीसार(पु)—संज्ञा पुं० [सं० नीशार] पर्दा। कनात। दे० 'नीशार'।

नीसू—संज्ञा पुं० [सं० निष्ठा] जमीन में गड़ा हुआ काठ का कुंदा जिसपर रखकर चारा या गन्ना काटते हैं।

नीहा—संज्ञा स्त्री० [दे०] दे० 'नीव'।

नीहार—संज्ञा पुं० [सं०] १. कुहरा। २. पाला। हिम। तुषार। बर्फ। ३. बाहर करना। रीता करना (को०)।

नीहारकर—संज्ञा पुं० [सं०] चंद्रमा (को०)।

नीहारजल—संज्ञा पुं० [सं०] शोभाविधु। शबनम (को०)।

नीहारिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] आकाश में भूँ या कुहरे की तरह फैला हुआ क्षीण प्रकाशपुंज जो अंधेरी रात में सफेद धब्बे की तरह कहीं कहीं दिखाई पड़ता है।

विशेष—नीहारिका के धब्बे हमारे सौर जगत् से बहुत दूर हैं। दूरबीन के द्वारा देखने से ऐसे बहुत से धब्बों का पता अबतक लग चुका है जो भिन्न भिन्न अवस्थाओं में हैं। कुछ धब्बे तो ऐसे हैं जो धब्बों से धब्बों दूरबीनों से देखने पर भी कुहरे या भाप के रूप के ही दिखाई पड़ते हैं, और कुछ एक दम छोटे छोटे तारों से मिलकर बने पाए जाते हैं और वास्तव में तारकगुच्छ हैं। आकाश गंगा में इस प्रकार के तारकगुच्छ बहुत से हैं। इन तीनों में शुद्ध नीहारिका एक प्रकार के धब्बे ही हैं जो प्रारंभिक अवस्था में हैं। इनसे घानी हुई किरणों की रश्मिविश्लेषण यत्र मे परीक्षा करने से कुछ में कई प्रकार की आलोकरेखाएँ पाई जाती हैं। इनमें से कई एक का तो निश्चय नहीं होता कि किम द्रव्य से घाते हैं, तीन का पता लगता है कि वे हाइड्रोजन (उत्जन) की रेखाएँ हैं।

ज्योतिर्विज्ञानियों का कथन है कि नीहारिका के धब्बे यह नक्षत्रों के उपादान हैं। इन्हीं के क्लमः घनीभूत होकर जमते जमते नक्षत्रों और भोकपिंडों की मृत्ति होती हैं। इनमें अत्यंत अधिक मात्रा का ताप होता है। हमारा यह सूर्य अपने यहाँ और उपग्रहों के साथ आरभ में नीहारिका रूप में था।

नु—प्रथम [न०] विकल्प, संदेह, वितर्क, अनिश्चय आदि प्रथों में प्रयुक्त प्रथम। कि के साथ प्रयुक्त होने पर यह संभावना, निश्चयादि अर्थ व्यक्त करता है।

नुकता^१—संज्ञा पुं० [अ० नुकतह] १. बिंदु। बिंदी। २. शून्य। सिफर (को०)। २. चिह्न। हाथ। निशान। घंटा (को०)।

नुकता^२—संज्ञा पुं० [अ० नुकतह] १. चुटकुना। फबती। लगती हुई उक्ति।

क्रि० प्र०—छेड़ना।—छोड़ना।

२. ऐब। दोष। दुर्गुण।

क्रि० प्र०—निकासना।

यौ०—नुकताची। नुकताचीनी।

३. भावर के रूप का वह परदा जो चोड़ों के माथे पर इसलिये बांधा जाता है जिसमें बाँध में मनिष्या न आवें। तिन्हारी।

नुकताची^१—वि० [फ्रा० नुकतहची] दे० 'नुकताचीन'।

नुकताचीन^१—वि० [फ्रा० नुकतहचीन] ऐब हूँढनेवाला या निकासनेवाला। दोष हूँढनेवाला या निकासनेवाला। छिद्रान्वेषी।

नुकताचीनी^१—संज्ञा स्त्री० [फ्रा०] छिद्रान्वेषण। दोष निकासने का काम।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

नुकती^१—संज्ञा स्त्री० [फ्रा० नकुती] एक प्रकार की मिठाई। बेसन की छोटी महीन कुंविया।

नुकना^१—क्रि० प्र० [हि० नुकना] नुकना। छिपना।

नुकरा^१—संज्ञा पुं० [अ० नुकरह] १. चाँदी। २. चोड़ों का सफेद रंग।

नुकरा^२—वि० सफेद रंग का (चोड़ा)।

नुकरी^१—संज्ञा स्त्री० [दे०] जलाशयों के पास रहनेवाली एक चिड़िया जिसके पैर सफेद और बाँध काँची होती है।

नुकसान^१—संज्ञा पुं० [अ०] १. कमी। घटी। ह्रास। क्षीज। जैसे,—सीढ़ में रखने से इसने कामज का नुकसान हो गया। २. हानि। बाटा। फायदा का उलटा। बिबाध। क्षति। पास की वस्तु का जाता रहना।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

मुहा०—नुकसान उठाना = हानि सहना। पत्ने का खोना। क्षतिग्रस्त होना। नुकसान पहुँचना = नुकसान होना। नुकसान पहुँचाना = हानि करना। क्षतिग्रस्त करना। नुकसान भरना = हानि की पूर्ति करना। बाटा पूरा करना।

३. बिगाड़। खराबी। दोष। अवगुण। बिकार।

मुहा०—(किसी को) नुकसान करना = दोष उत्पन्न करना। अवस्थ कराना। स्वास्थ के प्रतिकूल होना। जैसे,—घालू हमें बहुत नुकसान करता है।

नुकाई^१—संज्ञा स्त्री० [दे०] खुरपी से मिराने का काम।

नुकाना^१—क्रि० स० [हि० नुकना] नुकाना। छिपाना।

नुकाना^२—क्रि० स० [दे०] खुरपी से मिराना।

नुकीला^१—वि० [हि० नोक+ईला (प्रथ०)] [वि० स्त्री० नुकीली] १. नोकदार। जिसमें नोक निकली हो। जो छोर की ओर बराबर पतला होता गया हो। २. नोक झोंक का। बाँका तिरछा। सुंदर ढंग का। सजीला। जैसे, नुकीला जवान।

नुकीली^१—वि० स्त्री० [हि० नुकीला] दे० 'नुकीला'।

नुक्कड़^१—संज्ञा पुं० [हि० नोक का अर्था०] १. नोक। पतला सिरा। २. सिरा। छोर। अंत। जैसे,—गली के नुक्कड़ पर वह दुकान है। ३. कोना। निकला हुआ कोना।

नुक्का^१—संज्ञा पुं० [हि० नोक] १. नोक।

यौ०—नुक्का टोपी = पतली दोपलिया टोपी जो लखनऊ में दी जाती है।

२. गेड़ी के खेल में एक लकड़ी।

मुहा०—नुक्का मारना या लगाना = (१) गेड़ी मारना। गेड़ी के खेल में लकड़ी मारना। (२) कील ठोकना। बाधा पहुँचाना। कष्ट पहुँचाना।

नुक्स^१—संज्ञा पुं० [अ० नुक्स] १. दोष। ऐब। खराबी। बुराई।

क्रि० प्र०—निकलना।—निकालना।

२. नुटि। कसर।

नुखरना^१—क्रि० अ० [दे०] भालू का चित्त सेटना (कलंदर)।

नुखाट^१—संज्ञा स्त्री० [दे०] छड़ी की मार जो कलंदर भालू के मुँह पर मारते हैं। (कलंदर)।

नुगधी^१—संज्ञा स्त्री० [हि० नुकती] दे० 'नुकती'।

नुचना^१—क्रि० अ० [सं० नुञ्चन] १. धंस या धंग से लगी हुई किसी वस्तु का झटके से खिचकर भलग होना। खिचकर भलग होना। खिचकर उखड़ना। उड़ना, जैसे, बाल नुचना। पशी नुचना। २. खरोबा जाना। नाखून आदि से छिलना।

संयो० क्रि०—जाना।

नुचवाना^१—क्रि० स० [हि० नोचन का प्रेरक] नोचने का काम कराना। नोचने में प्रवृत्त करना। नोचने देना।

संयो० क्रि०—डालना।—देना।

नुजट^१—संज्ञा पुं० [दे० ?] संगीत में १४ जोभाषों में से एक।

नुत्त^१—वि० [सं०] स्तुत। प्रशंसित। बंदित। जिसकी स्तुति या प्रशंसा की गई हो।

नुति^१—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. स्तुति। वंदना। २. पूजा।

नुत्त^१—वि० [सं०] १. चलाया हुआ। क्षिप्त। २. प्रेरित।

नुत्का^१—संज्ञा पुं० [अ० नुत्कह] बीर्य। शुक।

मुहा०—नुत्का ठहरना = गर्भ रहना।

यौ०—नुत्काहराम।

२. संतति। औसाद।

नुत्काहराम^१—वि० [अ० नुत्काहराम] १. जिसकी उत्पत्ति अविचार से हो। वर्णसंकर। दोगला। २. कमीना। बदमाश (नाली)।

नुनखारा^१—वि० [हि० नून+खारा] स्वाद में नमक सा खारा। नमकीन।

नुनखारा^२—वि० [हि०] दे० 'नुनखारा'।

नुनना^१—क्रि० स० [सं० ननन, नून] नुनना। खेत काटना।

नुनाई^७—संज्ञा स्त्री० [हि० 'नून' से, नोना, नोनो (= सुंदर या लोना)] लावण्य । सुंदरता । सलोनापन ।

नुनी—संज्ञा स्त्री० [दे०] छोटी जाति का तूत जो हिमालय पर काश्मीर से लेकर सिक्किम तक तथा बरमा और दक्षिण भारत के पहाड़ों पर भी होता है ।

नुनेरा—संज्ञा पुं० [हि० नून + एरा (प्रत्य०)] १. नौनी मिट्टी आदि से नमक निकालनेवाला । नमक बनाने का रोजगार करनेवाला । २. लोनिया । नोनिया । (इस जाति के लोग पहले नमक निकाला करते थे) ।

नुमा—वि० [फ्रा०] १. दिखानेवाला । बतानेवाला । २. समान । तुल्य । (समासांत में प्रयुक्त) जैसे, खुननुमा, बदननुमा, राहुनुमा [को०] ।

नुमाइंदगी—संज्ञा स्त्री० [फ्रा०] प्रतिनिधित्व [को०] ।

नुमाइदा—संज्ञा पुं० [फ्रा० नुमाइन्दा] प्रतिनिधि ।

नुमाइश—संज्ञा स्त्री० [फ्रा०] १. दिखावट । दिखावा । प्रदर्शन । बिलाने या प्रगट करने का भाव । तड़क भड़क । ठाट बाट । सज धज । २. नाना प्रकार की वस्तुओं का कुतूहल और परिचय के लिये एक स्थान पर दिखाया जाना ।

यौ०—नुमाइशगाह ।

४. वह मेला जिसमें अनेक स्थानों से इकट्ठी की हुई उत्तम और अद्भुत वस्तुएँ दिखाई जाती हैं । प्रदर्शनी ।

नुमाइशगाह—संज्ञा स्त्री० [फ्रा०] वह स्थान जहाँ अनेक प्रकार की उत्तम और अद्भुत वस्तुएँ इकट्ठी करके दिखाई जायें ।

नुमाइशी—वि० [फ्रा०] १. दिखाऊ । दिलीवा । जो दिखावट के लिये हो, किसी प्रयोजन का न हो । जो देखने में मझकीला और सुंदर हो, पर टिकाऊ या काम का न हो । २. जिसमें ऊपरी तड़क भड़क हो, भीतर कुछ सार न हो ।

नुमायी—वि० [फ्रा०] अक्त । बाहिर । स्पष्ट [को०] ।

नुसखा—संज्ञा पुं० [अ०] १. लिखा हुआ कागज । २. कागज का वह पत्र जिसपर हुकीम या वैद्य गीरी के लिये औषध और सेवकविधि आदि लिखते हैं । दवा का पुरजा । ३. रोगी के लिये लिखी हुई औषधियाँ और उनकी सेवकविधि आदि ।

मुहा०—नुसखा बाँचना = हुकीम या वैद्य के लिये अनुसार दवाई देना । पंसारी या अत्तार का काम करना । नुसखा लिखना = रोगी को दवा औषध की व्यवस्था करना । दवा लिखना ।

नुहरना—क्रि० अ० [हि० निहरना] दे० 'निहरना' ।

नूत^१—वि० [सं० नूतन नूत] १. नया । नवीन । नूतन । उ०—अरुन नूत वस्त्रधर रंग भीजी गायिनी ।—सूर (शब्द०) । (क) इत बिधि नूत कबहुँ न उर धानहीं ।—राम चं०, पृ० ११४ । २. अनोखा । प्रसूता । उ०—मुने मौला कहत हैं कले धनिया नाव । और तदन में नूत यह तेरो धन्य सुभाव ।—(शब्द०) ।

नूत^२—वि० [सं०] दे० 'नूत' [को०] ।

नूतन—वि० [सं०] १. नया । नवीन । २. हाल का । ताजा । ३. अनोखा । अपूर्व । विशाल ।

नूतनता—संज्ञा स्त्री० [सं०] नूतन का भाव । नवीनता । नयापन ।

नूतनत्व—संज्ञा पुं० [सं०] नयापन ।

नूतन—वि० [सं०] दे० 'नूतन' ।

नूत—संज्ञा पुं० [सं०] सहस्रत ।

नूषा—संज्ञा पुं० [दे०] एक प्रकार का तंबाकू ।

नून^१—संज्ञा पुं० [दे०] १. पाव । २. धान की जाति की एक मत्ता जो दक्षिण भारत तथा आसाम, बरमा आदि देशों में होती है ।

विरोध—इससे भी एक प्रकार का खाल रंग निकलता है । इसका व्यवहार भारतवर्ष में कम पर आवा आदि द्वीपों में बहुत होता है ।

नून^२—संज्ञा पुं० [सं० नवण, हि० नोन] नमक ।

मुहा०—नून तेज = गृहस्थी का सामान ।

नून^३—वि० [सं० नून, प्रा० गुण] दे० 'नून' । उ०—(क) सुनो के परम पद ऊनो के अनंत मध नूनी के नदीस नद इंदिरा फुरे परी ।—इतिहास, पृ० २१७ । (ख) ब्रह्महि सञ्जन हिये महे होन देत नहि नून ।—रसनिधि (शब्द०) ।

नूनताई^७—संज्ञा स्त्री० [सं० नूनता, हि० नूनता + ई (प्रत्य०)] दे० 'नूनता' ।

नूनी—संज्ञा स्त्री० [सं० नून, हि० नून] निर्दोष, विशेषतः बच्चों की ।

नूपुर—संज्ञा पुं० [सं०] १. पैर में पहनने का लियों का एक गहना । पंजनी । पुंगुल । २. नख के पहले भेद का नाम । ३. इक्ष्वाकुवंशीय एक राजा ।

नूका—संज्ञा पुं० [?] १४ मात्राओं का एक छंद जो कउजल के नाम से अधिक प्रसिद्ध है । यथा, खलबल परी दुग मझार । दलबल दपट बेलि अपार । खलबल करत मर अह नार । खल बल कोट ओठ निहार ।

नूर—संज्ञा पुं० [अ०] १. प्रकाश । ज्ञान । जैसे,—सुधा का नूर ।

मुहा०—नूर का तड़का = बहुत सचेरा । प्रातःकाल । नूर बरसना = प्रभा का अधिकता से प्रकट होना ।

२. श्री । कांति । शोभा । ३. ईश्वर का नाम (सूफी) । ४. संगीत में बारह नूकामों में से एक ।

यौ०—नूरचरम = आँखों की रोशनी । सड़का । सुपुत्र । नूर-चरमी = कन्या । सुपुत्री । नूरचाफ ।

नूरचाफ—संज्ञा पुं० [अ० नूर + फ्रा० चाफ] जुलाहा । तँती ।

नूरा^१—संज्ञा पुं० [फ्रा०] वह कुश्ती जो आपस में मिलकर लड़ी जाय अर्थात् जिसमें जोड़ एक दूसरे के विरोधी न हों (पहलवान) ।

नूरा^२—वि० [अ० नूर] नूरवाला । तेजस्वी । उ०—दधिकदंभ खेलत रघुवंशी वरनारी मय तूरे ।—रघुराज (शब्द०) ।

नूरी—संज्ञा स्त्री० [दे०] एक चिट्ठी ।

नूह—संज्ञा पुं० [अ०] खानी या इब्रानी (यहूदी, ईसाई, मुसलमान) मतों के अनुसार एक पैंबंवर का नाम ।

विरोध—इनके समय में बड़ा भारी तूफान आया था । इस तूफान में सारी सृष्टि बलमग्न हो गई थी, केवल नूह का परिवार

घोर कुछ पशु एक क्षिती पर बैठकर बने थे। कहते हैं उन्हीं से फिर नए सिरे से सृष्टि चली।

नृ संज्ञा पुं० [सं०] १. नर। मनुष्य। २. कतरंज या बीसर की गोट (को०)। ३. प्रधान। मुखिया। नेता (को०)।

नृकपाल—स्त्री० पुं० [सं०] मनुष्य की खोपड़ी।

नृकलेवर—संज्ञा पुं० [सं०] मनुष्य का घृत शरीर। मनुष्य का शव।

नृकेशरी—संज्ञा पुं० [सं० नृकेशरिन्] १. नृसिंह अवतार। २. मनुष्यों में सिंह के समान पराक्रमी पुरुष। श्रेष्ठ पुरुष।

नृग—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक राजा जिन्हें गिरगिट योनि में रहकर कृत पाप का फल भोगना पड़ा था।

विशेष महाभारत में इनकी कथा इस प्रकार है—राजा नृग बड़े दानी थे। उन्होंने न जाने कितने योदान आदि किए थे। एक बार उनकी गायों के भुंड में किसी एक ब्राह्मण की गाय आ मिली। राजा ने एक बार एक ब्राह्मण को महत्त्व गो दान में दीं जिनमें वह ब्राह्मणवाली गाय भी थी। ब्राह्मण ने जब अपनी गाय को पहचाना तब दोनों ब्राह्मण राजा नृग के पास आए। राजा नृग ने जिस ब्राह्मण को गाय दान में दी थी उसे गाय बदल लेने के लिये बहुत समझाया पर उससे एक न मानी। अंत में वह दूसरा ब्राह्मण उदास होकर चला गया। जब राजा का परलोकवास हुआ तब उन्हीं यम ने कहा कि आपका पुण्य-फल बहुत है पर ब्राह्मण की गाय हरने का पाप भी आपको लगा है। चाहे पाप का फल पहले भोगिए, चाहे पुण्य का। राजा ने पाप का हों फल पहले भोगना चाहा अतः वे महत्त्व वर्ष के लिये गिरगिट होकर एक कुएँ में रहने लगे। अंत में श्रीकृष्ण के हाथों से उनका उद्धार हुआ।

२. मनु के पुत्र का नाम। ३. योधेय वंश का आदि पुरुष जो नृगा के गर्भ से उत्पन्न उशीनर का पुत्र था। ४. परमात्मा (को०)।

नृगा—संज्ञा स्त्री० [सं०] राजा उशीनर की पत्नी का नाम।

नृघ्न—वि० [सं०] नरघातक।

नृजल—संज्ञा पुं० [सं०] मानव मूत्र। मनुष्य का पेशाब (को०)।

नृसक(पुं०) संज्ञा पुं० [सं० नृसक] दे० 'नर्तक'।

नृतना(पुं०)—क्रि० प्र० [सं० नृत] दे० 'नृतन'।

नृति—संज्ञा स्त्री० [सं०] नाच। नृत्य।

नृतु—संज्ञा पुं० [सं०] १. नाचनेवाला। नर्तक। २. पुष्यी। खरती (को०)। ३. दीर्घ। बड़ा (को०)। ४. कौट। कुम्भि (को०)।

नृतु—संज्ञा पुं० [सं०] १. नर्तक। २. नर्तकसक।

नृत्य—संज्ञा पुं० [सं०] नृत्य। अभिनय। हाव भाव से युक्त नाच। भावों का आश्रय लेकर किया जानेवाला नाच।

नृत्यना(पुं०)—क्रि० प्र० [सं० नृत] नाचना। नृत्य करना।

नृत्य—संज्ञा पुं० [सं०] संगीत के ताल और गति के अनुसार हाव भाव हिलाने, उछलने कूदने आदि का व्यापार। नाच। नर्तन।

विशेष—इतिहास, पुराण, स्मृति इत्यादि सबमें नृत्य का उल्लेख मिलता है। संगीत के ग्रंथों में नृत्य के दो भेद किए गए हैं—तांडव और लास्य। जिसमें उग्र और उदत चेष्टा हो उसे तांडव कहते हैं और जो सुकुमार ग्रंथों से किया जाय तथा जिसमें शृंगार आदि कोमल रसों का संचार हो उसे लास्य कहते हैं। 'संगीत नारायण' में लिखा है कि पुरुष के नृत्य को तांडव और स्त्री के नृत्य को लास्य कहते हैं। 'संगीतशामोदर' के मत से तांडव और लास्य भी दो दो प्रकार के होते हैं—पेलवि और बहुकपक। अभिनयशून्य ग्रंथविशेष को पेलवि कहते हैं। जिसमें खेद, भेद तथा अनेक प्रकार के भावों के अभिनय हों उसे बहुकपक कहते हैं। लास्य नृत्य दो प्रकार का होता है—छुरित और यौवन। अनेक प्रकार के भाव दिखाते हुए नायक नायिका एक दूसरे का चुंबन आसिगमन आदि करते हुए जो नृत्य करते हैं वह छुरित कहलाता है। जो नाच नाचनेवाली अकेले या ही नाचे वह यौवन है। इसी प्रकार संगीत के ग्रंथों में हाथ, पैर, मस्तक आदि की विविध गतियों के अनुसार अनेक भेद उपभेद किए गए हैं। वर्णशास्त्रों में नृत्य से जीविका करनेवाले निम्न कहे गए हैं।

नृत्यकी(पुं०)—संज्ञा स्त्री० [सं० नर्तकी] दे० 'नर्तकी'।

नृत्यप्रिय—संज्ञा पुं० [सं०] १. महादेव (जिन्हें तांडव नृत्य प्रिय है)। २. कातिकेय का एक अनुचर।

नृत्यशाला—संज्ञा स्त्री० [सं०] नाचघर।

नृत्यस्थान—संज्ञा पुं० [सं०] रंगमंच। रंगशाला (को०)।

नृदुर्ग—संज्ञा पुं० [सं०] सेना का चारो ओर का घेरा।

नृदेव—संज्ञा पुं० [सं०] १. राजा। २. ब्राह्मण।

नृधर्मा—संज्ञा पुं० [सं० नृधर्मन्] कुबेर।

नृदेवता—संज्ञा पुं० [सं०] राजा। उ०—देवता अदेवता नृदेवता जिते जहान।—केशव (शब्द०)।

नृपञ्जय—संज्ञा पुं० [सं० नृपञ्जय] एक पुरुवंशीय राजा।

नृप—संज्ञा पुं० [सं०] नरपति। राजा।

नृपकन्द—संज्ञा पुं० [सं० नृपकन्द] लाल व्याज।

नृपगृह—संज्ञा पुं० [सं०] राजप्रासाद। राजमहल। उ०—मंदिर मनि समुह जनु तारा। नृपगृह कलस सो इंदु उदारा।—मानस, १। १६५।

नृपता—संज्ञा स्त्री० [सं०] राजापन। राजा का गुण या भाव।

नृपति—संज्ञा पुं० [सं०] १. राजा। २. क्षत्रिय (को०)। ३. कुबेर।

नृपद्रुम—संज्ञा पुं० [सं०] १. अभिलतास। २. खिरनी का पेड़।

नृपनय—संज्ञा पुं० [सं०] नृपनीति। राजनीति। उ०—करब साधुमत लोकमत नृपनय निगम निचोरि।—मानस, २। २५७।

नृपनीति—संज्ञा संज्ञा [सं०] राजनीति। राजधर्म। उ०—मैं बड़ छोट बिचारि जिय करत रहेउ नृपनीति।—मानस, २। ३१।

नृपद्रोही—संज्ञा पुं० [सं० नृपद्रोहिन्] परशुराम। उ०—भृगुवर परसु देखावहु मोही। बिप्र बिचारि क्यों नृपद्रोही।—मानस, १। २७५।

नृपपथ—संज्ञा पुं० [सं०] राजपथ । प्रधान मार्ग । राजमार्ग (को०) ।
 नृपप्रिय—संज्ञा पुं० [सं०] १. लाल प्याज । २. रामशर । सरकंडा ।
 ३. एक प्रकार का बंस । ४. जड़हन धान । ५. घाम का पेड़ । ६. राजसुभा । पहाड़ी या पर्वती तोता ।
 नृपप्रियफला—संज्ञा स्त्री० [सं०] बेगन ।
 नृपप्रिया—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. केतकी । २. पिंड खजूर ।
 नृपवदर—संज्ञा पुं० [सं०] बड़ी जात का बेर (को०) ।
 नृपमांगल्य—संज्ञा पुं० [सं०] नृपमाङ्गल्य तरवट का पेड़ । घाहुन ।
 नृपमान—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का बाजा जो राजाओं के भोजन के समय बजाया जाता था ।
 नृपलक्ष्म—संज्ञा पुं० [सं०] राजचिह्न । नृपचिह्न (को०) ।
 नृपलिंग—संज्ञा पुं० [सं०] नृपलिंग] दे० 'नृपलक्ष्म' (को०) ।
 नृपवल्लभ—संज्ञा पुं० [सं०] १. राजाप्रवृद्ध । २. राजा का प्रिय व्यक्ति (को०) ।
 नृपवल्लभा—संज्ञा स्त्री० [सं०] केतकी ।
 नृपवृक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] सोनालु का पेड़ ।
 नृपशासन—संज्ञा पुं० [सं०] राजाशा । राजा का आदेश (को०) ।
 नृपशु—संज्ञा पुं० [सं०] १. मनुष्य रूपी पशु । मनुष्य जो पशु के समान हो । २. यज्ञ में बलि देने के लिये चुना हुआ मनुष्य (को०) ।
 नृपसभा—संज्ञा पुं० [सं०] राजाओं की सभा । वह सभा जिसमें बहुत से राजा सम्मिलित हों (को०) ।
 नृपसुत—संज्ञा पुं० [सं०] राजकुमार । राजपुत्र । ३०—एक कहकड़ा नृपसुत वैष्णवी । सुने जे मुनि संग आए काली ।—मानस, १। २२१ ।
 नृपसभा—संज्ञा स्त्री० [सं०] राजसभा । राजा का दरबार (को०) ।
 नृपसुता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. राजकन्या । राजकुमारी । २. छद्मदेवी । छद्मदेवी ।
 नृपांश—संज्ञा पुं० [सं०] १. राजा का कर । उपज का वह निर्धारित छठा या पाठवीं भाग जो राजा को कर के रूप में मिलता था । २. राजपुत्र (को०) ।
 नृपात्मज—संज्ञा पुं० [सं०] राजकुमार ।
 नृपात्मजा—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. राजकन्या । २. कड़ुवा घीया । कड़ई तूँबी ।
 नृपाध्वर—संज्ञा पुं० [सं०] राजसूय यज्ञ ।
 नृपान्न—संज्ञा पुं० [सं०] राजभोग धान ।
 नृपाभोर—संज्ञा पुं० [सं०] एक प्रकार का बाजा जो राजाओं के भोजन के समय बजाया जाता था ।
 नृपामय—संज्ञा पुं० [सं०] राजयक्ष्मा । क्षयरोग । राजरोग ।
 नृपाक्ष—संज्ञा पुं० [सं०] (मनुष्यों का पालन करनेवाला) राजा । दे० 'नृपति' ।
 नृपावर्त—संज्ञा पुं० [सं०] राजावर्त । एक प्रकार का रत्न ।
 नृपासन—संज्ञा पुं० [सं०] यन्त्रासन । राजचिह्नासन । तक्ष ।

नृपाक्ष, नृपाक्षय—संज्ञा पुं० [सं०] १. राजा कहलानेवाला । राजा नामधारी । २. लाल प्याज ।
 नृपोचित^१—वि० [सं०] जो राजाओं के योग्य हो ।
 नृपोचित^२—संज्ञा पुं० १. राजमाष । काला बड़ा उरद । २. लोबिया ।
 नृमण—संज्ञा स्त्री० [सं०] भागवत में वर्णित प्लक्ष द्वीप की एक महानदी ।
 नृमणि—संज्ञा पुं० [सं०] एक पिशाच या भूत जो बच्चों को लगकर तंग किया करता है ।
 नृमर—संज्ञा पुं० [सं०] (मनुष्यों को मारनेवाला) राक्षस ।
 नृमिथुन—संज्ञा पुं० [सं०] श्री पुरुष का जोड़ा ।
 नृमेघ—संज्ञा पुं० [सं०] नरमेघ या पुरुषमेघ यज्ञ ।
 नृम्ण^१—वि० [सं०] प्रमत्त करनेवाला (को०) ।
 नृम्ण^२—संज्ञा पुं० [सं०] १. कृष्ण । २. पीरप । ३. साहस । ४. धन (को०) ।
 नृयज्ञ—संज्ञा पुं० [सं०] पंच यज्ञों में से एक जिसका करना गृहस्थ के लिये कर्तव्य है । प्रतिष्ठापूजा । अभ्यागत का सत्कार ।
 नृलोक—संज्ञा पुं० [सं०] नरलोक । मनुष्यलोक । मर्त्यलोक ।
 नृवराह—संज्ञा पुं० [सं०] वाराहरूपधारी भगवान् विष्णु ।
 नृवाहन—संज्ञा पुं० [सं०] नरवाहन । कुबेर (को०) ।
 नृवेष्टन—संज्ञा पुं० [सं०] शिव । महादेव (को०) ।
 नृशंस—वि० [सं०] १. लोगों को कष्ट या पीड़ा पहुँचानेवाला । क्रूर । निर्दय । २. अनिष्टकारी । अपकारी । अत्याचारी । जातिम ।
 नृशंसता—संज्ञा स्त्री० [सं०] निर्दयता । क्रूरता ।
 नृशृंग—संज्ञा पुं० [सं०] नृशृङ्ग] मनुष्य की सींग के समान बनहोनी बात या वस्तु । अलोक्यवाच्य ।
 नृसिंह—संज्ञा पुं० [सं०] १. सिंहरूपी भगवान् विष्णु । विष्णु का चौथा अवतार ।

विशेष—हरिवंश में लिखा है कि मत्स्ययुग में दैत्यों के आदि पुरुष हिरण्यकशिपु ने घोर तप करके ब्रह्मा से वर माँग लिया कि न मैं देव, असुर, गंधर्व, नाग, राक्षस या मनुष्य के हाथ से मारा जा सकूँ, न अस्त्र, शस्त्र, वृक्ष, शैल तथा सूखे या भीमे पदार्थ से मरूँ; घोर न स्वर्ग, मर्त्य आदि किसी लोक में वा दिन, रात किसी काल में मेरी मृत्यु हो सके । इस प्रकार का वर पाकर वह दैत्य अत्यंत प्रबल हो उठा और स्वर्ग आदि छीनकर देवताओं को बहुत सताने लगा । देवता लोग विष्णु भगवान् की शरण में गए । विष्णु ने उन्हें अभयदान देकर अत्यंत भीषण नृसिंह मूर्ति धारण की जिसका पाधा क्षीर मनुष्य का और आधा सिंह का था । जब यह नृसिंह मूर्ति हिरण्यकशिपु के पास पहुँची तब उसके पुत्र प्रह्लाद ने कहा कि यह मूर्ति देवी है, इसके भीतर सारा चराचर जगत् दिलाई पड़ता है । जाब पड़ता है, सब दैत्यकुल नष्ट होगा । यह सुनकर हिरण्यकशिपु ने अपने दैत्यों से नृसिंह को मारने के लिये कहा । पर जितने दैत्य मारने गए सब नष्ट हुए । अंत में हिरण्यकशिपु आप उठकर युद्ध करने लगा । हिरण्यकशिपु के

कुछ नेत्रों की उवासा से समुद्र का जल खलबला उठा, सारी पृथ्वी डीवाडोल हुई और लोकों में हाहाकार मच गया। देवताओं का अंतनाद सुन नृसिंह भगवान् अत्यंत जीवण गर्जन करके दैत्य पर भपटे और उन्होंने उसका पेट काट डाला।

भागवत और विष्णु पुराण में सब कथा तो यही है पर प्रह्लाद की भक्ति का प्रसंग अधिक है। भागवत में लिखा है कि हिरण्यकशिपु वर पाकर बहुत प्रबल हुआ और स्वर्ग आदि लोकों को जीतकर राज्य करने लगा। उसके चार पुत्र थे जिनमें प्रह्लाद विष्णु भगवान् का बड़ा भारी भक्त था। शुक्राचार्य का पुत्र दैत्यराज के पुत्रों को पढ़ाता था। एक दिन हिरण्यकशिपु ने परीक्षा के लिये सब पुत्रों को अपने सामने बुलाया और कुछ सुनाने के लिये कहा। प्रह्लाद, विष्णु भगवान् की महिमा गाने लगा। इसपर दैत्यराज बहुत बिगड़ा। क्योंकि वह विष्णु का घोर द्वेषी था। पर बिगड़ने का कुछ भी फल नहीं हुआ। प्रह्लाद की भक्ति दिन पर दिन अधिक होती गई। पिता के द्वारा अनेक ताड़न और कष्ट सहकर भी प्रह्लाद भक्ति पर टढ़ रहे। धीरे धीरे बहुत से सहपाठी बालकों का दल प्रह्लाद का अनुयायी हो गया। इसपर दैत्यराज ने क्रुपित होकर प्रह्लाद से पूछा कि 'तू किसके बल पर इतना कूदता है? प्रह्लाद ने कहा 'भगवान् के, जिसके बल पर यह सारा संसार चल रहा है'। हिरण्यकशिपु ने पूछा 'तेरा भगवान् कहां है?' प्रह्लाद ने कहा वह सदा सर्वत्र रहता है। दैत्यराज ने दाँत पीसकर पूछा 'क्या इस खंभे में भी है?' प्रह्लाद ने कहा 'अवश्य'। हिरण्यकशिपु खड़्ग लेकर बार बार खंभे की ओर देखने लगा। इतने में खंभे के भीतर से प्रलय के समान कवच हुआ और नृसिंह ने निकलकर दैत्यराज का वध किया।

२. श्रेष्ठ पुरुष। ३. एक रतिबंध।

नृसिंह चतुर्दशी—संज्ञा स्त्री० [सं०] वैशाख शुक्ल चतुर्दशी।

विशेष—इस तिथि को नृसिंह जी का अवतार हुआ था इससे इस दिन व्रत, पूजन, उत्सव आदि किए जाते हैं।

नृसिंह पुराण—संज्ञा पुं० [सं०] एक उपपुराण।

नृसिंहपुरी—संज्ञा पुं० [सं०] एक तीर्थ जो मुलतान में कहा जाता है।

नृसिंहवन—संज्ञा पुं० [सं०] ब्रह्मसंहिता के अनुसार कूर्म विभाग में पश्चिम उत्तर स्थित एक देश।

नृसोम—संज्ञा पुं० [सं०] वह जो अनुष्यों में चंद्रमा के सदृश हो। नरश्रेष्ठ।

नृहरि—संज्ञा पुं० [सं०] नृसिंह।

ने—प्रत्य० [सं० प्रत्य० टा = एण] सकर्मक भूतकालिक क्रिया के कर्ता का चिह्न जो उसके आगे लगाया जाता है। सकर्मक भूतकालिक क्रिया के कर्ता की विभक्ति। जैसे,—राम ने रावण को मारा। उसने यह काम किया।

विशेष—हिंदी की भूतकालिक क्रियाएँ सं० कर्तृवों से बनी हैं इसी से कर्मवाच्य रूप में वाक्यों का प्रयोग शारंभ हुआ। कर्मक उन वाक्यों का दृश्य कर्तृवाच्य में भी होने लगा।

नेहँ—संज्ञा स्त्री० [हि० नेव] दे० 'नीब'।

नेहँ^(५)—संज्ञा स्त्री० [हि० नेव] दे० 'नीब'। उ०—प्रबल उबारि लीक केकेई। दोम्हेसि अवन विपति के नेहँ।—भावस, २। २६।

नेवछाउरि, नेवछावरि—संज्ञा स्त्री० [हि० न्योछावर] दे० 'न्योछावर' 'निछावर'।

नेउतना—क्रि० सं० [हि० न्योतना] दे० 'नेवतना', 'न्योतना'।

नेउतहरी—संज्ञा पुं० [हि० न्योता + हरि (प्रत्य०)] निर्मज्जित वन।

नेउता—संज्ञा पुं० [हि० न्योता] दे० 'नेवता', 'न्योता'।

नेउछा—संज्ञा पुं० [सं० नकुल, हि० नेवछा] दे० 'नेवछा'।

नेक—वि० [फ्रा०] १. अच्छा। मला। उत्तम।

यौ०—नेक अंजाम। नेक अंदेश = हितचित्तक। खेरखाह। नेक चलन। नेकबात = सत्कुलीन। उत्तम जाति का। नेकतर, नेकतरीन = उत्तमतर। श्रेष्ठतर। नेकदिल। नेकनाम। नेकनीयत। नेकबस्त।

२. शिष्ट। सज्जन। जैसे, नेक आदमी।

नेकी^२—वि० [हि० न + एक] थोड़ा। तनिक। जरा सा। किंचित्। कुछ।

नेक^३^(५)—क्रि० णि० थोड़ा। जरा। तनिक। उ०—नेक हँसीहीं बानि तजि लखी परत मुख नीठि।—बिहारी (शब्द०)।

नेक अंजाम—वि० [फ्रा०] अच्छे परिणामवाला (कार्य)।

नेकचलन—वि० [फ्रा० नेक + हि० चलन] अच्छे चाल चलन का। सदाचारी।

नेकचलनी—संज्ञा स्त्री० [फ्रा० नेक + हि० चलन] सुचाल। सदाचार। भलमनसाहत।

नेकदिल—वि० [फ्रा०] शुद्ध हृदय का। साफ दिलवाला।

नेकनाम—वि० [फ्रा०] जिसका अच्छा नाम हो। जो अच्छा प्रतिष्ठ हो। यशस्वी।

नेकनामी—संज्ञा स्त्री० [फ्रा०] नामवरी। सुर्याति। कीर्ति। सुषण।

नेकनीयत—वि० [फ्रा० नेक + प्र० नीयत] १. अच्छे संकल्प का। शुभ संकल्पवाला। २. जिसका आशय या उद्देश्य अच्छा हो। उत्तम विचार का। उदाराशय। मलाई का विचार रखनेवाला।

नेकनीयती—संज्ञा स्त्री० [फ्रा० नेकनीयत] १. नेकनीयत होने का भाव। अच्छा संकल्प। भला विचार। २. ईमानदारी।

नेकबस्ती—संज्ञा स्त्री० [फ्रा० नेकबस्ती] १. सीमाय। मुसकिस्मती। २. उत्तम स्वभाव। सुशीलता।

नेकरी—संज्ञा स्त्री० [?] समुद्र की लहर का थपेड़ा जिससे कहावत किसी ओर को बढ़ता है। हाँक। (सप्त०)।

नेकी—संज्ञा स्त्री० [फ्रा०] १. मलाई। उत्तम व्यवहार। २. सज्जनता भलमनसाहत।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

यो०—नेकी बढी = भलाई बुराई। पाप पुण्य। जैसे,—नेकी बढी साथ जाती है।

१. उपकार। हित। जैसे,—उसने तुम्हारे साथ बड़ी नेकी की है।

यो०—नेकी बढी = उपकार उपकार। हित अहित।

मुहा०—नेकी धीर पूछ पूछ=किसी का उपकार करने में उससे पूछने की क्या आवश्यकता है!

नेकु०—कि० वि० [हि०] दे० 'नेक'।

नेग—संज्ञा पु० [सं० नैयमिक, हि० नेवग] १. विवाह आदि शुभ अवसरों पर संबंधियों, आश्रितों तथा कार्य या कृत्य में योग देनेवाले धीर लोगों को कुछ दिए जाने का नियम। देने, पाने का हक या दस्तूर। जैसे,—नेग में उनको बहुत कुछ मिला।

यो०—नेगवार। नेगजोग।

मुहा०—नेग करना = शुभ मुहूर्त में आरंभ करना। साधत करना।

२. वह वस्तु या धन जो विवाह आदि शुभ अवसरों पर संबंधियों, नौकरों चाकरो तथा नाई बारी आदि काम करनेवालों को उनकी प्रसन्नता के लिये नियमानुसार दिया जाता है। बंधा हुआ पुरस्कार। इनाम। बल्लिषा। उ०—साखटका अरु झूमका (देहु) सारी दाह की नेग।—सूर०, १०। ४०।

क्रि० प्र०—चुकाना।—देना।

मुहा०—नेग लगना = (१) पुरस्कार देना आवश्यक होना। रीति के अनुसार कुछ देना जरूरी होना। जैसे,—यहाँ ५०) नेग लगेगा। (२) हीसे लगना। काम में आ जाना। सार्थक होना। सफल होना।

नेगवार—संज्ञा पु० [हि० नेग + सं० आचार] दे० 'नेगजोग'।

नेगवार०—संज्ञा पु० [हि० नेगवार] दे० 'नेगजोग'। उ०—नेगवार कहूँ नागरि यह सब लगानहि। निरखि निरखि धानद सुखोचनि पावहि।—तुलसी ग्रं०, पु० ५५।

नेगजोग—संज्ञा पु० [हि० नेग + जोग] १. विवाह आदि मंगल अवसरों पर संबंधियों तथा काम करनेवालों को उनके प्रसन्नता के लिये कुछ दिए जाने का दस्तूर। देने पाने की रीति। इनाम बाँटने की रस्म। २. वह धन जो मंगल अवसरों पर संबंधियों धीर नौकरों चाकरो आदि को बाँटा जाता है। इनाम। उ०—नेगी नेगजोग सब सेहीं। रुचि अनुकूल भूपति देही।—मानस, १।३५३।

नेगटी०—संज्ञा पु० [हि० नेग + टी (प्रत्य०)] नेग या रीति का पालन करनेवाला। दस्तूर पर चलनेवाला। उ०—जग प्रीति कर देखी नाहि नेगटी कोऊ। छत्रपति रक्त लो देखे प्रकृति बिरुद्ध न बन्धो कोऊ। दिन जु गए बहुत जनमनि के देखे जाहु जिन कोऊ। सुनि हरिदास मीन मलो पायो बिहारी ऐसो पायो सब कोऊ।—स्वामी हरिदास (सक०)।

नेगी—संज्ञा पु० [हि० नेग] नेग पानेवाला। नेग पाने का हकदार। उ०—सखिमन होहु धरम के नेगी। पावक प्रगट करहु तुम्हें नेगी।—मानस, ६।२०८।

नेगीजोगी—संज्ञा पु० [हि० नेगजोग] नेग पानेवाले। विवाह आदि मंगल अवसरों पर इनाम पाने के अधिकारी, जैसे, नातेदार, नाई, बारी, नौकर, चाकर इत्यादि। सुखी का इनाम पाने का हकदार।

नेगु०—संज्ञा पु० [हि० नेग] दे० 'नेग'। उ०—नेगु माँगि मुनि नाहक लेन्हा। प्रसिरबाद बहुत बिधि दीन्हा।—मानस, १।३५३।

नेगेटिव^१—संज्ञा पु० [ग्रं०] फोटोग्राफी में मसाला लगा वह प्लेट या फिल्म जिसपर उस चीज की उलटे वर्णों की प्रतिकृति आ जाती है जिसका चित्र लिया जाता है। इसी पर मसालेदार कागज रखकर छापा जाता है जो यथार्थ चित्र रूप में दिखाई देता है।

नेगेटिव^२—वि० १. ऋणात्मक। धनात्मक का उलटा। २. नकारात्मक। जिससे अस्वीकृति या निषेध सूचित हो।

नेचर—संज्ञा पु० [ग्रं०] १. प्रकृति। कुदरत। जैसे,—वे नेचर को माननेवाले हैं। २. स्वभाव। प्रकृति।

नेचरिया—संज्ञा पु० [ग्रं० नेचर + हि० इया (प्रत्य०)] प्रकृति के प्रतिरिक्त ईश्वर आदि को न माननेवाला। लोकायतिक। नास्तिक। प्रकृतिवादी।

नेचवाँ—संज्ञा पु० [देरा०] पर्वण का पाहा।

नेचरोपैथी—संज्ञा स्त्री० [ग्रं०] प्राकृतिक चिकित्सा प्रणाली [की०]।

नेछावर^१—संज्ञा स्त्री० [हि० निछावर] दे० 'निछावर'।

नेजक—संज्ञा पु० [सं०] रजक। घोड़ी।

नेजन—संज्ञा पु० [सं०] १. घोंटा। साफ करना। २. धुलाई का स्थान। बत्नादि धोने की जगह [की०]।

नेजा—संज्ञा पु० [फ्रा०] २. भाला। बरछा। २. साँग। निशान।

मुहा०—नेजा हिलाना = बरछा या बल्लम फिराना।

३. बिलगोजा नाम की सूखी फली या मेवा।

नेजाधरदार—संज्ञा पु० [फ्रा०] भाला या राजाधों का निशान लेकर चलनेवाला।

नेजाळ^१—संज्ञा पु० [फ्रा० नेजा + हि० ल (स्वा० प्रत्य०)] भाला। बरछा।

नेटा^१—संज्ञा पु० [हि० नाक + टा] नाक से निकलनेवाला कफ या बलगम। नाक से निकलनेवाला कफ या मल।

क्रि० प्र०—बहना।

मुहा०—नेटा बहना = गंधा धीर मैला कुचला रहना। चेहरा साफ सुथरा न रहना।

नेटिब^१—वि० [ग्रं०] देश का। देशी। मुल्क का। मुल्की। जैसे, नेटिब आदमी।

नेटिब^२—संज्ञा पु० वह जो अपने देश में उत्पन्न हुआ हो धीर जो विदेशी या बाहर का न हो। आदिम निवासी।

नेठना^१—क्रि० प्र० [सं० नष्ट, प्रा० नट्ठ] दे० 'नाठना'।

नेट्टी^१—क्रि० वि० [सं० निकट, प्रा० निघड] निकट। पास। नजदीक।

नेस^१—संज्ञा पु० [सं० निधति (= ठहराव)] १. ठहराव। निर्धारण।

- किसी बात का स्थिर होना । उ०—घड़ें ग्यारहें भीम घड भरत कुंडली नेत ।—रघुराज (शब्द०) । २. निश्चय । ठहराव । ठान । संकल्प । इरादा । उ०—(क) आजु न जान देहु री खासिन बहुत दिनन को नेत ।—सूर (शब्द०) । (ख) चार चोर चामीकर हेतु । किय मारन जयदेवहि नेतु ।—रघुराज (शब्द०) । ३. व्यवस्था । प्रबंध । आयोजन । बंदिश । डंग । उ०—(क) हाय हाय माच्यो विशवचाम बीष भाजै सुर काल काहे प्रभु बाधे प्रलय नेत है ।—रघुराज (शब्द०) । (ख) नेत करन की है गति तोरी । जामें जाय बात नहि मोरी ।—रघुराज (शब्द०) ।
- नेत्र^२—संज्ञा पुं० [म० नेत्र] मयानी की रस्सी । नेता । उ०—(क) को उठि प्राप्त होत ले सासन को कर नेत गहे ?—सूर (शब्द०) । (ख) कोई नेत की करो चमोटी धुंघट में डरवायो ।—सूर (शब्द०) ।
- नेत्र^३—संज्ञा पुं० [देश०] एक गहना । उ०—कहुं कंकन कहुं गिरी मुद्रिका कहुं नाटक कहुं नेत ।—सूर (शब्द०) ।
- नेत्र^४—संज्ञा स्त्री० दे० 'नेत्री' ।
- नेत्र^५—संज्ञा स्त्री० [ध० नीयत] दे० 'नीयत' । उ०—जु पड़े बिन बयो हूँ रह्यो न परे तो पड़ी चित में करि चेत सों जू । रस स्वादाह पाय बिषाद बहाय रही रमि के इहि नेत सों जू ।—चनानंद, पृ० ४ ।
- नेत्र^६—संज्ञा स्त्री० [देश०] एक प्रकार की रेशमी चादर । उ०—(क) पुनि गलमत चढ़ावा नेत बिछाई लाट । नाचत गाजत राजा आइ बैठ सुख पाट ।—जायसी (शब्द०) । (ख) पालंग पाव कि गाछे पाटा । नेत बिछाव चले जो बाटा ।—जायसी (शब्द०) ।
- नेतली—संज्ञा स्त्री० [म० नेत्र (= मयानी की डोरी)] एक प्रकार की पतली डोरी (लक्ष०) ।
- नेता^१—संज्ञा पुं० [म० नतृ] [स्त्री० नेत्री] १. पीछे ले चलनेवाला । अनुयायी । नायक । सरदार । २. प्रभु । स्वामी । मालिक । ३. काम को चलानेवाला । निर्वाहक । प्रवर्तक । ४. नीम का पेड़ । ५. विष्णु । ६. नाटक का नायक (की०) । ७. दो की संख्या (की०) । ८. दंड देनेवाला (की०) ।
- नेता^२—संज्ञा पुं० [म० नेत्र] मयानी की रस्सी ।
- नेति—[सं०] एक संस्कृत शब्द (न इति) जिसका अर्थ है 'इति नहीं' अर्थात् 'नहीं' । ब्रह्मा या ईश्वर के संबंध में यह वाक्य उपनिषदों में अनन्यता सूचित करने के लिये आया है । उ०—नेति नेति कहि वेद पुराण ।—तुलसी (शब्द०) ।
- नेती—संज्ञा स्त्री० [म० नेत्र, हि० नेता] १. वह रस्सी जो मयानी में जपेटी जाती है और जिसके बीच से मयानी फिंती है या वही मया जाता है । २. एक क्रिया जो हठ योग में की जाती है ।
- नेतीधौती—संज्ञा स्त्री० [म० नेत्र, हि० नेता + सं० धौति] हठयोग की एक क्रिया जिसमें कपड़े की धज्जी पेट में डालकर धौति साफ करते हैं । दे० 'धौति' ।

नेत्र—संज्ञा पुं० [सं०] १. आँख । २. मयानी की रस्सी । ३. एक प्रकार का वस्त्र । ४. वृक्षमूल । पेड़ की जड़ । ५. रथ । ६. जटा । ७. नाड़ी । ८. वस्तिबलाका । वस्ती की सलाई । कटोटा । ९. दो की संख्या का लुप्तक शब्द ।

नेत्रकनीनिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] आँख का तारा ।

नेत्रकोप—संज्ञा पुं० [सं०] नेत्रपटल । नेत्र का गोलक [की०] ।

नेत्रगोलक—संज्ञा पुं० [सं०] आँख का डेला । नेत्रमंडल ।

नेत्रच्छद—संज्ञा पुं० [सं०] पलक । पपोट [की०] ।

नेत्रज—संज्ञा पुं० [सं०] आँख ।

नेत्रजल—संज्ञा पुं० [सं०] आँख ।

नेत्रपर्यंत—संज्ञा पुं० [म० नेत्रपर्यंत] आँख का कोना ।

नेत्रपाक—संज्ञा पुं० [सं०] आँख का एक रोग ।

नेत्रपिंड—संज्ञा पुं० [सं० नेत्रपिण्ड] १. नेत्रगोलक । आँख का डेला । २. बिड़ाल । बिल्ली ।

नेत्रपुष्करा—संज्ञा स्त्री० [म०] रुद्रजटा नाम की लता ।

नेत्रबध—संज्ञा पुं० [सं० नेत्रबन्ध] आँखमिचौली का बंध (महामारत) ।

नेत्रबाला—संज्ञा पुं० [म० बाला] सुगंधबाला । कचमोद । बालक ।

विशेष—दे० 'सुगंधबाला' ।

नेत्रभाव—संज्ञा पुं० [म०] संगीत या नृत्य में एक भाव जिसमें केवल आँखों की चेष्टा से कुछ दुःख याद का बोध कराया जाता है और कोई श्रंग नहीं हिलते डोलते । यह भाव बहुत कठिन समझा जाता है ।

नेत्रमंडल—संज्ञा पुं० [म० नेत्रमण्डल] आँख का घेरा । आँख का डेला ।

नेत्रमल—संज्ञा पुं० [सं०] आँख का कीचड़ । विह ।

नेत्रमार्ग—संज्ञा पुं० [म०] नेत्रगोलक से मस्तिष्क तक गया हुआ सूत्र जिससे अंतःकरण में दृष्टिज्ञान होता है ।

नेत्रमीला—संज्ञा स्त्री० [म०] यवतिलका लता (जिसके सेवन से आँखें बंद रहती हैं) ।

नेत्रमुख—वि० [सं०] नेत्रों को प्रकाशित करनेवाला । नेत्रों को बलीभूत कर लेनेवाला [की०] ।

नेत्रयोनि—संज्ञा पुं० [म०] १. इंद्र (जिनके शरीर में गौतम के शाप से सहस्र योनिचिह्न हो गए थे जो पीछे नेत्र के आकार के हो गए) । २. चंद्रमा (जो अग्नि की आँख से उत्पन्न हुए थे) ।

नेत्ररंजन—संज्ञा पुं० [सं० नेत्ररञ्जन] कज्जल । काबल ।

नेत्ररोग—संज्ञा पुं० [म०] आँख में होनेवाले रोग जो वैद्यक में ७५ माने गए हैं ।

विशेष—इनमें से १० वायुजन्य, १३ कफजन्य, १९ रक्तजन्य, १० पित्तजन्य, २५ सन्निपातजन्य और २ बाह्यरी हैं । वायुजन्य रोगों में से हृताघिमंथ, त्रिमेघदृष्टिघट, मंजीरिका और वातहत-वर्मन् असाम्य हैं और काचरोग, शुष्काक्षिपाक, अघिमंथ,

अभिष्यंद और मारुत साध्य हैं। पित्तल रोगों में से ह्रस्वजात, जलसाव, परिम्लायी और नीली असाध्य हैं और अम्माध्युषित दृष्टि, शुक्तिका, विदग्ध दृष्टि, पोषकी और लग्न साध्य हैं। श्लेष्मज रोगों में स्राव रोग और काच रोग साध्य होता है। पूयसाव, नाकुलाध्य, अक्षिपाक और अलजो ये सब सर्वदोषज असाध्य हैं। मन्निपातज काचरोग और वक्षकोपरोग साध्य हैं। ७६ नेत्ररोगों में से ६ संघिगत, २१ वर्त्मगत, ११ शुक्ल-भागस्थित, ४ कृष्णभागस्थित, १७ सर्वत्रगत, १२ दृष्टिगत और २ बाह्य रोग हैं।

नेत्ररोगहा—संज्ञा पु० [सं०] दृष्टिकाली दुःख।

नेत्ररोम—संज्ञा पु० [सं० नेत्ररोमन्] आँख की बिरनी। बरीनी।

नेत्रवस्ति—संज्ञा स्त्री [सं०] एक प्रकार की छोटी पिचकारी।

नेत्रवस्त्र—संज्ञा पु० [सं०] पलक [को०]।

नेत्रवारि—संज्ञा पु० [सं०] आँसू [को०]।

नेत्रविष्—संज्ञा पु० [सं०] आँख का कीचड़।

नेत्रविष—संज्ञा पु० [सं०] एक प्रकार का दिव्य सर्प जिसकी आँख में विष होता है।

नेत्रसंधि—संज्ञा स्त्री [सं० नेत्रसन्धि] आँख का कोना।

नेत्रस्तम्भ—संज्ञा पु० [सं० नेत्रस्तम्भ] आँख की पलकों का स्थिर हो जाना, अर्थात् उठना और गिरना बंद हो जाना।

नेत्रस्राव—संज्ञा पु० [सं०] आँखों से पानी बहना।

नेत्रहा—संज्ञा पु० [सं० नेत्रहन्] १० 'नेत्ररोगहा'।

नेत्राञ्जन—संज्ञा पु० [सं० नेत्राञ्जन] आँखों में लगाने का सुरमा [को०]।

नेत्रांत—संज्ञा पु० [सं० नेत्रान्त] आँख के कोने और कान के बीच का भाग। कनपटी।

नेत्रांशु—संज्ञा पु० [सं० नेत्रांशु] अश्रु। आँसू [को०]।

नेत्रांशु—संज्ञा पु० [सं० नेत्रांशु] आँसू। अश्रु [को०]।

नेत्रातिथि—वि० [सं०] जो दृष्टिगोचर हो। दृष्टिपथ में आनेवाला [को०]।

नेत्राभिष्यंद—संज्ञा पु० [सं० नेत्राभिष्यन्द] आँख का एक रोग जो दूज से फैलता है। आँख आने का रोग।

विशेष—आवप्रकाश के अनुसार इस रोग में आँखें जाल हो जाती हैं और उनमें बड़ी पीड़ा होती है। यह वातज, पित्तज, रक्तज और कफज चार प्रकार का होता है। वातज अभिष्यंद में सूई चुभने की सी पीड़ा होती है और ऐसा जान पड़ता है कि आँखों में किरकिरी पड़ी हो। इसमें ठंडा पानी बहता है और सिर दुखता है। पित्तज अभिष्यंद में आँखों में जलन होती है और बहुत पानी बहता है। ठंडी चीजे रक्खने से आराम मालूम होता है। कफज अभिष्यंद में आँखें भारी जान पड़ती हैं, सुजन अधिक होती है और बार बार गाढ़ा पानी बहता है। इसमें गरम चीजों से आराम मालूम होता है। रक्तज अभिष्यंद में आँखें बहुत जाल रहती हैं और सब लगण पित्तज अभिष्यंद के से होते हैं। अभिष्यंद रोग की चिकित्सा न होने से अभिमंथ रोग होने का डर रहता है।

५-५९

नेत्रारि—संज्ञा पु० [सं०] यूहर। सेट्टू।

नेत्रिक—संज्ञा पु० [सं०] १. एक प्रकार की छोटी पिचकारी (सुधुत)। २. श्रुवा। चमसू [को०]।

नेत्री—संज्ञा स्त्री [सं०] १. अपने पीछे से चलनेवाली। अग्रगामिनी। अगुषा। सरदार। २. राह बतानेवाली या सिखानेवाली। रास्ते पर चलानेवाली। शिष्यायित्री। ३. नाड़ी। ४. लक्ष्मी। ५. नदी।

नेत्रोत्सव—संज्ञा पु० [सं०] १. नेत्रों का आनंद। देखने का मजा। २. वह वस्तु जिसे देखने से नेत्रों को आनंद मिले। दर्शनीय वस्तु।

नेत्रोपम—संज्ञा पु० [सं०] आँख के आकार का फल-बादाम [को०]।

नेत्रोपम फल—संज्ञा पु० [सं०] बादाम (भावप्रकाश)।

नेत्रौषध—संज्ञा पु० [सं०] १. आँख की दवा। २. पुष्प कसीस।

नेत्रौषधि, नेत्रौषधी—संज्ञा स्त्री [सं०] मेढासिनी।

नेत्र्य—वि० [सं०] १. आँखों के लिये हितकारक। २. नेत्र संबंधी [को०]।

नेत्र्यगण—संज्ञा पु० [सं०] रसील, त्रिफला, लोघ, ग्वारपाठा, बनकुलबी आदि नेत्ररोगों के लिये उपकारी औषधियों का समूह।

नेदिष्ठ—वि० [सं०] १. निकट का। पास का। २. निपुण।

नेदिष्ठ—संज्ञा पु० अंकोठ वृक्ष। डेरे का पेड़।

नेदिष्ठो—वि० [सं० नेदिष्ठिन्] समीप का। निकटस्थ।

नेदिष्ठो—संज्ञा पु० सहोदर भाई।

नेनुष्ठा, नेनुषा—संज्ञा पु० [देश०] एक आजी या तरकारी। चिया-तोरई। चिवरा।

नेदीयान्—वि० [सं०] १० 'नेदिष्ठ'।

नेप—संज्ञा पु० [सं०] १. कुल पुरोहित। २. जल [को०]।

नेपचून—संज्ञा पु० [फरासीसी] सूर्य की परिक्रमा करनेवाला एक ग्रह जिसका पता सन् १८४६ के पहले किसी को नहीं था।

विशेष—अब तक जितने ग्रह जाने गए हैं उनमें यह सबसे अधिक दूरी पर है। बड़ाई में यह तीसरे दर्जे के ग्रहों में है। इस ग्रह का व्यास ३७,००० मील है। सूर्य से इसकी दूरी २,८०,००,००,००० मील के लगभग है। इससे इसे सूर्य के चारों ओर घूमने में ११४ वर्ष लगते हैं, अर्थात् नेपचून का एक वर्ष हमारे ११४ वर्षों का होता है। जिस प्रकार पृथ्वी का उपग्रह चंद्रमा है उसी प्रकार नेपचून का भी एक उपग्रह है। उसका पता भी सन् १८४६ (अक्टूबर) में ही लगा। यह नेपचून की परिक्रमा ५ दिन २१ घंटे ८ मिनट में करता है।

नेपथ्य—संज्ञा पु० [सं०] १. वेश। भूषण। सजावट। २. वेशस्थान। नृत्य, अभिनय, नाटक आदि में परदे के भीतर का वह स्थान जिसमें नट नटो नाना प्रकार के वेश सजते हैं। नाटक में परदे के पीछे का स्थान जिसमें नट लोग नाटक के पात्रों की नकल बनाते हैं। ३. वह स्थान जहाँ नृत्य अभिनय आदि हो। नाच रंग की जगह। रंगशाला। रंगभूमि।

नेपाल—संज्ञा पुं० [दे०] हिंदुस्तान के उत्तर में एक बड़ा पहाड़ी देश जो हिमालय के तट पर है।

विशेष—नेपाल नाम के संबंध में कई प्रकार के अनुमान हैं। कुछ लोग कहते हैं कि तिब्बत तथा उसके आसपास की जनार्थ जातियाँ अपनी भाषा में उस प्रदेश को जहाँ गोखे बसते हैं 'पाल' कहती हैं। मिकिम, भूटान आदि के लोग नेपाल के पूर्वी भाग को 'ने' कहते हैं। तिब्बती भाषा में पाल पशु या ऊन को भी कहते हैं। लेप्चा, नेवार आदि जातियों की भाषा में 'ने' शब्द का अर्थ पहाड़ की शृंखला लिया जाता है। तिब्बत और बरमा के बौद्ध 'ने' शब्द से पवित्र गुदा या देवता द्वारा रक्षित स्थान का भाव लेते हैं। कुछ लोगों का कथन है कि नेवार जाति ही से नेपाल नाम पड़ा। पंडित लोग शुद्ध शब्द 'नयपाल' मानकर 'न्याय का पालन करनेवाला' अर्थ करते हैं। रामायण महाभारत आदि में हम देश का नाम नहीं मिलता। पुराणों में स्कंदपुराण के रेवाखंड, नागरखंड और महाभारत में तथा महाद्विखंड में हम देश का बड़ा बहुत उल्लेख मिलता है। बृहत्संहिता में भी नेपाल का नाम आया है। शक्तिमंगमंत्र, बृहन्नीलसंत्र और वाराहीतंत्र आदि कई तंत्रों में नेपाल का वर्णन मिलता है। शक्तिमंगमंत्र में ज्येश्ठर से लेकर योगेश्वर तक के देश को नेपाल कहा है और उसे बहुत भिद्दिदायक बतलाया है। जैन त्रिवंश तथा हेमचंद्र की रथविरावली में भी नेपाल का उल्लेख मिलता है। नेपाली बौद्धों के तंत्रों और पुराणों में नेपाल का माद्वारम्य धार्मिक कथाओं के सहित पाया जाता है।

२. ताम्र । ताँबा (को०)।

नेपालक—संज्ञा पुं० [सं०] ताँबा । ताम्र (को०)।

नेपालजा—संज्ञा स्त्री० [वि०] मनःशिला । मैनसिल ।

नेपालजाता—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'नेपालजा' (को०)।

नेपालनिब—संज्ञा स्त्री० [सं० नेपालनिब] नेपाल की नोभ । एक प्रकार का चिरायता ।

विशेष—वैद्यक में नेपाली नीम कुछ गरम, योगबाही, हलकी, कड़ई तथा पित्त, कफ, मूजन, क्षयरोग, प्याय और ज्वर को दूर करनेवाली मानी जाती है।

पर्या०—नेपाल । तृण निब । ज्वरांतक । नीलनित्त । अर्पनित्त । निद्रारि । सन्निपातहा ।

नेपालमूलक—संज्ञा पुं० [सं०] वृत्तिकव के समान एक कंद ।

नेपालिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] मनःशिला । मैनसिल ।

नेपाली—वि० [हि० नेपाल] १. नेपाल का । नेपाल में रहने या होनेवाला । २. नेपाल संबंधी ।

नेपाली^२—संज्ञा पुं० नेपाल का रहनेवाला आदमी ।

नेपाली^३—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. मनःशिला । मैनसिल । २. नेवारी का बोध । ३. जंगली लज्जूर का वृक्ष या उसका फल (को०)।

नेपुर^१—संज्ञा पुं० [पुं० नेपुर] दे० 'नेपुर' ।

नेफा^१—संज्ञा पुं० [फा० नेफाह] पायजामे या लहंगे के घेर में हजारबंद या नाड़ा पिरोने का स्थान ।

नेफा^२—संज्ञा पुं० [दे०] पूर्वोत्तर भारत का सीमांत प्रदेश । मुख्यतः यह आसाम का उत्तरी पहाड़ी हिस्सा है और जिसका पश्चिमी भाग भूटान से सटा हुआ है ।

विशेष—अंगरेजी में इस प्रदेश का नाम नार्थ ईस्टर्न फ्रंटियर एजेंसी है जिसके आद्य अक्षरों से यह संक्षिप्त नाम बना है ।

नेब(पु)—संज्ञा पुं० [फा० नायब] सहायक । कार्य में सहायता देनेवाला । मंत्री । दीवान । उ०—(क) कदू बिनतहि कीन्ह दुख तुमहि कीसिला देब । भरत बंदिगृह सेइवृद्धि लखनु राम के नेब ।—तुलसी (शब्द०) । (ख) अधि उपसीस ठगोरी सी डारी । कुलगुरु, सचिव, निपुन नैबनि अवरेब न समुक्ति सुधारी । सिरस सुपन सुकुमार कुंघर दोउ मूर सरोच सुरारी । पठए बिनहि सहाय पयादहि केलि बान अनुधारी ।—तुलसी (शब्द०) (ग) आए नैबनंदन के नेब । गोकुल माँझ जोग बिस्तारयो मली तुम्हारी जेब ।—सूर (शब्द०) ।

नेबुआ^१—संज्ञा पुं० [हि० नीबू] दे० 'नीबू' ।

नेबुला^१—संज्ञा पुं० [सं०] आकाश में धूर्ण या कुहरे की तरह फैला हुआ क्षीण प्रकाशपुंज । नीहारिका । वि० दे० 'नीहारिका' ।

नेबुला^२—संज्ञा पुं० [हि० नीबू, नेबू + ला (स्वा० प्रत्यय)] दे० 'नीबू' ।

नेयू^१—संज्ञा पुं० [हि० नीबू] दे० 'नीबू' ।

नेम^१—संज्ञा पुं० [सं०] १. काल । समय । २. अवधि । ३. खंड । टुकड़ा । ४. आकार । बीवार । ५. कैतव । छल । ६. धर्म । आधा । ७. गर्त । गड्ढा । ८. अन्य हिस्सा । और हिस्सा । ९. सायंकाल । १०. मूल । जड़ । ११. बीबाल की नींव (को०) । १२. अभिनय । नृत्य (को०) । १३. मग्न । भोजन । खाना (को०) ।

नेम^२—संज्ञा पुं० [सं० नियम] १. नियम । कायदा । बंधेज । २. बँधी हुई बात । ऐसी बात जो टलती न हो, बराबर होती हो । ३. रीति । दस्तूर । ४. धर्म की दृष्टि से कुछ क्रियाओं का पालन । जैसे व्रत, उपवास आदि । ५. प्रतिज्ञा । पद मिश्रण ।

यौ०—नेमधरम = पूजा पाठ, व्रत, उपवास आदि ।

विशेष—दे० 'नियम' ।

नेमत—संज्ञा स्त्री० [सं० नेमत] १. ईश्वर की कृपा । ईश्वरीय देन । २. धन । संपत्ति । धोला । ३. सुख । आनंद । ४. सुस्वादु भोजन । उत्तम भोजन (को०) ।

यौ०—नेमतखाना = (१) भोज्य पदार्थों के रखने का स्थान । भोज्य-वस्तु-भंडार । (२) साध पदार्थ रखने की लकड़ी का लोहे की जालीदार आलमारी ।

नेमि^१—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. पहिए का घेरा या चक्कर । चक्रवरिच । प्रधि । नेमो । २. कूर्प के ऊपर चारों ओर बंधा हुआ ऊँचा स्थान या चबूतरा । कूर्प की जगह । ३. भूमिस्थित कूपपट्ट । कूर्प की जमबट । ४. प्रांत भाग । किनारे का हिस्सा । ५. कूर्प के किनारे लकड़ी का वह डीचा जिसपर रस्सी रकते और जिसमें प्रायः चिरगो लगी रहती है । ६. चरिणी । पुचिणी (को०) ।

नेमि^१—संज्ञा पुं० १. नेमिनाथ तीर्थंकर । २. तिनिक वृक्ष । तिनस । तिनसुता । ३. एक दैत्य (भागवत) । ४. वज्र ।

नेमिचक्र—संज्ञा पुं० [सं०] परीक्षित के वंश के एक राजा जो असीम-कृष्ण के पुत्र थे । इन्होंने कौशांबी में अपनी राजधानी बनाई थी (भागवत) ।

नेमी^१—संज्ञा पुं० [सं० नेमिन्] तिनिक वृक्ष ।

नेमी^२—संज्ञा स्त्री० [सं०] दे० 'नेमि' ।

नेमी^३—वि० [सं० नियम] १. नियम का पालन करनेवाला । २. धर्म की दृष्टि से पूजा पाठ, व्रत उपवास आदि नियमपूर्वक करनेवाला ।

यौ०—नेमी घरमी ।

नेय—वि० [सं०] १. ले जाने योग्य । २. निर्देश्य । कासन करने योग्य । ३. पढ़ाने योग्य । शिक्षा देने योग्य । ३. व्यतीत करने योग्य । जैसे, समय (को०) ।

नेयार्थता—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक काव्यदोष जहाँ प्रयोजन या कड़ि के बिना लक्षणा का प्रयोग किया जाता है वहाँ यह दोष होता है ।

नेरी^१—क्रि० वि० [सं० निकट] दे० 'नियर' ।

नेर^२—संज्ञा पुं० [सं० नगर, प्रा० गुयर्] दे० 'नगर' । उ०—नगरि पूजि फिरि घर बसी रोर परो सब नेर ।—रसरतन, पृ० १६३ ।

नेरवाङ्ग—संज्ञा स्त्री० [सं० नैऋत] नैऋत्य दिशा । पश्चिम दिक्काल का कोना ।

नेरना—क्रि० स० [हि० निराना] निकोखना । बिलगाना (रेखा आदि) ।

नेरवाती—संज्ञा स्त्री० [देश०] नीले रंग की एक गह्राड़ी भेड़ जो भोटान से महाबल तक पाई जाती है । इसके ऊन के कंबल आदि बनते हैं ।

नेरा—क्रि० वि० [हि० नियर] [स्त्री० नेरी] निकट । पास । समीप । उ०—पुनि कहूँ सबरि विभीकन केरी । आहि मृत्यु भाई प्राति नेरी ।—मानस, ५।५३ ।

नेराई—संज्ञा स्त्री० [हि० निराना] दे० 'निराई' ।

नेराना^१—क्रि० प्र०, क्रि० स० [सं० निकट, प्रा० निघड़, हि० नियर] दे० 'नियराना' ।

नेराना^२—क्रि० स० [हि० निराना] दे० 'निराना' ।

नेरी^१—क्रि० वि० [देश०] जरा सा भी । थोड़ा भी । तनिक भी । उ०—कप छकी तित ही बिचकी, अब ऐसी धनेरी पत्पाति न नेरी ।—बनारस, पृ० ५ ।

नेरवा—संज्ञा पुं० [सं० नख, हि० नासी, नारी] कोल्हू के नीचे बनी हुई तेज बहने की नासी ।

नेरे—क्रि० वि० [हि० नियर] निकट । पास । समीप । उ०—अगम अपवर्ग, अथ स्वर्ग सुकृतक फल, नाम बल क्यों बसों जमनगर नेरे ।—तुलसी, प्र०, पृ० ५६४ ।

नेव^१—संज्ञा पुं० [क्रा० नाव] दे० 'नेव' ।

नेव^२—संज्ञा स्त्री० [हि०] दे० 'नीव' ।

नेवग^१—संज्ञा पुं० [हि०] नेग ।

नेवगी—संज्ञा पुं० [हि०] बेगी ।

नेवछावर, नेवछावरि^१—संज्ञा स्त्री० [हि० निछावर] दे० 'निछावर' ।

नेवज—संज्ञा पुं० [सं० नैवेद्य] देवता को अर्पित करने की वस्तु । खाने पीने की चीज जो देवता को चढ़ाई जाय । भोग । उ०—(क) गावत मंगलचार महर घर । नेवज करि करि धरति श्याम डर ।—सूर (शब्द०) । (ख) बहुत भाँति सब करे पकवाने । नेवज करि बरि सभि बिहाने ।—सूर (शब्द०) । (ग) महुरि सबे नेवज लै संतति । श्याम छुबै कहूँ ताको डरपति ।—सूर (शब्द०) ।

नेवजा—संज्ञा पुं० [क्रा०] चिलगोजा ।

नेवजी—संज्ञा स्त्री० [?] एक फूल का नाम ।

नेवता^१—संज्ञा पुं० [सं० निमन्त्रण] दे० 'नेवता', 'न्योता' । उ०—कहेहु नीक मोरेहु मनभावा । यह अनुचित नहि नेवत पठावा ।—मानस, १।६२ ।

नेवतना^१—क्रि० स० [सं० निमन्त्रण] निमन्त्रित करना । बेवता भजना । उ०—(क) सूर गंधर्व जे नेवति बुलाए । ते सब बंधु सहित तहँ आए ।—सूर (शब्द०) । (ख) नेवते साबर सकल सूर जे पावत मख भाग ।—मानस, १।६० ।

नेवतहरी—संज्ञा पुं० [हि०] दे० 'न्योतहरी' ।

नेवता^२—संज्ञा पुं० [हि० न्योता] दे० 'न्योता' ।

नेवना^१—क्रि० प्र० [सं० नमन] नमन होना । झुकना ।

नेवर^१—संज्ञा पुं० [सं० नूपुर] पैर का एक गहना । नूपुर ।

नेवर^२—संज्ञा स्त्री० १. चोड़े के पैर का वह घाव जो दूसरे पैर की ठोकर या रगड़ से हो जाता है ।

क्रि० प्र०—लगना ।

नेवरा^१—वि० [सं० न + वर (= धरणा)] बुरा । बराब ।

नेवरना^१—क्रि० प्र० [सं० निवारण] १. निवारण होना । दूर होना । उ०—सुनि जोगी के धमर जो करनी । नेवरी बिद्या बिरह के मरनी ।—जायसी (शब्द०) । २. समाप्त होना । क्षतम होना । ३. निपटना ।

नेवरा^२—संज्ञा पुं० [देश०] लाल कपड़े की भारी की खोली ।

नेवल—संज्ञा पुं० [हि० नेवर] दे० 'नेवर' ।

नेवल—वि० [प्र०] नी संबंधी । नौका संबंधी ।

नेवला—संज्ञा पुं० [सं० नकुल, प्रा० नउल] चार पैरों से जमीन पर रेंगनवाला हाथ सवा हाथ लंबा और ४-५ अंगुल चौड़ा मांमाहारी पिंडज जंतु ।

विशेष—यह जंतु देखने में गिलहरी के आकार का पर उसके बड़ा और धूरे रंग का होता है । पूँछ इसकी बहुत लंबी और रोयों से फूनी हुई होती है । मुँह इसका चौड़ा, गिलहरी आदि की तरह घांसे की ओर नुकीला होता है । दाँत इनके बहुत पैने होते हैं । टोखों, पुराने घरों, नदों के किनारों आदि में बिना खोदकर प्रायः नर बादा साथ रहते हैं । वसंत ऋतु में मादा दो या तीस बच्चे देती है जो बहुत दिनों तक उसके पीछे

पीछे घूमा करते हैं। नेवला भारतवर्ष में ही पाया जाता है यद्यपि इसकी जाति के घोर दूसरे जंतु अफ्रीका, अमेरिका आदि के गरम स्थानों में मिलते हैं। नेवले प्रायः चूहों तथा घोर छोटे जंतुओं को खाकर रहते हैं। साँप को मारने में ये बहुत प्रसिद्ध हैं। बड़े से बड़े सर्प को ये अपनी फुरती से खंड खंड कर खाते हैं। लोग इन्हें पालते भी हैं। पालने पर ये इतने परब जाते हैं कि पीछे पीछे बीड़ते हैं।

नेवा^१—संज्ञा पुं० [सं० नियम ?] १. रीति। दस्तूर। रवाज। २. कहावत। लोकोक्ति।

नेवा^२—वि० [सं० न्याय या सं० निज] नाई। समान।

नेवा^३—वि० [?] चुप। मौन।

नेवाज—वि० [फ्रा० निवाज] १. दे० 'निवाज'। उ०—राम गरीब नेवाज! अए हूँ गरीब नेवाज गरीब नेवाजी।—तुलसी ग्रं०, पृ० २२०। २. दे० 'नमाज'।

नेवाजना—क्रि० सं० [फ्रा० निवाज] दे० 'निवाजना'। उ०—बालि बलबालि बलि बालि कपिराज को, बिभीषन नेवाजि सेतु साबर तरन भो।—तुलसी ग्रं०, पृ० १६७।

नेवाडा—संज्ञा पुं० [देश०] दे० 'निवाड़ा'।

नेवाडी—संज्ञा स्त्री० [सं० नेपाली या नेपाळी] दे० 'नेवारी'।

नेवाना^१—क्रि० सं० [सं० नमन] नमन करना। झुकाना।

नेवार^१—संज्ञा पुं० [देश०] नेपाल में बसनेवाली वही की एक जाति जाति।

नेवार^२—संज्ञा पुं०, संज्ञा स्त्री० [देश०] दे० 'निवाड़', 'निवार'।

नेवारना^१—क्रि० सं० [सं० निवारण] निवारण करना। दूर करना। हटाना।

नेवारी—संज्ञा स्त्री० [सं० नेपाली] जूही या जनेसी की जाति का एक पौधा जिसमें छोटे छोटे सफेद फूल लगते हैं।

विशेष—इसकी पत्तियाँ कुंद या जूही की सी होती हैं। यह बरसात में अधिक फूलता है और इसके फूलों में बड़ी मन्थी भीनी महक होती है। इसे बनमालिका भी कहते हैं।

नेवी—संज्ञा स्त्री० [सं०] एक राष्ट्र या देश के समस्त सङ्घ बहाज, जलपोत या नौसेना। जलसेना।

नेशन—संज्ञा पुं० [सं०] लोकसमुदाय जो एक ही देश में बसता हो या जो एक ही राज्य या साम्राज्य में रहता हुआ एकताबद्ध हो। एक देश में रहने और एक भाषा या अनेक भाषा बोलने वाला जनसमूह। राष्ट्र।

नेष्टा—संज्ञा पुं० [सं० नेष्ट] १. सोम यज्ञ में प्रधान ऋषियों में से एक ऋषि। ये क्रम में १६ वें ऋषि हैं। २. तृष्टा देवता।

नेष्टु—संज्ञा पुं० [सं०] मिट्टी का डला [को०]।

नेस्—संज्ञा पुं० [फ्रा० नेस् (= डंक) ?] अंगली जानवरों के संवे चुकीले दाँत जिससे वे काटते हैं।

नेसकुन—संज्ञा पुं० [देश०] बंदरों का जोड़ा जाना (कुलंदर)।

नेसुक^१—वि० [हि० नेकु, नेक] तनक। चोड़ा सा।

नेसुक^२—क्रि० वि० चोड़ा। जरा। टुक। तनक।

नेसुहा^१—संज्ञा पुं० [सं० नि + स्वा; निष्ठा] जमीन में गड़ा हुआ लकड़ी का कुंआ जिसपर गन्ना या चारा काटते हैं।

नेस्—वि० [सं० मि० सं० नास्ति] जो न हो।

यौ०—नेस्तनाबूद = नष्ट भ्रष्ट। जो जड़मूल से न रह गया हो।

नेस्ती—संज्ञा स्त्री० [फ्रा०] १. न होना। अस्तित्व। २. आलस्य। ३. नाश। बर्बादी।

क्रि० प्र०—फैलाना।

नेह^१—संज्ञा पुं० [सं० स्नेह] १. स्नेह। प्रेम। प्रीति। प्यार। मुहब्बत।

उ०—तुम चाहो न चाहो हमें चित सों हमें नेह की नातो निबाहनी है (शब्द०)। (ख) समझ कमिता बन आनंद की हिय आसिन नेह की पीर तकी।—घनानंद, पृ० ३। २. चिकना। तेल या घी।

नेहो^१—वि० [हि० नेह + ई (प्रत्यय)] स्नेह करनेवाला। प्रेमी। उ०—नेहो महा ब्रजभाषा प्रवीन श्री सुंदरतामि के नेह को जानै।—घनानंद, पृ० ३।

नैःश्रेयस—वि० [सं०] १. सुखकारी। कल्याणकारी। २. मोक्षदाता [को०]।

नैःस्व—संज्ञा पुं० [सं०] दरिद्रता। निर्धनता। अकिंचनता [को०]।

नै^१—संज्ञा स्त्री० [सं० नय] दे० 'नय'।

नै^२—संज्ञा स्त्री० [सं० नदी, प्रा० एई] नदी। उ०—कितो न जोशुम जग करत नै बय बढ़ती बार।—बिहारी (शब्द०)।

नै^३—संज्ञा स्त्री० [फ्रा०] १. बाँस की नली। २. हुक्के की निपाली। ३. बाँसुरी।

नैऋत^१—वि०, संज्ञा पुं० [सं० नैऋत्य] दे० 'नैऋत्य'।

नैक^१—वि० [सं०] जो एक ही न हो। अनेक। बहुत।

नैक^२—संज्ञा पुं० विष्णु [को०]।

नैक^३—वि०, क्रि० वि० [हि०] दे० 'नैक', 'नैकु'।

नैकचर—वि० [सं०] जो अकेले न चलते हों, झुंड में चलते हों।

बैसे, सूअर, भेड़िया, हिरन इत्यादि।

नैकटिक^१—वि० [सं०] [हि० स्त्री० नैकटिकी] पार्श्ववर्ती। समीपवर्ती। निकट का।

नैकटिक^२—संज्ञा पुं० भिक्षु। यति। ग्राम से कोस भर की दूरी पर रहनेवाले तपस्वी, यति या भिक्षु [को०]।

नैकट्य—संज्ञा पुं० [सं०] निकटता। निकट होने का भाव।

नैकधा—क्रि० वि० [सं०] अनेक प्रकार से। विभिन्न प्रकार से [को०]।

नैकभावाश्रय—वि० [सं०] जो एक आवाश्रित न हो। परिवर्तनशील [को०]।

नैकभेद—वि० [सं०] अनेक प्रकार का [को०]।

नैकशृंग—संज्ञा पुं० [सं० नैकशृङ्ग] विष्णु का एक नाम। (विष्णु-सहस्रनाम)।

विशेष—अगवान् विष्णु के तीन पैर और चार सींग माने गए हैं।

नैकषेय—संज्ञा पुं० [सं०] (निकष के बंशज) । राक्षस ।

नैकु—वि०, क्रि० वि० [हिं०] दे० 'नैक', 'नैकु' ।

नैकुतिक—वि० [सं०] [वि० स्त्री० नैकुतिकी] १. दूसरे की हानि करके निष्ठुर जीविका करनेवाला । निष्ठुर । २. कटुभाषी । ३. निम्न विचार का । क्षुद्र । कमीना [को०] ।

नैगम—वि० [सं०] १. निगम संबंधी । जिसमें ब्रह्म आदि का प्रतिपादन हो, जैसे उपनिषद् ।

नैगम^२—संज्ञा पुं० १. उपनिषद् भाग । २. नय । नीति । ३. वणिक् । व्यापारी । बनिया (को०) । ४. नागर । नागरिक (को०) । ५. साधन । उपाय (को०) । दे० 'नैगमकांड' (को०) ।

नैगमकांड—संज्ञा पुं० [सं० नैगमकाण्ड] निरुक्त के तीन अध्याय जिनमें वास्तव ने वैदिक शब्दों की निरुक्ति की है ।

नैगमनय—संज्ञा पुं० [सं०] बहु नय या तर्क जो द्रव्य और पदार्थ दोनों को सामान्य-विशेष-युक्त मानता हो और कहता हो कि सामान्य के बिना विशेष, और विशेष के बिना सामान्य नहीं रह सकता (बैन) ।

नैगमिक—वि० [सं०] [वि० स्त्री० नैगमिकी] १. वेद संबंधी । २. वेदों से निर्गत या भिन्न (को०) ।

नैगमेय—संज्ञा पुं० [सं०] १. कार्तिकेय के एक अनुचर का नाम । २. सुश्रुत के अनुसार नैगमेय नामक बालग्रह ।

नैगमेय—संज्ञा पुं० [सं०] सुश्रुत में जो नौ बालग्रह कहे गए हैं उनमें नवी ।

विशेष—इस बालग्रह द्वारा पीड़ित होने से बच्चों के मुँह से केन गिरता है, वे रोते हैं, बेचैन रहते हैं, उन्हें ज्वर होता है तथा उनकी दृष्टि ऊपर को टेंगी रहती है और देह से चरबी की सी गंध आती है ।

नैघंटुक—संज्ञा पुं० [सं० नैघण्टुक] वैदिक सभ्यताओं का संग्रह ग्रंथ जिसकी व्याख्या गार्क ने अपने निरुक्त में की है [को०] ।

नैषा—संज्ञा पुं० [फ्रा० नैषह] १. हुक्के की बोहरी नली जिसमें एक के सिरे पर चिलम रखी जाती है और दूसरे का छोर मुँह में रहकर धुमा जायता है ।

यो०—नैषावंद ।

२. एकदम दुबला पतला व्यक्ति (व्यंगोक्ति) ।

नैषावंद—संज्ञा पुं० [फ्रा०] नैषा बनानेवाला ।

नैषावंशी—संज्ञा स्त्री० [फ्रा०] नैषा बनाने का काम ।

नैषिक—संज्ञा पुं० [सं०] गाय आदि चौपायों का भाषा ।

नैषिकी—संज्ञा स्त्री० [सं०] अच्छी गाय ।

नैषी—संज्ञा स्त्री० [हिं० नोषा] पुर, मोट वा बरसा जायते समय बैलों के चलने के लिये बनी हुई लान् राह । रपट । पैड़ी ।

नैषुल—वि० [सं०] निचुल संबंधी । हिजल वृक्ष संबंधी ।

नैषुल—संज्ञा पुं० निचुल का फल या बीज ।

नैष—वि० [सं०] [वि० स्त्री० नैषी] अपना । विष का । विषी [को०] ।

नैटी—संज्ञा स्त्री० [देग०] दुंदी नाम की चास या जड़ी । दुषिदा चास ।

नैवल—संज्ञा पुं० [सं०] अथोलोक । नीचे का लोक [को०] ।

यो०—नैतलसपा = यमराज ।

नैतिक—वि० [सं०] नीति संबंधी । नीतियुक्त ।

नैत्य^१—वि० [सं०] १. नित्य का । २. नित्य दिया जानेवाला ।

नैत्य^२—संज्ञा पुं० नित्य का कर्म ।

नैत्यक^१—वि० [सं०] [वि० स्त्री० नैत्यकी] १. अनिवार्य । जिसका निवारण न हो । २. नित्य होनेवाला या नित्य किया जानेवाला [को०] ।

नैत्यक^२—संज्ञा पुं० नैवेद्य [को०] ।

नैत्यिक—वि० [सं०] [वि० स्त्री० नैत्यिकी] दे० 'नैत्यिक' [को०] ।

नैत्रिक—वि० [सं०] नेत्र संबंधी । नेत्र का [को०] ।

नैदाघ^१—वि० [सं०] निदाघ संबंधी । ग्रीष्म का ।

नैदाघ^२—संज्ञा पुं० [सं०] ग्रीष्म [को०] ।

नैदाघिक—वि० [सं०] निदाघ संबंधी । ग्रीष्म का ।

नैदाघोय—वि० [सं०] निदाघ संबंधी ।

नैदानिक—वि० संज्ञा पुं० [सं०] १. रोगों का निदान जाननेवाला । २. रोगों का निदान करनेवाला ।

नैदेशिक—संज्ञा पुं० [सं०] आदेशों को कार्यान्वित करनेवाला । सेवक । भृत्य । नौकर [को०] ।

नैधन^१—संज्ञा पुं० [सं०] १. निधन । मरण । २. फलित ज्योतिष में लग्न से आठवीं स्थान । मृत्यु स्थान ।

नैधन^२—वि० नश्वर । मरणशील [को०] ।

नैधान—वि० [सं०] (सीमा) जो विभिन्न वस्तुओं के द्वारा निर्धारित हो [को०] ।

नैधानी—संज्ञा स्त्री० [सं०] पाँच प्रकार की सीमाओं में से एक । वह सीमा जिसका चिह्न गङ्गा, दुष्सा, कोयला या तुष (धूसी) हो । (स्मृति) ।

नैधानी सीमा—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह सीमा या हदबंदी जो भूसी कोयले आदि से बरे बड़े गाड़कर बनाई जाय ।

विशेष—बृहस्पति ने इस प्रकार सीमा बनाने का विधान बताया है । पराशर ने कहा है कि ग्राम के वृद्ध लोगों का कर्तव्य है कि वे बच्चों को सीमा के चिह्नों से परिचित कराते रहें ।

नैधेय—वि० [सं०] निधि संबंधी । निधि का । निधि से संबद्ध [को०] ।

नैन(१)—संज्ञा पुं० [सं० नयन] दे० 'नयन' ।

नैन^२—संज्ञा पुं० [सं० नवनीत] मक्खन ।

नैनसुख—संज्ञा पुं० [हिं० नैन + सुख] एक प्रकार का चिकना सूती कपड़ा ।

नैनी—संज्ञा पुं० [सं० नवनीत] नैन । मक्खन ।

नैनू—संज्ञा संज्ञा पुं० [हिं० नैन (= घाल)] १. एक प्रकार का सूती कपड़ा जिसमें घाल की सी गोल उबरी हुई बुटियाँ बनी होती हैं । उबरे हुए बेखट्टे का सूती कपड़ा ।

नै०^२—संज्ञा पु० [सं० नवनीत] मक्खन ।

नैपाल^१—वि० [सं०] १. नेपाल संबंधी । २. नेपाल का । नेपाल में होनेवाला ।

नैपाल^२—संज्ञा पु० १. नेपाल निब । २. एक प्रकार की ईस ।

नैपाल^३—संज्ञा पु० दे० 'नेपाल' ।

नैपालिक—संज्ञा पु० [सं०] ताँबा ।

नैपाली^१—वि० [हि० नेपाल] नेपाल देश का । २. नेपाल में रहने वाला होनेवाला । जैसे, नैपाली सिपाही, नैपाली टाँगन ।

नैपाली^२—संज्ञा पु० नेपाल का रहनेवाला आदमी ।

नैपाली^३—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. नवमल्लिका । नैपाली । २. भनः-सिला । मेनसिल । ३. नील का पोषा । ४. मेफालिका । एक प्रकार की निगुंड़ी ।

नैपुण्य—संज्ञा पु० [सं०] दे० 'नैपुण्य' [को०] ।

नैपुण्य—संज्ञा पु० [सं०] १. निपुणता । चतुराई । होशियारी । दक्षता । कला । २. वह वस्तु जिसके लिये निपुणता आवश्यक हो (को०) । ३. पूर्णता । संपूर्णता (को०) ।

नैश्वृत्य—संज्ञा पु० [सं०] १. विनय । नम्रता । क्षांतता । २. गोपनीय । ३. निस्तब्धता । निःशब्दता । ४. स्वैर्य । स्थिरता (को०) ।

नैमंत्रण्य—संज्ञा पु० [सं०] उद्योग । भोज । दावत (को०) ।

नैमय—संज्ञा पु० [सं०] दण्डक । व्यवसायी । रोबगारी ।

नैमित्त^१—वि० [सं०] [वि० स्त्री० नैमित्ती] निमित्त संबंधी । चिह्न आदि से संबंध ।

नैमित्त^२—संज्ञा पु० ज्योतिर्विद । निमित्त शास्त्र का ज्ञाता (को०) ।

नैमित्तिक—वि० [सं०] जो किसी निमित्त से किया जाय । जो निमित्त उपस्थित होने पर या किसी विशेष प्रयोजन की सिद्धि के लिये हो । जैसे, नैमित्तिक कर्म, नैमित्तिक स्नान, नैमित्तिक दाव ।

विशेष—यज्ञ आदि कर्म जो किसी निमित्त से किए जाते हैं वे नैमित्तिक कहलाते हैं । जैसे, पुत्रप्राप्ति के निमित्त पुत्रेष्टि यज्ञ । दे० 'कर्म' । ग्रहण आदि उपस्थित होने पर जो स्नान किया जाता है वह नैमित्तिक स्नान कहलाता है । इसी प्रकार दोष या पापक्षाति के लिये जो दाव दिया जाता है वह नैमित्तिक दाव कहलाता है ।

नैमित्तिकलय—संज्ञा पु० [सं०] गरुड़ पुराण के अनुसार एक प्रलय जिसमें सौ वर्ष तक घनावृष्टि होती है, बारहों सूर्य उदित होकर तीनों लोकों का क्षोण करते हैं, फिर बड़े क्षीण भेष सौ वर्ष तक लगातार बरसकर वृष्टि का नाश करते हैं ।

नैमिश—संज्ञा पु० [सं०] दे० 'नैमिष' ।

नैमिष^१—संज्ञा पु० [सं०] १. नैमिषारण्य तीर्थ । उ०—तीर्थ वर नैमिष विख्याता । अति पुनीत सायक सिधि दाता ।—मानस, १ । १४३ । २. यमुना के दक्षिण तट पर बसनेवाली एक जाति जिसका उल्लेख महाभारत और पुराणों में है ।

नैमिष^२—वि० [सं०] नैमिष भर में समाप्त होनेवाला । क्षणिकी । क्षणस्थायी (को०) ।

नैमिषारण्य—संज्ञा पु० [सं०] एक प्राचीन वन जो सायकल हिंदुओं का एक तीर्थस्नान माना जाता है । यह सायकल नीमसार कहलाता है ।

विशेष—यह स्थान अथर्व के सीतापुर जिले में है । पुराणों में इसके संबंध में दो प्रकार की कथाएँ मिलती हैं । बराह पुराण में लिखा है कि इस स्थान पर गोरमुख नामक मुनि ने निमिष मात्र में असुरों की बड़ी भारी सेना भस्म कर दी थी इसी से इसका नाम नैमिषारण्य पड़ा । देवी भागवत में लिखा है कि ऋषि लोग जब कलिकाल के भय से बहुत बबराएँ तब ब्रह्मा ने उन्हें एक मन्त्रोक्त चक्र देकर कहा कि तुम लोग इस चक्र के पीछे पीछे चलो, जहाँ इसकी नेमि (धरा, चक्र) विसीर्ण हो जाय उसे अत्यंत पवित्र स्थान समझना । वहाँ रहने से तुम्हें कल का कोई भय नहीं रहेगा । कहते हैं, सीति मुनि ने इस स्थान पर ऋषियों को एकत्र करके महाभारत की कथा कही थी । विष्णुपुराण में लिखा है, इस क्षेत्र में गोमती में स्नान करने से सब पापों का क्षय हो जाता है ।

नैमिषि—संज्ञा पु० [सं०] नैमिषारण्यवासी ।

नैमिषीय—वि० [सं०] नैमिष संबंधी ।

नैमिषेय—वि० [सं०] १. नैमिष संबंधी । २. नैमिषारण्य का ।

नैमेय—संज्ञा पु० [सं०] १. विनिमय । वस्तुओं का बदला । २. वाणिज्य ।

नैयमोक्ष—संज्ञा पु० [सं०] न्यग्रोध (बरगड) वृक्ष का फल (को०) ।

नैयत्य—संज्ञा पु० [सं०] १. नियतत्व । वियत होने का भाव । २. आत्मनिग्रह (को०) ।

नैयमिक^१—वि० [सं०] [वि० स्त्री० नैयमिकी] नियमानुसारी । नियमानुकूल । विधिबंधित (को०) ।

नैयमिक^२—संज्ञा पु० [सं० नैयमिकम्] नियमितता । नियमानुसारिता (को०) ।

नैया^७—संज्ञा स्त्री० [हि० नाव, नाय] नाव । किस्ती । उ०—नैया मेरी तनक सी बोझो पाथर भार ।—गिरिधर (शब्द०) ।

नैयायिक—वि०, संज्ञा पु० [सं०] न्यायशास्त्र का जाननेवाला । न्यायवेत्ता ।

नैरंजना—संज्ञा स्त्री० [सं० नैरंजना] गया के पास बहनेवाली कस्तुरी नदी का प्राचीन नाम ।

विशेष—फल्गु के पश्चिम की ओर बहनेवाली शाका को जो मोहानी नदी में जाकर मिल जाती है अब भी सीलाचक कहते हैं ।

नैरंतर्य—संज्ञा पु० [सं० नैरंतर्य] निरंतरत्व । निरंतर का भाव । अविच्छेद ।

नैर^७—संज्ञा पु० [सं० नवर, प्रा० एयर, पु० हि० नयर] सहूर । देव । जनपद । उ०—मेरे कहे मेर कद, सिवाजी सौ देर, करि गैर करि नैर मित्र बाहुक उचारे तै ।—सूषण (शब्द०) ।

नैरपेक्ष्य—संज्ञा पु० [सं०] निरपेक्षता । अपेक्षा । उदासीनता (को०) ।

नैरयिक—वि० [सं०] वरक में रहनेवाला ।

नैरव्य—संज्ञा पुं० [सं०] निरर्थकता ।

नैराश्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. निराशा का भाव । नाउम्मेदी । २. इच्छा का अभाव । भाषा का अभाव (की०) ।

नैरास्य—संज्ञा पुं० [सं०] वाणु खोदने का एक अंत्र ।

नैरुक्त^१—वि० [सं०] निरुक्त संबंधी ।

नैरुक्त^२—संज्ञा पुं० १. निरुक्त संबंधी ग्रंथ । २. निरुक्त का जानने या अभ्ययन करनेवाला व्यक्ति ।

नैरुक्तिक—संज्ञा पुं० [सं०] निरुक्तवेत्ता । निरुक्त का विद्वान् ।

नैरुज्य—संज्ञा पुं० [सं०] रोगविहीनता । स्वस्थता । निरोगता (की०) ।

नैरुहिक—संज्ञा पुं० [सं०] सुश्रुत के अनुसार वस्ति का एक भेद ।

नैर्ऋत^१—वि० [सं०] निर्ऋति संबंधी ।

नैर्ऋत^२—संज्ञा पुं० १. निर्ऋति का पुत्र । राक्षस । २. पश्चिम-दक्षिण-कोण का स्वामी ।

विशेष—ज्योतिष के मत से इस दिशा का स्वामी राहु है ।

३. मूल नक्षत्र ।

नैर्ऋती—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. दक्षिण पश्चिम के मध्य की दिशा । दक्षिण और पश्चिम के बीच का कोन । २. दुर्गा का एक नाम (की०) ।

नैर्ऋतेय—स्त्री० पुं० [सं०] निर्ऋत का वंशज ।

नैर्ऋत्य—वि० [सं०] निर्ऋति देवता का (पशु आदि) ।

नैर्ऋत्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. निर्गुणता । अस्त्री सफ़्त का न होना । २. कला कोमल आदि का अभाव । ३. सत्व, रज, तम इन तीनों गुणों का न होना । त्रिगुणशून्यता । (नैर्ऋत्य होने से ब्रह्म की प्राप्ति कही गई है) ।

नैर्ऋत्य—संज्ञा पुं० [सं०] निर्ऋण होने का भाव । कठोरता । दयाहीनता (की०) ।

नैर्ऋशिक—संज्ञा पुं० [सं०] सेवक । नोकर (की०) ।

नैर्ऋत्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. निर्मलता । २. विषयों से विराग ।

नैर्ऋज, नैर्ऋज्य—संज्ञा पुं० [सं०] निसंजता ।

नैर्ऋहिक—वि० [सं०] [वि० स्त्री० नैर्ऋहिकी] निर्ऋह के योग्य । जो निर्ऋह के लिये हो ।

नैर्ऋत्य—संज्ञा पुं० [सं०] नीलापन । गहुरा नीला रंग (की०) ।

नैर्ऋसिक—वि० [सं०] निवास योग्य (की०) ।

नैर्ऋसी—संज्ञा पुं० [सं०] १. निवास साधु । वृक्ष पर रहनेवाला देवता ।

नैर्ऋद्य—संज्ञा पुं० [सं०] निर्विकृता । अवस्था ।

नैवेद्य—संज्ञा पुं० [सं०] देवता के निवेदन के लिये भोज्य द्रव्य । वह भोजन की सामग्री जो देवता को चढ़ाई जाय । देव-दक्षि । भोग ।

विशेष—बी, बीनी, श्वेताक्ष, दधि, फल इत्यादि नैवेद्य द्रव्य कहे गए हैं । नैवेद्य देवता के दक्षिण भाग में रखना चाहिए घागे या पीछे नहीं । कुछ ग्रंथों का मत है कि पशु नैवेद्य देवता के बाएँ और कृष्ण दाहिने रखना चाहिए । देवता को भोग

बसा हुआ प्रसाद खाने का बड़ा फल मिला है पर भिन्न को चढ़ा हुआ निर्मात्य खाने का निषेध है । चढ़ाए जाने के उपरांत नैवेद्य द्रव्य निर्मात्य कहलाता है ।

नैवेदिक—संज्ञा पुं० [सं०] १. गृहस्थी के उपकरण । २. मिताक्षरा के अनुसार निवेदन के निमित्त प्रदत्त कन्या जो धाम्नी आदि से युक्त हो । ३. ब्राह्मण को दिया जानेवाला उपहार ।

नैश—वि० [सं०] [वि० स्त्री० नैशी] १. निशा संबंधी । रात्रि का । २. रात्रि में होनेवाला (की०) ।

नैशनल—वि० [सं०] राष्ट्र संबंधी । राष्ट्र का । राष्ट्रीय । सार्वजनिक । जैसे, नैशनल कांग्रेस ।

नैशनलिस्ट—संज्ञा पुं० [सं०] वह जो राष्ट्र पक्ष का पक्षपाती हो । राष्ट्रवादी ।

नैशिक—वि० [सं०] निशा संबंधी । रात का ।

नैश्चल्य—संज्ञा पुं० [सं०] निश्चलता । स्थिरता । अचंचलता (की०) ।

नैश्चित्य—संज्ञा पुं० [सं० नैश्चित्य] निश्चित होने का भाव । चिंता का अभाव । निश्चितता (की०) ।

नैश्चित्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. स्थिरता । २. (विवाह आदि) निश्चित या स्थिर संस्कार वा उत्सव आदि (की०) ।

नैषदिक—वि० [सं०] १. उपदेखनकारी । बैठनेवाला । २. निषध देश संबंधी । निषध का ।

नैषधी—वि० [सं०] निषध देश संबंधी । निषध देश का ।

नैषध^२—संज्ञा पुं० १. निषध देश का निवासी व्यक्ति या वस्तु । २. निषध देश का राजा । ३. नल जो निषध देश के राजा थे । ४. श्रीहर्षरचित एक संस्कृत काव्य जिसमें २२ सर्गों में राजा नल की कथा का वर्णन है । ५. विष्णु पुराण के अनुसार पुष्यी का एक संद जिसे जंबू द्वीप के अधीश्वर अग्नीध्र ने अपने पुत्र हरिवर्ष को दिया था (की०) ।

नैषधीय—वि० नल संबंधी । जैसे नैषधीय चरित (की०) ।

नैषध्य—संज्ञा पुं० [सं०] राजा नल का पुत्र या वंशज ।

नैषाद—संज्ञा पुं० [सं०] निषाद का पुत्र (की०) ।

नैषादि—संज्ञा पुं० [सं०] ३० 'नैषाद' (की०) ।

नैषेचनिक—संज्ञा पुं० [सं०] राज्याभिषेक के उत्सव पर दी हुई वस्तुओं का उपहार । (कोटि०) ।

नैष्कर्म्य—संज्ञा पुं० [सं०] १. अकर्मण्यता । निष्क्रियता । २. आत्मस्य । ३. कर्म तथा कर्मफल का परित्याग । ४. आत्मज्ञान ।

यौ०—नैष्कर्म्यनिष्ठ = समस्त कर्मों से निवृत्ति ।

नैष्किकचन्य—संज्ञा पुं० [सं० नैष्किकचन्य] निष्किकचनता । दरिद्रता ।

नैष्किक^१—वि० [सं०] १. निष्क संबंधी । २. निष्क द्वारा मोल लिया हुआ ।

नैष्किक^२—संज्ञा पुं० टंकशाला का अण्डाल । टंकशाला घर का भण्डार ।

नैष्कृतिक—वि० [सं०] परवृत्ति छेदन में तत्पर । दूसरे की हानि करके अपना प्रयोजन निकालनेवाला । स्वार्थी ।

नैष्कर्म्य—संज्ञ पु० [सं०] नवजात बालक को प्रथम बार घर से बाहर ले जाने का संस्कार [को०] ।

नैष्ठिक^१—वि० [सं०] [वि० बी० नैष्ठिकी] १. निष्ठावान् । निष्ठा-युक्त । २. मरण काल में कर्तव्य (कर्म) ।

नैष्ठिक^२—संज्ञ पु० ब्रह्मचारियों का एक भेद । वह ब्रह्मचारी जो उपनयन काल से लेकर मरण काल तक ब्रह्मचर्यपूर्वक गुरु के आश्रम पर ही रहे ।

विशेष—याज्ञवल्क्य स्मृति में लिखा है कि नैष्ठिक ब्रह्मचारी को यावज्जीवन गुरु के पास रहना चाहिए । गुरु यदि न हों तो उनके पुत्र के पास, और आचार्यपुत्र भी न हों तो आचार्यपत्नी की सेवा में, आचार्यपत्नी के अभाव में अग्नि-होत्र की अग्नि के पास उसे जीवन बिताना चाहिए । इस प्रकार का जितेंद्रिय ब्रह्मचारी अंत में मुक्ति पाता है ।

नैष्ठुर्य—संज्ञ पु० [सं०] निष्ठुराई । क्रूरता ।

नैष्ठ्य—संज्ञ पु० [सं०] दृढ़ निष्ठा [को०] ।

नैसर्गिक—वि० [सं०] स्वाभाविक । प्राकृतिक । स्वभावसिद्ध । कुदरती ।

नैसर्गिकी—वि० को० [सं०] प्राकृतिक ।

नैसर्गिकी दशा—संज्ञा स्त्री० [सं०] ज्योतिष में एक दशा ।

नैसा^१—वि० [सं० अनिष्ट] अनैसा । बुरा । खराब । उ०—(क) सुरदास प्रभु के गुण ऐसे । भक्तन भल, दुष्टन को नैसे ।—सुर (शब्द०) । (ख) कहु राधा हरि कैसे हैं । तेरे मन भाये की नाही, की सुंदर की नैसे हैं ।—सुर (शब्द०) ।

नैसुक^२—वि० [हि०] दे० 'नैसुक' ।

नैस्त्रिशिक—संज्ञा पु० [सं०] निस्त्रिशवाला । सङ्गघर । तलवार धारण करनेवाला [को०] ।

नैहर—संज्ञा पु० [सं० ज्ञाति, प्रा० छाति, छाह (= पिता) + हि० घर, अथ० छाहहर] स्त्री के पिता का घर । माँ बाप का घर । मायका । पीहर । उ०—नैहर जनम भरव बर जाई । बिप्रस न करबि सबति सेवकाई ।—मानस, २।२१ ।

नैहार—वि० [सं०] सुवारान्द्वज । कुहेलिकामय [को०] ।

नो—क्रि० वि० [सं०] नहीं ।

नोचना—क्रि० स० [सं० मज्ज] दे० 'नोचना' ।

नोच्चा—संज्ञा पु० [हि० नोचना] [स्त्री० अल्पा० नोई] दूध दूहते समय गाय के पेर बाँधने की रस्सी । बंधी ।

नोइनी—संज्ञा स्त्री० [हि० नोचना] दे० 'नोई' ।

नोई—संज्ञा स्त्री० [हि० नोचना] दूध दूहते समय गाय के पेर बाँधने की रस्सी । बंधी ।

नोक—संज्ञा स्त्री० [क्रा०] [वि० नुकीला] १. उस ओर का सिरा जिस ओर कोई वस्तु बराबर पतली बढ़ती गई हो । सूक्ष्म अग्रभाग । शंकु के आकार की वस्तु का महीन या पतला छोर । घनी । जैसे, सूई की नोक, कटि की नोक, भासे की नोक, खूँटे की नोक, हूँते की नोक ।

नो०—नोक भोंक ।

मुहा०—नोक की सेना = बढ़ बढ़कर बातें करना । गर्व दिखाना । नोक दुम भागना = जी छोड़कर भागना । बेतहाशा भागना । नोक रह जाना = ध्यान की बात रह जाना । टेक या प्रतिज्ञा का निर्वाह हो जाना । बात रह जाना । मर्यादा रह जाना । प्रतिष्ठा बनी रह जाना । नोक बनाना = बनाव सिगार करना । रूप संवारना ।

२. किसी वस्तु के निकले हुए भाग का पतला सिरा । किसी ओर की बढ़ा हुआ पतला अग्रभाग । जैसे,—जमीन की एक नोक पानी के भीतर तक गई है । ३. कोण बनानेवाली दो रेखाओं का संगम स्थान या बिंदु । निकला हुआ कोना । जैसे, दोवार की नोक ।

नोक भोंक—संज्ञा स्त्री० [क्रा० नोक + हि० भोंक] १. बनाव सिगार । ठाटबाट । सजावट । जैसे,—कल तो वे बड़ी नोक भोंक से बिगटर देखने निकले थे । २. तपाक । तेज । भातक । दर्प । जैसे,—कल तो वे बड़ी नोक भोंक से बातें करते थे । उ०—सरद घटान की छटान सी सुरंगधार धारयो है जटान काम कीन्हों नोक भोंक के ।—रघुराज (शब्द०) । ३. चुभनेवाली बात । व्यंग्य । ताना । धावाजा । जैसे,—उनकी नोक भोंक अब नहीं सुनी जाती । ४. छेड़छाड़ । परस्पर की चोट । जैसे,—आजकल उन दोनों में खूब नोक भोंक चल रही है ।

क्रि० प्र०—चलना ।

नोकना—क्रि० स० [?] चलना । उ०—चितै रह्यो राधा हरि को मुख । उत ही समय एकटक प्यारी छवि भ्रम भ्रम अवलोकत । रोकि रहे उत हरि इत राधा घरस परस बोज नोकत । सखिन कह्यो वृषभानु सुता सों देखे कुंवर कन्हौई । सुर प्रथम एई है ब्रज में जिनकी होति बड़ाई ।—सुर (शब्द०) ।

नोकदार—वि० [क्रा०] १. जिसमें नोक हो । २. चुभनेवाला । पैना । ३. चित्त में चुभनेवाला । दिल में असर करनेवाला । ४. शानदार । तड़क भड़क का । ठसक का ।

नोकपलक—संज्ञा स्त्री० [हि० नोक + पलक] पाँख, नाक आदि की गड़न । चेहरे की बनावट ।

मुहा०—नोकपलक से ठीक = चारों ओर से सुधील । नज़ से सिल तक सुंदर ।

नोकपान—संज्ञा पु० [क्रा० नोक + हि० पान] जूते की नोक और एड़ी पर लगा हुआ कीमुस्ती चमड़ा जो पान के आकार का होता है । जूते की काटछाँट, सुंदरता और मजबूती । (जूतेवाले) । जैसे,—जरा इस जूते का नोकपान देखिए ।

नोकाभोंकी—संज्ञा स्त्री० [हि० नोकभोंक] १. छेड़छाड़ । परस्पर व्यंग्य आदि द्वारा आक्रमण । ताना । धावाजा । २. परस्पर की चोट । विवाद । झगड़ा ।

क्रि० प्र०—चलना ।

नोकीला—वि० [हि० नोक + इला (प्रत्य०)] दे० 'नुकीला' ।

नोखा—वि० [हि० अनोखा] [स्त्री० अनोकी] अदभुत । विचित्र ।

बिलमल। धपूठा। धपूँ। जैसे,—नोखे की नाउन बस की नहरन (खियाँ)।

नोच—संज्ञा स्त्री० [हि० नोचना] १. नोचने की क्रिया या भाव। २. छीनने या लेने की क्रिया। कई धोर से कई छादमियों का झपाटे के साथ छीनना या लेना। लूट।

यौ०—नोचखसोट। नोचाखसोटी। नोचानाची। नोचानोची।

३.—कई धोर से कई छादमियों का माँगना। चारों धोर की माँग। बहुत से लोगों का तकाजा। जैसे,—चारों धोर से नोच है किसका किसका रुपया दें।

क्रि० प्र०—मचना।—होना।

नोचखसोट—संज्ञा स्त्री० [हि० नोचना+खसोटना] झपाटे के साथ लेना या छीनना। जबरदस्ती खींच खींच करके लेना। छीनाझपटी। लूट।

क्रि० प्र०—करना।—मचाना।—होना।

नोचना—क्रि० सं० [सं० लुञ्चन] १. किसी जमी या जगह हुई वस्तु को झटके से खींचकर धन्य करना। उखाड़ना। जैसे, बाल नोचना, डाढ़ी नोचना, पत्ती नोचना।

संयो० क्रि०—डालना।—देना।—लेना।

२. किसी वस्तु में दाँत, नख या पंजा घँसाकर उसका कुछ घँस खींच लेना। नख आदि से विदीर्ण करना। जैसे,—चीता शिकारी का मांस नोचता हुआ निकल गया।

संयो० क्रि०—लेना।

यौ०—नोचना खसोटना = खींच खींचकर लेना। झपाटे से छीनना। लूटना।

३. शरीर पर इस प्रकार हाथ या पंजा लगाता कि नाखून घँस जायें। खरोंचना। खरोंच डालना।

संयो० क्रि०—लेना।

४. बार बार तंग करके लेना। दुःखी धोर हिरान करके लेना। पोछे पड़कर किमी की इच्छा के विरुद्ध उससे लेना। जैसे,—तीनों में पंडे धोर कचहरियों में झमसे नोच डालते हैं।

संयो० क्रि०—डालना।

५. बार बार तंग करके माँगना। ऐसा तकाजा करना कि नाक में दम हो जाय। जैसे,—उसे चारों धोर से महाजन नोच रहे हैं किसका किसका पैसा।

नोचानाची—संज्ञा स्त्री० [हि० नोचना] ३० 'नोचखसोट'।

नोचू—संज्ञा पुं० [हि० नोचना] १. नोचनेवाला। २. छीना झपटी करके लेनेवाला। ३. तंग करके लेनेवाला। घेरकर या पीछे पड़कर अर्थात्क मिल सके लेनेवाला। ४. बार बार माँगकर तंग करनेवाला। तकाजों के बारे नाकों दम करनेवाला।

नोट—संज्ञा पुं० [सं०] १. टाँकने या लिखने का काम। ध्यान रहने के लिये लिख लेने का काम।

क्रि० प्र०—करना।—होना।

२. लिखा हुआ पत्र। पत्र। चिट्ठी।

३-१०

नौ०—नोट पेपर।

३. टिप्पणी। धातय या धर्म प्रकट करनेवाला लेख। ४. सरकार की धोर से जारी किया हुआ वह कागज जिसपर कुछ रुपयों की संख्या रहती है और यह लिखा रहता है कि सरकार से उतना रुपया मिल जायगा। सरकारी हुंडी।

विशेष—हिंदुस्तान में नोट दो प्रकार का होता है एक करेंसी, दूसरा प्रामिसरी। करेंसी नोट बराबर सिक्कों के स्थान पर चलता है और उसका रुपया जब चाहें तब मिल सकता है। प्रामिसरी नोट पर केवल सुद मिलता रहता है। सरकार माँगने पर उसका हारा देने के लिये बाध्य नहीं है। प्रामिसरी नोट का माव पटता बढ़ता है।

नोटपेपर—संज्ञा पुं० [सं०] चिट्ठी लिखने का कागज।

नोटबुक—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह कापी या बही जिसपर कोई बात याद रखने के लिये लिखी जाय।

नोटिस—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. विज्ञप्ति। सूचना। २. विज्ञापन। इतिहास।

विशेष—इस शब्द को कुछ लोग पुल्लिग भी बोलते हैं।

नोदन—संज्ञा पुं० [सं०] १. प्रेरणा। चलाने या हूँकने का काम। २. बैलों की हूँकने की छड़ी या कोड़ा। प्रतोद। पैना। धोगी। उ०—मीनरथ सारथी के नोदन नवीने हैं।—कैलाश (शब्द०)। ३. खंडन।

नोदना—संज्ञा स्त्री० [सं०] प्रेरणा [को०]।

नोदयिता—वि० [सं० नोदयितृ] प्रेरक। प्रेरणा देनेवाला। धागे बढ़ानेवाला [को०]।

नोघा—वि० [सं०] नव प्रकार या ढंग का। नवधा [को०]।

नोनी—संज्ञा पुं० [सं० लवण, हि० लोन] नमक।

नोनचा^१—संज्ञा पुं० [हि० नोन + प्रा० घचार] १. नमकीन घचार। २. नमक में डाली हुई घाम की फाँकों की झटाई।

नोनचा^२—संज्ञा पुं० [हि० नोन + छार] वह भूमि जहाँ लोनी बहुत हो। लोनी जमीन।

नोनछी—संज्ञा स्त्री० [हि० नोन + छार] लोनी मिट्टी।

नोनहरा—संज्ञा पुं० [?] पैसा। (गंधर्वों की बोली)।

नोनहरामी—वि० [हि० नोन + हरामी] ३० 'नमकहरामी'।

नोना^१—संज्ञा पुं० [सं० लवण, हि० नोन] [स्त्री० नोनी] २. नमक का घंश जो पुरानी बीमारों तथा सीढ़ की जमीन में लगा मिलता है। ३. लोनी मिट्टी। † ३. लोफा। सीताफल। घात। ४. एक कीड़ा जो नाव या जहाज के पेदे में लगकर उसे कमजोर कर देता है। उधई कीड़ा।

नोना^२—वि० [वि० स्त्री० नोनी] १. नमक मिला। लारा। जैसे, नोना पानी, नोनी मिट्टी। २. लावण्यमय। सलोना। सुंदर। ३. अच्छा। बढ़िया।

नोना—क्रि० सं० [हि० नोघना, नोवना] ३० 'नोवना'।

नोना चमारी—संज्ञा स्त्री० एक प्रसिद्ध जादूगरनी जिसकी दोहाई

प्रबलक मंत्रों में दी जाती है। माना जाता है कि यह कामरूप देश की थी। नोना चमाइन।

नोनिया^१—संज्ञा पुं० [हि० नोना] लोनी मिट्टी से नमक निकालनेवाली एक जाति।

नोनिया^२—संज्ञा स्त्री० [हि० नोन] एक जाड़ी। लोनिया। अमलोनी।

नोनी^१—संज्ञा स्त्री० [म० लवण] १. लोनी मिट्टी। २. लोनिया। अमलोनी का पौधा।

नोनी^२—वि० स्त्री० [हि० नोना] १. सुंदर। रूपवती। २. अच्छी। बढ़िया।

नोनो^१—वि० [हि० लोन, लोना] [वि० स्त्री० नोनी] १. सलोना। सुंदर। २. अच्छा। अच्छा। बढ़िया।

नोर^१—वि० [सं० नवल हि० नील] नवीन। नया। उ०—सित सरोज फूले उतै इत इंदीवर नोर। लशि मंडल वहि धोर अनु विपमंडल यहि धोर।—गुमान (शब्द०)।

नोर^२—संज्ञा पुं० [हि० लोर] अश्व। घोड़ा। उ०—(क) नहि नहि करए नयन डर नोर। काँच कमल अमरा क्रिक भोर।—विद्यापति, पृ० २०४। (ख) नहि नहि करय नयन डर नोर। सुति रहल धनि सेजक धोर।—विद्यापति, पृ० २०४।

नोल^१—वि० [म० नवल] दे० 'नवल'।

नोल^२—संज्ञा स्त्री० [देश०] बिड़िया की चोंच।

नोवना^१—क्रि० स० [म० बढ, हि० नदना, नहना] दुहते समय रस्सी से गाय का पैर बाँधना। उ०—बछरा छोरि लरिक को दोनो छाप कान्ह तन सुघ बिसराई। नोवत दुषम निकलि गेया गई हँसत बल्ला कहा दुहत कन्हारई।—सूर (शब्द०)।

नोहरा^१—वि० [सं० नोवलभ्य, प्रा० नोत्लह, या मनोहर] १. अलभ्य। दुर्लभ। जल्दी न मिलनेवाला। २. अनोखा। अद्भुत। उ०—अति सुकुमार सरीर मनोहर नोहर नैन बिसाला।—रघुनाथ (शब्द०)।

नौधरई, नौधरई, नौधरी—संज्ञा स्त्री० [हि० नाम + धरना] दे० 'नामधरई'।

नौ^१—वि० [सं० नव] जो गिनती में आठ धोर एक हो। एक कम दस।

नौ^२—संज्ञा पुं० एक कम दस की संख्या। नौ की संख्या को इस प्रकार लिखी जाती है—९।

मुहा०—नौ से ग्यारह होना = देखते देखते भाग जाना। चला जाना। चला देना। भाग जाना। नौ तेरह बाइस बताना = होला हवाली करना। टाल मटोल करना। इधर उधर की बातें करके टाल देना। जैसे,—जब मैं रुपया माँगने जाता हूँ तब वे नौ तेरह बाइस बताने हैं।

नौ^३—संज्ञा पुं०, स्त्री० [सं०] १. पोत। जहाज। नौका। २. एक राशि या नक्षत्र का नाम (क्षी०)। ३. काल। समय (क्षी०)।

नौ^४—वि० [सं० नव, पुल० फा० नौ] नया। नवीन। हाल का। ताजा।

नौकड़ा—संज्ञा पुं० [हि० नौ + कीड़ी] एक प्रकार का जूसा जो तीन छायी तीन तीन कीड़ियाँ लेकर चलते हैं।

नौकर—संज्ञा पुं० [फा०] [स्त्री० नौकरानी] १. सेवा करने के लिये वेतन आदि पर नियुक्त मनुष्य। टहल या काम धंधा करने के लिये तनखाह पर रखा हुआ आदमी। भृत्य। चाकर। टहलुवा। खिदमतगार।

क्रि० प्र०—रखना।—लगाना।

यौ०—नौकर चाकर।

२. कोई काम करने के लिये वेतन आदि पर नियुक्त किया हुआ मनुष्य। वेतनिक कर्मचारी। जैसे,—तहसीलदार एक सरकारी नौकर है।

मुहा०—(किसी को) नौकर रखना = कार्य पर वेतन देकर नियुक्त करना। काम पर लगाना।

नौकरशाही—संज्ञा स्त्री० [फा० नौकर + शाही] वह सरकार या शासन प्रणाली जिसमें राजसत्ता या शासनसूत्र उच्च राज-कर्मचारियों या बड़े बड़े सरकारी अफसरों के हाथों में रहे। वि० दे० 'ब्यूरोक्रेसी'।

नौकराना—संज्ञा पुं० [फा० नौकर + पाना (प्रत्य०)] १. वेतन के प्रतिरिक्त नौकर को दिया जानेवाला धन। नौकर का हक। २. वह धन जो दूकानदार माल खरीदनेवाले के नौकर को देता है। वस्तुरी।

नौकरानी—संज्ञा स्त्री० [फा० नौकर + पानी (प्रत्य०)] दासी। घर का काम धंधा करनेवाली स्त्री।

नौकरी—संज्ञा स्त्री० [फा० नौकर + ई (प्रत्य०)] १. नौकर का काम। सेवा। टहल। खिदमत।

क्रि० प्र०—करना।

मुहा०—नौकरी देना या बजाना = नौकरी के काम में लगाना। सेवा में तत्पर होना। नौकरी से लगना = नौकर होना। काम पाना। नौकरी पाना।

२. कोई काम जिसके लिये तनखाह मिलती हो। जैसे, सरकारी नौकरी।

नौकरीपेशा—संज्ञा पुं० [फा० नौकरीपेशा] वह जिसका काम नौकरी करना हो। वह जिसकी जीविका नौकरी से चलती हो।

नौकर्ण—संज्ञा पुं० [सं०] जहाज की पतवार।

नौकर्णदार—संज्ञा पुं० [सं०] नाव का कर्णदार। जहाज चलावेवाला मल्लाह। पोतचालक (क्षी०)।

नौकर्ण—संज्ञा स्त्री० [सं०] कार्तिकेय की अनुचरी एक मातृका।

नौकर्म—संज्ञा पुं० [सं० नौकर्म] मल्लाह का पेशा या काम।

नौका—संज्ञा स्त्री० [सं०] नाव। जहाज।

नौकादंड—संज्ञा पुं० [सं० नौकादण्ड] पतवार। डीङ्गा (क्षी०)।

नौकर्म—संज्ञा पुं० [सं०] नावों का पुल।

नौगरे नौग्रही, नौग्रही^१—संज्ञा स्त्री० [सं० नव + ग्रह या क्रा विरह] दे० 'नौग्रही'।

नौग्रही^२—संज्ञा स्त्री० [हि० नौग्रही] दे० 'नौग्रही'।

नौग्रही—संज्ञा स्त्री० [सं० नव + ग्रह] हाथ में पहनने का एक गहना जिसमें नौ कंगूरेदार बाने पाद में गुंथे रहते हैं।

नौचर^१—संज्ञा पुं० [सं०] मल्लाह ।

नौचर^२—वि० जहाज पर जानेवाला ।

नौचा—संज्ञा पुं० [फ्रा० नौचर] [बी० नौची] नई युवावस्था का व्यक्ति । नवयुवक [को०] ।

नौची—संज्ञा बी० [फ्रा० नौची (= नवयुव), या फ्रा० नौचर, का-बी०] १. बेथ्या की पाखी हुई लड़की जिसे वह अपना व्यवसाय सिखाती हो । २. नवयुवती ।

नौछावर^१—संज्ञा बी० [हि० निछावर] दे० 'निछावर' ।

नौज—अभ्य० [सं० नवज, प्रा० नवज; या अ० नऊज] १. ऐसा न हो । ईश्वर न करे । (अनिच्छासूचक) । उ०—नगर कोट पर बाहर सुना । नौज होय पर पुरुष बिहूना ।—जायसी (शब्द०) । २. न हो । न सही । (बेपरवाही) (स्त्रि०) ।

नौजवान—वि० [फ्रा०] नवयुवक । नया पढ़ा । उठती बबानी का ।

नौजवाना—संज्ञा बी० [फ्रा०] उठती युवावस्था । नई बबानी ।

नौजा—संज्ञा पुं० [फ्रा० नौज] १. बाबाम । २. बिलगोजा । उ०—नौजा नरियर नेतरबाला । नौम निसोत निबिसो आधा ।—सूदन (शब्द०) ।

नौजी—संज्ञा बी० [?] लीची ।

नौजीबक, नौजीबिक—संज्ञा पुं० [सं०] मल्लाह । खलासी ।

नौजन^१—वि० [सं० नूतन] दे० 'नूतन' ।

नौनम^१—वि० [सं० नवतम] १. अत्यंत नवीन । बिल्कुल नया । २. ताजा ।

नौनम^२—संज्ञा पुं० [सं० नम्रता] नम्रता । विनय ।

नौता^१—संज्ञा पुं० [सं० निमन्त्रण] दे० 'न्योता' ।

नौता^२—वि० [सं० नव या नूतन] [वि० बी० नौतो] नया । हाल का । ताजा । उ०—करहि जो किमरी नेइ बैरागी । नौती होइ बिरह के आगी ।—जायसी (शब्द०) ।

नौतार्य—वि० [सं०] जहाज या नौका से पार होने योग्य [को०] ।

नौतेरही—संज्ञा बी० [हि० नौ + तेरह] १. कंकई ईंट । छोटी ईंट । नौ आँ चौड़ी और तेरह आँ लंबी ईंट जो पुरानी बाल के मकानों में लगती थी । २. एक प्रकार का लुप्ता जो वासों से छेला जाता है ।

नौतोड़^१—वि० [सं० नव, हि० नौ + तोड़ना] नया तोड़ा हुआ । जो पहले पहल धोता गया हो । जैसे, नौतोड़ खेत या जमीन ।

नौतोड़^२—संज्ञा बी० वह भूमि जो पहली बार जोती गई हो ।

नौदंड—संज्ञा पुं० [सं० नौदण्ड] नाव खेने का डंडा ।

नौदसी—संज्ञा बी० [हि० नौ + दस] एक रीति जिसके अनुसार किसान अपने जमींदार से रुपया उधार लेते हैं और साल भर में ९ के १० देते हैं ।

नौघ—संज्ञा पुं० [सं० नव (= नया) + पोषा] नया पोषा । संतुषा ।

नौघा^१—संज्ञा पुं० [सं० नव, हि० + पोषा] १. नौक की वह फसल जो सर्वांश ही में बोई गई हो । २. नए फलदार पौधों का

बगीचा । नया लगा हुआ बगीचा । † ३. नया पढ़ा । उभरता हुआ बबान ।

नौधा^१—वि० [सं० नवधा, नोधा] दे० 'नवधा' ।

नौनगा—संज्ञा पुं० [हि० नौ + नग] बाहु पर सहनने का एक गहना जिसमें नौ नग जड़े होते हैं । इसमें नौ दाने होते हैं और प्रत्येक दाने में भिन्न भिन्न रंग के नग जड़े जाते हैं । इसे 'नौरतन' भी कहते हैं ।

नौना—क्रि० प्र० [सं० नमन] १. नमना । झुकना । २. झुककर टेढ़ा होना ।

नौनिहाल—संज्ञा पुं० [फ्रा०] नवयुवक । नौजवान [को०] ।

नौनेता—संज्ञा पुं० [सं० नौनेतृ] जहाज की पतवार एकड़नेवाला । कर्णधार । मल्लाह ।

नौबन्धन—संज्ञा पुं० [सं० नौबन्धन] हिमालय के सर्वोच्च शृंग का नाम । कहते हैं कि महाप्लावन के समय मनु ने इसी से अपना जहाज बाँधा था (महाभारत) ।

नौबढ़—वि० [सं० नव + हि० बढ़ना] हाल में बढ़ा हुआ । उच्च । जिसे सुद या हीन दशा से अच्छी दशा में आए थोड़े ही दिन हुए हों । उ०—लखी लखन कौतुक धरि धीरा । काह करत बड़ि नौबढ़ धीरा ।—रघुराज (शब्द०) ।

नौबढ़ियाँ, नौबढ़वा—वि० [हि०] दे० 'नौबढ़' ।

नौबत—संज्ञा बी० [फ्रा०] १. धारी । पारी । जैसे, नौबत का बुलार । २. गति । दशा । हाबत । जैसे,—घर बनो, देखो तुम्हारी क्या नौबत होती है ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

मुहा०—नौबत को पहुँचना = दशा को प्राप्त होना । हाबत में होना ।

३. स्थिति में कोई परिवर्तन करनेवाली बातों का घटना । उपस्थित दशा । संयोग । जैसे,—ऐसा काम न करो जिससे भागने की नौबत आवे ।

क्रि० प्र०—आना ।—पहुँचना ।

४. वैभवा, उत्सव या मंगलसूचक वाद्य जो पहर पहर घर पर देवमंदिरों, राजप्रसादों या बड़े आश्रमियों के द्वार पर बजता है । समय समय पर बजनेवाला बाजा ।

विशेष—नौबत में प्रायः गहनाई और नगाड़े बजाते हैं ।

क्रि० प्र०—बजना ।—बजाना ।

यौ०—नौबतखाना ।

मुहा०—नौबत ऋकना = नौबत बजना । नौबत बजना = (१) आनंद उत्सव होना । (२) प्रताप या ऐश्वर्य की घोषणा होना । नौबत बजाना = (१) आनंद उत्सव करना । खुशी मनाना । (२) प्रताप या ऐश्वर्य की घोषणा करना । दबदबा दिखाना । आतंक प्रकट करना । नौबत बशाकर = डंके की चोट । लुके आम । नौबत की टकोर = (१) डंके की चोट । (२) डंके या नगाड़े की आवाज ।

नौबतखाना—संज्ञा पुं० [फ्रा० नौबतखानह] फाटक के ऊपर बना हुआ वह स्थान जहाँ नौबत बवाई जाती है । बक्कारखाना ।

नौबती—संज्ञा पुं० [फ्रा० नौबत + ई (प्रत्य०)] १. नौबत बघाने-वाला। नवकारची। २. फाटक पर पहरा देनेवाला। पहरेदार। ३. कोतल घोड़ा। बिना सवार का सबा हुआ घोड़ा। ४. बड़ा खेमा या तबू।

नौबतीदार—संज्ञा पुं० [फ्रा० नौबतदार] १. खेमे पर पहरा देनेवाला। संतरी। २. दरबान। द्वारपाल।

नौबद्दु—संज्ञा स्त्री० [फ्रा० नौबत] दे० 'नौबत'। उ०—नौबद्दु नाब निसान बजि भरी डोल घुदग।—रसरतन, पृ० १८७।

नौबरार—संज्ञा पुं० [फ्रा०] वह भूमि जो किसी नदी के हट जाने से निकल आती है।

नौमासा—संज्ञा पुं० [य० नवमास] १. गर्भ का नवौं महीना। २. वह रीति रस्म जो गर्भ नौ महीने का हो जाने पर की जाती है और जिसमें पंजीरी मिठाई आदि बाँटी जाती है।

नौमि—संज्ञा पुं० [सं० नमामि का अपभ्रंश वा सं०] एक वाक्य जिसका अर्थ है मैं नमस्कार करता हूँ। उ०—नौमि निरंतर श्री रघुबीरं।—तुलसी (सम्ब०)।

नौमी—संज्ञा स्त्री० [सं० नवमी] पक्ष की नवौं तिथि।

नौयान—संज्ञा पुं० [सं०] १. जहाज। २. जहाजरानी (स्त्री)।

नौयायी—वि० [सं० नौयायिन्] नाव पर जानेवाला (यात्री या माल)।

नौरंग—संज्ञा पुं० [सं० नव+रङ्ग] एक प्रकार की बिड़िया।

नौरंग(गु)²—संज्ञा पुं० औरंग (औरंगजेब) का कर्पांतर।

नौरंगी—संज्ञा स्त्री० [हि० नारंगी] दे० 'नारंगी'।

नौरत्न—संज्ञा पुं० [सं० नवरत्न] दे० 'नवरत्न'।

नौरत्न²—संज्ञा पुं० [सं० नवरत्न] नौनवा नाम का गहना।

नौरत्न³—संज्ञा स्त्री० एक प्रकार की चटनी जिसमें ये नौ चीजें पकती हैं—खटाई, गुड़, मिर्च, शीतलचीनी, केसर, इलायची, जावित्री लौफ और जीरा।

नौरत्न¹—वि० [सं० नव (= नया) + रत्न] १. (फल) जिसका रस नया अर्थात् ताजा हो। नया पका हुआ (फल)। ताजा (फल)। २. नवयुवक।

नौरत्न²—संज्ञा पुं० [सं० नवरत्न] साहित्य में शृंगार, वीर, कथण, हास्य, अद्भुत, भयानक, शीघ्र, रोद्र और कांत ये नौ रस।

नौरासरा—संज्ञा पुं० [सं० नवरात्र] दे० 'नवरात्र'।

नौरूप—संज्ञा पुं० [हि० नव + रोपना] नील की फसल की पहली कटाई। वि० दे० 'नील'।

नौरोज—संज्ञा पुं० [फ्रा० नौरोज] १. पारसियों में नए वर्ष का पहला दिन। इस दिन बहुत धानब उपसव मनाया जाता था। २. त्योहार का दिन। ३. खुशी का दिन। कोई शुभ दिन।

नौल¹—वि० [य० नवल] दे० 'नवल'।

नौल²—संज्ञा पुं० [देश०] जहाज पर माल खाने का भाड़ा।

नौलखा—वि० [हि० नौलख] दे० 'नौलखा'।

नौलखा—वि० [हि० नौ + खाल] नौ साल का। जिसका मूल्य नौ साल का हो। जड़ाऊ और बहुमूल्य। जैसे, नौलखा हार।

नौलखी—संज्ञा स्त्री० [देश०] ताने की बगाने के लिये एक मकड़ी जिसमें हथर उपर बजनी पत्थर बंधे रहते हैं। (जुवाहे)।

नौला—संज्ञा पुं० [सं० नकुल] दे० 'नैला'।

नौलासी—वि० [सं० नवल] नमं। मुलायम। कोमल।

नौलाब—संज्ञा पुं० [फ्रा० नवाब] दे० 'नवाब'।

नौलाबी—संज्ञा स्त्री० [फ्रा० नवाबी] दे० 'नवाबी'।

नौवाह—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'नौनेता'।

नौशा—संज्ञा पुं० [फ्रा० नौसह] [स्त्री० नौशी] धुल्ला। वर।

नौशाह—संज्ञा पुं० [फ्रा०] दे० 'नौशा' [स्त्री०]।

नौशी—संज्ञा स्त्री० [फ्रा०] नवबहू। दुलहिन।

नौशेरवा—संज्ञा पुं० [फ्रा०] फारस का एक परम प्रसिद्ध ग्याबी और प्रतापी बादशाह।

विशेष—यह सन् ५३१ ई० में अपने पिता कुबाह के मरने पर सिंहासन पर बैठा। रोमन लोगों को इसने युद्ध में कई बार परास्त किया। मुसलमान लेखकों ने तो लिखा है कि इसने रोम के बादशाह को कैद किया था। रोम का सम्राट उस समय जस्टिनियन था। नौशेरवा की प्रतिरोध पर विजय, शाम देल तथा भूमध्य सागर के अनेक स्थानों पर अधिकार तथा साइबेरिया, यूक्रेन आदि प्रदेशों पर आक्रमण रोम के इतिहास में भी प्रसिद्ध है। रोम का बादशाह जस्टिनियन पारस्य साम्राज्य के अधीन होकर प्रतिवर्ष तीस हजार अक्षरकिया कर देता था। ८० वर्ष की बुढ़ावस्था में नौशेरवा ने रोम राज्य के विरुद्ध बढ़ाई की थी और दारा तथा शाम आदि देशों को अधिकृत किया था। ४८ वर्ष राज्य करके वह प्रतापी और ग्याबी बादशाह परलोक सिंचारा।

फारसी किताबों में नौशेरवा के ग्याब की बहुत सी कथाएँ हैं। ध्यान रखना चाहिए कि इसी बादशाह के समय में मुसलमानों के पैगंबर मुहम्मद साहब का जन्म हुआ जिनके मत के प्रभाव से आगे चलकर पारस की धार्मिक सभ्यता का लोप हुआ।

नौसत—संज्ञा [हि० नौ + सात] सोलहो शृंगार। सिंगार। उ०—नौसत साजे बली गोपिका गिरवर पूजा हेत।—सूर (सम्ब०)।

नौसरा—संज्ञा पुं० [हि० नौ + सर] चालाकी। तिकड़म। चोलाचड़ी। चालबाजी।

नौसरा—संज्ञा पुं० [हि० नौ + सर] नौ लड़ी की माला। नौसराहार या गजरा।

नौसरिया—वि० [हि०] चालाक। चालबाज। तिकड़मी।

नौसादर—संज्ञा पुं० [सं० नर + सादर, फ्रा० नौसादर] एक तीक्ष्ण भावदार स्तर या नमक जो दो वायव्य द्रव्यों के योग से बनता है।

विशेष—यह स्तर वायव्य रूप में हवा में घल्य मात्रा में मिलकर रहता है और जंतुओं के शरीर के सड़ने गलने से एकट्ठा होता है। सींग, छुर, हड्डी, बाल आदि का भस्म में घर्ष करके यह एकसर निकाला जाता है। गैस के कारण होने में पत्थर के कोयले को भस्म के पर चढ़ाने से जो एक प्रकार का पानी सा पदार्थ छुटता है, चायकच बहुत सा नौसादर

उसी से निकाला जाता है। पहले सोम इंद्र के पत्राओं से भी, जिनमें मिट्टी के साथ कुछ जंतुओं के अंग भी मिसकर जलते थे, यह क्षार निकालते थे। नौसाधर धोषध तथा कलाकोशल के व्यवहार में आता है।

वैद्यक में नौसाधर दो प्रकार का कहा गया है। एक कृत्रिम जो धीरे धीरे में बनाया जाता है, दूसरा अकृत्रिम जो जंतुओं के मूत्र पुरीष आदि के क्षार से निकाला जाता है। आयुर्वेद के अनुसार नौसाधर शोथनाशक, शीतल तथा गुरुत, प्लीहा, ज्वर, अर्बुद, सिरददं, सर्पिणी इत्यादि में उपकारी है।

पर्याय—नरक्षार। साधर। वज्रक्षार। विदारण। अमृतक्षार। जूलिका लवण। क्षारश्रेष्ठ।

नौसाधन—संज्ञा पुं० [सं०] जहाजी वेड़ा [को०]।

नौसार—संज्ञा स्त्री० [सं० लवणशाला; हि० नोन + सार] वह स्थान जहाँ नोनिया लोग लोनी मिट्टी से नमक बनाते हैं।

नौसिख—वि० [सं० नवसिद्धित] दे० 'नौसिखिया'।

नौसिखिया—वि० [सं० नवसिद्धित, प्रा० नवसिखिष] जिसने नया नया सीखा हो। जिसने कोई काम हाल में सीखा हो। जो सीखकर पक्का न हुआ हो। जो दक्ष या कुशल न हुआ हो।

नौसिखुवा—वि० [सं० नवसिद्धित] दे० 'नौसिखिया'।

नौसेना—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह सेना या फौज जो लड़ाई जल के जहाजों पर चढ़कर युद्ध करती है। लड़ाई जहाजों पर से युद्ध करनेवाली सेना या फौज। जल सेना।

नौसेनापति—संज्ञा पुं० [सं०] नौसेना का प्रधान या अध्यक्ष। जलसेनाध्यक्ष।

नौहड़—संज्ञा पुं० [सं० नव (=नया) + भाएड, हि० हड़ि] मिट्टी की नई हड़ि। कोरी हड़िया।

नौहड़ा—संज्ञा पुं० [सं० नव + भाएड] पितृवश। कनागत (जिसमें मिट्टी के पुराने बरतन फेंक दिए जाते हैं और नए रखे जाते हैं)।

न्यंक—संज्ञा पुं० [सं० न्यङ्कु] रथ का एक अंग।

न्यङ्कु^१—वि० [सं० न्यङ्कु] नितान्त समनशील। बहुत दौड़नेवाला।

न्यङ्कु^२—संज्ञा पुं० १. मृगभेद। एक प्रकार का हिरन। बारहसिंगा। २. एक मुनि। ऋष्यशृंग [को०]। ३. वह छात्र जो गुरु के साथ रहता हो [को०]।

न्यङ्कुभूरुह—संज्ञा पुं० [सं० न्यङ्कुभूरुह] श्योनाक वृक्ष। सोनापाठा।

न्यङ्कुसारिणी—संज्ञा स्त्री० [सं० न्यङ्कुसारिणी] एक वैदिक छंद जिसके पहले धीरे दूसरे चरण में १२, १२ अक्षर और तीसरे धीरे चौथे चरण में ८, ८ अक्षर होते हैं।

न्यंग—संज्ञा पुं० [सं० न्यङ्ग] १. लक्षण। चिह्न। २. प्रकार। भेद [को०]।

न्यंचन—संज्ञा पुं० [सं० न्यंचन] १. मोड़। घुमाव। २. छिपने की क्रिया। ३. छिन्न [को०]।

न्यंचनी—संज्ञा स्त्री० [सं० न्यंचनी] गोदी। उत्संग [को०]।

न्यंचित—वि० [सं० न्यंचित] १. अवक्षिप्त। नीचे फेंका या डाला हुआ। २. झुकाया हुआ। नवाया हुआ [को०]।

न्यंचलिका—संज्ञा स्त्री० [सं० न्यंचलिका] नीचे की ओर की हुई अंगुली या हथेली।

न्यंत—संज्ञा पुं० [सं० न्यन्त] १. सन्निकटता। सामीप्य। २. अंतिम या पश्चिमी भाग [को०]।

न्यक्—कि० वि० [सं०] अवज्ञा, अपमान, प्रकर्ष, अवनति, लघुता मानहानि आदि अर्थों में कृ' अथवा 'भू' धातु के साथ प्रयुक्त क्रियाविशेषण। कृ' धातु के प्रतिरिक्त अन्य शब्दों के साथ इसका कथ न्यग् होता है।

न्यक्करण—संज्ञा पुं० [सं०] अपमान। तिरस्कार [को०]।

न्यकार—संज्ञा पुं० [सं०] दे० 'न्यक्करण' [को०]।

न्यक्त—वि० [सं०] अंचित। अभिषिक्त।

न्यक्ष^१—वि० [सं०] निकट। अग्रिम। धुंध।

न्यक्ष^२—संज्ञा पुं० १. समग्रता। संपूर्णता। २. परशुराम। ३. महिष। भैंस [को०]।

न्यग्भाव—संज्ञा पुं० [सं०] १. अपमान। तिरस्कार। २. माननाश। अधीनता। ३. अपकर्ष [को०]।

न्यग्भावित—वि० [सं०] तिरस्कृत। गीण। अपमृग्यताप्राप्त [को०]।

न्यग्रोध—संज्ञा पुं० [सं०] १. वट वृक्ष। बरगद। २. जमी वृक्ष। ३. बाहु। ४. लंबाई की एक नाप। उतनी लंबाई जितनी दोनों हाथों के फैलाने से होती है। व्यास। परिमाण। पुरसा। ५. विष्णु। ६. मोहनोषधि। ७. महादेश। ८. उपसेन के एक पुत्र का नाम (हरिवंश)। ९. मुसाकानी। मुषिकपर्णी।

न्यग्रोधपरिमंडल—संज्ञा पुं० [सं० न्यग्रोधपरिमण्डल] वह जिसकी लंबाई चौड़ाई एक व्यास या पुरसा हो। ऐसे पुरुष नेता में राज्य करते थे (महाभारत)।

न्यग्रोधपरिमंडला—संज्ञा स्त्री० [सं० न्यग्रोधपरिमण्डला] स्त्रियों का एक भेद। वह स्त्री जिसके स्तन कठोर, निम्न विनाल और कटि लोण हो।

न्यग्रोधा—संज्ञा स्त्री० [सं०] न्यग्रोधो। मुसाकानी।

न्यग्रोधादि गण—संज्ञा पुं० [सं०] वैद्यक में वृक्षों का एक गण या वर्ग जिसके अंतर्गत ये वृक्ष मान जाते हैं—बरगद, पीपल, गुलर, पाकर, महुआ, अजुन, घाम, कुसुम, घामड़ा, जामुन, चिरीजी, मासरोहिणी, कदम, बेर, तंदू, सलाई, सेबपत्ता, मोब, साबर, भिलावा, पलाश, तुन, घुंघची या मुलेठी।

न्यग्रोधिक—वि० [सं०] (स्थान) जहाँ बहुत से वटवृक्ष हों।

न्यग्रोधिका—संज्ञा स्त्री० [सं०] मुसाकानी सता।

न्यग्रोधो—संज्ञा स्त्री० [सं०] मुसाकानी।

न्यच्छ—संज्ञा पुं० [सं०] १. एक चर्मरोग जिसमें शरीर पर काले चकत्ते पड़ जाते हैं। २. तिल। शरीर पर का तिल [को०]।

न्यय—संज्ञा पुं० [सं०] १. हानि। नाश। २. क्षय [को०]।

न्यबुद्ध—वि० [सं०] दक्ष अर्बुद। दक्ष धरव (संख्या)।

न्यायुद्दि—संज्ञा पु० [मं०] एक रुद्र का नाम । (अथर्व०) ।

न्यसन—संज्ञा पु० [मं०] १. जमा करना । रखना । २. देना । त्यागना । ३. सामने लाना । उपस्थित करना [की०] ।

न्यस्त—वि० [मं०] १. रखा हुआ । धरा हुआ । २. स्थापित । बैठाया या जमाया हुआ । ३. चुनकर सजाया हुआ । ४. क्षिप्त । डाला हुआ । फेंका हुआ । ५. त्यक्त । छोड़ा हुआ ।

न्यस्त—संज्ञा पु० धरोहर रखा हुआ । अमानत रखा हुआ ।

न्यस्तशस्त्र—वि० [मं०] जिसने हथियार रख दिए हों ।

न्यस्तशस्त्र—संज्ञा पु० पितृलोक ।

न्यस्य—संज्ञा पु० [मं०] न्यसन करने योग्य [की०] ।

न्यह्य—संज्ञा पु० [मं०] अमावस्या का मासकाल ।

न्याकव—संज्ञा पु० [मं०] न्यायद्वय । न्यकु का मृगचर्म । बारहसिंघे का चमड़ा ।

न्याही—संज्ञा पु० [मं०] न्याय । १० 'न्याय' ।

न्याही—संज्ञा पु० [मं०] न्याय । २० 'न्याय' ।

न्याक्य—संज्ञा पु० [मं०] पकाया हुआ अथवा गुना हुआ चावल [की०] ।

न्याति(पु)—संज्ञा स्त्री० [मं०] जाति, प्रा० जाति । जाति । उ०—मधुकर कहा आरे की न्याति ? उयों जलमोन कमल मधुपन की छिन नहि प्रीति खटाति । -सूर (शब्द०) ।

न्याद—संज्ञा पु० [मं०] आहार ।

न्यानां—वि० [मं०] अज्ञान या हि० नि (=नही) + सं० ज्ञान, प्रा० न्याण] १. जो कुछ न जानता हो । अज्ञान । निर्बोध । २. छोटी उमर का । अल्प प्रवस्था का । अल्पवयस्क ।

न्याय—संज्ञा पु० [मं०] १. उचित बात । नियम के अनुकूल बात । हुक बात । नीति । इमाफ । जैसे, -(क) न्याय तो यही है कि तुम उसका दया फरदा । (ख) अपराध कोई करे और दण्ड कोई पावे यह कहाँ का न्याय है । २. सदसद्विवेक । दो पक्षों के बीच निर्णय । प्रमाणपूर्वक निश्चय । विवाद या व्यवहार में उचित अनुचित का निश्चय । किसी मामले मुकदम में दोषी और निर्दोष, अधिकारी और अनधिकारी आदि का निर्धारण । जैसे—(क) राजा अच्छा न्याय करता है । (ख) इस प्रदालत में ठाक न्याय नहीं होता ।

न्याय—न्यायसभा । न्यायालय ।

३. वह शास्त्र जिसमें किसी वस्तु के पदार्थ ज्ञान के लिये विचारों की उचित योजना या निरूपण होता है । विवेचनपद्धति । प्रमाण, दृष्टांत, तर्क आदि से युक्त वाक्य ।

विशेष—न्याय छह वर्णों में है । इसके प्रवर्तक गौतम ऋषि मिथिला के निवासी कह जाते हैं । गौतम के न्यायसूत्र सबसे अधिक प्रसिद्ध हैं । इन सूत्रों पर वात्स्यायन मुनि का भाष्य है । इस भाष्य पर उद्योतकर ने वातिक लिखा है । वातिक की व्याख्या वाचस्पति मिश्र ने 'न्यायवातिक तात्पर्य टीका' के नाम से लिखी है । इस टीका की भी टीका उदयनाचार्य कृत 'तात्पर्य-परिशुद्धि' है । इस परिशुद्धि पर वर्धमान उपाध्याय कृत 'प्रकाश' है ।

गौतम का न्याय केवल प्रमाण तर्क आदि के नियम निश्चित करनेवाला शास्त्र नहीं है बल्कि आत्मा, इन्द्रिय, पुनर्जन्म, दुःख अपवर्ग आदि विविष्ट प्रमेयों का विचार करनेवाला दर्शन है । गौतम ने सोलह पदार्थों का विचार किया है और उनके सम्यक् ज्ञान द्वारा अपवर्ग या मोक्ष की प्राप्ति कहा है । सोलह पदार्थ या विषय में हैं ।—प्रमाण, प्रमेय, संशय, प्रयोजन, दृष्टांत, सिद्धांत, अवयव, तर्क, निर्णय, वाद, जल्प, वितर्क, हेत्वाभास, छल, जाति और निग्रहस्थान । इन विषयों पर विचार किसी मध्यस्थ के सामने बाँधी प्रतिवादी के कथोपकथन के रूप में कराया गया है । किसी विषय में विवाद उपस्थित होने पर पहले इसका निर्णय आवश्यक होता है कि दोनों बाँधियों के कौन कौन प्रमाण माने जायेंगे । इससे पहले 'प्रमाण' लिया गया है । इसके उपरांत विवाद का विषय अर्थात् 'प्रमेय' का विचार हुआ है । विषय सूचित हो जाने पर मध्यस्थ के चित्त में संदेह उत्पन्न होगा कि उसका पदार्थ स्वरूप क्या है । उसी का विचार 'संशय' या 'संदेह' पदार्थ के के नाम से हुआ है । संदेह के उपरांत मध्यस्थ के चित्त में यह विचार हो सकता है कि इस विषय के विचार से क्या मतलब । यही 'प्रयोजन' हुआ । बाँधी संबंध विषय पर अपना पक्ष दृष्टांत दिखाकर बतलाता है, वही 'दृष्टांत' पदार्थ है । जिस पक्ष को बाँधी पुष्ट करके बतलाता है वह उसका 'सिद्धांत' हुआ । बाँधी का पक्ष सूचित होने पर पक्षमाधन की जो जो युक्तियाँ कही गई हैं प्रतिवादी उनके खंड खंड करके उनके खंडन में प्रवृत्त होता है । युक्तियों के ये ही खंड 'अवयव' कहलाते हैं । अपनी युक्तियों को खंडित देख बाँधी फिर से और युक्तियाँ देता है जिनसे प्रतिवादी की युक्तियों का उत्तर हो जाता है । यही 'तर्क' कहा गया है । तर्क द्वारा बाँधी जो अपना पक्ष स्थिर करता है वही 'निर्णय' है । प्रतिवादी के इतने से संतुष्ट न होने पर दोनों पक्षों द्वारा पंचावयवयुक्त युक्तियों का कथन 'वाद' कहा गया है । वाद या शास्त्रार्थ द्वारा स्थिर सत्य पक्ष को न मानकर यदि प्रतिवादी जीत की इच्छा से अपनी चतुराई के बल से व्यर्थ उत्तर प्रत्युत्तर करता चला जाता है तो वह 'जल्प' कहलाता है । इस प्रकार प्रतिवादी कुछ काल तक तो कुछ अच्छी युक्तियाँ देता जायगा फिर ऊटपटाँग बकने लगेगा जिसे 'वितर्क' कहते हैं । इस वितर्क में जितने हेतु दिए जायेंगे वे ठीक न होंगे, वे 'हेत्वाभास' नाम होंगे । उन हेतुओं और युक्तियों के प्रतिरिक्त ज्ञान बूझकर बाँधी को घबराने के लिये उसके वाक्यों का ऊटपटाँग अर्थ करके यदि प्रतिवादी गड़बड़ डालना चाहता है तो वह उसका 'छल' कहलाता है, और यदि व्याप्तिनिरपेक्ष साधर्म्य वैधर्म्य आदि के सहारे अपना पक्ष स्थापित करने लगता है तो वह 'जाति' में आ जाता है । इस प्रकार होते होते जब शास्त्रार्थ में यह अवस्था आ जाती है कि अब प्रतिवादी को रोककर शास्त्रार्थ बंद किया जाय तब 'निग्रहस्थान' कहा जाता है । (विवरण प्रत्येक शब्द के अंतर्गत देखो) ।

न्याय का मुख्य विषय है प्रमाण . 'प्रमा' नाम है यथार्थ ज्ञान का । यथार्थ ज्ञान का जो करण हो अर्थात् जिसके द्वारा यथार्थ ज्ञान हो उसे प्रमाण कहते हैं । गौतम ने चार प्रमाण माने हैं—प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान और शब्द । इनमें से आत्मा, मन और इंद्रिय का संयोग रूप जो ज्ञान का करण वा प्रमाण है वही प्रत्यक्ष है । वस्तु के साथ इंद्रिय-संयोग होने से जो उसका ज्ञान होता है उसी को 'प्रत्यक्ष' कहते हैं । प्रत्यक्ष को लेकर जो ज्ञान होता है वह 'अनुमान' है । भाष्यकार ने इसकी व्याख्या इस प्रकार की है कि निगमिणी के प्रत्यक्ष ज्ञान से उत्पन्न ज्ञान (तथा ज्ञान के कारण) को अनुमान कहते हैं । जैसे, हमने बराबर देखा है कि जहाँ धूपी रहता है वहाँ धाग रहती है । इसी को नैयायिक व्याप्ति ज्ञान कहते हैं जो अनुमान की पहली सीढ़ी है । हमने कहीं धूपी देखा जो धाग का लिंग या चिह्न है और हमारे मन में यह ध्यान हुआ कि जिस धूप के साथ सदा हमने धाग देखी है वह यहाँ है । इसी को परामर्श ज्ञान या व्याप्तिविलिष्ट पक्षधर्मता कहते हैं । इसके अनंतर हमें यह ज्ञान या अनुमान उत्पन्न हुआ कि 'यहाँ धाग है' । अपने समझने के लिये तो उपयुक्त तीन खंड काफी हैं पर नैयायिकों का कार्य है हमारे के मन में ज्ञान कराना, इसी के अनुमान के पाँच खंड करते हैं जो 'अवयव' कहलाते हैं ।

- (१) प्रतिज्ञा—साध्य का निर्वह करनेवाला अर्थात् अनुमान से जो बात सिद्ध करना है उसका वर्णन करनेवाला वाक्य, जैसे, यहाँ पर धाग है ।
- (२) हेतु—जिग लक्षण या चिह्न से बात प्रमाणित की जाती है, जैसे, क्योंकि यहाँ धूपी है ।
- (३) उदाहरण—सिद्ध की जानेवाली वस्तु बतलाए हुए चिह्न के साथ जहाँ देखी गई है उसे बनानेवाला वाक्य । जैसे,—जहाँ जहाँ धूपी रहता है वहाँ वहाँ धाग रहती है, जैसे 'रसोईघर में' ।
- (४) उपनय—जो वाक्य बतलाए हुए चिह्न या लिंग का होना प्रकट करे, जैसे, 'यहाँ पर धूपी है' ।
- (५) निगमन—सिद्ध की जानेवाली बात सिद्ध हो गई यह कथन ।

अतः अनुमान का पूरा रूप यों हुआ—

यहाँ पर धाग है (प्रतिज्ञा) ।

क्योंकि यहाँ धूपी है (हेतु) ।

जहाँ जहाँ धूपी रहता है वहाँ वहाँ धाग रहती है, 'जैसे रसोई घर में' (उदाहरण) ।

यहाँ पर धूपी है (उपनय) ।

इसलिये यहाँ पर धाग है (निगमन) ।

साधारणतः इन पाँच अवयवों से युक्त वाक्य को न्याय कहते हैं ।

नवीन नैयायिक इन पाँचों अवयवों का मानना आवश्यक नहीं समझते । वे प्रमाण के लिये प्रतिज्ञा, हेतु और उदाहरण इन्होंने

तीनों को काफी समझने हैं । मीमांसक और वेदांती भी इन्हीं तीनों को मानते हैं । बौद्ध नैयायिक दो ही मानते हैं, प्रतिज्ञा और हेतु ।

दुष्ट हेतु को हेत्वाभास कहते हैं पर इसका प्रमाण गौतम ने प्रमाण के अंतर्गत न करके इसे अलग पदार्थ (विषय) मानकर किया है । इसी प्रकार ज्ञान, ज्ञानि, निग्रहस्थान इत्यादि भी वास्तव में हेतुबोध ही बड़े जा सकते हैं । केवल हेतु का अच्छी तरह विचार करने से अनुमान के सब दोष पकड़े जा सकते हैं और यह मालूम हो सकता है कि अनुमान ठीक है या नहीं ।

गौतम का तीसरा प्रमाण 'उपमान' है । किसी जानी हुई वस्तु के सादृश्य से न जानी हुई वस्तु का ज्ञान जिस प्रमाण से होता है वही उपमान है । जैसे, नीलगाय भाव के सदृश होती है । किसी के मुँह से यह सुनकर जब हम जंगल में नीलगाय देखते हैं तब चट हमें ज्ञान हो जाता है कि 'यह नीलगाय है' । इससे प्रतीत हुआ कि किसी वस्तु का उसके नाम के साथ संबंध ही उपमिति ज्ञान का विषय है । वैशेषिक और बौद्ध नैयायिक उपमान को अलग प्रमाण नहीं मानते, प्रत्यक्ष और शब्द प्रमाण के ही अंतर्गत मानते हैं । वे कहते हैं कि 'गो के सदृश गवय होता है' यह शब्द या आत्म ज्ञान है क्योंकि यह आत्म या विश्वासपात्र मनुष्य के बड़े हुए शब्द द्वारा हुआ । फिर इसके उपरान्त यह ज्ञान कि 'यह जंतु जो हम देखते हैं गो के सदृश है' यह प्रत्यक्ष ज्ञान हुआ । इसका उत्तर नैयायिक यह देते हैं कि यहाँ तक का ज्ञान तो शब्द और प्रत्यक्ष ही हुआ पर इसके अनंतर जो यह ज्ञान होता है कि 'इसी जंतु का नाम गवय है' वह न प्रत्यक्ष है, न अनुमान, न शब्द, वह उपमान ही है । उपमान को कई नए दार्शनिकों ने इस प्रकार अनुमान के अंतर्गत किया है । वे कहते हैं कि 'इस जंतु का नाम गवय है', 'क्योंकि यह गो के सदृश है' 'जो जो जंतु गो के सदृश होने है उनका नाम गवय होता है' । पर इसका उत्तर यह है कि 'जो जो जंतु गो के सदृश होते हैं वे गवय हैं' यह बात मन में नहीं आती, मन में केवल इतना ही आता है कि 'मैंने अच्छे आदमी के मुँह से सुना है कि गवय गाय के सदृश होता है ?'

चौथा प्रमाण है शब्द । सूत्र में लिखा है कि आत्मोपदेश अर्थात् आत्म पुरुष का वाक्य शब्दप्रमाण है । भाष्यकार ने आत्मपुरुष का लक्षण यह बतलाया है कि जो साक्षात्कृतधर्मा हो, जैसा देखा सुना (अनुभव किया) हो ठीक ठीक वैसा हो कहनेवाला हो, वही आत्म है, चाहे वह धर्म हो या म्लेच्छ । गौतम ने आत्मोपदेश के दो भेद किए हैं—दृष्टार्थ और अदृष्टार्थ । प्रत्यक्ष जानी हुई बातों को बतानेवाला दृष्टार्थ और केवल अनुमान से जानी जानेवाली बातों (जैसे स्वर्ग, अपवर्ग, पुनर्जन्म इत्यादि) को बतानेवाला अदृष्टार्थ कहलाता है । इसपर माध्व करते हुए वात्स्यायन ने कहा है कि इस प्रकार लौकिक और ऋषि-वाक्य (वैदिक) का विभाग हो जाना है अर्थात् अदृष्टार्थ में केवल वेदवाक्य ही प्रमाण कीटि में माना जा सकता है । नैयायिकों के मत से वेद ईश्वरकृत है इससे उसके वाक्य सदा

सत्य और विश्वसनीय हैं पर नौकिक वाक्य सभी सत्य माने जा सकते हैं जब उनका कहनेवाला प्रामाणिक माना जाय। सूत्रों में वेद के प्रामाण्य के विषय में कई शंकाएँ उठाकर उनका समाधान किया गया है। मीमांसक ईश्वर नहीं मानते पर वे भी वेद को अपौरुषेय और नित्य मानते हैं। नित्य तो मीमांसक शब्द मात्र को मानते हैं और शब्द और अर्थ का नित्य संबंध स्तलाते हैं। पर नैयायिक शब्द का अर्थ के साथ कोई नित्य संबंध नहीं मानते।

वाक्य का अर्थ क्या है, इस विषय में बहुत मतभेद है। मीमांसकों के मत से नियोग या प्रेरणा ही वाक्यार्थ है—अर्थात् 'ऐसा करो', 'ऐसा न करो' यही बात सब वाक्यों से कही जाती है चाहे साफ साफ चाहे ऐसे अर्थवाले दूसरे वाक्यों से संबंध द्वारा। पर नैयायिकों के मत से कई पदों के संबंध के निकलनेवाला अर्थ ही वाक्यार्थ है। परंतु वाक्य में जो पद होते हैं वाक्यार्थ के मूल कारण वे ही हैं। न्यायमंजरी में पदों में दो प्रकार की शक्ति मानी गई है—प्रथम अभिधानी शक्ति जिससे एक एक पद अपने अपने अर्थ का बोध कराता है और दूसरी तात्पर्य शक्ति जिससे कई पदों के संबंध का अर्थ सूचित होता है। शक्ति के प्रतिरिक्त लक्षणा भी नैयायिकों ने मानी है। आत्मकारिकों ने तीसरी वृत्ति व्यंजना भी मानी है पर नैयायिक उसे पुष्पक वृत्ति नहीं मानते। सूत्र के अनुसार जिन कई प्रश्नों के अंत में विभक्ति हो वे हो पद हैं और विभक्तियाँ दो प्रकार की होती हैं—नाम विभक्ति और आख्यात विभक्ति। इस प्रकार नैयायिक नाम और आख्यात को ही प्रकार के पद मानते हैं। अव्यय पद को आध्यकार ने नाम के ही अंतर्गत सिद्ध किया है।

न्याय में ऊपर लिखे चार ही प्रमाण माने गए हैं। मीमांसक और वेदांती अर्थापत्ति, ऐतिह्य, संभव और अभाव ये चार और प्रमाण कहते हैं। नैयायिक इन चारों को अपने चार प्रमाणों के अंतर्गत मानते हैं। ऊपर के विवरण से स्पष्ट हो गया होगा कि प्रमाण ही न्यायशास्त्र का मुख्य विषय है। इसी से 'प्रमाणप्रदीप', 'प्रमाणकुशल' आदि शब्दों का व्यवहार नैयायिक या तार्किक के लिये होता है।

प्रमाण अर्थात् किसी बात को सिद्ध करने के विधान का ऊपर उल्लेख हो चुका। अब उक्त विधान के अनुसार किन किन वस्तुओं का विचार और निर्णय न्याय में हुआ है, इसका संक्षेप में कुछ विवरण दिया जाता है।

ऐसे विषय न्याय में प्रमेय (जो प्रमाणित किया जाय) पदार्थ के अंतर्गत हैं और बारह गिनाए गए हैं—

- (१) आत्मा—सब वस्तुओं का देखनेवाला, भोग करनेवाला, जाननेवाला और अनुभव करनेवाला। (२) शरीर—भोगों का आयतन या आधार। (३) इन्द्रियाँ—भोगों के साधन। (४) अर्थ—वस्तु जिसका भोग होता है। (५) बुद्धि—भोग। (६) मन—अंतःकरण अर्थात् वह भीतरी इन्द्रिय जिसके द्वारा सब वस्तुओं का ज्ञान होता है। (७) प्रवृत्ति—वचन, मन

और शरीर का व्यापार। (८) दोष—जिसके कारण अच्छे या बुरे कामों में प्रवृत्ति होती है। (९) प्रेत्यग्भाव—पुनर्जन्म। (१०) फल—सुख दुःख का संवेदन या अनुभव। (११) दुःख—पीड़ा, क्लेश। (१२) अपवर्ग—दुःख से अत्यंत निवृत्ति या मुक्ति।

इस सूची से यह न समझना चाहिए कि इन वस्तुओं के प्रतिरिक्त और प्रमाण के विषय या प्रमेय हो ही नहीं सकते। प्रमाण के द्वारा बहुत सी बातें सिद्ध की जाती हैं। पर गौतम ने अपने सूत्रों में उन्हीं बातों पर विचार किया है जिनके ज्ञान से अपवर्ग या मोक्ष की प्राप्ति हो। न्याय में इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, सुख दुःख और ज्ञान ये आत्मा के लिंग (अनुमान के साधन चिह्न या हेतु) कहे गए हैं, यद्यपि शरीर, इन्द्रिय और मन से आत्मा पुष्पक मानी गई है। वैशेषिक में भी इच्छा, द्वेष, सुख, दुःख आदि को आत्मा का लिंग कहा है। शरीर, इन्द्रिय और मन से आत्मा के पुष्पक होने के हेतु गौतम ने दिए हैं। वेदांतियों के समान नैयायिक एक ही आत्मा नहीं मानते, अनेक मानते हैं। सांख्यवाले भी अनेक पुरुष मानते हैं पर वे पुरुष को अकर्ता और अभोक्ता, साक्षी वा द्रष्टा मात्र मानते हैं। नैयायिक आत्मा को कर्ता, भोक्ता आदि मानते हैं। संसार को रचनेवाली आत्मा ही ईश्वर है। न्याय में आत्मा के समान ही ईश्वर में भी संख्या, परिमाण, पुष्पकत्व, संयोग, विभाग, इच्छा, बुद्धि, प्रयत्न ये गुण माने गए हैं पर नित्य करके। न्यायमंजरी में लिखा है कि दुःख, द्वेष और संस्कार को छोड़ और सब आत्मा के गुण ईश्वर में हैं। बहुत से लोग शरीर को पाँचों भूतों से बना मानते हैं पर न्याय में शरीर केवल पृथ्वी के परमाणुओं से घटित माना गया है। चेट्टा, इन्द्रिय और अर्थ के आश्रय को शरीर कहते हैं। जिस पदार्थ से सुख हो उसके पाने और जिससे दुःख हो उसे दूर करने का व्यापार चेट्टा है। अतः शरीर का जो लक्षण किया गया है उसके अंतर्गत वृक्षों का शरीर भी आ जाता है। पर वाचस्पति मिश्र ने कहा है कि यह लक्षण वृक्षशरीर में नहीं घटता, इससे केवल मनुष्यशरीर का ही अभिप्राय समझना चाहिए। शंकर मिश्र ने वैशेषिक सूत्रोपस्कार में कहा है कि वृक्षों को शरीर है पर उसमें चेट्टा और इन्द्रियाँ स्पष्ट नहीं दिखाई पड़तीं इससे उसे शरीर नहीं कह सकते। पूर्वजन्म में किए कर्मों के अनुसार शरीर उत्पन्न होता है। पाँच भूतों से पाँचों इन्द्रियों की उत्पत्ति कही गई है। प्राणेंद्रिय से गंध का ग्रहण होता है, इससे वह पृथ्वी से बनी है। रसना जल से बनी है क्योंकि रस जल का ही गुण है। त्वक् बायु से बनी है क्योंकि त्वक् बायु का ही गुण है। श्रोत्र आकाश से बनी है क्योंकि शब्द आकाश का गुण है।

बीदों के मत से शरीर में इन्द्रियों के जो प्रत्यक्ष गोलक देखे जाते हैं उन्हीं को इन्द्रियाँ कहते हैं। (जैसे, आँख की पुतली, जीभ इत्यादि); पर नैयायिकों के मत से जो घंग दिखाई पड़ते हैं वे इन्द्रियों के अविच्छाद मात्र हैं, इन्द्रियाँ नहीं हैं। इन्द्रियों

का ज्ञान इंद्रियों द्वारा नहीं हो सकता। कुछ लोग एक ही स्वयं इंद्रिय मानते हैं। न्याय में उनके मत का खंडन करके इंद्रियों का ज्ञान स्थापित किया गया है। सांख्य में पाँच कर्मेन्द्रियाँ और मन लेकर ग्यारह इंद्रियाँ मानी गई हैं। न्याय में कर्मेन्द्रियाँ नहीं मानी गई हैं पर मन एक करके और अणुरूप माना गया है। यदि मन सूक्ष्म न होकर व्यापक होता तो युगपद् ज्ञान संभव होता, अर्थात् अनेक इंद्रियों का एक क्षण में एक साथ संयोग होने से उन सबके विषयों का एक साथ ज्ञान होता। पर नैयायिक ऐसा नहीं मानते। गंध, रस, रूप, स्पर्श और शब्द ये पाँचों भूतों के गुण और इंद्रियों के अर्थ या विषय हैं। न्याय में बुद्धि को ज्ञान या उपलब्धि का ही दूसरा नाम कहा है। सांख्य में बुद्धि नित्य कही गई है पर न्याय में अनित्य।

वैशेषिक के समान न्याय भी परमाणुवादी है अर्थात् परमाणुओं के योग से सृष्टि मानता है। प्रमेयों के संबंध में न्याय और वैशेषिक के मत प्रायः एक ही हैं इससे दर्शन में दोनों के मत न्याय मत कहे जाते हैं। वात्स्यायन ने भी भाष्य में कहा दिया है कि जिन बातों को विस्तार अथ से गौतम ने सूत्रों में नहीं कहा है उन्हें वैशेषिक से ग्रहण करना चाहिए।

ऊपर जो कुछ लिखा गया है उससे प्रकट हो गया होगा कि गौतम का न्याय केवल विचार या तर्क के नियम निर्धारित करनेवाला शास्त्र नहीं है बल्कि प्रमेयों का विचार करनेवाला दर्शन है। पाश्चात्य लाजिक (तर्कशास्त्र) से यही इसमें भेद है। लाजिक दर्शन के अंतर्गत नहीं लिया जाता पर न्याय दर्शन है। यह अर्थ है कि न्याय में प्रमाण या तर्क की परीक्षा विशेष रूप से हुई है।

न्यायशास्त्र का भारतवर्ष में कब प्रादुर्भाव हुआ ठीक नहीं कहा जा सकता। नैयायिकों में जो ब्रह्म प्रचलित है उनके अनुसार गौतम वेदव्यास के समकालीन ठहरते हैं; पर इसका कोई प्रमाण नहीं है। 'ग्रामीणिकी' 'नर्कविद्या' 'हेतुवाक्य' का निष्ठापूर्वक उल्लेख रामायण और महाभारत में मिलता है। रामायण में तो नैयायिक शब्द भी अनेकानेक में आया है। पारंगुनि ने न्याय से नैयायिक शब्द बनने का निर्देश किया है। न्याय के प्रादुर्भाव के संबंध में साधारणतः दो प्रकार के मत पाए जाते हैं। कुछ पाश्चात्य विद्वानों की धारणा है कि बौद्ध धर्म का प्रचार होने पर उसके खंडन के लिये ही हम शास्त्र का अभ्युदय हुआ। पर कुछ एतद्देशीय विद्वानों का मत है कि वैदिक ऋषियों के परस्पर समन्वय और समाधान के लिये जैमिनि ने पूर्वमीमांसा में जिन युक्तियों और तर्कों का व्यवहार किया वे ही पहले न्याय के नाम से कहे जाते थे। आपस्तम्ब धर्मसूत्र में जो न्याय शब्द आया है उसका पूर्वमीमांसा से ही अभिप्राय समझना चाहिए। आश्वलायन ने पूर्वमीमांसा का जो सारसंग्रह लिखा उसका नाम न्यायशास्त्रा-विस्तार रखा। वाचस्पति मिश्र ने भी 'न्यायकणिका' के नाम

से मीमांसा पर एक ग्रंथ लिखा है। पर न्याय के प्राचीनत्व से बंग देश का गौरव समझनेवाले कुछ बंगाली पंडितों का कथन है कि न्याय ही सब दर्शनों में प्राचीन है क्योंकि और सब दर्शनसूत्रों में दूसरे दर्शनों का उल्लेख मिलता है पर न्यायसूत्रों में कहीं किसी दूसरे दर्शन का नाम नहीं आया है। यद्यपि यह नहीं कहा जा सकता कि न्याय सब दर्शनों में प्राचीन है, पर इतना अवश्य कह सकते हैं कि तर्क के नियम बौद्ध धर्म के प्रचार से बहुत पूर्व प्रचलित थे, चाहे वे मीमांसा के रहे हों या स्वतंत्र। हेमचंद्र ने न्यायसूत्रों पर भाष्य रचनेवाले वात्स्यायन और बाणक्य को एक ही व्यक्ति माना है। यदि यह ठीक हो तो भाष्य ही बौद्ध-धर्म-प्रचार के पूर्व का ठहरता है। क्योंकि बौद्ध धर्म का प्रचार अशोक के समय से और बौद्ध न्याय का आविर्भाव अशोक के भी पीछे महायान शाखा स्थापित होने पर हुआ। पर वात्स्यायन और बाणक्य का एक होना हेमचंद्र के श्लोक (जिसमें चाणक्य के आठ नाम मिलाए गए हैं) के आधार पर ही ठीक नहीं माना जा सकता। कुछ विद्वानों का कथन है कि वात्स्यायन ईसा की पाँचवीं शताब्दी में हुए। ईसा की छठी शताब्दी में वासुदेव-ताकार सुबंधु ने मल्लनाथ, न्यायदिधिति, धर्मकीर्ति और उद्योतकर इन चार नैयायिकों का उल्लेख किया है। इनमें धर्मकीर्ति प्रसिद्ध बौद्ध नैयायिक थे। उद्योतकराचार्य ने प्रसिद्ध बौद्ध नैयायिक विद्वांसाचार्य के 'प्रमाणसमुच्चय' नामक ग्रंथ का खंडन करके वात्स्यायन का मत स्थापित किया। 'प्रमाणसमुच्चय' में विद्वांसा ने वात्स्यायन के मत का खंडन किया था। इससे यह निश्चित है कि वात्स्यायन विद्वांसा के पूर्व हुए। मल्लनाथ ने विद्वांसा को कालिदास का समकालीन बताया है, पर कुछ लोग इसे ठीक नहीं मानते और विद्वांसा का काल ईसा की तीसरी शताब्दी कहते हैं। सुबंधु के उल्लेख से विद्वांसाचार्य का ही काल छठी शताब्दी के पूर्व ठहरता है अतः वात्स्यायन को जो उनसे भी पूर्व हुए पाँचवीं शताब्दी में मानना ठीक नहीं। वे उससे पहले हुए होंगे। वात्स्यायन ने दशव्यवहारी नैयायिकों का उल्लेख किया है, हमसे सिद्ध है कि उनके पहले से भाष्यकार नैयायिकों की परंपरा चली आती थी। अतः, सूत्रों की रचना का काल बौद्ध धर्म के प्रचार के पूर्व मानना पड़ता है।

वैदिक, बौद्ध और जैन नैयायिकों के बीच विवाद ईसा की पाँचवीं शताब्दी से लेकर १३ वीं शताब्दी तक बराबर चलता रहा। इससे खंडन मंडन के बहुत से ग्रंथ बने। १४ वीं शताब्दी में गंगेशोपाध्याय हुए जिन्होंने 'नव्यन्याय' की नींव डाली। प्राचीन न्याय से प्रमेय आदि जो सोलह पदार्थ थे उनमें से और सबको किनारे करके केवल 'प्रमाण' को लेकर ही भारी शब्दाढंबर खड़ा किया गया। इस नव्यन्याय का आविर्भाव मिथिला में हुआ। मिथिला से नविया में जाकर नव्यन्याय ने और भी अर्थकर रूप धारण किया। न उसमें तत्त्वनिर्णय रहा, न तत्त्वनिर्णय की सामर्थ्य।

४. दृष्टान् वाक्य त्रिसका व्यवहार लोक में कोई प्रमंग प्रा पडने पर होता है। कोई विषयवाच्य चटना सूचित करनेवाली उक्ति जो उपस्थित बात पर घटती हो। कहावत।

ऐसे न्याय या दृष्टान् वाक्य बहुत से प्रचलित चले आते हैं जिनमें से कुछ प्रकारादि कम से दिए जाते हैं --

- (१) अजाकृपाणीय न्याय- कहीं तलवार लटकती थी, नीचे से चकरा गया और वह संयोग से उसकी गर्दन पर गिर पड़ी। जहाँ निवसंयोग से कोई विपत्ति आ पड़ती है वहाँ इसका व्यवहार होता है।
- (२) अजातपुत्रनामोत्कीर्तन न्याय—अर्थात् पुत्र न होने पर भी नामकरण होने का न्याय। जहाँ कोई बात होने पर भी आशा के सहारे लोग अनेक प्रकार के आयोजन बाँधने लगते हैं वहाँ यह कहा जाता है।
- (३) अद्यारोप न्याय—जो वस्तु वैसी न हो उसमें वैसा होने का (जैसे रज्जु में सर्प होने का) आरोप। वेदांत की पुस्तकों में इसका व्यवहार मिलता है।
- (४) अंधकूपपतन न्याय—किसी भले आदमी ने अंधे को रास्ता बनवा दिया और वह चला, पर जाते जाते कूँ में गिर पड़ा। जब किसी अनधिकारी को कोई उपदेश दिया जाता है और वह उमपर चलकर अपने अज्ञान आदि के कारण चूक जाता है या अपनी हानि कर बैठता है तब यह कहा जाता है।
- (५) अंधगज न्याय- कई जन्मांधों ने हाथी कैसा होता है यह देखने के लिये हाथी को टटोला। जिसने जो अंग टटोला पाया उसने हाथी का आकार उमी अंग का सा समझा। जिसने पूँछ टटोली उसने रस्सी के आकार का, जिमने पैर टटोला उसने खभे के आकार का समझा। किसी विषय के पूर्ण अंग का ज्ञान न होने पर उसके संबंध में जब अपनी अपनी समझ के अनुसार भिन्न भिन्न बातें कही जाती हैं तब इस उक्ति का प्रयोग करते हैं।
- (६) अंधगोलांगूल न्याय—एक अंधा अपने घर के रास्ते से भटक गया था। किसी ने उसके हाथ में गाय की पूँछ पकड़ाकर कह दिया कि यह तुम्हें गृध्रारे स्थान पर पहुँचा देगी। गाय के इधर उधर दीड़ने से अंधा अपने घर तो पहुँचा नहीं, कष्ट उसने भले ही पाया। किसी दुष्ट या मूर्ख के उपदेश पर काम करके जब कोई कष्ट या दुःख उठाता है तब यह कहा जाता है।
- (७) अंधचटक न्याय—अंधे के दाँव बटेर।
- (८) अंधधरंपरा न्याय—जब कोई पुरुष किसी को कोई काम करते देखकर आप भी वही काम करने लगे तब वहाँ यह कहा जाता है।
- (९) अंधपंशु न्याय—एक ही स्थान पर जानेवाला एक अंधा और एक लंगड़ा यदि मिल जायें तो एक दूसरे की सहायता से दोनों वही पहुँच सकते हैं। साक्ष्य में जब प्रकृति और चेतन पुरुष के संयोग से सृष्टि होने के दृष्टांत में यह उक्ति कही गई है।
- (१०) अपवाद न्याय—जिस प्रकार किसी वस्तु के संबंध में

ज्ञान हो जाने से भ्रम नहीं रह जाता उसी प्रकार। (वेदांत)।

- (११) अपराह्णन्याय—जिस प्रकार दोपहर की छाया बराबर बढ़ती जाती है उसी प्रकार वृषणों की प्रीति आदि के संबंध में यह न्याय कहा जाता है।
- (१२) अपसारिताभिभूत न्याय—जमीन पर मे घाग दृष्टा लेने पर भी जिस प्रकार कुछ देर तक जमीन गरम रहती है उसी प्रकार घनी घन के न रह जाने पर भी कुछ दिनों तक अपनी प्रकृति रखता है।
- (१३) अरण्यरोदन न्याय—जंगल में रोने के समान बात। जहाँ कहने पर कोई ध्यान देनेवाला न हो वहाँ इसका प्रयोग होता है।
- (१४) अक्रमधु न्याय—गदि मदार में ही मधु मिल जाय तो उसके लिये अधिक परिश्रम व्यर्थ है। जो कार्य सहज में हो उसके लिये इधर उधर बहुत श्रम करने की आवश्यकता नहीं।
- (१५) अत्रेजरतीय न्याय—एक बाह्यांग देवता धर्मकष्ट से दुःखी हो नित्य धरती गाय लेकर बाजार में बेचने जाते पर वह न बिकती। बात यह थी कि व्यवस्था पृथक् पर वे उसकी बहुत अवस्था बतलाने थे। एक दिन एक आदमी ने उनसे न बिकने का कारण पूछा। आह्वान ने कहा जिरा प्रकार आदमी की व्यवस्था अधिक होने पर उसकी कदर बढ़ जाती है उसी प्रकार मैंने गाय के संबंध में भी समझा था। उसने आगे ऐसा न कहने की मलाह दी। आह्वान ने सोचा कि एक बार गाय को बुड्डी कहकर अब फिर जवान कैसे कहूँ। अंत में उन्होंने स्थिर किया कि आत्मा तो बुड्डी होती नहीं देह बुड्डी होती है। अतः इसे मैं 'वाघी बुड्डी बाघी जवान' कहूँगा। जब किसी की कोई बात इस पक्ष में भी और उस पक्ष में भी हो तब यह उक्ति कही जाती है।
- (१६) अशोकवनिका न्याय—अशोक वन में जाने के समान (जहाँ छाया सौरभ आदि सब कुछ प्राप्त हो)। जब किसी एक ही स्थान पर सब कुछ प्राप्त हो लय और कही जाने की आवश्यकता न हो तब यह कहा जाता है।
- (१७) अश्मलोष्ट न्याय—अर्थात् तराजू पर रखने के लिये पत्थर तो ढेले से भी भारी है। यह विषमता सूचित करने के अनुरूप पर ही कहा जाता है। जहाँ दो वस्तुओं में सापेक्षिकता सूचित करनी होती है। वहाँ 'परायोगिक न्याय' कहा जाता है।
- (१८) अस्नेहदोष न्याय—बिना तेल के दीये की सी बात। कोई ही काल रहनेवाली बात देखकर यह कहा जाता है।
- (१९) अहिकुंडल न्याय—साँप के कुंडल मारकर बैठने के समान। किसी स्वाभाविक बात पर।
- (२०) अहि नकुल न्याय—साँप नेबले के समान। स्वाभाविक विरोध या वैर सूचित करने के लिये।
- (२१) आकाशापरिच्छिन्नत्व न्याय—आकाश के समान अपरिच्छिन्न।

- (१२) आभ्याणक न्याय—लोकप्रवाद के समान ।
- (१३) आभ्रवण न्याय—जिस प्रकार किसी वन में यदि घाम के पेड़ अधिक होते हैं तो उसे 'घाम का वन' ही कहते हैं, यद्यपि और भी पेड़ उस वन में रहते हैं, उसी प्रकार जहाँ धीरों को छोड़ प्रधान वस्तु का ही उल्लेख किया जाता है वहाँ यह उक्ति कही जाती है ।
- (१४) उत्पातिसद्वतनाग न्याय—दाँत तोड़े हुए साँप के समान । कुछ करने धरने या हानि पहुँचाने में असमर्थ हुए मनुष्य के संबंध में ।
- (१५) उदकनिमज्जन न्याय—कोई दोषी है या निर्दोष इसकी एक दिव्य परीक्षा प्राचीन काल में प्रचलित थी । दोषी को पानी में डूबा करके किसी धीरे बाण छोड़ते थे और बाण छोड़ने के साथ ही भ्रामयुक्त को तबतक डूबे रहने के लिये कहते थे जबतक वह छोड़ा हुआ बाण वहाँ से फिर छूटने पर लौट न आवे । यदि इतने बीच में डूबनेवाले का कोई अंग बाहर न दिखाई पड़ा तो उसे निर्दोष समझते थे । जहाँ सत्यासत्य की बात पताती है वहाँ यह न्याय कहा जाता है ।
- (१६) उभयसः पाशरज्जु न्याय—जहाँ दोनों ओर विपत्ति हो अर्थात् दो कर्तव्यपक्षों में से प्रत्येक में दुःख हो वहाँ इसका व्यवहार होता है । 'सांख्यद्वार की गति ।'
- (२०) उद्धूकटक भक्षण न्याय—जिस प्रकार थोड़े से सुल के लिये ऊँट कटि खाने का कष्ट उठाता है उसी प्रकार जहाँ थोड़े से सुल के लिये अधिक कष्ट उठाया जाता है वहाँ यह कहावत कही जाती है ।
- (२६) ऊपरवृष्टि न्याय—किसी वान का जहाँ कोई फल न हो वहाँ कहा जाता है ।
- (२६) कंठचामीकर न्याय—गले में सोने का हार हो और उसे इधर उधर हूँदता फिरे । शानंदस्वामी ब्रह्म के अपने में रहते भी भ्रान्तवश मुख के लिये अनेक प्रकार के दुःख भोगने के दृष्टांत में वेर्षांती कहते हैं ।
- (३०) कर्द्वगोलाक न्याय—जिस प्रकार कर्द्व के गोले में सब फूल एक साथ ही जाते हैं, उसी प्रकार जहाँ कई बातें एक साथ हो जाती हैं वहाँ इसे कहते हैं । कुछ नैयायिक सन्तो-त्पत्ति में कई वर्णों के उच्चारण एक साथ मानकर उसके दृष्टांत में यह कहते हैं । यह भी कहते हैं कि जिस प्रकार कर्द्व में सब तरफ किजलक होता है वैसे सब जहाँ उत्पन्न होता है उसके सभी ओर उसकी तरंगों का प्रसार होता है ।
- (३१) कदलीफल न्याय—कला काष्ठन पर ही फलता है इसी प्रकार नीचे सीधे कहने से नहीं सुनते ।
- (३२) कफोनिगुह न्याय—सूत न कणम जुलाहों से मटकौदन ।
- (३३) करकंकण न्याय—कंकण कहने से ही हाथ के गहने का बोध हो जाता है, 'कर' कहने की आवश्यकता नहीं । पर कर कंकण कहते हैं जिसका अर्थ होता है 'हाथ में पड़ा हुआ कड़ा' । इस प्रकार का जहाँ अभिप्राय होता है वहाँ यह न्याय कहा जाता है ।
- (३४) काकतालीय न्याय—किसी ऊँड़ के पेड़ के नीचे कोई पक्षि बैठा था और ऊपर एक कीड़ा बैठा था । कीड़ा किसी ओर

को उड़ा और उसके उड़ने के साथ ही ताड़ का एक पका हुआ फल नीचे गिरा । यद्यपि फल पककर आपसे आप गिरा था तथापि पक्षि ने दोनों बातों को साथ होते देख यही समझा कि कीड़े के उड़ने से ही तालफल गिरा । जहाँ दो बातें संयोग से इस प्रकार एक साथ हो जाती हैं वहाँ उनमें परस्पर कोई संबंध न होते हुए भी लोग संबंध समझ लेते हैं । ऐसा संयोग होने पर यह कहावत कही जाती है ।

- (३५) काकद्व्युपघातक न्याय—'कीड़े से दही बचाना' कहने से जिस प्रकार 'कुत्ते, बिल्ली आदि सब जंतुओं से बचाना' समझ लिया जाता है उसी प्रकार जहाँ किसी वस्तु का अभिप्राय होता है वहाँ यह उक्ति कही जाती है ।
- (३६) काकद्वतगावेक्षण न्याय—कीड़े का दाँत हूँदना निष्फल है अतः निष्फल प्रयत्न के संबंध में यह न्याय कहा जाता है ।
- (३७) काकाक्षिगोलक न्याय—कहते हैं, कीड़े के एक ही पुतली होती है जो प्रयोजन के अनुसार कभी इस घाँस में कभी उस घाँस में जाती है । जहाँ एक ही वस्तु दो स्थानों में कार्य करे वहाँ के लिये यह कहावत है ।
- (३८) कारणगुणप्रक्रम न्याय—कारण का गुण कार्य में भी पाया जाता है । जैसे सूत का रूप आदि उससे बुने कपड़े में ।
- (३९) कुराकाशाबलवन न्याय—जैसे डूबता हुआ आदमी कुछ काम जो कुछ पाता है उसी को सहारे के लिये पकड़ता है, उसी प्रकार जहाँ कोई दृढ़ आधार न मिलने पर लोग इधर उधर की बातों का सहारा लेते हैं वहाँ के लिये यह कहावत है । 'डूबते को तिनके का सहारा' बोलते भी हैं ।
- (४०) कूपखानक न्याय—जैसे कुआँ खोदनेवाले की देह में लगा हुआ कीचड़ उसी कूप के जल से साफ हो जाता है उसी प्रकार शम, कृष्ण आदि को निमग्न भिन्न रूपों में समझने से ईश्वर में भेद बुद्धि का जो दोष लगता है वह उन्हीं की उपासना द्वारा ही अद्वैतबुद्धि हो जाने पर मिट जाता है ।
- (४१) कूपमंदूक न्याय—समुद्र का मेढक किसी कूप में जा पड़ा । कूप के मेढक ने पूछा 'आई ! तुम्हारा समुद्र कितना बड़ा है ।' उसने कहा 'बहुत बड़ा' । कूप के मेढक ने पूछा 'इस कूप के इतना बड़ा' । समुद्र के मेढक ने कहा 'कहाँ कुआँ, कहीं समुद्र' । समुद्र से बड़ी कोई वस्तु पृथ्वी पर नहीं । इसपर कूप का मेढक जो कूप से बड़ी कोई वस्तु जानता ही न था बिगड़कर बोला 'तुम झूठे हो, कूप से बड़ी कोई वस्तु हो नहीं सकती' । जहाँ परिमित ज्ञान के कारण कोई अपनी जानकारी के ऊपर कोई दूसरी बात मानता ही नहीं वहाँ के लिये यह उक्ति है ।
- (४२) कूर्मग न्याय—जिस प्रकार कछुआ जब चाहता है तब अपने सब अंग भीतर समेट लेता है और जब चाहता है बाहर करता है उसी प्रकार ईश्वर सृष्टि और लय करता है ।
- (४३) कैमुतिक न्याय—जिसने बड़े बड़े काम किए उसे कोई छोटा काम करते क्या लगता है । उसी के दुष्टांत के लिये यह उक्ति कही जाती है ।

(४४) कौडिन्य न्याय—यह प्रख्या है पर ऐसा होता तो और भी प्रख्या होता ।

(४५) गजभुक्त कपित्थ न्याय—हाथी के खाए हुए केव के समान ऊपर से देखने में ठीक पर भीतर भीतर निःसार और सून्य ।

(४६) गडुल्लिकाप्रवाह न्याय—भेड़िया समान ।

(४७) गणपति न्याय—एक बार देवताओं में विवाद चला कि सबसे पूज्य कौन है । ब्रह्मा ने कहा जो पुष्पी की प्रदक्षिणा पहले कर जाने वही श्रेष्ठ समझा जाय । सब देवता अपने अपने वाहनों पर चले । गणेश जी चूहे पर सवार सबके पीछे रहे । इतने में मिले नारद । उन्होंने गणेश जी की युक्ति बनाई कि राम नाम लिखकर उसी की प्रदक्षिणा करके चटपट ब्रह्मा के पास पहुँच जाओ । गणपति ने ऐसा ही किया और देवताओं में वे प्रथम पूज्य हुए । इसी से जहाँ बौद्धों की युक्ति से बड़ी भारी बात हो जाय वहाँ इसका प्रयोग करते हैं ।

(४८) गसानुगतिक न्याय—कुछ ब्राह्मण एक घाट पर तपण किया करते थे । वे अपना अपना कुश एक ही स्थान पर रख देते थे जिससे एक का कुश दूसरा ले जाता था । एक दिन पशुपति के लिये एक ने अपने कुश को इंट से दबा दिया । उसकी देखा देखी दूसरे दिन सबने अपने कुश पर इंट रखी । जहाँ एक की देखादेखी लोग कोई काम करने लगते हैं वहाँ यह न्याय कहा जाता है ।

(४९) गुडजिल्लिका न्याय—जिस प्रकार बच्चे को कड़वी गोषध खिलाने के लिये उसे पहले गुड़ देकर फुपलाते हैं उसी प्रकार जहाँ अचिकर या कठिन काम कराने के लिये पहले कुछ प्रलोभन दिया जाता है वहाँ इस उक्ति का प्रयोग होता है ।

(५०) गोवलीवर्द न्याय—'वलीवर्द' शब्द का अर्थ है बैल । जहाँ यह शब्द गो के साथ हो वहाँ अर्थ और भी अन्तरी कुल जाता है । ऐसे शब्द जहाँ एक साथ होते हैं वहाँ के लिये यह कहावत है ।

(५१) घटकुटीप्राभात न्याय—एक बनिया घाट के महसूल से बचने के लिये ठीक रास्ता छोड़ ऊबड़खाबड़ स्थानों में रातभर भटकता रहा पर सबेरा होते होते फिर उनी महसूल की छावनी पर पहुँचा और उसे महसूल देना पड़ा । जहाँ एक कठिनाई से बचने के लिये अनेक उपाय निष्फल हों और अंत में उसी कठिनाई में फँसना पड़े वहाँ यह न्याय कहा जाता है ।

(५२) घटप्रदीप न्याय—बड़ा अपने भीतर रखे हुए दीप का प्रकाश बाहर नहीं जाने देता । जहाँ कोई अपना ही भला चाहता है दूसरे का उपकार नहीं करता वहाँ यह प्रयुक्त होता है ।

(५३) घुशासुर न्याय—धुनों के चालने से लकड़ी में अक्षरों के से आकार बन जाते हैं, यद्यपि धुन इस उद्देश्य से नहीं काटते कि अक्षर बनें । इसी प्रकार जहाँ एक काम करने में कोई दूसरी बात अनायास हो जाय वहाँ यह कहा जाता है ।

(५४) चंपकपटवास न्याय—जिस कपड़े में चंके का फूल रखा हो

उसमें फूलों के न रहने पर भी बहुत देर तक महँक रहती है इसी प्रकार विषय भोग का संस्कार भी बहुत काल तक बन रहता है ।

(५५) अलतरंग न्याय—अलग नाम रहने पर भी तरंग जम से भिन्न गुण की नहीं होती । ऐसा ही प्रभेद सूचित करने के लिये इस उक्ति का व्यवहार होता है ।

(५६) जलतुंबिका न्याय—(क) तूँबी पानी में नहीं डूबती डूबाने से ऊपर आ जाती है । जहाँ कोई बात छिपाने से छिपनेवाली नहीं होती वहाँ इसे कहते हैं । (ख) तूँबी के ऊपर मिट्टी कीचड़ आदि लपेटकर उसे पानी में डाले तो वह डूब जाती है पर कीचड़ छोकर पानी में डालें तो नहीं डूबती इसी प्रकार जीव देहादि के नलों से युक्त रहने पर संसार सागर में निमग्न हो जाता है, और मल आदि छूटने पर पार हो जाता है ।

(५७) जलानयन न्याय—पानी 'लाघो' कहने से उसके साथ बरतन का लाना भी समझ लिया जाता है क्योंकि बरतन के बिना पानी आवेगा किसमें ।

(५८) तिलतुल न्याय—चावल और तिल की तरह मिली रहने पर भी अलग दिखाई देनेवाली वस्तुओं के संबंध में इसका प्रयोग होता है ।

(५९) तुणजलीका न्याय—दे० 'तुणजलीका' शब्द ।

(६०) दंडचक्र न्याय—जैसे चक्र बनने में दंड, चक्र आदि का कारण है वैसे ही जहाँ कोई बात अनेक कारणों से होती है वहाँ यह उक्ति कही जाती है ।

(६१) दंडापूप न्याय—कोई डंडे में बँधे हुए मालपूए छोड़कर कहीं गया । जाने पर उसने देखा कि डंडे का बहुत सा भार चूहे खा गए हैं । उसने सोचा कि जब चूहे डंडा तक खा गए तब मालपूए को उन्होंने कब छोड़ा होगा । जब कोई दुष्का और कष्टसाध्य कार्य हो जाता है तब उसके साथ ही कम हुआ सुख और सहज कार्य अवश्य ही हुआ होगा यही सूचित करने के लिये यह कहावत कहते हैं ।

(६२) दशम न्याय—दस आदमी एक साथ कोई नदी तीरकर पार गए । पार जाकर वे यह देखने के लिये सबको गिनने लगे कि कोई छूटा या बह तो नहीं गया । पर जो गिनता था अपने को छोड़ देता इससे गिनने में जो ही ठहरते । अंत में उस एक छोए हुए के लिये सबने रोना शुरू किया । एक चतुर पथिक ने आकर उनसे फिर से गिनने के लिये कहा । अब एक उठकर तो तक गिन गया तब पथिक ने कहा 'सबसे तुम' इसपर सब प्रसन्न हो गए । वेदांती इस न्याय का प्रयोग ब्रह्मविद्या के लिये करते हैं कि गुरु के 'तत्त्वमसि' आदि उपदेश सुनने पर अज्ञान और तज्जनित दुःख दूर हो जाता है ।

(६३) देहलीदीपक न्याय—देहली पर दीपक रखने से भीतर और बाहर दोनों ओर उजाला रहता है । जहाँ एक ही आशय से दो काम सँघे या एक शब्द या बात दोनों ओर सँघे यह न्याय का प्रयोग होता है ।

- (६४) नष्टाश्वरद्वयार्थ न्याय—एक आदमी रथ पर बन में जाता था। बन में घास लगी थी और उसका चोड़ा भर गया। वह बहुत व्याकुल प्रमत्ता था कि इतने में एक दूसरा आदमी मिला जिसका रथ जल गया था और चोड़ा बचा था। दोनों ने मिलकर काम चला लिया। इस प्रकार जहाँ दो आदमी मिलकर एक दूसरे की त्रुटि की पूर्ति करके काम चलाते हैं वहाँ इसे कहते हैं।
- (६५) नारिकेलफलांबु न्याय—नारिकेल के फल में जिस प्रकार न जाने कहीं से कैसे जल आ जाता है उसी प्रकार लक्ष्मी किस प्रकार आती है नहीं जान पड़ता।
- (६६) निम्नगाप्रवाह न्याय—नदी का प्रवाह जिस ओर को जाता है उधर रुक नहीं सकता। इसी प्रकार के अनिवार्य कम के दृष्टांत में यह कहावत है।
- (६७) नृपनापितपुत्र न्याय—किसी राजा के यहाँ एक नाई नोकर था। एक दिन राजा ने उससे कहा कि कहीं से सबसे सुंदर बालक लाकर मुझे दिखाओ। नाई को अपने पुत्र से बढ़कर और कोई सुंदर बालक कहीं न दिखाई पड़ा और वह उसी को लेकर राजा के सामने आया। राजा उस काले कलूटे बालक को देख बहुत क्रुद्ध हुआ, पर पीछे उसने सोचा कि प्रेम या राग के बल इसे अपने लड़के से सुंदर और कोई दिखाई दी न पड़ा। राग के बल जहाँ अनुष्य ग्रंथा हो जाता है और उसे अच्छे बुरे की पहचान नहीं रह जाती वहाँ इस न्याय का प्रयोग होता है।
- (६८) पंकप्रक्षालन न्याय—कीचड़ लग जायगा तो ओं डालेंगे इसकी धमेक्षा यही विचार अच्छा है कि कीचड़ लगने ही न पावे।
- (६९) पंजरनाक्षन न्याय—दस पक्षी यदि किसी पित्रके में बंद कर दिए जायें और वे सब एक साथ यत्न करें तो पित्रके को इधर उधर चला सकते हैं। दस ज्ञानेन्द्रियाँ और दस कर्मेन्द्रियाँ प्राणरूप क्रिया उत्पन्न करके देह को चलाती हैं इसी के दृष्टांत में सांख्यवाले उक्त न्याय कहते हैं।
- (७०) पाषाणेष्टक न्याय—ईंट भारी होती है पर उससे भी भारी पत्थर होता है।
- (७१) पिष्टपेषण न्याय—पीसे को पीसना निरर्थक है। किए हुए काम को व्यर्थ जहाँ कोई फिर करता है वहाँ के लिये यह उक्ति है।
- (७२) प्रदीप न्याय—जिस प्रकार तेल, बत्ती और घाग इन त्रिभिन्न वस्तुओं के मेल से दीपक जलता है उसी प्रकार सत्व, रज और तम इन परस्पर त्रिभिन्न गुणों के सहयोग से देहधारण का व्यापार होता है। (सांख्य)।
- (७३) प्रापाणक न्याय—जिस प्रकार घी, बीनी आदि कई वस्तुओं के एकत्र करने से बढ़िया मिठाई बनती है उसी प्रकार अनेक उपादानों के योग से सुंदर वस्तु तैयार होने के दृष्टांत में यह उक्ति कही जाती है। सांख्यवाले विभाव, अनुभाव आदि द्वारा रस का परिपाक सूचित करने के लिये इसका प्रयोग प्रायः करते हैं।
- (७४) प्रासादवासि न्याय—महल में रहनेवाला यद्यपि कामकाज के लिये नीचे उतरकर बाहर इधर उधर भी जाता है पर उसे प्रासादवासी ही कहते हैं इसी प्रकार जहाँ जिस विषय की प्रधानता होती है वहाँ उसी का उल्लेख होता है।
- (७५) फलवत्सहकार न्याय—घास के पेड़ के नीचे पशिक छाया के लिये ही जाता है पर उसे फल भी मिल जाता है। इसी प्रकार जहाँ एक लाभ होने से दूसरा लाभ भी हो वहाँ यह न्याय कहा जाता है।
- (७६) बहुवृत्ताकृष्ट न्याय—एक हिरन को यदि बहुत से भेड़िए लगे तो उसके घंग एक स्थान पर नहीं रह सकते। जहाँ किसी वस्तु के लिये बहुत से लोग लींचाखीची करते हैं वहाँ यह यथास्थान वा समूची नहीं रह सकती।
- (७७) बिलवर्तिगोघा न्याय—जिस प्रकार बिल में स्थित गोह का विभाग आदि नहीं हो सकता उसी प्रकार जो वस्तु अज्ञात है उसके संबंध में ज्ञान बुरा कुछ नहीं कहा जा सकता।
- (७८) ब्राह्मणग्राम न्याय—जिस ग्राम में ब्राह्मणों की बस्ती अधिक होती है उसे ब्राह्मणों का गाँव कहते हैं यद्यपि उसमें कुछ और लोग भी बसते हैं। औरों को छोड़ प्रधान वस्तु का ही नाम लिया जाता है, यही सूचित करने के लिये यह कहावत है।
- (७९) ब्राह्मणभ्रमण न्याय—ब्राह्मण यदि अपना घर छोड़ भ्रमण (बौद्ध भिक्षु) भी हो जाता है तब भी उसे ब्राह्मण भ्रमण कहते हैं। एक वृत्ति को छोड़ जब कोई दूसरी वृत्ति ग्रहण करता है तब भी लोग उसकी पूर्ववृत्ति का निर्देश करते हैं।
- (८०) भञ्जनोन्मज्जन न्याय—तैरना न जाननेवाला जिस प्रकार जल में पड़कर डूबता उतराता है उसी प्रकार मूर्ख या दुष्ट बादी प्रमाण आदि ठीक न दे सकने के कारण क्षुब्ध और व्याकुल होता है।
- (८१) मंडूकतोत्थान न्याय—एक भूत बनिया तराजू पर सीढ़े के साथ मेढक रखकर तोला करता था। एक दिन मेढक कूदकर भागा और वह पकड़ा गया। छिपाकर का हुई बुराई का भडा एक दिन फूटता है।
- (८२) रज्जुसर्प न्याय—जबतक रज्जु ठीक नहीं पड़ती तबतक मनुष्य रस्सी को सच समझता है इसी प्रकार जबतक ब्रह्मज्ञान नहीं होता तबतक मनुष्य दृश्य जगत् को सत्य समझता है, पीछे ब्रह्मज्ञान होने पर उसका भ्रम दूर होता है और वह समझता है कि ब्रह्म के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। (वेदांती)।
- (८३) राजपुत्रव्याघ्र न्याय—कोई राजपुत्र बचपन में एक व्याघ्र के घर पड़ गया और वहाँ पकड़कर अपने को व्याघ्रपुत्र हो समझने लगा। पीछे जब लोगों ने उसे उसका कुल बताया तब उसे अपना ठीक ठीक ज्ञान हुआ। इसी प्रकार जबतक ब्रह्मज्ञान नहीं होता तबतक मनुष्य अपने को न जाने क्या समझ करता है। ब्रह्मज्ञान हो जाने पर वह समझता है कि 'मैं ब्रह्म हूँ'। (वेदांती)।
- (८४) राजपुरप्रवेश न्याय—राजा के द्वार पर जिस प्रकार बहुत से बोगों की भीड़ रहती है पर सब बोग बिना गड़बड़

या हल्सा किए पुपचाप कायदे से बड़े रहते हैं उसी प्रकार जहाँ सुभ्यवस्थापूर्वक कार्य होता है वहाँ यह न्याय कहा जाता है।

- (८५) रात्रिदिवस न्याय—रात दिन का फर्क । भारी फर्क ।
- (८६) लूतातंतु न्याय—जिस प्रकार मकड़ी अपने शरीर से ही सूत निकालकर जाला बनाती है और फिर घाप हो उसका संहार करती है इसी प्रकार ब्रह्म अपने से ही सृष्टि करता है और अपने में उसे लय करता है ।
- (८७) लोप्लगुह न्याय—ढेला तोड़ने के लिये जैसे ढंका होता है उसी प्रकार जहाँ एक का दमन करनेवाला दूसरा होता है वहाँ यह कहावत कही जाती है ।
- (८८) लोह चुंबक न्याय—लोहा गतिहीन और निष्क्रिय होने पर भी चुंबक के आकर्षण से उसके पास जाता है उसी प्रकार पुरुष निष्क्रिय होने पर भी प्रकृति के साहचर्य से क्रिया में तत्पर होता है । (सांख्य) ।
- (८९) वरगोष्ठो न्याय—जिस प्रकार वरषड और कन्यापक्ष के लोग मिलकर विवाह रूप एक ऐसे कार्य का साधन करते हैं जिससे दोनों का अभीष्ट सिद्ध होता है उसी प्रकार जहाँ कई लोग मिलकर मनुके हित का कोई काम करते हैं वहाँ यह न्याय कहा जाता है ।
- (९०) वल्लिधूम न्याय—धूमरूप कार्य देखकर जिस प्रकार कारण रूप धूमि का ज्ञान होता है उसी प्रकार कार्य द्वारा कारण अनुमान के संबंध में यह उक्ति है (तैय्यिक) ।
- (९१) बिल्वखत्ताट (खल्वाट) न्याय—रूप से व्याकुल गंडा छाया के लिये बेन के पेड़ के नीचे गया । वहाँ उसके सिर पर एक बेन टूटकर गिरा । जहाँ इष्टसाधन के प्रयत्न में प्रसिद्ध होता है वहाँ यह उक्ति कही जाती है ।
- (९२) विषयुक्त न्याय—विष का पेड़ लगाकर भी कोई उसे अपने हाथ से नहीं काटता । अपनी पानी पोसी वस्तु का कोई अपने हाथ से नाश नहीं करता ।
- (९३) वीचितरंग न्याय—एक के उपरांत दूसरी, इस क्रम से बराबर घानेवाली तरंगों के समान । नैय्यायिक ककारादि वर्णों की उत्पत्ति वीचितरंग न्याय में मानते हैं ।
- (९४) बीजांकुर न्याय—बीज ने अंकुर या अंकुर से बीज है यह ठीक नहीं कहा जा सकता । न बीज के बिना अंकुर हो सकता है न अंकुर के बिना बीज । बीज और अंकुर का प्रवाह प्रनादि काल में चला पाता है । दो संबद्ध वस्तुओं के निरूप प्रवाह के दृष्टांत में वेदांतो इस न्याय को कहते हैं ।
- (९५) वृक्षप्रकंपन न्याय—एक आदमी पेड़ पर चढ़ा । नीचे से एक ने कहा कि यह डाल हिलाओ, दूसरे ने कहा यह डाल हिलाओ । पेड़ पर चढ़ा हुआ आदमी कुछ स्थिर न कर सका कि किस डाल को हिलाऊँ । इतने में एक आदमी ने पेड़ का बड़ ही पकड़कर हिला डाला जिससे सब डालें हिल गईं । जहाँ कोई एक बात सबके अनुकूल हो जाती है वहाँ इसका अर्थ होता है ।

(९६) वृद्धकुमारिका न्याय या वृद्धकुमारी वाक्य न्याय—कोई कुमारी तप करती करती बुढ़ी हो गई । इंद्र ने उससे कोई एक वर माँगने के लिये कहा । उसने वर माँगा कि मेरे बहुत से पुत्र सोने के बरतनों में खूब घी दूध और अन्न लायें । इस प्रकार उसने एक ही वाक्य में पति, पुत्र, गोधन धान्य सब कुछ माँग लिया । जहाँ एक की प्राप्ति से सब कुछ प्राप्त हो वहाँ यह कहावत कही जाती है ।

(९७) शतपत्रभेद न्याय—ती पत्ते एक साथ रखकर छेदने से जान पड़ता है कि सब एक साथ एक काल में ही छिद गए पर वास्तव में एक एक पत्ता भिन्न भिन्न समय में छिदा । कालांतर की सूक्ष्मता के कारण इसका ज्ञान नहीं हुआ । इस प्रकार जहाँ बहुत से कार्य भिन्न भिन्न समयों में होते हुए भी एक ही समय में हुए जान पड़ते हैं वहाँ यह दृष्टांत वाक्य कहा जाता है । (सांख्य) ।

(९८) श्यामरक्त न्याय—जिस प्रकार कच्चा काला धड़ा पकन पर अपना रंग गुण छोड़ कर रक्तगुण धारण करता है उसी प्रकार पूर्व गुण का नाश और अपर गुण का धारण पृथित करने के लिये यह उक्ति कही जाती है ।

(९९) श्यालकशुनक न्याय—किसी ने एक कुत्ता पाला या और उसका नाम अपने साले का नाम रखा था । जब वह कुत्ते का नाम लेकर गानियाँ देता तब उसकी स्त्री अपने भाई का आपमान समझकर बहुत चिड़ती । जिस उद्देश्य से कोई बात नहीं की जाती वह यदि उससे हो जाती है तो यह कहावत कही जाती है ।

(१००) संदर्शपतित न्याय—संझसी जिस प्रकार अपने बीच भाई हुई वस्तु को पकड़ती है उसी प्रकार जहाँ पूर्व और उत्तर पदार्थ द्वारा मध्यस्थित पदार्थ का ग्रहण होता है वहाँ इस न्याय का व्यवहार होता है ।

(१०१) समुद्रवृष्टि न्याय—समुद्र में पानी बरसने से जैसे कोई उपकार नहीं होता उसी प्रकार जहाँ जिस बात की कोई आवश्यकता या फल नहीं वहाँ यदि वह की जाती है तो यह उक्ति बरिताय की जाती है ।

(१०२) सर्वापेक्षा न्याय—बहुत से लोगों का जहाँ निमग्न होता है वहाँ यदि कोई सबके पहले पहुँचता है तो उसे सबकी प्रतीक्षा करना होती है । इस प्रकार जहाँ किसी काम के लिये सबका पासरा देलना होता है वहाँ यह उक्ति कही जाती है ।

(१०३) सिंहावलोकन न्याय—सिंह शिकार मारकर जब भागे बढ़ता है तब पीछे फिर फिरकर देखता जाता है । इसी प्रकार जहाँ अगली और पिछली सब बातों की एक साथ आलोचना होती है वहाँ इस उक्ति का व्यवहार होता है ।

(१०४) सूखीकटाह न्याय—सूई बनाकर कड़ाह बनाने के समान । किसी लोहार से एक आदमी ने आकर कड़ाह बनाने को कहा । जोड़ी देर में एक दूसरा आया, उसने सूई बनाने के लिये कहा । लोहार ने पहले सूई बनाई तब कड़ाह । सहज काम पहले

करना तब कठिन काम में हाथ लगाना, इसी के दृष्टांत में यह कहा जाता है।

(१०५) सुंदोपसुंद न्याय—सुंद और उपसुंद दोनों भाई बड़े बली दैत्य थे। एक स्त्री पर दोनों मोहित हुए। स्त्री ने कहा दोनों में जो अधिक बलवान् होगा उसी के साथ मैं विवाह करूँगी। परिणाम यह हुआ कि दोनों लड़ मरे। परस्पर के फूट से बलवान् से बलवान् मनुष्य नष्ट हो जाते हैं यही सूचित करने के लिये यह कहावत है।

(१०६) सोपानारोहण न्याय—जिस प्रकार प्रामाद पर जाने के लिये एक एक सोढ़ो क्रम से चढ़ना होता है उसी प्रकार किसी बड़े काम के करने में क्रम क्रम से चलना पड़ता है।

(१०७) सोपानारोहण न्याय—सीढ़ियाँ जिस क्रम से चढ़ते हैं उसी के उलटे क्रम से उतरते हैं। इसी प्रकार जहाँ किसी क्रम से चलकर फिर उसी के उलटे क्रम से चलना होता है (जैसे, एक बार एक से सो तक गिनती गिनकर फिर सो से निम्नानवे, छद्मानवे इस उलटे क्रम से गिनना) वहाँ यह न्याय कहा जाता है।

(१०८) स्थविरत्नगुह न्याय—बुड़ों के हाथ से फेंकी हुई लाठी जिस प्रकार ठीक निशाने पर नहीं पहुँचती उसी प्रकार किसी बात के लक्ष्य तक न पहुँचने पर यह उक्ति कही जाती है।

(१०९) स्थूणानिखनन न्याय—जिस प्रकार घर के छप्पर में चीड़ देने के लिये खंभा गाड़ने में उसे मिट्टी आदि डालकर ढक करना होता है उसी प्रकार युक्ति उदाहरण द्वारा अपना पक्ष ढक करना पड़ता है।

(११०) स्थूलाग्रंधती न्याय—विवाह हो जाने पर वर और कन्या को ग्रंधती तारा दिखाया जाता है जो दूर होने के कारण बहुत सूक्ष्म है और जल्दी दिखाई नहीं देता। ग्रंधती दिखाने में जिस प्रकार पहले सप्तवि को दिखाते हैं जो बहुत जल्दी दिखाई पड़ता है और फिर उंगली से बताते हैं कि उसी के पास वह ग्रंधती है देखा, इसी प्रकार किसी सूक्ष्म तत्त्व का परिज्ञान कराने के लिये पहले स्थूल दृष्टांत आदि देकर 'कमला' उस तत्त्व तक ले जाते हैं।

(१११) स्वामिभृत्य न्याय—जिस प्रकार नायिक का काम करके नौकर भी स्वामी की प्रसन्नता से अपने को कृतकार्य समझना है उसी प्रकार जहाँ दूसरे का काम हो जाने से अपना भी काम या प्रसन्नता हो जाय वहाँ के लिये यह उक्ति है।

ऊपर जो न्याय दिए गए हैं उनका व्यवहार प्रायः होता है और बहुत से न्याय संस्कृत में आते हैं जो विस्तारमय थे नहीं दिए गए। लौकिक न्याय संग्रह नामक ग्रंथ में जिसके कर्ता रघुनाथ हैं ३६४ न्यायों की सूची है।

५. साधर्म्यता। समानता। तुल्यता (को०)। ६. विध्यु का एक नाम (को०)।

न्यायकर्ता—संज्ञा पु० [सं० न्यायकर्तृ] न्याय करनेवाला। दो पक्षों के विवाद का निर्णय करनेवाला। ईसाक करनेवाला। मुकदमे का फैसला करनेवाला हाकिम।

न्यायसः—क्रि० वि० [सं० न्यायसत्] १. न्याय से। धर्म और नीति के अनुसार। ईमान से। २. ठीक ठीक।

न्यायता—संज्ञा स्त्री० [सं०] न्याय का भाव। धीरचित्त।

न्यायनिर्वाण—संज्ञा पु० [सं०] शिव का एक नाम (महाभारत)।

न्यायपथ—संज्ञा पु० [सं०] १. आचरण का न्यायसंमत मार्ग। उचित रीति। २. मीमांसा दर्शन (को०)।

न्यायपर—वि० [सं०] न्यायशील। न्यायी। (को०)।

न्यायपरता—संज्ञा स्त्री० [सं०] न्यायशीलता। न्यायी होने का भाव।

न्यायपरायण—वि० [सं०] १. 'न्यायपर' (को०)।

न्यायप्रिय—वि० [सं०] जिसे न्याय प्रिय हो।

न्यायवर्ती—वि० [सं० न्यायवर्तिन्] न्याय पथ पर चलनेवाला (को०)।

न्यायवादी—वि० [सं० न्यायवादिन्] १. उचित या न्याय को कहनेवाला। २. निर्णायक।

न्यायवान्—संज्ञा पु० [सं० न्यायवत्] [वि० स्त्री० न्यायवती] न्याय पर चलनेवाला। विवेकी। न्यायी।

न्यायवृत्त—संज्ञा पु० [सं०] शुद्ध आचरण। सदाचरण (को०)।

न्यायशोक्त—वि० [सं०] न्यायी। न्याय करनेवाला (को०)।

न्यायसभा—संज्ञा स्त्री० [सं०] वह सभा जहाँ विवादों का निर्णय हो। कचहरी। अदालत।

न्यायसारिणी—संज्ञा स्त्री० [सं०] उचित या उपयुक्त व्यवहार (को०)।

न्यायाधीश—संज्ञा पु० [सं०] न्यायकर्ता। व्यवहार या विवाद का निर्णय करनेवाला। अधिकारी। मुकदमे का फैसला करनेवाला अधिकारी। जज।

न्यायालय—संज्ञा पु० [सं०] वह स्थान जहाँ न्याय अर्थात् व्यवहार या विवाद का निर्णय हो। वह जगह जहाँ मुकदमों का फैसला हो। अदालत। कचहरी।

न्यायी—संज्ञा पु० [सं० न्यायिन्] न्याय पर चलनेवाला। नीतिसंमत आचरण करनेवाला। उचित पक्ष ग्रहण करनेवाला।

न्याय्य—वि० [सं०] न्याययुक्त। न्यायसंगत।

न्यार(पु)¹—वि० [सं० निनिकट, प्रा० निन्नियर] १. 'न्यायरा'।

न्यार²—संज्ञा पु० [हि० निवार] पसहो धान। मुन्यन्न।

न्यार³—संज्ञा पु० [हि० न्यारा] पशुओं को बिधा जानेवाला चारा। भूसा आदि। उ०—दे न्यार बैल को, फेर हाथ, कर प्यार बनी माता धरती।—मिट्टी०, पृ० ४४।

न्यारा—वि० [सं० निनिकट, प्रा० निन्नियर, पु० हि० निन्यार] [वि० स्त्री० न्यारी] १. जो पास न हो। दूर। २. जो मिला या लगा न हो। अलग। पृथक्। जुदा।

क्रि० प्र०—करना।—रहना।—होना।

३. और ही। अन्य। भिन्न। जैसे—यह बात न्यारी है। ४. निराशा। अनोखा। विलक्षण। जैसे,—मथुरा तीन लोक से न्यारी।

न्यारिया—संज्ञा पु० [हि० न्यारा] सुनारों के निवार (राख इत्यादि) को धोकर सोना चाँदी एकत्र करनेवाला।

न्यारे—क्रि० वि० [हि० न्यारा] १. रास नहीं। दूर। जैसे,—उससे न्यारे रहो। २. अलग। पृथक्। साथ में नहीं। जैसे,—वह हमसे न्यारे हो गया।

न्याय—संज्ञा पुं० [सं० न्याय] १. नियम नीति । प्राचरण । पद्धति ।
उ०—ऊधो, ताको न्याय है जाहि न सुई नैन ।—सुर
(शब्द०) । २. उचित पक्ष । वाजिब बात । कर्तव्य का ठीक
निर्धारण । ३. विवेक । उचित अनुचित की बुद्धि । ईसाफ ।
जैसे,—जो तुम्हारे न्याय में घावे वही करो । ४. दो पक्षों के
बीच निर्णय । विवाद वा झगड़े का निबटारा । व्यवहार या
मुकद्दमे का फैसला । जैसे—राजा करे सो न्याय ।

क्रि० प्र०—करना ।—होना ।

मुहा०—न्याय चुकाना = झगड़ा निबटाना । विवाद का निर्णय
करना । फैसला करना ।

न्यास—संज्ञा पुं० [सं०] [वि० न्यस्त] १. स्थापन । रखना । २. यथा-
स्थान स्थापन । जगह पर रखना । ठीक जगह जम से
लगाना या सजाना । ३. स्थाप्य द्रव्य । किसी की वस्तु जो
दूसरे के यहाँ इस विश्वास पर रखी हो कि वह उसकी रक्षा
करेगा और मींगने पर लौटा देगा । धरोहर । बाती । ४.
अर्पण । ५. त्याग । ६. संन्यास । ७. पूजा की तांत्रिक पद्धति
के अनुसार देवता के भिन्न भिन्न अंगों का ध्यान करते हुए
मंत्र पढ़कर उनपर विशेष बलों का स्थापन ।

यौ०—अंगन्यास । करन्यास ।

८. किसी रोग या बाधा की जाति के लिये रोगी या बाधाग्रस्त
मनुष्य के एक एक अंग पर हाथ ले जाकर मंत्र पढ़ने का
विधान । ९. काणिका वृत्ति (को०) । १०. निशान । चिह्न
(को०) । १२. आवाज या ध्वनि का मंच करना (को०) । १३.
अंकन । चित्रण (को०) ।

न्यासधारी—संज्ञा पुं० [सं०] याती रखनेवाला । धरोहर रखने-
वाला (को०) ।

न्यासस्वर—संज्ञा पुं० [सं०] वह स्वर जिससे कोई राग समाप्त
किया जाय ।

न्यासापह्नव—संज्ञा पुं० [सं०] धरोहर को डकार जाना । बाती लौटाने
से अपस्वीकार करना (को०) ।

न्यासिक—वि० [सं०] धरोहर रखनेवाला । जो किसी की याती रखे ।

न्यासी—संज्ञा पुं० [सं० न्यासिन्] संन्यासी (को०) ।

न्युज—वि० [सं०] १. अशोभ्य । अशोभा । २. कुबड़ा । ३. रोग से
जिसकी कमर टेढ़ी हो गई हो ।

न्युज—संज्ञा पुं० १. कुण । २. माला । ३. एक यज्ञपात्र । ४.
कर्मरंग कल । कर्मरत्न । ५. न्यग्रोध घुस (को०) ।

न्युजखड्ग—संज्ञा पुं० [सं०] टेढ़ी तलवार । अक्रान्तखड्ग (को०) ।

न्यूज—संज्ञा स्त्री० [अंग०] समाचार । संवाद । वृत्तान्त । वृत्ता । खबर ।

यौ०—न्यूजप्रिंट = समाचारपत्र छापने का कामज । एक प्रकार
का कामज । न्यूजपेपर ।

न्यूजपेपर—संज्ञा पुं० [अंग०] समाचारपत्र । खबर ।

न्यून—वि० [सं०] १. कम । थोड़ा । अल्प । २. घटकर । कम ।
मोटा । ३. नीच । शूद्र । ४. विकारयुक्त । विकृत ।

न्यूनता—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. कमी । २. हीनता ।

न्यूनांग—वि० [सं० न्यूनाङ्ग] विकलांग । अंगभंग । अपंग (को०) ।

न्यूनाधिक—वि० [सं०] १. थोड़ा बहुत । कपोलेश (को०) ।

न्योचनी—संज्ञा स्त्री० [सं०] १. सायण के अनुसार दासी या सेविका ।
२. स्त्रियों का एक आभूषण (को०) ।

न्योछावर—संज्ञा स्त्री० [हि० निछावर] १० 'निछावर' ।

न्योजी—संज्ञा स्त्री० [हि० लीची] १. लीची नामक फल । उ०—
कोइ नारंग कोइ झाड़ू चिरोजी । कोइ कटहर बड़हर कोइ
न्योजी ।—जायसी (शब्द०) । २. नेता । बिसगोजा ।

न्योतना—क्रि० स० [हि० न्योता + ना (प्रत्य०)] १. किसी रीति
रस्म या धार्मिक उत्सव आदि में संमिलित होने के लिये इष्ट
मित्र, बंधु बंधव आदि को बुलाना । निर्मन्त्रित करना ।

संयो० क्रि०—देना ।

२. दूसरे को अपने यहाँ भोजन करने के लिये बुलाना । जैसे,—
उसने सो ब्राह्मण न्योते हैं ।

न्योतनी—संज्ञा स्त्री० [हि० न्योतना] वह खाना पीना जो विवाह
आदि मंगल अवसरों पर होता है ।

न्योतहरी—संज्ञा पुं० [हि० न्योता] निर्मन्त्रित मनुष्य । न्योते में आया
हुआ आदमी ।

न्योता—संज्ञा पुं० [सं० निमन्त्रण] किसी रीति रस्म, धार्मिक उत्सव
आदि में संमिलित होने के लिये इष्ट मित्र, बंधु बंधव आदि
का आह्वान । बुलावा । निर्मन्त्रण ।

क्रि० प्र०—देना ।

३. अपने स्थान पर भोजन के लिये बुलावा । भोजन स्वीकार करने
की प्रार्थना । जैसे,—उन्होंने दस ब्राह्मणों को न्योता दिया है ।

क्रि० प्र०—माना ।—जाना ।—देना ।

४. वह भोजन जो दूसरे को अपने यहाँ कराया जाय या दूसरे
के यहाँ (उसकी प्रार्थना पर) किया जाय । दावत । जैसे,—
(क) वह न्योता खाने गया है । (ख) हमें न्योता खिलाओ ।

क्रि० प्र०—खाना ।—खिलाना ।

५. वह भेंट या धन जो अपने इष्टमित्र, संबंधी इत्यादि के यहाँ
से कितो शुभ या अशुभ कार्य में संमिलित होने का न्योता
पाकर उसके यहाँ भेजा जाता है । जैसे,—इसकी कन्या के
विवाह में मैंने १०० न्योता भेजा था ।

न्योरा—संज्ञा पुं० [हि० नेवला] १० 'नेवला' ।

न्योरा—संज्ञा पुं० [सं० तूपुर] बड़े दानों का घुँघरू । नेवर ।

न्योला—संज्ञा पुं० [हि० नेवला] ३० 'न्योला' ।

न्योली—संज्ञा स्त्री० [सं० नली] नेती, धोती, आदि के समान हठयोग
की एक क्रिया जिसमें पेट के नलों को पानी से साफ करते हैं ।

न्योज—संज्ञा पुं० [सं० नेवेद्य] नेवज । नेवेद्य ।

न्यप—संज्ञा पुं० [सं० नृप] राजा । नृप ।

न्यैनी—संज्ञा स्त्री० [हि०] ३० 'नोहनी', 'नोई' ।

नहवाना—क्रि० स० [सं० स्थापन, प्रा० एहावण] स्नान कराना ।
नहवाना ।

नहान—संज्ञा पुं० [सं० स्नान, प्रा० सहाण] ३० 'नहान' ।

नहाना—क्रि० प्र० [सं० स्नाय, प्रा० राहाण] ३० 'नहाना' ।

नहावना—क्रि० स० [३० स्थापन, प्रा० राहावण, हि० नहवाना]
स्नान कराना । नहवाना ।

